पुस्तकमिदं राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्य पुनर्मुद्रणयोजनाया प्रकाशितम्।

# शब्दकल्पद्रुमः।

अर्थात्

एतद्देशस्थसमस्तकोषाशेषशास्त्रसङ्कलिताकारादिवर्णक्रमविन्यस्तशब्द-तद्भिन्न-नानार्थ-पर्य्याय-प्रमाण-प्रयोग-धातु-तदनुबन्धाभिधेय-
सहित-तत्तच्छब्दप्रसङ्गोत्थित-वेद-वेदाङ्ग-वेदान्त-न्याय-पुराणेतिहास-सङ्गीत-शिल्प-सूपकारशास्त्र-ज्योतिष-
तन्त्राख्यान-काव्यालङ्कार-छन्दःप्रभृति-नाम-लक्षणोदाहरण-द्रव्यगुण-रोगनिदानौषध-
स्मृत्युक्तव्यवस्थादिसंयुक्त-सर्व्वदर्शनमतानुसारि-संस्कृताभिधानग्रन्थः ।

## स्यार-राजा-राधाकान्तदेव-बाहादुरेण

विरचितः ।

पाणिनिमतानुसारि-प्रत्येकशब्दव्युत्पत्ति-मूलग्रन्थातिरिक्तबहुलशब्दार्थ-प्रमाण प्रयोग-पर्य्याय-धातुपदोदाहरणादिभि
नूतनसङ्कलितबहुलशब्द-तदर्थ-तत्प्रमाण-प्रयोगादिसहित-
सप्रशस्तपरिशिष्टेन च सार्द्धम्

## श्रीवरदाप्रसादवसुना तदनुजेन श्रीहरिचरणवसुना च

अशेषशास्त्रविशारदकोविदवृन्दसाहाय्येन सपरिवर्द्धितः । नागराक्षरैः प्रकाशितश्च ।

### प्रथम काण्डः।

स्वरवर्णः।

## राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थान

मानित विश्वविद्यालय

५६-५७ए, इन्स्टिट्यूशनल एरिया, जनकपुरी, नई दिल्ली-११००५८

(भारत)

The firm will replace the copy/copies free of cost if any defect is found

प्रकाशक
**प्रो. वेम्पटि कुटुम्ब शास्त्री**
कुलपति
**राष्ट्रिय सस्कृत संस्थान**
मानित विश्वविद्यालय
(मानवससाधन विकास मत्रालय, भारत सरकार के अधीन)
५६-५७, इन्स्टीट्यूशनल एरिया,
जनक पुरी, नई दिल्ली-११००५८

योजनासमन्यायक
**प्रो. आर. देवनाथन्**
प्राचार्य, दिल्ली परिसर
**डॉ. प्रकाशपाण्डेय**
सहायकनिदेशक (शोध एव प्रकाशन)

मूल्यम् : १४९० ०० रुप्यकाणि (५ भागो का सेट)

प्रथम पुनः मुद्रित सस्करणम् : १९८७
द्वितीय पुनः मुद्रित सस्करणम् . २००२
तृतीय पुनः मुद्रित सस्करणम् : २००६

मुद्रक

**नाग पब्लिशर्स**
११ए/यूए जवाहर नगर,
दिल्ली-११०००७ (भारत)

अर्जुन सिंह
**ARJUN SINGH**

मानव ससाधन विकास मत्री
भारत
नई दिल्ली - ११० ००१
MINISTER OF
HUMAN RESOURCE DEVELOPMENT
INDIA
NEW DELHI - 110 001

# संदेश

सस्कृत साहित्य मे अनेक ग्रन्थरत्न विद्यमान है जिनका पठन-पाठन एव अनुसधान इस राष्ट्र मे सहस्त्रो वर्षों से चला आ रहा है। वेद, शास्त्र, स्मृति एव पुराण जैसे विशाल ग्रन्थ सस्कृत वाड्मय का अग है। यह वाड्मय समय-समय पर प्रतिष्ठित विद्वानो द्वारा परिश्रम एव आर्थिक व्यय से अशत: प्रकाशित भी हुआ है। किन्तु समय के साथ इन ग्रन्थो की मुद्रित पुस्तके छात्रों, विद्वानो एव सामान्यजनो को दुर्लभ होने लगी है। अत: इन दुर्लभ सुसम्पादित ग्रन्थो का पुनर्मुद्रण कर न्यूनतम मूल्य पर उपलब्ध कराने की योजना मानव ससाधन विकास मत्रालय एव उसके अगभूत राष्ट्रिय-सस्कृत-सस्थान के द्वारा कार्यान्वित की गयी है।

मै आशा करता हूँ कि इस दूरगामी उपक्रम से सस्कृत के विद्वान्, छात्र एव सस्कृतप्रेमी सामान्यजन लाभान्वित होंगे तथा सस्कृत के ज्ञान, वैभव का विस्तार होगा। साथ ही मै यह भी कामना करता हूँ कि राष्ट्रिय-सस्कृत-सस्थान इस योजना मे अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो को भी प्रकाशित कर सस्कृत की श्रीवृद्धि करेगा।

( अर्जुन सिंह )

# आमुखम्

दिक्षु विदिक्षु विद्वद्भिः समादृतः राजाराधाकान्तदेवेन सगृहीतः शब्दकल्पद्रुमेतिप्रसिद्धाभिधानः कोशः प्रथमतः बगाक्षरैः तेनैव स्वीयकोषव्ययेन मुद्राङ्कयित्वा मुद्राव्यतिरेकेणैव नानादिग्देशीयपात्रेभ्यः प्रदत्तः। अनन्तरं १८०८ शकाब्दे देवानागराक्षरैः मुद्रापयित्वा कालिकातावास्तव्याभ्या श्रीवरदाप्रसादवसुश्रीहरिचरणवसुभ्या यथोचितमुद्रया विद्वद्भ्यः प्रदत्तः। अस्य कोशस्य उपयोगिता अनुभवता मन्त्रालयेन १९८७ ईसवीये पुनर्मुद्रण कृतम्। महता प्रयासेन धनव्ययेन च प्रकाशितचराः ईदृशाः ग्रन्था· कालान्तरे दुर्लभता गताः। तेन च सस्कृताध्ययन-अनुसन्धानक्षेत्रे काठिन्यम् अनुभूयमानमासीत्। किन्तु यथोक्त देवनागराक्षरसस्करणप्रकाशकाभ्या-

**मुद्रां नीतेऽथाविकलं शब्दकल्पद्रुमे च तैः।**
**अचिरेणैव पुस्तानि तानि निःशेषतां ययुः॥**
**पुनरेवास्य दौर्लभ्यमुपलभ्याऽन्यदुर्लभान्।**
**गुणांश्चाजनिमच्चित्ते पुनर्मुद्राङ्कने ग्रहः॥**

भारतशासनान्तर्गत मानवससाधनविकास-मन्त्रालयस्य प्रकाशितचराणा दुर्लभाना च ग्रन्थाना पुनर्मुद्रणात्मकपरियोजनाया पुनर्मुद्रिताः अपि इमे ग्रन्थाः कालक्रमेण भूयोऽपि दुर्लभता गताः। अतः द्वितीयवारमपि पुनर्मुद्रण कारयित्वा पुस्तकाना सुलभता सम्पादनीया इत्येतत् मन्त्रालयस्य सकल्पमनु ग्रन्थरत्नस्यास्य पुनर्मुद्रण प्रकाशन च विधीयमानमस्ति।

सन्दर्भेऽस्मिन् अपेक्षित मार्गदर्शन तथा शुभसन्देश च प्रदाय राष्ट्रियसस्कृतसस्थान समेधितवद्भ्यः मानवससाधनविकासमन्त्रिवर्येभ्य· श्रीअर्जुनसिंह महाभागेभ्य. आधमर्ण्यं वहामि। प्राशासनिक साहाय्य विधाय कार्यसाफल्याय सहकृतवत्यै मानवससाधनविकासमन्त्रालस्य भाषाविभागे सयुक्तसचिवायै श्रीमत्यै बेला बैनर्जीमहाभागायै तथा अन्येभ्यश्च तद्विभागीयाधिकारिभ्य धन्यवादान् व्याहरामि।

सकल्पस्यास्य साकारतासम्पादने योग्य प्रयास कृतवन्त देहली परिसरस्य प्राचार्यं प्रो आर. देवनाथ महोदय सस्थानस्य शोधप्रकाशनविभागस्य सहायकनिदेशक डॉ० प्रकाशपाण्डेय तदनुयायिकार्यकर्तृगण च साधुवादैः सम्भावयामि। योग्ये काले सुन्दर पुनर्मुद्रण विधाय उपकृतवते नागपब्लिशर्स इति मुद्रणालयस्य पतये श्रीसुरेन्द्रप्रताप एव श्रीनरेन्द्रप्रतापमहोदयाभ्या साधुवादान् व्याहरामि। आशासे यत् भूयः कृतेन अनेन द्वितीयपुनर्मुद्रणप्रयत्नेन सस्कृतविद्वासः सस्कृतप्रेमिणश्च लाभान्विता· प्रेरिताश्च भवेयुः इति।


सस्कृतसेवक
**वेम्पटिकुटुम्बशास्त्री**
कुलपति
राष्ट्रिय-सस्कृत-सस्थानम्,
मानित विश्वविद्यालय
नवदेहली।

# OPINIONS OF LITERARY MEN ANENT THE CELEBRATED SANSKRIT ENCYCLOPEADIC LEXICON THE SABDAKALPADRUMA BY THE LATE RENOWNED RAJAH SIR RADHAKANT DEB, BAHADUR, K C S I, OF CALCUTTA

Sir Hyde East, Chief Justice, has very great pleasure before he leaves India, in stating the high regard and estimation in which he holds Babu Radhakant Deb, the son of a worthy and respectable father, Gopeemohun Deb, he has had the benefit of their assistance upon several interesting occasions calculated to promote the general good and advancement of their countrymen, and he has always found them both to be men of the highest probity and of sound good sense Radhakant is also a considerable scholar, and is now engaged in compiling a very learned work I quit these two most worthy men and my friends, with much regret, and I recommend them both to the protection and esteem of my successor

*Calcutta*, 1822

---

*Extract of a letter from Professor Eugene Burnouf, Secy to the Asiatic Society of Paris, dated 5th May*, 1835

I feel great pleasure in announcing to you that the Council of the Asiatic Society has enrolled you as a member, upon my proposition, which was supported by Dr Mohl, one of the Members of the Council You have been for a length of time nominated to become an Honorary Member of the Society, and the Council was not ignorant of the great services you rendered to Indian literature by the publication of your Sabdakalpadruma, a real philological, and religious treasure of India

---

*Extract of a letter from His Excellency W Oxholme, Minister to His Majesty Frederic VII, King of Denmark, dated 10th May*, 1854, *Danish Legation*

The undersigned Minister to H M, the King of Denmark to the Court of St James, has been charged by his gracious Sovereign to transmit to the learned Radhakanta Raja Bahadur, the accompanying royal medal, *pro meritis* as a token of the sincere acknowledgment, and the high value, placed by His Majesty upon the esteemed gift of two copies of the interesting and elaborate work called the Sabdakalpadruma, conferred by the author upon His Majesty's own, and the University's library, in Copenhagen

---

*Extract of a letter from Dr Albrecht Weber, a Member of the Royal Academy of Sciences at Berlin, dated 26th March*, 1858

I have the pleasure to inform you that the Royal Academy of Sciences, yesterday, on my proposal, elected you, as an Honorary Member, on account of your merits as Author of the Sabdakalpadruma It is one of the highest honours, our Academy can invest with, for the number of the Honorary Members is very small and restricted

---

*Extract of a letter from J Prinsep, Esq, Secretary to the Asiatic Society of Bengal, dated 7th July*, 1836

The Society is already aware of the eminent services you have rendered to your countrymen, as well as to every student of Indian Literature by the compilation, and publication of your Sanscrit Encyclopædical Lexicon, and is satisfied that you will derive the truest sentiments of self-pride, and satisfaction from having accomplished so laudable and creditable an undertaking, while to posterity your name will be handed down, among those who have been most prominent in enriching and preserving your national literature

---

*Extract from the Minutes of the Proceedings of the Committee of Correspondence of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland Transactions of the R A, S of G B and I, vol. 2nd Ap P LXIII*

Sir Alexander Johnston, having laid before the Committee, the first volume of a Sanscrit Encyclopædical Dictionary, and a Bengallee Spelling Book, compiled by Baboo Radhakant Deb, of Calcutta It was resolved—"That in consequence of the talent displayed in those works, and the general exertions of Baboo Radhakant Deb, for the promotion of knowledge, he be recommended to the Council for election, as a Corresponding Member of the Royal Asiatic Society," "that a Report of the steps taken by this Society in relation to Capt Low and Baboo Radhakant Deb, be made to Lord William Bentinck, and Mr Fullerton, and that those Governors be requested to afford their assistance to Capt Low, and Baboo Radhakant Deb, in the attainment of the Society's objects"

---

*Extract of a letter from P Clarke, Esq, Secretary to the Royal Asiatic Society of Great Britain, and Ireland, dated 6th April*, 1845

In acknowledging the continuation of your learned and valuable work, allow me to assure you how highly the Royal Asiatic Society estimates the elaborate productions of learned Native gentlemen, and what marked approbation accompanies the recognition of their labours.

*Extract from the Annual Report of the Asiatic Society of Paris, for* 1846

Le Rajah Radhakant Deb de Calcutta, a fait paraître le cinquième volume de son Dictionnaire encyclopedique Sanscrit Dans cet ouvrage, chaque mot est suivi de l'interpretation du sens, des synonymes avec l'indication du dictionnaire dont ils sont tires, de la description de l'objet auquel il s'applique, et de citations empruntees aux livres classiques qui en ont fait usage L'utilite de cet ouvrage pour les études en Europe est malheusement restriente par son excessive rarete, car l'auteur l'imprime à ses frais et ne le met pas en vente —La systeme de distribuer les ouvrages au lieu de les vendre fait honneur a la magnificence des auteurs ou des Gouvernements, mais quelque soin qu'on mette à les faire parvenir dans les mains de ceux en feraint usage, on n'y reussit jamais completment, et il vaudrait meux, je dirais même, il serait plus généreux de les mettre en vente à un prix assez bas pour que tous ceux qui en ont besoin pussent se les procurer

L enterprise de Radhakant Deb est, au reste, d' autant plus meritoire que l'etude du Sanscrit, comme, en général, celle des langues savantes de l'Orient, ne jamais été aussi peu encouragée dans l' Inde qu'elle l'est actuellement

*Translation.*

Rajah Radhakant Deb of Calcutta has issued the 5th volume of his Sanscrit Encyclopedic Dictionary In this work each word is followed by the explanation of its meaning, by synonyms, the Dictionary being indicated from which they are taken, by the description of the object to which the word applies, and by quotations from the classical works in which it is used

The utility of this work for the purposes of study in Europe is unfortunately limited by reason of its great scarcity, for the author presents it at his own cost and does not put it forward for sale The system of distributing works instead of selling them, does honour to the generosity of authors and Governments, but in spite of the care they may take to cause their books to reach the hands of those who can make use of them, they never succeed completely in effecting their purpose, and it would be much better, and I may even say more generous, to cause the works to be sold at a price sufficiently low to enable all those to procure them who have need of them

Finally the undertaking of Radhakant Deb, is so much the more meritorious, as the study of the Sanscrit, as that of the learned languages of the East generally, has never been so little encouraged in India as at the present time

---

*Extract from the Journal of the American Oriental Society, Vol I, No* 1, *p* 77

The learned Radhakant Deb, at Calcutta, continues the printing of his *Thesaurus* of the Sanscrit language and literature, the 4th volume reached Paris two years ago

---

*Extract of a letter from G A Bushby, Esq, Secretary to the Government of India, dated 15th January*, 1848

They (the Court) have requested the Government to convey to you their thanks for the presentation of the Dictionary, and to signify their high sense of the industry and learning exhibited in the work

---

*Extract of a letter from George Couper, Esq, Secretary to the Government of India, dated 5th August*, 1853

I am directed to inform you that in a despatch recently received, the Hon'ble Court direct the Governor-General in Council to convey to you their acknowledgments for your very valuable and learned work, and to express their satisfaction in finding that you have justly appreciated the motives by which they are actuated in giving encouragement to the cultivation of the ancient language and literature of India

---

*Extract from the Preface to the Sanscrit and English Dictionary of Dr Horace Hayman Wilson, Professor of Sanscrit in the University of Oxford*, 1*st edition*, 1819, *P XXXVIII*

A compilation of a superior character to any of these modern works and indeed to any of the more ancient works is now in progress in Calcutta, it is entitled the Sabdakalpadruma, and is a Sanscrit Dictionary alphabetically arranged, with reference to the authorities, and with copious explanations in the Sanscrit language, it is printed in the Bengali character, it is the work of a young native gentleman of fortune and family, Radhakanta Deva, with the assistance of the best Pandits, and is printing at his own expense, and is an occupation which singularly contrasts with the low luxury, in which Hindoos of his age and rank ordinarily spend their time and money, the politeness of the author has favoured me with the first sheets of the work, but I regret, it has not sufficiently advanced for me to benefit by its contents, he has also obliged me with many critical remarks on the earlier part of my own Dictionary, of which, where practicable, I have availed myself The Sabdakalpadruma must take some considerable time before it is completed

---

*Extract from an article by Dr H H Wilson, published in the Journal of the Asiatic Society of Great Britain and Ireland, Vol* 13, *Pt* 2, *P* 209

Besides the laudable efforts which are being made in India to preserve the memorials of Antiquity, very meritorious activity prevails there in the promotion of Sanscrit literature Foremost amongst its results, we may place the completion of a voluminous Sanscrit Lexicon, by Rajah Radhakanta Deva, a native gentleman of Calcutta of the highest respectability and well known as combining a devoted attachment to the institutions and religion of his country, with a liberal participation in all public measures for improving the education of his countrymen by the efficient cultivation of the English language and European literature and science

---

*Extract of a letter from the same, dated London, 16th August, 1852*

Your perseverance and disinterestedness in this great work are entitled to the highest credit, and it will no doubt perpetuate your name for ever amongst the students of Sanscrit

*Extract of a letter from the same, dated 18th May, 1859*

Your work is an immense storehouse of valuable materials and will be consulted whilst Sanscrit is studied, I wish it were reprinted in a smaller type and on better paper

*Extract of a letter from A Stirling, Esq, Persian Secretary to the Government of India, dated 23rd January, 1826*

The highest consideration appears to be due to the author for engaging in so useful and at the same time laborious a literary undertaking, and the manner of its execution will afford the most important facilities to the study of Sanscrit letters

*Extract of a letter from William Butterworth Bayley, Vice-president of the Supreme Council of India, dated the 27th January, 1826*

I am well pursuaded that a work to which *you* have devoted much of your time and attention must be highly valuable and useful, and it is gratifying to observe, that your talents and labours are directed to numerous important objects tending to advance the knowledge, to raise the character, and to promote the best interests of your countrymen

*Extract of a letter from G F Gordon, Esq, dated 8th February, 1826*

The proof of your munificent application of time and fortune, to the promotion of the literature of your countrymen which your valuable Dictionary affords, in addition to the many other instances exhibited in your zealous support of every public institution that has education for its object, cannot fail to place you high in the esteem of liberal-minded Englishmen * * * and I beg to add my earnest hope that you may long live not merely to complete the work, but to enjoy the well earned reputation to which it will so justly entitle you

*Extract from the Preface to the Rev Mr Morton's Dictionary of the Bengali and English language*

The Sabdakalpadruma now in course of publication by Baboo Radhakanta Deva, whose talents and useful labours reflect the greatest credit on himself and his fellow-countrymen of this Province, and promise to be of eminent service to the students of Hindoo Literature, has been consulted as far as published The compiler having with equal kindness and liberality been favoured by that gentleman with the copy of the extant portion of his elaborate work, takes this opportunity of offering his grateful acknowledgments to him for the aid thence derived

*Extract of an article by Dr R Lenz, published in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, Vol II, P 188 (1835)*

Three volumes of this valuable work comprising each nearly 1000 pages in large quarto, are now in the library of the Royal Asiatic Society, presented to it by the learned author This portion perfectly justifies the high character, which Professor Wilson gave the work in the first edition of his Dictionary in 1819, anticipating only from a few sheets, then printed, how inestimable a store of authentic information on a variety of subjects connected with Sanscrit literature would be laid open by this admirable undertaking, the expensiveness of which did not however admit a hope of its speedy accomplishment Radhakanta's work is very distinctly, and generally speaking, accurately printed in the Bengali character, and deserves certainly not the least part of its superior character to the generality of Indian printings from being alphabetically arranged in the European method A great part of its articles have indeed become comparatively of inferior importance since the appearance of the 2nd edition of Mr Wilson's Dictionary, where every additional information, supplied by the learned Hindoo on the different meanings of words, has of course been carefully reproduced by the celebrated lexicographer, who was then already in possession of the three volumes before us, except a few sheets at the end of the last Our recommendation of these volumes is not so much founded on the lexicographical as on the Encyclopædical portion, which forms by far, the most copious and interesting part of the whole, although the first mentioned articles have a fair claim to the attention of the Sanscrit student on account of their ample specification of synonyms, collected from all *coshas* of celebrity and their commentaries, so as to supply in some measure, the deficiency of a dictionary, English and Sanscrit, or that of an index pointing out for any meaning all the variety of Sanscrit expressions The method adopted by the author in articles of a merely lexicographical nature, is, next to the word in question, to note its gender if a noun, or if not, its grammatical character, then to give a short definition of its meaning by mentioning the class of beings or ideas to which it belongs, next to explain it by corresponding expressions in Bengali, sometimes also in Persian, after which he proceeds to the *Paryáya* or list of synonyms in Sanscrit, which sometimes amount as in the article *Chandra* to the number of one hundred and more, noticing always their respective authorities * *

We beg to conclude our present remarks on this important work with the prediction, that in its remaining portion the author will probably continue to extend its articles in the same proportion as he has evidently done during his preparation of the present volumes, the third of which contains an article of no less than 162 pages on *Práyaschitta* analogous in form and nature to that on *Larmavipaka* which we mentioned above we only wish he would no longer prevent his European admirers from reaping the advantage of the portion hitherto printed, but at once make up his mind to send to Europe these three volumes valuable as are their contents, to be sold separately

*Extract of a letter from Eugene Burnouf, Membre de l' Institut de France, dated 5th May,* 1835

J'éprouve une grande satisfaction à vous annoncer que le Conseil de la Société Asiatique de Paris vous a reçu au nombre des membres honoraires, sur la proposition que j'en ai faite et qui a été appuyée par M Le Dr Mohl, l'un des membres du conseil Vous étiez depuis long temps appellé, Monsieur, a faire partie des membres honoraires de la Société, et le conseil n'ignorait pas les grands services que vous rendez à la litterateur Indienne par la publication de votre Sabda Kalpa Druma, veritable trezor philologique, philosophique et religeux de l'Inde * * * mais, j'ai deja pu voir parle examen rapide de plusieurs articles etendus, tels que *Prayaschitta Brahmana et* autres, quelle riche instruction contien cet ouvrage què est fait pour placer le rom de son auteur au premier rang des Savants Brahmanes qui ont consaire leurs veilles à robut honorable de popularıser la belle langue et la litterateur interessante de leurs pères.

*Translation*

I feel great pleasure in announcing to you, that the Council of the Asiatic Society has enrolled you as a member upon my proposition, which was supported by Dr Mohl, one of the members of the Council, you have been for a length of time nominated to become an Honorary Member of the Society, and the Council was not ignorant of the great services you rendered to Indian Literature, by the publication of your Sabdakalpadruma, a real philological, philosophical and religious treasure of India * * *

I can already see from a brief examination of many excellent articles, such as *Prayaschitta, Brahmana* and others, what great instruction can be derived from this work which must place the name of its author on the first rank of learned Brahmins, who have consecrated their labours to the honourable end for making popular the fine language and interesting literature of their fathers

---

*Extract of a letter from the same, dated 25th October,* 1840

Je pense que vous n'aviez pas besoin de cet homage pour être convaincu des sentiments de respect et de gratitude que je vous porte, et du plaisir avec lequel je me souviens du beau present que vous avez bien voulu me faire de votre précieux et si utile Sabdakalpadruma Je ne puis me servir de votre excellent lexique sans vous remercier de cœur du service que vous avez rendu à la connaissance de l'Inde en le composant, et à mes études particulierès, en voulant bien m'en adresser un exemplaire

*Translation*

I think you don't require any homage to be convinced of the sentiments of respect and gratitude which I entertain for you, and of the pleasure with which I remember the beautiful present which you have been good enough to make to me of your very valuable and useful Sabdakalpadruma I cannot make use of your excellent lexicon without thanking you heartily for the service which you have rendered to the literature of India by its preparation, and to my particular studies, in being good enough to present me with a copy of it.

---

*Extract of a letter from Major A Troyer, Member of the Asiatic Society of Paris, editor of the Raja Tarangini, &c., dated — June,* 1837

Be sure that we expect with great impatience the continuation of your valuable Dictionary, honourable mention of which was made in several philosophical Journals of the Continent

---

*Ditto, dated Paris, 12th January,* 1847

I have in my last letter expressed to you his (M. Gorressio's) desire to carry with your name, your excellent Dictionary to Turin, the capital of one of the Italian kingdoms, your work will be the only one, in Italy, which country will not then have to envy France and Germany, where your merit is already justly appreciated

---

*Ditto dated 18th December,* 1849, *quoted in a letter from H Piddington, Esq., dated 7th February,* 1849

Our worthy friend Major Troyer, in a letter from Paris, 18th December, says "Will you be so kind as to remember me kindly to my friend Rajah Radhakant Deb, and to tell him that Monsr Gorressio has received his Dictionary, and that the continuation of this most valuable work is anxiously expected by all the Sanscrit scholars, tell him, I beg you, that his Sabdakalpadruma shall be a "*Namayasdruma*"

---

*Ditto Dated Paris 20th March,* 1859

Your very valuable work, the Sabdakalpadruma, perpetually strikes my eyes among my books, and is often consulted by me I congratulate you very sincerely upon the well deserved testimonies of honour which you have received from so many learned Societies of Europe * * * You have completed the great service which your lexicon renders, and will for ever render, to Sanscrit literature by an Appendix.

---

*Extract of a letter from Dr Nathaniel Wallich, dated London, 6th June,* 1838

There is a Latin quotation which I may in perfect truth apply to you *Exergiste monumentum ære perennius,* that is to say, you have raised to yourself a trophy more lasting than brass or other transitory things I cannot conceive a more stupendous and noble undertaking than your Sanscrit Dictionary, which judging from the awful labour of the four first volumes ending with व will at least require another final very big volume All who have any respect for literature, all who have the least pretension to judge of the sublimity of the Sanscrit language and all who not knowing

the least of it, have at least the decency to suppose that the admiration for the venerable language expressed by such men as a Colebrooke, a Jones, a Mill, a Wilson, a Schlegel, a Wilford, a Carey and the other great foreigners (not to say a word of the natives of this country,) is well founded, all, I say, must feel the deep gratitude that is due to the great and learned author of such a work as the Sabdakalpadruma

*Extract of a letter from George Norton, Esq, dated 25th September, 1844*

In my position as President of the Madras University, I must bring your splendid work to useful account, and in every way I feel gratified by such a mark of esteem paid to me by a fellow labourer in the cause of native education and advancement.

*Extract of a letter from Dr E Roer, dated 7th June, 1847.*

Accept my sincerest thanks for your kindness in presenting me with a copy of the Dictionary which will be of the highest value to me I owe to it already a great debt of gratitude for the assistance I derived from it when all other resources failed me When translating the *Bháshá-parichchheda*, the technical terms of which I had sometimes great difficulty in understanding exactly, I found always my doubts removed on referring to the Dictionary, when the Pandit whom I consulted could not give me a satisfactory explanation

*Extract of a letter from H. B Koenig, Esq, to Dr E Roer published in the Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol 17, Part 1, P. 33*

To the celebrated Radhakanta, I shall by the same opportunity, transmit a copy of all my publications, which I have sent to the Society, for which consignment, you sir, will be kind enough to procure one or two copies of the celebrated Sanscrit Dictionary published by Radhakanta. The distinguished author, will perhaps be the more inclined to comply with my wishes as he will benefit by it, in a high degree, the Oriental Students in Germany, as I do not design this work for sale, but shall religiously keep it for the numerous applications made to me for its use

*Extract of a letter from the same to the Rajah, dated Bonn, 21st December, 1847.*

The applications made to me for the use of this treasure, are already very numerous, though it has not as yet arrived here, and willingly as I would further science, by fulfilling all requests, and granting all wishes, this of course is impossible as the number of those, who devote themselves at present to this branch of science is already too vast even in Germany alone, to allow the use of it to all, however urgent their requests, however desirous and able, they themselves may be, I must be content by granting the use of this work only to the most eminent of the eminent students of Sanscrit, to whom it will be an inexhaustible source of knowledge and wisdom, as it will be a great gratification to me, to be thus instrumental in furthering and increasing science

*Extract of a letter from F E Hall, Esq., Assistant Principal, Benares College, dated 26th April, 1850*

In a letter from Dr Wilson, which Dr Ballantyne received a short time ago, the learned Oxford Professor expresses himself in much about the same terms respecting your most laudable compilation, that he employs in the Preface to the first Edition of his dictionary, commendation from such a quarter you must of course, in company with all Indian scholars, esteem at its value, which is not light.

*Extract of a letter from Dr Herman Brockhaus, Professor of Sanscrit Literature in the University of Leipzig, and Secretary to the German Oriental Society, dated 5th December, 1850*

You are not unacquainted with the deep interest which has been awakened in Europe by the introduction of the study of the ancient sacred language and literature of your nation, that this interest is heightened every year as new sources of this grand object are opened and become the object of deep and scientific investigation. * * * *

But alas! the necessary resources to bring light and order into this world so new to us often fail us One of the most important of these resources is your inestimable Sabdakalpadruma. Astonishing is the learning displayed in this great work, so rich in its contents, so invaluable as the most complete collection of the most valuable results of the Indian mind, but alas! it is extremely rare in the Continent of Europe It is quite impossible to obtain it through booksellers, and as I find myself so often at a loss in my studies from the want of it, I hope you will excuse the request that I here venture to make, *viz.*, to send me a copy of your Sabdakalpadruma.

*Extract of a letter from the same, dated 15th December, 1851.*

It is a source of heartfelt delight to me, that your obliging and ready compliance, with my request, will put me in possession of the invaluable treasures contained in your Encyclopedia of the Indian language and wisdom

I shall consider this precious work the gift of your generousity as a deposit presented in some measure to the learned men in Germany, and shall willingly extend my communications to all, who may wish to quaff from this inexhaustible spring I hope thus to make the most honorable use of your valuable present, and at the same time to comply most worthily with the views and wishes of the generous donor

*Extract of a letter from Edward E Salisbury, Professor of Sanscrit in Yale College U S A Secretary to the American Oriental Society, dated 28th September, 1850*

While I beg you to receive my grateful acknowledgments, I would fain hope that the fulfilment of your desires, respecting the cultivation of Sanscrit learning in the Western world, may be promoted by the introduction of your work into our libraries

---

*Extract of a letter from Pandita Radhakrishna of the Court of the late Maharaja Ranajita Sinha, dated Lahore, 9th June, 1852*

The 7th Vol of the said work has not yet reached this station, but is expected within a very short time The other volumes of the work have lately occupied my close attention and been found to be an invaluable production in the literary world, your indefatigable labour I firmly believe, will be amply rewarded by the inestimable advantages, which students will derive from its perusal * * * * * * * * As I have caused the work to be transcribed in the *Devanagara* character, the Literati of this Province have thereby an easy access to it, all the Pandits of this country, who have seen it, have expressed their approbation of it in high terms of eulogium

---

*Extract of a letter from Dr Charles Lassen, Professor of Sanscrit Literature in Bonn, dated 7th August, 1852*

By the completion of the Sabdakalpadruma one of the most arduous and important literary enterprises, has been brought to a successful conclusion, and thereby a vast treasure of information, on a great number of subjects connected with Indian religion, science, arts geography, and material productions, has been opened to the literary men who occupy themselves with their study By this performance your Highness has rendered your name immortal amongst those of the patrons of Sanscrit philology, and proved to the present age, that India still possesses luminaries of science, which may vie with the most celebrated Hindus of yore for glory, your Highness speaks too moderately of your work by saying, that it may be only useful to the novice in Sanscrit, I have on the contrary by frequently referring to it, after having in vain sought for the desired information in other works, and found which I wanted in your Sabdakalpadrama, convinced myself that it is a rich source of information, on a multitude of subjects * * * The Sabdakalpadruma forms the chief ornament of my library, and I need hardly add, that I shall ever cherish in grateful memory the benevolence your Highness has bestowed on me by deigning to present me with such an inestimable gift.

---

*Extract of a letter from the same, dated 4th October, 1853*

By this accomplishment your Highness has made an in exhaustible mine, of hitherto hidden treasures accessible to Sanscrit scholars, and placed your name amongst those of the munificent patrons of Indian philology, the cultivators of which will, for ever, venerate your memory as that of one of their greatest benefactors Your Highness may rest assured that I shall always regard your donation, as a most precious reward for my labours in the field of Hindu Antiquities, and I ardently wish that the 8th volume may soon be published by which this grand, and incomparable work will be completed

---

*Extract of a letter from Dr Albrecht Weber, Docent of the Sanscrit language in the University of Berlin, and Editor of the White Yajurveda, &c, dated 21st October, 1855*

The Sabdakalpadruma will remain for ever a monument of your industry and perseverance and a valuable mine of of useful information about the later Hindu notions and literature

---

*Extract from the Preface to the Sanscrit Worterbuch being published under the auspices of the Imperial Academy of Sciences at St Petersburgh, by Rudolph Roth and Otto Bohtlingk, Vol 1, 1855*

Radhakanta's Sabdakalpadruma, eine Work, welches dem gelehrten Inder in vielfacher Beziehung zur grössten Ehre gereicht, hat uns in den Stand gesetzt, eine grosse zahl von unedirten indischeh wörterbuchern und von commentaren zu diesen wörterbüchern, welche uns auch handschriftlich nicht zu Gebote standen, zu benutzen Auch Anführungen aus edirten und unedirten Schriften, vor allem aber die reiche synonymik von Pflanzennamen ist uns sehr zu Statten gekommen Ein exemplar dieses durch den Buchhandel nicht erreichbaren schätzbaren werkes verdankt die Kaiserliche Akademie der Wissenschaften der Freigebigkeit des Verfassers

*Translation.*

Radhakant's Sabdakalpadruma, a work which in many respects, reflects the highest credit on the learned Indian, has enabled us to make use of a great number of unedited Indian Dictionaries and of commentaries to these Dictionaries of which we possess no copies It is very useful likewise for its reference to edited and unedited manuscripts containing all the copious synonyms of plants This precious work is not obtainable through Booksellors, the Imperial Academy of Sciences is indebted for a copy of it to the liberality of the Author

---

*Extract of a letter from Dr Max Müller, Editor of the Rig Veda &c to Dr E Roer, dated — 1847 Published in the Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol 17, Part I, P 331.*

I would especially be gratified to hear the opinion of learned men above the prejudices of their country as Raja Radhakanta Deva for instance, who by his Dictionary has acquired the lasting gratitude of all Sanscrit scholars, and who best knows that the ancient literature of India need not to be screened from the light of publicity, but may boldly challenge the comparison of the literature of all nations, the history of which shews the same progress of intellectual development

*Extract from Dr M Müller's Preface to the Rig Veda Sanhita, Vol 2*

I have been also honoured by that distinguished scholar and noble patron of Sanscrit literature Raja Radhakant Deva of Calcutta with a most valuable present the Sabdakalpadruma, a work which by its comprehensive range and its excellent arrangement stands unrivalled in Indian Philology

---

*Extract of a letter from the same, dated London, 30th March,* 1856.

I also felt it my duty to express publicly in the preface to my second volume of the Rig Veda, my personal obligation to you for the valuable present which you made me of your magnificent work, the Sabdakalpadruma, a work which does infinite credit to your public spirit, your reverence for the antiquities of your own nation and your comprehensive knowledge of all that is truly valuable in the literature of your ancestors This work will make your name for ever revered among your countrymen and highly respected among the Scholars of Europe

तथा च श्रुतिः यावदस्मिंल्लोके पुण्यपुण्येन कर्म्मणा श्रूयते तावदयं स्वर्गे लोके वसतीति।

---

*Extract of a letter from Dr Chütz dated Bielefeld, 21st October,* 1857

Till now I honoured you deeply as a great scholar, the author of the Sabdakalpadruma, now I love you as one of the kindest hearts on the earth

---

*Extract from Art VI of the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, read by Professor H H Wilson, 19th March,* 1859

The writer, a friend of many years, Raja Radhakanta Deb is well known as a leading member of the Native Society of Calcutta, who adds to the distinction of rank and station, that of a foremost place amongst Sanscrit scholars, as evinced by his great Lexicon or Literary Encyclopædia of the Sanscrit language, in seven quarto volumes, the Sabdakalpadruma, which enjoys a European as well as Indian celebrity Any opinion coming from him on subjects connected with the ancient literature of his country is entitled to the greatest deference

---

Her Majesty Queen Victoria has been graciously pleased to confer on Raja Radhakanta Bahadur, a distinguished mark of Royal favour by the gift of a splendid gold medal, bearing on one side the head of Her Majesty and on the reverse the words "From Her Majesty Queen Victoria to Raja Radhakant Bahadur" and it was accompanied with the following letter from the Right Honorable Sir Charles Wood, Secretary of State for India

Secretary of State for India in Council

*India Office, 28th July,* 1859

Sir,

I have laid before the Queen your letter with the copy of the Sabdakalpadruma forwarded by you for presentation to Her Majesty, and I am commanded to acquaint you that Her Majesty has received the work very graciously, and fully appreciating the spirit of loyalty in which you have transmitted it, has directed me to forward to you the accompanying medal

I have the honor to be,
Sir,
Your most obedient humble servant,
CHARLES WOOD.

Raja Radhakant Deb Bahadur

---

*Extract of a letter from Pundita Vitthala Sastri of the Benares College, dated Samvat* 1908

अत्रत्य पाठशालायां हालसाहिब् समीपे भवदीयं महान्तं समस्तप्राचीननूतनकोशगणातिवर्त्तिनम् अशेषशास्त्रविषयसंग्रहमनोहरं कोशमवालोकयम् सम्यक् परिचित मुद्रित वङ्गाक्षरतयाच हालसाहिबेन तदालोचनाय नियोजितः प्रथम सप्तमकाण्डमुखोपन्यस्त मुखबन्धनाभिधप्रकरणं यथातथम् अद्राक्षम् तत्र च श्रीमतां भवताम् एतत्कोशसमर्पणविषये सततवर्द्धमानमौदार्य्यातिशयम् उपलभ्य एतत्कोशप्राप्त्युत्कण्ठितचेता इमं पत्रदूतं भवत् सविधे प्रस्थापयम् ॥

*Translation*

I have seen in this College, with Mr Hall, your grand Lexicon, which surpasses all ancient and modern Dictionaries and derives its excellence from its comprehending the topics of an infinite variety of *Sastras* As I am well familiar with printed Bengali characters, he has engaged me to examine the work I have read the Preface at the beginning of the 7th Volume, observing therein your ever increasing liberality in the distribution of the book, I have, with an anxious heart to obtain it, sent you this *Literal* Messenger

*Extract of a letter from Raja Vijayagovinda Sinha of Purnia, dated*

हैतथान्तिमामेकमिकवत् सिवाप्तवमद्य ।
प्राप्तिर्न्न खलु मामकेन नितरां शौब्दकल्पद्रुमम् ॥

*Translation*

Excepting only the last volume, I have received the Sabdakalpadruma, which alone exists to dispel the gloom of doubt and furnishes us with the jewel of demonstrated truth.

---

*Extract of a letter from Maharaja Madanamohana of Vishnupura, dated 2nd Aswina*

भवत् प्रेरिताभिरचित शब्दकल्पद्रुमपर्व दृष्टं दृष्टं अस्माकम् अस्मत् सदीयसभापण्डितानाञ्च भूयोभूयोऽतिशयिता परमतुष्टिर्जायते श्रुत्वा तमपि चालोच्य अस्माभिः तेन भवदीयबहुपरिश्रमोत्पादितफलम् अवगतम् ।

*Translation*

Myself and the Panditas of my *Sabha* have derived perfect and supreme satisfaction from the perusal of your Sabdakalpadruma sent to us, by applying to it and hearing it recited, we must acquaint ourselves with the result of your extensive researches

---

*Extract of a letter from Professor Rudolph Roth, dated Tubingen, 14th March,* 1859

— habe ich zunächst um Entschuldigung zu bitten dass ich nicht schon früher den richtigen Empfang des Sabdakalpadruma anzeigte Genehmigen Sie meinen besten Dank für dieses werthvolle Geschenk, das nicht nur einen Schmuck meiner Bücher sammlung bildet und mir die trefflichsten Dienste leistet, sondern auch mich an die freundlichen Gesinnungen des Gebers erinnert

*Translation.*

I have first of all to beg to apologize, that I did'not earlier, duly inform you of the Sabdakalpadruma Accept my best thanks for the precious gift which not only forms an ornament of my library and renders admirable service to me but reminds me of the friendly feeling of the Donor

---

*Extract of a letter from Pandita Radhakrishna, dated Lahore, 10th May,* 1859

यावच्चन्द्रदिवाकरौ क्षितितले क्षेमात्मना राजत-
स्तावद्देववरस्य कीर्त्तिरतुला कल्पद्रुमात् स्थास्यति ।
राधाकान्तनृपस्य भूपमुकुटे भूमण्डले सन्मुदा
जीयाद्वै सह पुत्रपौत्रसहितः श्रीशेन संरक्षितः ॥

धनात् सर्वं सर्वे नच धनयुताः पण्डितजनाः ।
कथं तेषां सर्वं विदितमिव स्यात् पुस्तकशतात् ॥
सुखात् सारं प्राज्ञाः सुगमविधिना यस्य ज्ञानतः ।
जितो राधाकान्तो जयतिह विशेषान्नरपतिः ॥

*Translation*

As long as the sun and moon will shed on earth the radiance emanating from them so long will the Kalpadruma derived unparalleled glory of Raja Radhakanta, the chief of the Devas and the gem amongst the Rajas, continue in this world, may he, protected by *Siva*, live delighted with his son, and grandson Wealth commands everything, but all Panditas are not wealthy, how could they know the contents of hundreds of works May success attend Radhakanta, the distinguished among the Rajas, by whose felicitously referable work, the essence of knowledge can be easily obtained

श्रीजगदीशो जयति ।

# भूमिका ।

मङ्गलाचरणम् ।

उपास्महे शिवं सत्यं सर्व्वसर्व्वार्थसाधकम् ।
द्यावाभूमी स्थितं व्याप्य शब्दब्रह्म सनातनम् ॥१॥

स्वरूपं देवभाषाया विष्णोर्विश्वात्मनो यथा ।
ईदृक्तयेयत्तया वा को नु निर्वक्तुमीश्वरः ॥२॥
विष्णुवत् सा हि सत्त्वेन ब्रह्मवद् रजसा च सा ।
रुद्रवत् सा च तमसा व्यानशेऽशेषपिष्टपम् ॥३॥
अज्ञानतिमिराच्छन्नं तदाऽस्थास्यत् चराचरम् ।
नाऽभविष्यद् यदि ज्योतिः संस्कृताख्यं सुमङ्गलम् ॥४॥
तमोभूतमिदं विश्वं प्रसुप्तमिव सर्व्वतः ।
अरुणोदयवेलेव भाषेयं प्रत्यबोधयत् ॥ ५ ॥
एकमेवाऽद्वितीयं तत् सच्चिदानन्दमव्ययम् ।
परं वेद्यतमं ब्रह्म भाषेयं प्रथमं जगौ ॥६॥
दृशमुन्मीलयामास प्रथमं विश्ववासिनाम् ।
आत्मज्ञानमयीं दृष्टिं नलिनीमिव भानुभा ॥७॥
अनया भाषयैवादावृषिभिर्ज्ञानदृष्टिभिः ।
प्रलय-स्थिति सर्गाणां दर्शितं तत्त्वमद्भुतम् ॥८॥
विश्व-विश्वेशयोस्तत्त्वमियमेवाऽन्वबोधयत् ।
चतुर्व्वर्गफलं ज्ञानं गुणान् सत्त्वादिकांस्तथा ॥९॥
सिद्धचारणगन्धर्व्वैर्देवदानवमानवैः ।
इयमाराध्यते भाषा जननीव युगे युगे ॥१०॥
ब्रह्मकण्ठात् किल पुरा जाता ब्रह्माद्यपूजिता ।
अवल्पमरभाषेयम् समाराद्ध युगे युगे ॥११॥

न ब्रह्मा न हरिर्नेशो यस्याः पारं परं गतः ।
गीर्व्वाणवाणीं तां वन्दामहे गीर्व्वाणवन्दिताम् ॥१२॥
योनैरनन्तरत्नानां तस्याः कोषाः सहस्रशः ।
पूर्व्वाचार्य्यकृताः शस्ता विलसन्ति महीतले ॥१३॥
पर्य्यायवाचकाः केचित् केचित् नानार्थवाचकाः ।
लिङ्गानुशासनाः केचित् न तु सर्व्वार्थसाधकाः ॥१४॥
अतिसंक्षिप्तजटिलाश्छन्दोबद्धा दुरन्वयाः ।
विनाचार्य्यं न शक्यास्ते मनागपि विगाहितुम् ॥१५॥
युगपत् सर्व्वकोषाणां यथावत् स्मरणं विना ।
कार्य्यकालेऽभीप्सितार्थसम्प्राप्तिर्नोपपद्यते ॥१६॥
स्थितेष्वपि पुरः सर्व्वकोषेष्वन्वेषयैर्यथा जनैः ।
इष्टार्थोऽतद्रहस्यज्ञैर्यत्नतोऽपि न लभ्यते ॥१७॥
सर्व्वाधिगम्यं निर्म्मातुं कोषं सर्व्वार्थसाधकम् ।
उदियाय कलौ वङ्गे राधाकान्तो नरेश्वरः ॥१८॥
अकारादिक्रमन्यस्ते शब्दे शब्दे पृथक् पृथक् ।
तत्तच्छब्दार्थसम्पूर्त्तिः प्रथमं तेन दर्शिता ॥१९॥
सएवादिगुरुस्तस्मात् कोषाणामीदृशामभूत् ।
यः सर्व्वभोग्यमकरोत् संस्कृतं देवदुर्लभम् ॥२०॥
मन्ये कात्यायनामाऽसौ शब्दकल्पं विनिर्म्ममे ।
एकत्र पिष्टपाशेषज्ञानैश्वर्य्यदिदृक्षया ॥२१॥
नैकत्र परिनिष्ठाऽस्ति सर्व्वज्ञानस्य यद्यपि ।
कोषस्तस्य तथाप्येष कोऽपि ज्ञानमहानिधिः ॥२२॥
वेदकर्त्ता विधातेव वाल्मीकिरिव काव्यकृत् ।
व्यासो भारतकर्त्तेव स लोके गौरवं गतः ॥२३॥
दृष्टादृष्टेन दैत्यारिर्निमग्नां प्रलयाम्बुधौ ।
वराहरूपी भगवान् काश्यपीमुद्दीधरत् ॥२४॥

कल्नौ तु धरणीकान्तो राधाकान्त प्रदीप्यते ।
उद्धृत्याऽनन्तकालाब्धेर्देवभाषां महीयसीम् ॥२५॥
न दृष्ट न श्रुत क्वापि तद्धि शास्त्र बुधैर्भुवि ।
यत्नेनोद्धृतमेतस्मिन् कोषे तेन महात्मना ॥२६॥
वेदानुद्धृतवान् पूर्व्वं मत्स्यरूपी जनार्द्दन ।
असौ त्वशेषशास्त्राणि विप्लुतानि समन्तत ॥२७॥
सुराः समेता दितिजैर्ममन्थुः क्षीरनीरधिम् ।
एकएव ममन्थाऽयमपारं शास्त्रसागरम् ॥२८॥
सुधासिन्धुसुधां पीत्वा सुरा अमरतां गता ।
पीत्वा त्विमां कोषसुधां देवदानवमानवाः ॥२९॥
कौस्तुभाख्यमणिं सारं शौरेरेव हि भूषणम् ।
कोषरत्नमिदं त्वस्य जातं त्रैलोक्यभूषणम् ॥३०॥
पारिजात' सुरतरु' सुरभीकुरुते दिवम् ।
शब्दकल्पद्रुमस्त्वेष प्रीणाति भुवनत्रयम् ॥३१॥
धन्वन्तरि स भगवान् स्वर्गस्यैव चिकित्सकः ।
अशेषाणान्तु लोकानां कोष एष चिकित्सक' ॥३२॥
समुद्रोद्भूतया लक्ष्म्या लक्ष्मीवान् केवलो हरि ।
श्रीराधाकान्त-कोषेण लक्ष्मीवद् भुवनत्रयम् ॥३३॥
न केवल सेव्यतेऽसौ कोष' शब्दार्थलिप्सुभिः ।
सर्व्वेषामेव सूतेऽयं कामान् कल्पद्रुमो यथा ॥३४॥
योगिनामप्ययं कोषो योगशास्त्रमनुत्तमम् ।
भोगिनां भोगशास्त्र च रोगिणां च महौषधम् ॥३५॥
सर्व्वेषामेव धर्म्माणामाश्रमाणां च सर्व्वश ।
कृत्यजातमशेषेण प्रोक्तमत्र प्रसङ्गतः ॥३६॥
जीविकामर्ज्जयन्त्यस्माद् विप्रा, षट्कर्म्मशालिन ।
क्षत्रिया वैश्यशूद्राश्च ये चान्ये वर्णसङ्कराः ॥३७॥
कर्म्मकाण्डरतैर्नित्यं ज्ञानकाण्डरतैस्तथा ।
रागिभिर्वीतरागैश्च सर्व्वैरेवैष सेव्यते ॥३८॥
उपजीव्यो यथैवाऽयं गुरुभिर्मन्त्रदातृभि ।
उपजीव्यस्तथैवाऽयं शिष्यैर्मन्त्रग्रहीतृभि ॥३९॥

निदानं चाऽत्र रोगाणां लक्षणं च पृथक् पृथक् ।
सम्प्राप्तिश्च चिकित्सा च सर्व्वं प्रोक्तमशेषत' ॥४०॥
ओषधीनामशेषाणां गुणपर्यायसङ्ग्रहः ।
नानाभाषाप्रचलिता आख्यासैवाऽत्र दर्शिता ॥४१॥
इह सङ्गीतविज्ञानं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ।
प्रसङ्गत. समासेन प्रोक्तं सर्व्वमतानुगम् ॥४२॥
अनर्घ्याणामशेषाणां ज्ञानानामाकरो महान् ।
अहो कोऽपि यशोराशि कोषोऽयं तस्य भूभृतः ॥४३॥
मन्दभाग्येऽपि वङ्गेऽस्मिन् जज्ञिरे बहवो बुधा' ।
विहीना अपि शौर्य्येण ज्ञानेनाऽमरतां गता' ॥४४॥
तन्त्रमन्वादिशास्त्राणि स्मृतयो न्यायविस्तराः ।
योगशास्त्राणि काव्यानि रूपकाख्यायिकास्तथा ॥४५॥
नानादेवार्च्चनकथा ऐन्द्रजालिकमेव च ।
उपदेवकथाश्चित्रा यास्यदेवकथास्तथा ॥४६॥
व्रतोपवासनियमा बलिहोमजपादयः ।
पीठतीर्थादिमाहात्म्यं शक्तिपूजा सहस्रशः ॥४७॥
एतच्चाऽन्यच्च बहुधा शास्त्रं वङ्गमनीषिभि ।
नवद्वीपादिवास्तव्यैः प्रणीतं ज्ञानदृष्टिभि ॥४८॥
अरक्षिष्यदयं कोषो ज्ञानं तद् वङ्गजं न चेत् ।
नामाऽपि तस्याऽस्य तदाऽगमिष्यद् विलयं ध्रुवम् ॥४९॥
एकेनाऽपि गुणेनाऽयमनेनाऽमरतां व्रजेत् ।
यदयं वङ्गदेशस्य कृती कीर्त्तींश्च रक्षति ॥५०॥
पुण्यां द्रवमयीं धारामानिनाय भगीरथ ।
पुण्यां कीर्त्तिमयीं धारां राधाकान्तोऽवतारयत् ॥५१॥
सोऽनर्घ्यं जीवितं दीर्घं विभवं चाऽतुलं निजम् ।
अकातरं शब्दकल्पद्रुमस्यार्थे न्ययोजयत् ॥५२॥
अस्य कोषमहासिन्धोर्बद्धो कालात् परं नृप' ।
स प्रपेदे परं पारं भवाब्धेरिव निर्म्मम' ॥५३॥
सोऽशेषकोषवरयज स्वकोषं त्यागिनां वर. ।
अमूल्यं वतरमूल्यं विना विक्रीं महाशया. ॥५४॥

स जीवन्नेव सुकृती स्वकृतेरतुलं फलम् ।
विलोक्य सफलं मेने नरजन्म सुदुर्लभम् ॥५५॥
आमेरिकाख्यायूरोपवासिनोऽशेषपण्डिताः ।
शब्दकल्पद्रुमं दृष्ट्वा ययुः परमविस्मयम् ॥५६॥
धीरेन्द्राश्च नरेन्द्राश्च ये यत्रासन् तदा भुवि ।
तमभ्यवर्षन् सम्मानैर्मेघाः शस्यमिवाऽम्बुभिः ॥५७॥
वङ्गभूर्भुवने धन्या शब्दकल्पद्रुमेण या ।
कल्पद्रुमवतीं नित्यं स्पर्द्धते ह्यमरावतीम् ॥५८॥
स शब्दकल्पद्रुमकृद् यत्र जज्ञे तमालयम् ।
शोभाबाजारभूपानां सन्तस्तीर्थं प्रचक्षते ॥५९॥
साधारणोपकाराय मेलनं देशवासिनाम् ।
विदुषां सङ्गमो वाऽपि तत्रैवाऽद्याऽपि जायते ॥६०॥
महावङ्गसमाजस्य तद्वंशोऽद्यापि कीर्त्त्यते ।
अविसंवादितं सर्व्वैश्चूडामणिरिति क्षितौ ॥६१॥
एवं प्रतिष्ठां गमयन् स्ववंशं यशसा नृपः ।
अगण्यपुण्यैर्धन्योऽसौ पुण्यलोकमुपेयिवान् ॥६२॥
गते बहुतिथे कालेऽकारि कोषेऽत्र दुर्लभे ।
वरदाकान्तमित्राद्यैः पुनर्मुद्राङ्कने यत्नः ॥६३॥
मुद्रां नीतेऽद्याऽविकलं शब्दकल्पद्रुमे च तैः ।
अचिरेणैव पुस्तानि तानि निःशेषतां ययुः ॥६४॥
पुनरेवाऽस्य दौर्लभ्यमुपलभ्याऽन्यदुर्लभान् ।
गुणांश्चाऽजनि मच्चित्ते पुनर्मुद्राङ्कने स्पृहः ॥६५॥
ततः स्वत्वाधिकारिभ्यः क्रीत्वा स्वत्वं यथाविधि ।
प्रवृत्ता दुष्करे कार्य्ये वयं सत्कार्य्यगौरवात् ॥६६॥
वङ्गाक्षरैरितः पूर्व्वं कोष एष प्रकाशितः ।
तेनाऽसौ सुखपाठ्योऽभूत् केवलं वङ्गवासिनाम् ॥६७॥
नागरी वर्णमाला तु संस्कृतैकोपयोगिनी ।
सर्व्वत्रादियते प्रायः सर्व्वैः संस्कृतपाठिभिः ॥६८॥
सर्व्वेषां बोधसौकर्य्यमतोऽस्माभिर्विधित्सुभिः ।
प्रशस्तैर्नागरैर्वर्णैरेष कोषः प्रकाश्यते ॥६९॥

शब्दकल्पद्रुमं कोषं प्रणिनाय यदा नृपः ।
संस्कृतं प्रचरद्रूपं नाऽधुनेव तदाऽभवत् ॥७०॥
तदा प्रयोजनाभावात् स्वकोषे तेन भूभुजा ।
सर्व्वेषामेव शब्दानां व्युत्पत्तिर्नैव दर्शिता ॥७१॥
जन्मभूमिं प्रति प्रेम्णा तेनोपादानलिप्सुना ।
अस्योपादानसामग्री स्वदेशाद् भूयसाहृता ॥७२॥
मुग्धबोधं व्याकरणं वङ्गदेशस्य गौरवम् ।
तन्मतेन ततस्तेन शब्दव्युत्पत्तयः कृताः ॥७३॥
पाणिनीयं व्याकरणं प्रायः संस्कृतपाठिभिः ।
सयत्नं सेव्यते सर्व्वैश्चिरमादियते च तत् ॥७४॥
दिने दिने नृणां यावत् संस्कृते भक्तिरेधते ।
पाणिनीयस्य माहात्म्यं तावदेवोपचीयते ॥७५॥
अनुसृत्य ततोऽस्माभिः पाणिनीयानुशासनम् ।
सर्व्वेषामेव शब्दानां व्युत्पत्तिः परिदृश्यते ॥७६॥
प्रव्रतीर्थाश्रमसरिद्देशारण्यमहीभृताम् ।
सिद्धदेवर्षिभूपालशास्त्रशास्त्रकृतां तथा ॥७७॥
कलादर्शनविज्ञानज्योतिषां च मतं नवम् ।
अधुनाविष्कृतं तत्त्वं धन्यैः पाश्चात्यसूरिभिः ॥७८॥
अदृष्टपूर्व्वाः शब्दार्थाः प्रमाणानि बहूनि च ।
इदानीं ग्रन्थविस्ताराद् यान्ति दृष्टिपथं विदाम् ॥७९॥
मूलातिरिक्तं तत् सर्व्वं मूलेऽस्माभिर्निवेश्यते ।
वेष्टनाकारचिह्नान्तर्व्यवच्छेदचिकीर्षया ॥८०॥
अनुचिन्त्य द्वयोरेव पक्षयोः सुखसाध्यताम् ।
अस्माकं ग्राहकानां च खण्डशोऽयं प्रकाश्यते ॥८१॥

परिशिष्टे वक्तव्या विषयाः ।

परिशिष्टद्वयं चैव कोषस्याऽस्य विधीयते ।
एकं धात्वादिसम्बन्धि शब्दसम्बन्धि चाऽपरम् ॥८२॥

प्रथमपरिशिष्टे वक्तव्या विषयाः ।

धातु-धात्वर्थ-रूपाणि लकाराद्यैः पृथक् पृथक् ।
अनुबन्धाश्च धातूनां गणवाच्यभिदास्तथा ॥८३॥

छन्दहितसमानानां लिङ्गानां विद्वतिस्तथा ।
प्रथमे परिशिष्टेऽस्य सर्व्वमेतन्निवेश्यते ॥८४॥
द्वितीयपरिशिष्टे वक्ष्यमाणा विषया ।
लौकिका बहव शब्दा वैदिकाश्च विशेषत ।
ग्रन्थप्रचारविरहादन्धकारइव स्थिता ॥८५॥
पाश्चात्यविदुषा ज्ञानापूर्व्वालोकेन तेऽधुना ।
दिने दिने प्रकाशन्ते चार्थकीर्त्तिं वितन्वते ॥८६॥
सार्थप्रमाणास्ते सर्व्वे परिशिष्टे द्वितीयके ।
दीयन्ते बुधसाहाय्यान्निजशक्त्यनुसारत ॥८७॥
कोषेऽस्मिन् यानि शास्त्राणि प्रमाणायोद्धृतानि च ।
मूलातिरिक्ता शब्दा वै बहव सन्ति तेष्वपि ॥८८॥
तेऽपि सर्व्वेऽत्र दीयन्ते यथाऽभावोऽस्ति यत्र च ।
यथाज्ञान यथास्थान सोऽप्यस्माभिर्निरस्यते ॥८९॥
शब्दाब्धेस्तु पर पार न जानाति सरस्वती ।
अगाध चाऽप्रमेय त को वा निर्वक्तुमीश्वर ॥९०॥
स्वशक्तिकाष्ठामाश्रित्य तथाप्यस्माद्दृशैर्जनै ।
परिशिष्टस्य सम्पूर्त्तौ प्रयत्नोऽस्य विधीयते ॥९१॥
इयेष मुद्राङ्कयितु स राजा नागराक्षरै ।
पुनरेव स्वक कोष सर्व्वभोगविधित्सया ॥९२॥

परिशिष्ट च विस्तीर्णं वेदशब्दार्थबोधकम् ।
निर्ममे सोऽस्य कोषस्य महान्त यत्नमास्थित ॥९३॥
दुर्व्विलासास्तु दैवस्य हस्तलेखाश्च तेऽखिला ।
कीटै कवलिता हन्त ! नाशमापुरशेषत ॥९४॥
चकमे च महात्माऽसौ सकाशात् परवर्त्तिनाम् ।
सस्कृतज्ञानविस्तारेणाऽस्य सस्करण पुन ॥९५॥
अतो वय सप्रवृत्ता अस्मिन् सस्करणे नवे ।
पुण्यश्लोकस्य तस्यैव भूपस्येच्छानुसारत ॥९६॥
शब्दकल्पद्रुमस्रष्टु कुलात् तस्यैव भूभृत ।
पदे पदेऽत्र साहाय्य कार्य्येऽस्माभिरवाप्यते ॥९७॥
देवदेव । महादेव । रक्ष रक्ष चिर विभो ।।
वशावलीं तस्य राज्ञो धारा भागीरथीमिव ॥९८॥
हे विश्ववासिन सर्व्वे सन्तो विद्यानुरागिण ।।
सहाया नो भवन्त्वस्मिन् भवन्तो ज्ञानगौरवात् ॥९९॥
करुणाकणया यस्य नरस्तरति दुस्तरम ।
सिद्धिदाता स भगवान् न पूरयतु काङ्क्षितम् ॥१००॥
भक्तिमात्रसहायाना हीनाना साधनान्तरै ।
भक्तवाञ्छाप्रदो देवो वाञ्छित प्रददातु न ॥१०१॥

कलिकाता ।
७१, पाथुरियाघाटा ष्ट्रीट् ।
शकाब्दा १८०८ ।

श्रीवरदाप्रसाद वसोः
तदनुजस्य च
श्रीहरिचरण वसोः ।

# मुखबन्धनं ।

तत्रादौ मङ्गलाचरणश्लोकाः ।

योऽद्वैतसच्चिदानन्दपरब्रह्मेति कीर्त्तितः ।
उपासकानां कार्य्यार्थं कृपया पञ्चधाभवत् ॥
शक्तिः शिवस्तथा सूर्य्यो गणेशो विष्णुरेव च ।
अशेषविघ्ननाशाय भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥
साष्टाङ्गं तं प्रणम्यादौ शिष्टाचारानुमारतः ।
राजावाहादुरोपाधि-श्रीराधाकान्त-देवजः ॥
परेषामुपकाराय शब्दकल्पद्रुमाभिधं ।
कोषं नव्यक्रमयुतं कृतवान् वहुयत्नतः ॥

ग्रन्थसमाप्तौ मङ्गलाचरणवीजं ।

संस्कृतग्रन्थानामेतादृशी रीतिः सर्व्वत्र प्रचलिता यन्मङ्गलाचरण-श्लोकानुक्रमणिकादिकं ग्रन्थादावेव लेखनीयं भवितुमर्हति । किन्त्वस्मिन् को
तन्नाचरितं । तस्यैतत्कारणं । उक्तश्लोकादि-रचन-प्रागेव प्रथम-काण्डादि-मुद्राङ्कन-समापनमात्रेण तल्लिप्सवो स्वदेशविदेशीयमहात्मानः पुनः पुन
प्रार्थयित्वा सर्व्वमेव गृहीतवन्तः । इदानीं एतत्कोषस्य प्रथमादिकाण्डं नोपस्थितं । तेन हेतुना एतन्मङ्गलाचरणादि-रूप-मुखबन्धनं शेषकाण्डपुरोवर्त्ति
कृतं । किन्त्वेतद्ग्रन्थारम्भे अथ शब्दकल्पद्रुमो मुद्र्यते इति लिखनेन मङ्गल-वाचकाथ-शब्दप्रयोगादेव एतत्कोषस्य मङ्गलाचरण-सिद्धिर्जाता । तदु
श्राद्धतत्त्व-धृतश्रुतौ,—

"ओङ्कारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा । कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तेन माङ्गलिकावुभौ" ॥

ग्रन्थरचनप्रयोजनं ।

अष्टादशसंख्यकासु शास्त्रीयभाषासु संस्कृतभाषा गीर्व्वाणवाणी । अतः सर्व्वोत्कृष्टा सर्व्वत्र समरूपा सर्व्वजनमान्या च । देवैर्ऋषिभिश्च तद्भाषय
अष्टादशविद्या प्रणीता । किन्त्वस्मिन् भारतवर्षे उक्तविद्या-सम्बन्धि-पारिभाषिक-शब्दादीनां प्रकाशक-कोषो न प्राप्यते । ते च तत्तद्भाष्य-टीकादिभिरे
चरितार्था भवन्ति । किञ्च महा-महोपाध्यायैः प्राचीन-नवीन-कवि-कोविदगणैः पद्येन पर्य्यायनानार्थ-युक्त-वहुविधाभिधानरचना कृता । किन्तु तत्तद्
ग्रन्थीयैकार्थ-शब्दसंग्रहस्य वर्गस्मरणाभावात् प्रयोजनीय-पर्य्याय-शब्दप्राप्तिः सुदुष्करी । एवं अनेकार्थ-शब्दसंग्रहस्य एकादि-षडक्षर-पर्य्यन्त-कान्तादि
हान्तशब्द-निवद्ध-निखिल-श्लोकानां पाठव्यतिरेकेण प्रार्थनीय-नानार्थ-शब्द-निर्गमोऽतिदुर्गमश्च । विशेषतः तत्तदेकैक-कोषे समग्र-शब्दार्थयोर्लाभाभाव
इत्यादि-दोषमहमालोच्य परोपकाराय पठद्दशावधि-वर्त्तमानकाल-पर्य्यन्तं वहुतरपरिश्रमै-र्धीरवर-निकर-साहाय्यैः देशप्राप्य-समस्तकोष-वेद-वेदा
न्तवेदाङ्गभाष्य-व्याकरण-च्छन्दोज्योतिष-साहित्य-नाटक-काव्यालङ्कार-वैद्यक-सङ्गीत-न्याय-सांख्य-पातञ्जल-वैशेषिक-मीमांसा-स्मृति-पुराणेतिहास-तन्त्रा-
गम-निगम-शिल्प-सूपकार-नीतिशास्त्र-कुलाचार्य्य-गोस्वामि-ग्रन्थादिभ्यः शब्दसमूहं संगृह्य कविकल्पद्रुम-नामक-धातुपाठ-ग्रन्थात् धातुनिवहञ्च
संकलय्य सकलशब्द-धात्वर्थानामनायासेन लाभार्थं विना पद्येन वर्णव्यवस्थाक्रमेण शब्दकल्पद्रुमाभिधानाभिनवाभिधानं कृतवान् । इमं सप्तकाण्डा
त्मक-वृहत्कोषं स्वीयकोष-व्ययेन मुद्राङ्कयित्वा मुद्राव्यतिरेकेण नानादिग्देशीय-विशिष्ट-पात्रेभ्यो वन्धुवर्गेभ्यो याचकेभ्यश्च दत्तवान् ॥

ग्रन्थस्य नामकरणं ।

एतत्कोषस्य शब्दकल्पद्रुम-नाम-करण-कारणमेतत् । स्वर्गीय-कल्पद्रुम-सन्निधाने यो यत् प्रार्थयते तस्य तत्प्राप्ति-र्भवत्येव । मत्कृतमर्त्त्यीय
शब्दकल्पद्रुम-समीपे यानि यानि समीहित-शब्दादीनि प्रार्थयन्ते तानि तान्यवश्यं प्राप्नुवन्ति । अतः कल्पवृक्ष-सादृश्यमेव नामकारणं । प्राचीनमग्रहक
द्भिरपि स्वकृतग्रन्थानां कल्पद्रुम-कल्पतरु-कल्पलता-प्रभृति नामधेयं कृतं । तत्सदृशार्थक-कामधेनु-चिन्तामण्यादि-पुस्तकानि च प्रचलन्ति एतद्ग्रन्थस
वृक्षरूपकत्वात् अस्य खण्डस्य काण्डेति संज्ञां कृतवान् ॥

अथ ग्रन्थपरिपाटी ।

अतः परमहमेतत्कोषस्यानुक्रमं विशेष-नियमञ्च विवृणोमि । निखिलाभिधानिक-शास्त्रिक-लौकिक-व्यवहारिक-साधुशब्दानां धातुगणानाञ्च
झटिति प्राप्तये तेषामानुपूर्व्विकाकारादि-क्षकारान्त-पञ्चाशद्वर्णानां यथाक्रमं सूचीं कृत्वा विन्यासमकुर्व्वं । तत्र प्रथमं स्वरवर्णादिशब्दानां परे हलवर्णादि
शब्दानां शेषे युक्ताक्षरादि-शब्दानाञ्च वर्णक्रमेणैव यथास्थानं प्रथमा-विभक्त्यन्तत्वेन संस्थापनमकार्य्यं । पदसाधने येषामन्त्याक्षराणां विकारो लोपो
वा अभवत् ते वर्णास्तत्तच्छब्दोपरि विन्यस्ताः । अनुस्वार-विसर्गाणां षोड़श-स्वरान्तर्गतत्वेन तदुभयवदाद्य-वर्णयुक्त-शब्दान् स्वरवर्णेम्हलाभिधेयान् इकार
तत्पश्चात् प्रत्येक-शब्दस्य लिङ्गं प्रत्येक-धातोरनुवन्धञ्च निर्णीतवान् । येषां धातूनामनुवन्धो नास्ति तत्स्थानं विन्दुयुक्तमथवा शून्यमास्ते । तदनन्त
सकल-शब्दानामर्थवाचक-पदानि प्रथमाविभक्त्यन्तत्वेन एवं समस्त-धात्वर्थवाचक-पदानि सप्तमीविभक्त्यन्तत्वेन लिखितानि । प्रत्येक-प्रसिद्ध-शब्दोक्त

तदीयपर्य्यायाः देशभाषाश्च तथा प्रत्येक-धात्वर्थानन्तरं तट्टीका धातुदीपिकोक्तव्याख्यापदादीनि विहितानि सर्व्वशेषे तेषां प्रमाणानि तदभावे तत्प्रयो
तद्विरहे तद्व्युत्पत्ति-र्लिखिता ॥

वर्णमालायां च वर्ग्य-जकारान्तःस्थयकारौ मूर्द्धन्य-णकार-दन्त्यनकारौ वर्ग्यवकारान्तःस्थवकारौ तालव्यशकार-मूर्द्धन्यषकारदन्त्यसकाराः सन्ति
एतदखिल-वर्णादि-शब्दानां धातूनाञ्च प्रभेदं कृत्वा सूचीपूर्व्वक यथास्थान संस्थापनं कृतवान्। वङ्गदेशे उक्तवर्णानामुच्चारण-भेदाभावः। विशेषतो वका
द्वयस्याकारोच्चारणयोर्भेदो नास्ति पश्चिमादिदेशे वर्त्तते। किन्तु मुग्धबोधटीकायां दुर्गादासविद्यावागीशधृता वकार-भेदिकैकप्राचीनकारिकास्ति
सा यथा,—

"उदूटौ यत्र विद्येते यो वः प्रत्ययसन्निभः। अन्तःस्थं तं विजानीयात्तदन्यो वर्ग्य उच्यते" ॥

एतत्कारिकया सकलवकार-प्रभेदो न भवति। इति हेतोरहं धातूनां शब्दाकरत्वादोष्ठ्यदन्त्य-वकारादिधातुद्वारा पदसाधनं कृत्वा बहु-प्रयत्ने
र्वकारद्वय-भेद प्रकाशितवान् रेफयुक्तवर्णन्तु रवर्णात् पर शब्द-सूचीमध्ये विन्यस्तवान् ॥

पूर्व्वतन-कोषकार-वर्गैः स्वस्वकोषे धातुसञ्चयो न कृतः शब्दमात्रसंग्रहः कृतः। किन्तु शब्दानामुत्पत्ति-स्थानं धातुः। अतएवाहं सर्व्वासम
वोपदेवीय-धातुपाठ-कविकल्पद्रुमात् (१७५४) चतुःपञ्चाशदधिक-सप्तदशशत-सङ्ख्यक-धातून् सङ्कलय्य एतत्कोषान्तर्गतान् कृतवान्। तत्र १३२ अकारान्त
धातवः। २४ आकारान्त-धातवः। १९ इकारान्त-धातवः। २५ ईकारान्त-धातवः। २२ उकारान्त-धातवः। १२ ऊकारान्त-धातवः। २१ ऋकारान्त
धातवः। १६ ॠकारान्त-धातवः। ६ एकारान्त-धातवः। २५ ऐकारान्त-धातवः। ५ ओकारान्त-धातवः। ५९ ककारान्त-धातवः। २१ खकारान्त
धातवः। २७ गकारान्त-धातव.। २० घकारान्त-धातवः। ५० चकारान्त-धातवः। १९ छकारान्त-धातवः। ७२ जकारान्त-धातवः। ३ झकारान्त
धातवः। ७१ टकारान्त-धातवः। २२ ठकारान्त-धातवः। ७६ डकारान्त-धातवः। १ ढकारान्त-धातुः। ५० णकारान्त-धातवः। ३१ तकारान्त
धातवः। २८ थकारान्त-धातव.। ७९ दकारान्त-धातवः। ३७ धकारान्त-धातवः। २८ नकारान्त-धातवः। ६४ पकारान्त-धातवः। १५ फकारान्त
धातवः। ४५ बकारान्त-धातव। २९ भकारान्त-धातवः। २२ मकारान्त-धातवः। ३१ यकारान्त-धातवः। ४१ रान्त-धातवः। ९२ लकारान्त
धातवः। ६८ वकारान्त-धातवः। २९ तालव्यशकारान्त-धातवः। ११६ मूर्द्धन्यषकारान्त-धातवः। ६५ दन्त्यसकारान्त-धातवः। ५० हकारान्त-धात
वः। ४२ सौत्र-धातवः सन्ति। एषां मध्ये सख्याया एकछकारान्त-धातुरेवमेको लकारान्त-धातुर्नास्ति। सौत्र-धातूनां नियत-प्रयोगाभावः
एतत्समुदाय-धातुर्गणभेदे विभक्तोभूतस्तस्माद्धेतोर्धातु-पाठस्य गणसंज्ञा अभवत्। तन्मध्ये प्रसिद्ध-गणा दश। अवान्तर-गणा अनेके विद्यन्ते। यथा,—

भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिर्दिवादिः स्वादिरेव च। तुदादिश्च रुधादिश्च तनक्र्यादि-चुरादयः ॥

इति दुर्गादास-विद्यावागीश-कृत-कविकल्पद्रुम-टीका धातुदीपिका॥ उक्तगणे वोपदेव-विप्रेण अकाराद्यादि-धातुपाठ-क्रमेण अकारान्तादि-धातु
सकल कथितवान्। किन्त्वहमेतत्क्रमानुगमनमकृत्वा निजकोष-रीत्यनुसारेण शब्दसूचीमध्ये धातुगणान् लिखितवान् ॥

साङ्केतिकवर्णचिह्नादीना विवरण।

एतत्पुस्तकस्य प्रतिपत्रस्य प्रत्येक-पृष्ठ-मध्यस्थाने युग्मरेखा-प्रदानेन द्विभाग कृत्वा तद्भागद्वये शब्दादिर्लिखितः। तस्यान्तिम-शब्दादेर्वर्णं त्र्यक्षर-
पर्य्यन्तं उक्तभागद्वयोपरि विन्यस्तमभवत्। तद्दृष्टिमात्रेण यदक्षर-पर्य्यन्त-शब्द-स्तत्पृष्ठारूढो भूतस्तद्बोधो भविष्यति। तेनेष्ट-शब्दानामनायासेन
लाभो भविता ॥

पुलिङ्गस्य सङ्केतः "पु"। स्त्रीलिङ्गस्य सङ्क्षेपः "स्त्री"। क्लीवलिङ्गस्य चिह्नं "क्ली"। वाच्यलिङ्गस्य अर्थात् त्रिलिङ्गस्य लक्ष्म "त्रि"। एवम-
व्ययशब्दस्यैक-देशस्य "व्य" इत्यक्षरस्य ग्रहण कृत ॥

यस्मिन् स्थले एक-शब्द-घटकी-भूत-बहुवर्णाः पङ्क्तिद्वये पतितास्तज्ज्ञापनार्थं तत्प्रथमपङ्क्तिशेषे एका क्षुद्र-समरेखा ( - ) प्रदत्ता भूता ॥

एकार्थ-शब्दस्योत्तर एव प्रमाणस्य पूर्व्वं एका विषम-रेखा (।) प्रदत्ता। भिन्नार्थक-शब्दस्य एव प्रमाणस्य पर विषम-रेखाद्वय (॥) विन्यस्ता।
प्रथमकाण्डे क्वचिदस्य व्यतिक्रमो जातः ॥

समानार्थक-द्वि-त्र्यादि-शब्देष्वेकस्थले उपस्थितेषु तदुत्तरं तज्ज्ञापक एवम्प्रकार-वेष्टन-चिह्न "}" दत्त ॥

विशेषवृत्तान्तसमापनात् पर विशेष-शब्दार्थारम्भात् पूर्व्वञ्च पुष्पाकारचिह्न (*) कृत। एव विस्तारित-विषयान्तर्गत-प्रकरणभेदस्थले पुष्पा-
कारेणाङ्कित ॥

येषा प्रसिद्ध-शब्दानामुत्तर तत्पर्य्याय-शब्दा लिखितास्तत्संख्यानामङ्कपातः कृतः। तत्रोक्त-प्रसिद्ध-शब्दमेकत्वेन गणयित्वा तत्पर्य्याये द्व्यादि-
सख्याङ्काः स्थापिताः ॥

पूर्व्वोदित-चतुःपञ्चाशदधिक-सप्तदशशत-धातूनां षट्चत्वारिंशदनुबन्धवर्णानां फलानि लिख्यन्ते ॥

अ—अनुबन्धेषु मध्ये अकारः सुखोच्चारणार्थः। यथा धक्क नक्क क नाशने इति ॥

आ—निष्ठाभावादि-कर्म्मवेट्। आकारेतो धातोर्भावे आदिकर्म्मणि च विहिताया निष्ठाया वा इट्‌इत्यर्थः। यथा ञिमिदा स्नेहे भावादिके मेति
मिन्न मेदित तेन। प्रमिन्नः प्रमेदितः स.। भावादिकर्म्मभ्यामन्यत्र निष्ठाया न इम् इत्यर्थ। यथा आदित इति मिन्नः मिन्नवान् ॥

इः—तुन्वान्। वदिङ् नुत्यभिवादयोः। अतएवेदितो नुन् वन्द्यते विष्णुः॥

इर्—वा अाङ्वान्। च्युतिर् चरणे इरितस्तु वेति अच्युतत् अच्योतीत्॥

ईः—अनिङ्निष्ठः। दीपीङ् य दीपने। नेमडीश्वीति दीप्तः दीप्तवान्॥

उः—क्त्वावेट्। चमु भक्षणे। पु क्त्विगुदित इम् इति चमिला चान्त्वा॥

ऊः—वेट्कः। यस्य सामान्यविधिना इम्विहितः ऊदितः परस्य तस्य वा इम् इत्यर्थः। षिधू शिवे शास्त्रे। वेमूदिदिति असेधीत् असैत्सीत्॥

ऋः—चङग्ह्रस्वः। चङि ञेः परे अङि परे अह्रस्वः ह्रस्वाभाववान्। यथा ढौकृङ् गत्यां। ञगङुङक्ष इत्यत्र ऋदिद्दर्जनात् अडुढौकत्॥

ॠः—वा चङि अह्रस्वः इत्यनुवर्त्तते। कण् आर्त्तस्वरे। भ्राज भासेति अचीकणत्। अचकाणत्। येषां सप्तम-स्वरानुबन्धः कैश्चित् पठ्यते कैश्चिन्न पठ्यते तेषां ह्रस्व-विकल्पनार्थोऽयमनुबन्धः॥

ऌः—अङ्वान्। श्रीगमॢ गत्यां। शास्त्यद्युतपुषादेरिति अगमत्॥

एः—सिचि अवृद्धिः। सिचि व्यांविहितसौ। ए कट् वृतौ वृषि। इमादेः सेम इत्यत्र एदिद्दर्जनात् अकटीत्॥

ऐः—यजादिः स्यात्। यजै ञौ देवार्च्चने। वयग्रहेति जिः इयाज। ग्रहस्वपायोरिति इज्यात्॥

ओः—निष्ठातनः। निष्ठायास्तो निष्ठातः निष्ठातो नो यस्मात् स निष्ठातनः। रुजो शौ भङ्गे। स्वत्वाद्योदिदिति रुग्नः रुग्नवान्॥

औः—अनिट्। श्रौ गमॢ गत्यां। वसोरस्येत्यत्र औदिद्दर्जनात् गन्ता॥

कः—चुरादिः। गणत्क सख्याने। चुर्भ्यो ञिर्व्वेति गणयति॥

किः—चुरादिर्व्वा। पचे गणान्तरनियमाभावात् भ्वादिरित्यर्थः। युज कि सयमे योजयति योजति। यद्यपि चुरादिभ्यो ञिर्व्विकल्प्यते तथाप्यन्येषामनुरोधादिदमुक्त। अन्येषां मते तु चुरादिभ्यो ञिर्नित्यः। तत्रापि युजप्रभृतिभ्यो वेति। स्वमते तु चुर्भ्यो ञिर्व्वेत्यत्र वाशब्दस्य व्यवस्थावाचित्वात् चुरादिभ्यो ञिर्नित्यः। अत्र युज-प्रभृतिभ्यो वेति॥

गः—क्र्यादिः। डु क्री ञ ग द्रव्यपर्य्यये। दिवस्तुतदेति क्रीणाति॥

गिः—प्वादिरपि। अपिशब्दात् क्र्यादिश्च। पू ञ गि शोधे। प्वादेः स इतिह्रस्वः पुनाति। अपूः स ल्वादिः। पूवञ्जितः स प्वादिर्ल्वादिश्च स्यात्। लू ञगि छिदि लुनाति। स्वत्वाद्योदिदिति लूनः लूनवान्। कॄ गॄ व्या स्वाद्यत्वादेरिति लूनिः॥

घ—रुदादिः। लघिर रुद रोदे। रुद्गोऽयोदन्त्येम इति रोदिति। रुदाद्यस्तीति ईम् अरोदीत्॥

ङः—तङ्वान् कर्त्तरि। कर्त्तरि वाच्ये तङ्वान् आत्मनेपदी। एध ङ वृद्धौ। नवशः पमे इति एधते॥

ञः—ज्वलाद्यः। ज्वल ञ चलत्विषोः। दूनीभूज्वलाद्येति णः ज्वालः। पचे पचादित्वादन् ज्वलः। एवं कुच ञ रोधपर्क्ककौटिल्यलेखने। दूनीभूज्वलाद्येति णः कोचः। पचे कॄ गॄ ज्ञा प्रीति कः कुचः॥

झः—ज्वलाद्यः। इति केचित्॥

ञः—आत्मने। आत्मने आत्मार्थं फलवति कर्त्तर्य्यात्मनेपदं अफलवति परस्मैपदमिति शेष यज ञौ देवार्च्चायां यजते यजमानः यजति याजकः। चूरादेस्तु स्वार्थविहित-ञेर्ञकारेण ञित्वेऽपि उभयपद न स्यात् अन्यथा स्मम ञक् वितर्के इत्यादे ञानुबन्धो व्यर्थ स्यात्॥

ञिः—अद्यक्तः। अद्य वर्त्तमाने क्तो यस्मात् स अद्यक्तः। ञि ष्ठा स्थाने। ज्ञार्चेच्छार्थञीच्छीलादेरिति स्थितो विष्णुस्तिष्ठतीत्यर्थः॥

टुः—थाथुः। टु ड वेप चलने। ट्वितोऽथुरिति वेपथुः॥

ठः—फणादि। इति केचित्॥

डुः—त्रिमगथुतः। छ ञ द डु छृतौ। ड्वितस्त्र्मे इति छ्चिमं॥

णः—फणादिः। फण ण निःस्नेहे। ट्ट फल भजेति फेणतुः पफणतुः फेणिथ पफणिथ॥

तः—अदन्तः। अदन्तानां पृथग्वर्गविधानेनैव ज्ञाने सिद्धे तानुबन्धोऽनभ्यासानामङ्कादिषु कान्तलादिभिन्नमनिरासार्थः।

दः—तनादिः। तन दु ञ विस्तृतौ। तनभ्यः उविति तनोति। सेर्लुक् तथासोरिति अतत अतनिष्ट अतथाः अतनिष्ठाः। वनतनाद्यनिमामिति प्रतत्य॥

धः—रुधादिकः। रुधिर्धो ञि ञ आवृतौ। दिवस्तु तुदेति रुणद्धि॥

नः—स्वादिः। षु ञण सन्धाक्लेदपीड़मन्थे। दिवस्तु तुदेति सुनोति॥

पः—मुचादिः। मुचॢ श प ञौ मोचे। नुणरधोमुचामिति मुञ्चति॥

भः—शमादिः। शमुभिर्य शमे। यन्योशमादीति शाम्यति॥

मिः—घटादिः। ञिचिन्नमोर्दीर्घो वा। दीर्घो दीर्घवान्। घट य म ङ चेष्टे। ञीन्नमोस्तुर्चेत्येति अघटि अघाटि घटं घटं घाटं घाटं। निचि ह्रस्वः मोऽनुवर्त्तते। निचि ञौ ह्रस्वः ह्रस्ववान्। घटादि जनीति घटयति॥

मिः—वा। निचि ह्रस्व इत्यनुवर्त्तते। फण मि ण गतौ। वा सम यम फणेति फणयति फाणयति॥

यः—दिवाद्यः । दिव्‌ु जिगीषेच्छादौ । दिवसु तुदेति दीव्यति ॥

र—वैदिकः । वेदेष्वेव प्रयुज्यन्ते नतु भाषायामित्यथः । गार्लिस्तुतौ जन्मनि । जगाति ॥

ल—अदादिकः । अद्लौ भचे । लुगल्लोऽपः अत्ति ॥

लि—ह्लादिः । ह्लादेरदाद्यन्तर्गणत्वेन ख्यातत्वाददादित्वसूचकानुबन्धो न कृतः । अथवा लु स्वपादिश्च लिह्लादिरित्येकं वाक्य । लु लि एतदुभयानु

धातू क्रमात् स्वपादिह्लादीस्त । चकारस्तोभयत्र सम्बन्धाददादौ चेत्यर्थः । ह्लादि. पृथक्‌गण इत्येके । अतएव पठन्ति च ।

"ह्लाद्यदादी जुहोत्यादिर्दिवादिः स्वादिरेव च। तुदादिश्च रुधादिश्च तनक्र्यादिचुरादयः" ॥ इति ।

हुलि होमेऽदने । ह्लादौ रे द्विः जुहोति ।

लु—स्वपादिश्च । चकाराददादिश्च । स्वमते स्वपादेः प्रयोजन नास्ति । दरिद्रतीत्यादौ स्वपादित्वादनादौ सार्व्वधातुके । आद्युदात्तत्वमिति वोपदेव

व—वृतादिः । वृत ङ व ष्ट्व वर्त्तने । वृद्भ्योनेम पे इति तेनैव परस्मैपदे वर्त्स्यति विवृत्सति । आत्मनेपदे तु वर्त्तिष्यते विवर्त्तिषते । अन्यत्र विवर्ति

विवृत्सा ॥

श—तुदादिकः । तुदौ ञ श व्यथे । दिवसुतुदेति तुदति ॥

शि—कुटादिश्च । चकारात् तुदादिश्च । कुटा नुञी ञ्णिति इति नियमात् कुट शि कौटिल्ये इत्यादीनां अकुटीत् इत्यादौ न गुणः । णू शि स्त

इत्यादीना अनुवीदित्यादिषु न वृद्धिः । अगुणत्वादुव् च ॥

ष—कृदङवान् । आख्यातिकस्याङोऽप्राप्त्यर्थं कृदिति विशेषण । स्वमते तूभयत्र ङ एव । डु ञौ श पच पाके । भौषि चिन्वीति पचा ॥

च—जचादि । जच च लु घ भचहासयोः । द्विरुक्त जचादीति द्विसञ्ज्ञाया शत्रन्तस्य त्रिदचोऽद्वेरिति न नुण् जचत् । क्लीवे जस्शसोस्तु द्वे शतुर

इति जचति जचन्ति । आख्यातिकेऽन्तोऽन्त्रो द्वेरिति जचति । अनुस् सिद्वेरिति अजचु । इति धातुदीपिकाया अनुबन्धफलनिरूपण ॥

व्याडिकोषविवरण ।

सर्व्वेषा कोषाणामादि अग्निपुराणोक्ताभिधान । तत्रादौ स्वर्गपातालादिवर्गः । ततोऽव्ययवर्ग । ततो नानार्थवर्गः । ततो भूपुराद्रिवनौषधिसिं

दिवर्गा । ततो नृब्रह्मचत्रविट्शूद्रवर्गा । शेषे सामान्यानि नामलिङ्गानि सन्तीति मया दृष्ट । अमरसिंहस्तु उक्ताग्निपुराणीयाभिधानस्य कस्यचि

कस्यचित् वर्गस्य व्यतिक्रम कृत्वा तत्रोदित-सामान्य-नामलिङ्गानां विशेष्य-निघ्न-वर्गसङ्कीर्णवर्गाविति सञ्ज्ञा स्थापयित्वा अन्ते लिङ्गादिसङ्ग्रहवर्गस्य योग कृ

स्वीयकोष रचितवान् । एव जटाधरोऽपि अमरकोषस्यानुकरण कृतवान् । इति विरलप्रचारः ॥

---

प्राप्तकोषादिनामानि ।

अत्राभिधाने मत्प्राप्तयद्यत्कोषादितः शब्दादयः सङ्गृहीतास्तेषां सञ्ज्ञाः पश्चाल्लिख्यन्ते ॥

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| अमरसिंहकृतं | नामलिङ्गानुशासन | १ | पुरुषोत्तम देवकृत | त्रिकाण्डशेष | |
| अजयपालकृत | नानार्थसङ्ग्रह | २ | तत्कृता | हारावली | |
| रुद्रसिंहकृता | नानार्थध्वनिमञ्जरी | ३ | भावमिश्रकृत | भावप्रकाश | |
| चक्रपाणिदत्तकृता | शब्दचन्द्रिका | ४ | मथुरेशपण्डितकृता | शब्दरत्नावली | |
| जटाधराचार्य्यकृत | पर्य्यायनानार्थकोष | ५ | महेश्वरवैद्यकृत | विश्वप्रकाश | |
| दण्डाधिनाथकृता | नानार्थरत्नमाला | ६ | मेदिनीकरवैद्यकृत | नानार्थशब्दकोष | |
| दुर्गादासविद्यावागीशकृता | धातुदीपिका | ७ | रामेश्वरशर्म्मकृता | शब्दमाला | |
| धनञ्जयकविकृता | नाममाला | ८ | रत्नमालाकरवैद्यकृता | आयुर्वेदार्णवोत्थितपर्य्यायरत्नमाला | |
| धरणिदासब्राह्मणकृतः | सारसङ्ग्रहनामकानेकार्थसमुच्चय | ९ | वोपदेवविप्रकृत | कविकल्पद्रुम | |
| नरसिंहकाश्मीरपण्डितकृत | निर्घण्टुराजः अर्थात् राजनिर्घण्ट | १० | श्रीनन्दनभट्टाचार्य्यकृत | वर्णाभिधान | |
| नारायणदासकविराजकृत | राजवल्लभ | ११ | श्रीरामशर्म्मकृत | उणादिकोष | |
| पद्मनाभदत्तद्विजकृतः | भूरिप्रयोग | १२ | सिद्धान्तकौमुदीसंक्षिप्तसारकारकृते | उणादिवृत्ती | २६।२ |
| पुरुषोत्तमदेवकृत | एकाक्षरकोष | १३ | हलायुधभट्टकृता | अभिधानरत्नमाला | |
| तत्कृत | द्विरूपकोष | १४ | हेमचन्द्रजैनकृतः | अभिधानचिन्तामणि | |

अप्राप्तकोषनामानि ।

एतद्भिन्नानेकप्राचीनाभिधानानि सन्ति । यद्यपि तानि मया अप्राप्तानि तथापि तेषां मध्ये बहुकोषाणां प्रयोगप्रमाणानि अमरटीकाद्युतानि

आसादितानि । एव विश्वमेदिनीकोषे तत्सकलाभिधानानां शब्दा समाहृताः । उक्तकोषद्वयशब्दानां शब्दकल्पद्रुमाभ्यन्तरितत्वेन वक्ष्यमाणसमस्त

प्राचीनकोषाणां शब्दा एतत्कोषान्तर्गता भूता ।

### विश्वधृतप्राचीनकोषाः ।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| भोगीन्द्र | १ | वाचस्पति | ४ | मङ्गल | ७ | भागुरिरचितकोषाः | १० |
| कात्यायन | २ | व्याडि | ५ | शुभाङ्क | ८ | | |
| साहसाङ्क | ३ | विश्वरूप | ६ | वोपालित | ९ | | |

### मेदिनीधृतप्राचीनकोषाः ।

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उत्पलिनी | १ | रन्तिदेव | ७ | गङ्गाधर | १३ | चन्द्र | १९ |
| शब्दार्णव | २ | रत्नापरनामामर | ८ | वाभट | १४ | विक्रमादित्य | २० |
| संसारावर्त्त | ३ | गोवर्द्धन | ९ | माधव | १५ | गोमिरचितकोषाः | २१ |
| नाममालाख्य | ४ | रभसपाल | १० | धर्म्म | १६ | पाणिनिपदानुशासनञ्च | २२ |
| वररुचि | ५ | रुद्र | ११ | तारपाल | १७ | | |
| शाश्वत | ६ | अमरदत्त | १२ | वामन | १८ | | |

एतदन्ये वलहट्टप्रभृतिकृतकोषाः सन्ति ॥

### लब्धालब्धामरकोषटीकानामानि ।

अमरकोषस्य भृशप्रामाणिकः व्युत्पादकश्च । तस्मात् बहुतरटीकाकारैस्तस्य नानाविधा टीका कृता । तन्मध्ये कतिपयलब्धटीकानां प्रमाणानि शब्दकल्पद्रुमे दत्तानि । किन्तु तत्समुदायटीकाकृन्नामानि टीकानामधेयानि चाह व्यक्तीकरोमि ॥

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| क्षीरस्वामी | १ | माधवी | ११ | कोलाहलाचार्य्य | २१ | कृता व्याख्यासुधी | ३० |
| सुभूति | २ | मधुमाधवी | १२ | शवरस्वामी | २२ | अच्युतोपाध्यायकृतव्याख्या-प्रदीप | ३१ |
| हट्टचन्द्र | ३ | सर्व्वानन्दः | १३ | रामतर्कवागीशः | २३ | मथुरेशविद्यालङ्कारकृता सारसुन्दरी | ३२ |
| कलिङ्ग | ४ | अभिनन्द | १४ | नयनानन्द | २४ | नारायणचक्रवर्त्तिकृता पदार्थ-कौमुदी | ३३ |
| कोट्टट | ५ | मल्लिनाथ | १५ | विद्याविनोद | २५ | रमानाथविद्यावाचस्पतिकृत-त्रिकाण्डविवेक | ३४ |
| सर्व्वधर | ६ | रायमुकुटमणि | १६ | रघुनाथचक्रवर्त्ती | २६ | भरतमल्लिककृता मुग्धबोध सम्मता टीका | ३५ |
| राजदेवः | ७ | नीलकण्ठ | १७ | व्याख्यामृत | २७ | | |
| गोवर्द्धन | ८ | अरुण | १८ | टीकासर्व्वस्व | २८ | | |
| द्राविड | ९ | भगीरथ | १९ | सन्देहभञ्जिका | २९ | | |
| भोजराज | १० | जयादित्य | २० | रामाश्रमापरनामभानुदीक्षित- | | | |

एतद्भिन्ना अपि टीका वर्त्तन्ते ॥

अत्राहृतविषयवृन्दं शब्दसिन्धुदुस्तरत्वञ्च विज्ञापयामि ।

कोषगणातिरिक्तनानाशास्त्रोक्तशब्दप्रमाणप्रयोगोपाख्यानादीनि । चातुर्वेदिकषाड्दर्शनिकमतविवरणपदार्थकर्म्मोपासनाज्ञानकाण्डब्रह्मनिरूपण-वेदाङ्गशिक्षादीनि । शाब्दिककाव्यालङ्कारिकछान्दसिकसूत्रवृत्तिमात्रानामलक्षणोदाहरणचित्रकाव्यनवरसरतिबन्धादयः । श्रौतस्मार्त्तयज्ञमलमासादि-लक्षणदायभागाशौचसंस्कारप्रायश्चित्तोद्वाहतिथिकृत्यजन्माष्टमीदुर्गोत्सवाष्टादशविवादपद-चतुष्पादव्यवहारैकादश्याद्युपवासनिर्णयतडागभवनवृषोत्सर्गव्रतप्र-तिष्ठापरीक्षाज्योतिःशुभाशुभदिनादिवास्तुयागदीक्षाह्निकाचारमासकृत्यपुरुषोत्तममादिमाहात्म्यश्राद्धशूद्रकृत्यकर्मविपाकद्वादशयात्राधिकरणदत्तकव्यवस्था-दयः । पौराणिकतान्त्रिकवर्णतत्त्वषट्कर्म्मस्नानतर्पणपूजामुद्रामन्त्रयन्त्रजपहोमवलिध्यानस्तवकवचमाहात्म्यभुवनस्वर्गनरकदेववादानवतीर्थावतारनदनदीदे-शभेदपीठपर्वतवृक्षराजनीतिवर्णाश्रमधर्म्मवर्णसङ्करद्रव्यशुद्धिमहादाननिधिरत्नाद्युत्पत्तिसृष्टिप्रलयदुर्गपुरमन्दिरश्रीमूर्त्तिनिर्म्माणप्रमाणादीनि । ज्यौतिषिक-सैद्धान्तिकवारतिथिनक्षत्रयोगकरणसङ्क्रान्तिमासर्त्तुपक्षवर्षायनजातफलाकालग्रहणनष्टचन्द्रधूमकेतुस्त्रीपुरुषादिशुभाशुभलक्षणशकुनस्वरोदयगणिताङ्कक्षेत्र-व्यवहारराशिचक्रभुगोलखगोलदृग्गोलवर्णनादीनि । आयुर्वेदीयजन्मक्रमशारीरस्थानरोगनिदानपूर्वरूपसम्प्राप्त्युपशयचिकित्सौषधद्रव्यगुणपाचनजारणमा-रणपथ्यापथ्यनाडीमूत्रजिह्वापरीक्षापञ्चकर्म्मषड्रसोत्पत्त्याख्यानादयः । गान्धर्ववेदीयनृत्यगीतवाद्यस्वरतालत्वयतानमानग्रामश्रुतिमूर्च्छनारागरागिणीत-त्पत्नतद्भार्य्यागानसमयध्रुवकगमकनायकनायिकानिरूपणादीनि । युक्तिकल्पतरुग्रन्थीयनीतिदन्दनगरीवास्तुराजगृहविशेषसामान्यासनोपकरणालङ्कारास्त्र-याचायुक्तय. तथा चतुष्पदद्विपदनिष्पदयानोद्देशाः । पत्रकौमुदीयपत्रप्रमाणभङ्गरचनलेखननयनपठनचिह्नकोणच्छेदनपदन्यास श्रीशब्दविन्यासप्रश-स्तिप्रकरणादीनि । कुलाचार्य्यादिग्रन्थीयब्राह्मणवैद्यकायस्थानामुत्पत्तिवंशगोत्रप्रवरपर्य्यायश्रोत्रियकुलीनमौलिकगोष्ठीपतिनिर्णयादीनि च शब्दकल्पद्रुमस्य सप्तकाण्डे मया समाहृतानि । यान्यवशिष्टानि तानि परिशिष्टे प्रवक्ष्यामि । तत्तद्ग्रन्थनामानि वाहुल्यभिया नोक्तानि । तथापि शब्दसमुद्रस्य पारगमन दुष्करतर । तदुक्त कलापमुग्धवोधटीकाधृतश्लोके ।

अद्यापि भाष्यकारस्य कुशाग्रीयधियावुभौ । नैव शब्दाम्बुधेः पारं किमन्ये जडबुद्धयः ॥

## परिशिष्टकरणकारणम्।

अस्मिन् सप्तकाण्डात्मकशब्दकल्पद्रुमपुस्तके ये ये शब्दार्थप्रमाणप्रयोगादयः पूर्व्वं प्राप्त्यभावेन न सङ्गृहीताः। अथवा भ्रमवशात् पतिताः। ए यस्य यस्य रोगस्य निदानमात्रं लिखितं तत्तदौषधानि न विवृतानि। एवं येषां शब्दानां अमरातिरिक्तकोषोक्तपर्य्यायशब्दसङ्कलनं न कृतं। ए दीकारोत्तरचकारादिवर्णयुक्तकतिपयशब्दानां मुद्राङ्कनप्रमादेन स्खलनं जातं। एवं अकाराद्यादिवर्ग्यवकारादिपर्य्यन्तधातूनां तत्तट्टीकाधृतपदोदाह णादयः पुरा न लिखिताः। एतत्सर्व्वमवशिष्टं परिशिष्टमध्ये लिपिबद्धीकरिष्यामि। अतःपरमेतत्परिशिष्टीयापुनरुक्तशब्दादीन् प्रागुदितसप्तका ण्डीयशब्दसूचीमध्ये यथास्थानं स्थापयित्वा ग्रन्थसमाप्तौ मङ्गलाचरणबीजं परिशिष्टकरणकारणञ्च द्विवा एतन्मुखबन्धनं प्रथमकाण्डस्य पूर्व्वं योजयित्व पुनर्मुद्राङ्कने कृते एष कोषः सुसम्पूर्णो भविष्यति। किञ्च पश्चिमदेशीयलोकानां महोपकाराय देवनागराक्षरेण एतत्कोषमुद्राङ्कनार्थं पाश्चात्य मद्बन्धुवर्गा ममान्तिके बहुशः प्रार्थयन्ते। किन्तु तत्प्रार्थनापूरणे मदीयायुषोऽनुकूलतायां सन्दिहानो विवृत्तोऽस्मि। यद्यपि कश्चित् विपश्चि किम्वा विषयो स्वीयलाभार्थं मत्कृतैतद्ग्रन्थाधिकारं यथारीति गृहीत्वा अस्मिन् कर्म्मणि प्रवर्त्तेत तत्र ममापत्तिर्नास्तीति॥

---

शाके वह्निसमुद्रशैलधरणीमाने ऽरुणे कर्कटे, याते खाग्निमिताब्दतः परमसौ मत्शब्दकल्पद्रुमः।
काण्डैः सप्तभिरन्वितो भगवतोऽनुक्रोशतः, पूर्णतां प्राप्तो दूषणमस्ति किञ्चिदिह चेत् तत् क्षम्यतां साधुभिः॥

---

## अथ सर्व्वोपासकसम्मतमङ्गलाचरणोनविंशतिपद्यानि।

वेदा वदन्ति यं सत्यमानन्दमद्वितीयकम्।
तथात्मतत्त्वैकरूपमवाङ्मनसगोचरम्॥
सर्व्वातीतं सर्व्वगतं चिदेकरसमेव च।
देशकालापरिच्छिन्नमपादमपि शीघ्रगम्॥
सर्व्वग्रहमपाणिञ्च सर्व्वेषां दर्शकं तथा।
अचक्षुषमपि श्रोत्रहीनं श्रोतारकं पुनः॥
अचिन्त्यमपि सर्व्वज्ञं सर्व्वेषाञ्च नियामकम्।
सर्व्वशक्तियुतं सृष्टिस्थितिप्रलयकारकम्॥ १॥
तथोपनिषदा य हि शुद्धबुद्धस्वभावकम्॥ २॥
कथयन्त्यादिविद्वांसं सिद्धं य कापिला विदुः॥ ३॥
क्लेशकर्म्मविपाकाशयापरामृष्टमेव य।
निर्म्माणकायमास्थाय सम्प्रदायप्रवर्त्तकम्॥
तथानुग्राहकमपि प्रभाषन्ते पतञ्जलाः॥ ४॥
लोकवेदविरुद्धैर्यं निर्लेपञ्च स्वतन्त्रकम्॥
महापाशुपताः सर्व्वे ब्रुवन्ति सततं भुवि। ५।
शैवाः शिवं य वदन्ति वैष्णवाः पुरुषोत्तमम्॥ ६। ७॥
पितामहमिति प्राञ्चः पौराणिकजना विदुः। ८।
याज्ञिका यज्ञपुरुषं सर्व्वज्ञमिति सौगताः॥ ९। १०॥
निरावरणमित्येवं प्रलपन्ति दिगम्बराः। ११।
उपास्यत्वरूपेण देशितं हि निरन्तरम्॥
मीमांसका वै भाषन्ते चार्व्वाकाः प्रवदन्ति य।
लोकानां व्यवहारेण सिद्धं सन्ततमेव च॥ १२। १३॥
यावदुक्तोपपन्नं हि न्यायज्ञाः सम्प्रचक्षते। १४।
शिल्पिनो विश्वकर्म्मेति य भणन्ति सुनिश्चितम्॥ १५॥
शाक्ता वदन्ति य नित्यामाद्याप्रकृतिरूपिणीम्। १६।
सौरास्तेजोमयं सूर्य्यं गाणपत्या गणेश्वरम्॥ १७। १८॥
रामानुजा य वदन्ति विशिष्टाद्वैतवादिनः।
लक्ष्मीनारायणं भक्ताधीनं नित्यशरीरिणम्॥ १९॥
निम्बादित्यास्तथा माध्वाचार्य्याद्या द्वैतवादिनः।
विष्णुं सशक्तिं सन्मूर्त्तिं यमाहुर्भक्तवत्सलम्॥ २०॥
रामानन्दा रामचन्द्रं भक्तानुग्रहकारकम्।
सीतया सहितं प्रोचुर्यं नित्यं नित्यविग्रहम्॥ २१॥
श्रीमन्माध्वानुयायि श्रीनित्यानन्दादिवंशजाः।
गोस्वामिनो नन्दसूनुं श्रीकृष्णं प्रवदन्ति य॥ २२॥
कायेन मनसा वाचा भक्त्या च प्रणिपत्य तम्।
श्रीराधाकान्तदेवेन राज्ञातिशययत्नतः।
शब्दादीन्यवशिष्टानि सङ्गृह्य बहुशास्त्रतः।
परिशिष्टः शब्दकल्पद्रुमस्य क्रियतेऽधुना॥

## अथ ग्रन्थप्रतिज्ञानवश्लोकाः।

शब्दकल्पद्रुमग्रन्थे सप्तकाण्डमयेऽखिले।
येषामेव हि शब्दार्थपर्य्यायाणां तथैव च॥
प्रमाणानां प्रयोगाणां धातुसम्बन्धिनां पुनः।
पदोदाहरणानाञ्च चिकित्सानां गदस्य च॥
न सङ्ग्रहोऽभवत् पूर्व्वग्रन्थे कारणकूटतः।
तेषां सङ्कलनञ्चास्मिन् परिशिष्टे करोम्यहम्॥

तथा वेदनिघण्टाख्यः पञ्चाध्यायसमन्वितः ।
वैदिकानाञ्च शब्दानामतिप्राचीनकोषकः ॥
तस्यात्र देशे विरलप्रचारत्वेन तद्धृतः ।
पर्यायशब्दसन्दोहः केनापि कोषकारिणा ॥
न संगृहीतस्तद्धेतोर्दुरूहोऽश्रुत एव च ।
प्रायो वैदिकशब्दार्थो बोधगम्यो भवेन्नहि ॥

अतस्तत्प्रथमाध्याये द्वितीये च तृतीयके ।
येषां स्थितानां शब्दानां पर्यायान् परिशिष्टगान् ॥
करिष्याम्यस्य निम्ने हि तेषां वर्गस्तु नाम च ।
तथा सङ्ख्या विलिख्यन्ते लोकानां ज्ञानहेतवे ॥
चतुर्थे पञ्चमाध्याये यदस्ति पदवृन्दकम् ।
तत्पर्यायस्य बोधस्य चाभावान्नात्र गृह्यते ॥

तत्र प्रथमाध्याये ४१४ नामानि यथा ।

| वर्ग | नाम | सङ्ख्या |
|---|---|---|
| १ | पृथिवीनामधेयानि . | २१ |
| २ | हिरण्यनामानि .. | १५ |
| ३ | अन्तरीक्षनामानि | १६ |
| ४ | साधारणनामानि . | ६ |
| ५ | रश्मिनामानि .. . | १५ |
| ६ | दिङ्नामानि .. .. | ८ |
| ७ | रात्रिनामानि .. .. | २३ |
| ८ | उषसनामानि .. | १६ |
| ९ | अहर्नामानि .. .. | १२ |
| १० | मेघनामानि . .. | ३० |
| ११ | वाङ्नामानि . .. | ५७ |
| १२ | उदकनामानि .. | १०० |
| १३ | नदीनामानि .. . | ३७ |
| १४ | अश्वनामानि . . | २६ |
| १५ | आदिष्टोपयोजनानि | १० |
| १६ | ज्वलतिकर्म्माणः .. | ११ |
| १७ | ज्वलतो नामधेयानि | ११ |

इति वेदनिघण्टौ प्रथमाध्यायः ॥

द्वितीयाध्याये ५१६ नामानि ।

| वर्ग | नाम | सङ्ख्या |
|---|---|---|
| १ | कर्म्मनामानि . .. | २६ |
| २ | अपत्यनामानि .. | १५ |
| ३ | मनुष्यनामानि . . | २५ |
| ४ | बाहुनामानि . .. | २२ |
| ५ | अङ्गुलिनामानि .. | २२ |
| ६ | कान्तिकर्म्माणि | १८ |
| ७ | अन्ननामानि .. .. | २८ |
| ८ | अत्तिकर्म्माणि | १० |
| ९ | बलनामानि .. . | २८ |
| १० | धननामानि .. .. | २८ |
| ११ | गोनामानि .. | ९ |
| १२ | क्रुध्यतिकर्म्माणि . | १० |
| १३ | क्रोधनामानि .. . | ११ |
| १४ | गतिकर्म्माणि .. | १२२ |
| १५ | क्षिप्रनामानि .. .. | २६ |
| १६ | अन्तिकनामानि .. | ११ |
| १७ | संग्रामनामानि .. | ४६ |
| १८ | व्याप्तिकर्म्माणि .. | १० |
| १९ | वधकर्म्माणि .. .. | ३३ |
| २० | वज्रनामानि . | १८ |
| २१ | ऐश्वर्य्यकर्म्माणि .. | ४ |
| २२ | ईश्वरनामानि | ४ |

इति वेदनिघण्टौ द्वितीयाध्याय ॥

तृतीयाध्याये ४१० नामानि ।

| वर्ग | नाम | सङ्ख्या |
|---|---|---|
| १ | बहुनामानि .. .. | १२ |
| २ | ह्रस्वनामानि .. . | ११ |
| ३ | महन्नामानि | २५ |
| ४ | गृहनामानि .. .. | २२ |
| ५ | परिचरणकर्म्माणि .. | १० |
| ६ | सुखनामानि .. .. | २० |
| ७ | रूपनामानि . .. | १६ |
| ८ | प्रशस्यनामानि .. | १० |
| ९ | प्रज्ञानामानि . .. | ११ |
| १० | सत्यनामानि .. .. | ६ |
| ११ | पश्यतिकर्म्माणि . | ८ |
| १२ | उत्तराणि पदानि सर्व्वपदसमाम्नानाय .. | ९ |
| १३ | उपमानामानि . | १२ |
| १४ | अर्च्चतिकर्म्माणः . | ४४ |
| १५ | मेधाविनामानि . | २४ |
| १६ | स्तोतृनामानि .. . | १३ |
| १७ | यज्ञनामानि | १५ |
| १८ | ऋत्विङ्नामानि .. | ८ |
| १९ | याच्ञाकर्म्माणि . | १७ |
| २० | दानकर्म्माणि | १० |
| २१ | अध्येषणाकर्म्माणः . | ४ |
| २२ | स्वपितिकर्म्माणि . | २ |
| २३ | कूपनामानि .. | १४ |
| २४ | स्तेननामानि .. .. | १४ |
| २५ | निर्णीतान्तर्हितनामधेयानि . .. .. | ६ |
| २६ | दूरनामानि .. | ५ |
| २७ | पुराणनामानि . | ६ |
| २८ | नूतननामानि .. | ६ |
| २९ | दिश उत्तराणि नामानि | २६ |
| ३० | द्यावापृथिव्योर्नामधेयानि | २४ |

इति वेदनिघण्टौ तृतीयाध्याय ॥

चतुर्थाध्याये २७८ पदानि ।

| वर्ग | पदं | सङ्ख्या |
|---|---|---|
| १ | जहा इत्यादिपदानि | ६२ |
| २ | सस्निमित्यादिपदानि | ८४ |
| ३ | आशुशुक्षणिरित्यादिपदानि .. . | १३२ |

इति वेदनिघण्टौ चतुर्थाध्याय ॥

पञ्चमाध्याये १५१ पदानि ।

| वर्ग | पदं | सङ्ख्या |
|---|---|---|
| १ | अग्निरित्यादिपदानि | ३ |
| २ | द्रविणोदा इत्यादिपदानि .. .. | १३ |
| ३ | अश्व इत्यादिपदानि | ३६ |
| ४ | वायुरित्यादिपदानि .. | ३२ |
| ५ | श्येन इत्यादिपदानि . | ३६ |
| ६ | अश्विनावित्यादिपदानि | ३१ |

इति वेदनिघण्टौ पञ्चमाध्याय ॥

---

अथ ग्रन्थस्यानुक्रमणिकादिलेखनाभावकारण वृत्तद्वयम् ।

ग्रन्थस्यानुक्रमणिका साङ्केताक्षरलक्ष्म च । परिशिष्टस्य करणे कारणादिकमेव हि ॥
पूर्वं सप्तमकाण्डीयमुखबन्धे प्रकीर्त्तितम् । अतो न लिख्यतेऽत्रैव पुनरुक्तिभयान्मया ॥

अथादर्शपत्राणां वल्मीकभक्षणजन्यमनस्तापतन्निवारणहेतुपञ्चपद्यानि ।

इदानीं परिशिष्टीयबङ्गलादर्शपत्रिकाः ।
यन्त्रालयसमुत्पन्नवल्मीकगणभक्षिताः ॥
अतस्तद्गतशब्दानां नाभवन्मुद्रयाङ्कनम् ।
तच्चेन्नूतन तदा ग्रन्थबाहुल्य समजायत ॥
किन्तु सांप्रतमादर्शनाशजन्यो मनोगतः ।

तापो जामातृदौहित्रगणैरेव निवारितः ॥
यतस्ते परिशिष्टीयशब्दैरन्यैश्च संयुतम् ।
देवनागरवर्णेन शब्दकल्पद्रुमं पुनः ॥
मुद्राङ्कितं प्रकुर्वन्ति यत्नेनातिशयेन च ।
तस्य प्रकाशाल्लोकानामुपकारो भविष्यति ॥

---

## अथ ग्रन्थकर्त्तुर्व्वंशवर्णनश्लोकाः।

आसीत् श्रीहरिदेवाख्यः श्रीहरेरंशरूपकः।
कायस्थानां कुले देववंशस्योद्भवहेतुकः॥
मुरशिदावादनगरासन्ने स्वजनपालकः।
कर्णस्वर्णनामधेयसमाजे वासकारकः॥
सदा हरिपदाम्भोजयुगलध्यानकारकः।
मौद्गल्यगोत्रजातानामेष वीजाभिधानकः॥ १॥
तस्य दुर्गावरो नाम सुतः सर्वगुणान्वितः। २।
तस्माद्विश्वेश्वरो जातस्तस्य विघ्नेश्वरः सुतः॥ ३। ४॥
सदानन्देन सम्पूर्णः पूर्णानन्दोऽभवत्ततः। ५।
खानोपाधिस्तत्तनयः पीताम्बर इति स्मृतः॥
अदभ्रशालिशालित्वाद्धान्यपीताम्बरेति च।
विख्यातो भुवि सर्वत्र गोष्ठीपतिवरः स च॥ ६॥
पृथ्वीधरस्तत्तनूजस्तस्माच्च कुलनन्दनः। ७। ८।
चत्वारस्तनयास्तस्य चतुर्द्देशनिवासिनः॥
प्रथमः शिवदासाख्यश्चौखण्डिख्यातिसंयुतः।
मनुयौनामके देशे वासस्तेन सदा कृतः॥
नित्यानन्दो द्वितीयस्तु रायोपाधिः सुविश्रुतः।
कृतसौदपुरवासो नित्यानन्देन पूरितः॥
चतुर्भुजस्तृतीयो यः सोऽपि रायेत्युदाहृतः।
तान्नाग्रामकृतावासश्चतुर्भुजपदाश्रितः॥
चतुर्थः श्रीनाथरायो धुले पुरकृतायनः।
सदा श्रीनाथचरणाम्भोजार्च्चनपरायणः॥ ९॥
नित्यानन्दात्मजः श्रीमान् श्रीमन्तेतिसमीरितः॥१०॥
चण्डीवरस्तस्य पुत्त्रश्चण्डिकापूजने रतः॥ ११॥
तज्जातः परमानन्दः परमानन्ददायकः॥ १२॥
काशीनाथश्च विजयावल्लभस्तत्कुमारकः।
ज्येष्ठस्तु मल्लिकोपाधी रायोपाधिः कनिष्ठकः। १३।
विजयावल्लभाज्जातः कृष्णानन्दो द्विजार्च्चकः॥ १४॥
रघुनन्दनदेवस्तत्तनयः परिकीर्त्तितः। १५।
विद्याधरस्तस्य सूनू रायेतिख्यातिमागतः॥
आदौ नाजराग्रामवासी निताड़ावासकृत्ततः। १६।
तस्यात्मजो हरिहरो जातो हरिहराश्रितः॥१७॥
षट् सुतास्तस्य विज्ञेयाः सर्वलोकप्रशंसिताः।
ज्येष्ठस्तु यादवानन्दः सदा यादवसेविता॥
द्वितीयोरामचन्द्राख्यस्तृतीयो लक्ष्मणो मतः।
देवीदासस्तुरीयोऽभूत् मजुमदार उपाधितः॥
परोपकारनिरतः सदा बन्धुभिरावृतः।
मुडागाछादिदेशानां कानुनगोपदमागतः॥
स च तस्मिन् जनपदे कर्णस्वर्णसमाजतः।
उत्थाय वासमकरोत् पुत्त्रदारादिभिर्यतः॥
दुर्गादासः पञ्चमस्तु सदा दुर्गाप्रपूजकः।
षष्ठस्तु माधवानन्दः सर्वानन्दप्रदायकः॥ १८॥
देवीदासमजुमदारतनयाः षट् प्रजज्ञिरे।
गौरीकान्तो ज्येष्ठपुत्त्रः स च वंशविवर्द्धितः॥
चण्डीशरणसञ्ज्ञस्तु मध्यमश्चण्डिकार्च्चकः।
तृतीयः पुण्डरीकाक्षः सहस्राक्षश्चतुर्थकः॥
महावज्जङ्गतो यो हि पदे पैत्र्ये नियोजितः।
सरकारोपाधियुतो राजेन्द्रः पञ्चमः सुतः॥
कामारपोलग्रामान्तर्वासस्तेन विनिर्म्मितः।
कनिष्ठो रुक्मिणीकान्तो बहुभिर्ज्ञातिभिर्वृतः॥
मुडागाछाप्रदेशे तु पञ्चग्रामे ह्यधिष्ठितः।
स च केशवरायस्य क्षत्त्रियस्य विशेषतः॥
अप्राप्तव्यवहारस्य विख्यातस्य समन्ततः।
तद्देशाधिपते राज्ये नवावेन नियोजितः॥
अपरश्चव्यवहारांश्च तद्राज्यशासने रतः।
अतोऽस्मिन् भूतले लोकैर्व्यवहर्त्तेति कीर्त्तितः॥ १९॥
तस्यैव तु कनिष्ठस्य चत्वारो देहसम्भवाः।
धार्म्मिकाः कर्म्मकुशला लोके समाप्तगौरवाः॥
ज्येष्ठो रामेश्वरः पैत्र्य पदं प्राप्तः कृतश्रमः।
महावज्जङ्गतस्तेषु कृष्णरामस्तु मध्यमः॥
राजारामस्तृतीयस्तु तेषां रुद्रेश्वरोऽन्तिमः।
अनपत्यतया सोऽपि रुद्राराधकसत्तमः॥ २०॥
रामेश्वरस्य षट् पुत्त्रास्तेषां ज्येष्ठो महागुणः।
रामचन्द्रस्तथा रामचरणो मध्यमः पुनः॥
तृतीयो रघुनाथाख्यः श्रीरामस्तु तुरीयकः।
रामकेशवनामा च पञ्चमः केशवार्च्चकः॥
वलरामाभिधः षष्ठो वलवान् वलिना यतः।
एषां ज्येष्ठः कनिष्ठश्च वंशाभावमुपागतः॥ २१॥
मध्यमो रामचरणो गुणैर्वहुभिरन्वितः।
व्यवहर्त्तोपाधियुक्तो गोविन्दपुरसंस्थितः॥
स च हिजलीतमोलिप्तमहिषादलदेशतः।
लवणस्य तथा राज्ञः करादाने नियोजितः॥
कटकादिप्रदेशस्य महावज्जङ्गतस्ततः।
देवानीसञ्ज्ञकपदं प्राप्तवान् बहुमानितः॥
बहुलैर्वर्गिभिः सार्द्धं मेदिनीपुरमध्यतः।
सग्रामं तुमुलं कृत्वा रणमध्ये निपातितः॥२१॥
देवानरामचरणव्यवहर्त्तमहाशयात्।
समुत्पन्नास्त्रयः पुत्त्रा अशेषकुशलालयात्॥

विद्दत्तापाधियुक्तो रामसुन्दर आदिमः ।
स्थान्नौषधदानेन गणनीयः स चायिमः ॥
द्धकोटादिदेशे सोऽभवदध्यक्षसत्तमः ।
॥णिक्यचन्द्रदेवस्य मध्यमः पुण्यकृत्तमः ॥
द्धर्षिधरणीचन्द्रमाणे हिजरिहायने ।
ल्लीश्वरप्रसादेन सम्प्राप्तौ तौ शुभक्षणे ॥
रमाननामकलिपिं रायोपाधि तथैव च ।
न्सवानां सहस्र सादिपञ्चशतमेव च ॥ * ॥
नष्ठो नवकृष्णाख्यदेवो जातो गुणाकरः ।
मासीत् किलकिलारूपामरावत्यां पुरन्दरः ॥
रूपवान् धनवान् मान्यो वदान्यः पण्डिताश्रय. ।
कुलशीलादिसम्पन्नो गोष्ठीपतिमहाशयः ॥
सेषुसिन्धुशशांशमाने इंरेजिहायने ।
कोम्पानिना मुन्सिपदे नियुक्तोऽसौ शुभे दिने ॥
सोऽभवत् कारण तेषां बङ्गराज्यस्य शासने ।
ततः किलकिलापुर्य्यां वाणिज्यकार्य्यसाधने ॥
स्थितान् इंरेजनिचयान् नवावो बलमाश्रित. ।
सेराजद्दौलाभिधानो दूरीकृत्य गतस्ततः ॥
अथ तत्परवर्षे तु कर्णेल् क्लाइव् महावलः ।
आगत्य नवकृष्णेन मुन्सिना सहितः किल ॥
योद्धुं ययौ नवावेन सार्द्धं स्वबलसंवृतः ।
गत्वा पलाशिग्रामे स युद्धं कृत्वाजयत् तत ॥
धरणीरसवाजीन्दुमित इंरेजिवत्सरे ।
कासमालीखाननामा नवावोऽभूत्ततः पुरे ॥
स एवैरैजपञ्चीयान् प्रधानराजपूरुषान् ।
निहत्य साधयामास निखिलान् स्वमनोरथान् ॥
मेजर् आदम् ततः शीघ्र सार्द्धं तेनैव मुन्सिना ।
गत्वा उदयनालायां रण कृत्वा दुरात्मना ॥
विजित्य वलवन्तं त नवाव सेनया सह ।
निष्कण्टकमिदं राज्य कृतवान् स भयापह. ॥
णर्तुसिन्धुशशभृन्मितइंरेजिवत्सरे ।
भूत्वा गवर्णरो लार्ड क्लाइव् किलकिलापुरे ॥
मेत्य मुन्सिना सार्द्धं परामृश्य च विस्तर ।
फरालीखानसञ्ज नवाव मतिमत्तर ॥
इदेशस्य च सुवादारं कृत्वा ततः परं ।
जिफ्फर्जङ्गनामानमतिबुद्धिमतां वर ॥
नायेवसुवादारं चकार गुणसागर ।
संविंशतिलक्षन्तु मुद्राणां कृतवान् स्थिर ॥
शोर्य्यार्थं प्रत्यब्द ततः क्लाइव् गुणाकरः ।
मैव मुन्सिना सार्द्धं दिल्ली गत्वा च सत्वरः ॥
हालम्वादशाहेन नवावेन च धीमता ।
सुजाद्दौला नामकेन स सन्धिमकरोत् सदा ॥
अङ्काब्धिचन्द्रभूमाने हिजरिसंवत्सरे ततः ।
शौषालस्य द्वितीयाहे नवकृष्णाय तोषतः ॥
श्रीशाहालम्वादशाहो फर्मानाख्य लिपि मुदा ।
दत्तवान् यत्र लिखित दिल्लीशेन सुसम्पदा ॥
सहस्रपञ्चकञ्चैव मन्सवानां हि सादिनां ।
सहस्रत्रितयं वीर्य्ययुतानां शीघ्रगामिनां ॥
उत्तमं शिविकायान झालरेण सुशोभित ।
नकाराख्य वाद्ययन्त्रं ध्वज तोगेतिनामितं ॥
राजवाहादुरोपाधि मानवृद्धियशस्कर ।
कृपया दत्तवानस्मै बहुमानपुरःसरं ॥
सुजाद्दौला नवावस्य समीपात् राजयोग्यक ।
खेलातनामक प्राप्तो वसन भूषणादिक ॥
तस्मिन् वर्षे स भूपालो नवकृष्णोऽतिधीमते ।
नवद्दीपाधिपश्रीलकृष्णचन्द्राय भूभृते ॥
महाराजेन्द्रवाहादुरोपाधि मानवृद्धितः ।
दापयामास शाहालम् वादशाहसमीपतः ॥
ततः स सहितो लार्ड क्लाइवेन महात्मना ।
काशीधाम समागम्य बभूवासौ महामना ॥
महाराजोपाधिकश्रीवलवन्ताङ्कयेन च ।
स्थिहेन हि सुवे वाराणस्याः सुनियमं स च ॥
कृत्वा विश्वेश्वरस्याग्रे नाट्यमन्दिरमध्यत. ।
नवकृष्णेश्वर लिङ्गं स्थापयामास भक्तितः ॥
ततः पाट्नानामदेशे महाराजेन तत्र च ।
शेतावरायेण सह सुवे वेहारकस्य च ॥
कृत्वा सुनियम तत्र तेनैव सहितो हि सः ।
कलिकाताख्यनगरे समायातो गतालसः ॥
ततस्तुष्टमनाः क्लाइव् कोम्पानेर्दत्तवान् पदं ।
देवानीसंज्ञक तस्मै राज्ञे बहुलमानद ॥
रसर्तुसिन्धुभूमाने इंरेजिहायने पुनः ।
शाहालम्वादशाहस्य प्रागुक्तस्य महात्मन. ॥
समीपतः फर्मानाख्यलिपिमानीय यत्नतः ।
तस्मै राज्ञे ददौ प्रीत्या प्रीतये तस्य धीमत ॥
यत्रास्तीद विलिखित दिल्लीशेन सता स्वयं ।
मन्सवानां षट्सहस्रं सहस्राणां चतुष्टय ॥
सादिनाञ्च महाराजोपाधिमस्मै प्रदत्तवान् ।
एव सुवर्णघटितं पदकञ्च ददौ महान् ॥
यच्च मुद्रितपारस्यभाषयास्तीति वर्णित ।
इंरेजकोम्पानिकर्म्मोत्तमरूपेण साधित ॥
पश्यतो वादशाहस्य समीपात् सननामके ।
सप्ताशीत्यधिके चैव रुद्रसंख्यशतेऽब्दके ॥

राजोपाधिस्तथा वाहादुरोपाधिस्तथैव च ।
भूपालनवकृष्णाभिधानवाहादुराय च ॥
दातु दयाभवत् लार्ड क्लाइवस्य महामतेः ।
तन्मया सहित चिह्न कोम्पानिस्तन्महीभृते ॥
दत्त तथा दशविध खेलात वस्त्ररूपक ।
किरीट कुण्डल रत्नभूषां हारञ्च मौक्तिक ॥
फलकं करवालञ्च दण्ड चामरमुत्तम ।
मयूरपुच्छव्यजन घटीयन्त्र मनोरम ॥
हस्त्यश्व भाभरैर्युक्त शिविकायानमेव च ।
लार्ड क्लाइव् ददौ राज्ञे सदा हितकराय च ॥
एव सिपाहसञ्ज्ञाना नृणां तद्द्वारपालने ।
आज्ञा दत्त्वा तस्य हस्त गृहीत्वा तु वरासने ॥
हस्तिपृष्ठे समारोह्य पुर प्रेरितवास्तत ।
हस्त्यश्वपत्तिनिकरैर्व्वहुदीनैश्च सहित ॥
स च राजा रौप्यमुद्रां क्षिपन् मार्गेति हर्षतः ।
विवेश स्व पुर रम्य सर्व्वलोकै प्रशंसितः ॥
समुद्ररसवाजीन्दुमाने इंरेजिहायने ।
स लार्ड क्लाइवो मेस्तर् वार्लेष्टाय महात्मने ॥
राज्यभार समर्प्याथ स्वस्थाने प्रस्थितोऽभवत् ।
चकार च महाराजो देवानीकर्म्म पूर्व्ववत् ॥
तस्मिन् समये माता मृता विष्णोः पद गता ।
अनेकलक्षमुद्राभिस्तेनाद्या तत्क्रिया कृता ॥
ततः कोम्पानिसक्रान्त कर्म्म त्यक्त्वा स भूपतिः ।
पारमार्थिकचिन्तायां नियुक्तोऽभून्महामतिः ॥
अथ कोम्पानिना गिर्जानिर्म्माणार्थं प्रयाचितः ।
मूल्य विनार्थितां भूमिं दत्तवानतिमोदतः ॥
वसुसिन्धुमुनिक्षौणीमाने इंरेजिहायने ।
सुतानुट्यादिक ग्राम प्राप्तवानिह पत्तने ॥
तेनैव तस्य राज्यस्य धनिविज्ञानिमानिनः ।
प्रजा भूता हि वहुला एतन्नगरवासिनः ॥
समुद्रवसुभूमीन्दुमाने वङ्गाख्यकाव्दके ।
हेष्टिंस् गवर्णरश्चाकूलावर्द्धमानाभिधानके ॥
देशे तत्र महाराज साजाओलीतिनामके ।
कार्य्ये नियोजयामास स गत्वा तत्र देशके ॥
राज्यस्य शासनस्यैव राज्ञो रक्ष्यास्तथैव च ।
समयविषयस्यैव सुन्दर नियम स च ॥
कृत्वा राजकरान् सर्व्वानादाय वहुसत्कृत ।
खालिसानामके स्थानेऽर्पितवान् सुसमाहित ॥
एव रसवसुक्षौणीन्दुमे वङ्गाव्दवर्षत ।
महाराजाधिराजो यस्तेनसन्देतिभूषित ॥
चतुःसप्ततिसाहस्राधिकाष्टलक्षमुद्रिका ।

तथा सप्तशत मुद्राः सप्तविंशतिकाधिकाः ॥
ऋण कृत्वा महाभागो महाराजसकाशतः ।
राज्ञः कर राजकोषे प्रेषयामास यत्नत ॥
ततो गवर्णरस्यैव ह्यनुमत्यनुसारतः ।
खालिसासञ्ज्ञकात् स्थानात् महाराजोऽतिवाधित ॥
क्रमश क्रमशश्चैव मुद्रास्ता प्रतिवर्षतः ।
आदानमकरोत् राजाधिराजस्योपकारत. ॥
रामर्षिशशिभूमाने वङ्गसवत्सरे स च ।
श्रीमद्राधावल्लभस्य सेवनार्थं चिराय च ॥
दत्तवान् वल्लभपुर कृत्वा देवोत्तर मुदा ।
श्रीमन्नन्ददुलालस्य सेवार्थमपि सर्व्वदा ॥
आनरपुरेतिख्यातायां परगणायां प्रयत्नत ।
चारग्राम तथा देवोत्तर कृत्वा ददौ तत ॥
तथायद्वीपतः श्रीमद्गोपीनाथ मनोहर ।
विग्रह वल्लभपुरात् श्रीराधावल्लभ पर ॥
एवञ्च खड्दहग्रामात् श्रीश्यामसुन्दराह्वय ।
श्रीमन्नन्ददुलालाख्य शाँइवनाग्रामत स्वय ॥
स्वक पुर समानीय स राजा वहुयत्नत. ।
विधिवोधितरूपेण चिर ससेव्य संयतः ॥
नानाविधानलङ्कारान् मुक्तावज्रविभूषितान् ।
तापनीयान् मणिमयान् दत्त्वा प्रेरितवांश्च तान् ॥
पिपीतकाख्यद्वादश्या समाहूयाथ पण्डितान् ।
दानमानै पुरस्कृत्य दिग्विदिक्षु समाश्रितान् ॥
श्रीमद्गोपीनाथसंज्ञ श्रीगोविन्द तथा पर ।
विग्रह सप्रतिष्ठाप्याकरोदाराधन वर ॥
वेहालाग्राममारभ्य कुलपी यावदुत्तम ।
स स्वव्ययेन पन्थान कृतवान् सर्व्वत सम ॥
तथा स्वकीयपुरत पुरोऽतिशयविस्तृत ।
चकार राजपन्थान मञ्जुल सुपरिष्कृत ॥
नेत्राम्वराब्धिभूमाने शकसञ्ज्ञकहायने ।
कुलाचार्य्यान् वुधगणांश्चानीय स्वनिकेतने ॥
स च द्वाविंशपर्य्यायिमुख्याना वहुयत्नत ।
कुलीनानामेकयायीमकरोद्वहुरिदानत ॥
आम्नायाम्वरपञ्चेन्दुमानेऽसौ वङ्गवत्सरे ।
विहाय देहमगमत्पादाम्भोजयुग हरे ॥२१॥

रामसुन्दरदेवस्य राजख्यातियुतस्य च ।
अशेषगुणसम्पन्नाः पुत्रा जाता हि पञ्च च ॥
कृष्णमोहनदेवस्तु तेषां ज्येष्ठ प्रकीर्त्तित ।
व्रजमोहनदेवो य स धीमान् मध्यम स्मृतः ॥
गोपीमोहनदेवश्च तृतीयो भुवि विश्रुतः ।
भूपतेर्नवकृष्णस्य स एव दत्तक सुत ॥

सम्मानितः स च समादरतस्तत्समीपतः ।
राजार्हं हेमवसन सप्तकं सप्तरूपतः ॥
होमाख्यपक्षिपुच्छेन युक्त युग्म किरीटक ।
कुण्डलं मौक्तिक हार फलक करवालक ॥
यत् सदा भूपतीनां हि भूरिसम्भ्रमवर्द्धक ।
प्राप्तवांस्तत्तु दुष्प्राप्यं बहुसम्मानपूर्ब्बक ॥
अथेन्दुरसपक्षाङ्कमाने वङ्गाख्यहायने ।
यौरोद्वाहोपलक्षेण सभां कृत्वा शुभे दिने ॥
समाहूय कुलाचार्य्यान् कुलीनान् पण्डितान् स च ।
कायस्थानां चतुर्विंशपर्य्यायाणां तथैव च ॥
सुमुख्यानां कुलीनाना कनिष्ठानाञ्च सर्वश ।
एवं षड्भ्रातृजातानामेकयायी चकार सः ॥
तत्पत्रिकां कारिकाया पुस्तकञ्चापि मुद्रित ।
कुलीनघटकादिभ्य. कृत्वा तेन समर्पित ॥
पाठशालाध्यापनाय ग्रन्थनिर्म्माणहेतुत. ।
स्कुलवुक् सोसाइटीनाम या सभास्मिन् प्रदेशतः ॥
स तदर्थं नीतिकथा बालाशिक्षादिपुस्तक ।
कृतवान् इकमते आग्जार् वृत्तायुर्व्वेदवाचक ॥
पुस्तं पारस्यभाषात इङ्रेजीभाषया पुनः ।
अनुवाद्य ग्रेटव्रटनदेशे राज्ञो महात्मन ॥
स च राइयल् एसियाटिक् समाजे प्रेरयत्तत. ।
तत्र मुद्राङ्कितं कृत्वा तत्शतं परिमाणत. ॥
अनुवादकसान्निध्ये तस्यैव दर्शनार्थतः ।
कृपया प्रेषयामासुस्तत्सद'स्या प्रयत्नतः ॥
तथाङ्क वव्ययायासकालसम्पादनीयक ।
शब्दकल्पद्रुमाख्याभिधानस्य सप्तकाण्डक ॥
परोपकृतये कृत्वा गुणिभ्योऽभवदर्पिता ।
यत्प्राप्यालोक्य सन्तुष्टा. सर्व्वदेशीयपण्डिताः ॥
प्रत्येके प्रेरयामासु सुख्यातिपत्रिकादिक ।
विशेषतो दिनेमारराज्येशोहेमहारकं ॥
स्वीयास्यचिह्नसयुक्तपदकोत्तमधारक ।
प्रीत्या सम्प्रेषयामास राज्ञोऽर्थे मान्दायक ॥
पुनस्तदभिधानस्य परिशिष्टमतिश्रमात् ।
निर्म्माय मुद्रित तेन प्रदानार्थं बहुव्ययात् ॥ २४ ॥

अत्रैव कथयामीम इतिहास पुरातन ।
सङ्क्षेपेण च तद्राज्ञो लोकविस्मयकारण ॥
नागवेदाष्टभूमाने इङ्रेजाब्दे हि वैरिणा ।
टाकीग्रामनिवासेन केनचित् ख्यातमुन्सिना ॥
दुष्टेनाभीष्टसिद्ध्यर्थं दण्डपारुष्यसम्मके ।
विवादस्य परे मान्यजनानां मान्नाशके ॥
कारितो मिथ्याभियोगस्तस्य निर्द्दोषभूपतः ।
ऊख्तीग्रामस्य मेजिष्ट्रेट् नामकेनाविचारतः ॥
पोलिसस्सुपरिण्टेनडेण्ट्सम्मकस्य समीपतः ।
क्रुधा तन्मिथ्यापवादः पत्रेण प्रकटीकृतः ॥
तेन सेक्रेटरिद्वारा गवर्णराय वेदितः ।
सोऽपि तैर्ब्बहुधा चेष्टां कृतवान् तद्दमार्थतः ॥
किन्तु सेशन्जजाख्यस्य प्राड्विवाकस्य धीमतः ।
अतिसूक्ष्मविचारेण राजा निर्द्दोषता गतः ॥
तस्माद्विपक्षपक्षाणां क्रूराणाञ्च विशेषतः ।
तेषामुद्यमभङ्गेन लज्जाधिक्यमजायत ॥
तेन सर् हर्वर्ट मेडाक् डेपिउटी गवर्णर ।
स्नेहेनाक्लिन्नहृदयः सदयस्यातिसत्वरः ॥
आह्वानार्थं तस्य राज्ञः प्रेषयामास पत्रक ।
स चानीय स्वभवने तस्य सम्मानपूर्ब्बक ॥
सान्त्वयित्वा जयात्तस्मै धन्यवाद प्रदत्तवान् ।
एव गवर्णरो जेन्रेल् लार्डडेल्हौसिरात्कवान् ॥
स्वदेशयानसमये सभामध्येऽतिहर्षितः ।
तद्राज्ञो दक्षिणं हस्त गृहीत्वातिप्रयत्नतः ॥
लार्डेन च तथा लेडी केनिङ्गेन सदोत्सुकः ।
साक्षात् त कारयामास मानिनां मानवर्द्धकः ॥
पूर्ब्बोक्तमिथ्याभियोगे दण्डार्हकरणाय च ।
उद्योगजन्यदोषस्याप्यकरोत् चालन स च ॥
स तु मुन्सी पुनरपि दण्डपारुष्यवादतः ।
फरासडाङ्गानगरे पलायित्वा मृतस्ततः ॥
राजकृष्णस्य नृपतेर्जाता वसुमिताः सुताः ।
शिवकृष्णो नृपो ज्येष्ठो यस्यास्ति शिवतुल्यता ॥
रूपवान् गुणवांश्चापि कालीकृष्णस्तु मध्यमः ।
दयालुर्बुद्धिमान् मान्यो धार्म्मिको मानवोत्तमः ॥
इङ्रेजीभाषया सोऽपि महानाटक नामक ।
तथा रसलश्चेत्याख्यमि रेजानाञ्च पुस्तक ॥
वङ्गीयभाषया चैवानुवादमकरोत्ततः ।
राजवाहादुरोपाधि प्राप्तो गवर्नमेण्टतः ॥
देवीकृष्णोऽतिसरलो देवभक्तदृतीदकः ।
अपूर्ब्बगुणसयुक्तोऽपूर्ब्बकृष्णस्तुरीयकः ॥
देवान् कुडर् नामधेय ग्रन्थं स पोर्दुभाषया ।
निर्म्माण कृतवान् सोऽपि निजायासव्ययेच्छया ॥
ततो माधवकृष्णस्तु सुशीलः पुत्रवर्ज्जितः ।
षष्ठमो देवताभक्तः सोऽल्पे वयसि स स्थित ॥
कृतवान् स च वेतालपञ्चविंशतिनामक ।
ग्रन्थं पारस्यभाषातोऽनुवाद-यत्नपूर्वकं ॥
षष्ठः कमलकृष्णस्तु दैवे पैत्रे सदा रत. ।
कार्य्ये बहुगुणोपेतस्तथा पण्डितमण्डितः ॥

एवं गङ्गासागरयोः सङ्गमे तेन निर्म्मितं ।
श्रीमत्कपिलदेवस्य मन्दिरं सुपरिष्कृत ॥
तुलापुरुषदानञ्च श्रीमद्भागवतस्य च ।
पारायण वागवाजारस्य घट्टे तथैव च ॥
शिवस्य स्थापनं मात्रा कारयामास सोत्सुकः ।
बहुवित्तव्ययेनैव कुलकीर्त्तिविवर्द्धकः ॥
नरेन्द्रकृष्णेतिसंज्ञो यः सुतः स तु सप्तमः ।
रूपवान् गुणवांश्चैव नरेन्द्रेण पुनः समः ॥
स च डेपिउटीमेजिष्ट्रेट् बभूव सदाशयः ।
यो हि यादवकृष्णस्तु कनिष्ठोऽतिदयामयः ॥
तेन देवान् सोशफकाख्य पुस्तकञ्चोर्दुभाषया ।
निर्म्माय मुद्रितं तच्च कृत्वा दत्तं निजेच्छया ॥
गयाधामस्थतः सोऽपि पुत्रहीनोऽमृतं गत. ।
चन्द्रेषुपञ्चभूमाने वङ्गसंज्ञकवर्षतः ॥
राजराधाकान्तदेवसाहाय्येन मुदान्वितैः ।
स्वपर्य्यायकुलीनानामेकयायी कृता च तैः ॥२४॥
श्रीराधाकान्तदेवस्य राजवाहादुरस्य च ।
त्रयः सुताः सिद्धगोष्ठीपतयः स्वकुलेषु च ॥
यतो गोष्ठीपतेः पुत्रा दौहित्रास्च विशेषतः ।
तेषां ज्येष्ठः श्रीमहेन्द्रनारायण इतीरितः ॥
देवब्राह्मणभक्तः स बुद्धिमांश्च गुणान्वितः ।
मध्यमः श्रीलराजेन्द्रनारायण इति श्रुत ॥
धार्म्मिकः सत्यवादी स कर्म्मदक्षश्च सत्तमः ।
यस्तु श्रीदेवेन्द्रनारायणो देवः स चान्तिमः ॥
व्यवहारज्ञानयुतः प्रतापादिसमन्वितः ।
मन्त्रणादाननिपुणो धीमान् धीमद्भिरादृत. ॥
एते भारतवर्षीयगवर्णरसमाजतः ।
तत्र यानस्याधिकारं कुमारोपाधिकं ततः ॥
पञ्चप्रकार वसनं भूषणञ्च मनोरमं ।
त्रयः सहोदराः सर्व्वे प्रत्येके लेभिरे सम ॥२५॥
जाताः पुत्रास्त्रयः श्रीमत्शिवकृष्णस्य भूस्पृतः ।
तेषां श्रीयुतभूपेन्द्रकृष्णो ज्येष्ठः प्रकीर्त्तितः ॥
चत्वारस्तनयाः श्रीलकालीकृष्णस्य भूपतेः ।
तेषां ज्येष्ठः श्रीहरेन्द्रकृष्ण इत्यभिधीयते ॥
बभूव यो डेपिउटीमेजिष्ट्रेटिपदे स्थितः ।
श्रीदेवीकृष्णदेवस्य तनयौ द्वौ च धीमतः ॥
श्रीमदानन्दकृष्णो यस्तयोर्ज्येष्ठः स च स्मृतः ।
श्रीयुतापूर्व्वकृष्णस्य चत्वारस्तनयास्ततः ॥
श्रेष्ठो ज्येष्ठः श्रीकुमारकृष्णेतिख्यातिसंयुतः ।
श्रीमन्नरेन्द्रकृष्णो यः सम्भूतास्तस्य देहतः ॥
त्रयः पुत्रास्तेषु मध्ये ज्येष्ठपुत्रोऽभवत् पुनः ।
श्रीमद्व्रजेन्द्रकृष्णेति नाम्ना ख्यातः सुलक्षणः ॥२५॥
राजनारायणस्यैव देवोपाधियुतस्य च ।
पुत्रोऽभवज्जगत्कृष्णनामेदानी मृतः स च ॥
श्रीनारायणदेवस्य त्रयः पुत्रा गुणैर्युता. ।
तेषां ज्येष्ठः श्रीप्रसन्ननारायण इति श्रुतः ॥
गवरन्मेण्टस्य तोशाखानायां प्रथमं स हि ।
अध्यक्षोऽभूत्तत्र कर्म्मनिर्व्वाहकरणेन हि ॥
तस्मै गवर्णरो लार्डहार्डिञ्जः कृपयान्वितः ।
रायवाहादुरोपाधिं दत्तवानतितोषतः ॥
ततो मुरशिदावादे नवावस्य समीपतः ।
नेजामतस्य देवानी प्राप्तवान् वहुभाग्यतः ॥
तत्रापि च नवावस्य सन्निधौ लब्धवानय ।
राजवाहादुरोपाधिमेकान्तमानतः स्वयं ॥२५॥
गोपालकृष्णदेवस्य पुत्राश्चत्वार एव तु ।
श्रीलश्रीकृष्णदेवो यः सर्व्वेषामग्रजः स तु ॥
श्रीमद्गोकुलकृष्णस्य तनयौ द्वौ महात्मन ।
श्रीमन्नृपेन्द्रकृष्णस्तु ज्येष्ठोऽतिनन्दिवर्द्धनः ॥२५॥
श्रीमन्महेन्द्रादिनारायणदेवस्य धीमतः ।
नाद्यापि तनयो जातो ग्रहवैगुण्यदोषतः ॥
तथा श्रीयुतराजेन्द्रनारायणस्य कायतः ।
श्रीमद्गिरीन्द्रादिनारायणः पुत्रो व्यजायत ॥
एवं श्रीयुक्तदेवेन्द्रनारायणशरीरतः ।
संजातश्च श्रीव्रजेन्द्रनारायणेतिसञ्ज्ञितः ॥२६॥
श्रीमद्भूपेन्द्रकृष्णस्य पुत्रो जातोऽतिसुन्दरः ।
श्रीजितेन्द्रियकृष्णेतिख्यातियुक्तः प्रियङ्करः ॥
श्रीमद्धरेन्द्रकृष्णस्य तनयश्चातिशोभनः ।
श्रीमद्वरेन्द्रकृष्णोऽग्रजातः सरसिजाननः ॥२६॥
जगत्कृष्णस्यात्मजस्तु ज्येष्ठोऽभूदतिशीलवान् ।
श्रीमत्तारणकृष्णेतिनाम्ना ख्यातोऽतिबुद्धिमान् ॥
श्रीलप्रसन्नादिनारायणस्य सुत उत्तमः ।
श्रीमद्भूपेन्द्रादिनारायणः शशधरोपमः ॥२६॥
इत्येकादिकषड्विंशपुरुषान्तातिनिर्म्मला ।
देववंशावली या सा समाप्ता मौलिकातुला ॥

# वर्णमाला।

| नागरी। | English | বাঙ্গালা। | ଓଡ଼ିଆ। |
|---|---|---|---|
| अ | a | অ | ଅ |
| आ (ा) | á | আ (া) | ଆ (ା) |
| इ (ि) | i | ই (ি) | ଇ (ି) |
| ई (ी) | í | ঈ (ী) | ଈ (ୀ) |
| उ (ु) | u | উ (ু) | ଉ (ୁ) |
| ऊ (ू) | ú | ঊ (ূ) | ଊ (ୂ) |
| ऋ (ृ) | ri | ঋ (ৃ) | ଋ (ୃ) |
| ॠ (ॄ) | rí | ৠ (ৄ) | ୠ (ୄ) |
| ऌ (ॢ) | lri | ঌ (ৢ) | ଌ (ୢ) |
| ॡ (ॣ) | lri | ৡ (ৣ) | ୡ (ୣ) |
| ए (े) | e | এ (ে) | ଏ (େ) |
| ऐ (ै) | ai | ঐ (ৈ) | ଐ (ୈ) |
| ओ (ो) | o | ও (ো) | ଓ (ୋ) |
| औ (ौ) | au | ঔ (ৌ) | ଔ (ୌ) |
| ं | ṅ or ṁ | ং | ଂ |
| | h | ঃ | ଃ |
| क | k | ক | କ |
| ख | kh | খ | ଖ |
| ग | g | গ | ଗ |
| घ | gh | ঘ | ଘ |
| ङ | n | ঙ | ଙ |
| च | c' | চ | ଚ |
| छ | c'h | ছ | ଛ |
| ज | j | জ | ଜ |
| झ | jh | ঝ | ଝ |

| नागरी। | English | বাঙ্গালা। | ଓଡ଼ିଆ। |
|---|---|---|---|
| ञ | n | ঞ | ଞ |
| ट | ṭ | ট | ଟ |
| ठ | ṭh | ঠ | ଠ |
| ड | ḍ | ড | ଡ |
| ढ | ḍh | ঢ | ଢ |
| ण | n | ণ | ଣ |
| त | t | ত | ତ |
| थ | th | থ | ଥ |
| द | d | দ | ଦ |
| ध | dh | ধ | ଧ |
| न | n | ন | ନ |
| प | p | প | ପ |
| फ | ph | ফ | ଫ |
| ब | b | ব | ବ |
| भ | bh | ভ | ଭ |
| म | m | ম | ମ |
| य | y | য | ଯ |
| र | r | র | ର |
| ल | l | ল | ଲ |
| व | v | ব | ଵ |
| श | ś | শ | ଶ |
| ष | sh | ষ | ଷ |
| स | s | স | ସ |
| ह | h | হ | ହ |
| क्ष | ksh | ক্ষ | କ୍ଷ |

# शब्दकल्पद्रुमः ।



अ, अकारः । आद्यस्वरवर्णः । अस्योच्चारणस्थानं कण्ठः । स तु ह्रस्वो दीर्घः प्लुतश्च भवति । इति व्याकरणं ॥ अस्य लेखनप्रकारो यथा,—

"दक्षतः कुण्डली भूत्वा कुञ्चिता वामतो गता ।
ततोर्द्धसङ्गता रेखा दक्षोर्द्धा तासु शङ्कर ॥
विधिर्नारायणश्चैव सन्तिष्ठेत् क्रमतः सदा ।
अर्द्धमात्रा शक्तिरूपा ध्यानमस्य च कथ्यते ॥"

इति वर्णोद्धारतन्त्रं ॥ अस्य तत्त्वं यथा,—

"शृणु तत्त्वमकारस्य अतिगोप्यं वरानने ।
शरच्चन्द्रप्रतीकाशं पञ्चकोणमयं सदा ॥
पञ्चदेवमयं वर्णं शक्तित्रयसमन्वितं ।
निर्गुणं त्रिगुणोपेतं स्वयं कैवल्यमूर्त्तिमान् ॥
विन्दुतत्त्वमयं वर्णं स्वयं प्रकृतिरूपिणी" ।

इति कामधेनुतन्त्रं ॥ अस्य पर्य्यायः ।

"अ श्रीकण्ठो मातृकाद्योऽनन्तो विष्णुरनुत्तरः" ।

इति वीजवर्णाभिधानं ॥ अन्यच्च ।

"अः श्रीकण्ठः सुरेशश्च ललाटश्चैकमात्रिकः ।
पूर्णोदरी वृष्टिमेधौ सारस्वतः प्रियम्वदः ॥
महाश्राद्धी वासुदेवो धनेशः केशवोऽमृतं ।
कीर्त्तिर्निवृत्तिर्व्वागीशो नरकारिर्हरो मरुत् ॥
ब्रह्मा वामाद्यजो ह्रस्वः करसुः प्रणवाद्यकः" ।

प्रणवाद्यावयव इत्यर्थः ।

"ब्रह्माणी कामरूपश्च कामेशी वासिनी वियत् ॥
विश्वेशः श्रीविष्णुकण्ठौ प्रतिपत्तिथिरश्विनी ।
अर्कमण्डलवर्णाद्यौ ब्राह्मणः कामकर्षिणी" ॥

इति वर्णाभिधानतन्त्रं ॥

अ, ञ, अभावः । अल्पः । निषेधः । अनुकम्पा । इति मेदिनी । (नञोऽयमकारः षड्विधान् नञर्थान् बोधयति । यथा,—

"तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता ।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्त्तिताः" ॥

इति । सादृश्ये यथा—अब्राह्मणः ब्राह्मणसदृश इत्यर्थः । अभावे यथा—अभोजनं भोजनाभावः । अन्यत्वे यथा,—पटः अघटः, पटः घटभिन्न इत्यर्थः । अल्पत्वे यथा—अनुदरी कन्या अल्पोदरी इत्यर्थः । अप्राशस्त्ये यथा,—अधनं धर्म्मधनं, धर्म्मधनम् अप्रशस्तधनम् इत्यर्थः । विरोधे यथा—अधर्म्मः परापकारः, परापकारः धर्म्मविरोधी इत्यर्थः ।)

अः, पुं, (अतति सर्व्वं व्याप्नोति इति अततेर्डः) विष्णुः । इति मेदिनी ।

"अकारो विष्णुरुद्दिष्ट उकारस्तु महेश्वरः ।
मकार उच्यते ब्रह्मा प्रणवेन त्रयो मताः" ॥

इति दुर्गादासधृतवचनं । (स्त्री । ब्रह्म ।, यथा,—अ इ उ ए ओ ओम् कलाश्च मूलं ब्रह्म इति कीर्त्तितम्, इति अग्निपुराणम् ।)

अनृणी, [न्], त्रि, (न ऋणी, नञ्समासः । अत्र अशब्दो न नञ् जातः, तथात्वे अनृणी इत्येव स्यात् । अपितु स्वप्रकृतिरेव ततश्च अञ्मात्रनिपातनात् नात्र सन्धिरिति ज्ञेयम् ।) अनृणी । ऋणग्रस्तः । अधारी । यथा,—

"दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति यो नरः ।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते" ॥

इति महाभारतं ।

अंश, त् क विभाजने । अंशकरणे । इति कविकल्पद्रुमः । तालव्योपधः । विभाजन इति भाज त् क तु पृथक्कृत्या इत्यस्य रूपं । अंशयति अंशापयति धनं वणिक् । इति दुर्गादासकृतधातुदीपिका ॥

अंशः, पुं, (अंश विभाजने, अदन्तचुरादिः । कर्म्मणि घञ् ।) विभाजनं । तत्पर्य्यायः । भागः २ । वण्टकः ३ । इत्यमरः ॥ विभागः ४ भक्तिः ५ । इति जटाधरः ॥ अंसशब्दो दन्त्यसान्तोऽपि । अंशास त् क विभाजने इति कविकल्पद्रुमदर्शनात् । स्कन्धः । इति विद्याविनोदादयः ॥ (वस्त्वेकदेशः । रिक्थविभागः । चतुर्थभागः । भाज्याङ्कः । रविमूर्त्तिविशेषः । आदित्यविशेषः, यथा,—

"धाता मित्रोऽर्य्यमा शक्रो वरुणस्त्वंश एव च ।
भगो विवस्वान् पूषा च सविता दशमस्तथा ॥
एकादशस्तथा त्वष्टा द्वादशो विष्णुरेव च ।
जघन्यजस्तु सर्व्वेषामादित्यानां गुणाधिकः" ॥

इति महाभारतम् । वृत्तस्य षष्ट्यधिकत्रिशततमभागः । यदुवंशीयः नृपविशेषः, यथा,—ततः कुरुवत्सः तस्य अनुरथः ततः पुरुहोत्रो जज्ञे ततश्च अंश इति ।)

अंशकं, क्ली, दिनं । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अंशकः, पुं, (अवश्यमंशं हरति इति अंशं हारीति कन् ।) ज्ञातिः । दायादः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (अल्पांशः । अल्पार्थे कन् ।)

अंशभाक्, [ज्], त्रि, (अंशं भजते इति अंश + भज् + ण्विः ।) अंशी । (दायादः) यथा । बौधायनः ।

"अवन्तीष्वनिरुद्धास त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
प्रातरुत्थाय कर्त्तव्यं देवर्षिपितृतर्पणं" ॥
निरुद्धासु न कुर्व्वीरन्नंशभाक् तत्र सेतुकृत् ।

इति प्रायश्चित्ततत्त्वं ॥

अंशलः, त्रि, (अंशः प्रशस्तस्कन्धः अस्ति अस्य इति अंश + लच् ।) अंसलः । बलवान् । इत्यमरटीकायां रमानाथः ॥ (प्रशस्तस्कन्धविशिष्टः)

अंशी, [न्], त्रि, (अंशोऽस्यास्तीति अंश + इनि ।) अंशयोग्यः । वण्टकविशिष्टः । भागी । यथा याज्ञवल्क्यः ।

"विभागश्चेत् पिता कुर्य्यात् स्वेच्छया विभजेत् सुतान् ।
ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्व्वे वा स्युः समांशिनः" ॥

इति । सति तु पितरि मातुर्धनानधिकारात् पुत्राणां नांशिता । एवं धनिनः पौत्रस्वत्वोपरमे तदंशमात्रे प्रपौत्राणामंशिता । इति दायतत्त्वं ॥

अंशुः, पुं, (अंशयति इति अंश विभाजने । मृगय्वादित्वात् कुः ।) किरणः ॥ प्रभा ॥ इति मेदिनी ॥ वेशः ॥ इति धरणी ॥ सूत्रादिसूक्ष्मांशः इति हेमचन्द्रः ॥ वेगः ॥ सूर्य्यः ॥ इति विश्वः (ऋषिविशेषः । लतावयवः । सोमलतावयवः भागः ।)

अंशुकं, क्ली, (अंशून् कायति । कै शब्दे । आतइति कः । यद्वा अंशुभिः काशते । काश दीप्तौ अन्येष्वपीति डः ।) वस्त्रमात्रं । सूक्ष्मवस्त्रं ॥ उत्तरीयवस्त्रं ॥ इति मेदिनी ॥ शुक्लवस्त्रं ॥ इत्यमरटीकायां रमानाथः ॥ (अधोवस्त्रं ।) पत्रं । तेजपात इति भाषा । इति राजनिर्घण्टः ॥

अंशुधरः, पुं, (अंशूना धरः । धरति इति धरः पचाद्यच् ।) सूर्य्यः ॥ इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अंशुमत्फला, स्त्री, (अंशुमन्ति सूक्ष्मावयववन्ति फलानि अस्याः । अंशुमानिव फलानि अस्याः इति वा अजादित्वात् टाप् ।) कदलीवृक्षः । इत्यमरः ॥

अंशुमती स्त्री, (अंशवः सन्ति अस्याः । मतुप् ङीप् च । अंशुमत्याः फलं मूलञ्च अंशुमतो । अनुदात्तादेश्चेति अञ् । फलपाकमूलेषु इति लुपि युक्तवद्भावः ।) शालपर्णीवृक्षः ॥ इत्यमरः ॥ (परदेवता ।)

अंशुमान् [त्] पुं, (अंशवो विद्यन्ते अस्य इति तदस्यास्तीति मतुप् ।) सूर्य्यः ॥ इति त्रिकाण्डशेषः ॥ असमञ्जपुत्रः सूर्य्यवंशीयराजविशेषः । यथा ।

"सगरस्यासमञ्जस्तु असमञ्जस्यांशुमान् ।
दिलीपोंऽशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः"

इति रामायणे बालकाण्डे ७० सर्गः ॥ सूर्य्यवंशीयासमञ्जोराजपौत्र । यथा,—

"ततस्त्वकारासमञ्जा गङ्गानयनकारणं ।
लक्षवर्षं तपस्तप्त्वा ममार कालयोगतः ॥
दिलीपस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणं ।
तपः कृत्वा लक्षवर्षं ययौ लोकान्तरं नृपः ॥
अंशुमांस्तस्य पुत्त्रोऽभूद्गङ्गानयनकारणं ।
तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥
भगीरथस्तस्य पुत्त्रो महाभागवतः सुधीः ।
तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः" ॥

इत्यादि ब्रह्मवैवर्त्ते प्रकृतिखण्डे ८ अध्याय ॥ (विश्वव्यापिप्रकाशः परमात्मा ।) अंशुयुक्ते त्रि ॥ लोमलतया अवयवविशिष्टः ।)

अंशुमाली, [न्] पु, (अंशूनां माला अस्ति अस्य इति । व्रीह्यादित्वात् इनि ।) सूर्य्यः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (आदित्य इवांशुमाली चचार, इति विष्णुपुराणम् ।)

अंशुल, पुं, (अंशुः विद्याज्योतिः अस्ति अस्य । इति । अंशु+लच् ।) चाणक्यमुनिः । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अंशुहस्त, पु, (अंशुरेव हस्तः यस्य सः ।) सूर्य्यः । इति जटाधर ॥

अंस, त् क विभाजने । अंशकरणे । इति कविकल्पद्रुम ॥ दन्त्योपधः । विभाजन इति भाजत् क तु पृथक्कृत्यां इत्यस्य रूप । अंसयति अंसापयति धनं वणिक् । इति दुर्गादासः ॥

अंसः, पु, स्त्री, (अंस्यते समाहन्यते । अंस समाघाते । घञ् । यद्वा अमति अम्यते वा भारादिना । अम गतौ । अमे सन् ।) स्कन्ध । इत्यमरः ॥ विभागे पुं । इति विश्वो हेमचन्द्रश्च ॥ (अन्यत् सर्व्वम् अंशशब्दे द्रष्टव्यम् ।)

अंसकूटः पु, (अंसे स्कन्धे कूटइव इति ।) ककुद् । षाँड़ेर झूँट इति भाषा । इति हेमचन्द्र ॥

अंसल, त्रि, (अंसोऽस्यास्तीति । वत्सांसाभ्यां कामबले इति लच् ।) बलवान् । इत्यमरः ॥

अंहः, [स्] स्त्री, (अमति गच्छति प्रायश्चित्तादिना । अम गत्यादिषु । अमे हुक् च इति असुन् हुगागमश्च । अमति गच्छति अधोऽनेन वा । अहेरसुना सिद्धे अमेरसुनि अंह इति मा भूदिति अमे हुक् चेति सूत्र । तथा च—

"स्यान्मध्योऽश्मचतुर्थत्वमंहसोरंहसस्तथा" ।

इति द्विरूपकोष । एवञ्च 'दत्ताधांः सिद्धसङ्घैर्विदधतु घृणयः शीघ्रमंहोविघातम्' इति सूर्य्यशतके पाठः अनुप्रासरसिकानां प्रामादिक इति वदन्ति ।) पाप । इत्यमरः ॥ (दुःख । विघ्न । स्वधर्म्मत्यागः ।)

अंहतिः, स्त्री, (हन्ति दुरितमनया । हन्तेरंहच इति अतिः ।) दान । इत्यमर ॥ रोगः ॥ त्यागः । इति मेदिनी ॥

अंहती, स्त्री, (हन्तेरंह च इति अति, बह्वादित्वात् ङीष् ।) दान । इत्यमरटीकासारसुन्दरी ॥

अंहितिः, स्त्री, (अंह्+अति । अंहादेश इडागमश्च ।) दान । इत्यमरटीकायां रायमुकुटः ॥

अङ्घ्रिः, पुं, (अहि+क्रिन् । वङ्क्यादयश्च इति उणादिसूत्रम् ।) पादः ॥ वृक्षमूल । इत्यमरः ॥

अङ्घ्रिपः, पुं, (अङ्घ्रिभिः पिबति इति । पा पाने, सुपीति योगविभागात् कः । वृक्ष । इति हलायुध ॥

अङ्घ्रिस्कन्ध, पु, (अङ्घ्रिः पादः । तस्य स्कन्ध इव ।) गुल्फ । (कुर्च्चशिरः ।) इति हेमचन्द्र ॥

अक, म वक्रगतौ । कुटिलगमने । इति कविकल्पद्रुमः ॥ म अकयति अकति सर्पः । इति दुर्गादासः ॥

अक, इ क लक्षणे । इति कविकल्पद्रुम । लक्ष्म चिह्नयुक्तकरणं । इ क अङ्कयति वस्त्रं रजक । नोपधपाठेऽपि णेर्नित्यत्वाडसुड्नलोपोऽमावित्यस्याप्राप्तौ यगादौ अङ्क्यते इत्यादौ सिद्धे इदित् पाठस्तुरादेर्णेरनित्यत्वज्ञापनार्थं । तेन अङ्कतीत्यपि स्यात् । तथाच वोपदेव ।

"सिद्धे नित्यणिजन्तत्वान्नित्यनुन्त्वे कितामिदित् ।
णिजनित्यत्वबोधार्थं न दृष्टोऽनुम्विधि क्वचिदिति" ॥

अस्यार्थः । कितां कानुबन्धानां नित्यणिजन्तत्वान्नित्यञ्यन्तत्वान्नित्यनुन्त्वे नित्यनकारवत्त्वे सिद्धे इदित् इदनुबन्धकरणं णिचो णेरनित्यत्वबोधार्थं । किन्तु अनुम्विधिर्नकाराभाव क्वचिदपि न दृष्ट । इति दुर्गादास ॥

अक, इ ङ गत्यां । लक्षणे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ इ अङ्कते । ङ अङ्कते पुण्यतीर्थेषु रथयुग्मान्यशक्तितः । इति हलायुध ॥ इति दुर्गादासः ॥

अकं स्त्री, (न कं सुख । तद्विरुद्ध वा । नञ्समासः । नञो न लोपः ।) पाप । दुःख । इति मेदिनी ॥

अकचः, पु, (नास्ति कचः केशः यस्य सः ।) केतुग्रहः । इति हारावली ॥ वाच्यलिङ्गस्तु केशशून्ये ॥

अकथ्य, त्रि, न कथ्यः । नञ्समासः ।) अकथनीयः । अवक्तव्य ॥

अकनिष्ठः, पु, (न कनिष्ठ नञ्समासः । बुद्ध । इति शब्दरत्नावली ॥ (बहूनि शतसहस्राणि यावदकनिष्ठानां देवाना सन्निपतितान्यभूवन् इति ललितविस्तरः ।) कनिष्ठभिन्ने वाच्यलिङ्गः ॥

अकनिष्ठग पु, (अकनिष्ठ+गम्+ड ।) बुद्ध । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अकम्पितः, पुं, (न कम्पितः । नञ्समासः ।) बौद्धगणाधिपविशेष । इति हेमचन्द्र ॥ कम्परहिते वाच्यलिङ्ग ॥ (असन्दिग्धान् स्वरान् ब्रूयादविकृष्टानकम्पिताम् । इति ऋग्वेदीयप्रातिशाख्यसूत्रम् ।)

अकरणि, स्त्री, (न+कृञ् अनि ।) आक्रोशविशेष । शापः । यथा तस्याकरणिरेवास्तु । इत्यमरः ॥

अकरा, स्त्री, (न+कृञ्+अच् । स्त्रियां ङीप् ।) आमलकी । इति शब्दचन्द्रिका ॥ वाच्यलिङ्गस्तु कररहिते ॥

अकरुण, त्रि, (नास्ति करुणा यस्य इति ।) करुणाशून्यः । निर्दयः । अकृपः । यथा,—

"रघोर्वंशे कृताभकरुणा समुत्सारयति कः"

इति महानाटक ॥

अकर्कशः, त्रि, (न कर्कशः । नञ्समासः ।) काठिन्यरहित । कोमल इति हेमचन्द्र । (अकर्कशा अपरुषा । इति ललितविस्तर ।)

अकर्णः, त्रि, (नास्ति कर्णो यस्य सः ।) कर्णरहित । यथा,—

"अपाणिपादो जवनो गृहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः" ।

इति श्रीधरस्वामिकृतस्तुतिः ।) वधिर । इति हेमचन्द्रः ॥

अकर्त्तनः, पु, (न+कृत्+ल्युट् ।) वामनः । खर्व्व । इति जटाधरः ॥

अकर्त्तव्य, त्रि, (न+कृञ्+तव्य । न कर्त्तव्यं । नञ्समासः ।) अकरणीय । अकरणार्हं । अकार्य्यं । यथा,—

"अविरोधी भवान्वौ च सर्व्वमङ्गलमङ्गल ।
विरोधी नाशवीजञ्च सर्व्वोपद्रवकारणं ॥
अकर्त्तव्यो विरोधश्च दारुणैः क्षत्रियैः सह"

इति ब्रह्मवैवर्त्ते गणपतिखण्डे २८ अध्यायः ॥

अकर्त्ता, [ऋ] त्रि, (न कर्त्ता । नञ्समासः ।) अकारक । यथा,—

"चातुर्व्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म्मविभागश ।
तस्य कर्त्तारमपि मा विद्ध्यकर्त्तारमव्ययं" ॥

इति श्रीभगवद्गीतायां ४ अध्याये १३ श्लोकः (कर्म्मनिर्लिप्त साङ्ख्योक्त पुरुषः । कुकर्म्मकारी ।)

अकर्म्म, [न्] क्ली, (न कर्म्म । नञ्समासः ।) अकरणीयकार्य्यं । यथा,—

"किं कर्म्म किमकर्म्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥
कर्म्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यञ्च विकर्म्मण ।
अकर्म्मणश्च बोद्धव्य गहना कर्म्मणो गतिः ॥
कर्म्मण्यकर्म्म य पश्येदकर्म्मणि च कर्म्म य ।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्म्मकृत्" ।

इति श्रीभगवद्गीतायां ४ अध्याये १६ । १७ १८ श्लोकाः ॥ (अप्रशस्तं कर्म्म । कर्म्माभावः दुष्कर्म्म ।)

अकर्म्मण्य, त्रि, (न कर्म्मणि साधुः । न+कर्म्मन्+यत् । कर्म्मायोग्य । कार्य्यानर्ह । निष्कर्म्मण्य । अकेजुया इति भाषा । यथा,—

"षष्ठिदण्डात्मिकायाश्च तिथेर्निष्क्रमणे परे
अकर्म्मण्य तिथिमल विद्यादेकादशीं विना" ॥

इति तिथ्यादितत्त्व ॥

अकर्म्मा, [न्] त्रि, (नास्ति कर्म्म यस्य । बहुव्रीहिः । कार्य्याक्षम । निष्कर्म्मा । कार्य्यानुपयुक्तः ॥ (क्रियामन्दः । कुकर्म्मा । स्वेच्छाचारी ।)

अकर्म्मान्वितः, त्रि, (कर्म्मणा अन्वित न भवतीति । न+कर्म्मन्+अन्वितः ।) कुकर्म्मान्वितः । अकर्म्मविशिष्टः । दुष्कर्म्मयुक्तः ॥

अकल्कनः, त्रि, (नास्ति कल्कनं दम्भः यस्य सः । न+कल्कन ।) दम्भरहितः । सत्यवादीय । वीत-

दम्भः २। इति हेमचन्द्रः ॥ (शाठ्यरहितः। सरलः।) अकल्कल इत्यपि पाठः।

अकल्का, स्त्री, (नास्ति कल्कं अन्धकारमालिन्यं यस्याम् इति।) ज्योत्स्ना। इति शब्दचन्द्रिका ॥ वाच्यलिङ्गस्तु कल्करहिते ॥ (शाठ्यशून्य। दम्भशून्यः। सरल। निर्म्मल।)

अकल्पित', त्रि, (न कल्पित इति। नञ्समासः।) कल्पनारहितः। अकाल्पनिक। अकृत्रिम। अरचितः। (सत्य। प्रकृत'। अवितथ।)

अकल्यः, त्रि, (न कल्यं सुस्थ। नञ्समास।) रोगी ॥ (यथा,—

"अकल्यमालस्यविरविषमस्थक्रियाकुलान्।
... .. नाह्वाययेन्नृप" ॥

इति मिताक्षराधृतवचनम् ॥ असमर्थं। यथा,—

"अकल्यं स्वाङ्गचेष्टाया शकुन्त इव पञ्जरे"।

इति भागवते।) कल्यो निरामयः तत्र नञ्समासः ॥

अकल्याणा, स्त्री, (न कल्याणा। नञ्समासः।) अमङ्गलं। अशुभ ॥ (त्रि। कल्याणरहितः।)

अकस्मात्, अ, अतर्कित। हठात् १। तत्पर्य्यायः। सहसा २ सद्य' ३ सपदि ४ ततक्षणे ५ एकपदे ६। इति हेमचन्द्रः ॥ नञ्समस्तकिम्शब्दस्य पञ्चम्यन्तप्रयोगोऽयं। इति केचित् ॥

अकारण, त्रि, (नास्ति कारणं यस्य स। न+कारण।) कारणशून्य। निर्हेतु। अनिमित्त। यथा,—

"कुतः पुन' शश्वदभद्रमीश्वरे,
न चार्पितं कर्म्म यदप्यकारणम्"।

इति श्रीभागवतं ॥ (कारण विना। कारणाभाव'। यथा,—"कारणसामान्ये द्रव्यकर्म्मणा कर्म्माकारणमुक्तम्"। इति वैशेषिकसूत्रम्।)

अकारणगुणोत्पन्नगुणः, पु, (विना कारणगुणं उत्पन्ना जाता ये गुणा'। अकारणगुण+उत्पन्न+गुण।) स्वाभाविकगुणाः। न्यायमते विभुनिष्ठविशेषगुणाः यथा,—बुद्धिः १ सुख २ दुःख ३ इच्छा ४ द्वेषः ५ यत्न' ६ धर्म्म' ७ अधर्म्म ८ भावना ९ शब्दः १०।

("अतीन्द्रिया विभूनान्तु ये स्युर्वैशेषिका गुणाः।
अकारणगुणोत्पन्ना एते तु परिकीर्त्तिताः" ॥

इति भाषापरिच्छेदे। अकारणेति कारणगुणपूर्व्वका रूपादयो वक्ष्यन्ते। बुद्ध्यादयस्तु न तादृशाः। आत्मादे' कारणाभावात्।) इति सिद्धान्तमुक्तावली ॥

अकार्पण्य, स्त्री, (न कार्पण्यम्। नञ्समासः।) कृपणताराहित्य। यथा,—

"लोकादपि च दासत्वमदीनेनैव चात्मना।
अकृन्यहनि यत्किञ्चिदकार्पण्यं हि तत् स्मृतम्" ॥

इत्येकादशीतत्त्वम् ॥

अकार्य्यं, स्त्री, (न कार्य्यम्। नञ्समासः।) कार्य्याभावः। अकृत्यं। अकर्म्म। (दुष्कर्म्म। कुकार्य्यम्।) यथा,—

किमकार्य्यं कदर्य्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनां"।

इति श्रीभागवतं ॥

अकाल', पुं, (न काल', अप्रशस्त' कालो वा। नञ्समासः।) असमयः। अप्रशस्तकालः। यथायोग्यकालातिरिक्तसमयः। अशुद्धकाल'। यथा,—गुरोरस्तात् प्राक् वृद्धत्वे पञ्चदशाह'। तस्यान्ते द्वात्रिंशद्दिनं। तस्योदयात् परं बालत्वे पञ्चदशाह। गुर्व्वादित्ययोगे स्थितिकाल द्वात्रिंशद्दिनादि।

सिंहे गुरौ स्थितिकाल' सम्वत्सरस्थूलः। अस्य विशेष यदि माघपौर्णमास्यां मघानक्षत्रं प्राप्यते तदेव भाव्य। वक्रिगुरौ अष्टाविंशतिदिनं। पूर्व्वराशावनागतातिचारिगुरौ एकवर्ष'। अयमेव लुप्तसम्वत्सरः। पूर्व्वराशिगन्त्रतिचारिगुरौ पञ्चचत्वारिंशत् दिन। नीचस्थगुरोः स्थितिकाल सवत्सरस्थूल'। राहुयुक्तगुरोः स्थितिसमयः एकाब्द' स्थूल। भृगोर्मध्यास्तात् प्राक् वृद्धत्वे पञ्चदशाह। तस्य मध्यास्ते द्विसप्ततिदिन। तस्योदयात् परं बालत्वे दशाह'। एतत्त्रय शीघ्रास्तमुच्यते ॥ भृगोः पादास्तात् प्राक् वृद्धत्वे दशाहः। तस्य पादास्ते द्वादशाहः। तस्योदयात् पर बालत्वे दिनत्रय। एतत्त्रय वक्रास्तमुदित। मलमासे मासमेक ॥ भानुलङ्घितमासे क्षयमासे च तदेव ॥ भूकम्पाद्यद्भुते सप्ताह' ॥ पौषादिचतुर्मासे एकदिनचरणाङ्कितवर्षणे तद्दिन। दिनद्वयचरणाङ्कितवर्षणे दिनत्रय। दिनत्रयचरणाङ्कितवर्षणे सप्ताहः ॥ दक्षिणायने षण्मासाः ॥ श्रीहरिशयने चतुर्मास ॥ चन्द्रसूर्य्यग्रहणे कर्म्मविशेषे एकत्रिसप्तदिवानि ॥ इति ज्योतिषतत्त्व ॥

अकालज', त्रि, (अकाले जायते इति। अकाल+जन+ड।) अकालजातः। असमयोत्पन्नः। अपूर्णकालोद्भव। यथा,—

"अकालजन्तु विरसं न धान्यं गुणवत् स्मृतं" ॥

इति राजवल्लभ ॥

अकालजलदोदय, पु, कुज्झटी। इति शब्दमाला ॥ अकाले मेघानामुदय' ॥ यथा रघवंशे—

"यवनीमुखपद्मानां सेहे मधमद न स।
बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदय" ॥

अकालमेघोदय, पु, (अकाले य' मेघानाम् उदयः।) कुज्झटी। इति शब्दमाला ॥ अकाले मेघानामुदय ॥

अकिञ्चनः, त्रि, (नास्ति किञ्चन यस्य। मयूरव्यंसकादित्वात् बहुव्रीहिसमास'।) दरिद्र'। नास्ति किञ्चिदपि यस्य। इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा,—'अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदाम्' इति कुमारसम्भवे।)

अकिञ्चनता, स्त्री, (अकिञ्चनस्य भावः। अकिञ्चन+तल्।) अकिञ्चनस्य भावः। सा तु परिग्रहत्यागरूपयमविशेषः। इति हेमचन्द्र ॥

अकिल्बिष', त्रि, (नास्ति किल्बिषं यस्य। बहुव्रीहिः।) किल्बिषशून्य' पापरहितः। यथा,—

"न मां दोषेण सुग्रीव गन्तुमर्हस्यकिल्बिष"।

इति रामायणं ॥

अकीर्त्ति, स्त्री, (न कीर्त्ति। नञ्समासः।) अयश'। यथा,—

"अकीर्त्तिञ्चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययां।
सम्भावितस्य चाकीर्त्तिर्म्मरणादतिरिच्यते" ॥

इति श्रीभगवद्गीताया २ अध्याये ३४ श्लोकः ॥

अकीर्त्तिकरं, त्रि, (अकीर्त्तिं करोति जनयति इति। यद्वा कीर्त्तिकरं न भवतीति नञ्समासः।) अयशस्कर। यथा,—

"कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितं।
अनार्य्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्ज्जुन" ॥

इति श्रीभगवद्गीतायां २ अध्याये २ श्लोकः ॥

अकुतोभय, त्रि, (नास्ति कुतोऽपि भयं यस्य स। मयूरव्यंसकादिगणान्तर्गतः। न+कुत'+भय।) नास्ति कस्माद्भयं यस्य। निर्भयः। यथा। इच्छतामकुतोभयमिति भक्तिरसामृतसिन्धुः ॥

अकुप्यं, स्त्री, (न कुप्यं, कुप्यादन्यदित्यर्थं। नञ्समास'।) स्वर्णं। रूप्यं इति हलायुध ॥ यथा—कुरुनकुप्यं वसु वासवोपमः'। इति भारवि')।

अकूपार, पु, (न कूपार'। नञ्समासः। कु पृथिवीं पिपर्त्ति इति कूपारः। पृ पालनपूरणयो। कर्म्मणि अण्। अन्येषामपीति दीर्घ।) समुद्र। इत्यमरः ॥ कूर्म्मराजः पाषाणादि'। इति मेदिनी ॥ कमठः। इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अकूर्च्चं, पुं, (नास्ति कूर्च्चो कैतवं यस्य। बहुव्रीहि।) बुद्ध। इति त्रिकाण्डशेषः। कैतवशून्ये त्रि। (दम्भशून्ये)।

अकृत, त्रि, (न+कृ+क्त।) न कृतं। अनिष्पादित। यथा—

"कालातीतन्तु यत् कुर्य्यादकृतन्तद्विनिर्द्दिशेत्"

इति स्मृतिः ॥ (नित्यः। प्रमाणविषयः। (क्ली) मोक्ष'। कारणं। (स्त्री) प्रकृतिविशेष' यथा—"अपां निम्नदेशगमनादिलक्षणा प्रकृति' सा न केनचित्कृता"।)

अकृतज्ञः, त्रि, (न+कृत+ज्ञा+क। न कृतज्ञ इति नञ्समासः।) कृतघ्न'। हिताक्षर्चा उपकारामानी। उपकारहन्ता। यथा,—

"भजतोऽपि न वै केचिद्भजन्त्यभजतः कुतः।
आत्मारामाः पूर्णकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः" ॥

इति श्रीभागवत ॥

अकृतित्वं, स्त्री, (अ+कृतिन्+त्व।) अक्षमता अपटुता। कर्म्माकुशलत्वं। अयोग्यत्वं ॥

अकृती, [न्] त्रि, (न+कृती। नञ्समासः।) अकर्म्मक्षम'। कार्य्याकुशलः। क्रियास्वपटुतः।

अकृत्रिमं, त्रि, (करणात् जात' कृत्रिम। स न भवतीति नञ्समासः।) अकरणजं। स्वभावसिद्ध। अकरणजातं। यथा दक्षः।

"ऋतुर्ये च तथा मार्गे चाजावे स्वदमाहरेत्।
तिलपुष्पकुशादीनि स्नानचाकृत्रिमे जले" ॥

इत्याह्निकाचारतत्त्वं ॥ ॰ ॥ त्रिष्ठ। कालस्वन' ।

"पूर्व्वपदं समानोक्त प्रागुक्तकोऽथ सेवमेत्।

घोषयेत् पूर्व्वपक्षन्तु यावन्नोत्तरदर्शनं" ॥
स्वभावोक्तम् अकृत्रिमम्। इति व्यवहारतत्त्वं ॥ (अक्रियोत्पन्नः। नैसर्गिकः। अयत्नकृतः। यथा,—
"तदकृत्रिमसौहार्द्दमापत्स्वपि न मुञ्चति"।
इति हितोपदेशः।)

अकृपः, त्रि, (नास्ति कृपा यस्य सः।) कृपाशून्यः। निर्द्दयः। अकरुणः। यथा,—
"वनजौ वनजौ कृष्णस्त्वरामी सकृपोऽकृपः"।
इत्यनुष्टुबाचार्य्यः ॥

अकृपणः, त्रि, (न कृपणः। नञ्समासः।) कार्पण्यरहितः। दीनताशून्यः। यथा,—
"महता व्यसनं प्राप्तो दीनः कृपण उच्यते।
कुलेऽप्यकृपणो राम संभूतः सर्वकामदे" ॥
इति रामायणं ॥ (पुष्कलः। बहुलः। यथा,—
"भूशय्यां नवपल्लवैरकृपणैरुत्तिष्ठ यामो वयम्"।
इति वैराग्यशतके।

अकृष्णकर्म्मा, [न्] त्रि, (न कृष्णं मलिनं कर्म्म यस्य सः। न+कृष्ण+कर्म्मन्।) दुष्कर्म्मरहितः। निष्पापः। शुद्धाचारः। अकृष्णं निष्पापत्वात् शुक्लं कर्म्मास्य। इत्यमरटीकायां भरतः ॥

अकेश, त्रि, (नास्ति केशो यस्य। अल्पः अप्रशस्तो वा केशो यस्य सः।) केशरहितः। अल्पकेशयुक्तः अप्रशस्तकेशविशिष्टः ॥

अकैतव, क्ली, (न कैतवम्। नञ्समासः।) कैतवाभावः। अकपटता। अधूर्त्तता। अवञ्चना ॥

अकोट, पु, (न+कुट+भावे घञ्।) गुवाकः। इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अकोविद, त्रि, (न कोविदः। नञ्समासः।) अपण्डितः। मूर्खः ॥

अकौटिल्य, क्ली, (न+कौटिल्य। नञ् समासः।) कौटिल्याभावः। सरलता ॥

अक्का, स्त्री, (अकं दुःखं कायति स्मरति इति कै शब्दे।) माता। इति शब्दरत्नावली ॥

अक्त, त्रि, (अञ्जेर्गतौ क्तः। अक्तपरिमाणस्य वाचक इति भाष्यस्य कैयटेन तथा व्याख्यातत्वात्। अनक्ति अज्यते वा। अञ्जू व्यक्त्यादौ। अञ्जिघृसिभ्यः क्तः इति औणादिकः क्तः।) युक्तः ॥ गतः ॥ व्यक्तः ॥ अनज व्यक्तिगतिम्रक्षणेषु इत्यस्मात् कर्म्मणि क्तः। यथा,—
"हिक्काश्वासातुरे पूर्व्वं तैलाक्ते स्वेद इष्यते"।
इति चक्रदत्तः। (स्त्रियां अक्ता इति पदं रात्रिवाचकम् वेदे प्रसिद्धम्।)

अक्तु, स्त्री, रात्रिः। अनक्ति प्रतिदिनं गच्छति अक्तुः। अञ्जू धम्मि व्यक्तिगतिम्रक्षणे बाहुलकात् कुः अनिदितामिति नलोपः। वेदप्रचुरप्रयोगोऽयं ॥ (आयुधः। किरणः। कान्तिः। नक्षत्रं। ज्योतिः। अञ्जनघृत। एते अर्था वैदिकग्रन्थे प्रसिद्धाः।)

अक्रव्यादः, त्रि, (न क्रव्यादः। नञ् समासः।) अमांसभक्षकः। यथा,—
"क्रव्यादांस्तु मृगान् हत्वा धेनुं दद्यात् पयस्विनीं।
अक्रव्यादान् वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलं" ॥
इति मानवे ११ अध्याये १३३ श्लोकः ॥

अक्रमः, त्रि, (न क्रमः। नञ् समासः। नास्ति क्रमो यस्य इति वा।) क्रमरहितः। व्यतिक्रमः। यथा,—
"अक्रमाच्छ्रेयसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधी"।
इति माधवकरः ॥ (क्रमाभावः। क्रमविपर्य्ययः। यथा,—'इदमनुचितमक्रमश्च पुंसां यदिह जरास्वपि मान्मथा विकाराः' इति शृङ्गारशतकम्।)

अक्रान्ता, स्त्री, (न+क्रम्+क्त+आप्।) वृहती। इति कान्चिद्रत्नमाला ॥ अनाक्रान्ते त्रि ॥

अक्रियः, त्रि, (नास्ति क्रिया यस्य। अप्रशस्ता वा क्रिया यस्य।) अक्रियान्वितः। कुकर्म्मविशिष्टः। क्रियारहितः। यथा 'अक्रियत्वाच्च सर्व्वदा'। इति चरकः ॥ (निश्चेष्टः। स्पन्दरहितः। कर्म्मत्यागी। यथा,—
"अनाश्रितः कर्म्मफलं कार्य्यं कर्म्म करोति यः।
स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः" ॥
इति गीतायाम्।) (स्त्री। क्रियाभावः। क्रियात्यागः। अयथाक्रिया। यथा,—
"अक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता विद्वद्भिः सर्व्वकर्म्मिणाम्।
अक्रिया च परोक्ता च तृतीया चायथाक्रिया" ॥
इति काव्यसङ्कलितः।)

अक्रूरः, पु, (क्रौर्य्यवान् क्रूरः, स न भवति इति अक्रूरः। यद्वा क्रूर इति भावप्रधानो निर्द्देशः। न विद्यते क्रौर्य्यम् इति अक्रूरः।) गान्दिनीपुत्रः। श्रीकृष्णपितृव्यः। तस्य पिता श्वफल्कः। (तस्य माता गान्दिनी।) इति श्रीभागवतं ॥ क्रूरताशून्ये त्रि ॥ (सरले। यथा,—
"स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोरमम्"।
इति मनुः। पुंसि विष्णुः। यथा,—
"अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणां वरः"।
इति भारते।)

अक्रोधः, पु, (न क्रोध इति नञ् समासः। नास्ति क्रोधो यस्य इति वा।) क्रोधश्चित्तविकारः तद्विपरीतः। स तु आश्रमिणां दशधर्म्मान्तर्गतधर्म्मः। इति जटाधरः ॥ (यथाह मनुः—
"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म्मलक्षणम्" ॥
इति।) वाच्यलिङ्गस्तु क्रोधरहितव्यक्तौ ॥

अक्लान्तः, त्रि, (न+क्लम्+क्त। न क्लान्त इति नञ्समासः।) क्लान्तिरहितः। अनवसन्नः। अम्लानः ॥

अक्लिका, स्त्री, नीलीवृक्षः। इति शब्दचन्द्रिका ॥

अक्लिष्टकर्म्मा, [न्] त्रि, (अक्लिष्टम् अनायाससाध्यं कर्म्म यस्य। बहुव्रीहिः।) अक्लेशेन कर्म्मकर्त्ता। यथा,—
"दूतोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्म्मणः"।
इति रामायणं।

अक्लेशं, क्ली, (न क्लेश इति नञ् समासः।) क्लेशाभावः। यथा,—
"यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्म्मभिरगर्हितैः।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्व्वीत धनसञ्चयं" ॥
इति मानवे ४ अध्याये ३ श्लोकः ॥ क्लेशाभाववति त्रि ॥

अक्लेश, त्रि, (नास्ति क्लेशो यस्य इति बहुव्रीहिः।) क्लेशशून्यः। अनायासः। अकष्टः ॥

अक्ष, न ऊ व्याप्तौ। संहतौ। इति कविकल्पद्रुमः। न अक्ष्णोति धनं लोकः। व्याप्नोति राशीकरोति वा इत्यर्थः। ऊ आक्षिष्टां। आष्टां। इति दुर्गादासः।

अक्ष, ऊ व्याप्तौ। संहतौ। इति कविकल्पद्रुमः। अक्षति धनं लोकः। व्याप्नोति राशीकरोति इत्यर्थः। ऊ आक्षिष्टा। आष्टा। इति दुर्गादासः।

अक्ष, क्ली, (अक्ष्णोति अक्षति वा अश्यते वा अनेन वा अक्षू व्याप्तौ। पचाद्यच् घञ् वा। अश्नुते अत्यर्थं अशू व्याप्तौ। अशेर्देवने इति सः वा।) इन्द्रियं। (यथा विष्णुपुराणे,—
"शब्दादिष्वनुरक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित्।
कुर्य्याच्चित्तानुकारीणि प्रत्याहारपरायणः" ॥)
सौवर्च्चलं। तुत्थं। इति मेदिनी। (चक्षुः। यथा रामायणे,—
"सर्व्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः"। इति

अक्षः, पुं, कर्षपरिमाणं। (यथा,—
"ते षोडशाक्षः कर्षोऽस्त्री पलं कर्षचतुष्टयं"।
पाशकः। (अक्षैरक्षान् वा दीव्यति। इति सिद्धान्तकौमुदी।) (पाशक्रीड़ा। यथाह मनुः)—
'मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः'।)
कलिद्रुमः। इत्यमरः। (विभीतकवृक्षः। यथा छान्दोग्ये—यथा वै द्वे आमलके द्वे कोले द्वौ वाक्षौ मुष्टिरनुभवति।) ज्ञातार्थः। शकटः। व्यवहारः। रुद्राक्षः। इन्द्राक्षः। सर्पः। चक्रं। इति मेदिनी। (चक्रधारणदारुभेदः। यथा,—
"छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्य्यक् प्रतिमुखागते।
अक्षभङ्गे च यानस्य चक्रभङ्गे तथैव च" ॥)
आत्मा। रावणपुत्रः। इति हेमचन्द्रः। (यथा रामायणे—'निशम्य राजा समरे सहोत्सुकं
कुमारमक्षं प्रसमैक्षताथ वै'।)
जातान्धः। गरुडः। इति शब्दरत्नावली। (शिवः। यथा भारते—
"अक्षश्च रथयोगी च सर्व्वयोगी महाबलः"।
इति) सस्कृतपलभा। यथा,—
"मन्दाश्विनिघ्ना पलभाङ्किता च
लङ्कावधिः स्यादिह दक्षिणोऽक्षः"।
इति भास्वती ॥
"प्रभा शरघ्ना स्वतुरीययोगा-
दक्षः सदा दक्षिणदिक् प्रदिष्टः"।
इति जातकार्णवः—
"दक्षिणोत्तररेखायां सा तत्र विषुवत् प्रभा।
शङ्कुच्छाया हृते त्रिज्ये विषुवत् कर्णभाजिते ॥
लम्बाक्षज्ये तयोश्चापे लम्बाक्षौ दक्षिणौ सदा"।
इति सूर्य्यसिद्धान्तः ॥

अक्षकः, पु, (अक्ष+क) तिनिशवृक्षः। इति रत्नमाला।

अक्षक्रीड़ा, स्त्री, (अक्षैः या क्रीडा) द्यूतक्रीडा पाशकक्रीडा। यथा। अक्षक्रीडायां व्यासयुधिष्ठिरसंवादः प्रचरति। इति तिथ्यादितत्त्वं॥ तद्विवरणं चतुरङ्गशब्दे द्रष्टव्यं॥ *॥ कार्त्तिकशुक्लप्रतिपदि तत्क्रीडाविधिर्यथा। ब्रह्मपुराणे,—

"शङ्करश्च पुरा द्यूतं ससर्ज सुमनोहरं।
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेऽहनि भूपते॥
जितश्च शङ्करस्तत्र जयं लेभे च पार्व्वती।
अतोऽर्थाच्छङ्करो दुःखी गौरी नित्यं सुखोषिता॥
तस्मात् द्यूतं प्रकर्त्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः।
तस्मिन् द्यूते जयो यस्य तस्य सम्वत्सरं शुभं॥
पराजयो विरुद्धस्तु लब्धनाशकरो भवेत्"।

द्यूतञ्चाप्राणिभिः क्रीडनं। यथा मनुः,—
"अप्राणिभिर्यत् क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते"।
इति तिथ्यादितत्त्वं॥ *॥ दशमीद्वादश्योस्तत्करणनिषेधो यथा। स्मृतिः,—
"शाकं माषं मसूरञ्च पुनर्भोजनमैथुने।
द्यूतमत्यम्बुपानञ्च दशम्यां वैष्णवस्त्यजेत्"॥
कूर्म्मपुराणे,—
"कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं हिंसां तैलमसत्यताम्।
द्यूतक्रीड़ां दिवानिद्रां व्यायामं क्रोधमैथुनं॥
द्वादश्यां द्वादशैतानि वैष्णवः परिवर्ज्जयेत्"।
इत्येकादशीतत्त्वं॥ *॥ अन्यत् द्यूतशब्दे द्रष्टव्यं॥

अक्षजः पुं, (अक्ष+जन्+ड) वज्रः। इति पुरुषोत्तमः। अक्षिजः इति क्वचित् पाठः। (विष्णुः। यथा भागवते,—
"जघानोत्पत्य गदया हनावसुरमक्षजः"।

अक्षत, क्ली, (क्षणु हिंसायां। नपुंसके भावे क्तः। अनुदात्तोपदेशेत्यादिना णलोपः।) लाजाः। नपुंसकं। इति मेदिनी।

अक्षतः, त्रि, (न+क्षण्+क्त) अहिंसितः। इति मेदिनी। अखण्डितः। इति शब्दरत्नावली। (यथाह मनुः,—
"दश स्थानानि दण्डस्य मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्।
त्रिषु स्थानेषु यानि स्युरक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत्"॥)

अक्षतः, पुं, यवः। इति मेदिनी। (यथा आश्वलायनगृह्यसूत्रे,—
"अक्षतसक्तूनां नव कंसान् पूरयित्वा"।)
शस्यमात्रं। इति अमरटीकायां भानुदीक्षितः॥
अक्षताः पुं भूम्नीति स्वामी॥ (न क्षताः येषां ते इति अक्षताः। मुकुटस्तु अमरव्याख्यानावसरे लाजाः पुं भूम्नितेऽक्षतमिति पठित्वा कर्म्मणि क्तः। क्षतं खण्डितं। न क्षतमक्षतमिति विग्रहः नित्यपुलिङ्गः नित्यबहुवचनान्ताश्च लाजाः अक्षतमिति व्याचख्यौ॥ केचित्तु अखण्डिततण्डुलाः अक्षतमित्याहुः।)

अक्षता स्त्री, कर्कटशृङ्गी। काँकड़ाशृङ्गी इति भाषा। इति शब्दचन्द्रिका॥ पुरुषसंसर्गरहिता स्त्री। स्मृतिः॥ यथाह याज्ञवल्क्यः—
"अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः पुनः"।

अक्षदर्शकः, पुं, (अक्षाणां व्यवहाराणां दर्शकः। अक्ष+दृश्+ण्वुल्।) व्यवहारद्रष्टा व्यवहाराणां ऋणादानादिविवादानां द्रष्टा निर्णेता। धर्म्माध्यक्ष इत्यर्थः। इत्यमरः तट्टीका च॥ जज् इति इंराजीयभाषा॥

अक्षदृक्, (श्) पुं, (अक्ष+दृश+क्विप्।) अक्षदर्शकः। (व्यवहारस्य ज्ञाता।)

अक्षदेवी, (न्) त्रि, (अक्षैर्दीव्यति। दिवु क्रीडादौ। सुपीति णिनि।) द्यूतक्रीडाकारकः। इत्यमरः॥

अक्षद्युः, पुं, (अक्षैर्दीव्यति। दिवु क्रीडादौ। अक्ष+दिव+क्विप्+ऊट्।) अक्षक्रीडकः। इति व्याकरणं॥

अक्षधरः पुं, (अक्ष+धृ+अच्।) शाखोटवृक्षः। इति भूरिप्रयोगः॥

अक्षधूर्त्तः पुं, (अक्षेषु धूर्त्तः। सप्तमी शौण्डैरिति समासः।) द्यूतक्रीडकः। तत्पर्य्यायः। धूर्त्तः २ अक्षदेवी ३ कितवः ४ द्यूतकृत् ५। इत्यमरः॥ जुयारी इति भाषा॥

अक्षधूर्त्तिलः पुं, (अक्ष+धुर्+तिल्।) वृषः। इति हारावली॥

अक्षपाटकः पुं, (अक्ष+पाट+वुन्।) धर्म्माध्यक्षः। इति जटाधरः॥ जज् इति भाषा॥

अक्षपादः पुं, (अक्ष+पाद।) तार्किकः। तत्पर्य्यायः। नैयायिकः २। इति हेमचन्द्रः॥

अक्षपीडा स्त्री, (अक्ष+पीडा।) यवतिक्ता लता। इति राजनिर्घण्टः॥

अक्षमः त्रि, (नास्ति क्षमा यस्य सः।) क्षमारहितः। क्षमाशून्यः। (असमर्थः।)
"विष्णुसेवी च श्वपचो वर्णानां कोटिमुद्धरेत्।
हरेरभक्तो विप्रश्च स्वञ्च रक्षितुमक्षमः"॥
इति ब्रह्मवैवर्त्ते २३ अध्यायः॥

अक्षमा स्त्री, (न क्षमा इति नञ्समासः।) अक्षान्तिः। ईर्षा। इति शब्दरत्नावली॥ (यथा किरातार्ज्जुनीये—
"अतिपातितकालसाधना
स्वशरीरेन्द्रियवर्गतापिनी।
जनवन्न भवन्तमक्षमा
नयसिद्धेरपनेतुमर्हति"॥

अक्षमाला स्त्री, (अक्षाणां माला।) अक्षसूत्रं। वशिष्ठपत्नी। इति मेदिनी॥ (यथाह मनुः—
"अक्षमाला वशिष्ठेन संयुक्ताधमयोनिजा"।)
अक्षसूत्रेति तान्त्रिकभाषया अकारादिक्षकारान्तवर्णमाला रुद्राक्षमाला च। यथा गौतमीये,—
"पञ्चाशल्लिपिभिर्माला विहिता जपकर्म्मसु।
अकारादिक्षकारान्ता अक्षमाला प्रकीर्त्तिता॥
क्षार्णं मेरुमुखं तत्र कल्पयेन्मुनिसत्तम।
अनया सर्व्वमन्त्राणां जपः सर्व्वसमृद्धिदः"॥
इति तन्त्रसारः॥ *॥ अन्यत् मालाशब्दे वर्णमालाशब्दे च द्रष्टव्यं॥

अक्षय त्रि, (नास्ति क्षयो यस्य सः। बहुव्रीहिः।) क्षयरहितः। अव्ययः। कल्पान्तस्थायी। यथा—
"अक्षराणि फलान्याहुरमरास्त्रिदशानिव।
कल्पान्तस्थानसम्बन्धाननन्या नाशवर्ज्जिनः"॥
इति मीमांसककारिका॥ अपि च। भविष्यपुराणं।
"चतुर्द्दश्यां तथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः।
योऽब्दमेकं न भुञ्जीत शिवार्च्चनपरो नरः॥
यत् पुण्यमक्षयं प्रोक्तं सततं सत्रयाजिनां।
तत् पुण्यं सफलं तस्य शिवलोकञ्च गच्छति"॥
इति तिथ्यादितत्त्वं॥ *॥ पापपुण्याक्षयजनकयोगविशेषः। यथा ज्योतिषे,—
"सोमवारेऽप्यमावास्या आदित्याहे तु सप्तमी।
चतुर्थ्यङ्गारवारे तु अष्टमी च बृहस्पतौ॥
अत्र यत् क्रियते पापमथवा धर्म्मसञ्चयं।
षष्टिजन्मसहस्राणि प्रति जन्म तदक्षयं"॥
इति तिथ्यादितत्त्वं॥ (अनन्तः। अक्षयकालाभिमानी। क्षः वासुदेवः तस्मिन् क्षयो निवासोऽस्य इति व्युत्पत्त्या ब्रह्मणिष्ठः।)

अक्षयतृतीया स्त्री, (अक्षया या तृतीया तिथिः।) वैशाखशुक्लतृतीया। सा तु सत्ययुगाद्या। तत्र स्नानदानादावक्षयफलं। इति। स्मृतिः। यथा,—
"वैशाखे मासि राजेन्द्र शुक्लपक्षे तृतीयिका।
अक्षया सा तिथिः प्रोक्ता कृत्तिकारोहिणीयुता।
तस्यां दानादिकं पुण्यमक्षयं समुदाहृतं"।
इति तिथ्यादितत्त्वं॥ *॥ विवरणं तु वैशाखशब्दे द्रष्टव्यं॥

अक्षया स्त्री, (नास्ति क्षयो यस्याः सा।) वारतिथिघटितयोगविशेषः। यथा,—
"अमा वै सोमवारेण रविवारेण सप्तमी।
चतुर्थी भौमवारेण अक्षयादपि चाक्षया"॥
इति भविष्यपुराणम्॥

अक्षरः पुं, (न क्षरति। क्षर सञ्चलने। पचाद्यच्। यद्वा। अश्नुते। अशू व्याप्तौ। अशेः सरः।) शिवः। विष्णुः। इति शब्दरत्नावली। यथा महाभारते,—
"विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च"॥
इति।) (अजः। जीवः।)

अक्षरं क्ली, (न क्षरति इति व्युत्पत्त्या।) ब्रह्म। (अविनाशि निर्व्विशेषं प्रणवाख्यं ब्रह्म। कूटस्थं नित्यं आत्मा। यथा,—
"क्षरादिरुद्धधर्म्मत्वादक्षरं ब्रह्म भण्यते।
कार्य्यकारणरूपं तु नश्वरं क्षरमुच्यते॥
यत्किञ्चिदिह लोकेऽस्मिन् वाचो गोचरतां गतं।
प्रमाणस्य च तत्सर्व्वमक्षरे प्रतिषिध्यते॥
यदप्रबोधात् कार्पण्यं ब्राह्मण्यं यत्प्रबोधतः।
तदक्षरं प्रबोद्धव्यं यथोक्तेश्वरवर्त्मना"॥
अकारादिक्षकारान्तिकपञ्चाशद्वर्णं। इति मेदिनी॥ अस्योत्पत्तिकारणं। यथा बृहस्पतिः,—
"षाण्मासिके तु समये भ्रान्तिः सञ्जायते यतः।
धात्राक्षराणि सृष्टानि पत्रारूढान्यतः पुरा"॥
इत्याह्निकतत्त्वं॥ तच्च पञ्चविधं। यथा,—
"मुद्रालिपिः शिल्पलिपिर्लिपिर्लेखनिसम्भवा।
गुण्डिका घुणसम्भूता लिपयः पञ्चधा स्मृताः"॥
इति वाराहीतन्त्रं॥ *॥ अन्यत् मुद्राशब्दे वर्णशब्दे च द्रष्टव्यं॥ गगनं। धर्म्मः। तपस्या।

अपामार्ग । इति हेमचन्द्रः ॥ मोक्ष । इत्यमर ॥ जल । इति वेदप्रयोग ।

अक्षर त्रि, (न क्षरतीति ।) अक्षरणीय । अच्युत । यथा,—

"तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्
प्रशान्तचित्ताय शमन्विताय ।
येनाक्षर पुरुष वेद सत्य
प्रोवाच त तत्त्वतो ब्रह्मविद्या" ॥

इति वेदान्तसारधृता श्रुति ॥

अपि च ।

"द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षर सर्व्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते" ॥

इति श्रीभगवद्गीताया १५ अध्याये १७ श्लोक ॥ क्षरश्चाक्षरश्चेति द्वाविमौ पुरुषौ लोके प्रसिद्धौ । तावेवाह । तत्र क्षर पुरुषो नाम सर्व्वाणि भूतानि ब्रह्मादिस्थावरान्तानि शरीराणि अविवेकिलोकस्य शरीरेष्वेव पुरुषत्वप्रसिद्धे । कूटो राशि शिलाराशि पर्व्वतइव एकदेशेष नश्यत्स्वपि निर्व्विकारतया तिष्ठतीति कूटस्थश्चेतनो भोक्ता स तु अक्षर पुरुष उच्यते विवेकिभिः । इति तट्टीकायां श्रीधरस्वामी ॥

अक्षरचञ्चु पु, (अक्षरैर्वित्त । तेन वित्त इति चञ्चु ।) लेखक । इत्यमरटीकाया वाचस्पति ॥

अक्षरचण पु, (अक्षरैर्वित्त । तेन वित्त इति चणप् ।) लिपिकर । इत्यमर । मुन्शी इति भाषा ॥

अक्षरचुञ्चुः पुं, (अक्षरैर्वित्त । तेन वित्त इति चुञ्चुप् ) अक्षरचञ्चु । लेखक । इत्यमर ।

अक्षरजननी स्त्री, (अक्षराणाम् अक्षरस्य वा जननी उत्पादिका ।) लेखनी । कलम । यथा,— "लेखन्यक्षरजननी वर्णमाला मसिप्रसू" । इति शारावलीति केचित् ॥

अक्षरजीवक पु, (अक्षर + जीवक ।) लिपिकर । इति हेमचन्द्र ॥ ("लेखकेऽक्षरपूर्व्वा स्युश्चणजीवकचुञ्चव" । इति हेमचन्द्र ॥)

अक्षरजीविक पु, ( अक्षरैर्जीविका यस्य स । ) कायस्थ । "लेखक स्याल्लिपिकर कायस्थोऽक्षरजीवक" ॥ इति हलायुध । अक्षरजीविनि त्रि ॥

अक्षरतूलिका स्त्री, (अक्षराणा तूलिका लेखनसाधनमित्यर्थ ।) लेखनी । इति जटाधर ॥

अक्षरविन्यास पु, अक्षराणां विन्यास । लिपि । लिखन । इत्यमरटीकाया भरतादय ॥

अक्षरमुख पं, (अक्षराणि मुखे तुण्डाग्रे यस्य स ।) शिष्य । छात्र । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अक्षरसंस्थान स्त्री, (अक्षराणां संस्थान विन्यास ।) लिपि । लिखन । इत्यमर ॥

अक्षवती स्त्री, (अक्षा पाशका सन्ति अस्याम इति मतुप् । मशात् स्त्रीत्व ।) द्यूतक्रीड़ा । पाशाखेला इति भाषा । इत्यमर ॥ (यथा महाभारते,— "दमा[illegible]कितवानाम्' ।)

अक्षवाट पु, (अक्षस्य मल्लयुद्धस्य वाट परिसर ।) मल्लभूमि । तत्पर्य्याय । नियुद्धभू २ । इति हेमचन्द्र ॥ कुस्तिर आखड़ा इति भाषा ॥

अक्षवित् [ द् ] त्रि, (अक्ष व्यवहार द्यूत वा वेत्ति इति विद क्विप् ।) द्यूतज्ञ । व्यवहारज्ञ ॥

अक्षसूत्र स्त्री, अक्षाणा सूत्र माला ।) अक्षमाला । जपमाला । इति जटाधर । यथा—

"पाणौ कार्म्मुकमक्षसूत्रवलय दण्डोऽपरः पैप्पल" । इति महावीरचरिते ।)

अक्षाग्रकीलक पु, (अक्षस्य नाभिक्षेप्यकाष्ठस्य अग्रे अन्ते बन्धनार्थ कीलक ।) शकटचक्रपुरोवर्त्तिकीलक । तत्पर्य्याय । अणि २ । इत्यमर ॥ अणी ३ आणि ४ । इति भरत ॥ चाकारखिल् इति भाषा ॥

अक्षान्ति स्त्री, (न क्षमणम् । क्षमूसहने । दिवादि । अस्यामित्वात् क्तिन् । अनुनासिकस्येति दीर्घे नञ्समास ।) पराभ्युदयासहिष्णुत्व । मार्य्यादे परदर्शनाद्यसहिष्णुत्व । इति भरत ॥ तत्पर्य्याय । ईर्ष्या २ । इत्यमर ॥ ईर्षा ३ अक्षमा ४ । इति शब्दरत्नावली ॥ ("अक्षान्तिसारसर्व्वस्व दुर्व्वाससमवेहि माम्" । इति विष्णुपुराणे ।)

अक्षारलवण स्त्री, ( न क्षारलवणम् इति नञ्समास ।) हविष्यान्नविशेष । महाहविष्यमिति ख्यात । यथा । "अशौचादिभक्ष्यगोक्षीरगोघृतधान्यमुद्गतिलयवसैन्धवसामुद्रलवणात्मकद्रव्य । कृत्रिमात् लवणात् भिन्नमक्षारलवण मत" । इद मतन्तु स्मार्त्तस्य । रत्नाकरमत । यथा—

"गोक्षीर गोघृत चैव धान्यमुद्गयवास्तिला ।
सामुद्र सैन्धवश्चैवमक्षारलवण मत" ॥

इति नारायणवन्द्यघटीयकृतशुद्धिकारिका ॥ (यथाह मनु —

"मुन्यन्नानि पय सोमो मास यच्चानुपस्कृत ।
अक्षारलवण चैव प्रकृत्या हविरुच्यते" ॥ )

अक्षि स्त्री, (अश्नुते अनेन । अशू व्याप्तौ सघाते च । अशेर्निदिति क्सि । यद्वा । अक्षति । अक्षू व्याप्तौ । इन् ।) चक्षु । इत्यमर । चक्षुर्गोलक । इति केचित् ॥

अक्षिक पु, रञ्जनद्रु । आच् इति भाषा । इति रत्नमाला ॥

अक्षिकूटक पु, (अक्षि + कूटक ।) चक्षुस्तारा ॥

अक्षिगत त्रि, (अक्षि गत, अक्षिविषय इव खेदकृदित्यर्थ ।) द्वेष्य । इत्यमरः ॥

अक्षिभेषज पु (अक्षि + भेषज ।) पट्टिकालोध्रः । इति राजनिर्घण्ट ॥ (स्त्री, नेत्रौषधम् ।)

अक्षिव पुं, (अक्षि वाति वायति वा । वा गतिगन्धनयो । आतोऽनुपेति क ।) शोभाञ्जनवृक्ष । सामुद्रलवण स्त्री । इत्यमरटीकाया भरत ॥

अक्षिविकूणित स्त्री, ( अक्षि + वि + कूण + भावे क्त ।) कटाक्ष । अपाङ्गदृष्टि । इति हेमचन्द्र ॥

अक्षीक पु रञ्जनद्रु । आच् इति भाषा । इति रत्नमाला ॥

अक्षीवं स्त्री, (न क्षीवति अनेन वा अक्षीवयति वा । क्षीव मदे । पचाद्यच् ।) समुद्रलवण । इत्यमरः ।

अक्षीव त्रि, (न क्षीवति माद्यति इति न + क्षीव + अच् ।) अमत्त । इति मेदिनी ।

अक्षीव पुं, शोभाञ्जनवृक्ष । इत्यमर ॥

अक्षुस त्रि, (न क्षुस इति नञ्समास ।) अक्षोदित । अचूर्णित । इति क्षुदधात्वर्थदर्शनात् अच्छिन्न । यथा । अक्षुस परिवप । इति चूडाकरणे पशुपति ॥

अक्षुब्ध त्रि, क्षोभरहित । अक्षोभित । इति क्षुभ धातो क्तप्रत्यये क्षुब्धः । ततो न क्षुब्ध अक्षुब्ध इति नञ्समासनिष्पन्न ॥

अक्षेम स्त्री, (न क्षेमम् इति नञ्समासः ।) अमङ्गल । यथा—

"किन्नु तेषा गृहे क्षेममक्षेम किन्नु साम्प्रतम् ।
कथन्ते किन्नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ता किन्नु मे सुता" ॥

इति देवीमाहात्म्ये १ अध्याय ॥

अक्षोट पु, (अक्ष्णोति । अक्षू व्याप्तौ सघाते च बाहुलकादोट ॥ अक्षस्येव उटा पर्णानि अस्य इति वा ।) अक्षोडवृक्षः । स च पर्व्वतजपीलुवृक्ष । इत्यमरटीकाया भरत ॥ आखरोट् इति हिन्दीभाषा । इति राजनिर्घण्ट ॥

"पील शैलभवोऽक्षोट कर्परालश्च कीर्त्तित ।
अक्षोटकोऽपि वातादसदृशः कफपित्तकृत्" ॥

इति भावप्रकाश ॥

अक्षोड़ पु, (अक्ष्णोति इति अक्ष + ओड़प्रत्यय ।) पर्व्वतोत्पन्नपीलुवृक्ष । तत्पर्य्याय । कर्पराल कन्दराल ३ आक्षोड़ ४ अक्षोटः ५ आक्षोट ६ । इत्यमर तट्टीका च ॥

अक्षोड़क पु, (अक्षोड एव इति स्वार्थे कन् ।) पर्व्वतोत्पन्नपीलुवृक्षः । इति रत्नमाला ॥

अक्षोभ पु, (न क्षोभ इति नञ्समास । नास्ति क्षोभो यस्येति वा ।) हस्तिबन्धनस्तम्भ । तत्पर्य्याय । आलान २ शङ्कु ३ । इति त्रिकाण्डशेष ॥ क्षोभरहिते त्रि ॥

अक्षौहिणी स्त्री, हरिकर्म्मविहितनक्षत्र । यथा,—

'उत्तरात्रितययाम्यरोहिणी-
रौद्रसर्पपितृमेषु चाश्विभे ।
श्मश्रुकर्म्म सकल विवर्ज्जयेत्
प्रेतकार्य्यमपि बुद्धिमान् नर ॥
चन्द्रशुद्धिर्यदा नास्ति तारायाश्च विशेषत ।
अक्षौहिभेऽपि कर्त्तव्य चन्द्रचन्द्रजयोर्दिने" ॥

इति ज्योतिस्तत्त्व ॥

अक्षौहिणी स्त्री, (ऊह समूह अस्ति अस्या इति इनिः । अक्षाणाम ऊहिनी । पूर्व्वपदादिति णत्वम् । अक्षादूहिन्यामिति वृद्धि ।) सेनाविशेषगणसेना । तद्यथा । २१८७० हस्तिन । २१८७० रथा । ६५६१० घोटका । १०९३५० पदातय । समुदायेन २१८७०० । तथा चोक्त ।

"अक्षौहिण्यामित्यधिकै सप्तत्यष्टाभि शतै ।

सयुतानि सहस्राणि गजानामेकविंशति ॥
एवमेव रथानान्तु सङ्ख्यानं कीर्त्तितं बुधैः ।
पञ्चषष्टिसहस्राणि षट्शतानि दशैव तु ।
सङ्ख्यातास्तुरगास्तज्ज्ञैर्विना रथ्यैस्तुरङ्गमैः ।
नृणां शतसहस्रन्तु सहस्राणि नवैव तु ।
शतानि त्रीणि चान्यानि पञ्चाशच्च पदातयः" ।
इत्यमरभरतौ ॥ (अक्षौहिणीपरिमाणं। यथा महाभारते आदिपर्व्वणि,—
"अक्षौहिण्य इति प्रोक्तं यत्त्वया सूतनन्दन ।
एतदिच्छामहे श्रोतुं सर्व्वमेव यथायथम् ॥
अक्षौहिण्याः परीमाणं नराश्वरथदन्तिनाम् ।
यथावच्चैव नो ब्रूहि सर्व्वं हि विदितं तव" ॥
सौतिरुवाच ।
"एको रथो गजश्चैको नराः पञ्च पदातयः ।
त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते ॥
पत्तिन्तु त्रिगुणामेतामाहुः सेनामुखं बुधाः ।
त्रीणि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते ॥
त्रयो गुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणास्त्रयः ।
स्मृतास्तिस्रस्तु वाहिन्यः पृतनेति विचक्षणैः ॥
चमूस्तु पृतनास्तिस्रस्तिस्रस्त्वनीकिनी ।
अनीकिनीं दशगुणां प्राहुरक्षौहिणीं बुधाः ॥
अक्षौहिण्याः प्रसङ्ख्याता रथानां द्विजसत्तमाः ।
सङ्ख्या गणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः ॥
शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्च सप्ततिः ।
गजानाञ्च परीमाणमेतदेव विनिर्द्दिशेत् ॥
ज्ञेयं शतसहस्रन्तु सहस्राणि नवैव तु ।
नराणामपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चानघाः ॥
पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च ।
दशोत्तराणि षट् प्राहुर्यथावदिह सङ्ख्यया ॥
एतामक्षौहिणीं प्राहुः सङ्ख्यातत्त्वविदो जनाः ।
यथा कथितवानस्मि विस्तरेण तपोधनाः" ॥

अक्ष्णा स्त्री, (अश्नुते । अशू व्याप्तौ सङ्घाते च । कृत्यशूभ्यां क्स्नः । काल । इत्युणादिकोष ॥

अखट्ट, पुं, पियालवृक्ष । इति राजनिर्घण्ट ॥ पियासाल इति भाषा ॥

अखट्टिः, पुं, असद्व्यवहारः । आखुटि इति ख्यातः । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अखण्डः, त्रि, (न खण्ड्यते इति । खडि भेदने घञ् । नास्ति खण्डो यस्य इति वा ।) खण्डरहित । पूर्ण । इत्यमर ॥ ("अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघम्" इति शाकुन्तले ।)

अखण्डन, पु, (नास्ति खण्डनं विच्छेदो यस्य सः ।) काल । इति शब्दचन्द्रिका ॥

अखण्डितर्त्तु, त्रि, (न खण्डित ऋतुरस्य इति । बहुव्रीहि ।) सफलवृक्षादि । इति शब्दचन्द्रिका ॥

अखात, स्त्री, पुं, (न खात नञ्समास । खननिर्म्मितम् इत्यर्थः ।) देवखात । अकृत्रिमजलाशय । इत्यमर ॥ अखातमिति स्वामी ॥ पुंसि यथा,—अखातो देवखातक इत्यमरदत्त ॥

अखाद्य, त्रि, (न खाद्य । अप्रशस्त विरुद्ध वा खाद्यम् ।) खाद्यानर्ह । अभक्ष्य ॥

अखिल, त्रि, (न खिलम् अस्य । न+खिल ।) सर्व्व । इत्यमर ॥ (खिलमप्रहत स्थान । तत् न भवति इति अप्रहतस्थान ।)

अख्यात, त्रि, (न ख्यात विरुद्धार्थे वा नञ् ।) अख्यातिविशिष्ट । अप्रतिष्ठित ॥ अप्रसिद्ध ।

अग, म वक्रगतौ । कुटिलगमने । इति कविकल्पद्रुमः ॥ म अगयति अगति सर्प । इति दुर्गादास ॥

अग, इ गतौ । इति कविकल्पद्रुम ॥ गत्यां इ अङ्ग्यते । इति दुर्गादास ॥

अग, पुं, (न गच्छति । गम गतौ । अन्येभ्योऽपीति अन्येष्वपि इति वा ड । न गोऽप्राणिषु इति पाक्षिकोऽप्रकृतिभाव ।) पर्व्वत । वृक्ष । सर्प । सूर्य्यः । इति हेमचन्द्र ॥ (सरीसृप ।)

अगच्छ, पु, (न+गच्छ ।) वृक्ष । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अगजा, स्त्री, (अग+जन्+ड ।) शिलाजतु । इति रत्नमाला ॥ पर्व्वतवृक्षजे त्रि ॥ (गिरिजाते ।)

अगण्य, त्रि, (न गण्यं । नञ् समास ।) अगणनीय । अगणेय । अगणितव्यं । यथा,—
"गुणैरगण्यैरतिशीलशालिभिरिति भारवि" ।

अगद, पु, (गदविरुद्धः । न गदः अस्मात् इति वा ।) औषध । इत्यमर ॥ आयुर्वेदोक्ताष्टशाखान्तर्गतशाखाभेद । यथा,—
"औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः" ।
तपसैव प्रसिध्यन्ति" । इति मनु ।) नीरोगे त्रि । इति रमानाथ ॥

अगदङ्कार, पुं, (अगदम् अरोगं करोति इति । अगद+कृ+अण् । मुमागम ।) वैद्यः । इत्यमर ॥

अगम, पु, (न गच्छतीति । न+गम+अच् । पचाद्यच् ।) वृक्ष । इत्यमर ॥ पर्व्वत । न गच्छतीत्यगम ॥

अगम्य, त्रि, (न गम्य इति । न+गम्+यत् ।) अगन्तव्य । अगमनीय । गमनायोग्य । यथा,—
"अगम्या सामवत्तत्र यत्राभूत् स महारण" ।
इति देवीमाहात्म्य ॥

अगम्या, स्त्री, असेवनार्हा नारी । गम्यागम्याविवरण यथा, यम उवाच,—
"या या गम्या नृणामेव निबोध कथयामि ते ।
स्वस्त्री गम्या च सर्व्वेषामिति वेदनिरूपिता ॥
अगम्या च तदन्या या इति वेदविदो विदुः ।
सामान्य कथितं सर्व्वं विशेषं शृणु सुन्दरि ! ॥
अगम्याश्चैव या याश्च निबोध कथयामि ताः ।
शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी ॥
अत्यगम्या च निन्द्या च लोके वेदे पतिव्रते ।
शूद्रश्च ब्राह्मणीं गच्छेद् ब्रह्महत्याशतं लभेत् ॥
तत्सम ब्राह्मणी चापि कुम्भीपाकं व्रजेद्ध्रुवम् ।
यदि शूद्रां व्रजेद्विप्रो वृषलीपतिरेव सः ॥
स भ्रष्टो विप्रजातेश्च चाण्डालात् सोऽधमः स्मृतः ।
विष्ठासमश्च तत्पिण्डो मूत्रं तस्य च तर्पणम् ॥
तत् पितॄणां सुराणाञ्च पूजने तत् समं सति ।
कोटिजन्मार्ज्जितं पुण्यं सन्ध्यार्च्चातपसार्ज्जितं ॥
द्विजस्य वृषलीभोगान्नश्यत्येव न संशयः ।
ब्राह्मणश्च सुरापीती विड्भोजी वृषलीपतिः ॥
हरिवासरभोजी च कुम्भीपाकं व्रजेद्ध्रुवम् ।
गुरुपत्नीं राजपत्नीं सपत्नीमातरं प्रसूं ॥
सुतां पुत्त्रवधूं श्वश्रूं सगर्भां भगिनीं सति ।
सोदरभ्रातृजायाञ्च भगिनीभ्रातृकन्यकां ॥
शिष्याञ्च शिष्यपत्नीञ्च भागिनेयस्य कामिनीं
भ्रातृपुत्त्रप्रियाञ्चैवात्यगम्यामाह पद्मज ॥
एतास्वेकामनेकां वा यो व्रजेन्मानवाधम ।
स मातृगामी वेदेषु ब्रह्महत्याशतं लभेत् ॥
अकर्म्मार्होऽपि सोऽस्पृश्यो लोके वेदेऽतिनिन्दित
स याति कुम्भीपाकञ्च महापापी सुदुष्करं" ॥
इति ब्रह्मवैवर्त्ते प्रकृतिखण्डे २७ अध्याय ॥

अगरी, स्त्री, (न+गॄ+अच्+ङीष् ।) देवताडवृक्ष । इत्यमरटीकायां भरत ॥

अगर्हितः, त्रि, (न गर्हित । नञ्समासः) अनिन्दित । यथा,—
"ज्येष्ठ कुलं वर्द्धयति विनाशयति वा पुनः ।
ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः" ॥
इति मानवे ९ अध्याये १०९ श्लोक ॥

अगरु, स्त्री पु, (न गरुः दुर्भरः अस्मात् इति ।) अगुरु । इति हेमचन्द्रः ॥

अगस्ति, पुं, (विन्ध्याख्यम् अगम् अस्यति इति अगस्ति । अस्यते क्तिच् । बाहुलकात् तिर्वा ।) वकवृक्ष । अगस्त्यमुनि । इति मेदिनी ॥ यथा वैद्यके,—
"अगस्तिः पित्तकफजित् चतुर्थकहरो हिम ।
रूक्षो वातकरस्तिक्तः प्रतिश्यायनिवारणः" ॥

अगस्तिद्रु, पुं, वकपुष्पवृक्ष । इति त्रिकाण्डशेष ।

अगस्त्य, पु, (अग विन्ध्यं स्त्यायति स्तभ्नाति वा स्त्यै संघाते । आतोऽनुपसर्गे इति कः । अग+स्त्यै+क ।) वकपुष्पवृक्ष । इति राजनिर्घण्ट । मित्रावरुणयोः पुत्त्र मुनिविशेष । तस्य पर्य्याय कुम्भसम्भव २ मैत्रावरुणिः ३ । इत्यमर । अगस्ति ४ पीताब्धिः ५ वातापिद्विट् ६ आग्नेय ७ और्व्वशीय ८ आग्निमारुत ९ घटोद्भव १० इति हेमचन्द्रः ॥ (तदुत्पत्तिर्यथा यास्कनिरुक्ते,—
"तयोरादित्ययोः सत्रे दृष्ट्वाप्सरसमुर्व्वशीम् ।
रेतश्चस्कन्द तत्कुम्भे न्यपतत् वासतीवरे ॥
तेनैव तु मुहूर्त्तेन वीर्य्यवन्तौ तपस्विनौ ।
अगस्त्यश्च वशिष्ठश्च तत्रर्षी सम्बभूवतुः ॥
बहुधा पतितं रेतः कलशे च जले स्थले ।
स्थले वशिष्ठस्तु मुनिः सम्भूतवर्षिसत्तमः ॥
कुम्भे त्वगस्त्यः सम्भूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः
उदियाय ततोऽगस्त्यः शम्यामात्रो महातपाः ॥
मानेन सम्मितो यस्मात्तस्मान्मान्य इहोच्यते ।
यद्वा कुम्भादृषिर्जातः कुम्भेनापि हि मीयते" ॥

अगस्त्योदयः, पु, (अगस्त्यस्य नक्षत्रस्य उदयः शरत्काले गगने आविर्भावः ।) आकाशे नक्षत्ररूपेण अगस्त्यमुनेरुदयः । स तु सौरभाद्रस्य सप्त

दशदिने भवति। अस्यार्घ्यदानं तन्मासीयशेष-दिनत्रये कर्त्तव्यं। यथा,—
"अगस्त्यार्घ्यदानं सौरेण सिंहराशौ विधानात्"। यथा ब्रह्मवैवर्त्ते,—
"अप्राप्ते भास्करे कन्यां शेषभूतैस्त्रिभिर्दिनैः।
अर्घ्यं दद्युरगस्त्याय गौडदेशनिवासिनः"॥
यथा भीमपराक्रमे।
"यस्तु भाद्रपदस्यान्ते उदिते कलसोद्भवे।
अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय सर्व्वान् कामान् लभेत सः"॥
यथा नारसिंहे।
"शङ्खे तोयं विनिःक्षिप्य सितपुष्पाक्षतैर्युतं।
मन्त्रेणानेन वै दद्यात् दक्षिणाशामुखस्थितः॥
काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्त्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते"॥
प्रार्थनन्तु।
"आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुरः।
समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु"॥
गन्धादिकन्तु अगस्त्याय नमः इत्यनेन देयं। विशेषानुपदेशे सामान्यतः प्राप्तत्वात् दक्षिणाशामुखस्थित इति गन्धादावपि प्रयोगाङ्गकर्त्तृधर्म्मत्वादिति रत्नाकरः॥ *॥ तत्पत्न्यर्घ्यमन्त्रस्तु।
"लोपामुद्रे महाभागे राजपुत्त्रि पतिव्रते।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं मित्रावरुणिवल्लभे"॥
इति मलमासतत्त्वं॥ (अगस्त्योदये जलानि प्रसीदन्ति इत्यागमः। तथा च रघौ,—
"प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः।

अगाध, त्रि, (नास्ति गाधः स्थितिरत्र। नञोऽस्त्यर्थानामिति बहुव्रीहिः।) अतिगभीरं। अतलस्पर्शं। इत्यमरः॥ (अतिगम्भीरः। दुर्बोधाशयः।)

अगाध, क्ली, छिद्रं। इति मेदिनी॥

अगाधजलः, पुं, (अगाधं जलं यस्मिन्। बहुव्रीहिः।) ह्रदः। इत्यमरः॥ त्रि। अपरिच्छेद्यजलविशिष्टः।)

अगार, क्ली, (अगान् ऋच्छति। ऋ गतौ। कर्म्मण्यण्।) आगारं। गृहं। इत्यमरटीकायां भरतः॥
शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च'।
इति। 'खलात् क्षेत्रादगाराद्वा' इति मनुः।)

अगिर, पुं, (अग+इर।) अग्निः॥ सूर्य्यः॥ राक्षसः॥ इति जटाधरः॥

अगु, पुं, (नास्ति गौः किरणो यस्य सः। बहुव्रीहिः।) राहुग्रहः इति दीपिका॥ किरणरहिते त्रि॥

अगुरु, क्ली, (न गुरु दुर्भरं अस्मात् इति। बहुव्रीहिः।) शिंशपावृक्षः॥ कालागुरु। स नामप्रसिद्धसुगन्धिकाष्ठविशेषः। अगर इति ख्यातः। अस्य पर्य्यायः। वंशिकं १ राजार्हं २ लोहं ३ कृमिजं ४ जोङ्गकं ५। इत्यमरः॥ ‑र्हकं ६ ह्यणं ७ लोहाख्यं ८ लघु ९। इति रत्नमाला॥ पीतकं १० वर्णप्रसादनं ११ अनार्य्यकं १२ असारं १३ कृमिजग्धं १४ काष्ठकं १५। इति राजनिर्घण्टः॥ अस्य गुणाः। तिक्तत्वं। उष्णत्वं। कटुत्वं। लेपे रूक्षत्वं। व्रणकफवायुवान्तिमुखरोगनाशित्वञ्च। इति राजवल्लभः राजनिर्घण्टश्च॥ अगुरुर्वा पुंसीति वोपालितः॥ पुमान् इति सर्व्वानन्दः॥ गन्धद्रव्यविशेषः। यथा,—
अगुरु प्रवरं लोहं राजार्हं योगजं तथा।
वंशिकं कृमिजञ्चापि कृमिजग्धमनार्य्यकं॥
अगुरूष्णं कटु त्वच्यं तिक्तं तीक्ष्णञ्च पित्तलं।
लघु कर्णाक्षिरोगघ्नं शीतवातकफप्रणुत्॥
कृष्णं गुणाधिकं तत्तु लोहवद्वारि मज्जति।
अगुरुप्रभवः स्नेहः कृष्णागुरुसमः स्मृतः"॥
इति भावप्रकाशः॥

अगुरु, त्रि, (न गुरुः। नञ्समासः।) गुरुभिन्नः। लघुः। इति मेदिनी॥

अगुरुशिंशपा, स्त्री, शिंशपावृक्षः। इत्यमरटीकायां स्वामी॥

अगूढगन्ध, क्ली, (न गूढः अत्युत्कटः गन्धः यस्य। बहुव्रीहिः।) हिङ्गु। इति राजनिर्घण्टः॥

अगोचर, त्रि, (न गोचरः। नञ् समासः।) इन्द्रियजन्यप्रत्यक्षाविषयः॥ अज्ञातः। यथा,—
"अगोचरकृतं व्याधिं द्विमासमुत्सृजेत्"।
इति राजवल्लभः॥ (वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय इति शृङ्गारशतके।)

अगौका [स्] पुं, (अगः ओकः यस्य सः। बहुव्रीहिः।) शरभः। सिंहः। पक्षी। इति मेदिनी॥ (त्रि। पर्व्वतवासी।)

अग्नायी, स्त्री, (अग्नेः स्त्री इत्यस्मिन् अर्थे वृषाकप्यग्निकुसितेत्यादिसूत्रेण अग्निशब्दस्यैकारादेशो ङीप् च।) अग्निभार्य्या। इत्यमरः॥ त्रेतायुगं। इति जटाधरः॥ ('अग्नायी स्वाहा च हुतभुक्प्रिया' इत्यमरः।)

अग्नि, पुं, (अङ्गयन्ति अग्र्यं जन्म प्रापयन्ति इति व्युत्पत्त्या हविःप्रक्षेपाधिकरणेषु गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्निसभ्यावसथ्यौपासनाख्येषु षडग्निषु। यद्वा अङ्गति ऊर्द्ध्वं गच्छति इति। अगि गतौ। अङ्गेर्नलोपश्चेति निः नलोपश्च) तेजःपदार्थविशेषः। आगुन इति भाषा। धर्म्मस्य वसुभार्य्यायां जातः प्रथमोऽग्निः। तस्य पत्नी स्वाहा। पुत्त्रास्त्रयः पावकः १ पवमानः २ शुचिः ३। षष्ठमन्वन्तरे अग्नेर्वसोर्धारायां द्रविणकादयः पुत्त्राः। एतेभ्यः पञ्चचत्वारिंशदग्नयो जाताः। सर्व्वे मिलित्वा एकोनपञ्चाशदग्नयः। इति पुराणं॥ अस्य पर्य्यायः। वैश्वानरः १ वह्निः २ वीतिहोत्रः ३ धनञ्जयः ४ कृपीटयोनिः ५ ज्वलनः ६ जातवेदाः ७ तनूनपात् ८ तनूनपा ९ वर्हिःशुष्मा १० वर्हिः ११ शुष्मा १२ कृष्णवर्त्मा १३ शोचिष्केशः १४ उषर्बुधः १५ आश्रयाशः १६ आशयाशः १७ वृहद्भानुः १८ कृशानुः १९ पावकः २० अनलः २१ रोहिताश्वः २२ वायुसखा २३ वायुसखः २४ शिखावान् २५ शिखी २६ आशुशुक्षणिः २७ हिरण्यरेताः २८ हुतभुक् २९ हव्यभुक् ३० दहनः ३१ हव्यवाहनः ३२ सप्तार्चिः ३३ दमुना ३४ दमूना ३५ शुक्रः ३६ चित्रभानुः ३७ विभावसुः ३८ शुचिः ३९ अप्पित्तं ४०। इत्यमरस्तट्टीका च॥ वृषाकपिः ४१ शुष्मवाजः ४२ कपिलः ४३ पिङ्गलः ४४ अरणिः ४५ अगिरः ४६ पाचनः ४७ विश्वप्सा ४८ छागवाहनः ४९ कृष्णार्चिः ५० जुहूवारः ५१ उदर्चिः ५२ भास्करः ५३ वसुः ५४ शुभ्रः ५५ हिमारातिः ५६ तमोनुत् ५७ सुशिखः ५८ सप्तजिह्वः ५९ अयपारिकः ६० सर्व्वदेवमुखः ६१। इति जटाधरः॥ *॥ अस्य गुणाः। वायुकफस्तम्भशीतकम्पनाशकत्वं। आमाशयाजनकत्वं। रक्तपित्तप्रकोपकत्वञ्च। इति राजवल्लभः॥ अपिच।
"अग्नेर्दुर्द्धर्षता ज्योतिस्तापः पाकः प्रकाशनम्।
शोको रोगो लघुत्वं सततञ्चोर्द्ध्वभासिता"॥
इति मोक्षधर्म्मः॥ *॥
अथ कर्म्मविशेषेऽग्नेर्नामानि। यथा,—
"लौकिके पावको ह्यग्निः प्रथमः परिकीर्त्तितः"१।
लौकिके नवगृहप्रवेशादौ।
"अग्रेस्तु मारुतो नाम गर्भाधाने विधीयते २।'
पुंसवने चन्द्रनामा ३ शुङ्गाकर्म्मणि शोभनः ४॥
सीमन्ते मङ्गलो नाम ५ प्रगल्भो जातकर्म्मणि ६।
नाम्नि स्यात् पार्थिवो ह्यग्निः ७ प्राशने च शुचिस्तथा ८
सत्यनामाथ चूडायां ९ व्रतादेशे समुद्भवः १०"।
व्रतादेशे उपनयने।
"गोदाने सूर्य्यनामा च ११ केशान्ते ह्यग्निरुच्यते १२"।
गोदाने गोदानाख्यसंस्कारे। केशान्ते समावर्त्तने।
"वैश्वानरो विसर्गे तु १३ विवाहे योजकः स्मृतः १४'।
विसर्गे साग्निकर्त्तव्यकर्म्मविशेषे।
"चतुर्थ्यान्तु शिखीनाम १५ धृतिरग्निस्तथापरे १६"।
चतुर्थ्यां विवाहान्ते चतुर्थीहोमे। अपरे धृतिहोमादौ।
'प्रायश्चित्ते विधुश्चैव १७ पाकयज्ञे तु साहसः १८"।
प्रायश्चित्ते प्रायश्चित्तात्मकमहाव्याहृतिहोमादौ।
पाकयज्ञे पाकाङ्गकहोमे वृषोत्सर्गगृहप्रतिष्ठादौ।
"लक्षहोमे च वह्निः स्यात् १९ कोटिहोमे हुताशनः २०।
पूर्णाहुत्यां मृडो नाम २१ शान्तिके वरदस्तथा २२॥
पौष्टिके बलदश्चैव २३ क्रोधाग्निश्चाभिचारिके २४।
वश्यर्थे शमनो नाम २५ वरदानेऽभिदूषकः २६॥
कोष्ठे तु जठरो नाम २७ क्रव्यादोऽमृतभक्षणे २८"॥
इति गोभिलपुत्त्रकृतसंग्रहः॥ *॥ अथ तस्य रूपं। यथा,—
"पिङ्गभ्रूश्मश्रुकेशाक्षः पीनाङ्गजठरोऽरुणः।
छागस्थः साक्षसूत्रोऽग्निः सप्तार्च्चिः शक्तिधारकः"॥
इत्यादित्यपुराणं॥ *॥ अथ होमीयाग्नेः शुभलक्षणानि। यथा,—
"अर्च्चिष्मान् पिण्डितशिखः सर्पिःकाञ्चनसन्निभः।
स्निग्धः प्रदक्षिणश्चैव वह्निः स्यात् कार्य्यसिद्धये"॥
इति वायुपुराणं॥ *॥ वैद्यकमते अग्निस्त्रिधा भौमः १ दिव्यः २ उदर्य्यः ३ तत्राद्यः काष्ठेन्धनप्रभवः ऊर्द्ध्वज्वलनस्वभावः पचनस्वेदादिसमर्थश्च।

द्वितीयः उदकेन्धनः पर्य्यग्ज्वलनशीलो वाडवः । तृतीयः उभयेन्धनः पर्य्यग्ज्वलनशीलः भुक्तस्याहारस्य रसादिपरिणामनिमित्तश्च विद्युदादिश्च । इति विजयरक्षितोपरि सन्देहभञ्जिका ॥ * ॥ अपिच,—

"मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः ।
कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः" ॥

तेषां कार्य्यं यथा,—

"विषमोवातजान्रोगान् तीक्ष्णः पित्तनिमित्तजान् ।
करोत्यग्निस्तथा मन्दो विकारान् कफसम्भवान् ॥
समासमाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते ।
स्वल्पापि नैव मन्दाग्नेर्विषमाग्नेस्तु देहिनः ॥
कदाचित् पच्यते सम्यक् कदाचिच्च न पच्यते ।
तीक्ष्णाग्निरिति तं विद्यात् समाग्निः श्रेष्ठ उच्यते" ॥

इति माधवकरः ॥ अत्यन्ततीक्ष्णाग्निरेव हि भस्मक उच्यते । स तु आहाराभावे शोणितादीन् धातून् पाचयित्वा आशु मारयति । इति रक्षितः ॥ * ॥ (देहजन्याग्नेः नादोत्पादकत्वं यथा सङ्गीतदर्पणे,—

"आत्मना प्रेरितं चित्तं वह्निमाहन्ति देहजम् ।
ब्रह्मग्रन्थिस्थितं प्राणं स प्रेरयति पावकः ॥
पावकप्रेरितः सोऽथ क्रमादूर्द्ध्वपथे चरन् ।
अतिसूक्ष्मध्वनिं नाभौ हृदि सूक्ष्मं गले पुनः ॥
पुष्टं शीर्षे त्वपुष्टञ्च कृत्रिमं वदने तथा ।
आविर्भावयतीत्येवं पञ्चधा कीर्त्यते बुधैः ॥
नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः ।
जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते" ॥

अग्नेः सर्व्वसाक्षित्वादि यथा रामायणे,—

"त्वमग्ने सर्व्वदेवानां शरीरान्तरगोचरः ।
त्वं साक्षी मम देहस्थस्त्राहि मां देवसत्तम" ।

यथा च भारते,—

"आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च ।
द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ॥
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये ।
धर्म्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्" ॥

अस्य सर्व्वप्रथममाराध्यत्वं ऋग्वेदस्य सर्व्वप्रथमसूक्ते उक्तं यथा,—"अग्निमीले पुरोहितम्" । इत्यादि । विष्णुः । सूर्य्यः ।) अग्निकोणाधिपतिः । इत्यमरः । चित्रकवृक्षः । रक्तचित्रकः । भल्लातकः । निम्बुकः ॥ पित्तं । स्वर्णं । इति राजनिर्घण्टः ।

अग्निकः, पुं, (अग्नि + सादृश्ये कप्रत्ययः) इन्द्रगोपनामरक्तवर्णकीटः । इति हेमचन्द्रः ॥

अग्निकणः, पुं, (अग्नेः कणः । अग्नि + कणः ।) अग्निकणा । स्फुलिङ्गः । इत्यमरः ॥

अग्निकारिका, स्त्री, (अग्नि + कारिका ।) अग्निकार्य्यं । इति हेमचन्द्रः ॥

अग्निकार्य्यं, क्ली, (अग्नि + कार्य्यं ।) अग्नावर्पणं कार्य्यं । हविर्दानादिपूर्व्वकाग्निज्वालनं । तत्पर्य्यायः । अग्नीन्धनं २ अग्नीधा ३ अग्निकारिका ४ । इति हेमचन्द्रः ॥ (होमादौ हविर्दानादिपूर्व्वकाग्निज्वालनं । अग्नौ सायं प्रातः समिद्धोमानुष्ठानं । यथा—

"उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ।
आचारमग्निकार्य्यञ्च सन्ध्योपासनमेव च" ॥

इति मनुः ।)

अग्निकाष्ठं, क्ली, (अग्नि + काष्ठं ।) अगुरु । इति राजनिर्घण्टः ॥

अग्निकुक्कुटः, पुं, (अग्नेः कुक्कुटइव ।) ज्वलदग्निवृणोल्का । ज्वलन्त नुडा इति ख्यातः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अग्निकोणं, क्ली, (अग्नेः अग्निदेवेन अधिष्ठितमित्यर्थः कोणं ।) पूर्व्वदक्षिणकोणं । तत्कोणाधिपतिरग्निः । इति ज्योतिषं ॥ यथा हलायुधधृतं,—

"गत्वैव तीर्थं कर्त्तव्यं श्राद्धं तत्प्रीतिहेतुकम् ।
पूर्व्वाह्णेऽप्यथवा प्रातर्देशे स्यात् पूर्व्वदक्षिणे" ॥

पूर्व्वदक्षिणे अग्निकोणे । इति प्रायश्चित्ततत्त्वं ॥

अग्निक्रीडा, स्त्री, (अग्निभिः क्रीडा ।) अग्निखेला । खधूपादित्यागः । आतसवाजीति ख्याता ॥

अग्निगर्भः, पुं, (अग्निः गर्भे अभ्यन्तरे यस्य सः ।) अग्निजारवृक्षः । सूर्य्यकान्तमणिः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (शमीवृक्षः । त्रि । अग्नियुक्तगर्भविशिष्टः । यथा,—"अग्निगर्भां शमीमिव" । इति शाकुन्तले ।)

अग्निगर्भा, स्त्री, (अग्निः गर्भे यस्याः सा ।) महाज्योतिष्मतीवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (शमीवृक्षः ।)

अग्निचित्, पुं, (अग्निं चितवान् स्वयम् इति चि चयने । अग्नौ चेरिति क्विप् तुगागमश्च ।) अग्निहोत्री । साग्निकः । इत्यमरः ॥ (यथा रघुवंशे—

"विदधे विधिमस्य नैष्ठिकं ।
यतिभिः सार्द्धमनग्निमग्निचित्" ।)

अग्निजः, पुं, (अग्नि + जन् + ड ।) अग्निजारवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (त्रि । अग्निजातमात्रे ।)

अग्निजातः, पुं, (अग्नेः जातः । अग्नि + जन् + क्त ।) अग्निजारवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः । (त्रि । अग्निजातमात्रे ।)

अग्निजारः, पुं, (अग्नि + जार, अग्निं जठराग्निं जारयति परिपाकशक्तिं प्रदाय वर्द्धयति जॄ कर्म्मण्यण् इति पाणिनिसूत्रं) औषधविशेषः । अस्य पर्य्यायः । अग्निनिर्य्यासः २ अग्निगर्भः ३ अग्निजः ४ वडवाग्निमलः ५ जरायुः ६ अर्णवोद्भवः ७ अग्निजातः ८ अग्निजालः ९ सिन्धुफलः १० । अस्य गुणाः । कटुत्वं । उष्णत्वं । कफवायुसन्निपातशूलातिशीतरोगनाशित्वं । पित्तप्रदत्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥

अग्निजालः, पुं, (अग्नि + जालः ।) अग्निजारवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अग्निज्वाला, स्त्री, (अग्नेरिव ज्वाला यस्याः । अग्नेः ज्वाला इति वा ।) जलपिप्पली । धातकीवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ अग्निशिखा ॥ (लाङ्गलिकी ।)

अग्निजिह्वा, स्त्री, (अग्नेः जिह्वा ।) लाङ्गलीवृक्षः । विषलाङ्गला इति भाषा । इति राजनिर्घण्टः ॥ अग्नेः काल्यादिसप्तार्च्चींषि । इति जटाधरः ॥ अग्नेः सप्तशिखाः । तासां नामाटिकं सप्तजिह्वशब्दे द्रष्टव्यं ॥ (योगविशेषः । यथा,—

"सप्तषष्ठ्यादितिथयः सोमवारादिभिर्युताः ।
अग्निजिह्वाः सप्त योगा मङ्गलेष्वतिगर्हिताः" ॥

इति । योगशास्त्रे । )

अग्निदमनी, स्त्री, (अग्नेः जठरानलस्य दमनी ।) क्षुपविशेषः । अस्य पर्य्यायः । वह्निदमनी २ बहुकण्टका ३ वह्निकण्टारिका ४ गुच्छफला ५ क्षुद्रफला ६ क्षुद्रदुःस्पर्शा ७ क्षुद्रकण्टारिका ८ मर्त्येन्द्रमाता ९ दमनी १० । अस्याः गुणाः । कटुत्वं । उष्णत्वं । रूक्षत्वं । वातकफगुल्मप्लीहनाशित्वं । रुचिकारित्वं । अग्निदीपनत्वं । हृद्यत्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥

अग्निदीपनः, त्रि, (अग्नेः जठरानलस्य दीपनः ।) अग्निवर्द्धकः । जठराग्निकारकौषधविशेषः । यथा रसेन्द्रचिन्तामणौ,—

"पारदान्तलवङ्गगन्धकं,
भागयुग्ममरिचेन मिश्रितम् ।
तत्र जातिफलमर्द्धभागिकं,
तिन्तिडीफलरसेन मर्दितम् ॥
वह्निमान्द्यदशवक्त्रनाशनो,
रामबाण इति विश्रुतो रसः ।
सग्रहग्रहणिकुम्भकर्णकामवातखरदूषणं जयेत् ॥
दीयते तु शाणकानुमानतः,
सद्य एव जठराग्निदीपनः" ।
"हरीतकी तथा शुण्ठी भक्ष्यमाणा गुडेन वा ।
सैन्धवेन युता वा स्यात् सातत्येनाग्निदीपनी" ॥

इति च भावप्रकाशः ॥

अग्निदीप्ता, स्त्री, (अग्नि + दीप्ता) महाज्योतिष्मतीवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (त्रि । वह्निज्वलितः । यथा,—"नापि कर्णाकारफलकैर्बाणैर्नापि विषाक्तैर्नाप्यग्निदीप्तफलकैः" इति कुल्लूकभट्टः ।)

अग्निदेवा, स्त्री, (अग्निः देवः अधिष्ठात्री देवता अस्याः इति) कृत्तिकानक्षत्रं । इति हेमचन्द्रः ॥ (पुं, अग्निदेवः अग्निरूपो देवः । अग्निः देवः अस्य इति विग्रहे त्रि । अग्निपूजकः ।)

अग्निनिर्य्यासः, पुं, अग्निजारवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अग्निप्रस्तरः, पुं, अग्निजनकपाषाणः । चकमकीर पाथर इति भाषा ॥

अग्निवर्द्धनं, क्ली, (अग्नेः जठरानलस्य वर्द्धनं वृद्धिकारकम् ।) जठराग्निवृद्धिकारकम् । यथा,—

"जीरकं रुचिकृत् स्वर्य्यं गन्धाढ्यं कफवातनुत् ।
पाके च कटुतीक्ष्णोष्णं लघुपित्ताग्निवर्द्धनम्" ॥

इति राजवल्लभः ॥

अग्निभं, क्ली, (अग्निरिव भाति इति । अग्नि + भा + क ।) स्वर्णं । इति राजनिर्घण्टः ॥

अग्निभूः, पुं, (अग्नेर्भवतीति । अग्नि + भू + क्विप् ।) कार्त्तिकेयः । इत्यमरः ॥ (पुरा किल तारकासुरेण उत्पीडितानां देवानां रक्षार्थं शिवेन

अग्निरूपं स्ववीजं वह्निमुखे क्षिप्तं। तेन अग्निना कृत्तिकासु क्षिप्तं। ताश्च देवागतगर्भरक्षार्थं शरवनं प्रविश्य प्रसूता। तेन अग्निभूरिति कार्त्तिकेयः। जले स्त्री। इति वेदपुराणे॥ यथाह मनुः,—

"अग्नौ दत्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः"॥

अग्निभूति, पुं, (अग्नि+भू+क्तिः।) बौद्धभेदः। सच शेषजैनाचार्य्यशिष्यः। इति हेमचन्द्रः॥

अग्निमणि, पुं, सूर्य्यकान्तमणिः। इति जटाधरः॥

अग्निमन्थ, पुं, (अग्निं मथ्नाति इति। मन्थ विलोडने। कर्म्मणि अण्।) गणिकारिकावृक्षः। इत्यमरः॥ (यथा वैद्यके,—

"अग्निमन्थः श्वयथुघ्नः वीर्य्योष्णः कफवातहृत्।
पाण्डुनुत् कटुकस्तिक्तस्तुवरो मधुरोऽग्निदः"॥

अग्निमन्थकुसुमशाकस्तु—

"अग्निमन्थभववालसुनीता
सम्प्रतप्तमुदके सुसाधिता।
तक्रतप्तघृतयुक्तमार्चिता
हिङ्गुना जनितवासवासिता"॥

अपिच—

"अग्निमन्थोऽथ हृद्यश्च त्रिदोषशमनः सरः।
आध्मानच्छर्द्दिहा शोथचक्षूरोगविनाशनः"॥)

अग्निमारुति, पुं, (अग्नौ जठराग्निविषये मारुतिः हनूमान् इव। तस्य जठराग्नौ वातापिप्रभृतयो राक्षसा भस्मीभूता आसन्। इत्यसौ अग्निमारुतिरुच्यते) अगस्त्यमुनिः। इति हेमचन्द्रः॥

अग्निमुखः, पुं, (अग्निः मुखं यस्य, बहुव्रीहिः।) देवता। ब्राह्मणः। इति मेदिनी॥ चित्रकवृक्षः। भल्लातकः। इति विश्वः॥ (स्त्री। अग्नेः पञ्चसु मुखेषु।)

अग्निमुखी, स्त्री, (अग्निरिव मुखं यस्याः। बहुव्रीहिः।) भल्लातकी (भेला)। इत्यमरः॥ लाङ्गलिकी। इति राजनिर्घण्टः॥

अग्निरक्षण, क्ली, (अग्नेः रक्षणम्। षष्ठीतत्पुरुषः।) अग्न्याधानं। अग्निहोत्रं। इति हेमचन्द्रः॥

अग्निरजः, [स्] पुं, (अग्नेः रज स्फुलिङ्ग इव॥) इन्द्रगोपाख्यकीटः। इति हेमचन्द्रः॥ (स्त्री— अग्निवीर्य्यं। स्वर्णं)।

अग्निरुहा, स्त्री, मांसरोहिणी। इति राजनिर्घण्टः॥

अग्निवर्द्धक, त्रि, (अग्निं जठरानलं वर्द्धयति इति) अग्नि+वृध+णवुल्।) अग्निवृद्धिकारकौषधादिः। आग्नेयं। इति वैद्यकं॥

अग्निवल्लभ, पुं, (अग्नेः वल्लभः उद्दीपकत्वात् प्रियः।) सालवृक्षः। रालः। इति राजनिर्घण्टः॥

अग्निवाह, पुं, (अग्नेः वाहः।) धूमः। इति त्रिकाण्डशेषः॥ (छागः)।

अग्निबाहुः, पुं, (अग्नेः बाहुरिव।) धूमः। इति जटाधरः॥ (प्रियव्रतपुत्रः। स्वायम्भुवमनुपुत्रः।)

अग्निवित्, पुं, (अग्निं वेत्ति इति विद क्विप्।) अग्निचित्। अग्निहोत्री। इति हेमचन्द्रः॥ (अग्निसंस्कारश्च।)

अग्निवीज, क्ली, (अग्निः वीजं उत्पत्तिस्थानं यस्य तत्।) अग्नेः स्वर्णस्य उत्पत्तिं यथाह मनुः,—

"अपामग्नेश्च संयोगात् हेम रूप्यञ्च निर्बभौ।
तस्मात् तयोः स्वयोन्यैव निर्योको गुणवत्तरः"॥)

स्वर्णं। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अग्निवीर्य्य, क्ली, (अग्नेः वीर्य्यं साररूपं।) स्वर्णं। इति राजनिर्घण्टः॥ (त्रि, अग्नितुल्यशक्ये)।

अग्निशिख, क्ली, (अग्नेरिव शिखा केशरं अस्य।) स्वर्णं। इति राजनिर्घण्टः॥ कुङ्कुमं। कुसुम्भपुष्पं। इति मेदिनी॥ (लाङ्गलिवृक्षः)।

अग्निशिख, पुं, (अग्नेरिव शिखा रक्तवर्णा केशरः अस्य।) कुसुम्भवृक्षः। कुङ्कुमं। दीपः। वाणः। इति शब्दरत्नावली॥

अग्निशिखा, स्त्री, (अग्नेरिव शिखा केशरः यस्याः।) लाङ्गलिकीवृक्षः। विषलाङ्गला इति भाषा। वृक्षविशेषः। तस्य पर्य्यायः। विशल्या १ अनन्ता २ फलिनी ३ शक्रपुष्पी ४। इत्यमरः॥ (अग्नेः शिखा।) ज्वाला। आगुनेर शिष इति भाषा॥

अग्निशेखर, क्ली, (अग्नेरिव शेखरं केशरं अस्य।) कुङ्कुमं। इति राजनिर्घण्टः॥

अग्निष्टोम, [पुं, (अग्नीना स्तोमः। अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमा इति षः।) यज्ञविशेषः। इति शब्दरत्नावली॥ तस्य विधिः। ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेतेति वाक्यविहितज्योतिष्टोमनामकयागविशेषस्य गुणविकारोऽग्निष्टोमो नाम। तस्य कालो वसन्तः। तत्राधिकारी अधीतवेद आहिताग्निश्च। द्रव्यं सोमः। देवता इन्द्रवाय्वादयः। ऋत्विजः षोडश। तेषाञ्च चत्वारो गणाः। होतृगणः १ अध्वर्य्युगणः २ ब्रह्मगणः ३ उद्गातृगणः ४। एकैकस्य गणस्य चत्वारश्चत्वारः। तत्र होतृगणे होता १ प्रशास्ता २ अच्छावाकः ३ ग्रावस्तोता ४। अध्वर्य्युगणे अध्वर्य्युः १ प्रतिप्रस्थाता २ नेष्टा ३ उन्नेता ४। ब्रह्मगणे ब्रह्मा १ ब्राह्मणाच्छंसी २ अग्नीध्र ३ पोता ४। उद्गातृगणे उद्गाता १ प्रस्तोता २ प्रतिहर्त्ता ३ सुब्रह्मण्यः ४। स च पञ्चाहसाध्यः। प्रथमदिने दीक्षा दीक्षणीयादितदङ्गानुष्ठानं। तत्र द्वितीयदिवसे प्रायणीययागः सोमलताक्रयणं। ततो द्वितीयतृतीयचतुर्थदिवसेषु प्रातःकाले सायंकाले च प्रवर्ग्योपसन्नामकयागानुष्ठानं। चतुर्थदिवसे प्रवर्ग्योद्वासनानन्तरं अग्नीषोमीयपश्वनुष्ठानं। तत्र यस्य यजमानस्य स्वस्य पितृपितामहप्रपितामहानां मध्ये केनापि वेदो नाधीतोऽग्निष्टोमो वा न कृतः स दुर्ब्राह्मणो भवति। तस्य दौर्ब्राह्मण्यपरिहारायाश्विनपशुः कर्त्तव्यः। यस्य यजमानस्य पितृपितामहप्रपितामहानां मध्ये केनापि सोमपानं न कृतं स्यात् तस्य सोमपानविच्छेददोषपरिहारार्थमैन्द्राग्नपश्वनुष्ठानं कर्त्तव्यं। इत्थं त्रयाणां पशूनां युगपदालम्भपक्षे एकस्मिन्नेव यूपे त्रयाणां पशूनां बन्धनं। इत्थं पशुत्रयानुष्ठानं चतुर्थदिवसे तस्मिन्नेव दिने वा तृतीयभागे उत्थाय प्रयोगारम्भः कार्य्यः। ... मात्राच्छादनं। मात्राणि च ग्रहचमसा स्था... चेति। तत्र ग्रहमात्राणि वितस्तिमात्रा... उलूखलाकाराणि। ऊर्द्ध्वमात्राणि चमसमात्रा... तावत्परिमितान्येव तिर्य्यगाकृतीनि कोणच... चतुर्विंशतिधारणार्थदण्डयुक्तानि। स्था... मार्त्तिक्य। ततः आरभ्य सोमलताकण्ड... सोमरसं निष्कास्य निष्कास्य ग्रहेषु चमसेषु हो... कर्त्तव्यः। तत्र सूर्य्योदयानन्तरं आग्नेयपशुयाग... कर्त्तव्यः। एवमुक्थ्यपर्य्यायान्ते कृते प्रातःसव... समाप्तिः। ततो माध्यन्दिनसवनं। तत्र दक्षिण... दानं। दक्षिणा च द्वादशोत्तरशतं गावः। ... स्तृतीयसवनं। इत्थं प्रातःसवनमाध्यन्दिनसव... तृतीयसवनरूपसवनत्रयात्मकः अग्निष्टोम... धानयागः। इतरेऽङ्गयागाः। तृतीयसवनसम... शुक्तरमवभृथयागः। उदके वरुणदेवताकपुर... डाशहोमः। तदनन्तरमनुबन्ध्या पशुयाग... तत्र गौः पशुः। तस्य कलिनिषिद्धत्वात् त... च नित्यत्वात् तत् स्थाने आमीक्षायागः। त... उदयनीया ततः उदवसानीया। सा च पञ्चम... दिवसे यावद्रात्रि कर्त्तव्या। तत्समाप्तावग्निष्टोम... यागसमाप्तिः। इत्यग्निष्टोमयागीयपदार्थकल... सूची॥

अग्निष्ठ, पुं, (अग्नौ तिष्ठतीति। अग्नि+स्था+क...) लौहमयतण्डुलादिभर्जनपात्रं। इति त्रिकाण्डशेषः॥ (कड़ा इति भाषा)।

अग्निसख, पुं, (अग्नेः सखा इति समासे राजाह... सखिभ्यष्टच् इति समासान्तष्टच्।) वायुः... वायुसखोऽग्निरिति दर्शनात्॥

अग्निसन्दीपन, त्रि, (अग्नेः सन्दीपनम्। सम्+दीप्+ल्युट्।) वह्निवर्द्धकौषधादि। यथा,—

"एला लवङ्गनागपुष्पाणां माषोत्तरविवर्द्धिता।
मरिच पिप्पली शुण्ठी चतु पञ्चषडुत्तरा॥
द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावती सितशर्करा।
चूर्णमेतत् प्रयोक्तव्यमग्निसन्दीपनं परं"॥

इति भावप्रकाशः॥

अपि च।

"अग्निसन्दीपनं हृद्यं लवणार्द्रकभक्षणं"।

इति राजवल्लभः॥

अग्निसम्भव, पुं, (अग्निः सम्भवो यस्य सः। अग्नि+सम्+भू+अप्।) अरण्यकुसुम्भ। इति राजनिर्घण्टः॥ (कार्त्तिकेयः। त्रि। अग्निसमुत्पन्न।)

अग्निसहाय, पुं, (अग्नेः जठरानलस्य सहायः उद्दीपकः। कपोतमांसस्य अग्निवर्द्धकत्वात्।) वनकपोतः। इति राजनिर्घण्टः॥ (अग्नेः सहायः बन्धुः। वायुः।)

अग्निसार, क्ली, (अग्नेरिव सारः बलं यस्य।) रसाञ्जनं। इति राजनिर्घण्टः॥

अग्निस्तम्भन, क्ली, (अग्नेः स्तम्भनम्। षष्ठीतत्पुरुषः।) मन्त्रौषधिद्वारा अग्नेर्दाहिकाशक्ति निवारणं। तद्यथा,—

"मानूरस्य वसा ग्राह्या जलौका तत्र पेषयेत्।

हस्तौ तु लेपयेत्तेन अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ॥
मालूरस्य स्थाने मातुषस्य इति वा पाठः ॥१॥
शाल्मलीरसमादाय खरसूत्रे निधापितं ।
अग्न्यागारे क्षिपेत्तेन अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ॥२॥
वायसी उदरं गृह्य मण्डूकवसया सह ।
गुटिका कारयेत्तेन ततोऽग्निं प्रविशेद्वशी ॥
एवमेतत् प्रयोगेण अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ॥३॥
रक्ताषाटरूषमूलन्तु अवक्त्यश्च मूलकं ॥
दिव्य स्तम्भयते क्षिप्र पय'पिबेद् जलान्तक ॥४॥
मुण्डीतका वचा कुष्ठ मरीच नागरं तथा ॥
चर्व्विता च इम सद्यो जिह्वया ज्वलन लिहेत् ॥५॥
गोरोचना भृङ्गराज चूर्णीकृत्य घृतं सम ॥
दिव्यस्तम्भश्च पीत्वा स्यान्मन्त्रेणानेन वै तथा" ॥६॥
ओमह्णं अग्निस्तम्भन कुरु । इति गारुडे १८९ अध्याय ॥

अग्निष्वात्ता', पु, (अग्निना सुष्ठु यथा स्यात् एवम् आत्ता' भक्षिता, श्रौतस्मार्त्ताग्निदग्धा इत्यर्थः । मन्वादिस्मृतिषु मूर्द्धन्यषकारवान् एव पाठः । मूर्द्धन्यादेशस्तु न युक्तः ।) मरीचिपुत्त्रपितृगण-विशेष'। नित्यबहुवचनान्तशब्दोऽय। इति शब्दमाला,—
"विराट्सुता सोमसद साध्याना पितरः स्मृता ।
अग्निष्वात्ताश्च देवाना मारीच्या लोकविश्रुता" ॥
इति मनु ।

अग्निहोत्रं, क्ली, (अग्नये होत्रम् अत्र इति बहुव्रीहि ।) यज्ञविशेष । तत् द्विविध। मासमाध्य यावज्जीवनसाध्यञ्च। द्वितीये विशेषोऽयं। तदग्नौ यावज्जीव प्रत्यह प्रात साय हवन। तदग्निना यागकर्त्तृदाहश्च। इति स्मृति ॥ तत्र क्रमो यथा। ब्राह्मणक्षत्त्रियवैश्यानां कृतदारपरिग्रहाणा काणत्वान्धत्वबधिरत्वपङ्गुत्वादिदोषरहिताना वर्णक्रमेण वसन्तग्रीष्मशरत्सु अग्न्याधान विहित । अग्नयस्त्रय गार्हपत्य १ दक्षिणाग्नि २ आहवनीय ३। एषामाधानं नाम देशविशेषे तत्तन्मन्त्रैः स्थापन । तेष्वग्निषु सायकाले प्रात काले चाग्निहोत्रहोम कर्त्तव्य । अग्निहोत्र नाम होमस्य नामधेय। अग्नये होत्र होमो यस्मिन् कर्म्मणीति व्यधिकरणबहुव्रीहि । तत्र द्रव्याणि दश। पयः१ दधि २ यवागू ३ घृतं ४ ओदन ५ तण्डुला' ६ सोमरस ७ मास ८ तैल ९ माषा १०। सम्प्रति कलियुगे पयसा तण्डुलैर्य्यवैर्वा च होम-शिष्टाचारप्रसिद्ध' । तत्र एक ऋत्विक् नित्य होम यजमानेन वा कर्त्तव्य ऋत्विजा वा कारयितव्य । अमावास्यायान्तु रात्रौ यवागूद्रव्येण यजमानेनैव कर्त्तव्य । स चाग्निहोत्रहोम आरम्भप्रभृति यावज्जीवन कर्त्तव्य' । प्रथमदिने पूर्व्वोक्ताना दशाना द्रव्याणा मध्ये सम्प्रति प्रचलद्रूपाणाञ्च मध्ये येन द्रव्येण प्रथमाग्निहोत्रहोम कृत तेनैव द्रव्येण यावज्जीवनं कर्त्तव्य' । प्रथमहोमस्य यस्मिन् दिने अग्न्याधान कृत तस्मिन् दिने सायकाले आरम्भणीय । तत्र प्रातर्होमे सूर्य्यो देवता सायंकाले अग्निर्देवता। आधानानन्तरं प्रथमपौर्णमास्या दर्शपूर्णमासयागारम्भः कर्त्तव्य । दर्शपूर्णमासाभ्या स्वर्गकामो यजेतेति विधिवाक्य। तत्र षड्यागा'। पौर्णमास्या त्रय'। अमाया त्रय । पौर्णमास्यामाग्नेयाग्नीषोमीयोपांशुयागास्त्रयो यागा'। अमावस्यायामाग्नेयैन्द्रदधिपयो यागास्त्रय । तत्रामायां कर्त्तव्ययागत्रयस्य दर्शपदं नामधेय। पौर्णमास्या कर्त्तव्ययागत्रयस्य पूर्णमासपद नामधेय। दर्शश्च पूर्णमासश्च दर्शपूर्णमासाविति द्वन्द्व । पौर्णमासयागस्य प्राथमिकत्वेऽपि अल्पाच्तरमिति पाणिनीयानुशासनानुसारेण दर्शशब्दस्याल्पाच्कत्वात् पूर्व्वनिपात' । दर्शपूर्णमासावपि यावज्जीव कार्य्यौ। तत्रापि त्रयाणा वर्णानामुपरि लिखितान्यत्वाद्यधिकारप्रतिबन्धकीभूतदोषसम्बन्धाभाववता कृताग्निधानाना सपत्नीकानामधिकार । सामान्यत' पर्व्वण्यारम्भ प्रतिपदि याग इति परिभाषा। तत्राकृतसोमयागस्य यजमानस्य पौर्णमास्यामाग्नेयपुरोडाशयाग आज्येनोपांशुयाजयाग । अमायान्तु आग्नेयपुरोडाशयाग' ऐन्द्राग्नपुरोडाशयाग' । कृतसोमयागस्य यजमानस्य तु पौर्णमास्यामाग्नेयपुरोडाशयाग आज्येनोपांशुयाजयाग' अग्नीषोमीयपुरोडाशयागः। अमायान्तु आग्नेयपुरोडाशयाग ऐन्द्रपयोयाग' ऐन्द्रदधियागश्चेति त्रयः। तत्र ऋत्विजश्चत्वार । अध्वर्य्यु १ ब्रह्मा २ होता ३ अग्नीदिति ४। यजुर्वेदकर्म्मकर्त्ता अध्वर्य्यु । ऋग्यजु सामवेदत्रयकर्म्मकर्त्ता ब्रह्मा। ऋग्वेदकर्म्मकर्त्ता होता। अग्नीत्तु प्रायशोऽध्वर्य्योरेवानुयायी तत्प्रेरितकर्म्मकर्त्ता। पुरोडाशो व्रीहितण्डुलैर्य्यवतण्डुलैर्वा कर्त्तव्यः। अग्निहोत्रवद्येन द्रव्येणारम्भ कृतस्तेनैव द्रव्येण यावज्जीव याग कर्त्तव्य । आरम्भवेलायामिच्छैव नियामिकेत्यादिदिङ्मात्रमिदं। इति यजुर्वेद ॥*॥ यज्ञाग्निरक्षय' । तत्पर्य्याय । अग्न्याधान २ अग्निरक्षण ३। इति हेमचन्द्र ॥

अग्निहोत्र, पु, अग्नि । घृत । इति मेदिनी ॥

अग्निहोत्री, [न्] पु, (अग्निहोत्रम् अस्यास्तीति। अत इनिठनाविति इनि ।) अग्निहोत्रयागकर्त्ता। तत्पर्य्याय । अग्निचित् २ आहिताग्नि ३। इति हेमचन्द्र ॥ अग्निचित् ४। इत्यमर ॥ साग्निक ५। इति पुराणं ॥
("अग्निहोत्रमपविध्याग्नीन् ब्राह्मण' कामकारतः ।
चान्द्रायणं चरेन्मास वीरहत्यासमं हि तत्" ॥
इति मनु ।)

अग्नीध्र', पु, (अग्नि + इन्ध + रन् ।) ऋत्विग्विशेष' । तस्य कर्म्माग्निरक्षण। इत्यमर' ॥ (अग्निद्वारा वरणीयो ऋत्विग्विशेष' । काम्याया प्रियव्रतात् उत्पन्नो नृपभेद । स्वायम्भुवमनुपुत्त्रो राजभेद'।)

अग्नीध्रा, स्त्री, अग्निकार्य्य । हविर्द्दानादिपूर्व्वकाग्निज्वालन । इति हेमचन्द्र' ॥

अग्नीन्धनं, क्ली, (अग्नौ इन्धनम् । अग्नि + इन्ध् + करणे ल्युट् ।) अग्निकार्य्य । हविर्द्दानादिपूर्व्वकाग्निज्वालनं । इति हेमचन्द्र' ॥ यथाह मनु:—
"अग्नीन्धनं भैक्षचर्य्यामध' शय्या गुरोर्हितम् ।
आसमावर्त्तनात् कुर्य्यात् कृतोपनयनो द्विज" ॥

अग्न्यस्त्र, क्ली, (अग्निमयम् अस्त्रम् । कर्म्मधारयः ।) आग्नेयास्त्रं। अग्निघटितास्त्रं। बन्दूककामान इत्यादिभाषा ॥

अग्न्याधानं, क्ली, (अग्ने आधानं । अग्नि + आ + धा + ल्युट् ।) श्रुतिविहिताग्निसंस्कार । अग्निरक्षणं । अग्निहोत्रं । इति हेमचन्द्र' ॥

अग्न्यालय, पु, (अग्ने आलय ।) यज्ञाग्न्याधारकुण्ड । इति जटाधर ॥

अग्न्युत्पात, पुं, (अग्ने उत्पात ।) आकाशादिषु अग्निविकार । धूमकेतूल्कापातादि । अग्निनिर्ह्लोत्पातो वा। स तु मन्त्रादिद्वारा अग्नेर्दाहशक्तिनिवारण। तत्पर्य्याय' । उपाहित २। इत्यमरस्तट्टीका च ॥

अग्रं, क्ली, (अग्यते अगति वा। अग कुटिलाया गतौ ऋज्रेन्द्रेति साधु ।) उपरिभाग । आगा इति भाषा। अस्य पर्य्याय । शिर २ शिखरं ३। इत्यमर ॥ पुरस्तात् । अवलम्बनं। परिमाणं । प्रान्तं । समूह । इति मेदिनी ॥ (भिक्षाविशेषः । ग्रासचतुष्टयम् । "ग्रासप्रमाणा भिक्षास्यादग्र ग्रासचतुष्टयम्" ॥ इति स्मृतेः ।)

अग्र, त्रि, श्रेष्ठ । उत्तम । इत्यमरः ॥ प्रधानं । अधिक । प्रथम । इति मेदिनी ॥

अग्रगण्य, त्रि, (अग्रे गण्य' । गणसङ्ख्याने, यत् ।) अग्रगणनीय । यथा,—
"श्रमनभवनयाने यद्भवानग्रगण्य" ।
इति महानाटक ॥

अग्रगामी [न्] त्रि, (अग्रे गच्छतीति । अग्र + गम् + णिनि ।) अग्रे गमनकर्त्ता। अग्रेसर'। इति हेमचन्द्र ॥

अग्रज, पु, (अग्रे जात इति सप्तम्या जने ड: ।) ज्येष्ठभ्राता । तत्पर्य्यायः । पूर्व्वज २ अग्रिय ३। इत्यमरः ॥ (यथाह मनु,—
"सर्व्वेषा धनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः" ।)
ब्राह्मणः। इति हेमचन्द्र' ॥ अग्रे जाते त्रि ॥

अग्रजङ्घा, स्त्री, (अग्रा जङ्घा अवयवावयविनोरभेदात् कर्म्मधारय । अथवा जङ्घाया अग्र षष्ठीतत् राजदन्तादित्वात् परनिपात') प्रतिजङ्घा। जङ्घाग्रभागः । इति हेमचन्द्र ॥

अग्रजन्मा, [न] पु, (अग्रे जन्म यस्य स बहुव्रीहि',) (जन् + भावे मनिन् ) ब्राह्मण: ॥ इत्यमरः ॥
"अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्म्माण्यग्रजन्मनः" ॥
मनु । ज्येष्ठभ्राता। ब्रह्मा। इति विश्व ॥

अग्रजातक, पु, (अग्रे जातं जन्म यस्य स बहुव्रीहि', (जन् + भावे क्त ) ब्राह्मण । समासान्त कः। इति शब्दरत्नावली ॥

अग्रजाति, पुं, (अग्रे जातिर्जन्म यस्य सः) (जन् + भावे क्तिन्) ब्राह्मणः । इति हेमचन्द्रः ॥

अग्रणीः, त्रि, (अग्रे नीयतेऽसौ अग्र + नी + क्विप् अग्रग्रामाभ्याञ्च इति पाणिनिसूत्रेण णत्वं ।) (वह्नौ च पुं, यथा चास्याग्रणीत्वं तथाग्निशब्दे निरुक्तव्याख्यायामुक्तम्) अग्रिमः । श्रेष्ठः । इति हेमचन्द्रः ॥

अग्रतः, [स्] (अग्रे अग्र + सप्तम्यर्थे तस् अव्य) अग्रे । प्रथमे । तत्पर्य्यायः । पुरतः २ पुरः ३ । इत्यमरः ॥

अग्रतःसर, त्रि, (अग्रतः अग्रे सरति गच्छति यः सः अग्रतः + सृ + टः । स्त्रियां ङीप् अग्रतःसरी) (पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः इति पाणिनिसूत्रम्) अग्रगामी । इत्यमरः ॥

अग्रदानी, [न्] पुं, (अग्रे दानं प्रेतोद्देशेन तिलादर्पणं ग्राह्यत्वेन विद्यतेऽस्य अग्र + दान + विद्यमानार्थे इन्) पतितब्राह्मणविशेषः । स च प्रेतसम्प्रदानकषडङ्गतिलादिद्रव्यग्राही । यथा,—

"लोभी विप्रश्च शूद्राणामग्रे दानं गृहीतवान् ।
ग्रहणे मृतदानानामग्रदानी बभूव सः" ॥

इति ब्रह्मवैवर्त्तपुराणं ॥ तत्पर्य्यायः । आग्रहारिकः २ । इति स्मृतिः ॥

अग्रपर्णी, स्त्री, (अग्रे पर्णं यस्याः सा जातित्वात् ङीप्) अजलोमा वृक्षः । इति रत्नमाला ॥ आलकुशी इति केचित् ॥

अग्रमांस, क्ली, (अग्रं प्रधानं मन्यते ज्ञायते यत् अग्र + मन् + सः । पृषोदरादित्वात् दीर्घः ।) हृदयं । इत्यमरः ॥ उदरमध्यवर्त्तिमांसवर्द्धनरूपरोगविशेषः । इति वैद्यकं ॥

अग्रयान, क्ली, (अग्रं प्रथमं यानं सेनागमनं) नासीरं । सेनाग्रगमनं । इति हेमचन्द्रः ॥

अग्रलोहिता, स्त्री, (अग्रमग्रभागः लोहितं रक्तवर्णं यस्याः सा बहुव्रीहिः) चिल्लीशाकः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अग्रबीज, पुं, (अग्रं शाखाग्रं बीजमुत्पत्तिकारणं यस्य सः बहुव्रीहिः । कलम इति भाषायाम्) वीजाग्रवृक्षमात्रं । स च कुरण्टादिः । इति हेमचन्द्रः ॥

अग्रसन्धानी, स्त्री, (अग्रे फलभोगात्पूर्व्वं सन्धीयते अन्विष्यते कार्य्यमनया अग्र + सम् + धा + करणे ल्युट् स्त्रियां ङीप्) यमपञ्जिका । जीवानां शुभाशुभकर्म्मलिखितं यमस्य पुस्तकं । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अग्रसर, त्रि, (अग्रे सरति गच्छति अग्र + सृ + टः ।) अग्रेसरः । अग्रगामी । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा,—"अग्रेसरो जघन्यानां") इति भट्टिकाव्ये ।

अग्रह, पुं, (नास्ति ग्रहः गार्हस्थ्याश्रमस्वीकारो यस्य सः बहुव्रीहिः । वानप्रस्थे । नास्ति गृहो स्थानं यस्य सः ।) स्थानशून्ये च । वानप्रस्थः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ अगृह इति पाठे गार्हस्थ्याश्रमवहिर्भूतः ॥

अग्रहायण, पुं, (हायनस्य वर्षस्य अग्रं । हस्वदीर्घिकालयोरिति सूत्रेण हा + ल्युट् युक् च ।) मासविशेषः । तस्य व्युत्पत्तिर्यथा,—"हायनस्याग्रोऽग्रहायणः निपातनात् परनिपातनत्वञ्च" । इत्यमरटीकायां भरतः ॥ मार्गशीर्षमासः । इति शब्दरत्नावली ॥ अस्य पर्य्यायः आग्रहायणिके जातफलं तत्कृत्यञ्च मार्गशीर्षे द्रष्टव्यम् ॥

अग्राह्य, त्रि, (न ग्राह्यः ग्रहणीयः ग्रह + कर्म्मणि । ण्यत् ग्रहणायोग्ये) अग्रहणीयः । ग्रहणायोग्यः यथा,—

"अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलं ।
शालग्रामशिलास्पर्शात् सर्व्वं याति पवित्रतां" ॥

इति तिथ्यादितत्त्वं ॥

अग्रिम, त्रि, (अग्रे भवः अग्र + डिमच्) प्रधानं । उत्तमः । इति हेमचन्द्रः ॥ ज्येष्ठः । अग्रजः । इति जटाधरः ॥

अग्रिमा, स्त्री, (अग्रे भवा अग्र + डिमच्) लवलीफलं । लोणा इति ख्याता । इति शब्दचन्द्रिका ॥

अग्रिय, त्रि, (अग्रे भवम् अग्र + घ) प्रधानं । इत्यमरः ॥

अग्रिय, पुं, (अग्रे भवः अग्र + घ) अग्रजः । ज्येष्ठभ्राता । इत्यमरः ॥

अग्रीय, त्रि, (अग्रे भवः अग्र + छ) प्रधानं । इत्यमरः ॥ अग्रजे पुं, । इति तट्टीकायां रमानाथः ॥

अग्रुः, स्त्री, (अङ्ग्यते ज्ञाप्यते गृह्यतेऽनया अगि + कु ऊङुत इति स्त्रियां वा ऊङ् । निपातनात् नलोपः ।) अङ्गुलिः । वेदप्रचुरप्रयोगोऽयं ॥

अग्रेगा, पुं, अग्रगामी । इति मुग्धबोधव्याकरणं ॥

अग्रेगू, पुं, (यो गच्छति यः अग्रे + गम् + क्विप् ऊचगमादीनामित्युपसङ्ख्यानमिति पाणिनिवार्त्तिकेन मलोपः अकारस्य ऊकारः ।) अग्रगामी । इत्युणादिवृत्तिः ॥

अग्रेदिधिषु, पुं, (दिधिं धैर्य्यं स्यति इन्द्रियदौर्ब्बल्यात् त्यजति दिधि + सो + अमृदृनभूजम्बुकम्बुककेलूकर्कन्धूदिधिषु इत्युणादिसूत्रेण कु षत्वञ्च दिधिषुः पुनर्भूर्योषित् अग्रे गणनीया दिधिषुः दिरूढा स्त्री यस्य सः बहु० हलदन्तात् सप्तम्याः सञ्ज्ञायामिति पाणिनिसूत्रेण अलुक् पुनर्भूविवाहकारिणि जने) दिरूढैव यस्य कुटुम्बिनी स द्विजः । द्विजः इत्युपलक्षणं । दिधिषुः परपूर्व्वाग्रे दिधिषुस्तत्पुरन्ध्रिकः । इति सामान्येन नाममालादर्शनात् । द्वितीयवारविवाहितपुत्रादिमती गृहिणीर स्वामी इति भाषा । इत्यमरः ॥

अग्रेदिधिषु, स्त्री, (प्रागनूढज्येष्ठभगिन्याः प्रागूढकनिष्ठभगिन्याः । अग्रे प्रथमे ज्येष्ठायां भगिन्यां विद्यमानायां गणनीया दिधिषुः ज्येष्ठा विवाहकालासहनरूपधैर्य्यलोपकारिणीति विग्रहे शाकपार्थिवादित्वात् समासः मध्यपदलोपश्च ।) अविवाहितज्येष्ठभगिनीसत्त्वे अग्रे विवाहिता कनिष्ठा । यथा,—

"ज्येष्ठायां विद्यमानायां कन्यायामुह्यतेऽनुजा ।
सा चाग्रे दिधिषुर्ज्ञेया पूर्व्वा च दिधिषुः स्मृता" ॥

इति देवलः । दिधिषूर्दीर्घोकारान्तोऽपि ॥

अग्रेवण, क्ली, (वनस्याग्रे राजदन्तादित्वात् निपातः अलुक् । वनं पुरगे आदित्वात् णत्वं) वनस्याग्रभागः । इति शब्दमाला ॥

अग्रेसर, त्रि, (अग्रे सरति गच्छतीति अग्रे + सृ + टः ।) अग्रे गमनकर्त्ता । तत्पर्य्यायः । पुरोगः २ प्रष्ठः ३ अग्रतःसरः ४ पुरःसरः ५ । इत्यमरः ॥ अग्रगामी ६ अग्रसरः ७ अग्रगः ८ पुरोगमः ९ पुरोगामी १० । इति हेमचन्द्रः ॥

अग्रेसरिक, त्रि, (अग्रेसरणं गमनम् अग्रे + सृ भावे अप् अग्रेसरे गमने प्रसृतः अग्रेसर + ठक् अग्रगामिनि ।) अग्रगामी । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अग्र्य, त्रि, (अग्रे भवः अग्र + यत् ।) प्रधानं । उत्तमः इत्यमरः । ज्येष्ठभ्रातरि पुं इति तट्टीकायां रमानाथः ॥

अघि इ ङ गतौ (अघि गतौ कर्म्मणि लट् ते इदितो नुम् धातोरिति पाणिनिसूत्रेण नुम् अङ्घ्यते कर्त्तरि लट् ते अङ्घते) । निन्दायां । आरम्भे । जवे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ जवो वेगगतिः । अङ्घते । ङ अङ्घते वायुर्वेगेन गच्छतीत्यर्थः । जवे एव कैश्चित् पठ्यते । इति दुर्गादासः ॥

अघ त् क तत्कृतौ । इति कविकल्पद्रुमः ॥ तत्कृतिः पापकृतिः । अघयति व्याधः । कर्म्मणो ऽर्थमध्यपाठादकर्म्मकोऽयं । तथा च,—

"धातोरर्थान्तरे वृत्ते धात्वर्थेनोपसङ्ग्रहात् ।
प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्म्मणोऽकर्म्मिका क्रिया" ॥

इति गोयीचन्द्रः ॥ धात्वर्थेन सह कर्म्मण उपसङ्ग्रहादित्यर्थः । क्रमेणोदाहरणानि । नदी वहति क्षरतीत्यर्थः । अघयति व्याधः । भवति घटः । आस्ते जनः । इति दुर्गादासः ॥

अघ, क्ली, (अघ पापकरणे चुरा अघयति अघ + णिच् + अच् ।) पापं । दुःखं । व्यसनं । इत्यमरः ॥

अघमर्षण, त्रि, (अघं पापं मृष्यते उत्पन्नत्वेऽपि नाशनेन कर्म्माद्यमत्वात् सह्यतेऽनेन अघ + मृष् + करणे ल्युट् ।) पापनाशनः । सर्व्वपापध्वंसि जप्यं । इत्यमरः ॥ (उत्पन्नपापनाशार्थं जप्ये मन्त्रभेदे यथा सन्ध्यामन्त्रे द्रुपदादिवेत्यादि) अश्वमेधयज्ञाङ्गावभृथस्नानमन्त्रः । वैदिकसन्ध्यान्तर्गतमन्त्रकरणकाघ्रातजलप्रक्षेपरूपपापनाशकक्रियाविशेषः । इति स्मृतिः ॥ तान्त्रिकसन्ध्यायान्तु,—

"षडङ्गन्यासमाचर्य्य वामहस्ते जलं ततः ।
गृहीत्वा दक्षिणेनैव सम्पुटं कारयेद्बुधः ॥
शिववायुजलपृथ्वीवह्निवीजैस्त्रिधा पुनः ।
अभिमन्त्र्य च मूलेन सप्तधा तत्त्वमुद्रया ॥
निक्षिपेत् तज्जलं मूर्द्ध्नि शेषं दक्षे निधाय च ।
इडयाकृष्य देहान्तः क्षालितं पापसञ्चयं ॥
कृष्णवर्णं तदुदकं दक्षनाड्या विरेचयेत् ।
दद्यहस्ते च तन्मन्त्री पापरूपं विचिन्त्य च ।
पुरतो वज्रपाषाणे निक्षिपेदस्त्रमुच्चरन्" ॥

इति तन्त्रसारः ॥

अघवान्, [त्] त्रि, (अघं पापं विद्यतेऽस्य अघ + मतुप्) अघविशिष्टः । पापी ॥

अघासुर, पु, (अघनामा असुर शाकपार्थिवादित्वात् समास मध्यपदलोपश्च) अघनामासुरः। स च कंसराजसेनापतिः। इति श्रीभागवतं॥

अघो', [स्] व्य, सम्बोधन। यथा अघो यज इति वोपदेव॥

अघोर, पु, (न घोर सौम्यरूप "या ते रुद्र! शिवा तनुरघोरा पापनाशिनी" इति वेद।) महादेव। इति शिवचतुर्द्दशीव्रतपूजाया॥ अतिभयानके अभयानके च त्रि॥

अघोरा, स्त्री, (नास्ति घोरा भयानका मूर्त्तिर्यस्या। अतिभयानका इति व्युत्पत्त्यर्थ) भाद्रकृष्णचतुर्द्दशी। यथा,—

"भाद्रे मास्यसिते पक्षे अघोराख्या चतुर्द्दशी।
तस्यामाराधित स्थाणुर्नयेच्छिवपुरं ध्रुव"॥

इति स्मृतिः॥

अघोष, त्रि, (नास्ति घोष शब्दो यत्र बहुव्रीहि शब्दशून्ये, न अल्प घोष शब्दो यत्र बहुव्रीहि अल्पध्वनियुक्ते। तथाहि,—

"तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्व तदल्पता।
अप्राशस्त्य विरोधश्च नञर्था षट् प्रकीर्त्तिता"॥

इति स्मरणात्।) आभीरशून्यदेशादि। शब्दरहित। अल्पध्वनियुक्त। कालापादिव्याकरणस्य संज्ञाविशेषे पु। स तु वर्गप्रथमद्वितीयवर्णौ शषसाश्च॥

अघ्न्य, पु, (न हन्ति विनाशयति स्वष्टत्वात् न+हन्+कर्त्तरि यक्। निपातनान् साधु।) ब्रह्मा। इत्युणादिकोष॥

अघ्न्या, स्त्री, (न हन्यते या हन्+कर्म्मणि यक् स्त्रियामाप्। पति वो अघ्न्याना धनूनाम् इति वेद। "अवध्याश्च स्त्रिय प्राहुस्तिर्यग्योनिगतामपि"॥ इति निषेधात्।) स्त्रीगवी। इत्यमर॥

अङ्क त् क मदे। लक्षणि। इति कविकल्पद्रुम॥ कण्ठ्यवर्गाद्योपध। पद सङ्ख्यासस्थान। लक्ष्म चिह्नयुक्तक्रिया। तथा च,—

"अर्थक्रियैव धातूना कर्त्व्यापारलक्षणा।
आत्मनिष्ठ क्रियार्थत्व धात्वर्थेष्वक्रियात्मसु"॥

इति वोपदेव॥

"अङ्कयत्यरिसैन्यानि युधि एकेषु शायकै"।

इति हलायुध॥ अङ्कयति अङ्कापयति। इति दुर्गादास॥

अङ्क, पु, (अङ्कयति चिह्नयति, अङ्क+अच्) चिह्न। (खनामकाङ्क्षा निचखान शायक इति रघुवंशे।) क्रोड़। (सपत्नीतनय दृष्ट्वा तमङ्कारोहणोत्सुक। इति विष्णुपुराणे॥) रूपकविशेष। अपराधः। रेखा। विभूषणा। समीप। स्थान। नाटकाश। इति मेदिनी॥ (प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वल। भवेदगूढशब्दार्थ क्षुद्रचूर्णकसयुत॥ अन्तर्निष्क्रान्तनिखिलपात्रोऽङ्क इति कीर्त्तित। इति साहित्यदर्पणे)। चित्रयुद्ध। इति विश्व॥ शरीर। इत्युणादिकोष॥ नवसङ्ख्या। इति ज्योतिषं॥ (कुचभूषाया। प्रकरणे। अगे। कटिप्रदेशे। कलङ्के। एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः। इति कुमारसम्भवे।)

अङ्कति, पु, (अच्यते पूज्यतेऽसौ अन्च+कर्म्मणि अति न्यङ्क्वादीनाञ्च इति पाणिनिसूत्रेण चस्य क। वायुपक्षे अङ्कति गच्छति इति व्युत्पत्त्या) ब्रह्मा। अग्नि। अग्निहोत्री। इति विश्व॥ वायुः। इति त्रिकाण्डशेष॥

अङ्कन, क्ली, (अङ्क+णिच् भावे ल्युट्) सङ्ख्यासंस्थान। चिह्नयुक्तीकरण। आँकन् दागन इति भाषा। चिह्नकरणं। यथा पराशराङ्गिरसौ।

"अन्यचाङ्कनलक्ष्माभ्या वाहनिर्मोचने हते।
सार्यं सयमनार्थन्तु न दुष्येद्दोषबन्धयो"॥

अङ्कन त्रिशूलादिचिह्नकरण। लक्ष्म स्थिरचिह्नकरण। इति प्रायश्चित्ततत्त्व॥

अङ्कपालिका, स्त्री, (अङ्कपालि+स्वार्थे क स्त्रियामाप्।) आलिङ्गन। इति शब्दमाला॥

अङ्कपाली, स्त्री, (अङ्केन क्रोडेन पालयति अङ्क+पा+अलि स्त्रिया वा ङीप् पक्षे अङ्कपालि।) आलिङ्गन। धात्री। वेदिकाख्यगन्धद्रव्य। तस्य नामान्तर कोटि। इति मेदिनी॥

अङ्कलोड्य, पु, (अङ्केन लोड्यतेऽसौ लोड+ण्यत्) चिञ्चोटकवृक्ष। चेँचूको इति भाषा। चिञ्चोड़मूल इति केचित्॥ अस्य गुणाः। गुरुत्व। अजीर्णकारित्व। शीतलत्वञ्च। इति राजवल्लभ॥

अङ्कित, त्रि, (अङ्क+क्त।) लाञ्छित। चिह्नित। इति व्याडि॥

अङ्की, स्त्री, (अङ्क+स्त्रिया ङीप्।) अल्प। मृदङ्गविशेष। इति शब्दरत्नावली॥

अङ्कुर, पु, (अङ्क+उरच्) वीजोद्भव। नूतनोत्पन्नतृणादि। (दर्भाङ्कुरेण चरण क्षत इत्यकाण्डे तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा। इति शाकुन्तले।) अस्य पर्य्याय। अभिनवोद्भिद् २। इत्यमरः॥ उद्भेद ३ प्ररोह ४ (चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठ।' इति कुमारसम्भवे।) अकुर ५। इति राजनिर्घण्ट। रोह ६ अङ्कूर ७। इति हेमचन्द्र॥ जल। रक्त। लोम। इति मेदिनी॥

अङ्कुरक, पु, (अङ्क्यते तृणादिभिर्निर्म्मीयतेऽसौ अङ्क+उरच् तत स्वार्थे क) नीड। पक्षिवासस्थान। इति शब्दमाला॥

अङ्कुश, पु क्ली, (अङ्क्यते हस्तिचालनार्थमाहन्यतेऽनेन अङ्क+उशच्।) हस्तिचालनार्थलौहमयवक्रास्त्र। डाङ्गश इति भाषा। तत्पर्य्याय। सृणि २। इत्यमर॥ शृणि ३। इति तट्टीका॥ अङ्कूष ४। इत्युणादिकोष॥ (रामायणे,—

"उद्यान् हयान् खरान् नागान् अष्टर्दहकमाङ्कुशे॥
कामना अङ्कुशा भक्षा कालचक्रा गदास्तथा"॥)

अङ्कुशदुर्धर, पु, (अङ्कुशेन दुर्ध्रियते दुर्दम्यतेऽसौ दुर्+धृ+कर्म्मणि खल्।) दुरन्तहस्ती। इति त्रिकाण्डशेष॥

अङ्कुशी, स्त्री, (अच्यते आराध्यतेऽसौ बौद्धविशेषै अङ्क+उशच् स्त्रिया ङीप्। न्यङ्क्वादीनाञ्च इति चस्य क।) जिनाना चतुर्विंशतिशासनदेव्यन्तर्गतदेवीविशेष। इति हेमचन्द्र॥

अङ्कूर, पु, (अङ्क+खर्जूरादित्वात् ऊरच् वा उरच्) अङ्कुर। अभिनवोद्भिद्। इति हेमचन्द्र॥

अङ्कूष, पु क्ली, (अङ्क्यते हस्तिचालनार्थमाहन्यतेऽनेन अङ्क+ऊषच् करणे) अङ्कुश। इत्युणादिकोष॥

अङ्कोट, पु, (अङ्क+ओटच्) अङ्कोठवृक्ष। इति रत्नमाला॥

अङ्कोठ, पु, (अङ्क्यतेऽनुभूयतेऽसौ अङ्क+ओठच्) वृक्षविशेष। आकोड इति ख्यात। धलआँकुड़ा इति केचित्। अस्य पर्य्याय। निकोचक २। इत्यमर॥ निकोठक ३ निकोचक ४। इति भरत॥ अङ्कोलक ५ वोध ६ नेदिष्ठ ७ दीर्घकीलक ८। इति जटाधर॥ अङ्कोट ९ रामठ १०। इति रत्नमाला॥ कोठर ११ रेची १२ गूढपत्र १३ गुप्तस्नेह १४ पीतसार १५ मदन १६ गूढवल्लिका १७ पीत १८ ताम्रफल १९ दीर्घकील २० गुणाढ्यक २१ कोलक २२ लम्बकर्ण २३ गन्धपुष्प २४ रोचन २५ विशानतैलगर्भ २६। अस्य गुणा। कटुत्व। स्निग्धत्वं। विषलूतादिदोषनाशित्व। कफवायुहारित्व। सूतशुद्धिकारित्व। रेचकत्वञ्च॥ ॰॥ तत्फलगुणा। शीतलत्व। स्वादुत्व। श्लेष्मनाशित्व। गुरुत्व। बलकारित्व। धातुशोषकत्व। विरेचकत्व। वातपित्तदाहक्षयदुष्टरक्तनाशित्वञ्च। इति राजनिर्घण्ट॥

अङ्कोल, पु, (अङ्क्यतेऽनुभूयतेऽसौ अङ्क+ओलच्) अङ्कोठवृक्ष। आकोड यस्य प्रसिद्धि। इत्यमरटीकाया स्वामी॥

अङ्कोलक, पु, (अङ्कोल+स्वार्थे क) अङ्कोठवृक्ष। इति जटाधर।

अङ्कोलिका, स्त्री, आलिङ्गन। इति शब्दमाला॥

अङ्कोल्लसार, पु, (अङ्कोल्लस्य सार षष्ठीतत् स्त्रियाश) स्थावरविषप्रभेद। इति हेमचन्द्र॥

अङ्क्य, पु, (अङ्क्यते वाद्यते हरीतक्याकृतिर्वाद्यविशेष य। अङ्क+ण्यत्।) हरीतक्याकृतिमृदङ्ग। पाखओयाज इति भाषा। इत्यमर॥ तदुक्त,—

"सार्द्धतालत्रयायामस्त्वदुर्द्दशाङ्गुलानन।
हरीतक्याकृतिर्य स्यादङ्क्योऽङ्कैः स हि वाद्यते"॥

इति भरत॥ (अपराधिविशेषाणा ललाटादिषु राज्ञा अङ्कनीय। मनु,—

"प्रायश्चित्तन्तु कुर्व्वाणा सर्व्वे वर्णा यथोदित।
नाङ्क्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहस"॥)

अङ्ग, त् क मदे। (अङ्कयति चेष्टयति अङ्क+णिच् अच्।) लक्षणि। इति कविकल्पद्रुम॥ कण्ठ्यवर्गतृतीयोपध। पद सङ्ख्यासस्थान। लक्ष्म चिह्नयुक्तक्रिया। तथा च।

अर्थक्रियैव धातूना कर्त्व्यापारलक्षणा।
आत्मनिष्ठ क्रियार्थत्वं धात्वर्थेष्वक्रियात्मसु॥

इति वोपदेव। अङ्गयति अङ्गापयति, इति दुर्गादास॥

अङ्ग, य सम्बोधनं। इत्यमरः ॥ (रामायणे,—
"अङ्गावेक्षस्व सौमित्रे कस्येमां मन्यसे चमूं"।
पुनरर्थः।)

अङ्गं, क्ली, शरीरादेरेकदेशः। अंग इति हिन्दीभाषा। तत्पर्य्यायः। अवयवः २ प्रतीकः ३ अपघनः ४। इत्यमरः ॥ गात्रं। (शृङ्गारतिलके,—
"अङ्गानि चम्पकदलैः स विधाय धाता"।)
अप्रधानं। (साहित्यदर्पणे,—
"एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्व्वे कार्य्यनिर्वहणेऽद्भुतः" ॥
उपायः। इति मेदिनी ॥ (अङ्ग्यते विषयो बुध्यते अनेन अङ्ग+करणे घञ् इति व्युत्पत्त्या) मनः। अङ्गं मनसि काये चेत्यभिधानान्तरदर्शनात्। यथा। "हिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिरिति माघः" ॥ वेदाङ्गशास्त्राणि षट्। यथा,—
"शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः।
ज्योतिषामयनञ्चैव वेदाङ्गानि षडेव तु" ॥
शिक्षा १ कल्पः २ व्याकरणं ३ निरुक्तं ४ ज्योतिषं ५ छन्दः ६। इत्यमरः ॥ अङ्गस्य लक्षणं यथा। तदीयप्रधानफलजनकव्यापारजनकत्वे सति तदीयप्रधानफलाजनकत्वं। इति तिथ्यादितत्त्वटीका ॥

अङ्गः, पु, स्वनामख्यातदेशः। इति हेमचन्द्रः ॥ मेदिनीकारमते नित्यबहुवचनान्तशब्दोऽयं। देशविशेषः। यथा,—
'वैद्यनाथं समारभ्य भुवनेशान्तगः शिवे।
तावदङ्गाभिधो देशो यात्रायां न हि दुष्यते ॥
इति शक्तिसङ्गमतन्त्रे ७ पटलः ॥ (अयञ्च देशः सरय्वाः सङ्गमे अवस्थितः, अत्र महादेवस्य हुङ्कारेण कामस्य अङ्गत्यागात् अयं अङ्गनाम्ना ख्यातः। यथा रामायणे,—
"अनङ्ग इति विख्यातस्तत प्रभृति राघव।
स चाङ्गविषयः श्रीमान् यत्राङ्गं स मुमोच ह" ॥

अङ्ग, त्रि, (अङ्गं विद्यतेऽस्य अङ्ग+अर्श आद्यच् तथा मेदिन्यां अङ्गं गात्रे प्रतीकोपाययोः पु भूम्नि नीवृति। क्लीवैकत्वे त्वप्रधाने त्रिष्वङ्गवति चान्तिके इति मेदिनी।) अङ्गविशिष्टः। निकटः। इति मेदिनी ॥

अङ्गग्रहः, पुं, (ग्रह+भावे अप्। अङ्गानां रोगादिना ग्रहः वेदना) गात्रवेदना। इति वैद्यकं ॥

अङ्गजं, क्ली, (अङ्गे जायते अङ्ग+जन्+सप्तम्यां जनेर्डः इति पाणिनिसूत्रेण ड कर्त्तरि) रक्तं। इति मेदिनी ॥ शरीरजे वाच्यलिङ्गः ॥

अङ्गजः, पुं, पुत्त्रः। केशः। कामः। मदः। इति विश्वमेदिन्यौ ॥ मदस्थाने गदः। इति काचिन्मेदिनी ॥ (स्त्रीणां यौवने सात्त्विकभावविशेषः। यथा साहित्यदर्पणे,—
"यौवने सत्त्वजास्तासामष्टाविंशतिसंख्यकाः।
अलङ्कारास्तत्र भावहावहेलास्त्रयोऽङ्गजाः" ॥

अङ्गजा, स्त्री, कन्या। अङ्गाज्जाता इत्यस्मात् स्त्रियामाप् ॥

अङ्गणं, क्ली, (अङ्ग्यते गम्यते अत्र+अधिकरणे ल्युट् पृषोदरादित्वात्त्णत्वम्) अङ्गनं। चत्वरं। इत्यमरटीकायां भरतः ॥ (देवीमाहात्म्ये, विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गने।)

अङ्गतिः, पुं, (अङ्ग्यते सेवायै गम्यते अगि+कर्म्मणि अति। ब्रह्मणि विष्णौ अग्नौ च।) ब्रह्मा। विष्णुः। अग्निः। अग्निहोत्री। इति शब्दरत्नावली ॥ (अग्निहोत्रिपक्षे तु कर्त्तरि अति। अङ्ग्यते गम्यते ऽनेन इति व्युत्पत्त्या वाहने।)

अङ्गदं, क्ली, (अङ्गं द्यति व्यथयति अङ्ग+दो+क उपपदसमासः) केयूरं। ताड़ बाजू इत्यादि भाषा। इत्यमरः ॥ (रामायणे,—
"धूयमानैश्च वासोभिः शङ्खैरङ्गदनूपुरैः"।)

अङ्गदः, पु, (अङ्गं द्यति युद्धकाले अवखण्डयति अङ्ग+दो+कर्त्तरि कः) कपिभेदः। स च वालिनामवानरराजपुत्त्रः। इति मेदिनी ॥ (रामायणे,—
"कुमुदं पञ्चदशभिर्जाम्बवन्तञ्च सप्तभिः।
अशीत्या वालिनः पुत्त्रमङ्गदं विभिदे शरैः" ॥

अङ्गदा, स्त्री, अङ्गं देहं ददाति स्वस्वामिनि समर्पयति या अङ्ग+दा+कर्त्तरि क स्त्रियामाप्) दक्षिणदिग्हस्तिभार्य्या। इति मेदिनीकरहेमचन्द्रौ ॥

अङ्गनं, क्ली, अङ्गनभूमिः। आङ्गन् उठान इति भाषा। तत्पर्य्यायः। चत्वरं २ अजिरं ३। इत्यमरः ॥ अङ्गणं ४। इति तट्टीका ॥ प्राङ्गणं। (रामायणे,—
"महाराजाङ्गनं शूराः प्रविशन्तु महोदयं"।)
५। यानं। गमनं। इति मेदिनी ॥

अङ्गना, स्त्री, प्रशस्तानि अङ्गानि अस्याः इति अङ्गात् कल्याणे इति नः। कामिनी। सुन्दराङ्गी स्त्री। इति मेदिनी। (मनुः—
"ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्व्वङ्गनागमः"।)
सार्व्वभौमनाम्नः उत्तरदिग्गजस्य पत्नी। इत्यमरः ॥ वृषकर्कटकन्यावृश्चिकमकरमीनराशयः। इति ज्योतिषतत्त्वम् ॥

अङ्गनाप्रियः, पु, (अङ्गनानां प्रियः प्रीतिप्रदः। स्त्रियश्च अशोकपुष्पेण स्वीयमङ्गमलङ्कुर्व्वन्ति इति लोके प्रसिद्धिः। अङ्गनायाः दक्षिणदिक्पत्न्याः प्रियः इतिव्युत्पत्त्या तत्स्वामिनि) अशोकवृक्षः। इति शब्दमाला ॥

अङ्गपालिः, पु, (अङ्गेन पाल्यते सश्लिष्यतेऽनेन अङ्ग+पा+अलिः) आलिङ्गनं। इति त्रिकाण्डशेषः ॥ स्त्रियां ङीप् वेदिकाख्यगन्धद्रव्ये।)

अङ्गमर्द्दः, पु, (अङ्गं मर्द्दयति यः अङ्ग+मर्द्द+कर्म्मण्यण् उपपदसमासः।) अङ्गमर्द्दनकारकभृत्यः। तत्पर्य्यायः। संवाहकः २। इति हेमचन्द्रः ॥ अङ्गमर्द्दकः ३। इति त्रिकाण्डशेषः ॥ अङ्गमर्द्दी ४। इति हलायुधः ॥

अङ्गमर्द्दकः, पु, (अङ्गस्य मर्द्दकः संवाहकः षष्ठीतत्।) अङ्गमर्द्दः। इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अङ्गमर्द्दी [न्] पुं, अङ्गं साधु मर्द्दयति संवाहयति यः अङ्ग+मर्द्द+णिनि।) अङ्गमर्द्दः। इति हलायुधः ॥

अङ्गरक्तः, पु, (रक्तं रक्तवर्णं अङ्गं यस्य स बहुव्रीहिः वाहिताग्न्यादिषु इति सूत्रेण परः पूर्व्वं वा निपात्यते।) वृक्षविशेषः। गुण्डारोचनी इति ख्यातः। तत्पर्य्यायः। भिकाक्षः २ रोचनी ३ मधुपत्रकः ४। इति शब्दचन्द्रिका ॥ कम्पिल्लः ५ कर्कशः ६ चन्द्रः ७ रक्ताङ्गः ८। इत्यमरः ॥

अङ्गरक्षिणी, स्त्री, अङ्गं रक्षति पालयति या अङ्ग+रक्ष+णिनि।) अङ्गत्राणं। साँजोया इति भाषा। तत्पर्य्यायः। जालिका २ जालप्राया ३ आयसी ४। इति हेमचन्द्रः ॥

अङ्गरागः, पु, रज्यतेऽङ्गमलङ्क्रियतेऽनेन रञ्ज+करणे घञ् घञि च भावकरणयोरिति नलोपो वृद्धिश्च। अङ्गस्य रागः षष्ठीतत्पुरुषः।) गात्ररञ्जनं। अङ्गे चन्दनादिलेपनं। तत्पर्य्यायः। विलेपनं २। इति हेमचन्द्रः ॥ (रामायणे,—
"स्नानानि चाङ्गरागांश्च माल्यानि विविधानि च"।)

अङ्गराट्, पु, (अङ्गे तद्देशे राजते यः अङ्ग+राज्+क्विप् उपपदसमासः)। अङ्गदेशाधिपतिः। स च कर्णः। इति हेमचन्द्रः ॥ (दशरथसखः लोमपादश्च रामायणे,—
"सख्यं तस्याङ्गराजेन भविष्यति महात्मनः।
कन्या चास्य महाभागा शान्ता नाम भविष्यति ॥
अङ्गराजेऽनपत्यस्तु लोमपादो भविष्यति।
स राजानं दशरथं प्रार्थयिष्यति भूमिपः" ॥

अङ्गलोद्यः, पुं, (अङ्गेन अङ्गुल्यादिना लोद्यते छिद्यतेऽसौ लोडि+कर्म्मणि यत् अङ्गेन लोद्यः तृतीयातत्पुरुषः। अङ्गलोद्य इति पाठे अङ्गेन वृक्षस्थितचिह्नविशेषेण लोद्यः अनुमेयः धातूनामनेकार्थत्वादत्र लोडिधातुरनुमानार्थः।) चिञ्चाटकतृणं। इति रत्नमाला ॥ अङ्गलोद्य इति च पाठः ॥

अङ्गवः, पु, अङ्गे स्वदेहे वाति अतिशुष्कत्वात् क्षीणमिव भवति अङ्ग+वा+कर्त्तरि कः। शुष्कफलं। इति शब्दचन्द्रिका ॥

अङ्गविकृतिः, पु, (अङ्गानां विकृतिर्व्विकारो यस्मात् बहुव्रीहिः।) अपस्माररोगः। इति राजनिर्घण्टः ॥

अङ्गविक्षेपः, पुं, (वि+क्षिप्+भावे घञ्। अङ्गस्य विक्षेपः एकस्थानादन्यस्थाने चालनं षष्ठीतत्पुरुषः अङ्गहारोऽङ्गविक्षेप इत्यमरः।) अङ्गहारः। भ्रूचालनरूपनृत्यं। इत्यमरः ॥

अङ्गवैकृत, क्ली, (विकृति+प्रज्ञादिभ्यश्च इति स्वार्थे अण् अङ्गस्य वैकृतम्) आकारः) इङ्गितं। इति जटाधरः

अङ्गसंस्कारः, पु, (अङ्गस्य संस्कारः शोभा षष्ठीतत्। सम्+कृ+भावे घञ् सम्पर्य्युपेभ्यः इत्यादिना इति सुट्।) कुङ्कुमादिना शरीरशोभाधानरूपसंस्कारः। इति भरतः ॥ स्नानोद्वर्त्तनादिः। इति स्वामी ॥ शरीरसंस्कारमात्रं। इत्यन्ये ॥ स्वेदादिकृतदौर्गन्ध्यहरणाय चन्दनादिना उद्वर्त्तनानुलेपनादिः। इति सारसुन्दरी ॥ तत्पर्य्यायः। परिकर्म्म २। इत्यमरः ॥ प्रतिकर्म्म ३। इति क्वचित् पाठः ॥

अङ्गहारः, पुं, (अङ्गानां हारः एकस्थानादन्यस्थाने

चालन षष्ठीतत्पुरुषः।) अङ्गाना स्थानात् स्थानान्तरनयनं। तत्पर्य्याय। अङ्गविक्षेपः २। इत्यमर॥ अङ्गहारि ३। इति तट्टीका॥ स्थिरहस्तपर्य्यस्तकादिको दानिशवत्प्रकार। इति मधु॥ वृश्चिकभ्रमरादिदानिंशद्रूप। इति राय। अङ्गुल्यादिविन्यासस्त्रिंशद्रूप। इति कौमुदी॥

अङ्गहारि, पु, (अङ्गानि ह्रियन्ते चाल्यन्तेऽत्र अङ्ग+हृ+इञ् अशादिभ्यश्च इति पाणिनिसूत्रेण अधिकरणे इञ्। रङ्गभूमि, नृत्यभूमिश्च।) अङ्गहार। इति भरतधृतहट्टचन्द्र॥

अङ्गहीन, त्रि, (अङ्गेन हीन रहित तृतीया तत्पुरुषः। हा+कर्म्मणि क्तः।) अवयवरहित। अङ्गहानिविशिष्ट। (यथा, याज्ञवल्क्य,—

"कालकर्म्मात्मबीजाना दोषैर्मातुस्तथैव च।
गर्भस्य वैकृतं दृष्टमङ्गहीनादि जन्मत॥)
अङ्गहीनं क्रियाहीनं विधिहीनश्च यद्भवेत्"॥

इति स्मृति॥ कामदेवे पुंलिङ्ग॥

अङ्गाधिप, पु, (अङ्गस्य देशविशेषस्य अधिप षष्ठीतत्पुरुष।) अङ्गदेशाधिपतिः। स च कर्ण। इति भूरिप्रयोग॥

अङ्गार, पु, क्ली, (अगि+आरन् इदितो नुम्धातोरिति नुम्।) दग्धकाष्ठखण्डं। तत्तु निरग्नि साग्नि च। कयला आङ्गरा इति भाषा। तत्पर्य्याय। अलात २ उल्मूकं ३। इत्यमर॥ आलातं ४ उल्मूक ५। इति तट्टीका। ("घृतकुम्भसमा नारी तप्ताङ्गारसम पुमान्"।)

अङ्गार, पु, (रक्त रक्तवर्णमङ्ग यस्य स बहुव्रीहि पृषोदरादित्वात् साधु।) मङ्गलग्रह। इति मेदिनी॥ हिताबली। इति वैद्यक॥

अङ्गारक, पु, (अङ्गार+स्वार्थे क।) मङ्गलग्रह इत्यमरः,—

("धरात्मज कुजो भौमो भूमिजोभूमिनन्दन।
अङ्गारको यमश्चैव सर्व्वरोगापहारकः"॥

इति वराहपुराणम्।) (रामायणे,—

"दिवीव ग्रहयोर्घोर बुधाङ्गारकयोर्महत्।
कौशलानाञ्च नक्षत्रं ज्येष्ठा मैत्रामिदैवतं।
आक्रम्याङ्गारकस्तस्थौ विशाखामपि चाम्बरे"॥)

अङ्गार। कुरुण्टकवृक्ष। इति मेदिनी॥ भृङ्गराजः। इति राजनिर्घण्ट॥

अङ्गारतैल, क्ली, (अङ्गारेण पक्वं तैलं शाकपार्थिवादित्वात् समासः। मध्यपदलोपश्च) स्वनामख्यातपक्वतैलं। तस्य पाकप्रकारो गुणाश्च। यथा,—

"मूर्व्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा सेन्द्रवारुणी।
वृहती सैन्धवं कुष्ठ रास्ना मांसी शतावरी॥
आरनालाढकेनैव तैलप्रस्थ विपाचयेत्।
तैलमङ्गारक नाम सर्व्वज्वरविमोक्षण"॥

इति सुखबोध॥

अङ्गारकमणिः, पु, (रक्तवर्णत्वादङ्गारकवत् मणि अथवा अङ्गारकस्य मणि षष्ठीतत्पुरुष। माणिक्य भास्करे देयं चन्द्रे मुक्तां प्रदापयेत् प्रवालञ्च कुजे दद्यादित्यादिना तत्कृताशुभप्रतिकाराय प्रवालदानोक्तेः तत्प्रियत्वं।) प्रवाल। इति राजनिर्घण्टः॥

अङ्गारकुष्ठक, पु, (अङ्गारवर्णं कुष्ठमिव कन्) हिताबली। इति राजनिर्घण्ट॥

अङ्गारधानिका, स्त्री, (अङ्गाराणि धीयन्ते धार्य्यन्तेऽत्र धा+अधिकरणे ल्युट् स्त्रियां ङीप्। अङ्गाराणां धानी तत स्वार्थे क। पक्षे अङ्गारधानी।) अङ्गारधारणपात्रं। आङ्टा इति ख्याता। साँजाल इति केचित्। तत्पर्य्याय। अङ्गारशकटी २ हसन्ती ३ हसनी ४। इत्यमर॥

अङ्गारपरिपाचित, क्ली, (अङ्गारेण परिपाच्यते परि+पच्+स्वार्थे णिच् तत कर्म्मणि क्त।) अङ्गारपक्वं। शूलविद्धाङ्गारदग्धमांसं। काबाव इति ख्यात। इति शब्दचन्द्रिका॥

अङ्गारपर्णः, पु, (अङ्गारवत् पर्णं पत्रं यस्य स बहुव्रीहि। वनभेदे। सोऽस्यास्ति तत अर्श आद्यच् तत्स्वामी) चित्ररथगन्धर्व्व। इति महाभारत॥

अङ्गारपुष्प, पु, (अङ्गारवत् रक्तवर्णं पुष्पं यस्य स बहुव्रीहि।) इङ्गुदीवृक्ष। जियापुता। इति ख्यात। इति रत्नमाला॥

अङ्गारमञ्जी, स्त्री, (अङ्गारवत् रक्तवर्णा मञ्जी मञ्जरी यस्याः सा बहुव्रीहि। समासान्तविधेरनित्यत्वात् कबभाव।) करञ्जविशेषः। इति शब्दरत्नावली॥ अस्य नामान्तरं अङ्गारमञ्जरी॥

अङ्गारवल्लरी, स्त्री, करञ्जविशेष। इत्यमर॥ भार्गी। गुञ्जा। इति राजनिर्घण्ट॥

अङ्गारवल्ली, स्त्री, (अङ्गारवत् रक्तवर्णा वल्ली कर्म्मधारय। गुञ्जालता, स्वार्थे कन् अङ्गारवल्लिका।) महाकरञ्ज। भार्गी। इति राजनिर्घण्ट॥

अङ्गारशकटी, स्त्री, (शक्नोति वोढुं शकटं। शकट+स्त्रियां ङीप् अल्पार्थे शकटी। अङ्गारस्य शकटी षष्ठीतत्पुरुष। आङ्टा इति भाषा। धुनाची इति) अङ्गारधानिका। इत्यमर॥

अङ्गारि, स्त्री, (अङ्गारमस्या अस्ति अङ्गार+अत इन् ठनाविति ठन् तस्य इक पृषोदरादित्वात् कलोप) अङ्गारधानिका। इति जटाधर॥

अङ्गारिका, स्त्री, (अङ्गारवत् रक्तवर्णा अङ्गार+इवार्थे कन् स्त्रियां टाप्) इक्षुकाण्ड। पलाशकलिका। इति मेदिनी॥ (अङ्गारमस्या अस्ति अङ्गार+मत्वर्थे ठन् तस्य इक स्त्रियां टाप् इति व्युत्पत्त्या अङ्गारपात्रम्।)

अङ्गारिणी, स्त्री, (अङ्गारमस्या अस्ति अङ्गार+मत्वर्थे इन् स्त्रियां ङीप्।) अङ्गारधानिका। भास्करत्यक्ता दिक्। (सूर्य्यत्यक्ततया अङ्गारवत् रक्तवर्णा दिक्।) इति मेदिनी॥

अङ्गारितं, क्ली, (अङ्गारमिवाचरति अङ्गार+क्विप् तत क्त।) पलाशकलिकोद्गम। (अङ्गार करोति अङ्गार+णिच् कर्म्मणि क्त। मत्वर्थे इतच् वा दग्धप्रायकाष्ठं) दग्धे त्रि। इति विश्व।

अङ्गिका, स्त्री, कञ्चुक। काँचली इति ख्याता। इति हेमचन्द्रः॥

अङ्गिरा, [स्] पु, (अङ्गति ब्रह्मणो मुखान्निःसरति अगि गतौ+असू इरस् च) मुनिविशेष। स च ब्रह्मणो मुखाज्जात। तस्य भार्य्या कर्द्दममुनिकन्या श्रद्धा। पुत्र उतथ्य १ बृहस्पति २। कन्या सिनीवाली १ कुहू २ राका ३ अनुमति।४। इति श्रीभागवत॥

अङ्गी, [न्] त्रि, (अङ्गं विद्यतेऽस्य अङ्ग+मत्वर्थे इन्।) अङ्गविशिष्ट। अवयवी। यथा येनाङ्गेनाङ्गी विकृतो भण्यते तस्मादङ्गाच्च त्रि। इति मुग्धबोधटीकायां दुर्गादास॥ प्रधानं। मुख्य। यथा। "यद्यङ्गी स्याद्रसान्तरे"। इति ध्वनिकार॥

अङ्गीकार, पु, (अङ्गीति च्व्यन्तं तत्पूर्व्वकात् कृ+घञ्) स्वीकार। तत्पर्य्याय। सम्वित् २ आगूः ३ प्रतिज्ञानं ४ नियम ५ आश्रव ६ संश्रव ७ अभ्युपगम ८ समाधि ९ प्रतिश्रव १०। इत्यमर॥

अङ्गीकृत, त्रि, (अङ्गीति च्व्यन्त तत्पूर्व्वकात् कृ+कर्म्मणि क्त) स्वीकृतं तस्य पर्य्याय। ऊरीकृतं २ उररीकृतं ३ आश्रुतं ४ प्रतिज्ञातं ५ संगीर्ण ६ विदितं ७ संश्रुत ८ समाहितं ९ उपश्रुतं १० उपगतं ११ प्रतिश्रुत १२ अभ्युपगत १३। इत्यमरः॥

अङ्गुरि, स्त्री, (अगि गतौ+उ णिच् रलयोरेकत्वस्मरणात् लस्य रत्वम्) पाणिपादाङ्गुली। इत्युणादिकोष॥

अङ्गुरी, स्त्री, (अङ्ग+उणिच् पक्षे ङीप्) अङ्गुली। इत्यमरटीका॥

अङ्गुरीय, पु, क्ली, (अङ्गुरेरिद तत्र भवं वा अङ्गुरि+छ तस्य ईय) अङ्गुलीयक। आङ्गुटी इति भाषा। अङ्गुलौ भवं अङ्गुलीयं मनीषादित्वात् लस्य र। इति भरत॥ (यथा रामायणे,—

"ददौ चास्य तदा प्रीत स्वनामाङ्काभिचिह्नितं।
अङ्गुरीयमभिज्ञानं राजपुत्र्या परन्तप"॥)

अङ्गुरीयकं, क्ली, पु, (स्वार्थे क) अङ्गुलीयकं। इत्यमरटीकायां मुकुटादय॥ रामायणे,—

"रामनामाङ्कितञ्चेद पश्यहाणाङ्गुरीयक"।

अङ्गुलः पु, (अङ्ग+उन् अङ्गौ हस्ते लीयते अङ्गु+ली+ड) हेमचन्द्र॥ अङ्गुली॥ इत्यमरटीकायां रमानाथ॥ अष्टयवपरिमाण। इत्यमरटीकायां वाचस्पति॥ (अष्टसङ्ख्यकयवोदरपरिमाणे यवोदरैरङ्गुलमष्टसङ्ख्यैरिति भास्कराचार्य्योक्ते न०।) (यथा रामायणे,—

"न ह्यविद्ध तयोर्गात्रे बभूवाङ्गुलमन्तर"।)

अङ्गुलि, स्त्री, (अङ्ग+उलिच्) करशाखा। आङ्गुल इति भाषा। (यथा मनु,—

"कायमङ्गुलिमूलेऽग्रे दैव पित्र्य तयोरध"।)

गजकर्णिका। हस्तिशुण्डाग्रभाग। इति हेमचन्द्र॥ अङ्गुष्ठ। इत्युणादिकोष॥

अङ्गुलितोरणं क्ली, (अङ्गुले तोरण वहिर्द्वारमिव षष्ठीतत्पुरुष) चन्दनादिद्वारा ललाटे कृतोऽर्द्धचन्द्र। इति हारावली॥

अङ्गुलिमुद्रा, स्त्री, (अङ्गुले मुद स्वच्छया धारयितु- र्हर्षं राति ददाति या अङ्गुलिमुद् + रा + कर्त्तरि क) साक्षरोर्म्मिका । प्रभुनाम्ना स्वनाम्ना वा अ- ङ्कितमङ्गुरीयक । छापेर आङ्गटी मोहरखोदा आङ्गटी इति भाषा । इत्यमर ॥

अङ्गुलिमुद्रिका, स्त्री, (अङ्गुलिमुद्रा + स्वार्थे क) अङ्गुलिमुद्रा । इत्यमरटीकायां रमानाथः ॥

अङ्गुलिमोटन, स्त्री, (अङ्गुल्योर्म्मोटन मर्द्दन यस्मिन् तत् बहुव्रीहि) अङ्गुलिद्वयमर्द्दनजातशब्द । आ- ङ्गुलमटकान इति भाषा । तत्पर्य्यायः । प्रच्छटी २ । इति त्रिकाण्डशेष ॥ स्फोटी ३ अङ्गुलिसन्देश ४ । इति हारावली ॥ मुचुटी ५ । इति जटाधर ॥ मुचुटीतु मुष्टिपर्य्याये हेमचन्द्रेण लिखिता ।

अङ्गुलिसन्देश, पु, (अङ्गुल्या अङ्गुलिध्वनिना सन्देश मोटन षष्ठीतत्पुरुष सम् + दिश् + भावे घञ्) अङ्गुलिमोटन । इति हारावली ॥

अङ्गुली, स्त्री, (अङ्ग + उलिच् स्त्रियां वा ङीप् पक्षे अङ्गुलि) शरीरावयवविशेष । आङ्गुल इति भाषा । (रामायणे,—

"कनिष्ठायामप्यङ्गुल्या भ्रातुर्मम स राक्षस ॥ ज्वालाङ्गुलीभिर्भगवान् विष्टभ्य स ऊर्द्धतापन" ॥)

तत्पर्य्याय । करशाखा २ । इत्यमर ॥ (अङ्गुलि ३ अङ्गुरि ४ अङ्गुरी ५ अङ्गुल ६ ।) इति तट्टीका ॥ सा क्रमेण पञ्चधा, यथा—अङ्गुष्ठ १ तर्ज्जनी २ मध्यमा ३ अनामिका ४ कनिष्ठा ५ इत्यमर- जटाधरौ ॥ हस्तिशुण्डाग्र । इति मेदिनी ॥

अङ्गुलीक, पु, स्त्री, (अङ्गुल्या कायते निधीयते- ऽसौ अङ्गुली + कै + घञर्थे कर्म्मणि क) अङ्गु- लीयक । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अङ्गुलीपञ्चक, स्त्री, (पञ्चानामङ्गुलीनां समाहार द्विगुसमास राजदन्तादित्वात् पञ्चशब्दस्य पर- निपात) हस्तस्य पञ्चाङ्गुलानि यथा,—अङ्गुष्ठ १ प्रदेशिनी २ मध्यमा ३ अनामिका ४ कनिष्ठिका ५ । इति राजनिर्घण्ट ॥

अङ्गुलीय, पु, स्त्री, (अङ्गुल्या अय तत्र भवो वा अङ्गुली + छ तस्य ईय) अङ्गुलीयक । इत्यमरटीका ॥

अङ्गुलीयक, स्त्री पुं, (अङ्गुलीय + स्वार्थे क) अ- ङ्गुलिभूषण । आङ्गटी इति भाषा । तत्पर्य्याय । ऊर्म्मिका २ । इत्यमर ॥ अङ्गुरीयक ३ अङ्गु- रीय ४ अङ्गुलीयः ५ । इति तट्टीका ॥ करा- रोट ६ अङ्गुलीक ७ । इति त्रिकाण्डशेष ॥ पुंसि प्रमाण । यथ मैथिल्यभिज्ञान काकुत्स्थस्या- ङ्गुरीयक । इति भट्टि ॥

अङ्गुलीसम्भूत, पु, (अङ्गुल्या सम्भूत जात सप्तमी- तत्पुरुष) नख । इति राजनिर्घण्ट ॥

अङ्गुष्ठ, पु, (अङ्गौ हस्ते मुख्यत्वेन तिष्ठति य अङ्गु + कर्त्तरि क अम्बाम्बगोभू इत्यादिना षत्वम्) वृद्धाङ्गुलि । इत्यमर । बुडो आङ्गुल इति भाषा । (मनु ,—

"अङ्गुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते" ।)

अङ्गूषः, पु, (अङ्गति गच्छति अगि + ऊषन्) नकुल । बाणः । इत्युणादिकोषः ॥

अघ, [स्] स्त्री, (अह्यते दुर्गति गच्छत्यनेन अघि + सर्व्वधातुभ्योऽसुन् इति असुन्) अघ । पाप । इत्युणादिकोष ॥ (सूर्य्यशतके,—

"विदधतु द्यणय शीघ्रमङ्घोविघात" ।)

अङ्घ्रि, पु, (अङ्घ्रते गच्छत्यनेन अघि + करणे क्रिन्) अङ्घ्रि । इति विश्व ॥

अङ्घ्रि, पु, (अङ्घ्रते गच्छत्यनेन अघि + करणे रि) पाद । (सूर्य्यशतके,—"शीर्णघ्राणाङ्घ्रिपाणीन्" ।) वृक्षमूल । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अङ्घ्रिनाम, [न्] स्त्री, (अङ्घ्रिरूपेण नमते जलाद्या- कर्षणेन कल्पते यत् अङ्घ्रि + नम् + अन् णिच्) वृक्षमूल । इति हेमचन्द्र ॥

अङ्घ्रिनामक, पु, (अङ्घ्रिनाम + स्वार्थे क) वृक्ष- मूल । इत्यमर ॥

अङ्घ्रिप, पुं, (अङ्घ्रिणा पिबति अङ्घ्रि + पा + ड) वृक्ष । इति हेमचन्द्र ॥

अङ्घ्रिपर्णी, स्त्री, (अङ्घ्रिवत् पर्णं पत्र यस्या सा बहुव्रीहि स्त्रियां ङीप्) पृश्निपर्णी । चाकुलिया इति ख्याता । इत्यमरटीकायां रमानाथ ॥

अङ्घ्रिवल्लिका, स्त्री, (अङ्घ्रिवत् वल्लि उपमितिः कर्म्मधारय । स्वार्थे क )चित्रपर्णीरचि ।चाकुलिया इति भाषा । इत्यमर ॥ अस्या रूपान्तर अङ्घ्रि- वल्लि अङ्घ्रिवल्ली ॥

अच इ पूजायां । इति कविकल्पद्रुम ॥ इ अ- ञ्चते । अञ्चु गतिपूजनयोरिति पूजार्थो य स एवाय । इदित् पाठ पूजायां नलोपाभावात् । उदनुबन्धाभावश्च क्षुधवसपजार्थाश्चेत्यादिना क्ता- प्रत्ययस्य निष्ठायाश्च नित्येम्बिधानात् । इति दुर्गा- दास ॥

अच इ ञ गतौ । श्लिष्टोक्तौ । इति कविकल्प- द्रुम ॥ इ अञ्चते । ञ अचति अचते । इति दुर्गादास ॥

अच उ ञ गतौ श्लिष्टोक्तौ । इति कविकल्प- द्रुम ॥ अचति अचते । उ अचित्वा (उदितो वा इतीडभावपक्षे) अक्त्वा । श्लिष्टोक्तिरव्यक्त- शब्द । इति दुर्गादास ॥

अचण्डी, स्त्री, (चड़ि कोपने पचाद्यच् इदित्त्वात् नुम् स्त्रियां ङीप् न चण्डी नञ्समास) सुशीला गौ । शान्त गाइ इति भाषा । तत्पर्य्याय सुकरा २ । इत्यमर ॥ अकोपना स्त्री ॥

अचल, पु, (चलति य चल् + पचाद्यच् न चल नञ्समास) पर्व्वत । (रामायणे,—

"आससाद ततो राम स्थित शैलमिवाचल" ।)

कीलक । इति मेदिनी ॥ अकम्पे त्रि ॥ (ध्रुव, स्थिर । यदुक्त,—

"न स्वल्पात् न सामर्थ्यात्
गच ज्ञानादिकात् गुणात् ।
चलन विद्यते यस्य
अचल कीर्त्तितोऽच्युत" ॥

अविकारी, कूटस्थ) ।

अचलकीला, स्त्री, (अचल सुमेरुपर्व्वत कील स्तम्भस्वरूपो यस्या सा बहुव्रीहि । कीलो लोपे द्वयो स्तम्भ इति मेदिनी) पृथिवी । इति शब्दरत्नावली ॥

अचलत्विट्, [ष्] पु, (अचला स्थिरा त्विट् यस्य स बहुव्रीहि) कोकिल । इति शब्दचन्द्रिका ॥

अचलभ्राता, [तृ] पु, बौद्धगणाधिपविशेषः । स तु शेषजैनाचार्य्यस्य एकादशशिष्यान्तर्गतः । इति हेमचन्द्र ॥

अचला, स्त्री, (न चला नञ्समास) पृथिवी । इति मेदिनी ॥ यथा रामायणे,—

"पृथिवीमपि काम त ससागरवनाचला" ।

अचिरद्युति, स्त्री, (अचिरा क्षणस्थायिनी द्युति कान्तिर्यस्या सा बहुव्रीहि) विद्युत् । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अचिरप्रभा, स्त्री, (अचिरा क्षणस्थायिनी प्रभा कान्तिर्यस्या सा बहुव्रीहिः) विद्युत् । इति हेमचन्द्र ॥

अचिररोचि, [स्] स्त्री, (अचिरा रोचि कान्ति- र्यस्या सा बहुव्रीहि) विद्युत् । इति जटाधर ॥

अचिरा, स्त्री, (अचि ज्ञानोपदेश राति ददाति या अचि + रा + कर्त्तरि क उपपदसमास अच + भावे इक्) अर्हता मातृविशेष । इति हेमचन्द्र ॥

अचिरांशु, स्त्री, (अचिरा क्षणस्थायिन अंशव किरणा प्रभा यस्या सा बहुव्रीहि ।) विद्युत् । इति हलायुध ॥ अचिरात् य अचिर । शीघ्र । अविलम्ब । यथा,—

"अचिरादुपकर्तुराचरे-
दथवात्मौपयिकीमुपक्रिया" ।

इति नैषध ॥

अचिराभा, स्त्री, (अचिरा क्षणस्थायिनी आभा दी- प्तिर्यस्या सा बहुव्रीहि )विद्युत् । इति हारावली ॥

अचेतनः, त्रि, (नास्ति चेतना ज्ञान यस्य स बहु- व्रीहि) चेतनारहित । चैतन्यशून्य । अज्ञान । यथा,—

"कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु" ।

इति मेघदूतकाव्य ॥ सेन्द्रिय चेतन द्रव्य निरि- न्द्रियमचेतन । इति चरक ॥

अचैतन्य, स्त्री, (न चैतन्य चेतना नञ्तत्पुरुष) निश्चेतना । चेतनाभाव । अज्ञान । यथा,—

"अचैतन्यमिद विश्व चैतन्य देवमेव यत् ।
न जानन्त्यपि शास्त्रज्ञा भ्रमन्त्येव हि केवल" ।

इति चैतन्यचन्द्रामृत ॥ तद्वति त्रि ॥

अच्छ, व्य, (न छ्यति सम्मुखत्वात् दृष्टि नाशयति न छो + घञर्थे क नञ्तत्पुरुष) आभिमुख्य । साम्मुख्य । इति मेदिनी ॥

अच्छ, त्रि, (न छ्यति निर्म्मलत्वात् दृष्टि नाशयति नञ् + छो + कर्त्तरि कः उपपदसमास) स्वच्छ । निर्म्मल । इत्यमरः ॥ (अमरुशतके, अच्छकपोल मूलगलितै) ।

अच्छ, पु, (न छ्यति निर्म्मलत्वात् दृष्टि नाशयति न + छो + कर्त्तरि कः उपपदसमास) स्फटिक । भालूक । इति मेदिनी ॥

अच्छभल्ल, पु, (अच्छा निर्म्मला भल्ला शस्त्राणीव नखा यस्य स बहुव्रीहि यथा—मेदिन्या भल्ल स्यात् पुंसि भल्लूके शस्त्रभेदे पुनर्द्वयो) भालूक। इत्यमर। तट्टीकाकारमते अच्छो भल्लश्चेति शब्दद्वयमपि॥

अच्छा, स्त्री,(अ विष्णुश्छायते आच्छाद्यतेऽनया,छो + करणे अङ्। अस्य विष्णो छा आच्छादनं षष्ठी-तत्पुरुष। अकारो वासुदेव स्यादित्येकाक्षरीय-कोषे।) विष्णोराच्छादनं। इति मुग्धबोधव्याकरणं॥

अच्छिद्रं, त्रि, (नास्ति छिद्र यत्र बहुव्रीहि) छिद्र-रहित। दोषाभावविशिष्ट। यथा शातातप-पराशरौ।—

"अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवता।
प्रणम्य शिरसा ग्राह्यमग्निष्टोमफलै सम"॥

इति श्राद्धतत्त्वं॥

अच्छिद्रावधारण, स्त्री, (अच्छिद्रस्य दोषरहित-कर्म्मण अवधारण निश्चय) दोषरहितकर्म्म-निश्चय। तज्ज्ञापकवाक्य। यथा,—

तत कर्म्ममात्रप्राप्ताच्छिद्रावधारण कुर्य्यात्। तथाच शातातपपराशरौ।—

"अच्छिद्रमिति यद्वाक्य वदन्ति क्षितिदेवता।
प्रणम्य शिरसा ग्राह्यमग्निष्टोमफलै समं"॥

इति श्राद्धतत्त्वं॥

अपि च। वशिष्ठ।

"तत शान्ति प्रकुर्व्वीत अवधारणवाचन"।

अवधारण अच्छिद्रावधारण। इति तिथ्यादि-तत्त्व॥ तद्वाक्य यथा,—अद्यामुके मासि अमुक-पक्षे अमुकतिथौ मत्कृतैतदमुककर्म्माच्छिद्रमस्तु॥

अच्छिन्नं, त्रि, (छिद + कर्म्मणि क्त न छिन्न नञ्-समास) छेदरहित। अकर्त्तित। यथा गर्ग,—

"श्रुत्वा पुत्त्रस्य वै जन्म छत्वा वेदोदिता क्रिया।
अच्छिन्ननाल पश्येत्त दत्त्वा रुक्म फलान्वित"॥

इति शुद्धितत्त्व॥

अपि च। शङ्ख।

"अश्रद्दधान पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशय।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिन"॥

अच्छिन्नसंशय फलोपायेतिकर्त्तव्यतासु निश्चय-शून्य। इति प्रायश्चित्ततत्त्व॥

अच्युत, पु, (न च्यवते स्वरूपतो न गच्छति य नित्य इति यावत्। च्यु + कर्त्तरि क्त न च्युत नञ्-समास। पीताम्बरोऽच्युत शार्ङ्गीत्यमर) विष्णु। इत्यमर॥ (यथा कुमारसम्भवे,—तत्रावतीर्य्या-च्युतदत्तहस्त।) स्थिरे त्रि॥ सोऽन्त्यवेलायामेत-त्त्रयं प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसंशित-मसीति छान्दोग्योपनिषत्।

अच्युताग्रज, पु, (अच्युतस्य अग्रज) बलराम। इत्य-मर॥ इन्द्र। इति हेमचन्द्र॥

अच्युतावास, पु, (उष्यते वास क्रियतेऽत्र आ + वस् + अधिकरणे घञ् यद्वा अच्युतस्य आवास। 'अश्वत्थ सर्व्ववृक्षाणा देवर्षीणाञ्च नारद' इति भगवद्गीतायाम्।) अश्वत्थवृक्ष। इति राजनिर्घण्ट॥

अज क्षेपे। गतौ। इति कविकल्पद्रुम॥ अजति। इति दुर्गादास॥

अज इक भासि (अजि दीप्तौ चुरा इदित्वानुम्।) इति कविकल्पद्रुम॥ इक अञ्जयति। भासि दीप्तौ। इति दुर्गादास॥

अज, पु, (न जायते नोत्पद्यते य नञ् + जन् + अन्ये-ष्वपि दृश्यत इति कर्त्तरि ड उपपदसमास।) ("न हि जातो न जायेऽहं न जनिष्ये कदाचन।
क्षेत्रज्ञ सर्व्वभूताना तस्मादहमज स्मृत"॥

इति भारते।

"योमामजमनादिञ्च वेत्ति लोकमहेश्वरम्"।

इति भगवद्गीतायाम्।) ब्रह्मा। विष्णु। शिव। कामदेव। सूर्य्यवंशीयराजविशेष। स च रघु-राजपुत्त्र दशरथपिता च। मेष। इति ज्यो-तिष॥ माक्षिकधातु। इति हेमचन्द्र॥ जन्म-रहिते वाच्यलिङ्ग। छाग। इति मेदिनी॥ तत्-परीक्षा। यथा,—

"नक्षत्राणा विभेदेन नराणान्तु गणत्रय।
तेषा शुभाय निर्द्दिष्ट पशुवस्त्रत्रय बलौ॥
ये छष्णा शुचयश्छागा पशवोऽन्ये तथैव च।
देवजातिभिरुत्सृज्यास्ते सर्व्वार्थोपसिद्धये॥
ये पीता हरिता वापि नरजातेरुदीरिता।
ये शुक्लाश्च महान्तो वा रक्षोजाते शुभप्रदा॥
यो मोहादथवाज्ञानाद्बलिमन्य प्रयच्छति।
वध एव फल तस्य नान्यत् किञ्चित् फलं भवेत्"॥

इति युक्तिकल्पतरु॥

अजकर्ण, पु, (अजस्य छागस्य कर्णवत् पत्त्रं यस्य स) असनवृक्ष। इति रत्नमाला॥ यथा वैद्यके। ("अजकर्ण कटुस्तिक्त कषायोष्णो व्यपोहति।
कफपाण्डुश्रुतिगदान् मेहकुष्ठविषव्रणान्"॥)

अजकर्णक, पु, (अजकर्ण + स्वार्थे क) सालवृक्ष। इति राजनिर्घण्ट॥

अजकव, पु, स्त्री, (अजो विष्णुश्च क ब्रह्मा च द्वन्द्व तौ वाति शिव त्रिपुरासुरवधे प्रीणयत्यनेन अज क + वा + करणे क। "क प्रजापतिरुद्दिष्ट को वायुरिति शब्दित" इत्येकाक्षरीयकोषे) शिव-धनु। इति त्रिकाण्डशेष॥

अजकाव, पु, स्त्री, शिवधनु। इति त्रिकाण्डशेष॥

अजगन्धा, स्त्री, (अजस्य गन्धवत् गन्धो यस्या सा) वनयवानी। तत्पर्य्याय। अजमोदा २। खराश्वा ३ कारवी ४। इति रत्नमाला॥ उग्रगन्धा ५। इत्य-मर॥ वृक्षविशेष। ववरी इति हिन्दीभाषा॥ इति मदनविनोद॥ तिलौणि इति राजनिर्घण्ट॥ तत्पर्य्याय। वस्तगन्धा २ खरपुष्पा ४ अवि-गन्धिका ५ उग्रगन्धा ६ ब्रह्मगर्भा ७ ब्राह्मी ८ पूति-मयूरिका ९। अस्या गुणा। कटुत्व। उष्णत्व। वातगुल्मोदररोगकर्णव्रणार्त्तिशूलनाशित्व। पीता चेदक्षिणे हिता। इति राजनिर्घण्ट॥

अजगन्धिका, स्त्री, (अजस्य गन्ध षष्ठीतत्पुरुष तद्वत् गन्धोऽस्यास्ति अजगन्ध + मत्वर्थे ठन् ठस्येक इति ठस्य इक) वर्व्वरीवृक्ष। इत्यमर॥ वावरि इति भाषा।

अजगन्धिनी, स्त्री, (अजगन्धोऽस्यास्ति अजगन्ध + मत्वर्थे इन् स्त्रियां ङीप्) अजशृङ्गीवृक्ष। इति रत्नमाला॥

अजगर, पु, (अजं गिरति ग्रसते य गॄ + पचाद्यच् अजस्य गर षष्ठी तत्पुरुष) स्वनामख्यातवृहत्-सर्प। तत्पर्य्याय। शयु २ वाहस ३। इत्यमर॥

अजगव, स्त्री, (अजयोर्विष्णुब्रह्मणोर्गं त्रिपुरासुरवधे गीत षष्ठी तत्पुरुष। तादृश गीतं वाति सम्व-ध्नाति यत् अजग + वा + कर्त्तरि क उपपद-समास। "गश्च गीतश्च गौश्चैव गृश्च धेनु सरस्वती" इत्येकाक्षरीयकोषे) पिनाक। शिवधनु। इत्य-मर॥ तस्य रूपान्तर। अजकव। अजकावं। अजीकव। अजगाव॥

अजगाव, स्त्री, (अजयोर्व्विष्णुब्रह्मणोर्गं गीतं षष्ठी तत्पुरुष। तादृशं गीतमवति सम्पादयति इव् अजग + अव + कर्म्मण्यण् उपपदसमास) शिव-धनु। इति शब्दमाला॥

अजजीविक, पु, (अज जीविका जीवनोपायो यस्य स) अजाजीवी। छागपालक। तत्पर्य्याय। जावाल २। इति हेमचन्द्र॥

अजटा, स्त्री, (नास्ति जटा यस्या सा) भूम्यामलकी। इति राजनिर्घण्ट॥ तस्या रूपान्तरं। अजडा। अझटा॥

अजडा,स्त्री,(अजडा जाड्याभाव सम्पादयति या अज-डा + करोत्यर्थे णिच् तत पचाद्यच्) कपिकच्छु। आलकुशी इति भाषा॥ इति राजनिर्घण्ट॥

अजथ्या, स्त्री, (अजाना समूह अज + थ्यन् स्त्रियां टाप् अजसमूह। तद्वन्नानावर्णत्वात्) स्वर्ण-यूथिका। इति दीक्षिता॥

अजदण्डी, स्त्री, (अजस्य ब्रह्मणो यज्ञाय दण्ड काष्ठ-मस्या सा स्त्रियां ङीप्। ब्रह्मदण्डीवृक्षकाष्ठेन यज्ञ-विधानात्।) ब्रह्मदण्डीवृक्ष इति राजनिर्घण्ट॥

अजनक, त्रि,(न जनक नोत्पादक नञ्समास। जन-यति जन् + णिच् ण्वुल्) अनुत्पादक। अजन्मद। अस्रष्टा। अकारक॥

अजननि, पु, (न + जन् + आक्रोशे नञ्यनिरिति सूत्रेण निन्दाया भावे अनि। तस्याजननिरेवास्तु जननीक्लेशकारिणा इति प्रसिद्धप्रयोगोऽप्यस्ति) जन्मराहित्य। उत्पत्त्यभाव। अकरणि। शाप यथा। अजननिरस्तु तस्य। इत्यमरटीकाया रायमुकुट॥

अजन्य, स्त्री, (न जन्यते सम्पाद्यते केनापि न + जन् णिच् यत्) उत्पात। शुभाशुभसूचकभूकम्यादि इत्यमर॥ अजननीये त्रि॥

अजप, पु, (अप्रशस्त जपति पठति य। जप् + पचा-द्यच् न जप नञ्समास।) असदध्येता। कुपाठक इति हेमचन्द्र॥ (अज पाति रक्षति य + अज + पा + कर्त्तरि क उपपदसमास) छागपालक यथा,—

"ओषधीर्नामरूपाभ्या जानते ह्यजपा वने"।

इति चरक॥

अजपा, स्त्री, (न जप्यते नोच्चार्य्यतेऽसौ अपितु श्वास

प्रश्वासयोर्गमनागमनाभ्यां सम्पाद्यते जप् + घ-ञर्थे क स्त्रियां टाप् न जपा नञ्समासः ।) हंसमन्त्रः । यथा,—
"वियदर्द्धेन्दुललितस्तदादिसर्गसंयुतः ।
अजपाख्यो मनुः प्रोक्तो ह्यक्षरः सुरपादपः" ॥*॥
अस्य देवतार्द्धनारीश्वरमूर्त्तिः । यथा,—
"उद्यद्भानुस्फुरिततडिदाकारमूर्द्धाम्बिकेशं
पाशाभीती वरदपरशुं सन्दधानं कराब्जैः ।
दिव्याकल्पैर्नवमणिमयैः शोभितं विश्वमूलं
सौम्याग्नेयं वपुरवतु वश्चन्द्रचूडं त्रिनेत्रं" ॥
इति तन्त्रसारः ॥ * ॥ स्वाभाविकनिश्वासप्रश्वासरूपेण जीवजप्यहंसमन्त्रः ।
तथाच दक्षिणामूर्त्तिसंहितायां ।
"अथ वक्ष्ये महेशानि प्रत्यहं प्रजपेन्नरः ।
मोहबन्धं न जानाति मोक्षस्तस्य न विद्यते ॥
श्रीगुरोः कृपया देवि ज्ञायते जप्यते यदा ।
उच्छ्वासनिश्वासतया तदा बन्धक्षयो भवेत् ॥
उच्छ्वासैरेव निश्वासैर्हंस इत्यक्षरद्वयं ।
तस्मात् प्राणस्य हंसाख्य आत्माकारेण संस्थितः ॥
नाभेरुच्छ्वासनिश्वासात् हृदयाग्रे व्यवस्थितः ।
षष्टिश्वासैर्भवेत् प्राणः षट्प्राणा नाडिका मता ॥
षष्टिनाड्या ह्यहोरात्रं जपसंख्याक्रमो मतः ।
एकविंशतिसाहस्रं षट्शताधिकमीश्वरि ॥
जपते प्रत्यहं प्राणी सान्द्रानन्दमयीं परां ।
उत्पत्तिर्जपमारम्भो मृत्युस्तत्र निवेदनं ॥
विना जपेन देवेशि जपो भवति मन्त्रिणः ।
अजपेयं ततः प्रोक्ता भवपाशनिकृन्तनी" ॥
अन्यत्रापि ।
"षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः ।
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्व्वदा" ॥*॥
सन्ध्यावन्दनहीना । इति महाभारतं ॥
अजभक्षः, पुं, (अजानां भक्षः खाद्यं षष्ठीतत्पुरुषः । भक्ष + कर्म्मणि घञ् ।) वर्व्वूरवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥
अजमीढः, पुं, (अजः छागः यज्ञे मीढः सिक्तो यत्र सः तद्देशाधिपः अजमीढ + अण् संज्ञापूर्व्वकविधेरनित्यत्वात् वृद्ध्यभावः ।) राजा युधिष्ठिरः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥
अजमोदा, स्त्री, (अजानां खाद्यतया मोदो हर्षो यस्याः सा अजानां मोदो गन्ध इव गन्धो यस्याः सा) यवानिका । तत्पर्य्यायः । उग्रगन्धा २ ब्रह्मदर्भा ३ यवानिका ४ ॥ इत्यमरः । यमानी द्विविधा ।
एका क्षेत्रयमानी सा अजमोदेत्येव ख्याता ।
अपरा यमानीत्येव ख्याता । अविशेषात् द्वयोरपीति सुभूतिः ॥ केचित्तु अजमोदादित्रयं वनयमान्याः । ब्रह्मदर्भादित्रयं यमान्यामित्याहुः ।
उग्रगन्धाजमोदाख्या स्मृतक्षेत्रयमानिकेति । यमानी दीपको दीप्यो भूतिकश्च यमानिकेति च रत्नमाला ॥ इति भरतः ॥ * ॥ वैद्यके तु वनयमानी इति ख्याता । तत्पर्य्यायः । खराश्वा २ वस्तमोदा ३ मर्कटी ४ मोदा ५ गन्धदला ६ हस्तिकारवी ७ गन्धपत्रिका ८ मायूरी ९ शिखिमोदा १० मोदाढ्या ११ वह्निदीपिका १२ ब्रह्मकोशी १३ विशाल्ली १४ हयगन्धा १५ उग्रगन्धिका १६ मोदिनी १७ फलमुख्या १८ विशल्या १९ । अस्या गुणाः । कटुत्वं । उष्णत्वं । रूक्षत्वं । रुचिकारित्वं । कफवायुशूलाध्मानारुचिजठरामयनाशित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ यमानी । यथा,—
"अजमोदा खराश्वा च मयूरो दीप्यकस्तथा ।
तथा ब्रह्मकुशा प्रोक्ता कारवी लोचमस्तकः ॥
अजमोदा कटुस्तीक्ष्णा दीपनी कफवातनुत् ।
उष्णा विदाहिनी हृद्या वृष्या बलकरी लघुः ॥
नेत्रामयकृमिच्छर्द्दिहिक्काबस्तिरुजो हरेत्" ॥*॥
अथ खुरासानीयवानीनामगुणाः ।
"पारसीययवानी तु यवानीसदृशी गुणैः ।
विशेषात् पाचनी रूक्षा ग्राहिणी मादिनी गुरुः" ॥
इति भावप्रकाशः ॥
अजमोदिका, स्त्री, (अजं मोदयति हर्षयति या । मुद् + णिच् ण्वुल् स्त्रियां टाप् । अजस्य मोदिका षष्ठीतत्पुरुषः ) यवानी । इति वैद्यकं ॥
अजम्भः, पुं, (न सन्ति जम्भा दन्ता यस्य सः) (सूर्य्ये च) भेकः । इति शब्दरत्नावली ॥ न सन्ति जम्भा दन्ता अस्य ॥
अजयः, पुं, (जि + भावे अच् न जयः नञ्समासः ।) पराजयः । यथा,—
"सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ" ।
इति भगवद्गीता ॥ राढदेशप्रसिद्धनदविशेषः ॥
अजया, स्त्री, (न जीयते पराजीयतेऽसौ जि + कर्म्मणि अच् स्त्रियां टाप् न जया नञ्समासः ।) विजया । भाङ्ग सिद्धि इति ख्याता । इति राजनिर्घण्टः ॥
अजय्यः, त्रि, (जेतुमशक्यः जि + कर्म्मणि "क्षय्य जय्यौ शक्यार्थे इति यत्" न जय्यः नञ्समासः ।) जेतुमशक्यः । अजेयः । इति मुग्धबोधव्याकरणं ॥ (यथा रघुवंशे,—"राज्ञामजय्योऽजनि पुण्डरीकः" ।)
अजरः, त्रि, (जॄ + भावे अङ् गुणः स्त्रियां टाप्, नास्ति जरा जीर्णावस्था यस्य सः ) जरारहितः । वार्द्धक्यशून्यः । यथा,—
"अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत्" ।
इति हितोपदेशः ॥
अजरा, स्त्री, (नास्ति जरा यस्याः सा ।) जीर्णफञ्जीलता । वृद्धदारकप्रभेदः । गृहकन्या । घृतकुमारीति ख्याता । इति राजनिर्घण्टः ॥
अजर्य्यं, क्ली, (न जीर्य्यति जॄ + कर्त्तरि अजर्य्यं सङ्गतमिति सूत्रेण यत् । तेन सङ्गतमार्य्येण रामाजर्य्यं कुतमिति भट्टिः) सङ्गतं । सौहार्दं । इति हेमचन्द्रः ॥ अजरार्हे त्रि ॥ (यथा रघुवंशे,—
"मृगरजय्यं जरसोपदिष्टमदेहबन्धाय पुनर्बबन्ध" ।
अजलम्बनं, क्ली, (अज इव लम्ब्यते कृष्णवर्णत्वात् ज्ञायतेऽसौ लम्ब + कर्म्मणि ल्युट्) स्रोतोञ्जनं । इति शब्दचन्द्रिका ॥
अजलोमा, [न्] पुं, (अजस्य लोमेव लोम मञ्जरी यस्य सः) वृक्षविशेषः । शुयाशिषा । शूयाशिम्बी इति च भाषा । तत्पर्य्यायः । शिखी २ केशी ३ महाङ्कसा ४ अग्रपर्णी ५ । इति रत्नमाला ॥
अजशृङ्गी, स्त्री, (अजस्य छागस्य शृङ्गमिव फलं यस्याः सा स्त्रियां ङीप्) वृक्षविशेषः । गाडरशिङ्गी मेढाशिङ्गी । इति ख्याता । तत्पर्य्यायः । विषाणी २ । इत्यमरः ॥ विषाणिका ३ चक्षुश्रेणी ४ अजगन्धिनी ५ सौर्व्वी ६ नेत्रौषधी ७ आवर्त्तिनी ८ । इति रत्नमाला ॥ मेषशृङ्गी ९ वर्त्तिका १० सर्पदंष्ट्रिका ११ चक्षुष्या १२ तिक्तदुग्धा १३ पुत्रशृङ्गी १४ कर्णिका १५ । अस्या गुणाः । कटुत्वं तिक्तत्वं । कफार्शःशूलशोथश्वासहृद्रोगविषरोगकासकुष्ठनाशित्वं । चक्षुर्हितकारित्वञ्च ॥ तत्फलस्य गुणाः । तिक्तत्वं । उष्णत्वं । कटुत्वं कफवायुनाशित्वं । जठरानलरुचिकारित्वं । हृद्यत्वं । लवणाम्लरसत्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ (यथा सुश्रुते,—
"अजगन्धाश्वगन्धा च काला सरलया सह ।
एकैषिकाजशृङ्गी च प्रलेपः श्लेष्मशोथहृत्" ॥
अजस्रं, क्ली, (नञ् + जस् + नमिकम्पिस्म्यजस इत्यादिना रः नञ्समासः) निरन्तरं । सततं । इत्यमरः ॥ (यथा रघुवंशे, "अजस्रदीक्षाप्रयतस्य मद्गुरोः क्रियाविघाताय कथं प्रवर्त्तसे" ।)
अजहत्स्वार्था, स्त्री, (न जहत् न त्यजन् स्वार्थो यां वृत्तिं यद्वा न जहती स्वार्थं या लक्षणा सा ।) लक्षणाख्यवृत्तिविशेषः । उपादानलक्षणा । स्वार्थात्यागिनी लक्षणा । यथा । कुन्ताः प्रविशन्तीत्यत्र कुन्तधारिपुरुषे लक्षणा इत्यलङ्कारशास्त्रं ॥
अजहल्लिङ्गः, पुं, (न जहत् लिङ्गं यं शब्दं यद्वा न जहत् लिङ्गं यः शब्दः इति ।) विशेषणभूतोऽपि स्वलिङ्गात्यागी शब्दः । इति व्याकरणं ॥
अजहा, स्त्री, (न जहाति परित्यजति शुकान्, अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारि वेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यश्च इति पाणिनिसूत्रेण चकारस्य अनुक्तसमुच्चयार्थात् शः द्वित्वं नञ्तत्, स्त्रियां टाप्) शूकशिम्बी । इत्यमरटीकायां स्वामी ॥ अत्याज्ये त्रि ॥
अजा, स्त्री, ( न जायते नोत्पद्यते अपि तु उत्पादयति न + जन् + कर्त्तरि ड नञ् समासः । अत्र नञ्शब्दः शिरश्चालने । आद्याशक्तिपक्षे नञ्निषेधार्थं, अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां नमाम इति साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी ।) छागी । इत्यमरः ॥ माया । आद्या शक्तिः । इति पुराणं ॥ ("अजामेकां लोहितकृष्णशुक्लां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाम् अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः"—इति श्वेताश्वतरोपनिषद् ॥) ओषधिभेदः । (यथा सुश्रुते,—
"अजा महौषधी ज्ञेया शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरा" ।)
अजागरः, पुं, ( न जागरयति सेवनेन लोकान् निद्रापयति यः, जागृ + णिच् जागृोऽविचिण्

शोणितस्य इति मुग्ध तत पश्चाच्च नञ्समास ।) भद्ररायन्न' । इति शब्दरत्नावली ॥ जागरण-रहिते त्रि ॥

अजाजी, स्त्री, (अजेन वीयते अत्युत्कटगन्धतया त्यज्यतेऽसौ अज्+इञ् अजादिभ्यश्च इति कर्म्मणि इञ् । अजेन आजि तृतीया तत् । स्त्रियां वा ङीप्) श्वेतजीरक । कृष्णजीरक । काकोदुम्बरिका । इति राजनिर्घण्टः ॥

अजाजीव, पुं, (अजेन अजव्यवसायेन आजीवति सम्यक् प्राणान् धारयति य, आ+जीव+पचा द्यच् अजेन आजीव' तृतीयातत्पुरुष ) आवाल । छागोपजीवी । इत्यमर' ॥

अजात, त्रि, (जन्+कर्त्तरि क्त' न जात नञ्समास ।) अजन्मविशिष्ट' । अनुत्पन्न । यथा । अजातपक्षा इव मातरं खगा' । इति श्रीभागवत ॥ (यथा दायभागे,—

"ये जाता येऽप्यजाता वा ये च गर्भे व्यवस्थिता' ।
वृत्तिं तेऽपि हि काङ्क्षन्ति वृत्तिलोपो विगर्हित "॥)

अजातशत्रु, पु, (अजातः सर्व्वप्रियत्वात् अनुत्पन्न शत्रुर्यस्य स ) राजा युधिष्ठिर । इति हेमचन्द्र ॥ (यथा महाभारते,—

"अजातशत्रुमासाद्य कुन्ती वचनमब्रवीत्" ।)

(शिव । काशीराज' शमीकपुत्र ।)(यथा हरिवंशे,

"श्यामपुत्र शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत् ।
जुगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप स ।
अजातशत्रु शत्रुणा जज्ञे तस्य विनाशन " ॥)

(बिम्बिसारपुत्र स च शाक्यमुनिसमकालीन ॥)

अजातारि', पु, (अजात सर्व्वप्रियत्वात् अनुत्पन्न अरि' शत्रुर्यस्य स') राजा युधिष्ठिर । इति भूरिप्रयोग ॥

अजातौल्वलि, पुं, (अजया उपजीवी तौल्वलि मुनिविशेष शाकपार्थिवादित्वात् समास मध्यपदलोपश्च । तुल्वलस्यापत्यं तुल्वल+अत इञिति इञ्) अजोपजीविमुनिविशेष । इति मध्यपदलोपिकर्म्मधारयसमासे सुपद्मव्याकरणं ॥ तुल्वलस्यापत्य तौल्वलि अजोपजीवी चासौ तौल्वलिश्चेति । इति तट्टीका ॥

अजादनी, स्त्री, (अजेन छागेन अद्यते भक्ष्यतेऽसौ अद्+कर्म्मणि ल्युट् स्त्रियां ङीप् अजस्य अदनी खाद्या षष्ठीतत्पुरुष) क्षुद्रदुरालभा । इति राजनिर्घण्ट ॥

अजानेय, पुं, (अजवत् निर्भयवत् अपायस्थानमारोहिणं नयति प्रापयति । आ+नी+बाहुलकात् बहुलमिति सूत्रेण कर्त्तरि यत् । अजस्थाने पतितमपि बाणवृष्टौ रणे इति मेदिनी) उत्तम घोटक । तत्पर्याय । हयोत्तम २ वाताश्व ३ । इति त्रिकाण्डशेष ॥ आजानेय ४ कुलीन ५ । इत्यमर' ॥ निर्भये त्रि । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अजान्त्री, स्त्री, (अजस्य अन्त्रमिव देहस्थमन्त्रमिव यस्याः तथाकारत्वात् यस्या सा विद्गौरादिभ्यश्च इति ङीप्) लताविशेष । नीलवृक्षपोता

इति भाषा तत्पर्याय । नीलवृक्षा २ नीलपुष्पी ३ अतिलोमशा ४ नीलिनी ५ छगलान्त्री ६ अन्त कोटरपुष्पी ७ । इति रत्नमाला ॥ वस्तान्त्री । वृद्धदारक । इति राजनिर्घण्ट ॥

अजापालक', त्रि, (अजाना पालक' रक्षक षष्ठीतत्पुरुष) अजाजीवी । छागरक्षक । इति शब्दरत्नावली ॥

अजित, त्रि, (न जित न पराजित नञ्समास । जि+कर्म्मणि क्त') अनिर्जित । इति हेमचन्द्र ॥ अपराजितश्च ॥

अजित, पु, (न जित न केनापि पराजित ऐश्वर्य्येण । "विधा शार्ङ्गी अजितः कृष्णो दृढ सङ्कर्षणोऽच्युत" इति सहस्रनाम पर्य्याये ।) विष्णु । बुद्ध । तीर्थङ्करजैनविशेष । इति हेमचन्द्र ॥ शिव । इति तस्य सहस्रनाममध्ये पठित ॥

अजिन, क्ली, (अजति धूल्यादि आक्षिपति यत् अज्+कर्त्तरि इनन् बाहुल्यात् अजेर्व्यघञ् पोश्च इति नवी आदेश) (अजाजिनं शोणितबिन्दुवर्षि चेति कुमारसम्भवे) चर्म्म । ब्रह्मचार्य्यादिधार्य्यकृष्णसारादित्वक् । इत्यमर' ॥ जिनभिन्ने वाच्यलिङ्ग' ।

अजिनपत्रा, स्त्री, (अजिनं चर्म्म पत्रं पक्षो यस्या सा) चर्म्मचटिका । चामचिका इति ख्याता । तत्पर्याय । जतुका २ । इत्यमर' ॥ जतूका ३ । इति तट्टीका ।

अजिनपत्री, स्त्री, (अजिन चर्म्म पत्र यस्या सा गौरादित्वात् ङीष्) जतुका । इति राजनिर्घण्टः ॥

अजिनयोनि, पु, (अजिनाना चर्म्मणा योनि आकर' षष्ठीतत्पुरुष । योनि' स्त्रीपुंसयोस्स्यादाकरे स्मरमन्दिरे इति मेदिनी) हरिण । इत्यमर ॥

अजिर, क्ली, (अजति गच्छति सरति यत्र अज+अधिकरणे किरच् । उठान इति भाषा । अजति गच्छति य इति वायु । अजति गच्छति स्वर्गमङ्गलमिति यावत् इति शरीर । अजन्ति इन्द्रियाणि गच्छन्त्यत्र इति व्युत्पत्त्या विषय ।) चत्वर । (यथा विष्णुपुराणे,—

"पुनश्च भरतस्याभूदाश्रमस्योटजाजिरे" ।)

वायु । शरीर । मण्डूक । विषय । इति मेदिनी ॥

अजिह्म, त्रि, (जिहि वक्रतायां जिहि+मक् न जिह्म नञ्समास ) अवक्र । सरल । इत्यमर' । भेके पुं । इति शब्दरत्नावली ॥ (यथा मनु,—

"अजिह्मामशठा शुद्धा जीवेत् ब्राह्मणजीविका"।)

अजिह्मग, पु, (अजिह्मं सरल गच्छति य' अजिह्म+गम्+ड उपपदसमास ) बाण' । इत्यमर ॥ अवक्रगे वाच्यलिङ्ग ॥ (यथा रामायणे,—

"ते तस्य कायं निर्भिद्य रुक्मपुङ्खा अजिह्मगा' ।
निष्पेतुर्लोहितादिग्धा रक्ता इव महोरगा ॥
स ददर्श ततोऽगस्त्ये ममुग्राङ्गुणमन्तरं ।
मार्गणैश्च बाणस्समपि तत्क्षणमिच्छति " ॥)

अजिह्व, पुं (नास्ति जिह्वा यस्य स ) भेक' । इति त्रिकाण्डशेष ॥ जिह्वारहिते त्रि ॥

अजीर्ण, क्ली, (जॄ+क्त , न जीर्णं नञ्समास) अपाक । तत्पर्याय' । वायुगण्ड २ अन्तर्वमि ३ पक्ताशय' ४ । इति त्रिकाण्डशेष ॥ अथाजीर्णस्य विप्रकृष्टं निदानमाह । अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्नविपर्य्ययाच्च । कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ सन्धारणात् मूत्रपुरीषादीनां । स्वप्नविपर्य्ययात् दिवाशयनाद्रात्रौ जागरणात् । लघु चापीत्यपिशब्दात् स्निग्धोष्णादिगुणयुक्तमपि ॥ * ॥ अन्यच्च ।

"ईर्षाभयक्रोधपरिप्लुतेन
लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन ।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमान-
मन्नं न सम्यक् परिपाकमेति" ॥

परिप्लुतेन व्याप्तेन । उक्तकारणेभ्योऽतिमात्रभोजन विशेषादजीर्णस्य कारणमजीर्णस्य बहुव्याधीना कारणमित्याह ।

"अनात्मवन्त पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणतः ।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि" ॥

अनात्मवन्त अबुद्धिमन्त' । रोगानीकस्य विस्तारे । मूलं कारणं ॥ * ॥ अन्यच्च ।

"प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणां ।
तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति" ॥

तद्विनाशाद्विनश्यति अजीर्णविनाशात् विनश्यति रोगसंघात इत्यर्थ' । यद्वा तत् अजीर्णं आशनात् भक्षणात् विना भक्षणाभावे विनश्यति निवर्त्तते इत्यर्थ ॥ * ॥ अजीर्णस्य सामान्यस्य लक्षणमाह ।

"ग्लानिर्गौरवमाटोपो भ्रमो मारुतमूढता ।
विबन्धोऽतिप्रवृत्तिर्वा सामान्याजीर्णलक्षणं" ॥

मारुतमूढता वायोरवरोध । विबन्धः मलाप्रवृत्ति ॥ * ॥ सम्प्रत्युक्तकारणे सहितानजीर्णस्य भेदानाह ।

"आम विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभि" ।

त्रिभिरित्येकशो न तु मिलितै' ।

"अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषत" ॥

केचित् सुश्रुतादय ॥ रसशेषत भुक्तस्य पक्वस्य सारभूतो यो द्रव स रस. सोऽपि पच्यते । भुक्तस्य पक्वस्य सारभूतो यो द्रव स यावत् न रसशेष तस्मात् चतुर्थमजीर्णं भवत्यामाजीर्णं ॥ * ॥ नन्वामाजीर्णाद्रसशेषस्य को भेद उच्यते । आम मधुरत्वादपक्व अन्नमेव । रसशेषस्तु भुक्तस्य पक्वस्य सारभूतो यो द्रव स यावन्न पचति इति भेद ।

अजीर्णं पञ्चमं केचित् निर्दोषं दिनपाकि च । निर्दोषं गौरवमरुचादिदोषात्मक । दिनपाकि च आहारोऽहोरात्रेण पाकं याति इति स्वभाव' । यत्तु आहाराल्पदोषाधिक्यात् दिनान्तरे पाकं याति तद्दिनपाकि । अथ च पानकथ्ये च भोज्यमिति वचन,—

"वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृत प्रतिवासरं" ।

प्राकृत अविकारकं । प्रतिवासरं प्रतिदिनभावि । प्राहु यावज्जीर्णे तावदजीर्णमित्युच्यते । तदर्द्धमिवाजस्य प्रदोषं यावार्द्धं वासरार्द्धादर्द्ध-

प्रियशब्दादिसेवनादिकं। न चान्नाहारस्य निषेधः। प्रातराशे त्वजीर्णे तु सायमाशो न दुष्यतीति वचनेन सायमाशस्यावश्य कर्त्तव्यत्वात् ॥*॥ आमाजीर्णस्य लक्षणमाह,—
"तत्रामे गुरुतोत्क्लेशः शोथो गण्डाक्षिकूटग
उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धः प्रवर्त्तते" ॥
गुरुता उदराङ्गयो। उत्क्लेशः उपस्थितं वमनमिव। अक्षिकूटोऽक्षिपुटकं। अविदग्धः अनम्लो निर्गन्धश्च ॥*॥ विदग्धाजीर्णस्य लक्षणमाह,—
"विदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छापित्ताच्च विविधा रुजः।
उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च जायते" ॥
विविधा रुजः चोषचोषदाहादयः ॥*॥ विष्टब्धाजीर्णस्य लक्षणमाह,—
"विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदना।
मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहोऽङ्गपीडनं" ॥
वातवेदना तोदभेदादयः ॥ स्तम्भो गात्राणां। मोहो मूर्च्छा ॥*॥ रसशेषाजीर्णस्य लक्षणमाह,
"रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे" ॥*॥
एतस्य उपद्रवानाह,—
"मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सादनं भ्रमः।
उपद्रवा भवन्त्येते मृतिश्च रसशेषतः" ॥*॥
अतिशयितेभ्य आमाद्यजीर्णेभ्यो विसूच्यादिरोगानाह,—
"आमं विदग्धं विष्टब्धमित्यजीर्णं यदीरितं।
विसूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका" ॥
नात्र यथासङ्ख्यं तदा विष्टब्धाद्विलम्बिका भवितुमर्हति। सा च कफवाताभ्यां भवतीत्येकैकतोऽजीर्णाद्विसूच्यादित्रयोत्पत्तिः ॥*॥ विसूच्यादिनिरुक्तिमाह,—
"सूचीभिरिव गात्राणि तुदन्सन्तिष्ठतेऽनिलः।
यत्राजीर्णेन सा वैद्यैर्विसूचीति निगद्यते" ॥*॥
विसूच्या निदानमाह,—
"न ताः परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः।
मूढ़ास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः" ॥
विदितागमा ज्ञातायुर्व्वेदाः ॥*॥ विसूच्या लक्षणमाह,—
"मूर्च्छातिसारौ वमथुः पिपासा
शूलं भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः।
वैवर्ण्यकम्पौ हृदये रुजश्च
भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः" ॥
उद्वेष्टनं हस्तपादयोः। शिरसो भेदः शिरःशूलं ॥
विसूच्या उपद्रवानाह,—
"निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञता।
अमी उपद्रवा घोरा विसूच्याः पञ्च दारुणाः" ॥
अमी उपद्रवा घोरा अमी निद्रानाशादयः उपद्रवाः सर्व्वेषामेव रोगाणां घोरा भयङ्कराः। विसूच्याः पञ्च दारुणाः विसूच्यास्तु पञ्चापि यदि स्युस्तदा दारुणाः प्राणभयङ्कराः ॥*॥ अलसकलक्षणमाह,—
"कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्येत् परिकूजति।
निरुद्धो मारुतश्चैव कुक्षावुपरि धावति ॥
वातवर्च्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं भवेदपि।
तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ च यस्य तु" ॥
आनह्यते आध्मायते। प्रताम्येत् ग्लायति। परिकूजति आर्त्तनादं करोति। कुक्षौ अजीर्णेन निरुद्धो मारुत उपरि धावति हृदयकण्ठादिकं गच्छतीत्यर्थः। काश्यपस्त्वाह,—
"नाधो याति न चाप्यूर्द्धमाहारो न च पच्यते।
कोष्ठे स्थितोऽलसीभूतस्ततोऽसावलसः स्मृतः" ॥
विसूच्यलसयोररिष्टमाह,—
"यः श्यावदन्तौष्ठनखोऽल्पसंज्ञः
छर्द्यर्द्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्रः।
क्षामस्वरः सर्व्वविमुक्तसन्धि-
र्यायान्नरः सोऽपुनरागमाय" ॥
सर्व्वविमुक्तसन्धिः सर्व्वे विमुक्ताः शिथिलीभूताः सन्धयो यस्य सः ॥*॥ विलम्बिकाया लक्षणमाह,—
"दुष्टञ्च भुक्तं कफमारुताभ्यां
प्रवर्त्तते नोर्द्धमधश्च यत्र।
विलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्सा-
माचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः" ॥
भृशदुश्चिकित्सा प्रत्याख्यायोपचरणीयम्। इयमसाध्येति जेज्जटः ॥*॥ जीर्णस्याहारस्य लक्षणमाह,—
"उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः।
लघुता क्षुत्पिपासे च जीर्णाहारस्य लक्षणं" ॥*॥
अथ चिकित्सा,—
"हरीतकी तथा शुण्ठी भक्ष्यमाणा गुडेन वा।
सैन्धवेन युता वा स्यात् सातत्येनाग्निदीपनी ॥
गुडेन शुण्ठीमथवोपकुल्यां
पथ्यां तृतीयामथ दाड़िमं वा।
आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु
वर्च्चोविवन्धेषु च नित्यमद्यात् ॥
व्योषं दन्ती त्रिवृच्चित्रं कृष्णामूलं विचूर्णितं।
तच्चूर्णं गुडसम्मिश्रं भक्षयेत् प्रातरुत्थितः ॥
एतद्गुडाष्टकं नाम बलवर्णाग्निवर्द्धनं।
शोथोदावर्त्तशूलघ्नं प्लीहपाण्ड्वामयापहं ॥
सर्व्वचूर्णसमो गुडो देयः। केचित्तु द्विगुणं गुडं दत्त्वा गुटिकां कुर्व्वन्ति। रेचकोऽयं योगः। गुडाष्टकम् ॥*॥ दहनाजमोदसैन्धवनागरमरिचानि चाम्लतक्रेण। समाहादग्निकरं पाण्डुरोगनाशनं परमं ॥ औषधमित्यध्याहार्य्यं,—
"तत्रामे वमनं कार्य्यं विदग्धे लङ्घनं हितं।
विष्टब्धे स्वेदनं शस्तं रसशेषे शयीत च ॥
वचालवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते ॥
कणासिन्धुवचाकल्कं पीत्वा वा शिशिराम्भसा ॥
जलमत्र सरावमात्रं। वचा कर्षार्द्धमिता। सैन्धवं कर्षार्द्धमितं। द्वयोश्चूर्णयुतेन जलेन पीतेन। "कणादिकल्कं वा पीत्वा वान्तिरामे प्रशस्यते" इत्यनेनान्वयः ॥*॥
"धान्यनागरसिद्धं वा तोयं दद्याद्विचक्षणः।
आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधनं ॥
भवेद् यदि प्रातरजीर्णशङ्का
सदाभयां नागरसैन्धवाभ्यां।
त्रिचूर्णितां शीतजलेन भुक्त्वा
भुञ्जीत भक्तं मितमन्नकाले ॥
विदह्यते यस्य तु भुक्तमात्रं
दंदह्यते हृच्च गलश्च यस्य।
द्राक्षां सितामाक्षिकसम्प्रयुक्तां
लिह्याभयां चातिसुखं लभेत ॥
त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे
समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः।
प्रथमकवलभुक्तः सर्पिषा चूर्णमेत-
ज्जनयति जठरेऽग्निं वातरोगांश्च हन्ति" ॥
अजमोदात्र यवानी। अन्त समार्ज्जकत्वात्। जीरके द्वे शुक्लं कृष्णञ्च। धरणमत्र मानं। तेषां समधरणधृतानां तुल्यमानं गृहीतानां शुण्ठ्यादीनां भागाः सप्त। तत्राष्टमो भागो हिङ्गुनः। हिङ्ग्वष्टकम् ॥*॥
"शुद्धं सूतं गन्धकञ्च पलमानं पृथक् पृथक्।
हरीतकी च द्विपला नागरस्त्रिपलः स्मृतः ॥
कृष्णा च मरिचं तद्वत् सिन्धूत्थं त्रिपलं मतं।
चतुष्पला च विजया मर्द्दयेन्निम्बुकद्रवैः ॥
पुटानि सप्त देयानि घर्म्ममध्ये पुनः पुनः।
अजीर्णारिरयं प्रोक्तः सद्यो दीपनपाचनः ॥
भक्षयेद्द्विगुणं भक्ष्यं पाचयेद्रेचयेदपि।
अजीर्णारिः ॥*॥
"द्वौ क्षारौ चित्रकं पाठा करञ्जं लवणानि च।
सूक्ष्मैलापत्रकं भार्गी क्रमिघ्नं हिङ्गु पौष्करं ॥
शटी दार्व्वी त्रिवृन्मुस्तं वचा चेन्द्रयवास्तथा।
वृक्षाम्लं जीरकं धात्री श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥
अम्लवेतसमम्लीका यवानी देवदारु च।
अभयातिविषा श्यामा हपुषारग्वधं समं ॥
तिलमुष्ककशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः।
क्षाराणि लौहकिट्टञ्च तप्तं गोमूत्रसेचितं ॥
सूक्ष्मचूर्णानि कृत्वा तु समभागानि कारयेत्।
मातुलुङ्गरसेनैतद्भावयेद्दिवसत्रयं ॥
दिनत्रयन्तु शुक्तेन तथार्द्रकरसेन च।
अत्यग्निकारकं चूर्णं प्रदीप्ताग्निसमप्रभं ॥
उपयुक्तं विधानेन नाशयत्यचिराद्गदान्।
अजीर्णमथ गुल्मांश्च प्लीहानं गुदजानि च ॥
उदराण्यन्त्रवृद्धिञ्च अष्ठीलां वातशोणितं।
प्रणुदत्युल्वणान्दोषानष्टमग्निं प्रदीपयेत् ॥
द्वौ क्षारौ स्वर्जिका यवक्षारश्च। लवणानि पञ्च। वृक्षाम्लं विषाम्बिल इति लोके। श्रेयसी हरीतकी। उपकुञ्चिका मगरैला। अम्लवेतसाभावे चुक्रं दातव्यं। श्यामा सारङ्ग। मुष्कको मोष इति लोके। कोकिलाक्षः कोइलया इति लोके। वृहदग्निमुखचूर्णं ॥*॥
"स्नुह्यर्कचित्रकैरण्डवरुणं सपुनर्णवं।
तिलापामार्गकदलीपलाशं तिन्तिडी तथा ॥
गृहीत्वा ज्वालयेदेतत् प्रस्थं भस्माखिलञ्च तत्।
जलाढ़के विपक्तव्यं यावत् पादावशेषितं ॥
सुप्रसन्नं विनिःस्राव्य लवणप्रस्थसंयुतं।
पक्त्वा निर्धूमकठिनं सूक्ष्मचूर्णीकृतं पुनः ॥
यवानीजीरकव्योषस्थूलजीरकहिङ्गुभिः।

पृथगर्द्धपलैरेभिश्चूर्णितैस्तत् विमिश्रयेत् ॥
आर्द्रकस्य रसेनापि भावयेच्छोषयेत् पुनः ।
शीतोदकेन तच्चूर्णं पिबेत् प्रातर्द्विमात्रया ॥
तस्मिन् जीर्णेऽन्नमश्नीयाद्यूषैर्जाङ्गलजै रसैः ।
ईषदम्लैः सलवणैः सुखोष्णैर्वह्निदीपनैः ॥
एतेनाग्निर्विवर्द्धेत बलमारोग्यमेव च ।
तत्रानुपानं शस्तं हि तक्रं वा भोजनं हितं ॥
मन्दाग्न्यर्शोविकारेषु वातश्लेष्मामयेषु च ।
सर्व्वाङ्गशोथरोगेषु शूलगुल्मोदरेषु च ॥
अश्मर्य्यां शर्करायाञ्च विण्मूत्रानिलरोगिषु ।
वैश्वानरक्षारः ॥ * ॥
"सामुद्रं लवणं ग्राह्यमष्टकर्षमितं बुधैः ।
सौवर्च्चलं पञ्चकर्षं विडसैन्धवधान्यकं ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं पत्रकं कृष्णजीरकं ।
तालीशं केशरं चव्यमम्लवेतसकं तथा ॥
द्विकर्षमात्राण्येतानि प्रत्येकं कारयेद्बुधः ।
मरिचं जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकं ॥
दाडिमं स्याच्चतुःकर्षं त्वगेले चार्द्धकर्षके ।
एतच्चूर्णीकृतं सर्व्वं लवणं भास्कराभिधं ॥
भक्षयेच्छाणमानं तत्तक्रमस्तुककाञ्जिकैः ।
वातश्लेष्मभवं गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षयं ॥
अर्शांसि ग्रहणीं कुष्ठं विबन्धञ्च भगन्दरं ।
शूलं शोथं श्वासकासावामदोषञ्च हृद्रुजं ॥
अश्मरीं शर्करांश्चापि पाण्डुरोगं कृमीनपि ।
मन्दाग्निं नाशयेदेतद्दीपनं पाचनं परं ॥
हिताय सर्व्वलोकानां भास्करेणैतदीरितं ।
हन्यात् सर्व्वाण्यजीर्णानि भुक्तमात्रमसंशयं ॥
निम्बुरसादिकं दत्त्वा गुटिकामप्यके कुर्व्वन्ति" ॥
अथ दाडिमस्य बीजानां चूर्णं कर्षचतुष्टयमितं देयं । भास्करलवणचूर्णं ॥ * ॥ सैन्धवं समूलमगधा चव्यानलनागरं पथ्या । क्रमवृद्धि मग्निवृद्धै वड़वानलनामचूर्णं स्यात् ॥ वडवानलचूर्णं ॥ * ॥ पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जविल्वाग्निभिः सितातुल्यैः । वडवानल इव जरयति बहुगुर्व्वपि भोजनं चूर्णं द्वितीयं वडवानलचूर्णं ॥ * ॥
"एलात्वङ्नागपुष्पाणां मात्रोत्तरविवर्द्धिता ।
मरिचं पिप्पली शुण्ठी चतुःपञ्चषडुत्तरं ॥
द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावती सितशर्करा ।
चूर्णमेतत् प्रयोक्तव्यमग्निसन्दीपनं परं" ॥
समशर्करचूर्णं ॥ * ॥
"इन्द्राशनं सप्तपलं त्रिफलायाः पलत्रयं ।
पलत्रयं त्र्यूषणस्य सितायाश्च चतुःपलं ॥
अमृता शतपुत्री च तथा कृष्णापराजिता ।
आसां चूर्णं समादाय पलमात्रं पृथक् पृथक् ॥
भावयेदेकतः सर्व्वं भृङ्गराजरसेन तु ।
स्वभाविकमिदं चूर्णं स्निग्धभाण्डे विनिक्षिपेत् ॥
विलिहन् मधुसर्पिर्भ्यां मन्दाग्निः सहसा नरः ।
मुच्यते ग्रहणीरोगात् गुदरोगात् सजाठरात् ॥
मेहं कुष्ठञ्च वीसर्पं वातरोगान् सशोणितान् ।
न चात्र परिहारोऽस्ति भोजनं सर्व्वकामिकं ॥
रोगानीकप्रशान्त्यर्थं मुनिभिः परिकीर्त्तितं ।
अस्याभ्यासात् बलं वीर्य्यं पुष्टिदृष्टिप्रशस्तया ॥

अजीर्ण

त्रिसप्ताहप्रयोगेण जायते नात्र संशयः ।
ज्वालामुखीचूर्णं ॥ * ॥ अथ अजीर्णे रसाः,—
"द्विपलं गन्धकं शुद्धं पलमेकन्तु पारदं ।
मृतं लोहं तथा ताम्रं कर्षद्वयमितं पृथक् ॥
सञ्चूर्ण्य सर्व्वं संमिश्र्य द्रावयित्वाग्नियोगतः ।
सम्यग्द्रुतं समस्तं तत्पञ्चाङ्गुलदले क्षिपेत् ॥
पुनः संचूर्ण्य तत्सर्व्वं लोहपात्रे निधाय च ।
जम्बीरस्य रसं तत्र पूतं पलशतं क्षिपेत् ॥
चुल्ल्यां निवेश्य तद्यत्नात् मृदुना वह्निना पचेत् ।
रसे तस्मिन् घनीभूते तत्संशोष्य विचूर्णयेत् ॥
पञ्चकोलकषायस्य चुक्रेण सहितस्य च ।
भावनास्तत्र दातव्याः पञ्चाशत्सङ्ख्यया शनैः ॥
भृष्टटङ्कणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् ।
मरिचेनापि तुल्येन तदर्द्धेन विडेन च ॥
भावयेत् सप्तकृत्वस्तच्चणकाम्लजलेन च ।
ततः संशोष्य सपिष्य कूपीमध्ये निधापयेत् ॥
रसः क्रव्यादनामायं भैरवानन्दयोगिना ।
उक्तः सिंहलराजाय बहुमांसाशिने पुरा ॥
भक्षयेद्भोजनस्यान्ते माषद्वयमितं रसं ।
भक्षयित्वा रसं पश्चात् पिबेत्तक्रं ससैन्धवं ॥
अतीवगुरु यद्भुक्तमतिमात्रमथापि वा ।
तत्सर्व्वं जीर्य्यति क्षिप्रं रसस्यैतस्य भक्षणात् ॥
शूलं गुल्मञ्च विष्टम्भं प्लीहानमुदरं तथा ।
रसः क्रव्यादनामायं विनिहन्ति न संशयः"
क्रव्यादो रसोऽजीर्णे ॥ * ॥ रसेन्द्रचिन्तामणौ रसरत्नप्रदीपे रसप्रदीपे च ॥
"क्षारत्रयं सूतगन्धौ पञ्चकोलमिदं शुभं ।
सर्व्वैस्तुल्या जया भृष्टा तदर्द्धा शिग्रुजा जटा ॥
एतत् सर्व्वं जयाशिग्रुवह्निमार्कवजैर्द्रवैः ।
भावयेत्त्रिदिनं घर्म्मे ततो लघुपुटे क्षिपेत् ॥
सप्तधार्द्रद्रवैर्घृष्टो रसो ज्वालानलो भवेत् ।
निष्कोऽस्य मधुना लीढोऽनुपानं गुडनागरं ॥
हन्त्यजीर्णमतीसारं ग्रहणीमग्निमार्द्दवं ।
श्लेष्महृल्लासवमनमालस्यमरुचिं जवात्" ॥
पञ्चकोलं,—
पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरं । जयात्र विजया । मार्कवो भृङ्गराजः । लघुपुटे गजपुटे । आर्द्रमार्द्रकं । निष्कः टङ्कः । ज्वालानलो रसोऽजीर्णे ॥ * ॥ रसप्रदीपे,—
"टङ्कणं रसगन्धौ च समभागत्रयं विषात् ।
कपर्द्दः स्वर्जिकाक्षारौ मागधी विश्वभेषजं ॥
पृथक् पृथक् कर्षमात्रं वसुभागमितोषणं ।
जम्बीराम्लैर्द्दिनं घृष्टं भवेदग्निकुमारकः ॥
विसूचीशूलवातादिवह्निमान्द्यप्रशान्तये" ।
क्षारीयवक्षारः । अग्निकुमारो रसो विसूच्याद्यजीर्णे ॥ * ॥ रसेन्द्रचिन्तामणौ,—
"शुद्धसूतं गन्धकञ्च पलमानं पृथक् पृथक् ।
हरीतकी च द्विपला नागरस्त्रिपलः स्मृतः ॥
कृष्णा च मरिचं तद्वत् सिन्धूत्थं त्रिपलं मतं ।
चतुष्पला च विजया मर्दयेन्निम्बुकद्रवैः ॥
पुटानि सप्त देयानि घर्म्ममध्ये पुनः पुनः ।
अजीर्णारिरयं प्रोक्तः सद्यो दीपनपाचनः ॥

अजीर्ण

भक्षयेद्द्विगुणं भक्ष्यं पाचयेद्रेचयेदपि ।
अजीर्णारि ॥ * ॥
"पारदामृतलवङ्गगन्धकं
भागयुग्ममरिचेन मिश्रितं ।
तत्र जातिफलमर्द्धभागिकं
तिन्तिडीफलरसेन मर्द्दितं ॥
वह्निमान्द्यदशवक्त्रनाशनो
रामबाण इति विश्रुतो रसः ।
सङ्ग्रहग्रहणिकुम्भकर्णक-
मामवातखरदूषणं जयेत् ॥
दीयते तु चणकानुमानतः
सद्य एव जठराग्निदीपनः ।
रोचकः कफकुलान्तकारकः
श्वासकासवमिजन्तुनाशनः ॥
पाराभाग १ विषभाग १ लवङ्गभाग १ गन्धकभाग १ मरिचभाग ८ जायफलभाग २। रामबाणरसोऽजीर्णे ॥ * ॥
रसेन्द्रचिन्तामणौ,—
"पलं चिञ्चाक्षारं पलपरिमितं पञ्चलवणं द्वयं सम्यक्पिष्टं भवति लघु निम्बुफलरसैः । ततस्तप्तं तस्मिन् पलपरिमितं शङ्खशकलं क्षिपेद्वारान् सप्त द्रवति तदनेनैव विधिना ॥ पलप्रमाणं कटुकत्रयञ्च पलार्द्धमानेन च हिङ्गुभागः । विषं पलद्वादशभागयुक्तं तावान्रसो गन्धक एष चोक्तः—
"बदरास्थिप्रमाणेन वटीमेतस्य कारयेत् ।
भक्षयेत् सर्व्वदा सा स्यात् सर्व्वाजीर्णप्रशान्तये ॥
सर्व्वोदरेषु शूलेषु विसूच्यां विविधेषु च ।
अग्निमान्द्येषु गुल्मेषु सदा शङ्खवटी हिता" ॥
शङ्खवटी अजीर्णे ॥ * ॥ रसप्रदीपे,—
"स्नुगर्कचिञ्चापामार्गरम्भातिलपलाशजान् ।
लवणान् भिषगादद्यात् प्रत्येकं पलमात्रया ॥
लवणानि पृथक् पञ्च ग्राह्याणि पलमात्रया ।
स्वर्जिका च यवक्षारष्टङ्कणं त्रितयं पलं ॥
सर्व्वं त्रयोदशपलं सूक्ष्मचूर्णं विधाय तु ।
निम्बूफलरसे प्रस्थसमिते तत् परिक्षिपेत् ॥
तत्र शङ्खस्य शकलं पलं वह्नौ प्रताप्य तु ।
वारान्निर्व्वापयेत् सप्त सर्व्वं द्रवति तद्यथा ॥
नागरं त्रिपलं ग्राह्यं मरिचञ्च पलद्वयं ।
पिप्पली पलमाना स्यात् पलार्द्धं भृष्टहिङ्गुनः ॥
ग्रन्थिकं चित्रकं चापि यवानी जीरकं तथा ।
जातीफलं लवङ्गञ्च पृथक् कर्षद्वयोन्मितं ॥
रसो गन्धो विषञ्चापि टङ्कणञ्च मनःशिला ।
एतानि कर्षमात्राणि सर्व्वं सञ्चूर्ण्य मिश्रयेत् ।
शरावार्द्धेन चुक्रेण सनीय वटिकाञ्चरेत् ॥
माषप्रमाणा सा वैद्यैर्वृहच्छङ्खवटी स्मृता ॥
सर्व्वाजीर्णप्रशमनी सर्व्वशूलनिवारिणी ।
विसूच्यलसकादीनां सद्यो भवति नाशिनी" ॥
वृहच्छङ्खवटिका अजीर्णे ॥ * ॥
"टङ्कणकणामृतानां सहिङ्गुलानां समभागाः ।
मरिचस्य भागयुगलं निम्बुनीरैर्व्वटी कार्य्या ॥
वटिका कलायसदृशीमेकां द्वे वा समश्नीयात् ।

सत्वरमजीर्णशान्त्यै वह्नेर्वृद्धौ कफध्वस्त्यै” ॥
अजीर्णकण्टको रसः ॥ * ॥
“जलपीतमपामार्गमूलं हन्यादिसूचिकाम् ।
सतैलं कारवेल्लाम्बु विधुनोति विसूचिकाम् ॥
बालमूलस्य निःक्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ।
विसूचीनाशने श्रेष्ठो जठराग्निविवर्द्धनः ॥
बिल्वनागरनिःक्वाथो हन्याच्छर्द्दिविसूचिकाम् ।
बिल्वनागरकैडर्य्यक्वाथस्तदधिको गुणैः” ॥
कैडर्य्यः कट्फलम्,—
“व्योष करञ्जस्य फलं हरिद्रे
मूलं समावाप्य च मातुलुङ्ग्याः ।
छायाविशुष्का गुटिका हतास्रा
हन्याद्विसूचीं नयनाञ्जनेन” ॥
मातुलुङ्गी मधुकर्कटी । अनुभूतमिदम्,—
“अपामार्गस्य पत्राणि मरिचानि समानि च ।
अम्बस्य लालया पिष्टान्यञ्जनाद्घ्नन्ति सूचिकाम् ॥
विसूच्यामतिवृद्धायां तप्तं दधिसमं जलम् ।
नारिकेलाम्बु पेयं वा प्राणत्राणाय योजयेत् ॥
त्वक्पत्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठै-
रम्लप्रपिष्टैः सवचाशताह्वैः ।
उद्वर्त्तनं खल्लिविसूचिकाघ्नं
तैलं विपक्वञ्च तदर्थकारि” ॥
त्वक्तैलम् ॥ * ॥
“कुष्ठसैन्धवयोः कल्कं चुक्रं तैलं तु तच्छृतम् ।
विसूच्यां मर्दनं तेन खल्लीशूलनिवारणम्” ॥
कुष्ठतैलम् ॥ * ॥
“पिपासायां तथोत्क्लेशे लवङ्गस्याम्बु शस्यते ।
जातीफलस्य वा शीतं शृतं भद्रघनस्य वा ॥ * ॥
उत्क्लेशलक्षणम्,—
“उत्क्लिश्यान्नं न निर्गच्छेत् प्रसेकष्ठीवनेरितम् ।
हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेदिति ॥
सरुग्वानद्धमुदरमम्लपिष्टैः प्रलेपयेत् ।
दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिङ्गुसैन्धवैः” ॥
हैमवती श्वेतवचा । दारुषट्कम् ॥ * ॥
“तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं
सक्षारमार्त्तिं जठरे निहन्यात् ।
स्वेदो घटैर्वा बहुवाष्पपूर्णै-
रुष्णैस्तथान्यैरपि पाणितापैः ॥
विलम्बिकालसकयोरयमेव क्रियाक्रमः ।
अतएवैतयोरुक्ता पृथक् नेह चिकित्सितम् ॥
तद्भुक्तं गुरुस्निग्धसान्द्रमन्दहिमस्थिरैः ।
अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं पित्तघ्नैश्च विरेचनैः ॥
अत्युद्धताग्निशान्त्यै माहिषदधिदुग्धसर्पींषि ।
संसेवेत यवागूं समधूच्छिष्टां ससर्पिष्कां ।
असकृत् पित्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम् ॥
श्यामात्रिवृद्विपक्वञ्च पयोदद्याद्विरेचनम् ॥
यत् किञ्चित् मधुरं मेध्यं श्लेष्मलं गुरु भोजनम् ।
सर्व्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा” ॥
सिततण्डुलं सितकमलं छागीक्षीरेण पायसं सिद्धं । भुक्त्वा हतेन पुरुषो द्वादशदिवसाद्बुभुक्षितो भवेत् ॥*॥ अथ विशिष्टद्रव्याजीर्णे विशिष्टपाचनद्रव्यमाह,—
“अलं पनसपाकाय फलं कदलसम्भवम् ।
कदलस्य तु पाकाय बुधैरभिहितं घृतम् ॥
घृतस्य परिपाकाय जम्बीरस्य रसो हितः ।
नारिकेलफलतालवीजयोः
पाचकं सपदि तण्डुलं विदुः ।
क्षीरमाशु सहकारपाचनं
चारमज्जनि हरीतकी हिता ॥
मधूकमालूरकपादनानां
परूषखर्ज्जूरकपित्थकानाम् ।
पाकाय पेयं पिचुमर्दवीजं
घृतेऽपि तक्रेऽपि तदेव देयम् ॥
खर्ज्जूरशृङ्गाटकयोः प्रशस्तं
विश्वौषधं कुत्र च भद्रमुस्तम् ।
यष्ट्याह्वयोधिद्गुफलेषु शीतं
शस्तं तथा वाम्बुचितं प्रणीतम् ॥
तण्डुलेषु पयसः पयो हितं
दीप्यकन्तु चिपिटे कणायुतम् ।
मण्डिका दधिजलेन जीर्य्यते
कर्कटी च सुमनेषु जीर्य्यते” ॥
सुमनेषु गोधूमेषु । जीर्य्यते कथ्यते ।
“गोधूममाषहरिमन्थसतीलमुद्ग-
पाको भवेत् झटिति मालपुष्पकेण ।
खण्डञ्च खण्डयति माषभवं त्वजोर्णं
तैलं कुलत्थमथवा विदधाति जीर्णम्” ॥
मालपुष्पकं धत्तूरफलम् ।—
“कङ्गुश्यामाकनीवारा कुलत्थश्चाविलम्बितम् ।
दध्नो जलेन जीर्य्यन्ति वैदलाः काञ्जिकेन तु ॥
पिष्टान्नं शीतलं वारि क्षशरान् सैन्धवं पचेत् ।
माषेण्डरी निम्बमूलं पायसं मुद्गयूषकैः” ॥
वटीवेशवाराल्लवङ्गेन फेणीशम पर्पटं शिग्रुवीजेन याति । कणामूलतो लड्डुकापूपशष्टाविपाको भवेच्छ्म्कुली मण्डयोश्च ॥ वेशवार वेगर इति लोके । तद् यथा ।—
“स्विन्नो निशाहिङ्गुलवङ्गकैला-
धान्याकजीरार्द्रकनागराणि ।
अस्थीषणां सैन्धवपूर्णमन्ने
यथोचितं संस्कृतये प्रणीतम्” ॥ इति ॥
शष्टा शष्टकः पानकविशेषः । मण्डः माण्डे इति लोके ।—
“किमत्र चित्रं बहुमत्स्यमांस
भोजी सुखी काञ्जिकपानतः स्यात् ।
इत्यद्भुतं केवलपक्षिपक्व-
मांसेन मत्स्यं परिपाकमेति ॥
आममाम्रफलं मीने तद्वीजं पिशिते हितम् ।
कूर्म्ममांसं यवक्षाराच्छीघ्रं पाकमुपैति हि ॥
कपोतपारावतनीलकण्ठ
कपिञ्जलानां पिशितानि भुक्त्वा ।
काशस्य मूलं परिपीय पिष्टं
सुखी भवेन्ना बहुशो हि दृष्टम् ॥
कपोतो धवलः पाण्डुः ।
“शाकानि सर्व्वाण्यपि यान्ति
पाकं क्षारेण सद्यस्तिलनालजेन ।
पर्पटकसिद्धार्थकवास्तुकानां
गायत्रिसारक्वथितेन पाकः” ॥
पर्पटकः चेचूरु इति लोके । गायत्री खदिरः ।
“पलाशिकाकेमुककारवेल्ली-
वार्त्ताकुवशाङ्कुरमूलकानाम् ।
उपोदिकालावुपटोलकानां
सिद्धार्थको मेघरवस्य पक्ता” ॥
मेघरवः चवराई इति लोके ।—
“विपच्यते शूरणकं गुडेन
तथालुकं तण्डुलतोदकेन ।
पिण्डालुकं जीर्य्यति कोरदूषात्
कसेरुपाकः किल नागरेण ॥
लवणस्तण्डुलतोयात् सर्पिर्जम्बीरकात्सात् ।
मरिचादपि तच्छीघ्रं पाकं यात्येव काञ्जिकात् ।
क्षीरं जीर्य्यति तक्रेण तद्रूप्यं कोष्णमण्डकात् ।
माहिषं माणिमन्थेन शङ्खचूर्णेन तद्दधि” ॥
मण्डकः माण्डे इति लोके,—
“रसाला जीर्य्यति व्योषात् खण्डः नागरमद्य...
सिता नागरमुस्तेन तथेक्षुश्चार्द्रकारसात् ।
जराग्निरागैरिकचन्दनाभ्या-
मभ्येति शीघ्रं मुनिभिः प्रणीतम् ।
उष्णेन शीतं शिशिरेण चोष्णं
जीर्णं भवेत् क्षारगणस्तथाम्भः” ॥
इरा मदिरा ।
“तप्तं तप्तं हेम वा तारमयं
तोये क्षिप्तं सप्तकृत्वस्तदम्भः ।
पीत्वाजीर्णं तोयजातं निहन्यात्
क्षौद्रं क्षौमं भद्रयुक्तं विशेषात्” ॥
तत्र तोयाजीर्णे । इति जठराग्निविकाराजी... विसूचिकालसविलम्बिकाचिकित्सा । इति भा... प्रकाशः ॥

अजीवः, त्रि, (नास्ति जीवः आत्मा यस्य स बहुव्रीहिः) मृतः । अवसन्नः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अजीवनिः, स्त्री, (नञ् + जीव + आक्रोशेनञ्या... रिति सूत्रेण अनि ) जीवनाभावः । अकरणि... शापः । यथा । तस्याजननिरेवास्तु । इत्यम... टीकायां भरतः ॥ अजीवनिस्तव भूयात् । इ... मुग्धबोधः ॥

अजुगुप्सितः, त्रि, (गुप् + सन् + क्त न जुगुप्सि... नञ् समासः ) अनिन्दितः । यथा,—
“उपवेश्य तु तान् विप्रानासनेष्वजुगुप्सितान् ।
गन्धमाल्यैः सुरभिभिरर्च्चयेद्देवपूर्व्वकम्” ॥
इति मानवे ३ अध्याये २०९ श्लोकः ॥

अजेयः, त्रि, (न जेयः नञ् समासः ) इति नञ् पूर्व्वक... जिधातोः कर्म्मणि यत्प्रत्ययः । अजेतव्यः । अ... जयनीयः । यथा ।—
“अजेयस्त्वञ्च संग्रामे ममापि हि भविष्यति” ।
इति स्कान्दे काशीखण्डे २३ अध्यायः ।

अज्येष्ठवृत्तिः, पुं, (ज्येष्ठस्य वृत्तिः आचरणं षष्ठी... तत्पुरुषः नास्ति ज्येष्ठवृत्तिः ज्येष्ठाचरणं यस्य स बहुव्रीहिः) ज्येष्ठवृत्तिरहितः । भ्रातृषु पितृ-वद्दर्शनाभाववान् । यथा,—

"यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः ।
अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात् स सम्पूज्यस्तु बन्धुवत्" ॥
इति मानवे ९ अध्याये ११० श्लोकः ॥
यो ज्येष्ठोऽनुजेषु पितृवद्वर्त्तेत स पितेव मातेव
श्लाघनीयो भवति । यः पुनस्तथा न वर्त्तेत स
मातुलादिवदर्च्चनीयः । इति तट्टीकायां कुल्लूक-
भट्टः ।

अजैकपात्, [द्] पुं, (अजस्य छागस्य एकः पाद इव पादो यस्य स बहुव्रीहिः अलोपः) एकादश-रुद्रान्तर्गतरुद्रविशेषः । इति शब्दमाला ॥ (हरि-वंशे,—
"अजैकपादहिर्ब्रध्नस्त्वष्टा रुद्रश्च भारत ।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः" ॥)

अजैकपाद, पुं, (अजस्य छागस्य एकः पाद इव पादो-यस्य स विकल्पे अलोपः) रुद्रविशेषः । इति जटाधरः ॥ छन्दोऽनुरोधादसन्धिरपि विष्णुपुराणे चन्द्रकलापप्रस्तावे अजएकपादिति ॥ (यथा भारते ।—
"अजैकपादहिर्ब्रध्नो विरूपाक्षः सुरेश्वरः ।
जयन्तो बहुरूपश्च त्र्यम्बकोऽप्यपराजितः ।
वैवस्वतश्च सावित्रोहरोरुद्रा इमे स्मृता" )

अज्जुका, स्त्री, (अर्ज्जयति नायकादर्थमुपार्ज्जयति या अर्ज्जि+समिकः स इति बाहुलकादुकन् रस्य जः) नाट्योक्तौ वेश्या । इत्यमरः ॥ (एसा अज्जुआ हि अ एन किम्पि आलिहन्ती चिट्ठदि मृच्छकटिके ।)

अज्झटा, स्त्री, (करट इति वत् उज्झति सर्व्वदोषान् नाशयति या उज्झ+कर्त्तरि अटन् स्त्रियां टाप् पृषोदरादित्वात् उकारस्य अः । यद्वा, अव्यय-माश्चर्य्ये अत् आश्चर्य्यकारी झटः सङ्घातोऽस्याः । अत्ति क्विप् झटति झटसंघाते अच् । टाप् । अ-श्चासौ झटा च वा ॥
("अज्झं समधुरं तिक्तं कषायं कटुकं सरम् ।
चक्षुष्यं सर्व्वदोषघ्नं वृष्यमामलकीफलम्" ॥
इति सुश्रुते ।) भूम्यामलकी । इत्यमरः ॥

अज्झाल, स्त्री, उज्झति अस्त्रं वारयति या उज्झ+कर्त्तरि अलच् पृषोदरादित्वात् उकारस्य अकारः) फलकः । ढाल इति ख्यातं । इति हेमचन्द्रः ॥ (पुं, अङ्गार, कोकिल ।)

अज्ञः, त्रि, (ज्ञा+कर्त्तरि कः नञ् नञ्समासः ।) जडः । मूर्खः । इत्यमरः । (यदुक्तं,—
"अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदः" ॥
यथा षाण्ढोऽफलः दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः ।
इदं शरणमज्ञानां ।
"अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणोवराः ।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ॥")

अज्ञानं, क्ली, (ज्ञा+भावे ल्युट् नञ्ज्ञान नञ्समासः) विरुद्धज्ञानं । तत्पर्य्यायः । अविद्या २ अहम्मतिः ३ । इत्यमरः ॥ सृष्टिकाले ब्रह्मा प्रथमं पञ्च-प्रकारमज्ञानं ससर्ज । यथा । तमः १ मोहः २ महामोहः ३ तामिस्रं ४ अन्धतामिस्रं ५ । इति श्रीभागवतं ॥ वेदान्तमते सदसद्भ्यामनि-र्व्वचनीयं त्रिगुणात्मकं भावरूपं ज्ञानविरोधि यत्किञ्चित् । ज्ञानरहिते त्रि ॥ (यथा मनुः—
अज्ञानात् वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति ।
अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं ।
अज्ञानात् बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥)

अञ्चतिः, पुं, (अञ्चति गच्छति यः अञ्च+कर्त्तरि अतिः) वायुः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अञ्चलः, पुं, (अञ्चति प्रान्तभागं गच्छति अञ्च+अलच्) वस्त्रप्रान्तभागः । आँचल इति भाषा । इति हलायुधः ॥ (यथा साहित्यदर्पणे ।—
"ऊरु कुरङ्गकदृशश्चञ्चलचेलाञ्चलोभाति" ॥

अञ्चितः, त्रि, (अञ्च+कर्म्मणि क्तः नाञ्चेः पूजाया-मिति नलोपाभावः) पूजितः । इत्यमरः ॥ (यथा रघुवंशे ।—
"उभावलञ्चक्रतुरञ्चिताभ्यां
तपोवनावृत्तिपथं गताभ्यां ॥)

अञ्चितभ्रूः, स्त्री, (अञ्चिते उत्कृष्टे भ्रुवौ यस्याः सा बहुव्रीहिः) सुन्दरभ्रूयुक्तनारी । इति स्त्रीपर्य्याये राजनिर्घण्टः ॥

अञ्जनं, क्ली, (अन्ज+भावे ल्युट्, कज्जले तु गम्य-माने करणे ल्युट्) म्रक्षणं । गमनं । व्यक्तीकरणं । इत्यनट् प्रत्ययान्तान्जधातवः । कज्जलं । तत्तु षड्विधं । यथा,—
"सौवीरं जाम्बलं तुत्थं मयूरग्रीवकं तथा ।
दर्व्विका नीलमेघश्च अञ्जनानि भवन्ति षट्" ॥
तल्लक्षणानि यथा"—
"खवद्रूपन्तु सौवीरं जाम्बलं प्रस्तरं तथा ।
मयूरग्रीवकं रत्नं मेघनीलन्तु तैजसं ॥
दृष्ट्वा निगाह्य चैतानि शिलायां तैजसेऽथवा ।
प्रदद्यात् सर्व्वदेवेभ्यो देवीभ्यश्चापि पुत्रक ॥
घृततैलादियोगेन ताम्रादौ दीपवह्निना ।
यदञ्जनं जायते तु दर्व्विका परिकीर्त्तिता ॥
सर्व्वाभावे तु ता दद्यात् देवीभ्यो दर्व्विकाञ्जनं ।
महामाया जगद्धात्री कामाख्या त्रिपुरा तथा ।
आप्नुवन्ति महातोषं षड्भिरेभिः सदाञ्जनैः ॥
विधवा नाञ्जनं कुर्य्यात् महामायार्थमुत्तमं ।
नादत्ते त्वञ्जनं देवी वैष्णवी विधवाहृतं ॥
न मृत्पात्रे योजयेत्तु साधको नेत्ररञ्जनं ।
न पूजाफलमाप्नोति मृत्पात्रविहिताञ्जनैः ॥
चतुर्व्वर्गप्रदो धूपः कामदं नेत्ररञ्जनं ।
तस्माद्द्वयमिदं दद्याद्देवेभ्यो भक्तितो नरः" ॥
इति कालिकापुराणे ६८ अध्यायः ॥ अस्य गुणाः । तारागैर्म्मल्यकारित्वं । निर्म्मलचन्द्रतुल्यनिराकुल-दृष्टिकारित्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥ सौवीरा-ञ्जनं । रसाञ्जनं । अक्तिः । मसी । इति हेम-चन्द्रः ॥ अभि इति विश्वः ॥ आलङ्कारिकभाषया व्यञ्जनाख्यवृत्तिः । यथा,—
"अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते ।
संयोगाद्यैरवाच्यार्थधीकृद्व्यापृतिरञ्जनं ॥
इति काव्यप्रकाशः ॥

अञ्जनः, पुं, (अनक्ति प्रतीच्यां दिशि रक्षकत्वेन प्रका-शते यः अन्ज+कर्त्तरि ल्युट्) पश्चिमदिग्हस्ती । अञ्जयति रवेणा शुभाशुभे सूचयति अन्ज+णिच्+ल्युट्) जेष्ठी । जेठी इति भाषा । इति विश्व-मेदिन्यौ, (दिवा नतु प्रयोक्तव्यं नेत्रयोस्तीक्ष्णम् अञ्जनं । विरेकदुर्बलादृष्टिरादित्य प्राप्य सीदति । इति आगमः ) ।

अञ्जनकेशी, स्त्री, (अञ्जनवत् केशोयस्याः सा बहु-व्रीहिः स्त्रियां ङीप् यत्संयोगेन केशस्य कृष्णता भवेत्) हट्टविलासिनीनामगन्धद्रव्यं । इत्यमरः ॥

अञ्जना, स्त्री, (अनक्ति स्वकान्त्या शोभते अन्ज+युच् कर्त्तरि ) वानरीविशेषः । सा च हनूमन्माता । इति मेदिनी ॥ (रामायणे,—
"अञ्जनेति परिख्याता पत्नी केशरिणः कपेः ।
अभिशापकृतयाऽज्जाता पुनश्च दिवि चारिणी" ॥)

अञ्जनाधिका, स्त्री, (अञ्जनात् कज्जलादधिका कृष्ण-वर्णा) अञ्जनिका । इति हेमचन्द्रः ॥

अञ्जनावती, स्त्री, (अञ्जनं विद्यतेऽस्याः अतिकृष्णवर्ण-त्वात् अञ्जन+मतुप् स्त्रियां ङीप् ) मतौ च बह्व-चोऽञ्जनाजरादीनामिति दीर्घं मस्य व ) सुप्रतीक-नामदिग्गजभार्य्या । इत्यमरः ॥

अञ्जनिका, स्त्री, (अञ्जनम् अञ्जनवत् वर्णोविद्यतेऽस्याः सा अञ्जन+अर्शआद्यच् स्त्रियां टाप् स्वार्थे कः ।) ज्येष्ठीविशेषः आँजनाइ इति । आञ्जिना इति च भाषा तत्पर्य्यायः । अञ्जनाधिका २ हालिनी ३ हलाहलः ४ । इति हेमचन्द्रः ॥ क्षुद्रमूषिका इति जटाधरः ॥

अञ्जनी, स्त्री, (अनक्ति चन्दनकुम्कुमादिभिः शोभते अन्ज+कर्त्तरि ल्युट् स्त्रियां ङीप्) लेप्यनारी चन्दनादिलेपनयोग्या । इति विश्वमेदिन्यौ । कटुकावृक्षः । कालाञ्जनीवृक्षः । इति राज-निर्घण्टः ।

अञ्जलिः, पुं, (अन्ज+अलि अवणाञ्जलिपुटपेय-मिति वेणीसंहारनाटके ) हस्तसम्पुटः । आँजला इति भाषा । कुडवपरिमाणं । इति मेदिनी (यथा रामायणे । न प्रभात त्वयेच्छामि निशे नक्षत्रभूषिते । क्रियतां मे दया भद्रे मयाऽयं रचितोऽञ्जलिः ) ॥

अञ्जलिका, स्त्री, (अञ्जलि+स्वार्थे कः) बालमूषिका इति जटाधरः ॥ अञ्जनिका । इति च पाठः ॥

अञ्जलिकारिका, स्त्री, (अञ्जलेः कारिका) लज्जालु लता । इति राजनिर्घण्टः ॥ पुत्तलिका । इति हेमचन्द्रः ॥

अञ्जसः, त्रि, (अञ्ज+असच्) अवक्रः । ऋजु इति हेमचन्द्रः ।

अञ्जसा अव्य (अञ्जं गतिं विलम्बम्वा स्यति नाश-यति अञ्ज+सो+कर्त्तरि का ) द्रुतं, शीघ्रं यथार्थं, प्रकृतं, इत्यमरः । (यथामनुः,—
"आसमाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुं ।
स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्म शाश्वतं" ॥)

अञ्जिः, पुं, (अन्ज+इन् । तिलकादिचिह्नम् ) प्रेष-णिकः । प्रेरकः । इत्युणादिकोषः ॥

अञ्जिष्ठः, पुं, (अनक्ति स्वतेजोभिर्जगत् प्रकाशयति

अक्ष+इठ।) सूर्य्य। इत्युणादिकोषः॥

अक्षीरं, क्ली, (अक्ष+भावे इन् स्त्रियां वा ङीप् अ क्षीम् अभिकारित्वादि गुणं राति ददाति अक्षी आतोऽनुपसर्गे इति कर्त्तरि क। अथवा अक्ष+ ईरम्) स्वनामख्यातफलवृक्षविशेषः। आँजिर+ इति पेयारा इति च भाषा। तत्पर्य्यायः। मञ्जुल २ काकोदुम्बरिकाफलं ३। अस्य गुणाः। शीत- लत्वं। स्वादुत्वं। गुरुत्वं। वायुपित्तरक्तशमित्वम्। रक्तपीडाकफमुखवैरस्यनाशित्वं। अभिकारित्वञ्च। लघ्वक्षीरं तस्मादल्पगुणं। इति राजवल्लभराज- निर्घण्टौ॥

अटनं, क्ली, (अट्+भावे ल्युट्) भ्रमणं। (यथा सर्व्व- ज्ञत्वमधीश्वरत्वमगमत् त्वां मां भिक्षाटनं। इति घण्टाकर्णः॥)

अटनि, स्त्री, (अटति तथा गच्छति यत्र अट्+ अधिकरणे अनि) धनुरग्रभागः। धनुकेर ऊल् इति भाषा। इत्युणादिकोषः॥

अटनी, स्त्री, (अटनि+स्त्रियाम्वा ङीप्) अटनिः। धनुष्कोटिः। इत्यमरः॥ (यथा उत्तरचरिते। ध्वनदगुरुगुणाटनीकृतकराम्रकोलाहलम्)॥

अटरुष, पु, मतान्तरेण वासकवृक्षः। इत्यमरः॥

अटरूष, पु, (अटति मृत्युग्रासे पतत्यनेन अट+ घञर्थे क। अट कासाख्यरोगं रोषति नाशयति रुष्+कर्त्तरि क। अथवा रुष्+कर्म्मणि क अटस्य रुषो वा षष्ठीतत्पुरुषः। वासक काम नाशक इति वैद्यके) वासकवृक्षः। इत्यमरटीकायां रायमुकुटः॥

अटवि, स्त्री, (अटति वार्द्धक्ये गच्छति यत्र अट्+ अधिकरणे अवि पञ्चाशूर्द्ध्वं वनं व्रजेदिति।) वनं। इति रायमुकुटः॥

अटवी, स्त्री, (अटवि+स्त्रियां ङीप्) वनं। इत्य- मरः। (यथा रामायणे। आनर्त्तांश्चैव मार्गांश्च कान्ताराण्यटवीस्तथा)॥

अटा, स्त्री, (अट्+भावे अङ् ततष्टाप्) पर्य्यटनं। भ्रमणं। इति रत्नकोषः नीलकण्ठश्च॥

अटाट्या, स्त्री, (पौनःपुन्येन अटनं भ्रमणम् अट्+ सूचिसूत्रिमूत्र्यट्यर्त्त्यादिना यङ्+भावे अ। स्त्रियां टाप्) पर्य्यटनं। इत्यमरः॥ पुनःपुनर्भ्रमणं। अतिशयभ्रमणं। इति व्याकरणं॥) अट्ट क तीक्ष्णे। अनादरे। इति कविकल्पद्रुमः॥ टक- यान्तः। क अट्टयति। एकटकार इति रामः॥ तीक्ष्णमल्पीभावः। इति दुर्गादासः॥

अट्ट ङ अतिक्रमे। वधे। इति कविकल्पद्रुमः॥ मूर्द्धन्यवर्गाद्योपधः। ङ अटिट्टिषते दन्त्यवर्गा- द्योपधः। ङ अतिट्टिषते। दन्त्यवर्गतृतीयो- पधः। ङ अट्टितिषते खलं राजा। इति दुर्गादासः॥

अट्ट, क्ली, (अट्ट+अच्) शुष्कं। भक्तं। अन्नं। इति मेदिनी भूरिप्रयोगश्च॥

अट्ट, पुं, (अट्टते एकं गृहमतिक्रम्य यत्र गृहे गच्छति अट्ट+अधिकरणे घञ्) क्षौमं। इत्यमरः॥ हर्म्यादिगृहं। इति भरतः॥ प्राकाराग्रस्थित- रणगृहं। इति कौटिल्यः। अट्टेति ख्यातगृह- विशेषः। इति कोट्टः॥ प्राकारमण्डपस्योपरि भूमिः। इति केचित्॥ हर्म्यादिवासकुटिका। इति केचित्॥ मण्डपोपरि हर्म्यगृहं। इति केचित्॥ प्राकारधारणार्थोऽभ्यन्तरे क्षौमाख्यो- ऽट्टः। इति भट्टः॥ अतिशयः। इति मेदिनी॥ हट्टः इति हेमचन्द्रः॥

अट्टट्ट अ (वीप्सायादिर्व्वचनम् शकन्ध्वादित्वात् पररू- पत्वमस्य अट्टट्टहासमभिव शितदूतौ पचार हेति चण्डी) अव्ययं। इति जटाधरः॥

अट्टन (क्ली) चक्राकारास्त्रं। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अट्टहास, पुं, महहासो हासः। शम्भ्वट्टहास्यं। इति हेमचन्द्रः॥ (यथा देवीमाहात्म्ये। देवी- गनादोषै साट्टहासं मुहुर्मुहुः॥ त्र्यम्बकस्याट्ट- हासः॥ मेघदूते)॥

अट्टहासक, पु, (अट्ट सातिशयं हासक अतिश्वेत पुष्पत्वात् हास्यकारीव दृश्यते तत् पुरुष) कुन्द पुष्प वृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥

अट्टहासी [न्] पु, (अट्ट सदानन्दत्वात् सातिशय हसति अट्ट+हस+णिनि उपपद समासः) शिवः। इति हेमचन्द्रः॥

अट्टाल, पु, (अट्टवत् प्रासादगृहवत् अलति भवति अल+अच्) प्राकारादुपरितनमुन्नतस्थानं। इति श्रीधरस्वामी। यथा। भज्यमानपुरोद्यानप्राका- राट्टालगोपुरं। इति श्रीभागवतं॥

अट्टालक, प, (अट्टवत् प्रासादगृहवत् अलति भवति अल्+अच् स्वार्थे कन्) उपरितनगृहं। अट्टालिकोपरि गृहं। तत्पर्य्यायः। क्षौमं २ अट्टः ३। इति हेमचन्द्रः॥

अट्टालिका, स्त्री, (अट्टाल+स्वार्थे कन् स्त्रियां टाप्) राजगृहं। तत्पर्य्यायः। नृपागारं २ हर्म्यं ३ सौधं ४ धवलागारं ५। इति जटाधरः॥ (राजतरङ्गिणी, अटिलाट्टालि- कादिभ्यो देशेभ्यः।)

अट्टालिकाकार, पु, (अट्टालिकां करोति यः अट्टा- लिका+कृ+अण् उपपद समासः प्रासादकारकः) शूद्रागर्भे चित्रकारौरसजातजातिविशेषः। तस्य कर्म्म गृहनिर्म्माणादि। राज इति थेकर इति च भाषा।

"कुलटायाञ्च शूद्रायां चित्रकारस्य वीर्य्यतः। बभूवाट्टालिकाकारः पतितो जारदोषतः"।

इति ब्रह्मवैवर्त्तपुराणं॥

अट्या, स्त्री, (अटनम् अट्+भावे क्यप स्त्रियां टाप् समस्या इति वत्) परिभ्रमणं। पर्य्यटनं। इत्य- मरटीकायां रायमुकुटः॥ यथा,—

"तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः"।

इति स्मृतिः॥

अठ इ ङ गतौ इति कविकल्पद्रुमः॥ इ (कर्म्मणि) अण्ठ्यते ङ अण्ठते। इति दुर्गादासः॥

अठ गतौ। इति कविकल्पद्रुमः॥ अठति। इति दुर्गादासः॥

अड ऋ न व्याप्तौ (स्वादि सेट्।) इति कविकल्प- द्रुमः॥ ऋ वैदिकः। न अड्नोति। इति दु- र्गादासः॥

अड उद्यमे। (भ्वादि सेट् पर।) इति कविक- ल्पद्रुमः॥ अडति लोकः सुखाय। इति दुर्गादास॥

अड्ड अभियोगे। इति कविकल्पद्रुमः॥ मूर्द्धन्यव- र्गतृतीयोपधः। (भ्वादि सेट् पर अड्ड्+सन् तिप्) अडिड्डिषति। क्विपि संयोगान्तलोपे अ[...] अभियोगः समाधानं। अड्डति पक्षं विद्वा[न्] अभि समन्तात् योगोऽभियोगः इति गोवि[न्द] भट्टः॥ इति दुर्गादासः।

अण रवे। इति कविकल्पद्रुमः॥ अणति। [...] शब्दः। इति दुर्गादासः॥

अण य ङ जीवने। प्राणने। इति कविकल्पद्रुम[ः॥] य ङ अण्यते जनो दुःखेन जीवतीत्यर्थः। इ[ति] दुर्गादासः॥

अणक, त्रि, (अण्+अच् कुत्सायां कन्) कुत्सि[त]। अधमः। इत्यमरः॥

अणव्य, क्ली, (अणो सूक्ष्मधान्यस्य चीनादिकस्य भव- मुत्पत्तिस्थानमिति यावत् अणु+यत्) अणवी[न]। (अणो, सूक्ष्मधान्यस्य चीनादिकस्य भवनमुत्पत्ति- स्थानमिति यावत् अण्+घञ् तस्य इन् अधि[...] रज्जिश्च)। अणुधान्योत्पादकक्षेत्रं। इति राय- मुकुटः॥

अणि, पु, स्त्री (अणति शब्दायते अण्+इन् स्त्रि[यां] वा ङीप्) अक्षाग्रकीलकः। रथचक्राग्रस्थि[त]- कीलः। इत्यमरः॥ अश्रिः। सूक्ष्माद्यग्रभाग[ः।] सीमा। इति मेदिनी॥ तस्य रूपान्तरं। अणी[।] आणिः (अणति शब्दायते अण्+इञ्, वजादि- भ्यश्च इति इञ्, आणि इति वत्)। इत्यमर- टीका॥

अणिमा [न्] पु, (अणु+भावे इमनिच। अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा ईशित्व[ञ्च] वशित्वञ्च तथा कामावसायिता इति सांख्यतत्त्व- कौमुद्याम्) अणोर्भावः। अणुत्वं। सूक्ष्मता। इति व्याकरणं। अष्टविधैश्वर्य्यमध्ये ऐश्वर्य्यविशेष[ः।] इत्यमरः॥ यत्प्रभावात् देवाः सिद्धाश्च सूक्ष्मीभूय सर्व्वत्र विचरन्ति केश्चिदपि न लक्ष्यन्ते। इति तट्टीका॥

("अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा। ईशित्वञ्च वशित्वञ्च तथा कामावसायिता"॥

इति आगमः।)

अणीयः, [स्] त्रि, अतिशयेन अणु अणु+ईयसुन्) अत्यल्पः। अतिसूक्ष्मः। इत्यमरः॥ (यथा मनुः,—

"प्रशासितारं सर्व्वेषामणीयांसमणोरपि। रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परं"॥)

अणु, त्रि, (अणति सूक्ष्मत्वं गच्छति अण्+उन्। लवलेशकणाणवः इत्यमरः) क्षुद्रः। सूक्ष्मः। इति मेदिनी॥

अणु, पु, (अण्+उन्) लेशः। व्रीहिविशेषः। सूक्ष्मधान्यं। चिना इत्यादि भाषा। इत्यमरः। (यथा मनुः। न गृह्णीयात् शुल्कमण्वपि॥)

अणुकः, त्रि, (अणुप्रकारः अणु+स्थूलादित्वात्

प्रकारार्थे कन्। अणुप्रकारे, अणुशब्दार्थे चीनादिधान्ये) चतुरः। निपुण। अल्प। स्तोकः। इति मेदिनी॥

अणुभा, स्त्री, (अणु सूक्ष्मा भा दीप्तिर्य्यस्या सा बहुव्रीहिः) विद्युत्। इति त्रिकाण्डशेष॥

अणुरेवती, स्त्री, (अणु सूक्ष्मा रेवती नक्षत्रमिव।) दन्तीवृक्ष। इति राजनिर्घण्ट॥

अणुव्रीहि, पु, (अणु सूक्ष्म व्रीहि, कर्म्मधारय, चीनादि।) सूक्ष्मधान्य। तत्पर्य्याय। प्रसातिका २। इति रत्नमाला॥

अण्ड, क्ली, (अम् संयोगे भावे क्विप् अम संयोग डयन्ते गच्छन्त्यनेन अम्+डी+ करणे ड। पुंसोऽवयवभेदे मुष्के, पक्षिडिम्बे। "तदण्डमभवद्धैम सहस्रांशुसमप्रभमिति" मनु।) पक्ष्यादिप्रादुर्भावककोष। अण्डा। डिम्। इति भाषा। तत्पर्य्याय। पेशी २ कोष ३। इत्यमर॥ पेशि ४ कोश ५ पेशीकोष ६। इति तट्टीका॥ डिम्बः ७। इति मेदिनी॥ मत्स्यपक्षिकूर्म्माण्डाना गुणा,—

("नातिस्निग्धानि वृष्याणि स्वादुपाकरसानि च।
वातघ्नान्यतिशुक्राणि गुरूण्यण्डानि पक्षिणाम्"॥
इति वैद्यके।)

स्वादुत्व। कटुपाकित्व। रुचिशुक्रकारित्व। वातश्लेष्मनाशित्वञ्च। इति राजवल्लभः॥ मुष्क। वीर्य्यं। इति विश्व॥ मृगनाभि। इति केचित्॥

अण्डक, पु, (अण्ड+स्वार्थे कन्) अण्डकोष। इति हेमचन्द्र॥

अण्डकोटरपुष्पी, स्त्री, (अण्डवत् कोटरे अभ्यन्तरे पुष्प यस्या सा बहुव्रीहि, स्त्रियां ङीप्।) अजान्त्रीवृक्षः। नीलरास्ना। नीलवुह्ना इति ख्याता। इति काचिद्रत्नमाला॥ अन्त कोठरपुष्पी इत्यपि पाठः॥

अण्डकोश, पु, (अण्डस्य मुष्कस्य कोश, षष्ठीतत्।) अण्डकोष। इत्यमरटीका॥

अण्डकोष, पु, (अण्डस्य मुष्कस्य कोष, षष्ठीतत्पुरुष।) स्वनामख्यातशरीरावयवविशेष। तत्पर्य्याय। मुष्क २ वृषण ३। इत्यमर॥ अण्ड ४ पेल ५ अण्डक ६। इति हेमचन्द्र॥ बीजपेशिका ७। इति राजनिर्घण्ट॥ सीमा ८। इति जटाधर॥ फलकोषक ९। इति त्रिकाण्डशेष॥ फल १०। इति रामायण॥ कोषकोषकमुष्काण्डवृषणा अण्डकोषक। सीमा च पेलसीमानौ फलमित्यपि कुत्रचित्॥ इति शब्दरत्नावली॥

अण्डकोषक, पु, (अण्डकोष+स्वार्थे कन्) अण्डकोष। इति शब्दरत्नावली॥

अण्डज, पु, (अण्डे जायते अण्ड+जन्+कर्त्तरि, ड उपपदसमास) पक्षी। सर्प। मत्स्य। कृकलास। इति विश्वमेदिन्यौ॥ अण्डजातमात्रे त्रि। इत्यमर॥

("अण्डजा पक्षिण सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपा।
यानि चैवप्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च"॥
इति मनु।)



अण्डजा, स्त्री, (अण्डे जायते इति अण्ड+जन्+कर्त्तरि ड, उपपदसमास, स्त्रियां टाप्।) मृगनाभि। कस्तूरी। इति विश्वमेदिनीहेमचन्द्रा॥

अण्डालु, पु, (अण्ड विद्यते अस्य अण्ड+मत्वर्थे आलुच्) मत्स्य। इति शब्दचन्द्रिका॥

अण्डीर, पु, (अण्ड+मत्वर्थे ईरन्, विशिष्टसामर्थ्यवान्।) पुरुष। शक्त। इति मेदिनी॥

अण्वी, स्त्री, (अणु+वोतोगुणवचनादिति पक्षे ङीप्) अङ्गुलि। अस्या प्रचुरप्रयोगो वेदे। क्षीणा॥

अत, इ बन्धने (इदित्वात् नुम् भ्वादि सेट् पर) इति कविकल्पद्रुम॥ अन्तीति बध्नाति। शेषो दीर्घादिरित्यन्य। अतएव अन्त्यते ईन्त्यते। रमते तु अन्त्यते इन्त्यते। छन्दोऽनुरोधादुभयत्र इकार॥ इति दुर्गादास॥

अत ई बन्धने। इति कविकल्पद्रुम॥

अत सातत्यगते। इति कविकल्पद्रुम॥ सातत्यगत नैरन्तर्य्येण भ्रमण प्रापणञ्च। अतति वायु। अतति सूर्य्यो गगन प्राप्नोतीत्यर्थ। इति दुर्गादास।

अत, [स्] व्य, (एतस्मात्, एतद्+एतदोऽशिति पञ्चम्यर्थे तस् एतद्शब्दस्य अशादेश) कारण। अपदेश। निर्द्देश। इति विश्व॥

अतएव, व्य, (एतद्+तस् पञ्चम्यर्थे तस्। एतद अन् इति एकारस्य अकारः।) अस्मादेव। एतत्कारणेनैव। अनेनैव हेतुना। यथा,—
"अतएव महेशानि रजयो समता भवेत्"।
इति सारदातिलकटीकायां राघवभट्ट॥ अतएव च। इति वोपदेव॥

अतट, पु, (तट्यते आच्छन्यते जलेन इति तट्+घञर्थे क, तट जलप्रपातस्थान न विद्यते अस्य बहुव्रीहि) पर्व्वतस्योच्चस्थान। तत्पर्य्याय। प्रपात २ भृगु ३। इत्यमर॥ (यथा शाकुन्तले। मनोरथानामतटप्रपात॥)

अतर्क, पु, (तर्क्यतेऽनेन तर्क+घञर्थे क। तर्कस्तर्कहेतु स नास्ति यस्य स बहुव्रीहि) अहेतुक। शुष्कतर्कपर। इति महाभारते दानधर्म्म॥

अतल, क्ली, (नास्ति तल गाधभागो यस्य तत् बहुव्रीहि। अतलस्पर्शमिति व्युत्पत्त्यर्थ।) प्रथमखण्डपाताल। भूरिप्रयोग॥

अतलस्पर्श, त्रि, (नास्ति तलस्य अधोभागस्य स्पर्शो यस्य स बहुव्रीहि।) अगाध। अतिगभीर) इत्यमर॥

अतलस्पृक् [श्] त्रि, (न तल गाधभाग नञ्समास, तत् स्पृशति य अतल+स्पृश्+कर्त्तरि क्विन् अतलस्पर्शकारी। कर्म्मणि क्विन् तत् स्पृश्यते येन।) अतलस्पर्श। तत्पर्य्याय। अस्थार अस्थाग३ अस्ताघ ४ अगाध ५। इति हेमचन्द्र॥

अतस, पु, (अतति सतत गच्छति य अत्+कर्त्तरि असच्, स्त्रियां ङीष्।) (अतसीवृक्षविशेष) वायुः। इत्युणादिकोष॥ आत्मा। इति सिद्धान्तकौमुद्यामुणादिवृत्ति॥ वल्कलनिर्म्मितवस्त्र। अस्त्र। यथा—"अतस क्षौम प्रहरण वायुश्चेति धातुवृत्तौ" माधव॥

अतसी, स्त्री, (अत्+असच्, स्त्रियां ङीप्।) क्षु पुष्पक्षुद्रवृक्षभेद। मसिना इति ख्याता। तत् पर्य्याय। चणका २ उमा ३ क्षौमी ४ रुद्रपत ५ सुवर्च्चला ६। इति रत्नमाला॥ पिच्छिला देवी ८ मदगन्धा ९ मदोत्कटा १० क्षुमा १ हैमवती १२ सुनीला १३ नीलपुष्पिका १४ अस्या गुणाः। उष्णत्व। तिक्तत्व। वातहारित्व श्लेष्मपित्तकारित्वञ्च। अस्यास्तैलस्य गुणा। मधु रत्व। पिच्छिलत्वं। मदगन्धित्व। कषायत्व। वाय कफकासनाशित्व॥ स्वादुत्वं। उष्णत्व। अम्लत्व पाके कटुत्वञ्च। इति राजवल्लभराजनिर्घण्टौ यथा,—

"अतसी नीलपुष्पी च पार्व्वती स्यादुमा क्षुमा।
अतसी मधुरा तिक्ता स्निग्धा पाके कटुर्गुरु।
उष्णा दृक्शुक्रवातघ्नी कफपित्तविनाशिनी"॥
इति भावप्रकाश॥ शणवृक्ष। इत्यमर टीका॥

अति, व्य, प्रशंसा। (अत्+इ। पूजायां। अतिरति क्रमणे चेति। अत्यादय क्रान्ताद्यर्थे इति पाणिनि सूत्रम्।) प्रकर्ष। लङ्घनं। इति विश्वमेदिन्यौ अतिशयं। क्रान्त। पूजनं। असम्भावना। इति दुर्गादास। प्रादिविंशत्युपसर्गान्तर्गतोऽयं॥

अतिकथ, त्रि, (कथामतिक्रान्त कुगतिप्रादय इति समास। कथनायोग्य।) अश्रद्धेय। नष्ट। इति मेदिनी॥ नष्टधर्म्म। इति हेमचन्द्र॥

अतिकथा, स्त्री, (अत्युत्कृष्टा कथा कर्म्मधारयः। अपार्थवाक्य। व्यर्थभाषण। इति विश्व हेम चन्द्रश्च॥

अतिकन्दक, पु, (अतिरिक्त कन्दो मूल यस कम्) हस्तिकन्दवृक्षः। इति राजनिर्घण्ट॥

अतिकेशर, पु, (अतिरिक्ता केशरा किञ्जल्का यस्य स।) कुब्जकवृक्ष। इति राजनिर्घण्ट॥

अतिक्रम, पु, (अतिक्रान्त क्रम नियम, अति क्रम +भावे घञ् वृद्धभाव) क्रमोल्लङ्घन। तत् पर्य्याय। अतिपात २ (अति पत्+भावे घञ् उपात्यय ३ पर्य्याय ४। अभिक्रम। रणे शत्रू प्रति अभीतयोधादेर्गमन। इत्यमर॥

अतिक्रान्त, त्रि, (अति+क्रम्+कर्त्तरि क्त) कृताति क्रम। कृतक्रमोल्लङ्घन। राजानमतिक्रान्त अतिराजी। इति वोपदेव॥ अतीत। यथा बेगे तु समतिक्रान्ते गतोऽयमिति लक्ष्यते। इति रक्षित॥

अतिक्रामक, त्रि, अतिक्रमकर्त्ता। क्रमोल्लङ्घक। अतिपूर्व्वक्रमधातो कर्त्तरि णक॥

अतिगण्ड, पु, (गण्डमतिक्रान्त अत्यादय क्रान्ताद्यर्थे।) विष्कुम्भादिसप्तविंशतियोगमध्ये षष्ठयोगः। तत्र जातफल।

"कलिप्रियो वेदविनिन्दकश्च
धूर्त्त कृतघ्नो गलरोगयुक्त।

सरोमदेह पुरुषोऽतिदीर्घ-
प्रकाशनाशक्त्यतिशक्तजन्मा" ॥

इति कोष्ठीप्रदीपः ।

अतिगन्ध, पु, ( अतिरिक्तो गन्धो यस्य स । ) भूस्तृणं । चम्पक । मुद्गरवृक्ष । गन्धक । इति राजनिर्घण्ट ॥ (अतिगन्धिन ।)

अतिगन्धालु, पुं, ( अतिगन्धो विद्यतेऽस्य अति गन्ध+मत्वर्थे आलु । अतिशयितगन्धयुक्ते ) पुत्रदात्रीलता । इति राजनिर्घण्ट ॥

अतिगर्व्वित, त्रि, (अति अधिको गर्व्व कर्म्मधारय सोऽस्य जात अतिगर्व्व+इतच् ।) महाहङ्कृत । अतिशयगर्व्वयुक्त । तत्पर्य्याय । समुन्नद्ध २ । इति हलायुध ॥

अतिगुहा, स्त्री, ( गुहामतिक्रान्ता कुगतिप्रादीति समास ।) पृश्निपर्णीविशेष । चाकुलिया इति भाषा । इति रत्नमाला ॥ गुहातिक्रामके त्रि ॥

अतिचरा, स्त्री, ( गन्धविस्तारेण स्वस्थानमतिक्रम्य चरति गच्छतीव अति चर+कर्त्तरि अच् स्त्रियां टाप् ।) पद्मचारिणीवृक्ष । स्थलपद्मिनी । इत्यमर ॥ राजनिर्घण्टश्च ॥

अतिचार, पुं, (अतिक्रम्य चरण गमनम् अति+चर+भावे घञ् ।) शीघ्रगमन । अतिक्रम्य गमन । कुजादिपञ्चग्रहाणां राशिभोगकालमसमाप्ती राश्यन्तरगमन । तत्र पूर्व्वराशिगमने वक्रातिचार । पर्राशिगमने अतिचार । एतौ गुर्व्वोस्सेदकालो भवति । गुरुस्तु यदि पुन पूर्व्वराशि नायाति तदा महातिचार । तेन लुप्तसम्वत्सरो भवति । ग्रहाणां स्वभोग्यमानराशावपि वक्रातिचारौ भवत ॥ तत्र नाकाल । इति स्मृतिज्योतिषे ॥

अतिच्छत्र, पु, (छाद्यते आच्छाद्यतेऽनेन छद्+णिच्+करणे ष्ट्रन् । अतिक्रान्तश्छत्रम् इति व्युत्पत्त्या छत्रातिक्रमकारी ।) भूतृण । इति राजनिर्घण्ट ॥ जलतृणविशेष । अरुणवर्णाकुल्याखाडा इति ख्यात । इति रत्नमाला ॥ छत्रा । काटछाति । भुँइछाति । पोयालछाति इति ख्याता । इत्यमर ॥

अतिच्छत्रक, पु, ( अति+छत्र+स्वार्थे कन् ) छत्रवृक्ष । छातारियाविष इति ख्यात । तस्य मूले पत्रे वचाकार कटुरसश्च । इति रत्नमाला ॥ भूतृण । इति राजनिर्घण्ट ॥

अतिच्छत्रा, स्त्री, (छत्रमतिक्रान्ता, अत्यादय इति समास ।) अवाक्पुष्पी । मौरी इति ख्याता । इत्यमर ॥ शताह्वा । शलुफा इति प्रसिद्धा । इति रत्नमाला ॥ ( छत्रातिछत्रे लाङ्गली जटिला ब्रह्मचारिणी ॥ इति सुश्रुते ॥ )

अतिजव, त्रि, ( अतिशयितो जवो वेगो यस्य स ।) अतिशीघ्रगामी । अतिवेगवान् । (दवयदतिजवेन प्राप्तमुर्व्वीविभाग ॥ इति भट्टिकाव्ये ) ॥ तत्पर्य्याय । जङ्घाल २ । इत्यमर ॥ जविन ३ अतिजव ४ । इति तट्टीका ॥

अतिजागर, पुं, ( जागृ+भावे घञ् अतिशयितो जागरो जागरणं यस्य स । अतिजागरणयुक्ते त्रि ।) नीलबक । कालबक । इति राजनिर्घण्टः ॥

अतिडीन, क्ली, (डी+भावे क्त तस्य न । अत्यन्त डीन गमनं कर्म्मधारय ।) पक्षिणां प्रचण्डगमनं । इति महाभारत ॥

अतितीक्ष्णा, स्त्री, ( अतिशयेन तीक्ष्णा ) गण्डदूर्व्वा । इति राजनिर्घण्टः ॥

अतिथि:, पुं, कुशपुत्र । स च श्रीरामचन्द्रस्य पौत्रः । इति मेदिनी ॥ कोष: । इति विश्वः ॥

अतिथि:, त्रि, (अतति सातत्येन गच्छति न तिष्ठति अत्+इथिन् ) अज्ञातपूर्व्वस्त्वगृहागतव्यक्ति । इति श्रीधरस्वामी । अतिथ् इति भाषा । तत्पर्य्याय । आगन्तुः २ आवेशिक ३ गृहागतः ४ । इत्यमर ॥ स्त्रीलिङ्गे आवेशिकी ५ अतिथी ६ । इति तट्टीकासारसुन्दरी ॥ आगामुक ७ । इति शब्दचन्द्र । प्राघूर्ण ८ अभ्यागत ९ प्राघूर्णिक १० । इति हेमचन्द्र ॥ प्राघुणिकः ११ । इति विश्व ॥ प्राघुण १२ । इति त्रिकाण्डशेष ॥ ० ॥ तस्य लक्षण । यस्य न ज्ञायते नाम न च गोत्र न च स्थिति । अकस्मात् गृहमायाति सोऽतिथि प्रोच्यते बुधैः ॥ ० ॥ तस्य निवर्त्तने गृहस्थस्य दोष यथा,—

"अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्त्तते ।
स तस्मै दुष्कृत दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति" ॥

इति पुराण ॥ ० ॥ तस्य ग्रहणकाल । "ततो गोदोहमात्रन्तु काल तिष्ठेद्गृहाङ्गने । अतिथिग्रहणार्थाय तदूर्द्ध वा यदृच्छया" ॥ इति विष्णुपुराण ॥ ० ॥ गोदोहकालश्च मुहूर्त्ताष्टमभाग । यथा । "आचम्य च तत कुर्य्यात् प्राज्ञो द्वारावलोकन । मुहूर्त्तस्याष्टम भागमुदीक्ष्यो ह्यतिथिर्भवेत्" ॥ इति मार्कण्डेयपुराण ॥ ० ॥ तस्य मूर्खत्वादिविचारो नास्ति । "प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्ख पतित एव वा । सम्प्राप्ते वैश्वदेवान्ते सोऽतिथि स्वर्गसक्रम " ॥ इति शातातप ॥ ० ॥ तस्य वेदादयो न प्रष्टव्या ।

"स्वाध्यायगोत्रचरणमपृष्ट्वापि तथा कुल ।
हिरण्यगर्भबुद्ध्या त मन्येताभ्यागत गृही" ॥

इति विष्णुपुराण ॥ ० ॥ तस्य देशादौ पृष्टे दोष ।

"देश नाम कुल विद्यां पृष्ट्वा योऽन्न प्रयच्छति ।
न स तत्फलमाप्नोति दत्त्वा स्वर्गं न गच्छति" ॥

इति स्मृति ॥ ० ॥ अतिथये शक्त्यनुसारेण दातव्य ।

"भोजन हन्तकार वा अग्र भिक्षामथापि वा ।
अदत्त्वा नैव भोक्तव्य यथा विभवमात्मन " ॥

इति मार्कण्डेयपुराण ॥ ० ॥ भिक्षादिलक्षण ।

"ग्रासप्रमाणा भिक्षा स्यादग्र ग्रासचतुष्टय ।
अग्राच्चतुर्गुण प्राहुर्हन्तकार द्विजोत्तमा" ॥

इति मार्कण्डेयपुराणम् ॥ इत्याह्निकतत्त्व ॥

अतिथिपूजन, क्ली, (अतिथे पूजन सेवा षष्ठीतत्पुरुष ।) अतिथिसेवा । आतिथ्यक्रिया । तत्पर्य्याय । न्यग्रः २ । इति हेमचन्द्रः ॥

अतिदान, क्ली, (दा+भावे ल्युट्, अत्यन्त दान स्वसर्व्वस्वपूर्व्वकपरस्मैप्रदानमिति, कर्म्मधारय ।) बहुदान । अपरिमितदान । यथा,—

"अतिदाने बलिर्बद्ध अतिमाने च कौरवा ।
अतिरूपे हृता सीता सर्व्वमत्यन्तगर्हितम्"

इति चाणक्य ॥

अतिदिष्ट, त्रि, ( अति+दिश्+क्त । अन्यधर्म्मस्यान्यत्रारोपणमतिदेश यथा,—"तिङ्शित्सार्व्वधातुकमित्यादिनिर्देशिकासूत्रम् ।) अतिदेशविशिष्ट । यथा,—"न समानगोत्रा भार्य्या विन्देतेत्यनेन शूद्रस्यापि सगोत्रा कथ न निषिध्यते इति चेदत्र उपदिष्टातिदिष्टगोत्रस्यैव निषेध सत्यतिदिष्टातिदिष्टशूद्रगोत्रादे । इत्युद्वाहतत्त्व

अतिदीप्य, पु, (अत्यन्त दीप्यते विचित्रवर्णतया आत्मना प्रकाशते अति+दीप्+कर्त्तरि ण्यत् । रक्तचित्रकवृक्ष । इति राजनिर्घण्ट ॥

अतिदेश, पुं, ( अति+दिश्+भावे घञ् ) अन्यधर्म्मस्यान्यत्र आरोपण । यथा,—"इगयदिक" इत्यादि । इति दुर्गादास ॥ कारिका यथा,—

"प्रकृतात् कर्म्मणो यस्मात् तत्समानेषु कर्म्मसु ।
धर्म्मोऽतिदिश्यते येन अतिदेश स उच्यते" ॥

इति मलमासतत्त्वम् ॥ स तु पञ्चविध । शास्त्रातिदेश । १ यथा,—"नित्येन तुल्य शेष स्यात्" इत्यत्र तुल्यशब्देन अतिदेश । १ । कार्य्यातिदेश २ यथा,—"अप्रयाजास्ता इत्यत्र कार्य्येण निषेधेन दर्शपौर्णमासधर्म्मातिदेश "।२। निमित्तातिदेश ३ यथा,—"विकृतौ मौद्गचरुयागे ब्रीहिकार्य्यकारिणि मुद्गे ब्रीहिकार्य्यनिमित्तत्वात् धर्म्मा प्रोक्षणादय कल्प्यन्ते" । ३ । व्यपदेशातिदेश ४ यथा,—"मासमग्निहोत्र जुहोति इत्यत्र माससाध्यायनाख्ययागे अग्निहोत्रपदव्यपदेशात् अग्निहोत्रधर्म्मातिदेश " । ४ । "रूपातिदेश " ५ यथा,—"यजमानाद्भिन्नो यूप इत्यत्र यूपे यजमानादन्यत्वरूपावगमात् यजमानधर्म्मस्य तदीयपरिमाणस्यातिदेश"। इति श्राद्धविवेकटीकायां श्रीकृष्ण ॥

अतिनु, त्रि, (कुगतिप्रादीतिसमास । गोस्त्रियोरुपसर्ज्जनस्येति ह्रस्व ।) अतीतनौक । नावमतिक्रान्त । नावोत्तीर्ण । इत्यमर । तस्य पुंस्त्रीलिङ्गयो अतिनौ इति रूप ॥

अतिपतन, क्ली, (अति+पत्+भावे ल्युट्) अत्यय । अतिक्रमण । इति शब्दरत्नावली ॥

अतिपन्था [न्] पुं, (अत्युत्कृष्ट पन्था कर्म्मधारय । अते पूजार्थत्वान्न समासान्तप्रत्यय ।) सन्मार्ग । सुपथः । इत्यमर ॥

अतिपत्र, पु, (अतिरुहत् पत्र यस्य स बहुव्रीहि ।) हस्तिकन्दवृक्ष । शाकवृक्ष । इति राजनिर्घण्ट ॥

अतिपात, पुं, ( अति+पत्+भावे घञ् ) अतिक्रम । उपात्यय । पर्य्यय । इत्यमर ॥ ( यथा शाकुन्तले—न चेदन्यकार्य्यातिपात ) ॥

अतिपातक, क्ली, ( अतिदुष्टतया अन्यत् पातक पापमतिक्रान्त प्रादिसमास ।) नवविधपापमध्ये गुरुतरपातक । तत् त्रिविध । पुंस मातृदुहितृ-

स्नुषागमनजन्यं । स्त्रियास्तु पुत्रपितृव्यश्वशुरगमनजन्य । इति प्रायश्चित्तविवेकः ॥

अतिबल, त्रि, (अतिशयितं बलं यस्य सः बहुव्रीहिः ।) प्रबल । अतिशयबलवान् । प्रकृष्टबलविशिष्टः । इति मेदिनी ॥ (विजृम्भमाणोऽतिबल प्रत्यबुध्यत राक्षस ॥ इति रामायणम् ) ॥

अतिबला, स्त्री, (अत्यन्तं बलं यस्या सा बहुव्रीहि ।) विश्वामित्रेण रामाय दत्ते अस्त्रविद्याविशेषे यथा,—
"गृहाण द्वे इमे विद्ये बलामतिबलां तथा" ।
इत्यादि रामायणे ।) पीतबला । पीतवर्णवाडियाला इति ख्याता । पिटारणी । इति मदनविनोद ॥ गुरुशकरीभेद । इति राजनिर्घण्ट ॥ तत्पर्य्याय । भगिनी २ बल्या ३ विकङ्कता ४ वाट्यपुष्पिका ५ घण्टा ६ शीता ७ शीतपुष्पा ८ भूरिबला ९ वृष्यगन्धिका १० । तस्या गुणा । तिक्तत्व । कटुत्व । वातकृमिनाशित्वं । दाहतृष्णाविषच्छर्द्दिक्लेदोपशमकारित्वञ्च । इति राजनिर्घण्ट ॥

अतिभारग, पुं, (अतिभारेण वेगेन गच्छति अतिभार + गम् + कर्त्तरि ड, उपपदसमास ।) (खर । अश्वतर । गर्द्दभात् वडवाजात अश्वभेद ।) खेसर । खचर इति भाषा । इति राजनिर्घण्ट ॥

अतितभी, पुं, (अतिबिभेत्यस्या अति भी + अपादाने क्विप् ।) वज्रज्वाला । इति हलायुध ॥

अतिभूमि, स्त्री, (अतिशयिता भूमिर्मर्य्यादा कर्म्मधारय, अतिमर्य्यादा ।) आधिक्य । यथा । प्राप्य मन्मथमदादतिभूमिं दुर्वहस्तनभरा सुरतस्येति माघ ॥ अतिशयितभूमि ॥

अतिमङ्गल्य, पु, (अतिमङ्गलाय हित अतिमङ्गल + यत् ।) विल्ववृक्ष । इति रत्नमाला ॥ अतिशयमङ्गलजनके त्रि ॥

अतिमर्य्याद, त्रि, (मर्य्यादामतिक्रान्त प्रादिसमास ।) अतिशयित । इति हेमचन्द्र ॥ अतिशये क्ली ॥

अतिमात्र, क्ली, (मात्रामल्पमतिक्रान्तं प्रादिसमासः ।) अतिशय । तद्युक्ते त्रि । इत्यमर ॥ (यथा शाकुन्तले । अतिमात्रलोहिततलौ बाहू घटोत्क्षेपणात् ॥)

अतिमुक्त, (पु) माधवीलता । इत्यमर ॥ तिनिशवृक्ष । इति हेमचन्द्र ॥

अतिमुक्त, त्रि, (अतिशयेन मुक्त निर्व्वाणमुक्तिं गतः अति + मुच् + कर्त्तरि क्त, निर्व्वाणमुक्तिविशिष्ट ।) निष्फल । निःसङ्ग । इतिविश्वमेदिन्यौ ॥ प्राप्तनिर्व्वाण ॥

अतिमुक्तक, पुं, (मुच् + भावे क्त, अतिशयेन मुक्तं मकरन्दो यस्य स बहुव्रीहि, कप् ।) तिनिशवृक्ष । इत्यमर । तिन्दुकवृक्ष । पुष्पवृक्षविशेष । तत्पर्य्याय । पुण्ड्रक २ वासन्ती ३ भ्रमरानन्द ४ कामुककान्ता ५ । तस्य गुणा । कषायत्वं । शीतत्वं । मधुरत्वं । पित्तदाहज्वरोन्मादहिक्काच्छर्द्दिनाशकत्वञ्च । इति राजनिर्घण्ट ।

(कर्णिकारान् कुरुवकान् चम्पकानतिमुक्तकान् ॥ इति रामायणे) ॥

अतिमोदा, स्त्री, (अत्यन्तो मोदो गन्धो यस्या सा ।) नवमल्लिका । इति राजनिर्घण्ट ॥

अतिरसा, स्त्री, (अत्यन्तो रसो यस्या सा ।) मूर्व्वालता । रास्ना । क्लीतनक । इति राजनिर्घण्ट ॥

अतिरिक्त, त्रि, (अति रिच् + कर्त्तरि क्त । श्रेष्ठे भिन्ने शून्ये च । भावे क्त, अतिरेके आधिक्ये च ।) अधिक । अतिशयित । तत्पर्य्याय । समधिक २ । इत्यमर ॥

अतिरेक, त्रि, (अति रिच् + भावे घञ् । आधिक्ये श्रेष्ठत्वे च ।) अतिशय । यथा,—
"सम्पूर्णे तूभयोर्ज्ञेयमतिरेके परेऽहनि" ।
इति तिथ्यादितत्त्व ॥

अतिरोग, पु, (अत्यन्तोरोग व्याधि अति रुज् + भावे घञ् ।) क्षयव्याधि । इति राजनिर्घण्ट ॥

अतिरोमश, पु, (अतिशयितं रोम तदेव विद्यतेऽस्य अतिरोमन् + मत्वर्थे श ) वनच्छागल । इति हारावली ॥ वृहत्वानर इति केचित् ॥ अतिशयलोमयुक्ते त्रि ॥

अतिलोमशा, स्त्री, (अतिशयितं लोम अतिलोमन् + मत्वर्थे श, स्त्रियां टाप् ।) नीलबुह्मा । इति रत्नमाला ॥

अतिवर्त्तुल, पु, (अतिशयितो वर्त्तुल कर्म्मधारय ।) कलाय विशेष । वाँटुला कडाइ इति भाषा । इति रत्नमाला ॥ अस्य गुणा सतीलशब्दे द्रष्टव्या ॥

अतिवाद, पु, (अति + वद् + भावे घञ् ।) अभिवादः । परुषोक्ति । इत्यमरटीकाया रमानाथ ॥ ("अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ।
नचेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्व्वीत केनचित् ॥ मनु ।)

अतिविकट, पु, (अतिशयितो विकट भीषण ) दुष्टहस्ती । इति शब्दमाला ॥ अतिकराले त्रि ॥

अतिविषा, स्त्री, (विषमतिक्रान्ता प्रादिसमास । वा विषमतिक्रान्त यया बहुव्रीहि ।) वृक्षविशेष । आतइच । आतैच इति भाषा । तत्पर्य्याय । विश्वा २ विषा ३ प्रतिविषा ४ उपविषा ५ अरुणा ६ शृङ्गी ७ महौषध ८ । इत्यमर ॥ काश्मीरा ९ श्वेता १० । इति रत्नमाला ॥ श्वेतकन्दा ११ भङ्गुरा १२ भङ्गुरा १३ विरूपा १४ श्यामकन्दा १५ विषरूपा १६ वीरा १७ माद्री १८ श्वेतवचा १९ अमृता २० । इति राजनिर्घण्ट ॥ तस्या गुणा । पाचकत्व । ग्राहित्व । दोषनाशित्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥ कटुत्वं । कफपित्तज्वरामातिसारकासविषच्छर्द्दिनाशित्वञ्च ।
"त्रिविधातिविषा ज्ञेया शुक्ला कृष्णा तथारुणा ।
रसवीर्य्यविपाकेषु निर्व्विशेष गुणाधिका" ॥
इति राजनिर्घण्ट ॥
"विषा त्वतिविषा विश्वा शृङ्गी प्रतिविषारुणा ।
शुक्लकन्दा चोपविषा भङ्गुरा घुणवल्लभा ॥
विषा गोष्णा कटुस्तिक्ता पाचनी दीपनी हरेत् ।
कफपित्तातिसारामविषकासवमिक्रिमीन्" ॥
इति भावप्रकाश ॥

अतिविस्रब्धनवोढा, स्त्री, (अतिविस्रब्धा अति प्रश्रययुक्ता नवोढा प्रणयिनी नायिका इति याव कर्म्मधारय ।) स्वीयान्तर्गतमध्यनायिकाभेद । तस्य लक्षण । नायकातिशयप्रश्रययुक्ता । अस्याश्चेष्टा सधैर्य्यसापराधनायके वक्रोक्ति । अधैर्य्यसापर धनायके परुषवाक् । इति रसमञ्जरी ॥

अतिवृष्टि, स्त्री, (अतिशयेन वृष्टि वर्षण ।) अति शयवृष्टि । ईतिविशेष । स तु महद्दर्षणरूप कृषीणामुत्पात । यथा,—
"अतिवृष्टिरनावृष्टि शलभा मूषिका खगा ।
प्रत्यासन्नाश्च राजान षडेता ईतय स्मृता ॥
इति पराशर ॥

अतिवेलं, क्ली, ( वेला मर्य्यादा कूल वा अतिक्रान प्रादिसमास, क्रस ।) अतिशयिते त्रि । इत्यमर (जलमतिवेलं पयोराशे ॥ नीतिमाला ) ।

अतिव्यथा, स्त्री, (अत्यन्ता व्यथायातना कर्म्मधारय व्यथ + भावे अङ् स्त्रियां टाप् ।) अतिशययातना तीव्रवेदना । इति शब्दरत्नावली ॥

अतिव्याप्ति, स्त्री, (अतिशयेन व्याप्तिर्व्यापनं ।) अतिशय व्यापनं । अलक्ष्ये लक्षणस्य गमनं । यथा साध्या भाववदवृत्तित्वमिति व्याप्तिलक्षणे धूमवान् वह्नि रित्यत्र धूमाभावाधिकरणहृदवृत्तित्वाभावमादा अतिव्याप्ति । इति तार्किका ॥ स्वाव्यवहित प्राक्क्षणावच्छेदेन रविभुज्यमानराशीयरवि संयोगविशिष्टस्वान्तिमक्षणकत्वं मलमास भानुलङ्घिते अतिव्याप्तिवारणाय श्रौत्यातिकाभिन्न त्वेन विशेषणीय । इति मलमासतत्त्वटीका मुख्यफलजनकव्यापारजनकत्वे सति मुख्यफला जनकत्वं अङ्गत्व घटादावतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्त इति तिथ्यादितत्त्वटीका च ॥

अतिशक्तिता, स्त्री, (अतिशयिता शक्ति कर्म्मसाधन सामर्थ्य यस्य बहुव्रीहि, तस्य भाव तल् स्त्रिय टाप् ) विक्रम । महाबल । इत्यमर ॥

अतिशक्तिभाक् [ज्] पु, (अतिशयिता शक्ति कर्म साधनसामर्थ्य कर्म्मधारय । ता भजते अतिशक्ति + भज् + कर्त्तरि ण्वि, उपपदसमास ।) अति शयशक्तिविशिष्ट । अतिसमर्थ । सवीर्य्यमतिशक्ति भाक् । इत्यमरः ॥

अतिशय, पु, (अति + शी + अच् ) अधिक । तत् पर्य्याय । भर २ अतिवेलं ३ भृशं ४ अत्यर्थ ५ अतिमात्र ६ उद्गाढ ७ निर्भर ८ तीव्रं ९ एकान्त १० नितान्त ११ गाढ १२ बाढं १३ दृढं १४ । इत्यमर ॥ अतिमर्य्याद १५ उत्कर्ष १६ । इति हेमचन्द्र ॥ बलवत् १७ सुष्ठु १८ किमुत १९ सु २० अतीव २१ अति २२ । इत्य व्ययवर्गे अमर ॥ अतिरिक्त २३ समधिक २४ । इति विशेष्यनिघ्नवर्गे अमर ॥

अतिशयनं, क्ली (अति + शी + भावे ल्युट् ) अतिशय । तद्युक्ते त्रि । इत्यमरटीकाया रमानाथ । (इयदमतिक्रान्त अत्यानीतिसमास । अतिक्रान्त इयत्ताम् ।)

अतिशायनं, क्ली, ( अति शी + स्वार्थे णिच् भावे

ल्युट्।) अतिशयन। इति शब्दरत्नावली॥ (आधिक्य। प्रकर्ष। प्रशंसा।)

अतिशोभन, त्रि, (अतिशोभते अति+शुभ+कर्त्तरि ल्यु।) अतिशयशोभायुक्त। अतिप्रशस्य। श्रेष्ठ। इत्यमरः॥

अतिसर्ज्जन, क्ली, (अतिशयेन सर्जनं दानं अति+सृज्+भावे ल्युट्) अतिशयदान। तत्पर्य्यायः। विश्राणन २। इत्यमरः॥ दान। वध। इति मेदिनी॥ (विधुरां ज्वलनातिसर्ज्जनात् ननु मां प्रापय पत्युरन्तिकं॥ इति कुमारसम्भवे॥)

अतिसार, पुं, (अतिशयेन मलं द्रवीकृत्य सरति णि सारयति अति+सृ+व्याधिमत्स्यबलेष्विति वक्तव्यमिति वार्त्तिकसूत्रेण कर्त्तरि घञ् वृद्धि दीर्घश्च।) बहुद्रवमलनिःसरणरोग। तत्पर्य्यायः। अन्नगन्धि २ उदरामय ३। इति त्रिकाण्डशेषः॥ अतीसार ४। इति वैद्यकं॥ *॥ तस्य निदानं।

"गुर्व्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः।
विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चापि भोजनैः॥
स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः।
शोकाद्दुष्टाम्बुमद्यातिपानैः सात्म्यर्त्तुपर्य्ययैः॥
जलाभिरमणैर्व्वेगविघातैः क्रिमिदोषतः।
नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते"॥

सम्प्राप्तिर्यथा,—

"संशम्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धः
शकृन्मिश्रो वायुनाधः प्रणुन्नः।
सरत्यतीवातिसारं तमाहु-
र्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति॥
एकैकशः सर्व्वशश्चापि दोषैः
शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः"॥ *॥

पूर्व्वरूपं यथा,—

"हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोद-
गात्रावसादानिलसन्निरोधाः।
विट्सङ्ग आध्मानमथाविपाको
भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि॥"

इति माधवकरः॥ अथ सामान्यातिसारस्य चिकित्सामाह।

"आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारक्रिया यतः।
अतोऽतिसारे सर्व्वस्मिन्नाम पक्वञ्च लक्षयेत्॥
क्रमशश्चिकित्सा। तत्रामपक्वयोर्लक्षणं।

"संसृज्यमानैर्दोषैस्तु न्यस्तमप्सु निमज्जति।
पुरीषं भृशदुर्गन्धि पिच्छिलं चामसञ्ज्ञितं॥
एतान्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्य वै।
लाघवञ्च विशेषेण तत्तु पक्वं विनिर्द्दिशेत्॥
न च संग्राहणं दद्यात् पूर्व्वमामातिसारिणे।
अकाले संगृहीतो हि विकारान् कुरुते बहून्॥
दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शोभगन्दरान्।
शोथं पाण्डामयं प्लीहगुल्ममेहोदरज्वरान्॥
डिम्भस्य स्थविरस्यस्य वातपित्तात्मकस्य च।
क्षीणधातुबलस्यापि बहुदोषोऽतिविस्रुतः॥
आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात् पाचनान्मरणं भवेत्।
लङ्घनमेकं मुक्त्वा न चान्यदस्तीह भेषजं बलिनः।
समुदीर्णदोषनिचयं तत् पाचयते तथा शमयेत्॥

लङ्घनस्य दोषदुःसहपिपासायां दोषपाकार्थं षडङ्गविधिनार्द्धशृतं योगचतुष्टयमाह,—

"धान्योदीच्यशृतं तोयं तृष्णादाहातिसारिणे।
ह्रीवेरशृङ्गवेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा॥
मुस्तोदीच्यशृतं शीतं प्रदातव्यं पिपासवे।
हितं लङ्घनमेवादौ पूर्व्वरूपेऽतिसारिणः॥
कार्य्यं वानशनस्यान्ते प्रद्रवं लघुभोजनं।
पथ्यादारुवचामुस्तैर्नागरातिविषान्वितैः॥
आमातीसारनाशाय क्वाथमेभिः पिबेन्नरः।
पथ्यादिक्वाथः॥ *॥

"पाठाहिङ्ग्वजमोदोग्रापञ्चकोलाब्दजं रजः।
उष्णाम्बुपीतं सरुजं जयत्यामं ससैन्धवं॥"

पाठादिचूर्णं॥ *॥

"हरीतकीं सातिविषां हिङ्गु सौवर्च्चलं वचां।
सैन्धवञ्चापि सपिष्य पाययेदुष्णवारिणा॥
आमातिसारं योगोऽयं पाचयित्वा चिकित्सति।
आमातिसारो योगेन यद्येतेन न शाम्यति।
न तं योगशतेनापि चिकित्सति चिकित्सकः॥"

चिकित्सति अपनयति। हरीतक्यादिकल्कः॥ *॥

"वत्सकातिविषा बिल्वमुस्तबालकजं शृतं।
अतीसारं जयेत् सामं चिरजं रक्तशूलजित्॥"

वत्सकादिक्वाथः॥ *॥

"एरण्डरससंपिष्टं पक्वमामस्य नागरं।
आमातिसारशूलघ्नं दीपनं पाचनं परं॥"

नागरस्य पुटपाकः कल्कश्च॥ *॥

"धान्यबालकबिल्वाब्दनागरैः साधितं जलं।
आमशूलविबन्धघ्नं पाचनं नित्यसेवितं॥"

धान्यपञ्चकं॥ *॥

"पित्ते धान्यचतुष्कन्तु शुण्ठीत्यागाद्वदन्ति हि।
रक्तोऽपि पित्तसाधर्म्याद्धितं धान्यचतुष्टयं॥"

धान्यचतुष्कं॥ इति आमातिसारस्य चिकित्सा॥ *॥

"सलोध्रं धातकीबिल्वं मुस्तामास्थिकलिङ्गकं।
पिबेन्माक्षिकतक्रेण पक्वातीसारनाशनं॥"

लोध्रादिचूर्णं॥ *॥

"अम्बष्ठा धातकी लोध्रं समङ्गा पद्मकेशरं।
मधुकारलुबिल्वञ्च पक्वातीसारहा गणः॥"

आरलु श्योणाकः। पाठादिर्गणः॥ *॥

"समङ्गा धातकीपुष्पं मञ्जिष्ठा लोध्रमेव च।
शाल्मलीवेष्टको लोध्रो दाडिमद्रुफलत्वचौ॥
आम्रास्थिमध्यं लोध्रञ्च बिल्वमध्यं प्रियङ्गु च।
मधूकं शृङ्गवेरञ्च दीर्घवृन्तत्वगेव च॥
चत्वार एते योगाः स्युः पक्वातिसारनाशनाः।
ते योगा उपयोग्याः स्युः सक्षौद्रास्तण्डुलाम्बुना॥"

समङ्गात्र लज्जालु। शाल्मलीवेष्टको मोचरसः। दाडिमस्य द्रुमफलयोस्त्वचौ। प्रियङ्गोर्नपुंसकत्वमत्र फले वर्त्तमानत्वात्। शृङ्गवेरमत्र शुण्ठी। दीर्घवृन्तः श्योणाकः तस्य त्वक्। समङ्गादीनि चत्वारि चूर्णानि॥

"कच्छटजम्बूदाडिमशृङ्गाटकपत्रबिल्ववर्हिष्ठैः। जलधरनागरसहितैर्गङ्गामपि वेगवाहिनीं रुन्ध्यात्॥"

कच्छटं चवराई शाकस्य भेदः। कच्छटादिभिश्चतुर्भिः पत्रशब्दः सम्बध्यते। वर्हिष्ठं बालकं। गङ्गाधरक्वाथः॥ *॥

"मोचरसमुस्तनागरपाठारलुधातकीकुसुमैः।
चूर्णं मथितसमेतं रुणद्धि गङ्गाप्रवाहमपि"
अरलु श्योणाकः। मथितं निर्ज्जलं दधि वस्त्र…
गङ्गाधरचूर्णं॥ *॥

"मुस्तावत्सकबीजं मोचरसो बिल्वधातकीलोध्र…
गुडमथितसम्प्रयुक्तं गङ्गामपि वेगवाहिनीं रुन्ध्यात…
द्वितीयगङ्गाधरचूर्णं॥ *॥

"मुस्तारलुकशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रबालकैः।
बिल्वमोचरसाभ्याञ्च पाठेन्द्रयववत्सकैः॥
आम्रबीजसमङ्गातिविषायुक्तैर्विचूर्णितैः।
मधुतण्डुलपानीयपीतैर्नश्येत् प्रवाहिका॥
सर्व्वेऽतिसारा ग्रहणी प्रशमं याति वेगतः।
वृद्धगङ्गाधरं चूर्णं रुन्ध्याद्गीर्व्वाणवाहिनीं॥"

समङ्गा लज्जालु। वृद्धगङ्गाधरचूर्णं॥ *॥

"अङ्कोटमूलकल्कं तण्डुलपयसा समाक्षिकं पीत…
सेतुरिव वारिवेगं झटिति रुन्ध्यादतीसारं"॥

अङ्कोठकल्कः॥ *॥

"कुटजत्वग्बलामार्द्रां द्रोणनीरे पचेद्भिषक्।
पादशेषं शृतं नीत्वा वस्त्रपूतं पुनः पचेत्॥
लज्जालुर्धातकी बिल्वं पाठा मोचरसस्तथा।
मुस्तं प्रतिविषा चैव चूर्णान्येषां पलं पलं॥
निक्षिप्य विपचेत्तावत् यावत् दर्व्वीं प्रलिप्यते…
जलेन च्छागदुग्धेन पीतो मण्डेन वा जयेत्॥
घोरान् सर्व्वानतीसारान् नानावर्णान् सवेदना…
असृग्दरं समस्तञ्च तथार्शांसि प्रवाहिकां॥"

कुटजावलेहः॥ *॥

"छत्वा शल्वाल सुदृढं पिष्टैरामलकैर्भिषक्।
आर्द्रकस्य रसेनाशु पूरयेन्नाभिमण्डलं॥
नदीवेगोपमं घोरं प्रवृद्धं दुर्द्धरं नृणां।
सद्योऽतिसारमजयं नाशयत्येष योगराट्॥
पाठा पिष्टा च गोदध्ना तथा रुध्यत्वगाम्रजा।
अतीसारं व्यथादाहयुक्तं हन्त्युदरे धृता॥ *…

अथ वातातिसारस्य लक्षणं।

"अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्म्मुहुः।
शकृदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्य्यते"॥

अरुणमीषद्रक्तं। शकृत् पुरीषं। सरुक्छब्दं… शब्दो गुदे। तत्साहचर्य्यात् रुगपि गुदे… बोद्धव्या॥ *॥ तस्य चिकित्सा।

"वचा चातिविषा मुस्तं बीजानि कुटजस्य च।
श्रेष्ठः कषाय एतेषां वातातिसारशान्तये"॥ *…

अथ पित्तातीसारस्य लक्षणं।

"पित्तात् पीतं शकृद्रक्तं दुर्गन्धि हरितं द्रुतं।
गुदपाकतृषामूर्च्छादाहयुक्तं प्रवर्त्तते"॥ *॥

तस्य चिकित्सा।

"बिल्वशक्रयवाम्भोदबालकातिविषाकृतः।
कषायो हन्त्यतीसारं सामं पित्तसमुद्भवं"।

बिल्वादिकषायः॥ *॥

"रसाञ्जनं सातिविषं कुटजस्य फलं त्वचं।
धातकीशृङ्गवेरञ्च पाययेत्तण्डुलाम्बुना॥
निहन्ति मधुना पीतं पित्तातीसारमुल्वणं।
अग्निं सन्दीपयत्येतत् शूलमाशु निवारयेत्॥
रसाञ्जनादिचूर्णं॥ *॥ अथ पित्तातिसारभेदस्य…

रक्तातीसारस्य सम्प्राप्तिमाह,—
"पित्तकृन्ति यदात्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके ।
तद्दोषाज्जायते शीघ्रं रक्तातीसार उल्वणः ॥*॥"
तस्य चिकित्सा ।
वत्सकतरुलगार्द्रा दाडिमफलसम्भवा त्वक् च ।
त्वगयुगल पलमान विपचेदष्टाशसम्मिते तोये ॥
अष्टमभाग शेषं क्वाथ मधुनापिबेत् पुरुष ।
रक्तातिसारमुल्वणमतिशयित नाशयेन्नियत ॥
कुटजदाडिमक्वाथ' ॥ * ॥
"कुटजातिविषा मुस्त वालकं लोध्रचन्दनं ।
धातकी दाडिम पाठा क्वाथमेषा समाक्षिक ॥
पिबेद्रक्तातिसारे तु दाहशूलामसयुते ।
कुटजादिकषायोऽय सर्व्वातीसारनाशन' ॥"
चन्दनमत्र रक्तचन्दन कुटजादिक्वाथ ॥ * ॥
"गुडेन भक्षयेद्विल्व रक्तातीसारनाशन ।
आमशूलविबन्धघ्न कुक्षिरोगहरं पर ॥"
विल्व सुखिन्नं बालविल्वगर्भ शीत तत्खेदनोदक
धानुपेय । गुडविल्व ॥ * ॥
"जम्ब्वाम्रामलकीनान्तु कुट्टयेत् पल्लवान् नवान् ।
संगृह्य स्वरस तेषा अजाक्षीरेण योजयेत् ॥"
तत्पिबेन्मधुना युक्त रक्तातीसारनाशन ।
जम्ब्वादिस्वरस ॥ * ॥
"निष्क्वाथ्य मूलममल गिरिमल्लिकाया
सम्यक् पलद्वितयमम्बुचतु शरावे ।
तत्पादशेषसलिल खलु शोषणीय
क्षीरे पलद्वयमिते कुशलैरजाया ॥
प्रक्षिप्य माषकानष्टौ मधुनस्तत्र शीतले ॥
रक्तातिसारी तत्पीत्वा नैरुज्य क्षिप्रमाप्नुयात्"॥
कुटजक्षीर ॥ * ॥
"पीत्वा शतावरीकल्क पयसा क्षीरभुग् जयेत् ।
रक्तातिसार पीत्वा वा तया सिद्ध घृत नर ॥"
शतावरीकल्कक्षीरद्घृतञ्च ॥ * ॥
"गोदुग्धनवनीतन्तु मधुना सितया सह ॥
लीढ रक्तातिसारे तु ग्राहक परमं मत" ॥
नवनीतावलेह ॥ * ॥
"शीत मधुसितायुक्त चन्दन तण्डुलाम्बुना ।
रक्तातिसारजिद्रक्तपित्ततृड्दाहमेहनुत्" ॥
चन्दनमत्र श्वेत । चन्दनकल्क ॥ * ॥
"विरेकैर्बहुभिर्यस्य गुद पित्तेन दह्यते ।
पच्यते वा तयो कार्य्यं सेकप्रक्षालनादिक" ॥
आदिशब्देन लेपादिग्रह ।
"पटोलयष्टीमधुकक्वाथेन शिशिरेण हि ।
गुदप्रक्षालन कार्य्य तेनैव गुदसेचन ॥
दाहे पाके हित छागीदुग्ध सक्षौद्रशर्कर ।
गुदस्य क्षालने सेके युक्त पाने च भोजने ॥
गुदस्य दाहपाकयो ।
"गुदनि सरणे प्रोक्त चाङ्गेरीघृतमुत्तमं ।
अतिप्रवृत्त्या महती भवेद्यदि गुदव्यथा ।
खिन्नमूषकमासेन तदा सखेदयेद्गुदं ॥
अथ गोधूमचूर्णस्य सनीतस्य तु वारिणा ।
साज्यस्य गोलक कृत्वा मृदु संस्वेदयेद्गुद ॥
(गुदव्यथायां)गुदभ्रंशे गुदस्वेदैरभ्यन्तरप्रवेशयेत् ।

प्रविष्टं स्वेदयेन्मन्द मूषकस्यामिषेण हि ॥"
मूषकस्यामिषेण काञ्जिकेनोत्खिन्नेन स्वरङ्ग-
पत्रादिस्यामितेन स्वेदयेत् ।
"मूषकस्याथ वसया पायु सम्यक् प्रलेपयेत् ।
गुदभ्रंशाभिधो व्याधि प्रशाम्यति न संशय ॥
चाङ्गेरीकोलदध्यम्लक्षारनागरसयुतं ।
घृत विपक्वं पातव्यं गुदभ्रंशगदापह ॥
चाङ्गेरी चतुष्पत्रा अम्ललोनिका तस्या स्वरस
कोलस्य क्वाथ दध्यम्ल दधिस्थमम्ल एतत्त्रयं
मिलित घृताच्चतुर्गुण । क्षारनागरयो कल्क ।
चाङ्गेरीघृत ॥ * ॥
"कोमल पद्मिनीपत्र य खादेच्छर्करान्वित ।
एतन्निश्चित्य निर्दिष्ट न तस्य गुदनिर्गम ॥
पद्मिनीपत्र पुरइनिपत्र तत्सशोष्य संचूर्ण्य शर्करा
युक्तं खादेत् । अयन्तु गुदभ्रंशोऽतीसार विनापि
भवति । तत क्षुद्ररोगेषु लिखित । अत्र तु
गुदस्य दाहपाकव्यथाप्रसङ्गात् भ्रंशोऽपि लिखित ।
चिकित्सा तूभयत्र तुल्यैव ॥ * ॥ अथ श्लेष्मातिसारस्य लक्षण ॥
"श्वेत स्निग्ध घन विस्र शीतल मन्दवेदन ।
गौरवारुचिसयुक्त श्लेष्मणा सार्य्यते शकृत् ॥
विस्र स्यादामगन्धि यत् ॥*॥ अथ तस्य चिकित्सा।
"श्लेष्मातिसारे प्रथम हित लङ्घनपाचन ।
योज्यश्चामातिसारघ्नो यथोक्तो दीपनो गण ॥
पथ्यातिविषा कुष्ठ बालविल्व सनागर ।
वत्सकतलकफले पथ्या छर्दिश्लेष्मातिसारनुत्" ॥
पथ्यादिक्वाथ ॥ * ॥
"हिङ्गु सौवर्चल व्योषमभयातिविषा वचा ।
पीतमुष्णाम्बुना चूर्णमेषा श्लेष्मातिसारनुत् ॥"
हिङ्ग्वादिचूर्ण ॥ * ॥
"कृमिशत्रुवचाविल्वपेशीधान्याककट्फल ।
एषा क्वाथ भिषग्दद्यात् अतीसारे बलासजे" ॥
विडङ्गादिक्वाथ ॥ * ॥ अथ द्विदोषजातिसाराणा
लक्षणानि चिकित्सा च ।
"द्विदोषलक्षणैर्विद्यादतीसार द्विदोषज ।
तेषा चिकित्सा प्रोक्तैव विशिष्टा च निगद्यते ॥
कट्फल मधुक लोध्रत्वक् दाडिमफलस्य च ।
सतण्डुलजल चूर्ण वातपित्तातिसारनुत्" ॥
वातपित्तातिसारे ॥ * ॥
"चित्रकातिविषा मुस्त बालविल्व सनागर ।
वत्सकतलकफलं पथ्या वातश्लेष्मातिसारनुत्" ॥
वातश्लेष्मातिसारे ॥ * ॥
"मुस्ता सातिविषा मूर्वा वचा च कुटज समा ।
एषा कषाय सक्षौद्र पित्तश्लेष्मातिसारनुत्" ॥
पित्तश्लेष्मातिसारे॥ अथ सन्निपातातिसारस्य लक्षण।
"तन्द्रायुक्तो मोहसादास्यशोषी
वर्च कुर्य्यान्नैकरूप तृषार्त्त ।
सर्व्वोद्भूते सर्व्वलिङ्गोपपत्ति
कृच्छ्रोऽसाध्यो बालवृद्धाबलाना" ॥
अथ तस्य चिकित्सा ॥ * ॥
"पञ्चमूलीबलाविल्वगुडूचीमुस्तनागरै ।
पाठाभूनिम्बवर्हिष्ठकुटजत्वक्फलै र्घृतं ॥

सर्व्वजं हन्त्यतीसार ज्वरञ्चापि तथा वमि ।
सशूलोपद्रव श्वासं कासं चापि सुदुस्तर ॥
पञ्चमूल्यत्र सामान्या पित्ते योज्या कनीयसी ।
वाते पुनर्व्वलासे च सा योज्या महती मता" ॥
वर्हिष्ठं बालक । पञ्चमूल्यादिक्वाथ ॥ * ॥
"अभया नागर मुस्त गुडेन सह योजितं ।
चतु समेय गुटिका स्यात्त्रिदोषातिसारनुत् ॥
आमातिसारमानाह सविबन्ध विसूचिका ।
कामिनरोचक हन्त्यादीपयत्याशु चानल" ॥
चतु समो मोदक' ॥ * ॥
"तत्काम्लाकृष्टकुटजत्वच तण्डुलवारिणा ।
पिष्ट्वा चतु पलमिता जम्बुपल्लववेष्टिता ॥
सूत्रेण बद्धा गोधूमपिष्टेन परिवेष्टिता ।
लिप्ताञ्च घनपङ्केन निर्दग्धेद्गोमयाग्निना ॥
अङ्गारवर्णाञ्च मृद दृष्ट्वा वह्नेः समुद्धरेत् ।
ततो रस समादाय शीत क्षौद्रयुत पिबेत् ॥
उक्त श्यामातिपुटेण पुटपाकस्तु कौटज ।
जयेत् सर्व्वानतीसारान् दुस्तरान् सुचिरोत्थितान्
कुटजपुटपाक ॥ * ॥
"कुटजत्वक्कृत क्वाथो वस्त्रपूतो घनीकृत ।
स लीढोऽतिविषायुक्त स्यात्त्रिदोषातिसारनुत्॥
इच्छन्त्यत्रापरमष्टेन क्वाथादतिविषारज ।
प्रक्षिपेद्वा चतुर्थांशमिति केचिद्वदन्ति हि" ॥
कुटजावलेहः ॥ * ॥
"पलमङ्कोटमूलस्य पाठां दार्व्वीञ्च तत्समा ।
पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकाश्चणसम्मितान् ॥
छायाशुष्कांश्च तान् कुर्य्यात्तेष्वेकं तण्डुलाम्बुना ।
पेषयित्वा प्रदद्यात्तु पानाय गदिने भिषक् ॥
वातपित्तकफोद्भूतान् द्वन्द्वजान् सान्निपातिकान्।
हन्यात् सर्व्वानतीसारान् वटकोऽय प्रयोजित" ॥
अङ्कोठवटक ॥ * ॥ अथागन्तुजस्य शोकातिसारस्य सम्प्राप्तिपूर्व्वकं लक्षणमाह ।
तैस्तैर्भावै शोचतोऽल्पाशनस्य
बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जन्तो ।
कोष्ठ गत्वा क्षोभयेत् तस्य रक्तं
तच्चाधस्तात् काकणन्तीप्रकाश ॥
निर्गच्छेद्वै विड्विमिश्रं ह्यविड्वा
निर्गन्ध वा गन्धवद्वातिसार ।
शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्र
रोगो वैद्यै कष्ट एष प्रदिष्ट ॥
अयमर्थ । तैस्तैर्भावैर्विविधवित्तक्षयादिभि शोचत शोक कुर्व्वत । जन्तो प्राणिन'। बाष्पोष्मा बाष्प शोकजदेहोष्मणा जनित नेत्रनासागलादिषु जल तेन सहित उष्मा शोकज देहतेज । स कोष्ठं गत्वा वह्निमाविश्य जठराग्नि मन्दीकृत्य। बाष्पसाहित्यादुष्मणापि वह्नेर्मन्दीभाव इति न दोष । वह्नेर्मन्दीभावादेव चाल्पाशनस्येति जन्तोर्विशेषणं । ततस्तस्य जन्तोः रक्त क्षोभयेत् स्वस्थानाच्चालयेत्। इति संप्राप्ति ॥ अथ लक्षणं । तच्च रक्त अधस्तात् गुदात् काकणन्तीप्रकाशं गुञ्जाफलसदृशं विड्विमिश्रं गन्धवच्च । अविट् निर्गन्धं वा निर्गच्छेत् । शोकोत्पन्नोऽतिसार अतिमात्रं दुश्चिकित्स्य । शोकाप-

नोदन क्रिया केवलेन भेषजेन प्रतिकर्त्तुमशक्यत्वात्। एषोऽतिसारः वैद्यैः कष्टः कष्टेन साध्यः। प्रदिष्टः कथित इत्यर्थः ॥ * ॥ अथागन्तुजत्वेन साम्यात् भयातिसारस्यापि संप्राप्तिपूर्व्वकं लक्षणमत्रैवाह।

"भयेन क्षोभिता दोषा दूषयन्ति मलं यदा।
तदातिसार्य्यते तन्तु क्षिप्रमुष्णजलप्लवं ॥
वातपित्तातिसारस्य प्रायो लिङ्गैः समन्वितं।
न भयोपशमाच्छर्म्म यस्मिन् स्यात् स भयात् स्मृतः ॥

प्लवत इति प्लव जले प्लवमानं। ननु भयातिसारस्य कथमागन्तुजत्वमयमपि दोषज एव। यत आह। भयेन क्षोभिता दूषिता दोषा मलं दूषयन्ति। तन्मलमतिसरति। अत्र पूर्व्वमेव दोषसम्बन्धः। उच्यते।

"रागद्वेषभयाद् ये च ते स्युरागन्तवो गदाः"।

इति वचनाद्भयातीसार आगन्तुज एव। श्लोकस्य त्वयमर्थः। भयेनैव हेतुभूतेन दोषा वातपित्तकफा अतीसारणाय क्षोभिता सञ्चालिता न दूषिता भयेन त्रयाणामपि दोषाणां दूषणासम्भवात्। अतिसर्त्तुं चलिता वातपित्तकफा मलं दूषयन्ति तत् सर्व्वं वातपित्तकफमलं भयेनैवातिसार्य्यते। पश्चाद्वातसम्बन्धो भयाद्वायुरिति वचनात्। अतएव भयातिसारे वातघ्न्येव क्रिया कथितेति समाधिः ॥ * ॥ अथ तयोश्चिकित्सा।

"भयशोकसमुद्भूतौ ज्ञेयौ वातातिसारवत्।
तयोर्व्वातहरी कार्य्या हर्षणाश्वासने क्रिया" ॥

वातातिसारवत् वातातिसारलक्षणैः। तयोश्चिकित्सा च हर्षणाश्वासनपूर्व्विका वातहरी कार्य्या ॥ * ॥ अथामातीसारस्य सम्प्राप्तिपूर्व्वकं लक्षणमाह।

"अन्नाजीर्णात् प्रद्रुता क्षोभयन्तो-
दोषाः कोष्ठे धातुसङ्घान् मलांश्च।
नानावर्णं नैकशः सारयन्ति
शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥

अन्नं भुक्तं तदजीर्णं चेति कर्म्मधारये अन्नाजीर्णं तस्मात् प्रद्रुता उपद्रुता। क्षोभयन्तः चालयन्तः। नैकशः इत्यत्र नाकादित्वान्नाक्षरविपर्य्ययः। मन्दामेन दोषा दुष्यन्ते गुर्व्वादिभक्षणादिभिरिव ते चातीसारमुत्पादयन्ति। नत्वाममेवातीसारमुत्पादयति। तेनामातीसारोऽपि दोषज एव किमर्थमयं पृथगुच्यते। उच्यते। आमातीसारस्य चिकित्साविशेषार्थं सम्प्राप्तिपूर्व्वको लक्षणविशेषः पृथगुक्तः। कः स चिकित्साविशेषस्तमाह। अतिसारेषु सर्व्वेष्वेव सग्राहकमौषधमुक्तमामातीसारे तु ग्राहकं विरुद्धं। यत उक्तं।

"नामे सग्राहकं विद्यादतीसारे कदाचन।
संगृहीतो मलादामो विकारान् कुरुते बहून्" ॥

इति। मलाद्धेमजबलात्। विकारान् ग्रहणीध्मानशूलगुल्मशोथोदरज्वरादीन् ॥ * ॥ तस्य चिकित्सा।

"वत्सकातिविषा शुण्ठी विल्वहिङ्गुयवाम्बुदाः।
चित्रकेण युता एषां क्वाथ आमातिसारनुत्" ॥

आमातिसारस्य चिकित्सा पूर्व्वमुक्तैव ॥ * ॥

"शोथघ्नीन्द्रयवाः पाठा विडङ्गातिविषा घना।
क्वथिता सोषणाः पीताः शोथातिसारनाशना" ॥

शोथघ्नी पुनर्नवा। उषणं मरिचं। सशोथातीसारे ॥ * ॥

"आम्रास्थिमध्यमालूरफलक्वाथः समाक्षिकः।
शर्करासहितो हन्यात् छर्द्यतीसारमुल्वणं" ॥

मालूरफलं विल्वफलं।

"कषायो भृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः।
निहन्याच्छर्द्यतीसारं तृष्णादाहं ज्वरं भ्रमं" ॥

छर्द्यतीसारे ॥ * ॥

"दध्ना ससारेण समाक्षिकेण
भुञ्जीत निःसारकपीडितस्तु।
सुतप्तकुप्यक्वथितेन चापि
क्षीरेण शीतेन मधुप्लुतेन" ॥

निःसारकं निराहो इति लोके। सुतप्तकुप्यक्वथितेन। सुतप्तसुवर्णरजततारलोहनिर्व्वापणक्वथितेन। भुञ्जीत पथ्यमिति शेषः ॥ निःसारके ॥ * ॥

"दीप्ताग्निर्निष्पुरीषो यः सार्य्यते फेनिलं शकृत्।
स पिबेत् फाणितं शुण्ठीं दधि तैलं पयो घृतं ॥
बला विश्वाश्रुतं क्षीरं गुडतैलानुयोजितं।
दीप्ताग्निः पाययेत् प्रातः सुखदं वर्च्चसक्षये" ॥

पुरीषक्षये ॥ * ॥

"तुलां सकुट्य विल्वस्य पचेत् पादावशेषितं।
सक्षीरं साधयेत्तैलं श्लक्ष्णपिष्टैरिमैः समैः ॥
विल्वं सधातकीकुष्ठं शुण्ठी रास्ना पुनर्नवा।
देवदारु वचा मुस्तं लोध्रमोचरसान्वितं ॥
एभिर्न्नदयिना पक्वं ग्रहण्यर्शोऽतिसारनुत्।
विल्वतैलमिति ख्यातमत्रिपुत्रेण भाषितं ॥
ग्रहण्यर्शोऽधिकारे ये स्नेहाः समुपदर्शिताः।
प्रयोज्यास्तेऽतिसारेऽपि त्रयाणां तुल्यहेतुता" ॥

त्रयाणां ग्रहण्यर्शोऽतिसाराणां। विल्वतैलं ॥ * ॥ अथातिसारभेदस्य प्रवाहिकाख्याधेः सम्प्राप्तिपूर्व्वकलक्षणमाह।

"वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं
नुदत्यधस्तादहिताशनस्य।
प्रवाहतोऽल्पं बहुशो मलाक्तं
प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः" ॥

अस्यायमर्थः। अहिताशनस्य अतिशयेन वातलभक्ष्यभोजिनः। प्रवृद्धो वायुः प्रवाहतः कण्ठछद्मलेन सशब्दं वायुसमानमार्गेण त्यजतः। निचितं सञ्चितं। बलासं कफं। मलाक्तं पुरीषयुक्तं अल्पं। बहुशः वारंवारं। अधस्तात् गुदमार्गेण। नुदति प्रेरयति। तज्ज्ञाः पुराणा वैद्याः। तां प्रवाहिकां। प्रवदन्ति कथयन्ति ॥ * ॥

तस्या वातजादिभेदेन रूपमाह।

"प्रवाहिका वातकृता सशूला
पित्तात् सदाहा सकफा कफाच्च।
सशोणिता शोणितसम्भवाच्च
ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु" ॥

तत्र रूक्षप्रभवा वातजा। स्नेहप्रभवा कफजा। शब्दात्तीक्ष्णोष्णप्रभवा पित्तजा रक्तजा च। तास
मतीसारवदादिशेच्च लिङ्गं क्रमं चामविपक्वता
क्रमं चिकित्सां ॥ * ॥ तस्याश्चिकित्सामाह

"विल्वपेशी गुडं लोध्रं तैलं मरिचसंयुतं।
लीढ्वा प्रवाहिकाक्रान्तः सत्वरं सुखमाप्नुयात्"
विल्वादिरवलेहः ॥ * ॥

"धातकीवदरीपत्रकपित्थरसमाक्षिकं।
सलोध्रमेकतो दध्ना पिबेन्निर्व्वाहिकार्द्दितः" ॥

एकतः प्रत्येकं दध्ना पिबेदित्यर्थः। निर्व्वाहिका प्रवाहिका। धातक्यादि ॥ * ॥ अथ असाध्या
तिसारिणो लक्षणमाह।

"पक्वजाम्बवसङ्काशं यकृत्खण्डनिभं तनुं।
घृततैलवसामज्जवेसवारपयोदधि।
मांसधावनतोयाभं कृष्णं नीलारुणप्रभं ॥
कुणपं सकृदालोक्य नातिसारमुपक्रमेत्।
तृष्णादाहारुचिश्वासहिक्कापार्श्वास्थिशूलिनं"

समूर्च्छारतिसमोहयुक्तं पक्ववलीगुदं। प्रलापयुक्तञ्च भिषक् वर्ज्जयेदतिसारिणं ॥ समूर्च्छ
सकलेन्द्रियमनसा स्वस्वविषयग्रहणाशक्तिहेतुर
वस्थाविशेषः। समोहः विहतमतित्वं।

"असंवृतगुदं क्षीणं शूलाध्मानैरुपद्रुतं।
गुदे पक्वे गतोष्माणमतीसारिणमुत्सृजेत् ॥
असंवृतगुदं गुदसंवरणाक्षमं।
गुदे पक्वे गतोष्माणं गुदपाकारम्भके पि
विद्यमानेऽपि शीतगात्रं नष्टाग्निं वा।

"श्वासशूलपिपासार्त्तं क्षीणं ज्वरनिपीड़ितं।
विशेषेण नरं वृद्धमतीसारो विनाशयेत् ॥
शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकं।
छर्द्दिमूर्च्छाञ्च हिक्काञ्च दृष्ट्वातिसारिणं त्यजेत् ॥
हस्तपादाङ्गुलीसन्धिप्रपाको मूत्रनिग्रहः।
पुरीषस्योष्णतातीव मरणायातिसारिणां ॥
अतीसारी राजरोगी ग्रहणीरोगवानपि।
मांसाग्निबलहीनो यो दुर्लभं तस्य जीवनं ॥
बाले वृद्धे त्वसाध्योऽयं लिङ्गैरेतैरुपद्रुतः।
अपि यूनामसाध्यः स्यादतिदुष्टेषु धातुषु" ॥

एतैर्लिङ्गैः पूर्व्वोक्तैः पक्वजाम्बवसङ्काशत्वादिभिः ॥ * ॥ अथातिसारयुक्तस्य लक्षणं।

"यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति।
दीप्ताग्नेर्लघु कोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः" ॥

उच्चारं पुरीषं विना स्थितः निवृत्तः उदरामयोऽतिसारः ॥ * ॥ अथातीसारिणो वर्ज्जनीयान्याह।

"स्नानावगाहनाभ्यङ्गगुरुस्निग्धादिभोजनं।
व्यायाममग्निसन्तापमतीसारी विवर्ज्जयेत्" ॥

स्नानमुद्धृतजलेन। अवगाहनं नद्यादौ। इत्यतीसाराधिकारः। इति भावप्रकाशः ॥

अतिसारकी, [न्] त्रि, (अतिसार + स्वार्थे कन् ततो मत्वर्थे इन्) सातिसारः। अतिसाररोगयुक्तः। उदरामयी। इत्यमरः ॥

अतिसाम्या, स्त्री, (साम्यं समतामतिक्रान्ता अत्यादीति समासः अतुल्यलक्षणयुक्ता इति यावत्।)

लतायष्टिमधु। इति राजनिर्घण्टः ॥ अस्या गुणा स्तीतनकशब्दे द्रष्टव्याः ॥ (यष्टिमधु इति भाषा।)

अतिस्फिर, त्रि, (स्फायी ओप्यायी वृद्धौ अति + स्फाय + स्फायितञ्चिवञ्चीत्यादिसूत्रेण रक् पृषोदरादित्वात् आयभागस्य इ अतिवृद्ध) अतिस्फूर्त्तिशाली। तत्पर्य्यायः। स्फेष्ठ २। इति जटाधरः ॥

अतिहसित, स्त्री, (अतिशयेन हसित हास्य हस् + भावे क्त।) अतिशयहास्य। इति जटाधर ॥ (ज्येष्ठाना स्मितहसिते मध्यानां विहसितावहसिते च। नीचानामपहसित तथातिहसितञ्च षड्भेदा ॥ "मधुरस्वर विहसित सांसशिर-कम्पनमवहसित। अपहसित सास्राक्ष विक्षिप्ताङ्ग भवत्यतिहसित" ॥ इति साहित्य-दर्पणे ॥)

अतिहासः, पुं, (अतिशयेन हास हासम् अति + हस् + भावे घञ्।) सशब्दहास। तत्पर्य्याय। अनुस्यूत २। इति हेमचन्द्र ॥

अतीत, त्रि, (अति + इण् + क्त) भूतकाल। तत्र तिस्रो घी टी ठी विभक्तयो भवन्ति। यथा भवद्भूतभव्ये त्रिश काद्या। काद्या क्तयस्तिख-स्तिख क्रमादर्त्तमानातीतभविष्यत्सु कालेषु स्यु। इति मुग्धबोधव्याकरण ॥ तस्य लक्षणादि यथा। वर्त्तमानध्वंसप्रतियोगित्वमतीतत्व। लङ्लुङोरतीतत्व। लिट्कृशोर्व्वृत्त परोक्षत्वं अतीतत्वञ्च। लुङोऽतीतत्व' क्रियातिक्रमश्च। कुतश्चिद्वैगुण्यात् क्रियानिष्पत्तिः क्रियातिक्रम। क्तक्तवतोरतीतत्व। इति सारमञ्जरी ॥

अतीत, त्रि, (अति इण् कर्त्तरि क्त।) गत। भूत। अतिक्रान्त। यथा,—
"न नस्यं न्यूनसप्ताब्दे नातीताशीतिवत्सरे"।
इति वैद्यकपरिभाषा ॥ सङ्गीतशास्त्रमते मान-प्रभेद ॥

अतीन्द्रिय, त्रि, (इन्द्रियमतिक्रान्तम् अत्यादीति समास।) अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्षाविषय। इन्द्रियागोचर। इन्द्रियाग्राह्यं। इत्यमर ॥
("योऽसावतीन्द्रियग्राह्य सूक्ष्मोऽव्यक्त सनातन"। इति मनु।
"अतीन्द्रियेष्वप्युपपन्नदर्शनो
बभूव भावेषु दिलीपनन्दन" ॥ इति रघुवंशे ॥)

अतीव, व्य, (अत्येव इव अवधारणे प्रादिसमास, अवद्दतातिशयेऽत्यन्तातिशये च।) अतिशय। इत्यमर ॥
("अहं हि कारणं श्रुत्वा वैरस्यातीवमानद" ॥ इति रामायणे ॥)

अतीसारः, पु, अतिसाररोग। इति वैद्यक ॥

अतुलः, पु, (नास्ति तुला सादृश्य यस्य स।) तिल-वृक्ष। इति शब्दचन्द्रिका। तुलनारहिते त्रि ॥
("राघवेन्द्रप्रभावेण श्रिया चातुलया तया" ॥ इति रामायणे ॥)

अतुल्यं, त्रि, (न तुल्य सदृशं नञ्समास।) निस्तुल्य। अनुपम। असाम्यं। असदृश। यथा,—
"अतुल्यमहसा साकं मम रामेण विग्रह"।
इति भट्टि ॥

अतुष्टिकर, त्रि, (तुष्टिं सन्तोषं करोति तुष्टि + कृ + कर्त्तरि टच् उपपदसमासः स्त्रियां ङीप् अतुष्टिकरी।) सन्तोषाजनकं। यथा मनुः,—
"अनिर्दशञ्च प्रेतान्नं अतुष्टिकरमेव च" ॥
इत्याह्निकतत्त्वं।

अतृप्ति, स्त्री, (तृप् + भावे क्तिन् न तृप्ति सन्तोष नञ्समास। बहुव्रीहौ तु तृप्तिरहित असन्तोषकर।) तृप्त्यभाव। अपरितुष्टि। अनभिलाष। यथा,—
"उत्पादितमप्रविश्यदहन कद्रस्वरितकारसा।
वर्षे पाण्डुविवर्जितं क्षपितता कर्म्माणि पित्तस्रवे"
इति रक्षित ॥ अतृप्ते त्रि ॥

अतेज, [स्] क्ली, (न तेज तेजोविरोधितम नञ्समास।) छाया इति राजनिर्घण्ट ॥ तेजोरहिते त्रि ॥

अत्क, पु, शरीरावयव। अङ्ग। इत्युणादिकोष ॥

अत्क', त्रि, (अतति सततमनित्यतया विकार गच्छति अत् + कन् अतति सततं गच्छति अत् + कन्) पथिक। पान्थ। इत्युणादिकोष ॥

अत्ट ङ अतिक्रमे। वधे। इति कविकल्पद्रुम ॥ दन्त्य-वर्गाद्योपध। ङ अतिट्टिते। इति दुर्गादास ॥

अत्ता, स्त्री, (अतति सततं स्नेहं संबध्नाति अत् + तक् स्त्रियां टाप्।) माता। ज्येष्ठा भगिनी। इत्यमरटीकायां रमानाथ ॥ अत्ता मातागजस्वसा। इति नानार्थकोष ॥ प्राकृतभाषायां श्वश्रू। इति साहित्यदर्पणटीका ॥

अत्ति, स्त्री, (अत्यते सततं कर्म्मणि सम्बध्यतेऽनया, अत् करणे क्तिन् माता च।) नाट्योक्तौ ज्येष्ठा भगिनी। इति शब्दरत्नावली।

अत्तिका, स्त्री, (अत्ति + स्वार्थे कन्) अन्तिका। नाट्योक्तौ ज्येष्ठा भगिनी। इति भरतः द्विरूप-कोषश्च।

अत्नु, पु, (अतति सततं गच्छति अत् + कर्त्तरि न वायु सततगन्ता पथिकः।) सूर्य्य। इत्युणादि-कोष ॥

अत्यः, पु, (अतति शीघ्रं गच्छति अत् + कर्त्तरि यत्, क्वचिदपवादविषयेऽप्युत्सर्गोऽप्यभिनिविशते इति न्यायात् अन्यथा हलन्तात् ण्यति आत्व इति स्यात् द्रुतगामी अश्व।) अश्व। वैदिकशब्दोऽय ॥

अत्यन्त, क्ली, (अन्त सीमामतिक्रान्तम् अत्यादीति समास।) अतिशय। यथा। अत्यन्त कठिनो तथापि हृदयामन्दाय वक्षोरुहौ। इति नरहरि-कवि ॥

अत्यन्तकोपन, त्रि, (अत्यन्त कोपन क्रोधशील द्वितीयातत्, कुप् + कर्त्तरि युच्।) अतिशय-क्रोधी। तत्पर्य्याय। चण्ड २। इत्यमर ॥

अत्यन्तगामी, [न्] त्रि, (अत्यन्तं शीघ्र गच्छति अत्यन्त + गम् + णिनि उपपदसमास।) अति-शयगमनशील। अतिशीघ्रगमनकर्त्ता। तत्पर्य्यायः। अत्यन्तिक २। इति हेमचन्द्र ॥

अत्यन्तः सुकुमार, पु, (अत्यन्त सुकुमार कर्म्म-धारय।) कङ्गुनीवृक्ष। इति राजनिर्घण्ट ॥

अत्यन्तिक, पु, (अत्यन्त गच्छति अत्यन्त + ठन् ठस्येक इति ठस्य इक अति सातिशयमन्तिक कर्म्मधारय, अतिनिकटम्।) अतिशयभ्रमणकर्त्ता। अत्यन्तगामी। इति हेमचन्द्र ॥

अत्यन्तीन, त्रि, (अन्तस्यात्यय अव्ययीभावसमास। अत्यन्त गामी द्वितीयातत्पुरुष। लक्ष्मीं परम्परीणा त्वमत्यन्तीनतामुनये इति भट्टि।) भृश-ङ्गामी। अतिशयगमनशीलः। इत्यमर ॥

अत्यम्ल, क्ली, (अत्यन्त अम्लोरस फलपत्रादौ यस्य स।) वृक्षाम्ल। इति राजनिर्घण्ट ॥ तेँतुल इति भाषा ॥

अत्यम्लपर्णी, स्त्री, (अत्यम्लं पर्णं पत्रं यस्या सा जातित्वात् ङीप्।) लताविशेष। तत्पर्य्याय। तीक्ष्णा २ कण्डुरा ३ वल्लिसूरणा ४ करवडवल्ली ५ वयस्था ६ अरण्यवासिनी ७। अस्य गुणा। तीक्ष्णाम्लत्व। शीतशूलविनाशित्व। वातहारित्व। अग्निरोचिकारित्व। गुल्मश्लेष्मरोगापहारित्वञ्च। इति राजनिर्घण्ट।

अत्यम्ला, स्त्री, (अत्यन्त अम्लरसो यस्या सा स्त्रियां टाप्) वनबीजपूरः। मधुरलेवु। मधुटावा इति ख्याता। इति रत्नमाला ॥

अत्यय, पु, (अति + इण् + भावे अच्।) मृत्यु। अतिक्रम। दण्ड। दोष। कृच्छ्र। इत्यमर ॥
("जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्तत।
आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥
इति मनुः ॥)

अत्यर्थं, क्ली, (अर्थमतिक्रान्त अत्यादीति समासः।) अतिशय। तद्विशिष्टे वाच्यलिङ्ग। इत्यमर ॥
("लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाच हितकाम्यया"।
इति रामायणे ॥)

अत्यल्प, त्रि, (अत्यन्तमल्प मनाक्।) यत्किञ्चित्। अतिसूक्ष्म। तत्पर्य्याय। अल्पिष्ठ २ अल्पीय ३ कणीयः ४ अणीय ५। इत्यमर ॥

अत्याकार', पुं, (अति आधिक्येन आकारः तिरस्कार। आ + कृ + भावे घञ्।) अतिशयित। आकारो देह कर्म्मधा। बृहद्देह। अतिशयित आकारो यस्य स तद्विशिष्ट।) न्यक्कार। तिरस्कार। इति हेमचन्द्र ॥

अत्याचार, क्ली, (आचारमतिक्रान्तं अत्यादीति समास।) विरुद्धाचरण। आचारमतिक्रम्य इत्य-व्ययीभावसमासनिष्पन्न ॥

अत्याचार, पुं, (अति अनुचित आचारः कर्म्मधा।) अनुचिताचार। असङ्गताचरण। आचारोल्लङ्घन। अन्याय ॥ (अति अनुचित आचार आचरण यस्य स अन्यायाचरणकारी।)

अत्याज्य, त्रि, (त्यक्तुं न शक्य अति त्यज् + शक्यार्थे ण्यत्, कुत्वाभावः।) त्यागानर्ह। अत्यक्तव्य। अत्य-जनीयं। यथा, यत्तु पतितस्त्रीगमनस्य लघुत्व प्रायश्चित्तविवेककृद्भिरुक्तं तदत्याज्यापरं। इति प्रायश्चित्ततत्त्व ॥

अत्याल, पु, (अति अत्याशयेन आ चतुर्दिक्षु अलति भूषति अति+आ+अल+कर्त्तरि अच्। लालचिता इतिभाषा) रक्तचित्रकवृक्ष। इति राजनिर्घण्ट॥

अत्याशा, स्त्री, (अतिशयेन आशा) अतिशयाशा। अत्यन्तस्पृहा। असम्भावनीयवाञ्छा। यथा,—
"अत्याशाभिरुपागताध्वगगणान् धन्यावनौ तापिताश्चोपयन्तर्पयितु ञ्चमोऽस्मि मम तद्दुःखैर्मनो दूयते"। इत्युद्भट॥

अत्याहारी [न्] त्रि, अतिपूर्व्वाङ्पूर्व्वहृधातोः कर्त्तरि णिन् प्रत्ययनिष्पन्न। अतिशयाहारकर्त्ता। बह्वाशी। अपरिमितभोजी॥

अत्याहित, क्ली, (अत्यन्तमाधीयते तन्निवारणाय चित्त निधीयतेऽत्र अति आ+धा+क्तोऽधिकरणे ह्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यश्च इति सूत्रेण क्त अधिकरणे) महाभीतिः। अतिशयभय। जीवानपेक्षि कर्म्म। जीवनाशारहितसाहसकर्म्म। इत्यमर॥ (अत्याहित किमपि राक्षसकर्म्म कुर्य्यात्। इति रामायण।)

अत्युक्ति, स्त्री, (अतिशयेन उक्ति कथनम् अति+वच्+भावे क्तिन्) आरोपितकथन। अतिशयोक्ति। असम्भवोक्तिः। अलङ्कारविशेष। यथा।
"अत्युक्तिरद्भुतातथ्यशौर्य्योदार्य्यादिवर्णन।
त्वयि दातरि राजेन्द्र याचका कल्पशाखिन"॥
इति चन्द्रालोक॥

अत्यूह, पु (अतिशयेन ऊहते स्वजनितकेकावर्णकण्ठ यथा तथा शब्दायते य अति+ऊह+कर्त्तरि अच्। अतिशयित ऊहस्तर्क प्रादीति समास, अतितर्कः) कालकण्ठ। दात्यूहपक्षी। इति मेदिनी॥ अतिशयवितर्कः॥ (अत्यूहा नीलिकाया स्त्री कलकण्ठखगे पुमान्॥ इति मेदिनी॥)

अत्यूहा, स्त्री, (अतिशयित ऊह पुष्पोत्कर्षेण तर्को यस्या सा स्त्रियाटाप्) नीलिका। शेफालिका। इति मेदिनी॥

अत्र, व्य, एतद्+सप्तम्यर्थे त्रल् एतदशब्दस्य अशादेश) एतस्मिन्। एखाने इति भाषा। एतच्छब्दस्य सप्तम्यास्त्रादेशे रूपोऽय॥ (अपि सन्निहितोऽत्र कुलपति॥ इति शाकुन्तले॥)

अत्रभवान्, [त्], त्रि, (एतद्+अन्येभ्योऽपीति प्रथमार्थे त्रल् अत्र अय भवान् कर्म्मधारय।) पूज्य। श्लाघ्य। मान्य। नाटकेऽस्य प्रचुरप्रयोग। इति हेमचन्द्र॥ (नूनमत्रभवत शराकृति सर्व्वथायमनुयाति सायक॥ इति भारवि॥)

अत्रि, पु, (अत्ति स्म एकगण्डूषेणैव सर्व्वमेव गङ्गाजल पीतवान् अद्+कर्त्तरि त्रिन् दस्य त।
"मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्य पुलह क्रतु।
ब्रह्मणो मानसा पुत्राः वशिष्ठश्चेति सप्त ते"॥
इति) सप्तर्षिमध्ये ऋषिविशेष। स च ब्रह्मणश्चक्षुषो जात। तस्य भार्य्या कर्दममुनिकन्या अनसूया। पुत्र दत्त १ दुर्व्वासा २ चन्द्रश्च ३। इति श्रीभागवत॥ (यथा मनु,—
"मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्य पुलह क्रतु।
प्रचेतस वशिष्ठञ्च भृगु नारदमेव च"॥)

अत्रिजात, पुं, (अत्रेर्जात उत्पन्नः पञ्चमीतत्पुरुष।) चन्द्रः। द्विजन्मा। यथा,—
"अत्रिजातस्य या मूर्त्ति शशिन सज्जनस्य च।
क्व सा चैवात्रिजातस्य तमसो दुर्ज्जनस्य च"॥
इति त्रिविक्रमभट्ट॥

अत्रिदृग्ज, पु, (अत्रे दृक् चक्षु षष्ठीतत्पुरुष तस्या जात अत्रि दृक्+जन्+ड उपपदसमास।) चन्द्रः। इति हेमचन्द्र॥

अत्रिनेत्रज, (पु,) चन्द्र। इति जटाधर॥

अत्रिनेत्रप्रसूत, पुं, (अत्रिनेत्रात् प्रसूत पञ्चमीतत्पुरुष) चन्द्र। इति हलायुध॥

अत्रिनेत्रभू, पु, (अत्रिनेत्रात् भवति य अत्रिनेत्र+भू+कर्त्तरि क्विप्) चन्द्र। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अत्रिभारद्वाजिका, स्त्री, अत्रिश्च भरद्वाजश्च द्वन्द्वः तयोः स्त्रीपुसयोर्म्मैथुनात् जाता अत्रि भरद्वाज+"द्वन्द्वाद्वुन् वैरमैथुनयोरिति" वुन् तस्य अक स्त्रियां टाप्) अत्रिभारद्वाजी विवाह। इति शब्दरत्नावली॥

अथ, व्य, (अर्थ+ड पृषोदरादित्वात् रस्य लोपः।) मङ्गल। अनन्तर। आरम्भ। प्रश्न। कार्त्स्न्य। इत्यमर॥ अधिकारः। सशय। विकल्प। समुच्चय। इति मेदिनी॥ (अथ तस्य विवाहकौतुक ललित बिभ्रत एव पार्थिव॥ इति रघुवशे॥)

अथकि (अर्थं पूर्व्वोक्त वाक्य कवते स्वीकरोति अर्थ+कु+डिम् पृषोदरादित्वात् वस्य लोपः। अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु इत्यमरः।) व्य, स्वीकार। इति शब्दरत्नावली॥

अथर्व्व [न्] क्ली, (अथ लोकमङ्गलाय अर्व्व्यते प्रस्तूयते यत् अथ+अर्व्व+कर्म्मणि अनिप् शकन्ध्वादित्वात् पररूपं। मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ इत्यमर) वेदविशेष। इति मेदिनी॥ तत्तु चतुर्थवेद नवशाखायुक्त। अस्य विवरण वेदशब्दे द्रष्टव्य॥

अथर्व्वण, पु, (अथर्व्व विद्यतेऽस्य न प्रत्यय।) शिव। इति त्रिकाण्डशेष॥

अथर्व्वणि, पु, (अथर्व्ववेद नयति ज्ञानविषय प्रापयति अथर्व्वन्+नी+कर्त्तरि क्विप्। पृषोदरादित्वात् ह्रस्व) अथर्व्ववेदज्ञब्राह्मण। पुरोहित। इति मेदिनी॥

अथर्व्वा [न्] पु, (अथ लोकमङ्गलाय अर्व्वति वेदविशेष प्रस्तौति अथ+अर्व्व+अनिप् शकन्ध्वादित्वात् पररूप) ब्राह्मण। इति मेदिनी॥ (कृतपदपङ्क्तिरथर्व्वणेव वेद॥ इति भारवि)॥

अथो, व्य, (अर्थ+डो पृषोदरादित्वात् रलोप) मङ्गल। आनन्तर्य्य। समुच्चय। प्रश्न। आरम्भ। कार्त्स्न्य। अधिकार। सशय। विकल्प। इति मेदिनी॥
("स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्म्म शौच सुभाषित।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्व्वत"॥
इति मनु॥)

अद इ बन्धे। (भ्वादि परस्मैपदी सेट् इदित्) कविकल्पद्रुम॥ इ अन्द्यते। इति दुर्गादास
अद ल औ भक्षणे (अनिट् परस्मैपदी अदादि
इति कविकल्पद्रुमः॥ ल अत्ति। औ क
गणकृतमनित्यमिति न्यायात् शप स्थितौ
तीत्यपीति वररुचि। इति दुर्गादास॥

अद [स्] त्रि, (न दस्यते अङ्गु इदन्तया अङ्गुलि
क्षिप्यते यत्र न+दस्+बाहुल्यात् क्विप्
लिङ्गत्वञ्च।) एतत्। पुरोवर्त्ति। एइ इति भा
पर। परोक्षभूत। इति मेदिनी। सेइ
भाषा।

अदत्त, त्रि, (न दत्तम् उत्कृष्ट नञ्समासः न
अप्राशस्त्ये यथा कारिकायां।
"तत् सादृश्यमभावश्च तदन्यत्व तदल्पता।
अप्राशस्त्य विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्त्तिता
इति।) अन्यायेन दत्त। यथा। यत् पुनर
येन दत्तं तददत्त। षोडशप्रकारमपि प्रत्याह
व्यमेव इत्यर्थादुक्त भवति। नारदेन च।
सप्तविध प्रोक्तमदत्त षोडशात्मकमिति प्रतिप
दत्तादत्तयोः स्वरूप विवृत।
"अदत्तन्तु भयक्रोधशोकवेगरुजान्वितै।
तथोत्कोचपरीहासव्यत्यासच्छलयोगतः॥
बालमूढास्वतन्त्रार्त्तमत्तोन्मत्तापवर्जित।
कर्त्ता ममेद कर्म्मेति प्रतिलाभेच्छया च यत्॥
अपात्रे पात्रमित्युक्ते कार्य्ये वा धर्म्मसंहिते।
यद्दत्त स्यादविज्ञानाददत्तमिति तत् स्मृतमि
अयमर्थः। भयेन बन्दिग्राहादिभ्यो दत्त। क्रोध
पुत्रादिवैरनिर्यातनायान्यस्मै दत्तं। पुत्रवियोग
दिनिमित्तशोकाविष्टेन दत्त। उत्कोचेन का
प्रतिबन्धनिरासार्थमधिकृतेभ्यो दत्तं। परिहा
नोपहासेन दत्त। एक स्वद्रव्यमन्यस्मै ददात्यन्यो
ऽपि तस्मै ददातीति दानव्यत्यास। छलयोग
शतदानमभिसन्धाय सहस्रमिति परिभाष
ददाति। बालेनाप्राप्तषोडशवर्षेण। मूढेन लोक
वेदानभिज्ञेन। अस्वतन्त्रेण पुत्रदासादिना
आर्त्तेन रोगाभिभूतेन मत्तेन मदनीयप्रमत्तेन
उन्मत्तेन वातिकाद्युन्मादयुक्तेन। अपवर्जित दत्तं
तथाय मदीयमिद कर्म्म करिष्यतीति प्रतिलाभे
च्छया दत्त। अचतुर्वेदाय चतुर्वेदोऽहमित्युक्तव
दत्त। यज्ञ करिष्यामीति धन लब्ध्वा द्यूताद
विनियुञ्जानाय दत्तमित्येव षोडशप्रकारमपि दत्त
मदत्तमित्युच्यते। प्रत्याहरणीयत्वात्। आर्त्त
दत्तस्यादत्तत्व धर्म्मकार्य्यव्यतिरिक्तविषय।
"सुस्थेनार्त्तेन वा दत्त श्रावित धर्म्मकारणात्।
अदत्त्वा तु मृते दाप्यस्तत्सुतो नात्र सशय"॥
इति कात्यायनस्मरणात्। यः पुन षोडशप्रकारमप्यदत्त गृह्णाति यश्चादेय प्रयच्छति। तयोर्दण्डो नारदेनोक्त।
"गृह्णात्यदत्त यो लोभात् यश्चादेय प्रयच्छति।
अदेयदायको दण्ड्यस्तथा दत्तप्रतीच्छकः"॥
इति मिताक्षरा॥ कन्यकाना त्वदत्तानां। इति कात्यायन॥

"नह्यदत्ता महीं पित्रा भरत शास्तुमिच्छति" इति रामायणे ।)

अदत्ता, स्त्री, (न दत्ता नोत्सृष्टा नञ्समासः, नञत्र निषेधार्थः ।) अविवाहिता । इति स्मृतिः ।

अदन, क्ली, (अद् भोजने भावे ल्युट् ।) भक्षणं । भोजनं । इति हेमचन्द्रः ॥
("इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनं ।
आत्मार्थञ्च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा" ॥
इति मनुः ।)

अदभ्र, त्रि, (दन्भ + रक् । दभ्रमल्पं नदभ्रं नञ्समासः ।) प्रचुरं । बहु । इत्यमरः ॥ (अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः ॥ इति किरातार्ज्जुनीयं ॥)

अदर्शन, क्ली, (दृश् दर्शने, भावे ल्युट्, नञ्समासः ।) दर्शनाभावः । (अदर्शनञ्च ते वीर भूयो मा तापयिष्यति ॥ इति रामायणे ।) असाक्षात् । दृष्ट्यगोचरः । तत्पर्य्यायः । विनाशः २ । इत्यमरः । (व्याकरणमते लोपः यथा ऋग्वेदप्रातिशाख्ये,— "विवृत्तिषु प्रत्ययादेरदर्शनम्" । इति ।)

अदल, पु, (न दल्यते भिद्यते यत्, न दल् + घञर्थे कन् ।) हिज्जलवृक्षः । इति शब्दचन्द्रिका ॥ दलरहिते त्रि ॥

अदला, स्त्री, (नास्ति दलं पत्रं यस्याः सा ।) घृतकुमारी इति शब्दचन्द्रिका ॥

अदाता, त्रि, (न दाता नञ्समासः । दा + तृच् ।) कृपणः । दानशक्तिरहितः । यथा,—
"अदाता पुरुषस्त्यागी स्वधनं त्यज्य गच्छति" ।
इति प्राचीनाः ॥
("कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन् पतिः ।
मृते भर्त्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता" ॥
इति मनुः ॥)

अदान्त, त्रि, (न दान्तः नञ्समासः ।) तपःक्लेशासहिष्णुः । अकृतवाह्येन्द्रियनिग्रहः । इति पुराणं ॥

अदिति, स्त्री, (दितिभिन्ना अदितिः । नञो दाञो डितिरिति शाकटायनोक्तेर्डितिप्रत्ययान्तो वा । अदनाददितिः वा ।) दक्षप्रजापतिकन्या । सा कश्यपपत्नी । देवमाता च । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ भूमिः । अखण्डः । इति शब्दरत्नावली ॥

अदितिनन्दन, पु, (अदितेर्नन्दनः पुत्रः, षष्ठीतत्पुरुषः ।) देवता । इत्यमरः ॥

अदृक्, [श्] त्रि, (नास्ति दृक् चक्षुर्यस्य सः ।) दृष्टिरहितः । अन्धः । इत्यमरः ॥

अदृश्यं, त्रि, (दृश् + कर्म्मणि क्यप् न दृश्यः, नञ्समासः ।) अदर्शनीयः । अद्रष्टव्यं । "यथा,— कन्याङ्गैरतिकोमला त्रिभुवनव्याप्याप्यदृश्या जनैः" । इत्युद्भटः ॥

अदृष्ट, क्ली, (न दृष्टं नञ्समासः ।) अग्निजलादिद्वारा जातं भयं । इत्यमरः ॥ जन्मान्तरीयसंस्कारः । भाग्यं । यथा । "अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात् करोति सुप्तिर्जनदर्शनातिथिं ॥ इति श्रीहर्षः ॥ तत्तु आत्मनोऽतीन्द्रियगुणः । इदं वासनाजन्यं । तत्त्वज्ञाननाश्यं । भोगनाश्यञ्च । धर्म्माधर्म्मभेदेन तत् द्विविधं । धर्म्मस्तु स्वर्गादिकारणं । गङ्गास्नानयागादिजन्यः । कर्म्मनाशाजलादिस्पर्शनाश्यश्च । अधर्म्मस्तु नरकादिकारणं । प्रायश्चित्तादिनाश्यश्च । इति भाषापरिच्छेदः ॥

अदृष्ट, त्रि, (न दृष्टः ।) अज्ञातदर्शनः । अवीक्षितः ।
"अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टे विच्छेदभीरुता" ।
इति रसतरङ्गिण्यां भानुदत्तः ॥

अदृष्टवान्, [त्] त्रि, (अदृष्टं भाग्यं विद्यतेऽस्य, अदृष्ट मतुप् ।) भाग्यवान् । कपालिया इति भाषा । (स्त्रियां ङीप् अदृष्टवती) ।

अदृष्टि, स्त्री, (न दृष्टिः नञ्समासः ।) प्रतिकूला दृष्टिः । कुत्सिता दृष्टिः । सरोषवक्रदृष्टिः । कुटिलचक्षुः । असौम्याक्षि । वक्रदृष्टियुक्तचक्षुः । इत्यमरः ॥

अदृष्टिका, स्त्री, (विरुद्धा दृष्टिः नञ्समासः । नञत्र विरोधार्थे, स्वार्थे कन् स्त्रियां टाप् ।) सरोषवक्रदृष्टिः । इति शब्दरत्नावली ॥

अदेवमातृक, पु, (देवो वृष्ट्यम्बु माता मातृतुल्यो यत्र सः, समासान्तः कः, ततो नञ्समासः ।) देवमातृकभिन्नदेशः । नदीमातृकदेशः । यथा । (विनन्वति क्षेमदेवमातृकाः ॥ इति भारविः ॥)

अद्म, पु, (अद्यते भुज्यते यत्, अद् कर्म्मणि मन् ।) घृतं । इति सिद्धान्तकौमुद्यामुणादिवृत्तिः ॥

अद्ट ङ अतिक्रमे वधे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ दन्त्यवर्गतृतीयोपधः । (अट्टितुं अतिक्रमितुमिच्छति—अद्ट् + सन् + लट् ते ।) ङ अट्टिटिषते । इति दुर्गादासः ॥

अद्ड, अभियोगे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ दन्त्यवर्गतृतीयोपधः । (अड्डितुं अभियोक्तुमिच्छति अद्ड् + सन् + लट् तिप् ।) अड्डिडिषति । क्विपि संयोगान्तलोपे अद् । अभियोगः समाधानं । अड्डति पक्षे विद्वान् । अभि समन्तात् योगोऽभियोग इति गोविन्दभट्टः ॥ इति दुर्गादासः ॥

अद्धा, व्य, (अत सततं गमनं ज्ञानं वा दधाति अत् + धा + क्विप् ।) यथार्थं । तत्पर्य्यायः । तत्त्वं २ अञ्जसा ३ । इत्यमरः ॥ (अद्धा श्रियं पालितसङ्गराय प्रत्यर्पयिष्यत्यनघां स साधुः ॥ इति रघुः ।)

अद्भुत, क्ली, अपूर्व्वं । तत्पर्य्यायः । विस्मयः २ आश्चर्य्यं ३ चित्रं ४ । तद्विशिष्टे वाच्यलिङ्गं । इत्यमरः ॥

अद्भुत, त्रि, (अततीति अत् + क्विप् आकस्मिकार्थमव्ययं तथा भाति-भा + डुतच् ।) आश्चर्य्यं । तत्पर्य्यायः । दृङ्ग २ । इति जटाधरः ॥ * ॥ अथाद्भुतं । अद्भुतसागरे आथर्व्वणाद्भुतवचनं । प्रकृतिविरुद्धमद्भुतमापदः प्राक् प्रबोधाय देवाः सृजन्तीति । तेन आपज्ज्ञानाय भूम्यादीनां पूर्व्वस्वभावप्रच्यवो देवकर्त्तृकोऽद्भुत इति ॥ एवञ्च बुधोदयपर्व्वग्रहणादीनां गणितागतत्वेन प्रकृतानामपि यदुत्पातत्वं तद्भाक्तं ।
तत्कारणञ्च गर्गसंहितावार्हस्पत्ययोः ॥
"अतिलोभादसत्याद्वा नास्तिक्याद्वाप्यधर्म्मतः ।
नरापचारान्नियतमुपसर्गः प्रवर्त्तते ॥
ततोऽपचारान्नियतमपवर्ज्जन्ति देवताः ।
ताः सृजन्त्यद्भुतांस्तांस्तु दिव्यनाभसभूमिजान् ॥
त एव त्रिविधा लोके उत्पाता देवनिर्म्मिताः ।
विचरन्ति विनाशाय रूपैः सम्बोधयन्ति च" ॥
तांश्च परं न दर्शयेदित्याह विष्णुः ॥ नोत्पातं दर्शयेदिति ॥ * ॥ तत्र वेलानक्षत्रमण्डलनिरूपणं । यथा दीपिकायां ॥
"प्राक्द्वित्रिचतुर्भागेषु द्युनिशोरङ्कितेषु सर्व्वेषु ।
अनिलाग्निशक्रवरुणा मण्डलपतयः शुभाशुभेषु ॥
वेलामण्डलं ॥ * ॥
"अर्य्यमादिचतुष्कचन्द्रतुरगादित्येषु वायुर्भवेत् ।
देवेज्याजविशाखयाम्ययुगले पित्रद्वये चानलः ॥
विश्वादित्रयधातृमैत्रयुगलेष्विन्द्रो भवेन्मण्डलः ।
सर्पामान्त्यमृगान्त्यमूलयुगलेशानेष्वपामीश्वरः ॥
पवनदहनौ नेष्टौ योगस्तयोरतिदुष्करः ।
सुरपवरुणौ शस्तौ योगस्तयोरतिशोभनः ॥
सवरुणमरुन्मिश्रः शक्रस्तथाग्निसमायुतः ।
फलविरहितः सेन्द्रो वायुस्तथाग्नियुतोऽम्बुपः ॥
यन्मण्डलेऽद्भुतं जातं शान्तिस्तद्देवताश्रया ।
तथा शान्तिद्वयं कार्य्यं मण्डलद्वयजाद्भुते" ॥ * ॥
विष्णुधर्म्मोत्तरे ।
"ग्रहर्क्षवैकृतं दिव्यमान्तरीक्षं निबोध मे ।
उल्कापातो दिशां दाहः परिवेशस्तथैव च ॥
गन्धर्व्वनगरञ्चैव वृष्टिश्च विकृता तथा ।
एवमादीनि लोकेऽस्मिन् नाभसानि विनिर्द्दिशेत् ॥
चरस्थिरभवं भौमं भूकम्पमपि भूमिजं ।
जलाशयानां वैकृत्यं भौमं तदपि कीर्त्तितं ॥
भौमञ्चाल्पफलं ज्ञेयं चिरेण परिपच्यते ।
नाभसं मध्यफलदं मध्यकालफलप्रदं ॥
दिव्यं तीव्रफलं ज्ञेयं शीघ्रकारि तथैव च ॥ * ॥
शीतोष्णता विपर्य्यासः सऋतूनां रिपुजं भयं ॥
पुष्पे फले च विकृते राज्ञो मृत्युं तथादिशेत् ।
अकालप्रभवा नार्य्यः कालातीताः प्रजास्तथा ॥
विकृताः प्रसवाश्चैव युग्मप्रसवनं तथा ।
हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा त्रयः ॥
पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः ।
विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्द्दिशेत् ॥ * ॥
प्रदोषे कुक्कुटारावो हेमन्ते चापि कोकिलाः ।
अर्कोदयेऽर्काभिमुखश्वारावो नृभयं दिशेत् ॥
उलूको वसते यत्र निपतेद्वा तथा गृहे ।
ज्ञेयो गृहपतेर्मृत्युर्धननाशस्तथैव च ॥
गृध्रः कङ्कः कपोतश्च उलूकः श्येन एव च ।
चिल्लश्च चर्म्मचिल्लश्च भासः पाण्डुर एव च ॥
गृहे यस्य पतन्त्येते गेहं तस्य विपद्यते ।
षण्मासान्मासतस्तथा वर्षान्मृत्युः स्याद्गृहमेधिनः ॥
पत्न्याः पुत्रस्य वा मृत्युर्द्रव्यञ्चापि विनश्यति ।
ब्राह्मणाय गृहं दत्त्वा दत्त्वा तन्मूल्यमेव वा ॥
गृहीयाद्यदि रोचेत शान्तिञ्चेमां प्रयोजयेत् ।
मांसास्थीनि समादाय श्मशानाद्गृध्रवायसाः ॥
श्वा सृगालोऽथ वा मध्ये पुरस्य प्रविशन्ति चेत् ।
विकिरन्ति गृहादौ च श्मशानं सा मही भवेत् ॥

नेय सन्धि नादितोय । इति नैषध ॥

अद्वैत, त्रि, ( द्विधाभेदमित प्राप्त । द्वित + स्वार्थे अण् न द्वैतः । द्वितीयरहितः ।) एकः । यथा,—
यदद्वैत ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनुभा । इति श्रीचैतन्यचरितामृत ॥

अद्वैत, पु, (द्विधाभेदमित प्राप्त ततीयातत्, प्रज्ञादित्वात् स्वार्थे अण् ततोभिन्न नञ्समास ।) द्वैतरहित विष्णु । यथा,—
"विष्णुमानन्दमद्वैत विज्ञान सर्व्वग प्रभु ।
प्रणमामि सदा भक्त्या चेतसा हृदयालय ॥"
इति गारुडे २३८ अध्याय ॥ • ॥ शिवावतारविशेष । यथा,—
"नित्यानन्दो भक्तरूपो व्रजे य श्रीहलायुध ।
भक्तावतार आचार्य्योऽद्वैतो य श्रीसदाशिव ॥"
तन्मित्रादिविवरण यथा,—
"महादेवस्य मित्र य कुबेरो गुह्यकेश्वर ।
कुबेरपण्डित सोऽद्य जनकोऽस्य विदावर ॥
पुरा कुबेर कैलासे सिध्यसाध्यनिषेविते ।
जजाप परम मन्त्र शैव श्रीशिववल्लभ ॥
ततो दयालुर्भगवान् वर वृणिवति सोऽब्रवीत् ।
तत कुबेरो वरयामास त्व मे सुतो भव ॥
प्रार्थितस्तेन देवेशो वरदेश सदाशिव ।
जन्मजन्मान्तरे पुत्त प्राप्स्यामि पुत्तता तव ॥
इति प्राप्य वर कष्ट कियन्त कालमास्थित ।
कार्य्यादीशवशात् सोऽद्वैतस्य जनकोऽभवत् ॥
योगमाया भगवती गृहिणी तस्य साम्प्रत ।
सीतारूपेणावतीर्णा श्रीनाम्नी तत्प्रकाशत ॥
तस्य पुत्त्रोऽच्युतानन्द कृष्णचैतन्यवल्लभ ।
श्रीमत्पण्डितगोस्वामिशिष्यप्रिय इति श्रुत ॥
स कार्त्तिकेय प्रागासीदिति जल्पन्ति केचन" ।
इति गौरगणोद्देशदीपिका ॥

अद्वैतवादी, [ न् ] त्रि, ( अद्वैत "चिदेव सत्य नान्यत् किञ्चिन" इति वदति, अद्वैत + वद् + णिनि उपपदसमास ।) एकब्रह्मवादी । तस्य मत यथा,—
ब्रह्मैव सत्य प्रपञ्चादिसिद्ध विश्व ब्रह्मणि आरोपित । यथा रज्जु रज्जुस्वरूपाज्ञानात् सर्पवत प्रतिभाति । तथा ब्रह्मस्वरूपाज्ञानात् विश्व वस्तुवत् प्रतिभाति प्रज्ञतिर्ज्ज्ञविश्वापि पर्य्यवसाने ब्रह्मैव ब्रह्मान्यत् सद्वस्तु नास्ति । अत्र प्रमाण शारीरिकसूत्रस्य शङ्कराचार्य्यकृतभाष्यतट्टीकाकल्पतरुभाषारत्नप्रभादि ॥

अध [ स् ] व्य, (अधरस्य अधादेश तत असिच् ।) तल । नीच । अधोभाग । यथा,—
"लोकानुपर्य्युपर्य्यास्तेऽधोऽधोऽध्यधि च माधव" ।
इति वोपदेव ॥ पाताल । योनि । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अधःपुष्पी, स्त्री, ( अध अधोमुख पुष्प यस्या । अधस् + पुष्प + ङीप् । ) गोजिह्वा । इति राजनिर्घण्ट ॥ तृणविशेष । हैठाञ्जली । चोरखड़िका । भाँटुइ इति भाषा । तत्पर्य्याय । अवाक्पुष्पी २ मङ्गल्या ३ अमरपुष्पिका ४ । इति रत्नमाला ॥

अधःक्षिप्त, त्रि, (अधः अधोभागे क्षिप्त पतित ।) अधस्त्यागवत् । इति जटाधरः ॥

अधम, त्रि, (अव पालने + अम, वस्य धादेश ।) न्यून । निन्दित । अपकृष्ट । तत्पर्य्याय । निकृष्ट २ प्रतिकृष्ट ३ अर्व्वा ४ रेफ ५ याप्य ६ अवम ७ कुत्सित ८ अवद्य ९ कुपूय १० खेट ११ गर्ह्य १२ अणक १३ । इत्यमर ॥ रेप १४ अरम १५ आणक १६ अरम १७ । इति तट्टीका ॥ (यथा "याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।" इति मेघदूते )॥

अधम, पु, (अव पालने + अम, वस्य धादेश ।) उपपतिभेद । तस्य लक्षण । मदनमात्मनः कृन्तत्वे कामक्रीडाविषये कार्य्याकार्य्यानभिज्ञत्वञ्च । इति रसमञ्जरी ॥

अधमभृतक, त्रि, (अधम + भृ + क्त + स्वार्थे कन् ।) (अधम । निकृष्ट । भृतक । भृत्य ।) अधम भृत्य । भारवाहक । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अधमर्ण, त्रि, ( अधम + ऋण ऋणविषये अवमाननीय देयविषये अधम निन्दित अवश्याप्तव्यत्वात् परनिपात । वा अधम ऋणमवमाननीयत्वेन विद्यते यस्य ।) ऋणग्रहीता । खातक । इत्यमर ॥ खातक इति भाषा ।
("अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदित ।
दापयेत् धनिकस्यार्थमधमर्णात् विभावित ॥
अपह्नवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य ससदि ।
अभियोक्ता दिशेद्देश्य करण वान्यदुद्दिशेत्" ॥
इति मनु ।)॥

अधमर्णिक, त्रि, ( अधममवसाददेयत्वेन निन्दित ऋण । तदेव दातव्य विद्यते यस्य । अधमर्ण + अत इनिठनाविति ठन् । तस्य इक ।) अधमर्ण । यथा,—
'गृहीतानुक्रमाद्दाप्यो धनिनामधमर्णिक ।
दत्त्वा तु ब्राह्मणायैव नृपतेस्तदनन्तर ॥"
इति मिताक्षरा ॥
( "ऐ चैरुपायैरर्थ स्व प्राप्नुयादुत्तमर्णिक ।
तैस्तैरुपायै सगृह्य दापयेदधमर्णिक" ॥
इति मनु ।)॥

अधमा, स्त्री, ( अधम + स्त्रिया टाप् ।) स्वीयान्तर्गतनायिकाभेद । अस्या लक्षण । हितकारिप्रियतमे अहितकारित्व । अस्या क्रिया अधमा । अस्या निष्कारणकोपत्वात् चण्डीति नाम । इति रसमञ्जरी ॥

अधमाङ्ग, क्ली, ( अधमम् अङ्ग कर्म्मधारय ।) पाद । चरण । इति शब्दचन्द्रिका ॥

अधर, क्ली पु, (न ध्रियते कामुकस्य धैर्य्य न तिष्ठति यत्र, न + धृ + असि सज्ञाया च प्रायेणेति अधिकरणे च ।) स्मरागार । रतिगृह । योनिरिति यावत् । इति शब्दरत्नावली त्रिकाण्डशेषस्य ॥

अधर, पु, (न ध्रियतेऽसौ धृ + अच् ततो नञ्समास ।) मुखावयवविशेष । नाबो ठोंट । इति भाषा । ओष्ठः । उपर ठोंट । इति भाषा । तयो पर्य्याय । रदनच्छद २ दशनवास ३ ।
परन्तु द्वयोरपि ओष्ठाधरपदेन ग्रहण । केचित्तु उत्तरमुद्दिश्य ओष्ठ अधरमुद्दिश्य अधर इति वदन्ति । ... उपरि ओष्ठ अधोऽधर । ... "पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा ।" ... यथा,—
"... ।
... ।
... ।
... ॥"
इति मार्कण्डेय ।

अधर, त्रि, (न धर नञ्समास ।) नीच । हीन । अपकृष्ट । इति मेदिनी ॥ वादी । इति हेमचन्द्र ॥ (यथा "... ।")॥

अधरत, व्य, [स्] (अधर + तसिल् प्रथमाद्यर्थे ।) अधस्तात् । अधोभाग । इत्यायुध ॥

अधरमधु, क्ली, (अधरस्य मधु पर्य्यायवत् ।) अधरामृत । अधररस । इति त्रिकाण्ड ।

अधरस्तात् व्य, अधरत । इति इलायुध ।

अधरस्तात्, व्य, (अधर + अस्ताति दिक्शब्देभ्य अधादेश ।) अधस्तात् । अधरात् । दिक्शब्दात् दिग्देशकालवाचि ... स्थाने तात् प्रत्ययोभवति । इति व्याकरण ।

अधरा, स्त्री, ( न धरा नञ्समास ।) अधोदिक् । इति व्याकरण ॥ नीचा । यथा । अधराधरयैव सा । इति नैषध ॥

अधरात्, व्य, अधरत । अधरेण । अधस्तात् । इत्यमरटीका ॥

अधरामृत, क्ली, ( अधरस्य अमृतम् ।) अधररस । यथा,—
"सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण
हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।
नो चेद्वय विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
ध्यानेन याम पदयो पदवीं सखे ते ।"
इति श्रीभागवते १० स्कन्धे २९ अध्याय ।

अधरीण, त्रि, ( अधर कृत तिरस्कृत अधर + ख तस्य ईन ।) धिक्कृत । तिरस्कृत । इति जटाधर ॥

अधरेण, व्य, (अधरे देशे अधरस्यां दिशि अधर + एनप् ।) अधोदिग्देशकाल । अधो दिक्देशकाले । इति व्याकरण ॥

अधरेद्यु, [ स् ] व्य, ( अधरे परे दिवसे अधर + एद्युस् ।) अधरदिवस । परदिन । इति शब्दरत्नावली ॥

अधर्म्म, पु, ( ध्रियतेऽनेन धृ + मनिन् ततो नञ्समास, नञत्र विरोधार्थ ।) धर्म्मविरोधी । स तु ब्रह्मणः पृष्ठाज्जात । इति श्रीभागवत । ...

अपराधः । श्रुतिस्मृतिविरुद्धाचारः । यथा,—
"अधर्म्मेणैधते राजन् ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥"
इति महाभारतम् ।
( "अधर्म्ममिदमत्यन्तं कथ भीष्मोऽनुमन्यते" ।
इति महाभारतं ॥)

अधर्म्मी, [ न् ] त्रि, ( अधर्म्मः पापं विद्यतेऽस्य ।) अधार्म्मिकः । अधर्म्मात्मा । अधर्म्मशब्दादस्त्यर्थे इन् ॥

अधश्चरः, पु, (अधश्चरति इति अधस् + चर + अच् ।) चौरः । इति हारावली ॥ अधोगामिनि त्रि ॥

अधश्चौरः, पु, ( अधः चौरः । अधस् + चुर + अच् + स्वार्थे अण् ) नीचचौरः । सिंदालचोर इति भाषा । इति केचित् ॥

अधस्तात् अ, ( अधर + अस्ताति ।) अधोभागः । इति हलायुधः ॥ (तस्याधस्तात् वयमपि रताः स्तेषु पर्य्यटनेषु । इति उत्तरचरिते ।) ( तथा "निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दाष्टप्रतीच्छकौ" ॥ इति मनु ।) पश्चाद्भागः । इत्यमरटीका ॥ रतिगृहं । भगं । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अधामार्गवः, पु, (न धीयतेऽसौ अधा. न + धा + क्विप्; तादृशं मार्गं वाति गच्छति । अधा + मार्ग + वा + क ।) (अपामार्गः । इति क्षीरस्वामी ।) धामार्गवश्च । इत्यमरटीकायां रायमुकुटः ॥

अधार्म्मिकः, त्रि, ( धर्म्मं चरति । धर्म्म + ठक् । न धार्म्मिकः ।) अधर्म्मी । अधर्म्मात्मा । पापी । तत्पर्य्यायः । अधार्म्मिक २ । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ यथा,—
"यस्तु पञ्च महायज्ञविहीनः स निराकृतः ।
अधार्म्मिकः स्यादनृतः अवकीर्णी च्युतव्रती" ॥
इति जटाधरः ॥ अतो नाधार्म्मिके वसेद्ग्रामे । इति कुल्लूकभट्टश्च ॥

अधि अ, (न धीयते धार्य्यते । नञ् + धा + कि ।) प्रादिविंशत्युपसर्गमध्ये उपसर्गविशेषः । अस्यार्थः । उपरिभागः । इति दुर्गादासः ॥ अधिकारः । ईश्वरः । इति मेदिनी ॥ अधिकः । यथा अधिमासः अधिको मासः इत्यर्थः । इति स्मृतिः ॥

अधिः, पु, आधिः । मनःपीड़ा । इत्यमरटीकायां भरतः ॥

अधिकं, क्ली, ( अधि + स्वार्थे कन् ।) काव्यालङ्कारभेदः । तस्य लक्षणं । अधिकं पृथुलाधारादाधेयाधिक्यवर्णनं । उदाहरणं यथा । ब्रह्माण्डानि जले यत्र तत्र मान्ति न ते गुणाः ॥ इति कुवलयानन्दे अप्पयदीक्षितः ॥

अधिकः, त्रि, (अध्यारूढ़ एव अधि + स्वार्थे कन् ।) अतिरिक्तः । अनेकः । इति हेमचन्द्रः । ( पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे । स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः । इति मनु ।)

अधिकरणं, क्ली, ( अधि + कृ + अधिकरणे ल्युट् ।) एकन्यायोपपादनं । इति हेमचन्द्रः ॥ अधिक्रियते अत्र । विषयादिपञ्चावयवविवेचनोपेतग्रन्थः । यथा,—
"विषयो विशयश्चैव पूर्व्वपक्षस्तथोत्तरः ।
निर्णयश्चेति पञ्चाङ्गं शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतं" ॥
विषयो विचारार्हवाक्यं । विशयोऽस्यायमर्थो न वेति संशयः । पूर्व्वपक्षः प्रकृतार्थविरोधितर्कोपन्यासः । उत्तरः सिद्धान्तानुकूलतर्कोपन्यासः । निर्णयो महावाक्यार्थतात्पर्य्यनिश्चयः । एवं क्रमेण विवेचनमत्राधिक्रियते इत्यधिकरणं । इति तिथ्यादितत्त्वं ॥ अधिक्रियतेऽर्थाद्विचारोऽस्मिन्ननेनेति वा अधिकरणं वेदविचारग्रन्थात्मिका मीमांसा । सा च द्विधा कर्म्ममीमांसा ब्रह्ममीमांसा चेति । कर्म्मकाण्डवेदविचारग्रन्थः कर्म्ममीमांसा जैमिनिप्रणीता सैव मीमांसात्वेन प्रसिद्धा पूर्व्वमीमांसा इत्युच्यते । ब्रह्मकाण्डवेदविचारग्रन्थश्च ब्रह्ममीमांसा वेदव्यासप्रणीता सा च वेदान्तत्वेन प्रसिद्धा उत्तरमीमांसा इत्युच्यते । इत्थञ्च मीमांसापदमपि करणाधिकरणव्युत्पत्त्या ग्रन्थपरं ज्ञेयं । भावव्युत्पत्त्या तु विचारपूर्व्वकनिर्णयपरमिति । यत्तु अधिक्रियते विचारोऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या अधिकरणं मीमांसासिद्धान्त इत्युदीच्येनाभिहितं तन्न । सिद्धान्तस्याधिकरणचरमावयवत्वेनाधिकरणाङ्गत्वात् अधिकरणत्वानुपपत्तेः । यथा न्यायमते निगमनस्य न्यायावयवत्वं न तन्मात्रस्य न्यायत्वं तथेहापीति सुधीभिर्भाव्यं । तस्य चाधिकरणस्य पञ्चाङ्गानि । तदुक्तं,—
"विषयोऽविषयश्चैव पूर्व्वपक्षस्तथोत्तरं ।
निर्णयश्चेति पञ्चाङ्गं शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतं" ॥
विषयो विचारार्हवाक्यं । यथा । खादिरे पशुं बध्नाति खादिरं वीर्य्यकामस्य यूपं कुर्व्वीत इत्यादि संयोगपृथक्त्वाधिकरणादेः । एवं विषयो निश्चयस्तद्भिन्नस्तद्विरोधी वा अविषयः संशयः । तदुक्तं,—
"विशब्दस्य विशेषार्थं सिनोतिर्बन्धनार्थकः ।
विशेषेण सिनोतीति विषयोऽर्थनियामकः" ॥
नियामकः कोटिनिश्चायकतया विशेषदर्शनात्मकव्याप्यवत्त्वादिनिश्चय एव । एवमेव न्यायगुरुन्यायवागीशभट्टाचार्य्यचरणाः ॥ अन्ये तु विशय इति विपूर्व्वस्य शेतेः संशयार्थकत्वमालोच्य तालव्यमध्यपाठं वदन्तः विशयः संशय इति व्याचक्षते तत्र विपूर्व्वशेतेः संशयार्थकत्वे मानमनुसन्धेयं । संशयः अस्यायमर्थो न वेत्याकारकः । पूर्व्वपक्षः सिद्धान्तविरुद्धतर्कोपन्यासेन सिद्धान्तविरुद्धसंशयैककोटिव्यवस्थापनं । उत्तरं प्रकृतसिद्धान्तानुकूलतर्कोपन्यासेन प्रकृतसिद्धान्तसिद्धसंशयापरकोटिव्यवस्थापनं । निर्णयः सिद्धान्तसिद्धविषयार्थवाक्यतात्पर्य्यावधारणं । कर्म्ममीमांसाधिकरणानि सहस्रसंख्यकानि जैमिनिप्रणीतानि शास्त्रदीपिकादौ पार्थसारथिमिश्रादिभिर्बहुधा विवृतानि । इति चन्द्रशेखरकृततत्त्वसम्बोधिनी ॥ * ॥ व्याकरणमते आधाररूपकारकं । तच्चतुर्व्विधं । सामीप्यं १ यथा गङ्गायां घोषः । कालिन्द्यां रेमे । आश्लेषः २ यथा दिवि देवाः । कानने रेमे । विषयः ३ यथा शास्त्रे निपुणः । केलौ कुशलः । व्याप्तिः ४ यथा तिलेषु तैलं । सकले स्थितः ॥ * ॥

अधिकर्द्धिः, त्रि, ( अधिका ऋद्धिः सम्पत्तिर्यस्य सः ।) अतिशयसम्पत्तियुक्तः । तत्पर्य्यायः । समृद्धः २ । इत्यमरः ॥

अधिकर्म्मिकः, पु, (अधिकृत्य हट्टं कर्म्मणि प्रभवति अधिकर्म्मन् + ठन् तस्य इकः) हट्टाध्यक्षः । इति हेमचन्द्रः ॥ हाटेर दारोगा इति भाषा ।

अधिकाङ्गं, क्ली, (अङ्गादधिकं मयूरव्यंसकादित्वात् समासः ।) सकञ्चुका मध्ये यद्बध्नन्ति तत् । कञ्चुकादिदार्ढ्यार्थं शूरैर्मध्यकाये निबध्यपट्टिकादि । तत्पर्य्यायः । सारसनः २ । इत्यमरः ॥ विंशत्यङ्गुल्याद्यतिरिक्ताङ्गविशिष्टे त्रि ॥ (यथा मनुः ।—
"नोद्वहेत् कपिलां कन्यां
नाधिकाङ्गीं न रोगिणीं" ॥ )

अधिकारः, पु, ( अधि + कृ + घञ् ।) राजादीनां चामरधूननच्छत्रधारणादिव्यापारः । तत्पर्य्यायः । प्रक्रिया २ । इत्यमरः ॥ प्रकरणं । यथा नैमित्तिकोऽयं प्रायश्चित्ताधिकारः इति मिताक्षरा ॥ स्वामित्वं । यथा "सर्व्वं स्युरधिकारिणः" इति स्मृतिः ॥ अधिकृतदेशादिः । यथा निजाधिकारः भिन्नाधिकारः इत्यादि बहुवः शिष्टप्रयोगाः ॥ (यथा मनुः ।—
"तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन्
ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित्" ॥)

अधिकारी, [ न् ] त्रि, (अधिकरोति अधि + कृ + नन्द्यादित्वात् णिनि ।) प्रभुः । स्वामी । अधिपतिः । अधिकारविशिष्टः । स्वत्ववान् । इति स्मृतिः ॥ यथा,—
"इष्टापूर्त्ते द्विजातीनां धर्म्मः सामान्य उच्यते ।
अधिकारी भवेत् शूद्रः पूर्त्ते धर्म्मे न वैदिके" ॥
इति मलमासतत्त्वं ॥ अपिच ।
"स्नातोऽधिकारी भवति दैवे पैत्रे च कर्म्मणि" ।
इत्याह्निकाचारतत्त्वं ॥ वेदान्तमते विधिवदधीतवेदाङ्गत्वेन आपाततोऽधिगताखिलवेदार्थोऽस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरःसरं नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्तनिर्म्मलस्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता । इति वेदान्तसारः ॥ * ॥ धनाधिकारिणो दायभागशब्दे द्रष्टव्याः ॥ * ॥ श्रीमूर्त्यादीनां वेशकर्त्ता । इति लोकप्रसिद्धं ॥

अधिकारी, [ न् ] पुं, (अधिकरोति अधि + कृ + नन्द्यादित्वात् णिनि ।) वेदान्तशास्त्रवेत्ता । अधिगताखिलवेदार्थनितान्तनिर्म्मलस्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता । इति वेदान्तसारः ॥ पुरुषः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अधिकृतः, पुं, (अधि + कृ + क्त ।) अध्यक्षः । आयव्ययावेक्षकः ॥ इत्यमरः ॥ (आचार इत्यधिकृतेन मया गृहीता या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः । इति शाकुन्तले ।) कृताधिकारद्रव्ये वाच्यलिङ्गः ।

अधिक्रमः, पु, ( अधि + क्रम् + घञ् वृद्ध्यभावः ।) आक्रमणं । इति हेमचन्द्रः ॥

अधित्यका, स्त्री, (अधिरूढा पर्व्वतोपरिभागम् अधि + त्यकन् स्त्रियां टाप्।) पर्व्वतोपरिभूमि। इत्यमरः॥ (उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिरूर्द्धमधित्यका॥ अमरकोष। यथा रघुवंशे,—"अधित्यकायामिव धातुमय्यां लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लं"॥)

अधिप, त्रि, (अधिपाति रक्षति अधि + पा + क।) अधिपतिः। स्वामी। इत्यमरः॥ राजा। इति त्रिकाण्डशेषः॥ (यथा रघुवंशे—अथ प्रजानामधिपः प्रभाते॥)

अधिपतिः, पु, (अधिपाति रक्षति अधि + पा + डति।) प्रभुः। स्वामी। इति हलायुधः॥ (यथा रघुवंशे। "वचो निशम्याधिपतिर्दिवौकसां"॥)

अधिभूः, पु, (अधि + भू + कर्त्तरि क्विप।) स्वामी। प्रभुः। इत्यमरः॥

अधिमासः, पु, (मासात् रविसंक्रान्तिमासादधिकः मयूरव्यंसकादित्वात् समासः।) रविसंक्रान्तिद्वयमध्यवर्त्तिचान्द्रमासः। रविसंक्रान्तिशून्यशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तमासः। तत्पर्य्यायः। अधिकमासः २ असंक्रान्तमासः ३ मलमासः ४ मलिम्लुचः ५ विनामकः ६ नपुंसकः ७। इति मलमासतत्त्वं॥

अधिमासकः, पु, (अधिकः मासः यत्र सः, समासान्तः कः।) दन्तरोगविशेषः। यथा,—

"दन्तरुक् पश्चिमे दन्ते
महान् शोथो महान् रुजः।
लालास्रावी कफकृतो
विज्ञेयः सोऽधिमासकः"॥

इति भावप्रकाशः॥ अस्य चिकित्सा दन्तरोगशब्दे द्रष्टव्या॥

अधिरथः, पु, (रथमधिरूढ़ः अत्यादीति समासः।) कर्णपिता। स तु सूतजातिः। तस्य कर्म्म सारथ्यं। यथा। विवेशाधिरथो रङ्गं यष्टिप्राणो ह्वयन्निव। इति महाभारतं॥ (यथा हरिवंशे।
"सत्यकर्म्मसुतस्यापि सूतस्त्वधिरथस्तु वै।
यः कर्णं प्रतिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतजः"॥)

अधिराज्यभाक्, पु, (अधिकं राज्यं कर्म्मधारयः, तत् भजते अधिराज्य + भज् + ण्वि उपपदसमासः।) अधिराट्। यथा। अत्यन्यान् पृथिवीपालान् पृथिव्यामधिराज्यभाक्। इति महाभारतं।

अधिराट्, [ज्] पु, (आधिक्येन राजते अधि + राज् + कर्त्तरि क्विप्।) सम्राट्। चक्रवर्त्ती। इति महाभारतं॥ (यथा रघुवंशे। इति प्रगल्भं पुरुषाधिराजो मृगाधिराजस्य वचो निशम्य।)

अधिरोहिणी, स्त्री, (अधिरोहं आरोहणं तदेव साधनत्वेन विद्यतेऽस्य अधि + रोह + इन् स्त्रियां ङीप्।) (अधिरोहणी इति पाठे अधिरुह्यते अनया अधि + रुह + करणे ल्युट् स्त्रियां ङीप्।) वंशकाष्ठादिनिर्म्मितारोहणमार्गः। सिँड़ि इति भाषा। तत्पर्य्यायः। निःश्रेणिः २। इत्यमरः॥ निःश्रेणी ३। इति तट्टीका॥ अधिरोहणी इत्यपि पाठः॥

अधिवचनं, क्ली, (अधि + वच् + ल्युट्। पक्षपातेन कथनं। "अधिकं वचनं पक्षपातेन वचनं" इति माधवाचार्य्यः।) नाम। संज्ञा। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अधिवासः, पु, (अधि + वस् + घञ्।) निवासः। धूपनादिभिः संस्कारः। इति मेदिनी॥ तद्द्रव्याणि। मृत्तिका १ गन्धः २ शिला ३ धान्यं ४ दूर्व्वा ५ पुष्पं ६ फलं ७ दधि ८ घृतं ९ स्वस्तिकं १० सिन्दूरं ११ शङ्खः १२ कज्जलं १३ रोचना १४ श्वेतसर्षपः १५ स्वर्णं १६ रौप्यं १७ ताम्रं १८ चामरं १९ दर्पणं २० दीपः २१ प्रशस्तपात्रं २२। इति भवदेवः॥ क्वचित् पुस्तके श्वेतसर्षपस्थाने सिद्धान्नं क्वचिच्च चामरस्थाने। तत्रानुष्ठानं। ✓दुर्गापूजादोलयात्रायागादौ पूर्व्वदिने सायंकाले आचारात् संस्कारकर्म्मणि तद्दिने पूर्व्वाह्णे मन्त्रं पठित्वा क्रमेणोक्तद्रव्याणि आदौ देवादीनां ललाटे पश्चाद्भूमौ स्पर्शयित्वा प्रशस्तपात्रे स्थापयित्वा तत्पात्रं पूर्व्वोक्तक्रमेण वारत्रयं स्पर्शयेत्। द्रव्यविशेषेण संस्कारः। तत्र यजुर्व्वेदोक्तमन्त्रास्त्रयोविंशतिद्रव्याणि च यथा। तैलहरिद्रां गृहीत्वा,—

'ॐ कोसि कतमोसि कस्मै त्वा काय त्वा सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन्। अनया तैलहरिद्रया अस्य शुभाधिवासनमस्तु। एवं सर्व्वत्र"। १।

गन्धं गृहीत्वा,—

"ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीं। ईश्वरीं सर्व्वभूतानां त्वामिहोपाह्वये श्रियं"।२।

महीं गृहीत्वा,—

"ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं माहिꣳसीः"। ३।

पुनर्गन्धेन गन्धद्वारामिति।

शिलां गृहीत्वा,—

"ॐ प्रपर्व्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिच इयाना ता आववृत्रन्नधरा गुदक्ता अहिं वुध्न्यमनुरीयमाणा। विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि"। ४।

धान्यं गृहीत्वा,—

"ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् धिनुहि यज्ञं धिनुहि यज्ञपतिं धिनुहि मां यज्ञन्यं"। ५।

दूर्व्वां गृहीत्वा,—

"ॐ काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषः परि। एवानो दूर्व्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च"। ६।

पुष्पं गृहीत्वा,—

"ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ अहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तं इष्णन्निषाण अमुं म इषाण सर्व्वलोकं म इषाण"। ७।

फलं गृहीत्वा,—

"ॐ या फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः"। ८।

दधि गृहीत्वा,—

"ॐ दधिक्राव्णोऽकार्षं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः सुरभिणो मुखाकरोत् प्रणआयूꣳषितारिषत्"। ९

घृतं गृहीत्वा,—

"ॐ तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि"।१०।

स्वस्तिकं गृहीत्वा,—

"ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु"। ११।

सिन्दूरं गृहीत्वा,—

"ॐ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः"। अत्र "वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः"। इत्यपि पठन्ति।१२।

शङ्खं गृहीत्वा,—

"ॐ प्रतिश्रुत्काया अर्त्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकꣳ शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमन्यतोऽरण्याय दावपं"।१३

कज्जलं गृहीत्वा,—

"ॐ समिद्धोऽञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः वाजीवहन् वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षिप्रियमासधस्थं"। १४।

रोचनां गृहीत्वा,—

"ॐ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः रोचन्ते रोचना दिवि"। १५।

सिद्धान्नं गृहीत्वा,—

"ॐ अन्नपतेऽन्नस्य नो धेह्यनमीवस्य शुष्मिणः प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे शं चतुष्पदे। सिद्धान्नमत्र आतपतण्डुलाः"। १६।

काञ्चनं गृहीत्वा,—

"ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम। १७।"

रजतं गृहीत्वा,—

"ॐ तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनं"। १८।

ताम्रं गृहीत्वा,—

"ॐ असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः ये चैनꣳ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशो वैषाꣳ हेड ईमहे"। १९।

सिद्धार्थं गृहीत्वा,—

"ॐ रक्षोहणो बलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणो बलगहनो वनयामि वैष्णवान् रक्षोहणो बलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान् रक्षोहणौ बलगहना उपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ बलगहनौ पर्य्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवास्थ"।२०।

दर्पणं गृहीत्वा,—

"ॐ आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्"। २१।

दीपं गृहीत्वा,—

"ॐ अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये निहोता सत्सु बर्हिषि" । २२ ।
सर्व्वद्रव्ययुक्तडस्तकं गृहीत्वा,—
"ॐ प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वा अनुपदसि अनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोसि तेजसे त्वा । २३ ।
इति यजुर्व्वेदीयदुर्गोत्सवपद्धति ॥ * ॥ सामवेदिनामधिवासमन्त्रास्तत्तद्द्रव्याणि च यथा । प्रथमं गन्धेन,—
"ॐ भद्रा इन्द्रस्य रातय योऽस्य काम विधतो नरोषति मनोदानाय चोदयन्" । १ ।
"ॐ महित्रीणामवरस्तु द्युक्षमित्रस्यार्यम्न दुराधर्षं वरुणस्य" । २ ।
इति मह्या ।
पुनर्गन्धेन,—
"ॐ भद्रा इन्द्रस्य रातय इत्यादि' । ३ ।
"ॐ वित्वदापो न पर्व्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवा तत्वागिर ।। सुष्टुतयो वाजयन्ता जिन्नगिर्व्ववाहो जिग्युरश्वा" । ४ ।
इति शिलया ।
"ॐ धानावन्त करम्भिण मपूप्यवन्तमुक्थिन इन्द्रप्रातर्जुषस्वन" । ५ ।
इति धान्येन ।
"ॐ जज्ञायथा मपूर्व्व मघवन् वृत्रहत्याय । तत्पृथिवी मप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम्" । ६ ।
इति दूर्व्वया ।
"ॐ पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्व्वाजसातम । दधत्स्तोत्रे सुवीर्य्यम्" । ७ ।
इति पुष्पेण ।
"ॐ इन्द्रन्नरोने मधिता हवन्ते यत्पार्य्या युञ्जते धियस्ताः शूरो नृषाता श्रवसश्च कामत्वा गोमति व्रजे भजात्वन्न" । ८ ।
इति फलेन ।
"ॐ दधिक्राव्नोऽकारिष जिष्णोरश्वस्य वाजिन सुरभिणो मुखाकरोत् प्रणतायुंषि तारिषत्" । ९ ।
इति दध्ना ।
"ॐ घृतवती भुवनानामधिश्रियोर्व्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा द्यावा पृथिवी वरुणस्य धर्म्मणा विष्कभितेऽजरे भूरिरेतसा" । १० ।
इति घृतेन ।
"ॐ अस्ति सोमोऽयं सुत पिबन्त्यस्य मरुत उतस्वराजोऽश्विना" । ११ ।
इति स्वस्तिकेन ।
"ॐ सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षण हिरण्यपावा पशुमप्सु गृभ्णते" । १२ ।
इति सिन्दूरेण ।
"ॐ स्वसन्वयो वसूना यो राया मानेता य इडाना सोमो य सुक्षितीना" । १३ ।
इति शङ्खेन ।
"ॐ अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतु रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते" । १४ ।
इति कज्जलेन ।
"ॐ आयन्त इव सूर्य्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रतिभागन्नदीधिम" । १५ ।
इति रोचनया ।
"ॐ प्रणीउषा अपूर्व्वा व्युत्सति प्रिया दिवस्तुषे वा मश्विना वृहत्" । १६ ।
इति सिद्धार्थेन ।
"ॐ सदसस्पतिमद्भुत प्रियमिन्द्रस्य काम्य । सनि मेधा मयासिषं" । १७ ।
इति काञ्चनेन ।
"ॐ यदर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्च्चो गवामुत । सत्यस्य ब्रह्मणो वर्च्चस्तेन मा सहृजामसि" । १८ ।
इति रौप्येण ।
"ॐ वन्महासि सूर्य्य वडादित्य महा असि महस्ते सतो महिमापनिष्ट समद्धा देवमहा असि" । १९ ॥
इति ताम्रेण ।
"ॐ मनज्योतिर्जुषतामाज्यस्य वृहस्पतिर्यज्ञमिम तनोत्वरिष्ट । यज्ञं समिम दधातु विश्वे देवा स इह मादयन्ता मो प्रतिष्ठ" । २० ।
इति दीपेन ।
"ॐ आदित्य प्रयतस्य वेत्तसो ज्योति पश्यन्ति वासर पावाय दिव्य तोदिवि" । २१ ।
इति दर्पणेन ।
"ॐ उद्यल्लोकानरोचय प्रभभूतमरोचय होइ इमान् लोकानरोचय होइ विश्वभूतमरोचय । होहा ऐवाम्र धर्म्मा ज्योतीषि" । २२ ।
इति प्रशस्तपात्रेण । प्रशस्तपात्र पूर्व्वोक्तसर्व्वद्रव्यस्थापितैकपात्रं । इति सामवेदीयदुर्गोत्सवपद्धति' ॥

अधिवासन, क्ली, (अधिवासयति स्थापयति देवता अनेन अधि + वस् + णिच् + करणे ल्युट् ।) अधिवास । गन्धमाल्यादिभि संस्कारकरणं । इत्यमर' ॥ (अनया तैलहरिद्रया अस्या शुभाधिवासनमस्तु ॥ इति दुर्गोत्सवपद्धति' ॥)

अधिविन्ना, स्त्री, (अधिविद्यते लभ्यतेऽसौ, अधि + विद् + कर्म्मणि क्त स्त्रियां टाप् ।) अध्यूढा । प्रथमविवाहिता स्त्री । कृतानेकविवाहस्वामिन आपेक्षिकप्रथमोढा भार्य्या । इत्यमरः ॥
("अधिविन्नस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिक सम" ॥
इति मनु ।)

अधिश्रयणी, स्त्री, (अधि श्रियते पच्यतेऽत्र अधि + श्रि + अधिकरणे ल्युट् स्त्रियां ङीप् ।) चुल्ली । इत्यमरः ॥ चुला इति भाषा ।

अधिष्ठानं, क्ली, ( अधिष्ठीयतेऽत्र अधि + स्था + अधिकरणे ल्युट् ।) नगर । चक्रं । प्रभाव । अध्यासन । अवस्थान । इत्यमर' ॥ (यथा रामायणे,—
"यद्भयात् सम्परित्यज्य स्वमधिष्ठानमृद्धिमत् ।
कैलास पर्व्वतश्रेष्ठमध्यास्ते नरवाहन" ॥)

अधिक्षिप्त', त्रि, (अधि + क्षिप् + कर्म्मणि क्त ।) प्रतिक्षिप्तः । इत्यमर' ॥ प्रेरित । इति भरतः ॥ प्रणिहित' । स्थापित' । कुत्सितः । भर्त्सित' । इति मेदिनी ॥

अधीत', त्रि, (अधि + इङ् + कर्म्मणि क्त ।) कृताध्ययन । पठित' । यथा,—
"अधीते शतसाहस्रमनन्त वेदपारगे" ।
इति स्मृति ॥ पठितशास्त्र । पाठे क्ली ॥

अधीति, स्त्री, (अधि + इङ् + भावे क्तिन् ।) अध्ययनं । पठन । इति जटाधर' ॥

अधीती, [ न् ] त्रि, ( अधीतमनेन अधीत + इन् ।) अध्ययनविशिष्ट' । कृताध्ययन । इति व्याकरणं ॥

अधीन, त्रि, (इन प्रभुमधिगत अत्यादीति समास ।) परवशः । तत्पर्य्याय । निघ्न २ आयत्त ३ अस्वच्छन्द ४ गृह्यक ५ । इत्यमर ॥ (यथा कुमारसम्भवे,—
"त्वदधीन खलु देहिना सुखं" ॥)

अधीर, त्रि, (न धीर स्थिर' नञ्समासः ।) चञ्चल । इति हलायुध ॥ कातर । इत्यमर ॥ (यथा नागानन्दे,—
"निर्व्याज विधुरेष्वधीर इति
मा येनाभिधत्ते भवान्" ॥)

अधीरा, स्त्री, (न धीरा क्षणस्थायिनी, नञ्समास ।) विद्युत् । इति हारावली ॥ मानावस्थाया मध्याप्रगल्भनायिकयोर्भेद' ॥ तस्या लक्षण । अव्यङ्गकोपप्रकाशकत्व । मध्याधीराया' परुषवाक् कोपप्रकाशिका ॥ प्रौढाधीरायास्तर्ज्जनताडनादिकं कोपप्रकाशं । सा द्विधा । ज्येष्ठा कनिष्ठा च । इति रसमञ्जरी ॥

अधीश, त्रि, (अधिक ईश कर्म्मधारयः ।) अधिपति । प्रभु । इति हलायुध ॥ (यथा पञ्चतन्त्रे,—
"चन्द्रे मण्डलसंस्थे विगृह्यते राहुणा दिनाधीशः ॥)

अधीश्वर, त्रि, (अधिक ईश्वर कर्म्मधारय ।) प्रणताशेषसामन्त । महाराज । चक्रवर्त्ती । इत्यमर ॥

अधुत, त्रि, अकम्पित । धुञ्कम्पे इत्यस्मात् कर्म्मणि क्त', पश्चान्नञ्समास । दीर्घमध्योऽपि ॥

अधुना, व्य, (अस्मिन् काले इदम्शब्दस्य रूपमिति निपातनात् ।) अस्मिन्काले । इदानीं । सम्प्रति । इत्यमर ॥

अधुनातन, त्रि, (अधुना भवम् अधुना + ट्यु तुट् च ।) इदानीन्तनं । वर्त्तमानकालवृत्ति । एतत्कालीनं । इति व्याकरणं ॥

अधृत, पु, (धृ क्त', न धृत नञ्समास' ।) विष्णुः । इति तस्य सहस्रनाममध्ये पठित । अकृतधारणवस्तुनि त्रि ॥

अधृष्ट, त्रि, ( धृष् + क्त', न धृष्टः नञ्समास' ।) सलज्ज । तत्पर्य्याय । अप्रगल्भ २ । इति शब्दरत्नावली ॥ शारद' ३ अप्रतिभ' ४ । इति जटाधर ॥ शालीन' ५ । इत्यमर' ॥

अधृष्य, त्रि, ( धृष् + कर्म्मणि क्यप् ।) प्रगल्भ' । अधर्षणीय । इति मेदिनी ॥ (यथा रघुवंशे,—
"भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविना ।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः" ॥)

अधृष्या, स्त्री, (न + धृष् + संज्ञायां क्यप् । यस्यां

स्थाने पराभवो न भवति तादृशी नदी।) नदीविशेषः। इति मेदिनी॥

अधैर्य्य, त्रि, (नास्ति धैर्य्यं यस्य सः।) धीरताशून्यः। धैर्य्याभावे क्ली। यथा,—

"धैर्य्याधैर्य्यपरिग्रहग्रहिलयोरेणीदृशोः प्रीतये"।

इति भानुभट्टः॥

अधोऽंशुक, क्ली, (अधः नीचदेशस्थम् अंशुकं वस्त्रं, कर्म्मधारयः।) परिधानवस्त्रं। इत्यमरः॥

अधोघण्टा, स्त्री, (अधः अधोदेशादारभ्य घण्टेव फलं यस्याः सा।) अपामार्गः। इति रत्नमाला॥

अधोजिह्विका, स्त्री, (अल्पा जिह्वा कन् स्त्रियां टाप्, अधः अधरा जिह्विका कर्म्मधारयः।) तालुमूलस्थक्षुद्रजिह्वा। इति हारावली॥ आलजिव इति भाषा।

अधोभुवन, क्ली, (अधः नीचदेशस्थं भुवनं लोकः कर्म्मधारयः।) पातालं। इत्यमरः॥

अधोमर्म्म, [न्] क्ली, (अधः अधरं मर्म छिद्रं।) गुह्यद्वारं। इति हेमचन्द्रः॥

अधोमुख, त्रि, (अधोमुखं यस्य सः।) अधोवदनः। पातालमुखः। तत्पर्य्यायः। अवाङ्मुखः २। इत्यमरः॥ अवाचीनः ३। इति जटाधरः॥ अधोमुखनक्षत्रगणो यथा—

"अश्लेषवह्नियमपित्र्यविशाखयुक्ता
पूर्व्वत्रयं शतभिषा च नवाप्युडूनि।
एतान्यधोमुखगणानि शुभानि नित्यं
विद्यार्थ्यभूमिखननेषु च शोभितानि"॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहः।

अधोमुखा, स्त्री, (अधोमुखं यस्याः सा, स्त्रियां टाप्।) गोजिह्वावृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥

अधोवायु, पु, (अधः अधरः वायुः कर्म्मधारयः।) अपानवायुः। यथा,—

"क्षुतेऽधोवायुगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत्"।

इति तन्त्रसारे योगिनीहृदयं॥

अधोक्षज, पु, (अधः आत्मलाभावात् हीनम् अक्षजं प्रत्यक्षज्ञानं यस्य सः। अक्षात् इन्द्रियात् जायते अक्ष+जन् ड, पञ्चमीतत्।) विष्णुः। इत्यमरः॥ (यथा महाभारते। अधो न क्षीयते जातु यस्मात्तस्मादधोक्षजः।)

अध्यग्नि, क्ली, (अग्नेः समीपे अव्ययीभावः।) विवाहकाले अग्निसमीपे स्त्रियै दत्तं धनादि। यथा,—

"विवाहकाले यत् स्त्रीभ्यो दीयते ह्यग्निसन्निधौ।
तदध्यग्निकृतं सद्भिः स्त्रीधनन्तु प्रकीर्त्तितं"॥

इति दायभागे कात्यायनः॥

अध्यण्डा, स्त्री, (अधिकमण्डं वीजं यस्याः सा, स्त्रियां टाप्।) कपिकच्छुः। इत्यमरः॥ आलकुशी इति भाषा। भूम्यामलकी। इति रत्नमाला॥

अध्ययन, क्ली, (अधि+इङ्+भावे ल्युट्।) गुरुमुखादानुपूर्व्वीश्रवणं। पठनं। ब्राह्मणस्य षट्कर्म्मान्तर्गतमिदं। इति शब्दरत्नावली॥

अध्यवसायः, पुं, (अधि+अव+सो+भावे घञ्।) उत्साहः। इत्यमरः॥ कर्म्मणि सकर्म्मकः प्रत्ययः। इति मधुः॥ कर्म्मणि दृढयत्नकारिको भावः। इति रमानाथः॥ कर्म्मणि प्रत्ययः इति नयनानन्दः॥ अशक्ये प्रत्नोद्यमः। इति केचित्॥ उद्योगोद्यमौ पात्रं। इति भरतः॥

अध्यशन, क्ली, (अधिकमशनं भोजनं कर्म्मधारयः।) अजीर्णे भोजनं। यथा। अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते। इति भावप्रकाशः॥

अध्यक्ष, पुं, (अध्यश्नोति समन्तात् व्याप्नोति अधि+अश्+अच्।) (कर्म्मधारयादि व्यवहारे अधिकृतः। ग्रामकः।) क्षीरिकावृक्षः। इति शब्दरत्नावली॥

अध्यक्ष, त्रि, (अक्षमिन्द्रियमधिगतः प्रादिसमासः।) प्रत्यक्षः। इन्द्रियजन्यज्ञानं।

(यदध्यक्षेण जगतां वयमारोपितास्त्वया।

इति कुमारसम्भवे।) अधिकृतः। व्याप्तव्ययादिनिरीक्षकः। इत्यमरः॥

अध्यापक, त्रि, (अधि+इङ्+णिच्+ण्वुल्।) अध्यापनकर्त्ता। पाठकः। अध्यापयिता। तत्पर्य्यायः। उपाध्यायः २। इत्यमरः॥

अध्यापन, क्ली, (अधि+इङ्+णिच्+भावे ल्युट्।) पाठनं। विद्यादानं। ब्राह्मणानां षट्कर्म्मान्तर्गतकर्म्मेदं। इति शब्दरत्नावली॥ (यथा मनुः,—

"अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्म्माण्यग्रजन्मनः"॥)

अध्याय, पु, (अधि+इङ्+भावे घञ् अध्ययनम्।) वेदपुराणादिपरिच्छेदः। ग्रन्थसन्धिः। तन्नामान्तराणि यथा। सर्गः। वर्गः। परिच्छेदः। उद्घातः। अङ्कः। संग्रहः। उच्छ्वासः। परिवर्त्तः। पटलः। काण्डं। स्थानं। प्रकरणं। पर्व्व। आह्निकं। इति त्रिकाण्डशेषः॥ स्कन्धः। स्तवकः। उल्लासः। पादः। उद्योतः। विरचनं। इत्यादयपि॥ यदुक्तम्।

("सर्गोवर्गपरिच्छेदोद्घाताध्यायाङ्कसंग्रहाः।
उच्छ्वासः परिवर्त्तश्च पटलः काण्डमेव च॥
स्थानं प्रकरणं चैव पर्व्वोल्लासाह्निकानि च।
पुराणादौ परिच्छेदा अनेके परिकीर्त्तिताः॥")

अध्यारूढ, त्रि, (अधि+आङ्+रुह्+क्त।) समारूढः। कृतारोहणः। अभ्यधिकः। अतिशयः। इति मेदिनी॥

अध्यारोप, पु, (अधि+आ+रुह्+णिच् भावे अच्) वस्तुन्यवस्त्वारोपः। सच्चिदानन्दानन्ताद्वयब्रह्मणि अज्ञानादिसकलजडसमूहस्यारोपणमित्यर्थः। असर्पभूतरज्जौ सर्पारोपवत्। इति वेदान्तसारः॥

अध्यावाहनिक, क्ली, (अध्यावाहनं पितृगृहात् स्वामिगृहागमनं तत्काले लब्धं अध्यावाहन+लब्धार्थे ठन् तस्य इकः। अधि+आ+वह्+णिच् ल्युट्।) स्त्रीधनविशेषः। यथा,—

"यत् पुनर्लभते नारी नीयमाना हि पैतृकात्।
अध्यावाहनिकं नाम तत् स्त्रीधनमुदाहृतं॥"

इति दायभागे कात्यायनः॥

अध्याहरण, क्ली, (अधि+आ+हृ+भावे ल्युट्।) अध्याहारः। तर्कणं। ऊहनं। इति शब्दरत्नावली॥

अध्याहार, पु, (अधि+आ+हृ+भावे घञ्।) तर्कः। ऊहः। इत्यमरः॥ अस्पष्टार्थस्य शब्दान्तरेण स्पष्टीकरणं। आकाङ्क्षासमापकपदानुसन्धानं। वाक्यसम्पूर्णार्थपदयोजनं। युक्तिप्राप्तपदान्तरमुदाहृत्य स्पष्टीकरणं। इति तट्टीका॥

अध्युष्ट, त्रि, (अधि+वस्+क्त, आगमशास्त्रविधेरनित्यत्वात् इडागमाभावः। कृताकृतसमासः अभिधाननियामकः इति प्रसिद्धेः।) सार्द्धत्रिसंख्या। ३॥ साडे तिन इति भाषा। यथा,—

अवाप्य सा भूमिं भुजगनिभमध्युष्ठवलय।

इति आनन्दलहर्य्यां॥

अध्युष्ट्र, पुं, (उष्ट्रमधिगतः प्रादिसमासः।) उष्ट्रयानकः। उष्ट्रवाह्यप्रेङ्खा। इति हारावली॥

अध्यूढ, पु, (अधि+वह्+क्त।) महेश्वरः। इति मेदिनी॥ (अधिरोपितः। समृद्धः। अभ्युदयशाली।)

अध्यूढ, त्रि, (आधिक्येन वृद्धिं गतः अधि+वह्+क्त।) अधिकवृद्धियुक्तः। समृद्धः। इति धरणी॥

अध्यूढा, स्त्री, (अधि+वह्+कर्म्मणि क्त, स्त्रियां टाप्।) प्रथमविवाहिता स्त्री, कृतसापत्निका। कृतानेकविवाहस्य प्रथमोढा स्त्री। इत्यमरमेदिनीकरौ॥

अध्येषणा, स्त्री, (अधि+इष्+णिच्+भावे युच्, स्त्रियां टाप्।) याच्ञा। इति हेमचन्द्रः॥ आराध्यस्यादरपूर्व्वकं कर्म्मणि नियुक्तकरणं। गुर्व्वादेः सत्कारपूर्व्वकं व्यापारे नियोजनं। तत्पर्य्यायः। सनिः २। इत्यमरः॥ सनी ३। इति तट्टीका॥

अध्वग, पु, (अध्वना पथा गच्छति अध्वन्+गम्+ड, उपपदसमासः।) पथिकः। इत्यमरः॥ उष्ट्रः। इति त्रिकाण्डशेषः॥ सूर्य्यः। इति हेमचन्द्रः॥ खेसरः। इति राजनिर्घण्टः॥ खचर इति भाषा।

अध्वगभोग्य, पु, (अध्वगेन पथिकेन भोग्यः, अनायासलभ्यफलत्वात्, तृतीयातत्पुरुषः।) आम्रातकवृक्षः। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अध्वगा, स्त्री, (अध्वन्+गम्+ड, उपपदसमासः। स्त्रियां टाप्।) गङ्गा। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अध्वजा, स्त्री, (अध्वनि जायते अध्वन्+जन्+ड, उपपदसमासः, स्त्रियां टाप्।) स्वर्णुलीवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥

अध्वनीन, त्रि, (अध्वनि साधुः अध्वन्+ख तस्य ईनः।) पथिकः। इत्यमरः॥

अध्वन्य, त्रि, (अध्वनि साधुः अध्वन्+यत्।) पथिकः। इत्यमरः॥ (अध्वन्येन विमुक्तकण्ठमखिलां रात्रिं तथा क्रन्दितं॥ इति अमरुशतकः॥)

अध्वर, पु, (अध्वानं सन्मार्गं राति ददाति अध्वन्+रा+क उपपदसमासः।) यज्ञः। वसुभेदः। सावधानः। इति मेदिनी॥ ("तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं"। इति रघुवंशे।)

अध्वरथ, पु, (अध्वैव रथो गमनसाधनं यस्य सः।) पथरथः। अध्वगमनोपयुक्तरथः। तत्पर्य्यायः। परियानिकः २। इति हेमचन्द्रः॥

अध्वर्य्युः, पु, (अध्वरं यज्ञं यौति सम्पादयति अध्वर + यु + कर्त्तरि क्विप्, पृषोदरादित्वात् नुम्भावः अस्याकारलोपः, होमकारी ऋत्विक् ।) यजुर्वेदवेत्ता। इत्यमरः ॥ (यथा कुमारसम्भवे,—
"विवाहयज्ञे विततेऽत्र यूय-
मध्वर्य्यवः पूर्व्वहृता मयेति" ।)

अध्वशल्य, पु, (अध्वनि पथि शल्यमिव आचरति सकण्टकतया अध्वशल्य + क्विप् ततोऽच् ।) अपामार्गः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अध्वा [न्] पुं, (अत्ति गमनेन बलं नाशयति, अद् + बाहुल्यात् क्वनिप्, पृषोदरादित्वात् दकारस्य धः ।) पन्थाः । कालः । संस्थानं । अवस्कन्दः । इति मेदिनी ॥ शास्त्रं । स्कन्धः । इति च पाठान्तरं ॥ अध्वगमनजन्यगुणः । मेदःकफस्थूलतासौकुमार्य्यनाशित्वं । इति राजवल्लभः ॥

अध्वान्तशात्रव, पु, (अध्वान्तस्य वर्त्मसीमायाः शात्रवः शत्रुवत्, षष्ठीतत्पुरुषः ।) श्योनाकवृक्षः ॥ इति शब्दचन्द्रिका ॥

अन ष लु प्राणने। जीवने। इति कविकल्पद्रुमः ॥ ष लु अनिति लोको जीवति इत्यर्थः । इति दुर्गादासः ॥

अन ङ य प्राणने। जीवने। इति कविकल्पद्रुमः ॥ य ङ अन्यते। इति दुर्गादासः ॥

अनंशुमत्फला, स्त्री, (न अंशुमत् मोचान्तर्व्वर्त्तितया सूर्य्यकिरणशून्यं फलं यस्याः सा।) अंशुमत्फला। कदली। इति जटाधरः ॥

अनः [स्] क्ली, (अनिति जीवत्यनेन जीविकोपायत्वात् अन् + असुन् ।) शकटं । इत्यमरः ॥ (यथा मनुः,—
"होता वापि हरेदश्वमुद्गाता चाप्यनः क्रये" ।)
अन्नं । इत्युणादिकोषः ॥ जननी । जन्म । जन्मी । इति कोषान्तरं ॥

अनक, त्रि, (अन् + अच् + कुत्सायां कन् ।) अणकः । अधमः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥

अनगार, पु, ( नास्ति अगारं गृहं यस्य सः, गृहस्थाश्रमशून्यः ।) ऋषिः । मुनिः । इति हेमचन्द्रः ॥ अगारशून्ये वाच्यलिङ्गः ॥

अनग्नि, पु, (नास्ति श्रौतः स्मार्त्तो वा अग्निर्यस्य सः ।) श्रौतस्मार्त्तकर्म्महीनः ॥ इति महाभारते दानधर्म्मः ॥ (अनाहिताग्निर्ब्राह्मणः । यथाह मनुः,
"अग्नीनात्मनि वैतानान् समारोप्य यथाविधि ।
अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः" ॥ )

अनघ, त्रि, (नास्ति अघं पापं यस्य सः ।) अपापः । निर्म्मलः । मनोज्ञः । इति मेदिनी ॥ ( यथा शाकुन्तले—
"अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं" ॥)

अनङ्गं, क्ली, (नास्ति अङ्गमवयवो यस्य तत् ।) आकाशं। मनः । इति मेदिनी ।

अनङ्गः, पु, (नास्ति अङ्गं कायो यस्य सः ।) कामदेवः । इत्यमरः ॥ ( यथा मेदिनी । "अनङ्गो मदनेऽनङ्गमाकाशमनसोरपि" ॥) अङ्गरहिते वाच्यलिङ्गः ॥

अनङ्गक, क्ली, ( नास्ति अङ्गमाकारो यस्य तत्, ततः स्वार्थे कः ।) चित्तं । मनः । इति शब्दरत्नावली ॥

अनङ्गासुहृत् [ द् ] पु, (अनङ्गस्य कामदेवस्य असुहृत् शत्रुः शिवललाटाग्निना तद्देहभस्मीकरणात् ।) शिवः । इति हेमचन्द्रः ॥

अनच्छ, त्रि, (न अच्छः निर्म्मलः ।) आविलः । अनिर्म्मलः । इत्यमरः ॥

अनञ्जनं, क्ली, ( नास्ति अञ्जनं स्वमूर्त्तिप्रकाशो यस्य तत्, निराकारत्वात्, अन् ञ्ज + भावे ल्युट् ।) आकाशं । इति शब्दचन्द्रिका ॥ अञ्जनशून्ये त्रि ॥ (यथा साहित्यदर्पणे,—
"नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः" ।)

अनडुज्जिह्वा, स्त्री, (अनडुहो वृषभस्य जिह्वेव जिह्वा पत्रं यस्याः सा स्त्रियां टाप् ।) गोजिह्वावृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अनडुही, स्त्री, (अनडुह् + गौरादित्वात् ङीष् पक्षे आम् ।) अनड्वाही। इति हेमचन्द्रः ॥ गाइ इति भाषा ।

अनड्वान्, [डुह्] पु, (अनडुह् + प्रथमैकवचनम् ।) वृषः । एँडे इति भाषा । तत्पर्य्यायः । गौः २ भद्रः ३ बलीवर्द्दः ४ दम्यः ५ दान्तः ६ स्थिरः ७ बली ८ उक्षा ९ ककुद्मान् १० ऋषभः ११ वृषभः १२ वृषः १३ धुर्य्यः १४ धुरीयः १५ धौरेयः १६ शाक्वरः १७ शिववाहनः १८ रोहिणीरमणः १९ वोढा २० गोनाथः २१ सौरभेयकः २२ । इति राजनिर्घण्टः ॥ ( यथा मनुः,—
"अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम्" ॥)

अनड्वाही, स्त्री, ( अनडुह् + गौरादित्वात् ङीष्, आमागमश्च आमभावपक्षे केवलं ङीष् ।) अनडुही । स्त्रीगवी । इति हेमचन्द्रः ॥ गाइ इति भाषा ।

अनद्यः, पुं, (अद् + कर्म्मणि ण्यत् सञ्ज्ञापूर्व्वकविधेरनित्यत्वात् वृद्ध्यभावः, न अद्यः अप्रशस्तखाद्यः, नञ्समासः, नञत्र अप्राशस्त्ये ।) गौरसर्षपः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अनधिगतः, त्रि, ( अधि + गम् + कर्म्मणि क्त, न अधिगतः ज्ञातः, नञ्समासः । गतभिन्नः प्राप्तभिन्नः ।) अनवगतः । यथा,—"अरे विद्वन्मन्याह्यनधिगतवेदार्थविभवा" । इति भगवद्वाक्यमिति प्रामाणिकाः ॥

अनध्यक्ष, त्रि, ( अक्षमिन्द्रियमधिगतः प्रादिसमासः, प्रत्यक्षः तद्भिन्नः नञ्समासः ।) अप्रत्यक्षः । इत्यमरटीकायां रमानाथः ॥ अध्यक्षभिन्नः ॥

अनन्त, क्ली, ( नास्ति अन्तः सीमा यस्य तत् ।) आकाशं । इत्यमरः ॥ अभ्रकं । इति राजनिर्घण्टः ॥

अनन्तः, पु, (नास्ति अन्तः विनाशो यस्य सः, तथाहि भागवते "लोके नष्टे द्विपरार्द्धावसाने भवानेकः शिष्यते शेषसञ्ज्ञः" ।) विष्णुः। इति मेदिनी ॥ बलदेवः । अनन्तजिन्नाम जिनः । इति हेमचन्द्रः ॥ शेषनागः । इत्यमरः ॥ वासुकिः । इति शब्दमाला ॥ सिन्दुवारवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अनन्तः, त्रि, (नास्ति अन्तः सीमा विनाशो वा यस्य सः ।) अन्तरहितः । अनवधिः । अशेषः । असीमः । इत्यमरो मेदिनी च ॥ (यथा कुमारसम्भवे ।—"अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य" ।)

अनन्तजित्, पु, (जयतीति जि + कर्त्तरि क्विप्, अनन्तो नाम जित् जयी बौद्धविशेषः शाकपार्थिवादित्वात् समासः मध्यपदलोपश्च ।) जिनानां चतुर्व्विंशत्यन्तर्गतचतुर्द्दशजिनः । तत्पर्य्यायः । अनन्तः २ । इति हेमचन्द्रः ॥

अनन्ततीर्थकृत्, पु, (अनन्तानि असङ्ख्यानि तीर्थानि शास्त्राणि कर्म्मधारयः, तानि कृतवान् अनन्ततीर्थ + कृ + क्विप्, उपपदसमासः ।) अनन्तजित् । इति हेमचन्द्रः ॥ (अनन्तजित् नाम जिनः ॥ )

अनन्तरं, त्रि, (नास्ति अन्तरमवकाशो यस्य तत् ।) अनवकाशं । अन्तररहितं । तत्पर्य्यायः ॥ अव्यवहितं २ संसक्तं ३ अपटान्तरं ४ । इति हेमचन्द्रः ॥ पश्चादर्थे क्ली ॥ (पश्चात् । ततः परं । यथा रघुवंशे,—"पितुरनन्तरमुत्तरकोशलान्" ॥)

अनन्तविजय, पु, (विजयतेऽनेन वि + जि + करणे अप्, ततोऽनन्तानामसङ्ख्यानां शत्रूणां शब्देन विजयः विजयसाधनम् षष्ठीतत्पुरुषः ।) युधिष्ठिरराजस्य शङ्खः । इति श्रीभगवद्गीता ॥

अनन्तवीर्य्यः पु, (अनन्तमसीमं वीर्य्यं तेजो यस्य सः ।) भाविकल्पे जिनानां चतुर्व्विंशत्यन्तर्गतत्रयोविंशतीर्थकरजिनः । इति हेमचन्द्रः ॥

अनन्तव्रत, त्रि, (अनन्तस्य तन्नामकदेवस्य व्रतं षष्ठीतत्पुरुषः ।) भाद्रशुक्लचतुर्द्दशीकर्त्तव्यमनन्तदेवस्य व्रतं। तद्विधिर्यथा । भविष्ये,—
"अनन्तव्रतमेतद्धि सर्व्वपापहरं शुभं ।
सर्व्वकामप्रदं नृणां स्त्रीणाञ्चैव युधिष्ठिर ॥
तथा शुक्लचतुर्द्दश्यां मासि भाद्रपदे भवेत् ।
तस्यानुष्ठानमात्रेण सर्व्वपापं प्रणश्यति" ॥ * ॥
व्रतारम्भप्रतिष्ठयोर्वर्ज्यकालमाह ज्योतिषे,—
"गुरोर्भृगोरस्तबाल्ये वार्द्धके सिंहगे गुरौ ।
वक्रिजीवाष्टविंशेऽह्नि गुर्व्वादित्ये दशाहिके ॥
पूर्व्वराशावनायातातिचारिगुरुवत्सरे ।
प्राग्राशिगन्तृजीवस्य चातिचारे त्रिपक्षके ॥
कम्पाद्यद्भुतसप्ताहे नीचस्थेज्ये मलिम्लुचे ।
भानुलङ्घितके मासि क्षये राहुयुते गुरौ ॥
पौषादिकचतुर्म्मासे चरणाङ्कितवर्षणे ।
एकेनाङ्का चैकदिने द्वितीयेन दिनत्रये ॥
तृतीयेन तु सप्ताहे माङ्गल्यानि शुभान्विताः ।
विद्यारम्भकर्णवेधौ चूडोपनयनोद्वहान् ॥
तीर्थस्नानमनावृत्तं तथानादिसुरेक्षणं ।
परीक्षारामयज्ञांश्च पुरश्चरणदीक्षणे ॥
व्रतारम्भप्रतिष्ठे च गृहारम्भप्रवेशने ।
प्रतिष्ठारम्भणे देवकूपादेर्व्वर्ज्जयन्ति हि ॥
द्वात्रिंशद्दिवसास्तान्ते जीवस्य भार्गवस्य च ।
द्वासप्ततिर्म्महत्यस्ते पादास्ते द्वादशक्रमात् ॥
अस्तात् प्राक् परयोः पक्षं गुरोर्वार्द्धकबालते ।
पक्षं वृद्धो महास्ते तु भृगुर्बालो दशाहिकं ॥
पादास्ते तु दशाहानि वृद्धोबालो दिनत्रयं" ॥ * ॥

"मध्याह्ने भोज्यवेलायां समुत्तीर्य्य सरित्तटे"।
ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससां ॥
चतुर्दश्यामर्च्चयन्तं भक्त्या देवं पृथक् पृथक्"।
इति भविष्योत्तरीयान्मध्याह्नव्यापिनी तिथि-र्ग्राह्येति वाच्यं। पूर्व्वाह्णो वै देवानामिति श्रुत्यादिभिः पूर्व्वाह्णे दैवकार्य्यविधानात्। विध्यसमभिव्याहृतार्थवादेन तद्बाधायोगात् किन्तु तस्यैव गौणकालबोधकं तत्। काममाधवीयेऽप्येवं। भविष्येऽपि पूजाविधायके मध्याह्ने नोक्तं। यथा,—

"कृत्वा दर्भमयानन्तं वारिधान्यां निवेश्य च।
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥
चतुर्द्दशफलैर्मूलैर्भक्ष्यैः कुसुमैरपि।
यवगोधूमशालीनां चूर्णैर्नैकतरस्य च ॥
कृत्वा पूपद्वयं तस्मै दद्यादेकं घृतान्वितं।
स्वयमेकन्तु भुञ्जीत करे बद्ध्वा सुडोरकं ॥
चतुर्दशग्रन्थियुक्तं कुङ्कुमेन विलेपितं।
सुविन्यस्तं विष्णुनामग्रन्थिग्रन्थिसमन्वितं।
चतुर्दशसूत्रमयं सूत्रं कार्पासमेव च" ॥ * ॥

पूजाडोरकबन्धनमन्त्रस्तु रत्नाकरे,—

"अनन्तसंसारमहासमुद्रे
मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव।
अनन्तरूपिन् विनियोजयस्व
अनन्तरूपाय नमो नमस्ते" ॥

इति मन्त्रमुक्त्वा।
"अनेन डोरकं बद्ध्वा भोक्तव्यं सुस्थमानसै"।
इत्यर्द्धं भविष्योत्तरीयं कालकौमुद्यां लिखितमिति ॥ * ॥ तथा,—

"पापोऽहं पापकर्म्माहं पापात्मा पापसम्भवः।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्व्वपापहरो भव ॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितं।
यत्तवाङ्घ्रियुगाब्जाग्रे मूर्द्धा मे भ्रमरायते" ॥

इत्याभ्यां नमस्कुर्य्यात्। अनन्तकथामप्यत्र शृण्वन्ति। इति तिथ्यादितत्त्वं ॥ * ॥ * ॥ अथ प्रयोगः। आचम्य स्वस्तिवाच्य सङ्कल्पं कुर्य्यात्,— "अद्य भाद्रे मासि शुक्ले पक्षे चतुर्द्दश्यां तिथावारभ्य अमुकगोत्रः श्रीअमुकः धनधान्यपुत्त्रपौत्त्राद्यनवच्छिन्नसन्ततिप्राप्तिकामः श्रीविष्णुप्रीतिकामो वा चतुर्द्दशवर्षपर्य्यन्तं भगवदनन्तभट्टारकपूजाचतुर्द्दशग्रन्थियुक्तडोरकमूलबन्धनकथाश्रवणब्राह्मणाय प्रदानकातपसिततण्डुलप्रस्थद्वयघटितपूपार्द्धापकल्पनतदर्द्धात्मकैकभोजनरूपमनन्तव्रतमहं करिष्ये" इति सङ्कल्प्य सूक्तं पठेत् ॥ * ॥ ततो गुण्डिकया अष्टदलपद्मं निर्म्माय तन्मध्ये घटमारोप्य शालग्रामं वा चतुर्दिक्षु ध्वजं निवेश्य यथोक्तविधिना गणेशनवग्रहदिक्पालशिवदुर्गालक्ष्मीनारायणपूजां कृत्वा शक्रं ध्यायेत्,—"ॐ महेन्द्रं मत्तैरावतस्कन्धस्थं सहस्रनयनोज्ज्वलं। मणिकाञ्चनघटितनानालङ्कारभूषितं वज्रहस्तं शच्यन्वितं देवगन्धर्व्वगणैर्वृतं मुनिगणैः स्तूयमानं" ॥ एवं ध्यात्वा महेन्द्राय नमः एवं क्रमेण सम्पूज्य प्रणमेत्,—

"ॐ शक्रः सुरपतिश्चैव वज्रहस्तो महाबलः।
ऐरावतगजारूढ़ सहस्राक्षो नमोऽस्तु ते" ॥

ततो हस्तमात्रे जलं संस्थाप्य पुष्पं दत्त्वा समुद्रमावाहयेत्,—
ॐ गङ्गेचेत्यादिनावाह्य समुद्रं पूजयेत् ॥ * ॥
ततो भूतशुद्ध्यादिप्राणायामान्तं कृत्वा अनन्तं ध्यायेत्,—

"ॐ दिव्यसिंहासनासीनं देवेशं गरुडध्वजं।
शुक्लवर्णं चतुर्बाहुं नागयज्ञोपवीतिनं ॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं विभुं।
श्रिया वाण्या च सश्लिष्टं किरीटादिसमुज्ज्वलं ॥
फणाशतसमायुक्तं जगन्नाथं जगद्गुरुं।
अनन्तं चिन्तयेद्देवं नारदाद्यैरभिष्टुतं" ॥

एवं ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य अर्घ्यं संस्थाप्य।
ओं हृदयाय नमः एवं षडङ्गानि विन्यस्य पुनर्ध्यात्वावाहयेत्।

"ॐ आगच्छानन्त देवेश पत्नीभ्यां वाहनान्वित।
गन्धर्व्वादिगणोपेत सान्निध्यमिह कल्पय" ॥

ततः पूजयेत्।
पाद्यं गृहीत्वा,—
"ॐ पाद्यं गृहाण देवेश सुरासुरमनोहर।
तुष्टो मे भव देवेश नरसिंह नमोऽस्तु ते" ॥
अर्घ्यं गृहीत्वा,—
"अर्घ्यं गृहाण देवेश सुगन्धिकुसुमान्वितं।
दूर्व्वाक्षतसमायुक्तं नमस्ते विश्वमूर्त्तये" ॥
आचमनीयं गृहीत्वा,—
"ॐ इदमाचमनीयन्ते दिव्यतोयोद्भवं प्रभो।
भक्त्या दत्तं मयानन्त नमस्ते पन्नगाधिप" ॥
एवं मधुपर्कं पुनराचमनीयं स्नानीयं वस्त्रयुग्मञ्च दद्यात् ॥ * ॥
गन्धं,—
"ॐ गन्धोऽयं देवदेवेश कुङ्कुमागुरुसम्भवः।
यथाशक्त्या मया दत्तो देवेश प्रतिगृह्यतां" ॥
पुष्पं,—
"ॐ पुष्पं गृहाण भोऽनन्त सुगन्धिद्रव्यमुत्तमं।
पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुशलं कुरु सर्व्वदा" ॥
धूपं,—
"ॐ धूपोऽयं ते महाभाग दशाङ्गोऽगुरुणा सह।
मया दत्तः प्रभो विष्णो गृह्यतां सुरनायक" ॥
दीपं,—
"ॐ दीपं गृहाण भोऽनन्त जाज्वल्यमानमद्भुतं।
त्वं गृहाण सदा देव रक्ष मां घोरसागरात्" ॥
यज्ञोपवीतं,—
"ॐ ऋग्यजुःसाममन्त्रेण त्रिवृत्तं पद्मयोनिना।
सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तमुपवीतं तवानघ" ॥
नैवेद्यं,—
"ॐ नानाभक्ष्यसमायुक्तं चतुर्द्दशफलैर्युतं।
भक्त्या सम्पादितं देव सपूपं गृह्यतां विभो" ॥*॥
ततो बलभद्रं सम्पूज्य स्तुतिं कुर्य्यात्,—
"ॐ बलभद्र महाभाग हलिन् लाङ्गलायुध।
कादम्बरीमदोन्मत्त नमामि बलदेवकं" ॥

ततः आवरणदेवताः पूजयेत्।
ॐ गणेशाय नमः। एवं लोकपालेभ्यः। नवग्रहेभ्यः। अष्टवसुभ्यः। एकादशरुद्रेभ्यः। द्वादशादित्येभ्यः। अनन्तादिनागेभ्यः। मत्स्यादिदशावतारेभ्यः। मासेभ्यः। ऋतुभ्यः। वत्सरेभ्यः। धर्म्माय। अधर्म्माय। ज्ञानाय। अज्ञानाय। वैराग्याय। अवैराग्याय। ऐश्वर्य्याय। अनैश्वर्य्याय। शिवाय। दुर्गायै। पृथिव्यै। गङ्गायै। यमुनायै। महालक्ष्म्यै। सरस्वत्यै। गरुडाय। शङ्खाय। चक्राय। गदायै। पद्माय। कौस्तुभाय। सूर्य्यमण्डलाय। सोममण्डलाय। वह्निमण्डलाय। वायुमण्डलाय। सर्व्वेभ्यो देवेभ्यः। सर्व्वाभ्यो देवीभ्यः ॥ * ॥
ततः स्तुतिं पठेत्,—

"ॐ अनन्तसंसारमहासमुद्रे
मग्नं समभ्युद्धर वासुदेव।
अनन्तरूपिन् विनियोजयस्व
अनन्तरूपाय नमो नमस्ते ॥
नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये
सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते
सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥
हृदिस्थं सर्व्वदेवानां इन्द्रियाणां गुणाधिपं।
सर्व्वपापहरं देवं प्रणमामि जनार्द्दनं ॥
अनन्तरूपेण बिभर्षि पृथ्वीं
अनन्तलक्ष्मीं विदधासि तुष्टः।
अनन्तभोगान् प्रददासि तुष्ट
अनन्तमोक्षं पुरुषे प्रहृष्टः ॥
प्रणमामि हृषीकेशं वासुदेवं जगद्गुरुं।
सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्त्तारं प्रणमाम्यहं ॥
राक्षसानामरिं नौमि नौमि दैत्यविमर्द्दकं।
जगतां हितकर्त्तारं नौमि पद्मरुहेक्षणं ॥
जन्मजन्मकृतं यच्च बाल्ययौवनवार्द्धके।
वृद्धिमाप्नोतु तत् पुण्यं पापं हर हलायुध ॥
भक्तिहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं यदर्च्चितं।
यथोद्दिष्टामिमां पूजां परिपूर्णां कुरुष्व मे ॥
पापोऽहं पापकर्म्माहं पापात्मा पापसम्भवः।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष हरे संसारसागरात्" ॥

ततो घटस्थजलेन सम्प्रोक्ष्य करमूले डोरकं समर्पयेत्।
"ॐ इदं डोरमनन्ताख्यं चतुर्दशगुणात्मकं।
सर्व्वदेवमयं विष्णो स्वकरे धारयाम्यहं" ॥
ततो भोज्यमुत्सृजेत् ॥ * ॥
ततः कथां शृणुयात्।
यथा,—

अरण्यवासमुषितो युधिष्ठिरस्तपो वशी।
प्राप्तस्त्रैलोक्यनाथेन कृष्णेन परमात्मना ॥
कथोपकथनं जातं तयोश्च प्रियाप्रियं।
विशेषेण च गोविन्दं पप्रच्छ च युधिष्ठिरः ॥*॥

युधिष्ठिर उवाच।
केन व्रतेन देवेश वाञ्छितं प्राप्यते फलं।
निष्पापाः सकला लोकाः भवन्ति जन्मजन्मनि ॥*॥

श्रीकृष्ण उवाच।

अस्ति व्रतमनन्ताख्यं यत्कृतं सुरसद्मनि ।
इन्द्राद्यैर्लोकपालैश्च तन्मे कथयत शृणु ॥
शुक्लपक्षे चतुर्द्दश्यां मासि भाद्रपदे तथा ।
तस्यानुष्ठानमात्रेण सर्व्वपापं प्रणश्यति ॥ * ॥
युधिष्ठिर उवाच ।
कृष्ण कोऽयं त्वयाख्यातो योऽनन्त इति सञ्ज्ञित ।
कोऽयं शेषश्च नागश्च अनन्तस्तक्षक स्मृत ॥
परमात्मोत्तम वापि उताहो ब्रह्म उच्यते ।
क एषोऽनन्तसंज्ञो वै तन्मे ब्रूहि जनार्द्दन ॥ * ॥
श्रीकृष्ण उवाच ।
अनन्त इत्यहं पार्थ मम रूप निबोध तत् ।
आदित्यगतिरूपेण य काल उपपद्यते ॥
कलाकाष्ठामुहूर्त्तादिदिनरात्रिव्यवस्थया ।
पक्षो मास ऋतुर्व्वर्षं युगकल्पव्यवस्थया ॥
सोऽहं कालोऽवतीर्णोऽस्मि भुवो भारावतारणात् ।
दानवाना विनाशाय वसुदेवतनूद्भव ॥
अनन्त विद्धि मा पार्थ कृष्ण विष्णुं हरि शिव ।
ब्रह्माणं भास्कर शेष सर्व्वव्यापिनमीश्वर ॥
प्रत्ययार्थं मया पार्थ विश्वरूप निबोध तत् ।
पूर्व्वमेव महाबाहो योगिध्येयमनुत्तम ॥ * ॥
युधिष्ठिर उवाच ।
अनन्तव्रतमाहात्म्यं विधि विधिविदा वर ।
कि पुण्य कि फल तस्य अनुष्ठानञ्च तस्य कि ॥
केन वा तत्कृत पूर्व्वं लोके केन प्रकाशित ।
तत्सर्व्वं बहु विस्तार्य्य ब्रूहि नारायण प्रभो ॥ * ॥
श्रीकृष्ण उवाच ।
आसीत्पुरा कृतयुगे सुमन्तुर्नाम वै द्विज ।
वशिष्ठगोत्रजो विद्वान् शीलवान् विजितेन्द्रिय ॥
पत्नी तस्याभवद्दीक्षा सती सत्यव्रते स्थिता ।
चारित्रशीलसम्पन्ना सुरूपा भृगुवंशजा ॥
तस्या कालेन सञ्जाता दुहिता सर्व्वलक्षणा ।
शीला नाम्ना सुशीला सा वर्द्धते पितृवेश्मनि ॥
माता तस्यास्तु कालेन ज्वरदाहप्रपीडिता ।
समागत्य नदीतोये मृता स्वर्गपुर ययौ ॥
कृत सुमन्तुना तस्या कर्म्म यत् पारलौकिक ।
तत सुमन्तु सत्यज्य दुःखशोक क्रमात् पुन ।
नापत्नीको गृही धर्म्मं कर्त्तुमर्हति वै क्वचित् ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा विवाहोत्सुकमानस ॥
देवलस्य मुने कन्या कर्कशा परिणीतवान् ।
सा कर्कशातिदुःशीला सदा निष्ठुरभाषिणी ॥
कोपना प्रतिकूला च निर्लज्जा कलहप्रिया ।
अदक्षा गृहकृत्येषु दक्षा भोजनकर्म्मणि ॥
कलहेन तु सन्तुष्टा रुष्टा बन्धुजनान् प्रति ।
सा तु शीला पितुर्गेहे वर्द्धिता च दिने दिने ॥
करोति सखिभि सार्द्धं शिशुक्रीडामनुत्तमा ।
गृहान्तरस्थद्वारदेहलीतोरणादिषु ॥
चतुरङ्गकवर्णैश्च रक्तपीतसितासिते ।
स्वस्तिक पद्मशङ्खौ च मण्डयन्ती पुन पुन ॥
कुर्व्वन्ती प्रत्यह बाला देवतातिथिपूजन ।
गृहकृत्ये सदा दक्षा पितुरत्यन्तवल्लभा ॥
कालेन कियता विप्रस्तां दृष्ट्वा यौवनोद्गतां ।
कस्मै देया मया कन्या इति चिन्तान्वितोऽभवत् ॥

ततो देववशात्तत्र कौण्डिन्य समुपागत ।
मुनिश्रेष्ठो महाभागः कुलीनो धर्म्मतत्पर ॥
मनसा चिन्तयामास सुमन्तु सुतपा सुधीः ।
अस्मै भाग्यवशाच्छीला प्रतिपाद्या प्रयत्नत ॥
इति कृत्वा मति विप्रो ददौ कन्या शुभे दिने ।
कन्यामलङ्कृता साध्वीं शीलां चन्द्रनिभाननां ॥
गृह्योक्तवेदविधिना विवाहमकरोत्तदा ।
ततो होमादिकं कर्म्म समाप्य समये मुनि ॥
सुमन्तु कर्कशा प्राह जामात्रे देहि दक्षिणा ।
सफल कुरु मे दान प्रिये मुनिकुलोद्भवे ॥
दक्षिणारहितं कर्म्म निष्फल जायते यतः ।
सा तु तद्वचनं श्रुत्वा कर्कशा कुपिताभवत् ॥
सुमन्तुं भर्त्सयामास कर्कशैर्व्वचनै पति ।
अलङ्कारं समानीय स्वकीयञ्चापि बन्धनं ॥
निक्षिप्य निभृते स्थाने कर्कशान्यगृह ययौ ।
सुमन्तुश्चातिदीनात्मा लज्जितश्चाभवत्तदा ॥
यत्किञ्चिदर्थयोग्यञ्च द्रव्यमानीय यौतुकं ।
जामात्रे प्रददौ विप्र परिचार्य्य पुन पुन ॥
ततो विवाह निर्व्वर्त्त्य कौण्डिन्योऽपि निजाश्रम ।
गोयाने तां समारोप्य शीलामादाय वै ययौ ॥
तत सा पथि गच्छन्ती शीला चन्द्रनिभानना ।
मध्याह्ने भोज्यवेलाया समुत्तीर्य्य सरित्तटे ॥
ददर्श शीला नारीणा समूह व्रतचारिणां ।
पृथा वृन्दञ्च तत्रैव रक्तपीताम्बरासन ॥
चतुर्द्दश्यामर्चयन्तं भक्त्यानन्त पृथक् पृथक् ।
दृष्ट्वा समूहं नारीणा सती पप्रच्छ सादर ॥
विनयावनता साध्वी प्रणिपत्य सुरेश्वर ।
किमिद क्रियते कार्य्यं भवतीभिस्तदुच्यता ॥ * ॥
स्त्रिय ऊचु ।
भाद्रे मासि सिते पक्षे उत्थिते वासवध्वजे ।
आराधिते महेन्द्रे च ध्वजाकारासु यष्टिषु ॥
नत्वा सरसि य स्नात्वा अनन्तार्च्चनमारभेत् ।
कृत्वा दर्भमय देव वारिवाजसमन्वित ॥
अनन्त देवदेवेश चतुर्व्वाहु किरीटिन ।
अतसीपुष्पसकाश काञ्चनाङ्गदभूषण ॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्ग विविधायुधधारिण ।
एह्येहि भगवन् कृष्ण तव यज्ञः प्रवर्त्तते ॥
वारिधान्या तथानन्त भगवन्त नियोजयेत् ।
मण्डले पुष्पनैवेद्य धूपवस्त्रानुलेपन ॥
दत्त्वा च पूजयेद्भक्त्या अनन्तं विश्वरूपिण ।
पिष्टकार्थं व्रीहिचूर्णं यवगोधूमयोश्च वा ॥
एतेषा प्राप्यते यत्तु तद्ग्राह्य प्रस्थसञ्ज्ञित ।
अर्द्ध विप्राय दातव्यमर्द्धमात्मनि योजयेत् ॥
पूजयित्वा तथा देवं गन्धपुष्पैर्यथाक्रम ।
श्रुत्वा कथा ततस्तस्य कुङ्कुमाक्त सुडोरक ॥
चतुर्द्दशग्रन्थियुक्तं नारी वामकरे न्यसेत् ।
पुमास्तु दक्षिणे बाहौ तदानन्त प्रपूजयेत् ॥
निर्व्वर्त्त्य पूजा देवस्य पूपं भुक्त्वा यथासुख ।
विसृज्य दक्षिणा दत्त्वा प्रणम्य च यथासुखं ॥
शीला श्रुत्वा वचस्तासा यथा ताभिरुदाहृत ।
व्रत चकार सा बाहौ बद्ध्वा डोरकमुत्तमं ॥
पूपप्रस्थञ्च सा कृत्वा भुक्त्वा चैव तथैव च ।

पुनर्जगाम तेनैव गोरथेन समन्विता ॥
तेनानन्तप्रसादेन गृह गोधनसङ्कुलं ।
तदाश्रमं श्रिया युक्त धनधान्यसमन्वितं ॥
विविधातिथिसम्पूर्णं नानारत्नैर्विभूषितं ।
वराश्वमत्तमातङ्गमहिषैर्गोधनान्वित ॥
शीला च मणिकाञ्चीभिर्मुक्ताभरणभूषिता ।
दिव्याङ्गी शीलसम्पन्ना सावित्रीप्रतिमा यथा ॥
कदाचिदुपविष्टा सा वह्निकुण्डं समागता ।
कौण्डिन्योऽपि विप्रेन्द्रोषात् दृष्ट्वा डोरमनन्तक ।
शीलाया करमूले च बद्धमेव प्रयत्नत ।
पप्रच्छ क्रोधवचसा भृकुटीकुटिल मुख ॥
किमिदं डोरकं हस्ते बद्ध्वा भार्य्येऽत्र तिष्ठसि ।
प्रमेय कस्य देवस्य दुर्ब्बुद्धे ब्रूहि सत्वरं ॥ * ॥
शीलोवाच ।
अनन्त देवदेवस्य प्रमेय डोरकं शुभ ।
करे बद्धं विधानेन शृणु मे वचनं प्रभो ॥
प्रसादाद् यस्य देवस्य भुङ्क्ते सुविपुल धन ।
न जानासि कथ नाथ तदेवं जगदीश्वरं ॥
शीलावाक्य ततः श्रुत्वा कौण्डिन्य कुपितोऽभवत् ।
कोऽसावनन्तसञ्ज्ञो वै न श्रुतोऽपि वरानने ॥
इत्युक्त्वाकृष्य कुपितो भुजाड्डोरमनन्तक ।
क्षिप्त ज्वालाकुले वह्नौ निर्भर्त्स्य बहुधा प्रियां ॥
तत सा संभ्रमात् शीला हाहा कृत्वा प्रधाविता ।
वह्नेः सूत्र समादाय क्षीरमध्ये ततोऽक्षिपत् ॥
ततस्तया करे वामे पुनर्बद्ध सुडोरकं ।
अनन्ताक्षेपदोषेण दारिद्र्य पतितं गृहे ॥
न केश्चित् वर्ण्यते लोके सोऽपि विप्रो युधिष्ठिर ।
गात्रे मलिनता प्राप्ता चक्षुर्निद्रा तथैव च ॥
शून्यानि गृहरूपाणि दग्धानि वह्निना क्वचित् ।
निरीक्ष्य स्वपुर विप्रश्चिन्तयामास चेतसा ॥
अथ शीला विवर्णा सा दुःखिता पतिदोषत ।
विचचार पुरीं सर्व्वां शून्यागारसमन्विता ॥
अथ कौण्डिन्यविप्रस्य सञ्जाता बुद्धिरुत्तमा ।
ममापि दुष्कृत कर्म्म कृत वा मे विगर्हितं ॥
अनन्ताक्षेपदोषेण ममापि गतिरीदृशी ।
अनन्त यत्र पश्यामि तत्र यास्यामि दुर्म्मति ॥
ततो जगाम कौण्डिन्यो वन व्याघ्रादिसङ्कुल ।
व्रतस्यान्वेषण कर्त्तुं पादौ द्रष्टुं तथा हरे ॥
विह्वल स ययौ मार्गे जनजन्तुविवर्ज्जिते ।
तत्रापश्यच्च त वृक्ष फलपुष्पसमन्वित ॥
वर्ज्जित पक्षिसङ्घातैः कीटैश्चैव विशेषत ।
तमपृच्छत् त्वयानन्त क्वचिद्दृष्टो महाद्रुम ॥
स चोवाच महावृक्षो नानन्त वेद्मि भो द्विज ।
ततो गच्छन् ददर्शाग्रे तृणमध्ये सवत्सिका ॥
तृणमध्ये प्रधावन्ती न खादति न जिघ्रति ।
हे महाधेनुके ब्रूहि किमनन्तस्त्वयेक्षित ॥
सवत्सा तमुवाचाथ नानन्त वेद्मि हे द्विज ।
ततो गच्छन् ददर्शाग्रे वृषश्रेष्ठ वने स्थितं ॥
तमपृच्छदय विप्र अनन्तो वीक्षितस्त्वया ।
वृषभस्तमुवाचेदं विषम ब्राह्मणं प्रति ॥
यद्यनन्तमहं जाने तदा मे गतिरीदृशी ।
ततो व्रजन् ददर्शाग्रे गर्द्दभ कुञ्जरं तथा ॥

नानामायाप्रचरन्तं मदगर्व्वमदर्पितं ।
स तं दृष्ट्वा द्विजोऽपृच्छदनन्तं दृष्टवान् किमु ॥
प्रत्युत्तरमुवाचेदं नानन्तं वेद्मि हे द्विज ।
ततो व्रजन् ददर्शाग्रे रम्यं पुष्करिणीद्वयं ॥
अन्योन्यजलसङ्घातैर्व्वीचिभिरुपशोभितं ।
शुभ्रैः कुमुदकह्लारैः कमलोत्पलशोभितं ॥
भ्रमरैश्चक्रवाकैश्च हंसकारण्डवैर्युतं ।
तमपृच्छत् द्विजोऽनन्तो भवतीभ्याञ्च लक्षितः ॥
पुष्करिण्यावूचतुस्तं न जानीवो हरिं क्वचित् ।
निपपात ततो विप्रो हाहा कृत्वा रुदन् भुवि ॥
किं करोमि क्व गच्छामि कथं पश्यामि तं विभुं ॥*॥
ततः कृपालुहृदयो देवेशो देवपूजितः ॥
तत्क्षणाद्भगवान् विष्णुर्द्विजप्रत्यक्षमागतः ।
वृद्धब्राह्मणरूपेण प्रोवाच वचनं द्विजं ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ विप्रेन्द्र त्यज दुःखं सुखी भव ।
अनन्तं दर्शयिष्यामि कृष्णं विष्णुं हरिं शिवं ॥
ब्राह्मणं तं समादाय पातालवर्त्मना पुरीं ।
तां पुरीं दर्शयामास तत्रस्थान्तर्दधे द्विजः ॥
स तां ददर्श कौण्डिन्यः पुरीं त्रैलोक्यदुर्ल्लभां ॥
दिव्यनारीनरैर्युक्तां मणिरत्नविभूषितां ॥
सुवर्णरचितां सर्व्वां वेष्टितां तक्षकादिभिः ।
तत्रापश्यत् स कौण्डिन्यो देवदेवमनन्तकं ॥
विश्वरूपं जगन्नाथं चतुर्व्वाहुं किरीटिनं ।
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं गरुडध्वजं ॥
दक्षिणे विलसल्लक्ष्मीं वामे क्रीडत्सरस्वतीं ।
सप्तफणासमायुक्तं दिव्यसिंहासनेस्थितं ॥
एवं रूपं जगन्नाथं दृष्ट्वा भक्त्या स्तुतिं कृता ।
जगाम भूमौ शिरसा अनन्तस्य समीपतः ॥

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये
सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते
सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥

अज्ञानेन मया देव यत् कृतं पापकर्म्मणा ।
तत्सर्व्वं कृपया शश्वत् क्षमस्व मधुसूदन ॥*॥
अथ कौण्डिन्यविप्रस्य स्तुतिं श्रुत्वा जनार्द्दनः ।
प्रसन्नो भगवान्देवश्चानन्तोऽनन्तरूपधृक् ॥
कथं मे प्रियमाख्यातमिहागच्छेति भूसुर ॥*॥
अनन्त उवाच ।
तुष्टोऽहं ब्राह्मणश्रेष्ठ भक्त्या तव विशेषतः ।
वरं गृहाण विप्रेन्द्र तुष्टोऽस्मि त्यज विस्मयं ॥*॥
कौण्डिन्य उवाच ।
स्वकर्म्मफलभोगेन यां यां योनिं व्रजाम्यहं ।
तस्यां तस्यां हृषीकेश हरिभक्तिर्दृढास्तु मे ॥
अतिप्रमादान्मोहाद्वा यन्मया दुष्कृतं कृतं ।
तदागः क्षम्यतां नाथ प्रणमामि पुनः पुनः ॥
श्रुत्वानन्तस्तु तद्वाक्यं ददौ तस्मै वरत्रयं ।
दारिद्र्यनाशनं धर्म्मं विष्णुलोकं तथाक्षयं ॥*॥
कौण्डिन्य उवाच ।
पूर्णो मनोरथो देव मम चाद्य विशेषतः ।
किञ्चित् पृच्छामि देवेश तन्मे ब्रूहि जगत्पते ॥
क्वचूतः को वृषः का गौः किन्तत् पुष्करिणीद्वयं ।
कः खरः कुञ्जरः को वा को वा वृद्धद्विजोत्तमः ॥
कृपया कथयस्वाद्य पथि दृष्टो मया विभो ।
श्रीअनन्त उवाच ।
यश्चाम्रवृक्षो दृष्टो हि विप्रो विद्यासु गर्व्वितः ।
उपस्थिताय शिष्याय विद्यां यस्मान्न दत्तवान् ॥
तेन कर्म्मविपाकेन वृक्षत्वं प्राप्य तिष्ठति ।
वृषभो यस्त्वया दृष्टो लोभकर्म्मकृतः पुरा ॥
दत्तं पर्य्युषितं द्रव्यं स्वादु भुक्तं स्वयं यतः ।
वृषभत्वं समासाद्य ततस्तिष्ठति निर्ज्जने ॥
विप्राय वसुधां दत्त्वा निष्फलां शस्यवर्ज्जितां ।
तेनासौ गोत्वमासाद्य तृणमध्ये प्रधावति ॥
धर्म्माधर्म्मौ विजानीयाद्यत्तत् पुष्करिणीद्वयं ।
गर्द्दभोऽज्ञानसम्पन्नः कुञ्जरो मदगर्व्वितः ॥
ब्राह्मणोऽसावनन्तोऽहं यस्त्वया दर्शितो मुने ।
एतत्ते कथितं सर्व्वं गच्छ विप्र निजाश्रमं ॥
पुनः समृद्धिस्ते विप्र भविष्यति न संशयः ।
भुक्त्वा भोगांश्च विपुलान् संप्राप्स्यसि महत् पदं ॥
इति दत्त्वा वरं तस्मै तत्रैवान्तरधीयत ।
कौण्डिन्योऽपि गृहं गत्वा करोति व्रतमुत्तमं ॥
अनन्ताख्यं महापुण्यं वर्षाणाञ्च चतुर्द्दश ।
शीलया सह धर्म्मात्मा सुखं भुक्त्वा मनोरथान् ॥
विष्णुलोकं समासाद्य रराज शीलया सह ।
अनन्ताख्यव्रतेनेह समाप्तेनैव पार्थिव ॥
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्ता यास्यन्ति परमां गतिं ।
एवमेव हि नियमात् स्त्रियोऽनन्तव्रतान्नृप ॥
पुत्त्रपौत्त्रधनैर्युक्ता भुक्त्वा भोगान् मनोरथान् ।
विष्णुलोकमाप्नुवन्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ" ॥
इति भविष्यपुराणे अनन्तव्रतं समाप्तं ॥

अनन्तशीर्षा, स्त्री, (अनन्तानि बहूनि शीर्षाणि शिरांसि यस्याः सा ।) वासुकिपत्नी । इति शब्दमाला ॥

अनन्ता, स्त्री, (नास्ति अन्तो यस्याः सा ।) पार्व्वती । पृथिवी । अग्निशिखावृक्षः । श्यामालता । दूर्व्वा । पिप्पली । दुरालभा । हरीतकी । आमलकी । गुडूची । इति मेदिनी ॥ यवासः । श्वेतदूर्व्वा । नीलदूर्व्वा । अग्निमन्थवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ अनन्तमूलं । तत्पर्य्यायः । गोपवल्ली २ कारा ला ३ सुगन्धा ४ भद्रवल्लिका ५ भद्रा ६ नागजिह्वा ७ । इति रत्नमाला ॥ गोपी ८ श्यामा ९ शारिवा १० उत्पलशारिवा ११ । इत्यमरः ॥ गोप्यादिपञ्चश्यामलतायां नागजिह्वायां इति केचित् । गोप्यादित्रयं श्यामलतायां अनन्तोत्पलशारिवेति द्वयं अनन्तमूले इति केचित् । इति तट्टीकायां भरतः ॥ तस्या गुणाः । मलबन्धकारित्वं । रक्तपित्तनाशित्वं । शीतलत्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥

अनन्यगतिकः, त्रि, (नास्ति अन्या गतिः यस्य । समासान्तः कः ।) गत्यन्तररहितः । एकाश्रयः ।
"अनन्यगतिके जने विगतपातके चातके
यथारुचि तथा कुरु प्रिय तथापि मान्यं भजे" ।
इत्युद्भटः ॥

अनन्यजः, पुं, (नास्ति अन्यत् यस्मात् सः अनन्यो विष्णुः, तस्मात् जातः इति, अनन्य + जन् + ड ।) कामदेवः । इत्यमरः ॥

अनन्यवृत्ति, त्रि, (न अन्या वृत्तिरस्य इति ।) एकमात्रवृत्तिः । तत्पर्य्यायः । एकतानः २ एकाग्र एकायनः ४ एकसर्गः ५ एकाग्र्यः ६ एकायनगतः ७ । इत्यमरः ॥

अनपायी, [न्] त्रि, (नास्ति अपायः विनाशोऽस्य इति, न + अपाय + इनि ।) निश्चलः । अपायशून्यः । अनश्वरः । यथा,—
"अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो" ।
इति श्रीभागवतं ॥
("अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी"
इति कुमारे ॥)

अनभिज्ञ, त्रि, (अभि जानाति इति अभिज्ञः, अभि + ज्ञा + क, न अभिज्ञः इति नञ्समासः ।) मूर्खः । प्रकाररहितः । बुद्धिहीनः । यथा,—
"धिक् त्वां चूततरो परापरपरिज्ञानानभिज्ञो भवान्"
इति भ्रमराष्टकं ॥

अनभिलाष, पुं, (न अभिलाषः इति नञ्समासः ।) अरुचिः । इति राजनिर्घण्टः ॥ अनिच्छा ॥ (त्रि, नास्ति अभिलाषो यस्य इति समासे अभिलाषशून्यः ।)

अनम, पुं, (नमति प्रणमति इति नमः, नम् + पचाद्यच्, न नमः अनमः इति नञ्समासः ।) ब्राह्मणः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अनमितम्पचः, त्रि, (मितं परिमितं पचति इति मित + पच् + खच्, न मितम्पचः इति अमितम्पचः, न अमितम्पचः इति अनमितम्पचः, नञ्समासः ।) मितम्पचः । कृपणः । इत्यमरटीकायां रमानाथः ॥

अनम्बर, पुं, ((नास्ति अम्बरं परिधेयं यस्य सः ।) बौद्धविशेषः । इति सिद्धान्तशिरोमणौ गोलाध्यायः ॥

अनयः, पुं, (अयः शुभावहो विधिस्तद्भिन्नः नञ्समासः ।) दैवं । अशुभं । व्यसनं । विपद् । इति मेदिनी ॥
("अनयो नयसम्पन्ने यत्र ते विहता मतिः" ।
इति रामायणे ।)

अनर्गल, त्रि, (नास्ति अर्गलं प्रतिबन्धो यस्य तत् ।) निरर्गलं । प्रतिबन्धकरहितं । तत्पर्य्यायः । अबाधः उच्छृङ्खलः ३ उद्दामः ४ नियन्त्रितः ५ निरङ्कुशः ६ । इति हेमचन्द्रः ॥
("ततः परं तेन मखाय यज्वना
तुरङ्गमुत्सृष्टमनर्गलं पुनः ।
इति रघुवंशे ।)

अनर्थक, क्ली, (नास्ति अर्थः यस्य तत्, समासान्तः कः ।) निरर्थकं । अर्थशून्यवाक्यं । तत्पर्य्यायः । अबद्धं २ । इत्यमरः ॥ अबध्यं ३ । इति तट्टीका ॥

अनल, पुं, (नास्ति अलं बह्वदाह्यवस्तुदहनेऽपि तृप्तिर्यस्य सः, हस्तिकानक्षत्रे, वत्सरे भगवति वासुदेवे ।) अग्निः । वसुभेदः । इति मेदिनी ॥ चित्रकः । रक्तचित्रकः । भल्लातकः । पित्तं । इति राजनिर्घण्टः ॥

अनलप्रभा, स्त्री, (अनलस्य वह्नेः प्रभेव प्रभा यस्याः

सा ।) ज्योतिष्मतीलता । इति राजनिर्घण्ट ॥

अनलप्रिया, स्त्री, (अनलस्य अग्ने प्रिया पत्नीत्वात् ।) अग्निभार्य्या । आग्नेयी । इति जटाधर ॥

अनलि, पु, (अनितीति अन् + पचाद्यच् अन तन्मधुपानेन जीवनधारयिता अलि भ्रमरो यत्र स ।) वकवृक्ष । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अनवधानं, क्ली, (न अवधानं मनोयोग नञ्समास ।) चित्तस्याविक्षेप । अमनोयोग । अप्रणिधान । इति हलायुध ॥ तद्विशिष्टे त्रि ॥

अनवधानता, स्त्री, (नास्ति अवधानं मनोयोगो यस्य स, तस्य भाव ततस्तल् स्त्रियां टाप् ।) मनोयोगशून्यता । चित्तस्यानन्यविषयाभावत्व । कार्य्ये अनवहितत्व । तत्पर्य्याय । प्रमाद २ । इत्यमर ॥
"कर्त्तव्याकरणं यत्र समर्थस्य क्वचिद्भवेत् ।
उच्यते द्वितयं तत्र प्रमादोऽनवधानता" ॥
इति सुन्दररत्नावली ॥

अनवर, त्रि, (न अवर, नञ्समास ।) अकनिष्ठ । अन्यून । श्रेष्ठ । प्रधान । यथा,—
"सोऽयमिन्द्रादनवरो वासुदेवश्च भारत" ।
इति विराटपर्व्व ॥

अनवरत, क्ली, (अव + रम् + भावे क्त, नास्ति अवरत विरतिर्यत्र तत् ।) निरन्तरं । तत्पर्य्याय । सततं २ अनारत ३ अश्रान्तं ४ सन्ततं ५ अविरतं ६ अनिशं ७ नित्यं ८ अजस्रं ९ प्रसक्त १० आसक्तं ११ अनद्ध १२ । इति जटाधर ॥ तद्विशिष्टे वाच्यलिङ्ग । इत्यमर ॥
("अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरकर्म्मा" ।
इति शाकुन्तले ।)

अनवरार्द्ध्य, त्रि, (अवरमर्द्ध, कर्म्मधारय, तत्र भव, अवरार्द्ध + यत्, ततो नञ्समास ।) उत्तम । प्रधान । इत्यमर ॥

अनवलम्ब, त्रि, (नास्ति अवलम्ब आश्रयो यस्य स ।) अवलम्बनशून्य । निराश्रय । यथा,—
"न परं पथि पक्षपातिता-
नवलम्बे किमु मादृशेऽपि सा" ।
इति नैषध ॥

अनवसर, त्रि, (नास्ति अवसर अवकाशो यस्य स ।) निरवकाश । अवसराभावे पु । यथा,—
"अतर्क्यैश्वर्य्ये त्वय्यनवसरदु स्था हतधिय" ।
इति महिम्न स्तोत्र ॥

अनवस्कर, त्रि, (अव अधोवर्त्मना कीर्य्यते क्षिप्यते अव + कृ + अप्, "वर्च्चस्कोऽवस्कर इति सुडागम" नास्ति अवस्करो मल यस्य तत् ।) निर्म्मल । शोधित । इत्यमर ॥

अनवस्था, स्त्री, (अव + स्था भावे अङ्, न अवस्था अवस्थान नञ्समास ।) तर्कविशेष । तस्य लक्षण । अप्रामाणिकानन्तप्रवाहमूलकप्रसङ्गत्व । यथा,—
"घटत्व यदि यावद्घटहेतुवृत्ति स्यात् घटान्यवृत्ति स्यात्" । इति तार्किका ॥ उपपाद्योपपादकयोरविश्रान्ति । इति मीमांसका । दशाभाव । स्थित्यभाव ॥

("एवमप्यनवस्था स्याद् या मूलक्षतिकारिणी" ।
इति काव्यप्रकाशे ।)

अनवस्थान, पुं, (न अवस्थानमवस्थितिर्यस्य स ।) वायु । इति राजनिर्घण्ट ॥ अवस्थितिशून्ये त्रि ॥ (चञ्चल । अव्यवस्थित ।)

अनवस्थिति, स्त्री, (न अवस्थिति अवस्थानं नञ्समास ।) चापल्य । चाञ्चल्य । अस्थिरता । अधैर्य्यं । इति हेमचन्द्र ॥

अनशन, क्ली, (अश् भावे ल्युट्, न अशन भोजनं, नञ्समास ।) भोजनाभाव । उपवास । इति हलायुध ॥ तद्वति त्रि ॥ (प्रायोपवेशनं । "तदहमनशनं कृत्वा प्रात प्राणानुत्सृजामि" । इति पञ्चतन्त्रे ।)

अनश्वर, त्रि, (नश् + कर्त्तरि वरच् न नश्वरं, नञ्समास ।) सनातनं । नित्य । ध्रुव । शाश्वत । इति हेमचन्द्र ॥
("मत्वा विश्वमनश्वर निविशते ससारकारागृहे" ।
इति वैराग्यशतके ।)

अनसूया, स्त्री, (असु कण्ड्वादित्वात् यक् + भावे अ, स्त्रियां टाप्, न असूया नञ्समास ।) असूयाभाव । तस्या लक्षणं यथा बृहस्पति ।
"न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति मन्दगुणानपि ।
नान्यदोषेषु रमते सानसूया प्रकीर्त्तिता" ॥
इत्येकादशीतत्त्व ॥ अत्रिमुनिपत्नी । इति गारुडे २९ अध्याय ॥ कर्द्दममुनिकन्या । इति श्रीभागवत ॥ असूयाशून्ये त्रि ॥

अनहंवादी, [न्] त्रि, (अहमिति गर्व्वं वदति य, अहं + वद् + णिनि, उपपदसमास, ततो नञ्समास । अहमित्यव्ययं ।) गर्व्वरहित ।
"मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वित ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्व्विकार कर्त्ता सात्त्विक उच्यते" ।
इति श्रीभगवद्गीता । अनहंवादी गर्व्वरहित । इत्याह्निकतत्त्व ॥

अनहङ्कृति, स्त्री, (न अहङ्कृति अहङ्कार नञ्समास ।) अहङ्काराभाव । तत्पर्य्याय । अशौच २ । इति त्रिकाण्डशेष ॥ (त्रि नास्ति अहङ्कृति यस्य इति समासे अहङ्कारशून्य ।)

अनक्ष, त्रि, अक्षिहीन । अन्ध । न विद्येते अक्षिणी यस्य इत्यर्थे ष प्रत्यय । अक्षभिन्न ॥

अनक्षर, क्ली, (न सन्ति प्रशस्तानि अक्षराणि यत्र तत् ।) दुर्व्वचन । इति भरत ॥ अवचनार्ह । इति मधु ॥ गालिप्रभृति । गुणाक्षेपकदोषाविष्कारिवाक्य । इति केचित् ॥ तत्पर्य्याय । अवाच्य २ । इत्यमर ॥

अनक्षि, क्ली, ( अप्रशस्तमक्षि नेत्रं, नञ्समास ।) कुत्सितचक्षु । तत्पर्य्याय । असौम्याक्षि २ । इति हेमचन्द्र ॥

अनाकुल, त्रि, (न आकुल नञ्समास ।) स्थिर । एकाग्र । अव्याकुल । अव्यग्र । इति जटाधर ।
("अनाकुलाऽविकला च सुसम्भ्रान्ता च मे मति" ।
इति रामायणे ।)

अनाक्रान्ता, स्त्री, (कैरपि न आक्रान्ता आक्रमितुमयोग्या कण्टकव्याप्तत्वात्, नञ्समास ।) कण्टकारीवृक्ष । इति रत्नमाला ॥ अनाक्रमणविशिष्टे त्रि ॥

अनागतं, त्रि, (आङ् + गम् + कर्त्तरि क्त, न आगतं नञ्समास ।) भविष्यत् । इति राजनिर्घण्ट ॥ अनायातं । अनुपस्थित । अज्ञातं । यथा—
("तावद्भयस्य भेतव्य यावद्भयमनागत" ।
इति पञ्चतन्त्रे ।)
"अनागतादिलिङ्गेन न स्यादनुमितिस्तदा" ।
इति भाषापरिच्छेद ॥

अनागतार्त्तवा, स्त्री, (न आगतमप्राप्तमार्त्तव स्त्रीपुष्पविकाशन यस्या सा, स्त्रियां टाप् । ऋतु + अण् ।) अप्राप्तऋतुका । अरजस्का । तत्पर्य्याय । गौरी २ नग्निका ३ । इत्यमर ॥

अनाचार, पु, (न कुत्सित आचार नञ्समास । नञत्र अप्राशस्त्ये अभावार्थे तु आचाराभाव ।) कदाचार । अशुद्धाचार । श्रुतिस्मृतिविरुद्धकर्म्मकरण । यथा,—
"सर्व्वदेशेष्वनाचार पथि ताम्बूलचर्व्वणं" ॥
इति स्मृति ॥ तद्विशिष्टे त्रि ॥

अनातप, पु, (आङ् + तप् + अच्, आतपस्य रौद्रस्याभाव नञ्समास ।) रौद्राभाव । छाया । इति राजनिर्घण्ट ॥ ( त्रि छायाविशिष्टे ।
"खल्वाटोदिवसेश्वरस्य किरणै सन्तापिते मस्तके ।
वाञ्छन् देशमनातपं विधिवशात् विल्वस्य मूलं गत" ॥ इति नीतिशतके । )

अनातुर, त्रि, (न आतुर रोगी नञ्समास ।) अरोगी । यथा,—
"तेषामनातुरा पूर्व्वं वातलाद्या सदातुरा" ।
इति चरक । ("भेजे धर्म्ममनातुर" । इति रघुवंशे ।)

अनाथ, त्रि, (नास्ति नाथ आश्रयो यस्य स ।) प्रभुहीन । नाथशून्य । यथा,—
"वना वना वनाथवत् स्वजीवना वनाभवत्" ।
इति नलोदय ।
("नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपद्यसे" ।
इति उत्तरचरिते ।)

अनादर, पु, (आ + दृ + भावे अप्, न आदर नञ्समास ।) निरादर । तत्पर्य्याय । परिभव २ परिभाव ३ तिरस्क्रिया ४ रीढा ५ अवमानना ६ अवज्ञा ७ अवहेल ८ असूक्षण ९ । इत्यमर ॥ असूक्षण १० असूर्क्षण ११ असूर्क्षणं १२ । इति भरत ॥ ("गुणेषु रागो व्यसनेष्वनादर" । इति पञ्चतन्त्र ।)

अनादि, त्रि, ( नास्ति आदि कारणं यस्य स ।) आदिरहित । उत्पत्तिशून्य । स्वयम्भू । यथा,—
"अनादिरादिर्गोविन्द सर्व्वकारणकारणं" ।
इति ब्रह्मसंहिता ॥

अनादृत, त्रि, (आ + दृ + कर्म्मणि क्त, न आदृत नञ्समास ।) निरादर । अवज्ञात । अवमानित । इति हेमचन्द्र ॥

(अनु+शास्+भावे ल्युट्।) आ-
। यथा,—
। पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनं"।
ति ॥ व्युत्पादनं। यथा नामलिङ्गानु-
र ॥ (उपदेश। नियोगकरणं।
भूतानां कार्य्यं श्रेयोनुशासनम्"।

(अनु पौनःपुन्येन शीलनमभ्यासः,
+भावे ल्युट्।) पुनःपुनरभ्यासः।
यथा,—
कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा"।
ामृतसिन्धुः ॥
(अनु+शुच्+भावे ल्युट्।)
तत्पर्य्यायः। मन्युः २ शोकः ३
। जटाधरः ॥
नु+सन्ज+भावे घञ्।) कारुण्यं।
हलायुधः ॥ एकत्रान्वितपदस्यान्य-
यथा। कोषोमलस्वापहृतमित्यादौ
हृतस्य कोषेऽन्वयः ॥ न्याये उपनय-
निगमनेऽनुषङ्गः। यथा। वह्निव्याप्य-
स्मादह्निमान् ॥ प्रसङ्गः। अन्योद्देशेन
'पि सिद्धिः। यथा,—
तथा चान्ये ह्यनुषङ्गफला श्रुतिः"।

स्त्री, (अनु सततं स्तुभ्यतेऽनया,
+क्विप् षत्वं।) सरस्वती। इति
। ॥ अष्टाक्षरपदं छन्दः। सा तु
षमवृत्तभेदेन त्रिधा तत्र शेषस्य
। तस्य लक्षणं।
सर्व्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
ादानां प्रेष्वनियमो मतः" ॥
ष्टुरी ॥ अस्याः प्रस्तारा २५६। इति

अनु+स्था+भावे ल्युट्)। कर्म्मा
। यथा,—
वदेवेन कर्म्मानुष्ठानपद्धतिः"।
व्यवस्थापनं। उपयोगिता। आनु
र्य्यकरणं। अभ्यासः। अनुशीलनं।

रेत्यक्तशास्त्रानुष्ठानमोहिते"।
र्क्रिया।
मनुष्ठानं सम्यक् कुर्य्यादतन्द्रितः"।
शास्त्रविहितकर्त्तव्यादिसम्पादनम्।
ननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति"।
रिते।)
न उष्णः, नञ्समासः।) उत्पलं।
र्घण्टः ॥
(न उष्णः, नञ्समासः।) अलसः।
उष्णभिन्नः। शीतलः। बहुव्रीहौ तु

, स्त्री, (अनुष्णा शीतला वल्लीव, कर्म्म-
नीलदूर्व्वा। इति राजनिर्घण्टः ॥

अनुसन्धानं, क्ली, (अनु+सम्+धा भावे ल्युट्।) अन्वेषणं। चेष्टा। इत्यादिकाव्यानुसन्धानवशा-दिति काव्यप्रकाशः ॥

अनुसारः, पु, (अनु+सृ+भावे घञ्।) अनुसरणं। अनुयानं। अनुक्रमः। यथा,—
"अथ लौहविधिं वक्ष्ये लौहशास्त्रानुसारतः"।
इति वैद्यकसुखबोधः ॥

अनुहारः,पु, (अनु+हृ+घञ्।) अनुकारः। सदृशी-करणं। सदृशरूपवेशभाषाद्याविष्करणं। इत्य-मरः ॥ उपमा। इति हेमचन्द्रः ॥
("तद्रूपाननुहारश्चेत् हेतौ सत्यप्यतद्गुणः"।
इति साहित्यदर्पणे।)

अनुक्षणं, क्ली, (क्षणे क्षणे वीप्सायामव्ययीभावः।) प्रतिक्षणं। सर्व्वदा। अनवरतं। क्षणशब्दस्य वीप्सार्थानुपसर्गेणाव्ययीभावसमासः ॥

अनूकं,क्ली, (अनु+उच्+घञर्थे कः, न्यङ्क्वादीनाञ्चेति कुत्वम्।) कुलं। वंशः। शीलं। स्वभावः। इति मेदिनी ॥

अनूकः,पु, (अनु+उच्+घञर्थे कः, न्यङ्क्वादीनाञ्चेति कुत्वम्।) गतजन्म। पूर्व्वजन्म। इति मेदिनी ॥ (वंशः। कुलं। स्वभावः। शीलं।
"अनूकं तु कुले शीले पुंसि स्यात् गतजन्मनि"।
इति मेदिनी।)

अनूचानः, पु, (अनु+ब्रू+लिट् तस्य कानच्) साङ्गवेदविचक्षणः। शिक्षादिषडङ्गसहितवेद-वेत्ता। इत्यमरः ॥
("इदमूचुरनूचानाः प्रीतिकण्टकितत्वचः"।
इति कुमारसम्भवे।
"ऋषयश्चक्रिरे धर्म्मं योऽनूचानः स नो महान्"।
इति मनुः।)

अनूचानः, त्रि, (अनु+वच्+लिट् तस्य कानच्। वेदस्यानुवचनं कृतवान्, उपेयिवानित्यादिना साधुः।) विनीतः। सविनयः। इति मेदिनी ॥ (साङ्गवेदविचक्षणः।
"अनूचानो विनीते स्यात् साङ्गवेदविचक्षणे"।
इति मेदिनी ॥
शिक्षाकल्पादिषडङ्गसहितवेदाध्ययनकारी, यथा,
"इदमूचुरनूचानाः प्रीतिकण्टकितत्वचः"।
इति कुमारसम्भवे।
"ऋषयश्चक्रिरे धर्म्मं योऽनूचानः स नो महान्"।
इति मनुः) ॥

अनूढः, त्रि, (वह+कर्म्मणि क्त सम्प्रसारणं ततो नञ्समासः।) अविवाहितः। आइवड इति भाषा। यथा,—
"परिवेत्तानुजोऽनूढे ज्येष्ठे दारपरिग्रहात्"।
इत्यमरः ॥

अनूद्यं, त्रि, (अनु+वद्+क्यप् सम्प्रसारणं।) अनु-वाद्यं। अनुवदनीयं। अवदनीये कृत्यमध्यं। इति सङ्क्षिप्तसारव्याकरणं ॥

अनूनं,त्रि (न ऊनं, नञ्समासः।) अखण्डं। समग्रं। पूर्णं। इति जटाधरः ॥ (अहीनः। अन्यूनः।
"इमामनूनां सुरभेरवेहि"। इति रघुवंशे।)

अनूनकं,त्रि, (न ऊनं, नञ्समासः, ततः स्वार्थे कन्।) सकलं। पूर्णं। अखण्डं। इत्यमरः ॥

अनूपः, त्रि, (अनुगता आपोऽत्र, समासान्त अच्, अस्य उत्वं।) जलबहुलदेशः। जलप्लावितस्थानं। तत्पर्य्यायः। जलप्रायः २। इत्यमरः ॥ अस्य गुणाः। शीतलत्वं। स्निग्धत्वं। वातश्लेष्मकारित्वं। गुरुत्वञ्च। इति राजवल्लभः ॥ एतद्देशीयजलगुणाः। गुरुत्वं। घनत्वं। पिच्छिलत्वं। मधुरत्वं। श्लेष्मजनकत्वं। स्निग्धत्वं। अग्निनाशित्वं। प्रमेहगलगण्डश्लीप-दच्छर्द्दिप्रभृतिरोगकारित्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः।

अनूपः, पु, (अनुगता आपोऽत्र, प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपश्चेति बहुव्रीहिः) महिषः। इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (जलप्रायः। जलबहुलः। बह्वम्बुयुक्तः। "अनूपो महिषे नाम्बुप्रायदेशे तु वाच्यवत्"। इति मेदिनी ॥)

अनूपजं, क्ली, (अनूपे जलप्रायदेशे जायते, अनूप+जन्+ड उपपदसमासः।) आर्द्रकं। इति राज-निर्घण्टः ॥

अनूपदेशः, पु, (अनूपः जलप्रायः देशः कर्म्मधारयः।) जलप्रायदेशः। तस्य लक्षणं यथा,—
"नदीपल्वलशैलाद्यफुल्लोत्पलकुलैर्युतः।
हंससारसकारण्डचक्रवाकादिसेवितः ॥
सरोवराहमहिषरुरोहिकुलाकुलः।
प्रभूतद्रुमगुल्माढ्यो नानाशस्यफलान्वितः ॥
अनेकशालिकेदारकदलीक्षुविभूषितः।
अनूपदेशो ज्ञातव्यो वातश्लेष्ममयार्त्तिमान्" ॥
इति भावप्रकाशः ॥

अनूरुः, पु, (नास्ति ऊरू यस्य सः।) सूर्य्यसारथिः। अरुणः। इत्यमरः ॥ (ऊरुहीनः।) ॥

अनूरुसारथिः, पु, (अनूरुः अरुणः सारथिः रथ-चालको यस्य सः।) सूर्य्यः। यथा,—
"गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः"।
इति माघः ॥

अनृजुः त्रि, (न ऋजुः सरलः, नञ्समासः।) अस-रलः। शठः। इत्यमरः ॥
("न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः"।
इति मनुः।)

अनृणी, [न्] त्रि, (ऋणं विद्यतेऽस्य, ऋण+इनि ऋणी, नञ्समासः।) अऋणी। अधारी। यथा,—
"एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा सोऽनृणी भवेत्" ॥
इत्याह्निकतत्त्वं ॥ ऋणाभावविशिष्टः। यथा
यक्ष उवाच।
"को मोदते किमाश्चर्य्यं कः पन्थाः का च वार्त्तिका।
वद मे चतुरः प्रश्नान् मृता जीवन्तु बान्धवाः" ॥
युधिष्ठिर उवाच।
"पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति स्वे गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते ॥
अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालये।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्य्यमतःपरं ॥
तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना
नैको मुनिर्यस्य मतं प्रमाणं।

वं निहित गुहाया
येन गत स पन्था ॥
हामोहमये कटाहे
रात्रिदिवेन्धनेन ।
र्मपरिघट्टनेन
ल पचतीति वार्त्ता" ॥
तमहाभारते वनपर्व्वणि ३१२ अ-
प च ।
णी जन्तुर्यशैर्भवति मानव" ।
त्व ।
न ऋतं नञ्समासः ।) ऋषि ।
त्यमर ॥ त्रिवाहादिपञ्चकेष्वनृतं न
यथा,—
काले रतिसंप्रयोगे
सर्व्वधनापहारे ।
ार्थे ह्यनृतं वदेत
न्याङरपातकानि" ॥
ारते कर्णपर्व्वणि अर्जुन प्रति श्रीकृष्ण-

एकस्मात् अन्यत् नञ्समास ।) एक-
संख्यान तद्भिन्नश्च । बहु । यथा,—
राजन्यरथाश्वसङ्कुल" ।
वि ॥
(अनेकं जायते, अनेक+जन्+ड:
ास ।) पक्षी । इति त्रिकाण्डशेष ॥
त्र ॥
, (अनेक+प्रकारार्थे धा ।) अनेक-
ऊधा । यथा,—
त्रोपमं वीजं गूढमित्यवभाषते ।
जमगूढाना नैव मोढित्यनेकधा" ॥
ावती ॥ अनेकवारार्थेऽपि क्वचित्प्रयोग ॥
, (अनेककाभ्यां मुखशूण्डाभ्या पिवति,
पा+क, उपपदसमास ।) हस्ती
॥
गुण, पु, (अनेकानि आश्रित, द्वितीया-
त इत्यादिना समास, तादृश गुण-
रय ।) बहुनिष्ठगुणः । तद्यथा । सयोगः १
२ द्विपृथक्त्वादिः ३ एकत्वान्यसङ्ख्या ४ ।
सद्धान्तमुक्तावली ॥
गश्च वियोगश्च सङ्ख्या द्वित्वादिकास्तथा ।
क्त्वादयस्तद्वदेतेऽनेकाश्रिता गुणाः" ।
ाभापरिच्छेदे ।)
, त्रि, (नास्ति एड वधिरः मूकः वाक्-
हितश्च यस्मात् सः ।) धूर्त्त । शठ ।
ाग्निहीनः । इति मेदिनी ॥ काणा वोवा
भाषा ।
[स्] पु, (न हन्यते, न+हन्+असुन्
रादित्वात् हन् स्थाने एहादेश, ततः
ते अनडादेश ।) काल । समय । इत्यमरः ॥
शुस्त्यान्तिके मोहम्भिन्नानेहःप्रतीक्षिणः" ।
राजतरङ्गिणी ।)
स्त्री, (न एक भावे ष्यञ् ।) ऐक्याभाव । अने-

कता । एकस्य भाव ऐक्य पश्चान्नञ्समासः ॥
अनो, व्य, (न नी डो) निषेधार्थः । अभावः । इत्य-
मरटीकायां नीलकण्ठः ॥
अनोकहः, पु, (अनस शकटस्य अक गमनं षष्ठी-
तत्, तत् हन्ति अनोक+हन्+ड ।) वृक्ष ।
इत्यमर ॥
("एलालतालिङ्गितचन्दनासु-
मनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी" ।
इति रघुवंशे ।)
अनृच उ गतिपूजनयो । इति मुग्धबोधे वोपदेव ॥
अनृच उ पूजने । गमने । श्लिष्टोक्तौ । इति कवि-
कल्पद्रुम ॥ उ अञ्चित्वा अक्त्वा । श्लिष्टोक्तिर-
व्यक्तशब्द । इति दुर्गादास ॥
अनृच क व्यक्तौ । इति कविकल्पद्रुम ॥ व्यक्तिरिह
विशेषण । क अञ्चयति वुद्धिं सुधी । विशिनष्टी-
त्यर्थः । इति दुर्गादास ॥
अनृज उ ध ञि व्यक्तौ । गतौ । म्रक्षणे । इति कवि-
कल्पद्रुम ॥ उ अञ्जिष्यति अङ्क्ष्यति । ध अनक्ति ।
ञि अक्तोक्ति । व्यक्ति स्फुटीकरणं ।
"शरीरभाजा भवदीयदर्शनं
व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यता" ।
इति माघ ॥ अनक्ति गात्रं तैलेन जन । इति
दुर्गादास ॥
अन्त, स्त्री, (अम्+तन् ।) स्वरूप । स्वभाव । इति
मेदिनी त्रिकाण्डशेषश्च ॥
अन्तं, स्त्री, पु, (अम्+तन् ।) शेष । इति मेदिनी ॥
तत्पर्य्याय । जघन्य २ चरम ३ अन्त्यं ४ पाश्चात्यं ५
पश्चिम ६ । इत्यमर ॥
अन्त, पु, (अम्+तन् ।) नाश । इत्यमर ॥ स्वरूप ।
प्रान्तः । सीमा । निश्चय । अवयव । इति
हेमचन्द्र ॥
अन्त, त्रि, (अम्+तन् ।) अन्तिक । निकट ।
इति मेदिनी ॥ अतिमनोहर । इति विश्व ॥
अन्तःकरण, स्त्री, (अन्तर्मध्यवर्त्ति करणं ज्ञानसाधनं,
कर्म्मधारयः, कृ+करणे ल्युट् ।) अन्तरिन्द्रियं ।
धीन्द्रियं । तत्पर्य्याय । मन २ चित्त ३ । इति
त्रिकाण्डशेषः ॥ अस्य कार्य्यभेदान्नामचतुष्टयं,
यथा,—
"मनो वुद्धिरहङ्कारश्चित्तं करणमान्तर ।
संशयो निश्चयो गर्व्व स्मरण विषया अमी" ॥
इति वेदान्त ॥ (अस्योत्पत्तिर्यथा,—"मिलितैस्तु
तैः अन्तःकरणमेकं स्यात्" इति । तैः पञ्चभूतस्य-
सत्त्वांशैर्मिलितैः अन्तःकरणं भवतीत्यर्थ ।)
"धनुर्भृतोऽप्यस्य दयार्द्रभाव-
माख्यातमन्तःकरणैर्विशङ्कैः" ।
इति रघुवंशे ।)
अन्तःकुटिलः, पु, (अन्तरभ्यन्तरे कुटिल वक्र ।)
शङ्खः । इति राजनिर्घण्टः ॥ कुटिलान्तःकरणे त्रि ॥
अन्तःपुरं, स्त्री, (अन्तर्मध्यवर्त्ति पुरं गृहं, कर्म्म-
धारय ।) राज्ञः स्त्रीगृहं । तत्पर्य्याय । अव-
रोधन २ अवरोध ३ शुद्धान्तः ४ । इत्यमरः ॥
अन्तःपुरादयो राजदारेष्वपि तात्स्थ्यात् वर्त्तन्ते ।
यथा । "शुद्धान्तसम्भोगनितान्ततुष्टे" । इति
नैषधम् । इति भरत ॥ "दाक्षिण्येन ददाति
वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा" । इत्यभिज्ञान
शकुन्तलम् ॥
अन्तःपुराध्यक्षः, पु, (अन्तःपुरस्य अध्यक्षः रक्षक,
षष्ठीतत्पुरुष ।) राज्ञामन्तःपुररक्षक । तल्ल-
क्षणं यथा,—
"वृद्ध कुलोद्भव शक्त पितृपैतामहः शुचि ।
राज्ञामन्तःपुराध्यक्षो विनीतश्च तथेष्यते" ॥
इति युक्तिकल्पतरु ॥
अन्तःसत्त्वा, स्त्री, (अन्तर्मध्ये सत्त्वं प्राणी सारो वा
यस्या सा, स्त्रियां टाप् ।) भल्लातकः । इति
शब्दचन्द्रिका ॥ गर्भवती । अन्तरुदरमध्ये सत्त्वं
प्राणी यस्या सा ॥
अन्तःस्वेद, पु, (अन्त मध्ये स्वेद मदजलं यस्य स ।)
हस्ती । इति त्रिकाण्डशेषः ॥
अन्तक, पु, (अन्तं विनाश करोति, अन्त+करो-
त्यर्थे णिच् ततो ण्वुल् ।) यमः । इत्यमरः ।
("ऋषिप्रभावात् मयि नान्तकोऽपि प्रभुः प्रहर्त्तुं
किमुतान्यहिंस्रा" । इति रघुवंशे ।)
अन्तग, त्रि, (अन्त पारं गच्छति, अन्त+गम्+डः,
उपपदसमास ।) अन्तगामी । पारग । यथा,
"वेदान्तगो ब्राह्मण स्यात् क्षत्रियो विजयी भवेत्"
इति महाभारते विष्णुसहस्रनामफलं ॥ मृतः ।
अन्त नाशं गच्छतीति ॥
अन्तत, [स्] व्य, (अन्त+तस् ।) सम्भावना ।
अवयव । पञ्चम्यर्थ । शासनं । इति विश्वः ॥
(शेषादारभ्य । प्रान्तभागेन । अग्रभागेन ।
"वैश्योऽर्द्धि प्राशिताभिश्च शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः"
इति मनुः ।)
अन्तर, व्य, (अम्+अरन् तुडागमश्च ।) मध्यं ।
प्रान्तं । स्वीकार । इति विश्व ॥
अन्तरं, स्त्री, (अन्तं राति ददाति, अन्त+रा+क,
उपपदसमास ।) अवकाशः । अवधिः । परि-
धानं । अन्तर्धानं । भेदः । तादर्थ्यं । अवसर ।
मध्य । अन्तरात्मा । छिद्रं । आत्मीय । विना ।
वहि । इत्यमरः ॥ सदृश । इति तट्टीका मेदिनी
च ॥*॥ अवकाशे यथा । "मृणालसूत्रान्तरमप्य-
लभ्य" । इति कुमारसम्भवे ॥ अवधौ यथा ।
"निरन्तराभ्यन्तरवासदृष्टिषु" ॥ परिधाने यथा ।
अन्तरे शाटका परिधानीया इत्यर्थः ॥ अन्तर्द्धौ
यथा, "पर्व्वतान्तरितो रवि" ॥ भेदे यथा,—
"यदन्तरं सर्पपशैलराजयो-
र्यदन्तरं वायसवैनतेययोः" ।
इति रामायणं ॥ तादर्थ्ये यथा । त्वामन्तरेण ज्ञातं
गृहीतं त्वदर्थमित्यर्थं ॥ छिद्रे यथा । "प्रहरेदन्तरे
रिपुं" ॥ आत्मीये यथा । "अयमत्यन्तरो मम" ॥
विनार्थे यथा । "हरे त्वदालोकनमन्तरेण" ॥
वहिरर्थे यथा । अन्तरे चण्डालगृहा ग्रामा
इत्यर्थ ॥ अवसरे यथा । "अत्रान्तरे च कुलटा
कुलवर्त्मपातेत्यादि" ॥ मध्ये यथा । "नवकोर-
न्तरे जातः पर्व्वता परितो शुभाः" ॥ सदृशे

यथा "हकारस्य घकारोऽन्तरतमः"। इति भरतः ॥

अन्तरङ्ग, त्रि, (अन्त सदृश अङ्ग यस्य स।) आत्मीय। स्वसम्पर्क। यथा,—

"चरमगिरिकुरङ्गी शृङ्गकण्डूयनेन
स्वपिति सुखमिदानीमन्तरङ्गः कुरङ्ग"।

इति कालिदास ॥

अन्तरा,व्य, (अन्तरेति अन्तर+इन्+डा, टिभागलोप।) वर्ज्जन। विना। यथा,—
("न द्रक्ष्याम पुनर्जातु धार्म्मिक राममन्तरा"। इति रामायणे।) मध्यं। निकट। इति मेदिनी॥

अन्तरापत्या, स्त्री, गर्भिणी। अन्तरे उदरमध्ये अपत्य यस्या सा॥

अन्तराय, पुं, (अन्तर व्यवधान एति, अन्त+इन्+अच्, षष्ठीतत्पुरुष।) विघ्न। इत्यमर॥

("स चेत् स्वय कर्म्मसु धर्म्मचारिणा
त्वमन्तरायो भवसि च्युतो विधि"।

इति रघुवंशे।)

अन्तराल, क्ली, (अन्तरा मध्य लाति, अन्तरा+ला+क।) मध्यप्रदेश। अभ्यन्तरं। इत्यमर॥ ("मुहुरन्तरालभुवमस्तगिरि सवितुश्च योषिदमिमीत दृशा"। इति माघ। "उदेति भानुर्गगनान्तराले"। इति पद्यमाला।)

अन्तरालक, क्ली, (अन्तराल+स्वार्थे कन्।) अभ्यन्तर। इति राजनिर्घण्ट॥

अन्तरित, त्रि, (अन्तर इत प्राप्त द्वितीयातत्, अथवा अन्तर व्यवधान जातमस्य, अन्तर+तारकादित्वात् इतच्।) अन्तर्द्धानप्राप्त। व्यवहितं। तत्पर्य्याय। प्रस्तृत २। इति त्रिकाण्डशेष। व्यवकलिताङ्क। वाकि इति भाषा। इति लीलावती॥

अन्तरिक्ष,क्ली,(अन्तर्मध्ये ऋक्षाणि नक्षत्राणि यस्य तत्,पृषोदरादित्वात् ऋकारस्य इकार। अन्तरीक्षमिति पाठे ऋकारस्य ईकार।) अन्तरीक्ष। आकाश। इति छान्दस। इत्यमरटीकायां पुरुषोत्तमजातरूपसुभूतिरायादय॥ ("अन्तरिक्षगतांश्चैव मुनीन् देवांश्च पीड़येत्"। इति मनु।)

अन्तरीप, क्ली, पु, (अन्तर्गता आपोऽत्र, तत्,समासान्त अ, द्व्यन्तरुपसर्गेभ्य इति अपईदादेश।) द्वीप। इत्यमर॥

अन्तरीय, क्ली, (अन्तरस्य परिधानस्य इद अन्तर+छ तस्य ईय।) अधोवस्त्र। परिधानवस्त्र। इत्यमर॥
("नाभौ धृतश्च यद्वस्त्र आच्छादयति जानुनी।
अन्तरीय प्रशस्त तत् अच्छिन्नमुभयोस्तयो"॥
इत्येव लक्षण)

अन्तरीक्ष, क्ली, (अन्तर्मध्ये ऋक्षाणि नक्षत्राणि यस्य तत्, पृषोदरादित्वात् ऋकारस्य ईकार।) गगन। इत्यमर॥ अभ्रकधातु। इति राजनिर्घण्ट॥

अन्तरीक्षजल, क्ली, (अन्तरीक्षस्य आकाशस्य जलषष्ठीतत्।) आकाशजलं। दिव्योदक। इति राजनिर्घण्टः॥

अन्तरे, व्य (अन्तरेति अन्तर+इण्+विच् तस्य लोप।) मध्य। अभ्यन्तरं। इत्यमर॥

अन्तरेण, व्य (अन्तरेति अन्तर+इण+ण तस्य नेत्व पृषोदरादित्वात्।) मध्य। विना। व्यतिरेक। इत्यमर॥

अन्तर्गड़ः, त्रि, (अन्तर्मध्ये गड़ु ग्रीवाप्रदेशजातगलमांसपिण्डमिव निरर्थक।) निरर्थक। वृथा। इति हेमचन्द्रः॥
("काव्यान्तर्गड़ुभूता या सा तु नेह प्रशस्यते"। इति साहित्यदर्पणे।)

अन्तर्गतं, त्रि, (अन्तः अन्तकरणात् गत, अथवा अन्तर्मध्ये गतं प्राप्तम्।) विस्मृत। मध्यप्राप्त। इति हेमचन्द्र॥("अन्तर्गतशवे ग्रामे"। इति मनु। "सागरान्तर्गता केचित् केचित् पर्व्वतमाश्रिता"। इति रामायणम्। आभ्यन्तर। हृदयमध्यस्थित। अन्तःकरणस्थ। "अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थ"। इति शाकुन्तले।
"आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गत मन"॥
इति मनु।)

अन्तर्गृह, क्ली, (गृहस्य मध्ये, अव्ययीभाव।) गृहमध्य। इति नानार्थकोषशब्दार्थे अमर॥ घरेर भितर इति भाषा। (वाराणसीस्थे सप्तावरणवति स्थानविशेषे।
"अन्यस्थाने कृत पाप वाराणस्या विनश्यति।
वाराणस्यां कृत पाप पञ्चक्रोश्या विनश्यति॥
पञ्चक्रोश्या कृत पाप अन्तर्गृहे विनश्यति"।
इति काशीमाहात्म्यम्।)

अन्तर्ज्जठरं, क्ली, (जठरस्य उदरस्य मध्ये अव्ययीभाव।) कुक्षिमध्य। कोष्ठ। इत्यमर॥

अन्तर्द्दधन, क्ली, (अन्तर्मध्ये दध्यते मत्तता क्रियतेऽनेन, अन्तर्+दध्+करणे ल्युट्।) सुरावीजं। इति शब्दचन्द्रिका॥

अन्तर्द्दाह, पु, (अन्तर्मध्ये दाह सन्ताप।) कोष्ठसन्तापः। शरीराभ्यन्तरज्वाला। इति राजनिर्घण्ट॥

अन्तर्द्धा, स्त्री, (अन्तर्द्धान, अन्तर्+धा+भावे अङ् स्त्रिया टाप्।) अन्तर्द्धान। इत्यमरः॥

अन्तर्द्धान, क्ली, (अन्तर्धान, अन्तर्+धा+भावे ल्युट्।) आच्छादन। इति शब्दरत्नावली॥ तत्पर्य्याय। अन्तर्द्धा २ व्यवधा ३ अन्तर्द्धि ४ अपवारण ५ अपिधान ६ तिरोधान ७ पिधान ८ छदन ९। इत्यमर॥
("अन्तर्द्धानस्मृति कान्तिर्दृष्टि श्रोतज्ञता तथा" इति याज्ञवल्क्य।)

अन्तर्द्धि, पु, (अन्तर्द्धानम् अन्तर्+धा+भावे कि।) अन्तर्द्धान। इत्यमर॥

अन्तर्द्वार, क्ली, (अन्तर्गृहमध्यस्थ द्वार।) प्रकोष्ठद्वार। इति भरत॥ गृहाभ्यन्तरद्वार। गृहाभ्यन्तरप्रकोष्ठादिद्वार जालद्वार वा। इति स्वामी॥ तत्पर्य्यायः। प्रच्छन्न २। इत्यमर॥ पक्षद्वार

खड़्किकाद्वार। ...
"प्रच्छन्नमन्तर्द्वार...
इति शुवरस्वामी ...

अन्तर्भूत, त्रि, (...
भू+कर्त्तरि क्त।) ...
रस्थ। अन्तर्गत ...
"स एव भगवान् ...
इति पद्मपुराणे ...

अन्तर्म्मना, [स्] त्रि ...
र्गमन चेतो यस ...
व्याकुलचेता। ...

अन्तर्यामी, [न्] ...
कार्य्येषु इन्द्रियादि ...
यम्+णिच्+ ...
नियामक। तत्पर्य्या ...
पुद्गल ५ ईश्वरः ६ ...
सार॥ मनोगतज्ञे ...
("अन्तराविश्य भू ...
अन्तर्यामीश्वर ...

अन्तर्वंशिक, पुं, (व ...
वंश+ठक् तस्य इ ...
यष्टिधारी नियुक्त ...
अन्तःपुराध्यक्ष। ...

अन्तर्व्वत्नी, स्त्री, ( ...
ऽस्याः, अन्तर्+ ...
इति ङीपनुगागमौ ...
("तस्यामेवास्य ...
सुतावसूत सम्पन्नौ ...
इति रघुवंशे।)

अन्तर्व्वमि, पु (अन्त ...
यति अन्तर्+वम् ...
इति बाहुल्यात् इ ...
इति त्रिकाण्डशेष ...

अन्तर्व्वाणि, त्रि, (अन ...
विहिता वाक् यस्य ...
शास्त्रज्ञ। इत्यमर ...

अन्तर्व्विगाहन, क्ली, ...
अन्तर्+वि+गाह् ...
हेमचन्द्र॥

अन्तर्व्वेदी, स्त्री, (अन्त ...
अन्तर्वेदि इति पाठे ...
ब्रह्मावर्त्तदेश। ...
देशे ख्याता। तत्पर्य्या ...
त्रिकाण्डशेष॥

अन्तर्हास, पु, (अन्तर्व्य ...
हास। गूढ़हास्य। ...
त्रिकाण्डशेष॥ तद्वति ...
समुख स ...
"सान्तर्हास ...
इति मेघदूतम्।)

न्त, (अन्तर्+धा+क्त ।) लुक्कायितं ।
तत्पर्य्यायः । सवीतं २ गूढं ३ आवृतं ४
पिहितं ६ छन्नं ७ स्थगितं ८ अपवारित
नं १० । इति हेमचन्द्रः ॥ ("अन्तर्हिते
शैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मर-
ा" । इति शाकुन्तले ।)
[न्] पु, (अन्तेऽध्येतुमध्यापकसमीपे
अन्त+वस्+णिनि उपपदसमासः ।)
ी । शिष्यः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥
स्त्री, (अन्ताय नाशाय शय्या शयन शी
कम् । स्त्रियां टाप्) भूमिशय्या । मृत्युः ।
। इति मेदिनी ॥
शय्या मृतौ भूमिशय्यायां पितृकानने" ।
दिनी ।)
ी, [न्] पु, (अन्ते नीचजातितया ग्राम-
मवसाने तिष्ठति, अन्त+अव+शी+
उपपदसमासः ।) चण्डाल । मुनिविशेष ।
हेमचन्द्र ॥ नापितः । इत्यमरः ॥
ी, (अन्यते ज्येष्ठभगिनीत्वेन सम्बध्यते-
अन्त+करोत्यर्थे णिच्+इक् । अन्तिकेति-
ार्थे कन् स्त्रियां टाप् ।) नाट्योक्तौ ज्येष्ठा
। इति शब्दरत्नावली ॥ (अन्तिका भगिनी
अमर ।) समीपे च । यथा । "मुग्धप्रभीत-
तुरन्तिमाचो" । इति श्रीभागवत ॥
त्रि, (अन्तः सामीप्येन विद्यतेऽस्य, अन्त+
स्य इक ।) निकटं । इत्यमरः ॥ सामीप्ये
इति धरणी ॥ ("अन्तर्गतप्रार्थनमन्ति-
। "स्वनसि मृदुकर्णान्तिकचरः" । इति
तन्ते । "ननु मां प्रापय पत्युरन्तिकम्" ।
कुमारसम्भवे ।)
तम, त्रि, (अतिशयेन अन्तिकः, अन्तिक+
।) अतिनिकटं । तत्पर्य्यायः । नेदिष्ठं २ ।
मरः ॥ नेदीयान् ३ अन्तितमः ४ । इति
धरः ॥
ा, स्त्री, (अन्तं नाशाय अभिनेतृसामीप्य-
ा अस्ति, अन्त+ठन् तस्य इकः स्त्रियां
।) नाट्योक्तौ ज्येष्ठा भगिनी । इत्यमरः ॥
र्य्यायः । अत्तिका २ अत्तिका ३ । इति
ोका । चुल्ली । शातलानामौषधं । इति मे-
ी ॥ चामारकषा इति ख्याता ।
अन्तिका निकटे वाच्यलिङ्गं स्त्री शातलौषधी ।
या ज्येष्ठभगिन्याश्च नाट्योक्त्या कथ्यतेऽन्तिका" ॥
त मेदिनी ।)
काश्रय, पु, (अन्तिकस्य आश्रयः अवलम्बनं,
ीतत्पुरुषः ।) निकटाश्रयः । समीपस्थावल-
न । तत्पर्य्यायः । उपघ्नः २ । इत्यमरः ॥
म, त्रि, (अन्त+डिमच् ।) अन्ते भवः ।
रमः । अन्त्यः । इति जटाधरः ॥
"अज्ञातमृतमूर्खाणां वरमाद्यौ न चान्तिमः ।
कृत् दुःखकरावाद्यावन्तिमस्तु पदे पदे" ॥
ति हितोपदेशः ।) अतिनिकटः । इत्यमर-
ीकायां नीलकण्ठः ॥

अन्तेवासी, [न्] पु, (अन्ते विद्यामध्येतुमध्यापक-
समीपे वसति । चण्डालपक्षे तु नीचजातितया
ग्रामप्रान्ते वसति शयवासेत्यलुक्, अन्त+वस्
+णिनि ।) शिष्यः ।
("शुश्रूषन्त्यन्तेवासी कुशिकपतिराह्वापयति व" ।
इति महावीरचरिते ।
"तात । प्राचेतसान्तेवासी लवोऽभिवादयते" ।
इति उत्तरचरिते ।) चण्डालः । इत्यमरः ॥ प्रान्त-
स्थायिनि त्रि । इति विश्वः ॥
अन्त्यं, क्ली, (अन्ते भवं, अन्त+यत् ।) दशसागर-
संख्या । सहस्रलक्षकोटिः । इति लीलावती ॥
द्वादशलग्नं । इति ज्योतिषं ॥
अन्त्य, त्रि, (अन्ते भव, अन्त+यत् ।) अन्ते भवः ।
शेषोत्पन्नः । अधमः । जघन्यः । इति मेदिनी ॥
(अन्तिम । चरम । शेष ।
"असह्यपीडं भगवन् ऋणमन्त्यमवेहि मे" ।
इति रघुवंशे ।)
अन्त्यः, पु, (अन्ते भव अन्त+यत् ।) मुस्ता । इति
मेदिनी ॥ मुता घास इति भाषा । म्लेच्छ । इति
प्रायश्चित्ततत्त्वं ॥
अन्त्यज, पु, (अन्त्यो भूत्वा जायते, अन्त्य+जन्+
ड ।) शूद्रः । इति हलायुधः ॥ रजकादिसप्त-
जातयः । यथा,—
"रजकश्चर्म्मकारश्च नटो वरुड एव च ।
कैवर्त्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः" ॥
इति यमवचनं ॥ जघन्यजे त्रि ॥
अन्त्यजन्मा, [न्] पु, (अन्त्यं ब्राह्मणक्षत्रियविशां
जन्मानन्तरं जन्म यस्य सः ।) चतुर्थवर्णः । शूद्रः ।
इति रत्नावली ॥
("प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः" ।
इति मनुः ।)
अन्त्यजाति, पु, (अन्त्या जातिर्जन्म यस्य सः ।)
चाण्डालादि । यथापस्तम्बः ।
"अन्त्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्य वेश्मनि ।
स वै ज्ञात्वा तु कालेन कुर्य्यात्तत्र विशोधनं ॥
चान्द्रायणं पराकं वा द्विजातीनां विशोधनं ।
प्राजापत्यन्तु शूद्राणां तथा संसर्गदूषणे ॥
येस्तत्र भुक्तं पक्वान्नं कृच्छ्रं तेषां विनिर्दिशेत् ।
तेषामपि च येर्भुक्तं तेषामर्द्धं विधीयते" ॥
इति प्रायश्चित्ततत्त्वं ॥
अन्त्यभं, क्ली (अन्त्यं शेषस्थितं भं नक्षत्रं कर्म्म-
धारयः ।) रेवतीनक्षत्रं । मीनराशिः । इति
ज्योतिषं ॥
अन्त्यवर्णः, पु, (अन्त्यः वर्णः जातिः कर्म्मधारयः ।)
शूद्रः । इति हेमचन्द्रः ॥
अन्त्यावसायी, [न्] पुं, (अन्त्यः सन् अवस्यति,
अन्त्य+अव+सो+णिनि उपपदसमासः ।)
चाण्डालादिसप्तजातयः । यथा,—
"चाण्डालः श्वपचः क्षत्ता सूतो वैदेहकस्तथा ।
मागधायोगवौ चैव सप्तैतेऽन्त्यावसायिनः" ॥
इति अङ्गिराः ॥ (निषादस्त्रियां चण्डालजातो
मुद्दाफरास इति ख्यातः संकीर्णजातिविशेषः ।

"निषादस्त्री तु चण्डालात् पुत्रमन्त्यावसायिनं ।
श्मशानगोचरं सूते वाह्यानामपि गर्हितम्" ॥
इति मनुः ।)
अन्त्येष्टि, स्त्री, (अन्त्या अन्ते भवा इष्टिः, कर्म्म-
धारयः ।) चरमसंस्कारः । स तु शवदाहादि-
रूपः । यथा,—
"सपिण्डादिभिदाशौचसंक्षेपोऽन्त्येष्टिपद्धतिः" ।
इति शुद्धितत्त्वप्रतिज्ञायां स्मार्त्तभट्टाचार्य्यः ॥ तत्-
प्रयोगो दाहशब्दे द्रष्टव्यः ॥ तदनन्तरं पूरकपिण्ड-
प्रमाणं पिण्डशब्दे द्रष्टव्यं ॥ तस्य प्रयोगोऽत्र
लिख्यते । तत्र पिण्डदानं तत्र क्रमः । तण्डुल-
प्रसृतिद्वयं द्विः प्रक्षाल्य शेषन्या दिशि स्वाग्नि
पचेत् । तत्र पवित्रपाणिः प्राचीनावीती पातित-
वामजानुर्दक्षिणामुखो हस्तप्रमाणां चतुरङ्गुलो-
च्छ्रायां दक्षिणाप्लवां पिण्डिकां कृत्वा तदुपरि
रेखां कृत्वा दर्भानास्तीर्य्य तिलान् प्रक्षिप्य ।
ॐ अमुकगोत्रप्रेतामुकदेवशर्म्मन्नवनेनिक्ष्व इत्या-
स्तीर्णकुशोपरि सतिलजलेनावनेजयेत् । तत-
स्तिलमधुघृतादिमिश्रं तत्पिण्डं गृहीत्वा अमु-
मुकगोत्रस्य प्रेतस्यामुकदेवशर्म्मणः एतत् प्रथम-
पिण्डं पूरकं इत्यवने जनस्थाने दद्यात् । तत
पिण्डपात्रक्षालनजलेन पुनरवनेजयेत् । ॐ अमुक-
गोत्रप्रेतामुकदेवशर्म्मन्नेतत्ते ऊर्णातन्तुमयं वासः ।
तत आममृण्मयपात्रे जलाञ्जलिं पिण्डसमीपे
स्थापयेत् । गन्ध माल्यञ्च यथाशक्ति दद्यात् ।
वाष्पपर्य्यन्तं पिण्डं पश्यंस्तिष्ठेत् । ततः पिण्डा-
दिकं जले क्षिपेत् । कालेऽप्यकृतचूडोपनयनानां
अनूढकन्यानाञ्च कुशास्तरणं विनेति शेषः । एवं
कृतचूडानामुपनयनकालात् प्राक् दर्भोपरि पिण्ड-
दानं । उपनयनकाले आगते लब्धोपनयनानां
दर्भोपरि पिण्डदानं । एवं अष्टवर्षविवाहकाले
आगते ऊढस्त्रीणां दर्भोपरि पिण्डदानं । रात्रा-
वाचम्य दक्षिणामुखः प्राचीनावीती पातितवाम-
जानुः त्रिकाष्ठिकोपरि मृण्मयपात्रे उदकं तथा
पात्रान्तरे क्षीरं निधाय प्रेतात्र स्नाहि पिब
चेदं क्षीरमिति ब्रूयात् । तदेकरात्रमावश्यकं
दशरात्रं फलभूयस्त्वार्थमिति । द्वितीयपिण्डादिषु
द्वितीयं पिण्डं पूरकं इत्यादिविशेषः । द्वितीय-
पिण्डे मृण्मयपात्रद्वये जलाञ्जलिद्वयं । तृतीयादि-
पिण्डे मात्रादिवृद्धिः । येन पञ्चपञ्चाशत् पा-
त्राण्यञ्जलयश्च तावन्ति । त्र्यहाशौचप्रथमदिने
पिण्डानां त्रयं । द्वितीयदिने चतुष्टयं । तृतीये
त्रयं । प्रथममेकं द्वितीये चतुष्टयं । तृतीये पञ्चमं
वा कल्प्यं । चतुरहाशौचे प्रथमचतुर्थयोर्द्वौ द्वौ ।
द्वितीयतृतीययोस्त्रयस्त्रयः । पञ्चाहाशौचे तु प्र-
थमपञ्चमदिनयोरेकैकश्च पिण्डः । द्वितीयचतु-
र्थयोर्द्वौ द्वौ । तृतीये चत्वारः । षडहाशौचे द्वि-
तीयचतुर्थदिनयोस्त्रयस्त्रयः । शेषेष्वेकैकः । सप्ता-
हाशौचे तृतीयचतुर्थपञ्चमदिनेषु द्वौ द्वौ । शेषे-
ष्वेकैकः । अष्टाहाशौचे चतुर्थपञ्चमदिनयोर्द्वौ
द्वौ । शेषेष्वेकैकः । नवाहाशौचे तु पञ्चमदिने
द्वौ । शेषेष्वेकैकः । पक्षिणीदशाहाशौचयोश्च

आद्यद्वितीयदिनयो पञ्च पञ्च पिण्डा । द्वादशा-हाद्यशौचे नवदिनेषु नवपिण्डा । शेषदिने दशम । सद्य शौचैकाहयोरेकाह एव दशपिण्डा । अशौ-चान्तमध्ये पिण्डो देयः रात्रावपि ॥ * ॥

गङ्गाम्भस्यस्थिप्रक्षेपप्रयोगस्तु । ततः स्नात्वा-चम्य उदङ्मुख कुशत्रयजलान्यादाय ॐ तत्सदित्यु-च्चार्य अद्यामुकेत्यादि अमुकस्य एतदस्थिसम-सङ्ख्यकवर्षसहस्रावच्छिन्नस्वर्गाधिकरणकमहीय-मानत्वकामोऽमुकस्यैतान्यस्थिखण्डानि गङ्गायां प्र-क्षिपामीति सङ्कल्प्यापसव्य कृतास्थीनि पञ्चगव्येन सिक्ता हिरण्यमध्वाज्यतिलै संयोज्य मृत्तिकापुटे स्थापयित्वा दक्षिणहस्तेन तत्पुटकमादाय दक्षिणा दिश पश्यन् ॐ नमोऽस्तु धर्म्मराजायेति वदन् जलं प्रविश्य स मे प्रीतो भवत्वित्युक्तास्थि प्रक्षि-पेत् । ततो मज्जन कृत्वोत्थाय सूर्य्यं दृष्ट्वा दक्षि-णामुत्सृजेत् । इति शुद्धितत्त्व ॥ * ॥ किञ्च शातातप ।
"जलमेकाहमाकाशे स्थाप्य क्षीरञ्च मृण्मये" ।
पारस्कर । मृण्मये ता रात्रिं क्षीरोदके विहा-यसि निदध्यु । प्रेतात्र स्नाहीत्युदक पिब चेद क्षीर । इद नात्राविति गौडा । गारुडे तु ।
"अपक्वे मृण्मये पात्रे दुग्ध दद्यात् दिनत्रयम्" ।
इत्युक्तं । हेमाद्रौ पाद्मे तु दशाहमुक्त ।
"तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्र पयो जल ।
सर्व्वतापोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशन" ॥
देवजानीये कारिकाया ।
"तत्र प्रेतोपकृतये दशरात्रमखण्डित ।
कुर्य्यात् प्रदीप तैलेन वारिपात्रञ्च मार्त्तिक ॥
भोज्यात् भोजनकाले तु भक्तमुष्टिञ्च निर्व्वपेत् ।
नामगोत्रेण सम्बुध्य धरिण्यां पितृयज्ञवत्" ॥
इति निर्णयसिन्धौ ५ परिच्छेद ॥

अन्त्र, क्ली, (अन्त्यते काय सम्बध्यतेऽनेन अति बन्धने करणे ष्ट्रन् ।) पुरीतत् । इत्यमर ॥ आँत्ड़ी (आँत् इति भाषा । आँत् इति ख्यात देहबन्धको नाडीभेद ।
उक्ता सार्द्धास्त्रयो व्यामा पुंसामन्त्राणि सूरिभि ।
अर्द्धव्यामेन हीनानि स्त्रीणामन्त्राणि निर्दिशेत् ॥
इति वैद्यकम् ।)

अन्त्रवृद्धि, स्त्री, पु, (अन्त्रजन्या वृद्धि, शाक-पार्थिवादित्वात् समास मध्यमपदलोपश्च ।) रोग-विशेष । तन्निदानादि यथा,—
"वातकोपिभिराहारै शीततोयावगाहनै ।
धारणे रणभाराध्वविषमाङ्गप्रवर्त्तनै ॥
क्षोभणै क्षोभितान्यैश्च क्षुद्रान्त्रावयव यदा ।
पवनो द्विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ॥
कुर्य्याद्वङ्क्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभ श्वयथुं तदा" ।
धारणा उपस्थितस्य वेगस्य । ईरणा अनुपस्थितस्य वेगस्य प्रेरणा ।
"विषमाङ्गप्रवर्त्तन वक्रत्वेनाङ्गमोटन" ।
अन्यानि क्षोभणानि च बलवद्विग्रहकठोरधनुरा-कर्षणादीनि । तै क्षोभितः सदूष्य सञ्चालित पवन यदा क्षुद्रान्त्रावयव द्विगुणीकृत्य स्वनिवेशा-दधो नयेत् । तदा वङ्क्षणसन्धिस्थ सन् वङ्क्षण-सन्धौ ग्रन्थिरूप श्वयथुं कुर्य्यात् इत्यर्थः ॥ * ॥

उपेक्षिताया अन्त्रवृद्धेरवस्थामाह ।
"उपेक्ष्यमाणस्य मरुद्विवृद्धि-
माध्मानरुक् स्तम्भवतीञ्च कुर्य्यात् ।
स पीड़ितोऽन्त स्वनवान् प्रयाति
प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्त" ॥
उपेक्ष्यमाणस्य वृद्धिमित्यर्थ । मरुद्वृद्धिं मुष्क-वृद्धि । आध्मानरुक् स्तम्भवतीं कुर्य्यात् । तत्रा-ध्मानमुदरे रुक् वृषणयोर्मुष्कयो स्तम्भो गात्रे तद्-युक्तां कुर्य्यात् इत्यर्थ । भोजोऽप्याह ।
"अन्त्र द्विगुणमादाय वातो नयति वङ्क्षण ।
वङ्क्षणात्तद्गुणा युक्त फलकोष्यां प्रपद्यते" ॥
स मुष्कवृद्धि । अन्त उदरे प्रध्मापयन् आग-मनमार्गमुच्छून कुर्व्वन् एति प्रयाति ॥ * ॥ अ-साध्यमाह ।
"यस्यान्त्रावयवश्लिष्टान्मुष्कयोर्व्वातसञ्चयात् ।
स्यादन्त्रवृद्धि सोऽसाध्यो वातवृद्धिसमाकृति" ॥
स कीदृक् स्यादित्याकाङ्क्षायामाह । वातवृद्धि-समाकृति ॥ * ॥ सामीप्यादत्रैव ब्रध्नमाह ।
"अत्यभिष्यन्दिगुर्व्वन्नशुष्कपूत्यामिषाशनात् ।
करोति ग्रन्थिवच्छोथ दोषो वङ्क्षणसन्धिषु ॥
ज्वरशूलाङ्गसादाढ्य त ब्रध्नमिति निर्दिशेत्" ॥ * ॥
अथ वृद्धेश्चिकित्सा ।
"वृद्धावत्यासन मार्गमुपवास गुरूणि च ।
वेगाघात पृष्ठयान व्यायाम मैथुन त्यजेत् ॥
वातवृद्धौ पिबेत् स्निग्ध यथाप्राप्त विरेचन ।
सक्षीर वा पिबेत् तैल मासमेरण्डसम्भव ॥
गुग्गुल्वेरण्डज तैल गोमूत्रेण पिबेन्नरः ।
वातवृद्धि जयत्याशु चिरकालानुबन्धिनीं ॥
पित्तग्रन्थिक्रमेणैव पित्तवृद्धिमुपाचरेत् ।
जलौकाभिर्हरेद्रक्त वृद्धौ पित्तसमुद्भवे ॥
चन्दन मधुक पद्ममुशीर नीलमुत्पल ॥
क्षीरपिष्टप्रलेपेन दाहशोथरुजापह ॥
त्रिकटु त्रिफलाक्वाथ सक्षार लवण पिबेत् ।
विरेचनमिद श्रेष्ठ कफवृद्धिविनाशन ॥
लेपन कटुतीक्ष्णोष्ण स्वेदन रूक्षमेव च ।
परिषेकोपनाहौ च सर्व्वमुष्णमिहेष्यते ॥
मुहुर्मुहुर्जलौकाभि शोणित रक्तजे हरेत् ।
पिबेद्विरेचनं वापि शर्कराक्षौद्रसयुत ॥
शीतमालेपन सर्व्व सर्व्व पित्तहर तथा ।
पित्तवृद्धिक्रम कुर्य्यादामे पक्वे च रक्तजे ॥
स्वेदोमेद समुत्थे तु लेपयेत् सुरसादिना ।
शिरो विरेचनद्रव्यै सुखोष्णैर्मूत्रसयुतै ॥
संशोध्य मूत्रप्रभव वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ।
सीवन्या पार्श्वतोऽधस्तात् विध्यद्व्रीहिमुखेन वै ॥
मुष्कशोथमगच्छन्त्यामन्त्रवृद्धौ विचक्षण" ।
व्रीहिमुखेन शस्त्रविशेषेण । अगच्छन्त्यां अस-त्वया ॥
"तैलमेरण्डज पीत्वा बलासिद्ध पयोन्वित ।
आध्मानशूलोपचितामन्त्रवृद्धि जयेन्नर ॥
रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलारग्वधगोक्षुरै ।
पटोलेन वृषेणापि विधिना विहित शृत ॥
एवुतैलेन सयुक्तमन्त्रवृद्धि व्य…
रास्नादिक्वाथ ॥ * ॥
"गन्धर्व्वहस्ततैलेन वृषेणापि…
विशालामूलज चूर्ण वृद्धि हन्…
विशाला इन्द्रवारुणी ॥ * ॥
"वचासर्षपकल्केन प्रलेपः ५…
शिग्रुतकुसर्षपे पिष्टे ॥ ० य…
शुद्धसूत द्विधागन्ध मृतान्येता…
लौहं रङ्ग तथा ताम्र कांस्यञ्च…
तालक तुत्थक वापि तथा शङ्…
त्रिकटु त्रिफला चव्य विडङ्ग…
कर्चूर मागधीमूल पाठां स…
एलावीज देवकाष्ठ तथा ७
एलादिसमभागानि चूर्णयेदथ…
कषायेण हरीतक्या वटिका ८…
एका तां वटिका यस्तु नि…
अण्डवृद्धिरसाध्योऽपि तस्य नश्…
वृद्धिवाधिका वटी ॥ * ॥ अथ…
"भृष्टश्चैरण्डतैलेन सन्धक् कल्…
क्षथासैन्धवसयुक्तो ब्रध्नरोगहर…
अजाजीहवुषाकुष्ठ …
काञ्जिकेन श्वपिष्ट तल्लेपो …
गोमेद पत्र । तथा च निर्घण्टौ
"पत्र हलाह्वय राम गोमेद …
इतिवृद्धिब्रध्नधिकार' । इति …

अन्दिका, स्त्री, (अन्दति नाध्याय…
सम्बध्नाति, अदि + ण्वुल् स्त्रिया…
ज्येष्ठभगिनी इत्यमरटीकाया…
चुल्ली । इत्यमरटीकाया …
इति भाषा ।

अन्दु, स्त्री, (अन्द्यते बध्यतेऽनेन…
उणादिकत्वात् ।) हस्तिनिगड…
भाषा । स्त्रीपादभूषण । इति हे…
गस्त ॥ मल पञ्चम इत्यादि भाषा ।

अन्दुक, पुं, (अन्द्यते बध्यतेऽनेन…
उण्, तत स्वार्थे कन् ।) …
तत्पर्य्याय । निगड २ । इत्यमर…
विशेष । तत्पर्य्याय । पादकटक…
काण्डशेष ॥

अन्दू, स्त्री, (अन्द्यते बध्यतेऽनेन, अ…
ऊडुत इति स्त्रियां ऊङ् ।) …
लौहनिगड । आन्दुया इति भा…
भूषण । मल गुजरी इत्यादि…
मेदिनी ॥ (निगड । शृङ्खला…
अन्द स्त्रियां स्यान्निगडे प्रभेदे
मेदिनी ।)

अन्दूक, पु, (अन्दू + स्वार्थे कन्, …
पक्षे केहण इति ह्रस्वाभाव । …
प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिक्रामन्ति…
मन्यथा अन्दूका इति स्यात् ।) अ…
टीकाया स्वामी ॥ अन्धव् क दृ…
कविकल्पद्रुम ॥ (पाणिनिमते…

विघाते चुरादि सेट्।) दृक्क्षयो दृष्टिरहिती-भाव। तेनाकर्म्मकोऽयं। सत्ताजीवनदर्पभीति-शयनक्रीड़ानिवासक्षयाव्यक्तध्याननभोगतिस्थिति-जराजाग्रप्रमादोदये। मोहे खोटनवेगयुद्धदहन-ख्यातिच्छरोन्मादके शुद्धिखेदपलायनभ्रमणके भ्रान्तौ श्रुतौ मज्जने॥ दृप्तौ जागरशोषवश्यागम-नोत्साहे मृतौ सभ्ये स्नानौ मन्दगतौ च नृत्य-पतने चेष्टाक्रुधौ रोदने। वृद्धौ ह्रावहृतौ च सिद्धिविरतौ हर्षेर्ष्यवेशे बले कम्पोद्वेगनिमेषभङ्ग-यतनाद्ये धातवोऽकर्म्मका॥ दौर्बल्यादिषु चा-र्थेषु वर्त्तमानास्तु धातव। वाचका भावमात्रस्य यतस्तस्मादकर्म्मका॥ कौटिल्यादिषु चार्थेषु प्रोक्ता ये ते तु धातव। तदङ्गावेऽकर्म्मका स्युस्तदत्-हत्या सकर्म्मका॥ इति। अन्धयति अन्धापयति वृद्ध। इति दुर्गादास॥

अन्धं, क्ली, (अन्ध+अच्।) अन्धकार।
("सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा"। इति उत्तरचरिते।) जल। इति मेदिनी।

अन्धः, त्रि, (अन्ध+अच्।) चक्षुर्द्वयहीन। आन्धा आँध्ला इति हिन्दी भाषा। तत्पर्य्याय। अ-दृक् २। इत्यमर। ("वृद्धोऽन्धः पतिरेष मञ्चक-गत"। इति साहित्यदर्पणे।
"अन्धो मत्स्यानिवाश्नाति स नर कण्टकै सह।
यो भाषतेऽर्थवैकल्यमप्रत्यक्ष सभाङ्गत"।
इति मनुः।)

अन्ध, [स्] क्ली, (अन्ध+असुन्।) अन्न। इत्य-मरः॥

अन्धक, पु, (अन्ध+ण्वुल्।) देशभेद। इति शब्दरत्नावली॥ नृपभेद।
("सुदष्ट्रं च सुचारु च कृष्णमित्यन्धकास्त्रय"। इति हरिवंशे।) असुरभेद। इति महाभारत॥
("स व्रजत्यन्धवद्यस्मादनन्धोऽपि हि भारत।
तमन्धकोऽयं नाम्नेति प्रोचुस्तत्र निवासिन"।
इति हरिवंशे।) मुनिविशेष। इति याज्ञ-वल्क्य॥ (दृष्टिहीन। चक्षुर्द्वयहीन।
"अन्धक कुब्जकश्चैव राजकन्या च त्रिस्तनी।
त्रयोऽप्यन्यायत सिद्धा सम्मुखे कर्म्मणि स्थिते"॥
इति पञ्चतन्त्रे।)

अन्धकरिपु, पु, (अन्धकस्य असुरस्य रिपु नाशक-तया शत्रु, षष्ठीतत्पुरुष।) शिव। इत्यमर॥ श्लेषकाव्यादौ अन्धकारनाशकत्वात् सूर्य्याग्नि-चन्द्रेषु च वर्त्तते॥

अन्धकार, पु, क्ली, (अन्धमन्धकवत् करोति, अन्ध+कृ+अण्।) तेजसामान्याभाव। आँधार इति भाषा। तत्पर्य्याय। ध्वान्त २ तमिस्र ३ तिमिर ४ तम ५। इत्यमरः॥ ("अथान्धकार गिरिगह्वराणां"। इति रघुवंशे।) भूच्छाय ६। इति राजनिर्घण्ट॥ महान्धकारे अन्धतमस। ७ सर्व्वव्यापकान्धकारे सन्तमस। ८ अल्पान्धकारे अवतमस ९। इत्यमरः॥ अस्य गुणा। भयदृष्टि-तेजोऽवरोधकारित्व। तिक्तत्व। सर्व्वथाधिकर-त्वञ्च। इति राजवल्लभः॥

अन्धकासुहृद्, पु, (अन्धकस्य असुरस्य असुहृत्, नाशकतया शत्रु, षष्ठीतत्पुरुष।) शिवः। इति हेमचन्द्र॥

अन्धकूप, पुं, (अन्धमन्धकार करोति, अन्ध+करो-त्यर्थे णिच्+पचाद्यच्, तादृश कूप।) सान्ध-कारकूपः। इति त्रिकाण्डशेष॥ आँधुया पात्कुया इति भाषा।
("मज्जत्यात्मा भक्तिहीनो महामोहमये भवे।
अन्धकूपे निरालम्बश्छिन्नरज्जुर्यथा घट"॥
इति सद्भावे।)

अन्धतमस, क्ली, (अन्धयति, अन्ध+अच्, अन्धं तम कर्म्मधारय, समासान्त अच्।) निविडा-न्धकार। इत्यमर॥
("प्रध्वंसितान्धतमसस्तत्रोदाहरणं रवि"। इति शिशुपालवधे।)

अन्धतामस, क्ली, (तम एव तामस प्रज्ञादित्वात् स्वार्थे अण्।) निविड़ान्धकार। महान्धकार। इत्यमरटीकायां स्वामी॥

अन्धतामिस्र, क्ली, (तमिस्रैव तामिस्रं, स्वार्थे अण्, अन्ध निविड तामिस्र कर्म्मधारय।) निविड़ा-न्धकारमयनरकविशेष। पञ्चप्रकाराज्ञानान्तर्ग-ताज्ञानविशेष। देहनाशे अहमेव मृतोऽस्मीति बुद्धि। इति भारतभागवते,—
("एकविंशतिविधनरकान्तर्गतद्वितीयनरकवि-शेषः" स च निविडान्धकारमय। "तस्या धर्म्म-पत्नीमन्धतामिस्रमभ्यध्यायत्"। इति महावीर-चरिते।)

अन्धमूषिका, स्त्री, (अन्ध दृष्टिविघाते, अन्ध+भावे घञ्, अन्ध दृष्टिविघात मुष्णाति तत्सेवनेन नाश-यति, मुष्+ण्वुल् पृषोदरादित्वात् दीर्घ स्त्रियां टाप्।) देवताडवृक्ष। इति शब्दचन्द्रिका॥

अन्धाहि, पु, स्त्री, (अन्ध अहि सर्प इव।) मत्स्य-भेद। इति त्रिकाण्डशेष॥ कुँचिया इति ख्यात।

अन्धिका, स्त्री, (अन्ध+ण्वुल् स्त्रियां टाप्।) द्यूत-विशेष। रात्रि। इति मेदिनी॥ सर्षपी। इति हेमचन्द्र॥ स्त्रीविशेष। चक्षूरोगविशेष। इति शब्दरत्नावली॥

अन्धु, पु, (अन्ध+उण्।) कूप। इत्यमर॥

अन्धुल, पु, (अन्ध+उलच्।) शिरीषवृक्ष इति शब्दचन्द्रिका॥

अन्ध्र, पु, (अन्धयति गीतेन मृगान् अन्धवत् करोति, अन्ध+कर्त्तरि र।) व्याध। मृगया-जीवी। इति कश्चित् संग्रहकार। (वैदेहिकात् कारावरस्त्रियां जातो जातिविशेष, स तु सतत ग्रामबहिर्व्वासी मृगयाजीवी च।
"कारावरनिषादात् तु चर्म्मकारः प्रसूयते।
वैदेहिकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ"॥
इति मनु।)

अन्नं, क्ली, (अद्+कर्म्मणि क्त।) सिद्धतण्डुल। यथा,—
"शस्यं क्षेत्रगतं प्राहुः सतुष धान्यमुच्यते।
आमं वितुषमित्युक्तं स्विन्नमन्नमुदाहृत"॥
इति श्राद्धतत्त्वधृतवशिष्ठवचन॥ तत्पर्य्यायः। भक्त २ अन्ध ३ भिस्सा ४ ओदनं ५ दीदिविः ६। इत्यमर॥ भिस्सा ७। इति तट्टीका॥ कूरं ८। इति राजनिर्घण्टः॥ अट्ट ९ कशिपु १० जीवातु ११। इति जटाधर॥ कूर १२ आपूपिकं १३ जीवन्ति १४ प्रसादनं १५। इति शब्दरत्ना-वली॥ * ॥ अस्य गुणा। बुद्धिशुक्रप्रीतिपुष्टि-धात्विन्द्रियबलकारित्व। गुरुत्व। क्षुधाक्षयरोग-श्रमकार्श्यनाशित्वञ्च॥ * ॥ नवान्नगुणा। श्लेष्म-कारित्व। स्वादुत्वं। सुस्निग्धत्व। तृष्णात्वं। गुरु-त्वञ्च॥ * ॥ पुराणान्नगुणा। विरसत्वं। रूक्षत्वं। पथ्यत्व। अग्निकारित्वञ्च॥ * ॥ उष्णान्नगुणा। प्रशंसनीयत्व। हृद्यत्वं। अग्निकारित्व। वायुश्लेष्म-नाशित्व। रक्तपित्तप्रकोपकारित्वञ्च॥ * ॥ अत्यु-ष्णान्नगुणा। बलनाशित्व॥ * ॥ शीतशुष्कान्नयो-र्गुणा। दुर्ज्जरत्व॥ * ॥ अतिक्लिन्नान्नगुणा। ग्लानि-कारित्व॥ * ॥ तण्डुलान्वितान्नगुणा। दुर्जरत्व॥ * ॥ जलधौतसद्योऽन्नगुणा। शीघ्रपाकित्व। हिमत्व। लघुत्वञ्च॥ * ॥ रात्रिस्थितजलयुक्तान्नगुणौ। त्रि-दोषकोपकारित्व। रूक्षत्वञ्च॥ * ॥ भृष्टतण्डुलान्न-गुणौ। लघुत्व। अग्निप्रदीपनत्वञ्च। इति राज-वल्लभ॥ * ॥ धान्य। इति राजनिर्घण्ट॥ विष्णु। इति तस्य सहस्रनाममध्ये पठितं॥ अदनीयद्रव्य-मात्र॥ अन्नसाधन यथा,—
"सुधौतांस्तण्डुलान् स्फीतांस्तोये पञ्चगुणे पचेत्।
तद्भक्त प्रस्रुतं चोष्णं विशद गुणवन्मत"॥
तद्गुणा।
"भक्त वह्निकर पथ्य तर्पणं रोचनं लघु।
अधौतमस्रुतं शीत गुर्व्वरुच्य कफप्रदं"॥
इति भावप्रकाश॥ * ॥ तद्दानफलं यथा,—
"वारिदस्तृप्तिमायाति सुखमक्षय्यमन्नद"॥
अन्नस्य प्रजापतिर्द्देवता। अक्षयसुखप्राप्ति फलं। प्रतिग्रहे सुष्टिग्रहण। इति शुद्धितत्त्व॥ अपि च,
"ब्रह्महत्याकृत पाप अन्नदानात् प्रणश्यति।
अन्नद पापकर्म्मापि पूत स्वर्गे महीयते"॥
इति प्रायश्चित्ततत्त्वं॥ * ॥ अथ प्रजापतिदैवतान्न-दानावर्त्त। तत्र अन्नदानस्तुति। ब्रह्मपुराणे।
"अन्ने प्रतिष्ठिता लोका अन्नमाश्रित्य पर।
तस्मादन्न प्रशंसन्ति सदैव पितृमानवा॥
अन्नस्य हि प्रदानेन नरो याति परा गति।
सर्व्वकामसमायुक्त प्रेत्य चेहाधिकं शुभ"॥
तथा,—
"अन्नमूर्ज्जस्कर लोके दत्त्वोर्ज्जस्वी भवेन्नर।
सता पन्थानमाश्रित्य सर्व्वपापै प्रमुच्यते"॥
महाभारते।
"अन्नद पशुमान् पुत्री धनवान् भोगवानपि।
प्राणवांश्चापि भवति रूपवांश्च तथा नृप"॥
तथा,—
"अन्नदस्य मनुष्यस्य बलमोजो यशांसि च।
कीर्त्तिश्च वर्द्धते शश्वत्त्रिषु लोकेषु पाण्डव"॥
आग्नेयपुराणे। अन्नस्तुत्यनन्तरं।
"तस्मादन्न सदा देहि श्रद्धया नृपसत्तम।

ब्रह्महत्यादिकं पापं अन्नदस्य प्रणश्यति” ॥
तथा,—
“अन्नदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति ।
पुण्यं यशस्यमायुष्यं बलपुष्टिविवर्द्धनं ॥
सर्व्वमन्नस्य दानेन भवतीति विनिश्चयः ।
महाकाञ्चनचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः ॥
अन्नदस्योपतिष्ठन्ति विमानानि सुरालये ।
भक्ष्यभोज्यमयाः शैला दिव्यरूपाद्यलङ्कृताः ॥
हृष्टपुष्टजना नित्यमुपतिष्ठन्ति चायतः ।
हस्त्यश्वरथयानैश्च क्रीडमानाश्च ते नराः” ॥
पद्मपुराणे ।
“आपर्व्वतनदी वापी पृथिवी सर्व्वकामदा ।
विधिना तेन सा दत्ता योऽन्नं ददाति सर्व्वदा ।
क्षुधिते यः प्रयच्छेत अन्नं श्रद्धासमन्वितः ।
ब्रह्मणो भवने स वै ब्रह्मणा सह मोदते ॥
चान्द्रवारुणलोकाश्च याम्याः कौवेरकास्तथा ।
गोलोको ब्रह्मलोकश्च सर्व्वे चान्ने प्रतिष्ठिताः ॥
ददत् कन्यामलङ्कृत्य हस्त्यश्वञ्च महाधनं ।
अन्नदानस्य चैतानि कलां नार्हन्ति षोडशीं” ॥
विष्णुधर्म्मोत्तरे ।
“यावतो ग्रसते ग्रासान् विद्वान् विप्रः सुसंस्कृतः ।
अन्नप्रदस्य तावन्तः क्रतवः परिकीर्त्तिताः” ॥ * ॥
अथान्नदानधर्म्माः । यमः ।
“आदरेण च भक्त्या च यदन्नमुपदीयते ।
तत् प्रीणयति पात्राणि मास्मैतं मानवर्ज्जितं ॥
दुर्लभस्तु मुदा दाता मुदा भोक्ता च दुर्लभः ।
मुदा दाता च भोक्ता च तावुभौ स्वर्गगामिनौ ॥
योऽन्नं बहुमतं भुङ्क्ते यश्चान्नं नावमन्यते ।
यश्चान्नं प्रीतितो दद्यात् तस्यान्नमुपतिष्ठते ॥
प्रीतितोऽन्नञ्च यो दद्यात् गृह्णीयात् योऽभिपूज्य च ।
प्रीतितोऽत्त्ययमश्नाति पूजितः स्वर्गमश्नुते ॥
यो दद्यादप्रियेणान्नं यश्चान्नं नाभिनन्दति ।
तावुभौ नरके मग्नौ वसेतां शरदां शतं” ॥ * ॥
अथान्नदानविशेषफलविशेषपरिभाषा ।
कूर्म्मपुराणे ।
“गृहस्थायान्नदानेन फलं नाप्नोति मानवः ।
आममेवास्य दातव्यं दत्त्वाप्नोति परां गतिं” ॥
अन्नदानेन पक्वान्नदानेन फलं नाप्नोति ।
इति गृहस्थायामान्नदानेन यादृशं फलं तादृशं
पक्वान्नदानेन नाप्नोतीत्यर्थः । गृहस्थस्यामान्नदाने
सति तस्य पञ्चयज्ञनिष्पत्तेः ॥ * ॥
अथ सामान्यान्नदानं नन्दिपुराणे ।
“अन्नाद्भूतानि जातानि देवा ह्यन्नाद्यकाङ्क्षिणः ।
न तस्य पात्रादिविधिर्व्विना श्राद्धं प्रकीर्त्तितं” ॥
तथा,—
“अपि कीटपतङ्गानां शुना चाण्डालयोनिना ।
दत्त्वान्नं लोकमाप्नोति प्राजापत्यं समासतः ॥
बान्धवेभ्योऽतिथिभ्योऽन्नं पुत्रेभ्योऽन्नं प्रयच्छतः ।
दीनान्धकृपणानाञ्च स्वर्गः स्यादन्नदायिनः ॥
मासमात्रं नरो दत्त्वा अन्नानामन्नमम्भसि ।
स्वर्गे वसेत् समानान्तु शतं भोगैर्म्मनोरमैः ॥
मासे मासे फलं ह्येतद्विधिवत् परिकीर्त्तितं ।
एतदेवायने प्रोक्तं द्विगुणं पुण्यगौरवं ॥
अन्नं विना ह्यशाकस्य दत्त्वान्नं देशकालतः ।
फलं पञ्चगुणं प्रोक्तं सर्व्वभावसमन्वित” ॥
सर्व्वभावसमन्वित इति सम्बोधनं । अत्र यज-
मानः प्राणिमात्रेभ्यो गृहीतोदपूर्णताम्रपात्रः
उदङ्मुखः सङ्कल्प्य यथेष्टकालावधि अन्नं दद्यात् ।
तद्यथा । ॐ नन्दिपुराणोक्तप्राणिमात्रान्नदान-
फलप्राप्तिकामोऽहं प्राणिभ्योऽन्नं दास्ये । तदवधि
यथासम्भवं प्राणिमात्रेभ्यः स्वगृहे अन्यत्र वा
भक्तशालां कृत्वा अविच्छिन्नमन्नं देयं । अतएव
धार्म्मिकास्ताम्रपट्टविलिखितां भूमिं समुपकल्प्य
आचन्द्रार्कस्थायिनीं भक्तशालां ददाति ॥ * ॥
वायुपुराणे ।
“क्षिप्रमत्यर्णमक्लिष्टं दद्यादन्नं बुभुक्षिते ।
सव्यञ्जनं सदा स्निग्धं भक्ष्यं सत्कृत्य यत्नतः” ॥
क्षिप्रमतिथिप्राप्त्यनन्तरमेव । अक्लिष्टमनुपहतं ।
भक्ष्यमप्रतिषिद्धं ।
“तरुणादित्यसङ्काशं विमानं हंसवाहनं ।
अन्नदो लभते तिस्रः कल्पकोटीस्तथैव च ॥
अन्नदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति ।
अन्नाद्भूतानि जायन्ते जीवन्ति च न संशयः ॥
जीवदानात् परं दानं न किञ्चिदपि विद्यते ।
अन्नाज्जीवति त्रैलोक्यं त्रैलोक्यस्येह तत्फलं” ॥
बुभुक्षितेभ्योऽन्नं पूर्व्ववत् सकल्प्य दद्यात् ।
ॐ वायुपुराणोक्तान्नदानफलप्राप्तिकामोऽहं बुभु-
क्षितेभ्यः सव्यञ्जनं स्निग्धमन्नं दास्ये । एवं सङ्कल्प्य
बुभुक्षितानन्विष्य तेभ्यो यथोक्तमन्नं दद्यात् ॥ * ॥
महाभारते ।
“श्रान्ताय क्षुधितायान्नं यः प्रयच्छति भूमिप ।
स्वायम्भुवं महत् स्थानं स गच्छति नराधिप” ॥
श्रान्ताय क्षुधितायान्नं पूर्व्ववत् सङ्कल्प्य दद्यात् ।
ॐ स्वायम्भुवस्थानप्राप्तिकामोऽहं श्रान्ताय क्षुधि-
तायान्नं दास्ये । इति सङ्कल्प्य यथाकाले श्रान्तं
क्षुधितमनुसन्धायान्नं तस्मै दद्यात् ॥ * ॥ तथा,—
“सङ्घो ददाति यश्चान्नं सदैकाग्रमना नरः ।
न स दुर्गाण्यवाप्नोति ह्येवमाह पराशरः” ॥
अभीष्टसमये सद्ब्राह्मणक्षत्त्रियवैश्यशूद्रेभ्योऽन्नं
पूर्व्ववत् सङ्कल्प्य दद्यात् । ॐ महाभारतोक्तस-
द्गोचरान्नदानफलप्राप्तिकामोऽहं सङ्घोऽन्नं दास्ये ।
ततः प्रभृति अभिमतकाले सङ्घो ब्राह्मणादि-
भ्योऽन्नं दद्यात् ॥ * ॥ तथा,—
“यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमध्वनि वर्त्तते ।
श्रान्तायादृष्टपूर्व्वाय तस्य पुण्यफलं महत्” ॥
अपरिक्लिष्टमनुपहतं । यथोक्तप्राणिनेऽन्नं पूर्व्व-
वत् सङ्कल्पयेत् । ॐ महापुण्यफलप्राप्तिकामोऽहं
श्रान्तायाध्वगाय अदृष्टपूर्व्वायान्नं दास्ये । इति
सङ्कल्प्य यथाकालमध्वगमन्विष्य यथोक्तमन्नं तस्मै
दद्यात् । अथाध्वनि वर्त्तते इति शब्दनिर्द्देशात्
पथि गच्छते पथिकाय वर्त्मनि कुटीं कृत्वा तत्र-
तत्रैवान्नं दद्यात् ॥ * ॥ विष्णुधर्म्मोत्तरे ।
“मृष्टान्नं मानवो दत्त्वा मृष्टान्नार्थिनि काङ्क्षितं ।
अक्षयं फलमाप्नोति स्वर्गलोकञ्च गच्छति” ॥
मृष्टं संस्कृतं । सव्यञ्जनमन्नं पूर्व्ववत् सङ्कल्प्य
र्थिभ्यो दद्यात् । विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तमृष्टान्नाका
गोचरमृष्टान्नदानफलप्राप्तिकामोऽहं यथाश
मृष्टान्नार्थिभ्यो मृष्टमन्नं दास्ये । इति सङ्क
मृष्टान्नार्थिनोऽनुसन्धाय तेभ्यो यथाशक्ति मृष
दद्यात् ॥ * ॥ तथान्नदानप्रकरणे ।
“सहस्रपरिवेशस्तु नरकान्तु न गच्छति ।
विमानेनार्कवर्णेन स्वर्गलोके महीयते” ॥
सहस्रपरिवेशः सहस्राय मनुष्येभ्योऽन्नप्रदः ॥ य
सम्भवं सहस्राय मनुष्येभ्यो नित्यमन्नं पूर्व्व
सङ्कल्प्य दद्यात् । ॐ विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तसह
परिवेशनफलप्राप्तिकामोऽहं यथासम्भवं सह
मनुष्येभ्यो व्यञ्जनादिसहितमन्नं दास्ये ।
सङ्कल्प्य यथाशक्ति नानादिने सहस्रं मनुष
भोजयेत् । देवलः ।
“कृत्वापि पातकं कर्म्म यो दद्यादन्नमीप्सितं ।
ब्राह्मणानां विशेषेण स निहन्त्यात्मनस्तमः” ॥
विशेषेण इत्यभिधानात् अब्राह्मणेऽपि फलमे
भवत्येव । एवञ्च सामान्येनान्नदानमिदं । ई
मित्यर्थिनः स्पृष्ट्वा यथायथमभिमतमन्नमुत
तेभ्यः पूर्व्ववत् सङ्कल्प्य दद्यात् । ॐ ब्राह्मणप्रमु
नानावर्णेभ्य आत्मीयतमःक्षयकामोऽहं यथास
ईप्सितमन्नं दास्ये । ततः प्रभृति यथायथ
स्थितेभ्य ईप्सितमन्नं दद्यात् । इत्यादि वल्लाल
कृतदानसागरे अन्नदानावर्त्तः ॥
अन्न, पुं, ( अनित्यनेन अन + ननृ, अद्यते
अद् + क्त वा । ) सूर्य्यः । इति सिद्धान्त
मुदी ॥
अन्न, त्रि, ( अनित्यनेन अन + ननृ । ) भुक्त
खादितं । इति मेदिनी ॥
अन्नकोष्ठक, पुं, ( कोष्ठमिव, कोष्ठ + कन् अन्न
तण्डुलादेः कोष्ठकः रक्षणस्थानं । ) तण्डुला
रक्षणस्थानं । इति हेमचन्द्रः ॥ गोला क
इत्यादि भाषा ।
अन्नगन्धि, पुं, ( अन्नस्येव अपक्वतया गन्धोय
स । उपमानाच्च इति पाणिनिसूत्रेण
समासान्तः । ) उदरामयरोगः । इति त्रिकाण
शेषः ॥
अन्नपूर्णा, स्त्री, ( अन्नं पूर्णं यस्या सा राजदन्त
दित्वात् परनिपातः । ) स्वनामख्यातदेवीविशेषः
तन्मन्त्रादि यथा,—
“माया हृद्भगवत्यन्ते माहेश्वरिपदं ततः ।
अन्नपूर्णे ठयुगलं मनुः सप्तदशाक्षरः” ॥
कल्पे च ।
“प्रणवाद्या यदा देवी तदा सप्तदशाक्षरी ।
अन्नप्रदा मोक्षदा च सदा विभवदायिनी ॥
मायाद्या च यदा देवी तदा सा सम्पत्प्रदा ।
श्रीबीजाद्या यदा देवी तदा सुखविवर्द्धिनी ॥
वाग्बीजाद्या यदा विद्या वागीशत्वप्रदायिनी ।
कामाद्या च यदा विद्या सर्व्वकामप्रदायिनी ॥
तारमायादिका विद्या भोगमोक्षैकदायिनी ।
माया श्रीयुग्मबीजाद्या सदा विभवदायिनी ॥

श्रीमाया युग्मबीजाद्या सर्व्वसम्पत्तिपूरणी" ॥ * ॥ इत्था पूजा प्रातःकृत्यादिपीठन्यासान्तं विधाय हृत्पद्मस्य केशरेषु मध्येषु च भुवनेश्वरीपीठ-मन्त्रान्तं पीठशक्तीर्न्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्य्यात्। यथा शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः। हृदि अन्नपूर्णायै देवतायै नमः। तन्त्रैव।

"एतेषां मन्त्रराशीनां ऋषिर्ब्रह्मा उदाहृतः।
पङ्क्तिः छन्दः समाख्यातं देवता चान्नपूर्णिका" ॥

ततः कराङ्गन्यासौ। क्रीँ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। क्रीँ हृदयाय नमः। इत्यादि सर्व्वत्र मायाबीजेन कुर्य्यात्। तथा च निबन्धे।

अङ्गानि मायया कुर्य्यात् ततो देवीं विचिन्तयेत्।

कल्पे च।

"यद्बीजाद्या भवेद्विद्या तद्बीजेनाङ्गकल्पना" ॥*॥

ततो ध्यानं।

"रक्तां विचित्रवसनां नवचन्द्रचूडा-
मन्नप्रदाननिरतां स्तनभारनम्राम्।
नृत्यन्तमिन्दुसकलाभरणं विलोक्य
हृष्टां भजे भगवतीं भवदुःखहन्त्रीम्" ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्य्यात्। ततः सामान्योक्तपीठपूजां विधाय भुवनेश्वरी-मन्त्रोक्तजयादिपीठमन्त्रान्तां पीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्य्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत। यथा केशरेष्वग्निकोणे क्रीँ हृदयाय नमः। नैर्ऋते क्रीँ शिरसे स्वाहा। वायव्ये क्रीँ शिखायै वषट्। ऐशान्यां क्रीँ कवचाय हुँ। मध्ये नेत्रत्रयाय वौषट्। चतुर्दिक्षु क्रीँ अस्त्राय फट्। अष्टदलेषु पूर्व्वादिषु ब्राह्म्यै माहेश्वर्य्यै कौमार्य्यै वैष्णव्यै वाराह्यै इन्द्राण्यै चामुण्डायै महालक्ष्म्यै प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्। तन्त्रैव।

"दलेषु पूजयेदेता ब्राह्म्याद्याः क्रमशः सुधीः"।

शूद्रस्य प्रणवश्चतुर्दशस्वरो बिन्दुयुक्॥ कालिकापुराणे मन्त्रस्य सेतुकरणे उक्तत्वात्। ततः इन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयित्वा धूपादि विसर्ज्जनान्तं कर्म्म समापयेत्॥*॥ अस्य पुरश्चरणं जपः षोडशसहस्रसङ्ख्यः। तथा च।

"यथाविधि जपेन्मन्त्रं वसुयुग्मसहस्रकम्।
साज्येनान्नेन जुहुयात्तद्दशांशमनन्तरम्"॥

अथ मन्त्रं प्रणवादिरष्टादशाक्षरः। मायादि श्रीबीजादिश्च। तथा माया विना प्रणवादि कामादि श्रीबीजादि वाग्भवादिश्च सप्तदशाक्षरः। कवचे तथा प्रतिपादनात्। विशेषस्तु यद्यद्बीजादिको मन्त्रस्तेनैवाङ्गप्रकल्पना॥*॥

अथान्नपूर्णास्तोत्रं।

"नमः कल्याणदे देवि नमः शङ्करवल्लभे।
नमो भक्तप्रिये देवि अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते॥
नमो मायागृहीताङ्गि नमः शङ्करवल्लभे।
माहेश्वरि नमस्तुभ्यमन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते॥
महामाये शिवधर्म्मपत्नीरूपे हरप्रिये।
वाञ्छादात्रि सुरेशानि अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते॥
उद्यद्भानुसहस्राभे नयनत्रयभूषिते।
चन्द्रचूडे महादेवि अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते॥
विचित्रवसने देवि अन्नदानरतेऽनघे।
शिवनृत्यकृतामोदे अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते॥
साधकाभीष्टदे देवि भवदुःखविनाशिनि।
कुचभारनते देवि अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते॥
षट्कोणपद्ममध्यस्थे षडङ्गयुवतीमये।
ब्रह्माण्यादिस्वरूपे च अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते॥
देवि चन्द्रकृतापीडे सर्व्वसाम्राज्यदायिनि।
सर्व्वानन्दकरे देवि अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते॥
इन्द्राद्यर्च्चितपादाब्जे रुद्रादिरूपधारिणि।
सर्व्वसम्पत्प्रदे देवि अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते॥
पूजाकाले पठेद्यस्तु स्तोत्रमेतत् समाहितः।
तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीर्जायते नात्र संशयः॥
प्रातःकाले पठेद्यस्तु मन्त्रजापपुरःसरं।
तस्य चान्नसमृद्धिः स्याद्वर्द्धमाना दिने दिने॥
यस्मै कस्मैन दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन।
प्रकाशात् कार्य्यहानिः स्यात्तस्माद्यत्नेन गोपयेत्"॥

इत्यन्नपूर्णास्तोत्रं समाप्तं॥*॥

अथ अन्नपूर्णाकवचं॥

"कथितास्त्वान्नपूर्णाया या या विद्याः सुदुर्लभाः।
कृपया कथिताः सर्व्वाः श्रुतास्त्वधिगता मया॥
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि कवचं यत् पुरोदितं।
त्रैलोक्यरक्षणं नाम कवचं मन्त्रविग्रहं" ॥

ईश्वर उवाच।

"शृणु पार्व्वति वक्ष्यामि सावधानावधारय।
त्रैलोक्यरक्षणं नाम कवचं ब्रह्मरूपकं॥
ब्रह्मविद्यास्वरूपञ्च महदैश्वर्य्यदायकं।
पठनाद्धारणान्मर्त्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्य्यभाग्भवेत्॥
त्रैलोक्यरक्षणस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः।
छन्दो विराडन्नपूर्णा देवता सर्व्वसिद्धिदा॥
धर्म्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः।
क्रीँ नमो भगवत्यन्ते माहेश्वरिपदं ततः।
अन्नपूर्णे ततः स्वाहा चैषा सप्तदशाक्षरी॥
पातु मामन्नपूर्णा सा या ख्याता भुवनत्रये।
विमाया प्रणवाद्यैषा तथा सप्तदशाक्षरी॥
पात्वन्नपूर्णा सर्व्वाङ्गं रत्नकुम्भान्नपात्रदा।
श्रीबीजाद्या तथा चैषा द्विरन्धार्णा तथा मुखं॥
प्रणवाद्या भ्रुवौ पातु कण्ठं वाग्बीजपूर्व्विका।
कामबीजादिका चैषा हृदयन्तु महेश्वरी॥
तारं श्रीँ ह्रीँ नमोऽन्ते च भगवति पदं ततः।
माहेश्वरि पदं चान्नपूर्णे स्वाहेति पातु मे॥
नाभिमेकोनविंशार्णा पायान्माहेश्वरी सदा।
तारं माया रमा कामः षोडशार्णास्ततः परः॥
शिरःस्था सर्व्वदा पातु विंशत्यर्णात्मिका च या।
करौ पादौ सदा पातु रमा कामोद्भवस्तथा॥
ध्वजश्च सर्व्वदा पातु विंशत्यर्णात्मिका च या।
अन्नपूर्णा महाविद्या ह्रीँ पातु भुवनेश्वरी॥
शिरः श्रीँ ह्रीँ तथा क्लीञ्च त्रिपुटा पातु मे गुदं।
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि पुनन्तु मां॥
इन्द्रो मां पातु पूर्व्वे च वह्निकोणेऽनलोऽवतु।
यमो मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां निर्ऋतिश्च मां॥
पश्चिमे वरुणः पातु वायव्यां पवनोऽवतु।
कुवेरश्चोत्तरे पातु मामैशान्यां शिवोऽवतु॥
ऊर्द्ध्वाधः सततं पातु ब्रह्मानन्तो यथाक्रमात्।
वज्राद्याश्चायुधाः पान्तु दशदिक्षु यथाक्रमात्॥
इति ते कथितं पुण्यं त्रैलोक्यरक्षणं परं।
यद्धृत्वा पठनाद्देवाः सर्व्वैश्वर्य्यमवाप्नुयुः॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च कवचं धारणाद्यतः।
सृजत्यवति हन्त्येव कल्पे कल्पे पृथक् पृथक्॥
पुष्पाञ्जल्यष्टकं देव्यै मूलेनैव पठेत्ततः।
युगायुतकृतायास्तु पूजायाः फलमाप्नुयात्॥
प्रीतिमन्योन्यतः कृत्वा कमला निश्चला गृहे।
वाणी वक्त्रे वसेत्तस्य सत्यं सत्यं न संशयः॥
अष्टोत्तरशतं चास्य पुरश्चर्य्याविधिः स्मृतः।
भूर्ज्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि॥
कण्ठे वा दक्षिणे वाहौ सोऽपि सर्व्वतपोमयः।
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि तद्गात्रं प्राप्य पार्व्वति।
माल्यानि कुसुमान्येव भवन्त्येव न संशयः"॥

इति भैरवतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे अन्नपूर्णाकवचं समाप्तं। इति तन्त्रसारः॥*॥ तस्याः स्तुत्यन्तरं यथा। ॐ नमोऽन्नपूर्णायै।

"ॐ नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्य्यरत्नाकरी
निर्द्धूताखिलघोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी।
प्रालेयाचलवंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥१॥
नानारत्नविचित्रभूषणकरी हेमाम्बराडम्बरी
मुक्ताहारविलम्बमानविलसद्वक्षोजकुम्भान्तरी।
काश्मीरागुरुवासिताङ्गरुचिरा काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥२॥
योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्म्मैकनिष्ठाकरी
चन्द्रार्कानलभासमानलहरी त्रैलोक्यरक्षाकरी।
सर्व्वैश्वर्य्यकरी तपःफलकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥३॥
कैलासाचलकन्दरालयकरी गौरी उमा शङ्करी
कौमारी निगमार्थगोचरकरी ॐकारबीजाक्षरी।
मोक्षद्वारकवाटपाटनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥४॥
दृश्यादृश्यविभूतिभावनकरी ब्रह्माण्डभाण्डोदरी
लीलानाटकसूत्रभेदनकरी विज्ञानदीपाङ्कुरी।
विश्वाधीशमनःप्रमोदनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥५॥
गुर्व्वी सर्व्वजनेश्वरी जयकरी मातान्नपूर्णेश्वरी
नारीनीलसमानकुन्तलधरी नित्यान्नदानेश्वरी।
सर्व्वानन्दकरी सदा शिवकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥६॥
आदिक्षान्तसमस्तवर्णनकरी शम्भुप्रभा भास्करी
काश्मीरा त्रिपुरेश्वरी त्रिलहरी नित्याङ्कुरी शर्व्वरी।
कामाकाङ्क्षकरी महोत्सवकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥७॥
चन्द्रार्कानलकोटिपूर्णवदना वालार्कवर्णेश्वरी
चन्द्रार्काग्निसमानकुण्डलधरी चन्द्रार्कबिम्बाधरी।
मालापुस्तकपाशकाङ्कुशधरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥८॥

दर्व्वीपाकसुवर्णरत्नघटिका दक्षे करे संस्थिता
वामे चारुपयोधरी रसभरी सौभाग्यमाहेश्वरी।
भक्ताभीष्टकरी फलप्रदकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी ॥९॥
सर्व्वानाशकरी महाभयहरी माता कृपासागरी
दाक्षानन्दकरी निरामयकरी विश्वेश्वरी श्रीधरी।
साक्षान्मोक्षकरी सदाशिवकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी ॥१०॥
अन्नपूर्णे सदा पूर्णे शङ्करप्राणवल्लभे।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि नमोऽस्तु ते ॥११॥
इति श्रीशङ्कराचार्य्यविरचितमन्नपूर्णास्तोत्रं समाप्तं ॥ क्वचित् पुस्तके शङ्कराचार्य्यस्थाने वेदव्यास इति पाठः ॥

अन्नप्राशन, क्ली, ( अन्नस्य प्राशनं भोजनं यस्मिन् तत्। अन्न+प्र+अश+भावे ल्युट्।)' षष्ठे मासि अष्टमे वा बालकस्य पञ्चमे मासि सप्तमे वा बालिकाया प्रथमान्नभक्षणरूपसंस्कारः। इति स्मृतिः ॥ तस्य क्रमः। शोभनदिने कृतस्नानः कृतवृद्धिश्राद्धः पिता शुचिनामानमग्निं संस्थाप्य विरूपाक्षजपान्तां कुशण्डिकां समाप्य प्रकृतकर्म्मारम्भे प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा महाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्। ततः आज्येन तत्तन्मन्त्रैः पञ्चाहुतीर्जुहुयात्। ततः पञ्चप्राणानां होमः। ततो महाव्याहृतिहोमं कृत्वा प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा प्रकृतं कर्म्म समाप्य उदीच्य शाट्यायनहोमादिवामदेव्यगानान्तं कर्म्म निर्व्वर्त्य मन्त्रेण कुमारस्य मुखे अन्नं दद्यात्। ततः कर्म्मकारयितृब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात्। इति भवदेवभट्टः ॥ तस्य विहितदिनादि यथा,—
"ततोऽन्नप्राशनं षष्ठे मासि कार्य्यं यथाविधि।
अष्टमे वाथ कर्त्तव्यं यदेष्टं मङ्गलं कुले" ॥
षष्ठ इति मुख्यः कल्पः प्रागुक्तन्यायात्। कृत्यचिन्तामणौ।
"अन्नस्य प्राशनं कार्य्यं मासि षष्ठेऽष्टमे बुधैः।
स्त्रीणान्तु पञ्चमे मासि सप्तमे प्रजगौ मुनिः ॥
द्वादशीसप्तमीनन्दारिक्तासु पञ्चपर्व्वसु।
बलमायुर्यशो हन्यात् शिशूनामन्नभक्षणं" ॥
भुजबलभीमे।
"षष्ठे मासि निशाकरे शुभकरे रिक्तेतरे वा तिथौ
सौम्यादित्यसितेन्दुजीवदिवसे पक्षे च कृष्णेतरे।
प्राजेशादिति पौष्णवैष्णवयुगैर्हस्तादिषट्कोत्तरैराग्नेयाप्यतिमित्रमैत्त्र नितरामश्नादिभक्तं शुभं" ॥
युगैरिति प्राजेशादौ प्रत्येकं सम्बध्यते। तथाचापि तिथ्यादिविद्धमत्र विवर्ज्जयेत्।
"वृषद्वन्द्वधनुर्म्मीनकन्यालग्नेऽन्नभक्षणम्।
त्रिकोणाष्टकयूकान्त्यगृहा यद्वत्तथापरम् ॥
दुष्टः शशधरो-लग्नात् षष्ठाष्टस्थोऽन्नभक्षणे"।
मार्कण्डेय।
"देवता पुरतस्तस्य पितुरङ्गगतस्य च।
अलङ्कृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे च काञ्चने ॥
मध्वाज्यकनकोपेतं प्राशयेत् पायसं ततः।
कृतप्राशनमुत्सङ्गे मातुर्बालन्तु तं न्यसेत् ॥
देवाग्रतोऽथ विन्यस्य शिल्पभाण्डानि सर्व्वशः।
शास्त्राणि चैव शस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणं ॥
प्रथमं यत् स्पृशेद्बालः शिल्पभाण्डं स्वयं तथा।
जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति" ॥
इति ज्योतिस्तत्त्वं ॥

अन्नमयकोष, पु, (अन्नस्य विकारः अन्न+विकारार्थे मयट्। "आनन्दमयोऽभ्यासादिति" शारीरकसूत्रे भाष्यकारेणोक्तम्।) स्थूलशरीरं। इति वेदान्तसारः ॥

अन्नमल, क्ली, (अन्नस्य मलं षष्ठीतत्पुरुषः।) मद्यं। यथा,—
"सुरा वै मलमन्नानां पुरीषं मलमुच्यते।
तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्" ॥
इति प्रायश्चित्तविवेकः ॥

अन्नविकार, पुं, ( अन्नस्य विकारः षष्ठीतत्पुरुषः।) शुक्रं। इति राजनिर्घण्टः ॥ (अन्नकृतशोणितमांसादिपरिणामजचरमधातुः। रेतः।)

अन्नाद, पु, ( अन्नमत्ति भुङ्क्ते अन्न+अद्+अण्। विष्णुरन्नमन्नखादकश्च जगदभिन्नतया, तथाहि श्रुतौ "सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयमित्युपक्रम्य तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय इत्यादि शङ्करभाष्ये। "यज्ञान्तकृत् यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च"।) विष्णुः। इति तस्य सहस्रनाममध्ये पठितः ॥ अन्नभोक्तरि त्रि ॥ (परान्नभोजनकारी।)

अन्य, त्रि, (अन्+बाहुल्यात् य।) असदृशः। इति मेदिनी ॥ परः।
("चातकतापशरण्यो जलधरभिन्नो भवे भवेत्कोऽन्यः"। इति नीतिमाला।
"सोऽयमन्येन वेगादुद्दामेन
द्विरदपतिना सन्निपत्याभियुक्तः"।
इति उत्तरचरिते।) तत्पर्य्यायः। भिन्नः। २ अन्यतरः। ३ एकः। ४ त्वः। ५ इतरः ६। इत्यमरः ॥ विलक्षणः। ७। इति जटाधरः ॥ एकतरः ८। नेमः ९। इति शब्दरत्नावली ॥

अन्यत्, व्य, (अन्+बाहुल्यात् यत्।) इतर। भिन्न। यथा देवदत्त आयातोऽन्यद्यज्ञदत्तः।
"अन्यदेवास्य गाम्भीर्य्यमन्यद्धैर्य्यं महीयते"।
इत्यादौ तु क्लीवलिङ्गप्रथमैकवचनान्तान्यशब्दस्वीकारेणाप्युपपत्तिरिति बोध्यं।

अन्यत, [स्] व्य, (अन्य+ "सर्व्वविभक्तिभ्यस्तसिलिति" तसिल्।) अन्यत्र। अन्यस्मात्। यथा—
"एकतो हि धिगमूमगुणज्ञामन्यतः कथमदःप्रतिलम्भः"। इति नैषधं ॥

अन्यतम, त्रि, (अन्य+डतमच्।) भिन्नतमः। बहूनां मध्ये निर्द्धारितैकः। इति व्याकरणं ॥ अनेकेर मध्ये एक इति भाषा।
("एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत्।
आसां महर्षिचर्य्याणां त्यक्त्वान्यतमया तनुम्" ॥
इति मनुः।) न्यायमते अनेकभेदावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदः ॥

अन्यतर, त्रि, (अन्य+डतरच्।) अन्य। इत्यम[र]
भिन्नतरः। द्वयोर्मध्ये निर्द्धारितैकः। इति व्या[क]रणं ॥ दुयेर मध्ये एक इति भाषा।
("अधर्म्मेण च यः प्राह यश्चाधर्म्मेण पृच्छति।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाधिगच्छति" ॥
इति मनुः।) न्यायमते द्वयावच्छिन्नप्रतियोगित[ा]कभेदः ॥

अन्यतरेद्यु, [स्] व्य, (अन्यतरस्मिन् दिवसे निप[ा]तनात् एद्युसादेशः।) अन्यतरदिने। दिनद्वयम[ध्ये]रेकतरदिने। इत्यमरः ॥

अन्यत्र, व्य, (अन्यस्मिन्+अन्य+त्रल्।) वर्ज्जन[ं]
विना। यथा,—
"अन्यत्र निधनात् पत्युः पत्नी केशान्न वापयेत्"
इति प्राचीनाः। पत्युर्निधनादन्यत्र पतिमर[णं]
विनेत्यर्थः। स्थानान्तरं। यथा।
"अन्यत्र यूयं कुसुमावचायं
कुरुध्वमत्रास्मि करोमि सख्यः"।
इति काव्यप्रकाशः। (कार्य्यान्तरे। क्रियान्तरे
"मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्म्मणि।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः" ॥
इति मनुः।
विषयान्तरे। शास्त्रान्तरे।
"योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमं।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः" ॥
इति मनुः।)

अन्यथा, व्य, (अन्येन प्रकारेण अन्य+प्रकारार्थे थाल्।) परार्थः। मिथ्या। इति मेदिनी ॥ दुष्टं। इति शब्दरत्नावली ॥ अन्यप्रकारः। इति व्याकरणं ॥
("स्वभावो नोपदेशेन शक्यते कर्त्तुमन्यथा"।
इति पञ्चतन्त्रं। अन्यायेन। शास्त्रविरोधेन। अयथायथम्।
"अमात्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्य्युः कार्य्यमन्यथा।
तत् स्वयं नृपतिः कुर्य्यात् तान् सहस्रञ्च दण्डयेत्" ॥
इति मनुः।)

अन्यथासिद्धि, स्त्री, (अन्यथा अन्यप्रकारेण सिद्धिः।) कार्य्याव्यवहितपूर्व्ववर्त्तित्वे सति कार्य्यानुत्पादकत्वं। सा पञ्चविधा। यथा। यत्कार्य्यं प्रति कारणस्य पूर्व्ववर्त्तिता येन रूपेण गृह्यते तत्कार्य्यं प्रति तद्रूपमन्यथासिद्धं। यथा घटं प्रति दण्डत्वं ॥ १ ॥ यस्य स्वातन्त्र्येण अन्वयव्यतिरेकौ न स्तः किन्तु कारणमादायान्वयव्यतिरेकौ तदन्यथासिद्धं। यथा घटं प्रति दण्डरूपं ॥ २ ॥ अन्यं प्रति पूर्व्ववर्त्तितां गृहीत्वैव यस्य यत्कार्य्यं प्रति पूर्व्ववर्त्तित्वं गृह्यते तस्य तत्कार्य्यं प्रति अन्यथासिद्धत्वं। यथा घटादिकं प्रति आकाशस्य ॥ ३ ॥ यत्कार्य्यजनकं प्रति पूर्व्ववर्त्तित्वं गृहीत्वैव यस्य यत्कार्य्यं प्रति पूर्व्ववर्त्तित्वं गृह्यते तस्य तत्कार्य्यं प्रति अन्यथासिद्धत्वं। यथा कुलालपितुर्घटं प्रति ॥ ४ ॥ अवश्यक्लृप्तनियतपूर्व्ववर्त्तिन एव कारणत्वसम्भवे तद्भिन्नमन्यथासिद्धं। यथा घटं प्रति रासभादिः ॥ ५ ॥ इति सिद्धान्तमुक्तावली ॥

अन्यदा, व्य, (अन्यस्मिन् काले अन्य + दा ।) कालान्तरे । अन्यसमये । यथा,—
"अन्यदा भूषणं पुंस क्षमा लज्जेव योषित ।
पराक्रम परिभवे वैयात्य सुरतेष्विव" ॥
इति माघ ॥

अन्यपुष्ट, पु, (अन्यया स्वमातृभिन्नया पुष्ट ।) कोकिल । यथा,—
"अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा
श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना" ।
इति कुमारसम्भवे ॥

अन्यपूर्व्वा, स्त्री, (अन्य पूर्व्वो यस्या सा ।) पौनर्भवा कन्या । एकस्मै वागादिना दत्ता पुनरन्येन विवाहिता कन्या । सा सप्तधा यथा,—
"सप्त पौनर्भवा कन्या वर्ज्जनीया कुलाधमा" ।
वाचा दत्ता मनोदत्ता कृतकौतुकमङ्गला ॥
उदकस्पर्शिता या च या च पाणिगृहीतिका ।
अग्निं परिगता या तु पुनर्भूप्रसवा च या ॥
इत्येता काश्यपेनोक्ता दहन्ति कुलमग्निवत्" ।
इत्युद्वाहतत्त्व ॥

अन्यभृत्, पु, (अन्यान् कोकिलान् बिभर्त्ति पालयति अन्य + भृ + क्विप् ।) काक । इति हेमचन्द्र ॥ (कोकिल ।)

अन्यभृत, पु, (अन्यया स्वमातृभिन्नया भृत पालित तृतीयातत्पुरुष ।) कोकिल । इति हलायुध ॥
("कलमन्यभृतासु भाषित
कलहंसीषु मदालस गत" । इति रघु ।)

अन्यमनस्क, त्रि, भिन्नचित्त । अन्यमना । अन्यस्मिन् मनो यस्य स इति बहुव्रीहौ कप्रत्ययेन सिद्ध ॥ (विषयान्तरासक्तचित्ततया उपस्थितकार्य्येऽनवहितहृदय । अस्थिर । चञ्चलचित्त ।)

अन्यवर्द्धित, त्रि, (अन्यया योषिता वर्द्धित पुष्ट ।) अन्यपुष्ट । परैधित । अन्येन प्रतिपालित । इति जटाधर ॥

अन्यवादी, [न्] त्रि, (अन्यत् पूर्व्वस्वोक्तवाक्यात् भिन्न वदति, अन्य + वद + णिनि उपपदसमास ।) इतरवादी । अस्थिरवादी । अन्यथावादी । यथा,—
"अन्यवादी क्रियाद्वेषी नोपस्थायी निरुत्तर ।
आहूतप्रपलायी च हीन पञ्चविध स्मृत" ॥
इति व्यवहारतत्त्वे नारद ॥

अन्यशाखक, पु, (अन्या स्वशाखेतरा शाखा यस्य स, समासान्त क ।) स्ववेदशाखामुत्सृज्यापरशाखाश्रयकर्म्म कुर्व्वाण । तत्पर्य्याय । शाखारण्ड २ । इति हेमचन्द्र ॥

अन्यादृक्, [श्] त्रि, (अन्यमिव पश्यति अन्य +, दृश + क्विन्, उपपदसमास । "दृक् दृशवतुषु" इति आकार ।) अन्यप्रकार । इति मुग्धबोधव्याकरण ॥

अन्यादृश, त्रि, (अन्यइव पश्यति अन्य + दृश् + कञ् आत्वञ्च ।) अन्यप्रकार । इति मुग्धबोधव्याकरण ॥

अन्याय, पु, (न्याय । सङ्गति । युक्ति । औचित्य, तस्मादन्य नञ्समास ।) न्यायभिन्न । अनौचित्य । अयुक्ति । यथा,—
"अन्यायेनापि यद्भुक्त पित्रा पूर्व्वतरैस्त्रिभिः ।
न तच्छक्यमपाकर्त्तुं क्रमात्त्रिपुरुषागत" ॥
इति व्यवहारतत्त्वे नारद ॥

अन्याय्य, त्रि, (न्यायादनपेत, न्याय + अनपेतार्थे यत्, ततो नञ्समास ।) अनुचित । अयोग्य । यथा,—दृष्टार्थसत्त्वे अदृष्टकल्पनाया अन्याय्यत्वादित्यधिकरणमालाया माधवाचार्य्य ॥ (असङ्गत । गर्हित । धर्म्मविरुद्ध । युक्तिविरोधी । "न्याय्यं सम्प्रेच्छते कर्त्तुमन्याय्यं वा करोति य" । इति कात्यायनसंहिता ।)

अन्यून, त्रि, (न न्यून, नञ्समास ।) न्यूनतारहित । सम्पूर्ण । इति जटाधर ॥

अन्येद्यु, [स्] व्य, (अन्यस्मिन् दिवसे निपातनात् सिद्धम् ।) अन्यस्मिन्नहनि । दिवसान्तरे । अन्यदिने । इत्यमर ॥
("अन्येद्युरात्मानुचरस्य भाव
जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनु" ।
इति रघुवंशे ।)

अन्योदर्य्य, पु स्त्री, (अन्यस्या स्वमातृभिन्नविमातुरुदरे जात अन्योदर + यत् एकपितृक भिन्नमातृको भ्राता ।) वैमात्रेय । यथा,—
"अन्योदर्य्यस्तु संसृष्टी नान्योदर्य्यो धन हरेत्" ।
इति याज्ञवल्क्य ॥ (अन्यमातृज ।)

अन्योन्य, त्रि, (अन्य + व्यतिहारार्थे द्वित्व, तत पूर्व्वपदात्पर सुश्च ।) उभयत । तत्पर्य्याय । इतरेतर । २ परस्पर । ३ । इति हेमचन्द्र ॥
("अन्योन्यप्रतिघातसङ्कुलचलत्कल्लोलकोलाहले"
इति उत्तरचरिते ।)

अन्योन्याश्रय, त्रि, (अन्योन्यमाश्रयति, अन्योन्य + आ + श्रि + पचाद्यच् ।) परस्परज्ञानसापेक्षज्ञानाश्रय । इति स्मार्त्ता ॥ स्वग्रहसापेक्षग्रहसापेक्षग्रहक । इति तार्किका ॥ तर्कविशेष । तस्य लक्षण । स्वापेक्षापेक्षितत्वनिबन्धनप्रसङ्गत्व । अपेक्षा च ज्ञप्तौ उत्पत्तौ स्थितौ च ग्राह्या । तत्राद्या यथा । घटोऽयं यद्येतद्घटज्ञानजन्यज्ञानविषय स्यात् तदैतद्घटभिन्न स्यात् । द्वितीया यथा । घटोऽयं यद्येतद्घटजन्यजन्य स्यात् तदैतद्घटजन्यभिन्न स्यात् । तृतीया यथा । घटोऽयं यद्येतद्घटवृत्तिवृत्ति स्यात् तथात्वेनोपलभ्येत । इति जगदीश ॥

अन्वक्, [च्] त्रि, (अनु पश्चात् अञ्चति गच्छति अनु + अञ्च + क्विन् ) पश्चाद्गामी । इत्यमर ॥ (अनुपद । पश्चात् । "ता देवतापित्रतिथिक्रियार्थामन्वक् ययौ मध्यमलोकपाल" । इति रघुवंशे ।)

अन्वय, पुं, (अनु + इण् + भावे अच् ।) वंश । कुल । इत्यमर ॥
("तदन्वये शुद्धिमति प्रसूत शुद्धिमत्तर" ।
इति रघुवंशे । वंशपरम्परा ।
"रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्" ।
इति रघुवंशे ।
"कायस्थेत्यभिधा शूरवधू शुद्धान्वया" ॥
इति राजतरङ्गिणी । वंशजाता पुत्रपौत्रादय ।
"मातुर्दुहितरोऽभावे दुहितृणा तदन्वय" ।
इति नारद ।
"स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वय" ।
इति मनु ।) पदाना परस्पराकाङ्क्षा योग्यता च । इति दुर्गादासः ॥ परस्परसम्बन्ध । इति रामतर्कवागीश ॥

अन्ववाय, पु, (अनु + अव + इण् + भावे अच् ।) वंश । कुल । इत्यमर ॥ ("कथमेकान्ववायोऽयमस्माकं" । इति शाकुन्तले ।)

अन्वष्टका, स्त्री, (अष्टौ परिमाणान्यस्या, अष्टन् + कन्, इत्वाभाव, अष्टकामनुगता प्रादिसमास ।) अष्टकापश्चात्तिथि । सा तु गौणचान्द्रपौषमाघफाल्गुनाश्विनमासाना कृष्णनवमी । तत्र सामीना मातृकश्राद्ध । इति श्राद्धविवेक ॥ तत्र साग्निकर्त्तव्यमातृपक्षश्राद्धं । यथा शङ्ख ।
"पित्रादित्रिकपत्नीषु भोज्या मातृ प्रतिद्विजा ।
स्त्रीणामेव तु तद्यस्मान्मातृश्राद्धमिहोच्यते" ॥
एतच्चान्वष्टकाश्राद्ध साग्निमात्रेण कर्त्तव्यं । तथा च विष्णु । अन्वष्टकास्वष्टकावदग्नौ हुत्वा मात्रे पितामह्यै प्रपितामह्यै पूर्व्ववद्ब्राह्मणान् भोजयित्वा इति । अत्र होमत्वादेवाग्निप्राप्तेरग्निग्रहणं तन्नियमार्थं । न चाग्नौ करणहोमे विप्रपाण्यादेर्व्विधानादत्रापि तथेति वाच्यं । प्रकृतीभूतश्राद्धविध्युक्तस्याधारान्तरस्य विकृतीभूतश्राद्धे विशेषविहिताधारेण बाधात् । शरमयबर्हिषा कुशमयबर्हिर्बाधवत् । न वा लौकिकाग्नौ होम ।
"न पैत्रयज्ञियो होमो लौकिकाग्नौ विधीयते" ।
इति मनुवचनेन निषेधात् । श्राद्धचिन्तामणावप्येव । इति श्राद्धतत्त्व ॥

अन्वक्ष, त्रि, (अनु + अक्ष + पचाद्यच् । अक्षमिन्द्रियमनुगतम्, प्रादिसमास, प्रत्यक्षे, अनुगते अनुपदे ।) पश्चाद्गामी । इत्यमर ॥

अन्वाधि, पु, (अनु पश्चात् आधीयते न्यस्यते, अनु + आ + धा + कि ।) एकस्मिन् यदर्पित वस्तु तेन पुरुषान्तरे अमुष्मिन् स्वामिनि त्व दास्यसीति निक्षिप्त तत् । इति विवादार्णवसेतु ॥ कार्य्येषु वाचनेन अमुष्मिन् पुरुषे त्वं दद्या इति परिभाष्य यत् समर्पितं तत् । इति हलायुध ॥ यथा,—
"अर्थमार्गणकार्य्येषु अन्यस्मिन् वचनान्मम ।
दद्यास्त्वमिति यो दत्त स इहान्वाधिरुच्यते" ॥
इति कात्यायन ॥ पुनर्व्वन्धक । पश्चान्मानसी व्यथा । अनुपूर्व्वकस्य आधिशब्दस्य इत्यर्थद्वयमपि सम्भवति ॥

अन्वाधेयं, क्ली, (अनु विवाहानन्तरमाधेयं समर्पणीयं, अनु + आ + धा + कर्म्मणि यत् ।) विवाहानन्तरपितृमातृभर्तृकुललब्धस्त्रीधन । यथा,—
"विवाहात् परतो यत्तु लब्धं भर्तृकुलात् स्त्रिया ।
अन्वाधेय तदुक्तन्तु लब्ध बन्धुकुलात्तथा" ॥
इति कात्यायन,—

अन्वासन, क्ली, (अनु + आस् + ल्युट्) सेवक्ति । अनुशोचन । उपासना । इति विश्वमेदिन्यौ । शिल्पादिगृह । इति हलायुध ॥ (अनुवासनं ॥

पश्चात् ताप ।)

**अन्वाहार्य्य**, क्ली, ( प्रतिमाससमाहरणीयं, अनु+आ+हृ+ण्यत् ।) मासिकश्राद्ध । इत्यमरः ॥ तत्तु प्रत्यमावास्याविहितं पार्व्वणश्राद्ध अकृतसपिण्डीकरणस्य वत्सरान्ते प्रतिमासं यत् श्राद्ध तदिति केचित् । इति भरत ॥ गोभिलगृह्योक्तकर्म्मणामाद्यङ्गश्राद्ध । तदन्ताङ्गदक्षिणा च । यथा,—

"यत् श्राद्ध कर्म्मणामादौ याचान्ते दक्षिणा भवेत् । अमावास्यं द्वितीय यदन्वाहार्य्य विदुर्बुधा" ॥

इति गोभिलसूत्रं ॥

**अन्वाहार्य्यक** क्ली, (प्रतिमाससमाहरणीय, अनु+आ+हृ+ण्यत्, तत स्वार्थे कन् ।) अन्वाहार्य्य । यथा,—

"पिण्डान्वाहार्य्यक श्राद्ध कुर्य्यान्मासानुमासिक" । इति मनुः ॥

**अन्वाहित**, त्रि, (अनु+आ+धा+कर्म्मणि क्त ।) यदेकस्य हस्ते निहित द्रव्य तेनापि पश्चादन्यस्य हस्ते स्वामिने देहीति निहित तत् । इति मिताक्षरा ॥

("याचितान्वाहितन्याससनिक्षेपादिष्वय विधि" । इति याज्ञवल्क्य,—

"एष एव विधिर्दृष्टो याचितान्वाहितादिषु" ॥

इति नारद ।) गच्छित द्रव्य तादृश स्वामिके दिते अन्यहस्ते अर्पणकरा इति भाषा ॥

**अन्वित**, त्रि, (अनु+इण्+क्त ।) युक्त । मिलित । इति जटाधर ॥ ज्ञातान्वयपदादि । यथा,—

"पदार्थान्तरैरन्वितानां सङ्केतो गृह्यते" ।

इति काव्यप्रकाशः ॥

( पदानां योग्यताकाङ्क्षादिरूपान्वयसहित । परस्पर सम्बद्ध ।

"वर्णा पद प्रयोगार्हानन्वितैकार्थबोधका" ॥

इति साहित्यदर्पणे ।)

**अन्विष्ट**, त्रि, ( अनु+इष्+क्त । ) अन्वेषित । कृतान्वेषण । इत्यमर ॥ ("यदायुरन्विष्टमृगै किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिवर्ह" । इति कुमारसम्भवे ।)

**अन्वीत**, त्रि, ( अनु+इङ गतौ+कर्त्तरि क्त । ) अन्वित । युक्त । इति जटाधर ॥

**अन्वेषण**, क्ली, (अनु+इष्+ल्युट्) अन्वेषणा । अनुसन्धान । यथा । "सुग्रीवो राममित्र क्व जनकतनयान्वेषणे प्रेषितोऽहं" । इति महानाटकम् । ("दोषान्वेषणमेव सत्सगुणा नैसर्गिको दुर्ग्रह" । इत्युद्भट ।)

**अन्वेषणा**, स्त्री, (अनु+इष्+णिच्+भावे युच् तस्य अन, तत टाप् ।) तर्कादिना यथाबोधितधर्माद्यन्वेषण । अन्वेषणमात्र । तत्पर्य्याय परीष्टि २ पर्य्येषणा ३ गवेषणा ४ । इत्यमरः ॥

**अन्वेषित**, त्रि, (अनु+इष्+णिच्+कर्मणि क्त ।) कृतान्वेषण । तत्पर्य्याय ॥ गवेषित । २ अन्विष्ट । ३ मार्गित । ४ मृगित । ५ इत्यमर ॥ ६ परीष्ट । ७ पर्य्येषितः । इति अन्वेषणापर्य्याये परीष्टिपर्य्येषणापददर्शनात् ॥

**अन्वेष्टा**, (ष्टृ) त्रि, (अनु+इष्+तृच् ।) अन्वेषणकर्त्ता । तत्पर्य्यायः ॥ अनुपद २ । इति हेमचन्द्र ॥ ("अन्वेष्टारो ब्राह्मणास्ते भ्रमन्ति शतशोऽपरे" । इति नलोपाख्यान ।)

**अप**, अ, (न पाति, न+पा+ड "चादयोऽसत्त्वे" इति निपातसंज्ञया स्वरादिनिपातमव्ययमिति अव्ययम् ।) उपसर्गविशेषः । अस्यार्थ । अनादर । भ्रश । अयाकाल्य । वैरूप्य । त्याग । नञर्थ । इति दुर्गादासः ॥ अपकृष्टार्थ । वर्ज्जनार्थ । वियोग । विपर्य्ययः । विकृति । चौर्य्य । निर्देश । हर्षः । इति मेदिनी ॥

**अप**, [स्] क्ली, (आप्+असुन्, पृषोदरादित्वात् ह्रस्व ।) यज्ञकर्म्म । इत्युणादिकोष ।

**अपकर्म्म**, क्ली, (अपकृष्ट कर्म्म ।) दुष्क्रिया । मन्दकर्म्म । अपकृष्टार्थापोपसर्गेण कर्म्मशब्दस्य कर्म्मधारयसमास ।

**अपकार**, पु, (अप+कृ+भावे घञ् ।) द्रोह । अनुपकारः । मन्दकरण । इति हलायुध । (अनिष्टसाधन । असद्व्यवहार । अत्याचार । द्वेष ।

"उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा । उपकारापकारौ हि लक्ष्य लक्षणमेतयो" ।

इति माघ ।)

**अपकारगी**, [र्] स्त्री, (अपकारेण गी वाक्य ।) अपकारवाक्य । भर्त्सन । इत्यमर ।

**अपकारी**, [न्] त्रि, (अपकरोति, अप+कृ+णिनि ।) अपकारक । द्रोहक । यथा,—

"अपकारिणि चेत् क्रोध क्रोधः क्रोधे कथन ते । धर्म्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णा परिपन्थिनि" ॥

इत्युद्भट । (अहितकारी । अनिष्टसाधक । पीडक । दुर्वृत्त । कुकर्म्मकारी ।

"किं भक्तेनासमर्थेन किं शक्तेनापकारिणा" ।

इति पञ्चतन्त्रम् ।)

**अपकृष्ट**, त्रि, (अप+कृष्+क्त ।) जघन्य । तत्पर्य्याय । अधम । २ निकृष्ट । ३ अणक । ४ गर्ह्य । ५ अवद्य । ६ काण्ड । ७ कुत्सित । ८ प्रतिकृष्ट । ९ याप्य । १० रेफ । ११ अवम । १२ ब्रुव । १३ खेट । १४ पाप । १५ अपशब्द । १६ कुपूय । १७ चेल । १८ अर्व्वाच । १९ । इति हेमचन्द्र ।

**अपक्रम**, पु, (अप+क्रम+भावे घञ्, "नोदात्तोपदेशे मान्तस्येत्यादिना वृद्धिनिषेध" ।) पलायन । इत्यमर ।

**अपक्रिया**, स्त्री, (अप+कृ+भावे श ।) द्रोह । अपकारः । इति हेमचन्द्र ॥ (विपरीतप्रयोग ।

"चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया" ।

इति माघ ।)

**अपक्रोश**, पु, (अप+क्रुश्+भावे घञ् ।) निन्दन । जुगुप्सन । भर्त्सन । इति शब्दरत्नावली ।

**अपक्व**, त्रि, (न पच्यते, पच्+कर्म्मणि क्त, ततो नञ्समास ।) पक्वभिन्न । काँचा इति भाषा । यथा,—

"तैले विपर्य्यय विद्याद् पक्व आपक्व एव च" ।

इति वैद्यकपरिभाषा । तत्पर्य्याय । २ असिद्ध । ३ आम । ४ अपरुत । इति रत्नमाला । ("अपक्वे लवण दद्यात् पक्वे दद्यात् मरीचकम्" इति आमवाच्ये ।)

**अपगत**, त्रि, (अप+गम्+कर्त्तरि क्त, अपयाते पलायिते च ।) मृत । इति हेमचन्द्र । गतः दूरीभूतः । यथा,—"नापीनामपगततृषा न च छाया धूली न धौता तनो" इत्यादि वाचस्पति ॥

**अपगा**, स्त्री, (अधोमुखेन गच्छति, अप+गम्+कर्त्तरि ड, स्त्रियां टाप् ।) आपगा । नदी इत्यमरटीकायां भरत । (स्रोतस्वती द्वीपवती स्रवन्ती निम्नगापगा इत्यमर ।)

**अपघन**, पु, (अपहत्य मिलित्वा विहन्यते, अप+हन्+"अपघनोऽङ्ग"-मिति पाणिनिसूत्रेण अप हन्स्थाने घ ।) अवयव । अङ्ग । इत्यमर । ("छिन्नभिन्नपघनैर्घर्घरध्वनघोषान्" । इति सूर्य्यशतके ।)

**अपघात**, पु, अपहनन । अपकृष्टार्थापोपसर्गात् हनधातोर्भावे घञ् हस्य घ नस्य त । अपकृष्टमृत्युफलकव्यापार । अपहन्यते इति व्युत्पत्त्या अपपूर्व्वक हनधातोर्भावे घञ्प्रत्ययेन निष्पन्न ॥

**अपचयः**, पुं, (अप+चि+भावे अच् । अपहरण ।) क्षति । हानि । तत्पर्य्याय । अपहारः २ । इत्यमर ॥ (पूजा सम्मानना । क्षय । "देहस्यापचयोमतो निविशते गाढो स्मरेषु यह" । इति शान्तिशतके ।) [पूजित । इत्यमर ।

**अपचायित**, त्रि, (अप+चाय+कर्म्मणि क्त ।)

**अपचार**, पु, (अप+चर्+भावे घञ्, अपथ्यसेवन ।) अहिताचरण । यथा, "योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने पञ्चोपदंशा विविधापचारै" ।

इति माधवकर ।

("कृतापचारोऽपि परैरनाविष्कृतविक्रिय । असाध्य कुरुते कोप प्राप्ते काले गदो यथा" ॥

इति माघ ।)

**अपचित**, त्रि, (अप+चाय+पूजार्थे कर्म्मणि क्त । अपचितश्चेति पाणिनिसूत्रेण पक्षे चायस्थाने चिभाव । अप+चि+क्त ।) क्षीन । व्ययित । अवयवाद्यपचययुक्त । क्षीण । कृश । "अपचितमपि गात्र व्यायतत्वादलक्ष्य" । इति शाकुन्तले ।

**अपचिति**, स्त्री, (अप+चि+भावे क्तिन् ।) हानि । व्यय । पूजा । निष्कृति । इति मेदिनी । (क्षय । ध्वंस । सम्मानना ।

"अद्य त्वमपचितिं भ्रातु पितुश्च सकलामिमां" ।

इति रामायणे ।)

**अपच्छाय**, त्रि, (अपगता छाया यस्मात् स ।) देव । उपदेव । निष्प्रभ । अपगता छाया यस्मात् इति बहुव्रीहौ ह्रस्व । (अपकृष्टच्छायाविशिष्ट । पिशाचादि ।

"अजाखुर खुरोत्सर्गमार्ज्जनीरेणुवर्ज्जने । दीपखट्वापच्छायेव त्यज्यते निर्धनोजन" ।)

**अपञ्चीकृत**, क्ली, (अपञ्चात्मक पञ्चात्मक कृत, पञ्च+अभूततद्भावे च्वि कृ+क्त, ततो नञ्समास । सूक्ष्मभूत । पञ्चीकृतभिन्नाकाशादिपञ्चभूत । इति वेदान्तसारः ।

("पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितं।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनं" ॥
इति पञ्चदश्या ।)

**अपटान्तरं**, त्रि, (पटेन वस्त्रेण तिरस्करिण्या इति यावत् अन्तरं व्यवधानं यत्र तत्, ततो नञ्समासः ।) आसन्नं । संसक्तं । अपदान्तरं । अव्यवहितं । इत्यमरटीकायां स्वामी ॥

**अपटी**, स्त्री, (अल्पः पटः अल्पार्थे नञ्समासः, गौरादित्वात् ङीष् ।) वस्त्रप्रावरणं । इति हेमचन्द्रः । कानात् । इति भाषा । (यवनिका । पर्दा । इत्यादि भाषा ।)

**अपटु**, स्त्री, (न पटुः, नञ्समासः ।) व्याधितः । रोगी । इत्यमरः । पटुतारहितः । कार्य्याक्षमः । यथा,—
"सा क्रान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तुं न शक्ता वयं दोषैरन्यजनाश्रयैरपटवो जाताः स्म इत्युद्धतः" ।
इत्यमरुकविः ॥

**अपतर्पणं**, स्त्री, (अप + तृप् + भावे ल्युट् । लङ्घनं । रोगादौ भोजनाभावः । इति हेमचन्द्रः । (अपगतं तर्पणं तृप्त्यभावो यस्य तत् । गतलोभः । तृप्तिशून्यः ।)

**अपत्यं**, स्त्री, (न पतति वंशो यस्मात्, पत + बाहुल्यात् यत्, ततो नञ्समासः ।) पुत्रः । कन्या । तत्पर्य्यायः । २ सन्तानः । ३ तोकं । ४ सन्ततिः । ५ प्रसूतिः । इति जटाधरः ।
("अस्मिंस्तु निर्गुणं गोत्रे नापत्यमुपजायते") ।
इति हितोपदेशे ।
"महीभृतः पुत्रवतोऽपि दृष्टिं
तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिं" ।
इति कुमारसम्भवे ।)

**अपत्यदा**, स्त्री, (अपत्यं गर्भं तत्सेवनेन ददाति, अपत्य + दा + कर्त्तरि कः, उपपदसमासः ।) गर्भदात्रीवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ।

**अपत्यपथः**, पुं, (अपत्यस्य गर्भान्निःसारणस्य पन्था मार्गः, षष्ठीतत्पुरुषः, समासान्तः अच् ।) भगं । योनिः । इति हेमचन्द्रः ।

**अपत्यशत्रुः**, पुं, (अपत्यस्य शत्रुः, षष्ठीतत्पुरुषः ।) कर्कटः । इति शब्दचन्द्रिका । काँकडा । इति भाषा ।

**अपत्रपः**, त्रि, (अप + त्रप् + भावे अङ् ।) त्रपारहितः । निर्लज्जः । अपगता त्रपा यस्येति बहुव्रीहौ आकारस्य ह्रस्वः ॥ ("सापत्रपः कुलगुरुर्विहितस्त्वया नः" । इति धनञ्जयविजयव्यायोगे ।)

**अपत्रपा**, स्त्री, (अपगता त्रपा अन्यतो लज्जा यस्याः सा, स्त्रियां टाप् लज्जाहीना । लज्जाशून्या ।) अन्यतो लज्जा । परस्मात् लज्जा । इत्यमरः । लज्जामात्रं । इति रत्नकोषः ।

**अपत्रपिष्णुः**, त्रि, (अप + त्रप् + शीलार्थे कर्त्तरि इष्णुच् ।) स्वभावसत्रपः । लज्जाशीलः । इत्यमरः । लाजुक इति भाषा ।

**अपथं**, स्त्री, क्ली, (न प्रशस्तः पन्था मार्गः, नञ्समासः । नास्ति पन्थाः प्रशस्तः मार्गो यत्र तत् । प्रशस्तवर्त्मशून्ये नगरादौ ।) अपन्थाः । मार्ग एव यो न भवति तत् । इत्यमरः । योनिः । इति शब्दरत्नावली । (विमार्गः । कुपथः । असन्मार्गः । साधुविगर्हितः पन्थाः । "अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः" । इति रघुवंशे ।
"न कश्चित् वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते" ।
इति शाकुन्तले ।)

**अपथ्यं**, त्रि, (पथ्ये वैद्योक्तभोजनादिनियमाय नीत्युक्ताचाराय वा हितं यत् ततो नञ्समासः ।) पथ्यभिन्नं । अहितं । यथा,—
"यत्पथ्यं यदपथ्यञ्च वक्ष्यते रक्तपित्तिनां" ।
इति पथ्यापथ्यग्रन्थः ।

**अपदानं**, क्ली, (अप + दैप् शोधने भावे ल्युट्, विद्यमानार्थे अर्श आद्यच् । अथवा अपदायति परिशुध्यत्वेन कर्म्मणा, अप + दैप् + शोधने करणे ल्युट् ।) अवदानं । वृत्तं कर्म्म । वृत्तिः प्रवर्त्तनं सा प्रशस्ता विद्यते यत्र तत् । यत्र कर्म्मणि वृत्तिः सर्व्वैः प्रशस्यते तत् इत्यर्थः । इत्यमरटीकायां स्वामी ॥
("गणयत्यपदानसम्मितां
भवतः सोऽपि न सत्क्रियामिमां" ।
इति शाकुन्तले ।)

**अपदान्तरं**, त्रि, (नास्ति पदान्तरं व्यवधानं यत्र सः ।) अव्यवहितं । संयुक्तं । इत्यमरः । अभिन्नपदे क्ली । (सन्निकर्षः । सान्निध्यं । सामीप्यं । नैकट्यं ।)

**अपदिशं**, क्ली, अव्य, (दिशोर्मध्ये, अव्ययीभावः, समासान्तः अच् ।) दिक्कोणः । दिशोर्मध्यं । तत्पर्य्यायः । विदिक् २ । इत्यमरः ।
("क्लीबाव्ययं त्वपदिशं दिशोर्मध्ये विदिक् स्त्रियां" ।
इत्यमरः ।)

**अपदेशः**, पुं, (अप + दिश् + घञ् । स्थानं ।) निमित्तं । शरव्यं । स्वरूपाच्छादनं । तत्पर्य्यायः । २ व्याजः । ३ लक्ष्यं । इत्यमरः । परानिष्टकारिभिन्नशठता । इति महाभारतटीका । (ख्यातिः । कीर्त्तिः । छलं ।
"रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनो-
र्वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान्" ।
इति रघुवंशे ।)

**अपध्वसजः**, पुं, (अपध्वस्यतेऽनेन, अपध्वन्स + करणे घञ्, अपध्वसो जातीनां भिन्नतासम्पादकः सङ्करस्तस्माज्जायते, अपध्वस + जन् + ड, उपपदसमासः ।) वर्णसङ्करः । यथा,—
"शूद्राणान्तु सधर्म्माणः सर्व्वेऽपध्वसजाः स्मृताः" ।
इति मनुः । (प्रतिलोमजातः । भिन्नवर्णसङ्गमजातः । करणादिसंकीर्णवर्णः ।)

**अपध्वस्तः**, त्रि, (अप + ध्वन्स + क्तः ।) परित्यक्तः । निन्दितः । चूर्णीकृतः । इति मेदिनी । (अतिदुराचारः ।) परित्यक्तः । "अपध्वस्तः परित्यक्ते निन्दितेऽप्यवचूर्णिते" । इति मेदिनी ।

**अपनयनं**, क्ली, (अप + नी + भावे ल्युट् ।) खण्डनं । दूरीकरणं । यथा,—"इति श्रीशाम्बपुराणे रोगापनयने श्रीसूर्य्यवक्त्रविनिर्गतस्तवराजः समाप्तः" इति ।
("नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रं" ।
इति शाकुन्तले ।)

**अपनोदनं**, क्ली, (अप + नुद् + भावे ल्युट् ।) खण्डनं । दूरीकरणं । यथा,—"मानापनोदनविनोदनतो गिरीशे" । इति श्रीहर्षः । (अपनुदति दूरीकरोति, अप + नुद् + कर्त्तरि बाहुल्यात् ल्युट् ।) खण्डकः । दूरीकारकः ।
"यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्व्वपापापनोदनः ।
तथाघमर्षणं जप्यं सर्व्वपापापनोदनं" ।
इति मनुः ।)

**अपन्थाः**, [थिन्] पुं, (न पन्थाः, नञ्समासः, समासान्तविधेरनित्यत्वात् अत्र अजभावः ।) अपथं । इत्यमरः ।

**अपपात्रितः**, त्रि, (अपकृष्टं पात्रं भोजनपात्रं यस्य सः, येन जनेन भुक्ते भोजनपात्रमस्पृष्टं भवतीति यावत् चण्डालादिः, अपपात्रं कृतः, अपपात्र + करोत्यर्थे णिच् + क्तः ।) उत्कटदोषैर्ज्ञातिभिर्भिन्नोदकीकृतः । यथा,—"अपपात्रितस्य रिक्थपिण्डोदकानि निवर्त्तन्ते" । इति शुद्धितत्त्वे शङ्खापस्तम्बौ ।

**अपभ्रंशः**, पुं, (अप + भ्रन्स + घञ् ।) ग्राम्यभाषा । अपभाषा । तत्पर्य्यायः । अपशब्दः २ । इत्यमरः ॥ पतनं । यथा,—
"अत्यारूढिर्भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठा" ।
इत्यभिज्ञानशकुन्तले ॥ (अधः पतनं । ध्वंसः । अधोगतिः ।)

**अपमः**, पुं, (अपकृष्टतया मीयते, अप + मा + घञर्थे कः ।) क्रान्तिः । इति सिद्धान्तशिरोमणौ गोलाध्यायः ॥

**अपमानं**, क्ली, (अप + मा + भावे ल्युट् ।) अनादरः । अमर्य्यादा । इति शब्दरत्नावली ॥ तत्पर्य्यायः ।
"स्यादवज्ञा परीहारः परिहारः पराभवः ।
अपमानः परिभवस्तिरस्कारस्तिरस्क्रिया ।
अवहेला च हेला स्यादवहेलनहेलने ।
क्षेपो निकारधिक्कारौ पर्य्यायाः स्युरनादरे" ॥
इति शब्दरत्नावली ॥ * ॥ तस्य अप्रकाश्यत्वं यथा,—
"अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।
वञ्चनञ्चापमानञ्च मतिमान्न प्रकाशयेत्" ॥
इति चाणक्यः ॥
("अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः ।
स्वकार्य्यमुद्धरेत् प्राज्ञः कार्य्यध्वंसो हि मूढता") ॥

**अपमित्यकं**, क्ली, (अपमित्यपमानं स्वीकृत्य गृह्यते, अप + मेङ् प्रणिमाने + क्त्वा तस्य ल्यप्, "मयतेरिदन्यतरस्यामिति आस्याने इत्वम्, ततः कन् ।) ऋणं । इति हलायुधः ॥

**अपमृत्युः**, पुं, (अपकृष्टः रोगेण विना मृत्युः मरणं

कर्म्मधारय ।) अपघातमरण । विना रोगेण मरण । यथा,—

"अपमृत्युभय नास्ति मृतो मोक्षमवाप्नुयात्" ।

इति देवीमाहात्म्यकीलक ॥ यत्तु शुद्धितत्त्वे प्रोक्त पक्षिमत्स्यमृगदंष्ट्रिशृङ्गिनखिपतनानशनवज्राग्नि-विषबन्धजलप्रवेशास्वच्छतादिजन्यमरण तदेवापमृत्युरिति सुधीभिर्विभाव्य ॥

अपयान, क्ली, (अप + या + भावे ल्युट् ) पलायन । इत्यमर ॥ प्रमाण । प्रस्थान । "मानस्य द्रुतमपयानमाश्रितस्य" । इति माघ ।)

"अपयानेऽपि च भवान् समर्थो लघुविक्रम" ।

इति रामायणे ।

अपर, क्ली, ( न पूर्य्यते, पृ + अप् ततो नञ्-समास ।) हस्तिपश्चाद्भाग । गजान्त्यजङ्घादिभाग ।इति मेदिनी ॥

अपर, त्रि, (न पृणाति प्रीणयति, पृ + पचाद्यच, ततो नञ्समास ।) अन्य । इतर । अर्व्वाचीन । इति मेदिनी ॥

अपरत्व, क्ली, ( अपरस्य भाव भावे त्व ।) न्यायमते तत् द्विविध । दैशिक कालिकञ्च । दैशिकं यथा। अल्पसूर्य्यसयोगज्ञानजन्यगुण । तस्यासमवायि कारण दिक्सयोग ॥ कालिक यथा ॥ अल्प सूर्य्यपरिस्पन्दज्ञानजन्यगुण । तस्यासमवायिकारण कालपिण्डसयोग । तदुभयं अपेक्षाबुद्धिजन्य । अपेक्षाबुद्धिनाशादेव तदुभयोर्नाश । इति सिद्धान्तमुक्तावली ॥

अपरति, स्त्री, (अप + रम् + भावे क्तिन् ।) निवृत्ति । विरति । इति हेमचन्द्र ॥ (अपगता रति प्रीतिर्यस्य स त्रि, प्रतिरक्षित । अपकृष्टा रति प्रीतिर्यस्य स: त्रि, कुत्सितप्रीतियुक्त ।)

अपरपक्ष, पु, (अपर शेष पक्ष अथवा अपर शुक्लादितर पक्ष, कर्म्मधारय ।) कृष्णपक्ष स तु पितृपक्ष । यथा । पूर्व्व पक्षो देवानाम पर पक्ष पितृणामिति श्रुति ॥ पक्षौ पूर्व्वापरौ शुक्लकृष्णौ मासस्तु तावुभौ । इत्यमर ॥ मनु । अथ श्राद्धममावास्याया पितृभ्यो दद्यात् पञ्चमीप्रभृति वापरपक्षस्य यथाश्रद्धा सम्पद्यते इति श्राद्धतत्त्वम् * ॥

अपररात्र, पु, (रात्रे अपर शेषावयव एकदेशि समास, अच् समासान्त "रात्राह्नाहा पुसि" इति पुस्त्व ।) रात्रिशेष । तत्पर्य्याय । उषन्त्र २ । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अपरस्पर, त्रि, (अपरे च परे च द्वन्द्व, अपरस्परा क्रियासातत्ये" इति सुडागम, क्रियावता साहित्ये ।) क्रियासातत्य । कर्मनिरन्तरता । इत्यमर ॥

अपरा, स्त्री, (न पूर्य्यतेऽस्मात्, पृ + अपादाने अप्, ततो नञ्समास ।) जरायु । इति मेदिनी ॥ पश्चिमदिक् । इति हेमचन्द्र ॥

अपराङ्ग, क्ली, (अपरस्य रसादेरङ्गम्, षष्ठीतत्पुरुष ।) गुणीभूतव्यङ्ग्यप्रभेद । यथा अगूढमपरस्याङ्गमिति भरतमुनि ॥ अस्यार्थ । अपरस्य रसादेर्वाक्यार्थीभूतस्य वा वाच्यस्याङ्ग रसादि अनुरणनरूप वा । इति काव्यप्रकाश ॥ तत्रैवोदाहरण ।

"अय स रसनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्द्दन । नाभ्यूरु जघनस्पर्शी नीवीविस्रसन कर" ॥ अत्र शृङ्गार करुणस्याङ्गमिति ॥

अपराङ्मुख:, पु, (परा + अञ्च + क्विन्, पराक् मुख यस्य स, ततो नञ्समास ।) अविमुख । सम्मुखीभूत । यथा,—

"आहवेषु मिथोऽन्योन्य जिघासन्तो महीक्षित ।
युध्यमाना पर शक्त्या स्वर्ग यान्त्यपराङ्मुखा" ॥

इति मानवे ७ अध्याये ८९ श्लोक ॥

अपराजित:, पुं, (परा + जि + क्त, ततो नञ्-समास ।) शिव । विष्णु । ऋषिविशेष । अनिर्ज्जिते त्रि । इति मेदिनी ॥

अपराजिता, स्त्री, दुर्गा । जयन्तीवृक्ष । अश्मन्तपर्णी । इति मेदिनी ॥ स्वल्पफला । विष्णुक्रान्ता । इति राजनिर्घण्ट ॥ शेफाली । शमीभेद । शङ्खिनी । क्षुपभेद । इति वैद्यक ॥ स्वनामख्यातपुष्पलताविशेष । शुक्लनीलभेदेन सा द्विधा । तस्या पर्य्याय । आस्फोता २ गिरिकर्णी । ३ विष्णुक्रान्ता ४ । इत्यमर ॥ आस्फोटा ५ । इति तट्टीका ॥ गवाक्षी ६ अश्वखुरी ७ श्वेता ८ श्वेतभण्डा ९ गवादनी १० । इति रत्नमाला ॥ अद्रिकर्णी ११ कटभी १२ दधिपुष्पिका १३ गर्द्दभी १४ सितपुष्पी १५ श्वेतस्पन्दा १६ भद्रा १७ सुपुत्री १८ विषहन्त्री १९ नग पर्य्यायकर्णी २० अश्वाकादिखुरी २१ । अस्या गुणा । हिमत्व । तिक्तत्व । पित्तोपद्रवविषदोषनाशित्व । चक्षुर्हितत्व । त्रिदोषशमताकारित्वञ्च । इति राजनिर्घण्ट ॥ शोथकासनाशित्व । कण्ठहितकारित्वञ्च । इति राजवल्लभ ॥

('दशम्यां च नरै सम्यक् पूजनीयाऽपराजिता ।
मोक्षार्थ विजयार्थञ्च पूर्व्वोक्तविधिना नरै ।
नवमीशेषयुक्ताया दशम्यामपराजिता ।
ददाति विजय देवी पूजिता जयवर्द्धिनी' ॥

इति स्कान्दे ।)

अपराद्धपृषत्क, त्रि, (अपराद्ध लक्ष्यात् च्युत पृषत् कोवाणो यस्य स ।) लक्ष्यच्युतशायक । यस्य वाणो लक्ष्यात् च्युत स । इत्यमर ॥

('कृतहस्त सुप्रयोगविशिख कृतपुङ्खवत् ।
अपराद्धपृषत्कोऽसौ लक्ष्यात् यश्च्युतसायक' ।

इत्यमर ।)

अपराध, पु, (अप + राध् + भावे घञ् ।) अकार्य्यादिदोष । तत्पर्य्याय ॥ आग २ मन्तु ३ । इत्यमर ॥ स च द्वात्रिंशद्विधो यथा । आगमे ।

"यानैर्व्वा पादुकैर्व्वापि गमन भगवद्गृहे ।
देवोत्सवाद्यसेवा च अप्रणामस्तदग्रत ॥
उच्छिष्टे वाप्यशौचे भगवद्दर्शनादिक ।
एकहस्तप्रणामश्च तत्पुरस्तात् प्रदक्षिण ॥
पादप्रसारण चाग्रे तथा पर्य्यङ्कबन्धनम् ।
शयन भक्षण वापि मिथ्याभाषणमेव च ॥
उच्चैर्भाषामिथोजल्पो रोदनानि च विग्रह ।
निग्रहानुग्रहे चैव नृषु च क्रूरभाषणम्
कम्बलावरणञ्चैव परनिन्दा परस्तुति ।
अश्लीलभाषण चैव अधोवायुविमोक्षणम् ॥
शक्तौ गौणोपचारश्च अनिवेदितभक्षण ।
तत्तत्कालोद्भवानाञ्च फलादीनामनर्पण ॥
विनियुक्तावशिष्टस्य प्रदान व्यञ्जनादिके ।
पृष्ठीकृत्यासन चैव परेषामभिवादन ॥
गुरौ मौन निजस्तोत्र देवतानिन्दन तथा
अपराधास्तथा विष्णोर्द्वात्रिंशत्परिकीर्त्तिता" ॥ * ॥

वाराहे ।

"द्वात्रिंशदपराधा ये कीर्त्त्यन्ते वसुधे मया ।
वैष्णवेन सदा ते तु वर्जनीया प्रयत्नत ॥
ये वै न वर्जयन्त्येतान् अपराधान् मयोदितान् ।
सर्व्वधर्म्मपरिभ्रष्टा: पच्यन्ते नरके चिर ॥
राजान्नभक्षणञ्चैकमापद्यपि भयावह ।
ध्वान्तागारे हरे स्पर्श पर सुकृतनाशन ॥
तथैव विधिमुक्तञ्च सहसा स्पर्शनं हरे ।
द्वारोद्घाटो विना वाद्य क्रोडमांसनिवेदन ॥
पादुकाभ्यां तथा विष्णोर्मन्दिरायोपसर्पण ।
कुक्कुरोच्छिष्टकलन मौनभङ्गोऽच्युतार्च्चने ॥
तथा पूजनकाले च विडुत्सर्गाय सर्पण ।
श्राद्धादिकमकृत्वा च नवान्नस्य च भक्षण ॥
अदत्त्वा गन्धमाल्यादि धूपन मधुघातिन ।
अकर्म्मण्यप्रसूनेन पूजनञ्च हरेस्तथा ॥
अकृत्वा दन्तकाष्ठञ्च कृत्वा निधुवन तथा ।
स्पृष्ट्वा रजस्वला दीप तथा मृतकमेव च ॥
रक्त नीलमधौतञ्च पारक्य मलिन पट ।
परिधाय मृत दृष्ट्वा विमुच्यापानमारुत ॥
क्रोध कृत्वा श्मशानञ्च गत्वा भुक्त्वाप्यजीर्णभुक् ।
भक्षयित्वा क्रोडमास पिण्याक जालपादक ॥
तथा कुसुम्भशाकञ्च तैलाभ्यङ्ग विधाय च ।
हरे स्पर्शो हरे कर्म्मकरण पातकावह ॥ * ॥

किञ्च तत्रैव ।

मम शास्त्र वहिष्कृत्य अस्माक य प्रपद्यते ।
मुक्त्वा च मम शास्त्राणि शास्त्रमन्यत् प्रभाषते ॥
मद्यपस्तु समासाद्य प्रविशेद्भवन मम ।
यो मे कुसुम्भशाकेन प्रापण कुरुते नर ॥

अपि च ।

"मम दृष्टेरभिमुख ताम्बूल चर्व्वयेत्तु य ।
कुरुवकपत्त्राशस्थै पुष्पै कुर्य्यान्ममार्च्चन ॥
ममार्च्चामासुरे काले य करोति विमूढधी ।
पाठाशनोपविष्टो य पूजयेद्वा निरासन ॥
वामहस्तेन मा धृत्वा स्नापयेद्वा विमूढधी ।
पूजापर्य्युषिते पुष्पे ष्ठीवन गर्व्वकल्पन ॥
तिर्य्यक् पुण्ड्रधरो भूत्वा य करोति ममार्च्चन ।
याचिते पत्रपुष्पाद्यैर्य करोति ममार्च्चन ॥
अप्रक्षालितपादो य प्रविशेन्मम मन्दिर ।
अवैष्णवस्य पक्वान्न यो मह्य विनिवेदयेत् ॥
अवैष्णवेषु पश्यत्सु मम पूजा करोति य ।
अपूजयित्वा विघ्नेश सम्भाष्य च कपालिन ॥
नर पूजान्तु य कुर्य्यात् स्नपनञ्च नखाम्भसा ।
अमौनी घर्म्मलिप्ताङ्गो मम पूजां करोति य: ॥

ज्ञेया परेऽपि बहवोऽपराधाः सदसंमतैः।
आचारे शास्त्रविहितनिषिद्धातिक्रमादिभिः" ॥
अथापराधशमनं।
"संवत्सरस्य मध्ये च तीर्थे शौकरके मम।
कृतोपवासः स्नानेन गङ्गायां शुद्धिमाप्नुयात्॥
मथुरायां तथाप्येवं सापराधः शुचिर्भवेत्।
अनयोस्तीर्थयोरेकं यः सेवेत् सुकृती नरः॥
सहस्रजन्मजनितानपराधान् जहाति सः।"
स्कान्दे।
"अहन्यहनि यो मर्त्त्यो गीताध्यायन्तु संपठेत्।
द्वात्रिंशदपराधैस्तु अहन्यहनि मुच्यते" ॥
अथ कार्त्तिकमाहात्म्ये।
"तुलस्या कुरुते यस्तु शालग्रामशिलार्चनं।
द्वात्रिंशदपराधांश्च क्षमते तस्य केशवः" ॥
तत्रैवान्यत्र।
"द्वादश्यां जागरे विष्णोर्यः पठेत्तुलसीस्तवं।
द्वात्रिंशदपराधानि क्षमते तस्य केशवः ॥
यः करोति हरेः पूजां कृष्णशस्त्राङ्कितो नरः।
अपराधसहस्राणि नित्यं हरति केशवः" ॥
इति श्रीहरिभक्तिविलासे ८ विलासः ॥

अपराह्णः, पुं, (अह्नः अपरः एकदेशिसमासः, समासान्तः टच्, अहःस्थाने अह्नादेशः।) शेष अहः। दिनशेषभागः। इत्यमरः। ("रामाया रमणीयतां विदधति ग्रीष्मापराह्णागमे" इति अमरुशतके।
"तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते"। इति मनुः।) विकाल इति भाषा। तस्य भेदाः। द्विधा विभक्तदिनस्य शेषभागः॥ त्रिधा विभक्तदिनस्य तृतीयभागः॥ स तु त्रिंशद्दण्डदिनमाने विंशतिदण्डात् परं दशदण्डं यावत्। पञ्चधा विभक्तदिनस्य चतुर्थभागः। स तु अष्टादशदण्डात् परं षड्दण्डं यावत्। इति श्रुतिस्मृती॥

अपराह्णतनः, त्रि, (अपराह्णे भवम् सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यः अपराह्ण+ट्यु तुट् च, 'स्वकालतनेषु कालनाम्न इति' पक्षे अलुक्।) अपराह्णभववस्तु। अपराह्णजात। इति सिद्धान्तकौमुदी॥

अपराह्णेतनः, त्रि, (अह्नोऽपरः एकदेशिसमासः, तत्र भवम् अपराह्णे+ट्यु तुट् च, "स्वकालतनेषु कालनाम्नः" इति पक्षे अलुक्।) अपराह्णतनः। इति सिद्धान्तकौमुदी॥

अपरिकल्पितः, त्रि, (परि+कृप्+कर्म्मणि क्तः ततो नञ्समासः।) अज्ञातः। अदृष्टः। यथा,—
"अपरिकल्पितपूर्व्वं कश्चमत्कारकारी
स्फुरति मम गरीयानेष माधुर्यपूरः।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेता
सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव" ॥
इति ललितमाधवे॥

अपरिच्छन्नं, त्रि, परिच्छदशून्यं। परिपूर्व्वकछदधातोः कर्त्तरि क्तेः नञ्समासः॥

अपरिच्छिन्नं, त्रि, (परि+छिद्+क्त ततो नञ्समासः।) परिच्छेदरहितं। असीमं। इयत्तारहितं। यथा,—"किन्तु परिच्छिन्नस्य गेहे घटादेरिव प्रवेशो भवेत् तत्र तदायत्तत्वात् अपरिच्छिन्नत्वेन बहिरन्तरभेदो नास्ति कुतः प्रवेशः"। इति श्रीधरस्वामी॥

अपरिपक्कः, त्रि, परिपाकरहितं। किञ्चित्पक्कं। परिपूर्व्वपचधातोः कर्त्तरि क्तः तस्य वत्वे मस्य च कत्वे परिपक्कः ततो नञ्समासः॥

अपरिमितः, त्रि, (परि+मा+क्त, ततो नञ्समासः।) परिमाणरहितः। मानतुलाव्यवस्थाशून्यः। यथा,—"अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्व्वगतास्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुवनेतरथा"। इति श्रुत्यध्यायः।

अपरिम्लानः, पुं, (परि+म्लै+क्त तस्य नत्वं, ततो नञ्समासः।) रक्ताम्लानवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥ म्लानिरहिते वाच्यलिङ्गः॥ (नूतनः। अपरिशुष्कः। निर्म्मलः।)

अपरिष्कारः, पुं, ("सम्पर्य्युपेभ्यः करोतौ भूषणे इति" सुडागमः।) परिष्काराभावः। अनिर्म्मलत्वं। तद्वति त्रि। परिपूर्व्वकृधातोर्भावे घञि नञ्समासः।

अपरिष्कृतः, त्रि, अमार्जितः। अनिर्म्मलः। अभूषितः। अनलङ्कृतं। परिपूर्व्वकृधातोः कर्म्मणि क्तः नञ्समासः। यथा,—
"मलपूतिसमायुक्तं श्लेष्मविण्मूत्रपिच्छिलं।
रेतोनिष्ठीवमानाभिः स्रवद्भिरपरिष्कृतं" ॥
इति कालिकापुराणे ५६ अध्यायः॥

अपरिहार्य्यः, त्रि, (परि+हृ+कर्म्मणि ण्यत्, ततो नञ्समासः।) अपरिहरणीयं। अत्याज्यं। यथा,
"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्य्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि" ॥
इति श्रीभगवद्गीता॥

अपरूपः, त्रि, (अपकृष्टं रूपं कर्म्मधारयसमासः।) अपकृष्टरूपः। विकृतरूपः। अपोपसर्गेण रूपशब्दस्य बहुव्रीहिसमासः॥ कर्म्मधारयसमासे क्ली॥ लोके तु आश्चर्य्यमिति प्रसिद्धः॥

अपरेद्युः, [स्] अव्य, (अपरस्मिन् दिवसे दिवसस्य एद्युसादेशः)। अपरेऽह्नि। अपरदिने। इत्यमरः॥ ("पूर्व्वेद्युरपरेद्युर्व्वा श्राद्धकर्म्मण्युपस्थिते निमन्त्रयेत विप्रान् वै" इति स्मृतिः।)

अपर्णा, स्त्री, (नास्ति पर्णं तपस्यायां पर्णमप्युपवृत्तिर्व्वा यस्याः सा, टाप्।)
दुर्गा। इत्यमरः॥
("स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता
परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां
वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः"। इति कुमारसम्भवे।)
पत्रशून्ये त्रि॥

अपर्य्याप्तं, त्रि, (परि+आप्+क्त, नञ्समासः।) पर्य्याप्तिशून्यं। असीमं। अपरिमितं। यथा,—
"अपर्य्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितं।
पर्य्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितं" ॥
इति श्रीभगवद्गीता॥

अपर्य्युषितं, क्ली, (परि+वस्+क्त, नञ्समासः।) अवासं। सद्योभवं। यथा नारसिंहे,—
"अपर्य्युषितनिश्छिद्रैः प्रोक्षितैर्जन्तुवर्ज्जितैः।
स्वीयारामोद्भवैर्व्वापि पुष्पैः संपूजयेद्धरिं" ॥
इत्याह्निकाचारतत्त्वम्॥

अपर्व्वदण्डः, पुं, (अपर्व्व पर्व्वरहितं ग्रन्थिशून्यम् इति यावत् दण्डः कर्म्मधारयः।) रामशरक्षुपः। इति राजनिर्घण्टः॥

अपलं, क्ली, (अपलाति अपराक्रमम् आदत्ते येन, अप+ला+करणे क। नास्ति पलं मांसं यस्य सः, मांसशून्यः।) कीलकः। इति शब्दमाला॥ पलशून्ये त्रि॥

अपलपनं, क्ली, अपलापः। अपोपसर्गात् लपधातोर्भावे अनट् प्रत्ययः॥ (पाणिनिमते तु अप+लप्+भावे ल्युट्।)

अपलापः, पुं, (अप+लप्+भावे घञ्।) सतोऽप्यसत्त्वेन कथनं। ज्ञातस्य गोपनं। तत्पर्य्यायः। २ निह्नुतिः। ३ अपह्नुतिः। ४ अपह्नवः। ५ निह्नवः। इति शब्दरत्नावली॥ प्रेम। इति। मेदिनी॥

अपलाषिका, स्त्री, (अप+लष्+भावे ण्वुल्।) तृष्णा। इति हेमचन्द्रः॥

अपवनं, क्ली, (अपकृष्टं कृत्रिमत्वात् अल्पत्वाच्च वनं कर्म्मधारयः।) उपवनं। कृत्रिमवनं। इति हेमचन्द्रः॥

अपवरकः, पुं, (अपव्रियन्ते लोकाः सम्भज्यन्तेऽत्र, अप+वृ+"ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च" इति अप्, ततः स्वार्थे कन्, अथवा अप+वृ+शिल्पिसंज्ञायां वुन् तस्य अकः।) अन्तर्गृहं। तत्पर्य्यायः। २ गर्भागारं ३ वासौकः ४ शयनास्पदं। इति हेमचन्द्रः॥ ("दीपोऽपवरकस्यान्तर्वर्त्तते तत्प्रभा बहिः"।)

अपवर्गः, पुं, (अपवृज्यते संसारः मुच्यतेऽनेन, अप+वृज्+घञ् कुत्वं।) मोक्षः। त्यागः क्रियावसानसाफल्यं। कर्म्मफलं। इति विश्वमेदिन्यौ॥ क्रियान्तः। कार्य्यसमाप्तिः। इति जटाधरो रत्नावली च। पूर्णता। इति धरणी॥ (निर्व्वाणं। मुक्तिः। "अपवर्गमहोदयार्थयोर्भुवमंशाविव धर्म्मयोर्गतौ" इति रघुवंशे। समाप्तिः। शेषः। अवसानं। "क्रियापवर्गेष्वनुजीविसात्कृताः कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पदः"। इति भारविः।)

अपवर्ज्जनं, पुं, (अप+वृज्+भावे ल्युट्।) दानं। मोक्षः। त्यागः। इति मेदिनी॥

अपवादः, पुं, (अप+वद्+भावे घञ्।) आज्ञा। निन्दा। तत्पर्य्यायः। अवर्णः २ आक्षेपः ३ निर्व्वादः ४ परीवादः ५ उपक्रोशः ६ जुगुप्सा ७ कुत्सा ८ गर्हणं ९ इत्यमरः॥ (वचनीयः। "लोकापवादाद्भयं" इति नीतिशतके। "दैव्यामपि हि वैदेह्यां सापवादो यतो जनः"। "हा कथं सीतादेव्याः इदृशमचिन्तनीयं जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि"। इति उत्तरचरिते। आज्ञा। अनुमतिः। आदेशः। "ततोऽपवादेन पताकिनीपतेश्चचाल निर्ह्रादवती महाचमूः"। इति भार-

वि ।) विश्वासः । इति मेदिनी ॥ विशेष । बाधक । यथा,—

"क्वचिदपवादविषयेऽप्युत्सर्गोऽभिनिविशते" ।

इति कलापपरिशिष्ट ॥ रज्जुविवर्त्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववत् वस्तुविवर्त्तस्यावस्तुनोऽज्ञानादे प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्व । तदुक्त ।

"सतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विकार इत्युदीरित ।
अतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विवर्त्त इत्युदाहृत" ॥

अस्य फल । आभ्या अध्यारोपापवादाभ्या तत्त्वम्पदार्थशोधनमपि सिद्ध भवति । इति वेदान्तसार ॥

अपवारण, क्ली, (अप + वृ + णिच् भावे ल्युट् ।) व्यवधान । अन्तर्द्धान । इत्यमर ॥

अपवारित, त्रि, (अप + वृ + णिच्, कर्म्मणि क्त ।) अन्तर्हित । इति हेमचन्द्र ॥

अपवित्र, त्रि (पू + इत्रच्, ततो नञ्समास ।) पवित्रतारहित । अशुद्ध । यथा,—

"अपवित्र पवित्रो वा सर्व्वावस्था गतोऽपि वा ।
य स्मरेत् पुण्डरीकाक्ष सबाह्याभ्यन्तर शुचि" ॥

इति स्मृति ॥ (अविशुद्ध । अनिर्म्मल । दूषित । मलिन ।

"अपवित्रमिद कर्म्म कृत मोहान्धया तया" ।

इति रामायणे । "यदेष सारमेयोऽपवित्रः स्कन्धारूढो नीयते" । इति पञ्चतन्त्रे ।)

अपविद्ध, त्रि, (अप + व्यध् + क्त ।) प्रत्याख्यात । निराकृत । इति हेमचन्द्र ॥ (त्यक्त । प्रतिक्षिप्त ।

"कुवेरस्य मन शल्य शसतीव पराभव ।
अपविद्धगदो बाहुर्भग्नशाख इव द्रुम" ॥

इति कुमारसम्भवे । चूर्णीकृत । दलित ।

"मृदितास्चापविद्धाश्च दृश्यन्ते कमलस्रज" ।

इति रामायणे ।)

अपविद्धपुत्र, पु, (अपविद्धः पुत्र, कर्म्मधारय, ) द्वादशविधपुत्रमध्ये पुत्रविशेष । स तु पोषणाद्यसमर्थमातापितृभ्या त्यक्त तयोरन्यतरमरणे अन्यतरेण वा त्यक्त अनन्तर अन्येन गृहीत्वा पुत्रत्वेन परिकल्पित । यथा,—

"मातापितृभ्यामुत्सृष्ट तयोरन्यतरेण वा ।
य पुत्र परिगृह्णीयादपविद्ध स उच्यते" ॥

इति मनु ॥

अपविषा, स्त्री, (अप अपगत विष यस्या सा, स्त्रियां टाप् ।) निर्व्विषीतृण । इति राजनिर्घण्ट ॥

अपशद, पु, (अप + शद् + कर्त्तरि अच् । अपसद इति पाठे अप + सद् + अच् ।) अपसदः । नीच इत्यमरटीकाया भरत ॥

अपशब्द, पुं, (अप असंस्कृत शब्दः, कर्म्मधारय ।) असंस्कृतशब्द । अशास्त्रीयशब्दः । लौकिकशब्द । ग्राम्यभाषा । तत्पर्य्याय । अपभ्रंश २ । इत्यमर ।

("तएव शक्तिवैकल्यात् प्रमादालसतादिभि ।
अन्यथोच्चारिताः शब्दा अपशब्दा इतीरिताः" ॥

इति हरिवंशे ।)

"आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृतः ।
शास्त्रेषु संस्कृतादन्यदपभ्रशतयोदितं" ॥

इति दण्डी ॥

अपशुक् [ च् ] पुं, (शुच् + भावे क्विप्, अपगता शुक् शोको यस्य स ।) आत्मा । यथा । "क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विनापशुघ्नात्" । इति श्रीभागवत ॥

अपशोक, पु, (अपगत शोको यस्मात् स ।) अशोकवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ ("शोकरहित । दुःखहीन ।

"हरप्रीतिकरो वृक्षो ह्यशोक शोकनाशन ।
दुर्गाप्रीतिकरोऽसि त्व मामशोक सदा कुरु" ॥

देवीपूजापद्धतिः ।)

अपष्ठ, क्ली, (अप + स्था + क, अम्बाम्बागोसव्याप-इत्यादिना षत्व ।) अङ्कुशाग्र । इति हेमचन्द्र ॥

अपष्ठु, व्य, (अप + स्था + "अपदुःसुषु स्थ कु, इति कु, सुषमादित्वात् षत्वम् ।) निरवद्य । विपरीत । शोभन । इति शब्दमाला ॥

अपष्ठु, पु, (अप + स्था + कु, सुषमादित्वात् षत्व ।) काल । वामे त्रि । इति मेदिनी ॥ (समय । असत्य । विरुद्धार्थ । प्रतिकूल । विपरीत ।

"तव धर्म्मराज इति नाम कथमिदमपष्ठु पठ्यते । भौमदिनमभिदधत्यथवा भृशमप्रशस्तमपि मङ्गल जना ।" इति माघ । वाम । दक्षिणेतर ।)

अपष्ठुर, त्रि, (अप + स्था + कुरच्, सुषमादित्वात् षत्व ।) प्रतिकूल । इति हेमचन्द्र ॥

अपष्ठुल, त्रि, (अप + स्था + कुरच्, रस्य लत्व ।) प्रतिकूल । विपरीत । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अपसदः, पु, (अपसीदति अपकृष्टत्व प्राप्नोति, अप + सद् + पचाद्यच् ।) नीच । इतरलोक । इत्यमर ॥

("विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः ।
वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन् षडेतेऽपसदा स्मृता" ॥

इति मनूक्ते अनुलोमवर्णस्त्रीजाते वर्णसङ्करभेदे मूर्द्धावसिक्तादौ पु स्त्री ।)

अपसर, पु, (अप + सृ + भावे अच् ।) अपसरण । स्थानात् स्थानान्तरगमन । अपोपसर्गात् गत्यर्थ सृधातोर्भावे अच्प्रत्यय ॥

("निरन्वयोऽनपसर प्राप्त स्याच्चौरकिल्बिषं" ।
इति मनु ।)

अपसर्ज्जन, क्ली (अप + सृज + भावे ल्युट् ।) मोक्ष । परित्याग । दान । इति भूरिप्रयोग ॥ (बधः । हत्या । परिवर्जन ।)

अपसर्पः, त्रि, (अपसर्पति, अप + सृप् + कर्त्तरि अच् ।) चर । हरकरा इति प्रसिद्ध । इत्यमरः ॥ (गूढ़चरः । स्पशः ।

"यथार्हवर्णं प्रणिधिरपसर्पश्चर स्पशः ।
चारश्च गूढ़पुरुषश्चाप्तः प्रत्ययितस्त्रिषु" ॥

इत्यमर ।

"सर्पाधिराजोरुभुजोऽपसर्प
पप्रच्छ भद्र विजितारिभद्रः" ।

इति रघुवंशे ।)

अपसलवि, व्य, (अप + सल् + बाहुल्यात् अवि ।) प्रदेशिन्यङ्गुष्ठयोरन्तरा । पितृतीर्थ । यथा ।

"प्रदेशिन्यङ्गुष्ठयोरन्तरा अपसलवि अपसव्यं वा तेन पितृभ्यो निदधाति" । इति श्राद्धतत्त्वे भट्टभाष्यधृतगृह्य ॥

अपसव्य, क्ली, (सव्यादपक्रान्त, "निरादयो गताद्यर्थे पञ्चम्या" इति समासः ।) अपसलवि । पितृतीर्थ । इति श्राद्धतत्त्वे भट्टभाष्यधृतगृह्य ॥

अपसव्य, त्रि, (सव्यादपक्रान्त, "निरादयो गताद्यर्थे पञ्चम्या" इति समास ।) शरीरदक्षिणभाग । प्रतिकूलः । इति मेदिनी ॥ (विपरीत ।

"वाता मण्डलिनस्तीव्रमपसव्यं प्रचक्रमु" ।

इति रामायणे ।)

अपस्कर, पु, (अपकीर्य्यते, अप + कॄ + अप, "अपस्करो रथाङ्गमिति" पाणिनिसूत्रेण सुडागम ।) रथाङ्ग । तच्च चक्रयुगचक्रादि । इत्यमर । गुह्यद्वार । विष्ठा । इति धरणी ॥

अपस्नात, त्रि, (अपकृष्टत्वेन स्नात अमङ्गलार्थत्वात्, अप + स्ना + कर्त्तरि क्त ।) मृतमुद्दिश्यकृतस्नानो जन । इत्यमरः ॥ ("अपस्नातस्तानिष्पीड्य मौलिरेव भवनमाजगाम" इति हर्षचरिते ।) संस्कारार्थं स्नापितो मृतः । इति स्वामी ।

अपस्नान, क्ली, (अप + स्ना + भावे ल्युट् ।) मृतस्नानं । मृतोद्देशकस्नान । इति हेमचन्द्र ॥ (अपवित्रस्नान । स्नानावशिष्टजलेन स्नानं । स्नानोदक । स्नानावशिष्ट जल ।

"उद्वर्त्तनमपस्नानं विण्मूत्रे रक्तमेव च ।
श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि नाधितिष्ठेत्तु कामत" ।

इति मनु ।)

अपस्मार, पु, (अपस्मर्य्यते पूर्व्ववृत्त विस्मर्य्यतेऽनेन, अप + स्मृ + करणे घञ् ।) रोगविशेषः । मृगी इति भाषा । तत्पर्य्याय । अङ्गविकृति २ अपस्मारः ३ भूतविक्रिया ४ । इति राजनिर्घण्ट ॥

तस्य सामान्यरूप ।

"तमःप्रवेश संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृते ।
अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्व्विध" ॥*॥

तस्य निदानपूर्व्विका सम्प्राप्ति ।

"चिन्ताशोकादिभि क्रुद्धा दोषा हृत्स्रोतसि स्थिता ।
कृत्वा स्मृतेरपध्वसमपस्मार प्रकुर्व्वते" ॥*॥

तस्य पूर्व्वरूप । यथा,—

"हृत्कम्प शून्यता स्वेदो ध्यान मूर्च्छा प्रमूढ़ता ।
निद्रानाशश्च तस्मिश्च भविष्यति भवत्यथ" ॥*॥

वातिकस्य रूप ।

"कम्पते प्रदशेत् दन्तान् फेनोद्वामी श्वसित्यपि ।
परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात्" ॥*॥

पैत्तिकस्य रूप ।

"पीतफेनाङ्गवक्त्राक्ष पीतासृग्रूपदर्शनः ।
सतृष्णोष्णानलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिक" ॥*॥

श्लैष्मिकरूप ।

"शुक्लफेनाङ्गवक्त्राक्ष शीतहृष्टाङ्गजो गुरुः ।
पश्यन् शुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिको मुच्यते चिरात्" ॥

त्रिदोषजरूप ।

"सर्व्वैरेभि समस्तैश्च लिङ्गैर्ज्ञेयस्त्रिदोषज" ॥ * ॥
असाध्यलक्षणं ॥
अपस्मारः स चासाध्यो य क्षीणस्यानवश्च य ॥*॥
अरिष्टलक्षण ।
"प्रस्फुरन्त सुबहुश क्षीण प्रचलितभ्रुवं ।
नेत्राभ्याश्च विकुर्व्वाणमपस्मारो विनाशयेत्" ॥*॥
तस्य वेगकाल ।
"पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मला ।
अपस्माराय कुर्व्वन्ति वेग किञ्चिदथान्तर ॥
देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ वीजानि कानिचित् ।
शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्चया" ॥
इति माधवकर ॥ * ॥ तस्य चिकित्सा । यथा,—
"तैलेन लशुन सेव्य पयसा च शतावरी ।
ब्राह्मीरसश्च मधुना सर्व्वापस्मारभेषज ॥ * ॥
चूर्णै सिद्धार्थकादीना भक्षितैरथवापि तैः ।
गोमूत्रपिष्टै सर्व्वाङ्गलेपै शाम्यत्यपस्मृति" ॥
सिद्धार्थकादि उन्मादोक्त ॥ * ॥
"शिग्रुकट्वङ्गकिणिहीनिम्बत्वग्सपाचित ।
चतुर्गुणे गवा मूत्रे तैलमभ्यङ्गने हित" ॥
कट्वङ्ग शोनापाठा । किणिही चिरिचिरा ॥ * ॥
"निर्गुण्डीभववन्दाकनावनस्य प्रयोगत ।
उपैति सहसा नाशमपस्मारो महागद" ॥ * ॥
मनोह्वा तार्क्ष्यविष्ठा वा शकृत् पारावतस्य च ।
अञ्जनाद्धन्त्यपस्मारमुन्मादश्च विशेषत" ॥
मनोह्वा मन शिला । तार्क्ष्यो गरुड । शकृत् विष्ठा ॥ * ॥
"य खादेत् क्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचारज ।
अपस्मार महाघोर चिरोत्थं स जयेद्ध्रुवं" ॥
वचा घुरवच् ॥ * ॥
"कुष्माण्डकफलोत्थेन रसेन परिपेषितं ।
अपस्मारविनाशाय यष्ट्याह्व च पिबेत् त्र्यहं" ॥
त्र्यहमिति एतस्य पानाद्दिवसत्रयेणैवापस्मारोपशमो भवतीत्यभिप्राय ॥ * ॥
"ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशङ्खपुष्पीशृतं घृत ।
पुराणं स्यादपस्मारोन्मादग्रहहर पर" ॥
एतस्य प्रक्रिया । पुराणं गोघृत प्रस्थमित वचाकुष्ठशङ्खपुष्पीणा समुदिताना कुडवमितानां कल्केन प्रस्थमितब्राह्मीरसयिष्टेन पचेत् । ब्राह्मीघृत ॥ * ॥
"कुष्माण्डकरसे सर्पिरष्टादशगुणे पचेत् ।
यष्ट्याह्वकल्कं तत्पानमपस्मारविनाशनं" ॥
कुष्माण्डकघृत ॥ * ॥
"द्वौ कीटमेषौ विधिवदानीय रविवासरे ।
कण्ठे भुजे वा सधार्य्य जयेदुग्रामपस्मृति" ॥
अयन्तु कीटो नदीतीरे सिकतामध्ये तिष्ठति ॥*॥
"शिग्रुकुष्ठजलाजाजीलशुनव्योषहिङ्गुभि ।
वस्तमूत्रे शृतं तैल नावन स्यादपस्मृतौ" ॥
जल वालक । अजाजी जीरक । वस्तः छाग । नावन नस्य ॥ * ॥ इत्यपस्माराधिकार । इति भावप्रकाश ॥

अपहार, पु, (अप+हृ+भावे घञ् ।) अपचय । हानि । इत्यमर ॥ अपहरणं । चौर्य्य । सगोपनं । धनस्वाम्यनुपयोगिव्यय । इति दायभाग ॥ (विनाश ।
"कर्णनासापहारेण भगिनी मे विरूपिता" ।
इति रामायणे । स्तेयं । यद्धान्यापहारादिकं कर्म्म द्रव्यस्वामिसमक्ष बलात्कृत तत्साहस स्यात् ।
इति कल्लूकभट्ट । निह्नव । "कथ वा आत्मन अपहार करोमि" । इति शाकुन्तले ।)

अपहारकः, त्रि, (अप+हृ+ण्वुल् ।) अपहारी । अपहरणकर्त्ता । यथा,—
"परापवादनिरत परद्रव्यापहारक" ।
इति पुराणं ॥
("द्विविधान् तस्करान् विद्यात् परद्रव्यापहारकान्
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः" ॥
"अन्नहर्त्तामयावित्वं मौक्य वागपहारक ।
वस्त्रापहारक श्वैत्र्यं पङ्गुतामश्वहारक" ॥
इति मनु । चौर ।
"योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते ।
स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारक" ।
इति मनु ।)

अपहास, पु, (अप+हस्+भावे घञ् ।) अकारणहास्य । इति हेमचन्द्र ॥

अपह्नव, पु, (अप+ह्नु+भावे अप् ।) अपलाप । स्नेहः । इति मेदिनी ॥
("ऋणे देये प्रतिज्ञाते पञ्चक शतमर्हति ।
अपह्नवे तद्द्विगुण तन्मनोरनुशासनम्" ॥
इति मनु ।)

अपह्नुति, स्त्री, (अप+ह्नु+भावे क्तिन् ।) अपलाप । अपह्नव । इति शब्दरत्नावली ॥ उपमेयासत्यकरणपूर्व्वकोपमानसत्यताव्यवस्थापिकालङ्कृति । तस्या लक्षणं ।
"प्रकृत यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुति" ।
उदाहरणं ।
"अवाप्त प्रागल्भ्य परिणतरुच शैलतनये ।
कलङ्को नैवाय विलसति शशाङ्कस्य वपुषि ॥
अमुष्येय मन्ये विगलदमृतस्यन्दिशिशिरे ।
रतिश्रान्ता शेते रजनिरमणी गाढमुरसि" ॥
इति काव्यप्रकाश ॥
("प्रकृत प्रतिषिध्यान्यस्थापन स्यादपह्नुति ।
गोपनीय कमप्यर्थं द्योतयित्वा कथञ्चन ॥
यदि श्लेषेणान्यथा वाऽन्ययेत् साप्यपह्नुतिः" ।
इति साहित्यदर्पणे ।)

अपानाथ, पुं, (अपा नाथ अलुक्समास ।) समुद्र । इति राजनिर्घण्ट ॥

अपानिधि, पु, (निधीयतेऽत्र, नि+धा+अधिकरणे कि, अपा निधि आधार ।) समुद्र । वारानिधि इति दर्शनात् ॥

अपाम्पति, पु, (अपा पति, अलुक्समास ।) समुद्र । इत्यमर ॥ वरुण । अप्पतिरित्यमरेणोक्तत्वात् ॥

अपापित्त, क्ली, (अपा पित्तमिव तदुत्पन्नत्वात् तस्य पित्तत्व, अलुक्समास ।) अग्नि । इति शब्दरत्नावली ॥ चित्रकवृक्ष । वह्निसञ्ज्ञक इत्यमरेणोक्तत्वात् ॥

अपाक्, [च्] त्रि, (अप+अञ्च+क्विन्, नलोप ।) दक्षिणदिग्भववस्तु । तत्पर्य्याय । अपाचीनं २ । इति हेमचन्द्र ॥

अपाक, पु, (पच+भावे घञ्, ततो नञ्समास ।) पाकाभाव । अजीर्णता । यथा,—
"अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा आलस्य गौरव ज्वर ।
अपाक शून्यताङ्गानामामवातस्य लक्षणं" ॥
इति माधवकर ॥ पाकाभावविशिष्टे त्रि । यथा,—
"गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषा
समूर्च्छिता मासमसृक् प्रदूष्य ।
वृत्त स्थिरं मन्दरुजं महान्त-
मनल्पमूल चिरवृद्ध्यपाक" ॥
इति माधवकर ॥

अपाकशाकं, क्ली, (न पच्यते, पच्+घञ्, नञ्समास, अपाक शाको यस्य तत् ।) आर्द्रकं । इति राजनिर्घण्ट ॥

अपाङ्ग, पु, (अपाञ्चति वक्र गच्छति चक्षुर्यत्र, अप+अञ्च+अधिकरणे घञ् ।) नेत्रयोरन्त । चक्षुःकोण ।
("चलापाङ्गा दृष्टि स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं" । इति शाकुन्तले । "कुवलयदृशा लोललोलैरपाङ्गै" । इति शान्तिशतके ।) तिलक । इत्यमर ॥ अङ्गहीने त्रि । इति मेदिनी ॥

अपाङ्गक, पु, (अपकृष्टमङ्ग यस्य समासान्त क ।) अपामार्गवृक्ष । इति शब्दरत्नावली ॥ आपा इति भाषा । अङ्गहीने त्रि ॥

अपाङ्गदर्शन, क्ली, (अपाङ्गेन नेत्रप्रान्तेन दर्शन तृतीयातत्पुरुष ।) कटाक्ष । इति हेमचन्द्र ॥

अपाची, स्त्री, (अप+अञ्च+क्विन्, स्त्रियां ङीप् ।) दक्षिणदिक् । इति हलायुध ॥

अपाचीन, त्रि, (अपाच्या दक्षिणस्या दिशि भवं, अपाच् ख तस्य ईन ।) अपागर्थ । दक्षिणदिग्भववस्तु । विपर्य्यस्त । विपरीत । इति विश्वमेदिन्यौ ॥

अपाच्यं, त्रि, दक्षिणदिग्भववस्तु । अपाची दक्षिणादिक् ततो भवार्थे यत्प्रत्यय ॥ पचनायोग्य । पचधातो कर्म्मणि ण्यति पाच्यं पश्चान्नञ्समास ॥

अपाटव, क्ली, (पटोर्भाव पटु+भावे अण् नास्ति पाटव पटुता यत्र तत् ।) रोग । इति हेमचन्द्र ॥ अपटुता । जडता । पटोर्भाव पाटव ततो नञ्समास ॥

अपात्र, क्ली, (कुत्सित पात्र अप्राशस्त्ये नञ्समास ।) कुपात्र । असत्पात्र । यथा । "अपात्रे पातयेद्दत्तं सुवर्णं नरकार्णवे" । इति मलमासतत्त्वं ॥ (योग्यताहीन । निन्दित । विद्यातपोहीन । दानादियोग्यताहीन ।
"विद्येव कन्यका मोहादपात्रे प्रतिपादिता ।
यशसे न न धर्म्माय जायेतानुशयाय तु" ॥
इति कथासरित्सागरे ।)

अपात्रीकरणं, क्ली, (अनपात्र अपात्र कुत्सितपात्रं क्रियतेऽनेन, अपात्र+च्वि+कृ+करणे ल्युट् ।) नवविधपापमध्ये पापविशेष । तच्चतुर्व्विधं ।

निन्दितधनादानं १ वाणिज्यं २ शूद्रसेवनं ३ असत्यभाषणं ४ । इति प्रायश्चित्तविवेकः ॥
("निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् ।
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम्" ॥
इति मनुः ।)

अपादानं, क्ली, (अपादीयते विश्लिष्यतेऽस्मात्, अप + आ + दा + ल्युट् ।) यस्माद्वस्तुनो वस्त्वन्तरस्य चलनं भवति तत् । षट्कारकमध्ये पञ्चमकारकं । तत्रैकाद्शार्थे पञ्चमी स्यात् यथा । यतोऽपायः । यथा वृक्षात् पर्णं पतति १ । यतो भीः । यथा व्याघ्रात् बिभेति २ । यतो जुगुप्सा । यथा पापात् जुगुप्सते धीरः ३ । यतः पराजयः । यथा सिंहात् पराजयते हस्ती ४ । यतः प्रमादः । यथा धर्म्मात् प्रमाद्यति नीचः ५ । यत आदानं । यथा भूपात् धनमादत्ते विप्रः ६ । यतो भूः । यथा पितुः पुत्त्रो जायते ७ । यतस्त्राणं । यथा व्याघ्रात् गां रक्षति गोपः ८ । यतो विरामः । यथा जपाद्विरमति विप्रः ९ । यतोऽन्तर्द्धिः । यथा गुरोरन्तर्द्धत्ते शिष्यः १० । यतो वारणं । यथा यवेभ्यो गां वारयति ११ । इति मुग्धबोधटीकायां दुर्गादासः ॥

अपानं, क्ली, (अपनयति मलादि निःसारयति, अप + अन् + णिच् + पचाद्यच् ।) मलद्वारं । तत्पर्य्यायः । गुदं २ । पायुः ३ । इत्यमरः ॥ गुह्यं ४ । गुदवर्त्म ५ । इति जटाधरः ॥ तनुह्रदं ६ । मार्गं ७ । इति शब्दरत्नावली ॥

अपानः, पुं, (अपानिति अधोदेशात् निःसरति, अप + अन् + अच् ।) गुदस्थवायुः । इत्यमरः ॥ अवाग्गमनवान् पाय्वादिस्थानवर्त्ती वायुः । इति वेदान्तसारः ॥
("अधोनयत्यपानस्तु आहारञ्च नृणामधः ।
मूत्रशुक्रवहो वायुरपान इति कीर्त्त्यते" ॥
इत्युक्तलक्षणोऽवाग्गमनवान् कृकाटिकापृष्ठपार्श्वपायूपस्थवर्त्तिवायुः । गुदस्थवायुः ।)
("प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ" ।
इति भगवद्गीता ।)

अपापः, त्रि, (नास्ति पापं यस्य सः ।) निष्पापः । पापशून्यः । यथा,—
"इयं दाशरथे सीता सुव्रता ब्रह्मचारिणी ।
अपापा हि त्वया त्यक्ता ममाश्रमसमीपतः" ॥
इति रामायणं ॥

अपामार्गः, पुं, (अपामृज्यते रोगो दूरीक्रियते अनेन, अप + आ + मृज् + करणे घञ् ।) वृक्षविशेषः । आपाङ् इति भाषा । तत्पर्य्यायः । शैखरिकः २ धामार्गवः ३ मयूरकः ४ प्रत्यक्पर्णी ५ कीशपर्णी ६ किणिही ७ खरमञ्जरी ८ । इत्यमरः ॥ शैखरेयः ९ अधामार्गवः १० केशपर्णी ११ इति तट्टीका ॥ खलमञ्जरी १२ प्रत्यक्पुष्पी १३ क्षारमध्यः १४ अधोघण्टा १५ शिखरी १६ इति रत्नमाला ॥ दुर्ग्रहः १७ अध्वशल्यः १८ काण्डीरकः १९ मर्कटी २० दुरभिग्रहः २१ वाशिरः २२ पराक्पुष्पी २३ कण्टी २४ मर्कटपिप्पली २५ कटुमञ्जरिका २६ अघाटः २७ क्षारकः २८ पाण्डुकण्टकः २९ नाशाकण्टः ३० कुब्जः ३१ । अस्य गुणाः । तिक्तत्वं । उष्णत्वं । कटुत्वं । कफार्शःकण्डूदरामयविषरोगनाशित्वं । धारकत्वं । वान्तिकारित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ अग्निवर्द्धनत्वं । स्रंसकारित्वं । श्वसनत्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥ ॥ तत्फलगुणाः । रसे स्वादुत्वं । पाके दुर्ज्जरत्वं । विष्टम्भित्वं । वायुकारित्वं । रूक्षत्वं । रक्तपित्तप्रसादनत्वञ्च । इति भावप्रकाशः ॥ (अपामार्ग ओषधीनां सर्व्वासामेक इद्वशीति अथर्व्ववेदः ।)

अपाम्पतिः, पुं, (अपां पतिः, अलुक्समासः ।) समुद्रः । इत्यमरः ॥ वरुणः । अप्पतिरित्यमरेणोक्तत्वात् ॥

अपाम्पित्तं, क्ली, (अपां पित्तमिव अलुक्समासः तदुत्पन्नत्वात् ।) अग्निः । इति शब्दरत्नावली ॥ चित्रकवृक्षः । वह्निसञ्ज्ञक इत्यमरेणोक्तत्वात् ।

अपायः, पुं, (अप + इन् + भावे अच् ।) विश्लेषः । इति रामतर्कवागीशः ॥ चलनं । इति दुर्गादासः ॥ विनाशः । यथा,—
"सा काशी त्रिपुरारिराजनगरी पायादपायाज्जगत्" । इति काशीखण्डः ॥

अपारं, क्ली, (नास्ति पारं यस्य तत् ।) अवारं । नद्यादेरर्व्वाक्पारं । इति हलायुधः ॥ असीमे त्रि ॥

अपावृतः, त्रि, (अप + आ + वृ + आच्छादने क्तः ।) पिहितः । आवृतः । स्वतन्त्रः । स्वाधीनः । इति मेदिनी ॥ (उद्घाटितः । अनावृतः । अपसारितावरणः ।
"यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्" ।
इति गीता ।)

अपावृत्तः, त्रि, (अप + आ + वृत् + क्तः ।) लुठितः । इति हेमचन्द्रः ॥ लोटा । गडागडि इति भाषा । (अन्तरितः । परावृत्तः । निवृत्तः ।
"प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनचित्" ।
इति महाभारते ।)

अपाश्रयः, पुं, (अपाश्रियते आच्छाद्यतेऽनेन, अप + आ + श्रि + करणे अच् ।) प्राङ्गणावरणं । सामियाना । चाँदोया इति भाषा । तत्पर्य्यायः । मत्तालम्बः २ प्रग्रीवः ३ मत्तवारणः ४ । इति हेमचन्द्रः ॥ आश्रयशून्ये त्रि ॥ (चन्द्रातपः । निराश्रयः । आश्रितः । अधीनः ।
"ब्राह्मणापाश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते" ।
इति मनुः ।)

अपासङ्गः, पुं, (अप + आ + सन्ज + घञ् ।) उपासङ्गः । तूणः । इत्यमरटीकासारसुन्दरी ॥

अपासनं, क्ली, (अप + अस + भावे ल्युट् ।) मारणं । इत्यमरः ॥

अपास्तः, त्रि, (अप + अस + क्तः ।) निरस्तः । यथा । एतेन नातिसन्ध्यासमीपत इत्यनेन राक्षसीवेलामात्रं निषिध्यते इति मैथिलमतमपास्तं । इति तिथ्यादितत्त्वं ॥

अपाक्षः, त्रि, (अक्षमिन्द्रियमपगतमनुगतमिति यावत्, प्रादिसमासः । अपकृष्टमक्षि चक्षुः कर्म्मधारयः, अच् समासान्तः । अपगतमक्षि च
कर्म्मधारयः, अच्, समासान्तः ।) प्रत्यक्षः । इ
त्रिकाण्डशेषः । कुत्सितचक्षुः । लोचनशून्
एतावर्थौ व्युत्पत्तिलभ्यौ ॥

अपि व्य, (न पिबति पिबतौ क्विप्, आगमशास्त्रस
नित्यत्वान्न तुक् ।) उपसर्गविशेषः । अस्यार्था
आहरणं । सम्भावनं । निन्दा । अनुज्ञा । अल्पत
समुच्चयः । इति दुर्गादासः ॥ प्रश्नः । शङ्का । यु
पदार्थः । कामाचारक्रिया । इति विश्वमेदिन्यौ
("अपि पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु
इति पाणिनिसूत्रम् ) ॥

अपिगीर्णः, त्रि, (अपि + गॄ + कर्म्मणि क्तः ।) स्तु
वर्णितः । इत्यमरः ॥

अपिच्छिलः, त्रि, (न पिच्छिलः नञ्समासः ।
पैच्छिल्याभावविशिष्टः । पिच्छिलताशून्यः । यथा
"प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम्" ।
इति माधवकरः ॥ (परिष्कृतः । अमलिन
निर्म्मलः । गाढः ।)

अपितु व्य, (अपि + तु ।) यद्यर्थे । यद्यपि । इति
त्रिकाण्डशेषः ॥

अपिधानं, क्ली, (अपि + धा + भावे ल्युट् ।) आच्छा
दनं । अन्तर्द्धानं । इत्यमरः ॥ (आवरणं । "द्वारे
पुरस्योद्घटितापिधाने" । इति कुमारसम्भवे ।
"शिलापिधाना काकुत्स्थ दुर्गं चास्या प्रवेशनम्"
इति रामायणे ।)

अपिनद्धः, त्रि, (अपि + नह् + कर्म्मणि क्तः, अस
वालोपे पिनद्धश्च ।) परिहितवस्त्रादि । तत्
पर्य्यायः । आमुक्तः २ प्रतिमुक्तः ३ पिनद्धः ४ ।
इत्यमरः ॥

अपीतः, पुं, (पा + कर्म्मणि क्तः । न पीतः, नञ्
समासः ।) पीतभिन्नवर्णः । तद्विशिष्टे अकृतपाने
च त्रि इति नञ्समस्तपीतशब्दस्यैतावर्थौ ॥

अपीनसः, क्ली, (अपीनाय अस्थूलत्वाय सीयते कल्पते,
अपीन + सो + कर्म्मकर्त्तरि कः । पीनसात् रोग
विशेषात् भिन्नः नञ्समासः ।) पीनसरोगः ।
इति रभसः ॥ तद्रहिते त्रि ॥

अपीच्यः, त्रि, अतिसुन्दरः । यथा,—
"अपीच्यदर्शनं शश्वत् सर्व्वलोकनमस्कृतम् ।
सन्तं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रहकातरम्" ॥
इति श्रीभागवतं ॥

अपुच्छा, स्त्री, (नास्ति पुच्छमग्रभागो यस्याः सा,
टाप् ।) शिंशपावृक्षः । इति शब्दचन्द्रिका ॥
(त्रि, लाङ्गूलहीनः । शिखरहीनः ।)

अपुनर्भवः, पुं, (न पुनर्भवति न पुनरुत्पद्यतेऽस्मात्,
न पुनर् + भू + अपादाने अप्, मयूरव्यंसकादित्वात् समासः ।) मुक्तिः । कैवल्यं । इति हेमचन्द्रः ॥ पुनर्जन्माभावः । यथा,—
"हेतौ लिङ्गे प्रशमने रोगाणामपुनर्भवे ।
ज्ञानं चतुर्विधं यस्य स राजार्हो भिषक्तमः" ॥
इति चरकः ॥ (कर्त्तरि अचि तु पुनर्जन्मशून्यः मुक्त
इति यावत् ।)

अपुष्पफलदः, पुं, (अपुष्पं, पुष्पं विना फलं ददाति,

अपुष्पफल + दा + कर्त्तरि क, उपपदसमासः ।) पनसवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ पुष्पव्यतिरेकजातफलदत्वमात्रं ॥ (अहेतुकफलदातरि त्रि)

अपूप, पु, (न पूयते विशीर्य्यति, न + पूय + प, यलोपः ।) पिष्टकः । इत्यमरः ॥ गोधूमः । इति राजनिर्घण्टः ॥

("वृथाकृसरसंयावं पायसापूपमेव च" ।
इति मनुः ।)

अपूप्य, पुं, (अपूपाय हितः "विभाषा हविरपूपादिभ्यः" इति पाणिनिसूत्रेण यत् ।) गोधूमचूर्णं । इति जटाधरः ॥ मयदा इति भाषा ।

अपूरणी, स्त्री, (न पूरयति पुष्पगन्धेन मनःप्रीतिं पूर्णां करोति निर्गन्धत्वात्, पूर + णिच् + कर्त्तरि ल्युट्, स्त्रियां ङीप् ततो नञ्समासः ।) शाल्मलिवृक्षः । इति शब्दचन्द्रिका ॥

अपूर्व्व, क्ली, (नास्ति पूर्व्वं पूर्व्वकालभवं दृष्टं यस्य तत् ।) कर्म्मजन्यमदृष्टं । तत्पर्य्यायः । अनुग्रहः २ नियोगः ३ अतिशयः ४ कार्य्यं ५ प्रयोगः ६ । इति स्मृतिः ॥ तच्चतुर्व्विधं यथा । फलापूर्व्वं १ समुदायापूर्व्वं २ उत्पत्त्यपूर्व्वं ३ अङ्गापूर्व्वं ४ । येन स्वर्ग आरभ्यते तत् फलापूर्व्वं । अमावास्यायां त्रयाणां यागानामेकः समुदायः पौर्णमास्यामपरः तयोर्भिन्नकालवर्त्तिनोः सहत्फलापूर्व्वारम्भायोगात्तदारम्भाय समुदायद्वयजन्यमपूर्व्वद्वयं कल्पनीयं । तयोरेकैकस्यारम्भाय एकैकसमुदायवर्त्तिनां त्रयाणां यागानां भिन्नक्षणवर्त्तित्वेन सङ्घातापत्त्यभावात् यागत्रयजन्यानि त्रीण्युत्पत्त्यपूर्व्वाणि कल्पनीयानि । तेषाञ्चाङ्गोपकारमन्तरेणानिष्पत्तेरङ्गानां चानेकक्षणवर्त्तिनां सङ्घातासम्भवात् अङ्गापूर्व्वाणि कल्पनीयानि । तत्र तत्र विभागः । इत्यधिकरणमाला ॥

अपूर्व्व, त्रि, (नास्ति पूर्व्वं यस्य, न पूर्व्वः नञ्समासः ।) आश्चर्य्यं । यथा,—
"अपूर्व्वेयं हरेर्माया त्रिगुणा रज्जुरूपिणी ।
यया मुक्तो न चलति बद्धो धावति धावति" ॥
इति उद्भटः ॥ पूर्व्वदिग्देशकालभिन्नः ॥

अपेतराक्षसी, स्त्री, (अपेतः राक्षस इव घातकः यस्याः सा, गौरादित्वात् ङीष् ।) तुलसीवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अपेय, त्रि, (पा + कर्म्मणि अर्हाद्यर्थे यत् ।) पानायोग्यं । अपानीयं । यथा,—"मद्यमपेयमदेयमनिग्राह्यं" । इति तिथ्यादितत्त्वे उशनःसूत्रं ॥
("जलधिजलमपेयं पण्डिते निर्धनत्वं" ।)
("ये कृतः सर्व्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः ।
क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान्" ॥
इति मनुः ।)

अपेक्षणीय, त्रि, (अप + ईक्ष + कर्म्मणि अनीयर् ।) अपेक्षायोग्यं । अपेक्ष्यं । अपेक्षितव्यं । यथा,—
"आत्मा यत्नेन रक्ष्यो रणशिरसि पुनः सोऽपि नापेक्षणीयः" । इति नवरत्नमध्ये शङ्कुः ॥

अपेक्षा, स्त्री, (अप + ईक्ष + भावे अ, स्त्रियां टाप् ।) कार्य्यनिमित्तयोरन्योन्याभिसम्बन्धः । इति सुमदग्रटीकायां विष्णुमिश्रः ॥ आकाङ्क्षा । यथा,—
"सा प्रक्रिया या कथमित्यपेक्षा" । इति वेदान्तटीकायां वाचस्पतिमिश्रः ॥ (आकाङ्क्षा । अभिलाषः । आशा ।
"अपेक्षा भिक्षायामपि किमपि चेतः स्वपयति" ।
इति शान्तिशतके । प्रयत्नः । अनुरागः । सम्माननम् ।
"अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेदपेक्षया ।
रक्षितं वर्द्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत्" ॥
इति मनुः । पर्य्यालोचनं । विचारः । अनुचिन्तनम् ।
"सत्यामपि तपःसिद्धौ नियमापेक्षया मुनिः" ।
इति रघुवंशे ।
"न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय" ।
इति मेघदूते ।)

अपेक्षाबुद्धि, स्त्री, अनेकैकत्वविषयकबुद्धिः । नानैकत्वावगाहिबुद्धिः । अयमेकः अयमेकः इत्याकारबुद्धिः । इति भाषापरिच्छेदः ॥
("अनेकैकत्वबुद्धिर्या सापेक्षाबुद्धिरिष्यते" इति
"अपेक्षाबुद्धिनाशाच्च नाशस्तेषां निरूपितः"
इति च भाषापरिच्छेदे ।)

अपोगण्ड, त्रि, (अपकृष्टकर्म्मणि वदविहितकार्य्यादन्यकर्म्मणि गण्डः उद्यतः, गडि उद्यमे + पचाद्यच्, निपातनात् अपशब्दस्याकारस्य उकारः, अपसि कर्म्मणि गण्डः अतिभीरुत्वात् त्याज्यः ।) स्वभावतो न्यूनाधिकाङ्गविशिष्टः । तत्पर्य्यायः । पोगण्डः २ विकलाङ्गः ३ अङ्गहीनकः ४ । इति शब्दरत्नावली ॥ शिशुः । वलिभः । त्रिवलियुक्तः । इति मेदिनी ॥ अतिभीरुः । इति विश्वो हेमचन्द्रश्च ॥ द्वे स्वभावतो न्यूनाधिकाङ्गे ऊनविंशत्यङ्गुलीकैकविंशत्यङ्गुलीकादौ जने वर्त्तते इत्यर्थः । विकलः स्वभावहीनः अङ्गमस्य विकलाङ्गः । अपकृष्टं गच्छति अपोगण्डः । नाप्नोति गमेर्ड्ः निपातनात् पस्य पोभावः ।
"अपोगण्डस्तु शिशुके विकलाङ्गे च भीरुके" ।
इति विश्वः ॥ निपातनादपस्यादिलोपे पोगण्डोऽपि । पोगण्डो विकलाङ्गः स्यादिति हलायुधः ॥ पोगण्डो विकलाङ्गकः । इति रत्नकोषः । इति तट्टीकायां भरतः ।

अपोदिका, स्त्री, (अपगतमुदकं यस्याः सा, स्त्रियां टाप्, पृषोदरादित्वात् दित्त्वं ।) उपोदिका । पूतिकाशाकः । इत्यमरटीकायां स्वामी ॥

अपोह, पु, (अप + ऊह + भावे घञ् ।) अपगत ऊहः । वितर्काभावः । शुश्रूषाद्यष्टधीगुणान्तर्गतषष्ठगुणः ।
("शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा ।
ऊहोऽपोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः") ॥
इति हेमचन्द्रः ॥ अतद्व्यावृत्तिः । इति काव्यप्रकाशटीकायां महेश्वरः ॥

अप्न, [स्] क्ली, (आप्यते स्वर्गो लभ्यतेऽनेन, आप + करणे तस् ङ्खश्च ।) यज्ञकर्म्म । इत्युणादिकोषः ॥

अप्तु, पु, (आप्यते भोगाय प्राप्यते य, आप् + कर्म्मणि तु ङ्खश्च ।) शरीरं । यज्ञं । इत्युणादिकोषः ॥ ("अथासवे द्वितीये यामाहुतिं जुहोति" । इति शतपथब्राह्मणम् ।)

अप्न, [स्] क्ली, (आप् + असुन् नुट् ङ्खश्च ।) जलं । वेदप्रयोगोऽयं ॥

अप्पति, पु, (अपां पतिः, षष्ठीतत्पुरुषः ।) वरुणः । इत्यमरः ॥ समुद्रः । अपाम्पतिरिति दर्शनात् ॥

अप्पित्त, क्ली, (अपां पित्तमिव ।) अग्निः । इत्यमरः ॥ चित्रकवृक्षः । वह्निसंज्ञकत्वात् ॥

अप्रकट, त्रि, (न प्रकटः व्यक्तः नञ्समासः ।) अव्यक्तः । अप्रकाशः । यथा,—
"प्रकटाप्रकटा चेति लीला सेयं द्विधोच्यते" ।
इति भागवतामृते पद्मपुराणं ॥ अस्य विवरणं लीलाशब्दे द्रष्टव्यं ॥

अप्रकाण्ड, पु, (नास्ति प्रकृष्टः काण्डः स्कन्धो यस्य सः ।) काण्डरहितवृक्षः । स तु भिण्टिकादिः । तत्पर्य्यायः । स्तम्बः २ गुल्मः ३ । इत्यमरः ॥

अप्रकाश, पु, (न प्रकाशः नञ्समासः ।) प्रकाशाभावः । तत्पर्य्यायः । जनान्तिकं २ । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (गुप्तः । अप्रकाशितः । गूढः ।
"द्विविधांस्तस्करान् विद्यात् परद्रव्यापहारकान् ।
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः" ॥
इति मनुः । न प्रकाशते इति अप्रकाशः, पचाद्यच् । अन्धकारावृतः । अदृश्यः ।
"प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः" ।
इति रघुवंशे । निहितः । प्रच्छादितः । प्रोथितः ।
"यानि चैवप्रकाराणि कालाद्भूमिर्न भक्षयेत् ।
तानि सन्धिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत्" ॥
इति मनुः । रहसि । परोक्षं ।
"नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
प्रकाशं वा प्रकाशं वा मन्युस्तम्मन्युमृच्छति" ।
इति मनुः ।) तद्विशिष्टे त्रि ॥

अप्रकृष्ट, पु, (न प्रकृष्टः नञ्समासः ।) काकः । इति शब्दरत्नावली ॥ अधमे त्रि ॥

अप्रखर, त्रि, (न प्रखरः तीक्ष्णः नञ्समासः ।) प्राखर्य्यरहितः । अतीक्ष्णः । तद्धर्म्मे क्ली । खं रातीति कः खरः प्रकृष्टः खरः प्रखरस्ततो नञ्समासः । (मृदुः । शान्तः ।)

अप्रगुण, त्रि, (न प्रकृष्टो गुणो धैर्य्यरूपो यस्य सः, गुणमप्राप्तः प्रादिसमासः ततो नञ्समासः ।) व्याकुलः । व्यग्रः । इत्यमरः ॥

अप्रतिकर, त्रि, (प्रति करोति विश्वासं नोत्पादयति प्रति + कृ + कर्त्तरि अच्, न प्रतिकरः ततो नञ्समासः ।) विश्वस्तः । विश्वासपात्रं । इति जटाधरः ॥

अप्रतिपक्ष, त्रि, अप्रतियोगी । विपक्षशून्यः । नास्ति प्रतिपक्षो यस्य इति बहुव्रीहिसमासनिष्पन्नः ॥

अप्रतिभ, त्रि, अप्रत्युत्पन्नमतिः । अप्रगल्भः । नास्ति प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा यस्य सः । इति प्रतिभान्वितशब्दार्थे भरतः ॥ (मृदुः । लज्जाशीलः । हतज्ञानः ।) (स्त्रियां उत्तरस्याप्रतिभाऽस्ति-

रूपो नियहस्थानविशेष, उत्तरार्थे परोक्तं युक्त्या- पि यत्नोत्तरामेये उत्तर न प्रतिपद्यते तत्र अप्रतिभानियहस्थानम् ।)

अप्रतिरथ, क्ली, (नास्ति प्रतिरथः समः मङ्गलार्थं तेन यस्य तत् ।) यात्रा । सामवेद । मङ्गल । इति भूरिप्रयोगत्रिकाण्डशेषौ ॥ (युद्धार्थयान । युद्धसमये यात्राकृतमङ्गल ।
"यद् यात्रा मङ्गल साम तदप्रतिरथ विदुः" ॥
इति हारावली ।)

अप्रतिरथः, पुं, (नास्ति प्रतिरथ प्रतियोद्धा यस्य सः ।) योद्धा इति भूरिप्रयोग ॥ तुल्ययोद्धृरहित । इति पुराण ॥
("दौष्मन्तिमप्रतिरथं तनय प्रसूय" ।
इति शाकुन्तले ।
"एतेषां तमसामिवाप्रतिरथैस्तेजोभिः" ।
इति महावीरचरिते ।)

अप्रतिरूपकथा, स्त्री, (नास्ति प्रतिरूपा अनुरूपा कथा यस्यां सा ।) अप्रतिवचना वाक् । अतुल्या कथा । तत्पर्य्याय । सङ्गिका २ । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अप्रतिष्ठ, त्रि, अप्रतिष्ठित । प्रतिष्ठारहित । नास्ति प्रतिष्ठा यस्येति बहुव्रीहौ ह्रस्व । यथा । हयशीर्षपञ्चरात्रीयसङ्कर्षणकाण्डे ।
"सर्व्वसूक्तेषु कर्त्तव्या प्रतिष्ठा विधिना बुधैः ।
फलार्थिभिस्त्वप्रतिष्ठ यस्मान्निष्फलमुच्यते" ॥
इति मठादिप्रतिष्ठातत्त्व ॥
("अप्रतिष्ठे रघुज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य न" ।
इति उत्तरचरिते ।)

अप्रतुल, क्ली, (प्रकृष्टतुलाया अभाव, अव्ययीभावः ।) प्रकृष्टपरिमाणाभावः । अनिर्वृतिरिति लोकप्रसिद्धिः । प्रकृष्टतुलारहिते त्रि । नास्ति प्रकर्षा तुला यस्य धनादे धनादेर्यस्य वा ॥

अप्रत्यय, पु, (प्रति + इन् + भावे अच्, ततो नञ्समास । नास्ति प्रत्यय विश्वासो यस्य वा) (सन्देहः । संशय ।
"बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्यय चेत" ॥
इति शाकुन्तले ।) प्रत्ययाभाव । अविश्वास । यथा "दोषाणां सन्निधान कपटशतमय क्षेत्रम- प्रत्ययानां" । इति श्रीशङ्कर ।

अप्रत्यक्ष, त्रि, (अक्षमिन्द्रिय प्रतिगतः प्रादिसमास, न प्रत्यक्ष नञ्समासः ।) प्रत्यक्षशून्य । इन्द्रियागोचरः । तत्पर्य्याय । अतीन्द्रिय २ । इत्यमरः ।
("किन्तु तस्य मनश्शोऽह भ्रातृरूपस्य वैरिण ।
अप्रत्यक्ष च मे वीर्य्य समये तव राघव" ॥)
प्रत्यक्षाभावे क्ली ॥

अप्रधान, क्ली, (न प्रधानं, नञ्समासः ।) प्राधान्यरहित । तत्पर्य्यायः । अप्राग्र्य २ उपसर्ज्जन ३ । इत्यमरः ॥ वाच्यलिङ्गोऽप्यय । इति भरतः ॥

अप्रमत्तः, त्रि, (प्र + मद् + क्त, ततो नञ्समासः ।) अवधानविशिष्ट । सावधानः । यथा,—
"पापात् पराजितो दुःखादप्रमत्तो विधेः सतः" ।
इति वोपदेवः ॥

अप्रयोग, पुं, (प्र + युज् + घञ्, ततो नञ्समास ) प्रयोगाभावः । अयुक्तेणादिः । यथा । "उक्तार्थानामप्रयोगः" । इति दुर्गादासः ॥

अप्रलम्बं, क्ली, (प्र + लम्ब + घञ्, नञ्समासः ।) अविलम्ब । शीघ्र । इति हलायुध ॥ तद्वति त्रि । (सत्वर । विलम्बरहित । झटिति ।)

अप्रशस्त, त्रि, (प्र + शन्स् + क्त, नञ्समास ।) असत् । अश्रेष्ठ । अविहित । यथा,—
"अप्रशस्त निशि स्नान राहोरन्यत्र दर्शनात्" ।
इति तिथ्यादितत्त्वे पराशर ॥ (मूत्रपुरीषादिक ।
"अप्रशस्तन्तु सत्यासु मासमात्रेण शुद्ध्यति" ।
इति मनु ।)

अप्रसन्न, त्रि, (प्र + सद् + क्त, नञ्समास ।) आविल । अनच्छ । इति शब्दरत्नावली ॥ अतुष्ट । यथा,—
"त्वयि प्रसन्ने परधर्म्मभि किं
त्वय्यप्रसन्ने परधर्म्मभि किं" ।
इति प्राचीना ॥ (अतुष्टः । अप्रफुल्ल । विमनाः । विरक्त । प्रतिकूल । "अप्रसन्नमना किं नु सदा मां प्रति वत्सल" । इति रामायणे ।)

अप्रसिद्ध, त्रि, (प्र + सिध् + क्त, नञ्समास ।) प्रसिद्धतारहितं । अविख्यात । यथा,—
"लिङ्ग सामर्थ्य रूढ्यात प्रसिद्ध न त्वप्रसिद्ध" ।
इति तिथ्यादितत्त्व ॥ ("अप्यप्रसिद्ध यशसे हि पुंसामनन्यसाधारणमेव कर्म्म" इति कुमारसम्भवे ।)

अप्रस्तुत, त्रि, ( न प्रस्तुत नञ्समास ।) अप्रक्रान्त । प्रकरणाप्राप्त । यथा,—"अप्रस्तुतप्रशंसा सा या चैव प्रस्तुताश्रया" ।
इति काव्यप्रकाश ॥ अप्रशंसित । प्रपूर्व्वस्तुत्यर्थस्तुधातोः कर्म्मणि क्ते नञ्समास ॥
"अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकन्तु निगद्यते ।
अथ कारकमेक स्यादनेकासु क्रियासु चेत्" ॥
इति साहित्यदर्पणे ।)

अप्रस्तुतप्रशंसा, स्त्री, काव्यालङ्कारविशेष । सा च अप्राकरणिकस्यार्थस्य अभिधानेन प्राकरणिकस्याक्षेप । तस्या लक्षण । "अप्रस्तुतप्रशंसा सा या चैव प्रस्तुताश्रया । सा च कार्य्ये निमित्ते सामान्ये विशेषे प्रस्तुते सति" ।
"तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यस्येति च पञ्चधा" ॥
आद्याया उदाहरणं यथा,—
"याताः किम्न मिलन्ति सुन्दरि पुनश्चिन्ता त्वया मत्कृते नो कार्य्यातितरां कृशासि कथयत्येव सवाष्पे मयि । लज्जामन्थरतारकेण निपतद्धाराश्रुणा चक्षुषा दृष्ट्वा मां हसितेन भाविमरणोत्साहस्तया सूचितः" ॥
इति काव्यप्रकाश ॥ इतरासा उदाहरणानि बाहुल्यान्नोक्तानि ॥

अप्रहत, त्रि, (न प्रहन्यते स्म, प्र + हन् + क्त, नञ्समास ।) अकृष्टभूमि । खिला भूमि । इत्यमर ॥ (वस्त्रभेदः । तल्लक्षण यथा,—
"ईषद्धौत नव श्वेतं सदशं यन्नधारितं ।
निर्णेजकाच्छादित चाप्रहत वास उच्यते" ॥
इति ।)

अप्राग्र्य, त्रि, ( प्राग्र्य प्रधान नञ्समासः ।) अप्रधानं । इत्यमर ॥

अप्राचीनं, त्रि, अपग्रहतनं । नव्य । प्राचीतरदिग्जातं । प्राग्भव प्राचीन ततो नञ्समास ॥

अप्राप्त, त्रि, (प्र + आप् + कर्म्मणि क्त, नञ्समासः ।) अलब्ध । यथा । "अप्राप्तप्रापक विधिः" । इति सङ्क्षिप्तकौमुदी दुर्गादासश्च (अनधिगतः ।
"अप्राप्तयोस्तु या प्राप्तिः सैव संयोग ईरित" ।
इति भाषापरिच्छेदे । अनुपस्थित । अनागत । न्यूनवयाः । अप्राप्तकाल ।
"उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद् यथाविधि" ।
इति मनु ।)

अप्राप्तव्यवहार, पुं, (अप्राप्त व्यवहारो येन स, अप्राप्त व्यवहार व्यवहारयोग्यं वयो येन स ।) व्यवहारानभिज्ञः । अप्राप्तवयस्क । नावालग् इति पारसी भाषा । यथा,—
"अप्राप्तव्यवहाराणां धन व्ययविवर्ज्जित ।
न्यसेयुर्बन्धुमित्रेषु प्रोषितानां तथैव च" ॥
इति दायतत्त्वधृतकात्यायनवचनं ॥ किञ्च ।
"गर्भस्थै सदृशो ज्ञेय आष्टमाद्वत्सराच्छिशु ।
बाल आषोड़शाद्वर्षात् पौगण्डोऽपि निगद्यते ।
परतो व्यवहारज्ञः स्वतन्त्र पितरावृते" ॥
इति व्यवहारतत्त्वधृतनारदवचन ॥

अप्राप्ति, स्त्री, (प्र + आप् + भावे क्तिन्, नञ्समास ।) अप्रापण । अलाभ । तद्वति त्रि । यथा,—
"तदप्राप्तिमहादुःखविलीनाशेषपातका" ।
इति काव्यप्रकाशकार ॥

अप्राप्य, त्रि, (प्र + आप् + कर्म्मणि ण्यत्, नञ्समास ।) अप्रापणीयम् । अप्राप्तव्य । प्रपूर्व्वादाप धातो कर्म्मणि ये नञ्समासः ॥

अप्रामाणिक, त्रि, (प्रमाणेन सिद्ध, प्रमाण + ठञ् तस्य इक, नञ्समास ) प्रमाणानभिज्ञ । प्रमाणा सिद्ध । प्रामाण्यरहित । यथा । "अतोऽवि भक्तार्जितत्वमात्रेण धनस्य साधारणत्वाभिधान मप्रामाणिक" । इति दायभाग ॥

अप्रामाण्य, क्ली, (प्रमाणस्य भाव, प्रमाण + भावे ष्यञ् नञ्समासः ।) प्रामाण्याभाव । यथा,—
"अप्रामाण्य जनयति सदा नन्दसूनोर्वियोगः" ।
इति पदाङ्कदूत ॥

अप्रिय, त्रि, ( प्री + कर्त्तरि क, नञ्समास ।) अनभीष्ट । अनीप्सित । अप्रीतिकर । अहृद्य । यथा,— [इति पुराण ॥
"सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियं" ।

अप्रियवचः, क्ली, ( अप्रिय अप्रीतिकर वचः वाक्य कर्म्मधारय ।) निष्ठुरवाक्य । इति पारुष्यशब्दार्थे भरतः ॥

अप्रिया, स्त्री, ( न प्रिया न प्रीतिकरी लोकानां, नञ्समासः ।) शृङ्गीमत्स्यः । इति शब्दरत्नावली ॥ (अप्रीतिकरी नारी ।)

अप्रीतं, त्रि, प्रीतिरहित। असन्तुष्टं। प्रीत्यर्थ-प्रीधातोः कर्त्तरि क्ते नञ्समासः॥

अप्रेतराक्षसी, स्त्री, (न प्रेता प्राप्ता राक्षसमिव पातकं प्रादिसमासः, गौरादित्वात् ङीष्।) अपेतराक्षसी। तुलसी। इति रत्नमाला॥

अप्सरस, स्त्री, (अद्भ्यः समुद्रजलेभ्यः सरन्ति उद्यान्ति, अप्+सृ+असुन्।) स्वर्वेश्या। उर्व्वशी-मेनकाद्याः। बहुवचनान्तोऽयं शब्दः। इत्यमरः॥ ("अप्सु निर्मथनादेव रसात् तस्मात् वरस्त्रियः। उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवन्"॥)

अप्सरा, स्त्री, स्वर्वेश्या। इति शब्दरत्नावली। ("स्त्रियां बहुष्वप्सरसः स्यादेकत्वेऽप्सरा अपि"। इति शब्दार्णवे।)

अफल, त्रि, (नास्ति फलं वृक्षोत्पन्नं धर्म्मोत्पन्नं वा यस्य सः।) विफलः। निष्फलः। इति हेमचन्द्रः॥ फलकाले अनुत्पन्नफलकवृक्षः। तत्पर्य्यायः। वन्ध्यः २ अवकेशी ३। इत्यमरः॥ झावुकवृक्षः। इति शब्दचन्द्रिका॥

अफला, स्त्री, (नास्ति फलं यस्याः सा।) भूम्यामलकी।

अफेनं, क्ली, (निन्दितं फेनं निर्य्यासो यस्य तत्।) वृक्षनिर्यासविशेषः। आफि इति भाषा। तत्पर्य्यायः। खसखसरसः २ निफेनः ३ अहिफेनकः ४ अस्य गुणाः। सन्निपातनाशित्वं। शुक्रबलमोह-कारित्वञ्च॥ तच्च चतुर्व्विधं। एकं श्वेतवर्णं। अन्नजीर्णताकारकत्वान्नाम जारणं। द्वितीयं कृष्ण-वर्णं। मृत्युकारकत्वान्नाम मारणं। तृतीयं पीतवर्णं। वयःस्तम्भनकारकत्वान्नाम धारणं। चतुर्थं कर्व्वूर-वर्णं। मलसारकत्वान्नाम सारणं। इति राज-निर्घण्टः। (त्रि, फेनरहितं। "अनुष्णाभिरफेना-भिरद्भिस्तीर्थेन धर्म्मवित्"। इति मनुः।)

अब इ उ शब्दे। इति कविकल्पद्रुमः॥ इ अम्बते। उ अम्बते अम्बा पुत्त्रं। इति चतुर्भुज दुर्गादासश्च॥

अबद्धं, त्रि, (बन्ध+क्त, नञ्समासः।) प्रकृतानु-पयोगिवचनं। समुदायार्थशून्यवाक्यं। अनर्थक-कथा। इत्यमरः॥ ("जरद्गवः कम्बलपादुकाभ्यां। द्वारि स्थितो गायति मङ्गलानि॥ तं ब्राह्मणी पृच्छति पुत्त्रकामा। राजन् रुमायां लशुनस्य कोऽर्थः"॥ इत्याद्यस्य विषयः। अनियन्त्रितः। स्वाधीनः। मुक्तः।) बन्धनशून्यः॥

अबद्धकं, त्रि, (बन्ध+क्त, नञ्समासः, स्वार्थे कन्।) समुदायार्थशून्यवाक्यं। इति शब्दरत्नावली॥

अबद्धमुख, त्रि, (न बद्धं नञ्समासः, अबद्धं यथा-भिलाषकथनेन अप्रतिबद्धं मुखं यस्य सः।) अ-प्रियवादी। दुर्म्मुखः। इत्यमरः॥ (स्त्रियां वा ङीप् अबद्धमुखी अबद्धमुखा)।

अबध्य, त्रि, (हन्तुमयोग्यः हन्+अर्हाद्यर्थे कर्म्मणि यत्, "हनोवा बधश्च" इति बधादेशः। बधम-र्हति इति बध्यः, न बध्यः, नञ्समासः।) अन-र्थकवाक्यं। बधायोग्यः। इति मेदिनी॥ ("अबद्धाश्च स्त्रियः प्राहुस्तिर्य्यग्योनिगतानपि"। इति स्मृतिः। बधदण्डायोग्ये ब्राह्मणे च, "बधः स्वर्व्वस्वहरणं पुरान्निर्व्वासनाङ्कने"। "तदङ्गच्छेद इत्युक्तो दण्ड उत्तमसाहसः। अविशेषेण सर्व्वेषामेष दण्डविधिः स्मृतः॥ बधादृते ब्राह्मणस्य न बधं ब्राह्मणोऽर्हति"॥ इति मिताक्षरायां।)

अबन्ध्य, त्रि, (बन्ध+ण्यत्, न बन्ध्यः अफलः नञ्-समासः।) सफलः। फलकाले फलयुक्तवृक्षः। तत्पर्य्यायः। फलेग्रहिः २। इत्यमरः॥ फल-ग्रहिः ३। इति तट्टीका॥ अमोघफलोदयः ४। इति राजनिर्घण्टः॥ ("इयेष सा कर्त्तुमबन्ध्य-रूपतां"। इति कुमारसम्भवे। "याज्यमाशं-सितावन्ध्यप्रार्थनं"। "कर्म्मभिरप्यबन्ध्यैः"। इति रघुवंशे।)

अबलं, त्रि, (नास्ति बलं सामर्थ्यं यस्य तत्।) बल-रहितं। दुर्व्वलं। यथा। "अबलस्वकुलाशिनो झषान्"। इति नैषधं॥

अबल, पु, (नास्ति बलं यस्य सः, क्षणभङ्गुरत्वात् तस्य तथात्वं।) वरुणवृक्षः। इति शब्दचन्द्रिका॥

अबला, स्त्री, (नास्ति बलं यस्याः सा।) नारी। इत्यमरः॥ ("तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी"। इति मेघदूते।)

अबाध, त्रि, (नास्ति बाधा यस्य तत्।) बाधशून्यं। अनिवारितं। तत्पर्य्यायः। निरर्गलं २। इत्यमरः। अनर्गलं ३ उच्छृङ्खलं ४ उद्दामं ५ अनियन्त्रितं ६ निरङ्कुशं ७। इति हेमचन्द्रः॥ बाधा पीडा तया हीनश्च॥ (अङ्कशास्त्रे त्रिभुजाशविशेषः। अस्फु-टत्वं। अविस्पष्टता। जटिलीभावः।)

अबिन्धन, पु, (आप एव इन्धनमुद्दीपनसाधनं यस्य सः।) वाड़वाग्निः। इति सन्देहभञ्जिका॥ ("अबिन्धनं वह्निमसौ बिभर्त्ति"। इति रघुवंशे।)

अबोधः, पु, (बुध+भावे घञ्, नञ्समासः।) अज्ञानं। यथा। "निसर्गदुर्बोधमबोधविक्लवाः"। इति भारविः॥ बहुव्रीहौ त्रि॥ (अज्ञानः। मूढ़ः॥ अनभिज्ञः। हतबुद्धिः। किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ः।)

अब्ज, क्ली, (अप्सु जायते, अप्+जन+कर्त्तरि ड, उपपदसमासः।) पद्मं। इति मेदिनी॥ दशा-र्व्वुदसंख्या। शतकोटिः। इति लीलावती॥

अब्ज, पु, (अद्भ्यः जायते, अप्+जन्+ड।) चन्द्रः। धन्वन्तरिः। निचुलवृक्षः। इति मेदिनी॥

अब्ज, पु, क्ली, (अद्भ्यः जायते, अप्+जन+डः।) शङ्खः। इति मेदिनी॥ (जलभवशुक्तिमुक्तादिकं।) "अब्जमश्ममयश्चैव राजतश्चानुपस्कृतं"। "अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्व्वेष्वश्ममयेषु च"। इति मनुः।)

अब्जज, पु, (अब्जात् विष्णुनाभिपद्मात् जायते, अब्ज+जन्+कर्त्तरि ड।) ब्रह्मा। इति त्रि-काण्डशेषः॥

अब्जभोगः, पु, (अब्जस्य शङ्खस्य भोग इव शरीर-मिव भोगो यस्य सः।) पद्मकन्दः। इति शब्द-चन्द्रिका॥

अब्जयोनि, पुं, (अब्जं विष्णुनाभिपद्ममेव योनि-रुत्पत्तिस्थानं यस्य सः।) विधाता। ब्रह्मा। इत्य-मरः॥

अब्जवाहन, पुं, (अब्जमिव शङ्खवत् शुभ्रं वाहनं वृषो यस्य सः।) शिवः। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अब्जहस्त, पुं, (अब्जं पद्मं हस्ते यस्य सः।) सूर्य्यः। इति हेमचन्द्रः॥

अब्जिनी, स्त्री, (अब्जानां समूहः, अब्ज+पुष्करादि-त्वात् इनि, स्त्रियां ङीप्।) पद्मिनी। इति राजनिर्घण्टः॥ पद्मसमूहः। पद्मलता। पद्मयुक्त-देशः। इति नलिनीशब्दटीकायां भरतः॥

अब्जिनीपति, पुं, (अब्जिन्याः पद्मसमूहस्य पतिः, षष्ठीतत्पुरुषः।) सूर्य्यः। इति हेमचन्द्रः॥

अब्द, पु, (अवति सीमानं रक्षति अव+"अब्जा-दयः" इति दन् मेघपर्व्वतविशेषपक्षे तु अपो ददाति, अप्+दा+कर्त्तरि क।) वत्सरः। मेघः। मुस्ता। इति मेदिनी॥ पर्व्वतविशेषः। इति विश्वः॥

अब्दसार, पुं, (अब्दस्य मुस्तायाः सारः मूल-निर्य्यासः।) कर्पूरभेदः। इति राजनिर्घण्टः॥

अब्धिः, पु, (आपो जलानि धीयन्तेऽत्र, अप्+धा +अधिकरणे कि, उपपदसमासः।) समुद्रः। इत्यमरः॥

अब्धिकफ, पु, (अब्धेः समुद्रस्य कफ इव कफाकार-तया तस्य तादृशत्वं।) समुद्रफेनः। तत्पर्य्यायः। डिण्डीरः २। फेनः ३। इत्यमरः॥

अब्धिजौ, पुं, (अब्धौ जायेते अब्धि+जन+कर्त्तरि ड, उपपदसमासः।) अश्विनीकुमारौ। द्विवचना-न्तोऽयं शब्दः। इति हेमचन्द्रः॥

अब्धिद्वीपा, स्त्री, (अब्धिसंख्याता लवणादिसप्त-संख्याता द्वीपा यस्याः सा।) पृथिवी। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अब्धिनगरी, स्त्री, (अब्धेः समुद्रस्य सन्निहिता नगरी।) द्वारकापुरी। इति त्रिकाण्डशेषः।

अब्धिनवनीतक, पुं, (अब्धेः समुद्रस्य नवनीतमिव, षष्ठीतत्पुरुषः।) चन्द्रः। इति शब्दरत्नावली॥

अब्धिफेन, पु, (अब्धेः समुद्रस्य फेनः, षष्ठीतत्पुरुषः।) समुद्रफेनः। इति राजनिर्घण्टः॥

अब्धिमण्डूकी, स्त्री, (अब्धिं समुद्रं मण्डयति, अब्धि +मण्ड+ऊक, स्त्रियां ङीष्।) मुक्तास्फोटः। शुक्तिः। इति हेमचन्द्रः॥ झिनुक इति भाषा॥

अब्धिशयन, पु, (अब्धौ प्रलये समुद्रे शेते, शी+ बाहुल्यात् कर्त्तरि ल्युट्, सप्तमीतत्पुरुषः।) विष्णुः। इति हेमचन्द्रः॥ (नारायणोऽपि प्रलये अब्धौ शेते, यदुक्तं,—

"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्व्वं तेन नारायणः स्मृतः"।
इति मनुः।)

अब्ध्यग्निः, पु, (अब्धेः समुद्रस्य अग्निः, षष्ठीतत्पुरुषः।) वड़वानलः। इति हेमचन्द्रः॥

अभक्ष, पुं, (अपोभक्षयति, अप+भक्ष+ शिलिकामिभक्ष्याचरिभ्यो ण इति कर्त्तरि ण, उपपदसमासः।) सर्पः। इति त्रिकाण्डशेषः।

अभ्रं, क्ली, (अपो बिभर्त्ति, अप्+भृ+कर्त्तरि क ।) मेघ । इत्यमर । मुस्ताट्टण । अभ्रकधातुः । इति राजनिर्घण्ट ॥

अभ्रमातङ्ग, पुं, (अभ्रस्य, मेघस्य अधिप मातङ्ग शाकपार्थिवादित्वात् समास, मध्यपदलोपश्च ।) ऐरावतः । इत्यमर ॥

अभ्रिः, स्त्री, (अप नौकामलापनयनाय बिभर्त्ति धारयति, अप्+भृ+कि ।) काष्ठकुद्दालः । नौकामलापनयनार्थकुद्दालाकृतिकाष्ठ । इत्यमर ॥ (पण्यादिद्रव्याणा समष्टीकरणपात्रं । तीक्ष्णाग्रो लौहदण्डः ।
"अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात् सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः ।
पलालभारक षण्ढे सीसकञ्चैकमासक" ॥
इति मनु ।)

अभ्रिय, त्रि, (अभ्रे मेघे भव, अभ्र+घ तस्य इय ।) मेघोद्भववस्तु । इत्यमर ॥

अब्रह्मचर्य्यक, क्ली, (ब्रह्मचर्य्यविरोधि, विरोधे नञ्‌समास । तत स्वार्थे कन् ।) मैथुन । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ ब्रह्मचर्य्यशून्ये त्रि ॥

अब्रह्मण्य, क्ली, (ब्रह्मणि ब्राह्मणोचितकर्म्मणि अहिंसादौ साधु, ब्रह्मण्+यत्, नञ्‌समास ।) नाट्योक्तौ नाय वध्य इत्याकारोक्ति । अवधयाच्ञा । तत्पर्य्याय । अवध्योक्ति २ । इत्यमर ॥ ("नेपथ्ये अब्रह्मण्यमब्रह्मण्य । अत्रान्तरे ब्राह्मणेन मृत पुत्रमुत्क्षिप्य राजद्वारे सोरस्ताडनमब्रह्मण्यमुद्घोषित" ।
इति उत्तरचरिते । वेदविरुद्ध अतिनिन्दित कर्म्म । निरतिशयव्यसनशोकादिप्रकाशोक्तिरिय ।)

अभ इ उ ध्वनौ । इति कविकल्पद्रुम ॥ इ अम्भ्यते । उ अम्भते । इति दुर्गादास ॥

अभय, क्ली, (भयस्याभाव इत्यव्ययीभाव, यद्वा नास्ति भय यस्मात् तत्, हरीतक्या दुर्गामूर्त्तिभेदे च स्त्री ।) वीरणमूल । इत्यमर ॥ भयाभाव । ("नात परतरो धर्म्मो नृपाणा यद्रणार्ज्जित" ।
विप्रेभ्यो दीयते द्रव्य प्रजाभ्यश्चाभय सदा" ।
इति याज्ञवल्क्य ।
"योदत्वा सर्व्वभूतेभ्य प्रव्रजत्यभय गृहात् ।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिन" ॥
इति मनु ।)
"प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च कार्य्याकार्य्ये भयाभये ।
बन्ध मोक्षञ्च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी" ॥
इति श्रीभगवद्गीता ॥ भयरहिते त्रि । इति विश्वः ॥

अभयडिण्डिम, पु, (अभयाय स्वयोद्धभयाभावाय डिण्डिम ।) युद्धढक्का । सङ्ग्रामपटह । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अभया, स्त्री, (नास्ति भय यस्या सा ।) हरीतकी । इत्यमर ॥ चम्पादेशजातपञ्चशिरा हरीतकी । सा नेत्ररोगे प्रशस्ता । इति राजवल्लभः ॥ (दुर्गा ।)

अभक्ष्य, त्रि, (भक्ष+कर्म्मणि ण्यत्, नञ्‌समास । अभक्षणीय । अखाद्य । यथा,—
"अधार्य्ये चर्म्म मे सद्भि करिष्यसि किमस्थिभि ।
अभक्ष्यं चैव मे मांस त्वादृशैर्ब्रह्मचारिभिः" ॥
इति रामायणं ॥ (भोजनायोग्यं वस्तु, भक्षणाय मन्वादिभि शास्त्रकारैः निषिद्ध द्विजातिभिः वर्ज्जनीयं वस्तु । तानि च यथा, लशुनगृञ्जनपलाण्डुकाण्यानि जीणि स्थूलकन्दशाकानि । विष्ठादिजातानि तण्डुलीयादीनि च । लोहितवृक्षनिर्य्यास । छेदनोद्भववृक्षनिर्य्यास । शेलुफलं । गव्य । पेयूषञ्च । देवाद्युद्देशेन आत्मार्थं पक्वा कृसरसयावपायसापूपाः । असस्कृत पशुमास । नैवेद्यार्थमन्नानि निवेदनात् प्राक् । हवींषि च होमात् प्राक इत्यादि ।)

अभाजन, क्ली, (न भाजनं, नञ्‌समास ।) अपात्र । अयोग्य । यथा,—
"दीधीवेवीट्सम कश्चित् गुणवृद्धोरभाजन ।
क्विप्प्रत्ययनिभ कश्चिद्यत्र सन्निहिते न ते" ॥
इति काव्यप्रकाश ॥ पात्ररहिते त्रि ॥

अभाव, पु, (भू+भावे घञ्, नञ्‌समास ।) मरण । असत्ता । इति विश्वमेदिनी ॥
"अस्ति पुत्रो वशे यस्य भृत्योभार्य्या तथैवच ।
अभावे सति सन्तोष स्वर्गस्थोऽसौ महीतले" ॥
इति चाणक्य ।
("अन्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ।
साप्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपसमन्विते" ॥
इति मनु ।) द्रव्यादिषट्कभिन्न । स द्विविध । ससर्गाभाव १ अन्योन्याभावश्च २ । इति भाषापरिच्छेद ॥ भावशून्यः भाव स्थायिभावादिरिति अलङ्कारशास्त्र ॥

अभावनीय, त्रि, अचिन्तनीय । चौरादिकचिन्तनार्थभूधातो कर्म्मण्यनीये नञ्‌समास ॥

अभाषण, क्ली, (भाष्+ल्युट्, नञ्‌समास ।) अकथन । मौन । इत्यमर ॥

अभि, अ, (न भाति, न+भा+कि ।) उपसर्गविशेषः । अस्यार्था । समन्तात् । उभयार्थ । वीप्सा । इत्थम्भाव । घर्षण । इति दुर्गादास ॥ अभिलाष । आभिमुख्य । इति मेदिनी ॥ चिह्न । इति वोपदेवहेमचन्द्रौ ॥

अभिक, त्रि, (अभिकामयते इति अनुकाभिकेति साधु ।) कामी । कामुक । इत्यमर ॥

अभिक्रम, पु, (अभि+क्रम+घञ् । नोदात्तेति वृद्ध्यभावः । अभिक्रम्यते कर्म्मणा प्रारभ्यते इति व्युत्पत्त्या कर्म्मारम्भफले प्रारम्भे च ।) अभीतयोधादेर्युद्धे शत्रुसम्मुखगमन ।
आरोहण । इति हेमचन्द्र ॥

अभिख्या, स्त्री, (अभि+ख्या+अङ् ।) नाम । शोभा । कीर्त्तिं । इति मेदिनी ॥ आख्यान । इति शब्दरत्नावली ॥ (शोभा । सौन्दर्य्यं । रमणीयता । [इति रघुवंशे ।
"काप्यभिख्या तयोरासीत् व्रजतो शुद्धवेशयो" ।
"कामप्यभिख्यां स्फुरितैरपुष्यदासन्नलावण्यफलोऽधरोष्ठः" ।
इति कुमारसम्भवे । यश ॥)

अभियस्त, त्रि, (अभि+यस्+कर्म्मणि क्तः ।) शत्रुणाक्रान्त । इत्यभिपन्नशब्दार्थे अमर । (अभियुक्त ।)

अभिग्रहः, पु, (अभि+ग्रह्+भावे अप् ।) अभियोगः । इत्यमरः ॥ कलहाह्वान । अपचिकीर्षया अतिक्रम्याक्रमण । आभिमुख्येन युद्धादिप्रवृत्ति । इति तट्टीकाया भरत ॥ गौरवं । अभिग्रहण । इति मेदिनी ॥ लुट् इति भाषा । (चौर्य्यकरण ।)

अभिग्रहण, क्ली, (अभि+ग्रह्+भावे ल्युट् ।) अभिहार । इत्यमर ॥ चौर्य्यकरण । सम्मुखे हरण । इति तट्टीकाया भरत ॥ (साहस । अपचिकीर्षया अतिक्रम्याक्रमण ।)

अभिघात, पु, (अभि+हन्+भावे घञ् ।) दण्डादिभिरभिहनन । आघात । यथा,—
"अभिघाताभिचाराभ्यामभियङ्गाभिशापत" ।
इति माधवकर ॥ शब्दादौ कवर्गादिवर्गाणां पूर्वस्थितचतुर्थद्वितीयतृतीयचतुर्थवर्णा क्रमेण परस्थितवर्गैकैकद्वित्रिवर्णयुक्ता । तत्र स्त्री । यथा—
"अभिघात स्यात् पूर्व्व वेदद्वित्र्यब्धिवर्णाश्चेत् ।
नगवर्गाणा परतो धरणीचन्द्रद्विरामाब्धा" ।
इति केरलग्रन्थः ॥ (प्रहार । अभिहननं । आघातः ।
"चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातसञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य" ।
इति वेणीसंहारे । सङ्घर्षण । समर्द । पीड़न । क्लेशदान । शोकक्षोभ ।
"सम्भवाश्च वियोनीषु दुःखप्रायासु नित्यश ।
शीतातपाभिघाताश्च विविधानि भयानि च" ।
इति मनु । प्रतीकार । अपसारण ।)

अभिघाती, [न्] पुं, (आभिमुख्येन हन्ति, अभि+हन्+णिनि ।) शत्रु । इत्यमर ॥ (विपक्ष । आक्रमणकारी ।
"एकटा न विगृह्णीयात् बहून् राजाभिघातिन ।
सदर्पोऽप्युरग कीटैर्बहुभिर्नश्यति ध्रुव" ॥
इति हितोपदेशे । पीडाजनक । आघातकारी ।
"सुव्यवस्थितमन्त्रेण परमर्म्माभिघातिना ।
भवितव्य नरेन्द्रेण न कामवशवर्त्तिना" ।
इति रामायणे । प्रतीकार । अपसारण ।)

अभिघार, पुं, (अभि घार्य्यते समन्तात् वह्नौ सिच्यते, अभि+घृ क्षरणे णिच्+अच् ।) घृत । इति राजनिर्घण्ट ॥

अभिचर, पुं, (आभिमुख्येन सेवायै चरति, अभि+चर्+ट ।) दास । भृत्य । इति हेमचन्द्र ॥

अभिचारः, पुं, (आभिमुख्येन शत्रुवधार्थं चार कार्य्यकरण अभि+चर+भावे घञ् ।) हिंसा कर्म्म । इत्यमर ॥ अथर्व्ववेदोक्तमन्त्रयन्त्रादिनिष्पादितमारणोच्चाटनादिहिंसात्मककर्म । इति भरतः ॥ मारणादिफलकतान्त्रिकप्रयोगविशेष । स षड्विध । मारण १ मोहन २ स्तम्भन ३ विद्वेषण ४ उच्चाटन ५ वशीकरण ६ । इति तन्त्रसारः ॥ उपपातकविशेषः । इति प्रायश्चित्तविवेक ॥ स तु श्येनादियज्ञेनानपराधस्य मारण । इति कुल्लूकभट्टः ॥ यथा,—

"हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च" । इति मनौ ११ अध्याये ॥ * ॥ अथाभिचारः ।
"ॐ विरूढे रूपिणि चण्डिके वैरिणममुकं देहि देहि स्वाहा" । इति खड्गमभिमन्त्र्य खड्गमन्त्रांश्च पठित्वा खड्गं सम्पूज्य छागादिकममुकोऽसि इति वैरिनाम्नाभिमन्त्र्य रक्तसूत्रेण त्रिधा मुखं बद्ध्वा वैरिनाम्ना प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा ।
"ॐ अयं स वैरी यो द्वेष्टि तमिमं पशुरूपिणम् । विनाशय महादेवि स्रें स्रें खादय खादय" ॥
इति पठित्वा बलिशिरसि पुष्पं दत्त्वा बलिमन्त्रं पठित्वा बलिं सम्पूज्य अद्याश्विने मासि महानवम्याम् अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्म्मा अमुकशत्रुनाशाय इमं छागं महिषं वा अमुकदैवतं भगवत्यै दुर्गायै तुभ्यमहं सम्प्रददे । इत्युत्सृज्य आ क्रूं फट् इति छित्त्वा मूलं पठित्वा एतद्रुधिरं दुर्गायै नमः । इति रक्तं शिरश्च दत्त्वा अष्टाङ्गमांसैर्होमं मूलमन्त्रेण कुर्य्यादिति तन्त्रसारः ॥

अभिचारी, [ न् ] त्रि, (अभिचरति शत्रुवधार्थं कर्म्म करोति, अभि + चर + णिनि ।) अभिचारकर्त्ता । तन्त्रादिशास्त्रोक्तानिष्टकारी । अभिपूर्व्वचरधातोः कर्त्तरि णिन् ॥

अभिजन, पुं, (अभिजायतेऽत्र, अभि + जन् + आधारे घञ्, वृद्ध्यभावः ।) ख्यातिः । जन्मभूमिः । कुलश्रेष्ठः । वंशः । इति मेदिनी ॥ (अन्वयः ।
"अभिजनतपोविद्यावीर्य्यक्रियातिशयैर्निजैः" । इति महावीरचरिते ।
"कथं दशरथाज्जातः शुद्धाभिजनकर्म्मणः" । इति रामायणे ।)

अभिजात, त्रि, (अभिजन् + भावे क्त, अभिमतं प्रशस्तं जातं जन्म यस्य सः ।) सुन्दरः । न्याय्यः । इति विश्वः ॥ कुलजः । कुलीनः । बुधः । पण्डितः । इत्यमरः ॥ (श्रेष्ठवंशोद्भवः ।
"जायस्तेनाभिजातेन शूरः शौर्य्यवता कुशः । अमन्यतैकमात्मानमनेकं वशिना वशी" ॥ इति रघुवंशे ।
"न म्लेच्छितव्यं यज्ञादौ स्त्रीषु नापकृतं वदेत् । सङ्कीर्णे नाभिजातेषु नाप्रबुद्धेषु संस्कृतम्" ॥
इति मनुः । उचितः । उपयुक्तः । योग्यः । सुरूपः । मनोहरः । मान्यः । पूज्यः । धन्यः । श्लाघ्यः । भगवान् । समृद्धः ।)

अभिजित्, स्त्री, (अभि + जि + क्विप् ।) दिवसस्याष्टममुहूर्त्तः । कुतपकालइति प्रसिद्धः ॥ यथा,—
"अपराह्णे तु सम्प्राप्ते अभिजिद्रौहिणोदये । यदत्र दीयते जन्तोस्तदक्षयमुदाहृतम्" ॥
इति मत्स्यपुराणम् ॥ नक्षत्रविशेषः । तत्तु तारकात्रयात्मकशृङ्गाटकाकारं ति । उत्तराषाढ़ायाः शेषपञ्चदशदण्डाः श्रवणायाः प्रथमदण्डचतुष्टयं एतद्दूनविंशतिदण्डात्मकमभिजिद्भवति ॥ इति ज्योतिषं ॥ तत्र जातफलं ।
"अतिसुललितकान्तिः सम्मतः सज्जनानां ननु भवति विनीतश्चारुकीर्त्तिः सुवेशः । द्विजवरसुरभक्तो व्यक्तवाग्मानवः स्यादभिजिति यदि सूतिर्भूमिपः स्वस्ववंशे" ॥
इति कोष्ठीप्रदीपः ॥

अभिज्ञ, त्रि, (अभि साकल्येन जानाति, अभि + ज्ञा + कर्त्तरि क ।) प्रवीणः । निपुणः । विज्ञः । इत्यमरः ॥ (बोद्धा । दक्षः । कुशलः ।
"अभिज्ञाश्छेदपातानां क्रियन्ते नन्दनद्रुमाः" ।
"अनभिज्ञास्तमिस्राणां दुर्द्दिनेष्वभिसारिकाः" । इति कुमारसम्भवे ।)

अभिज्ञान, क्ली, (अभिज्ञायतेऽनेन, अभि + ज्ञा + करणे ल्युट् ।) चिह्नं । इति हेमचन्द्रः । (अङ्कः । लक्षणं ।
"एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा मा कौलीनाच्चकितनयने मय्यविश्वासिनी भूः" । इति मेघदूते । स्मृतिः । ज्ञानभेदः ।
"एवमुक्तस्तु रामेण हनूमान् वानरर्षभः । पूर्व्ववृत्तमभिज्ञानं भूयः सम्प्रत्यभाषत" ॥
इति रामायणे । सोऽयमितिज्ञानसाधनं चिह्नं । स्मरणार्थमङ्गुरीयादिकं चिह्नं । "अथ मैथिल्यभिज्ञानं काकुत्स्थस्याङ्गुरीयकं" । इति भट्टिकाव्ये ।)

अभितः, [स्]अव्य, (अभि + तसिल् ।) शीघ्रं । साकल्यं । आभिमुख्यं । उभयतः । "अङ्गान्ययाद्धीदभितः प्रधानं" । इति भट्टिकाव्ये ।) समीपं । इति मेदिनी ॥

अभिधर्षण, क्ली, (अभि + धृष् + भावे ल्युट् ।) रक्षःपिशाचभूतादेरभिषङ्गः । इति महाभारतं ॥ सर्व्वतोभावेन धर्षणञ्च ॥

अभिधा, स्त्री, (अभि + धा + करणे भावे च अङ्, स्त्रियां टाप् ।) नाम । इति हेमचन्द्रः ॥ न्यायमते शब्दशक्तिः । मीमांसामते विधिसमवेतविधिव्यापारीभूतपदार्थः । तस्या लक्षणं । "स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते" । इति काव्यप्रकाशः ॥ * ॥ तत्र "सङ्केतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा" । इति साहित्यदर्पणः ॥ (आख्या । आह्वा । अभिधानं । नामधेयं ।)

अभिधान, क्ली, (अभिधीयते अनेन, अभि + धा + करणे ल्युट् ।) नाम । इत्यमरः ॥ कथनं । यथा । "तवाभिधानाद्व्यथते नताननः" । इति भारविः ॥ शब्दकोषः । यथा । "कृत्तद्धितसमासानामभिधानं नियामकं" । इति वोपदेवः ॥ (आख्या । नामधेयं ।
"आख्याह्वे अभिधानञ्च नामधेयञ्च नाम च" । इत्यमरः । "शिखरिणि क नु नाम कियच्चिरं किमभिधानमसावकरोत्तपः" । इति साहित्यदर्पणे । उक्तिः । उल्लेखः । निर्द्देशः ।)

अभिधेय, क्ली, अभिधानं । नाम । ("इति प्रयोजनाभिधेयसम्बन्धाः" इति वोपदेवः ।) अभिधीयते अनेनेति करणे य ॥

अभिधेय, त्रि, (अभि + धा + कर्म्मणि यत् ।) अभिधातव्यं । वाच्यं । प्रतिपाद्यं । यथा । "इति प्रयोजनाभिधेयसम्बन्धाः" । इति वोपदेवः ॥

अभिध्या, स्त्री, (अभि + ध्यै + अङ् + टाप् ।) परस्वे विषयस्पृहा । इत्यमरः ॥ परद्रव्ये जिहीर्षा । दोषचिन्तापूर्व्वकं परस्वे लिप्सा इत्येके । विषयप्रार्थना । इति स्वामी । विषयस्य लाभस्य स्पृहा विषयस्पृहा विषयेण चौर्य्यादिना स्पृहा इति तृतीयासमासः इत्यन्ये । विषयिस्पृहेतिपाठे परस्वविषये विषयितया स्पृहा जिहीर्षामात्रं । इति कश्चित् इति कौमुदी । इत्यमरटीकायां भरतः ॥ अभिलाषः । इति रायमुकुटः ॥

अभिनन्दन, पुं, (अभिनन्दयति, अभि + नदि + णिच् + ल्युट्) बुद्धविशेषः । चतुर्थस्तीर्थकरजिनोऽयं । इति हेमचन्द्रः ॥ सर्व्वतोभावेनानन्दजनके त्रि ॥

अभिनय, पुं, (अभिनीयते हृद्गतक्रोधादिभावः प्रकाश्यतेऽनेन अभि + नी + करणे अच् ।) हृद्गतक्रोधादिभावाभिव्यञ्जकः । अङ्गुल्यादिना पक्षीकृतमनः कार्य्यं । तत्पर्य्यायः । व्यञ्जकः २ । इत्यमरः ॥ दृश्यकाव्यं । रङ्गादिभिर्नटै रामयुधिष्ठिरादीनामवस्थानुकरणं । स चतुर्व्विधः । आङ्गिकः १ । वाचिकः २ । आहार्य्यः ३ । सात्त्विकः ४ । इति साहित्यदर्पणः ॥ ("तामेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधाः शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतप्रज्ञस्य वाणीमिमाम्" । इति उत्तरचरिते ।)

अभिनव, त्रि, (अभि + नु + भावे अप् ।) नूतनः । इत्यमरः ॥
("अभिनवमधुलोलुपस्त्वं तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम्" । इति शाकुन्तले ।)

अभिनवोद्भित् [ द् ] पुं, (अभिनवं यथातथा उद्भिनत्ति उद्भिद्य जायते, अभिनव + उत् + भिद् + कर्त्तरि क्विप् ।) अङ्कुरः । इत्यमरः ॥

अभिनिर्मुक्त, पुं, (अभि साकल्येन सायन्तनकार्य्येण निर्मुक्तः ।) सूर्य्यास्तकालशायी । यस्मिन् सुप्ते सूर्य्योऽस्तं याति सः । इत्यमरः ॥
("सूर्य्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभ्युदितश्च यः । प्रायश्चित्तमकुर्व्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा" ॥ इति मनुः ।)

अभिनिर्याण, क्ली, (शत्रुमभिलक्षीकृत्य निर्य्याणं निर्गमः ।) विजिगीषोः प्रयाणं । यात्रा । इत्यमरः ॥ (जिगीषया गमनं ।
"यत्नेनयाभिनिर्य्याणं स्मृतं तदभिषेणनम्" । इति हलायुधः ।)

अभिनिवेश, पुं, (अभि + नि + विश् + भावे घञ् ।) मनःसंयोगविशेषः । मनोनिवेशः । आवेशः । शास्त्रादौ प्रवेशः । तत्पर्य्यायः । निबन्धः २ । इति हेमचन्द्रः ॥ योगशास्त्रमते मरणजन्यभयजनकाविद्याविशेषः ॥ (आग्रहः । अवश्यमिदं कर्त्तव्यमित्यादिरूपोऽध्यवसायः । दृढसङ्कल्पः ।
"इत्युक्तवन्तं जनकात्मजायां नितान्तरूक्षाभिनिवेशमीशं" । इति रघुवंशे ।
"अथानुरूपाभिनिवेशतोषिणा कृताभ्यनुज्ञा गुरुणा गरीयसा" ।

इति कुमारसम्भवे। आसक्ति। अनुराग। अभिलाष। "बलीयान् खलु मेऽभिनिवेश"। इति शाकुन्तले।)

अभिनिष्ठान, पु (अभि+नि+स्तन्+घञ्, अभिनिस इति स्तन शब्दसंज्ञायां इति षत्वं।) विसर्ग। अक्षर। इति मेदिनी॥

अभिनीत, त्रि, (अभि+नी+क्तः।) युक्त। न्याय्य। अतिसंस्कृत। प्रशस्तो भूषितो वा। अमर्षी। क्रोधन अत्यमावान् वा। इत्यमर॥ ("अस्मिन्नेव प्रकरणे धनञ्जयमुदारधी। अभिनीततरं वाक्यमित्युवाच युधिष्ठिर"। इति महाभारते। विज्ञ। धीर। "स भवान् वित्तसम्पन्नः स्थित पथि निरत्यये। मित्रार्थमभिनीतत्व यथावत् कर्त्तुमर्हसि"। इति रामायणे।)

अभिनेता, [तृ] त्रि, (अभि+नी+कर्त्तरि तृच्।) अभिनयकर्त्ता। केचो सञ्योयाला इत्यादि भाषा। इति नाटकप्रसिद्ध॥

अभिपन्न, त्रि, (अभि+पद्+कर्त्तरि क्त।) अपराद्ध। अपराधवान्। व्यापद्गत। प्राप्तविपत्ति। अभिग्रस्त। शत्रुणाक्रान्त। इत्यमर॥ (स्वीकृत। अङ्गीकृत। अभिभूतः। पीडित। "दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा। पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति"। "दृष्टिर्दोषाभिपन्ना"। इति सुश्रुते।)

अभिप्राय, पु, (अभि+प्र+इन्+भावे अच्।) इच्छाविशेष। तत्पर्य्याय। आशय २ छन्द ३। इत्यमर॥ आकूत ४ भाव ५। इति जटाधर। (अभिसन्धि। हृद्गतो भाव। "दुर्य्योधन ममाप्येतत् हृदि सपरिवर्त्तते। अभिप्रायस्य पापत्वात् नैव तु विवृणोम्यह"। इति महाभारते। [इति मनु।) "तेषां स्व स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक्"।

अभिप्रेत, त्रि, (अभि+प्र+इन्+क्त।) अभिप्रायविषयीभूत। अभीष्ट। यथा,— "कामाय तु हित काम्यमभिप्रेतार्थसिद्धये। सार्व्वभौमेन विधानेन तदप्यत्र खगाधिप"॥ इति भविष्यपुराणे॥ (वाञ्छित। सम्मत।)

अभिभव, पु, (अभि+भू+भावे अप्।) गर्व्वनाश। परिभव। पराभवः। इति शब्दरत्नावली हेमचन्द्रश्च॥ (पराजय। तिरस्कार। "रघोरभिभवाशङ्कि चुक्षुभे द्विषतां मन"। इति रघुवंशे। "बलवानपि निस्तेजा कस्य नाभिभवास्पद"। इति हितोपदेशे।)

अभिभूत, त्रि, (अभि+भू+क्त।) ज्ञानरहित। तत्पर्य्याय। इतिकर्त्तव्यतामूढ़ः २ विह्वलः ३ व्याकुलः ४ अभिमायः ५ विक्लव ६ विह्वलः ७। इति जटाधर॥ पराभूत। भग्नदर्प। तत्पर्य्याय। आत्तगर्व्व २। इति जटाधर॥ आत्तगन्ध ३। इत्यमर॥ अभिहत ४। इति तट्टीका॥

("दैत्याभिभूतस्य युवामशोढ मग्नस्य दोर्भिर्भुवनस्य भारम्"। इति भट्टि।)

अभिभूति, स्त्री, (अभि+भू+भावे क्तिन्।) अनादरः। अवज्ञा। इति शब्दरत्नावली। (पराभव। पराजयः। मानभङ्ग। निकार। "अभिभूतिभयादसूनतः सुखमुज्झन्ति न धाम मानिन"। इति भारवि।)

अभिमत, त्रि, (अभि+मन्+कर्म्मणि क्त।) इष्ट। सम्मत। यथा,— "अभिमतफलशंसी चारु पुस्फोर बाहुस्तरलयु चुकुवुरघे पक्षिणश्चानुकूलाः"। इति भट्टि॥ (इष्ट। प्रिय। हृदयङ्गमः। "स माधवेनाभिमतेन सख्या रत्या च साशङ्कमनुप्रयात"। इति कुमारसम्भवे। "अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्नभिमतो मे"॥ इति शाकुन्तले।)

अभिमन्त्रण, क्ली, (अभि+मन्त्र+करणे ल्युट्।) आह्वान। आकारणा। इति हेमचन्द्र॥ डाकन् इति भाषा। (मन्त्रपाठेन संस्कारकरण। यथा,— "दत्त्वान्नं पृथिवीपात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम्"। इति याज्ञवल्क्य।)

अभिमन्थ, पु, (अभि मथ्यते चक्षु पीड्यतेऽनेन, अभि+मन्थ+करणे घञ्।) चक्षूरोग। इति त्रिकाण्डशेष॥ अधिमन्थ इति वैद्यके पाठ। तस्य निदानसम्प्राप्तिरूपाणि। "वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावतां। तावन्तस्त्वधिमन्था स्युर्नयने तीव्रवेदना॥ उत्पाद्यत इवात्यर्थं नेत्र निर्म्मथ्यते तथा। शिरसोऽर्द्धञ्च त विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणै"॥ स तु चतुर्विध। यथा। "हन्याद्दृष्टिं श्लैष्मिक सप्तरात्रादधिमन्थो रक्तज पञ्चरात्रात्। षड्रात्राद्वै वातिकः सन्निहन्यान्मिथ्याचारात् पैत्तिक सद्य एव"॥ इति माधवकर॥

अभिमन्यु, पुं, (अभिमन्यते युद्धार्थं, अभि+मन्+युच्, निपातनात् अनादेशाभाव।) अर्ज्जुनपुत्रः। स तु सुभद्रागर्भजात। इति महाभारत॥

अभिमर, पुं, (अभिम्रियतेऽस्मात्, अभि+मृ+अप्) युद्ध। वध। स्वसैन्यभय। इति विश्वमेदिन्यौ॥ बन्धन। इति जटाधरः॥ (संहारः। समरः। अवरोधः। स्वपक्षाद्भय। सङ्केतस्थलनिर्गम। प्राणनिरपेक्षो यो भय हेतो व्याड़ हस्तिन वा योधयति स अभिमरः इत्येके।)

अभिमर्द्द, पु, (अभि+मृद्+भावे घञ्।) अवमर्द्दः। पीडन। सम्पराय। युद्ध। इति मेदिनी॥ (शत्रुकृतपीड़न। विपक्षराजस्य उच्छेदसाधन। "कृतोऽभिमर्द्द कुरुभि प्रसह्य"। इति महाभारते।)

अभिमाति, पुं, (अभि+मा+कर्त्तरि क्तिच्।) शत्रुः। इति हेमचन्द्र॥

अभिमान, पुं, (अभि+मन्+भावे घञ्।) धनादिना दर्प। तत्पर्य्याय। अहङ्कार २ गर्व्व ३ स्मान ४ मोघः ५ प्रणय ६ प्रेमप्रार्थना ७ हिंसा ८ हनन ९। इत्यमरभरतौ॥ मदः १० अवलेपः ११ दर्प १२ अवष्टम्भ १३ टङ्कः १४ इति जटाधरः॥ अपि च। "गर्व्वो मदोऽभिमान स्यादहङ्कारस्त्वहङ्कृति। स्यादुद्धतमनस्कत्वे मानश्चित्तसमुन्नतिः। अहङ्कारस्य पर्य्याय इति केचित् प्रचक्षते"॥ इति शब्दरत्नावली॥

अभिमानित, क्ली, (अभिमान जातोऽस्य, अभिमान+इतच्। अभिमान्यतेऽत्र, अभि+मन्+णिच्+आधारे क्तः।) सुरत। मैथुन। इति त्रिकाण्डशेष॥ अभिमानयुक्ते त्रि॥ (गर्व्व। मदः। दर्प।)

अभिमानी, [न्] त्रि, (अभिमन्यते, अभि+मन्+णिनि।) अभिमानयुक्त। अभिमानग्रस्त। यथा,— "कर्त्ता द्यूतच्छलाना जतुमयशरणोद्दीपित सोऽभिमानी"। इति वेणीसंहारः॥

अभिमाय, त्रि, (मायामविद्यामधिगत, प्रादि समास।) इतिकर्त्तव्यतामूढ़। अभिभूत। इति जटाधर॥

अभिमुख, त्रि, (अभिगतो मुख। अत्यादय क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया इति समास।) सम्मुख। इति जटाधर॥

अभियाति, पु, (युद्धार्थमभिमुख याति गमन, अभि+या क्तिच्।) शत्रु। इति हेमचन्द्र॥

अभियाती, [न्] पु, (युद्धार्थमभियान गमन, अभि+या+भावे क्त, इनि।) शत्रु। इत्यमरटीकायां रायमुकुट॥

अभियुक्त, त्रि, (अभि+युज्+क्तः।) तत्परः। परकर्तृकाख्य। इति मेदिनी॥ ("उद्दामेन द्विरदपतिना सन्निपत्याभियुक्तः"। इति उत्तरचरिते। "अभियुक्तो यदा पश्येत् न किञ्चिद्धितमात्मनः। युध्यमानस्तदा प्राज्ञो म्रियते रिपुणा सह"। इति हितोपदेशे।) स्मृतिशास्त्रमते अभियोगविषयीभूतः। आसामी इति ख्यात। तत्पर्य्यायः। प्रत्यर्थी २ प्रतिवादी ३। यथा,— "अभियुक्तोऽभियोगस्य यदि कुर्य्यादपह्नवं। मिथ्या तत्तु विजानीयादुत्तर व्यवहारत"॥ इति व्यवहारतत्त्वे नारद॥

अभियोक्ता, [तृ] त्रि, (अभि+युज्+कर्त्तरि तृच्।) अभियोगकर्त्ता। विवादकर्त्ता। फरियादी इति ख्यात। तत्पर्य्याय। वादी २ अर्थी ३। यथा,— "अभियोक्ता प्रगल्भत्वात् वक्तुं नोत्सहते यदि। तदा काल प्रदातव्य कार्य्यशक्त्यनुरूपत"॥ इति व्यवहारतत्त्वे नारदः॥

अभियोग, पु, (अभि+युज्+भावे घञ्।) अप-

रोधादियोजनं। अन्येन विरोधे स्वार्थसम्बन्धितया राजसमीपे कथनं। आह्वान नालिश इति ख्यात। यथा,—
"अभियोगमनिस्तीर्य्य नैनं प्रत्यभियोजयेत्"।
इति याज्ञवल्क्यः॥ युद्धार्थाह्वान। इति रायमुकुटः॥ अपकारकरणेच्छापूर्व्वकाक्रमणं। तत्पर्य्यायः। अभिग्रहः २। इत्यमरः॥ उद्योगः। इति हेमचन्द्रः॥
("स प्रापदप्राप्तपराभियोगं
नरेन्द्रगुप्तं नगरं मुहूर्त्तात्"।
इति कुमारसम्भवे।)

अभिराम, त्रि, (अभिरमते मनोऽत्र, अभि+रम्+आधारे घञ्।) रुचिरः। सुन्दरः। इति हेमचन्द्रः॥ (मनोहरः। मनोज्ञः। रमणीयः। आनन्दकरः।
"मनोऽभिरामाः शृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः"।
इति रघुवंशे।)

अभिरूप, पुं, (अभिलक्ष्यं रूपमस्य।) पण्डितः। इति हेमचन्द्रः॥ कामदेवः। चन्द्रः। शिवः। विष्णुः। इति शब्दरत्नावली॥

अभिरूप, त्रि, (अभिरूपयति शास्त्रार्थं निरूपयति, अभिरूप+णिच्+अच्।) मनोहरः। पण्डितः। इति मेदिनी॥ ("इयं हि रसभावविशेषदीक्षागुरोः विक्रमादित्यस्याभिरूपभूयिष्ठा परिषद्"। इति शाकुन्तले।)

अभिलाप, पुं, (अभिलप्यते मानसं कर्म्म कथ्यतेऽनेन, अभि+लप्+करणे घञ्।) शब्दः। इति त्रिकाण्डशेषः॥ सङ्कल्पाङ्गवाक्यं। यथा। "काम्याभिलापसहित कुशतिलजलत्यागरूप सङ्कल्प शास्त्रार्थे"। इति प्रक्रमाधिकरणं॥ (वचनं। कथन। वाक्य।
"तथाभिलापसंसर्गयोग्यत्वविरहान्न च।
सविकल्पकसंवेद्य"। इति साहित्यदर्पणे।)

अभिलाव, पुं, (अभि+लू+भावे घञ्।) छेदनं। इत्यमरः॥

अभिलाष, पुं, (अभि+लष+भावे घञ्।) लोभः। तत्पर्य्यायः। इच्छा २ आकाङ्क्षा ३ स्पृहा ४ ईहा ५ तृट् ६ वाञ्छा ७ लिप्सा ८ कामः ९ तर्षः १० मनोरथः ११। इत्यमरः॥ काङ्क्षा १२ कान्तिः १३ रुक् १४ रुचिः १५ दोहदः १६ अभिलासः १७। इति शब्दरत्नावली॥ श्रद्धा १८ तृष्णा १९ मतिः २० छन्दः २१। इति जटाधरः॥ ("भव हृदय साभिलाषं सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जातः"। इति शाकुन्तले। "अतोऽभिलाषे प्रथमं तथाविधे"। इति रघुवंशे।) सङ्गेच्छा २२। इति रसमञ्जरी॥

अभिलाषी, [न्] त्रि, (अभि+लष्+णिनि।) अभिलाषयुक्तः। यथा,—
"जलाभिलाषी जलमाददाना
छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्"।
इति रघुवंशे॥

अभिलाषुकः, त्रि, (अभि+लष्+शीलार्थे उकञ्।) अभिलाषयुक्तः। तत्पर्य्यायः। लुब्धः २ गृध्नुः ३ गर्द्धनः ४ तृष्णक् ५। इत्यमरः॥ लोभी ६ विलासविभवानसः ७। इति जटाधरः॥
("जयमत्रभवान् नूनमरातिष्वभिलाषुकः"।
इति भारविः।)

अभिलासः, पुं, (अभि+लस्+भावे घञ्।) अभिलाषः। इच्छा। इत्यमरटीकासारसुन्दरी॥

अभिवादः, पुं, (अभि+वद+भावे घञ्।) अप्रियवाक्यं। तत्पर्य्यायः। पारुष्यं २। इत्यमरः॥ (वन्दना। प्रणतिः। प्रणामः।
"अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसमभिवादयन्।
असौनामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्त्तयेत्"॥
इति मनुः।)

अभिवादक, त्रि, (अभि+वद्+णिच्+ण्वुल्।) वन्दनशीलः। तत्पर्य्यायः। वन्दारुः २। इत्यमरः॥ अप्रियवक्ता। पारुष्यार्थाभिपूर्व्ववदे कर्त्तरि णकः॥ (प्रणामकारी। अभिवादनकारी।
"आगतोऽस्मीत्युवाचैनं भवन्तमभिवादकः"।
इति नलोपाख्यान।)

अभिवादनं, क्ली, (अभिमुखीकरणाय वादनं नामोच्चारणपूर्व्वकनमस्कारः, अभि+वद्+णिच् भावे ल्युट्।) नामोच्चारणपूर्व्वकनमस्कारः। अभिवादये भो अमुकशर्म्माहमित्येवरूपः। तत्तु पादस्पर्शपूर्व्वकनमस्कारः। तत्पर्य्यायः। पादग्रहणं २। इत्यमरः॥
("अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि संप्रवर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलं"॥
इति मनुः।)

अभिव्याप्ति, स्त्री, (अभि+वि+आप्+भावे क्तिन्।) सर्व्वत्रावस्थानं। सर्व्वतोवृत्तिः। तत्पर्य्यायः। समूर्च्छनं २। इत्यमरः॥

अभिशपन, क्ली, (अभि+शप्+भावे ल्युट्।) मिथ्याभिशंसनं। अभिशापः। अभिपूर्व्वशपधातोर्भावेऽनट्॥

अभिशप्त, त्रि, (अभि+शप्+क्त।) प्राप्ताभिशापः। शापग्रस्तः। यथा,—
"न नामग्रहणं कुर्य्यात् कृपणस्य गुरोस्तथा।
भार्य्याया अभिशप्तस्य जनकस्य विशेषतः"॥
इति मेघदूतटीका॥
("न कुध्यत्यपि शप्तोऽपि क्रोधनीयानि वर्ज्जयन्"। इति रामायणे। "अथ तेन निगृह्य विक्रियामभिशप्त फलमेतदन्वभूत्"। इति कुमारसम्भवे।)

अभिशस्त, त्रि, (अभि+शन्स+क्त।) परस्त्रिया परपुरुषे वा मैथुनं प्रति मिथ्यादूषितः। मैथुनं प्रति आहूतः। इति केचित्। उपपन्नपातकः। इति केचित्। मिथ्यादूषितमात्रं। इति केचित्। इति भरतः॥ तत्पर्य्यायः। आच्छारितः २ क्षारितः ३। इत्यमरः॥ (प्राप्तापवादः। अभिपकृष्टः।
"वत्सस्य ह्यभिशस्तस्य पुरा भ्रात्रा यवीयसा।
नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतः स्पृशः"॥
इति मनुः। विनिन्दितः। विगर्हितः। पातककर्त्ता। [इति मनुः।)
"पापरोग्यभिशस्तश्च दाम्भिको रसविक्रयी"।

अभिशस्ति, स्त्री, (अभि+शन्स+भावे क्तिन्।) लोकापवादः। इति हेमचन्द्रः॥ ("स्यमन्तकं च सत्राजिताय दत्त्वा मिथ्याभिशस्तिविशुद्धिम् अवाप"। इति विष्णुपुराणे।) याच्ञा। इत्यमरः॥

अभिशापः, पुं, (अभि+शप्+घञ् वृद्धि।) स्वर्णस्तेयं त्वया कृतमित्यादिमिथ्यादूषणवाक्यं। मिथ्यापवादः। तत्पर्य्यायः। मिथ्याभिशंसनं २। इत्यमरः॥ क्रोधात् द्विजादिभिर्दुःखाभिधारणा। इति पुराणं॥ ब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धानां अनिष्टाभिशंसनं। इति विजयरक्षितः॥
("यस्याभिशापात् दुःखार्त्तो दुःखं विन्दति नैषधः"।
इति नलोपाख्याने।)

अभिषङ्ग, पुं, (अभि+सन्ज+घञ् उपसर्गादिति षः।) पराजयः। आक्रोशः। शपथः। इति मेदिनी॥ मिथ्यापवादः। इति मथुरानाथः॥ आलिङ्गनं। इत्यमरटीकायां रायमुकुटः॥ सर्व्वतोभावेन सङ्गः। इति हलायुधः॥ भूताद्यावेशः। यथा,—
"अभिघाताभिचाराभ्यामभिषङ्गाभिशापतः"।
इति माधवकरः॥ (पराभवः। परिभूतिः।
"जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गा-
दुद्धर्त्तुमैच्छत् प्रसभोद्धृतारिः"।
इति रघुवंशे।
"तीव्राभिषङ्गप्रभवेन वृत्तिं
मोहेन संस्तम्भयतेन्द्रियाणां"।
इति कुमारसम्भवे। शोकः। दुःखं। "अभिषङ्गजडं विजज्ञिवानिति शिष्येण किलान्वबोधयत्"। इति रघुः।)

अभिषव, पुं, (अभि+सु+अप्, गुणः षत्वञ्च।) यज्ञः। स्नानं। मद्यसन्धानं। तत्तु चिरस्थापितमदोत्पादकद्रव्यं। इति मेदिनी॥ यज्ञस्नानं सोमलतापानञ्च। तत्पर्य्यायः। सुत्या २ सवनं ३। इत्यमरः॥
("भवेदभिषवः स्नाने मद्ये सन्धानयज्ञयोः"।
इति मेदिनी)

अभिषव, क्ली, काञ्जिकं। इति हलायुधः॥ काँजि इति भाषा।

अभिषुत, क्ली, (अभि+सु+क्त षत्व।) काञ्जिकं। इत्यमरः॥

अभिषेक, पुं, (अभि+सिच्+भावे घञ्।) स्नानं। इति त्रिकाण्डशेषः॥
("एकदा सोऽभिषेकार्थमाजगाम महानदीं"।
इति विष्णुपुराणे।
"निर्वृत्तपर्य्यन्यजलाभिषेकां।
वासोवसानामभिषेकयोग्यं"।
इति कुमारसम्भवे।)
अथ दोलयात्राभिषेकद्रव्याणि लिख्यन्ते। शीतलजलं १ गोमयं २ गोमूत्रं ३ दुग्धं ४ दधि ५ घृतं ६ कुशोदकं ७ शङ्खोदकं ८ चन्दनोदकं ९ कुङ्कुमोदकं १० फलोदकं ११ पुष्पोदकं १२ चन्दनपिष्टामलक्युद्वर्त्तनं १३ सुगन्धिजलं १४ तेनाष्टवारस्नानं तत्र द्वितीयसप्तमाष्टमवारेषु दुग्धघृत-

मधुयोजन । गन्धोदक १५ । तेन पञ्चधा स्नान । तीर्थजल १६ गङ्गोदक १७ वल्मीकतोय १८ सर्व्वौषधिजल १९ सहस्रधाराजल २० घटोदक २१ केषाञ्चिन्मते अष्टोत्तरशतघटोदक । इति उत्कलखण्ड ॥ * ॥ अथ वृहन्नन्दिकेश्वरपुराणोक्तानि ५दुर्गापूजाभिषेकद्रव्याणि लिख्यन्ते । पिष्टामलकीयुक्तहरिद्रा १ । तथा दर्पणप्रतिविम्बे देवीमुद्दश्य यथाक्रम वक्ष्यमाणप्रत्येकद्रव्येण मन्त्र पठित्वा स्नापयेत् । शुद्धजल २ शङ्खजल ३ गङ्गाजल ४ गन्धोदक ५ पञ्चगव्य प्रत्येक यथा— गोमूत्र ६ गोमय ७ दुग्ध ८ दधि ९ घृत १० कुशोदक ११ पञ्चामृत १२ शिशिरोदक १३ मधु १४ पुष्पोदक १५ इक्षुरससागरोदके १६ सर्व्वौषधिमहौषधिजल १७ पञ्चकषायोदक १८ अष्टमृत्तिका १९ फलोदक २० उष्णोदक २१ सहस्रधाराजल २२ अष्टकलसोदक यथा । व्योमगङ्गाम्बुपूर्णाद्यकलस २३ मेघतोयपूर्णद्वितीयकलस २४ सारस्वततोयपूर्णतृतीयकलस २५ सागरोदकपूर्णचतुर्थकलस २६ पद्मरेणुमिश्रितजलपूर्णपञ्चमकलस २७ निर्झरोदकपूर्णषष्ठकलस २८ सर्व्वतीर्थाम्बुपूर्णसप्तमकलस २९ शुद्धजलपूर्णाष्टमकलसः ३० ॥ * ॥ नानापद्धतिषु द्रव्याणां व्युत्क्रमपुनरुक्तयाधिक्यानि सन्ति यत्र यान्युक्तातिरिक्तद्रव्याणि तानि लिख्यन्ते । यथा । नदी १ नारिकेल २ रत्न ३ वृष्टि ४ कर्पूर ५ चन्दन ६ अगुरु ७ स्वर्ण ८ रजत ९ गोरोचना १० कुङ्कुम ११ श्रीफल १२ धान्य १३ दूर्व्वा १४ शर्करा १५ सरोवर १६ अस्त्र १७ गङ्गासागर १८ पञ्चशस्य १९ तिल २० ह्रद २१ पुष्करिणी २२ कूप २३ फलमूल २४ अर्घ्य २५ घटचतुष्टय २६—जलानि । शीतलजलञ्च २७॥ तिलतैल १ गन्धतैले २॥ नदीकूल १ वराहदन्त २ वेश्याद्वार ३ राजद्वार ४ वृषशृङ्ग ५ वल्मीक ६ चतुष्पथ ७ पारावार ८ देवद्वार ९ गङ्गा १०—मृत्तिका ॥ गजदन्त ११ नद १२ उभयकूल १३ नागर १४ गोष्ठ १५ त्रिपथ १६—मृत्तिका इति केचित् ॥ पञ्चामृत प्रत्येक सर्व्वौषधिमहौषधी पृथक् ॥ पञ्चकषाया प्रत्येक ॥ पञ्चामृतातिरिक्तमधुघृतदुग्धानि ॥ उद्वर्त्तनद्रव्ये केवलहरिद्रा इति केचित् ॥ तैलहरिद्रा इति केचित् ॥ गन्धपिष्टपञ्चशस्यचूर्णमिति केचित् ॥ कालीपुराणदेवीपुराणोक्तपद्धतिष्वपि तथा । तासां मध्ये पूर्व्वोक्तातिरिक्तद्रव्याणि लिख्यन्ते । यथा । प्रवाल १ मरकत २ पद्मराग ३ मुक्ता ४ माणिक्य ५ वैदूर्य्य ६ पद्म ७ कह्लार ८ कुमुद ९ खण्ड १० अक्षत ११ वापी १२ रक्तचन्दन १३ नानातीर्थं १४ हरिद्रा १५ पिष्ट १६ शालितण्डुल १७ सिद्धार्थ १८—जलानि ॥ पञ्चतीर्थमृद् १ ॥ विष्णुतैलं १ ॥ उद्वर्त्तनद्रव्य तैलहरिद्रायुक्तामलकी १ ॥ * ॥ अथ वृहन्नन्दिकेश्वरदेवीकालीपुराणपद्धत्युक्ताष्टकलसस्नानकालीनरागिणी रागवाद्यानि ॥

पुं । रागरागिण्यौ । वाद्य ।

| | | |
|---|---|---|
| वृ । मालसी १ मङ्गलोत्सव | | १ |
| दे । वाराडी १ इन्द्रविजय | | १ |
| कां । मालवः १ विजय | | १ |
| वृ । देवकीरी २ भुवनविजय | | २ |
| दे । मालवगौड २ मङ्गलविजय | | २ |
| का । ललिता २ दुन्दुभि | | २ |
| वृं । वाराड़ी ३ विजय | | ३ |
| दे । मालव ३ देवोत्सव | | ३ |
| कां । विभाषा ३ दुन्दुभि॰ | | ३ |
| वृ । देशाल ४ राजाभिषेक॰ | | ४ |
| दे । देशाल ४ घनताल | | ४ |
| कां । भैरवी ४ वंशी | | ४ |
| वृ । धानुषी ५ मधुरी | | ५ |
| दे । मालवी ५ मधुकर | | ५ |
| का । कोडा ५ इन्द्राभिषेक | | ५ |
| वृ । भैरवी ६ करताल॰ | | ६ |
| दे । भैरवी ६ ढक्का | | ६ |
| का । वागाडी ६ शङ्ख | | ६ |
| वृ । गुर्ज्जरी ७ वंशी | | ७ |
| दे । वसन्त ७ शङ्ख | | ७ |
| का । वसन्त ७ पञ्चशब्दः | | ७ |
| वृ । वसन्त ८ पञ्चशब्द | | ८ |
| दे । कोडा ८ मृदङ्ग | | ८ |
| कां । धानुषी ८ विजयः | | ८ |

अथ देवप्रतिष्ठाभिषेकद्रव्याणि । नदी १ नद २ सागर ३ निर्झर ४ मेघजलानि ५ पञ्चामृत ६ कुशोदकसहितपञ्चगव्य ७ अश्वखुर ८ गजदन्त ९ पर्व्वत १० कुश ११ वल्मीकमृत्तिका १२ तिलतैल १३ घृत १४ पञ्चकषायोदक १५ आम्र १६ चम्पक १७ शमी १८ पद्म १९—करवीरपुष्पाणि २० तुलसी २१ कुन्द २२—श्रीफलपत्राणि २३ तिलकल्कशालितण्डुलविल्वपत्रामलकचूर्णान्यतममार्जनद्रव्य २४ उष्णोदक २५ तीर्थोदक २६ अष्टोत्तरशतकुम्भा तदर्द्धं वा विंशतिर्व्वा एको, वा २७ । वैदिकाष्टोत्तरशतपलेन लौकिकषष्ट्यधिकशतत्रयतोलकमितेन जलेन पृथक् पृथक् घटेन द्रव्यमालोड्य कार्य्यं ॥ अशक्तौ तु । वल्मीकमृत्तिका । गोमय । शुष्कगोमय । भस्मयुक्तपरिमितजल । गन्धयुक्तजलञ्च । इति देवप्रतिष्ठातत्त्व ॥ * ॥ अथ राजाभिषेकद्रव्याणि । मृगचर्म्मास्तीर्णालङ्कृतस्वर्णभद्रासन १ गङ्गायमुनासङ्गमजल २ यावत्पुण्यनदीजल ३ पूर्व्वमुखनदीजल ४ पश्चान्मुखनदीजल ५ तिर्य्यङ्नदीजल ६ सर्व्वसमुद्रजल ७ क्षीरिवृक्षप्रवालयुक्तपद्मोत्पलविमिश्रितालङ्कृतकाञ्चनपूर्णकुम्भाः ८ वृषभः ९ रोचना १० घृत ११ मधु १२ दुग्ध १३ दधि १४ पुण्यतीर्थमृत्तिका १५ पुण्यतीर्थजल १६ मङ्गलद्रव्य १७ मणिदण्डश्वेतचामरव्यजन १८ माल्यभूषितश्वेतच्छत्र १९ श्वेतवृष २० श्वेताश्व २१ महागजवर २२ वराम



रणभूषिताष्टकन्या २३ सर्व्ववादित्राणि २४ …
षाङ्गृतवन्दी २५ । इति वाल्मीकिरामायणे अयो…
ध्याकाण्ड ॥ * ॥ अथ राजाभिषेकविधिः । पुरो…
हितो राज्ञ प्रजापालनाधिकारसिद्ध्यर्थं परदिने…
ऽभिषेके कर्त्तव्ये पूर्व्वदिने गणेशमातृकापूज…
पुण्याहवाचननान्दीश्राद्धप्रभृति पूर्व्वाङ्ग कुर्य्यात् । रा…
राज्ञी च नियम कृत्वा उपवास कुर्य्यात् । पर…
दिने अमात्यसामन्तसहित पुरोहित कृतमङ्गल…
स्नानौ राज्ञीराजानौ मणिकाञ्चनपृथिवीपुष्पाणि…
स्पर्शयित्वा नानारत्नचन्द्रातपोपशोभितमण्डप…
मध्ये व्याघ्रचर्म्माच्छादितासने उपवेशयेत् । तत…
पूर्व्वोत्तरगोचां वेदीं कृत्वा तत्र स्वगृह्योक्तविधि…
नाग्नि संस्थाप्य घृताक्ता पलाशाश्वत्थशमीसमिधो…
वैदिकैर्मन्त्रैर्जुहुयात् । तत औडुम्बरस्रुवेण वैदि…
कमन्त्रैर्घृताहुतीर्जुहुयात् । तत सर्व्वतोभद्रम…
ण्डपे स्थापितस्वर्णरजतताम्रमृण्मयकलसस्थसर्व्वौ…
षधिपल्लवैलालवङ्गादि-सुगन्धिद्रव्यसवासितपुण्य-
नदीतोय सुवर्णविभूषितशङ्खेन ऋत्विगभि सह
गृहीत्वा तूर्य्यघोषैर्मङ्गलपाठै राजसूयवाजपेय
महाभिषेकोक्तसूक्तमन्त्रै सस्त्रीक राजानं प्राङ्
मुख मूर्द्ध्नि कन्याभि सहाभिषिञ्चेत् । ततोऽमा
त्यादय सर्व्वे अभिषिञ्चेयु । तत पुरोहित
मन्त्रिसामन्तप्रकृतिपुरुषा अलङ्कृताभि कन्याभि
सह सुवासोगन्धमाल्याद्यलङ्कृतराज्ञीराज्ञोर्ललाटे
कुङ्कुमागुरुकस्तूर्य्यादिद्रव्यैस्तिलक दद्यु । ततो
राज्ञो मूर्द्ध्नि किरीट दत्त्वा छत्रचामरादिराज
चिह्नद्रव्याणि समुपकल्पेयु । ततो दुन्दुभिस्वस्ति
पुण्याहचतुर्व्वेदघोषै स्वकुलक्रमागतनाम्ना अमुक
त्व राजा भव इत्युक्त्वा राजोपरि श्वेतकुसुम
लाजाक्षतादि विकिरेयु । ततो वन्दिनो माग
धाश्च स्तुति कुर्य्यु । ततो ब्राह्मणा आशिष
कुर्य्यु । तत अमात्यादय राज्ञे उपायनानि दत्त्वा
नमस्कुर्य्यु । इति महाभारतादय ॥ * ॥

अभिषेणन, क्ली, ( सेनया अभियानम् । सेना शब्दात् णिच्, ल्युट् । उपसर्गात् सुनोतीति षत्वम् । ) शत्रु प्रति सेनासहितगमन । सेनया सह करणभूतया वा विजिगीषो शत्रोराभिमुख्येन गमन । इत्यमरभरतौ ॥ (“यत् सेनयाभिगमनमरौ तदभिषेणनम्”। इत्यमरः ।)

अभिष्टुत, त्रि, ( अभि + स्तु + कर्म्मणि क्तः । ) वर्णित । स्तुत । इत्यमर ॥ (“अभिष्टुतो विश्वदृशा प्रसूने” । इति भागवतपुराणे ।)

अभिष्यन्द, पु, (अभि + स्यन्द + घञ् । “अनुविपर्य्यभिनिभ्य स्यन्दतेरप्राणिषु” इति षत्व ।) अति वृद्धिः । आस्रावः ।

“अलकामतिवाह्येव वसति वसुसम्पदाम् ।
स्वर्गाभिष्यन्दवमन कृत्वेवोपनिवेशितम्” ॥

इति कुमारसम्भवे ।) चक्षूरोगविशेष । इति मेदिनी ॥ तस्य निदान सम्प्राप्तिश्च । यथा,—

“उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद्-
दूरेक्षणात् स्वप्नविपर्य्ययाच्च ।
स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च

छर्द्दिर्विघातादवमनातियोगात् ॥
द्रवात्तथान्नान्निशि सेविताच्च
विण्मूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च ।
प्रसक्तसंरोदनशोककोपा-
च्छिरोऽभिघातादतिमद्यपानात् ॥
तथा ऋतूनाञ्च विपर्य्ययेण
क्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च ।
वाष्पग्रहात् सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च
नेत्रे विकारान् जनयन्ति दोषाः” ॥
स च चतुर्व्विधः । यथा,—
“वातात् पित्तात् कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्व्विधः ।
प्रायेण जायते घोरः सर्व्वनेत्रामयाकरः ॥
निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्ष-
सङ्घर्षपारुष्यशिरोऽभितापाः ।
विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च
वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥
दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा
धूमायनं वाष्पसमुच्छ्रयश्च ।
उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च
पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥
उष्णाभिनन्दा गुरुताक्षिशोथः
कण्डूपदेहावतिशीतता च ।
स्रावो बहुः पिच्छिल एव चापि
कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥
ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च
राज्यः समन्तादतिलोहिताश्च ।
पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि
रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति” ॥
इति माधवकरः ॥ तस्य चिकित्सा यथा,—
“द्वे पादमध्ये पृथुसन्निवेशे
शिरे गते द्वे बहुधा हि नेत्रे ।
ताः प्रोक्षणोत्सादनलेपनादीन्
पादप्रयुक्तान्नयनं नयन्ति” ॥
प्रोक्षणं सेचनं । उत्सादनं उद्वर्त्तनं ।
“मलोष्मसङ्घट्टनपीडनाद्यै-
स्ता दूषयन्ते नयनानि दुष्टाः ।
भजेत्सदा दृष्टिहितानि तस्मा-
दुपानदभ्यञ्जनधावनानि” ॥
मलं धूल्यादि । मलादिभिर्दुष्टाः ताः शिरा नय-
नानि दूषयन्ते इत्यन्वयः ॥
“चक्षुष्याः शालयो मुद्गा यवा मांसन्तु जाङ्गलं ।
यष्टिमास विशेषेण वास्तूकं तण्डुलीयकं ॥
पटोलकर्कोटककारवेल्ल-
फलानि सर्पिःपरिपाचितानि ।
तथैव वार्त्ताकुफलं नवीनं
दृष्टेर्हितं स्वादु तथापि तिक्तं ॥
कट्वम्लगुरुतीक्ष्णोष्णमाषनिष्पावमैथुनं
मद्यवल्लूरपिण्याकमत्स्यशाकविरूढ़कं ।
विदाहीन्यन्नपानानि न हितान्यक्षिरोगिणः ॥
सेक आश्चोतनं पिण्डी विड़ालस्तर्पणं तथा ।
पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्कैर्नेत्रमुपाचरेत्” ॥ * ॥
कल्कविधिः । तत्र सेकविधिः ।
“सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्व्वस्मिन्नयने हितः ।
मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरङ्गुलः ॥
स चापि स्नेहनो वाते पित्ते रक्ते च रोपणः ।
लेखनस्तु कफे कार्य्यस्तस्य मात्रा विधीयते ॥
षड्भिर्वाचा शतैः स्नेहे चतुर्भिस्तैस्तु रोपणे ।
तैस्त्रिभिर्लेखने कार्य्यः सेको नेत्रप्रसादने ॥
निमेषोन्मेषणे पुसामङ्गुल्याच्छोटिका तथा ।
गुर्व्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः” ॥
छोटिका टुटकी इति लोके ।
“सेकस्तु दिवसे कार्य्यो रात्रौ चात्यन्तिके गदे” ।
स यथा,—
“एरण्डदलमूलत्वक्शृतमाजं पयो हितं ।
सुखोष्णं नेत्रयोः सिक्तं वाताभिष्यन्दनाशनं ॥
पथ्याक्षामलखसखसवल्कलकल्केन सूक्ष्मवस्त्रेण ।
कृत्वा पोटलिकां तामहिफेनोत्थद्रवेणाक्ता ॥
निदधीत लोचने स्यात् सर्व्वाभिष्यन्दसञ्चयः शीघ्रं ।
योगोऽयमृषिभिरुक्तो जगदुपकाराय कारुणिकैः ॥
सुक्ता माणितल हष्टा चक्षुषोर्यदि दीयते ।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥
स्नानं कृष्णतिलैश्चापि चक्षुष्यमनिलापहं ।
आमलैः सततं स्नानं परं दृष्टिबलावहं ॥
त्रिफलायाः कषायस्तु धावनान्नेत्ररोगजित् ।
कवलान्मुखरोगघ्नः पानतः कामलापहः” ॥ * ॥
अथाश्चोतनविधिः ।
“क्वाथक्षीरद्रवस्नेहविन्दूनां यत्तु पातनं ।
द्व्यङ्गुलोन्मीलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्चोतनञ्च तत् ॥
विन्दवोऽष्टौ लेखनेषु रोपणे दशविन्दवः ॥
स्नेहने द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ।
उष्णे तु शीतरूपाः स्युः सर्व्वत्रैवैष निश्चयः ॥
वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलं ।
कफे तिक्तोष्णरूक्षं स्यात् क्रमादाश्चोतनं हितं ॥
आश्चोतनानां सर्व्वेषां मात्रा स्याद्वाक्शतोन्मिता ।
ततः परं लोचनाभ्यां भेषजाय नयो मतः ॥
आश्चोतनं न कर्त्तव्यं निशायां केनचित् क्वचित्” ।
तद्यथा,—
“विल्वादिपञ्चमूलेन रहत्येरण्डशिग्रुभिः ।
क्वाथ आश्चोतने कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः ॥
त्रिफलाश्चोतनं नेत्रे सर्व्वाभिष्यन्दनाशनं” ॥ * ॥
अथ पिण्डीविधिः ।
“उक्तभेषजकल्कस्य पिण्डी च कोलमात्रया ।
वस्त्रखण्डेन सद्बद्धाभिष्यन्दव्रणनाशिनी ॥
स्निग्धोष्णा पिच्छिका वाते पित्ते सा शीतला मता ।
रूक्षोष्णा श्लेष्मणि प्रोक्ता विधिरुक्तो बुधैरयं” ॥
सा यथा,—
“एरण्डपत्रमूलत्वग्भिर्निर्म्मिता वातनाशिनी ।
धात्री विरचिता पित्ते शिग्रुपत्रकृता कफे ॥
निम्बपत्रकृता पिण्डी पित्तश्लेष्महरी भवेत् ।
शुण्ठी निम्बदलैः पिण्डी सुखोष्णा स्वल्पसैन्धवा ॥
धार्य्या नेत्रेऽनिलश्लेष्मशोथकण्डूव्यथाहरी ।
त्रिफला पिण्डिका नेत्रे वातपित्तकफापहा” ॥
‘पथ्याक्षामलखसखसवल्कलकल्कोऽहिफेनजलयुक्तः ।
तेन विरचिता पिण्डी शमयति सकलानभिष्यन्दान्” ॥
इति भावप्रकाशः ॥
अभिष्यन्दिरमणं, क्ली, (अभिष्यन्दः प्रधाननगर-
स्यातिवृद्ध्या तत्सन्निधाने स्थापनं स एव विद्यते
ऽत्र इति, रमतेऽत्र रम + आधारे ल्युट्, ततः
कर्म्मधारयः ।) प्रधाननगरसन्निहितनगरं । तत्प-
र्य्यायः । शाखानगरं २ । इति जटाधरः ॥
अभिसन्तापः, पु, ( अभिसन्ताप्यतेऽत्र, अभि + सम्
+ तप् + णिच् + आधारे अच् ।) युद्धं । इति
हलायुधः ॥
(“जन्यं स्यादभिसन्तापः संमदो विग्रहस्तथा” ।
इति हलायुधः ।)
अभिसन्धानं, क्ली, (अभि + सम् + धा + भावे ल्युट् ।)
वञ्चनं । प्रतारणा । इति हेमचन्द्रः ॥
(“पराभिसन्धानपरं यद्यप्यस्य विचेष्टितं ।
जिगीषोरश्वमेधाय धर्म्म्यमेव बभूव तत्” ॥
इति रघुवंशे । )
अभिसन्धिः, पु, ( अभिसन्धानं अभि + सम + धा +
भावे कि । ) अभिसन्धानं । उद्देशः । यथा,—
“पितृन्नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः,
स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ ।
प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां,
विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु” ॥
इति रुचिस्तवः ॥
(“अथ ते मुनयो दिव्याः प्रेक्ष्य हैमवतं पुरं ।
स्वर्गाभिसन्धिसुकृतं वञ्चनामिव मेनिरे” ॥
इति कुमारसम्भवे । )
अभिसम्पातः, पु, ( अभिसम्पात्यते योद्धा यत्र, अभि
+ सम् + पत् + आधारे घञ् ।) युद्धं । इत्यमरः ॥
अभिसरः, पु, ( आभिमुख्येन सरति, अभि + सृ +
पचाद्यच् । ) सहायः । अनुचरः । इत्यमरः ॥
(“राजा राज्यवर्द्धनं महासामन्तैः कृत्वा साभि-
सरम् उत्तरापथं प्राहिणोत्” । इति हर्ष-
चरिते ।)
अभिसर्ज्जनं, क्ली, (अभि + सृज् + भावे ल्युट् ।)
दानं । बधः । इति धरणी ॥
अभिसारः, पु, ( अभि + सृ + आधारे घञ् ।) बलं ।
युद्धं । सहायः । साधनं । इति धरणी ॥ स्त्री-
पुंसयोरन्यतरस्यान्यतरार्थं सङ्केतस्थलगमनं । इत्य-
लङ्कारशास्त्रं ॥ (“रतिसुखसारे गतमभिसारे
मदनमनोहरवेशं” । इति गीतगोविन्दे । “एवं
कृताभिसाराणां पुंश्चलीनां विनोदने” । इति
साहित्यदर्पणे ।)
अभिसारिका, स्त्री, (अभिसरति कान्तनिर्द्दिष्ट-
संकेतस्थानं गच्छति या, अभि + सृ + ण्वुल्,
स्त्रियां टाप् ।) स्वीयादिषोड़शनायिकामध्ये अष्टा-
वस्थाविशिष्टाष्टनायिकान्तर्गतनायिकाभेदः । अस्या
लक्षणं । सङ्केतस्थले स्वयं गमनकर्त्री एवं प्रिय-
गमनकारयित्री । अस्याश्चेष्टा । समयानुरूप-
भूषणं । शङ्का । बुद्धिनैपुण्यं । कपटसाहसादिः ।
सा त्रिविधा । दिवाभिसारिका १ ज्योत्स्नाभि-
सारिका २ अन्धकाराभिसारिका ३ । इति रस-
मञ्जरी ॥

("कान्तार्थिनी तु या याति सङ्केतं साभिसारिका" इत्युक्तलक्षणा कान्तप्रार्थनया स्वयं सङ्केतस्थानगामिनी स्वस्थाने वा कान्तानयनकारिणी नायिका। यदुक्तं दर्पणकारे।
"अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा।
स्वयं वाभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका" ॥)

अभिहार, पुं, (अभि + हृ + घञ्।) चौर्य्यं। सम्मुखे हरणं। तत्पर्य्यायः। अभिग्रहणं २। इत्यमरः ॥ सन्नहनं। कवचधारणं। अभियोगः। अपचिकीर्षयाभिगम्याक्रमणं। इति मेदिनी ॥ (साहसं। अपहरणं।
"यस्त्वभिहारं कुर्य्याच्च स्वयमेव नराधिपः"।
इति महाभारते।)

अभिहित, त्रि, (अभि + धा + कर्म्मणि क्त।) उक्तं। कथितं। इत्यमरः ॥
("अर्थिनाभिहितोऽयं प्रत्ययौ यदि तं तथा।
सम्भोजिनी साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः" ॥
इति मनुः।)

अभीक, पुं, (अभि + कन्, "अनुकाभिकाभीकाः कामयिता" इति पाणिनिसूत्रम्।) कविः। इति मेदिनी ॥ स्वामी ॥ इति हलायुधः ॥ (पतिः। कामुकः। कामी।
"ददृशे पर्णशालायां राक्षसाभीकयाथ सः"।
इति भट्टिकाव्ये।
उत्सुकः। क्रूरः। निष्ठुरः। निर्भयः। निःशङ्कः।
("अभीकः कामुके क्रूरे निर्भये त्रिषु ना कवौ"।
इति मेदिनी।)

अभीक, त्रि, (अभि + कन्।) कामुकः। क्रूरः। उत्सुकः। निर्भयः। इति शब्दरत्नावली ॥

अभीप्सित, त्रि, (अभ्याप्तुं प्राप्तुमिष्टं, अभि + आप् + सन् कर्म्मणि क्त।) वाञ्छितं। अभीष्टं। इत्यमरः ॥
("मेने मेनापि तत्सर्व्वं पत्युः कार्य्यमभीप्सितं"।
इति कुमारसम्भवे।)

अभीर, पुं, (अभीरयति गा अभिमुखीकृत्य गोष्ठं नयति, अभि + ईर + णिच् + अच्।) आभीरः। गोपः। इत्यमरटीकायां रमानाथः ॥

अभीरुः, पुं, (भी + कर्त्तरि शीलार्थे क्रु ततो नञ् समासः।) भैरवः। यथा,—
"अभीरुर्भैरवो भीरुर्भूतपो योगिनीपतिः"।
इति वटुकभैरवस्तवः ॥ निर्भये त्रि ॥ (निर्भीकः। भयहीनः। निःशङ्कः। "स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः"। इति मनुः।)

अभीरु, स्त्री, (भी + कर्त्तरि क्रु शीलार्थे, नञ्समासः।) शतमूली। इत्यमरः ॥

अभीरुपत्री, स्त्री, (भी + कर्त्तरि क्रु शीलार्थे, नञ्समासः, वा स्त्रियां ऊङ् असङ्कुचितपत्रत्वात् तस्यास्तथात्वं, न भीरूणि पत्राणि यस्याः सा, स्त्रियां ङीप्।) शतमूली। इत्यमरः ॥

अभीशु, पुं, (अभितः श्यति सुखं तनूकरोति, अभि + शो + कु, पृषोदरादित्वात् दीर्घः।) प्रग्रहः। वागडोर इति भाषा। ("स्थिरा वः सन्तु नेमयोऽरथो अश्वा स एषां सुसंस्कृता अभीशवः"। इति ऋक्। वेदेऽस्य प्रचुरप्रयोगः ॥ किरणः। इति हलायुधः ॥

अभीशु, स्त्री, (अभितः अश्नुते व्याप्नोति, अभि + अश + कर्त्तरि उन्, पृषोदरादित्वात् अलोपो दीर्घः।) अङ्गुलिः। वेदेऽस्य प्रचुरप्रयोगः ॥

अभीषङ्ग, पुं, (अभि + सन्ज घञ्, दीर्घः।) आक्रोशः। इत्यमरः ॥

अभीषु पुं, (अभि + इष् + उ।) किरणः। इत्यमरः ॥ कामः। अनुरागः। इति शब्दरत्नावली ॥

अभीष्ट, त्रि, (अभि + इष् + कर्म्मणि क्त।) वाञ्छितं। तत्पर्य्यायः। अभीप्सितं २ हृद्यं ३ दयितं ४ वल्लभं ५ प्रियं ६। इत्यमरः ॥
("प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा"।
इति हितोपदेशः।
"अभीष्टायामभूद्ब्रह्मन् पितुरत्यन्तवल्लभः"।
इति विष्णुपुराणे।)

अभीष्टा, स्त्री, (अभि + इष् + क्त, स्त्रियां टाप्।) रेणुकानामगन्धद्रव्यं। इति शब्दचन्द्रिका ॥
("ताम्बूलवल्ली ताम्बूली नागवल्ल्यथ द्विजा।
हरेणू रेणुका कौन्ती कपिला भस्मगन्धिनी ॥
ताम्बूल्या कटुकाभीष्टा देवाभीष्टा महाशया"।
इति शब्दचन्द्रिका।)

अभीक्ष्ण, क्ली, (क्षणमभिगतं, प्रादिसमासः पृषोदरादित्वात् दीर्घः अलोपश्च।) भृशं। नित्यं। तद्युक्तक्रिययोऽस्त्रि। इति मेदिनी ॥ (पुनः पुनः। शश्वत्। अविरतं। निरन्तरं। "उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयातिदुर्गमः"। इति माघः ॥
"इच्छन्त्यभीक्ष्णं क्षयमात्मनोऽपि
न ज्ञातयस्तुल्यकुलस्य लक्ष्मीं"।
इति भट्टिकाव्ये।)

अभीक्ष्ण, अव्य, (अभि + क्ष्णु तेजने डमु, पृषोदरादित्वात् दीर्घः "स्वरादिनिपातमव्ययम्" इति अव्ययं।) पुनः पुनः। अनारतं। इत्यमरः ॥

अभुक्त, त्रि, (भुज् + भावे क्त अर्श आद्यच् विद्यमानार्थे, नञ्समासः, वा भुज + कर्म्मणि क्त, नञ्समासः।) उपवासी। यथा,—
"अभुक्तस्य दिवानिद्रा पाषाणमपि जीर्य्यति"।
इति वैद्यकं ॥ अकृतभोजनं वस्तु ॥ (भुक्ता ब्राह्मणाः पीता गाव इति पाणिनिभाष्यम्। 'नाभुक्तं क्षीयते कर्म्म कल्पकोटिशतैरपि'। इति पुराणम्।)

अभूमि, स्त्री, (न भूमिः, नञ्समासः।) स्थानाभावः। अनाधारः। आश्रयाभावः। यथा। "अभूदभूमिः प्रतिपक्षजन्मना भियाम्" इति माघः ॥ "नाभूदभूमिः स्मरशायकानाम्" इति नैषधः ॥

अभेद, त्रि, (नास्ति भेदो यस्य सः।) भेदरहितः। अविशेषः। यथा,—"अभेदः शिवरामयोः" इति पुराणं ॥ (तादात्म्यम्।
"काकः कृष्णः पिकः कृष्णः कोऽभेदः पिककाकयोः।
वसन्ते समुपायाते काकः काकः पिकः पिकः" ॥
इति नीतिरत्ने। "भेदेऽप्यभेदः सम्बन्धे सम्बन्धस्तद्विपर्य्ययौ"। इति साहित्यदर्पणे।)

अभेद्य, क्ली, (भेत्तुं न शक्यते, भिद् + शक्यार्थे ण्यत्, नञ्समासः।) हीरकः। इति राजनिर्घण्टः ॥ अभेदनीयवस्तुनि त्रि। यथा,—
"अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यश्च दंशनं"।
इति देवीमाहात्म्यं ॥

अभोजन, क्ली, (भुज् + भावे ल्युट्, नञ्समासः।) भोजनाभावः। उपवासः। यथा,—
"अजीर्णे भोजनं येषां जीर्णे येषामभोजनं।
रात्रावभोजनं येषां तेषां नश्यन्ति धातवः"।
इति वैद्यकं ॥ (अनशनं।
"वेदोदितानां नित्यानां कर्म्मणां समतिक्रमे।
स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनं" ॥
इति मलमासतत्त्वं।)

अभ्यग्र, त्रि, (अभिमुखमग्रं यस्य तत्।) समीपं। निकटं। इत्यमरः ॥

अभ्यङ्ग, पुं, (अभि + अन्ज घञ् कुत्वं।) तैलमर्दनं। तत्पर्य्यायः। स्नेहनं २। इति राजनिर्घण्टः। यथा,—
"तैलमल्पं यदङ्गेषु न च स्याद्वाङ्गतर्पणं।
सा मार्ष्टिः पृथगभ्यङ्गो मस्तकादौ प्रकीर्त्तितः।
अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं स जराश्रमवातहा।
शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्" ॥
इत्यायुर्व्वेदः ॥ * ॥ अस्य गुणाः। मार्दवकारित्वं। कफवातनाशित्वं। धातुपुष्टिजनकत्वं। त्वग्वर्णबलप्रदत्वञ्च ॥ पादाभ्यङ्गगुणाः। निद्राचक्षुर्हितकारित्वं। पादरोगनाशित्वञ्च ॥ पादगते द्वे शिरे चक्षुषि सम्बद्धे स्तः अतश्चक्षुर्हितार्थिना पादाभ्यङ्गः करणीयः ॥ कफग्रस्तकृतभेदवमनाजीर्णिभिर्नाभ्यङ्गः करणीयः। इति राजवल्लभः ॥ * ॥ अपरञ्च।
"मूर्द्ध्नि दत्तं यदा तैलं भवेत् सर्व्वाङ्गसङ्गतं।
स्रोतोभिस्तर्पयेद्गात्रं स चाभ्यङ्ग उदाहृतः" ॥
तत्पर्य्यायः। अभ्यञ्जनं २। इति शुद्धितत्त्वधृतायुर्व्वेदः ॥ आभा इति भाषा।

अभ्यक्ष, पुं, (अभि + अक्ष + अच्, पृषोदरादित्वात् साधुः।) तिलकल्कः। इति ऋग्वेदिश्राद्धप्रयोगः।

अभ्यञ्जन, क्ली, (अभि + अन्ज + कर्म्मणि ल्युट्।) तैलं। इति हेमचन्द्रः ॥ अभ्यङ्गः। इति राजनिर्घण्टः ॥ (तैलादिना शिरःसहितदेहमर्द्दनम्।
"भोजनाभ्यञ्जनाद्दानात् यदन्यत् कुरुते तिलैः।
कृमिभूतः श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति"।
इति मनुः।)

अभ्यन्तर, क्ली, (अन्तरमभिगतं प्रादिसमासः।) मध्यं। तत्पर्य्यायः। अन्तरालं २। इत्यमरः। अन्तः ३ अन्तरं ४ अन्तरालकं ५। इति राजनिर्घण्टः ॥
("प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ"।
इति भगवद्गीता।)

अभ्यमित, त्रि, (अभि + अम् + क्त।) रोगी। इत्यमरः ॥

अभ्यमित्रीणः, पुं, (अमित्रस्याभिमुख्यं अव्ययीभावसमासः, अलङ्गामीत्यधिकारे अभ्यमित्र + ख तस्य ईनः।) अभ्यमित्र्यः। इत्यमरः ॥

("हरामि रामसौमित्री मृगी भूत्वा मृगद्युवौ ।
उद्योगमभ्यमित्रीयो यथेष्टं लङ्घ सन्ततु" ॥
इति भट्टिः ।)

अभ्यमित्रीय, पु, (अमित्रस्य शत्रोराभिमुख्यं अव्ययीभाव, अभ्यमित्रमलङ्गामीत्यधिकारे अभ्यमित्र + छ तस्य ईय ।) अभ्यमित्र्य । इत्यमर ॥

अभ्यमित्र्यः, पु, (अभ्यमित्र + पूर्ववत् यत् ।) स्वसामर्थ्यवशेन शत्रुसम्मुखगमनकर्त्ता । युद्धस्थले शत्रुसम्मुखगामी । तत्पर्य्याय । अभ्यमित्रीय २ अभ्यमित्रीण ३ । इत्यमर ॥
("तमुद्यतनिशातासिं प्रत्युवाच जिजीविषु ।
मारीचोऽनुनयस्तस्मादभ्यमित्र्यीभवामि ते" ॥
इति भट्टिकाव्ये ।)

अभ्यर्ण, त्रि, (अभि + अर्द् + क्त, आविदूर्य्ये इडभाव णत्वञ्च ।) निकट । इत्यमर । (आसन्न । निकटवर्त्ती । "तीव्र स्मरसन्तापो न तथादौ बाधते यथासन्ने । तपति प्रावृषि नितरामभ्यर्णजलागमो दिवसः" । इति रत्नावली । "उत्पन्ना सैनिका न कैश्चिदाश्रमाभ्यर्णभूमयः परिक्रामन्ता" । इति महावीरचरिते । समीप । सन्निधान । अन्तिक । "अभ्यर्णे परिरभ्य निर्भरमुरः प्रेमान्धया राधया" । इति गीतगोविन्दे ।)

अभ्यवकर्षणं, स्त्री, (अभि + अव + कृष् + भावे ल्युट् ।) शल्याद्युत्पाटन । तत्पर्य्याय । निर्हार २ । इत्यमर ॥

अभ्यवस्कन्द, पु, (अभि + अव + स्कन्द + घञ् ।) निःशक्तीकरणाय शत्रुभिर्दीयमान प्रहार । तत्पर्य्याय । अभ्यासादन २ प्रपात ३ धाटी ४ । इति हेमचन्द्र ॥

अभ्यवस्कन्दन, स्त्री, (अभि + अव + स्कन्द + भावे ल्युट् ।) निःशक्तीकरणाय शत्रुभिर्दीयमान प्रहार । शत्रुसम्मुखगमन । इत्यमरभरतौ ॥

अभ्यवहार, पु, (अभि + अव + हृ + भावे घञ् ।) भक्षण । आहारः । इति हेमचन्द्र ॥

अभ्यवहृतं, त्रि, (अभि + अव + हृ + क्त ।) भुक्त । खादितं । इत्यमर ॥

अभ्यसन, स्त्री, (अभि + अस + ल्युट् ।) अभ्यासकरण । पौनःपुन्येन करण चिन्तनञ्च । यथा,—
'स्यादभ्यासोऽभ्यसनेऽन्तिके' । इति मेदिनी ॥ (अभ्यास । पौनःपुन्येनैकक्रियाकरण । पुनःपुनः आवर्त्तनम् ।
"विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि" ।
इति रघु ।
"स्वाध्यायाभ्यसनञ्चैव वाङ्मय तप उच्यते" ।
इति गीता ।)

अभ्यसूया, स्त्री, (असु उपतापे हिंसायाञ्च, कण्ड्वादित्वात् यक् + भावे अ स्त्रियामाप् ।) असूया । गुणेषु दोषारोपण । यथा । "चैत्रस्य दान तामस" । इत्यमरटीकायां भरतः ॥ ("अनिर्वृत भूतिषु गूढवैर सत्कारकालेऽपि कृताभ्यसूयम्" । इति भट्टिकाव्ये" । ईर्ष्या । विद्वेष । औद्धत्यादन्यगुणार्द्धानामसहिष्णुता ।
"केनाभ्यसूया पदकाङ्क्षिणा ते ।
नितान्तदीर्घैर्जनिता तपोभि" ।
इति कुमारसम्भवे ॥
"प्रत्यादिष्टस्त्वयि कुरुधि स्यादनन्याभ्यसूय" ।
इति मेघदूते ।)

अभ्याकाङ्क्षित, स्त्री, (अभि + आ + काङ्क्ष + भावे क्तः, इदित्वान्नुम् ।) मिथ्याभियोग । इति शब्दरत्नावली ॥ मिछादावीया इति भाषा ।

अभ्याख्यानं, स्त्री, (अभि + आ + ख्या + ल्युट् ।) मिथ्याभियोग । मिथ्याविवाद ।शतं मे धारयसीत्यादि मिथ्योद्भावन । इत्यमरभरतौ ॥

अभ्यागत, पु, (अभि + आ + गम् + कर्त्तरि क्त ।) अतिथि । इति हेमचन्द्र ॥ "स च ज्ञातपूर्व्व गृहागत" इति श्रीधरस्वामी ॥
"बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहमागत ।
तस्य पूजा विधातव्या सर्व्वत्राभ्यागतो गुरु" ॥
इति हितोपदेशे ।)

अभ्यागम, पु (अभि + आ + गम् + अप् ।) समीप । मारण । युद्ध । वैरं । अभ्युत्थान । इति विश्व ॥ (घात । प्रहार । शत्रुता । विरोध । समीप । अन्तिक । सन्निधान ।
"अभ्यागमो विरोधाभिघाताभ्युद्गमनान्तिके" ।
इति मेदिनी ॥ सम्मुखागमन । उपस्थिति ।
"का त्व शुभे कस्य परिग्रहो वा
किं वा मदभ्यागमकारणं ते" ।
इति रघुवंशे ।)

अभ्यागारिक, त्रि, (अभ्यागारे तद्गतकर्म्मणि व्यापृत, ठन् तस्य इक ।) कुटुम्बव्यापृत । पुत्रदारादिपोषणव्यग्र । इत्यमरः ॥

अभ्यादान, स्त्री, (अभि + आ + दा + भावे ल्युट् ।) आरम्भः । इत्यमर ॥ प्रथमारम्भ । इति रायमुकुट ॥

अभ्यान्त, त्रि, (अभि + आ + अम + कर्त्तरि क्त इडभाव, पक्षे अभ्यामितः ।) रोगी । इत्यमर ॥

अभ्यामर्द, पु, (अभ्यामृद्यतेऽत्र, अभि + आ + मृद् + आधारे घञ् ।) सङ्ग्राम । इत्यमर ॥

अभ्याश, त्रि, (आभिमुख्येनाश्यते व्याप्यतेऽनेन, अश् व्याप्तौ करणे घञ् ।) समीप । इत्यमरटीकायां रायमुकुट ॥

अभ्यास, पु, (आभिमुख्येनास्यते क्षिप्यते, असुक्षेपे कर्म्मणि घञ् ।) अभ्यसन । आवृत्ति । इति मेदिनी ॥ शराभ्यास । तत्पर्य्याय । खुरली २ योग्या ३ । इति त्रिकाण्डशेष ॥ समीपे त्रि । इत्यमरः । चित्तस्यैकस्मिन्नभ्यन्तरे बाह्ये वा प्रतिमादावालम्बने सर्व्वत समाहृत्य पुन पुन स्थापनमभ्यास ॥ यथा,—
"अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय" ।
इति भगवद्गीताटीकायां नीलकण्ठ ॥

अभ्यासादन, स्त्री, (अभि + आ + सद + णिच् + ल्युट् ।) नि शक्तीकरणाय शत्रुभिर्दीयमान प्रहार । शत्रुसम्मुखगमनं । इत्यमरभरतौ ॥

अभ्याहारः, पु, (अभि + आ + हृ + भावे घञ् ।) अभिहार । चौर्य्य । इत्यमरटीका ॥ (अभिग्रहण । भोजनं । आहार ।)

अभ्युत्थान, स्त्री, (अभि + उत् + स्था + भावे ल्युट् ।) गौरव । इति हेमचन्द्र ॥ आसनादुत्थानं । यथा,—
"यदा यदा च धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्म्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं" ॥
इति श्रीभगवद्गीता ॥ (ख्यातिः । कीर्त्तिः । यश । गौरवेणोत्थानादिना प्रत्युद्गमनं । "अलमलमभ्युत्थानेन, ननु सर्व्वस्याभ्यागतो गुरुरिति भवानेवास्माकं पूज्य" । इति नागानन्द ।
"नाभ्युत्थान क्रिया यत्र नालापा मधुराक्षरा ।
गुणदोषकथा नैव तस्य हर्म्ये न गम्यते" ॥
इति पञ्चतन्त्रे । अभ्युदयः । अभ्युन्नतिः ।
"नवाभ्युत्थानदर्शिन्यो ननन्दु सप्रजा प्रजा" ॥
इति रघुवंशे । सूर्य्योदय । उदयः । उद्भव ।)

अभ्युदय, पु, (अभि + उत् + इन् + अच् ।) इष्टलाभ । विवाहादि । इति आभ्युदयिकशब्दार्थे श्राद्धतत्त्व ॥ सर्व्वतोभावेनोदय । अर्थाद्धनजनादिवृद्धिः । यथा,—
"राजन्नभ्युदयोऽस्तु वक्तुनकवे हस्ते किमास्ते तव श्लोक कस्य कवेरमुष्य सुतिनस्तत् पश्यता पद्यते । किन्त्वासामरविन्दसुन्दरदृशां द्राक्चामरान्दोलनादुद्वेल्लद्भुजवल्लिकङ्कणझणत्कार क्षण वार्य्यता" ॥
इत्यस्य पूर्व्वार्द्ध वक्तनकविकर्णाटराजयोर्वाक्यं शेषार्द्ध कालिदासस्य ॥ (उन्नति । समृद्धिः ।
"विपदि धैर्य्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रम" । इति हितोपदेशे । पराक्रमः । वीर्य्य । प्रभाव । "यद्बाहुदण्डाभ्युदयानुजीविनो यदुप्रवीरा" । इति भागवतपुराणं ।)

अभ्युदित, त्रि, (अभि + उत् + इन् + क्त ।) यस्मिन् सुप्ते सूर्य्य उदेति स । सूर्य्योदयकालशायी । इत्यमर ॥ उदयप्राप्त । यथा,—
"माघे मासि रटन्त्याप किञ्चिदभ्युदिते रवौ ।
ब्रह्मघ्नमपि चाण्डाल क पतन्त पुनीमहे" ॥
इति तिथ्यादितत्त्व ॥ (अभित सर्व्वत उदतिप्रायेण इत गत प्रातर्विहित कर्म्मास्मादिति व्युत्पत्त्या सूर्य्योदयकाले निद्रया अननुष्ठितवत्वाशोचितक्रियाकलाप ।)

अभ्युपगत, त्रि, (अभि + उप + गम् + क्तः ।) स्वीकृत । अङ्गीकृतः । इति हेमचन्द्र ॥
("प्रियाभ्युपगते राज्ये पाण्डवा मधुसूदन ।
जिता शकुनिना राज्य तत्र किं मम दुष्कृत" ॥
इति महाभारते । समीपागत । अन्तिकसमागत । अनुमित । निर्द्धारितः । सिद्धान्ततया निरूपित । सदृशीभूत । सन्निकृष्ट ।)

अभ्युपगमः, पु, (अभि + उप + गम् + भावे अप् ।) स्वीकारः । इत्यमरः ॥ निकटागमनं । इति मेदिनी ॥ (अङ्गीकार । प्रतिज्ञा । "प्रसीदेति ब्रूयामिदमसति कोपे न घटते करिष्याम्येवं नो पुनरिति भवेदभ्युपगम" । इति रत्नावली । अनुमति । अनुमोदन ।

"सर्व्वदोषानभिष्वङ्गादाम्नायसमता गता ।
युष्माकमभ्युपगमाः प्रमाणं पुण्यपापयोः" ।
इति महावीरचरिते ।)

अभ्युपपत्तिः, स्त्री, (अभि + उप + पद + क्तिन् ।) अनुग्रहः । इत्यमरः ॥ (अनिष्टनिवारणपूर्व्वकाभीष्टसम्पादनरूपोऽनुग्रहः । प्रसादः । "तदर्हस्याभ्युपपत्त्या जीवितमस्या अवलम्बितुम्" । इति शाकुन्तले । रक्षा । परित्राणम् ।
"कामिनीषु विवाहेषु गवाम्भक्ष्ये तथेन्धने ।
ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम्" ।
इति मनुः ।)

अभ्युपायः, पुं, (अभि + उप + इण + भावे अच् ।) अङ्गीकारः । स्वीकारः । इति हेमचन्द्रः ॥ उपायः । यथा । "तत्स्वीकृतिव्यतिकरे क इवाभ्युपायः" । इति काव्यप्रकाशः ॥ (कौशलम् ।
"अनेकैरभ्युपायैस्ते जिघांसन्ति स्म पाण्डवान्" ।
"निपुणेनाभ्युपायेन नगरं वारणावतम्" ।
"निपुणेनाभ्युपायेन यद्ब्रवीमि तथा कुरु" ॥
इति महाभारते ।)

अभ्युपायनं, क्ली, (अभि + उप + इण् + ल्युट् ।) उपायनम् । उपढौकनद्रव्यम् । यथा,—
"तावानय सम गोपैर्नन्दाद्यैः साभ्युपायनैः" ।
इति श्रीभागवतम् ॥

अभ्युपेतः, त्रि, (अभि + उप + इण् + कर्म्मणि क्त ।) स्वीकृतः । उपगतः । यथा,—
"अहमभ्युपेतस्त्वामर्थिभावादिति मे विषादः" ।
इति रघुः ॥ (अङ्गीकृतः ।
"मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः" ।
इति मेघदूते ।)

अभ्युषः, पुं, (अभ्युष्यते अग्निना दह्यतेऽसौ अभि + उष् + बाहुल्यात् कर्म्मणि कः ।) अभ्यूषः । पोलिः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥

अभ्यूषः, पुं, (अभि + ऊष + बाहुल्यात् कर्म्मणि कः ।) पाकावस्थागतकलायादि । अर्द्धपाकयवसर्षपादिः । वह्निना ईषद्दग्धः चुट चुट शब्दवान् इति केचित् ॥ दरदग्धः इति श्रीधरः ॥ तत्पर्य्यायः । आपक्वः २ पौलिः ३ । इत्यमरः ॥ अभ्युषः ४ अभ्योषः ५ । इति भरतः ॥ * ॥ पोलिका । रोटी इति प्रसिद्धा । अस्या गुणाः । मधुरत्वं । गुरुत्वं । रोचकत्वं । बलकारित्वं । श्लेष्मवृद्धिजनकत्वं । पित्तरक्तप्रदायित्वञ्च ॥ * ॥ अङ्गारकृतायास्तस्या गुणाः । अग्निदीपनत्वं । वायुवृद्धिकारित्वं । लघुत्वं । बलकारित्वञ्च ।
"सा स्नेहयुक्ता चेत् घनाघनगुणान्विता" ।
इति राजनिर्घण्टः ॥ ईषत्पक्वः । यथा,—
"आपक्वमवपक्वं स्यादाभ्युषं पौलिपौलिके ।
अभ्यूषोऽभ्योष इत्येते ईषत्पक्वयवादिषु" ॥
इति शब्दरत्नावली ॥

अभ्योषः, पुं, (अभ्युष्यते अग्निना दह्यतेऽसौ, अभि + ऊष + कर्म्मणि घञ् ।) अभ्यूषः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥

अभ्र गत्यां । इति कविकल्पद्रुमः ॥ ओष्ठवर्गचतुर्थोपधः । अभ्रति । इति दुर्गादासः ।

अभ्रं, क्ली, (अपो बिभर्त्ति इति अप + भृ + क ।) मेघः । आकाशः । स्वर्णं । अभ्रकधातुः । इति मेदिनी ॥ उपधातुविशेषः । तस्योत्पत्तिनामलक्षणगुणाः ।
"पुरा बधाय वृत्रस्य वज्रिणा वज्रमुद्धृतं ।
विस्फुलिङ्गास्ततस्तस्य गगने परिसर्पिताः ॥
ते निपेतुर्घनध्वानाच्छिखरेषु महीभृतां ।
तेभ्य एव समुत्पन्नं तत्तद्गिरिषु चाभ्रकं ॥
तद्वज्रं वज्रजातत्वादभ्रमभ्ररवोद्भवात् ।
गगनाद्गलितं यस्माद्गगनञ्च ततो मतं ॥
विप्रक्षत्रियविट्शूद्रभेदात्तत् स्याच्चतुर्व्विधं ।
क्रमेणैव सितं रक्तं पीतं कृष्णञ्च वर्णतः ॥
प्रशस्यते सितं तारे रक्तं तत्तु रसायने ।
पीतं हेमनि कृष्णन्तु गदेषु भूतयेऽपि च ॥
पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रञ्चेति चतुर्व्विधं ।
मुञ्चत्यग्नौ विनिक्षिप्तं पिनाकं दलसञ्चयं ॥
अज्ञानाद्भक्षणात्तस्य महाकुष्ठप्रदायकं ।
दर्दुरं त्वग्निनिक्षिप्तं कुरुते दर्दुरध्वनिं ॥
गोलकान् बहुशः कृत्वा स स्यान्मृत्युप्रदायकः ।
नागन्तु नागवद्वह्नौ फुत्कारं परिमुञ्चति ॥
तद्भक्षितमवश्यन्तु विदधाति भगन्दरं ।
वज्रन्तु वज्रवत्तिष्ठेत्तन्नाग्नौ विकृतिं व्रजेत् ॥
सर्व्वाभ्रेषु वरं वज्रं व्याधिवार्द्धक्यमृत्युहृत् ।
अभ्रमुत्तरशैलोत्थं बहुसत्त्वं गुणाधिकं ॥
दक्षिणाद्रिभवं स्वल्पसत्त्वमल्पगुणप्रदं" ॥ * ॥
मारिताभ्रगुणाः ।
"अभ्रं कषायं मधुरं सुशीत-
मायुष्करं धातुविवर्द्धनञ्च ।
हन्यात्त्रिदोषं व्रणमेहकुष्ठं
प्लीहोदरग्रन्थिविषक्रिमींश्च ॥
"रोगान् हन्ति दृढयति वपुर्वीर्य्यवृद्धिं विधत्ते
तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव ।
दीर्घायुष्कान् जनयति सुतान् विक्रमैः सिंहतुल्यान्
मृत्योर्भीतिं हरति सततं सेव्यमानं मृताभ्रं" ॥ * ॥
अशोधिताभ्रदोषाः ।
"पीडां विधत्ते विविधां नराणां
कुष्ठं क्षयं पाण्डुगदञ्च शोथं ।
हृत्पार्श्वपीडाञ्च करोत्यशुद्ध-
मभ्रं ह्यसिद्धं गुरुतापदं स्यात्" ॥ * ॥
अस्य शोधनविधिर्यथा ।
"कृष्णाभ्रकं धमेद्वह्नौ ततः क्षीरे विनिःक्षिपेत् ।
भिन्नपत्रन्तु तत् कृत्वा तण्डुलीयाम्लजैर्द्रवैः ॥
भावयेदष्टयामं तदेवमभ्रं विशुध्यति" ॥ * ॥
तस्य मारणं यथा ॥
"कृत्वा धान्याभ्रकं तच्च शोषयित्वाथ मर्द्दयेत् ।
अर्कक्षीरैर्द्दिनं खल्ले चक्राकारञ्च कारयेत् ॥
वेष्टयेदर्कपत्रैश्च सम्यग्गजपुटे पचेत् ।
पुनर्मर्द्द्यं पुनः पाच्यं सप्तवारान् पुनः पुनः ॥
ततो वटजटाक्वाथैस्तद्वद्देयं पुटत्रयं ।
म्रियते नात्र सन्देहः प्रयोज्यं सर्व्वकर्म्मसु ॥
तुल्यं घृतं मृताभ्रेण लौहपात्रे विपाचयेत् ।
घृते जीर्णे तदभ्रन्तु सर्व्वयोगेषु योजयेत्" ॥ * ॥
तत्र धान्याभ्रस्य विधिः ।
"पादांशशालिसंयुक्तमभ्रं बद्धाथ कम्बले ।
त्रिरात्रं स्थापयेन्नीरे तत् क्लिन्नं मर्द्दयेत् करैः ॥
कम्बलाद्गलितं सूक्ष्मं बालुकारहितञ्च यत् ।
तद्धान्याभ्रमिति प्रोक्तमभ्रमारणसिद्धये" ॥
इति भावप्रकाशः ॥

अभ्रलिहः, पुं, (अभ्रं लेढि स्पृशति, अभ्र + लिह + कर्त्तरि खश्, मुमागमः ।) वायुः । इति पाणिनिः । (मेघस्पर्शी । अत्युच्चः ।
"अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः" ।
इति मेघदूते ।)

अभ्रकं, क्ली, (अभ्र गतौ + ण्वुल्, तस्य अकः ।) स्वनामख्यातधातुः । आब्र इति भाषा । तत्पर्य्यायः । गिरिजं २ अमलं ३ । इत्यमरः ॥ गिरिजामलं ४ गौर्य्यामलं ५ । इति स्वामी ॥ गिरिजाबीजं ६ गरुड़ध्वजं ७ । इति वाचस्पतिः ॥ शुभ्रं ८ । इति जटाधरः ॥ घनं ९ व्योम १० अब्दं ११ । इति रत्नमाला ॥ अभ्रं १२ महत् १३ अम्बरं १४ अन्तरीक्षं १५ आकाशं १६ बहुपत्रं १७ खं १८ अनन्तं १९ गौरीजं २० गौरीतेजः २१ । इति राजनिर्घण्टः ॥ अस्य गुणाः । रसायनत्वं । स्निग्धत्वं बलवर्णाग्निवर्द्धकत्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥ अपि च । गुरुत्वं । हिमत्वं । बल्यत्वं । कुष्ठमेहत्रिदोषनाशित्वञ्च ॥ * ॥ तच्चतुर्व्विधं यथा,—
"श्वेतं पीतं लोहितं नीलमभ्रं
चातुर्व्विध्यं चातिभिन्नक्रियार्हं ।
श्वेतं तारे काञ्चने पीतरक्ते
नीलं व्याधिव्यग्रमग्र्यं गुणाढ्यं" ॥
इति मदनविनोदः ॥
("अभ्रकस्तव वीजन्तु मम वीजन्तु पारदः ।
अनयोर्म्मेलनं देवि मृत्युदारिद्र्यनाशनं" ॥
इति चक्रदत्तः ।)

अभ्रङ्कषः, पुं, (अभ्रमाकाशं कषति गच्छति धातूनामनेकार्थत्वात् अभ्र + कष् + खच् + मुम् ।) वायुः । इति पाणिनिः ॥ (मेघस्पर्शी । अत्युन्नतः । अभ्रंलिहः ।
"सर्व्वङ्कषयशाः शाखं रामकल्पतरुं कपिः ।
आदायाभ्रङ्कषं प्रायान्मङ्गलं फलशालिनं" ॥
इति भट्टिकाव्ये ।)

अभ्रपिशाचः, पुं, (अभ्रे आकाशे पिशाच इव । तस्य छायात्मकत्वेन नीलवर्णतया पिशाचतुल्यत्वं ।) राहुग्रहः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अभ्रपिशाचकः, पुं, (अभ्रे पिशाच इव इवार्थे कन् ।) राहुग्रहः । इति हारावली ॥

अभ्रपुष्पं, क्ली, (अभ्रं मेघ एव पुष्पं जलरूपफलस्य निदानं यस्य तत्, तस्य मेघप्रभवत्वात् तथात्वं ।) जलम् । यथा,—
"अभ्रपुष्पमपि दित्सति शीतं
सार्थिना विमुखता यदभाजि" । इति नैषधं ॥

अभ्रपुष्प, पु, (अभ्रमिव शुभ्रं पुष्पं यस्य सः ।) वेतसवृक्षः । इत्यमरः ॥

अभ्रम, त्रि, (न भ्रमः भ्रान्तिः, नञ्समासः ।) (भ्रमाभावः ।) भ्रमरहितः । अभ्रान्तः । नास्ति भ्रमो यस्येति बहुव्रीहि ॥

अभ्रमांसी, स्त्री, (अभ्रमिव जटायां मांसमस्याः सा गौरादीत्वात् ङीष् ।) आकाशमांसीलता । इति राजनिर्घण्टः ॥ (जटामांसी ।)

अभ्रमातङ्ग, पु, (अभ्रस्य मेघस्य अधिष्ठाता मातङ्गः, शाकपार्थिवादित्वात् समासः, मध्यपदलोपश्च ।) ऐरावत । इन्द्रहस्ती । इत्यमर ॥ (स च समुद्रजात पूर्व्वदिङ्नागः ।)

अभ्रमाला, स्त्री, (अभ्राणां माला श्रेणी, षष्ठीतत्पुरुष ।) मेघश्रेणी । मेघसमूहः । इति हलायुध ॥ (घनघटा । कादम्बिनी ।)

अभ्रमु, स्त्री, (न भ्राम्यति, भ्रम+उञ्, नञ्समास, मान्तत्वात् वृद्ध्यभावः ।) ऐरावतस्त्री । सा पूर्व्वदिग्हस्तिनी । इत्यमर ॥

अभ्रमुप्रिय, पु, (अभ्रमोः पूर्व्वदिक्हस्तिन्या प्रिय ।) ऐरावतहस्ती । इति हेमचन्द्र ॥ (अभ्रमातङ्ग ।)

अभ्रमुवल्लभ, पु, (अभ्रमो वल्लभ प्रिय ।) ऐरावतहस्ती । इत्यमरः ॥

अभ्ररोहं, क्ली, (अभ्रात् मेघात् रोह जन्म यस्य तत्, तस्य मेघशब्दोत्पन्नत्वात् तथात्वं ।) वैदूर्य्यमणि । इति राजनिर्घण्ट ॥

अभ्रवाटिक, पु, (अभ्रस्येव वाटी वक्रता यस्याः सा, समासान्तः कः, ह्रस्व ।) आम्रातक । इति राजनिर्घण्टः ॥

अभ्रान्त, त्रि, (भ्रम्+कर्त्तरि क्त, नञ्समास ।) भ्रान्तिशून्यः । यथा ।
"आप्ता शिष्टा विबुद्धास्ते तेषां वाक्यमसंशयम्"
इत्यत्र "यतोऽभ्रान्तबुद्धय "। इति चरकटीकाकारः ॥ (यथार्थज्ञानयुक्त । भ्रमणशून्य । स्थिरस्थ ।)

अभ्रिः, स्त्री, (अपो बिभर्त्ति, नौकामार्ज्जनार्थं धारयति, अप्+भृ+कर्त्तरि कि ।) काष्ठकुद्दाल । नौकामार्ज्जनार्थकुद्दालाकृतिकाष्ठ । इत्यमर ॥ (तीक्ष्णाग्रो लोहदण्ड ।
"अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात् सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः"।
इति मनु ।)

अभ्रिय, त्रि, (अभ्रे भव, अभ्र+घ तस्य इय ।) अभ्रोद्भववस्तु । तत्पर्य्याय । मेघभव २ । इत्यमरः । (घनसम्भूत । विद्युत् । मेघजल । वज्र । कुलिश ।)

अभ्री, स्त्री, ( अभ्रति मल गच्छति अभ्र+इन्, कृदिकारादिति पक्षे ङीष् ।) काष्ठकुद्दाल । इत्यमरटीकायां भरत ॥

अभ्रेष, पु, (भ्रेष् चलने+घञ्, नञ्समास ।) उचितः । न्याय । इत्यमरः ॥

अभ्रोत्थ, क्ली, (अभ्रात् मेघात् उत्तिष्ठति उद्भवति, अभ्र+उत्+स्था+क ।) वज्रं । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अम क् रोगे । क आमयति व्याधिर्लोकं । इति दुर्गादास ॥

अम गतौ । भजने । शब्दे । अमति । इति दुर्गादासः ॥

अम्, व्य, (अम्+क्विप्, स्वरादित्वादव्ययत्वमस्य ।) शीघ्रता । अल्पं । इति व्याडि ॥

अम, त्रि, ( अम्+भावे घञ्, मान्तत्वान्न वृद्धि, अमो रोगो विद्यते अस्मात्, अर्शआद्यच्, प्रायेण अपक्वफलभक्षणेन रोगोत्पत्तेस्तस्य तथात्व ।) अपक्वफलादि । इति शब्दरत्नावली ॥ रोगे पु । इति मुग्धबोधव्याकरणं ॥

अमङ्गलं, क्ली, (नास्ति मङ्गल शुभ यस्मात् तत् ।) अशुभसूचकं । तद्यथा,—
"सार्द्धं सैन्यसमूहैश्च वाद्यभाण्डैरसङ्ख्यकै ।
ददर्शामङ्गल राजा पुरो वर्त्मनि वर्त्मनि ॥
ययौ तथापि समरं न जगाम गृह पुनः ।
मुक्तकेशीं छिन्ननासां रुदन्तीञ्च दिगम्बरां ॥
कृष्णवस्त्रपरीधानामपरां विधवामपि ।
मुखदुष्टां योनिदुष्टां व्याधियुक्ताञ्च कुट्टिनीं ॥
पतिपुत्त्रविहीनाञ्च डाकिनीं पुंश्चलीमहो ।
कुम्भकारं तैलकारं व्याधं सर्पोपजीविन ॥
कुचेलमतिरूक्षाङ्गं नग्नं काषायवासिनं ।
अङ्गविक्रयिणञ्चैव कन्याविक्रयिणं तथा ॥
चिता दग्धशवं भस्म निर्व्वाणाङ्गारमेव च ।
सर्पच्छत्रं सर्पं गोधाञ्च शशकं विषं ॥
श्राद्धपात्रञ्च पिण्डञ्च मोटकं वानरं तथा ।
देवल वृषवाहञ्च शूद्रश्राद्धान्नभोजिनं ॥
शूद्रान्नपाचक शूद्रयाजकं ग्रामयाजक ।
कुशपुत्तलिकाञ्चैव शवदाहनकारिणं ॥
शून्यकुम्भ भग्नकुम्भं तैलं लवणमस्थि च ।
कार्पास कच्छप चूर्णं कुक्कुर शब्दकारिणं ॥
दक्षिणे च शृगालञ्च कुर्व्वन्तं भैरवं रवं ।
कपर्दकञ्च चौरञ्च छिन्नकेशं नखं मलं ॥
कलहञ्च विलापञ्च विलापकारिणं जनं ।
अमङ्गलं वदन्तञ्च रुदन्तं शोककारिणं ॥
मिथ्यासाक्षिप्रदातारं चौरञ्च नरघातिनं ।
पुंश्चलीपतिपुत्त्रञ्च पुंश्चल्योदनभोजिन ॥
देवतागुरुविप्राणां वस्तुवित्तापहारिणं ।
दत्तापहारिणं दस्युं हिंसकं सूचकं खलं ॥
पितृमातृविरक्तञ्च द्विजाश्वत्थविघातिनं ।
सत्यघ्नञ्च कृतघ्नञ्च स्थाप्यापहारिणं जनं ॥
विप्रद्रोहं मित्रद्रोहं च्युतं विश्वासघातकं ।
गुरुदेवद्विजानाञ्च निन्दकं स्वाङ्गघातकं ॥
जीवानां घातकञ्चैव स्वाङ्गहीनञ्च निर्द्दयं ।
व्रतोपवासहीनञ्च दीक्षाहीनं नपुंसकं ॥
गलितव्याधिगात्रञ्च काणं वधिरमेव च ।
पुक्कसं छिन्नलिङ्गञ्च सुरामत्तं सुरां तथा ॥
छिन्नं वमन्तं रुधिरं महिषं गर्द्दभं तथा ।
मूत्रं पुरीषं श्लेष्माणं कश्चिन्न न्टकपालिनं ॥
झञ्झावातं रक्तवृष्टिं वात्याञ्च वृक्षपातनं ।
वृकञ्च सूकरं गृध्रं श्येनं कङ्कञ्च भल्लुकं ॥
पाशञ्च शुष्ककाष्ठञ्च वायसं गन्धकं तथा ।
अग्रदानिब्राह्मणञ्च तन्त्रमन्त्रोपजीविनं ॥
वैद्यञ्च रक्तपुष्पञ्चैवौषधं तुषमेव च ।
कुवार्त्तां मृतवार्त्ताञ्च विप्रशापञ्च दारुणं ॥
दुर्गन्धवातं दुःशब्दं राजा संप्राप वर्त्मनि ।
मनश्च कुत्सितं प्राणाः क्षुभिताश्च निरन्तरं ॥
वामाङ्गस्पन्दनं देहजाड्यं राज्ञो बभूव ह ।
तथापि राजा नि शङ्को ददर्श दर्शममङ्गलं" ॥
इति ब्रह्मवैवर्त्ते गणपतिखण्डे ३५ अध्याय ॥

अमङ्गल, पु, (नास्ति मङ्गलं यस्य ) एरण्डवृक्षः ॥ इति शब्दचन्द्रिका ॥

अमङ्गल, त्रि, (न मङ्गल, नञ्समास ।) मङ्गलशून्य । अकुशल । यथा । "अमङ्गलं रूपमिदं दधत् कथं" । इति विदन्मोदतरङ्गिणी ॥ मङ्गलाभावे क्ली । यथा । "अमङ्गलाभ्यासरतिं विचिन्त्य तं" । इति कुमारसम्भव ॥

अमङ्गल्य, त्रि, (मङ्गलाय हित, मङ्गल+यत् ततो नञ्समास ।) अमङ्गलजनक । यथा,—
"अमङ्गल्य शीलं तव भवतु नामैवमखिल"।
इति पुष्पदन्त ॥ (अशुभकर । अशिवसूचक ।
"देवि । मैवममङ्गल्यवादिनी भव"। इति नागानन्द ।)

अमण्ड, पु, (नास्ति मण्डो भक्तावशिष्ट भूषा वा यस्य स ।) एरण्डवृक्ष । इत्यमर ॥ (मण्डहीनभक्तादि । भूषणहीनश्च ।)

अमत, पु, (अम् रोगे+अतच्, अथवा मन्+भावे क्त, नास्ति मतमभिप्रायो यत्र सः । अथवा मन्+कर्म्मणि क्त, नञ्समास ।) रोगः । मृत्युः । काल । इत्युणादिकोष ॥

अमति, पु, (अम्+अति ।) काल । चन्द्र । इति मेदिनी ॥ दुष्टे त्रि । इति शब्दरत्नावली ॥
"अमति पुंसि काले च दुष्टे हिमकरेऽपि च"।
इति शब्दरत्नावली । अबुद्धि । अज्ञान । अनभिसन्धि ।
"भुक्तातोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यहं ।
मत्या भुक्त्वा चरेत् कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेव च" ॥
इति मनु ।)

अमत्र, क्ली, (अमति भुङ्क्तेऽन्नमत्र, अम् भोजने आधारे अत्रन् ।) पात्र । अस्य भाषा अमिर्त्ति । इत्यमर ॥ (भाजन । स्थालं । भोजनपात्र ।)

अमत्सर, पु, अन्यशुभद्वेषाभाव । अत्र नञ्समासः ॥ मात्सर्य्यरहिते त्रि । अत्र बहुव्रीहिसमास ॥

अमनि, स्त्री, (अमति यात्यत्र, अम+आधारे अनि ।) वर्त्म । मन्था । इत्युणादिकोष ॥

अमन्द, पुं, (न मन्दः विरोधे नञ्समास ।) वृक्षः । इति शब्दचन्द्रिका ॥ मन्दभिन्ने त्रि । यथा ।
"पृष्ठभ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयनान्निद्रालो कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिला पान्तु व ।" इति श्रीभागवत ॥ (भीषण । घोरः । अतिगभीर ।
"आगुञ्जद्गिरिकुञ्जकुञ्जरघटाविस्तीर्णकर्णज्वरम्
ज्यानिर्घोषममन्ददुन्दुभिरवैराध्मातमुज्जृम्भयन्"।
इति उत्तरचरिते । प्रचुर । बहुल । अनल्पः ।

"क्वणत्कनककिङ्किणीझणझणायितस्यन्दनै-
रमन्दमददुर्द्दिनद्विरदवारिदैरावृतः" ॥
इति उत्तरचरिते । "आनन्दममन्दमिमं कुवलय-
दललोचने ददासि त्वं"। इति काव्यप्रकाशः ।
अजड़ः । कुशल । उद्योगी । )

अममः, पुं, (नास्ति ममेत्यभिमानो गृहादिषु यस्य ।) भाविजिनविशेष । इति हेमचन्द्रः ॥ ममताशून्ये त्रि । (संसारमायारहितः । विषयासक्तिशून्यः ।
"अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः ।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः" ॥
इति मनुः । )

अमरः, पुं, (मृ + कर्त्तरि अच् नञ्समासः ।) देवः । इत्यमरः ॥
("विबभौ देवशत्रूणां वज्रपाणिरिवामरैः" ।
इति महाभारते ।
"फलं कर्म्मायत्तं किममरगणैः किञ्च विधिना" ।
इति शान्तिशतके ।)
कुलिशवृक्षः । अस्थिसंहारवृक्षः ॥ इति मेदिनी ॥ पारदः । इति राजनिर्घण्टः ॥ मृत्युरहिते त्रि । यथा,—
"अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत्" ।
इति हितोपदेशः ॥ अमरसिंहः । स चादिशाब्दिकः नामलिङ्गानुशासननामककोषकारः विक्रमादित्यराजसभीयनवरत्नान्तर्गतरत्नविशेषश्च ।
यथा,—
"इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्ना पिशली शाकटायनः ।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः ॥
इति कविकल्पद्रुमः ॥
"धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु-
वेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य" ॥
इति नवरत्नं ॥ स एव बौद्धमतावलम्बीति केचित् ॥

अमरजः, पुं, (अमर इव जायते, अमर + जन् + ड ।) दुर्खदिरवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (कालस्कन्ध । मलतरु ।)

अमरदारुः, पुं, (अमराणां दारु, षष्ठीतत्पुरुषः ।) देवदारुवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अमरद्विजः, पुं, (अमरपूजको द्विजः शाकपार्थिवादित्वात् समासः, मध्यपदलोपश्च ।) देवलब्राह्मणः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (देवाजीवः । देवपूजकः ।)

अमरपुष्पकः, पुं, (अमरमविशीर्णं पुष्पं यस्य समासान्तः कः ।) काशतृणं । इति रत्नमाला ॥ केशिया । इति भाषा ।

अमरपुष्पिका, स्त्री, (अमरमशीर्णं पुष्पं यस्याः सा-जातित्वात् स्त्रियां ङीप्, स्वार्थे कन् ।) अधःपुष्पीवृक्षः । इति रत्नमाला ॥

अमररत्नं, क्ली, (अमराणां रत्नमिव ।) स्फटिकं । इति राजनिर्घण्टः ॥

अमरवल्लरी, स्त्री, (अमरा छेदनेऽपि न म्रियमाणा वल्लरी वल्ली ।) आकाशवल्ली । इति वैद्यकं ॥

अमरा, स्त्री, (न म्रियते मृ + कर्त्तरि अच्, नञ्-समासः ।) दूर्व्वा । गुडूची । इन्द्रपुरी । स्थूणा । जरायु । इति मेदिनी ॥ इन्द्रवारुणीवृक्षः ॥ वटीवृक्षः । महानीलीवृक्षः । गृहकन्या । घृतकुमारी इति ख्याता । इति राजनिर्घण्टः ॥ नाभिनालं । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अमराद्रिः, पुं, (अमराणां देवानामद्रिः पर्व्वतः, देवालयत्वात् तस्य तथात्वं ।) सुमेरुः । इति जटाधरः ॥

अमरावती, स्त्री, (अमरा विद्यन्तेऽस्याः, अमर + मतुप् मस्थाने वः दीर्घश्च ।) इन्द्रनगरी । इत्यमरः ॥ अमराः सन्ति अस्यामिति मोश्चमृपादिति वतुः नाम्न्यर्थे इति दीर्घः । इति भरतः ॥ तत्पर्य्यायः । पूषभासा २ देवपूः ३ । इति जटाधरः ॥ महेन्द्रनगरी ४ अमरा ५ सुरपुरी ६ । इति शब्दरत्नावली ॥ तद्वर्णनं यथा । शिवशर्म्मोवाच ।
"रमयन्ती मनोऽतीव केयं कस्येयमीशितुः ।
नयनानन्दसन्दोहदायिनी पूरनुत्तमा" ॥
गणावूचतुः ।
"शिवशर्म्मन् महाभाग सुतीर्थक्षपितक्रम ।
लोकोऽत्र रमते विप्र सहस्राक्षपुरी त्वियं ॥
तपोबलेन महता निर्म्मिता विश्वकर्म्मणा ।
दिवापि कौमुदी यस्याः सौधश्रेणीश्रियं श्रयेत् ॥
यदा कलानिधिः क्वापि दर्शेऽदृश्यत्वमावहेत् ।
तदा स्वप्रेयसीं ज्योत्स्नां सौधेष्वेषु निगूहयेत् ॥
यदच्छभित्तौ वीक्ष्य स्वमन्ययोषिद्विशङ्किता ।
मुग्धानास्ते विशेषिन्नमपि स्वा चित्रशालिका ॥
हर्म्येषु नीलमणिभिर्निर्म्मितेष्वत्र निर्भयं ।
स्वनीलिमानमाधाय तमोऽह्नि स्वपिति तिष्ठति ॥
चन्द्रकान्तशिलाजालस्रुतमन्नामलं जलं ।
तत्र चादाय कलसैर्न्नेच्छन्त्यन्यजलं जनाः ॥
कुविन्दा न च सन्त्यत्र न च ते पश्यतो नराः ।
चेलान्यलङ्कृतीरत्र यतः कल्पद्रुमोऽर्पयेत् ॥
गणका नात्र विद्यन्ते चिन्ताविद्याविशारदाः ।
यतो जानाति सर्व्वेषां चिन्तां चिन्तामणिर्द्दुतं ॥
सूपकारा न सन्त्यत्र रसकर्म्मविचक्षणाः ।
दुग्धे सर्व्वरसानेका कामधेनुरतोऽनिशं ॥
कीर्त्तिरुच्चैःश्रवा यस्य सर्व्वतो वाजिराजिषु ।
रत्नमुच्चैःश्रवास्त्वत्र हयानां पौरुषाधिकं ॥
ऐरावतो दन्तिराजश्चतुर्द्दन्तोऽत्र राजते ।
द्वितीय इव कैलासो जङ्गमः स्फाटिकोज्ज्वलः ॥
तरुरत्नं पारिजातं स्त्रीरत्नं सोर्व्वशी त्विह ।
नन्दनं वनरत्नञ्च रत्नं मन्दाकिनी त्वपां ॥
त्रयस्त्रिंशत् सुराणां याः कोटिः श्रुतिसमीरिताः ।
प्रतीक्षन्ते सावसरं सेवायै प्रत्यहं त्विह ॥
स्वर्गे त्विन्द्रपदादन्यन्नविशिष्येत किञ्चन ।
यद्वत् त्रैलोक्यमैश्वर्य्यं न तत्तुल्यमनेन हि ॥
अश्वमेधसहस्रस्य लभ्यं विनिमयेन यत् ।
किन्तेन तुल्यमन्यत् स्यात् पवित्रमथवा महत् ॥
अर्द्धेयानी सयमनी पुण्यवत्यमलावती ।
गन्धवत्यलकैशी च नैतत्तुल्या महर्द्धिभिः ॥
अयमेव सहस्राक्षस्त्वयमेव दिवस्पतिः ।
शतमन्युरयन्देवो नामान्येतानि नामतः ॥
सप्तापि लोकपाला ये त एनं समुपासते ।
नारदाद्यैर्मुनिवरैरयमाशीर्भिरेध्यते ॥
एतत्स्थैर्य्येण सर्व्वेषां लोकानां स्थैर्य्यमिष्यते ।
पराजयान्महेन्द्रस्य त्रैलोक्यं स्यात् पराजितं ॥
मनुजा दनुजा दैत्यास्तपस्यन्त्युग्रसंयमाः ।
गन्धर्व्वयक्षरक्षांसि महेन्द्रपदलिप्सवः ॥
सगराद्या महीपाला वाजिमेधविधायकाः ।
ह्रतवन्तो महायत्नं शक्रैश्वर्य्यं जिहृक्षवः ॥
निष्प्रत्यूहं क्रतुशतं यः कश्चित् कुरुतेऽवनौ ।
जितेन्द्रियोऽमरावत्यां स प्राप्नोति पुलोमजां ॥
असमाप्तक्रतुशता वसन्त्यत्र महीभुजः ।
ज्योतिष्टोमादिभिर्यागैर्ये यजन्त्यपि ते द्विजाः ॥
तुलापुरुषदानादिमहादानानि षोड़श ।
ये यच्छन्त्यमलात्मानस्ते लभन्तेऽमरावतीं ॥
अक्लीववादिनो धीराः सङ्ग्रामेष्वपराङ्मुखाः ।
विक्रान्ता वीरशयने तेऽत्र तिष्ठन्ति भूभुजः ॥
इत्युद्देशात् समाख्याता महेन्द्रनगरीस्थितिः ।
यायजूका वसन्त्यत्र यज्ञविद्याविशारदाः ॥
एतस्या दक्षिणे भागे येयं दृश्येत पूः शुभा ।
इमामर्च्चिष्मतीं वीक्ष्य वीतिहोत्रपुरीं शुभां" ।
इति स्कान्दे काशीखण्डे १० अध्यायः ॥

अमर्त्यः, पुं, (न मर्त्त्यः, इति नञ्समासः ।) देवः, इत्यमरः ॥ (मरणधर्म्मरहितः । अक्षयः । अविनश्वरः ।)

अमर्त्यभुवनं, क्ली, (अमर्त्त्यानां देवानां भुवनं वासस्थानं ।) स्वर्गः । इति हलायुधः ॥

अमर्षः, पुं, (मृष + भावे घञ्, नञ्समासः । नास्ति मर्षः क्रोधो यस्य, त्रि, क्रोधशून्यः ।) क्रोधः । इत्यमरः ॥
("कच्चित्पितृवधामर्षात् पुनर्नोत्सादयिष्यति" ।
इति रामायणे । अक्षमा । असहिष्णुता । हठघाते असहिष्णुत्वं ।
"यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः" ॥
इति भगवद्गीता ।)

अमर्षणः, त्रि, (मृष् + बाहुल्यात् कर्त्तरि ल्युट् नञ्समासः ।) क्रोधी । इत्यमरः ॥ (क्रोधनः । कोपनस्वभावः । अतिसंक्रुद्धः । प्रकोपितः ।
"रघोरवष्टम्भमयेन पत्रिणा
हृदि क्षतो गोत्रभिदप्यमर्षणः" ।
इति रघुवंशे । असहनः । असहिष्णुः । परकृतापमानादेरसहनशीलः ।
"गत्वा क्रुद्धे वासुदेवेन सार्द्धं
अमर्षणं धर्षयतः सुतं मे" । इति महाभारते ।
"अमर्षणः शोणितकाङ्क्षया किं
पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः" । इति रघुवंशे ।)

अमलं, क्ली, (नास्ति मलं यस्य तत् ।) अभ्रधातुः । निर्म्मले त्रि । इति मेदिनी ॥

अमला, स्त्री, (नास्ति मलं यस्याः सा, अथवा अम् + कलच् स्त्रियां टाप् ।) लक्ष्मीः । इति मेदिनी ॥ सातलावृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ भूम्यामलकी । इत्यमरः ॥ नाभिनालं । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

**अमस**, पुं, (अम गतिरोगादौ असच्।) काल। निर्बोध। रोग। इत्युणादिकोषः॥ ("अमसो वालिशे काले रोगभेदे पुमानयं"। इति अमर।)

**अमा**, व्य,, (न मा + का स्वरादित्वादव्यय।) सहार्थं। निकटं। इत्यमर॥

**अमा**, स्त्री, (न माति क्षयोदयविशेषं परिच्छिनत्ति, मा + क, नञ्समास।) अमावस्या। इति त्रिकाण्डशेष॥ चन्द्रमण्डलस्य षोडशकला। तथा च स्कान्दपुराणीयप्रभासखण्डे।

"अमा षोडशभागेन देवि प्रोक्ता महाकला।
संस्थिता परमा माया देहिना देहधारिणी"॥

अस्यार्थ। चन्द्रमण्डलस्य षोडशभागेन परिमिता आधारशक्तिरूपा क्षयोदयरहितत्वात् नित्या स्रक्सूत्रवत् सर्व्वानुस्यूता अमा नाम्नी महाकला प्रोक्ता। इति रघुनन्दनः॥ (सह। सार्द्धं। समीपं। निकट। अन्तिकं।)

**अमांस**, त्रि, (नास्ति मांस यस्य स।) दुर्ब्बल। इत्यमरः॥ अल्पमांसयुक्तः। मांसरहितश्च॥ (कृश। क्षीणकाय। निरामिषभक्ष्यवस्तु।)

**अमात्य**, पुं, (अमा सह विद्यते, अमा + त्यप्।) मन्त्री। इत्यमरः॥ तत्परीक्षा। यथा,—

"शान्तो विनीत कुशल सत्कुलीन शुभान्वित।
शास्त्रार्थतत्त्वगोऽमात्यो भवेद्भूमिभुजामिह"॥ इति युक्तिकल्पतरु॥

("भृता हि पाण्डुनामात्या बलञ्च सतत भृत।
मान्यानन्यानमात्यांश्च ब्राह्मणांश्च तपोधनान्"॥ इति महाभारते।)

**अमानन**, क्ली, (मन् + णिच् + भावे ल्युट्, नञ्समास।) अनादर। न्यक्कार। इति शब्दरत्नावली॥

("अतुष्टिदान कृतपूर्व्वनाशन-
ममानन दुश्चरितानुकीर्त्तन।
कथाप्रसङ्गेन च नामविस्मृति-
र्विरक्तभावस्य जनस्य लक्षण"॥
इति हितोपदेशे।)

**अमानस्य**, क्ली, (मानसाय मनसे हित मानस + यत्, नञ्समास।) दुःख। पीडा। व्यथा। तद्युक्ते त्रि। इत्यमर॥ आमनस्य आमानस्यमपि पाठ॥

**अमान्य**, त्रि, (मन् + कर्म्मणि ण्यत्, नञ्समास।) अमाननीय। अनादृत्य। मान्यशब्दस्य नञा समास॥

**अमामसी**, स्त्री, (अमा सह सूर्य्येण मासो यस्या, गौरादित्वात् ङीष्। पृषोदरादित्वात् ह्रस्व।) अमावस्या। इत्यमरटीकाया रमानाथ॥

**अमामासी**, स्त्री, (अमा सह सूर्य्येण मासो यस्या, गौरादित्वात् ङीष्।) अमावस्या। इत्यमरटीकायां रमानाथ॥

**अमायिक**, त्रि, (न + माया + ठन्, तस्य इक।) मायारहित। माया विद्यते यस्य स मायिक ततो नञा समास॥

**अमावसी**, स्त्री, (अमा साहित्येन वसतश्चन्द्रार्कौ यस्या, अमा + वस + अधिकरणे गौरादित्वात् ङीष्।) अमावास्या। इति शब्दरत्नावली॥

**अमावस्या**, स्त्री, (अमा साहित्येन वसतश्चन्द्रार्कौ यस्या, अमा + वस + आधारे ण्यत् स्त्रियां टाप्।) कृष्णपक्षान्ततिथिः। सा तु चन्द्रमण्डलस्य पञ्चदशकलाक्रियारूपा तत्क्रियोपलक्षित कालो वा। इति तिथ्यादितत्त्वं॥ सूर्य्याचन्द्रमसोर्य्य पर सन्निकर्ष सामावस्या। इति गोभिल॥ परः सन्निकर्षश्च उपर्य्यधोभावापन्नसमसूत्रपातन्यायेन एकराश्यवच्छेदेन सहावस्थानरूपः। इति रघुनन्दनः॥ तत्पर्य्याय। अमावास्या २। दर्श ३। सूर्य्येन्दुसङ्गम ४। इत्यमर॥ पञ्चदशी ५। इति स्मृति॥ अमावसी ६। अमावासी ७। इति शब्दरत्नावली॥ अमामसी ८। अमामासी ९। इत्यमरटीकाया रमानाथ॥ सा दृष्टेन्दुकला सिनीवाली १०। नष्टेन्दुकला च कुहू ११। इत्यमर॥ तद्व्यवस्थादि यथा। अथामावस्या। सा च प्रतिपद्युता ग्राह्या युग्मात्। वराहपुराणे चाण्डालशमथे।

"षष्ठ्यष्टम्यप्यमावास्या उभे पक्षे चतुर्द्दशी।
अस्नातानां गति यास्ये यदाह नागमे पुन"॥

अतोऽत्र स्नानमावश्यकं। अतोऽत्र जीवत्पितृकेणापि स्नातव्यम्।

"अमास्नान गयाश्राद्ध दक्षिणामुखभोजन।
न जीवत्पितृक कुर्य्यात् कृते च पितृहा भवेत्"॥
इति वचन रागप्राप्तस्नाननिषेधकं।
"भोगाय क्रियते यत्तु स्नान यादृच्छिक नरै।
तन्निषिद्ध दशम्यादौ नित्यनैमित्तिके न तु"॥
इति त्रयोदशीप्रकरणोक्तवचनाच्च॥ * ॥

पैठिनसि। "न पर्व्वसु तैल क्षौरं मांसमभ्युपेयात् नामावास्याया हरितमपि छिन्द्यात्"। इति॥ * ॥

"पुष्ये तु जन्मनक्षत्रे व्यतीपाते च वैधृतौ।
अमायाञ्च नदीस्नान पुनात्यासप्तमं कुल"॥
अत्र दहत्याजन्मदुष्कृतमिति ज्योतिषे पाठ॥ * ॥

व्यास।

"अमावास्या भवेद्वारे यदि भूमिसुतस्य च।
गोसहस्रफल दद्यात् स्नानमात्रेण जाह्नवी"॥
"सिनीवाली कुहूर्व्वापि यदि सोमदिने भवेत्।
गोसहस्रफल दद्यात् स्नान यन्मौनिना कृतम्"॥

सिनीवाली चतुर्द्दशीयुक्तामावास्या व्यस्तापि प्रशस्ता एवमन्यत्रापि वारविशिष्टविधौ न युग्मादर निरवकाशत्वेन सशयायोगात्। एतच्च मौनमरुणोदयकालमारभ्य स्नानपर्य्यन्त। न तु स्नानकालमात्रे।

तत्र,

"उच्चारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने।
स्नाने भोजनकाले च षट्सु मौन समाचरेत्"॥
इति स्कान्देन तस्य सामान्यत प्राप्तत्वात्। उच्चारे पुरीषोत्सर्गे॥ * ॥ स्मृति।

"करतोयाजलं प्राप्य यदि सोमयुता कुहू।
अरुणोदयवेलाया सूर्य्यग्रहशतै समा"॥

स्नानमन्त्र।

"करतोये सदानीरे सरित्श्रेष्ठे सुविश्रुते।
पौण्ड्रान् प्लावयसे नित्यं पाप हर करोद्भवे"॥

पौण्ड्रान् देशविशेषान्॥ * ॥ मरीचिः।

"मासे नभस्यमावास्या तस्या दर्भचयो मतः।
अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्या पुनः पुन"॥

अत्र।

"दर्भा कृष्णाजिनं मन्त्रा ब्राह्मणा हविरग्नय।
अयातयामान्येतानि नियोज्यानि पुन पुन"॥

इति गृह्यपरिशिष्टवचनेनैव सिद्धौ श्रावणामावास्याया उपादानं।

"वार्षिकांश्चतुरो मासान्नाहरेत् कुशमृत्तिका।
आददीत तदभावेऽपि सद्यो यस्योपयोजनं"॥

इति संवत्सरप्रदीपधृतशिवरहस्यीयस्यापवादकमिति॥ विद्याकरधृतं।

"सङ्ग्रहादत्सर यावत् शुद्धि स्यादिश्ववर्हिषा।
ततः परं न गृह्णीयात् जपादौ यज्ञकर्म्मणि"॥ * ॥

संवत्सरप्रदीपे।

"अमावास्यान्तु कन्यार्के तीर्थप्राप्तौ तथा नृप।
कृत्वा श्राद्ध विधानेन दद्यात् षोडशपिण्डक"॥

तत्प्रमाणप्रयोगौ षोडशीशब्दे द्रष्टव्यौ॥ * ॥ अमावास्यायामपि मलमासे श्राद्धाभावमाह कौथुमि।

"संवत्सरातिरेको वै मासो य स्यात्त्रयोदश।
तस्मिंस्त्रयोदशे श्राद्ध न कुर्य्यादिन्दुसङ्क्षये"॥

सम्वत्सरप्रदीपे।

"एकराशिस्थिते सूर्य्ये यदि दर्शद्वयं भवेत्।
दर्शश्राद्ध तदादौ स्यान्न परत्र मलिम्लुचे"॥

यत्तु।

"जातकर्म्मणि यत् श्राद्ध दर्शश्राद्ध तथैव च।
मलमासेऽपि तत्कार्य्य व्यासस्य वचन यथा"॥

इति व्यासवचन तत्पिण्डपितृयज्ञाख्यश्राद्धपरं॥ * ॥ अमावास्याश्राद्धकालमाह छन्दोगपरिशिष्टं।

"पिण्डान्वाहार्य्यक श्राद्ध क्षीणे राजनि शस्यते।
वासरस्य तृतीयांशे नातिसन्ध्यासमीपत"॥

पिण्डाना पितॄणा अन्वाहार्य्य श्राद्ध मासैकतृप्तिजनक यत्तत्तथा। तथा च मनु।

"पिण्डाना मासिक श्राद्धमन्वाहार्य्य विदुर्बुधा"।

राजनि चन्द्रे। शस्यत इत्यनेन क्वचिच्चन्द्रक्षयाभावेऽपि अमावास्याश्राद्ध सूचित। एतादृग्व्युत्पत्ते साग्निनिरग्निसाधारणत्वात् वक्ष्यमाणकात्यायनोक्तरीत्या क्षीणस्तम्भितावर्द्धमानाभेद साधारण॥ * ॥ यत्तु,—

"पितृयज्ञन्तु निर्व्वर्त्त्य विप्रश्चन्द्रक्षयेऽग्निमान्।
पिण्डान्वाहार्य्यक श्राद्ध कुर्य्यान्मासानुमासिक"॥

इति मनुवचन तत्साग्नि पिण्डपितृयज्ञ निर्व्वर्त्त्य मासानुमासिक प्रतिमासिक श्राद्ध कुर्व्वीतेतिक्रमविधायक। अत्रानुशब्दस्य वीप्सार्थकत्व। तथा च।

"लक्षणवीप्सेत्यम्भूतेष्वभिभागे परिप्रती।
अनुरेषु सहार्थे च हीने उपश्च कथ्यते"॥

चन्द्रक्षयेऽमावास्याया न तु कात्यायनोक्तक्षये

तथात्वे वर्द्धमानादौ प्रतिमासानुपपत्तेः। एवमेव श्राद्धविवेकः। अतएव तत्रैवामावास्याव्यतिरिक्त-कृष्णपक्षविहितपार्व्वणश्राद्धे यथास्तमिति वचनात् व्यवस्थेत्युक्तं। तत्र साग्निकर्त्तृत्वाविशेषितामावास्यायाव्यतिरेकाभिधानात् क्षीणादिभेदेन व्यवस्था साग्निनिरग्निसाधारणीत्यवगम्यते। एवञ्चामावास्यायां मृताहनिमित्तक औरसक्षेत्रजपुत्त्रकर्त्तव्यपार्व्वणे क्षीयमाणादिना न व्यवस्था किन्तु यथास्तमित्यनेन। एतद्विवृतं मलमासतत्त्वे ॥ * ॥ यत्तु दशममुहूर्त्तस्य मत्स्यपुराणोक्तापराह्णिकत्वेऽपि श्राद्धे तस्य त्यागः। पिण्डपितृयज्ञार्थ एवेति वासरतृतीयांशाभिधानं साग्निपरमेवेति परिशिष्टप्रकाशोक्तं तन्न युक्तं। पूर्व्वाह्णो वै देवानां मध्यन्दिनं मनुष्याणां अपराह्णः पितॄणां इति श्रुत्या तन्मुहूर्त्तस्य मनुष्यकर्म्माङ्गत्वेन बोधनादेव श्राद्धे परित्यागः। एतच्छ्रुतिमूलकमेव वासरस्य तृतीयांश इत्युक्तं। वासरस्य तृतीयांशे त्रिधा विभक्तस्य दिनस्य तृतीयभागे नातिसन्ध्यासमीपतः इति सन्ध्यासमीपैकमुहूर्त्तं आपद्यपि वर्ज्जनीयं इत्यर्थः। तेन।

"प्रातःकालो मुहूर्त्तांस्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यादपराह्णस्ततः परः॥
सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यात् श्राद्धं तत्र न कारयेत्।
राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्व्वकर्म्मसु"॥

इति मत्स्यपुराणे निषिद्धमुहूर्त्तत्रये आपदि मुहूर्त्तद्वयमभ्यनुज्ञातं अतिशब्दस्वरसात्। "त्रिमुहूर्त्तापि कर्त्तव्या पूर्व्वा दर्शा च बह्वृचैः"। इति हारीतवचनाच्च। तेन पूर्व्वदिने मुहूर्त्तत्रयमात्रलाभे परदिने वासरस्य तृतीयांशालाभे पूर्व्वदिने एव श्राद्धं। एतेन नातिसन्ध्यासमीपत इत्यनेन राक्षसीवेलामात्रं निषिध्यत इति मैथिलमतमपास्तं। सर्व्वकर्म्मसु स्नानदानादिष्वपि अनापदीत्यर्थः। इति श्राद्धविवेकः॥ तेनाशक्तौ तस्यामपि तत्करणं। अतएव पराशरः।

"दिवाकरकरैः पूतं दिवास्नानं प्रशस्यते।
अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात्"॥

इति ॥ * ॥ दर्शद्वैधे कुत्र श्राद्धमित्याह छन्दोगपरिशिष्टे कात्यायनः।

"यदा चतुर्द्दशीयामं तुरीयमनुपूरयेत्।
अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते"॥

चतुर्द्दशीयामं चतुर्द्दशीसम्बन्धिदिनयाममिति तद्दिनस्यामावास्यासम्बन्धेऽपि चतुर्द्दशीनिर्द्देशो-ऽधिकेन व्यपदेशा भवन्तीति न्यायात्। तेन यदा अमावास्या चतुर्द्दशीसम्बन्धिदिनस्य चतुर्थं प्रहरं सार्द्धं किञ्चिन्न्यूनं वा अनुपूरयेत् अत्रानुपूरयेदित्यभिधानात् तुरीययामस्य पादोनदण्डद्वयान्यूनप्रथममुहूर्त्तस्य तद्घटकत्वं प्रतीयते। एतेन प्रहरत्रयाभ्यन्तरे किञ्चिदधिकप्रहरत्रये वा चतुर्द्दशी प्रतीयते। ततश्चोभयवासरीयतृतीयांशसम्बन्धिपञ्चधाविभक्तापराह्णमुहूर्त्तयोर्मुहूर्त्तान्यूनदर्शलाभे द्वैधं न त्वेकदिनमात्रे तल्लाभे। तत्र पूर्व्वोक्तेन वासरस्य तृतीयांश इत्यनेनैव द्वैधामुदयात्। अतो यद्दिने वासरतृतीयांशे तादृशदर्शलाभस्तत्रैव श्राद्धं। मुहूर्त्तोनतिथेस्तु कर्म्मानर्हत्वान्न द्वैधावसरः। तथा च भविष्ये।

"प्रतोपवासनियमे घटिकैका यदा भवेत्।
सा तिथिः सकला ज्ञेया पित्रर्थे चापराह्णिकी"॥

इति। अत्र च प्रागुक्तजावालिवचनोक्ता मुहूर्त्तात्मिका घटिका ग्राह्या योग्यत्वात् न त्वेकदण्डात्मिका वक्ष्यमाणरौहिणादिग्रहणे तथा दृष्टत्वाच्च। ततश्च पूर्व्वोक्तद्वैधे तद्दिवसीयचतुर्द्दश्यपेक्षया परदिने अमावास्या क्षीयमाणा न्यूनकालव्यापिनी न तु पूर्व्वापरदिवसीययावच्चतुर्द्दश्यपेक्षया अनुपस्थितेः। एवं स्तम्भितावर्द्धमानयोरपि। तदैव पूर्व्वदर्श एव श्राद्धं। स्तोकचन्द्रक्षयानुरोधात्। यदा त्रिंशद्दण्डात्मकदिवसे चतुर्द्दश्यधिकचतुर्थयामपूरणे मुख्यापराह्णीयकिञ्चिन्न्यूनमुहूर्त्तलाभस्तदापि तदैवेत्यनेन चन्द्रक्षयानुरोधात् पूर्व्वदिने श्राद्धं न तु मुख्यापराह्णीयमुहूर्त्तलाभेऽपि परदिने। अत्र चन्द्रक्षयश्चतुर्द्दश्यष्टमयामात् प्रभृति अमावास्यासप्तमयामपर्य्यन्तमिति वक्ष्यते। तदैवेत्येव श्रवणात्तिथिद्वैधे खण्डविशेषो नियम्यते कर्म्मणि खण्डान्तरव्युदासाय। एवञ्च यत्र पूर्व्वापरदिने वासरतृतीयांशीयमुख्यापराह्णे मुहूर्त्तोनदर्शलाभस्तत्रापि पूर्व्वदिन एव श्राद्धं वासरतृतीयांशचन्द्रक्षयातिशब्दस्वरसात्। त्रिमुहूर्त्तापीत्यनुरोधाच्च। यत्र तु पूर्व्वदिने त्रिमुहूर्त्तमात्रव्यापिन्यमावास्या परदिने तृतीयांशमुहूर्त्तव्यापिनी सती क्षीयमाणा तत्र परदिने चन्द्रक्षयाभावेऽपि मुख्यापराह्णलाभात् श्राद्धम्। अन्यथा,—

"यदा चतुर्द्दशीयामं तुरीयमनुपूरयेत्"।

इति विशेषाभिधानं व्यर्थं स्यात् ॥ * ॥ अथ "यत्र पूर्व्वाह्णे श्राद्धं तत्र यदहस्त्वेव चन्द्रमा न दृश्येत तामावास्यां कुर्व्वीत" इति गोभिलविरोधः। तथाविधचतुर्द्दशीयुक्तामावास्यायां सिनीवालीत्वेन प्रातश्चन्द्रदर्शनात्। तत्राह स एव।

"यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नेति चन्द्रमाः।
तत्क्षयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि"॥

"यदहस्त्वेव चन्द्रमा न दृश्येत तामावास्यां कुर्व्वीत" इति यद्गोभिलसूत्रं तच्चन्द्रक्षयाभिप्रायिकम्। अन्यथा गोभिलीयतादृशसूत्रान्तरेण सह पौनरुक्त्यापत्तेः। तस्मात् प्रथमसूत्रं कुहूपरं तच्च वर्द्धमानापक्षे नियतं। क्षीणास्तम्भितयोस्तु यथायोग्यमनुसरणीयम्। एवञ्च "यदहस्त्वेव चन्द्रमा न दृश्येत तामावास्यां कुर्व्वीत" इति श्रुतिरेतत्समानार्थकं श्रुत्यन्तरं वा तदपि वर्द्धमानादिपरं न तु कात्यायनवचनात्तत्र क्षयलक्षणा कल्पतरुप्रभृतिभिरुक्तायुक्ता।

"श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसि"।

इति विरोधात्। क्षीणे इति कात्यायनेन मया यत् क्षीणे राजनीत्युक्तं तदपि क्षयाभिप्रायकम्। अथैव दृश्यमानेऽप्येकदा इति यद्गोभिलस्य सूत्रान्तरं तदर्थम्। "यदहस्त्वेव" इत्यादि द्वितीयसूत्रप्राप्ततिथेः सिनीवालीत्वेनैव चन्द्रदर्शनप्राप्तेरित्यत आह स एव।

"यच्चोक्तं दृश्यमानेऽपि तच्चतुर्द्दश्यपेक्षया।
अमावास्यां प्रतीक्षेत तदन्ते वापि निर्व्वपेत्"।

दृश्यमानेऽप्येकदेति यदुक्तं तच्चतुर्द्दश्या श्राद्धार्थं पूर्व्वसूत्रममावास्यापदोपादानाच्चन्द्रक्षये सत्यममावास्याविषयं। इदं पुनरित्यम्भूतचतुर्द्दशीविषयमिति श्राद्धविवेकः। तत् किममावास्यावच्चतुर्द्दशीत्यत्राह अमावास्यां प्रतीक्षेत उभयतिथिप्राप्तौ श्राद्धायामावास्या प्रतीक्षणीया। यत्र पूर्व्वदिने दिवा सार्द्धमुहूर्त्तमात्रे अमावास्या परदिने च सार्द्धदशममुहूर्त्तमात्रे तत्र चोभयदिने श्राद्धयोग्यामावास्या न प्राप्यते तत्र तदन्तचतुर्द्दश्यन्ते निर्व्वपेत् दद्यात् ॥ * ॥ अत्रैव विषये साग्निनिरग्न्योर्व्विशेषमाह कालमाधवीये शातातपः।

"अपराह्णद्वयाव्यापी यदि दर्शस्तिथिक्षये।
आहिताग्नेः सिनीवाली निरग्न्यादेः कुहूर्म्मता"।

आदिशब्दादनुपनीतशूद्रयोर्ग्रहणं ॥ * ॥ क्षयमाह कात्यायनः।

"अष्टमेऽंशे चतुर्द्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः।
अमावास्याष्टमांशे च ततः किल भवेदणुः"।

चतुर्द्दश्यष्टमे यामे चन्द्रमाः क्षीणः चतुर्थभागोनकलावशिष्टो भवति। "अत्रेन्दुराद्यप्रहरेऽवतिष्ठते" इत्यादिस्वरसात्। अमावास्याष्टमे यामे चाणुर्भवति पुनरुत्पद्यते किलेत्यागमवार्त्तायां तेनामावास्यायाः सप्तमे यामे तावत्क्षय इत्यवगम्यते। "ततश्चान्त्यकलावयवनाशोत्पत्तिरेव क्षयः सा च सूक्ष्मतायां विनाशेऽप्यस्तीति" श्राद्धविवेकः। उत्पत्तिराद्यक्षणसम्बन्धः। तेन विनाशस्यानन्तत्वेऽपि नातिव्याप्तिः ॥ * ॥ अत्र विशेषमाह स एव।

"आग्रहायण्यमावास्या तथा ज्यैष्ठस्य या भवेत्।
विशेषमाभ्यां ब्रुवते चन्द्रचारविदो जनाः"॥

आभ्यामिति ल्यब्लोपे पञ्चमी इमे प्राप्येत्यर्थः। चन्द्रचारविदो ज्योतिर्व्विदः। अत्र पौर्णमास्यान्तमास इति परिशिष्टप्रकाशः॥ अत्र बीजं ब्रह्मपुराणीयतिथिकृत्यं। तथा च श्राद्धमधिकृत्य ब्रह्मपुराणं।

"पयोमूलफलैः शाकैः कृष्णपक्षे च सर्व्वदा"।

अत्र कृष्णपक्षे चतुर्द्दशीव्यतिरिक्तायां यस्यां कस्याञ्चित् तिथौ श्राद्धविधानादमावास्यापि लभ्यत इति ॥ * ॥ को विशेष इत्यत्राह स एव।

> "अत्रेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते
> चतुर्थभागोनकलावशिष्टः।
> तदन्त एव क्षयमेति कृत्स्न-
> मेव ज्योतिश्चक्रविदो वदन्ति"॥

अत्र मासद्वये अमावास्यायां चतुर्थभागोनकलावशिष्टः चतुर्थभागोना या कला तयावशिष्टः कलाभागत्रयमात्रः सन्नाद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते। अर्थात् चतुर्द्दश्यष्टमयामे क्षयारम्भ इति। तदन्त एव अमावास्यान्तयाम एव क्षयं ह्रस्वमेति। अन्य-

चामावास्या सप्तमयाम इति विशेषः। तेन मार्गशीर्षज्यैष्ठयोरुभयदिने चन्द्रक्षयलाभे यद्यपि यदा चतुर्द्दशीयाममिति वचनात् पूर्व्वदिने एव श्राद्धं प्राप्नोति तथापि तद्वचनं चन्द्रक्षयानुरोधमूलमिति। तत्खण्डक्षयानुरोधात् क्षीणायामपि परत्रापराह्णलाभे श्राद्धं अन्यथैतद्विशेषाभिधानं व्यर्थं स्यात्॥ * ॥ अत्रापि विशेषान्तरमाह स एव। यस्मिन्नब्दे द्वादशैकश्च यव्यस्तस्मिन् तृतीयया परिदृश्यो नोपजायेत। यव्यो मास। तृतीयया मात्रया चतुर्थभागोनकलया परिदृश्यश्चन्द्रो न भवति किन्तु तदधिकन्यूनकलयेति। तेन मलमासयुताब्दे अन्यमासवदनयोरपि चतुर्द्दश्यन्तयामादि दर्शसप्तमयामपर्य्यन्तं क्षय इति। मलमासयुताब्दस्तु एकस्मान्मलमासादब्दद्वयानन्तराब्दतृतीयेऽब्दे मलमासस्यावश्यम्भावादिति ॥ * ॥ चन्द्रक्षयानुरुद्ध क्षीणापराह्णमुपसंहरति स एव।

"एवं चारं चन्द्रमसो विदित्वा
क्षीणे तस्मिन्नपराह्णे च दद्यात्"।

एवं चारं गतिविशेषं ॥ * ॥ सम्मितताया व्यवस्थामाह स एव।

"सम्मिश्रा या चतुर्द्दश्या अमावास्या भवेत् क्वचित्।
खर्व्विता ता विदुः केचिद्गताध्वमिति चापरे" ॥

क्षीणाया पूर्व्वमुक्तत्वात् वर्द्धमानायाश्च वक्ष्यमाणत्वात् अस्य वचनस्य सम्मितापरत्वं। खर्व्विता नीचा पितृलोकप्रापणानर्हा केचित् यजुर्व्वेदिनः। अपरे ऋग्वेदिनः तामेव उपेष्वमुपगच्छत श्राद्धायेति शेषः। उपेष्वमित्यत्र गताध्वामितिपाठे गत प्राप्त पितृलोकप्रापणाय अध्वा अनयेति गताध्वा प्रशस्तेत्यर्थः। "तस्माच्छन्दोगा उभयानुरोधादिच्छात उभयादरं कुर्व्वन्ति" इति कात्यायनस्वरसः ॥ * ॥ यत्तमाह लघुहारीत।

"त्रिमुहूर्त्तापि कर्त्तव्या पूर्व्वा दर्शा च बह्वृचैः।
कुहूरध्वर्य्युभिः कार्य्या यथेष्टं सामगीतिभिः" ॥

अत्र त्रिमुहूर्त्तेत्युपादानात् सम्मितायां पूर्व्वदिने त्रिमुहूर्त्तमात्रलाभेऽपि बह्वृचानां श्राद्धं। न तु मुख्यापराह्णलाभादपि परदिने। सामगानां तत्राप्यनियमः। एतादृग्विषय एव उभयत्रापराह्णालाभेऽपीयं व्यवस्थेति श्राद्धविवेकः॥ मुख्यापराह्णस्य एकदिनमात्रलाभेऽप्युभयदिनालाभात्॥ ॥ * ॥ वर्द्धमानाया व्यवस्थामाह कात्यायनः।

"वर्द्धमानाममावास्यां लक्षयेदपरेऽहनि।
यामांस्त्रीनधिकान् वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत्" ॥

यामांस्त्रीनिति पूर्व्वदिवसीययामत्रयन्यूनचतुर्द्दश्यपेक्षया। अथैवं वासरतृतीयांशानुरोधेन श्राद्धविधानात् कथममावास्याश्राद्धे पर्य्युदस्तरात्र्यादीतरकालपरिग्रहः। सत्य। तिथिद्वैधे क्षीणादिभेदेन खण्डविशेषपरिग्रहाय वासरतृतीयांशापेक्षा अन्यथोभयदिने वासरतृतीयांशप्राप्तौ श्राद्धलोपापत्तेः। प्रागुक्तनिरस्तादेः कुहूर्म्मतेत्यस्य निर्व्विषयतापत्तेश्च अतः पर्य्युदस्तेतरकालस्यापि परिग्रहः। यदा तु पूर्व्वापरखण्डयोरन्यतरस्यैव परिग्रहस्तदा यथायोग्यं तत्रैव सायाह्नमुहूर्त्तत्रयपर्य्युदस्तेतरकालकुतपादिमुहूर्त्तपञ्चकरौहिणादिमुहूर्त्तचतुष्टयवासरतृतीयांशीयापराह्णमुहूर्त्तद्वयकालाः। यथाक्रममापत्त्यामान्यप्रशस्तप्रशस्ततर-प्रशस्ततमत्वेन ज्ञेया। एवमखण्डइतियावदपि नातिसन्ध्यासमीपत इति पूर्व्वोक्तत्वात्।

"सायाह्ने त्रिमुहूर्त्तं स्यात् श्राद्धं तत्र न कारयेत्"।
इति मत्स्यपुराणात्।
"रात्रौ श्राद्धं न कुर्व्वीत राक्षसी कीर्त्तिता हि सा।
सन्ध्ययोरुभयोश्चैव सूर्य्ये चैवाचिरोदिते" ॥
इति मनुवचनाभ्यां।
"ऊर्द्ध्वं मुहूर्त्तात् कुतपात् यन्मुहूर्त्तचतुष्टयं।
मुहूर्त्तपञ्चकं वापि स्वधाभवनमिष्यते" ॥

इति मत्स्यपुराणान्मुहूर्त्तपञ्चकमित्यत्र कुतपादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी कुतपमारभ्येत्यर्थः। तत्रैव।

"अपराह्णे तु सम्प्राप्ते अभिजिद्रौहिणोदये।
यदत्र दीयते जन्तोस्तदक्षयमुदाहृतं" ॥

इत्युक्तं। "पूर्व्वाह्णो वै देवानां मध्यं दिनं मनुष्याणां अपराह्णः पितृणां"। इति श्रुतिः। वासरस्य तृतीयांश इति कात्यायनवचनं।

"सायाह्ने त्रिमुहूर्त्तं स्यात् श्राद्धं तत्र न कारयेत्"

इत्येषामेकवाक्यत्वात् वासरतृतीयांशीयापराह्णमुहूर्त्तद्वयस्य लाभः। इति तिथ्यादितत्त्वं॥

अमावासी, स्त्री, (अमा साहित्येन चन्द्रार्कयोर्व्वासो यत्र, गौरादित्वात् ङीष्।) अमावस्या। इति शब्दरत्नावली॥

अमावास्या, स्त्री, (अमा सह चन्द्रार्कौ वसतो यत्र तिथौ सा, अमा+वस+आधारे ण्यत्, स्त्रियां टाप्। णित्वात् वृद्धि।) अमावसीतिथिः। इत्यमरः॥

अमित्र, पु, (अम रोगे इत्रच्।) शत्रुः। इत्यमरः॥ (रिपुः। विपक्षः। शत्रुपक्षीयः। प्रतिकूलः।

"मातृरूपे ममामित्रे नृशंसे राज्यकामुके।
अमित्रो मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि लक्ष्मण" ॥
इति रामायणे।)

अमिष, क्ली, (अम् रोगे कर्म्मणि इषन्) लौकिकसुखं। इत्युणादिकोषः॥ छलाभावः॥ (न मिषश्छलं नञ्समासः, छलनाभावः। नास्ति मिषश्छलं यस्य तत्, छलशून्यः।)

अमी, [न्] त्रि, (अम् रोगे+भावे घञ्, मान्तत्वात् वृद्ध्यभावः, अमो रोगो विद्यतेऽस्य, इन्।) रोगी। यथा। अम्यर्थं। इति वोपदेवः॥

अमीव, क्ली, (अम+वन्, ईडागमः।) पापं। दुःखं। यथा,—

"तं त्वाहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहं।
आपृच्छे शापनिर्म्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन्" ॥
इति श्रीभागवतं॥
("न हि त्वमीदृशं हत्वा तस्यामीवं दशानन।
जीवितुं शक्यसि चिरं विषं पीत्वेव दुर्म्मतिः" ॥
इति रामायणे।)

अमुकं, त्रि, बुद्धिस्थत्वोपलक्षितवस्तुधर्म्मावच्छिन्नं। तत्तद्व्यक्तिविशेषधर्म्मपुरस्कारेण तत्तद्वस्तुवाचक। फलना इति भाषा। अदसूशब्दस्य अकि कृते सोरोत्वाभावे अकोऽकारस्य उत्वे अमुक इति भवति अमुक इत्यागमिकं। इति क्रमदीश्वरः॥ यथा,—

"अमुकामुकगोत्रैतत् तुभ्यमन्नं स्वधा नमः"।

इति श्राद्धतत्त्वं॥ (अभिवादये इति शब्दोच्चारणानन्तरं अमुकनामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्त्तयेत्। इति कुल्लूकभट्टः।

"सनिवेशं प्रमाणञ्च स्वहस्तेन लिखेत् स्वयम्।
मत मेऽमुकपुत्रस्य अमुकस्य महीपते"॥
इति नारदः।)

अमुक्त, क्ली, (मुच्+क्त, न मुक्तं विरोधे नञ्समासः।) छुरिकाविशेषः। इति हलायुधः॥ छातकुरी इति भाषा। मुक्तिरहिते अयुक्ते च त्रि॥ (अप्राप्तमोचनः। अस्वतन्त्रः।

"अमुक्ता भवता नाथ मुहूर्त्तमपि सा पुरा"।
इति साहित्यदर्पणे।
"अमुक्तो मानसैर्दुःखैरिच्छाद्वेषसमुद्भवैः"।
इति महाभारते। खड्गादिकं। यदुक्तम्,—
"खड्गादिकममुक्तञ्च नियुद्धं विगतायुधम्"।
इति।)

अमुत्र, व्य, (अमुष्मिन् अदस्+त्रल् उत्त्वमत्वे।) जन्मान्तरं। परलोकः। इत्यमरः॥ (अमुष्मिन् इत्यर्थस्य वाचकः।

"अनेनैवार्भकाः सर्व्वे नगरेऽमुत्र भक्षिताः"।
इति कथासरित्सागरे। भवान्तरे। जन्मान्तरे।
"तथैव यः क्षमाकाले क्षत्रियो नोपशाम्यति।
अप्रियः सर्व्वभूतानां सोऽमुत्रेह च नश्यति"।
"इच्छन्हि सततं श्रेय इह चामुत्र चोत्तमं" ॥
इति महाभारते।)

अमुष्यपुत्र, पु, स्त्री, (अमुष्य पुत्र निपातनात् अलुक् समासः।) प्रख्यातवंशोद्भवः। कुलीनः। इति जटाधरः॥

("स्यादामुष्यायणस्त्वार्य्योऽमुष्यपुत्रो महाकुलः"।
इति जटाधरः।)

अमूर्त्त, त्रि, (मूर्च्छ+क्तः, नञ्समासः।) मूर्त्तभिन्न। मूर्त्तिरहित। यथा। सुखानां अमूर्त्तत्वादिति वोपदेवः॥ न्यायमते। आकाशः। कालः। दिक्। आत्मा। एषां सामान्यगुणाः संख्या १ परिमितिः २ पृथक्त्वं ३ संयोगः ४ विभागः ५। आकाशस्य विशेषगुणः शब्दः। कालदिशोर्विशेषगुणो नास्ति आत्मनो विशेषगुणाः। बुद्धि १ सुख २ दुःख ३ इच्छा ४ द्वेष ५ यत्न ६ भावनाख्यसंस्कारः ७ धर्म्मः ८ अधर्म्मः ९। इति भाषापरिच्छेदः॥ (रूपहीनः। आकृतिरहितः। वायुः। अन्तरीक्षञ्च। यदुक्तं,—

"सन्निवेश्यो नेत्रदृश्यो यस्य तन्मूर्त्तमुच्यते।
क्षित्यम्ब्वग्नित्रयं मूर्त्तममूर्त्तं त्वितरद्द्वयं" ॥ इति।
"क्षितिर्जलं तथा तेजः पवनो मन एव च।
परापरत्वमूर्त्तत्वक्रियायोगाश्रया अमी" ॥
इति भाषापरिच्छेदः।)

अमूदृश, त्रि, (पाणिनिमते तु, अमुमिव पश्यति, अदस्+दृश्+कञ्, दशाने आत्वे कृते अतः

ऊतमस्ते ।) एवंप्रकार । एतद्रूप । इति मुग्ध-बोधं ॥ यथा,—"अमूदृशी तव कविवन्दि-वर्णिते"। इति नैषध ॥

अमूलकं, त्रि, मूलरहित । प्रमाणशून्य । नास्ति मूल यस्येति बहुव्रीह्यर्थे कप्रत्यय ॥

अमूला, स्त्री, (नास्ति मूल शिफा यस्याः सा, स्त्रियां टाप् ।) अग्निशिखावृक्ष । इति शब्दचन्द्रिका ॥ मूलरहिते त्रि । इति मुग्धबोध ॥

अमृणाल, क्ली, (मृणालतुल्य सादृश्ये नञ्समास, तस्य मृणालसदृशकोमलत्वात् तथात्व ।) वीरण-मूल । इत्यमर ॥

अमृत, क्ली, (मृ+भावे क्त, नास्ति मृतं मरण यस्मात् तत्, तत्पायिना मरणाभावात् तस्य तथात्व ।) समुद्रोद्भवदेवभक्ष्यामरत्वजनकद्रव्यवि-शेष । यदा पृथुराजभयेन पृथ्वी गौर्भूता तदा देवा इन्द्र वत्स कृत्वा हिरण्मयपात्रे अमृतरूप-मपयोऽदूदुहन् तत्तु दुर्व्वासस शापात् समुद्रमध्य गत पश्चात् समुद्रमथने अमृतपूर्णकलस गृहीत्वा धन्वन्तरिरुत्थित । इति भारतभागवते ॥ तत्-पर्य्याय ॥ पीयूष २ सुधा ३ । इत्यमर ॥ पेयूष ४ । इति तट्टीकासारसुन्दरी ॥ * ॥ निर्जर ५ । समुद्रनवनीतक ६ । इति शब्दरत्ना-वली ॥ जलं । घृत ॥ यज्ञशेषद्रव्य ॥ अयाचित-वस्तु ॥ मुक्ति । इति मेदिनी ॥ दुग्ध । औषध । विषसामान्यं । वत्सनाभ । पारद । इति राज-निर्घण्ट ॥ अन्न । धन । स्वर्ण । भक्षणीयद्रव्य । हृद्य । स्वादुद्रव्य । इति हेमचन्द्र ॥

अमृत, पुं, (मृ+कर्त्तरि क्त, नञ्समास ।) धन्व-न्तरि । देवता । इति मेदिनी । वाराहीकन्द । वनमुद्ग । इति राजनिर्घण्ट ॥ सुन्दर । अति-हृद्य । इति भरतधृतव्याडि ॥ (आत्मा, यथा महाभारते,—

"इन्द्रियेभ्य परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च पर मन ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् पर ॥
महत परमव्यक्तमव्यक्तादमृत पर ।
अमृतान्न पर किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गति" ॥

सूर्य्य ॥ सुरपतिरिन्द्र ॥ विष्णो सहस्रनाममध्ये परिगणितो नामभेद ॥) मरणरहिते त्रि । यथा । "अमृते जारज कुण्ड" । इत्यमर ॥

अमृतजटा, स्त्री, (अमृतवत् सुस्वादुर्जटा यस्या सा ।) जटामासी । इति राजनिर्घण्ट ॥

अमृततरङ्गिणी, स्त्री, (अमृतस्य पीयूषस्य तरङ्गिणी नदीव ।) ज्योत्स्ना । इति राजनिर्घण्टः ॥

अमृतदीधितिः, पुं, (अमृतवत् सन्तोषकारिण्य दीधितयो यस्य स ।) चन्द्र । इति शब्दरत्नावली ॥ ("अमृतदीधितिरेष विदर्भजे भजति तापम-मुष्य" । इति नैषधे ।)

अमृतफल, क्ली, पुं, (अमृतमिव स्वादु फल ।) पारा-वतवृक्ष । पटोल । इति राजनिर्घण्ट ॥ नास-पाती । इति पारस्य भाषा । यथा । अथामृतफल यदुक्तसातकाविलप्रभृतिदेशेषु नासपाती इति प्रसिद्ध ।

"अमृतफलं लघु वृष्य सुस्वादु त्रीन् हरेद्दोषान् ।
देशेषु मुद्गलानां बहुल तल्लभ्यते लोकैः" ॥
इति भावप्रकाश ॥

अमृतफला, स्त्री, (अमृतवत् स्वादु फल यस्या सा, स्त्रियां टाप् ।) द्राक्षा । आमलकी । इति राज-निर्घण्टः ॥ (लघुखर्ज्जूरीवृक्ष । फलविशेष । नासपाती । इति पारस्यभाषा ।

अमृतवल्ली, स्त्री, (अमृतवत् वल्ली, तस्या रोग-नाशकत्वात् तथात्व ।) गुडूची । इति रत्नमाला ॥

अमृतरसा, स्त्री, (अमृतवत् स्वादु रसो यस्या सा, स्त्रियां टाप् ।) कपिलद्राक्षा । इति राज-निर्घण्ट ॥ (पक्वान्नविशेष ॥ सा च

"तृतीयभागखण्डेन मिश्रितं षष्टिपिष्टक ।
शुभ्रमीषद्दधियुत मर्द्दयेद्दृढपाणिना ॥
एव समुद्धृत कृत्वा स्थापयेद्रजनीमित ।
ततोऽन्यस्मिन्नहनि तु चिन्वितं निक्षिपेत्तिले ॥
विधायापूपकं तेन तन्विकाया घृते पचेत् ।
ततोऽमृतरसा जाता वातहृद्बलवर्द्धिनी" ॥
इति भावप्रकाशे ।)

अमृतसम्भवा, स्त्री, (सम्+भू+भावे अप्, अमृ-तस्य मरणाभावस्य रोगाभावस्य इति यावत् सम्भव उत्पत्तिर्यस्या सा, स्त्रियां टाप् ।) गुडूची । इति राजनिर्घण्टः ॥

अमृतसारज, पु, (अमृतस्य सार तस्मात् जायते, अमृतसार+जन्+ड, उपपदसमास ।) गुड । तद्राजोद्भवखण्ड । इति राजनिर्घण्ट ॥

अमृतसू, पु, (अमृत तुषार सूते, अमृत+सू+क्विप्, उपपदसमास ।) (अमृतान् देवान् सूते, अमृत+सू+क्विप्, उपपदसमास ।) चन्द्र । इति हेमचन्द्र ॥ देवमातरि स्त्री । अमृतानां देवानां सू प्रसूति ॥

अमृतसोदर, पु, (अमृतस्य सोदर सोदर्य्य तस्य एकस्थानादुत्पन्नत्वात् तथात्व ।) घोटक । इति राजनिर्घण्ट ॥ (उच्चैःश्रवा अश्व ।
"सुरादेवी समुत्पन्ना तुरग पाण्डरस्तथा" ।
इति भारते ।)

अमृतस्रवा, स्त्री, (स्रवति इति स्रु+अच् । स्त्रियां टाप् । अमृतस्य स्रवा षष्ठीतत्पुरुष ।) रुदन्ती-वृक्ष । लताविशेष । तत्पर्य्याय । वृक्षारुहा २ उपवल्लिका ३ घनवल्ली ४ सितलता ५ । अस्या गुणा । पथ्यत्व । ईषत्तिक्तत्व । रसायनत्व । व्रणनाशित्व । विषकुष्ठामकामलाश्वयथुजयकारि त्वञ्च । इति राजनिर्घण्ट ॥
("उक्तामृतस्रवा पथ्या ईषत्तिक्ता रसायनी ।
व्रणघ्नी विषकुष्ठाम कामलां श्वयथु जयेत्" ॥
इति राजनिर्घण्ट ।)

अमृता, स्त्री, (नास्ति मृत मरण यस्याः सा ।) गुडूची । मदिरा । इन्द्रवारुणी । ज्योतिष्मती । गोरक्षदुग्धा । अतिविषा । रक्तत्रिवृत् । दूर्व्वा । आमलकी । हरीतकी । इति राजनिर्घण्ट ॥ तुलसी । इति शब्दमाला ॥ पिप्पली । इति मेदिनी ॥ चम्पादेशजस्थूलमांसा हरीतकी । सा विरेचने प्रशस्ता । इति राजवल्लभ ॥ (सूर्य्य-दीधितिविशेषा ।
("सौरीभिरिव नाडीभिरमृताख्याभिरम्मय" । इति रघुवंशे ।)

अमृतान्ध, [स्] पु, (अमृतमन्ध अन्नमिव तृप्ति-कर यस्य स ।) देवता । इत्यमर ॥ (अमृत सुधा अन्धो भक्ष्य यस्य स ।)

अमृताफल, पु, (अमृतमिव फलं यस्य, पृषोदरादि-त्वात् दीर्घ ।) पटोल । इति द्रव्याभिधान ॥

अमृताशन, पु, (अमृत अश्नाति भुङ्क्ते, अश+बाहुल्यात् कर्त्तरि ल्युट् । अमृतस्य अशनः षष्ठीतत्पुरुष ।) देवता । इति हलायुध ॥

अमृताष्टक, क्ली, (अमृताप्रभृति अष्टक यस्य तत् ।) हरितक्याद्यष्टद्रव्य । यथा,—
"अमृता कटुकारिष्टपटोलघनचन्दन ।
नागरेन्द्रयवश्चैतदमृताष्टकमीरित ॥
क्वथित सकणाचूर्णं पित्तश्लेष्मज्वरापह ।
हृल्लासारोचकच्छर्द्दितृष्णादाहनिवारण" ॥
इति भावप्रकाश ॥

अमृतासङ्ग, क्ली, (अमृतस्येव आसङ्गो यस्य तत् ।) तुत्थविशेष । तत्पर्य्याय । कर्परिकातुत्थ २ अञ्जन ३ । इति हेमचन्द्र ॥

अमृताहरण, पु, (अमृतमाहरति, मातृदास्याप-नयनार्थं स्वर्गात् भूलोक नयति, आ+हृ+कर्त्तरि ल्युट्, तत षष्ठीतत्पुरुष ।) गरुड । इति हारावली ॥ ("पुरा किल गरुडो मातु विनताया सपत्नीदास्यनिवारणार्थं सर्व्वदेवान् विनिर्जित्य सोमरक्षकच्छेदनयन्त्रादिकमतिक्रम्य स्वर्गादमृत नागकुलाय दातुमाहृतवान्" । इति पौराणिकी कथा । महाभारतस्यादिपर्व्वणि ।

"श्रुत्वा तमब्रुवन् सर्पा आहरामृतमोजसा ।
ततो दास्याद्विप्रमोक्षो भविता तव खेचर ! ॥
इत्युक्तो गरुड सर्पैस्ततो मातरमब्रवीत् ॥
गच्छाम्यमृतमाहर्त्तुं भक्ष्यमिच्छामि वेदितु ॥

स चक्र क्षुरपर्य्यन्तमपश्यदमृतान्तिके ।
परिभ्रमन्तमनिश तीक्ष्णधारमयस्मय ॥
ज्वलनार्कप्रभ घोर छेदन सोमहारिणाम् ।

अच्छिनत्तरसा मध्ये सोममभ्यद्रवत्तत ॥
समुत्पाट्यामृत तत्र वैनतेयस्ततो बली ।
उत्पपात जवेनैव यन्त्रमुन्मथ्य वीर्य्यवान् ॥

एव तदमृत तेन हृतमाहृतमेव च ।
द्विजिह्वाश्च कृता सर्पा गरुडेन महात्मना" ॥)

अमृताह्व, क्ली, (अमृतमाह्वयते स्पर्द्धते, आ+ह्वे+क, तस्य तुल्यस्वादत्वात् तथात्व ।) लघुबिल्वफलाकृतिखोरासानदेशजनासपातीना मफल । तत्पर्य्याय । रुचिफल २ । अस्य गुणा । गुरुत्व । वातनाशित्व । स्वादुत्व । अस्रत्व । रुचिशुक्रकारित्वञ्च ॥ तल्लघुफलगुणा । वृष्यत्व । सुस्वादुत्व । त्रिदोषनाशित्वञ्च । तत् मुद्गलदेशे

बहुलं लभते। इति भावप्रकाशः ॥

अमृतोत्पन्नं, क्ली, (अमृतं विषमिव उत्पन्नं नीलवर्णत्वात् ।) खर्परीतुत्थ। इति राजनिर्घण्टः ॥

अमृतोत्पन्ना, स्त्री, (अमृतं मधु उत्पन्नं यस्याः सा, "जातिकालसुखादिभ्यो निष्ठाया परवचनमिति निष्ठाया परनिपातः" ।) मक्षिका। इति राजनिर्घण्टः ॥

अमृतोद्भव, क्ली, (अमृत विषमिव उद्भवति कृष्णवर्णत्वात्, उद्+भू+अप् ।) तुत्थं। खर्परीतुत्थ। इति राजनिर्घण्टः ॥

अमेधा, [स्] पु, (नास्ति मेधा यस्य सः, समासान्त असिच् ।) मूढः। मूर्खः। इति हेमचन्द्रः ॥
("नमः समस्मात् पूर्व्वस्मा अन्तरस्मा अमेधसाम्।
सुमेधसामन्तरस्मै सता स्वस्मै स्वयम्भुवे"।
इति वोपदेव ।)

अमेध्य, क्ली, (न मेध्य पवित्र विरोधे नञ्समास ।) पुरीषं। इति शब्दरत्नावली ॥ अपवित्रे त्रि ॥ (अपवित्रं। मलमूत्रादिक वस्तु।
"नाग्निं मुखेनोपधमेत् नग्ना नेक्षेत च स्त्रियं।
नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत्" ॥
इति मनु ।)

अमोघ, त्रि, (न मोघो निष्फल, नञ्समास ।) सफल। अव्यर्थः। इति मेदिनी ॥ नदविशेषे पु। इति शब्दरत्नावली ॥ (इष्टफलप्रद। अवन्ध्य। अविफल।
"यदमोघमपामन्तरुप्त वीजमज त्वया"।
इति कुमारसम्भवे।
"अमोघा प्रतिगृह्णन्तावर्घ्यानुपदमाशिष"।
इति रघुवंशे।

अमोघा, स्त्री, (न मोघा निष्फला, नञ्समास ।) पाटलिवृक्षः। विडङ्ग। इत्यमर ॥ हरीतकी। इति मेदिनी ॥

अम्ब गतौ। (इति कविकल्पद्रुम ।) ओष्ठ्यवर्गशेषोपध। अम्बति। इति दुर्गादास ॥

अम्बक, क्ली, (अम्बति नक्षत्रपर्य्यन्त गच्छति, अम्ब+ण्वुल्। वा अम्ब्यते भूगर्भे प्राप्यते, अम्ब+कर्म्मणि घञ् स्वार्थे कन् ।) नेत्र। इति हेमचन्द्र ॥
"आसीनमासन्नशरीरपात-
स्त्रियम्बकं संयमिनं ददर्श"।
इति कुमारसम्भवे ।) ताम्र। इति राजनिर्घण्टः ॥

अम्बर, क्ली, (अबि शब्दे+भावे घञ्, अम्ब शब्दस्य राति आदत्ते अम्ब+रा+क ।) वस्त्रं। ("एवमुक्ता सुमित्रां सा विवर्णा मलिनाम्बरा"। इति रामायणे ।) आकाश। ("दावाग्नि कथमम्बरे" इति साहित्यदर्पणे।) कार्पासः। स्वनामख्यातसुगन्धिद्रव्यं। इति विश्वः ॥ अभ्रधातुः। इति राजनिर्घण्टः ॥

अम्बरिष, क्ली, (अम्ब्यते पच्यतेऽत्र, अबि+अरिष वा दीर्घः निपातनात् ।) भर्ज्जनपात्रं। भाजना खोला। इति भाषा। इत्यमरटीकायां रमानाथः ॥

अम्बरीषं, क्ली, (अबि+गतौ+कर्म्मणि घञ्, अम्बा लभ्या ईर्ष्या यस्मात् तत्, सिद्धवत् पृषोदरादित्वात् रवर्णविपर्य्ययेण साधु ।) भ्राष्ट्रः। भर्ज्जनपात्र। इत्यमरः ॥ युद्धं। इति मेदिनी ॥

अम्बरीष, पुं, (अम्ब्यते पच्यते अत्र, निपातनात् साधुः ।) विष्णुः। शिवः। इति त्रिकाण्डशेषः ॥ किशोर। भास्कर। नृपभेद। स तु सूर्य्यवंशीयनाभागराजपुत्त्र।
("भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुतः।
नाभागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्त्र परमधार्म्मिक ॥
अम्बरीषस्तु नाभागि सिन्धुद्वीपपिताऽभवत्" ॥
इति हरिवंशे ।) नरकभेद ॥ आम्रातकवृक्ष। अनुताप। इति मेदिनी ॥

अम्बष्ठ, पु, (अम्बाया मातरि तिष्ठति, अम्बा+स्था+क, आम्बाम्बेति षत्व, ङ्यापो सञ्ज्ञाच्छन्दसोर्बहुलमिति ह्रस्व, असवर्णजातत्वात् तस्य तथात्व।) देशविशेष। विप्राद्वैश्यायामुत्पन्न। इति मेदिनी ॥ अयं चिकित्सावृत्ति वैद्य इति ख्यात। इत्यमरटीकाया भरत ॥ हस्तिपक। यथा,—
"अम्बष्ठाम्बष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्राम मा चिर"।
इति श्रीभागवत ॥ कायस्थजातिविशेष। इति पश्चिमदेशे प्रसिद्ध ॥

अम्बष्ठकी, स्त्री, (अम्बष्ठं कायति स्वग्रहणार्थमाह्वयति, अम्बष्ठ+कै+क, गौरादित्वात् ङीष्।) लताविशेष। आकनादि निमुखी इति च भाषा। तत्पर्य्याय। पाठा २ अम्बष्ठा ३ कुचेली ४ पापचेलिका ५ एकाष्ठीला ६ वरा ७ तिक्ता ८ प्राचीना ९ एकोशिका १० वृका ११। इति रत्नमाला ॥ विद्धकर्णी १२ स्थापनी १३ श्रेयसी १४ रसा १५ पापचेली १६ वनतिक्तिका १७। इत्यमरः ॥ अविद्धकर्णी १८ अविद्धकर्णा १९। इति तट्टीका ॥ अम्बष्ठिका २० यूथिका २१ विद्धकर्णिका २२ दीपनी २३ तिक्तपुष्पा २४ वृहत्तिक्ता २५ शिशिरा २६ वृकी २७ मालती २८ देवी २९ वृत्तपर्णी ३०। इति राजनिर्घण्टः ॥ अस्या गुणाः। अतीसारशमनत्व। लघुत्व। त्रिदोषनाशित्वञ्च। इति राजवल्लभः ॥ तिक्तत्व। गुरुत्व। उष्णत्व। वातपित्तज्वरपित्तदाहशूलनाशित्व। भग्नसन्धानकारित्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः ॥

अम्बष्ठा, स्त्री, (अम्बाया मातरि स्वोत्पत्तिस्थाने इति यावत्, तिष्ठति, अम्बा+स्था+कः, अम्बेत्यादिना षत्वम् पूर्व्ववत् ह्रस्व, स्त्रिया टाप्।) क्षुपविशेष। अम्बाडा इति ख्याता। अस्याः पर्य्याय। मालिका २ माला ३ शठाम्बा ४ अम्बालिका ५ अम्बिका ६ अम्बा ७ माचिका ८ दृढवल्का ९ मयूरिका १० गन्धपत्री ११ चित्रपुष्पी १२ श्रेयसी १३ मुखवाचिका १४ छिन्नपत्री १५ भूरिमल्ली १६। अस्या गुणाः। कषायत्वं। अम्लत्वं। कफकण्ठरोगवातरोगबलाशनाशित्वं। रुच्यप्रकाशिकारित्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः ॥*॥ पाठा। चाङ्गेरी। यूथिका। इत्यमरमेदिनीकरौ ॥

अम्बष्ठिका, स्त्री, (अम्बष्ठा+संज्ञायां कन्, स्त्रियां टाप्।) अम्बष्ठा। आकनादि इति भाषा। इति राजनिर्घण्टः ॥ ब्राह्मणी। वामनहाटी इति प्रसिद्धा। इति रत्नमाला ॥

अम्बा, स्त्री, (अम्ब्यते स्नेहेनोपगम्यते, अबि गतौ+घञ्, स्त्रिया टाप्।) जननी। इति शब्दरत्नावली ॥
"अम्ब। यत्त्वमिदं प्रात्थ प्रशमाय वचो मम"।
"नान्यदत्तमभीप्सामि स्थानमम्ब स्वकर्म्मणा"।
इति विष्णुपुराणे ।)
नाट्योक्तौ सैव। इत्यमर ॥ पाण्डुराजमातुः स्वसा। इतिमहाभारतं ॥ अम्बष्ठा। इति राजनिर्घण्टः। दुर्गा। इति केचित् ॥

अम्बालिका, स्त्री, (अम्बेति शब्दं लाति गृह्णाति, अम्बा+ला+क, उपपदसमास, ह्रस्वे अतइत्वं स्वार्थे कन्, स्त्रियां टाप्।) माता। इति शब्दरत्नावली ॥ अम्बष्ठा। इति राजनिर्घण्टः ॥ पाण्डुराजमाता। इति भारतं ॥ (काशीराजस्य कनिष्ठा दुहिता सा च विचित्रवीर्य्यपत्नी।
"अम्बालिका च राजेन्द्र। राजकन्या यवीयसी।
अम्बिकाम्बालिके भार्य्ये प्रादाद्भ्रात्रे यवीयसे ॥
"भीष्मो विचित्रवीर्य्याय विधिदृष्टेन कर्म्मणा"।
इति महाभारते ।)

अम्बिका, स्त्री, (अम्बा+स्वार्थे कन्, स्त्रियां टाप्।) दुर्गा।
"ईप्सितार्थक्रियोदार तेऽभिनन्द्य गिरेर्वच।
आशीर्भिरेधयामासु पुर पाकाभिरम्बिकाम्" ॥
इति कुमारसम्भवे। माता। इति मेदिनी ॥ जैनदेवीविशेष। इति हेमचन्द्र ॥ कटुकीवृक्ष। इति शब्दचन्द्रिका ॥ अम्बष्ठा। इति राजनिर्घण्टः ॥ काशीराजस्य मध्यमादुहिता। विचित्रवीर्य्यस्य पत्नी। धृतराष्ट्रस्य माता।
"अम्बा ज्येष्ठाऽभवत्तासामम्बिकात्वथ मध्यमा।
अम्बिकाम्बालिके भार्य्ये प्रादाद्भ्रात्रे यवीयसे ॥
भीष्मो विचित्रवीर्य्याय विधिदृष्टेन कर्म्मणा"।
इति महाभारते ।)

अम्बिकेय, पु, (पाणिनिमते तु अम्बिकाया अपत्यं पुमान्, अम्बिका+ठक् तस्य इय, वृद्ध्यभाव ।) गणेश। कार्त्तिकेयः। धृतराष्ट्रराज ॥ अम्बिकाया अपत्यमित्यर्थे ण्येय ॥

अम्बिकेयक, पु, (अम्बिकेय+स्वार्थे कन् ।) गणेशः। इति जटाधर ॥

अम्बु, क्ली, (अबिशब्दे उण् ।) बालानामौषधिः। इत्यमरः ॥ बाला इति भाषा। जल ("सुरवा स्वर्णकमलपटली भवता निपीतान्यम्बूनि यत्र नलिनानि निषेवितानि"। इति भामिनीविलासे। "अम्बुजमम्बुनि जात क्वचिदपि न जायतेऽम्बुजादम्बु"। इत्युद्भटः। "गाङ्गमम्बु सितमम्बु यामुनं"। इति काव्यप्रकाशे।)

अम्बुकण्टकः, पुं, (अम्बुनि जले कण्टकइव, सादृश्यार्थे कन्।) कुम्भीर। इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अम्बुकिरात, पु, (अम्बुनि जले किरातः व्याध इव ।) कुम्भीर। इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अम्बुकीश पुं, (अम्बुनि कीशः वानर इव।) शिशु-

मारजन्तुः। इति हेमचन्द्रः॥ शुशुक इति भाषा।
अम्बुकूर्म्मः, पुं, (अम्बुनः कूर्म्म इव)। शिशुमारः। इति हेमचन्द्रः॥
अम्बुकेशरः, पुं, (अम्बुजातः केशरोऽस्य।) छोलङ्गवृक्षः। इति रत्नमाला॥
अम्बुचामर, क्ली, (अम्बुनः चामरमिव।) शैवाल। इति जटाधरः॥ शेयाला इति भाषा।
अम्बुज, क्ली, (अम्बुनि जायते, अम्बु+जन्+ड।) पद्म। इति मेदिनी॥ "इन्दीवरेण नयन मुखमम्बुजेन"। इति शृङ्गारतिलके। "अम्बुजमम्बुनि जात क्वचिदपि न जायतेऽम्बुजादम्बु"। इत्युद्भटः।) वज्रं। इति त्रिकाण्डशेषः॥
अम्बुजः, पु, (अम्बुसमीपे जात।) हिज्जलवृक्ष। इत्यमर॥ (निचुलवृक्ष॥
"अम्बुज कमले क्लीव हिज्जले तु पुमानय"।
इति शब्दरत्नावली।
"अम्बुजो निचुले पुंसि कमले तु नपुंसक"।
इति मेदिनी।)
अम्बुजन्म, [न्] क्ली, (अम्बुनो जन्मास्य।) पद्म। इति राजनिर्घण्ट॥ (सारसविहङ्ग॥ शङ्ख। त्रि, जलजात। सलिलोद्भव।)
अम्बुताल, पु, (अम्बुनि जले तालयति प्रतिष्ठा गच्छति अम्बु+तल+अच्।) शैवाल। इति त्रिकाण्डशेष॥
अम्बुद, पु, (अम्बु जल ददाति, दा दाने+क।) मेघ। इति रत्नमाला॥ ("सदा मनोज्ञस्वनदम्बुदनादसोत्सुकम्"। इति ऋतुसंहारे। "शशाक निर्व्वापयितु न वासव स्वतश्च्युत वह्निमिवाद्भिरम्बुद"। इति रघुवंशे।) मुस्तक। यथा। "कणीसविश्वानलद सहाम्बुद"। इति वैद्यक॥
अम्बुधि, पु, (अम्बूनि धीयन्तेऽत्र, अम्बु+धा+कर्म्मण्यधिकरणे कि।) समुद्र। इति शब्दरत्नावली॥ ("रे चापल्ययुजो मृगा श्रितनगा कल्लोलमालाकुलामेतामम्बुधिगामिनीं व्यवसिता सङ्गाहितु वा कथम्"। इति भामिनीविलासे। "सुरासुराश्च गन्धर्व्वा क्षोभयामासुरम्बुधिम्"। इति रामायणे।)
अम्बुधिस्रवा, स्त्री, (अम्बुधि+स्रु+अप्, स्त्रियां टाप्।) मृहकन्या। घृतकुमारी इति ख्याता। इति राजनिर्घण्ट॥
अम्बुप, पु, (अम्बूनि जलानि पाति पिबति वा, अम्बु+पा+क।) चक्रमर्द्दकवृक्ष। इति शब्दचन्द्रिका॥ (जलेश्वर। वरुणः।) शतभिषाख्य नक्षत्र। त्रि, जलपानकारी।)
अम्बुपत्रा, स्त्री, (अम्बूनि पत्रे यस्याः सा।) उच्चटावृक्ष। इति रत्नमाला॥
अम्बुप्रसाद, पुं, (अम्बूनि प्रसादयति स्वच्छता नयति अम्बु+प्र+सद+णिच्+अच्, उपपदसमास।) कतकवृक्ष। इति राजनिर्घण्ट॥ निर्म्मली इति ख्यात।
अम्बुप्रसादन, क्ली, (अम्बूनि प्रसादयति, प्र+सद णिच्+ल्युट्।) कतकवृक्षः। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अम्बुभृत्, पुं, (अम्बु बिभर्त्ति, अम्बु+भृ+क्विप्।) मेघः। मुस्तक। इत्यमरः॥ समुद्रः। इति केचित्॥
अम्बुमात्रजः, पुं, (अम्बुमात्रे अल्पजले जायते, जन+डः) शम्बूक। शामुक इति हेमचन्द्रः॥ इति भाषा।
अम्बुर, पुं, (अम्बु+उरन्।) द्वाराध काष्ठ। इति हेमचन्द्रः॥ गोवराट् इति भाषा।
अम्बुरुहा, स्त्री, (अम्बुनि रोहति, अम्बु+रुह+क, ततष्टाप्।) स्थलपद्मिनी। इति राजनिर्घण्ट॥
अम्बुवाची, स्त्री, (अम्बु तदर्थयां वाचयति सूचयति, वच्+णिच्+अण्, उपपदसमास, ङीप्।) ऋतुमती पृथ्वी। यथा,—
"यदारे यत्काले मिथुनसंक्रमण भूत तदाराभ्यन्तरे तावत्कालावधि विंशत्यादिदण्डाधिकदिनत्रयमम्बुवाची। तत्राध्ययन वीजवपन न कार्य्यं। सर्पभयोपशमनाय दुग्ध पेय"। इति कृत्यतत्त्व॥ * ॥
अपिच। ज्योतिषे।
"रजोयुक् चाम्बुवाची च रौद्राद्यपादगे रवौ।
तस्यां पाठो वीजवापो नाग्निभीर्दुग्धपानत॥
मृगशिरसि निवृत्ते रौद्रपादेऽम्बुवाची
ऋतुमति खलु पृथ्वी वर्ज्जयेत् बीजधानि।
यदि वपति कृषाणः क्षेत्रमासाद्य वीज
न भवति फलभागी शस्यचाण्डालपाक"॥
रजोयुक् च्या ऋतुमती पृथ्वी। मत्स्यसूक्ते।
"धरण्यामृतुमत्याञ्च भूमिकम्पे तथैव च।
अन्तरागमने चैव विद्या नैव पठेद्बुध"॥
ज्योतिषे।
"यस्मिन् वारे गण्डांशुर्यत्काले मिथुन व्रजेत्।
अम्बुवाची भवेन्नित्य पुनस्तत्कालवारयो"॥
इदन्तु प्रायिक। इति तिथ्यादितत्त्व॥ * ॥ अन्यच्च।
"यदार्द्रर्क्ष समादाय मानोम्मिंर्गमथगामिता।
पुनस्तत्क्षणमादाय यजन त्रिदिन त्यजेत्॥
काम्यनैमित्तिकञ्चैव यात्रा मन्त्रक्रियान्तथा।
ऋतुमत्या न कुर्व्वीत पूर्व्वसङ्कल्पितादृते॥
न कुर्य्यात् खनन भूमे सूच्यग्रेणापि शङ्करि।
वीजाना वपनञ्चैव चतुर्व्विंशतियामक॥
प्रमादात्स्वपन कृत्वा गावस्तत्र प्रचारयेत्।
कृच्छ्र कुर्य्यात् तत्र्यणाञ्च खननात्तिलकाञ्चन"॥
इति मत्स्यसूक्ते महातन्त्रे ५८ पटल॥ * ॥ अपरञ्च।
"रवौ रुद्राद्यपादस्थे भूमे संजायते रज।
तस्माद्दिनत्रय यावत् वीजवाप परित्यजेत्॥
चत्वारिंशत्त्रिंशकषड्भागयुतो रविर्यदा भवति।
तत्राम्बुवाची ज्ञेया शिवर्त्तपादस्थितो यावत्॥
दिग्भागशून्यलिप्तो गणितेन भवति रविर्यदा साभ्र।
स भवति निर्गुणकालो द्वितीयपादाश्रयाद्रौद्रे"॥
"न स्वाध्याय वषट्कार न देवपितृतर्पण।
हलाना वाहनञ्चैव वीजाना वपन तथा"॥
इति राजमार्त्तण्ड॥ * ॥ अत्र पाकनिषेधो यथा,—
"यतिनो व्रतिनश्चैव विधवा च द्विजस्तथा।
अम्बुवाचीदिने चैव पाक कृत्वा न भक्षयेत्॥
स्वपाक परपाकं वा अम्बुवाचीदिने तथा।
भक्षणं नैव कर्त्तव्य चाण्डालान्नसम स्मृत"॥
इति संवत्सरप्रदीपे विष्णुरहस्य॥

अम्बुवासिनी, स्त्री, (अम्बुप्रधाने देशे वसति, व[स]+णिनि ङीप्।) पाटलावृक्ष। इति जटाधर[॥]
अम्बुवासी, स्त्री, (अम्बुप्रधाने देशे वासो यस्या सा[,] गौरादित्वात्, ङीप्।) पाटलावृक्ष। इति राजनिर्घण्ट॥
अम्बुवाह, पुं, (अम्बूनि वहति, अम्बु+वह्+अण्[,] उपपदसमास।) मेघ। इति रत्नमाला[॥] ("विश्वाभिरामगुणसमार्च्चितजीवितोऽय नाकर्णि[त] किमु सखे भवताम्बुवाह"॥ इति भामिनीविलासे। "निभाल्यमानीनरव पिशङ्गीर्जटाच्छि[न्न]त्वन्तमिवाम्बुवाह"। इति भारविः।) मुस्तक[।] मेघनामा इत्यमरेणोक्तत्वात्॥
अम्बुवाहिनी, स्त्री, (अम्बूनि वहति स्थानान्त[र] नयति, अम्बु+वह+णिनि, उपपदसमास, ङीप्।) काष्ठाम्बुवाहिनी। काष्ठादिकृतच्छिन्ना घनौकाश्रितजलसेचनी। इत्यमरटीकाया मथुरानाथ॥
अम्बुवेतस, पु, (अम्बुजातो वेतसः, कर्म्मधारय, मध्यपदलोपश्च।) जलवेतस। तत्पर्य्याय। परि[व्]याध २ विदुल ३ नादेयी ४। इत्यमर॥
अम्बुशिरीषिका, स्त्री, (अम्बुनि अल्प शिरीष, अल्पार्थे कन् स्त्रीत्वम्।) जलशिरीषवृक्षः। तत्पर्य्याय। शिरीषिका २ टिण्टिणिका ३ दुर्व्वला ४ वारिशिरीषिका ५। अस्या गुणा। त्रिदोषविषकुष्ठार्शोनाशित्व। इति भावप्रकाश॥
अम्बुसर्पिणी, स्त्री, (अम्बुनि सर्पति अम्बु+सृप+णिनि, उपपदसमासः।) जलौका। इति त्रिकाण्डशेष॥ जोंक् इति भाषा।
अम्बुसेचनी, स्त्री, (अम्बूनि सिच्यन्ते अनया, अम्बु+सिच्+करणे ल्युट्, ङीप्।) अम्बुवाहिनी। नौकाजलसेचनपात्र। इत्यमरटीकाया मथुरानाथ॥
अम्बूकृतं, त्रि, (अनम्बु अम्बु सम्पद्यमान कृत, अम्बु+कृ+क्त, अभूततद्भावे च्वि।) श्लेष्मकणनिर्गमसहितवाक्य। तत्पर्य्याय। सनिष्ठीव २। इत्यमर॥ सथूत्कार ३। इति हेमचन्द्र॥ (सनिष्ठीवमुखरावः। "दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूनामनुरसितगुरूणि स्त्यानमम्बूकृतानि"। इति उत्तरचरिते।)
अम्ब्लः, पुं, (अमि शब्दे क्तः।) अम्लरस। इत्युणादिकोष॥ अम्बल। टक इति च भाषा।
अम्भ, [स्] क्ली, (आप्यते, आप्+असुन्।) जल। बालनामौषध। इत्यमर॥ लग्नादितश्चतुर्थराशि। इति ज्योतिष॥ (सङ्ख्याशास्त्रे चतुर्थसंख्या। वैदिकच्छन्दोभेद।)
अम्भःसार, क्ली, (अम्भसां सार।) मुक्ता। इति राजनिर्घण्ट॥ अम्भस्सारमपि पाठ॥
अम्भःसूः, पुं, (अम्भांसि सूते, सू+क्विप्।) धूम। इति हेमचन्द्र॥ अम्भस्सूरिति च पाठः॥

**अम्भोजं**, क्ली, (अम्भसि जायते, अम्भस् + जन् + ड ।) पद्म । इति शब्दरत्नावली ॥ सारसपक्षी । पुष्कराङ्क इत्यमरटीकोक्तत्वात् । चन्द्रे पु । यथा । "पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युत हरिकथामृतं" । इति श्रीभागवतं ॥ जलजाते त्रि ॥

**अम्भोजन्मजनिः**, पु, (अम्भोजन्मनि विष्णुनाभिपद्मे जनिः जन्म यस्य स ।) ब्रह्मा । यथा,—
"अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो वत्सानितो वत्सपान्" ।
इति श्रीभागवत ॥

**अम्भोजयोनिः**, पु, (अम्भोजं नारायणनाभिपद्मं योनिरुत्पत्तिस्थानं यस्य स ।) ब्रह्मा । यथा,—
"सदनमुपगतोऽहं पूर्व्वमम्भोजयोने" ॥
इति प्रबोधचन्द्रोदय ॥

**अम्भोजिनी**, स्त्री, (अम्भोज + समूहार्थे इनि ततः ङीप् ।) पद्मलता । पद्मसमूह । पद्मयुक्तदेश । इति शब्दरत्नावली । (पद्मिनी । नलिनी । "अम्भोजिनीवननिवासविलासहेतु हंसस्य हन्तुमपरामपि ता विधाता" । इति नीतिशतके ।)

**अम्भोदः**, पुं, (अम्भो जल ददाति, अम्भस् + दा + क ।) मेघ । मुस्तकं । इति शब्दरत्नावली ॥ (जलदानकर्त्तरि, त्रि ।)

**अम्भोधर**, पु, (अम्भ जल धरति, धृ + अच् ।) मेघ । ("सशीकराम्भोधरमत्तकुञ्जरः" । इति ऋतुसंहारे ।) मुस्तक । इति शब्दरत्नावली ॥

**अम्भोधि**, पु, (अम्भांसि धीयन्ते अत्र, धा + आधारे किः ।) समुद्र । इति शब्दरत्नावली ॥
("अयं रत्नाकरोऽम्भोधिरित्यसेवि धनाशया ।
धन दूरेऽस्तु वदनमपूरि क्षारवारिभि" ॥
इति साहित्यदर्पणे ।
"सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा" ।
इति माघ ।)

**अम्भोधिवल्लभ**, पु, (अम्भोधेः वल्लभ, षष्ठीतत्पुरुष ।) प्रवाल । इति राजनिर्घण्ट ॥

**अम्भोनिधिः**, पु, (अम्भांसि निधीयन्तेऽत्र, अम्भस् + नि + धा + किः ।) समुद्र । इति शब्दरत्नावली ॥
("असूत सा नागवधूपभोग्य
मैनाकमम्भोनिधिबद्धसख्य" ।
इति कुमारसम्भवे । विष्णो सहस्रनाममध्ये परिगणितो नामभेद, अम्भांसि देवमनुष्यादयो निधीयन्ते अस्मिन् इति व्युत्पत्त्या, नारायणस्य सर्व्वाश्रयत्वात् । "अम्भोनिधिरनन्तात्मा" । इति महाभारते ।)

**अम्भोराशि**, पुं, (अम्भसां राशिरिव एकत्रोपचितत्वात् ।) समुद्र । इति राजनिर्घण्ट ॥

**अम्भोरुहं**, क्ली, (अम्भसि रोहति, अम्भस् + रुह + क ।) पद्मं । ("आस्ये पूर्णशशाङ्कता नयनयोस्तादात्म्यमम्भोरुहा" । इति भामिनीविलासे ।) सारसपक्षी । इत्यमर ॥

**अम्मय**, त्रि, (अपा विकारादि, अप् + मयट् ।) जलविकार । फेनादि । इत्यमरः ॥ जलमये त्रि । यथा,—
"न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामया ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधव" ॥
इति श्रीभागवत ॥
("सौरीभिरिव नाडीभिरमृताख्याभिरम्मयः" ।
इति रघुवंशे ।)

**अम्र**, पु, (अमति सौरभेण दूरं गच्छति, अम + रन् ।) आम्रवृक्षः । फले क्लीव । इति शब्दरत्नावली ॥

**अम्रातः**, पु, (अम्लं रस सर्व्वत्र पत्रपुष्पादौ अतति व्याप्नोति, अम्ल + अत + अण् वा लस्य रत्व, पक्षे अम्लातः ।) आम्रातकवृक्ष ॥ इति शब्दमाला ॥

**अम्रातकः**, पु, (अम्ल रस सर्व्वत्र पत्रपुष्पादौ अतति व्याप्नोति अम्र + अत + अण् + स्वार्थे कन् ।) आम्रातकवृक्षः । इति त्रिकाण्डशेष ॥
("आम्राम्रातकजम्बूत्वक् कषाये विपचेद्बुध ।
यवागू शालिभिर्युक्ता ता भुक्त्वा ग्रहणीं जयेत्" ॥
इति शार्ङ्गधर ॥)

**अम्ल**, क्ली, (अम + क्त ।) तक्रं । इति राजनिर्घण्ट ॥

**अम्लः**, पु, (अम + क्त ।) षड्रसमध्ये रसविशेष । टक इति भाषा । तोयाग्निगुणबाहुल्यादम्ल । इति सुश्रुत । अस्य गुणा । शाकवह्निमकारित्व । हृद्यत्व । रुच्यग्निरक्तमांसकारित्वं । शीतलत्वं । वायुनाशित्व । स्निग्धोष्णत्व । कटुरसतोऽधिकोष्णवीर्य्यत्व । जिह्वोद्वेगकारित्वञ्च । इति राजवल्लभ ॥ अस्य दन्तोद्वेगकारित्वगुणोऽप्यस्ति । अपि च । प्रीत्यग्निपटुताकारित्व । प्रपाचनत्व । इति राजनिर्घण्ट ॥ * ॥ तदतिशयभक्षणगुणा । पाचकत्वं । पित्तश्लेष्मवान्तिक्लेदकारित्व । लघुत्व । उष्णत्वं । वह्निशीतत्व । वायुनाशित्वञ्च । इति राजवल्लभ ॥ भ्रान्तितुष्टिकफपाण्डुदोषकार्श्यकासकारित्वं । इति राजनिर्घण्ट ॥ तद्वति त्रि । इत्यमरः ॥ * ॥ अम्लवेतस । इति राजनिर्घण्ट ॥ (यदाह वाभट ॥ "अम्ल ज्वालयते मुखम् ।
हर्षणो रोमदन्तानामक्षिभ्रुवनिकोचन ।
अम्लोऽग्निदीप्तिकृत् स्निग्धो हृद्य पाचनरोचनः ॥
उष्णवीर्य्यो हिमस्पर्श प्रीणन क्लेदनो लघु ।
करोति कफपित्तास्र मूढवातानुलोमनम् ॥
सोऽत्यभ्यस्तस्तनो कुर्य्याच्छैथिल्य तिमिर भ्रमं ।
कण्डुपाण्डुत्ववीसर्पशोफविस्फोटतृड्ज्वरान्" ॥
हारीतेन यदुक्त तद्यथा,—
"जिह्वाक्लेद जनयति तथा नेत्रनैर्म्मल्यकारी,
बीभत्स वा जनयति तथा वातरोगापहारी ।
कण्डूकुष्ठक्षतरुजकरं लोहितं शोफिने स्या-
दम्ल प्रोक्त पवनशमनोऽसृक्प्रकोप तनोति" ॥
सुश्रुतश्चाह ॥ "अम्लो जरण पाचन पवननिग्रहणोऽनुलोमन कोष्ठ-विदाही वह्निशीत क्लेदन प्रायशो हृद्यश्चेति । सएवगुणोऽप्येक एवात्यर्थसुपसेव्यमानो दन्तहर्ष-नयन-सम्मीलन रोमसंवेजनकफविलयन-शरीरशैथिल्यान्यापादयति तथा क्षताभिहत-दग्ध-दष्ट-भग्न-रुग्ण-शून-प्रच्युतावमूत्रित-विसर्पित-छिन्न भिन्न-विद्धोत्पिष्टादीनि पाचयत्याग्नेयस्वभावात् परिदहति कण्ठमुरोहृदयञ्चेति" ॥ ० ॥ "अम्लोरसो भक्त रोचयति, अग्निं दीपयति, देहं बृंहयति, ऊर्ज्जयति, मनो बोधयति, इन्द्रियाणि दृढीकरोति, बल वर्द्धयति, वातमनुलोमयति, हृदय तर्पयति, आस्य स्रावयति, भुक्तमपकर्षयति, क्लेद जनयति, प्रीणयति । लघुरुष्ण स्निग्धश्च ॥ सएवगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयुज्यमानो दन्तान् हर्षयति, तर्पयति, संमीलयति अक्षिणी, संवेजयति लोमानि, कफ विलापयति, पित्तमभिवर्द्धयति, रक्त दूषयति, मांसं विदहति, काय शिथिलीकरोति, क्षीण-क्षत-कृशदुर्व्वलाना श्वयथुमापादयति । अपि च क्षताभिहत-दष्ट-दग्ध-भग्न शून--च्युतावमूत्रित-परिसर्पित मर्द्दित-च्छिन्न-विद्धोत्पिष्टादीनि पाचयत्याग्नेयस्वभावात् परिदहति कण्ठमुरोहृदयञ्च" ॥ इति चरक ॥)

**अम्लकः**, पु, (अल्पोऽम्ल अल्पार्थे कन् ।) लकुचवृक्ष । इति शब्दरत्नावली ॥ (लकुचशब्देऽस्य गुणादयो ज्ञातव्या ॥)

**अम्लकाण्डं**, क्ली, (अम्ल काण्ड यस्य ।) लवणतृण । इति राजनिर्घण्ट ॥

**अम्लकेशर**, पु, (अम्ल केशरो यस्य ।) मातुलुङ्ग । वीजपूर । इति रत्नमाला ॥ (टावान्वेबु इति भाषा ।)

**अम्लचूड**, पु, (अम्ला चूडा शिखा यस्य ।) अम्लशाक । इति राजनिर्घण्ट ॥

**अम्लजम्बीर**, पु, (अम्लो जम्बीर ।) अम्लनिम्बूक । इति राजनिर्घण्ट ॥

**अम्लनायक**, पु, (अम्लं रस नयति, नी + ण्वुल् ।) अम्लवेतस । इति राजनिर्घण्ट ॥

**अम्लनिशा**, स्त्री, (अम्लरसे नि शेषेण शेते, अम्ल + नि + शी + ड + स्त्रियां टाप् ।) शटी । इति राजनिर्घण्ट ॥

**अम्लपञ्चफल**, क्ली । अम्लरसयुक्तपञ्चप्रकारफल । तद्यथा । कोल १ दाडिम २ वृक्षाम्ल ३ चुक्रिका ४ अम्लवेतसं ५ ॥ मतान्तरे । जम्बीर १ नारङ्ग २ अम्लवेतसं ३ तिन्तिडीक ४ वीजपूरं ५ । इति राजनिर्घण्ट ॥
("कोलञ्च दाडिमञ्चैव वृक्षाम्ल चुक्रिका तथा ।
अम्लवेतसमित्येतदम्लपञ्चफल स्मृतम्" ॥
"जम्बीर नागरङ्गञ्च तथाम्लवेतसं पुन ।
तिन्तिडीक वीजपूरमम्लपञ्चफल स्मृतम्" ॥)

**अम्लपत्र**, पु, (अम्लं पत्रं यस्य ।) अश्मन्तकवृक्ष । इति राजनिर्घण्ट ॥

**अम्लपत्री**, स्त्री, (अम्ल पत्र यस्या सा, ङीप् ।) पलाशीलता । क्षुद्राम्लिका । इति राजनिर्घण्ट ॥

**अम्लपूर**, क्ली, (अम्लेन अम्लरसेन पूर्य्यते, पूर + कर्म्मणि घञ् ।) वृक्षाम्ल । इति राजनिर्घण्ट ॥

**अम्लफल**, क्ली, (अम्ल फल यस्य ।) वृक्षाम्ल । इति राजनिर्घण्ट ॥ तेँतुल इति भाषा ।

**अम्लफल**, पु, (अम्ल फल यस्य स ।) आम्रवृक्ष । इति राजनिर्घण्ट ॥

**अम्लभेदन**, पु, (अम्लार्थं भिद्यतेऽसौ, अम्ल + भिद् + कर्म्मणि ल्युट् ।) अम्लवेतस । इति राजनिर्घण्ट ॥

**अम्लरुहा**, स्त्री, (अम्लाय रोहति, अम्ल + रुह् +

क ।) मालवदेशप्रसिद्धनागवल्लीभेदः । अस्या गुणाः । सुतीक्ष्णत्वं । मधुरत्वं । रुचिकारित्वं । हिमत्वं । दाहनाशित्वं । पित्तोद्रेककरत्वं । अभिमतमुखामोदस्त्रीसौभाग्यविवर्द्धनत्वं । मदकारित्वं । गुल्माध्मानविबन्धनाशित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ ("नाम्ना याऽम्लगदा सुतीक्ष्णमधुरा रुच्या हिमा दाहनुत् पित्तोद्रेककरा सुदीपनकरी मत्यामुखा मोदिनी । स्त्रीसौभाग्यविवर्द्धिनी मदकरी श्रेया सदा वल्लभा गुल्माध्मानविबन्धजित् च कथिता सा मालवे तु स्मृता" ।)

अम्ललोणिका, स्त्री, (अम्ल रस लाति गृह्णाति अम्लन तम् ऊनयति हीनयति, अम्लन+ऊन+ण्वुल्, टाप् ।) क्षुद्रक्षुपविशेषः । आमरुल । इति भाषा । तत्पर्य्यायः । चाङ्गेरी २ चुक्रिका ३ दन्तशठा ४ अम्बष्ठा ५ । इत्यमरः ॥ अस्या गुणाः । कफवायुनाशित्वं । अग्निदीपनत्वं । ग्रहणीरोगे हितकारित्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥ वस्त्रादिमलशोधित्वकषायरसनाशकगुणोऽप्यस्ति । राजनिर्घण्टोक्तगुणपर्य्यायौ चुक्राम्लिका शब्दे द्रष्टव्यौ । तत्पर्य्यायगुणाः ।

"चाङ्गेरी चुक्रिका दन्तशठाम्बष्ठाम्ललोणिका ।
अश्मन्तकस्तु शफरी कुशली चाम्लपत्रकः" ॥

क्वचित् पुस्तके कुशलीस्थाने शफली इति च पाठः ।

"चाङ्गेरी दीपनी रुच्या लघूष्णा कफवातनुत् ।
पित्तलाम्ला ग्रहण्यर्शःकुष्ठातीसारनाशिनी" ॥

इति भावप्रकाशः ॥

("दीपनी चोष्णवीर्य्या च ग्राहिणी कफमारुते ।
प्रशस्यतेऽम्ला चाङ्गेरी ग्रहण्यर्शोहिता च सा" ॥

इति चरकः ॥

"चाङ्गेरी कफवातघ्नी वह्निकृद् ग्रहणी हिता" ।

इति वैद्यकद्रव्यगुणः ॥

"चाङ्गेर्य्यम्लाग्निदीपनी" ।
"ग्रहण्यर्शोऽनिलश्लेष्महितोष्णा ग्राहिणी लघुः" ॥

इति च वाभटः ॥

"ग्रहण्यर्शोविकारघ्नी साम्ला वातकफे हिता ।
उष्णा कषायमधुरा चाङ्गेरी चाग्निदीपनी" ॥

इति सुश्रुतस्य ।)

अम्ललोणी, स्त्री, अम्ललोणिका । चाङ्गेरी । इत्यमरटीका ॥

अम्लवती, स्त्री, (अम्लो रसो विद्यतेऽस्याः, अम्ल+मतुप् मस्य वत्वम् ।) चुक्राम्लिका । इति राजनिर्घण्टः ॥ आमरुल । इति भाषा ।

अम्लवर्ग, पुं, (अम्लानां अम्लरसप्रधानानां वर्गः ।) अम्लगणः । यथा । चाङ्गेरी । लकुचः । अम्लवेतसः । जम्बीरकः । वीजपूरकः । नागरङ्गः । दाड़िमः । कपित्थः । अम्लः । वीजाम्लकः । अम्बष्ठा । करमर्दकः । निम्बूकः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (मतान्तरे यथा,—

"आम्रमाम्रातको धात्री लकुचं च कपित्थकः ।
नारङ्गं द्विविधा जम्बूः करमर्दः प्रियालकः ॥
दाड़िमं पार्व्वती द्राक्षा द्विधा वदरटूदकः ।
वीजपूरं च जम्बीरं तिन्तिड़ीकाम्लवेतसम् ॥
इत्याम्रदधिमत्यस्य चाङ्गेर्य्यम्लगणः" ।)

"अम्लवेतसजम्बीरलकुचाम्लचणकाम्लकाः ।
नागरङ्गं तिन्तिड़ी च चिञ्चाफलञ्च निम्बुकम् ॥
चाङ्गेरी दाड़िमञ्चैव करमर्द्दस्तथैव च ।
एष चाम्लगणः प्रोक्तो वेतसाम्लं सदोत्तमम्" ॥

इति वैद्यकरत्नमालासङ्ग्रहः ॥

"दाड़िमामलकमातुलुङ्गाम्रातककपित्थकरमर्द्दवदरकोलप्राचीनामलकतिन्तिड़ीककोशाम्रभव्यपारावतवेत्रफललकुचाम्लवेतसदन्तशठदधितक्रसुराशुक्तसौवीरकतुषोदकधान्याम्लप्रभृतीनि समासेनाम्लवर्गः" । इति सुश्रुतस्य ।)

अम्लवल्ली, स्त्री, (अम्ला अम्लरसा वल्ली ।) त्रिपर्णिकानामकन्दविशेषः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अम्लवाटिका, स्त्री, (अम्ला वाटिका स्थानमिव ।) नागवल्लीभेदः । अस्या गुणाः । कटुत्वं । अम्लत्वं । तीक्ष्णत्वं । रुच्यत्वं । उष्णत्वं । मुखपाकनाशित्वं । विदाहपित्तास्रप्रकोपकारित्वं । विष्टम्भदायित्वं । वायुनाशित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ (उक्तञ्च,—

"स्यादम्लवाटी कटुकाम्लतिक्ता
रुच्या तथोष्णा मुखपाककर्त्री ।
विदाहपित्तास्रविकोपिनी च
विष्टम्भदा वातनिवर्हणी च" ॥)

अम्लवास्तूक, क्ली, (अम्लरसान्वितं वास्तूकं शाकभेदः ।) चुक्रम् । इति राजनिर्घण्टः ॥

अम्लवीज, क्ली, (अम्लस्य वीजं कारणम् ।) वृक्षाम्लम् । इति राजनिर्घण्टः ॥

अम्लवृक्ष, क्ली, (अम्लरसो वृक्षे यस्य ।) वृक्षाम्लम् । इति राजनिर्घण्टः ॥ तेंतुल इति भाषा ।

अम्लवेतस, पुं, लोकप्रसिद्धः अम्लरसवृक्षविशेषः । चुकापालङ् इति ख्यात इति केचित् । अम्लकुचाइ इति ख्यात इति केचित् । इत्यमरटीकायां भरतः ॥ तत्पर्य्यायः । अम्लः २ वेधी ३ रसाम्लः ४ आम्लवेतसः ५ वेतसाम्लः ६ अम्लसारः ७ शतवेधी ८ वेधकः ९ भीमः १० भेदनः ११ भेदी १२ राजाम्लः १३ अम्लभेदनः १४ अम्लाङ्कुशः १५ रक्तसारः १६ फलाम्लः १७ अम्लनायकः १८ सहस्रवेधी १९ वीराम्लः २० गुल्मकेतुः २१ वराभिधा २२ शङ्खद्रावी २३ मांसद्रावी २४ । इति राजनिर्घण्टः ॥ वराङ्गी २५ । इति रत्नमाला ॥ चुक्रम् २६ । इत्यमरः ॥ तत्फलगुणाः । अत्यम्लत्वं । कषायत्वं । उष्णत्वं । वायुकफार्शःश्रमगुल्मनाशित्वं । अरुचिहारित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ छागमांसशीघ्रसूचीद्रवकारित्वं । चणकाम्लवत् गुणकारित्वञ्च । इति भावप्रकाशः ॥ अनाहरोगनाशित्वं । तत्पक्वफलगुणाः । दोषविनाशित्वं । गुरुत्वं । धारकत्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥ तत्पर्य्यायगुणाः ।

"स्यादम्लवेतसश्चुक्रं शतवेधी सहस्रजित् ।
अम्लवेतसमत्यम्लं भेदनं लघु दीपनम् ॥
हृद्रोगशूलगुल्मघ्नं पित्तलोहितदूषणम् ।
रूक्षं विण्मूत्रदोषघ्नं प्लीहोदावर्त्तनाशनम् ॥
हिक्कानाहारुचिश्वासकासाजीर्णवमिप्रणुत् ।
कफवातामयध्वंसि छागमांसद्रवत्वकृत् ॥
चणकाम्लगुणं प्रोक्तं लोहसूचीद्रवत्वकृत्" ।

इति भावप्रकाशः ॥

("अम्लिकायाः फलं पक्वं तस्मादल्पान्तरं गुणैः ।
गुणैस्तैरेव संयुक्तं भेदनन्त्वम्लवेतसम्" ।

इति च चरकः ।)

अम्लशाक, क्ली, (अम्लः शाको यस्य तत् ।) वृक्षाम्लपुष्पः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (वृक्षाम्लशब्देऽस्य विशेषो द्रष्टव्यः ।)

अम्लशाक, पुं, (अम्लः शाको यस्य सः ।) अम्लद विशेषः । तत्पर्य्यायः । शाकाम्लः २ शुक्राम्लः ३ अम्लचुक्रिका ४ चिञ्चाम्लः ५ अम्लचूड़ः ६ चिह्नसारः ७ । अस्य गुणाः । अतिशयाम्लत्वं । वातनाशित्वं । पथ्यदाहकारित्वञ्च । सम्यक्पक्वसिद्धितस्याम्लगुणः । दाहपित्तकफार्त्तिनाशित्वं । इति राजनिर्घण्टः ॥ (उक्तञ्च,—

"अम्लशाकस्त्वम्लो वातघ्नः पथ्यदाहकृत् ।
साम्लेन पक्वमिश्रो दाहपित्तकफार्त्तिनुत्" ।)

अम्लसार, क्ली, (अम्लरस एव सारः यस्य तत् ।) काञ्जिकम् । इति राजनिर्घण्टः ॥

अम्लसार, पुं, (अम्लरस एव सारः यस्य सः ।) अम्लवेतसः । निम्बूकः । हिन्तालः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अम्लहरिद्रा, स्त्री, (अम्लरसयुक्ता हरिद्रा ।) हटी । इति राजनिर्घण्टः ॥

अम्लाङ्कुश, पुं, (अम्ल अङ्कुशाकारं अग्रं यस्य ।) अम्लवेतसः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अम्लातक, पुं, (न म्लायति, म्लै+तन् स्वार्थे कन्, नञ्समासः ।) अम्लानवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ अस्य गुणपर्य्यायौ राजतरुणीशब्दे ज्ञेयौ ॥

अम्लान, पुं, (म्लै+क्त ततो नञ्समासः ।) महासहावृक्षः । इत्यमरभरतौ ॥ आँठिया इति ख्यातः ।

अम्लान, त्रि, (म्लै+क्त, न म्लानः नञ्समासः ।) म्लानिरहितः । यथा,—

"अम्लानपङ्कजा माला शिरस्युरसि चाम्बरे" ।

इति देवीमाहात्म्यम् ॥ (स्वच्छः । परिष्कृतः । निर्म्मलः । उज्ज्वलः । प्रसन्नः । विशदः । प्रत्ययः । अपर्य्युषितः । अशुष्कः ।)

अम्लानिनी, स्त्री, (अम्लानानां पद्मानां समूहः । इनि ।) पद्मसमूहः । पद्मिनी । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अम्लिका, स्त्री, (अम्लैव, स्वार्थे कन् ।) तिन्तिड़ी । इत्यमरः ॥ पलाशीलता । स्वेनाम्लिका । चुक्राम्लिका । इति राजनिर्घण्टः ॥ अम्लोद्गारः । इति मेदिनी ॥ [इति वाभटः ।

("दीपनं भेदनं शुष्कमम्लिकाकोलयोः फलम्" ।
"अम्लिकायाः फलं पक्वं तस्मादल्पान्तरं गुणैः" ॥

इति चरकः ।

"अम्लिकायाः फलं पक्वं तद्वद्भेदि तु केवलम्" ॥

इति सुश्रुतः ।)

अम्लिकावटक, पु, (अम्लिकाया वटकः ।) अम्लिकां खेदयित्वा जलेन सह मर्दयित्वा तत्र कृतजले मसवटकः । अम्लबड़ा इति भाषा । अस्य गुणाः । रुच्यम्लिकारित्वं । वटकागुणतुल्यगुणत्वञ्च । इति भावप्रकाशः ॥
("अम्लिका खेदयित्वा तु जलेन सह मर्दयेत् ।
तन्नीरे कृतसंस्कारे वटकान् मज्जयेज्जनः ।
अम्लिकावटकास्ते तु रुच्या वह्निप्रदीपनाः ।
वटकस्य गुणैः पूर्व्वैरेतेऽपि च समन्विताः" ॥)

अम्लीका, स्त्री, अम्लिका । इत्यमरटीकायां रायमुकुटः ॥

अम्लोटक, पु, (अम्ल उट पत्रं यस्य सः ।) अश्मन्तकवृक्षः । अम्लकुचाइ इति ख्यातः । इति रत्नमाला ॥

अय ङ गतौ । (इति कविकल्पद्रुमः ।) ङ अयते । इति दुर्गादासः ॥

अय, पु, (इति मुकुटमतेन, इण + करणे अच् ।) शुभावहविधिः । मङ्गलानुष्ठानं । इत्यमरः ॥
(कल्याणदायकं दैवं ।
"स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः" ।
इति रघुवंशे । नरकभेदः । अयः पानमस्यत्र ।
इति वैद्यकरत्नसारसंग्रहः ।)

अय, [स्] क्ली, (इण्गतौ, असुन् ।) लौहं । इत्यमरः ॥
(गुडूच्यादिलौहः ॥
"आयुःप्रदाता बलवीर्य्यधाता,
रोगापहर्त्ता मदनस्य कर्त्ता ।
अयःसमानं न हि किञ्चिदस्ति,
रसायनं श्रेष्ठतमं नराणां" ॥ * ॥
"गुडूचीसारसंयुक्तं त्रिफलाद्यसमन्वितं ।
वातरक्तं निहन्त्याशु सर्व्ववातहरं परं" ॥)

अयनं, क्ली, (अय + भावे ल्युट् ।) शास्त्रं । यथा,—
"ज्योतिषामयनं नेत्रं निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते" ।
इति तिथ्यादितत्त्वं ॥ पन्थाः । सूर्य्यस्य उत्तरदक्षिणदिग्गमनं । तद्यथा । माघादिषण्मासाः उत्तरायणं । श्रावणादिषण्मासाः दक्षिणायनं । इत्यमरः ॥ गमनं । गत्यर्थायधातोर्भावे ल्युट् ॥ रविसंक्रान्तिविशेषः । यथा भविष्यमात्स्यज्योतिषेषु ।
"मृगकर्कटसंक्रान्ती द्वे तूदग्दक्षिणायने ।
विषुवती तुला मेषे गोलमध्ये तथापरा" ॥
मृगो मकरः । गोलो राशिचक्रं । देवीपुराणे,
"यावद्दिनकला मुक्ता तत्पुण्यं चोत्तरायणे ।
निरूपे भास्करे दृष्टे दिनान्तं दक्षिणायने" ॥
तत्र स्नानदानादौ कोटिगुणफलं भवति । यथा मात्स्ये ।
"अयने कोटिगुणितं लक्षं विष्णुपदीषु च ।"
इत्यादि ।
"अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः ।
अनध्यायस्तु कर्त्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु" ॥
इति तिथ्यादितत्त्वं ॥ * ॥ सूर्य्यगतिविशेषः । यथा,—
"मृगसंक्रान्तितः पूर्व्वं मघाचारादिमान्तरे ।
एकवर्षं चतुःपञ्चपलमानक्रमेण तु ॥
षट्पञ्चिवत्सरानेकदिनं स्यादयनं रवेः ।
एवं चतुःपञ्चदिनमयनारम्भणं क्रमात् ॥
व्युत्क्रमेण च तद्वत् स्यादुदग्यानं रवेर्ध्रुवं ।
कर्किसंक्रमणे स्वदभितो दक्षिणायनं" ॥
इति ज्योतिस्तत्त्वं ॥

अयनांशः, पुं, (अयनस्य अंशः भागः ।) सूर्य्यगतिविशेषस्य भागः । अथायनांशानयनसाधनं ।
"शाके नगाब्धिरहितं ज्ञात्वा अयनांशे प्रकल्पयेत् ।
तानङ्कैर्हृते भागं मिश्रयित्वा दिने दिने" ॥
अस्यार्थः । शक शाकीयवर्षेषु नगाब्धीन् ४७ विहाय शेषं यथा शेषं ३ । ४७ नगाङ्कहीनं शेषं ४ । १७ अस्मान्तरेण द्वयोराधिक्येन १० त्रिंशत्पल तत्रायनांशे पूरयेत् ॥ अयनांशस्तु ज्ञातकार्य्याणां । यथा,—
"शाके नेत्राब्धिवेदोनं हि हृत्वा दशभिर्हरेत् ।
लब्धं हीनं तथैव पञ्चाशास्त्रायणांशकाः" ॥
इति । मकरस्थाने लक्षेण इति पाठः सिद्धान्तरहस्ये । ते च इदानीं चैत्रस्यैकादशांशे सम्भवात् ऊनविंशतिसंख्यकाः । ते च एतत्कालमेः १० त्रिंशता हरेत् । भागलब्धं ऊनविंशति १९ । तत्र मेषमध्ये मिश्रयित्वा ४ । ९ षट्पलाधिकदण्डचतुष्टयात्मकं मेषमध्ये भवति । एवमधिक मृषा । किन्तु अमान्तरेण यथाधिकं लभ्यते तथाधिकं लग्नं भवति । एवं दशमान्तरेण हानिस्तत्र लग्नेऽपि हानिरिति निष्कर्षः ॥ * ॥ इदानीं स्पष्टज्ञानार्थं पद्येन लिख्यते । बाणवेदौ ४ । ५-ऽब्धिवेदैः श्रुतिः ४ । ४८-रिभशयनैर्जिनाः ५ । २८-खाम्बुजेषु ५ । ४० मीनो वेदागमे ५ । ३४-रामभिदिषु ५ । ३०-भिषुन्दामिने ५ । १६-मुकुन्दे ५ । ४१-वीणोनागेन्दुभिस्तु ५ । १८ श्रुतिरपि रससमे ४ । ३६-गुणा सप्तबाणैः ३।५७ रामोऽश्वाद्रिस्तु ३।४७ सिद्धान्तजमतमयनांशादिदं लग्नमानं ॥ एतच्च तमोलिप्तादिदेशीय प्राग्लग्नायनांशसाधितं ॥ * ॥ अङ्केन वेदो ४ । ६ मेषः स्यात् वसुवेदैः सरः ४।४८ वृषः । मुनिदृग्भिः शरो ५।२७ द्वन्द्वः व्योमाब्धिवाणाः ५ । ४० कर्कटः ॥ वेदरामैः शरः ५ । ३४ सिंहः कन्यायां युगपक्षकाः ५ । २६ । तुला अष्टसिरामपञ्च ५ । ३७-वृश्चिकः खाब्धिपञ्चकः ५ । ४० । नवचन्द्रवाणाः ५ । १९— धनुर्वेदरामैः सुखः ४ । ३४ मृगः । वसुपञ्चत्रयः ३ । ५८ कुम्भः अष्टपिवेदत्रयो ३ । ४७ भयः ॥ * ॥ यजुर्वेदस्य ४ । ६ मेषो नवसुखसुख ४-४६ । -गौर्मन्युयुग्मे शिवाग्नौ ५ । २८ द्वन्द्वोऽङ्काप्यितद्याग्नौ ५।३६ हिमकरभवनो रामरामे बाणः ५ । ३३ । सिंहः कन्याङ्गरामैरिषु ५ । ३१-रिषुगसुखामीषु ५ । ३४ यूकोऽलिरष्टी ५ । ४१ वेदेभाश्वोऽष्टष्टीसरहरमुख ५ । १८ -कोदण्डमाऊर्वराहाः ॥ वन्दू रामस्य वेदो ४ । ३४ रविसुतभवनं पर्व्वतः पञ्चरामः ३ । ५७ कुम्भो मीनश्च मुख्यो गिरिसुखदहनः ३ । ४० प्रत्यहं प्रक्रमेण । अत्र यामित्रराशावनुदिनमवसाद्य राशीनामाद्यो यद्यातिरिक्तं मुतं स्यादुदयमनुदिवाराप्तमाऊर्वराहः ॥ * ॥ लग्नं लग्नान्तरं ज्ञात्वेति प्रकारान्तरेण यदुक्तं तदपि पद्येन लिख्यते यथा । वेदोऽङ्कैः ४ । ९-रिभवेदैः श्रुतिः ४ । ४८-रिषुरिभपक्षैः ५ । २८ कुवेदैश्च बाणो ५ । ४१ बाणो रामानलैः ५ । ३३-रिन्द्रियमपि नवाक्षैः ५ । २९ रिषुः सप्तरामैः ५ । ३७ बाणः शून्याब्धिने ५।४० -मुर्न्नतिभि ५ । १८ रिषुगुणैर्व्यब्धि ४ । ३५ रवेः बाणी ३ । ५८ रामोऽश्वाद्रिस्तु ३ । ४७ सिद्धान्तजमतमयनांशादिदं लग्नमानं ॥
"चैत्रस्यैकादशांशे तु विषुवारम्भणं यदा ।
तदेतल्लग्नमानं हि ज्ञेयमन्यत्र साधनात्" ॥
इति ज्योतिषसंग्रहः ॥ (गतिः । गमनं । मार्गः ।
"अगस्त्यचिह्नादयनात् समीपं
दिगुत्तरा भास्वति सन्निवृत्ते" ।
इति रघुवंशे । स्थानं । भूमिः । समरसमारम्भकाले योधानां यथाप्रधानं युद्धभूमौ पूर्व्वापरादिदिग्विभागेनावस्थितिस्थानं । सेनासन्निवेशविशेषरूपव्यूहप्रवेशमार्गः ।
"अयनेषु च सर्व्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व्व एव हि" ॥
इति भगवद्गीता । आश्रयः । विश्रामस्थानं ।
"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्व्वं तेन नारायणः स्मृतः" ॥
इति मनुः । गृहं । वसतिः । वासस्थानं । शास्त्रं । भावसाधनो यत्र ।
"शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः ।
ज्योतिषामयनञ्चैव वेदाङ्गानि षडेव तु ॥
छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ कथ्यते ।
ज्योतिषामयनं नेत्रं निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते" ॥
इति कूर्म्मपुराणे ।)

अयानयीनः, पु, शारः । यथा । अनुपदसर्व्वान्नायानयं बद्धाभक्षयति नेयेषु । अयानयं स्थानविशेषः । तन्नेयः । अयानयीनः शारः । इति सिद्धान्तकौमुदी ॥

अयन्त्रित, त्रि, (न यन्त्रितः, नञ्समासः ।) अबाधः । अनर्गलः । इति हेमचन्द्रः ॥ (अनियन्त्रितः । अनियमितः । स्वाधीनः ।
"सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः ।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्व्वाशी सर्व्वविक्रयी" ॥
इति मनुः ।)

अयस्कान्त, पु, (अयसु कान्तः रमणीयः ।) लौहविशेषः । कान्तलोह इति ख्यातः । तत्पर्य्यायः । कान्तलोहं २ कान्तः ३ लौहकान्तकः ४ कान्तायसं ५ कृष्णलोहं ६ महालोहं ७ । अस्य गुणाः । तीक्ष्णत्वं । उष्णत्वं । रूक्षत्वं । पाण्डुशोथकफपित्तहरत्वं । रसायनत्वं । अनुत्तमत्वञ्च । स चतुर्व्विधः । भ्रामकः १ चुम्बकः २ रोमकः ३ खेदकः ४ । एते रसायने उत्तरोत्तरगुणिनः ।
"क्रमेण दार्ढ्याङ्गकान्तिकार्ष्ण्यनीरोगदायिनः" ।
इति राजनिर्घण्टः ॥ चुम्बकप्रस्तरोऽप्ययं । (चुम्बक

इति ख्यात प्रस्तरभेदः । चुम्बकपाथर इति भाषा ।

"उमारूपेण ते यूयं संयमस्तिमितं मनः ।
शम्भोर्यतध्वमाक्रष्टुमयस्कान्तेन लौहवत्" ॥

इति कुमारसम्भवे ।)

("तत्र कोटिसहस्रैर्वा कान्तलौहं महागुणं" ।
इति वैद्यकरसेन्द्रसारसङ्ग्रहः ॥)

अयस्कारः, पुं, (अयोविकारं करोति, कृ + अण् उपपदसमासः ।) प्रजङ्घायः । जङ्घाग्रभागः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ लौहकारः । अयस्करोतीति व्युत्पत्त्या ॥

अयाः, [स्] पुं, (इन् + असुन् ।) अग्निः । इत्युणादिकोषः ॥

अयाचकः, त्रि, (याच + ण्वुल्, ततो नञ्समासः ।) याच्ञारहितः । यथा । "यदि भवति स दाता याचकायाचकेषु" । इत्युद्भटः ॥ (भिक्षापराङ्मुखः । प्रार्थनाविमुखः ।)

अयाचितं, त्रि, (याच् + क्त, नञ्समासः ।) याच्ञां विना लब्धवस्तु । अप्रार्थितम् । इत्यमृतशब्दार्थे मेदिनी ॥ (अनर्थितम् । "अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं" । इति कुमारसम्भवे । "अमृतं स्यादयाचितं" । इति मनुः । "अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्म्मणः" । इति स्मृतिः ।)

अयाचितः, पुं, (याच् + क्तः, ततो नञ्समासः ।) मुनिविशेषः । तत्पर्य्यायः । उपवर्षः २ हलभृतिः ३ कृतकोटिः ४ । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अयानं, क्ली, स्वभावः । इति हारावली ॥ अगमनम् । गत्यर्थयाधातोर्भावेऽनट् ततो नञ्समासः ॥

अयि, व्य, प्रश्नः । (इण् + इन् ।) अनुनयः । सम्बोधनम् । इति मेदिनी ॥ अनुरागे । ("अयि कठोर ! यशः किल ते प्रियं" । इति उत्तरचरिते । "अयि घनोरु ! पदानि शनैः शनैः" । इति वेणीसंहारे । "अयि जीवितनाथ ! जीवसीत्यभिधायोत्थितया तया पुरः" । इति कुमारसम्भवे ।)

अयुक्छदः, पुं, (अयुग्माः सप्त सप्त छदा अस्य ।) सप्तपर्णवृक्षः । इति हेमचन्द्रः ॥

अयुक्तः, त्रि, (युज् + क्त, नञ्समासः ।) अमिश्रितः । अनुचितः । यथा,—

"अयुक्तं यदिह प्रोक्तं प्रमादेन भ्रमेण वा" ।
इति दुर्गादासः ॥ (असंसक्तः । संयोगरहितः । अनियोजितः । यथा,

"अयुक्तचारा राजानो भविष्यन्ति कथं नु ते" ।
इति रामायणे । सर्व्वदा विषयासक्तचित्ततया कर्त्तव्येष्वनवहितः ।

"परावमन्ता विषयेषु सङ्गवान्,
न देशकालप्रविभागतत्त्ववित् ।
अयुक्तबुद्धिर्गुणदोषनिश्चये,
विपन्नराज्यो न चिराद् विपत्स्यसे" ॥

इति रामायणे ।)

अयुग्मच्छदः, पुं, (अयुग्माः सप्त सप्त छदा अस्य ।) विषमच्छदः । सप्तपर्णवृक्षः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥ (छातिम इति ख्यातः सप्तच्छदवृक्षः ।

"अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलं
तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम् ।
नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां
भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः" ॥

इति किरातार्ज्जुनीये ।)

अयुतं, क्ली, (न युतं, नञ्समासः ।) दशसहस्रसंख्या । इति हेमचन्द्रः ॥ १०००० दशहाजार इति भाषा । ("नागानामयुतं तुरङ्गनियुतं [illegible] रथानां शतं" । इति रामायणे ।)

अयुतं, त्रि, (न युतं, नञ्समासः ।) अमिश्रितम् । अयुक्तम् । यथा । अपृथगभावोऽयुतसिद्धिः । इति चरकटीका ॥ (असंयुक्तम् । असम्मिश्रम् । संयोगरहितम् । पुंसि स्वनामख्यातः राधिकस्य पुत्रः स च क्रोधनस्य पिता ।)

अये, व्य, (इण् + एच् ।) कोपः । विषादः । सम्भ्रमः । स्मरणम् । इति मेदिनी ॥ सम्बोधनम् । इति शब्दरत्नावली ॥ (कोमलामन्त्रणे । "अये कान्ते मुग्धे चटुलनयने चन्द्रवदने" । इत्युद्भटः । "अये कथं तातसारथिरश्वसेन" । इति वेणीसंहारे ।)

अयोगः, पुं, (युज् + घञ्, नञ्समासः ।) विश्लेषः । विधुरः । कूटः । कठिनोद्यमः । इति मेदिनी ॥ वमनविरेचनादीनां प्रतिलोमप्रवृत्तिरल्पप्रवृत्तिर्वा । यथा,—

"योगः सम्यक्प्रवृत्तिः स्यादतियोगोऽतिवर्त्तनं ।
अयोगः प्रातिलोम्येन न चाल्पं वा प्रवर्त्तनं" ॥

इति वैद्यकम् ॥ ("तत्रासात्म्येन्द्रियार्थसंयोगोऽयोगातियोगमिथ्यायोगादियुक्ता रूपरसादयः" ॥ इति माधवकरकृतरोगविनिश्चयग्रन्थे विजयरक्षितः ॥

"क्षीणायतनानीति अर्थानां कर्म्मणः कालस्य चातियोगायोगमिथ्यायोगाः तत्रातिप्रभावतां दृश्यानामतिमात्रं दर्शनमतियोगः ॥ सर्व्वशोऽदर्शनमयोगः अतिसूक्ष्मातिश्लिष्टातिविप्रकृष्टरौद्रभैरवाद्भुतद्विष्टबीभत्सविकृतादिरूपदर्शनं । मिथ्यायोगः" ॥ इति चरकः ॥) योगो ध्यानं तदभावः । योगो भेषजं तदभावश्च ॥ (विच्छेदः । मिथः संरूढगाढानुरागयोर्नायकनायिकयोर्गुरुजनपराधीनतया दैवगत्या वा विप्रकर्षादन्योन्यादर्शनरूपदशाविशेषः, यदुक्तं दशरूपादर्शे ।

"तत्रायोगोऽनुरागेऽपि नवयोरेकचित्तयोः ।
पारतन्त्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसङ्गमः" ॥

अयञ्च पूर्व्वराग इत्युच्यते । यदुक्तं दर्पणकारैः ।

"श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः ।
दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्व्वरागः स उच्यते" ॥)

अयोगवः, त्रि, (अयइव कठिना गौर्वाणी यस्य सः, अच् । अयोगं दुष्टयोगं वाति वा + क ।) वैश्यकन्यायां शूद्रादुत्पन्नसन्तानः । इति जटाधरः ॥ ("शूद्रादयोगवः क्षत्ता चाण्डालश्चाधमो नृणाम् ।
वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसङ्कराः" ॥

इति मनुः ।

शूद्रात् वैश्यायां जातः प्रतिलोमजः सङ्कीर्णवर्णः ।

"प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनं ।
सैरिन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे" ॥

इति मनुः ।)

अयोगुडः, पुं, (अयसा निर्म्मितो गुडः पिण्डः ।) गुलिका । यथा,—

"धरमाशीविषविषं क्वथितं ताम्रमेव वा ।
पीतमत्यग्निसन्तप्ता भक्षिता वाप्ययोगुडाः" ।
इति चरकः ॥

अयोग्रं, क्ली, (अयोऽग्रे मुखे यस्य तत् ।) मु[षलम् ।] इत्यमरः ॥

अयोघनः, पुं, (अयांसि हन्यन्ते ताड्यन्तेऽनेन, ह[न्] अप् + घनादेशश्च ।) एकीभूतलौहपुञ्जः । [हा]... इति भाषा । तत्पर्य्यायः । लौहकूटः २ । हेमचन्द्रः ॥

("अयोघनेनाय इवाभितप्तं
वैदेहिबन्धोर्हृदयं विदद्रे" ।

इति रघुवंशे ।

"कुरु करे गुरुमेकमयोघनं
बहिरितो मुकुरश्च कुरुष्व मे" ।

इति नैषधे ।)

अयोध्या, स्त्री, (योद्धुमशक्या, युध + ण्यत्, [नञ्] समासः ।) श्रीरामनगरी । पश्चिमदेशे अ[योध्या] इति प्रसिद्धा । तत्पर्य्यायः । साकेतं २ कोश[ला] ३ । इति हेमचन्द्रः ॥ उत्तरकोशला ४ । [इति] त्रिकाण्डशेषः ॥ सा तु मोक्षदा पुरी । यथा,

"अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्ति[का] ।
पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥
एतास्तु पृथिवीमध्ये न गण्यन्ते कदाचन ।
श्रीरामधनुरग्रस्था अयोध्या सा महापुरी" ॥

इति भूतशुद्धितन्त्रम् ॥ * ॥ तद्वर्णनं यथा,—

"कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो मह[ान्] ।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान् ॥
अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता ।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्म्मिता स्वयम् ॥
आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी ।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा ॥
राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता ।
मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः ॥
तान्तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्द्धनः ।
पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा ॥
कपाटतोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणां ।
सर्व्वयन्त्रायुधवतीमुषितां सर्व्वशिल्पिभिः ॥
सूतमागधसम्बाधां श्रीमतीमतुलप्रभां ।
उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसङ्कुलां ॥
वधूनाटकसङ्घैश्च संयुक्तां सर्व्वतः पुरीं ।
उद्यानाम्रवणोपेतां महतीं शालमेखलां ॥
दुर्गगम्भीरपरिखां दुर्गामन्यैर्दुरासदां ।
वाजिवारणसम्पूर्णां गोभिरुष्ट्रैः खरैस्तथा ॥
सामन्तराजसङ्घैश्च बलिकर्म्मभिरावृतां ।
नानादेशनिवासैश्च वणिग्भिरुपशोभितां ॥
प्रासादै रत्नविकृतैः पर्व्वतैरिव शोभितां ।
कूटागारैश्च सम्पूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीं ॥

चित्रामष्टापदाकारां वरनारीगणैर्युताम् ।
सर्व्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम् ॥
गृहगाढामविच्छिन्नां समभूमौ निवेशिताम् ।
शालितण्डुलसम्पूर्णामिक्षुकाण्डरसोदकाम् ॥
दुन्दुभीभिर्म्मृदङ्गैश्च वीणाभिः पणवैस्तथा ।
नादितां भृशमत्यर्थं पृथिव्यां तामनुत्तमाम् ॥
विमानमिव सिद्धानां तपसाधिगतं दिवि ।
सुनिवेशितवेश्मान्तां नरोत्तमसमावृताम् ॥
ये च बाणैर्न विध्यन्ति विविक्तमपरापरम् ।
शब्दवेध्यञ्च विततं लघुहस्ता विशारदाः ॥
सिंहव्याघ्रवराहाणां मत्तानां नदतां वने ।
हन्तारो निशितैः शस्त्रैर्बलाद्बाहुबलैरपि ॥
तादृशानां सहस्रैस्तामभिपूर्णां महारथैः ।
पुरीमावासयामास राजा दशरथस्तदा ॥
तामग्निमद्भिर्गुणवद्भिरावृतां
द्विजोत्तमैर्व्वेदषडङ्गपारगैः ।
सहस्रदैः सत्यरतैर्महात्मभि-
र्महर्षिकल्पैरृषिभिश्च केवलैः" ॥
इत्यार्षे रामायणे वाल्मीकीये बालकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ * ॥
"तस्यां पुर्य्यामयोध्यायां वेदवित् सर्व्वसंग्रहः ।
दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः ॥
इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्म्मपरो वशी ।
महर्षिकल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥
बलवान्निहतामित्रो मित्रवान् विजितेन्द्रियः ।
धनैश्च सञ्चयैश्चान्यैः शक्रवैश्रवणोपमः ॥
यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता ।
तथा दशरथो राजा लोकस्य परिरक्षिता ॥
तेन सत्याभिसन्धेन त्रिवर्गमनुतिष्ठता ।
पालिता सा पुरी श्रेष्ठा इन्द्रेणेवामरावती ॥
तस्मिन् पुरवरे हृष्टा धर्म्मात्मानो बहुश्रुताः
नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः ॥
नाल्पसन्निचयः कश्चिदासीत्तस्मिन् पुरोत्तमे ।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान् ॥
कामी वा न कदर्य्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित् ।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः ॥
सर्व्वे नराश्च नार्य्यश्च धर्म्मशीलाः सुसंयताः ।
मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः ॥
नाकुण्डली नामुकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान् ।
नामृष्टो न न लिप्ताङ्गो नासुगन्धश्च विद्यते ॥
नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनङ्गदनिष्कधृक् ।
नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान् ॥
नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः ।
कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न सङ्करः ॥
स्वकर्म्मनिरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः ।
दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे ॥
नास्तिको नानृतो वापि न कश्चिदबहुश्रुतः ।
नासूयको न चाशक्तो नाविद्वान् विद्यते क्वचित् ॥
नाषडङ्गविदत्रास्ति नाव्रतो नासहस्रदः ।
न दीनः क्षिप्तचित्तो वा व्यथितो वापि कश्चन ॥
कश्चिन्नरो वा नारी वा नाश्रीमान्नाप्यरूपवान् ।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नापि राजन्यभक्तिमान् ॥
वर्णेष्वग्र्यचतुर्थेषु देवतातिथिपूजकाः ।
कृतज्ञाश्च वदान्याश्च शूरा विक्रमसंयुताः ॥
दीर्घायुषो नराः सर्व्वे धर्म्मं सत्यञ्च संश्रिताः
सहिताः पुत्त्रपौत्त्रैश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे ॥
क्षत्त्रं ब्रह्ममुखञ्चासीद्वैश्याः क्षत्त्रमनुव्रताः ।
शूद्राः स्वकर्म्मनिरतास्त्रीन् वर्णानुपचारिणः ॥
सा तेनेक्ष्वाकुनाथेन पुरी सुपरिरक्षिता ।
यथा पुरस्तान्मनुना मानवेन्द्रेण धीमता ॥
योधानामग्निकल्पानां पेशलानाममर्षिणाम् ।
सम्पूर्णा कृतविद्यानां गुहा केशरिणामिव ॥
काम्बोजविषये जातैर्व्वाह्लीकैश्च हयोत्तमैः ।
वनायुजैर्नदीजैश्च पूर्णा हरिहयोत्तमैः ॥
विन्ध्यपर्व्वतजैर्मत्तैः पूर्णा हैमवतैरपि ।
मदान्वितैरतिबलैर्मातङ्गैः पर्व्वतोपमैः ॥
ऐरावतकुलीनैश्च महापद्मकुलैस्तथा ।
अञ्जनादपि निष्क्रान्तैर्वामनादपि च द्विपैः ॥
भद्रैर्मन्द्रैर्मृगैश्चैव भद्रमन्द्रमृगैस्तथा ।
भद्रमन्द्रैर्भद्रमृगैर्मृगमन्द्रैश्च सा पुरी ॥
नित्यमत्तैः सदा पूर्णा नागैरचलसन्निभैः ।
सा योजने द्वे च भूयः सत्यनामा प्रकाशते ॥
तां पुरीं स महातेजा राजा दशरथो महान् ।
शशास शमितामित्रो नक्षत्राणीव चन्द्रमाः ॥
तां सत्यनामां दृढतोरणार्गलां
गृहैर्व्विचित्रैरुपशोभितां शिवाम् ।
पुरीमयोध्यां नृसहस्रसङ्कुलां
शशास वै शक्रसमो महीपतिः" ॥
इत्यार्षे रामायणे वाल्मीकीये बालकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ युद्धायोग्ये त्रि ॥

अयोमल, क्ली, (अयसो मलमिव ।) लौहमलम् । इति राजनिर्घण्टः ॥ लोहार गु इति भाषा । तत्पर्य्यायः । मण्डूरं २ लौहकिट्टं ३ । तस्य गुणाः । "शतोर्द्धमुत्तमं किट्टं मध्यञ्चाशीतिवर्षकम् । अधमं षष्टिवर्षीयं ततो हीनं विषोपमम् ॥ यल्लौहं यद्गुणं प्रोक्तं तत्किट्टञ्चापि तद्गुणम्" । इति वैद्यकम् ॥ (अस्य शोधनमारणं यथा,—
"दग्ध्वाक्षकाष्ठैर्मलमायसन्तु,
गोमूत्रनिर्व्वापितमष्टवारान् ।
विचूर्ण्य लीढं मधुना चिरेण,
कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति" ॥
इति वैद्यकरसेन्द्रसारसंग्रहे ॥)

अर, क्ली, (इयर्त्ति गच्छत्यनेन, ऋ + अच् ।) शीघ्रम् । चक्राङ्गम् । चाकार पाकि इति भाषा । शीघ्रगे त्रि । इति मेदिनी ॥

अर, पु, (ऋ + अच् ।) जिनानां कालचक्रस्य द्वादशांशः । स तु अवसर्पिण्याः षष्ठभागः ॥ जिनानामष्टादशतीर्थङ्करः । इति हेमचन्द्रः ॥

अरक, पु, (अ + ऋकन् ।) शैवालम् । इति हारावली ॥ पर्पटः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अरग्वधः, पु, आरग्वधवृक्षः । सोंदालि इति ख्यातः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥ (अस्य गुणादयः आरग्वधशब्दे ज्ञेयाः ।)

अरघट्टः, पु, (अरं शीघ्रं घट्यते चाल्यतेऽसौ, अर + घट्ट + अच् ।) महाकूपः । इत्यमरजटाधरौ ॥ (कूपात् जलनिःसारणार्थं घटीयन्त्रभेदः । कूपोपरिनिबद्धजलोत्तोलककाष्ठभेदः । "स कदाचिद्दायादैरुद्वेजितोऽरघट्टघटिकामारुह्य कूपात् क्रमेण निष्क्रान्तः" । इति पञ्चतन्त्रे ।)

अरघट्टकः, पु, (अरघट्ट + स्वार्थे कन् ।) महाकूपः । तत्पर्य्यायः । पादावर्त्तः २ । इति हेमचन्द्रः ॥

अरजा, [स्] स्त्री, (रञ्ज + असुन्, नलोपः नञ्समासः ।) कन्या । कुमारी । इति हेमचन्द्रः ॥ रजोगुणरहिते त्रि ॥ (निर्म्मलः । धौतः । परिष्कृतः ।)

अरटु, पु, (अरं शीघ्रं अटति, अट् + उन् ।) अरलुवृक्षः । इत्यमरटीकायां रायमुकुटः ॥

अरणि, पुं, (ऋ + अनि ।) गणिकारिकावृक्षः । इति मेदिनी । सूर्य्यः । इति काशीखण्डः ॥

अरणि, पु, स्त्री, (ऋ + अनि ।) निर्म्मन्थ्यदारु । अग्निसाधनीभूतकाष्ठम् । घर्षणद्वाराग्निजनककाष्ठम् । इत्यमरः ॥ (अग्निमन्थनकाष्ठम् । अग्न्युत्पादनाय यत्काष्ठं काष्ठान्तरेण घृष्यते तदरणिनामकं काष्ठम् ।
"विपक्षवक्षोऽरणिमन्थनोत्थः
प्रतापवह्नेरिव धूमलेखा" ।
इति धनञ्जयविजयव्यायोगे ।)

अरणी, स्त्री, अरणिः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥ ("विधिना मन्त्रयुक्तेन रूक्षाऽपि मथिताऽपि च । प्रयच्छति फलं भूमिररणीव हुताशनम्" ॥ इति पञ्चतन्त्रे ।)

अरणीकेतु, पु, (अरणी केतुरस्य सः ।) अग्निमन्थवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अरण्य, क्ली, (अर्य्यते मृगैः, ऋ गतौ, अर्त्तेर्निच्चेति अन्यः ।) वनम् । इत्यमरः ॥ (मोक्षप्रदं दण्डकादिकं नवारण्यम् । यदुक्तं,—
"दण्डकं सैन्धवारण्यं जम्बुमार्गञ्च पुष्करम् ।
उत्पलावर्त्तकारण्यं नैमिषं कुरुजाङ्गलम् ॥
हिमवानर्व्वुदश्चैव नवारण्यं विमुक्तिदम्" ।)

अरण्य, पु, कट्फलवृक्षः । इति शब्दचन्द्रिका ॥ (स्वनामख्यातो रैवतस्य मनोः पुत्त्रः । यदुक्तं हरिवंशे,—
"अरण्यश्च प्रकाशश्च निर्मोहः सत्यवान् कृती ।
रैवतस्य मनोः पुत्त्राः पञ्चमस्यैतदन्तरम्" ।)

अरण्यकदली, स्त्री, (अरण्यस्यैव कदली, षष्ठीतत्पुरुषः ।) गिरिकदली । इति राजनिर्घण्टः ॥ (वनकदली । इयं ग्रामादौ न जायते ।)

अरण्यकार्पासी, स्त्री, (अरण्ये कार्पासी, सप्तमीतत्पुरुषः ।) वनकार्पासी । तत्पर्य्यायः । वनजा २ भारद्वाजी ३ वनोद्भवा ४ । अस्या गुणाः । हिमत्वम् । रूक्षत्वम् । व्रणशस्त्रक्षतनाशित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥

अरण्यकुलत्थिका, स्त्री, (अरण्यस्य कुलत्थिका, षष्ठीतत्पुरुषः ।) कुलत्था । इति राजनिर्घण्टः ॥ बनकुलथी इति भाषा ।

अरण्यकुसुम्भ, पु, (अरण्यस्य कुसुम्भः, षष्ठीतत्-

पुरुष ।) वनकुसुम्भ । तत्पर्य्याय । कौसुम्भ २ अग्निसम्भव ३ । अस्य गुणा पाके कटुत्व । श्लेष्मनाशित्व । अग्निवृद्धिकारित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥

अरण्यघोली, स्त्री, (अरण्यजा घोली, कर्म्मधारय ।) वनघोली । पत्रशाकविशेष । इति राजनिर्घण्ट ॥

अरण्यचटक, पु, (अरण्यस्य चटक, षष्ठीतत्पुरुष ।) वनचटक । तत्पर्य्याय । धूसर २ भूमिशय ३ । अस्य गुणा । शीतत्व । लघुत्व । शुक्रवृद्धिकारित्व । बलप्रदत्वञ्च । इति राजनिर्घण्ट ॥ (अस्य मांसगुणा यथा राजनिर्घण्टे,—

"चटकाखज तु शीत लघु वृष्य बलप्रद ।
तदद्धारण्यचटक तत्तूर्ण्यं लघुपथ्यदम्" ॥)

अरण्यजार्द्रका, स्त्री, (अरण्ये जायते या, अरण्य+जन्+ड, अरण्यजा आर्द्रका, कर्म्मधारय ।) वनार्द्रका । इति राजनिर्घण्ट ॥ वन आदा इति भाषा । अस्य गुणपर्य्यायौ ऐन्द्रशब्दे द्रष्टव्यौ ॥

अरण्यजीर, पु, (अरण्यस्य जीर, षष्ठीतत्पुरुष ।) वनजीर । इति राजनिर्घण्ट ॥ वनजीरा इति भाषा ।

अरण्यधान्य, स्त्री, (अरण्यस्य धान्य, षष्ठीतत्पुरुष ।) नीवार । इति राजनिर्घण्ट ॥ उडी धान इति भाषा ।

अरण्यमक्षिका, स्त्री, ( अरण्यस्य मक्षिका, षष्ठीतत्पुरुष ।) दंश । इति शब्दरत्नावली ॥ डाँश इति भाषा ।

अरण्यमुद्ग, पु, (अरण्यस्य मुद्ग, षष्ठीतत्पुरुष ।) मकुष्ठक । इति राजनिर्घण्ट ॥ वनमुग इति भाषा । (अस्य गुणा मुकुष्ठकशब्दे द्रष्टव्या ।)

अरण्यवायस, पु, (अरण्यस्य वायस, षष्ठीतत्पुरुष ।) द्रोणकाक । इति राजनिर्घण्ट ॥ दाँड काक इति भाषा ।

अरण्यवासिनी, स्त्री, (अरण्ये वसति या, अरण्य+वस्+णिनि, स्त्रियां ङीप् । ) अत्यम्लपर्णी लता । इति राजनिर्घण्ट ॥

अरण्यवास्तूक, पु, (अरण्यस्य वास्तूक, षष्ठीतत्पुरुष ।) वनवास्तूक । इति राजनिर्घण्ट ॥ वन वेतो इति भाषा । अस्य गुणपर्य्यायौ कुणञ्जर शब्दे द्रष्टव्यौ ॥

अरण्यशालि, पु, (अरण्यभव शालि, कर्म्मधारय मध्यपदलोपश्च ।) नीवार । वनधान्य । इति राजनिर्घण्ट ॥

अरण्यशूरण, पु, ( अरण्यजात शूरण, कर्म्मधारय ।) वनशूरण । इति राजनिर्घण्ट ॥ वनओल इति भाषा ।

अरण्यश्वा, [ न् ] पु, (अरण्ये श्वेव हिंस्र ।) वृक । इति हेमचन्द्र ॥ नेकडे बाघ इति भाषा ।

अरण्यषष्ठी, स्त्री, (अरण्याय गन्तु षष्ठी, चतुर्थीतत्पुरुष ।) ज्यैष्ठशुक्लषष्ठी । वाँटाषष्ठी इति भाषा । यथा राजमार्त्तण्डे,—

"ज्यैष्ठे मासि सिते पक्षे षष्ठी चारण्यसञ्ज्ञिता ।
व्यजनैकरगतास्तामटन्ति विपिने स्त्रिय ॥
ता विन्ध्यवासिनीं स्कन्दषष्ठीमाराधयन्ति च ।
कन्दमूलफलाहारा लभन्ते सन्तति शुभा" ॥

कन्द शूरणादि । मूल तदितरत् । इति तिथ्यादितत्त्व ॥

अरण्यानी, स्त्री, (अरण्य+आनुक्+स्त्रियां ङीष् । महत् अरण्यम् इत्यस्मिन् अर्थे इन्द्रवरुणेति सूत्रस्थेन हिमारण्ययोर्महत्त्वइति वार्त्तिकेन अरण्यशब्दस्य आनुगागम, ततो ङीष् ।) महावन । इत्यमर ॥ ("अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नामारण्यानी" । इति हितोपदेशे ।)

अरतत्रप, पु, स्त्री, (अरता विरता त्रपा यस्य ।) कुक्कुर । इति त्रिकाण्डशेष ॥ रतलज्जे त्रि ॥ (नास्ति रते शृङ्गारे त्रपा लज्जा यस्य स ।)

अरति, पु, (ऋ+अति ।) क्रोध । इत्युणादिकोष ॥

अरति, स्त्री, (रम्+क्तिन्, नञ्समास ।) अनवस्थितचित्तत्व । इति रक्षित ॥ क्रीडाभाव । इति कार्त्तिक ॥ रतिविरह । रतिशून्ये त्रि ॥ (विरक्ति । प्रीतिविरह । अनुरागराहित्य । उत्साहहीनता । उद्यमाभाव । उद्योगराहित्य । निश्चेष्टता । सुखाभाव । दुःख । क्लेश । औत्सुक्य । उद्वेग । इष्टवियोगात् चित्तस्याकुलीभाव । यदुक्त,—

"स्वाभीष्टवस्त्वलाभेन चेतसो यानवस्थिति ।
अरति सा तु विज्ञेया" । सुस्थताभाव । अस्वास्थ्य ।
"श्रमोऽरतिर्विवर्णत्व वैरस्य नयनप्लवः" ।
इति सुश्रुते ।)

अरत्नि, पु, (ऋ+कत्नि, रत्नि बद्धमुष्टिकर, स नास्ति यस्य ।) विस्तृतकनिष्ठाङ्गुलिमुष्टिकहस्त । कूर्पर । इति मेदिनी ॥ ("एकविंशतियूपान्ते एकविंशत्यरत्नय" । इति रामायणे । कफोणि । हस्त । करतलपार्श्व । बद्धमुष्टिहस्त । कील, घुसी इत्यादि भाषा ।

"यदा मूर्ध्नि महाबाहु प्राहरत् विललपिष्यत ।
तस्य जानु ददौ भीमो जघ्ने चैनमरत्निना" ॥
इति महाभारते ।)

अरन्धन, क्ली, (न रन्धन, अत्र अभावे नञ् ।) पाकाभाव । तत्तु कन्यासङ्क्रान्त्या हतश्चेत् वृद्धारन्धन कथ्यते । सौरमासस्य यस्मिन् कस्मिन् दिने हतश्चेत् इच्छारन्धनमित्युच्यते । इति लोकप्रसिद्ध । तत्र प्रमाण ।

"कर्क्काद्गमयात् सिंहाहे सिंहाद्र सिंहकन्ययो ।
मनसाश्रयनागेभ्यो दत्त्वा सर्व्वं निशोषित" ॥
इत्याचारमार्त्तण्डधृतवचन ॥

अरम, त्रि, (न रमतेऽत्र, आधारे घञ् ।) अवम । अधम । इत्यमरटीकासारसुन्दरी ॥ (नीच । निकृष्ट । हीन ।)

अरर, त्रि, ( ऋ+अरच् । ) कवाट । इत्यमर ॥ शरीरकोष । आच्छादन । इति विश्व ॥ (पुंसि चर्म्मकर्त्तनच्छुरिकाभेद । यज्ञाङ्ग । युद्ध । रण ।)

अररि, पु, क्ली, ( अर्च्छति ऋ+क्विप्, अरमियर्त्ति ऋ इनि ।) कपाट । इति हेमचन्द्र ॥

अररु, पु, (ऋ+अरु । ) शत्रु । इति सिद्धान्तकौमुद्यामुणादिवृत्ति ॥ (अस्त्रभेद । स्वनामख्यातोऽसुरभेद ।)

अररे, व्य, (अर शीघ्र राति, रा+के ।) त्वरान्वितसम्बुद्धि । शीघ्रसम्बोधन । इति शब्दरत्नावली (शीघ्र प्रत्युत्तरलाभेच्छया कृते अतिशयत सम्बोधने ।

"अरे विकारसम्बोधे अररे त्वरयान्विते" ।
इति शब्दरत्नावली ।)

अरलु, पु, ( अर लाति, ला+कु, ऋ+अरु+रस्य ल ।) श्योनाकवृक्ष । इत्यमर ॥ शोनागाछ इति भाषा ।

अरविन्द, क्ली, ( अराकाराणि दलानि सन्त्यस्य तस्मात् अरा, तान् विन्दति लभते इत्यर्थे विद्+श ।) पद्म । सारसपक्षी । इत्यमर ॥ ताम्र रक्तकमल । नीलोत्पल । इति राजनिर्घण्ट ॥ ("उन्मीलित तूलिकयेव चित्र सूर्य्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्" । इति कुमारसम्भवे ।

"अरविन्दमिद वीक्ष्य खेलत्खञ्जनमञ्जुल ।
स्मरामि वदन तस्याश्चारुचञ्चललोचनम्" ॥
इति साहित्यदर्पणे ।)

अरविन्दिनी, स्त्री, ( अरविन्द+इनि, ङीप् ।) नलिनी । इति शब्दरत्नावली ॥ पद्मसमूह । पद्माकर । इति रत्नमाला ॥

अरसिक, त्रि, (रस वेत्ति, रस+ठन्, नञ्समास ।) अरसज्ञ । अविदग्ध । यथा । "अरसिकेषु रसस्य निवेदन शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख" ॥ इत्युद्भट ॥

अराजक, त्रि, ( नास्ति राजा यत्र स, कप् ।) राजशून्यदेशादि । यथा,—

"चौरप्राय जनपद हीनसत्त्वमराजक" ।
इति श्रीभागवत ॥ ( नियन्तृहीन । शासनकर्तृरहित ।

"अराजके जनपदे दोषा जायन्ति वै सदा ।
उद्वृत्त सतत लोक राजा दण्डेन शास्ति वै" ॥
इति महाभारते ।)

अराजक, पु, (नास्ति राजा यत्र स कप् ।) राजशून्यदेशादि । यथा,—

"अराजके हि लोकेऽस्मिन् सर्व्वतो विद्रुते भयात् ।
रक्षार्थमस्य सर्व्वस्य राजानमसृजत् प्रभु " ॥
इति मानवे ७ अध्याये ३ श्लोक ॥

अराति, पु, ( न राति ददाति सुख, रा+क्तिच्, नञ्समास । ) शत्रु । इत्यमर ॥ ("अरातिविक्रमालोकविकस्वरविलोचन" ।
इति साहित्यदर्पणे ।

"अनेकयुद्धविजयी सन्धान यस्य गच्छति ।
तत्प्रभावेन तस्याशु वश गच्छन्त्यरातय" ॥
इति पञ्चतन्त्रे ।)

अराल, त्रि, (ऋ+विच्, अरमालाति, आ+ला+क ।) कुटिल । वक्र । इत्यमर ॥ ("अराले स्वाभाव्यादलिकलभसश्रीभिरलकै" ।
इति आनन्दलहरी । )

अरालः, पुं, (ऋ + विच्, अरम् आलाति, आ + ला + क ।) सर्ज्जरसः । मत्तहस्ती । इति मेदिनी ॥ वक्रहस्तः । इति शब्दरत्नावली ॥

अराला, स्त्री, (अराल + स्त्रियां टाप् ।) अश्वस्था । कुलटा । इति शब्दरत्नावली ॥

अरिः, पुं, (ऋ + इन् ।) शत्रुः । इत्यमरः ॥ (“उपकर्त्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा” । इति हितोपदेशे । “अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेव च” । [इति मनुः ।) चक्रं । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ खदिरभेदः । तत्पर्य्यायः । सन्दानिका २ दाली ३ खदिरपत्रिका ४ । अस्य गुणाः । कषायत्वं । कटुत्वं । तिक्तत्वं । रक्तार्त्तिपित्तनाशित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥

अरित्रं, क्ली, (ऋच्छत्यनेन, ऋ + इत्र ।) कर्णः । हालि इति भाषा । तत्पर्य्यायः । केनिपातकः २ । इत्यमरः ॥ केनिपातः ३ । इति भरतः ॥ (“लोलैररित्रैश्चरणैरिवाभितः” । इति माघः ।)

अरिन्दमः, त्रि, (अरीन् शत्रून् कामादीन् वा दाम्यति दमयति, दम् + अन्तर्भूतण्यर्थे खच् मुम्, उपपदसमासः ।) शत्रुदमनकारकः । इति मुग्धबोधव्याकरणं ।

(“यथाकामं यथोत्साहं यथाकालमरिन्दम ।
सेविता विषयाः पुत्र यौवनेन मया तव” ॥
“ज्ञात्वा तु तद्गृहं सर्व्वमादीप्तं पाण्डुनन्दनाः ।
सुरङ्गां विविशुस्तूर्णं मात्रा सार्द्धमरिन्दमाः” ॥
इति महाभारते ।)

अरिमर्द्दः, पुं, (अरिं रोगरूपं शत्रुं मृद्नाति, मृद + अण्, उपपदसमासः ।) कासमर्द्दवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (त्रि, शत्रुमर्द्दनकारी ।)

अरिमेदः, पुं, (अरेर्विट्खदिरस्येव मेदः सारः यस्य सः ।) वृक्षविशेषः । गुइया वावला इति भाषा । तत्पर्य्यायः । इरिमेदः २ रिमेदः ३ गोधास्कन्दः ४ अरिमेदकः ५ अहिमारः ६ पूतिमेदः ७ अहिमेदकः ८ विट्खदिरः ९ । अस्य गुणाः । कषायत्वं । उष्णत्वं । तिक्तत्वं । भूतविनाशित्वं । शोथातिसारकासविषवैसर्पनाशित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥

(अस्य व्यवहारो यत्र तदौषधं यथा,—
“तुलां हृतां नीलसहाचरस्य,
द्रोणेऽम्भसः संश्रपयेद्यथावत् ।
पूत्वा चतुर्भागरसे तु तैलं,
पचेच्छनैरर्द्धपलप्रयुक्तैः ॥
कल्कैरनन्ताखदिरारिमेद-
जम्ब्वाम्रयष्टीमधुकोत्पलानां ।
तत्तैलमाश्वेव धृतं मुखेन,
स्थैर्य्यं द्विजानां विदधाति सद्यः” ॥ * ॥
महासहचरं तैलं ॥ इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहः ॥)

अरिष्टं, क्ली, (रिष हिंसायां कर्त्तरि क्त, नञ्समासः ।) सूतिकागृहं । (“अरिष्टशय्यां परितो विसारिणा सुजन्मनस्तस्य निजेन तेजसा” । इति रघुवंशे ।) अशुभं । तक्रं । मरणचिह्नं । (यदुक्तम्,
“रोगिणो मरणं यस्मादवश्यम्भावि लक्ष्यते ।
तल्लक्षणमरिष्टं स्याद् रिष्टमप्यभिधीयते” ॥)
शुभं । इति मेदिनी ॥ उपद्रवः । तत्पर्य्यायः । उपलिङ्गं २ उपसर्गः ३ अजन्यं ४ ईतिः ५ उत्पातः ६ । इति हेमचन्द्रः ॥ (मद्यं । यथा । द्राक्षारिष्टं । दशमूलारिष्टं । वव्वूलारिष्टं ।
“अरिष्टं लघुपाकेन सर्व्वतश्च गुणाधिकम् ।
अरिष्टस्य गुणा ज्ञेया वीजद्रव्यगुणैः समाः” ॥
इति वैद्यके ।)
(“मरणचिह्नार्थे लक्षणं यथा । नियतमरणख्यापकलिङ्गं ॥ इति माधवसंगृहीतरोगविनिश्चयग्रन्थटीकाकृद्विजयरक्षितः ॥ * ॥ तत्र प्रकृतवर्णोऽर्द्धशरीरे विकृतवर्णोऽर्द्धशरीरे द्वावपि वर्णौ मर्य्यादाविभक्तौ दृष्ट्वा यद्येव सव्यदक्षिणविभागेन यद्येव पूर्व्वपश्चिमविभागेन यद्युत्तराधरविभागेन यद्यन्तर्वहिर्विभागेनातुरस्यारिष्टमिति विद्यात्” ॥ इति चरकः ।
“शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतेर्विकृतिर्भवेत् ।
तत्त्वरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोध मे” ॥
इति च सुश्रुतः ॥)

अरिष्टः, पुं, (रिष हिंसायां कर्त्तरि क्त, नञ्समासः ।) लशुनः । निम्बः । फेनिलवृक्षः । काकः । कङ्कपक्षी । इति मेदिनी । वृषभासुरः । इत्यनेकार्थध्वनिमञ्जरी ॥ मद्यविशेषः । इक्षुविकारसहिताभयाचित्रकदन्तीपिप्पल्यादिभूरिभेषजक्वाथादिसंस्कारवान् अरिष्टोऽभिधीयते । इति सुश्रुतटीका ॥ अस्य गुणाः । अर्शःशोथग्रहणीकफरोगनाशित्वं । इति राजवल्लभः ॥
(“द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्सन्धितं भवेत् ।
आसवारिष्टभेदैस्तत् प्रोच्यते भेषजोचितं ॥
यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ।
अरिष्टं क्वाथसिद्धं स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितं” ॥
इति शार्ङ्गधरः ॥ गुणोऽस्य यथा चरकेणोक्तः ॥
“शोफार्शोग्रहणीदोषपाण्डुरोगारुचिज्वरान् ।
हन्त्यरिष्टः कफकृतान्रोगान् रोचनदीपनः ॥ * ॥
दन्तीचित्रकमूलानामुभयोः पञ्चमूलयोः ।
भागान् पलांशानापोथ्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥
त्रिफलायाः दलानाञ्च प्रक्षिप्य त्रिपलं ततः ।
रसे चतुर्थशेषे तु पूते शीते समावपेत् ॥
तुलां गुड़स्य तत्तिष्ठेत् मासार्द्धं घृतभाजने ।
तन्मात्रया पिबेन्नित्यं अर्शोभ्योऽपि प्रमुच्यते ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं वातवर्च्चोऽनुलोमनं ॥
दीपनञ्चारुचिघ्नञ्च दन्त्यरिष्टमिदं विदुः” ॥
इति दन्त्यरिष्टः । इति चरकः ॥
“अरिष्टो द्रव्यसंयोगसंस्कारादधिको गुणैः ।
बहुदोषहरश्चैव दोषाणां शमनश्च सः ॥
दीपनः कफवातघ्नः सरः पित्तविरोधनः ।
शूलाध्मानोदरप्लीहज्वराजीर्णार्शसां हितः” ॥
इति सुश्रुतश्च ॥)

अरिष्टकः, पुं, (अरिष्ट एव स्वार्थे कः ।) फेनिलवृक्षः, इति शब्दरत्नावली ॥ रीठाकरञ्ज इति ख्यातः । अरिष्टशब्दार्थोऽप्यत्र ॥ रिठा इति भाषा । (अस्य गुणा यथा,—
“अरिष्टकस्त्रिदोषघ्नो ग्रहजिद्गर्भपातनः” ।
इति । एतत्फलचूर्णैर्हि कृतपाना नेपालदेशीयकम्बलानामित्यर्थः प्रक्षालनात् शुद्धिर्भवतीति शास्त्रविदां मतम् । यदुक्तं मनुना,
“कौषेयाविकयोरूषैः कुतपानामरिष्टकैः ।
श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः” ॥ इति ।)

अरिष्टतातिः, त्रि, (अरिष्ट + तातिल् ।) क्षेमङ्करः । शुभङ्करः । इति भूरिप्रयोगः ॥ (स्त्री, शुभाशंसनं । सौभाग्यबुद्धिः । कुशलातिशय्यं । “तदत्र भवता निष्पन्नाशिषा काममरिष्टतातिमाशासहे” । इति महावीरचरिते ।)

अरिष्टदुष्टधीः, त्रि, (अरिष्टेन मरणसूचकनिमित्तेन दुष्टा धीरस्य ।) आसन्नमरणसूचितलक्षणेन दूषितबुद्धिः । मरणकुबुद्धियुक्तः । तत्पर्य्यायः । विवशः २ । इत्यमरः ॥

अरिष्टनेमिः, पुं, (अरिष्टस्य नेमिः, षष्ठीतत्पुरुषः ।) जिनानां चतुर्व्विंशत्यन्तर्गतद्वाविंशतितीर्थङ्करः । इति हेमचन्द्रः ॥ (विनतागर्भसम्भूतः स्वनामख्यातः काश्यपमुनिपुत्रः, यथा हरिवंशे,
“तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुड़श्च महाबलः ।
अरुणश्चारुणिश्चैव विनतायाः सुताः स्मृताः” ॥
वृष्णेः प्रपौत्रश्चित्रकस्य पुत्रः स्वनामख्यातो राजा, यथा, हरिवंशे,
“चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च ।
अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ।
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्म्मा धर्म्मभृत्तथा” ॥
स्वनामख्यातः प्रजापतिः । यथा रामायणे,
“आदिकाले महाबाहो ये प्रजापतयोऽभवन् ।
दक्षो विवस्वानपरोऽरिष्टनेमिस्तथैव च ।
काश्यपश्च महाभागस्तेषामासीदपश्चिमः” ॥)

अरिष्टसूदनः, पुं, (अरिष्टं तन्नामानमसुरं सूदयति यः, अरिष्टस्य सूदनः नाशकः इति वा ।) विष्णुः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ शुभाशुभनाशके त्रि ॥ (कृष्णः । स खलु माथुरे कल्पे अरिष्टनामानमसुरं सूदितवान् ।)

अरिष्टा, स्त्री, (अरिष्ट + स्त्रियां टाप् ।) कटुका । इति राजनिर्घण्टः ॥ कट्की इति भाषा । (स्वनामख्याता काश्यपपत्नी, सा हि सर्व्वान् गन्धर्व्वान् जनयामास । यथा,—
“अरिष्टा तु महासत्वान् गन्धर्व्वानमितौजसः” ॥
इति हरिवंशे ।)

अरुः, [स्] पुं, (ऋ + उसि ।) सूर्य्यः । इत्युणादिकोषः ॥ रक्तखदिरः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अरुः, [स्] पुं, क्ली, (ऋ + उस् ।) व्रणं । क्षतं । इत्यमरः ॥

अरुः, [स्] क्ली, (ऋ + उसि ।) मर्म्म । सन्धिस्थानं । इत्युणादिकोषः ॥

अरुचिः, पुं, (न रुचिर्यत्र सः ।) रोगभेदः । स च सत्यभिलाषेऽभ्यवहारासामर्थ्यरूपः । इति रक्षितः ॥ तत्पर्य्यायः । अरोचकः २ अश्रद्धा ३ अनभिलाषः ४ । इति राजनिर्घण्टः ॥

(“दोषैः पृथक् सह च चित्तविपर्य्ययाच्च,

भक्तायनेषु हृदि चावतते प्रगाढ ।
गात्रे रुचिर्भवति न भिषजो विकार,
भक्तोपघातमिह पञ्चविध वदन्ति" ॥

इति सुश्रुतः । अलङ्कारशास्त्रोक्तदशविधस्मरदशामध्ये परिगणितो वस्तुवैराग्यरूप स्मरदशा विशेषः, यथा साहित्यदर्पणे,—

"अङ्गेष्वसौष्ठव ताप पाण्डुता कृशताऽरुचि ।
अरुचिर्वस्तुवैराग्य सर्व्वत्रारागिता इति" ॥

अरुज, पु, (रुजति, रुज् + क, नञ्समास ।) आरग्वधवृक्ष । इति राजनिर्घण्ट ॥ सोँदालि इति भाषा । (स्वनामख्यातदानवविशेष ।

"प्रह्रादोऽश्वशिरा कुम्भ संह्रादो गगनप्रिय ।
अनुह्रादो हरिहरौ वराह सहरोऽरुज" ॥

इति हरिवंशे ।)

अरुण, क्ली, (ऋ + उनन् ।) कुङ्कुम । सिन्दूरं । इति राजनिर्घण्ट ॥

अरुण, पु, (ऋ + उनन् ।) सूर्य्यसारथि । स तु विनतापुत्र गरुडज्येष्ठभ्राता च । तत्पर्य्याय । सूरसूत २ अनूरु ३ काश्यपि ४ गरुडाग्रज ५ सूर्य्य । अर्कवृक्ष । अव्यक्तराग । ईषद्रक्तवर्ण । इत्यमर । सन्ध्याराग । शब्दरहित । कपिलवर्ण । कुष्ठभेद । अरुणगुणविशिष्टे तु वाच्यलिङ्ग । इति मेदिनी ॥ पुन्नागवृक्ष । गुड । इति राजनिर्घण्ट ॥ (कपिलवर्णयुक्त । कृष्णमिश्रितरक्तवर्णविशिष्ट ।

"कपोताङ्गारुणो धूमो दृश्यते विमलाम्बरे" ।
इति रामायणे ।)

अरुणकमल, क्ली, (कृष्णसर्पइत्यादिवत् नित्यकर्म्मधारय ।) रक्तोत्पल । इति राजनिर्घण्ट ॥

अरुणलोचन, पु, (अरुणे रक्ते लोचने यस्य स ।) पारावत । इति राजनिर्घण्टः ॥

अरुणसारथि, पु, (अरुण गरुडाग्रज सारथिर्यस्य स ।) सूर्य्य । इति हेमचन्द्र ॥

अरुणा, स्त्री, (अरुण + स्त्रियां टाप् ।) अतिविषा । श्यामा । मञ्जिष्ठा । त्रिवृता । इति मेदिनी ॥ इन्द्रवारुणी । गुञ्जा । इति राजनिर्घण्ट ॥ मुण्डितिका । इति रत्नमाला ॥

अरुणात्मज, पु, (अरुणस्य आत्मज, षष्ठीतत्पुरुष ।) जटायुपक्षी । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अरुणावरजः, पु, (अरुणस्य अवरज षष्ठीतत्पुरुष ।) गरुड । इति हेमचन्द्र ॥

("अरुणावरज श्रीमानारुरोह रणे हरि ।
सुवर्ण स्वेन वपुषा सुपर्ण खेचरोत्तमम्" ॥
इति हरिवंशे ।)

अरुणोदय, पु, (अरुणस्य बालादित्यस्य उदयो यत्र स ।) सूर्य्योदयात् पूर्व्वं मुहूर्त्तद्वयकाल । यथा,—

"चतस्रो घटिका प्रातररुणोदय उच्यते ।
यतीना स्नानकालोऽय गङ्गाम्भःसदृश स्मृत" ॥

इति ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम् ॥ (यदुक्तं,—
"रजन्याः शेषयामस्य शेषार्द्धमरुणोदय" । इति ।
"दृन् प्रशस्यमस्त यो घण्टाताडोऽरुणोदये" ।
इति मनु ।)

अरुणोदयसप्तमी, स्त्री, (अरुणोदयकाले पुण्यविशेषजनिका या सप्तमी ।) माघशुक्लसप्तमी । माकरी सप्तमी । यथा । भविष्ये ।

"सूर्य्यग्रहणतुल्या हि शुक्ला माघस्य सप्तमी ।
अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नान महाफल ॥
माघे मासि सिते पक्षे सप्तमी कोटिभास्करा ।
दद्यात् स्नानार्घदानाभ्यामायुरारोग्यसम्पदः ॥
अरुणोदयवेलायां शुक्ला माघस्य सप्तमी ।
गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्य्यग्रहशतै समा" ॥

कोटिभास्करा कोटिसप्तमीतुल्या । सूर्य्यग्रहणफल स्नानज सन्निहिते बुद्धिरन्तरङ्गा इति न्यायात् । तेन बहुशतसूर्य्यग्रहणकालीनगङ्गास्नानजन्यफलसमफलप्राप्ति फलमत्र ज्ञेय । अत्र बहुशतसूर्य्यग्रहणाना प्रत्येकाधिकरणतासंसर्गेणान्वयात् कालाना स्नानानां तत्फलानामपि बहुशतत्व लभ्यते । अतो नाप्रसिद्धि ॥ * ॥ पूर्णसप्तम्या पूर्व्वापरयोर्यत्रारुणोदयकाले सप्तमी तत्र पूर्व्वदिने तत्काले स्नान ।

"चतस्रो घटिका प्रातररुणोदय उच्यते ।
यतीना स्नानकालोऽय गङ्गाम्भ सदृश स्मृत ॥
त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वाद्यन्तचतुष्टय ।
नाडीना तदुभे सन्ध्ये दिवसाद्यन्तसंज्ञिते" ॥

इति कालमाधवीयधृतब्रह्मवैवर्त्तीयेन पूर्व्वस्य तत्कालस्य पूर्णतिथिसम्बन्धिदिनकर्त्तव्यकर्म्माङ्गत्वेन इतरस्य चेतराङ्गत्वेनाभिधानात् । अतएव दक्षेण तत्कालमारभ्याह्निककृत्यमभिहितं ॥ * ॥ अत्रारुणोदयकाले मुहूर्त्तान्यूनतिथिलाभ एव स्नान ।

"व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैका यदा भवेत् ।
उदये सा तिथिर्ग्राह्या श्राद्धादावस्तगामिनी" ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरात् । अत्र घटिका मुहूर्त्त श्राद्धयोग्यकालानुरोधादिति वक्ष्यते । ब्रह्मवैवर्त्तवचने घटिका दण्डरूपा । परवचने नाडीनामाद्यन्तचतुष्टयमित्येकवाक्यत्वात् ॥ * ॥ ये तु सूर्य्योदयात् प्रागपि प्रातःस्नानविधानात् तत्रैव माघसप्तम्याख्यगुणफलविधिर्लाघवादित्याहुस्तच्चिन्त्य । प्रकरणान्यत्वे प्रयोजनान्यत्व इति जैमिनिसूत्रेण प्रकरणभेदे गुणविध्यसिद्धे । अतएव कल्पतरुरत्नाकरयोः ।

"य इच्छेद्विपुलान् भोगान् चन्द्रसूर्य्यग्रहोपमान् ।
प्रातःस्नायी भवेन्नित्य द्वौ मासौ माघफाल्गुनौ" ॥

इति । विष्णुस्मृतौ । "यथाहनि तथा प्रातर्नित्य स्नायादनातुर" । इति नित्यस्नानप्रकरणात् प्रकरणान्तराम्नानात् प्रकरणान्तराधिकरणन्यायेन काम्यस्नानान्तरमिदमप्युक्त । न तु गुणफलविधि । किन्तु काम्यकरणे प्रसङ्गान्नित्यसिद्धिरिति ॥ * ॥ अत्र माघमासनिमित्तकमाघसप्तमीनिमित्तककाम्यस्नानयोः प्रातर्विधानात् नैमित्तिकत्वेन प्रायश्चित्तवत् सकृदनुष्ठान । "प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्ग तत् क्रियते पुन । तदङ्गस्याक्रियायान्तु नावृत्तिर्न च तत्क्रिया" ॥ इति कात्यायनवचनात् ।

"न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ।
न वासोभि सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये" ॥

इति मनुवचनेनैकदाजस्रस्नाननिषेधात् ।

"धर्म्मविन्नाचरेत् स्नानमाह्निकञ्च पुन पुन" ॥

इति मनुवचनाच्च । अतएव नान्दीमुखप्रकरणशेषे प्रधानानामपि काम्यानां तत्तद्देशकालविहितानां तन्त्रेणैव सिद्धिरिति श्राद्धचिन्तामणि ॥ निष्कामविष्णुप्रीतिकामयो सुतरा सकृदनुष्ठान । गुणतारतम्यात् फलतारतम्य इति न्यायेन फल बोध्य । तत्तु इक्षुक्षीरगुडादिमाधुर्य्यभेदवन्निर्द्देष्टुमशक्य ।

"पक्षान्तरेऽपि कन्यास्थे रवौ श्राद्ध प्रशस्यते ।
कन्यागते पञ्चमे तु विशेषेणैव कारयेत्" ॥

इति हेमाद्रिधृतादित्यपुराणोक्तवत् । एतद्वचन प्रागर्द्ध कार्त्तिकमलमासाब्दविषय ।

"देशकालाश्रमक्षेत्रद्रव्यदातृमनोगुणा ।
सहशस्यापि दानस्य फलातिशयहेतव" ॥

इति ब्रह्मपुराणोक्तवच्च ॥ * ॥ तीर्थभेदे त्वेकदापि नानास्नान ।

"विषुवद्दिवसे प्राप्ते पञ्चतीर्थी विधानत" ।

इति ब्रह्मपुराणादिवचनात् । "तीर्थभेदे तन्त्रप्रसङ्गयोरसम्भवाच्च" । अतएव गङ्गावाक्यावलीतीर्थचिन्तामण्यो । यत्तु प्रयागे त्र्यहस्नाने कोटी कृतेऽपि माघसप्तमीस्नानादावसाधारणफलत्वेन पुनस्तथैव प्रात स्नानाचरण तद्युक्त तदा सकृत् स्नानस्यैव विहितत्वात् । अन्यथा तत्र्यहमध्ये कामनायां वेदानन्त्यापत्तेरित्युक्त ॥ * ॥ स्नाने परिपाटीमाह कृत्यकल्पलतायां विष्णु । सप्त बदरपत्राणि सप्तार्कपत्राणि च शिरसि निधाय ।

"यद्यज्जन्मकृत पाप मया सप्तसु जन्मसु ।
तन्मे रोगञ्च शोकञ्च माकरी हन्तु सप्तमी" ॥

इत्युच्चार्य्य स्नायादिति शेष । रोग छिद्र । विधिकृत्यस्य पौर्णमास्यन्तमासाङ्गकत्वात् माकरीपद मकरार्कारब्धचान्द्रमासीयतिथिपर ।

"तिथिकृत्ये च कृष्णादि व्रते शुक्लादिमेव च ।
विवाहादौ च सौरादि मास कृत्ये विनिर्द्दिशेत्" ॥

इति ब्रह्मपुराणान्मन्वन्तरादित्वेन तथा युक्तत्वाच्च । यथा मत्स्यपुराणे ।

"यस्मान्मन्वन्तरादौ तु रथमापुर्दिवाकरा ।
माघमासस्य सप्तम्यां तस्मात् सा रथसप्तमी ॥
अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नान महाफल" ।

अतएव नारसिंहे रथाख्यायामित्युक्त । यथा,—

"महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि चैव हि ।
तथाक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्बुध ॥
माघमासे तु सप्तम्यां रथाख्यायान्तु वर्ज्जयेत्" ।

द्वादश्यां शयनोत्थानद्वादश्यां । भरण्यां शक्रध्वजपातभरण्यामिति कल्पतरु ॥ अत्र महानवम्यादिसाहचर्य्यान्मन्वादित्व प्रतीयते । अतएव चतुर्द्दशमन्वन्तरादिगणने क्वापि न रथशब्दोल्लेखः । यथा । भविष्यमत्स्ययो ।

"अश्वयुक् शुक्लनवमी द्वादशी कार्त्तिकी तथा ।
तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥
फाल्गुनस्याप्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा ।
आषाढस्यापि दशमी तथा माघस्य सप्तमी ॥

श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढस्य पूर्णिमा ।
कार्त्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी सिता ॥
मन्वन्तरादयस्त्वेता दत्तस्याक्षयकारिकाः” ।
अत्र अमावास्याष्टमीव्यतिरिक्ताः शुक्लाः पुन-
पुनस्तथापदोपात्तकीर्त्तनादानात् । उपक्रमोपसंहा-
रयोः शुक्लत्वकीर्त्तनाच्च ॥ अत्र कामधेनौ तृतीया
चैव माघस्येति । कल्पतरौ तु तृतीया चैत्रमास-
स्येति लिखितं । अत्र पाठद्वैधे श्रीपतिरत्नमा-
लायां । “अश्वयुजि शुक्लनवमी द्वादशूर्ज्जे मधौ
तृतीया च” । इति पाठाच्चैत्रतृतीयैव ग्राह्या ।
श्रीदत्तोऽप्येवं।माघसप्तम्यास्त्वाकृत्य सौरागमेऽपि ।
“अर्कपत्रैः सबदरैर्द्दूर्व्वाक्षतसचन्दनैः ।
अष्टाङ्गविधिना चार्घ्यं दद्यादादित्यतुष्टये ॥
माघेऽथ फाल्गुने वापि भवेद्वै माघसप्तमी ।
माकरीति च यत्प्रोक्तं तत्प्रायोवृत्तिदर्शनात्” ॥
अष्टाङ्गविधिना ।
“योऽष्टाङ्गमर्घ्यमापूर्य्य भानोर्मूर्द्ध्नि निवेदयेत् ।
ताम्रपात्रार्घ्यदानेन पुण्यं दशगुणं स्मृतं” ॥
इति भविष्यपुराणीयेन । आदित्यपुराणे ।
“कृत्वराशिविशेषेण यत्कर्म्म विहितं नरैः ।
दैवं वाप्यथवा पैत्र्यं तदन्यत्रापि दृश्यते” ॥ * ॥
अर्घ्यमन्त्रस्तु ।
“जननी सर्व्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके ।
सप्तव्याहृतिके देवि । नमस्ते रविमण्डले” ॥
प्रणाममन्त्रस्तु ।
“सप्तसप्तिवहप्रीत सप्तलोकप्रदीपन ।
सप्तम्या हि नमस्तुभ्यं नमोऽनन्ताय वेधसे” ॥
सप्तिरश्वः । इति तिथ्यादितत्त्वं ॥

अरुणोपल, पु, (अरुण उपल, कर्म्मधारय ।) रक्तवर्णमणिविशेष । चुनी इति भाषा । तत्पर्य्याय । पद्मराग २ लोहितक ३ जम्बीपुष्प ४ । इति हेमचन्द्र ॥

अरुन्तुद, त्रि, (अरूंषि मर्म्माणि तुदति, तुद + खश् + मुम् च ।) मर्म्मपीडक । तत्पर्य्याय । मर्म्मस्पृक् २ । इत्यमर ॥ (परुष । कठोर । श्रवणकटु । “माकन्द मकरन्दतुन्दिलमसु गाहस्व काकः स्वयं कर्णारुन्तुदमन्तरेण रणितं त्वां मन्महे कोकिल” । इति भामिनीविलासे । मर्म्मपीडाकर । हृदयग्रन्थिरूपमर्म्मस्थानस्पर्शकारी । यथा,
“नारुन्तुदः स्यादार्त्तोऽपि न परद्रोहकर्म्मधीः” ।
इति मनु ।
“तीक्ष्णा नारुन्तुदा बुद्धि कर्म्म शान्तं प्रतापवत्” ।
इति माघः ।
“अरुन्तुदमिवालानमनिर्व्वाणस्य दन्तिन” ।
इति रघुवंशे ।)

अरुन्धती, स्त्री, (न रुन्धती ।) वशिष्ठपत्नी । तत्पर्य्याय । अक्षमाला २ । इति हेमचन्द्र ॥ सा कर्दममुनिकन्या महासाध्वी । इति श्रीभागवत ॥ आकाशे सप्तर्षिमध्ये वशिष्ठसन्निधौ तस्या उदय । गतायुषस्ता न पश्यन्ति । (यदुक्त,—
“दीपनिर्व्वाणगन्धञ्च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीं ।
न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुष” ॥
यथा च सुश्रुते,—
“न पश्यति स नक्षत्रा यस्तु देवीमरुन्धतीं ।
ध्रुवमाकाशगङ्गां वा तं वदन्ति गतायुष” ॥)
सप्तपदीगमनानन्तरं जामाता मन्त्रं पाठयन् वधूं ता दर्शयति च ॥

अरुन्धतीजानि, पु, (अरुन्धती जाया यस्य सः, निङ् ।) वशिष्ठमुनिः । इति हेमचन्द्रः ॥

अरुन्धतीनाथ, पु, (अरुन्धत्या नाथ, षष्ठीतत्पुरुष ।) वशिष्ठमुनि । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अरुष्क, पु, (अरुर्म्मर्म्मस्थानं कायति पीडयति, कै + क ।) भल्लातकवृक्ष इति शब्दरत्नावली ॥

अरुष्कर, स्त्री, (अरु करोति अरु + कृ + ट, उपपदसमास षत्वं ।) भल्लातकफल । इति हेमचन्द्र ॥

अरुष्कर, पु, (अरु करोति, अरु + कृ + ट, षत्व उपपदसमासः ।) भल्लातकवृक्ष । इति शब्दरत्नावली ॥

अरुष्कर, त्रि, (अरु करोति, अरु + कृ + ट, षत्व, उपपदसमास ।) व्रणकर । क्षतकारक । इति मेदिनी ॥

अरुहा, स्त्री, (रोहति, रुह + क, नञ्समास ।) भूधात्री । इति राजनिर्घण्ट ॥ भूमि आमला इति ख्याता ।

अरूप, त्रि, (नास्ति रूपमस्य ।) रूपशून्य । यथा । “अरूपवातातीसारादाविवारुण्य” । इति रक्षित ॥ कुत्सितरूप ।
(“इमामरूपामसतीं भक्षयिष्यामि मानुषीम्” । इति रामायणे ।)

अरूष, पु, (ऋ + ऊषन् ।) सर्पविशेष । इत्युणादिकोष ॥ सूर्य्य । इति सिद्धान्तकौमुद्यामुणादिवृत्ति ॥

अरे, व्य, (ऋ + ए ।) नीचसम्बोधन । इति हेमचन्द्र ॥ ओरे इति भाषा । अपाकृति । असूया । इति मेदिनी ॥ (रोषाह्वाने । अपकृतौ । “अरे चेतोमीन । भ्रमणमधुना यौवनजले त्यज त्व स्वच्छन्दं युवतिजलधौ पश्यसि न किम्” । इति शान्तिशतके । “अरे अनुष्ठन् । निरपराधराजकुलकदन महापातकिन् अशिष्टविकृतचेष्ट ।” इति महावीरचरिते ।)

अरेरे, व्य, (अरे + वीप्सायां द्विरुक्ति ।) अधमसम्बोधन । इति जटाधर ॥ सक्रोधाह्वान । इति शब्दमाला ॥

अरोक, त्रि, (रुच् + घञ्, नञ्समास ।) निष्प्रभ । दीप्तिरहित । इत्यमर ॥ रोकश्छिद्रन्तद्रहितश्च ॥

अरोचक, पु, (न रोचयति प्रीणयति, रुच् + णिच् + ण्वुल्, नञ्समास ।) रोगविशेष । अरुचिरोग इति भाषा । तस्य निदानरूपे ।
“वातादिभि शोकभयातिलोभ-
क्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धै ।
अरोचकाः स्यु परिहृष्टदन्त
कषायवक्त्रोऽस्य मतोऽनिलेन ॥
कट्वम्लमुष्णं विरसञ्च पूति
पित्तेन विद्याल्लवणञ्च वक्त्रं ।
माधुर्य्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्य-
विबद्धसम्बन्धयुतं कफेन” ॥ इति माधवकर ॥
अरोचका न भोजने रुचिमुत्पादयन्तीत्यरोचका व्याधय पञ्च वातजादिभेदै ॥ * ॥ वातिकस्य लक्षणमाह । परिहृष्टदन्त अम्लभक्षणेनेव परिहृष्टौ दन्तौ यत्र स । तथा कषायवक्त्र । कषायरसं वक्त्रं यत्र स ॥ * ॥ पैत्तिकमाह ।
“कट्वम्लमुष्णं विरसञ्च पूति
पित्तेन विद्याल्लवणञ्च वक्त्रं” ।
कट्वम्लमित्यादिना विद्यादित्यन्तेन पैत्तिकस्य लक्षणं ॥ * ॥ श्लैष्मिकमाह । लवणञ्च वक्त्रं कफजलक्षणेन पठनीयं । यतो विदग्ध श्लेष्मा लवणभावमुपैति ।
“माधुर्य्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्य-
स्निग्धत्वदौर्गन्ध्ययुतं कफेन” ।
पैच्छिल्य मुखस्याभ्यन्तरे । स्निग्धत्व वहि ॥ * ॥
आगन्तुजमाह ।
“अरोचके शोकभयातिलोभात्
क्रोधाद्यहृद्याशुचिगन्धजे स्यात् ।
स्वाभाविकं चास्यमथारुचिस्तु
त्रिदोषजे नैकरसम्भवेच्च” ॥
क्रोधादित्यादिशब्देनाहृद्ययोरशनरूपयोर्ग्रहण ।
स्वाभाविक । अविकृतरस ॥ * ॥ त्रिदोषजमाह ।
नैकरस अनेकरसमास्य स्यात् । वातजादिभेदेन मुखे विकृतिमभिधायान्यदेशे विकृतिमाह ।
“हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन पित्तात्
तृड्दाहचोषबहुलं सकफप्रसेकं ।
श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च विद्यात्
वैगुण्यमोहजडताभिरथापरञ्च” ॥
हृच्छूलपीडनयुतं हृदि शूलेन पीडनं तेन युतं ।
चोष पार्श्वस्थिताग्निनेव सन्ताप । बहुभिस्त्रिभिर्दोषै । बहुरुज उक्तवातादिरोगयुक्त । वैगुण्य मनसो व्याकुलत्व । जडता शून्याङ्गता । अपर आगन्तुज । भक्तद्वेषाभक्तच्छन्दौ चरकसुश्रुताभ्यामरोचकत्वेनैव संगृहीतौ ॥ * ॥ वृद्धभोजस्त्वेषां लक्षणानि पृथगाह ।
“प्रक्षिप्तन्तु मुखे चान्नं यत्र नास्वादते नर ।
अरोचक स विज्ञेयो भक्तद्वेषमत शृणु” ॥
आस्वादते अन्नस्य मिष्टता न प्राप्नोति । तदन्न मिष्टं न लगति इति यावत् ।
“चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च भोजनं ।
द्वेषमायाति यो जन्तुर्भक्तद्वेषः स उच्यते ॥
कुपितस्य भयार्त्तस्य तथा भक्तनिरोधत ।
यत्र नान्ने भवेच्छ्रद्धा सोऽभक्तच्छन्द उच्यते” ॥ * ॥
अथारोचकस्य चिकित्सा ।
“भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणं ।
रोचनं दीपनं वह्नेर्जिह्वाकण्ठविशोधनं ॥ १ ॥
शृङ्गवेररसञ्चापि मधुना सह योजयेत् ।
अरुचिश्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहं ॥ २ ॥
पक्वाम्लिका सिता शीतवारिणा वस्त्रगालिता ।

एलालवङ्गकर्पूरमरिचैरवधूलिता ॥
पानकस्यास्य गण्डूषं धारयित्वा मुखे मुहुः ।
अरुचिं नाशयत्येव पित्तं प्रशमयेत्तथा' ॥
अम्लिकापानं ॥ ३ ॥
"राजिका जीरकौ भृष्टौ भृष्टं हिङ्गु सनागरम् ।
सैन्धवं दधि गो सर्व्वं वस्त्रपूतं प्रकल्पयेत् ॥
तावन्मात्रं क्षिपेत्तत्र यथा स्याद्रुचिरुत्तमा ।
तक्रमेतद्भवेत् सद्यो रोचनं वह्निवर्द्धनम्" ॥
तक्रं ॥ ४ ॥
"गव्यमावर्त्तितं दुग्धं निबद्धं दधि माहिषम् ।
एकीकृत्य पटे घृष्टं शुभ्रशर्करया समम् ॥
एलालवङ्गकर्पूरमरिचैश्च समन्वितम् ।
नाम्ना शिखरिणी कुर्य्यात् रुचिं सकलवल्लभा ॥
शिखरिणी ॥ ५ ॥
द्वे पले दाडिमादष्टौ खण्डाच्छोषपलत्रयम् ।
त्रिसुगन्धिपलञ्चैकं चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥
तच्चूर्णं मात्रया भुक्तमरोचकहरं परम् ।
दीपनं पाचनञ्च स्यात् पीनसज्वरकासजित्" ॥
दाडिमादिचूर्णं ॥ ६ ॥
लवङ्गकक्कोलमुशीरचन्दनं
नतं सनीलोत्पलकृष्णजीरकम् ।
जलं सकृष्णागुरुभृङ्गकेसरं
कणा सविश्वा नलदं सहैलया ॥
तुषारजातीफलवंशरोचना-
सिताभ्रभागाः सकलं विचूर्णितम् ।
सुरोचनं तर्पणमग्निदीपनं
बलप्रदं वृष्यतमन्त्रिदोषजित् ॥
उरोविबन्धं तमकं गलग्रहं
सकासहिक्कारुचियक्ष्मपीनसम् ।
ग्रहण्यतीसारमुरःक्षतं तृषां
तथा प्रमेहान्निखिलान्निहन्ति हि' ॥
कक्कोलं फलं सुगन्धविशेषः । नतं तगरम् । जलं
बालकम् । भृङ्गं त्वक् । नलदमुशीरम् । तुषारं कर्पूरम् ।
लवङ्गादिचूर्णं ॥ ७ ॥ इत्यरोचकाधिकारः । इति
भावप्रकाशः ॥
('यवागूः पञ्चकोलस्य कुलत्थाढक्ययूषकम् ।
मुद्गयूषेण वा सम्यक् भक्तानां भोजनं हितम् ॥
सहिङ्ग्युषणाद्यञ्च व्यञ्जनं सम्प्रशस्यते ।
अगस्तिदलवत् श्रेष्ठं भोजनारोचकेष्वपि ॥
कारवेल्लं पटोलञ्च पलाण्डुः सुरणः शठी ।
लवणं धान्यकं श्रेष्ठं प्रलेहश्च कटुत्रिकम् ॥
शठीसर्षपवास्तूकं शतपुष्पा यमानिका ।
तुण्डीरकस्य मूलानां शाकं श्रेष्ठं प्रशस्यते ॥
गोधूमपुलिका श्रेष्ठा भृष्टाङ्गारैररोचके ।
जाङ्गलानि च मांसानि भोजयेद्भिषगुत्तमः' ॥
इति हारीतोक्तपथ्यादिनियमः ॥ ० ॥
'अरुचौ वमनो ग्राह्यो धूमः समुखधावनः ।
मनोज्ञमन्नपानञ्च हर्षणाश्वासनानि च ॥
कुष्ठसौवर्चलाजाजी शर्करामरिचं विडम् ।
धात्र्येलापद्मकोशीरपिप्पल्युत्पलचन्दनम् ॥
लोध्रं तेजोवती पथ्या त्र्यूषणं सयवाग्रजम् ।
आर्द्रा दाडिमनिर्य्यासाश्चाजाजी शर्करायुतम् ॥
सतैलमाक्षिकास्त्वेते चत्वारः कवलग्रहाः ।
चतुरोऽरोचकान् हन्युर्व्वाताद्येकजसर्व्वजान् ॥
कारवी मरिचाजाजी द्राक्षावृक्षाम्लदाडिमम् ।
सौवर्चलं गुडं क्षौद्रं सर्व्वारोचकनाशनम् ॥
वस्तिं समीरणे पित्ते विरेकं वमनं कफे ।
कुर्य्याद्धृद्यानुकूलानि हर्षणञ्च मनोघ्नजे" ॥
इति चरकोक्तारुचिचिकित्सा । सनिदानलक्षणा चि-
कित्साप्यत्र ॥ * ॥ सुश्रुतः ।
"दोषैः पृथक् सह च चित्तविपर्य्ययाच्च,
भक्तायनेषु हृदि चावतते प्रगाढ़े ।
नान्नेऽरुचिर्भवति तं भिषजो विकारं,
भक्तोपघातमिह पञ्चविधं वदन्ति ॥
हृच्छूलपीडनयुतं विरसाननत्वं,
वातात्मके भवति लिङ्गमरोचके तु ।
हृद्दाहचोषबहुता मुखतिक्तता च,
मूर्च्छा सतृड् भवति पित्तकृते तथैव ॥
कण्डूगुरुत्वकफसंस्रवसादतन्द्रा,
श्लेष्मात्मके मधुरमास्यमरोचके तु ।
सर्व्वात्मके पवनपित्तकफा बहूनि,
रूपाण्यथास्य हृदये समुदीरयन्ति ॥
सरागशोकभयविप्लुतचेतसस्तु,
चिन्ताकृतो भवति सोऽशुचिदर्शनाच्च" ॥ * ॥
चिकित्सा यथा,—
"वाते वचाम्बु वमनं कृतवान् पिबेच्च,
स्नेहैः सुराभिरथवोष्णजलेन चूर्णम् ।
कृष्णाविडङ्गयवभस्महरेणुभार्गी,
रास्नैलहिङ्गुलवणोत्तमनागराणाम् ॥
पित्ते गुडाम्बुमधुरैर्वमनं प्रशस्तं,
स्नेहः ससैन्धवसितामधुसर्पिरिष्टः ।
निम्बाम्बुवामितवतः कफजेऽनुपानं,
राजद्रुमाम्बुमधुना तु सदीप्यकं स्यात् ॥
चूर्णं यदुक्तमथवानिलजे तदेव,
सर्व्वैश्च सर्व्वकृतमेवमुपक्रमेत ॥
द्राक्षापटोलविडवेत्रकरीरनिम्ब-
मूर्व्वाभयाक्षबदरामलकेन्द्रवृक्षैः ।
बीजं करञ्जनृपवृक्षभवैश्च पिष्टै-
र्लेहं पचेत् सुरभिमूत्रयुतं यथावत् ॥
मुस्ता वचा त्रिकटुकं रजनीद्वयञ्च,
भार्गी च कुष्ठमथ निर्दहनीञ्च पिष्ट्वा ।
मूत्रेऽविजे द्विरदमूत्रयुते पचेद्वा,
पाठान्तगामतिविषा रजनीञ्च मुख्याः ॥
मण्डूकिमर्कममृताञ्च सलाङ्गलाख्या,
मूत्रे पचेत्तु महिषस्य विधानविद्वा ।
एतान् सन्ति चतुरो लिहतस्तु लेहान्,
गुल्मारुचिश्वसनकण्ठहृदामयाश्च ॥
सात्म्यान् स्वदेशरचितान् विविधांश्च भक्ष्यान्,
पानानि मूलफलषाडवरागयोगान् ।
अद्यादसांश्च विविधान् विविधैः प्रकारै-
र्भुञ्जीत वापि लघुरूक्षमनःसुखानि ॥
आस्थापनं विधिवदत्र विरेचनञ्च,
कुर्य्यान्मृदूनि शिरसश्च विरेचनानि ।
क्षीरण्युपयानि रजनीत्रिफलायुतानि,
चूर्णीकृतानि यवशूकविमिश्रितानि ॥
क्षुद्रायुतानि वितरेन्मुखधावनार्थ-
मन्यानि तिक्तकटुकानि च भेषजानि ।
मुस्तादिराजतरुवर्गदशाङ्गसिद्धैः,
क्वाथैर्जयेन्मधुयुतैर्विविधैश्च लेहैः ॥
मूत्रासवैर्गुडकृतैश्च तथात्वरिष्टैः,
क्षारासवैश्च मधुमाधवतुल्यगन्धैः ।
स्यादेषएव कफवातहृते विधिश्च,
शान्तिं गते हुतभुजि प्रशमाय तस्य ॥
इच्छाभिघातभयशोकहृतेऽन्तरग्नौ
भावान् भवाय वितरेत् खलु शक्यरूपान् ।
अर्थेषु चाप्यपचितेषु पुनर्भवाय,
पौराणिकैः श्रुतिपथैरनुमानयेच्च ॥
दैन्यं गते मनसि बोधनमत्र शस्तं,
यद्यत् प्रियं तदुपसेव्यमरोचके तु ॥ * ॥
रसगन्धौ समौ शुद्धौ दन्तीक्वाथेन भावयेत् ।
जम्बीरस्य रसैर्वापि आर्द्रकस्य रसेन वा ॥
मातुलुङ्गस्य तोयेन तस्य मज्जरसैर्बुध ।
पश्चाद्विशोष्य सर्व्वांस्तान् टङ्कणञ्चावचारयेत् ।
देवपुष्पं माणमितं रसपादं मृतामृतम् ।
माससमानञ्च तत् सर्व्वं नागरेण गुडेन वा ।
सर्व्वारोचकशूलार्त्तिमामवातं सुदारुणम् ।
सोऽयं निवारयत्याशु केशरी करिणं यथा' ।
सुधानिधिरसः ॥ * ॥ इति वैद्यकरसेन्द्रसार
सङ्ग्रहः ॥)
अर्क, क, तापे । (चुरादि उभयपदी सेट् ।) स्तुतौ ।
इति कविकल्पद्रुमः ॥ एककाकारः प्रकृतिः पञ्च-
म्फनिमित्तकाद्दिस्त विभाषया वक्तव्य । तेन क
अर्कयति अर्कायति एव सर्व्वत्र । इति दुर्गादासः ।
अर्क, पु, (अर्च + कर्म्मणि घञ्, कुत्वम् ।) सूर्य्यः ।
इन्द्रः । ताम्रम् । स्फटिकः । इति मेदिनी ॥ पण्डितः ।
इति शब्दरत्नावली ॥ ज्येष्ठभ्राता । इति दश-
दिनाथः ॥ तद्दिनया रविवारः । इति ज्योतिषम् ।
वृक्षविशेषः । आकन्द इति भाषा । तत्पर्य्यायः ।
क्षीरदलः २ पुच्छी ३ प्रतापः ४ क्षीरकाण्डकः
५ विक्षीरः ६ क्षीरी ७ खर्ज्जुघ्नः ८ शीतपुष्पकः
९ जम्भनः १० क्षीरपर्णी ११ विकीरणः १२
सदापुष्पः १३ सूर्य्याह्वः १४ आस्फोतकः १५ तूल-
फलः १६ शुकफलः १७ । इति राजनिर्घण्टः ॥
वसुकः १८ आस्फोतः १९ गणरूपः २० मन्दारः
२१ अर्कपर्णः २२ । इत्यमरः ॥ * ॥ अथ श्वेता-
र्कपर्य्यायः । अलर्कः १ राजार्कः २ प्रतापसः ३
गणरूपी ४ ॥ * ॥ अथ रक्तार्कपर्य्यायः । विकीरः
१ सदापुष्पी २ रूपिका ३ आदित्यपुष्पिका ४
दिव्यपुष्पिका ५ अर्कः ६ । इति रत्नमाला ॥
अस्य गुणाः । कटुत्वम् । उष्णत्वम् । अग्निकारित्वम् ।
वातशोथव्रणार्शःकुष्ठक्रिमिनाशित्वञ्च । इति राज-
निर्घण्टः ॥ कफदोषनाशित्वम् । तीक्ष्णत्वञ्च । अस्य
क्षीरगुणाः । क्रिमिदोषव्रणनाशित्वम् । कुष्ठार्शः-
उदररोगेषु हितकारित्वञ्च । इति राजवल्लभः ।
तस्य पर्य्यायगुणाः ।
"श्वेतार्को गणरूपः स्यान्मन्दारो वसुकोऽपि च ।

श्वेतपुष्प सदापुष्प स बालार्क प्रतापस ॥
रक्तोऽपरोऽर्कनामा स्यादर्कपर्णो विकीरण ।
रक्तपुष्प शुक्लफलस्तथास्फोत प्रकीर्त्तित ॥
अर्कद्वय सर वातकुष्ठकण्डूविषव्रणान्
निहन्ति शोथगुल्मार्श श्लेष्मोदरशकृत्क्रमीन्
शुक्लार्ककुसुम वृष्य लघु दीपनपाचन ।
अरोचकप्रसेकार्श कासश्वासनिवारण ॥
रक्तार्कपुष्प मधुर सतिक्त
कुष्ठक्रमिघ्न कफनाशनञ्च ।
अर्शो विष हन्ति च रक्तपित्त
सग्राहि गुल्मे श्वयथौ हित तत् ॥
क्षीरमर्कस्य तिक्तोष्णं स्निग्ध सलवण लघु ।
कुष्ठगुल्मोदरहर श्रेष्ठमेतद्विरेचन" ॥
इति भावप्रकाश ॥ * ॥ निर्यासविशेष । आरक
इति आरवीभाषा । तस्य विधिर्यथा,—
"द्रव्यकल्प पञ्चधा स्यात् कल्कचूर्ण रसस्तथा ।
तैलमर्क क्रमाज्ज्ञेय यथोत्तरगुण प्रिये ॥
पृथक् द्वन्द्वे सन्निपाते सङ्करेऽसाध्यरोगिणि ।
क्रमादेते प्रयोक्तव्या अन्यथा नु विनाशका ॥
आद्ये गुणा गुणा सर्व्वे द्वितीयञ्च ततो लघु ।
तृतीय शीघ्रकारि स्यात् चतुर्थ नातिदोषकृत् ॥
पञ्चम दोषरहित गुणसद्म प्रकाशक ।
पञ्चमस्य तु सामर्थ्य स्वय पञ्चाननोऽब्रवीत् ।
वर्षाणान्तु सहस्राणि कथ्यतेऽहर्निश मया ।
सम्पूर्णो नैव जायेत कल्पोऽर्कस्य दशानन ॥ * ॥
एवारे पुरुषर्द्धे च दिवार्को यस्तु निर्म्मित ॥
रमणीषु प्रदातव्यो विलोमात् पुसु योजयेत् ॥
लोहचूर्ण गैरिकञ्च खटिका भस्ममृत्तिका
मृत्तिकास्थिभव चूर्ण काच कीकसज रज ॥
एतानि समभागानि सर्व्वतुल्या च मृत्तिका
मर्दनीया पञ्चमूत्रे खराश्वमहिषोद्भवे ॥
गजाजसम्भवाभ्याञ्च शटित तद्विशोषयेत् ।
यथा गन्धविनाश स्यात् तथा समर्दयेत्तत ॥
लघुहस्त कुलालोऽस्य कुर्य्याद्यन्त्र सुनिर्म्मल ।
यथेष्टा स्थालिका कुर्य्यात् व्यङ्गुलप्रान्तसारिका ॥
पृथुबुध्नोदराकारा द्व्यङ्गुलोत्सेधवेष्टनी ।
सारिकान्ते तु परिधि त्र्यङ्गुलोत्सेधशोभिता ॥
विनिर्माथाथ सार्य्यन्ते यथा शिल्पविनिर्म्मिता ।
छिद्र कृत्वा नल दद्याद्गजशुण्डसम बुध ॥
सारिकापरिधेरन्तस्तस्य कुर्य्यात् पिधानक ।
अर्द्धनिम्बफलसम परिधि तस्य चान्तत ॥
वेदाङ्गुल मस्तकोर्द्ध्वं कार्य्य तोयस्य धारणे ।
समर्था तत्र नलिका कुर्य्यात्तोयविमोचनी ॥
तस्यैवान्तरतो लेप्या जीर्णास्थ्या मृत्तिकाम्बुना
अथवा श्वेतकाच तु सर्व्वदोषापनुत्तये ॥ * ॥
अथ वक्ष्ये तु जीर्णास्थिमृत्तिकाकरण प्रिये ।
शिलाजतुस्थले कुर्य्यात् दीर्घगर्त्त मनोहर ॥
निक्षिपेत्तत्र नानास्थिसञ्चय द्विचतुष्पदा ।
सर्ज्जिक्षार महाक्षार मृत्क्षार लवणानि च ॥
गन्धकोष्णजल क्षेप्य नानामूत्राणि तत्र वै ।
एव कृत्वा मासमष्टकं दद्यात् पाषाणमृत्तिका ॥
काष्ठस्योर्द्ध्व तदूर्द्ध्वन्तु कुर्य्याद्वह्नीष्टिका शुभा ।

त्रिवर्षाज्जायते सर्व्वमेकीभूत दृषत्सम ।
ततो निष्काश्य तच्चूर्ण कृत्वा पात्राणि निर्म्ममेत
प्रशस्त भोजन तत्र सूचयेदन्नदूषण ॥
महाविषस्य सयोगात्तस्य भङ्ग प्रजायते ।
सूचीविषादिसयोगात् यत्र स्फोटा भवन्ति च ॥
तत्र छिद्र क्षुद्रविष पात्र क्षण प्रजायते ।
एव ज्ञात्वा तत्र दद्यान्न कदाचिद्विषादिकं ॥
विषादीनामर्कसिद्धौ कुर्य्यात् पात्रन्तु लोहज ।
स्वर्णज रौप्यज वापि कुर्य्यात् पात्रमकल्मष ॥
अथवा ताम्रज कुर्य्यादन्तर्व्वङ्गविलेपित ।
पात्रन्तु बुद्ध्वा कुर्व्वीत कषायो न भवेद्रस ॥
द्रव्यान्तरस्य सयोगादर्क तैलञ्च गर्भत ।
सर्व्वेषा नि सरत्येव पाषाणस्यापि कि पुन ॥
घनसारकस्तथा तैल गन्धतालादिसम्भव ।
वेधक सर्व्वधातूना देहस्यापि च सिद्धिद ॥
यस्तैलकरणे दक्षस्तार्कानि सारणे क्षम ।
तत्तत्सेवाकरो नित्य स रोगैर्नैव बाध्यते ॥ * ॥
कुत्सितार्कस्तु यामेन द्वियामाभ्यान्तु मध्यम ।
त्रिभिर्यामैर्भवेच्छ्रेष्ठ स एवार्कस्तु सिद्धिद ॥
दद्यादधिकसौगन्ध्य यस्मिन्नर्के प्रदृश्यते
जीर्णास्थिपात्रसङ्क्रिणो द्रव्यवर्ण प्रदृश्यते ॥
शङ्खकुन्देन्दुधवलोऽन्यथा पात्रान्तरे स्थित ।
जिह्वोपरिगत स्वाद दद्याद्द्रव्यभवन्तु य ॥
तमेवार्क विजानीयादन्यज्ज्ञेय रसादिवत् ।
ज्ञात्वा सुगन्ध दुर्गन्धमर्क पुष्पादिभि सुधी ॥
गुणार्थ पश्चात् सेवेत ह्यन्यथापगुणो भवेत्
दुर्गन्ध भक्षयेदर्क यदि मोहात् कथञ्चन ॥
तदास्य जायते ग्लानिर्व्वान्तिरालस्यक तृषा ।
तद्दोषस्य विनाशाय कुर्य्याद्वान्तिमतन्द्रित ॥
दीपोद्गमप्रसूनाना पिबेदर्कपल जन ।
चम्पेल्यर्कपल वापि शीतार्त्तो मालतीभव ॥ ॥
अर्कनिष्काशनार्थाय क्रमाज्ज्ञेया षडग्नय
धूमाग्निश्चैव दीपाग्निर्मन्दाग्निर्मध्यमस्तथा ॥
खराग्निश्च भडाग्निश्च तेषा वक्ष्यामि लक्षण ।
विज्वालो यो धसशिखो धूमाग्नि स उदाहृत ॥
ससारमतिशुष्क यत् सुष्ठिमध्ये समेष्यति ।
तत्काष्ठ काष्ठमित्याहु खदिरादिसमुद्भव ॥
द्वाभ्या तस्य चतुर्थाभ्या योऽग्निर्दीपाग्निरुच्यते ।
चतुरंशेन तेनैव मन्दाग्नि परिकीर्त्तित ॥
अर्द्धीकृताभ्या द्वाभ्यान्तु मध्यमाग्निरुदाहृत ।
अर्द्धैस्तै पञ्चभि प्रोक्त खराग्नि सर्व्वकर्म्मसु ॥
मस्तकावधिपात्रस्य चतुर्दिक्षु क्रमेण च ।
प्रसरन्ति यदा ज्वाला स भडाग्निरुदीरित ॥
सार्द्धयामश्च यामश्च याममेक मुहूर्त्तक ।
मुहूर्त्तमात्रमित्येवमर्कार्थ वह्नय स्मृता ॥ * ॥
जीर्णास्थिपात्रे गृह्णीयादर्क वा काचसम्भवे ।
पाषाणसम्भवे पात्रे कास्यजेऽथ हिमस्थले ॥
पिबेदर्कमनिर्व्वाप पीत्वा ताम्बूलभक्षण ।
कुर्य्यादनुक्तताम्बूले लवङ्ग भक्षयेत्तत ॥
मर्दनादिषु सर्व्वत्र द्रव्यतैल प्रयोजयेत् ।
अर्क एव प्रयोक्तव्यो भक्षणे न तु मर्दने ॥
ये ये द्रव्यगुणा प्रोक्ता सर्व्वे तेऽर्कसमाश्रिता ।

सेवेतार्क प्रिये तस्माद्राजा परमधार्म्मिक ॥
स्वस्थेऽपि वा रोगिणे वा याच्यतेऽर्कस्तु येन वा ।
ज्ञात्वा तल्लक्षण दद्यादन्यथा ब्रह्महा भवेत् ॥ * ॥
वर्णस्वराणा प्रमिति दूतोक्तस्य तु कारयेत् ।
शक्रैर्युक्ता विगुणिता त्रिभिर्भाग समाहरेत् ॥
एकशेषे गुणा शीघ्र द्विशेषे वर्द्धते गद ।
त्रिशेषे मरण वाच्य स्वार्थ वाचयते यदि ॥
अर्क तदेतत् विज्ञाय दद्यादर्क न चान्यथा ।
गदिना तु यदा दूत प्रेषितश्चेद्विचार्य्यते ॥
नपुसकान्त्यैरूनास्तु स्वरा एकादश प्रिये ।
वर्णास्तत्सङ्ख्यका लेख्या कठवाद्याश्च तत्तले ॥
एकादशसु कोष्ठेषु क्रमादङ्कान् प्रविन्यसेत् ।
रसास्त्रयो दश वेदा पर्व्वता ऋतव कृता
वह्नय पृथिवी शून्य चन्द्रमा इति च क्रमात्
विहाय जीव दूतस्य नामाङ्काक्षरयोजन ॥
एवमेवातुरे कृत्वा द्वयोरष्टावशेषित ।
कृत्वाङ्कयोग गदिनोऽधिके शेषे शुभ भवेत् ॥
समशेषे दीर्घरोग न्यूनशेषे च तन्मृति ।
एतद्विचार्य्य दातव्यमन्यदप्यौषध बुधै ॥
चक्रद्वयन्तु योऽज्ञात्वा दद्यादर्क विमोहित ।
जायते त्वयशस्तस्य यथा मम मते सति" ॥
इति श्रीलङ्कानाथकृतार्कचिकित्साया यन्त्रविधि
शतक प्रथम ॥ * ॥
"अथात सप्रवक्ष्यामि निर्गमोऽर्कस्य भामिनि
पञ्चप्रकारद्रव्यस्य कुर्य्यान्निष्काशन भिषक् ॥
अत्यन्तकठिन चाद्य कठिनञ्च द्वितीयक ।
आर्द्र तृतीयमुद्दिष्ट चतुर्थ वुन्तुल भवेत् ॥
पञ्चमञ्च द्रवद्रव्य तेषा विधिरथोच्यते ॥ * ॥
रसवच्चूर्णयेत् द्रव्यमत्यन्तकठिनन्तु यत् ॥
द्विगुणे नि क्षिपेत्तोये छायाया स्थापयेच्च तत्
यावच्छुष्क भवेत्तोय द्रव्यञ्च शिथिल यथा ॥
तत पुन क्षिपेत्तोय पूर्व्वद्रव्यसम भिषक् ।
कृत्वाष्टप्रहर तत्तु सूर्य्यचन्द्रकरैर्मल ॥
सपूज्य गणपति सूर्य्य भैरव कुलदेवता ।
नि क्षिपेदर्कयन्त्रे तत् क्षिप्रास्यार्क समाहरेत् ॥
वर्षाधिकन्तु यत् द्रव्यमत्यन्तकठिनन्तु तत् ।
चन्दनादीनि सर्व्वाणि अत्यन्तकठिनानि च ॥
कीटैर्भुक्त घुणैर्दुष्ट यच्च गन्धविवर्ज्जित ।
रहित स्वरसेनापि नार्ककर्म्मणि योजयेत् ॥
यथार्कसस्थित द्रव्य कुर्य्याद्धोक्तस्तथा वपु ।
अर्के तरुणभैषज्य तस्मात् सयोजयेत् प्रिये ॥ ॥
यवान्यजाजीत्रिकटुभूनिम्बादिकमौषध ।
ज्ञेय तत् कठिन द्रव्य तदर्कस्य विधि शृणु ।
द्विगुण नि क्षिपेत्तोय द्रव्ये तु कठिने मते ।
अष्टप्रहरिक तच्च कुर्य्यात् पर्य्यायमेकक ॥
रक्षेत् द्रव्य द्विगुणित दृष्ट्वा देशे तु कौतुक ।
पश्चात् दत्त्वार्कयन्त्रे तत् अर्कनिष्काशयेच्छनै ॥
आर्द्रद्रव्य द्विधाप्रोक्त सरस नीरस तथा ।
सद्रुग्ध गुप्तरसक द्विधा नीरसमुच्यते ॥
वास्तूक सार्षप शाक निर्गुण्डीरण्डमार्षक ।
धत्तूराद्यमिद सर्व्वमार्द्र सरसमुच्यते ॥
एषा गणान् चूर्णयित्वा विशाप्य नि क्षिपेज्जल

मुहूर्त्तमुष्णे सस्थाप्य ग्राह्योऽर्को विबुधोत्तमैः ॥
मत्स्यानान्तु शताशेन तुल्यतोयेन सेचयेत् ।
दद्यात् घटीमर्ककरा ततोऽर्कं कलयेच्छनैः ॥
वटाश्वत्थकरीराद्यमार्द्रद्रव्यन्तु नीरस ।
विशाश नि क्षिपेत्तोय जल घर्म्मे च धारयेत् ॥
ततो निष्काशयेदर्कं क्रमरङ्गाम्रिनोक्तवत् ।
सदुग्धन्तु द्विधा प्रोक्त मृदु तीक्ष्णमिति क्रमात् ॥
सातलावस्नुसेहुण्डसौरिण्याद्यास्तु तीक्ष्णका ।
खण्डानि तेषा कृत्वाथ नि क्षिपेत् पुष्कले जले ॥
दिनत्रयञ्च निष्काश्य तोयादौषध कुट्टयेत् ।
तदा न दृश्यते दुग्ध दद्यात्तोय रदाशक ॥
निष्काशयेच्छनैरर्कं स तु तीक्ष्णार्कसञ्ज्ञक ।
दुग्धिकार्कक्षीरिण्याद्या मृदुदुग्धा प्रकीर्त्तिता ॥
जले चतुर्गुणे दद्यात्तान् घर्म्मे विनिवेशयेत् ।
यावज्जलस्योष्णता स्यात् ततो यन्त्रे विनि क्षिपेत् ॥
आदावौषधचूर्णयित्वा षष्ठाशजलसयुत ।
एव द्रव्य लज्जयित्वा स्वयुक्त्यार्कं विनिर्हरेत् ॥
खण्डीकृत्य च आमानां फलाना मृदुकायिना ।
सरसानाञ्च गृह्णीयादर्कं तोयेन वर्ज्जित ॥ * ॥
काष्ठोडम्बरिकादीना आमाना दार्य्यभागिना ।
कृत्वा स्वल्पानि खण्डानि अशीत्यश प्रदापयेत् ॥
पृथक् पृथक् च तुवरीं सर्ज्जिक्षारञ्च सैन्धव ।
दत्त्वा विमर्दयेत् सर्व्वं चत्वारिशाशक जल ॥
क्षिप्त्वा तत्कलस घर्म्मे यामार्द्धेनोष्णता भवेत् ।
ततो यन्त्रे तु तद्दत्त्वा गृह्णीयादर्कमुत्तम ॥
अतिपक्वफलानान्तु वीर्य्यतस्त्वार्कमाहरेत् ।
पुष्पार्कार्थं षोडशाश जल पुष्पेषु दापयेत् ॥
बकुवारफलादीनि चिञ्चिकादीनि यानि च ।
क्षेप्याण्युत्तोदके तानि वुल्बुलत्वस्य शान्तये ॥
ततश्चत्वारिंशदश जल दत्त्वा समाहरेत् ।
तेषामर्कमथ द्रावद्रव्यार्कोपाय उच्यते ॥
द्रवद्रव्योत्क्षेपशान्त्यै प्रोच्यते वापकल्पना ॥ * ॥
पिधानानि विचित्राणि तेषामन्तो न विद्यते ॥
शतपत्रप्रसूनैर्व्वा जात्युत्थैर्मालतीभवै ।
गुलाबपारिजातैश्च केतकीजै समाचरेत् ॥
दुग्धे दध्नि रसे तक्रे क्षौद्रे तैले च सर्पिषि ।
मूत्रादौ देहतोये च चम्बेल्यादिपिधानक ॥ * ॥
कान्तपाषाणसत्वस्य कृत यन्त्रमनुत्तम ।
निष्काशयेत् सर्व्वथार्कं द्रवद्रव्यस्य नान्यथा ॥
अथवा स्तम्भक द्रव्य दध्नस्तु नवनीतक ।
वर्षदक्षौजलस्योक्ता मधूच्छिष्टन्तु सर्पिष ॥
गोकण्ठकन्तु दुग्धस्य तथा मद्यस्य किण्वक ।
तैलस्य तस्य पिण्याक सर्व्वं घृतसमन्वित ॥
यन्त्रे दत्त्वा द्रवद्रव्य ययोस्थालीनिवेशन ।
तथा स्थल स्थापयित्वा द्रवैर्यन्त्र प्रपूरयेत् ॥
आच्छाद्य सार्ककै पूर्ण स्थालीं दद्यादधोमुखीं ।
तया चाकर्षित सर्व्वो द्रव फेन परित्यजेत् ॥ * ॥
दुर्गन्धिर्य्यो भवेदर्कस्त कुर्य्यात् सुचिगन्धक ।
सर्व्वेषामेव मांसाना दुर्गन्धानाञ्च सर्व्वश ॥
घृताभ्यक्ता हिङ्गुजीरमेथिका राजिका कृता ।
नवीनायां हण्डिकाया दद्यात् द्रव्य पुन पुन ॥
तत्र दद्यासदर्कन्तु यथा दुर्गन्धतां भजेत् ।

तथा पुनः पुनः कार्य्य जायते गन्धवारण ॥
आयाति रोचको गन्धो भवेत्तद्वह्निदीपन ॥ * ॥
सर्व्वेष्वर्कप्रयोगेषु गन्धपाषाणवासना ॥
अर्काणान्तु प्रदातथा ते भवन्त्यर्कसम्भवा ।
सर्व्वत्र वातरोगेषु महिषाक्षादिवासना ॥
महिषाक्षस्तथा राल निर्य्यास सर्व्वकस्य च ।
कृष्णागुरु कदम्बश्च महिषाक्षादिपञ्चक ॥
सर्व्वेषु पित्तरोगेषु चन्दनादिकवासना ।
सर्व्वेषु कफरोगेषु जटामांस्यादिवासन ॥
चन्दनञ्च तथोशीर कर्पूरो गन्धवाकुची ।
एलाकर्चूरगोङ्गला सप्तैते चन्दनादय ॥
जटामासी नख पत्री लवङ्ग तगर रस ।
शिलाया गन्धपाषाण सप्त मास्यादिका अमी ॥
वासयेद्वा दशाङ्गेन त्रिदोषघ्नेन चार्कक ।
नश्यन्ति यस्य धूपेन अवग्रहपिशाचका ॥
पञ्चाशद्गन्धपाषाणात् तावन्महिषगुग्गुलु ।
चतुरश चन्दनञ्च जटामासी च तावती ॥
त्रिभाग सर्ज्जका सारस्तावदेव हि रालक ।
उशीर तु द्विभाग स्यात् घृतभृष्ट नख सम ॥
कर्पूरो मृगनाभिश्च एकभागौ प्रकीर्त्तितौ ।
एष दशाङ्गधूपस्तु रुद्रस्यापि मनो हरेत् ॥ * ॥
पलाण्डुलशुनादीना निर्गन्धीकरण मृणु ।
उत्पाद्यान्तर्व्विष सम्यक् तक्रमध्ये विनि क्षिपेत् ॥
पर्य्यायमेकमत्यम्लमध्येऽस्मिन् विरसे सति ।
दद्यान्निष्काश्यान्यतक्र कुर्य्यात्तच्चाष्टमांशक ॥
द्रोणपुष्पीरसेऽप्येव मूर्व्वापत्ररसेऽपि वा ।
त्रिपर्य्यायोत्तर तत्तु रसोन क्षालयेत् सुधी ॥
हरिद्राराजिकातोये स्थाप्य पर्य्यायमेकक ।
उष्णोदकेन सक्षाल्य पर्य्याय वासयेत्तत ॥
सहस्रपत्रीपुष्पैर्व्वा अभावे पल्लवैरपि ।
आलोडयेद्दशांशेन पञ्चांशेन च मस्तुना ॥
युक्त कृत्वा याममात्र स्थापयेत् प्रकटातपे ।
ततो निष्काशयेदर्क गात्यादिकपिधानित ॥
अस्यार्कस्य सुगन्धेन एकदा मोहितो हर ।
को जानाति रसोनस्य अर्कोऽयमिति भूतले ॥
एकत सर्व्व एवार्का म.सार्कस्तु तथैकत ।
मया स्वर्गे गृहीतस्तु प्राप्त तत्र च माम्रुल ॥
तदा प्रोक्त शिवस्याग्रे मम धिग् जीवित प्रभो ।
नीता वाथ प्रमुक्ता वा सुधा देवैर्मया श्रुत ॥
न दृष्टा तत्र देवेश शिरश्छेद करोम्यह ।
तत प्रसन्नो गिरिशो वाक्य मा प्रति सोऽब्रवीत् ॥
दत्त मया समस्त ते देवावध्यत्वमेव च ।
किन्ते कार्य्यन्तु सुधया सुधातोऽधिकरोचन ॥ * ॥
सप्रवक्ष्यामि मांसार्कं मद्यस्यार्कं तथैव च ।
द्रव्याणा विजयादीना लभ्यते यै सुख महत् ॥
मासन्तु त्रिविध ज्ञेय मृदुल कठिन घन ।
तेषामर्क यथा प्रोक्त यन्त्रान्निष्काशयेच्छनैः ॥
मृदुल यद्भवेन्मासं चत्वारिंशाशक पटुः ।
स्थूलखण्डीकृते तस्मिन् दत्त्वा तत् क्षालयेच्छनै ॥
मध्यशेषाष्टगन्धेन तद्विलोड्य च नि क्षिपेत् ।
रसमिच्छोरष्टमाश तदभावे पय क्षिपेत् ॥
जातीपत्र लवङ्गञ्च त्वगेला नागकेशर ।

मरिच मृगनाभिश्च विदुर्गन्धाष्टक बुधा ।
कार्य्यं पुष्पपिधानाद्यमर्कं निष्काशयेत्ततः ।
जायतेऽसौ महास्वादु सुधासमरसः प्रिये
दृढमासस्य खण्डानि लघून्येव प्रकल्पयेत् ।
दद्याच्च तुवरीं तत्र लवङ्ग प्रोक्तया दिशा ।
क्षालयेदारनालेन त्रिवार कोष्णवारिणा ।
क्षालयेत् सप्तवाराणि हरेदर्कन्तु पूर्व्ववत् ।
दृढमासस्य खण्डानि कुर्य्यादतिलघूनि च ।
आलोड्य शङ्खद्रावेण क्षालयेत् पयसा पुन
सप्तवाराणि लवण चयेत् पूर्व्ववदेव हि ।
तद्दत्त्वा यन्त्रमध्ये तु हरेत् पूर्व्ववदर्कक ।
सर्ज्जिक्षार यवक्षार श्वेतक्षारञ्च टङ्कण ।
सौभाग्यक्षारक सौरक्षार शङ्खभव तथा ।
अर्कसेहुण्डपालाशक्षारञ्च तुवरी तथा ।
अपामार्गभव क्षार तथाष्टौ लवणानि च ।
लवणाष्टकमेतच्च सैन्धवञ्च सुवर्चल ।
विड समुद्रसजातं उद्भिद रोमक गड ।
कृत्वा सर्व्वाणि चैकत्र निम्बुनीरेण भावयेत् ।
एकविंशतिवाराणि काचकूप्यां विनिःक्षिपेत्
नखाशनिम्बुरसकै सर्व्वमार्द्रीकृतञ्च तत् ।
अध सच्छिद्रपीठरीं मध्ये कूप्यां निवेशयेत् ।
मृत्कर्पटसमायुक्ता सच्छिद्रमि यथाविधि ।
तस्याग्रे कूपिका योज्या दीर्घकण्ठा मनोहर
सा कूपिका तले स्थाप्या मेलयेच्च दयोर्म्मुख
जलमुष्ण यथा न स्यात् तथा चापरकूपिका
अमय क्रमतो देया यामयामश्च पञ्च च ।
अनेनैव प्रकारेण क्षारार्काणा समुद्भवः ।
दद्यादस्थीनि मासानि शङ्खशुक्त्यादिकान्यपि
सर्व्वाण्यपि विलीयन्ते शङ्खद्रावे न सशय ॥ *
पारावताजचटकशशशूकरटिट्टिभाः ।
क्षुद्रमत्स्यादिका सर्व्वे मासेषु मृदुला स्मृताः
मृगरोहितकाद्याश्च मत्स्या शल्कीसम्बरा
एते कठिनमासा स्यु पक्षिणो जलचारिका
गजकुम्भीरघण्टाद्या सुगन्धा वर्करादयः ।
गोधा गोऽश्वा लुलापाद्या घनमांसाः प्रकीर्त्तित
अन्नादिसम्भवो योऽर्कस्तन्मद्य परिकीर्त्तित ।
तस्य भेदान् प्रवक्ष्यामि शटित तत् समुद्धरेत्
तद्वासनानिवृत्यर्थमष्टगन्ध प्रयोजयेत् ।
पूर्व्वोक्तैर्धूपयेद्रूपैर्ज्जायते गन्धवर्ज्जित ॥
अर्द्धं तत्र जल देय सिद्धे देयोऽष्टगन्धक ।
तुषोदकैर्यवैरामै सतुषै सकलीकृतैः ।
सौवीरन्तु यवैरामै सतुषै सकलीकृतै ।
गोधूमैरपि सौवीर जायते स्वल्पमादकं ।
आरनालन्तु गोधूमैरामै स्याम्निस्तवीकृतै ।
धान्याम्ल शालिचूर्णादिकोद्रवादिकृतं भवेत् ।
शण्डाकीराजिकायुक्तैः स्यान्मूलकदलद्रवै ।
सर्षपस्वरसैर्व्वापि शालिपिष्टकसयुतैः ।
कन्दमूलफलादींश्च सस्नेहलवणानि च ।
एकीकृत्य कृतोऽर्को यस्तत्सुक्तमभिधीयते ।
पक्वौषधाम्बुसंसिद्धो योऽर्कस्तत् स्यादरिष्टक ।
अरिष्टलघुपाकेन सर्व्वतश्च गुणाधिक ।
शाल्मिपिष्टकमिष्टादिकृतो योऽर्कं सुरा तु सा

पुनर्नवाशिवामिश्रैर्विहिता वारुणी स्मृता ॥
इक्षोः पक्वै रसैः सिद्धः सीधुः पक्वरसश्च च ।
आमैस्तैरेव यः सिद्धः स च शीतरसः स्मृतः ॥
पर्य्यायावाप्नुवेन्मर्त्यं तामसं राक्षसप्रिय ।
मण्डलावाग्राजसन्तु तदूर्द्ध सात्विकं भवेत् ॥
सात्विके गीतहास्यादि राजसे साहसादिकं ।
तामसे निन्द्यकर्म्माणि निद्राञ्च मदिरा चरेत् ॥
भङ्गादिमत्तद्रव्याणां यवानीपादयोगतः ।
अर्कं निष्काशयेद्धीमान् बोधकः स्यान्मदस्य स ॥
धुस्तूरादिकवीजानि तर्कं पयसि निक्षिपेत् ।
कण्ठशोषविबन्धादिरहितोऽर्को भवेत् सहि" ॥
इति श्रीलङ्कानाथकृतार्कचिकित्सायां यन्त्रशतकं द्वितीय ॥ * ॥
"अथातः सम्प्रवक्ष्यामि केवलार्कगुणान् प्रिये ।
हरीतक्याः शूलहृत्कफकामलानाहनाशनः ॥
विभीतकस्य तृट्छर्द्दिकफकासविनाशनः ।
आमलस्य त्रिदोषास्रपित्तमेहान् विनाशयेत् ॥
पिप्पल्याः श्वासकासामवातार्शोज्वरशूलहृत् ।
मरीचस्य कृमीन् श्वासं हरेत् सर्व्वान् गदानपि ॥
ग्रन्थिकस्य प्लीहगुल्मकफवातोदरापहः ।
चव्यार्कोऽत्यन्तरुचिकृत् विशेषाद्गुदजापहः ॥
अर्कस्तु गजपिप्पल्या वातश्लेष्माग्निमान्द्यनुत् ।
चित्रकस्याग्निकृत् कासग्रहणीकृमिशोथहा ॥
यवान्याः पाचनो रुच्यो दीपनः शुक्रशूलहृत् ।
अजमोदोद्भवो वातकफहा वस्तिशोधनः ॥
पारसीकयवान्यास्तु ग्राही पाचनमादनः ।
जीरकस्य तु संग्राही गर्भाशयविशुद्धिकृत् ॥
कृष्णजीरस्य चक्षुष्यो गुल्मच्छर्द्यतिसारजित् ।
कारव्या बलकृत् ह्यर्को ज्वरघ्नः पाचनः सरः ॥
धान्यार्कस्य तृषादाहवमिश्वासत्रिदोषहृत् ।
शोथज्वरानिलश्लेष्मव्रणशूलाक्षिरोगहृत् ॥
मिश्रेयाया वह्निमान्द्ययोनिशूलकृमीन् हरेत् ।
ज्वालामरीचकस्यापस्मारभूतत्रिदोषहृत् ॥
मेथिकायाः श्लेष्मवातज्वरामकफनाशनः ।
वनमेथ्याः सर्व्वरोगान् हरेत् कुञ्जरवाजिनां ॥
चन्द्रशूरस्य हिक्कासृग्वातहृत् पुष्टिवर्द्धनः ।
हिङ्गुनः पाचनो रुच्यः कृमिशूलोदरापहः ॥
वचाया वह्निवमिकृत् विबन्धाध्मानशूलहृत् ।
पारसीकवचायास्तु भूतोन्मादबलं हरेत् ॥
कुलिञ्जनस्य स्वरकृत् हृत्कण्ठमुखशोधनः ।
स्थूलग्रन्थिभवस्त्वार्को विशेषात् कफकासनुत् ॥
द्वीपान्तरवचायास्तु हरेत्कुष्ठं फिरङ्गकं ।
हपुषाया हरेत् शीघ्रं विषं मोहञ्च दारुणं ॥
हपुषाया समीरार्शोग्रहणीगुल्मशूलहृत् ।
विडङ्गस्योदरश्लेष्मकृमिवातविबन्धनुत् ॥
तुम्बुरोर्गुरुताश्वासकासप्लीहकृमीन् हरेत् ।
वंशरोचनजस्तृष्णाक्षयकासज्वरान् हरेत् ॥
समुद्रफेनजः शीतो लेखनः कफहृत् सरः ।
जीरकोत्थः शुक्रकफबलकृच्छीतलः समः ॥
आर्षभः पित्तदाहास्रकासवातक्षयापहः ।
महामेदोद्भवोऽर्कस्तु रुच्यस्तन्यः कफावहः ॥
महामेदोद्भवः शीतो रक्तपित्तक्षयप्रणुत् ।

काकोल्याः शुक्रलः शीतः पित्तशोषज्वरापहः ॥
क्षीरकाकोलिकाजातो वृंहणो दाहवातहा ।
ऋद्ध्या वल्यस्त्रिदोषघ्नो रक्तपित्तविनाशनः ।
वृद्ध्या गर्भप्रदः शीतः क्षतकासक्षयापहः ॥
मधुयष्ट्याः केशकरः स्वर्य्यः पित्तानिलास्रजित् ।
जलयष्ट्या विषच्छर्द्दितृष्णाग्लानिक्षयापहः ॥
कम्पिल्लस्य विरेकी स्यात् मेहानाहविकारनुत् ।
आरग्वधस्य पित्तास्रवातोदावर्त्तशूलहृत् ॥
कट्व्या मेहश्वासकासकृमिकुष्ठज्वरापहः ।
भूनिम्बस्य तृषाकुष्ठज्वरव्रणकृमिप्रणुत् ॥
भद्राया वस्तिपित्तास्रकृमिवीसर्पकुष्ठनुत् ।
मदनोत्थः छर्द्दनेन चातुर्थज्वरकादिहृत् ॥
राश्लोद्भवः समीरास्रवातशूलोदरापहः ।
नागभिन्नोद्भवो भोगिलुताद्याखुविकारहृत् ॥
माचिकाजस्तु पित्तास्रपक्वातीसारहा लघुः ।
तेजस्विन्याः श्वासकासकफहृद्वह्निदीपनः ॥
ज्योतिष्मत्या वान्तिकरो वह्निबुद्धिस्मृतिप्रदः ।
कुष्ठस्य हन्ति वातास्रकासकुष्ठमरुत्कफान् ॥
पौष्करस्यारुचिश्वासान् विशेषात् पार्श्वशूलनुत् ।
हैमाह्वाया रेकवान्तिकरः कण्डूविनाशनः ॥
शृङ्ग्या हरेदूर्द्धवातहिक्कातृष्णाक्षयस्वरान् ।
कट्फलोत्थः श्वासकासप्रमेहार्शोऽरुचीन् हरेत् ॥
भार्ग्या हरेत् कफश्वासपीनसज्वरमारुतान् ।
पाषाणभेदजो योनिरोगकृच्छ्राश्मगुल्महा ॥
धातकीजस्तृषासारविषक्रिमिविसर्पजित् ।
मञ्जिष्ठाजो विषश्लेष्मरक्तातीसारकुष्ठहा ॥
कुसुम्भजो वर्णकरो रक्तपित्तकफापहः ।
लाक्षाजः कृमिवीसर्पव्रणोरक्षतकुष्ठहा ॥
हरिद्राया मेहशोथत्वग्दोषव्रणपाण्डुनुत् ।
आरण्यकहरिद्राया कुष्ठवातास्रनाशनः ॥
कर्पूरकहरिद्राया सर्व्वकण्डूविनाशनः ।
दार्व्या विशेषतो लेपात् नेत्रकर्णास्यरोगनुत् ॥
रसाञ्जनोद्भवो नेत्रविकारव्रणदोषहृत् ।
वाकुच्याः कृमिविष्टम्भपाण्डुशोथकफापहः ॥
प्रपुन्नाटस्य हन्त्येव कण्डूदद्रुविषानिलान् ।
विषाजो दीप्तिकृत् पाके कफपित्तातिसारहा ॥
लोध्रजः शीतलो ग्राही चक्षुष्यः कफपित्तनुत् ।
वृहत्पञ्चमूलोद्भवो नेत्र्योदरातीसारशोथहृत् ॥
भल्लातकोद्भवो हन्यात् ज्वरोदरकृमिव्रणान् ।
गुडूच्या दीपनो ग्राही कासपाण्डुज्वरापहः ॥
ताम्बूल्या मुखदौर्गन्ध्यमलवातश्रमापहः ॥
वैल्वः श्लेष्महरो वल्यो लघुरुष्णश्च पाचनः ॥
गम्भारीजो भ्रमतृष्णाशूलार्शोविषदाहहृत् ।
पाटल्याश्छर्द्दिशोथास्रतृट्श्लेष्मारुचिदाहहा ॥
अग्निमन्थोद्भवः शोथकृमिपाण्डुबलासनुत् ।
श्योनाकजस्तु गुल्मार्शःकृमिहृद्दीपिकृत् ॥
शालिपर्ण्याः क्षतकृमिज्वरच्छर्द्यतिसारहा ।
पृश्निपर्ण्या ज्वरश्वासरक्तातीसारदाहजित् ॥
वार्त्ताक्या ज्वरवैरस्यमलारोचककसूलहा ।
कण्टकार्य्या गर्भकरः पाचनः कफकासहा ॥
गोक्षुरस्याश्मरीमेहकृच्छ्रहृद्रोगवातहा ।
जीवन्त्याः सारहृन्नेत्रदोषत्रितयनाशनः ॥

मुद्गपर्ण्या शोथदाहग्रहण्यर्शोऽतिसारहृत् ।
माषपर्ण्या शुक्रकरो वातपित्तज्वरास्रजित् ॥
पञ्चाङ्गुलोद्भवः शूलशिरःपीडोदरापहः ।
एरण्डकोत्थो भग्नश्वासकासकुष्ठाममारुतान् ॥
मन्दारजो वातकुष्ठकण्डूव्रणविषापहः ।
अर्कार्कः प्लीहगुल्मार्शःश्लेष्मोदरकृमीन् हरेत् ॥
वज्रीजो लेपतो हन्यादश्मशोथोदरव्रणान् ।
सातलोत्थः कफानाहपित्तोदावर्त्तशोथहा ॥
लाङ्गल्या लेपतो हन्यात् शोफाश्मव्रणदुर्गतः ।
करवीरोद्भवो नेत्रकोपकुष्ठव्रणापहः ॥
चण्डालोत्थस्तु विषवत् भक्षणे लेपने सुहृत् ।
धत्तूरजो हरेत् क्लेशयूकाकृमिविषादिकं ॥
वासोद्भवो ज्वरच्छर्द्दिमेहकुष्ठक्षयापहः ।
पर्पटो हन्ति पित्तास्रभ्रमतृष्णाकफज्वरान् ॥
निम्बजो भ्रमतृट्कासज्वरारुचिवमिप्रणुत् ।
महानिम्बोद्भवो गुल्ममूषिकाविषनाशनः ॥
पारिभद्रोऽनिलश्लेष्मशोथमेदःकृमिप्रणुत् ।
काञ्चनारो गण्डमालागुदभ्रंशव्रणापहः ॥
कोविदारस्तु पित्तास्रप्रदरक्षयकासहा ।
शोभाञ्जनार्को रुचिकृत् शुक्रलो ग्राहिदीपनः ॥
मधुशिग्रूद्भवो हन्यात् विद्रधिश्वयथुक्रिमीन् ।
शिग्रुजो विषहृन्नेत्र्यो नस्येनाक्षिशिरोगहृत् ॥
गिरिकर्ण्या कुष्ठशूलशोथव्रणविषापहः ।
सिन्धुवारोद्भवो हन्ति शूलशोथाममारुतान् ॥
निर्गुण्ड्यर्को हरेज्जन्तुव्रणकुष्ठारुचीन् लघुः ।
कौटजो दीपनः शीतः कफतृष्णामकुष्ठजित् ॥
कारञ्जः कफगुल्मार्शोव्रणक्रिमिविषापहः ।
घृतकारञ्जको भेदी वातार्शःकृमिकुष्ठजित् ॥
करञ्ज्या वमिवातार्शःकृमिकुष्ठप्रमेहजित् ।
उच्चटार्कः केशकरो वातपित्तकफापहः ॥
गुञ्जाया हरते श्वासमुखशोषभ्रमज्वरान् ।
कपिकच्छूद्भवो रुच्यो वृंहणो वाजिकर्म्मकृत् ॥
मासरोहिण्युद्भवस्तु हृद्यो दोषत्रयापहः ।
चिक्कः कुर्य्याद्धातुपुष्टिं तत्कालान्मारयेज्जनान् ॥
पुस्तकान्तरे चेल्हुरिति च पाठः ॥
कण्टकार्य्या दीपनः श्लेष्मशोथोदररुजं हरेत् ।
वैतसो हरते दाहशोथार्शोयोनिरुग्व्रणान् ॥
जलवेतसजो ग्राही शीतो वातप्रकोपनः ॥
इज्जलार्कस्तु हरते चराचरविषं स्फुटं ॥
अङ्कोठकस्य शूलामशोथग्रहविषापहः ।
बलार्को ग्राही वातास्रपित्तास्रक्षतनाशनः ॥
अतिपूर्व्वबलार्कस्तु मूत्रातीसारनाशनः ।
महाबलार्को हरते कृच्छ्रं वातानुलोमनः ॥
नागपूर्व्वबलार्कस्तु मूर्च्छामोहहरः परः ।
लक्ष्मणार्कन्तु सेवेत बन्ध्यापि लभते सुतं ॥
स्वर्णवल्ल्याः शिरःपीडात्रिदोषान् हन्ति दुग्धदः ।
कार्पासार्कः कर्णसस्यः कर्णरोगान् विनाशयेत् ॥
वंशजः कफपित्तघ्नः कुष्ठास्रव्रणशोथजित् ।
नलार्को वस्तियोन्यर्त्तिदाहपित्तविसर्पहृत् ॥
पाक्या नयेत् ज्वरच्छर्द्दिकुष्ठातीसारहृद्गुणः ।
श्वेतरक्तोद्भवो रेकी पित्तार्शोदरापहः ॥
शरपुङ्खोद्भवः प्लीहान् गुल्मव्रणविषापहः ।

नवाखजो मदभ्रान्तिपित्तास्रकुष्ठकासजित् ॥
मण्डूकोऽत्यन्तबलकृत् शीतमोहानिलार्त्तिजित् ।
अपामार्गभवश्छर्द्दिकफमेदोऽनिलापहः ॥
आरक्तापामार्गभवो धातुस्तम्भनकारकः ।
कोकिलाक्षभवः शीघ्रं सेकाच्छोफान्निवारयेत् ॥
अस्थिसंहारिकायास्तु भग्नसन्धानकृच्छिवे ।
कुमारिकाया उत्थोऽग्निदग्धविस्फोटकान् जयेत् ॥
पुनर्नवायाः श्वेतायाः सर्व्वनेत्रामयापहः ।
पुनर्नवाया रक्ताया ग्राही पित्तास्रनाशनः ॥
प्रसारिण्या वातहरो वृष्यः सन्धानकृत् सरः ।
सारिवाया वह्निमान्द्यकासामविषनाशनः ॥
भृङ्गराजस्य दन्तोऽर्कः केश्यस्त्वच्यः शिरोऽर्त्तिहृत् ।
शणपुष्पीलतायास्तु अर्कः पित्तकफान्तकः ॥
त्रायन्त्यर्कः शूलविषविलेपीज्वरनाशनः ।
मूर्व्वाया मोहहृद्रोगकण्डूकुष्ठज्वरापहः ॥
काकमाच्या नेत्रहितश्छर्द्दिहृद्रोगनाशनः ।
काकनासाभवो वामी शोथार्शःश्वित्रकुष्ठहृत् ॥
काकजङ्घोद्भवो हन्यात् ज्वरकण्डूविषक्रिमीन् ।
नागिन्यास्तु हरेच्छूलयोनिदोषवमिक्रिमीन् ॥
मेषभृङ्ग्याः श्वासकासप्रशस्तो श्लेष्माधिशूलहा ।
हंसपाद्या हन्ति शूलभूतरक्तविषव्रणान् ॥
सोमवल्लयास्त्रिदोषघ्नः चीरहश्च रसायनः ।
आकाशवल्ल्याः शीतोऽर्कः पित्तश्लेष्मामनाशनः ॥
पातालगरुडीजातोऽर्को वृष्यः पवनापहः ।
वन्दाकजोद्भवोऽर्कस्तु विषरक्षोग्रहापहः ॥
वटपत्रीभवस्तोष्णो योनिमूत्रगदापहः ।
हिङ्गुपत्र्या विबन्धार्शःश्लेष्मगुल्मानिलापहः ॥
वंशपत्र्याः पाचनोष्णो हृद्वस्तिगदसङ्घहृत् ।
मत्स्याक्ष्यर्को ग्राहिशीतकुष्ठपित्तकफास्रजित् ॥
सर्पाक्ष्या रोपणः सर्पवृश्चिकोन्दुरदंशहृत् ।
शङ्खपुष्प्या विषहरः स्मृतिकान्तिबलाग्निदः ॥
अर्कपुष्प्याः क्रमिश्लेष्ममेहपित्तविकारजित् ।
लज्जालुकाया भगरुग्रक्तपित्तातिसारहृत् ॥
अलम्बुषासम्भवोऽर्कः क्रमिपित्तकफापहः ।
दुग्धिकायाः कफहरो वृष्यस्तम्भी क्रिमिप्रणुत् ॥
भूम्यामलक्या कासतृष्णाकफपाण्डुक्षतापहः ।
ब्राह्म्या बुद्धिप्रदश्चार्कः षण्मासाभ्यासतः कविः ॥
मण्डूकपर्णिका पाण्डुविषशोथज्वरान् हरेत् ।
द्रोणपुष्प्या ज्वरश्वासकामलाशोथजन्तुजित् ॥
सूर्य्यमुख्या हरेत् स्फोटयोनिरुक्क्रिमिपाण्डुता ।
वन्ध्याकर्कोटिकाजातः सर्पदर्पप्रणाशनः ॥
मार्कण्डिकाया दुर्गन्धविषगुल्मोदरापहः ।
देवदाल्याः शूलगुल्मश्लेष्मार्शोवातजित् परः ॥
धत्तूरजो ग्राहिहिमो वह्निकृद्व्रणदाहहा ।
गोजिह्वाया रेष्ककासप्रश्वासारज्वरापहः ॥
नागपुष्प्याः सर्पविषसर्व्वग्रहनिवारणः ।
वेश्मन्तरो मूत्रघातास्मरीयोन्यनिलार्त्तिजित् ॥
छिक्कन्या वह्निकृच्चित्तदर्पःकुष्ठक्रमिप्रणुत् ।
कौकुन्दरो ज्वरं रक्तं मुखशोषं कफं हरेत् ॥
सुदर्शनार्कस्त्वत्युष्णः कफशोथास्रवातजित्" ।
इति श्रीलङ्कानाथकृतार्कचिकित्सायामौषध्यर्कविधानं तृतीयशतकम् ॥ • ॥ अतः परं नानौषधविधानं चतुर्थशतकम् । नानारोगनिवारणार्थं पञ्चमशतकम् । विस्फोटकनिवारणार्थं षष्ठशतकम् । क्षुद्ररोगादेर्निवारणं सप्तमशतकम् । कार्म्मणं नामाष्टमशतकम् । गणसंख्या नवमशतकम् । धातुशुद्धिर्दशमशतकम् । एतत् सर्व्वं अर्कप्रकाशे रावणमन्दोदरीसंवादे अस्ति बाहुल्यभिया न लिखितम् ॥
("अर्कक्षीरं सुधाक्षीरं तिक्तातुम्ब्याश्च पल्लवाः ।
करञ्जो वत्समूत्रञ्च लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम्" ॥
इति चक्रपाणिसङ्ग्रहः ॥ • ॥
"अर्कालर्ककरञ्जद्वयनागदन्तीमयूरकभार्गीरास्नेन्द्रपुष्पीक्षुद्रश्वेतामहाश्वेतावृश्चिकाल्यलवणास्तापसवृक्षश्चेति" । इति अर्कादिगणः ॥
"अर्कादिको गणो ह्येष कफमेदोविषापहः ।
क्रिमिकुष्ठप्रशमनो विशेषाद्व्रणशोधनः" ॥
इति सुश्रुतः ॥)

अर्ककान्ता, स्त्री, (अर्कोऽर्ककिरणः कान्तोऽनुकूलो यस्याः सा, कम्+क्तः स्त्रियां टाप् ।) आदित्यभक्ता । इति राजनिर्घण्टः ॥ हुड्हुडिया इति ख्याता । इति राजनिर्घण्टः ॥ (अस्या गुणा आदित्यभक्ताशब्दे ज्ञातव्याः ॥)

अर्कचन्दनं, क्ली, (अर्कस्य प्रियं चन्दनं, षष्ठीतत्पुरुषः ।) रक्तचन्दनम् । इति राजनिर्घण्टः ॥ (रक्तचन्दनशब्देऽस्य गुणावली ज्ञेया ॥)

अर्कजौ, पु, (अर्काज्जायेते यौ, अर्क+जन् ड, पञ्चमीतत्पुरुषः ।) अश्विनीकुमारौ । नित्यद्विवचनान्तशब्दोऽयम् । इति हेमचन्द्रः ॥

अर्कतनयः, पुं, (अर्कस्य तनयः, षष्ठीतत्पुरुषः ।) कर्णराजः । इति हेमचन्द्रः ॥ वैवस्वतमनुः । सावर्णिमनुः । शनिः । यमः । यमुनायां तपत्याञ्च स्त्री । इति महाभारतम् ।

अर्कनन्दनः, पु, (अर्कस्य नन्दनः, षष्ठीतत्पुरुषः ।) अर्कतनयः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अर्कपत्रः, पु, (अर्क सूर्य्य इव तीक्ष्णं पत्रं यस्य सः ।) आदित्यपत्रवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अर्कपत्रा, स्त्री, (अर्क सूर्य्य इव तीक्ष्णं पत्रं यस्याः सा ।) वृक्षविशेषः । इशेर मूल इति भाषा । तत्पर्य्यायः । सुनन्दा २ अर्कमूला ३ विषापहा ४ । इति रत्नमाला ॥

अर्कपर्णः, पु, (अर्क इव रक्तं पर्णमस्य सः ।) अर्कवृक्षः । इत्यमरः ॥ आकन्द इति ख्यातः । (अस्य विशेषोऽर्कशब्दे ज्ञातव्यः ।)

अर्कपादपः, पुं, (अर्कः अर्कवृक्ष इव तीक्ष्णः पादपः ।) निम्बवृक्षः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अर्कपुष्पिका, स्त्री, (अर्कस्यार्कवृक्षस्य पुष्पमिव पुष्पमस्याः सा, जातित्वात् ङीप् कप् ।) वृक्षभेदः । अर्कहुली हुलीपुष्पस्वेति ख्याता । तत्पर्य्यायः । पयस्या २ सूर्य्यवल्ली ३ शिवपर्णी ४ । इति रत्नमाला ॥

अर्कपुष्पी, स्त्री, (अर्कस्यार्कवृक्षस्य पुष्पमिव पुष्पमस्याः सा, जातित्वात् ङीप् ।) कुटुम्बिनीवृक्षः । तत्पर्य्यायगुणाः ।
"अर्कपुष्पी क्रूरकर्म्मा पयस्या जलकामुका ।
अर्कपुष्पी क्रमिश्लेष्ममेहपित्तविकारजित्" ।
इति भावप्रकाशः ॥ राजनिर्घण्टोक्तपर्य्यायगुणाः कुटुम्बिनीशब्दे द्रष्टव्याः ॥

अर्कप्रिया, स्त्री, (अर्क प्रीणाति, प्री+क, अर्कस्य प्रिया इति वा ।) जवा । इति राजनिर्घण्टः ॥ (जवाशब्देऽस्य विशेषो ज्ञातव्यः ॥)

अर्कबन्धुः, पुं, (अर्कस्य बन्धुरिव ।) गौतमः । स च इक्ष्वाकुकुलोद्भवशाक्यवंशीयबुद्धः । इत्यमरः ।

अर्कबान्धवः, पु, (बन्धुरेव बान्धवः, बन्धु+स्वार्थे अण्, अर्कस्य बान्धवः, षष्ठीतत्पुरुषः ।) अर्कबन्धुः । इति हेमचन्द्रः ॥

अर्कभक्ता, स्त्री, (अर्कस्य भक्ता, षष्ठीतत्पुरुषः ।) आदित्यभक्तावृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ हुड्हुडिया इति ख्याता ।

अर्कमूला, स्त्री, (अर्क इव विषधराणां दुःसहं मूलं यस्याः सा ।) अर्कपत्रा । इति रत्नमाला ॥ इशेर मूल इति भाषा ।

अर्करेतोजः, पु, (अर्कस्य रेतसो जायते, अर्करेतस्+जन्+ड, उपपदसमासः ।) सूर्य्यपुत्रविशेषः । तत्पर्य्यायः । रेवन्तः २ गुह्यकः ३ हयवाहनः ४ । इति हेमचन्द्रः ॥

अर्कवल्लभः, पुं, (अर्कस्य वल्लभः, षष्ठीतत्पुरुषः ।) बन्धूकवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (बन्धूकवृक्षशब्देऽस्य गुणादयो ज्ञेयाः ॥)

अर्कवेधः, क्ली, (अर्केण विध्यते, अर्क+व्यध+पचाद्यच् ।) तालीशपत्रम् । इति राजनिर्घण्टः ॥ (तालीशपत्रशब्देऽस्य गुणादिविवरणं ज्ञेयम् ।)

अर्कव्रतं, क्ली, (अर्कस्य व्रतं, षष्ठीतत्पुरुषः ।) आरोग्यसप्तम्यादि सूर्य्यव्रतम् । इति स्मृतिः ॥ सूर्य्यस्य जलशोषणवत्प्रजाकरग्रहणम् । यथा,—
"अष्टौ मासान् यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ।
तथा हरेत् करान्राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत्" ।
इति मनुः ।

अर्कसूनुः, पु, (अर्कस्य सूनुः पुत्रः ।) यमः । इति हेमचन्द्रः ॥

अर्कसोदरः, पु, (अर्कस्य सोदर इव हितकारी ।) ऐरावतहस्ती । इति हेमचन्द्रः ॥

अर्कहिता, स्त्री, (अर्काय हिता अनुकूला, चतुर्थीतत्पुरुषः ।) आदित्यभक्तावृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ हुड्हुडिया इति ख्याता । (अस्या विशेषः आदित्यभक्ताशब्दे द्रष्टव्यः ॥)

अर्काश्मा, [न्] पुं, (अर्कस्य अनुगतः अश्मा, मध्यपदलोपी कर्म्मधारयः ।) अरुणोपलः । (चुनि इति ख्यातः प्रस्तरभेदः ।) सूर्य्यकान्तमणिरिति यावत् । इति हलायुधः ॥

अर्काह्वः, पुं, (अर्केण आह्वयते यः, अर्क+आ+ह्वे+अप् ।) अर्कवृक्षः । इत्यमरः ॥ आकन्द इति भाषा ।

अर्कोपलः, पु, (अर्कस्यानुगत उपलः, कर्म्मधारयः ।) सूर्य्यकान्तमणिः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (चुनि इति ख्यातो रत्नभेदः । स्फटिकमणिः । "अर्का

पल्लोल्लसितवक्रिभिरङ्कि तमालश्रीमं महाव्रतमिवात्र चरन्ति वप्रा"। इति माघः।)

अर्गलं, क्ली, स्त्री, (अर्ज + कलच्, कुत्वम्।) कपाटबन्धककाष्ठविशेष। इत्यमरः॥ हुड्का तसला इत्यादि भाषा।

("ससम्भ्रमेन्द्रद्रुतपातितार्गला
निमीलिताक्षीव भियामरावती"।
इति काव्यप्रकाशे।
"ता सत्यनाम्नीं दृढतोरणार्गला
मट्टैर्विचित्रैरुपशोभिता शिवा"।
इति रामायणे।
"अथानपोढार्गलमप्यगार"। इति रघु। प्रतिबन्ध। प्रत्यवाय। अन्तराय।
"ईप्सितं तदवज्ञानात् विद्धिसार्गलमात्मन"।
इति रघुवंशे।)

कल्लोले त्रि। इति मेदिनी॥ देवीमाहात्म्यपाठस्यादौ पाठ्यस्तोत्रविशेषः॥ यथा
मार्कण्डेय उवाच।
"ब्रह्मन् केन प्रकारेण दुर्गामाहात्म्यमुत्तम।
शीघ्र सिद्ध्यति तत्सर्व्वं कथयस्व महाप्रभो॥
ब्रह्मोवाच।
अर्गलं कीलकञ्चादौ पठित्वा कवच पठेत्।
जपेत् सप्तशतीं पश्चात् क्रम एष शिवोदित॥
अर्गल दुरितं हन्ति कीलक फलद तथा।
कवच रक्षते नित्य चण्डिका त्रितयं दिशेत्॥
अर्गल हृदये यस्य स चानर्गलवाक् सदा।
कीलक हृदये यस्य वशीकीलितमानस॥
कवच हृदये यस्य स वज्रहृदय खलु।
ब्रह्मणा निर्म्मित पूर्व्वं विनिश्चित्यापि चेतसा"॥
इत्यादि। तदाद्यश्लोको यथा,—
"जय त्व देवि चामुण्डे जय भूतापहारिणि।
जय सर्व्वगते देवि। कालरात्रि नमोऽस्तु ते"॥
तस्य शेषश्लोको यथा,—
"इद स्तोत्र पठित्वा च महास्तोत्रं पठेन्नर।
सप्तशतीं समाराध्य वरमाप्नोति सम्पद"॥
इत्यर्गलास्तोत्र॥

अर्गलिका, स्त्री, (क्षुद्रार्गला, अर्गला गौरादित्वात् ङीष् स्वार्थे कन्।) अल्पार्गला। इति हेमचन्द्रः॥ खिल इति भाषा।

अर्घ, मूल्ये, (भ्वादि—पर—सक सेट्।) इति कविकल्पद्रुमः॥ अर्घति गां गोपः। इति दुर्गादास। ("परीक्षका यत्र न सन्ति देशे नार्घन्ति रत्नानि समुद्रजानि"। इति पञ्चतन्त्रे।)

अर्घं, पु, (अर्घ + घञ्।) मूल्य।
("कुर्य्युरर्घं यथापण्य ततो विंश न्टपो हरेत्"।
"मणिमुक्ताप्रवालाना लौहाना तान्तवस्य च।
गन्धानाञ्च रसानाञ्च विद्यादर्घबलाबलम्"॥
इति मनुः।) पूजाविधिः। इत्यमरः॥ अय शब्दः सामगानां सर्व्वत्राभिलापे सयकारो नपुंसकलिङ्गेनैव प्रयोज्य अन्यवेदिना निर्यकारः पुंलिङ्गेन प्रयोज्यः। इति श्राद्धतत्त्व॥ (दूर्व्वाक्षतसर्षपपुष्पादिविरचितोदेवब्राह्मणादिसम्मानार्थः पूजोपचारभेद। "अये वनदेवतेयं फलकुसुमपल्लवार्घेण मामुपतिष्ठते"। इति उत्तरचरिते।
"स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै"।
इति मेघदूते।
"दूर्व्वासर्षपपुष्पाणां दत्त्वार्घं पूर्णमञ्जलिम्"।
इति याज्ञवल्क्य।)

अर्घीश, पुं, (अर्घोऽस्त्यस्य इति अर्घी, तेषु ईशः।) शिव। इति शब्दरत्नावली॥

अर्घ्य, त्रि, (अर्घ्यते पूज्यते, अर्घ + ण्यत्, न्यङ्क्वादीनाञ्चेति कुत्वं, अर्घमर्हति इति पादार्घाभ्याञ्चेति यत् वा।) पूजनयोग्य। पूज्य। इति मेदिनी॥ अर्घ्यार्थं। तत्तु पूजार्थदूर्व्वाक्षतचन्दनपुष्पमिश्रितवारि। इत्यमर॥
("अनर्घ्यमर्घ्येण तमद्रिनाथः,
स्वर्गौकसामर्च्चितमर्च्चयित्वा"।
इति कुमारसम्भवे।
"अर्घ्यमर्घ्यमितिवादिनं न्टपं,
सोऽनवेक्ष्य भरताग्रजो यतः"।
इति रघुवंशे।) अर्घार्थजलम् इति अमरटीकाया भरत॥ तत्तु सामान्यविशेषभेदेन द्विविध। तत्राद्यस्य क्रम। स्ववामे त्रिकोणवृत्तभूविम्ब विलिख्याधारशक्तिं पूजयित्वा अस्त्रमन्त्रेण पात्र प्रक्षाल्य मन्त्रेण जलेनापूर्य्याङ्कुशमुद्रया मन्त्रेण सूर्य्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य प्रणवेन गन्धपुष्पाभ्या सम्पूज्य धेनुमुद्रा प्रदर्श्य प्रणवमष्टधा दशधा वा जपेत्॥ अन्यस्य क्रम। स्ववामे त्रिकोणमण्डल कृत्वा तत्र त्रिपदिकामारोप्य अस्त्रेण शङ्ख प्रक्षाल्य तदुपरि संस्थाप्य मन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतदूर्व्वादि तत्र निक्षिप्य विमलजलेन विलोममातृकया मूलेन च पूरयेत् ततस्त्रिपदिकाया वह्निमण्डलपूजा शङ्खे सूर्य्यमण्डलपूजा जले सोममण्डलपूजा ततो मन्त्रेणाङ्कुशमुद्रया सूर्य्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य मन्त्रेण स्वहृदयाद्देवता तत्रावाह्य कूर्च्चमन्त्रेणावगुण्ठ्यास्त्रमन्त्रेण मालिनीमुद्रा प्रदर्श्य मन्त्रेण तज्जल वीक्ष्य षडङ्गमन्त्रैः सकलीकृत्य गन्धपुष्पाभ्या देवता संपूज्य तदुपरि मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य मूलमन्त्रमष्टधा जप्ता धेनुमुद्रा प्रदर्श्यास्त्रेण संरक्ष्य तस्मात् किञ्चित् जल प्रोक्षणीपात्रे निःक्षिपेत्। इति तन्त्रसार॥

अर्घ्या, स्त्री, (अर्घ + यत्।) जरत्कारुमुनितपोवनतरूद्भूतमधु। तस्य गुणा। चक्षुरायुर्हितकारित्वं। आमवातकफपित्तनाशित्वञ्च। इति राजवल्लभः॥

अर्च्च, क, पूजे। (चुरादि—सक—सेट्।) इति कविकल्पद्रुम॥ क अर्च्चयति। गोवर्द्धनस्त्विममात्मनेपदिन मत्वा विभ्राजसे मकरकेतनमर्च्चयन्तीत्यादि स्खलितमित्याह। इति दुर्गादासः॥

अर्च्च, ज, पूजे। (भ्वादि—सक—सेट्।) इति कविकल्पद्रुम॥ ज अर्च्चति अर्च्चते। इति दुर्गादासः॥

अर्च्चक, त्रि, (अर्च्चति, अर्च्च + ण्वुल्।) पूजक। अर्च्चनाकारक। यथा,—
"अर्च्चकस्य तपोयोगात् अर्च्चनस्यातिशायनात्।
आभिरूप्याच्च विम्बानां देव सान्निध्यमृच्छति"॥
इति तिथ्यादितत्त्व॥
("ब्रह्मचारी व्रती च स्यात् गुरुदेवद्विजार्च्चक"।
इति मनु।)

अर्च्चनं, क्ली, (अर्च्च + भावे ल्युट्।) पूजनं। यथा,—
"धनधान्यकरं नित्यं गुरुदेवद्विजार्च्चनं"।
इति राजवल्लभ॥ पूजाद्रव्ये त्रि। यथा,—
"अर्च्चकस्य तपोयोगात् अर्च्चनस्यातिशायनात्"।
इति तिथ्यादितत्त्वं।

अर्च्चना, स्त्री, (अर्च्च + युच्, टाप्।) पूजा। इति जटाधर॥ गुरुदेवद्विजानां नित्यार्च्चनागुणा। स्वर्गयश-आयुर्धनधान्यकारित्व। अलक्ष्मीपापनाशित्वञ्च। इति राजवल्लभ॥

अर्च्चा, स्त्री, (अर्च्च + आधारे अङ्।) पूजा। प्रतिमा। इति मेदिनी॥ (देवादीनां पूजनं। "अर्च्चा चेत् विधितस्व ते वद तदा किं मोक्षलाभक्षमे"॥ इति शिवशतके।)

अर्च्चिः, स्त्री, (अर्च्च + इन्।) अग्निशिखा। इति सिद्धान्तकौमुद्यामुणादिवृत्तिः॥
("आसीदासन्ननिर्व्वाणप्रदीपार्च्चिरिवोषसि"।
इति रघुवंशे।)

अर्च्चिः, [स्] स्त्री, क्ली, (अर्च्च + इसि।) अग्निशिखा। किरणः। इत्यमरः। दीप्तिः। इत्युणादिकोषः॥ अय शब्द सान्त इदन्तश्च॥ ("हर्म्याणां हेमशृङ्गश्रियमिव निचयैरर्च्चिषामादधान"। "विरम विरम वह्ने मुञ्च धूमानुबन्धं प्रकटयसि किमुच्चैरर्च्चिषा चक्रवालम्"। इति रत्नावली।)

अर्च्चितः, त्रि, (अर्च्च + कर्म्मणि क्तः।) पूजित। इत्यमरः॥ (पूजाविधिना सम्मानित।
"विप्रमन्येव कृते तत्र गत्वा तान् परमार्च्चितान्"।
"अर्च्चितास्च नरै पौरैः पाण्डवा भरतर्षभ"।
इति महाभारते।)

अर्च्चिष्मान्, [त्] पु, (अर्च्चिर्विद्यतेऽस्य, अर्च्चिस् + मतुप्।) अग्नि। इति हेमचन्द्रः॥ सूर्य्यः। अर्च्चिःशब्दात् अतिशये मतुप्रत्यय॥ (त्रि, दीप्तः। तेजोविशिष्ट। प्रभावान्।) (स्वनामख्यातो देवर्षिभेद। यदुक्तं, हरिवंशे,
"अर्च्चिष्मांस्तम्बरश्चैव भारिश्च वदतां वरः।
नेतारो देवदेवानामेते हि तपसान्विताः"।)

अर्च्च्य, त्रि, (ऋच् + स्तुतौ ण्यत्, अर्च्च + यत् वा।) अर्च्चनीयः। पूज्यः। इति हेमचन्द्रः॥
("मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं,
तमर्च्यमारादभिवर्त्तमानम्"।
इति रघुवंशे।)

अर्ज्ज, अर्ज्जने। (भ्वादि—परं—सकं सेट्।) इति कविकल्पद्रुमः॥ अर्ज्जनमलब्धस्य लाभः। यशस्त्वार्ज्जति यः स्थिरमिति हलायुधः। इति दुर्गादास॥

अर्ज्ज, क संस्कारे (चुरादि—उभं—सकं—सेट्।) इति कविकल्पद्रुम॥ क अर्ज्जयति किमपि लोकः संस्करोतीत्यर्थः। प्रतियत्ने प्रायः। अर्ज्जयति धनं परिजनः। इति रमानाथ। इति दुर्गादासः॥

अर्ज्जक, पुं, (अर्ज्जयति, अर्ज्ज + ण्वुल्।) श्वेतपर्णास। वावुइ इति भाषा। तत्पर्य्यायः। श्वेतच्छदः २ गन्धपत्रः ३ माता ४ कुठेरक ५। इति शब्दचन्द्रिका॥ वर्व्वरीभेदः। आजमवाइ इति पश्चिमदेशे ख्यात। तत्पर्य्याय। क्षुद्रतुलसी २ क्षुद्रपर्णा ३ मुखार्ज्जकः ४ उग्रगन्ध ५ गम्भीर ६ कुठेर ७ कठिञ्जर ८। अस्य गुणा। कटुत्व। उष्णत्व। कफवातामयनेत्ररोगनाशित्वं। रुचिकारित्व। सुखप्रसवकारकत्वञ्च। इति राजनिर्घण्ट॥ सामान्यतुलसी। इति रत्नमाला॥ ("कफघ्ना लघवो रुच्या स्निग्धोष्णाः पित्तवर्द्धना। कटुपाकरसाश्चैव सुरसार्ज्जकभूस्तृणा"॥ इति सुश्रुतश्च॥)

अर्ज्जक, त्रि, (अर्ज्जयति, अर्ज्ज + ण्वुल्।) उपार्ज्जनकर्त्ता। यथा। "अतएव वशिष्ठेन ज्येष्ठस्यांशद्वयमभिधायार्ज्जकस्यांशद्वयमभिहित"। इति दायभाग॥

अर्ज्जन, क्ली, (अर्ज + ल्युट्।) उपार्जन। स्वत्वहेतुभूतो व्यापार। यथा। अर्ज्जनं स्वत्वहेतुभूतो व्यापार अर्ज्जनं स्वत्व नापादयतीति विप्रतिषिद्धमिति दायभाग॥ ("अर्जयितृव्यापारोऽर्जनमिति जीमूतवाहन"। "स्वामित्वजनकव्यापारत्वम्" इति महेश्वर"। "स्वामित्वहेतुभूतव्यापारत्वम् इति। श्रीकृष्ण। "पितृनिधनकालीन वा जीवनमेव पुत्रस्यार्ज्जन भविष्यति"। इति दायभाग।
"अर्थानामर्जने दु खमर्जितानाञ्च रक्षणे"।
इति पञ्चतन्त्रे।
"द्रव्यार्जनञ्च नाशञ्च मित्रामित्रस्य चार्जनम्"।
इति मनु।)

अर्जुन, क्ली, (अर्ज + उनन्।) तृण। नेत्ररोग। इति विश्वमेदिन्यौ॥ तस्य लक्षण। "एको य शशरुधिरोपमस्तु विन्दु शुक्लस्थो भवति तदर्जुन वदन्ति"। इति माधवकर॥ ("नीरुक् श्लक्ष्णोऽर्जुन विन्दु शशलोहितलोहित" इति वाभटश्च।)

अर्जुन, पुं, (अर्ज + उनन्।) पाण्डुराजस्य तृतीयपुत्र। स तु इन्द्रात् कुन्तीगर्भे जात। तत्पर्य्यायः। फाल्गुन २ जिष्णु ३ किरीटी ४ श्वेतवाहनः ५ बीभत्सु ६ विजयः ७ कृष्ण ८ सव्यसाची ९ धनञ्जयः १०। इति विराटपर्व्व। पार्थः ११ शक्रनन्दन १२ गाण्डीवी १३ मध्यमपाण्डव १४ श्वेतवाजी १५ कपिध्वज १६ राधाभेदी १७ सुभद्रेश १८ गुडाकेश १९ बृहन्नलः २०। इति जटाधर॥ ऐन्द्रि २१। इति भूरिप्रयोग॥*॥ स्वनामख्यातवृक्षविशेष। आजन इति भाषा। तत्पर्य्याय। नदीसर्ज २ वीरतरु ३ इन्द्रद्रु ४ ककुभ ५। इत्यमर॥ शम्बरः ६ पार्थ ७ चित्रयोधी ८ धनञ्जय ९ वैरान्तकः १० किरीटी ११ गाण्डीवी १२ शिवमल्लक १३ सव्यसाची १४ कर्णारिः १५ करवीरक १६ कौन्तेय १७ इन्द्रसूनुः १८ वीरद्रु १९ कृष्णसारथिः २० पृथाजः २१ फाल्गुनः २२ धन्वी २३। इति राजनिर्घण्ट॥ तत्पर्य्यायगुणाः।
"ककुभोऽर्जुननामाख्यो नदीसर्जश्च कीर्त्तितः।
इन्द्रद्रुर्वीरवृक्षश्च वीरश्च धवलः स्मृतः॥
ककुभः शीतलो भग्नक्षतक्षयविषास्रजित्।
मेदोमेहव्रणान् हन्ति तुवर कफपित्तहृत्"॥
इति भावप्रकाश॥ अस्य गुणाः। क्षतभग्नरक्तस्तम्भनमूत्रकृच्छ्ररोगे पथ्यत्वं। इति राजवल्लभ॥ कषायत्व। उष्णत्वं। व्रणशोधनत्व। कफपित्तश्रमतृष्णार्त्तिनाशित्वं। वायुरोगप्रकोपकारित्वञ्च। इति राजनिर्घण्ट॥*॥ (अस्य व्यवहारो यथा,—
"अर्ज्जुनस्य त्वचा सिद्ध क्षीर दद्याद्धृदामये"॥
इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहः॥)
कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुन। माहिष्मती नाम पुरी तस्य राजधान्यासीत्, स खलु भुजवीर्य्येण सप्तद्वीपां धरामजयत्। योगाद् बाहुसहस्रञ्च लब्धवान्।
"तस्य बाहुसहस्रन्तु युध्यत किल भारत॥
योगात् योगेश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया॥
तेनेय पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपर्व्वता।
ससमुद्रा सनगरा उग्रेण विधिना जिता॥
तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्तयज्ञशतानि वै।
प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते जनमेजय"॥
"योऽर्ज्जुनेनार्ज्जनस्तुल्यो द्विबाहुर्ब्बहुबाहुना"।
इति महाभारते।) मयूर। मातुरेकसुत। इति मेदिनी॥ श्वेतवर्ण। तद्वति त्रि। इत्यमर॥

अर्ज्जुनध्वज, पु, (अर्ज्जुनस्य पार्थस्य ध्वजः, रथकेतुभूत, सतत तत्रावस्थानात्।) हनूमान्। इति हेमचन्द्र॥

अर्ज्जुनी, स्त्री, (अर्ज्ज + उनन्, गौरादित्वात् ङीष्।) गवी। करतोयानदी। कुट्टनी। उषा। इति विश्वमेदिन्यौ॥

अर्ज्जुनोपम, पु, (अर्ज्जुन स्वनामख्यातः वृक्ष उपमा यस्य स।) वृक्षभेद। शेगुन इति भाषा। तत्पर्य्यायः। महापत्र २ शाकवृक्ष ३ अनील ४ अर्ण ५। इति शब्दचन्द्रिका॥ शाकाख्य ६ खरपत्र ७। इति रत्नमाला॥

अर्ण, पु, (अर्त्ते नः।) शाकवृक्ष। इति शब्दचन्द्रिका। अक्षरं। इत्यागमः॥ वर्ण। यथा,—
"वर्णोऽक्षर रश्मिरर्ण स्वरास्तु कथिता अच।
व्यञ्जनानि हलो वर्णाः कादयोऽष्टौ प्रकीर्त्तिता"॥
इति वीजवर्णाभिधान॥

अर्णः, [स्] क्ली, (ऋच्छति, ऋ गतौ उदके नुट् चेत्यसुन् तस्य च नुट्।) जल। इत्यमर॥

अर्णव, पु, (अर्णांसि जलानि सन्त्यस्मिन्, अर्णसो लोपश्चेति व सलोपश्च।) समुद्र। इत्यमर॥ ("अहृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः"। इति रघुवंशे।)

अर्णवज, पुं क्ली, (अर्णवात् जायते, अर्णव + जन + ड, उपपदसमासः।) समुद्रफेन। इति रत्नमाला॥ (समुद्रफेनशब्देऽस्य विवरणं ज्ञेय॥)

अर्णवमन्दिर, पुं, (अर्णव मन्दिरमिव यस्य सः।) वरुण। इति हेमचन्द्रः॥

अर्णवोद्भवः, पु, (उद्भवत्यस्मात्, उत् + भू + अपादाने अप्, अर्णवः उद्भवो यस्य सः।) अग्निजारवृक्षः। इति राजनिर्घण्ट॥ (अग्निजारशब्देऽस्य गुणा ज्ञातव्या॥) (चन्द्र। अमृत।)

अर्णोद, पु, (अर्णांसि ददाति, दा + क।) मुस्तक। मेघः। इति राजनिर्घण्ट॥

अर्णोभवः, पु, (अर्णसि जले भवति, अर्णस् + भू + अप्, उपपदसमास।) शङ्खः। इति राजनिर्घण्टः॥

अर्त्तगल, पुं, (आर्त्त इव गलति, गल + अच्, पृषोदरादित्वात् वा ह्रस्व।) आर्त्तगल। नीलझिण्टिका। इत्यमरटीकायां भरतः॥ (नीलझिण्टिशब्देऽस्य गुणो व्याख्येय॥)

अर्त्तन, क्ली, (ऋत + ल्युट्, पक्षे इयङभाव।) जुगुप्सा। निन्दा। इत्यमरः॥

अर्त्ति, स्त्री, (अर्द + क्तिन्।) पीडा। धनुरग्रभाग। इत्यमर॥ (पीडार्थे उदाहरण यथा,—
"चूर्णं सम रुचकहिङ्गुमहौषधाना,
शुण्ठ्यम्बुना कफसमीरणसम्भवासु।
हृत्पार्श्वपृष्ठजठरार्त्तिविसूचिकासु
पेयन्तथा यवरसेन च विड्विबन्धे॥"
इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रह॥)

अर्त्तिका, स्त्री, (ऋत + ण्वुल्।) अत्तिका। नाट्योक्तौ ज्येष्ठा भगिनी। इत्यमरटीकायां स्वामी॥

अर्थ त् क ङ याचने। इति कविकल्पद्रुम॥ (अर्थयते अर्थापयते। प्रार्थयत्यल्पमूल्यानीत्यादौ प्रार्थन प्रार्थ पश्चात् प्रार्थं करोति इति णौ परस्मैपद। इति दुर्गादास॥

अर्थ, पुं, (अर्थ + घञ्।) विषय। याच्ञा। धन। कारण। वस्तु। शब्दप्रतिपाद्य। निवृत्ति। प्रयोजन। इति मेदिनी॥ प्रकार। इति हेमचन्द्र॥ (धनार्थे यथा,—
"अर्थेन बलवान् सर्व्व अर्थाद्भवति पण्डित"।
इति हितोपदेशे। अयञ्च त्रिवर्गस्यान्तर्गत।
"कस्यार्थधर्म्मौ वद पीडयामि
सिन्धोस्तटावोघइव प्रवृद्ध।" इति कुमारसम्भवे।
"तमसो लक्षण कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते
सत्त्वस्य लक्षण धर्म्म श्रैष्ठ्यमेषा यथोत्तर"॥
इति मनु। शब्दप्रतिपाद्य। शब्दानामभिधेय।
"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये"।
इति रघुवंशे। अभिधेय। अलङ्कारशास्त्रादौ अर्थस्त्रिविध, वाच्यो लक्ष्यो व्यङ्ग्यश्चेति।

अर्थना, स्त्री, (अर्थ + युच्) याच्ञा। भिक्षा। इत्यमर॥

अर्थपति, पु, (अर्थानां पति, षष्ठीतत्पुरुष।) कुवेर। राजा। इति मेदिनी॥ ("अर्थ्यामर्थपतिर्वाचमाददे वदतां वर"। "स नैषधस्यार्थपते सुतायाम्"। इति रघुवंशे।)

अर्थप्रयोग, पुं, (अर्थानां धनानां प्रयोग, षष्ठीतत्पुरुष।) वृद्धिजीविका। इत्यमरः॥ सुदे देया वाड़ी देया इत्यादि भाषा।

अर्थवाद, पु, (अर्थस्य लक्षणया स्तुत्यर्थस्य निन्दार्थस्य वा वादः, वद्+करणे घञ्।) स्तुति। प्रशंसा। इति हेमचन्द्र॥ स तु त्रिविध। गुणवाद १ अनुवाद २ भूतार्थवाद ३। यथा,—
"विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते।
भूतार्थवादस्तद्धानावर्थवादस्त्रिधा मत"॥
इति भट्ट॥ तत्त्वसम्बोधिनीमते सप्तविध। स्तुत्यर्थवाद १ फलार्थवाद २ सिद्धार्थवाद ३ निन्दार्थवाद ४ परकृति ५ पुराकल्प ६ मन्त्र ७। एषामुदाहरणानि श्रुत्युक्तत्वात् न लिखितानि॥ विध्यसमभिव्याहृतवाक्य। यथा। "अर्थवादश्च विध्यसमभिव्याहृतवाक्यरूप" सोऽपि त्रिविध। गुणवादानुवादभूतार्थवादभेदात्। यथा—
"विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते।
भूतार्थवादस्तद्धानावर्थवादस्त्रिधा मत"॥
इति॥ अयमर्थ। विरोधे विशेष्यविशेषणयो सामानाधिकरण्येनान्वयविरोधे गुणवाद अङ्गकथनरूपत्वात्। यथा "यजमान प्रस्तर" इति। अत्र प्रस्तर कुशमुष्टि तस्य यजमानेऽभेदान्वयबाधात् यजमानस्य कुशमुष्टिधारणरूपार्थवादरूपत्वात् गुणवाद। अवधारिते प्रमाणान्तरसिद्धेऽर्थे यो वाद। यथा नान्तरीक्षेऽग्निश्चेतव्य अग्निर्हिमस्य भेषजं इत्यादि च। अन्तरीक्षेऽग्निचयनस्यासम्भवेन तदभावस्य अग्नेर्हिमनाशकत्वस्य च लौकिकप्रमाणसिद्धत्वात् अनुवाद। तद्धानौ तयोर्विरोधावधारणयोरभावे भूतार्थवाद। यथा इन्द्रो वृत्रहन्नित्यादि। सोऽपि द्विविध। स्तुत्यर्थवादो निन्दार्थवादश्च। यथा,—
"सन्ध्यामुपासते ये च" इत्यादि स्तुत्यर्थवाद।
"स्त्रीतैलमाससंभोगी पर्व्वस्वेतेषु वै पुमान्॥
विण्मूत्रभोजनं नाम प्रयाति नरकं मृत"।
इत्यादि निन्दार्थवाद। इति श्राद्धविवेकटीकायां श्रीकृष्णतर्कालङ्कारः॥ * ॥
"प्रकरणप्रतिपाद्यस्य तत्र तत्र प्रशंसन"।
इति वेदान्तसार॥ तद्विवरणं यथा। अथार्थवादाधिकरणं। तत्रार्थवादास्तु बहुषु श्रूयन्ते ते किं प्रमाणं न वेति संशये पूर्व्वपक्षसूत्र। आम्नायस्य प्रवर्त्तकत्व तदर्थमेव तदवतारादिति। अस्यार्थ। आम्नायस्य वेदस्य प्रवर्त्तकत्वं विधेये इति शेष। तदर्थं वेदाभिधानात्। तच्च प्रवर्त्तकत्व कार्य्यताज्ञानद्वारैव तद्विना प्रवृत्त्यभावात्। अत सिद्धार्थकानां स्तुत्यर्थवादानां कार्य्यतावाचकपदाभावात् न कार्य्यताधीजनकत्व। अतोऽप्रामाण्यमेव। अतस्तेषामर्थवादानां प्रवर्त्तकत्वार्थमवश्यं विधिकल्पन सूत्रविशेषणत्व वा युक्त अतएव सिद्धान्तसूत्र। विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युरिति। अस्यार्थ। अर्थवादानां स्तुतिपरत्वेन विधिना सह एकवाक्यत्वात् ते अर्थवादाः प्रमाणानि स्यु। तथा च विधेयप्रवृत्तावेव तेषां तात्पर्य्यं तत्रैव प्रामाण्य यत्परशब्द स शब्दार्थ इति सिद्धान्तात् न स्वार्थे स्तुत्यादौ तत्र तात्पर्य्याभावात्। तर्हि यन्न दुःखेन सम्भिन्नमित्यादे स्वतन्त्रार्थवादानां का गतिरित्यत आह भूतार्थानां क्रियार्थेन समाम्नाय। अस्यार्थ। भूतार्थानां सिद्धार्थानां क्रियार्थेन कार्य्यबोधकेन विधिना इति यावत्। समाम्नाय पाठ कार्य्य इति शेष। ततश्च विधिवाक्याकाङ्क्षापूरकत्वेन कार्य्यान्वितबोधकतया तेषां प्रामाण्यं। यथा। लिखिष्यमाणयूपाहवनीयवाक्यानां यूपाहवनीयपरिचयाय कार्य्यान्वितबोधकत्वेन स्वार्थबोधकत्वे प्रामाण्य। तथा स्वर्गकामो यजेतेत्यत्र स्वर्गरूपपरिचयाय स्वर्गबोधकत्वेन।
"यन्न दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरं।
अभिलाषोपनीतं यत् तत् सुख स्वःपदास्पद"॥
इत्यादि वाक्यानामपि प्रामाण्यं। अन्यथा यूपादिपदार्थापरिचये च तत्तद्विधिवाक्यानां प्रवृत्तिर्न स्यादतो विधिनैकवाक्यत्वात् सिद्धार्थकानामपि प्रामाण्य। यत्र तु विधिना सह विरोध तत्र न स्वार्थे प्रामाण्य। यथा "अहरह सन्ध्यामुपासीत" इत्यादौ।
"सन्ध्यामुपासते ये तु नियत संशितव्रता।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्"॥
इत्याद्यर्थवादानां॥ अतो नित्ये कर्म्मणि फलश्रुतिरर्थवादएव सोऽपि रुच्युत्पादनपर। अतोऽत्र कार्य्यताज्ञानादेरप्रवृत्तिरिति दिक्। इति धर्मदीपिका॥

अर्थवान्, [त्] पु, (अर्थोऽस्त्यस्य, अर्थ+मतुप्+मस्य व।) पुरुष। इति राजनिर्घण्ट॥ अर्थविशिष्टे त्रि॥ (ऐश्वर्य्यशाली। "तेनार्थवान् लोभपराङ्मुखेन"। इति रघुवंशे। अभिधेययुक्त। सार्थक।
"करोति य सर्व्वजनातिरिक्ता
सम्भावनामर्थवतीं क्रियाभि"।
इति किराताज्जुनीये। "अर्थवान् खलु मे राजशब्द"। इति शाकुन्तले।)

अर्थविज्ञान, क्ली, (अर्थस्य विज्ञान, षष्ठीतत्पुरुष।) शुश्रूषाद्यष्टधीगुणान्तर्गतगुणविशेष। शब्दार्थज्ञान। इति हेमचन्द्र॥
("शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहोऽपोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानञ्च धीगुणा"॥)

अर्थव्ययज्ञ, त्रि, (अर्थस्य व्यय तत्प्रकारं जानाति, ज्ञा+क।) धनव्ययप्रकारवित्। (किं धन, कथ, कुत्र, कियत्, कस्मै वा व्ययितव्यमिति विशेषाभिज्ञः।) तत्पर्य्याय। सकुल २। इति हेमचन्द्र॥

अर्थशास्त्र, क्ली, (अर्थस्य भूमिधनादेः प्रापकं शास्त्र, षष्ठीतत्पुरुष।) चाणक्यादिप्रणीत नीतिशास्त्र। तत्पर्य्याय। दण्डनीति २। इत्यमर॥ यथा,—
"बृहस्पतिप्रभृतिभि प्रणीतस्त्वार्थशास्त्रकं।
तत्रैव दण्डनीतिः स्यादत्र श्रेयो नयानयौ"॥
इति शब्दरत्नावली॥ अष्टादशविद्यान्तर्गतविद्याविशेष। यथा विष्णुपुराणे।
"अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तर।
धर्म्मशास्त्रं पुराणञ्च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्व्वश्चेति ते त्रय।
अर्थशास्त्रं चतुर्थञ्च विद्या ह्यष्टादशैव ता"॥
इति प्रायश्चित्ततत्त्वं॥ * ॥ धर्म्मशास्त्रेणार्थशास्त्रस्य बाध्यत्व यथा॥
"स्मृत्यर्थेन विरोधे हि अर्थशास्त्रस्य बाधन।
परस्परविरोधे तु न्याययुक्तं प्रमाणवत्"॥
अर्थशास्त्रस्य मन्वादिप्रणीतराजनीत्यादिविषयस्य। यदाह,—
"अनागमन्तु यो भुङ्क्ते बहून्यब्दशतान्यपि।
चौरदण्डेन तं पापं दण्डयेत् पृथिवीपति"॥
इत्यनयोर्धर्म्मशास्त्रार्थशास्त्रयोर्विप्रतिपत्तौ धर्म्मशास्त्रेण दण्डविधायकमर्थशास्त्रं बाध्यते। ततस्त्वार्थशास्त्रस्य त्रिपुरुषीयेतरपरत्वेन सङ्कोच"। इति मलमासतत्त्व॥

अर्थसिद्धक, पु, (अर्थात् सिद्ध, अर्थ प्रयोजन धन वा सिद्धोऽस्य, समासान्तः क।) सिन्दुवारवृक्ष। इति राजनिर्घण्ट॥

अर्थागम, पु, (अर्थस्य आगमः, षष्ठीतत्पुरुष।) धनागम। तत्पर्य्याय। आय २। इति हलायुध॥
("अर्थागमो नित्यमरोगिता च
प्रिया च भार्य्या प्रियवादिनी च।
वश्यस्य पुत्त्रोऽर्थकरी च विद्या
षड्जीवलोकेषु सुखानि राजन्"॥
इति हितोपदेशे।)

अर्थिक, पुं, (अर्थयते इत्यर्थी याचक कुत्सितार्थे कन्।) वैतालिक। निद्रायाः राजादेर्जागरयिता। इति हेमचन्द्र॥

अर्थी, [न्] त्रि, याचक। सहाय। सेवक। विवादी। इति विश्व॥ धनी। अर्थो विद्यतेऽस्येति इन्॥

अर्थ्य, क्ली, (अर्थ+यत्।) शिलाजतु। इत्यमरमेदिनीकरौ॥ अर्थहिते त्रि॥

अर्थ्य, त्रि, (अर्थे साधु, तत्साधुरिति यत्, अर्थादनपेत, धर्म्मपथ्यर्थन्यायादनपेत इति यत्प्रत्यय।) पण्डित। धनवान्। न्याय्य। इत्यमरभरतौ। याच्य। याचनार्थकार्थधातो कर्म्मणि य॥ (अर्थयुक्त। उदरार्थयुक्त।
"अर्थ्यामर्थपतिर्वाचमाददे वदतां वर"।
इति रघुवंशे।
"वागीश वाग्भिरर्थ्याभि प्रणिपत्योपतस्थिरे"।
इति कुमारसम्भवे।)

अर्द यातनागतियाचनेषु। (गतौ, सक पीड़ायां अक भ्वादि परं सेट्।) इति कविकल्पद्रुम॥ यातना ताडन। अर्दति पुत्र पिता। "शरहन न नार्दति चातकोऽपि"। न याचतीत्यर्थ। इति दुर्गादास॥

अर्द ञ वधे। (चुरा-उभ-सक-सेट्।) इति कविकल्पद्रुम॥ ञ अर्दति अर्दते। "रक्ष सहस्राणि चतुर्दशार्दीत्"। अयमात्मनेपदीत्यन्ये। इति दुर्गादास॥

अर्द क वधे। इति कविकल्पद्रुम॥ क अर्दयति। अयमात्मनेपदीत्यन्ये। इति दुर्गादास॥

अर्दन, क्ली, (अर्द+ल्युट्।) याचन। पीडन। हनन। गमन। अर्दधातोर्भावेऽनट्प्रत्यय॥
("छृअस्वेति तदोवाच बल परबलार्दनम्"।
इति रामायणे।)

चन्द्रखण्डं । इति हेमचन्द्रः ॥ मयूरपुच्छेर चाँद इति भाषा ।

अर्द्धचन्द्रा, स्त्री, (अर्द्धं चन्द्रस्य, अर्द्धचन्द्र + टाप् । ) कृष्णत्रिवृत् । इत्यमरः ॥ काल तेउडी इति भाषा ।

अर्द्धचन्द्रिका, स्त्री, (अर्द्धचन्द्र + स्वार्थे कन्, स्त्रीत्वे अत इत्त्वे टाप् । ) कर्णस्फोटालता । इति राजनिर्घण्टः ॥

अर्द्धचोलक, पु, क्षुद्रचोलकः । इति हारावली ॥ काँचली इति भाषा ।

अर्द्धजाह्नवी, स्त्री, (अर्द्धं जाह्नव्याः ।) कावेरी नदी । इति हेमचन्द्रः ॥

अर्द्धतिक्तः, पु, (अर्द्धं असम्पूर्णस्तिक्तः ।) नेपालनिम्बः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (नेपालनिम्बशब्देऽस्य गुणा वक्तव्याः ॥)

अर्द्धनारीश, पु, (अर्द्धाङ्गे या नारी पार्व्वतीरूपा तस्या ईशः ।) शिवः । इति शब्दरत्नावली ॥ तस्य ध्यानं यथा,—

"नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं
पाशारुणोत्पलकपालकशूलहस्तं ।
अर्द्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं
बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपं" ॥

इति तन्त्रसारः ॥

अर्द्धनारीश्वर, पु, (अर्द्धाङ्गे या नारी तस्या ईश्वरः ।) उमामहेश्वरः । स च शिवः । यथा विष्णुधर्म्मोत्तरे ।
"अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता ।
अर्द्धनारीश्वरप्राया उमामाहेश्वरी तिथिः" ॥
इति तिथ्यादितत्त्वं ॥ अपि च ।
"अजेशः सर्व्वसोमेशस्तथा लाङ्गलिदारुकौ ।
अर्द्धनारीश्वरश्चोमाकान्तश्चाषाढिदण्डिनौ" ॥
इति तन्त्रसारे शिवमन्त्रे श्रीकण्ठादिन्यासः ॥ * ॥ अस्य मन्त्रादिकं यथा,—
"अग्निसंवर्त्तकादित्यरानिलौ षष्ठबिन्दुमत् ।
चिन्तामणिरिति ख्यातं वीजं सर्व्वसमृद्धिदं" ॥
अग्नीरेफः । संवर्त्तकः क्षकारः । आदित्यो मकारः । रः रेफः । अनिलो यकारः । औ स्वरूपः । षष्ठस्वरः ऊकारः ॥ प्रपञ्चसारे । "अनलकयमरेफप्राणसत्यान्तवामश्रुतिहिमरुचिखण्डैर्मण्डितो मन्त्रराजः" । इति वचनात् रेफ एव न तु वकारः । र॰ क्ष॰ म॰ र॰ य॰ औं॰ ऊं॰ । इति मन्त्रः । अस्य पूजा प्रातःकृत्यादिशैवोक्तपीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्य्यात् । यथा शिरसि काश्यपाय ऋषये नमः । मुखेऽनुष्टुप्छन्दसे नमः । हृदि अर्द्धनारीश्वराय देवतायै नमः । ततः कराङ्गन्यासौ कुर्य्यात् । रं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । क्षं तर्जनीभ्यां स्वाहा । मं मध्यमाभ्यां वषट् । रं अनामिकाभ्यां हुँ । यं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । यं करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु । तथा च निबन्धे । "रेफादिव्यञ्जनैः षड्भिः कुर्य्यादङ्गानि षट् क्रमात्" । ततो ध्यानं ।

"नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं
पाशारुणोत्पलकपालकशूलहस्तं ।
अर्द्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं
बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपं" ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः संपूज्यार्घ्यस्थापनं कृत्वा शैवोक्तपीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वावाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्य्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत । यथा । केशरेष्वग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च रं इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत् । ततः पत्रेषु पूर्व्ववत् वृषभादीन् पूजयेत् । पत्राग्रेषु पूर्व्वादितः ब्राह्मीं माहेश्वरीं कौमारीं वैष्णवीं वाराहीं इन्द्राणीं चामुण्डां महालक्ष्मीञ्च पूजयेत् । तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च सपूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म्म समापयेत् ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः । तथा च ।
"लक्षमेकं जपेन्मन्त्रमित्थं मन्त्री विचिन्तयन् ।
अयुतं मधुरासिक्तैर्जुहुयात्तिलतण्डुलैः" ॥
इति तन्त्रसारः ॥

अर्द्धपारावत, पु, (अर्द्धेन अङ्गेन पारावत इव । ) चित्रकण्ठकपोतः । तित्तिरिपक्षी । इति मेदिनी ॥

अर्द्धमाणव, पु, द्वादशयष्टिकाहारः । इति हेमचन्द्रः ॥ बारोनरि हार इति भाषा ।

अर्द्धरात्र, पुं, (अर्द्धं रात्रेः, अर्द्धं नपुंसकमित्येकदेशी समासः, अहःसर्व्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेरिति समासान्तोऽच्प्रत्ययः, रात्राह्नाहाः पुंसि इति नियमात् पुंस्त्वम् ।) रात्र्यर्द्धभागः । दुइप्रहर रात्रि इति भाषा । तत्पर्य्यायः । निशीथः २ । इत्यमरः ॥ निसम्पातः ३ अवसरालयः ४ । इति शब्दरत्नावली ॥ सुप्तजनः ५ । इति जटाधरः ॥ रात्र्यष्टममुहूर्त्तः । स तु रात्रिमध्यदण्डद्वयात्मकः । सम्पूर्णार्द्धरात्रोऽप्ययं । महानिशा । सा तु सार्द्धप्रहरानन्तरं सार्द्धतृतीयप्रहरपर्य्यन्तं । इति स्मृतिः ॥
("मध्यन्दिनेऽर्द्धरात्रे च श्राद्धं भुक्त्वा च सामिषम्" ।
"मध्यन्दिनेऽर्द्धरात्रे वा विश्रान्तो विगतक्लमः ।
चिन्तयेद्धर्म्मकामार्थान् सार्द्धं तैरेक एव वा" ॥
इति मनुः ।)

अर्द्धर्च, पु, क्ली, ( अर्द्धं ऋचः समासान्त अच्प्रत्ययः । ) अर्द्धऋक् । ऋङ्नामकवैदिकमन्त्रार्द्धभागः । इत्यमरः ॥

अर्द्धलक्ष्मीहरि, पु, (अर्द्धं लक्ष्म्याः आकारे, अर्द्धं च हरेः, तादृशो हरिः ।) विष्णुः । यथा । गौतमीये,—
"ऋषिः प्रजापतिश्छन्दो गायत्री देवता पुनः ।
अर्द्धलक्ष्मीहरिः प्रोक्तः श्रीवीजेन षडङ्गकः" ॥
अस्य मन्त्रादि यथा,—
"तारं नमः पदं ब्रूयान्नरौ दीर्घसमन्वितौ ।
पवनोणायमन्त्रोऽयं प्रोक्तो वस्वक्षरः परः" ॥
अस्य पूजाप्रयोगः । प्रातःकृत्यादिस्नानान्तं कर्म्म कृत्वा पूजामण्डपमागत्य वैष्णवाचमनं कुर्य्यात् । तद्यथा गौतमीये,—
"केशवाद्यैस्त्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत् करौ ।
द्वाभ्यामोष्ठौ ।[illegible] [illegible] मृज्यान्मुखं ततः ॥
एकेन हस्तं ।। [illegible] [illegible]येत् ।
सम्प्रोक्ष्यैकेन मू[illegible] [illegible] ॥
आस्यनासाक्षिकर्णांश्च नाभ्युरस्कं भुजौ क्रमात् ।
स्पृशेदेवं भवेदाचमनञ्च वैष्णवान्वये ॥
एवमाचमनं कृत्वा साक्षान्नारायणो भवेत्" ॥
केशवादयस्तु केशव-नारायण-माधव-गोविन्द-विष्णु-मधुसूदन-त्रिविक्रम-वामन-श्रीधर-हृषीकेश-पद्मनाभ-दामोदर-सङ्कर्षण-वासुदेव-प्रद्युम्नानिरुद्ध-पुरुषोत्तमाधोक्षज-नृसिंहाच्युत-जनार्द्दनोपेन्द्र-हरिविष्णवः ॥ वाक्यन्तु ओम् केशवाय नमः । इत्यादि । तथा च ।
"सचतुर्थिनमोऽन्तैश्च नामभिर्व्विन्यसेत् सुधीः"
ततः सामान्यार्घ्यादिमातृकान्यासान्तं कर्म्म विधाय केशवकीर्त्यादिन्यासं कुर्य्यात् । अस्य ऋष्यादिन्यासः । शिरसि प्रजापतये ऋषये नमः । मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदि अर्द्धलक्ष्मीहरये देवतायै नमः । ततः कराङ्गन्यासौ । श्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । इत्यादि । श्रीं हृदयाय नमः । इत्यादि । तथा च गौतमीये ।
"ऋषिः प्रजापतिश्छन्दो गायत्री देवता पुनः ।
अर्द्धलक्ष्मीहरिः प्रोक्तः श्रीवीजेन षडङ्गकः" ॥
ततो ध्यानं ।
"उद्यत्प्रद्योतनशतरुचिं तप्तहेमावदातं
पार्श्वद्वन्द्वे जलधिसुतया विश्वधात्र्या च जुष्टं ।
नानारत्नोल्लसितविविधाकल्पमापीतवस्त्रं,
विष्णुं वन्दे दरकमलकौमोदकीचक्रपाणिं" ॥
इत्यादि । इति तन्त्रसारः ॥

अर्द्धवीक्षण, क्ली, (अर्द्धमसम्पूर्णं वीक्षणम् ।) अपाङ्गदर्शनं ॥ कटाक्षः । इति हेमचन्द्रः ॥

अर्द्धशन, क्ली, (अर्द्धमसम्पूर्णमशनं भोजनं, अर्द्ध + अश् + ल्युट् ।) अर्द्धाशनं । अर्द्धभोजनं । इति शब्दरत्नावली ॥

अर्द्धसफर, पुं, (अर्द्धं सफरः ।) क्षुद्रमत्स्यविशेषः । दाँडिका माछ इति भाषा । तत्पर्य्यायः । दण्डपालः २ । इति हारावली ॥

अर्द्धहार, पु, (ऋध-वृद्धौ + अच्, अर्द्धं सम्पन्नं हारः ।) चतुःषष्टियष्टिकाहारः । इत्यमरः ॥ चौषट्टिनरि हार इति भाषा ।

अर्द्धाशन, क्ली, (अर्द्धमसम्पूर्णमशनं भोजनं, अर्द्ध + अश + ल्युट् ।) अर्द्धभोजनं । इति शब्दरत्नावली ॥

अर्द्धासन, क्ली, (अर्द्धमासनस्य ।) स्नेहदानं । अकुत्सनं । इति धरणिः ॥ (उपवेशनार्थमासनार्द्धदानरूपः स्नेहव्यञ्जकः सम्मानभेदः । यथा,—
"अर्द्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ" । इति रघुवंशे ॥ "मम हि दिवौकसां समक्षम् अर्द्धासनोपवेशितस्य" । इति शाकुन्तले ।)

अर्द्धेन्दुः, पु, (अर्द्धमिन्दोः ।) चन्द्रार्द्धभागः । गलहस्तः । नखचिह्नं । अतिप्रौढस्त्रीयोन्यङ्गुलियोजनं । इति मेदिनी ॥ अर्द्धचन्द्रबाणः । इति हेमचन्द्रः ॥

अर्द्धोदय, पु, (अर्द्धस्य
योगविशेषः ।
नक्षत्रैर्युक्ता
भवति ।

"समार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेन्माघपौषयोः ।
अर्द्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्य्यग्रहैः समः ॥
अत्र सूर्य्यपर्व्वशताधिक इति कृत्यचिन्तामणौ
पाठः । तथा ।
"दिवैव योगः शस्तोऽयं न च रात्रौ कदाचन ।"
स्कान्दपुराणे ।
"अर्द्धोदये तु सम्प्राप्ते सर्व्वं गङ्गासमं जलम् ।
शुद्धात्मानो द्विजाः सर्व्वे भवेयुर्ब्रह्मसन्निभाः ॥
यत्किञ्चित् क्रियते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम्" ॥
शिवविष्णुस्नानप्रशस्तकालोऽपि । एतस्मादेव ।
"अर्द्धोदये च पूज्यार्के हस्तार्के रोहिणीबुधे" ।
इति तिथ्यादितत्त्वम् ॥

अर्द्धोरुक, स्त्री, (अर्द्धमूर्वोः अर्द्धोरु, तत्र काशते, काश + ड ।) उरुमध्यभागपर्य्यन्तं चोलकाकारपरिधेयवस्त्रं । तत्पर्य्यायः । चण्डातकः २ । इत्यमरः ॥

अर्पण, क्ली, (ऋ + णिच् + ल्युट् ।) प्रापणं । समर्पणं । यथा,—
"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्" ॥
इति श्रीभगवद्गीतायां ९ अध्यायः । (स्थापनं । न्यासः ।
"कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः
पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम्" ।
इति रघुवंशे । स्वत्वत्यागः । परित्यागः ।
"अर्पणं स्वस्य वाक्यार्थे परस्यान्वयसिद्धये" ।
इति साहित्यदर्पणे ।)

अर्पिसः, पुं, (ऋ + णिच् + इसन् ।) हृदयं । इत्युणादिकोषः ॥ (अग्रमांसं ।)

अर्ब्ब, हिंसे । (भ्वादि पर-सक-सेट् ।) गतौ । इति कविकल्पद्रुमः ॥ अर्व्वति । इति दुर्गादासः ॥

अर्ब्बुद, पुं, क्ली, (अर्ब्ब + क्विप्, तस्मै उदेति, उद् + इण + ड ।) दशकोटिसंख्या । रोगविशेषः । मांसकीलः । मांसपुरुषः । आव् इति भाषा । इति शिक्षादिसंग्रहे अमरो मेदिनी च ॥ तस्य निदानलक्षणे ।
"गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः
सम्मूर्च्छिता मांसमसृक् प्रदूष्य ।
वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्त-
मनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् ॥
कुर्व्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं
तदर्ब्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति" ।
महान्तं ग्रन्थ्यपेक्षया चिरेण वृद्धिरपाकश्च यस्य तत् चिरवृद्ध्यपाकं । अपाकमिति ग्रन्थेः सकाशादस्य भेदज्ञापकं । अत्यगाधं दूरानुप्रविष्टं ॥*॥ निदानपूर्व्वकाणि विशिष्टानि लक्षणान्याह ।
"वातेन पित्तेन कफेन वापि
रक्तेन मांसेन च मेदसा च ।
तज्जायते तस्य च लक्षणानि
ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति" ॥
ग्रन्थेः समानानि वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकमेदोजानां ग्रन्थीनां लक्षणैर्व्वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकमेदोजानामर्ब्बुदानां लक्षणानि तुल्यानि भवन्ति ॥*॥ रक्तार्ब्बुदमाह ।
"दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिराश्च
सङ्कोच्य संपीड्य ततस्त्वपाकं ।
सास्रावमुन्नह्यति मांसपिण्डं
मांसाङ्कुरैराचितमाशु वृद्धिं ॥
स्रवत्यजस्रं रुधिरं प्रदुष्ट-
मसाध्यमेतद्रुधिरात्मकन्तु ।
रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्
पाण्डुर्भवेदर्ब्बुदपीडितस्तु" ॥
दोषोऽत्र पित्तं रुधिरं शिराश्च सङ्कोच्य संपीड्य सास्रावमित्यादि । सर्व्वेष्वर्ब्बुदेषु दूष्यत्वेऽपि रक्ते तु विशेषतो दुष्टिः । एवं मांसार्ब्बुदे विशेषतो मांसदुष्टिर्बोद्धव्या । ततो मांसपिण्डमुन्नह्यति उद्गतं करोति । अपाकं ईषत्पाकं यथा स्यादेवमिति क्रियाविशेषणं ईषत्पाकत्वं एकदेशपाकेन । रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात् । रक्तक्षयोपद्रवाः शुक्लनेत्रता । तैः पीडितत्वात् । अर्ब्बुदपीडितः रक्तार्ब्बुदपीडितः ॥*॥ मांसार्ब्बुदस्य संप्राप्तिमाह ।
"मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे
मांसं प्रदुष्टं समुपैति शोथं ।
अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्ण-
मपाकमश्मोपममप्रचाल्यं" ॥
मांसं प्रदुष्टं वातेन । अवेदनं वेदनारहितं ईषद्वेदनं वा । अपाकं पाकरहितं ईषत्पाकं वा । अश्मोपमं पाषाणवत् कठिनं । अप्रचाल्यं स्थिरं । यद्यपि रक्तमांसार्ब्बुदयो रक्तमांसयोर्दुष्टत्वेऽपि तथापि रक्तजे पित्तं मांसजे वायुरारम्भकः ॥*॥ निदानमाह ।
"प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढ-
मेतद्भवेन्मांसपरायणस्य" ।
मांसाशनाभ्यासेन यः प्रदुष्टमांसस्तस्यैव भवति इत्यर्थः ॥*॥ असाध्यमाह ।
"मांसार्ब्बुदं त्वेतदसाध्यमाहुः
साध्येष्वपीमानि विवर्ज्जयेत्तु ।
सम्प्रस्रुतं मर्म्मसु यच्च जातं
स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यं" ॥
साध्येष्वपि वातजादिष्वपि । इमानि वक्ष्यमाणानि सम्प्रस्रुतादीनि ॥*॥ अपरासाध्यमाह ।
"यज्जायतेऽन्यत् खलु पूर्व्वजाते
ज्ञेयं तदध्यर्ब्बुदमर्ब्बुदज्ञैः ॥
यद्द्वन्द्वजातं युगपत् क्रमाद्वा
द्विरर्ब्बुदं तच्च भवेदसाध्यं" ॥*॥
अर्ब्बुदानां पाकाभावे हेतुमाह ।
"न पाकमायाति कफाधिकत्वा-
न्मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु ।
दोषस्थिरत्वात् ग्रथनाच्च तेषां
सर्व्वार्ब्बुदान्येव निसर्गतस्तु" ।
ग्रथनात् ग्रन्थिरूपत्वात् । नन्वन्यथा कफमेदसोराधिक्येऽपि पाको दृश्यते तथात्र कथं न पाक इत्याह निसर्गात् स्वभावात् ॥*॥
अथार्ब्बुदस्य चिकित्सा ।
"यत्नार्ब्बुदानां न यतो विशेषः
प्रदीप्यदेखालतिदोषदुष्टे ।
यतश्चिकित्सेद्भिषगर्ब्बुदानि
विधानविद्ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥
दग्धमा शोध मणा मरधूम मन शिला ।
मधुप्रगाढ़ो लेपोऽयं मेदोऽर्ब्बुदहरः पर ॥१॥
मूलकस्य कृतः क्षारो हरिद्रायाश्च एव च ।
शङ्खचूर्णेन गण्डानां लेप शिलोऽर्ब्बुदापहः ॥२॥
पटद्व्यकृष्णा मञ्जिष्ठ मज वटस्य पत्रेण । ...
स्निग्धप्रलेपनात् महादरुणपग्रान्तिमर्बुदं गच्छेत् ।
शिग्रुमूलयोर्व्वापि रक्तोघ्न सुरसा यव ।
तत्तेजात्वचिषु विज्ञा लिम्पेदर्ब्बुदशान्तये ॥४॥
रक्तोघ्न सर्पप । सुरसा तुलसी । यव रक्त...
अपि कर्णिका । इत्यर्ब्बुदाधिकारः । इ...
भावप्रकाशः ॥

अर्बुर, पुं, (अर्ब्ब + उरच् ।) पर्व्वतविशेषः । इ...
मेदिनी ॥

अर्भ, पुं, (ऋ + भ ।) बालकः । इति हेमचन्द्रः ।
(प्रभाहीन । मलिनः । शिष्य । छात्र । शिशिर ...
शाकशस्यादिक ।)

अर्भक, पुं, (अर्भ एव, स्वार्थे कन् ।) शिशुः । इ...
मरः ॥
("अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिक्षया
पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः" ।
इति रघुवंशे ।) मूर्खः । कृशः । इति मेदिनी ...
माल्पः । सदृशः । इत्युणादिकोषः ॥

अर्म्म, क्ली, पुं, (ऋ + मन् ।) चक्षूरोगविशेषः ...
इति शिक्षादिसंग्रहे अमरः ॥ तच्च पञ्चविधं
प्रस्तार्य्यर्म्म १ शुक्लार्म्म २ रक्तार्म्म ३ मांसार्म्म ...
स्नायर्व्वर्म्म ५ । एषां लक्षणानि तत्तच्छब्दे द्रष्ट...
व्यानि । वैद्यके नान्तक्लीवलिङ्गोऽयं शब्दः ॥

अर्म्मण, पुं, ( ऋ + बाहुलकात् मन् ।) द्रोणपरि...
माणं । इति वैद्यकपरिभाषा ॥

अर्य्य, पुं, (ऋ + यत् ।) स्वामी । वैश्यः । इत्यमरः ...
श्रेष्ठे त्रि । इति तट्टीकायां भरतः ॥ (त्रि, उत्कृष्ट ...
न्याय्य । प्रभु ।

अर्य्यमा, [न्] पुं, (अर्य्यं श्रेष्ठं मिमीते, मा + कनिन् ।) सूर्य्यः ।
("प्रोषितार्य्यमणं मेरोरन्धकारस्तटीमिव" ।
इति माघः ।
"सूर्य्योऽर्य्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः ।
गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः" ॥
इति महाभारते । कश्यपात् दक्षकन्यया दिति...
जातो द्वादशादित्यमध्ये परिगणितः स्थाव ...
दित्य, यदुक्तं हरिवंशे,—
"मारीचात् कश्यपाज्जातास्ते दित्या दक्षकन्यया ।
तत्र शक्रश्च विष्णुश्च जज्ञाते पुनरेव हि ॥
अर्य्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा च भारत ॥
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः" ।)
अर्कवृक्षः । इत्यमरः ॥ पितृदेवविशेषः । इति
मेदिनी ॥

अर्य्या, स्त्री, (ऋ+यत्+टाप्।) वैश्यस्त्रीजाति। इत्यमरः॥

अर्य्याणी, स्त्री, (अर्य्य+आनुक्+ङीप्।) वैश्यस्त्रीजाति। इत्यमरः॥

अर्य्यी, स्त्री, (अर्य्य+ङीप्) वैश्यपत्नी। इत्यमरः॥ वैश्यस्त्रीजाति। इति दुर्गादासः॥

अर्व्व वधे। (इति कविकल्पद्रुमः)॥ (भ्वादि पर-सक-सेट्।) अर्व्वति। इति दुर्गादासः॥ अन्तःस्थवकारान्तोऽयं॥

अर्व्वती, स्त्री, (अर्व्व+बाहुलकात् वनिप्+ङीप्।) घोटकी। इति हलायुधः॥ कुट्टनी। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अर्व्वा, [न्] पुं, (ऋ+वनिप्।) घोटकः। इत्यमरः॥ इन्द्रः। गोकर्णपरिमाणं। इति विश्वः॥ कुत्सिते त्रि। इत्यमरः॥

अर्व्वाक्, व्य, (अवरे काले देशे वा अञ्चति, अन्च+क्विन्, पृषोदरादित्वात् अर्व्वादेशः।) पूर्व्वकालतः पश्चात्। तत्पर्य्यायः। अवरः २। इत्यमरः॥ निकटं। इति भरतः। अर्व्वाच् इति केचित्॥

अर्व्वाचीनः, त्रि, (अर्व्वाग्भवः, ख।) पश्चाज्जातः। विपर्य्यस्तः। इति धरणिः॥ (इदानीन्तनः। अधोभागस्थितः। अवरदेशगतः।

("यदूर्द्ध्वं पृथिव्या अर्व्वाचीनमन्तरीक्षात्"। इति शतपथब्राह्मणे।)

अर्शं, क्ली, (ऋश्+अच्।) अर्शोरोगः। इति शब्दरत्नावली॥ (वलिकाकारः गुह्यस्थरोगभेदः।)

अर्शः, [स्] क्ली, (ऋ+असुन्, शुट्।) स्वनामख्यातपायुरोगः। तत्पर्य्यायः। दुर्नामकं २। इत्यमरः॥ दुर्नाम ३ गुदकीलः ४ गुदाङ्कुरः ५। इति राजनिर्घण्टः॥ अनामकं ६। इति शब्दरत्नावली॥ यथा। अथार्शोऽधिकारः। तत्रार्शसः सन्निकृष्टनिदानान्याह।

"पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात् सहजानि च।
अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्याद्गुदवलित्रये"॥

केचिद्रुधिरस्यापि दोषत्वं मन्यन्ते। तन्मतमाश्रित्याह। शोणितादिति। सहजानि शरीरेण सह जातानि। सङ्ख्यामाह। षट्प्रकाराणीति। गुदवलित्रये सार्द्धचतुरङ्गुलं गुदस्य मानं तस्यावयवभूतास्तिस्रो वलयः शङ्खावर्त्तनिभा उपर्य्युपरि सन्ति। तासां नाम प्रवाहिणी विसर्ज्जनी संवरणी चेति। तत्र गुदौष्ठोऽर्द्धाङ्गुलमानस्तदूर्द्ध्वमङ्गुलमाना प्रथमा वलिः। सार्द्धैकाङ्गुलमाना द्वितीया। तृतीया च तावती। उक्तञ्च।

"अर्द्धाङ्गुलप्रमाणेन गुदौष्ठं परिचक्षते।
गुदौष्ठादङ्गुलं चैकं प्रथमान्तु वलिं विदुः॥
सार्द्धैकाङ्गुलमानेन पृथगन्ये प्रकीर्त्तिताः"॥ * ॥

अथ वातार्शसो विप्रकृष्टं निदानमाह।

"कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च।
प्रमिताल्पाशनं तीक्ष्णं मद्यं मैथुनसेवनं॥
लङ्घनं देशकालौ च शीतौ व्यायामकर्म्म च।
शोको वातातपस्पर्शो हेतुर्व्वातार्शसां मतः"॥

प्रमितमपरिमितं। तीक्ष्णमिति मद्यविशेषणं। पैष्ट्यादिमद्यमद्यस्य वातसमकत्वात्। आतपस्तूष्णवीर्य्योऽप्युक्तरौक्ष्याद्वातप्रकोपे हेतुः वातार्शसां। नन्वर्शांसि सर्व्वाणि त्रिदोषजानि। यतश्चाह।

"पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रये।
सर्व्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे"॥ इति।

तथा सति कथं वातार्शसामिति उच्यते। तत्तदाधिक्याद्व्यपदेशभेदः इति न दोषः। अतएव अग्रे वक्ष्यते। पित्तोल्बणानामिति तथाच चरकः।

"अर्शांसि नाम जायन्ते नासन्निपतितैस्त्रिभिः।
दोषैर्दोषविशेषात्तु विशेषः कथ्यतेऽर्शसां"॥

इति॥ * ॥ अथ पित्तार्शसो विप्रकृष्टनिदानमाह।

"कट्वम्ललवणोष्णानि व्यायामाग्न्यातपप्रभाः।
देशकालावशिशिरौ क्रोधो मद्यमसूयनं
विदाहि तीक्ष्णमुष्णं यत् तत् सर्व्वं पानभोजनं।
पित्तोल्बणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसां"॥

उष्णद्रव्यस्य स्पर्शनादि बोद्धव्यं उष्णपानभोजनस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वात्। अग्न्यातपप्रभा अग्न्यातपयोः प्रभा तेजः। अथवा अग्न्यातपेतरतेजस्विद्रव्यस्य दीप्तिः प्रभा। अशिशिरो देशो मरुः। असूयनं परसम्पत्तिद्वेषः। पानभोजनं पीयत इति पानं। भुज्यते इति भोजनं प्रकोपे उत्पत्तौ॥ * ॥ अथ कफार्शसो विप्रकृष्टं निदानमाह।

"मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च।
अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखे रतिः॥
प्राग्वातसेवाशीतौ च देशकालावचिन्तनं।
श्लैष्मिकाणां समुद्दिष्टमेतत् कारणमर्शसां"॥

अचिन्तनं निश्चिन्तता॥ * ॥ अथ त्रिदोषार्शसो विप्रकृष्टं निदानमाह।

"सर्व्वो हेतुस्त्रिदोषाणां सहजैर्लक्षणं समं"।

जनकत्वेन त्रयो दोषा येषां तानि त्रिदोषाणि अर्शांसि तेषां सर्व्वो हेतुः। पृथग्वातपित्तकफार्शोहेतुः। त्रिदोषार्शसां लक्षणञ्च सहजैः सहजार्शोभिः समं सदृशं। ननु त्रिदोषाणां इति विशेषणं व्यर्थं। यतः सर्व्व एव व्याधयस्त्रिदोषजाः। उक्तञ्च।

"द्रव्यमेकरसं नास्ति न रोगोऽप्येकदोषजः।
एकस्तु कुपितो दोषः इतरावपि कोपयेत्"॥

इति। युक्तिमप्याह। स्वकारणादृद्धो वायुः शैत्याच्छीतलं श्लेष्माणं लाघवात्तेनोरूपं पित्तं वर्द्धयते। तथा पित्तं कटुकत्वात् वातं द्रवत्वात् कफं वर्द्धयते। श्लेष्मा च शैत्यादायुं द्रवत्वात् पित्तं वर्द्धयते इति। उच्यते। यत्र स्वस्वकारणात्त्रयो दोषाः कुप्यन्ति तत्र त्रिदोषजव्यपदेशः इति न दोषः॥ * ॥ अथार्शसां पूर्व्वरूपमाह।

"विष्टम्भोऽन्नस्य दौर्ब्बल्यं कुक्षेराटोप एव च।
कार्श्यमुद्गारबाहुल्यं सक्थिसादोऽल्पविट्कता॥
ग्रहणीदोषपाण्ड्वर्त्तेः आशङ्का चोदरस्य च।
पूर्व्वरूपाणि निर्द्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये"॥

दौर्ब्बल्यमापल्यं। आटोपः गुड्गुडाशब्दः। अभिवृद्धये उत्पत्तये॥ * ॥ अथार्शसां संप्राप्तिपूर्व्वकं सामान्यलक्षणमाह।

"दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि सन्दूष्य विविधाकृतीन्।
मांसाङ्कुरानपानादौ कुर्व्वन्त्यर्शांसि तान् जगुः"॥

त्वक्शब्देन त्वगाश्रितं रक्तमपि गृह्यते। चिकित्सायां रक्तस्रावणोपदेशात्। अपानं गुदं। आदिशब्दान्नासानेत्रनाभिमेढ्रादिष्वपि कुर्व्वन्ति॥ * ॥ अथ वातार्शोलक्षणमाह।

"गुदाङ्कुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः।
म्लाना श्यावारुणाः स्तब्धा विशदाः परुषाः खराः॥
मिथोविसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः।
बिम्बीकर्क्कन्धुखर्ज्जूरकार्पासीफलसन्निभाः॥
केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित् सिद्धार्थकोपमाः।
शिरःपार्श्वांसकट्यूरुवङ्क्षणाभ्यधिकव्यथाः॥
क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्ग्रहारोचकप्रदाः।
कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः॥
तैरार्त्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकं।
रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते॥
कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते।
गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासम्भवस्तत एव च"॥

बह्वनिलाः वातोल्बणाः। गुदाङ्कुरा अर्शांसि। चिमिचिमान्विताः चिमिचिमा व्यथाविशेषः चरचराव इति लोके तदन्विताः। श्यावारुणाः श्यावा धूम्रवर्णाः। अरुणा ईषद्रक्ताः। स्तब्धाः कठिनाः। विशदा अपिच्छिलाः। परुषा गोजिह्वावत् स्पर्शे कर्कशाः। खराः कर्कोटकफलवत् सूक्ष्मानेककण्टकाचिताः। बिम्बादिफलसन्निभाः आकृत्या। अत्र वि[illegible] वक्ष्यमाणं केचित् केचिदिति पदं सम्बन्धनीयं।

"कदम्बपुष्पाभाः स्थूलाः अनेक[illegible]राः।
सिद्धार्थकोपमाः पीतसूक्ष्मपि[illegible]ाः"॥

तैरार्त्तः इति अर्शोभिः पीडितः। तैरार्त्तो विबद्धमुपवेश्यते इत्यार्त्तस्य प्रयोज्यकर्त्तृ[illegible]र्थत्वात्। ग्रथितं मलगुटिकाग्रथितविड्वर्त्तिरूपं। पिच्छा पिच्छिलो द्रवभागः। बद्धं संहतं। विट्शब्दो नपुंसकेऽप्यस्ति। उपवेश्यते त्यज्यते। अतएव वातार्शस एव गुल्मादीनां सम्भवः। अष्ठीला नाभेरधोभागे पाषाणपिण्डिकावद्वातव्याधिविशेषः॥ * ॥ अथ पित्तार्शोलक्षणमाह॥

"पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः।
तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः॥
शुकजिह्वायकृत्खण्डजलौकोवक्त्र[illegible]भाः।
दाहपाकज्वरस्वेदतृष्णामूर्च्छारतिप्रदाः॥
सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्च्चसः।
यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः"॥

पित्तोत्तराः पित्तोल्बणाः। तनु अघनं। श्लथाः लम्बिनः। सन्निभा आकृत्या। पाको गुदस्य। सोष्माणः उष्णस्पर्शाः। हरित् श्यामवर्णं। पीतं हरितालवर्णं। हारिद्रं हरिद्रावर्णं। आदिशब्दान्मलमूत्रमुखानां ग्रहणं॥ * ॥ अथ केचिद्रुधिरस्यापि दोषत्वं मन्यन्ते तन्मतमाश्रित्य रक्तार्शोलक्षणमाह।

इति लोके। शिलाभित् पाषाणभेदः। अश्मार-
कनेल इति लोके। खर्ज्जूरी चोक इति लोके।
हस्त्यासीवाद्यं तैलम् ॥ ९ ॥

"शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलं
चूर्णीकृतं क्रमविवर्द्धितमूर्द्धमन्त्यात्।
खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्य
गुल्मारुचिश्वसनकण्ठहृदामयेषु" ॥

तद्यथा। एलात्र सूक्ष्मा ग्राह्या। यत आह मदन-
पालः।
"एला सूक्ष्मा कफश्वासकासार्शोमूत्रकृच्छ्रहृत्"।
इत्यादि। तस्या वीजभागः १ त्वग्भाग २ दलं
पत्रं। यत आह निघण्टौ धन्वन्तरिः।
"तमालपत्रकं पत्रं स्यात् पलाशं दलाह्वयम्"।
इति तस्य भागः ३। नागो नागकेशर। यत
आह निघण्टौ धन्वन्तरिः।
"नागपुष्पं मतं नाग केशरं नागकेशरम्" ॥
इत्यादि। तस्य भागः ४ मरीचभाग ५ पिपरि-
भाग ६ शुण्ठीभागः ७ चिनिभागः २८। सम-
शर्करचूर्णं ॥ १० ॥

"त्रिपलं शृङ्गवेरस्य चतुष्कं मरिचस्य च।
पिप्पल्याः कुडवार्द्धञ्च चव्यायाः पलमेव च ॥
तालीशपत्रस्य पलं पलार्द्धं केशरस्य च।
द्विपलं पिप्पलीमूलमर्द्धकर्षञ्च पत्रकात् ॥
सूक्ष्मैलाकर्षमेकन्तु कर्षञ्च त्वङ्मृणालयोः।
गुडात् पलानि त्रिंशच्च चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥
अक्षप्रमाणगुटिका प्राणदा चेति सा स्मृता।
पूर्व्वं भक्ष्यञ्च पश्चाच्च भोजनस्य यथाबलं ॥
मद्यं मांसरसं यूषं क्षारतोयं पिबेदनु।
हन्यादर्शांसि सर्व्वाणि सहजान्यस्रजानि च ॥
वातपित्तकफोत्थानि सन्निपातोद्भवानि च।
पानात्यये मूत्रकृच्छ्रे उरोरोगे गलग्रहे ॥
विषमज्वरपित्ते च पाण्डुरोगे तथैव च।
कृमिहृद्रोगिणाञ्चैव गुल्मशूलार्त्तिनां तथा ॥
छर्द्यतीसाररोगाणां कामलाहिक्किनां तथा।
शुण्ठीस्थानेऽभया देया हृद्ग्रहे पित्तजे गदे ॥
प्राणदेयं सिता दत्त्वा गुडमानाच्चतुर्गुणा।
अम्लपित्ताग्निमान्द्यादौ प्रयोज्या गुदजातुरे ॥
अनुपाने प्रयोक्तव्यं व्याधौ श्लेष्मभवे पलं।
पलद्वयं त्वनिलजे पित्तजे तु पलत्रयं ॥

फलाम्लधान्याम्लरसास्त्वशस्ता
मद्यं मरुद्रोगिणि चानुपानं।
दुग्धो रसक्षारहिमाम्बु पित्ते
उष्णाम्बुयूषौ कफजे विदध्यात् ॥

गण्डूषमात्रमादेयं स्त्रौ कूरे च पञ्च वा।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं देशकालमवेक्ष्य वा" ॥
इति प्राणदा गुटिका ॥ ११ ॥

"त्रिफलात्र्यूषणं हिङ्गु पाठाक्षारौ निशाद्वयं।
चव्यतिक्ता कलिङ्गानि शताह्वा लवणानि च ॥
ग्रन्थिविल्वाजमोदा च गणोऽष्टाविंशतिर्मतः।
एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥
चूर्णं विडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा।
एरण्डतैलयुक्तं वा लिह्याच्चूर्णमिदं नरः ॥
हन्यादर्शांसि सर्व्वाणि श्वासशोथभगन्दरान्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च वातगुल्मं तथोदरं ॥
हिक्का कासं प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं सकामलं।
आमवातमुदावर्त्तमन्त्रवृद्धिं गुदक्रिमीन् ॥
अन्ये च ग्रहणीदोषा भिषग्भिर्ये प्रकीर्त्तिताः।
विजयो नाम चूर्णोऽयं तान् सर्व्वानाशु नाशयेत् ॥
महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसां।
अप्रजानाञ्च नारीणां हितमेतद्धि भेषजं ॥
त्रिकत्रयं त्रिफलात्रिकटुत्रिसुगन्धीनि।
क्षारौ स्वर्जिका यवक्षारश्च। लवणानि पञ्च।
ग्रन्थि पिप्पलीमूल। विडालपदकं कर्षं। विजय-
चूर्णं ॥ १२ ॥

"मरिचमहौषधचित्रकशूरण-
भागा यथोत्तरं द्विगुणाः।
सर्व्वसमो गुडभागः
सेव्योऽयं मोदकः प्रसिद्धफलः ॥
ज्वलनं ज्वलयति जाठर-
मुन्मूलयति शूलगुल्मगदान्।
निःशेषयति श्लीपद-
मर्शांसि विनाशयत्याशु" ॥

तद्यथा। मरिचभाग १ शुण्ठीभाग २ चिता-
भाग ४ शूरणभाग ८ गुडभाग १५। लघु-
शूरणमोदकः ॥ १३ ॥

"षोडशशूरणतोऽशा वह्नेरष्टौ महौषधस्याथ।
अर्द्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततोऽपि चार्द्धेन ॥
त्रिफला कणा समूला तालीशारुष्करक्रिमिघ्नानां।
भागा महौषधसमा दद्याच्छतालमूली च ॥
भागः शूरणतुल्यो दातव्यो वृद्धदारकस्यापि।
भृङ्गैले मरिचांशे सर्व्वाण्येकत्र कारयेत् चूर्णं ॥
द्विगुणेन गुडेन युतः सेव्योऽयं मोदकः प्रकामघ्नः।
गुरुवृष्यभोज्यमिश्रैरितरेषूपद्रवं कुर्य्यात् ॥
भस्मकमनेन जनितं पूर्व्वमगस्त्यस्य योगराजेन।
भीमस्य मारुतेरपि महाशनौ येन तौ जातौ ॥
अभिनवसमाप्तहेतुर्न केवलं शूरणो महावीर्य्यः।
हन्ता शस्त्रक्षारानलैर्विनाप्यर्शसामेष ॥
श्वयथुश्लीपदगदहृद्ग्रहणीश्च कफानिलोद्भूता।
नाशयति वलीपलितं मेधां कुरुते जरां हरते ॥
हिक्कां कासं श्वासं सराजरोगान् प्रमेहांश्च।
प्लीहानञ्च तथोग्रं हन्यादाशु रसायनं पुंसां" ॥

एषां भागो यथा। शूरणभाग १६ चिताभाग ८
सोंठिभाग ४ मरिचभाग २। हररे वहेरा
अवरा। पीपर पिपरामूल। तालीश तालीश-
पत्र। अरुष्कर भल्लातकं। तदसत्त्वे रक्तचन्दन।
विडङ्ग प्रत्येकं भाग ४ तालमूली मूषली तस्याः
भाग ८ विधाराभाग १६ तजभाग २ एलाइच-
छोटीवीजभाग २ गुडभाग ४। ७२। वृहच्छू-
रणो मोदकः ॥ १४ ॥

"त्रिवृत्तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकः शटी।
गवाक्षीमुस्तविश्वाह्वविडङ्गानि हरीतकी ॥
पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात्।
वृद्धदारात् पलान्यष्टौ शूरणस्य तु षोडश ॥
जलद्रोणद्वये क्वाथ्यं चतुर्भागावशेषितं।
पूतं तु तं रसं भूयः क्वाथेभ्यः त्रिगुणं गुडं ॥
लेहं पचेत् शुभस्तावद्यावद्दर्व्वीप्रलेपनं।
अवतार्य्य ततः पश्चात् चूर्णानीमानि दापयेत् ॥
त्रिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान् द्विपलांशिकान्।
एलात्वङ्मरिचं चापि नागाह्वं चापि षट्पलं ॥
द्वात्रिंशच्च पलान्यत्र चूर्णयित्वा निधापयेत्।
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीररसाशिनः" ॥
तेजोवती तेजवती तेजवल्कल इति च।
कन्दः शूरणः।

"हन्यादर्शांसि सर्व्वाणि तथा सर्व्वोदराण्यपि।
गुल्मानपि प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकं ॥
दीपयेदनलं मन्दं यक्ष्माणं चापकर्षति।
आढ्यवाते प्रतिश्याये पीनसेऽयं हितो मतः ॥
भवन्त्यनेन पुरुषाः शतं वर्षाण्यनामयाः।
दीर्घायुषः प्रजनना वलीपलितवर्ज्जिताः ॥
गुडः श्रीवाहुशालोऽयं रसायनवरो मतः।
दुर्नामान्तकरो ह्येष दृष्टो वारसहस्रशः ॥
यावद्दर्व्वीप्रलेपः स्याद्यावद्वा वर्त्तुली भवेत्।
तोयपूर्णे यदा पात्रे क्षिप्तो न स्रवते गुडः ॥
क्षिप्तस्तु निश्चलस्तिष्ठेत् पतितस्तु न शीर्य्यति।
एष पाकः समस्तानां गुडानां परिकीर्त्तितः ॥
सार्द्धं पलं पलञ्चार्द्धं भक्षयेद्गुडखण्डयोः।
श्रेष्ठा तु मध्यमा हीना मात्रोक्ता मुनिभिस्त्रिधा"।
वाहुशालो गुडः ॥ १५ ॥

"तिला भल्लातकं पथ्या गुडश्चेति समांशकं।
दुर्नामश्वासकासघ्नं प्लीहपाण्डुज्वरापहं ॥
पित्तश्लेष्मप्रशमनो कण्डूदद्रुरुजापहा।
गुदजान्नाशयत्याशु भक्षिता सगुडाभया" ॥ १६ ॥*

"प्रणम्य शङ्करं रुद्रं दण्डपाणिं महेश्वरं।
जीवितारोगमन्विच्छन्नारदोऽपृच्छदीश्वरं ॥
सुखोपायेन हे नाथ शस्त्रक्षाराग्निभिर्व्विना।
चिकित्सामर्शसां नृणां कारुण्याद्वक्तुमर्हसि ॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा नराणां हितकाम्यया।
अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं भैषज्यं शङ्करोऽवदत् ॥
माणवश्चादिलोहानामादायान्यतमं शुभं।
हत्वा निर्म्मलमादौ तु कुनट्या माक्षिकेण च ॥
पत्तूरमूलकल्केन लिम्पेद्रसयुतेन च"।
कुनटी मनःशिला। माक्षिकं स्वर्णमाक्षिकं।
पत्तूर वकम इति लोके। शालिञ्चा इति रसेन्द्र-
चिन्तामणौ। रसः पारदः।

"वह्नौ निक्षिप्य विधिवत् सारङ्गारेण निर्धमेत्।
ज्वाला च तस्य रोद्धव्या [illegible] रसेन वा" ॥
सारः काष्ठसारः। [illegible] इति रसेन्द्र-
चिन्तामणौ पाठः।

"ततो विज्ञाय गलितं [illegible]पेत्।
त्रिफलाया रसे पूते तदा[illegible] ॥
न सम्यग्गलितं यत्तु तेनैव [illegible]।
ध्मातं निर्व्वापयेत्तस्मिन् लोहं [illegible]रसे ॥
यल्लोहं न मृतं तत्र पाच्यं भूयोऽपि [illegible]।
मारणाश्च मृतं यच्च तत्य[illegible] ॥
ततः सशोध्य विधिवत् चूर्ण[illegible]भाजने।
लोहेनैव तथा वत्स दृषदा [illegible] ॥

कृत्वा लौहमये पात्रे मार्दे वा सिततरन्ध्रके ।
रसे पञ्चोपमं कृत्वा तु पचेद्धोमयाग्निना ॥
पुटानि क्रमशो दद्यात् पृथगेषां विधानतः ।
त्रिफलाभृङ्गराजयोर्वा केशराजस्य बुद्धिमान् ॥
माणकन्दकभल्लातवह्नीनां सूरणस्य च ।
हस्तिकर्णपलाशस्य कुलिशस्य तथैव च” ॥
भृङ्गः भङ्गरिया । केशराजः भृङ्गराज इति द्विः ।
कुलिशं स्नुहीक्षीरं ।
“पुटे पुटे चूर्णयित्वा लौहात् षोडशिकं पलं ।
तन्मानं त्रिफलायाश्च पलेनाधिकमाहरेत् ॥
अष्टभागावशिष्टे तु रसे तस्याः पचेद्बुधः ।
अष्टौ पलानि दत्त्वा च सर्पिषो लौहभाजने ॥
ताम्रे वा लौहदर्व्या तु चालयेद्विधिपूर्व्वकं ।
ततः पाकविधानज्ञः खच्छे चोर्द्धे च सर्पिषि ॥
मृदुमध्यादिभेदेन गृह्णीयात् पाकमाज्यतः ।
आरभेत विधानज्ञः कृतकौतुकमङ्गलः ॥
भ्रामरं घृतसंयुक्तं विलिह्यान्माक्षिकक्रमात् ।
वर्द्धमानानुपानञ्च गव्यक्षीरेण संयुतं ॥
गव्याभावे तु जायाश्च स्निग्धरूप्यादिभोजनं ।
सद्योवह्निकरश्चैव भस्मकञ्च नियच्छति ॥
हन्ति वातं तथा पित्तं कुष्ठानि विविधं ज्वरं ।
गुल्मप्लीहपाण्डुरोगांश्च निद्रालस्यमरोचकं ॥
शूलञ्च परिणामञ्च प्रमेहमववाङ्कं ।
श्वयथुं रुधिरस्रावं दुर्नामानं विशेषतः ॥
बलश्चद्धूहणश्चैव कान्तिदः स्वरवर्द्धनः ।
शरीरलाघवकरमारोग्यं पुष्टिवर्द्धनं ॥
आयुष्यं श्रीकरश्चैव वयस्तेजस्करः शुभः ।
सश्रीकपुत्रजननं वलीपलितनाशनं ॥
दुर्नामारिरयं नाम्ना दृष्टो वारसहस्रशः ।
अनेनार्शांसि दह्यन्ते यथा तूलञ्च वह्निना ॥
सौकुमार्य्याल्पकायत्वात् मद्यसेवी यथा नरः ।
जीर्णमद्यादियुक्तादिभोजने सह दापयेत्” ॥
रसेन्द्रचिन्तामणौ यथास्थाने यदा तृतीयचरण-
स्थाने जीर्णे मद्ये प्रयोक्तव्यमिति पाठः ।
“लावतित्तिरवर्त्तीरमयूरशशकादयः ।
चटकः कलविङ्कश्च वर्त्तका हरितालकः ॥
शेनकश्च रक्तलावो वनविष्किरकादयः ।
पारावतमृगादीनां मांसं जाङ्गलकं शुभं ॥
वर्त्तीरः वगेरा इति लोके । चटको वन्यचटकः ।
कलविङ्को गृहचटकः । वर्त्तका वटई इति लोके ।
हरितालकः हरिताल इति लोके । विष्किरा-
वर्त्तकादयः ।
“मद्गुरो रोहितः श्रेष्ठः शकुलश्च विशेषतः ।
मत्स्यराजा इमे प्रोक्ता हितमर्शाय देहिने ॥
वृन्ताकस्य फलं शस्तं पटोलं वृहतीफलं ।
प्रलम्बाभीरुवेत्राग्रं तालकस्तण्डुलीयकः” ॥
प्रलम्बा लम्बालाबुः । अभीरुः शतावर्य्याः पत्रशाकः ।
तालकः देवदाली । तथा च निघण्टौ धन्वन्तरिः ।
“जीमूतको देवताडो वृत्तकोशो गरा गरी ।
प्रोक्ताखुविषहृद्वेणी देवदाली च ताडकः ॥
देवदाली रसे तिक्ता कफार्शःशोथपाण्डुता”
नाशयेदित्यादि ॥

“वास्तूकं धान्यशाकञ्च केमुकं चक्रवर्त्तनं” ।
चक्रवर्त्तनं चकवतशाक ।
“नारिकेलञ्च खर्ज्जूरं दाड़िमं लवलीफलं ।
शृङ्गाटकञ्च पक्वाम्रं द्राक्षा तालफलानि च ।
जातीकोशं लवङ्गञ्च पूगं ताम्बूलपत्रकं ॥
हितान्येतानि वस्तूनि लौहमेतत् समश्नतां ।
नाम्रीयक्षकुचं कोलं कर्कन्धुवदराणि च ।
जम्बीरं वीजपूरञ्च तिन्तिड़ीं करमर्द्दकं” ॥
कोलं क्षुद्रवदरं । कर्कन्धुवदराणि महान्ति ।
“आनूपानि च मांसानि शकरं पुण्ड्रकानपि ।
हंससारसदात्यूहशकुकङ्कबलाकिकाः ॥
माणकन्दकरीराणि कतकञ्च कलिङ्गकं ।
कुष्माण्डकञ्च कर्क्कोटं केमुकञ्च विशेषतः ॥
कटुकं कालशाकञ्च कशेरु कर्क्कोटीं तथा ।
ककारादीनि सर्व्वाणि द्विदलानि च वर्जयेत् ॥
शङ्करेण समाख्यातश्चूर्णराजोऽनुकम्पया ।
जगतामुपकाराय दुर्नामारिरयं ध्रुवं ॥
स्थानादपैति मेरुश्च पृथ्वी पर्य्येति वायुना ।
पतन्ति चन्द्रताराश्च मिथ्या चेदहमध्रुवं ॥
ब्रह्मघ्नाश्च कृतघ्नाश्च क्रूरा येऽसत्यवादिनः ।
वर्ज्जनीयाः स्वधर्म्मेण भिषजा गुरुनिन्दकाः ॥
मुनिरसपिष्टविडङ्गं मुनिरसलौहं चिरस्थितं घर्मे ।
द्रावयति लौहदोषान् वह्निर्नवनीतपिण्डमिव” ॥
मुनिरगस्तिः ।
“काले मलप्रवृत्तिर्लाघवमुदरे विशुद्धिरुद्गारे ।
अङ्गेषु नावसादो मनःप्रसादोऽस्य परिपाके ॥
कृमिरिपुचूर्णं लीढं सहितं खरसेन वङ्गसेनस्य ।
क्षपयत्यचिरात्सितया लौहाजीर्णोद्भवं शूलं” ॥
वङ्गसेनस्य अगस्तेः ।
“जीर्णे लौहे पतति चूर्णं भुञ्जीत सिद्धसाराख्यं ।
लौहव्यापन्नश्यति विवर्द्धते जाठरो वह्निः” ॥
तद्यथा,—
“पथ्यासैन्धवशुण्ठीमागधिकानां पृथक् समो भागः ।
त्रिवृतो भागौ निम्बू भाव्यं तत् सिद्धसाराख्यं” ॥
“भवेद्यद्यतिसारस्तु दुग्धं पीत्वा तु तं जयेत् ।
गुञ्जाद्वादशकादूर्द्ध्वं रुद्धिरस्य भयप्रदा” ॥
शङ्करप्रणीतं लौहं । इति सामान्यक्रिया ॥१७॥*॥
अथ रक्तार्शसां चिकित्सा ।
“रक्तार्शसामुपेक्षेत रक्तमादौ स्रवद्भिषक् ।
दुष्टास्रे निगृहीते स्युः शूलानाहास्रगामयाः ॥
चन्दनकिराततिक्तकधन्वयवासाः सनागराः क-
थिताः । रक्तार्शसां प्रशमना दार्व्वीत्वगुशीरनिम्बा
वा” ॥ चन्दनमत्र रक्तचन्दनं । चन्दनादिक्वाथः ॥१॥
नवनीततिलाभ्यासात् २ । केशरनवनीतशर्करा-
भ्यासात् ३ । दधिसरमथिताभ्यासात् ४ । गुदजाः
शाम्यन्ति रक्तवहाः ॥
“दध्नस्तूपरि यो भागो घनः स्नेहयुतः सरः” ।
मथितं सररहितं निर्ज्जलं वस्त्रपूतं दधि ।
सपत्रकेसरं क्षौद्रं नवनीतं त्वचं लिहन् ।
सिताकेशरसंयुक्तं रक्तार्शस सुखीभवेत् ॥ ५ ॥
पयसा शृतेन यूषैः ससीनमुद्गाढ़कीमसूराणां ।
ओदनमद्यादर्शोमधुरैरौषत्सुगन्धैश्च ॥ ६ ॥

समङ्गोत्पलमोचाह्वतिरीटतिलचन्दनैः ।
सिद्धं छागीपयो दद्यात् गुदजे शोणितात्मके
समङ्गा लज्जालुः । मोचाह्वो मोचरसः । तिरी
लोध्रं । चन्दनमत्र रक्तं । समङ्गादिदुग्धं ॥ ७ ॥
“भावितं रजनीचूर्णं स्नुहीक्षीरे पुनः पुनः ।
बन्धनात् सुदृढ़ं सूत्रं छिनत्त्यर्शोभगन्दरं” ।
क्षारसूत्रं ॥ ८ ॥
“नासानाभिसमुत्थेषु तथा मेढ्रादिजेष्वपि ।
क्रियामर्शःसु कुर्व्वीत तत्र तत्र यथोदितां ॥
चर्म्मकीलन्तु सञ्छिद्य दहेत् क्षारेण चाग्निना
वेगावरोधस्त्रीपृष्ठयानान्युत्कटकासनं ।
यथाखं दोषलञ्चान्नमर्शस परिवर्ज्जयेत्” ।
इत्यर्शोऽधिकारः ॥ ० ॥ इति भावप्रकाशः ।
अर्शस, त्रि, (अर्शस् + अस्त्यर्थे अच् ।) अर्शोरो
युक्तः । इत्यमरः ॥
(“हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्
इति मनुः ।
“अन्नपानौषधं सर्व्वं तत्सेव्यं नित्यमर्शसाम् ।
हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा ।
शोथो हृत्पार्श्वशूलञ्च यस्यासाध्योऽर्शसो हि स
इति भावप्रकाशः ।)
अर्शसान, पु, (ऋ + असानच्, सुट् ।) अग्नि
इति सिद्धान्तकौमुद्यामुणादिवृत्तिः । (“अ
सानाय शत्रूणां हिंसित्रे” । इति वेदभाष्यम् ।)
अर्शी, [न्] त्रि, (अर्शमस्त्यस्य, अर्श + इनि
अर्शोरोगयुतः । इति शब्दरत्नावली ॥
अर्शोघ्न, पु, (अर्शो हन्ति, अर्श + हन् + ट ।
ओलः । तत्पर्य्यायः । सूरणः २ कन्दः ३ । इत्य
मरः ॥ सूरमः ४ । इति तट्टीका ॥ ओल इ
भाषा । (अर्शोरोगविनाशकः ।
“अर्शोघ्नं कारमं मूत्रं मानुषन्तु विषापहम्” ।
इति सुश्रुते ।)
अर्शोघ्नी, स्त्री, (अर्शस् + हन् + ट + ङीप् ।) ता
मूली । इति मेदिनी ॥
अर्शोहित, पुं, (अर्शसि हित, सेवनेन तन्नाशक
त्वात् ।) भल्लातकः । इति त्रिकाण्डशेषः । भेल
इति भाषा ।
अर्ह योग्यत्वे । (भ्वादि-पर-सक-सेट् ।) पूजने
इति कविकल्पद्रुमः ॥ अर्हति विप्रो वेदं पठितु
सकर्म्मकोऽयि ।
“यज्ञदानतपांस्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीं” ।
इति दुर्गादासः ॥
(“अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति” ।
इति मनुः ।
“द्विधाप्यहान्यर्हसि सोढुमर्हम्” ।
इति रघुवंशे ।
“गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवन्मानमर्हति” ।
इति मनुः ।)
अर्ह क पूजने । (चुरां-उभ-सक-सेट् ।) इति
कविकल्पद्रुमः ॥ क अर्हयति । इति दुर्गादासः ।
(“राजार्ज्जिहत्त मधुपर्कपाणि” । इति भट्टि
काव्ये ।)

अर्ह, पुं, (अर्ह+अच्।) इन्द्र। इति शब्दरत्नावली॥

अर्ह, त्रि, (अर्ह+अच्।) योग्य। उपयुक्त। यथा,—
"तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्त्तराष्ट्रान् सबान्धवान्"।
इति श्रीभगवद्गीता॥

अर्हणा, स्त्री, (अर्ह+युच्+टाप्।) पूजा। इत्यमर॥
("अर्हणामर्हते चक्रुर्मुनयो नयचक्षुषे"।
इति रघुवंशे।)

अर्हन्, [त्] पुं, (अर्ह प्रशंसायां शतृ।) क्षपणक। बुद्ध। इति मेदिनी॥ शेषस्य पर्य्याय। जिन २ पारगत ३ त्रिकालवित् ४ क्षीणाष्टकर्म्मा ५ परमेष्ठी ६ अधीश्वर ७ शम्भु ८ स्वयम्भू ९ भगवान् १० जगत्प्रभुः ११ तीर्थङ्कर १२ तीर्थकर १३ जिनेश्वर १४ वादी १५ अभयद १६ सार्व्व १७ सर्व्वज्ञ १८ सर्व्वदर्शी १९ केवली २० देवाधिदेव २१ बोधदः २२ पुरुषोत्तम २३ वीतरागाप्त २४। इति हेमचन्द्र॥

अर्हन्, (त्) त्रि, (अर्ह+शतृ।) पूज्यः। मान्य। इति मेदिनी॥ स्तुत। इति शब्दरत्नावली॥
("यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते"।
इति कुमारसम्भवे।
"त्वमर्हतामग्रसरः स्मृतोऽसि नः"।
इति शाकुन्तले।)

अर्हन्त, पुं, (अर्ह+बाहुलकात् झच्।) बुद्ध। क्षपणक। मान्ये त्रि। इति जटाधर॥ शिवः। इति शब्दरत्नावली॥

अर्हितः, त्रि, (अर्ह+क्त।) पूजित। इत्यमर॥

अल ञ वारणपर्य्याप्तिभूषासु (भ्वादि-उभं-सक।) इति कविकल्पद्रुमः॥ ञ अलति अलते पापं गङ्गा निवारयतीत्यर्थः। पर्य्याप्ति सामर्थ्यं। "पर्य्याप्तिस्तु यथेष्टं स्यात् शक्तौ शक्ते निवारणे"। इति विश्वप्रकाशात्। अलति घोटको धावितुं समर्थ इत्यादित्यर्थः। अलति हारो जनं भूषयति इत्यर्थः। इति दुर्गादास॥

अल, क्ली, (अल+अच्।) वृश्चिकपुच्छकण्टक। इति हेमचन्द्र। विछार डङ्ल इति भाषा। हरिताल। इति रत्नमाला अमरटीका च॥

अलं, अ, भूषणं। पर्य्याप्ति। वारणं। निरर्थकं। शक्ति। इति मेदिनी॥ अत्यर्थ। यथा,—
"सर्वं मे विमलं वदामलमलं गोलं विशालाक्षि चेत्"। इति लीलावती॥

अलक, पुं, स्त्री, (अलति भूषयति मुखं, अल+क्वुन्।) भङ्गियुतः केश। कर्पूरादे क्षोदस्पूर्णं तस्य कुन्तलाश्चूर्णकुन्तला तद्धि तत्र न्यस्यते इत्यन्ये। अलति भूषयति मुखं इत्यलक। इति भरत॥ कुटिलकुन्तल। इति सुभूति। इति सारसुन्दरी॥ तत्पर्य्याय। चूर्णकुन्तल २। इत्यमर।
("कर्णेषु योग्यं नवकर्णिकारं
चलेषु हारा अलकेष्वशोक"।
इति ऋतुसंहारे।
"हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्ध"।
इति मेघदूते।)

अलक, पुं, (अल+क्वुन्।) अलर्क। छिन्नकुक्कुर। इत्यमरटीकायां रायमुकुट॥

अलकनन्दा, स्त्री, (अलति पर्य्याप्नोति, अल+क्वुन्, अलका, नन्दयति इति अच् नन्दा, अलका चासौ नन्दा चेति इति इति कर्म्मधारय।) कुमारी। इति त्रिकाण्डशेष॥ भारतवर्षीयगङ्गा। इति शब्दमाला॥ "तथैवालकनन्दा दक्षिणेन तु ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य निषध-हेमकूट-हिमकूटान्यतिरभसतररंहसा लुठन्ती भारतमपि वर्षं दक्षिणस्यां दिशि लवणजलधिमभिप्रविशति"। इति श्रीभागवत॥
(हिमालयादुत्पन्ना श्रीनगरस्यादूरे गङ्गया सह मिलिता स्वनामख्याता नदी। गङ्गैव देवलोके अलकनन्देत्युच्यते। इति महाभारते। यदुक्तं,—
"देवेषु गङ्गा गन्धर्व्वं। प्राप्नोत्यलकनन्दताम्।
तथैवालकनन्दापि दक्षिणेनैति भारतं।
प्रयाति सागरं भूत्वा सप्तभेदा महामुने"॥
इति भागवतपुराणे।)

अलकप्रभा, स्त्री, (अलका पर्य्याप्ता प्रभा यस्या सा।) कुबेरपुरी। इति शब्दरत्नावली॥

अलकप्रिय, पुं, (अलकान् प्रीणाति अलक+प्री+क।) वृक्षविशेष। इति जटाधर॥

अलका, स्त्री, (अल+क्वुन्+टाप्।) कुबेरनगरी। इत्यमर॥ अष्टवर्षावधिदशवर्षपर्य्यन्तवयस्का कन्या। इति शब्दरत्नावली॥

अलकाधिप, पुं, (अलकाया अधिप, षष्ठीतत्पुरुष।) कुबेर। इति जटाधर॥

अलकाधिपति, पुं, (अलकाया अधिपति, षष्ठीतत्पुरुष।) कुबेर। इति शब्दरत्नावली॥

अलक्त, पुं, (न रक्तोऽस्मात्, रस्य लत्वं।) वृक्षनिर्यासविशेष। लाहा। जौ इति च भाषा। तत्पर्य्याय। राक्षा २ लाक्षा ३ जतु ४ याव ५ द्रुमामय ६। इत्यमर॥ रक्षा ७। इति भरत। अरक्त ८। इत्यमरटीकायां भरत॥ जतुकं ९ यावक १० अलक्तक ११ रक्त १२। इति शब्दरत्नावली॥ पलङ्कषा १३ क्रिमि १४ वरवर्णिनी १५। इति जटाधर॥ तस्य गुणादि।
"लाक्षा पलङ्कषालक्तौ यावो वृक्षामयो जतु।
लाक्षा वर्ण्या हिमा बल्या स्निग्धा च तुवरा लघु॥
अनुष्णा कफपित्तास्रहिक्काकासज्वरप्रणुत्।
व्रणोरःक्षतवीसर्पकृमिकुष्ठगदापहा॥
अलक्तको गुणैस्तद्वद्विशेषाद्व्यङ्गनाशन"।
इति भावप्रकाश॥॥ लाक्षारस। आलता इति भाषा। तत्पर्य्याय। अलक्तक २ जतुरस ३ राग ४ निर्भर्त्सन ५ जननी ६ जनकरी ७ सम्पदा ८ चक्रवर्त्तिनी ९। अस्य गुणा। तिक्तत्व। उष्णत्व। कफवातरोगव्रणदोषनाशित्व। कण्ठरोगशमनत्व। रुचिकारित्वञ्च। इति राजनिर्घण्ट॥

अलक्तक, पुं, (अलक्त एव, अलक्त स्वार्थे कन्।) निर्भर्त्सनं। अलक्त। इति हलायुधो हारावली च॥ लाक्षा। इति राजनिर्घण्ट॥ ("अलक्तकाङ्कानि पदानि पादयो"। इति कुमारसम्भवे।
"पादालक्तकरक्तमौक्तिकशिलासिद्धाङ्गनानाङ्कते"
इति नागानन्दे।)

अलगर्द, पुं, (लगति स्पृशति, क्विप्, लग्, अर्द्दयति, अर्द्द+अच्, अर्द, लग् चासौ अर्दश्चेति इति लगर्दः, लग्न सन् पीडक इत्यर्थ, निर्व्विषत्वात् तद्भिन्न।) जलसर्प। जलबोडा इति केचित्। अलाध इति केचित्। इत्यमरटीकायां भरत॥ (सविषो जलव्यालभेद। विलकेउटिया इति भाषा, "तत्र सविषा कृष्णा कर्व्वुरा अलगर्द्दा इन्द्रायुधा सामुद्रिका गोचनन्दा चेति"। सुश्रुते।)

अलगर्द्द, पुं, (अलं गर्द्ध्यति इति गृध+अच्, पृषोदरादित्वात् साधु।) जलव्याल। इत्यमर॥ केउटिया इति ख्यात। जलबोडा इति केचित्। अलाध इति केचित्। इति भरत॥

अलङ्करण, क्ली, (अलम्+कृ+भावे ल्युट्।) भूषण। इति शब्दरत्नावली॥

अलङ्करिष्णु, त्रि, (अलम्+कृ+इष्णुच्।) अलङ्कारकर्त्ता। भूषणशील। इति रघुनाथचक्रवर्त्त्यादय॥ तत्पर्य्याय। मण्डन २। इत्यमर॥ अलङ्कर्त्ता ३। इति शब्दरत्नावली॥॥ अलङ्कारयुक्तव्यक्ति। इति सारसुन्दर्य्यादय॥ तत्पर्य्याय। अलङ्कर्त्ता २ मण्डित ३ प्रसाधित ४ अलङ्कृत ५ भूषित ६ परिष्कृत ७। इत्यमर॥

अलङ्कर्त्ता, [र्तृ] त्रि, (अलम्+कृ+तृच्।) अलङ्करिष्णु। इत्यमर॥

अलङ्कर्म्मीण, त्रि, (अल समर्थं कर्म्मणे, ख।) कार्य्यकुशल। कर्म्मक्षम। इत्यमर॥

अलङ्कार, पुं, (अलम्+कृ+भावे घञ्।) भूषण। तत्पर्य्याय। आभरणं २ परिष्कार ३ विभूषणं ४ मण्डन ५। इत्यमर॥ अलङ्क्रिया ६ भूषा ७ अलङ्करणं ८। इति शब्दरत्नावली। कलाप ९ इति जटाधर॥॥ अथालङ्कारयुक्ति। तद्धारणदिनमुच्यते।
"रेवत्यश्विधनिष्ठासु हस्तादिष्वपि पञ्चसु।
गुरुशुक्रबुधस्याह्नि वस्त्रालङ्कारधारणं॥
अभिषेकेष्वपि निर्दिष्टं वस्त्रालङ्कारधारणम्।
उद्वाहे राजसम्माने ब्राह्मणानाञ्च सम्मते॥
शिरस्त्रं मुकुटं हार कुण्डलञ्चाङ्गदन्तथा।
कङ्कणं बालकञ्चैव मेखलाष्टाविति क्रमात्॥
प्रधानभूषणान्येषु यथासङ्ख्यानि निश्चय।
पद्मरागश्च वज्रञ्च विजयो गोविदास्तथा॥
मुक्ता वैदूर्य्यनीलञ्च तथा मरकत क्रमात्।
आदित्यादिदशानानां सर्व्वसम्पत्तिदायका॥
सुवर्णेनापि घटना सर्व्वेषामुपयुज्यते।
प्रधानभूषणेष्वेवमप्रधाने न निर्णय॥
प्रधानभूषण प्राय शिरसो ह्यभिधीयते।
तस्य प्रधानभूयत्वादित्याह भृगुनन्दन॥
सुखदा मणय शुद्धा दुःखदा दोषशालिन।
अतो मणीना वक्ष्यामि लक्षणानि यथाक्रमं"॥

इति युक्तिकल्पतरुः ॥ * ॥ मणिविशेषाणां लक्षणानि तत्तच्छब्दे द्रष्टव्यानि ॥ * ॥ काव्यालङ्कार । स द्विविध । शब्दालङ्कार १। अर्थालङ्कारश्च २। तस्य लक्षणं। काव्यशोभाकरधर्म्म। इति काव्यादर्श ॥ वैचित्र्यमलङ्कार इत्यलङ्कारसामान्यलक्षणं। वैचित्र्यञ्च भङ्गीविशेषः प्रतीतिसाक्षिकः। इति काव्यप्रकाशटीकायां महेश्वरः ॥ अङ्गदादिवत् शब्दार्थशोभातिशयजनको रसाद्युपकारकोऽस्थिरधर्म्मः। इति साहित्यदर्पणं ॥ अस्य विवरणं दण्डि काव्यप्रकाश साहित्यदर्पणालङ्कारकौस्तुभ-चन्द्रालोकोज्ज्वल-नीलमणि-काव्यचन्द्रिका कुवलयानन्द सरस्वतीकण्ठाभरणादिग्रन्थेषु ज्ञेयं। अलङ्काराणां मध्ये ये ये प्रसिद्धास्तेषां नामलक्षणोदाहरणानि चन्द्रालोकधृतानि तदतिरिक्तानि साहित्यदर्पणोक्तानि च लिख्यन्ते ॥

| अथालङ्कारनामानि | तल्लक्षणानि | तदुदाहरणानि |
|---|---|---|
| अक्रमातिशयोक्तिः——१ | "अक्रमातिशयोक्ति स्यात् सहत्वे हेतुकार्य्ययो"।१ | "आलिङ्गन्ति सम देव त्वां शराश्च परांसते"॥१ |
| अतद्गुण——२ | "सङ्गतानुगुणासङ्गीकारमाङुरतद्गुण" । २ | "चिरं रागिणि मच्चित्ते निहितापि न रज्यसि"॥२ |
| अत्यन्तातिशयोक्तिः——३ | "अत्यन्तातिशयोक्तिस्तु कार्य्ये हेतुप्रशक्तिजे" ।३ | "यास्यामीत्युदिते तन्व्या वलयोऽभवदूर्म्मिका"॥३ |
| अत्युक्ति——४ | "अत्युक्तिरद्भुतातथ्यशौर्य्योदार्य्यादिवर्णन" । ४ | "त्वयि दातरि राजेन्द्र याचकाः कल्पशाखिन "॥४ |
| अधिक——५ | "अधिक पृथुलाधारादाधेयाधिक्यवर्णन" । ५ | "ब्रह्माण्डानि जले यत्र तत्र मान्ति न ते गुणाः"॥५ |
| अनन्वय——६ | "उपमानोपमेयत्व यदेकस्यैव वस्तुनः " । ६ | "इन्दुरिवेन्दुः श्रीमानित्यादौ तदनन्वयः" ॥ ६ |
| अनुकूल——७ | "अनुकूल प्रातिकूल्यमनुकूलानुबन्धि चेत् । ७ | "कुपितासि यदा तन्वि निधाय करजक्षत। वधान भुजपाशाभ्यां कण्ठमस्य दृढ तदा" ॥ ७ |
| अनुगुण——८ | "प्राक्सिद्ध स्वगुणोत्कर्षोऽनुगुणः परसन्निधे " । ८ | "नीलोत्पलानि दधते कटाक्षैरतिनीलता" ॥ ८ |
| अनुज्ञा——९ | "दोषस्याभ्यर्थनानुज्ञा तत्रैव गुणदर्शनात्" । ९ | "मय्येव जीर्णतां यातु यत्त्वयैव कृत हरे। नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तिमभिकाङ्क्षति" ॥९ |
| अनुप्रास——१० | "अनुप्रास शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्" । १० | "आदाय वकुलगन्धानन्धीकुर्व्वन् पदे पदे भ्रमरान्। अयमेति मन्दमन्द कावेरीवारिपावन पवनः"॥१० |
| अनुप्रासस्तु पञ्चविध । एकस्य लक्षणोदाहरणे उक्ते । | "अनेकस्यैकधा साम्यसकृदाप्यनेकधा । एकस्य सकृदप्येष वृत्त्यनुप्रास इष्यते" ॥ | "उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूताङ्कुरक्रीडत्-कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः । नीयन्ते पथिकैः कथ कथमपि ध्यानावधानक्षणप्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः"॥ |
| अपरे यथा, वृत्त्यनुप्रास———— | | |
| श्रुत्यनुप्रास — | "उच्चार्य्यत्वाद्यदेकत्र स्थाने तालुरदादिके"। सादृश्य व्यञ्जनस्यैतत् श्रुत्यनुप्रास उच्यते ॥ | "दृशा दग्ध मनसिज जीवयन्ति दृशैव या। विरूपाक्षस्य जयिनीस्ता स्तुमो वामलोचनाः"॥ |
| अन्त्यानुप्रास— | व्यञ्जनञ्चेद्यथावस्थ सहाद्येन स्वरेण तु। आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास स एव तत्"॥ | "केश काशस्तवकविकाश काय प्रकटितकरभविलासः। चक्षुर्दग्धवराटककल्प त्यजति न चेत कामममनस्य" ॥ |
| लाटानुप्रास — | "शब्दार्थयोः पौनरुक्त्य भेदे तात्पर्य्यमात्रत । लाटानुप्रास इत्युक्त " ॥ | "स्मेरराजीवनयने नयने कि निमीलिते। पश्य निर्जितकन्दर्प कन्दर्पवशग प्रिय" ॥ |
| अनुमान——११ | "अनुमानन्तु विच्छित्त्या ज्ञान साध्यस्य साधनात्" । ११ | "जानीमहेऽस्याः किल सारसाक्ष्या विराजतेऽन्तः प्रियवक्त्रचन्द्र । तत्कान्तिजालै प्रसृतैस्तदङ्गेष्वापाण्डुता कुड्मलताक्षिपद्मे" ॥ ११ |
| अन्योन्य——१२ | "अन्योन्य नाम यत्र स्यादुपकारः परस्पर" । १२ | "त्रियामा शशिना भाति शशी भाति त्रियामया" ॥ १२ |
| अपह्नवातिशयोक्ति——१३ | "रूपकातिशयोक्तिः स्यान्निगीर्य्याध्यवसानतः। यदापह्नुतिगर्भत्व सैव सापह्नवा मता" । १३ | "त्वत्सूक्तिषु सुधा राजन् भ्रान्ताः पश्यन्ति तां विधौ" ॥ १३ |
| अप्रस्तुतप्रशंसा——१४ | "अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात् सा यत्र प्रस्तुताश्रया"। १४ | "एकः कृती स कृत्येषु योऽन्य शशाङ्क याचते" ॥१४ |
| अभिधाहेतु——१५ | "अभेदेनाभिधाहेतुर्हेतोर्हेतुमता सह" । १५ | "तारुण्यविलासः। इत्यत्र वशीकरणहेतुर्नायिकावशीकरणत्वेनोक्ता। विलासहासयोस्तध्यवसायमूलोऽयमलङ्कार " ॥ १५ |
| अर्थान्तरन्यास——१६ | "उक्तिरर्थान्तरन्यासः स्यात् सामान्यविशेषयो"।१६ | ' हनूमानब्धिमतरत् दुष्कर कि महात्मनां ॥ गुणवद्वस्तुसंसर्गात् याति स्वल्पोऽपि गौरव। पुष्पमालानुषङ्गेण सूत्र शिरसि धार्य्यते" ॥ १६ |
| अर्थापत्ति——१७ | "दण्डापूपिकयान्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते । क्वचित् प्राकरणिकादप्राकरणिकार्थस्यापतनं। क्वचित् अप्राकरणिकात् प्राकरणिकार्थस्येति द्वौ भेदौ" । १७ | "हारोऽय हरिणाक्षीणां लुटति स्तनमण्डले। मुक्तानामप्यवस्थेय के वय स्मरकिङ्कराः "॥ "विललाप सवाष्पगद्गद सहजामप्यपहाय धीरता। अतितप्तमयोऽपि मार्द्दव भजते कैव कथा शरीरिणां" ॥ १७ |

| अथालङ्कारनामानि | तल्लक्षणानि | तदुदाहरणानि |
|---|---|---|
| अल्प ——— १८ | "अल्पन्तु सूक्ष्मादाधेयाद्यदाधारस्य सूक्ष्मता" । १८ | "मणिमालोर्म्मिका तेऽद्य करे जपवटायते" ॥ १८ |
| अवज्ञालङ्कृति ——— १९ | "ताभ्यां तौ यदि न स्यातामवज्ञालङ्कृतिस्तु सा"। १९ | "स्वल्पमेवाम्बु लभते पाश्य प्राप्यापि सागरं ।<br>मीलन्ति यदि पद्मानि का हानिरम्लतद्युतेः" ॥ १९ |
| असङ्गति ——— २०<br>तस्य त्रीणि लक्षणानि । | "विरुद्धभिन्नदेशत्व कार्य्यहेत्वोरसङ्गति ।<br>अन्यत्र करणीयस्य ततोऽन्यत्र कृतिश्च सा ॥<br>अन्यत् कर्त्तुं प्रवृत्तस्य तद्विरुद्धकृतिश्च सा" । २० | "विषं जलधरै पीतं मूर्च्छिता पथिकाङ्गना ।<br>अपारिजाता वसुधा चिकीर्षन् द्या तथाकृथा ।<br>गोत्रोद्धारप्रवृत्तो हि गोत्रोद्धारं पुराकरो" ॥ २० |
| असदर्थनिदर्शना ——— २१ | "अपरं बोधन प्राहु क्रियया सत्सदर्थयो" । अस्यार्थ ।<br>कस्यचित् किञ्चित् क्रियाविशिष्टस्य स्वक्रियया-<br>परान् प्रति असत सतो वार्थस्य बोधनवर्णन । २१ | "नश्येद्राजविरोधीति क्षीण चन्द्रोदये पुन " ॥ २१ |
| असम्भव ——— २२ | "असम्भवोऽर्थनिष्पत्तेरसम्भाव्यत्ववर्णन" । २२ | "को वेद गोपशिशुक शैलमुत्पाटयिष्यति" ॥ २२ |
| आवृत्तिदीपक ——— २३<br>तत् त्रिविधं । पदावृत्ति । अर्थावृत्ति । उभया-वृत्ति । | "त्रिविधं दीपकावृत्तौ भवेदावृत्तिदीपक" । २३ | "वर्षत्यम्बुदमालेय वर्षत्येषा च शर्व्वरी ॥<br>उन्मीलन्ति कदम्बानि स्फुटन्ति कुटजोद्गमा ।<br>माद्यन्ति चातकाश्तृप्ता माद्यन्ति च शिखावला "॥ २३ |
| आक्षेप ——— २४<br>अस्य त्रीणि लक्षणानि लक्ष्याणि च । | "आक्षेप स्वयमुक्तस्य प्रतिषेधो विचारणात् ।<br>निषेधाभास आक्षेप बुधा केचन मन्वते ॥<br>आक्षेपोऽन्यो विधौ व्यक्ते निषेधे च तिरोहिते"। २४ | "चन्द्र सन्दर्शयात्मानमथवास्ति प्रियामुख ।<br>नायं दूति तनोस्तापस्तस्या कालानलोपम ।<br>गच्छ गच्छसि चेत्कान्त तत्रैव स्याज्जनिर्म्मम" ॥ २४ |
| उत्प्रेक्षा ——— २५<br>सा वस्तुहेतुफलात्मतागोचरत्वेन त्रिविधा वस्तूत्प्रेक्षा । हेतूत्प्रेक्षा । फलोत्प्रेक्षा । तत्राद्या उक्तविषया अनुक्तविषया चेति द्विविधा । परे हेतुफलोत्प्रेक्षे सिद्धासिद्धविषयतया प्रत्येकं द्विविधे । एवमुत्प्रेक्षा षड्विधा । | "सम्भावना स्यादुत्प्रेक्षा वस्तुहेतुफलात्मता ।<br>उक्तानुक्तास्पदाद्यात्र सिद्धासिद्धास्पदे परे" । २५ | "धूमस्तोमं तम शङ्के कोकीविरहशालिनाम् ।<br>लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जन नभ ॥<br>रक्तौ तवाङ्घ्री मृदुलौ भुवि विक्षेपणाद्ध्रुव ।<br>त्वन्मुखाभेच्छया नून पद्मैर्व्वैरायते शशी ॥<br>मध्य कि कुचयोर्धृत्यै बद्ध कनकदामभि ।<br>प्रायोऽब्ज त्वत्पदेनैक्यं प्राप्तु तोये तपस्यति" ॥ २५ |
| उत्तर ——— २६ | "किञ्चिदाकूतसहितं स्याद्गूढोत्तरमुत्तरं" । २६ | "यत्रासौ वेतसी पान्थ तत्रेयं सुतरा सरित्" ॥ २६ |
| उदात्त ——— २७ | "उदात्तमृद्धिश्चरित श्लाघ्यमाल्योपलक्षणं" । २७ | "सानौ यत्राभवद्युद्ध तव धूर्ज्जटिनाऽर्ज्जुन " ॥ २७ |
| उपमा ——— २८ | "उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयो " । २८ | "हंसीव भूपते कीर्त्ति स्वर्गङ्गामवगाहते" ॥ २८ |
| उपमेयोपमा ——— २९ | "पर्य्यायेण द्वयोस्तच्चेदुपमेयोपमा मता" । २९ | "धर्म्मोऽर्थ इव पूर्णश्रीरर्थो धर्म्म इव त्वयि" ॥ २९ |
| उल्लास ——— ३० | "एकस्य गुणदोषाभ्यामुल्लासोऽन्यस्य तौ यदि" । ३० | "अपि मा पावयेत् साध्वी स्नात्वेतीच्छति जाह्नवी ॥<br>काठिन्य कुचयोर्द्रष्टु वाञ्छन्त्य पादपद्मयो ।<br>निन्दन्ति विश्वधातार त्वद्धाटीश्वरियोषित ॥<br>तद्भाग्य धनस्यैव यन्नाश्रयति सज्जन ॥<br>लाभोऽयमेव भूपाल सेवकानां न चेद्वध " ॥ ३० |
| उल्लेख ——— ३१<br>लक्षणभेदेन स द्विविधः । | "बहुभिर्बहुधोल्लेखादेकस्योल्लेख इष्यते ।<br>एकेन बहुधोल्लेखोऽप्यसौ विषयभेदत" । ३१ | "स्त्रीभि कामोऽर्थिभि स्वद्रु काल शत्रुभिरैक्षि सः ।<br>गुरुर्वचस्यर्ज्जुनोऽय कीर्त्तौ भीष्म शरासने" ॥ ३१ |
| एकावली ——— ३२ | "गृहीतमुक्तरीत्यार्थश्रेणीरेकावली मता" । ३२ | "नेत्रे कर्णान्तविश्रान्ते कर्णौ दोःस्तम्भभासनौ ।<br>दोःस्तम्भौ जानुपर्य्यन्तप्रलम्बनमनोहरौ ।<br>जानुनी रत्नमुकुराकारे तस्य महीभुज " ॥ ३२ |
| कारकदीपक ——— ३३ | "क्रमिकैकगतानान्तु गुम्फ कारकदीपक" । ३३ | "गच्छत्या गच्छति पुन पान्थ पश्यति पृच्छति" ॥ ३३ |
| कारणमाला ——— ३४<br>सा पूर्व्वपूर्व्वपदार्थानां कारणत्ववर्णनेन एवमुत्तरोत्तरपदार्थानां कारणत्ववर्णनेन च द्विधा । | "गुम्फ कारणमाला स्याद्यथा प्रक्रान्तकारणै "। ३४ | "नयेन श्री श्रिया त्यागस्त्यागेन विपुल यश ॥<br>भवन्ति नरका पापा पाप दारिद्र्यसम्भव ।<br>दारिद्र्यमप्रदानेन तस्माद्दानपरो भव" ॥ ३४ |
| काव्यलिङ्गं ——— ३५ | "समर्थनीयस्यार्थस्य काव्यलिङ्ग समर्थनं" । ३५ | "जितोऽसि मन्द कन्दर्प मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचन" ॥ ३५ |
| काव्यार्थापत्ति ——— ३६ | "कैमुत्येनार्थसंसिद्धि काव्यार्थापत्तिरिष्यते" । ३६ | "स जितस्त्वन्मुखेनेन्दु का वार्त्ता सरसीरुहां" ॥ ३६ |
| कैतवापह्नुति ——— ३७ | "कैतवापह्नुतिर्व्यक्तौ व्याजाद्यैर्निह्नवे पदै" । ३७ | "निर्यान्ति स्मरनाराचा कान्तादृक्पातकैतवात्" ॥ ३७ |
| गूढोक्ति ——— ३८ | "गूढोक्तिरन्योद्देश्या गीर्यदन्य प्रति कथ्यते" । ३८ | "वृषापेहि परक्षेत्रादायाति क्षेत्ररक्षक" ॥ ३८ |
| चपलातिशयोक्ति ——— ३९ | "चपलातिशयोक्तिस्तत्पौर्व्वापर्य्यव्यतिक्रम " । ३९ | "अग्रे मानो गत पश्चादनुनीता प्रियेण सा" ॥ ३९ |
| चित्र ——— ४० | "पद्माद्याकारहेतुत्वे वर्णानां चित्रमुच्यते" । ४० | "मारमासुषमा चारुरुचा मारवधूत्तमा ।<br>मात्तधूर्त्तमावासा सा वामा मेऽस्तु मारमा" ॥ ४० |

| अथ | अथ | अथ |
|---|---|---|
| अथालङ्कारनामानि | तल्लक्षणानि | तदुदाहरणानि |
| चित्रक चमनेकविध यथा। पद्म-छत्र-धनु -खड्ग-नागपा ट-नौका-बन्धा । अश्वगति-त्रिपदी-गोमूत्रिः । | | |
| छेकापह्नुति ——— ४१ | "छेकापह्नुतिरन्यस्य शङ्कातस्तस्य निह्नवे"। ४१ | "प्रजल्पन् मत्पदे लग्न कान्तः कि न हि नूपुरः"। |
| तद्गुण ——— ४२ | "तद्गुण स्वगुणत्यागादन्यदीयगुणग्रह "। ४२ | "पद्मरागायते नासामौक्तिक तेऽधरत्विषा"॥ ४२ |
| तुल्ययोगिता ——— ४३ | | |
| सा त्रिधा । | | |
| प्रथमा यथा ——— | "वर्ण्यानामितरेषा वा धर्मैक्य तुल्ययोगिता"। | "सङ्कुचन्ति सरोजानि स्वैरिणीवदनानि च ।<br>त्वदङ्गमार्दवे दृष्टे कस्य चित्ते न भासते ।<br>मालतीशशभृल्लेखा कदलीना कठोरता ॥ |
| द्वितीया यथा——— | "हिताहिते वृत्तितौल्यमपरा तुल्ययोगिता । | प्रदीयते पराभूतिर्मित्रशात्रवयोस्त्वया ॥ |
| तृतीया यथा ——— | गुणोत्कृष्टै समीकृत्य वचोऽन्या तुल्ययोगिता" ।४३ | लोकपालो यम पाशी श्रीद शक्रो भवानपि"। ४३ |
| दीपक ——— ४४ | "वदन्ति वर्ण्यावर्ण्याना धर्मैक्य दीपक बुधा " ।४४ | "मदेन भाति कलभः प्रतापेन महीपति " ॥ ४४ |
| दृष्टान्त ——— ४५ | "चेद्बिम्बप्रतिबिम्बत्व दृष्टान्तस्तदलङ्कृतिः" । ४५ | "त्वमेव कीर्त्तिमान्राजन् विधुरेव हि कान्तिमान्"॥४५ |
| निदर्शना——— ४६ | "वाक्यार्थयो सदृशयोरैक्यारोपो निदर्शना । | "या दातु सौम्यता सेय पूर्णेन्दोरकलङ्कता । |
| सा त्रिधा । | पदार्थगर्भामप्यन्ये वदन्त्यन्यां निदर्शना ॥ | त्वमेत्रयुगल धत्ते लीला नीलाम्बुजन्मनोः ॥ |
| | अपरा बोधन प्राहु क्रियया सत्तदर्थयो" । ४६ | नश्यत्प्रकाशविरोधीति द्योण चन्द्रोदये तम " ॥ ४६ |
| निरुक्तिः ——— ४७ | "निरुक्तिर्योगतो नाम्नामन्यार्थत्वप्रकल्पन"। ४७ | "ईदृशैश्चरितैर्जाने सत्य दोषाकरो भवान्" ॥ ४७ |
| परिकर ——— ४८ | "अलङ्कारः परिकरः साभिप्रायविशेषणे" । ४८ | "सुधांशुकलितोत्तंसस्ताप हरतु व शिव " ॥ ४८ |
| परिकराङ्कुर ——— ४९ | "साभिप्रायविशेष्यत्वेद्भवेत् परिकराङ्कुरः" । ४९ | "चतुर्णा पुरुषार्थाना दाता देवश्चतुर्भुज " ॥ ४९ |
| परिणाम ——— ५० | "परिणाम क्रियार्थश्चेद्विषयी विषयात्मना" । ५० | "प्रसन्नेन दृगब्जेन वीक्षते मदिरेक्षणा" ॥ ५० |
| परिवृत्ति ——— ५१ | "परिवृत्तिर्विनिमयो न्यूनाभ्यधिकयोर्मिथ" । ५१ | "ययावेक शर मुक्ता कटाक्षान् स रिपुस्त्रिया" ॥५१ |
| परिसख्या——— ५२ | "परिसख्या निषिध्यैकमेकस्मिन् वस्तुयन्त्रणा" । ५२ | "स्वेहक्षय प्रदीपेषु न स्वान्तेषु नतभ्रुवा" ॥ ५२ |
| पर्य्यस्तापह्नुतिः——— ५३ | "अन्यत्र तस्यारोपार्थ पर्य्यस्तापह्नुतिस्तु सा" । ५३ | "नाय सुधांशु कि तर्हि सुधांशु प्रेयसीमुख" ॥ ५३ |
| पर्य्याय ——— ५४ | "पर्य्यायो यदि पर्य्यायेणैकस्यानेकसश्रय । | "पद्म मुक्त्वा गता चन्द्र कामिनीवदनप्रभा ॥ |
| स द्विविध । | "एकस्मिन् यस्यानेक वा पर्य्याय सोऽपि सम्मत "॥५४ | अधुना पुलिन तत्र यत्र स्रोत पुराजनि" ॥ ५४ |
| पर्य्यायोक्त——— ५५ | "पर्य्यायोक्त तु गम्यस्येद्वचोभङ्ग्यान्तराश्रयः । | नमस्तस्मै कृतौ येन मुधा राहुवधूकुचौ ॥ |
| तत् द्विविध । | पर्य्यायोक्त तदप्याहुर्यद्व्याजेनेष्टसाधन" ॥ ५५ | यामि चूतलता द्रष्टु युवाभ्यामास्यतामिह" ॥ ५५ |
| पिहित ——— ५६ | "पिहित परवृत्तान्तज्ञातु साकूतचेष्टित" । ५६ | "प्रिये गृहागते प्रात कान्ता तल्पमकल्पयत्" ॥५६ |
| पुनरुक्तवदाभास ——— ५७ | "आपाततो यदर्थ स्य पौनरुक्त्यावभासन । | "भुजङ्गकुण्डलीव्यक्तशशिशुभ्रांशुशीतगुः । |
| | पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाकारशब्दग " ॥ ५७ | जगन्त्यपि सदा पायादव्याच्चेतोहर शिव " ॥ ५७ |
| पूर्व्वरूप ——— ५८ | "पुन स्वगुणसप्राप्ति पूर्व्वरूपमुदाहृत । | हरकण्ठांशुलिप्तोऽपि शेषस्तद्धवलप्रभासित ॥ |
| स द्विविध । | पूर्व्वावस्थानुवृत्तिश्च विकृते सति वस्तुनि" ॥ ५८ | दीपे निर्व्वापितेऽप्यासीत् काञ्चीरत्नैर्महन्महः " ॥५८ |
| प्रतिवस्तूपमा——— ५९ | "वाक्ययोरेकसामान्ये प्रतिवस्तूपमा मता" । ५९ | "तापेन भ्राजते सूर्य्य शूरश्चापेन राजते" ॥ ५९ |
| प्रतिषेध ——— ६० | "प्रतिषेध प्रसिद्धस्य निषेधस्यानुकीर्त्तन" । ६० | "न द्यूतमेतत् कितवाक्रीड़न निशिते शरैः" ॥ ६० |
| प्रतीप ——— ६१ | 'प्रतीपमुपमानस्याप्युपमेयत्वकल्पन । | "तल्लोचनसम पद्म तद्वक्त्रसदृशो विधु । |
| तल्लक्षणभेदेन पञ्चविध। न तु नामभेदेन । | अन्योपमेयलाभेन वर्ण्यस्यानादरश्च तत् ॥ | अल गर्व्वेण ते वक्त्रकान्त्या चन्द्रो भवादृश । |
| | वर्ण्योपमानलाभेन तथान्यस्याप्यनादरः । | क क्रौर्य्यदर्पस्ते मृत्यो त्वत्तुल्या सन्ति हि स्त्रियः। |
| | वर्ण्येनान्यस्योपमाया अनिष्पत्तिर्वचश्च तत् ॥ | मिथ्यावादो हि मुग्धाक्षि त्वन्मुखाभ किलाम्बुज । |
| | प्रतीपमुपमानस्य कैमर्थ्यमपि मन्यते" । ६१ | दृष्ट चेद्वदन तस्या कि पद्मेन किमिन्दुना" ॥ ६१ |
| प्रत्यनीक——— ६२ | "प्रत्यनीक बलवत शत्रो पक्षे पराक्रम " । ६२ | "जैत्रनेत्रानुगौ कर्णावुत्पलाभ्यामध कृतौ" ॥ ६२ |
| प्रस्तुताङ्कुर ——— ६३ | "प्रस्तुतेन प्रस्तुतस्य द्योतने प्रस्तुताङ्कुर " । ६३ | "कि भृङ्ग सत्या मालत्या केतक्या कण्टकस्थया" ॥ ६३ |
| प्रहर्षण ——— ६४ | "उत्कण्ठितार्थससिद्धिर्व्विना यत्न प्रहर्षण । | "तामेव ध्यायते तस्मै विसृष्टा सैव दूतिका ॥ |
| तत् त्रिविध । | वाञ्छितादधिकार्थस्य ससिद्धिश्च प्रहर्षण ॥ | दीपमुद्दीपयेद्यावत्तावदभ्युदितो रवि ॥ |
| | यत्नादुपायसिद्धार्थात् साक्षाल्लाभ फलस्य तत्"॥६४ | निध्यञ्जनौषधीमूल खनतासादितो निधि" ॥ ६४ |
| प्रौढोक्ति ——— ६५ | "प्रौढोक्तिरुत्कर्षहेतौ तद्धेतुत्वप्रकल्पन"। ६५ | "कचा कलिन्दजातीरतमालस्तोमभेचका " ॥ ६५ |
| भाविक ——— ६६ | "भाविक भूतभाव्यर्थसाक्षात्कारस्य वर्णन" । ६६ | "अद्य विलोकयेऽत्रापि युध्यन्तेऽत्र सुरासुरा " ॥ ६६ |
| भाषासमावेश——— ६७ | "शब्दैरेकविधैरेव भाषासु विविधास्वपि । | "गुञ्जन्मणिमञ्जीरे कलगम्भीरे विहारसरसीतीरे । |
| | वाक्य यत्र भवेत् सोऽय भाषासम इतीष्यते" ॥६७ | विरसासि केलिकीरे किमालि धीरे च गन्धसारसमीरे" ॥ ६७ |

| अथालङ्कारनामानि | तल्लक्षणानि | तदुदाहरणानि |
|---|---|---|
| भेदकातिशयोक्तिः ——— ६८ | "भेदकातिशयोक्तिः स्यात् तस्यैवान्यत्वकल्पनम्" । ६८ | "अन्यदेवास्य गाम्भीर्य्यमन्यद्धैर्य्यं च भूपतेः" ॥ ६८ |
| भ्रान्तापह्नुतिः ——— ६९ | "भ्रान्तापह्नुतिरन्यस्य शङ्कायां भ्रान्तिवारणे" । ६९ | "तापं करोति सोत्कम्पं ज्वरः किमु सखे स्मरः" ॥ ६९ |
| भ्रान्तिमान् ——— ७० | "स्यात् स्मृतिभ्रान्तिसन्देहैस्तदङ्कालङ्कृतित्रयं" । ७० | "अयं प्रमत्तो मधुपस्त्वन्मुखं वेत्ति पङ्कजं" ॥ ७० |
| मालादीपक ——— ७१ | "दीपकैकावलीयोगान्मालादीपकमुच्यते" । ७१ | "स्मरेण हृदये तस्यास्तेन त्वयि कृता स्थितिः" ॥ ७१ |
| मिथ्याध्यवसिति ——— ७२ | "किञ्चिन्मिथ्यात्वसिद्ध्यर्थं मिथ्यार्थान्तरकल्पनं" । ७२ | "मिथ्याध्यवसितिर्वेश्या वशयेत् खस्रजं वहन्" ॥ ७२ |
| मीलितं ——— ७३ | "मीलितं यदि सादृश्याद्भेद एव न लक्ष्यते" । ७३ | "रसो नालक्षि लाक्षायाश्चरणे सहजारुणे" ॥ ७३ |
| मुद्रा ——— ७४ | "सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः" । ७४ | "नितम्बगुर्व्वी तरुणी दृग्युग्मविपुला च सा" ॥ ७४ |
| यथासंख्यं ——— ७५ | "यथासंख्यं क्रमेणैव क्रमिकाणां समन्वयः" । ७५ | "शत्रुं मित्रं विपत्तिञ्च जय रञ्जय भञ्जय" ॥ ७५ |
| यमकं ——— ७६ | "सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः ।<br>क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते" । ७६ | "नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजं ।<br>मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः" ॥ ७६ |
| युक्तिः ——— ७७ | "युक्तिः परातिसन्धानं क्रियया मर्म्मगुप्तये" । ७७ | "त्वामालिखन्ती दृष्ट्वान्या धनुः पौष्पं करेऽलिखत्" ॥ ७७ |
| रत्नावली ——— ७८ | "क्रमिकाप्रकृतार्थानां न्यासं रत्नावलीं विदुः" । ७८ | "चतुरास्यः पतिर्लक्ष्म्याः सर्व्वज्ञस्त्वं महीपते" ॥ ७८ |
| रूपकं ——— ७९<br>तत् द्विविधं । अभेदरूपकं । ताद्रूप्यरूपकञ्च । तच्च समन्यूनाधिक्यकथनद्वारा प्रत्येकं त्रिविधं । समाभेदरूपकं । न्यूनाभेदरूपकं । अधिकाभेदरूपकं । समताद्रूप्यरूपकं । न्यूनताद्रूप्यरूपकं । अधिकताद्रूप्यरूपकं । एतेन षड्विधं । | "विषय्यभेदताद्रूप्यरञ्जनं विषयस्य यत्" ।<br>"रूपकं तत् त्रिधाधिक्यन्यूनत्वानुभयोक्तिभिः" ॥ ७९ | "अयं हि धूर्ज्जटिः साक्षाद्येन दग्धाः पुरः क्षणात् ।<br>अयमास्ते विना शम्भुस्तार्त्तीयीकं विलोचनं ॥<br>शम्भुर्विश्वमवत्यद्य स्वीकृत्य समदृष्टिता ।<br>अस्या मुखेन्दुना लब्धे नेत्रानन्दे किमिन्दुना ॥<br>साध्वीयमपरा लक्ष्मीरसुधासागरोत्थिता ।<br>अयं कलङ्किनश्चन्द्रान्मुखचन्द्रोऽतिरिच्यते" ॥ ७९ |
| रूपकातिशयोक्तिः ——— ८० | "रूपकातिशयोक्तिः स्यात् निगीर्य्याध्यवसानतः" ।<br>अस्यार्थः । विषयसम्बन्धेन उल्लेखनं विना विषयिवाचकशब्देन ग्रहणं विषयनिगरणं तत्पूर्व्वकं विषयस्य विषयिरूपतया अध्यवसानं तस्मिन् सति रूपकातिशयोक्तिः" । ८० | "पश्य नीलोत्पलद्वन्द्वान्निःसरन्ति सिताः शराः" ॥ ८० |
| ललितं ——— ८१ | "प्रस्तुते वर्ण्यवाक्यार्थप्रतिबिम्बस्य वर्णनं" । ८१ | "ललितं निर्गते नीरे सेतुमेषा चिकीर्षति" ॥ ८१ |
| लुप्तोपमा ——— ८२<br>सा चाष्टधा । वाचकलुप्ता । धर्म्मलुप्ता । उपमानलुप्ता । धर्म्मवाचकलुप्ता । वाचकोपमेयलुप्ता । वाचकोपमानलुप्ता । धर्म्मोपमानलुप्ता । धर्म्मोपमानवाचकलुप्ता । | "वर्ण्योपमानधर्म्माणामुपमावाचकस्य च ।<br>एकद्विन्न्यनुपादानात् भिन्ना लुप्तोपमाष्टधा" ॥ ८२ | "तडिद्गौरीन्दुतुल्यास्या कर्पूरन्ती दृशोर्म्मम ।<br>कान्त्या स्मरवधूयन्ती दृष्टा तन्वी रहो मया ॥<br>यत् त्वया मेलनं तत्र लाभो मे यश्च तद्रतेः ।<br>तदेतत् काकतालीयमवितर्क्कितसम्भवं" ॥ ८२ |
| लेशः ——— ८३ | "लेशः स्याद्दोषगुणयोर्गुणदोषत्वकल्पनं" । ८३ | "अखिलेषु विहङ्गेषु हन्त स्वच्छन्दचारिषु ।<br>शुक पञ्जरबन्धस्ते मधुराणां गिरां फलं" ॥ ८३ |
| लोकोक्तिः ——— ८४ | "लोकप्रवादानुकृतिं लोकोक्तिरिति कथ्यते" । ८४ | "सहस्व कतिचिन्मासान्मीलयित्वा विलोचने" ॥ ८४ |
| वक्रोक्तिः ——— ८५ | "वक्रोक्तिः श्लेषकाकुभ्यामपूर्व्वार्थप्रकल्पनं" । ८५ | "मुञ्च मानं दिनं प्राप्तं नेह नन्दी हरान्तिके" ॥ ८५ |
| विकल्पः ——— ८६ | "विरोधे तुल्यबलयोर्विकल्पालङ्कृतिर्म्मता" । ८६ | "सद्यः शिरांसि चापान् वा नमयन्तु महीभुजः" ॥ ८६ |
| विकस्वर ——— ८७ | "यस्मिन् विशेषसामान्यविशेषाः स विकस्वरः" । ८७ | "स न शिश्ये महान्तो हि दुर्द्धर्षाः सागरा इव" ॥ ८७ |
| विचित्रं ——— ८८ | "विचित्रं तत्प्रयत्नश्चेत् विपरीतफलेच्छया" । ८८ | "नमन्ति सन्तस्त्रैलोक्यादपि लब्धुं समुन्नतिं" ॥ ८८ |
| विधिः ——— ८९ | "सिद्धस्यैव विधानं यत्तमाहुर्व्विध्यलङ्कृतिं" । ८९ | "पञ्चमोदञ्चने काले कोकिलः कोकिलोऽभवत्" ॥ ८९ |
| विनोक्तिः ——— ९०<br>लक्षणभेदेन सा द्विविधा । | "विनोक्तिः स्याद्विना किञ्चित् प्रस्तुतं हीनमुच्यते ।<br>तच्चेत् किञ्चिद्विना रम्यं विनोक्तिः सापि कथ्यते" ॥ ९० | "विद्या हृद्यापि सा विद्या विना विनयसम्पदं ।<br>विना खलैर्व्विभात्येषा राजेन्द्र भवतः सभा" ॥ ९० |
| विभावना ——— ९१<br>अस्या लक्षणान्युदाहरणानि च षट् । | "विभावना विनापि स्यात्कारणं कार्य्यजन्म चेत् ।<br>हेतूनामसमग्रत्वे कार्य्योत्पत्तिश्च सा मता ॥<br>कार्य्योत्पत्तिस्तृतीया स्यात् सत्यपि प्रतिबन्धके ।<br>अकारणात् कार्य्यजन्म चतुर्थी स्याद्विभावना ॥<br>विरुद्धात् कार्य्यसम्पत्तिर्दृष्टा काचिद्विभावना ।<br>कार्य्यात् कारणजन्मापि दृष्टा काचिद्विभावना" ॥ ९१ | "अपलाक्षारसासिक्तं रक्तं ते चरणद्वयं ।<br>अस्त्रैरतीक्ष्णकठिनैर्ज्जगज्जयति मन्मथः ॥<br>नरेन्द्रानेव ते राजन् दशत्यसिभुजङ्गमः ।<br>शङ्खाद्वीणानिनादोऽयमुदेति महदद्भुतः ॥<br>शीतांशुकिरणास्तन्वीं हन्त सन्तापयन्ति ता ।<br>यशःपयोराशिरभूत् करकल्पतरोस्तव" ॥ ९१ |
| विरोधः ——— ९२<br>स दशधा । | "जातिश्चतुर्भिर्ज्जात्याद्यैर्गुणो गुणादिभिस्त्रिभिः ।<br>क्रियाक्रियाद्रव्याभ्यां यत् द्रव्यं द्रव्येण वा मिथः ।<br>विरुद्धमिव भासेत विरोधोऽसौ दशाकृतिः" ॥ ९२ | "तव विरहे मलयमरुद्दावानलः शशिरुचोऽपि शोषमणि । हृदयमलिरुतमपि भिन्ते नलिनीदलमपि निदाघरविरस्याः ॥ सन्ततमुसलासङ्गाद्बहुतरगृहकर्म्मघटनाया नृपते । द्विजपत्नीनां |

| अल<br>अथालङ्कारनामानि | अल<br>तल्लक्षणानि | अल<br>तदुदाहरणानि। |
| --- | --- | --- |
| | | कठिना सति भवति करा सरोजकुमार<br>सजस्य गृहतो जन्म निरीहस्य हतद्विष।<br>पतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव। वल्लभ<br>सङ्गसङ्गेन विना हरिणचक्षुष। राकाविभाव<br>जानिर्व्विषज्वालाकुलो भवेत्॥ नयनयुगासेच<br>मानसव्यापि दुष्प्राप। रूपमिदं मदिरा<br>मदयति हृदय दुनोति च मे" ॥ ९२ |
| विरोधाभास ———— ९३ | "आभासत्व विरोधस्य विरोधाभास इष्यते"। ९३ | "विनापि तन्वि हारेण वक्षोजौ तव हारिणौ"। |
| विवृतोक्ति ———— ९४ | "विवृतोक्तिः श्लेषगुप्त कविनाविष्कृत यदि"। ९४ | "वृषापेहि परक्षेत्रादिति वक्ति स सूचन"। ९४ |
| विशेष ———— ९५<br>स त्रिविध। | "विशेषः ख्यातमाधारं विनाप्याधेयवर्णन।<br>विशेष सोऽपि यद्येक वस्त्वनेकत्र वर्ण्यते॥<br>किञ्चिदारम्भतोऽशक्यवस्त्वन्तरकृतिश्च सः"। ९५ | "गते सूर्य्येऽपि दीपस्थास्तमश्छिन्दन्ति तत्कर।<br>अन्तर्बहि पुर पश्चात् सर्व्वदिक्ष्वपि सैव मे।<br>त्वां पश्यता मया लब्धं कल्पवृक्षनिरीक्षण"। ९५ |
| विशेषोक्तिः ———— ९६ | "कार्य्याजनिर्विशेषोक्ति सति पुष्कलकारणे"। ९६ | "हृदि स्नेहक्षयो नाभूत् स्मरदीपे ज्वलत्यपि"। ९६ |
| विषम ———— ९७<br>तत् त्रिविध। | "विषम वर्ण्यते यत्र घटनाननुरूपयो।<br>विरूपकार्य्यस्योत्पत्तिरपर विषम मत॥<br>अनिष्टस्याप्यवाप्तिश्चेत्तदिष्टार्थसमुद्यमात्"। ९७ | "क्वेय शिरीषमृदङ्गी क्व तादृङ्मदनज्वरः।<br>कीर्त्ति प्रसूते धवलां श्यामा तव कृपाणिका।<br>भक्षाशया हि मञ्जूषा दृष्ट्वाखुस्तेन भक्षितः"। ९७ |
| विषादन ———— ९८ | "इष्यमाणविरुद्धार्थसम्प्राप्तिश्च विषादन"। ९८ | "दीपमुद्दीपयेद्यावत्तावन्निर्व्वाण एव स"। ९८ |
| व्याघात ———— ९९<br>स द्विविध। | "स्याद्व्याघातोऽन्यथाकारि तथाकारि क्रियेत चेत्।<br>सौकार्य्येण निबद्धापि क्रियाकार्य्यविरोधिन"। ९९ | "यैर्जगत् प्रीयते हन्ति तैरेव कुसुमै स्मर।<br>दया चेद्बाल इति मय्यपरित्यज्य एव ते"। ९९ |
| व्याजनिन्दा ———— १०० | "निन्दाया निन्दया व्यक्तिर्व्याजनिन्देति गीयते"। १०० | "विधे स निन्द्यो यस्ते प्रागेकमेवाहरच्छिर"। १०० |
| व्याजस्तुति ———— १०१<br>स द्विविध। | "उक्तिर्व्याजस्तुतिर्निन्दास्तुतिभ्यास्तुतिनिन्दयोः"। १०१ | "क स्वर्धुनि विवेकस्ते नयसे पापिनो दिव।<br>साधु दूति पुन साधु कर्त्तव्य किमत पर।<br>यन्मदर्थे विलूनासि दन्तैरपि नखैरपि"। १०१ |
| व्याजोक्ति ———— १०२ | "व्याजोक्तिरन्यहेतूक्त्या यदाकारस्य गोपन"। १०२ | "सखि पश्य गृहारामपरागैरस्मि धूसरा"। १०२ |
| व्यतिरेक ———— १०३ | "व्यतिरेको विशेषश्चेदुपमानोपमेययो"। १०३ | "शैला इवोन्नताः सन्तु किन्तु प्रकृतिकोमला"। १०३ |
| शुद्धापह्नुति ———— १०४ | "शुद्धापह्नुतिरन्यस्यारोपार्थो धर्म्मनिह्नव"। १०४ | "नाय सुधांशु कि तर्हि व्योमगङ्गासरोरुह"। १०४ |
| श्लेष ———— १०५<br>स च त्रिविध। प्रकृतानेकविषय १ अप्रकृतानेकविषयः २ प्रकृताप्रकृतानेकविषय ३। | "नानार्थसंश्रय श्लेषो वर्ण्यावर्ण्योभयाश्रय"। १०५ | "सर्व्वतो माधव पायात् स यो गङ्गामदीधरत्।<br>अब्जेन त्वन्मुख तुल्य हरिणा हतशक्तिना।<br>उच्चरद्भूरिकीलाल शुशुभे वाहिनीपति"। १०५ |
| सदर्थनिदर्शना ———— १०६ | "विभावन सम्रद्धानां फल सुहृदनुग्रह"। १०६ | "उदयन्नेव सविता पद्मेष्वर्पयति त्विष"। १०६ |
| सन्देह ———— १०७ | "स्यात् स्मृतिभ्रान्तिसन्देहैस्तदङ्कालङ्कृतित्रय"। १०७ | "पङ्कज वा सुधांशुर्व्वेत्यस्माकन्तु न निर्णय"। १०७ |
| सम ———— १०८<br>तत् त्रिविध। | "सम स्याद्वर्णन यत्र द्वयोरप्यनुरूपयो।<br>सारूप्यमपि कार्य्यस्य कारणेन सम विदु।<br>विना यत्नेन तत्सिद्धिर्यदर्थं कर्त्तुमुद्यम"। १०८ | "स्वानुरूप कृत पद्महारेण कुचमण्डल।<br>नीचप्रवणता लक्ष्मि जलजायास्तवोचिता।<br>युक्तो वारणलाभोऽय भूपतेर्वारणार्थिन"। १०८ |
| समाधि ———— १०९ | "समाधि कार्य्यसौकर्य्यं कारणान्तरसन्निधे"। १०९ | "उत्कण्ठिता च कुलटा जगामास्तञ्च भानुमान्"। १०९ |
| समासोक्ति ———— ११० | "समासोक्ति परिस्फूर्त्तिं प्रस्तुते प्रस्तुतस्य चेत्"। ११० | "अयमैन्द्रीमुख पश्य रक्तश्चुम्बति चन्द्रमाः"। ११० |
| समुच्चय ———— १११<br>स द्विविध। | "बहूना युगपद्भाजा भावगुम्फ समुच्चय।<br>अहं प्रथमिकाभाजामेककार्य्यान्वयोऽपि स"। १११ | "नश्यन्ति पश्चात् पश्यन्ति भ्रश्यन्ति च तव द्विष।<br>स शील वयो विद्या धनञ्च मदयत्यमु"। १११ |
| सम्बन्धातिशयोक्ति ———— ११२<br>लक्षणभेदेन सा द्विधा। | "सम्बन्धातिशयोक्तिः स्यादयोगे योगकल्पन।<br>योगेप्ययोगसम्बन्धातिशयोक्तिरितीर्य्यते"। ११२ | "सौधाग्राणि पुरस्यास्य स्पृशन्ति विधुमण्डल।<br>त्वयि दातरि राजेन्द्र स्वर्द्रुमान्नाद्रियामहे"। ११२ |
| सम्भावन ———— ११३ | "सम्भावन यदीद स्यादित्यूहोऽन्यस्य सिद्धये"। ११३ | "यदि शेषोऽभवद्वक्ता कथिता स्युर्गुणास्तव"। ११३ |
| सहोक्ति ———— ११४ | "सहोक्तिः सहभावश्चेद्भासते जनरञ्जनः"। ११४ | "दिगन्तमगमत्तस्य कीर्त्ति प्रत्यर्थिभि सह"। ११४ |
| सामान्य ———— ११५ | "सामान्य प्रकृतस्यान्यतादात्म्य सदृशैर्गुणै"। ११५ | "मल्लिकाचितधम्मिल्लाश्चारुचन्दनचर्च्चिताः।<br>अविभाव्या सुख यान्ति चन्द्रिका अभिसारिका"<br>॥११५ |
| सार ———— ११६ | "उत्तरोत्तरमुत्कर्षः सार इत्यभिधीयते"। ११६ | "मधुर मधु पीयूष तस्मात् तस्मात् कवेर्वचः"। ११६ |
| सूक्ष्म ———— ११७ | "सूक्ष्म पराशयाभिज्ञे तरसाकूतचेष्टित"। ११७ | "मयि पश्यति सा केशैः सीमन्तमणिमावृणोत्"।<br>११७ |
| लोकोक्ति ———— ११८ | "लोकोक्तिर्यत्र लोकोक्ते स्यादर्थान्तरगर्भिता"। ११८ | "भुजङ्ग एव जानीते भुजङ्गाचरण सखे"। ११८ |
| स्वभावोक्ति ———— ११९ | "स्वभावोक्ति स्वभावस्य जात्यादिस्थस्य वर्णन"। ११९ | "कुरङ्गैरुत्तरङ्गाक्षैः स्तब्धकर्णैः समीक्ष्यते"। ११९ |

| अथालङ्कारनामानि | तल्लक्षणानि | तदुदाहरणानि |
| --- | --- | --- |
| स्मृतिमान् ——१२० | "स्यात् स्मृतिभ्रान्तिसन्देहैस्तदङ्कालङ्कृतित्रय" ।१२० | "पङ्कजं पश्यतः कान्ता मुखं मे गाहते मनः" ॥१२० |
| हेतु ——१२१ | "हेतोर्हेतुमता सार्द्धं वर्णनं हेतुरुच्यते । हेतुर्हेतुमतोरैक्यवर्णनं हेतुरुच्यते" । १२१ | "असावुदेति शीतांशुर्मानच्छेदाय सुभ्रुवः ॥ लक्ष्मीविलासो विदुषां कटाक्षावेङ्कटप्रभो" ॥१२१ |
| स द्विविध । | | |
| हेत्वपह्नुति ——१२२ | "शुद्धापह्नुतिरन्यस्यारोपार्थो धर्म्मनिह्नवः । स एव युक्तिपूर्व्वश्चेदुच्यते हेत्वपह्नुति" । १२२ | "नेन्दुस्तीव्रो न निश्यर्कः सिन्धोरौर्व्वोऽयमुत्थितः" ॥ १२२ |

---

अलङ्क्रिया, स्त्री, (अलम् + कृ + भावे श । ) भूषितकरणम् । तत्पर्य्याय । भूषा २ । इत्यमर ॥

अलङ्कृत, त्रि, (अलम् + कृ + कर्म्मणि क्त । ) अलङ्कारयुक्त । तत्पर्य्याय । भूषित २ प्रसाधित ३ परिष्कृत ४ मण्डित ५ । इत्यमर ॥ ("अलङ्कृतं जनाकीर्णं विविधैर्वरणावृतम्" । इति महाभारते । )

अलञ्जर, पुं, (अलम् + ज्वृ + अच् । ) मृण्मयबड-जलधरपात्रं । जाला इति ख्यात । तत्पर्य्याय । चलिञ्जर २ मणिकं ३ । इत्यमरटीकायां भरत ॥

अलति, पु, (अल + बाहुलकात् अतिच् । ) गीत-विशेष । इत्युणादिकोष ॥

अलन्धूम पु, (अलमत्यर्थो धूम । ) धूमसमूह । इति जटाधर ॥

अलम्, व्य, भूषणं । पूर्णता । सामर्थ्यं । निषेध । इत्यमर ॥ निरर्थक । इति भरत ॥

अलम्बुष, पु, (अलं पुष्णाति, पुष + क, पृषोदरादित्वात् षस्य ब ।) प्रहस्त । वमन । राक्षस-विशेष ॥ इति मेदिनी ॥ (कुरुक्षेत्रयुद्धे कौरवाणां सहाय स्वनामख्यातो राक्षस ।

"सात्यकिश्चापि सक्रुद्धो राक्षसं क्रूरमाहवे ।
अलम्बुषं शरैर्घोरैर्विव्याध बलिना बली" ॥
इति महाभारते ।)

अलम्बुषा, स्त्री, (अलं पुष्णाति, पुष + क, षस्य ब, तत स्त्रियां टाप् ।) मुण्डीरी । स्वर्गवेश्याभेद । इति मेदिनी ॥

("अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीका तिलोत्तमा ।
सुरूपा लक्ष्मणा क्षेमा तथा रम्भा मनोरमा" ॥
इति महाभारते ।) अन्यप्रवेशवारणार्थदस्तरे-खादि ॥ लज्जालुभेद । तत्पर्य्याय । खरत्वक् २ मेद ३ गला ४ । अस्या गुणा । लघुत्व । स्वादुत्व । कृमिपित्तकफनाशित्वञ्च । इति राजनिर्घण्ट ॥ (भावप्रकाशस्य ॥

"अलम्बुषा गोक्षुरकं त्रिफला नागरा मता ।
यथोत्तरं भागवृद्ध्या श्यामाचूर्णन्तु तत्समं ॥
पिबेन्मस्तुसुरातक्रकाञ्जिकोष्णोदकेन वा ।
शीतं जयत्यामवातं सशोथं वातशोणितं ॥
त्रिकजानूरुसन्धिस्थं ज्वरारोचकनाशनं ।
पथ्याश्चधान्यत्रिफला भागवृद्ध्याऽवयं क्रम" ॥ * ॥

अलम्बुषाद्यं चूर्णम् ॥ * ॥ इति वैद्यकचक्रपाणि-संग्रह ॥

"अलम्बुषा गोक्षुरकं मूलं वरुणकस्य च ।
गुडूची नागरश्चेति समभागानि कारयेत् ॥
काञ्जिकेन तु तत्पेयं विडालपदमात्रक ।
आमवाते प्रवृद्धे च योगोऽयममृतोपम ॥ * ॥

अपराजम्बुषाद्यं चूर्णं ॥ * ॥ इति च भावप्रकाशे ॥)

अलर्क, पु, (अलमर्क्यतेऽर्च्यते वा, अर्क + अच्, अर्च + घञ् वा । ) क्षिप्तकुक्कुर । ("आलर्कं विषमिव सर्व्वत प्रसृतम्" । इति उत्तरचरिते ।) श्वेतार्कवृक्ष । शादा आकन्द इति भाषा ।

(अस्य पर्य्यायान्तरं गुणान्तरञ्च यथा—

"अलर्कों गणरूप स्यान्मन्दारो वसुकोपि च ।
श्वेतपुष्प सदापुष्प सबालार्क प्रतापस ॥
रक्तोऽपरोऽर्कनामा स्यादर्कपर्णो विकीरण ।
रक्तपुष्प शुक्लफलस्तथास्फोट प्रकीर्त्तितः ॥
अर्कद्वयं सरं वातकुष्ठकण्डूविषव्रणान् ।
निहन्ति प्लीहगुल्मार्श श्लेष्मोदरशकृत्क्रिमीन् ॥
अलर्ककुसुमं वृष्यं लघुदीपनपाचनं ।
अरोचकप्रसेकार्श कासश्वासनिवारणम्" ॥
इति भावप्रकाश ॥

"दुष्टकर्द्दमसंस्पर्शा कण्डूक्लेदान्वितान्तरा" ।
अङ्गुल्योऽलस मित्याङ्क ॥ इति वाभट ॥)

तत्पर्य्याय । प्रतापस २ राजार्क ३ गणरूपी ४ । इति रत्नमालामरी ॥ शूकराकारोऽष्टपादतीक्ष्ण-दन्तसूच्याकारलोमजन्तुविशेष । दंशनामासुरो भृगुशापात् अयं जन्तुर्भूत्वा कर्णस्योरु भित्त्वा परशुरामदृष्टिपातात् शापमुक्तः पूर्व्वरूपो बभूव । इति महाभारते राजधर्म्मे ॥

("ददर्श रामस्तं चापि कृमिं शूकरसन्निभं ।
अष्टपादं तीक्ष्णदंष्ट्रं सूचीभिरिव संवृत ॥
रोमभि सन्निरुद्धाङ्गमलर्कं नाम नामत ।
सोऽब्रवीदहमासं प्रागदंशो नाम महासुर ।
पुरा देवयुगे तात । भृगोस्तुल्यवया इव ।
सोऽहं भृगो सुदयितां भार्य्यामपहरं बलात् ॥
महर्षेरभिशापेन कृमिभूतोऽपतं भुवि" ।

स्वनामख्यातो नृपति ।

"शैव्य श्येनकपोतीये स्वमांसं पक्षिणे ददौ ।
अलर्कश्चक्षुषी दत्त्वा जगाम गतिमुत्तमाम्" ॥
इति रामायणे । स्वनामख्यात काशिराज, स हि वत्सराजस्य पुत्र सन्नतेश्च पिता, यथा हरिवंशे,—

"वत्सपुत्रस्त्वलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः ।
अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्य सत्यसङ्गर ॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च ।
तस्यासीत् सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिन" ।)

अलले, व्य, पिशाचभाषायां सम्बोधनं । तत्पर्य्यायः । अले २ अलेले ३ । इति शब्दरत्नावली ॥

अलवाल, क्ली, (लवमालाति, ला + क, ततो नञ्-समास ।) आलवाल । वृक्षमूले जलधारणार्थं-कृतालि । चारमादा इति ख्यात । इत्यमर-टीकायां भरतादय ॥

अलवालक, क्ली, (अलवाल एव, अलवाल + स्वार्थे कन् । ) आलवाल । इति शब्दरत्नावली ॥

अलस, त्रि, (न लसति व्याप्रियते, लस + अच् ।) आलस्ययुक्त । आलसा इति भाषा । तत्पर्य्याय । मन्द २ तुन्दपरिमृज ३ आलस्य ४ शीतक ५ अनुष्ण ६ । इत्यमर ॥ शीतल ७ कुण्ठ ८ मुख-निरीक्षक ९ । इति शब्दरत्नावली ॥ (क्रिया-मन्द । क्रियाजड । अवश्यकर्त्तव्येषु अप्रवृत्ति-शील । "अव्यवसायिनमलसं दैवपरं साहसाच्च परिहीनं । प्रमदेव वृद्धपतिं नेच्छत्युपगूहितुं लक्ष्मी" । इति हितोपदेशे ।)

अलस, पु, (लस + अच्, ततो नञ्समासः ।) वृक्ष-विशेष । पादरोगभेद । इति मेदिनी ॥ पाँकुई इति भाषा । तस्य निदानरूपे ।

"क्लिन्नाङ्गुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहरुजान्वितौ ।
दुष्टकर्द्दमसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत्" ॥

अलस कादई इति लोके । अथ तस्य चिकित्सा ।

"पादौ सिक्तारनालेन लेपन लसे हित ।
पटोलकुनटीनिम्बरोचनामरिचैस्तिलै ॥
क्षुद्राखरसंसिद्धेन कटुतैलेन लेपयेत् ।
तत कासीसकुनटीतिलचूर्णैर्विचूर्णयेत्" ॥

अवधूलयेत् ।

"करञ्जबीजं रजनी कासीसं पद्मकं मधु ।
रोचना हरितालञ्च लेपोऽयमलसे हित" ॥
इति भावप्रकाशः ॥ ("दुष्टकर्द्दमसंस्पर्शी कण्डूक्लेदान्वितान्तरा । अङ्गुल्योऽलसमित्याङ्क" ॥ इति वाभट ॥)

अलसक, पु, (न लसति अनेन, लस + करणे वुन् ।) उदररोगविशेषः । इति माधवकर ॥ तस्य रूपं ।

"कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्येत् परिकूजति ।
निरुद्धो मारुतश्चैव कुक्षावुपरि धावति ॥
वातवर्च्चोनिरोधाश्च यस्यात्यर्थं भवेदपि ।
तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ तु यस्य च" ॥

तन्त्रान्तरे ।

"प्रयाति नोर्द्ध्वं नाधस्तादाहारो न च पच्यते ।
आमाशयेऽलसीभूतस्तेन सोऽलसक स्मृत" ॥

अस्य लक्षणं चिकित्सा च अजीर्णशब्दे द्रष्टव्या । (अलसकमुपदेक्ष्याम । दुर्ब्बलस्याल्पाग्नेर्बहुश्लेष्मणो वातमूत्रपुरीषवेगविधारिणः स्थिरगुरुबहुरूक्ष-

शीतशुष्कान्नसेविनस्तदन्नपानमनिलप्रमीड़ितं स्रोतःसु विबद्धमार्गमतिमात्रप्रलीनमलसत्वान्न बहिर्मुखी भवति। ततश्छर्द्यतीसारवर्ज्यान्यामप्रदोषलिङ्गान्यभिदर्शयति अतिमात्राणि। अतिमात्रप्रदुष्टाश्च दोषाः प्रदुष्टामबद्धमार्गास्तिर्य्यग्गाच्छन्तः कदाचित् केवलमेवास्य शरीरं दण्डवत् स्तम्भयन्ति। ततस्तमलसकमसाध्यं ब्रुवते। विरुद्धाध्यशनाजीर्णाशनशीलिनः पुनरेव दोषमामविषमित्याचक्षते भिषजो विषसदृशलिङ्गत्वात्। तत्परमसाध्यमाशुकारित्वात् विरुद्धोपक्रमत्वाच्चेति। तत्र साध्यमाम प्रदुष्टमलसीभूतमुल्लेखयेत्। पाययित्वा सलवणमुष्णवारि। ततः स्वेदनवर्त्तिप्रणिधानाभ्यामुपाचरेदुपवासयेच्चैनम्। इति चरकः॥)

अलसा, स्त्री, (लस+अच्, ततो नञ्समासः, स्त्रियां टाप्।) हंसपदीलता। इति मेदिनी॥ हंसपदीशब्देऽस्य गुणादयो ज्ञेयाः॥

अलसेक्षणा, स्त्री, (अलसे ईक्षणे यस्याः सा।) स्त्रीविशेषः। सा अलसदृष्टियुक्ता। इति हेमचन्द्रः॥

अलक्षणा, स्त्री, (लक्षणमनुमापकं सुचिह्नं, विरोधे नञ्, नञ्समासः।) दुर्लक्षणा। मन्दचिह्नं। ("आचारात् धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्"। इति मनुः।) वहिश्चिह्ने च॥

अलक्ष्मी, स्त्री, (न लक्ष्मी, नञत्र विरोधे।) नरकदेवता। तत्पर्य्यायः। निरृतिः २। इत्यमरः॥ कालकर्णी ३। इति शब्दरत्नावली॥ कालकर्णिका ४। इति जटाधरः॥ ज्येष्ठादेवी ५ इति पाद्मोत्तरखण्डः॥ तस्या विवरणं ज्येष्ठाशब्दे द्रष्टव्यं॥ *॥ दीपान्वितामावास्यायां तस्याः पूजाविधिर्यथा। तत्र प्रदोषे आदौ आचारादलक्ष्मीपूजनं। इत्याचार्य्यचूडामणिप्रभृतयः॥ गोमयपुत्तलिकां निर्माय वामहस्तेन कृष्णपुष्पं गृहीत्वा ध्यायेत्।

"अलक्ष्मीं कृष्णवर्णां द्विभुजां कृष्णवस्त्रपरीधानां लौहाभरणभूषितां शर्कराचन्दनचर्च्चितां गृहसम्मार्ज्जनीहस्तां गर्दभारूढ़ां कलहप्रियाम्"। इति ध्यात्वा विमुखेन "ॐ अलक्ष्म्यै नमः" इत्यनेन निर्म्माल्येन कृष्णपुष्पेण सम्पूज्य प्रणमेत्।

"(ॐ) अलक्ष्मीस्त्वं कुरूपासि कुत्सितस्थानवासिनी।
सुखरात्रौ मया दत्तां गृह्ण पूजाञ्च शाश्वतीं॥
दारिद्र्यकलहप्रिये देवि। त्वं धननाशिनी।
याहि शत्रोर्गृहे नित्यं स्थिरा तत्र भविष्यसि॥
यदि त्वं मे महाभागे प्रीता भवसि सर्व्वदा।
पुत्त्रवत्सुकलत्रेषु कदाचिन्नागमिष्यसि॥
गच्छ त्वं मन्दिरं शत्रोर्गृहीत्वा चाशुभं मम।
सदाश्रयं परित्यज्य स्थिरा तत्र भविष्यसि"॥
ततः शूर्पवाद्येन सीमान्ते तां विसृजेत्।
इति कृत्यचन्द्रिका॥ *॥ किञ्च,—
"एवं गते निशीथे तु नारी च स्वगृहाङ्गनात्।
अलक्ष्मीं बहिष्कार्य्यां कुर्य्यात् यथाविधि"॥
इति कृत्यतत्त्वार्णवधृतब्रह्मपुराणं॥ *॥
"एवं गते निशीथे तु जने निद्रार्द्धलोचने।

तावन्नगरनारीभिः शूर्पडिण्डिमवादनैः॥
निष्काश्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाङ्गनात्"॥
इति निर्णयसिन्धौ मदनरत्नधृतभविष्यपुराणं॥

अलातं, क्ली, (ला+क्त, नञ्समासः।) अङ्गारः। इत्यमरः॥ (अर्द्धदग्धकाष्ठं। "कुरुतेऽस्मिन्नमोघेऽपि निर्व्वाणालातलाघवम्"। इति कुमारसम्भवे।)

अलाबुः, पुं, स्त्री, (न लम्बते, न+लबि ऊर्ध्वं लम्बते, बाहुलकात् उ: ।) लताविशेषः तत्फलञ्च। लाउ इति ख्याता। तत्पर्य्यायः। तुम्बः २ तुम्बकः ३ तुम्बा ४ तुम्बी ५ पिण्डफला ६ महाफला ७ आलाबुः ८ एलाबुः ९ लाबुः १० लाबुका ११। इत्यमरतट्टीकाः च॥ तुम्बिका १२ तुम्बि १३ अलाबुः १४। इति शब्दरत्नावली॥ अस्याः गुणाः।

"अलाबुः कथिता तुम्बी द्विधा दीर्घा च वर्त्तुला
मिष्टतुम्बीफलं हृद्यं पित्तश्लेष्मापहं गुरु॥
वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तं धातुपुष्टिविवर्द्धनं"।
इति भावप्रकाशः॥ भेदकत्वं कफकारित्वं। गुरुपाकित्वं। हिमत्वं। पित्तनाशित्वञ्च। तन्माडीगुणाः। गुरुत्वं। मधुरत्वं। मलभेदकत्वं। वातश्लेष्मकारित्वं। रूक्षत्वं। शीतलत्वं। पित्तनाशित्वञ्च। इति राजवल्लभः॥
("वर्च्चोभेदीन्यलावूनि रूक्षशीतगुरूणि च"।
इति चरकश्च।
"अलाबुर्भिन्नविट्का तु रूक्षा गुर्व्वतिशीतला"।
इति च सुश्रुतः॥)

अलारं, क्ली, (अरार्यते, ऋ+यङ्लुक्+अच् रस्य लः।) कवाटं। इति शब्दरत्नावली॥

अलिः, पुं, स्त्री, (अलति दंशे समर्थो भवतीति, स, अल+इन्।) भ्रमरः। ("अलिपङ्क्तिरनेकशस्त्वया, गुणकृत्ये धनुषो नियोजिता"। इति कुमारसम्भवे। "अनुगतमलिवृन्दैर्गण्डभित्तीर्विहाय"। इति रघुवंशे।) वृश्चिकः। इत्यमरः॥ काकः। कोकिलः। इति शब्दरत्नावली॥ मदिरा। इति मेदिनी॥ (वृश्चिकराशिः।)

अलिकं, क्ली, (अल्यते भूष्यते, अल+कर्म्मणि इकन्।) ललाटं। इत्यमरः॥

अलिकुलसङ्कुलः, पुं, (अलिकुलेन सङ्कुलः व्याप्तः, तृतीयातत्पुरुषः।) कुब्जकवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥

अलिगर्द्दः, पुं, (अलिरिव वृश्चिक इव गर्द्दति, गर्द्द+अच्।) जलसर्पः। आलाध इति ख्यातः। इति शब्दरत्नावली॥

अलिजिह्वा, स्त्री, (अलिरिव क्षुद्रा जिह्वा।) जिह्वोपरि क्षुद्रजिह्वा। आलजिव इति ख्याता। इति शब्दरत्नावली॥

अलिजिह्विका, स्त्री, (अलिजिह्वा एव स्वार्थे कन्, टाप्।) अलिजिह्वा। इति शब्दरत्नावली॥

अलिञ्जरः, पुं, (अल+इन, अलिं सामर्थ्यं जरयति शृणाति वा, अलि+जॄ+अच्, पृषोदरादित्वात्

साधुः।) मृदादिनिर्म्मितजलाधारविशेषः। जाला इति ख्यातः। इत्यमरः। ("उदकान्तमुपनीय मत्स्यं वैवस्वतो मनुः। अलिञ्जरे प्राक्षिपत चन्द्रांशुसदृशप्रभं"। इति महाभारते।)

अलिदूर्व्वा, स्त्री, (अलिरिवाकारेण दूर्व्वा।) मालादूर्व्वा। इति राजनिर्घण्टः॥

अलिन्दः, पुं, (अलते भूष्यते, अल+कर्म्मणि बाहुलकात् किन्दच्।) बहिर्द्वारस्थप्रघणचतुरस्रभूमि। तत्पर्य्यायः। प्रघाणः २ प्रघणः ३ बहिर्द्वारप्रकोष्ठः ४ आलिन्दः ५। इत्यमरः। प्रघाणं द्वारपिण्डकं। अलिन्दं गाडीति भाषा। इत्यादि। यस्यामलिन्देषु न चक्रुरेवेति माघः स्वार्थे ण्यः आलिन्दो दीर्घादिरपि। "गृहैकदेशे आलिन्दः प्रघाणः प्रघणस्तथा"। इत्यमरदत्तः। अथ पिण्डकं आलिन्दं इति इहतु त्रयमेव ज्ञेयादिति साक्षात्। इत्यमरटीकायां भरतः॥*॥ अन्यच्च।
"प्रघाणप्रघणालिन्दा द्वारबाह्यप्रकोष्ठके।
गृहाभ्यन्तरशय्यार्थपिण्डिकायामपि त्रयः।
आलिन्दः स्यादलिन्दोऽपि स्यादलिन्दक इत्यपि"
इति शब्दरत्नावली॥
("शुकाङ्गनीलोपलनिर्म्मितानां
लिप्तेषु भासा गृहदेहलीनां।
यस्यामलिन्देषु न चक्रुरेव
मुग्धाङ्गना गोमयगोमुखानि॥"
इति माघः।)

अलिपकः, पुं, स्त्री, (कुत्सितवर्णेन लिप्यते, लिप+बाहुलकात् कर्म्मणि वुन्।) भ्रमरः। कोकिलः। कुक्कुरः। इति मेदिनी॥ (वृश्चिकः।)

अलिपत्रिका, स्त्री, (अलिर्वृश्चिक इव पत्त्रमस्याः, कपि अत इत्वम्।) वृश्चिकाख्यक्षुपः। इति राजनिर्घण्टः॥

अलिपर्णी, स्त्री, (अलिरिव पर्णमस्याः, ङीप्।) वृश्चिकालीवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥

अलिप्रियं, क्ली, (अलीनां प्रियं षष्ठीतत्पुरुषः।) रक्तोत्पलं। रक्तपद्मं। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अलिप्रिया, स्त्री, (अलीनां प्रिया, षष्ठीतत्पुरुषः।) पाटलावृक्षः। इति रत्नमाला॥

अलिमकः, पुं, (अलिरिव मकमकते, मक+अच्, पृषोदरादित्वात्साधुः।) भेकः। कोकिलः। भ्रमरः। पद्मकेशरः। मधूकवृक्षः। इति मेदिनी॥

अलिमोदा, स्त्री, (अलीन् मोदयति मुद+णिच्+अच्।) गणिकारीवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥

अलिम्बकः, पुं, (न+लिपि+वुन्।) पद्मकेशरः। भेकः। भ्रमरः। कोकिलः। इति शब्दरत्नावली॥ (कुक्कुरः। मधूकवृक्षः।)

अलिवाहिनी, स्त्री, (अलिं वाहयति गन्धेन, वह+णिच्+णिनि+ङीप्।) कोविदारपुष्पं। इति राजनिर्घण्टः॥

अली, [न्] पुं, (अलं वृश्चिकपुच्छकण्टक विद्यतेऽस्य इनि।) भ्रमरः।

("मलिनिमालिनि माधवयोषिताम्"।
इति माघः।) वृश्चिकः। इति मेदिनी॥

अलीकं, क्ली, (अल+ईकन्।) अप्रियं। ("तद्यथा स महाराजो नालीकमधिगच्छति"। इति रामायणे।) मिथ्या। इत्यमरः॥ ("ज्ञातेऽलीकनिमीलिते नयनयो"। इति अमरुशतके।) स्वर्गः। इति मेदिनी॥ ललाटं। इति हेमचन्द्रः॥

अलीकं, त्रि, (अल+ईकन्।) मिथ्या। अप्रियं। अल्पं। इति शब्दरत्नावली॥

अलीकमत्स्यः, पुं, अङ्गारस्विन्नतिलतैलभृष्टमाषपिष्टं। तत्र प्रमाणं राजनिर्घण्टे यथा।

"माषपिष्टिकया लिप्तनागवल्लीदलैर्महत्।
तत्तु संस्वेदयेद्युक्त्या स्थाल्यामङ्गारकोपरि॥
ततो भित्त्वाग्नित खण्ड्य तिलतैलेन भर्ज्जयेत्।
अलीकमत्स्य उक्तोऽयं प्रकारः पाकपण्डितैः॥
तं वन्ताकमरिचेण वास्तूकेन च भक्षयेत्॥"

अलुः, स्त्री, (अल+उन्।) आलुः। क्षुद्रकलसी। इत्यमरटीकायां रमानाथः॥

अलुब्ध, त्रि, (लुभ+क्त, नञ्समासः।) लोभरहितः। यथा मनुः।
"एकोऽप्यलुब्धः साक्षी स्यात् बह्व्यः शुच्योऽपि न स्त्रियः। स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्येऽपि ये वृताः"॥
"एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्यादिति कुल्लूकभट्टधृतपाठः।" इति व्यवहारतत्त्वं॥
("अलुब्धे स्निग्धे प्रबुद्धे चामात्ये परिहृत"। इति कादम्बरी।)

अले, अ, पिशाचभाषया सम्बोधनं। इति शब्दरत्नावली॥

अलेले, अ, पिशाचभाषया सम्बोधनं। इति शब्दरत्नावली॥

अलोभः, पुं, (न लोभः, अभावे नञ्।) लोभाभावः। यथा,—
"इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः"॥
इति महाभारतं॥

अलोभी, [न्] त्रि, (लोभोऽस्त्यस्य इति लोभी, न लोभी इति नञ्समासः।) लोभशून्यव्यक्तिः। नास्ति लोभो यस्य इति बहुव्रीहिसमासादिन्प्रत्ययनिष्पन्नः॥

अलोहितं, क्ली, (न लोहितं, नास्ति लोहितं यस्मात् इति वा।) रक्तपद्मं। इति रत्नमाला॥

अलौकिकः, त्रि, (लोके विदितः, लोक+ठक् ततो नञ्समासः।) लौकिकप्रत्यक्षाविषयः। अमानुषिकः। लोकातीतः। यथा,—
"अलौकिकत्वादमरः स्वकोषे
न यानि नामानि समुल्लिलेख।
विलोक्य तैरप्यधुना प्रचार-
मयं प्रयत्नः पुरुषोत्तमस्य"॥
इति त्रिकाण्डशेषद्वितीयश्लोकः॥
("उपसंहर विश्वात्मन्नदोरूपमलौकिकम्"। इति भागवतपुराणम्।)

अल्पं, त्रि, (अल्+प।) किञ्चित्। तत्पर्य्यायः। ईषत् २ मनाक् ३ स्तोकं ४।
("अल्पोऽप्येवं महान् वापि विक्रयस्तावदेव सः"। इति मनुः।) क्षुल्लकं ५ श्लक्ष्णं ६ दभ्रं ७ कृशं ८ तनुः ९ तनूः १० त्रुटिः ११ त्रुटी १२ मात्रा १३ लवः १४ लेशः १५ कणः १६ कणी १७ कणिका १८ अणुः १९ सूक्ष्मं २०। इत्यमरः॥ क्षुद्रं २१ क्षुल्लकं २२ खुल्लं २३ काणा २४। इति शब्दरत्नावली।
(अतिसामान्यः।
"अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्
विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्"।
इति रघुवंशे। संक्षिप्तं। अदीर्घं।
"अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं,
स्वल्पं तथायुर्बहवश्च विघ्नाः"।
इति पञ्चतन्त्रम्।)

अल्पकः, पुं, (अल्प एव, अल्प+स्वार्थे कन्।) यवासवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥ अस्य गुणाः॥
"यासः स्वादुः सरस्तिक्ततुवरः शीतलो लघुः।
कफमेदोमदभ्रान्तिपित्तासृक्कुष्ठकासजित्॥
तृष्णाविसर्पवातास्रवमिज्वरहरः स्मृतः।
यवासस्य गुणैस्तुल्या बुधैरुक्ता दुरालभा"॥
इति भावप्रकाशः।) (स्वल्पपरिमितः। किञ्चित्।
"यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः।
तदात्वे चाल्पिकां पीड़ां तदा सन्धिं समाश्रयेत्"॥
इति मनुः।)

अल्पकेशी, स्त्री, (अल्पः केश इव पत्रमस्याः सा।) भूतकेशीवृक्षः। इति रत्नमाला॥

अल्पगन्ध, क्ली (अल्पो गन्धो यस्य तत्।) रक्तकैरवं। इति रत्नमाला॥

अल्पतनुः, त्रि, (अल्पा क्षुद्रापरिमाणा तनुर्यस्य।) खर्व्वः। दुर्ब्बलः। अल्पास्थियुक्तः। क्षुद्रदेहवान्। तत्पर्य्यायः। पृश्निः २। इत्यमरः॥

अल्पपत्रः, पुं, (अल्पं पत्रं यस्य सः।) क्षुद्रपत्रतुलसी। इति रत्नमाला॥

अल्पपद्म, क्ली, (अल्पमसम्पूर्णं पद्मं।) रक्तपद्मं। इति रत्नमाला॥

अल्पप्रमाणकः, पुं, (अल्पं प्रमाणमस्य, वा कन्।) चेलानं। इति रत्नमाला॥ चेलो चेला तरमूज इति ख्यातः। खरमूज इति केचित्।

अल्पमारिषः, पुं, (अल्पः क्षुद्रः मारिषः नटिया इति ख्यातः शाकः, कर्म्मधारयः।) शाकविशेषः। क्षुद्रनटिया इति ख्यातः। तत्पर्य्यायः। तण्डुलीयः २। इत्यमरः॥ (तण्डुलीयशब्देऽस्य गुणा ज्ञेयाः।)

अल्पसरः, [स्] क्ली, (अल्पं क्षुद्रं सरः, कर्म्मधारयः।) क्षुद्रसरोवरः। डोवा गेडे इति भाषा। तत्पर्य्यायः। वेशन्तः २ पल्वलं ३। इत्यमरः॥

अल्पायुः, [स्] पुं, (अल्पं संक्षिप्तं आयुर्जीवनकालो यस्य सः।) छागः। इति त्रिकाण्डशेषः॥ अचिरजीविते त्रि॥ (अदीर्घजीवी।
"दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च"।
इति मनुः।)

अल्पिष्ठः, त्रि, (अतिशयेन अल्पः, अल्प+इष्ठन्। अत्यल्पः। इत्यमरः॥ [अत्यल्पः। इत्यमरः॥

अल्पीयः, [स्] (अतिशयेन अल्पः, अल्प ईयसुन्।)

अल्लः, पुं, (अल्+क।)
अल्ला, स्त्री, (अल+क, स्त्रियां टाप्।) } परमेश्वरः।
एतन्नाम्ना यवना उपासन्ते। यथा। "ॐ अस्मल्ला इल्ले मित्रावरुणौ दिव्यानि धत्ते। इलल्ले वरुणो राजा पुनर्दुदुः। हयामि मित्रो इल्ला इल्लल्लेति इल्लाल्ला वरुणो मित्रो तेजस्कामाः। होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्रो महासुरिन्द्राः। अल्लो ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माणमल्ला अल्लोरसुरमहमदरकवरस्य अल्लो अल्ला आदल्लाबुकमेककं। अल्लाबुकं। निखातकं। अल्लो यज्ञेन हुतहुत्वा अल्ला सूर्यचन्द्रसर्व्वनक्षत्राः अल्लो ऋषीणां सदिव्या इन्द्राय पूर्व्वं मायापरमन्त अन्तरिक्षाः। अल्लो पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपं दिव्यानि धत्ते इलल्ले वरुणो राजा पुनर्दुदुः। इल्लाकवर इल्लाकवर इल्लल्लेति इल्लाल्ला इल्ला इल्लल्ला अनादिस्वरूपा अथर्व्वणी शाखा हूं ह्रीं जनान् पशून् सिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट्। असुरसंहारिणी ॐ अल्लो रसुरमहमदरकवरस्य अल्लो अल्लां इल्लल्लेति इल्लल्ल"। इत्याथर्व्वणसूक्तं।

अल्ला, स्त्री, (अल्यते इत्यल्, क्विप्, अले भूषायै लाति गृह्णाति, ला+क।) नाट्योक्तौ माता। इति वोपदेवः॥ (अथर्व्ववेदे अल्लाल्लेत्यादिख्यातो यवनोपास्यः परमेश्वरः।)

अव रक्षणे। (यथायथं सक-अकं-च, भ्वादिं-पर-सेट्।) गतौ। कान्तौ। स्पृहायामिति यावत्। प्रीतौ। तृप्तौ। द्युतौ। शोभायामिति यावत्। श्रुतौ। आकर्णने इति यावत्। प्राप्तौ। श्लेषे। आलिङ्गने इति यावत्। अर्थने। याच्ञायामिति यावत्। वेशे। प्रवेशे इति यावत्। भावे। सत्तायामिति यावत्। वृद्धौ। गृहे। आदाने इति यावत्। वधे। सामर्थ्ये। अवगमे। कृतौ। करणे इति यावत्। कामे। इच्छोत्पादने इति यावत्। (इति वोपदेवीयकविकल्पद्रुमः तट्टीका च॥) "अव रक्षे गतौ कान्तौ प्रीतौ तृप्तौ द्युतौ श्रुतौ। प्राप्तौ श्लेषेऽर्थने वेशे भागे वृद्धौ गृहे वधे। सामर्थ्येऽवगमे कामे कृतौ"। ऊनविंशतिरर्थाः। कान्तिरिच्छा। द्युतिः शोभा। काम इति अन्तर्भावितण्यर्थत्वादिच्छोत्पादना इति भेदः। श्लेष आलिङ्गनं। सामर्थ्यं शक्तिः। रक्षणे प्रसिद्धोऽयं। प्रीतौ तु। "न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी"। इति रघुः॥ अन्यत्र विरलप्रयोगः। केचित्तु स्तुति-भाग-गृह-काम-कृतीर्न पठित्वा क्रिया-श्रवण-दहन-भावानाहुः। अवति। इति दुर्गादासः॥

अव, अ, (अव+अच्।) उपसर्गविशेषः। अस्यार्थः। निश्चयः। असाकल्यं। अनादरः। इति दुर्गादासः॥ आलम्बनं। विज्ञापनं। व्यापनं। शुद्धिः। अल्पं। परिभवः। नियोगः। पालनं। इति शब्दरत्नावली॥

पातिनोऽवगोरणप्रायश्चित्तस्य कथं सिद्धिः। तथाहि मनुः।
अवगूर्य्य चरेत् कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने। अवगूर्य्य ब्राह्मणताडनार्थं दण्डमुद्यम्य शतयातनाजनकं यत् पापमुत्पादित तत्क्षयकाम कृच्छ्रप्राजापत्यव्रतं चरेत्। तदुक्तं सत्यधिकरणे। शयो प्रजापते प्रार्थनया देवैर्ब्राह्मणावगोरणफलत्वेन शतयातनाभिहिता। तथा च श्रुति। शयु प्रजापतिः प्रजाविनेता प्रजाहिते रतश्च देवाना हविर्वहन् आशिषोऽयाचत। देवास्त्ववगोरणे शतयातनास्त्वित्याशिषोऽददतेति। शास्त्रदीपिकादौ दर्शपौर्णमासप्रकरणे। देवा वै शयुं बार्हस्पत्यमब्रुवन् हव्य नो वहेति किं मे प्रजाया इति तेऽब्रुवन् यो ब्राह्मणायावगुरेत्तं शतेन यातयेत् यो निहन्यात् त सहस्रेण यो लोहितमकरोत् यावत पांशून् व्यनक्ति तावत परिवत्सरान् स स्वर्गात्प्रच्यवेत। तस्मात् ब्राह्मणान् नावगुरेत् न हन्यात् न लोहितं कुर्य्यात् इति"। इतिहासात्मक ब्राह्मणञ्च। इति प्रायश्चित्ततत्त्व॥

अवग्रह, पु, (अव+ग्रह+ घञ्।) वृष्टिरोध। (अनावृष्टिः।
"वृष्टिर्भवति शस्यानामवग्रहविशोषिणाम्"।
"नभोनभस्ययोर्वृष्टिमवग्रह इवान्तरे"॥
इति रघुवंशे।) प्रतिबन्धक। हस्तिललाटं। इति मेदिनी॥ गजसमूह। इति हारावली॥ स्वभाव। इति त्रिकाण्डशेष॥ (यदुक्त,—
"तौ स्थास्यतस्ते नृपतेर्निदेशे
परस्परावग्रहनिर्विकारौ"।
इति मालविकाग्निमित्रनाटकम्।) ज्ञानविशेष। इति हेमचन्द्र॥ शापः। इत्यमरटीकाया भरतादय॥ (ग्रहण। स्वीकार। हरण। अपसारण। निरोध। अवरोध।
"स रोचयामास परैश्च बन्ध
प्रसह्य रक्षोभिवरग्रहश्च"।
इति रामायणे। अवान्तरपदसञ्ज्ञा सूचयितुं पदपाठकाले किञ्चित्कालमवसानम्। अनादरः। निन्दासूचकवाक्यप्रयोगः।)

अवग्रहण, क्ली, (अव+ग्रह+भावे ल्युट्।) प्रतिरोधः। अनादरः। इति मेदिनी॥

अवग्राह, पु, (अव+ग्रह+घञ्।) ग्रहदोषादिजन्यवृष्टिव्याघातः। शुको इति भाषा। तत्पर्य्यायः। वृष्टिविघातः २ अवग्रह ३। इत्यमरः॥ हस्तिललाट। शाप। इति तट्टीका॥ (यथा,—
"अवग्राहस्ते भूयात्"।)

अवघट्ट, पु, (अव+घट्ट+आधारे घञ्।) भूरन्ध्रं। गर्त्त। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अवघात, पु, (अव+हन्+घञ्।) आघातविशेष। तण्डुलादिकण्डन। इति हेमचन्द्रः॥ काँड़ान यस्य प्रसिद्धिः। यथा। चरुविधौ विद्याकरवाजपेयी। शास्त्रावधारणवेलाया हि यत्र प्रयोजनाभावादिनिश्चयस्तत्रैव तदुपादानादिलोप शास्त्रार्थः। यथा कृष्णलेऽवघातादि"। यत्र तदनुष्ठानवेलायामेव पुरुषदोषेण प्रयोजनाभावो ज्ञायते तदा प्राक् तन्निश्चयाच्छास्त्रप्रापित पदार्थो नियमापूर्व्वमात्रार्थमनुष्ठेयमेव। अतएव प्रकृतावपि आलस्यादिना व्रीह्यादिस्थाने तण्डुलादिषु गृहीतेष्ववघातादि समाचरन्ति याज्ञिका।
"घाते न्यूने तथा छिन्ने सान्नाय्ये मान्त्रिके तथा।
यज्ञे मन्त्रा प्रयोक्तव्या मन्त्रा यज्ञार्थसाधका"॥
सान्नाय्ये हविषि मान्त्रिके मन्त्रसाध्ये अवघातादौ तत्काले मन्त्रपाठाभावेऽपि मन्त्रा प्रयोक्तव्या। इति शुद्धितत्त्वं॥ (अपमृत्यु)॥

अवचक्कार, त्रि, अवचनस्य। कथार अवाध्य इति भाषा। न वच करोतीत्यर्थे वच शब्दपूर्व्वककृधातो टप्रत्ययेन निष्पन्न॥

अवचूर्णितं, त्रि, (अव+चूर्ण+कर्म्मणि क्त।) चूर्णीकृतद्रव्य। गुँडा करा इति भाषा। तत्पर्य्याय। अवध्वस्तः २ अपध्वस्त ३। इत्यमर तट्टीका च॥

अवचूल, पुं, (अवनता चूड़ा यस्य, वा डस्य ल।) ध्वजाग्रबद्धाधोमुखवस्त्र। इति हेमचन्द्र॥

अवचूलकं, क्ली, (अवचूलमिव इवार्थे कन्, सञ्ज्ञायां वा कन्।) चामरं। इति त्रिकाण्डशेष॥

अवच्छिन्नं, त्रि, (अव+छिद्+क्त।) अवच्छेदकतानिरूपकं। विशिष्टं। इति न्यायभाषा। अवच्छेदाश्रय। यथा। प्रतियोग्यसमानाधिकरणयत्सामानाधिकरण्यात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न यन्न भवति तेन समं तस्य सामानाधिकरण्यव्याप्ति। इति सिद्धान्तलक्षणचिन्तामणिः॥ ("जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्नमेव हि।
बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यमेक पूर्णमथापरम्॥
साभासबुद्धे कर्त्तृत्वमवच्छिन्ने विकारिणि"।
इति अध्यात्मरामायणे।)

अवच्छुरित, क्ली, (अव+छुर+भावे क्त।) महाहास्य। इत्यमरटीकाया भरत॥

अवच्छुरितकं क्ली, (अवच्छुरितमेव, स्वार्थे कन्।) महाहास्यं। इति शब्दरत्नावली॥

अवच्छेद, पु, (अव+छिद्+भावे घञ्।) परिच्छेद। एकदेशः। विशेषणत्व॥
("शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतव"।
इति साहित्यदर्पणम्।)

अवच्छेदकं, त्रि, (अवच्छिनत्ति, अव+छिद्+ण्वुल्।) न्यायमते अव्याप्यवृत्त्यधिकरणसम्बन्धैकदेशः। इतरव्यावर्त्तक। विशेषणं। अवच्छिद्यतेऽनेनेति यथा। अव्याप्यवृत्तेरवच्छेदकत्वमपि स्वरूपसम्बन्धविशेष. तदाश्रयावच्छेदक। इति न्यायशास्त्र॥

अवच्छेदकत्व, क्ली, (अवच्छेदकस्य भाव, भावार्थे त्व।) स्वरूपसम्बन्धविशेष। यथा। घटकस्यावच्छेदकत्वं स्वरूपसम्बन्धविशेष। इत्यवच्छेदकत्वनिरुक्तौ शिरोमणि॥ अनतिरिक्तवृत्तित्व। यथा। अवच्छेदकत्वञ्च इहानतिरिक्तवृत्तित्वं। तेन विशिष्टस्यासत्त्वेपि भ्रमात् प्रतिबन्धेऽपि न क्षति। इति सामान्यनिरुक्तौ शिरोमणि॥ अन्यूनानतिरिक्तवृत्तित्व। यथा। ननु तादृशप्रतियोगित्वान्यूनानतिरिक्तवृत्तित्वं वाच्यं। वह्नित्वं न घटवृत्ति तादृशप्रतियोगित्वान्यूनानतिरिक्तवृत्ति अतआह ताणीतार्णेति। इत्यवच्छेदकत्वनिरुक्तौ जगदीशः॥ अनतिरिक्तवृत्तित्वरूपावच्छेदकत्वं पारिभाषिकं। यथा। तदवच्छिन्नाभाववदसम्बद्धस्वविशिष्टसामान्यकत्वं स्वविशिष्टसम्बन्धिनिष्ठाभावप्रतियोगितानवच्छेदकतत्कत्वं वा तदनतिरिक्तवृत्तित्वं वक्तव्यं। इति अवच्छेदकत्वनिरुक्तौ शिरोमणि॥ अव्याप्यवृत्तेरवच्छेदकत्वमपि स्वरूपसम्बन्धविशेष तदाश्रयावच्छेदक। तच्चावच्छेदकत्व इह शिखरिणि नितम्बे कृताशनो न शिखरे इत्यादिप्रतीतिबलात् कुत्रचिदव्याप्यवृत्त्यधिकरणदेशविशेषादिदानीं गोष्ठे गौर्नतु गृहे इत्यादिप्रतीतिबलात् कुत्रचित् देशवृत्तिताया काले कुत्रचित् कालवृत्तिताया देशे अप्यस्ति। इति न्यायशास्त्र॥

अवच्छेदावच्छेद, पु, व्यापकत्वं। इति न्यायभाषा॥

अवज्ञा, स्त्री, (अव+ज्ञा+अङ्।) अनादरः। अवहेला। इत्यमर॥ ("आत्मन्यवज्ञा शिथिलीचकार"। इति रघुवंशे।)

अवज्ञातं, त्रि, (अव+ज्ञा+क्त।) अवमानितं। अनादृतं। तिरस्कृत। इत्यमर॥
"अवज्ञाता भविष्यामो लोकस्य जगतीपते"।
इति महाभारते।)

अवज्ञानं, क्ली, (अव+ज्ञा+भावे ल्युट्।) अवज्ञा। यथा अवज्ञान अवज्ञा आतो अन्तश्रद्धेरिति ङ। सम्पादित्वात् क्विबिति मधु। तन्मते गोपावद्रूप। इत्यमरटीकाया भरत॥ (अवमानः। तिरस्कारः। अनादर।
"ईप्सितं तदवज्ञानात् विद्धि सार्गलमात्मनः"।
इति रघुवंशे।)

अवट, पु, (अव+अटन्।) खिलं। गर्त्त। कूप। ("रक्षसा गतसत्त्वानामेष धर्म्म सनातनः।
अवटे ये निधीयन्ते तेषा लोका सनातना"॥
इति रामायणे।) कुहकजीवी। इति विश्वमेदिन्यौ॥

अवटि, पु, (अव+अटि।) गर्त्तः। इति हलायुधः॥

अवटीट, त्रि, (अवनता नासिका, प्रादिसमास, नतार्थे नासाया टीटादेश कर्शआदित्वादच्।) नतनासिक। खाँदा छेपड़ानेको यस्य प्रसिद्धि। तत्पर्य्याय। अवनाटः २ अवभ्रट ३। इत्यमर॥

अवटु, पु, स्त्री, (अव+टीक+मितद्र्वादित्वात् डु।) ग्रीवापश्चाद्भाग। इत्यमर॥ घाड़ इतिख्यातः। कूप। गर्त्त। इति हेमचन्द्र॥ वृक्षभेद। इत्युणादिकोष॥

अवडङ्ग, पु, (अवगतो डङ्ग शब्दो यस्मात्।) हट्ट इति जटाधर। कस्यचिन्मते अवदङ्ग इति पाठः॥

अवडीन, क्ली, (अव+डी+भावे क्त।) पक्षिणामधोगमन। पक्षिणामवरोहणं। इति जटाधरः॥

अवतस, पु, क्ली, (अव+तन्स+घञ्।) कर्णपूर। कर्णभूषण।
("त मातरो देवमनुव्रजन्त्य
स्ववाहनक्षोभचलावतंसा"।

इति कुमारसम्भवे ।) शेखर । शिरोभूषणं । तत्पर्य्यायः । वतंस २ उत्तंसः ३ । इत्यमरः ॥ मुकुट ४ मकुट ५ मौलि ६ मौलिकः ७ शेखरं ८ उष्णीषकः ९ कोटीरक १० कोटीर ११ किरीट १२ चूडामणिः १३ शिरोरत्नं १४ शिरोमणि १५ । कर्णभूषण । तत्पर्य्याय । वतंसः २ कर्णपुर ३ कुण्डल ४ कर्णवेष्टन ५ उत्तंसः ६ दन्तपत्रं ७ कर्णिक ८ । इति शब्दरत्नावली ॥

अवतमस, क्ली, (अवतत व्याप्तं तम, प्रादिसमासः, अच् ।) अल्पान्धकार । इत्यमरः ॥ ("अवतमसभिदायै भास्वताभ्युद्गमेन प्रसभमुडुगणोऽसौ दर्शनीयोऽप्यपास्त" । इति माघ ।)

अवतारः, पु, (अव + तॄ + करणे घञ् ।) अवतरण । पुष्करिण्यादिः । तीर्थं । इति मेदिनी ॥ (सोपानपद्धति । प्रस्तावना । आभास । उपक्रमणिका । यथा । "दूरे गुरुप्रथितवस्तुकथावतार" । इति शान्तिशतके ।) देवाना विशेषतोविष्णोर्मूर्त्त्यन्तरेण पूर्णांशावेशरूपेण पृथिव्यामवतरण । अवतारास्तु असंख्येया तेष्वेते प्रसिद्धाः ब्रह्मा १ वराह २ नारदः ३ नरनारायणौ ४ कपिल ५ दत्तात्रेय ६ यज्ञ ७ ऋषभदेव ८ पृथु ९ मत्स्य १० कूर्म्म ११ धन्वन्तरि १२ मोहिनी १३ नृसिंह १४ वामन १५ परशुराम १६ वेदव्यास १७ रामः १८ बलरामः १९ कृष्ण २० बुद्ध २१ कल्की २२ । इति श्रीभागवते ॥ यथा,—

"सएव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमाश्रित ।
चचार दुश्चर ब्रह्मा ब्रह्मचर्य्यमखण्डित ॥
द्वितीयन्तु भवायास्य रसातलगता महीं ।
उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेश शौकर वपु ॥
तृतीयमृषिसर्गं वै देवर्षित्वमुपेत्य स ।
तन्त्र सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्म्यं कर्म्मणा यत ॥
तुर्य्ये धर्म्मकला सर्गे नरनारायणावृषी ।
भूत्वात्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चर तपः ॥
पञ्चम कपिलोनाम सिद्धेश कालविप्लुत ।
प्रोवाचासुरये साङ्ख्य तत्त्वग्रामविनिर्णयं ॥
षष्ठमत्रेरपत्यत्व वृत प्राप्तोऽनसूयया ।
आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥
तत सप्तम आकूत्या रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ।
स यामाद्यै सुरगणैरपात् स्वायम्भुवान्तर ॥
अष्टमे मेरुदेव्यान्तु नाभेर्जात उरुक्रम ।
दर्शयन् वर्त्म धीराणा सर्व्वाश्रमनमस्कृत ॥
ऋषिभिर्य्याचितो भेजे नवम पार्थिव वपु ।
दुग्धेमामोषधीर्विप्रास्तेनाय स उशत्तम ॥
रूपं स जगृहे मात्स्य चाक्षुषोदधिसंप्लवे ।
नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वत मनु ॥
सुरासुराणामुदधि मथ्नता मन्दराचल ।
दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभु ॥
धान्वन्तर द्वादशमं त्रयोदशममेव च ।
अपाययत् सुरानन्यान् मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ॥
चतुर्द्दश नारसिंह बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जित ।
ददार करजैरूरावेरका कटकृद्यथा ॥
पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्वर बलेः ।
पदत्रय याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिपिष्टपं ॥
अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान् ।
त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीं ॥
ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्या पराशरात् ।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधस ॥
नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्य्यचिकीर्षया ।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्य्याण्यत पर ॥
एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भर ॥
तत कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषां ।
बुद्धोनाम्नाञ्जनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥
अथासौ युगसन्ध्याया दस्युप्रायेषु राजसु ।
जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पति ॥
अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजा ।
यथा विदासिन कुल्याः सरस स्यु सहस्रशः ॥
ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः ।
कलाः सर्व्वे हरेरेव सप्रजापतय स्मृताः ॥
एते चांशकलाः पुंस कृष्णस्तु भगवान् स्वयं ।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे" ॥

इति श्रीभागवते १ स्कन्धे ३ अध्यायः ॥ (दशअवतारा एव प्रधानतया प्रसिद्धा । ते च यथा,—

"मत्स्यः कूर्म्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामन ।
रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्की च ते दश" ॥)

(आविर्भाव । जन्म । उत्पत्तिः । यथा,—

"अगच्छदंशेन गुणाभिलाषिणी
नवावतारं कमलादिवोत्पलम्" ।

इति रघुः । अपसारण । हरणं । यथा,—

"भूमेर्भारावताराय ब्रह्मणाप्रार्थितः पुरा ।
स एव जातो भवने कौशल्यायां वधामघ" ॥

इति अध्यात्मरामायणे ।)

अवतारणं, क्ली, (अव + तॄ + णिच् + ल्युट् ।) भूतादिग्रह । वस्त्राञ्चल । अर्च्चन । इति विश्वमेदिन्यौ ॥ (ग्रन्थप्रस्तावना । ऊर्द्ध्वदेश आनयन । यथा,— "क्रियतां यदि शक्नोषि गङ्गाया अवतारणं" । इति रामायणे ।)

अवतीर्णः, त्रि, (अव + तॄ + कर्त्तरि क्तः ।) अवतरणविशिष्ट । प्रादुर्भूत । जलादौ कृतावरोह । यथा । ज्योतिषे ।

"नीलग्रीव शुभग्रीव सर्व्वकामफलप्रद ।
पृथिव्यामवतीर्णोऽसि खञ्जरीट नमोऽस्तु ते" ।

इति तिथ्यादितत्त्व ॥

अवतोका, स्त्री, (अवपतित तोकमस्या सा ।) पतनद्गर्भा गौ । तत्पर्य्याय । स्रवद्गर्भा २ । इत्यमर ॥ गावडागाइ । गावपेला गाइ । इति भाषा ॥

अवदंश, पुं, (अव + दन्श + घञ् ।) सुरापानरुचिजनकचर्व्वणद्रव्य । गजक इति भाषा । तत्पर्य्यायः । भक्षण २ । इत्यमर । विदशः ३ सन्धानं ४ मेलकः ५ । इति राजनिर्घण्टः ॥

अवदातः, पुं, (अव + दै + क्तः ।) श्वेतवर्णं । पीतवर्णं । इत्यमरः ॥

अवदातं, त्रि, (अव + दै + क्तः ।) शुक्लगुणविशिष्टं । ("कुन्दैः सविभ्रममधूकसितावदातैः" । इति श ... संहारे । पीतवर्णयुक्त । निर्म्मल ।

"तत्त्व क्रमेण विदुषां कवलावदाते
श्रद्धावता हृदि पदं स्वयमादधाति" ।

इति शान्तिशतके ।) मनोज्ञं । इत्यमरहेमचन्द्रौ ...

अवदान, क्ली, (अव + दो + ल्युट् ।) वृत्तं क... प्रशस्तमपच निर्व्यूढ कर्म्म । ये कर्म्म प्रश... सकले प्रशंसा करे सेइ समाप्तकर्म्म इति भा... तत्पर्य्यायः । अपदान २ । इत्यमर तट्टीका ... खण्डन । इति मेदिनी ॥

("विश्वावसुप्रायहरैः प्रवीणैः
सङ्गीयमानत्रिपुरावदानः" ।

इति कुमारसम्भवे ।) वीरणमूलमिति साम... (पराक्रम । वीर्य्य । यथा,—

"नैर्ऋतघ्नमथ मन्त्रवन्मुने
प्रापदस्त्रमवदानतोषितात्" ।

इति रघुवंशे ।)

अवदारण, क्ली, (अवदीर्य्यतेऽनेन, अव + दॄ + णि... करणे ल्युट् ।) खनित्र । खन्ता इति भा... इत्यमर ॥ (विदारणं । भेदनं । खनन । यथा, "अवदारणकाले तु पृथिवी नावदीर्य्यते" । इति रामायणे । अव + दृ + भावे ल्युट् ।)

अवदाहं, क्ली, ( अवशमितो दाहो येन तत् ।) वी... णमूल । इत्यमरः ॥ ( उशीरशब्देऽस्य विवृ... तिर्ज्ञेय ।)

अवदाहेष्ट, क्ली, ( अवदाहे इष्टम् अनुकूलम् । ) वीरणमूलं । इत्यमरटीकायां भरतादयः ॥

अवदाहेष्टकापथं, क्ली, उशीर । खस् इति भाषा । इति भरतः ॥

अवदीर्णं, त्रि, (अव + दॄ + क्त ।) द्रवीभूतघृतादि... तत्पर्य्याय । द्रुतं २ । इत्यमर ॥

अवदोहः, पुं, ( अव + दुह + घञ् ।) दुग्ध । इ... त्रिकाण्डशेष ॥

अवद्य, त्रि, (न वदति परं गुणं, अवद्यपण्यवर्य्या... रेफा कुत्सिते इति वदेर्नञि कर्त्तरि यत् ।) कारं... कुत्सित । गर्हित । निकृष्टं । इत्यमरः ॥

अवद्य, क्ली, अनिष्टं । इति वोपदेवः ॥ पाप । इति पाणिनिः ॥ ("उद्ववहरलवर्णां तामवद्यारपेत" इति रघुवंशे ।)

अवधान, क्ली, (अव + धा + ल्युट् ।) मनोयोगः । तत्पर्य्याय । समाधानं २ प्रणिधान ३ समाधि ४ । इति हेमचन्द्रः ॥

अवधारणं, क्ली, (अव + धृ + णिच् + ल्युट् ।) निश्चयः । यथा । "हि हेतावधारणे" । इत्यमरः ॥

अवधारितः, त्रि, (अव + धृ + णिच् + क्त ।) कृता... वधारणः । यथा ।

"त्वया सुमुखि किं प्रोक्तं न मया अवधारित ।
विवेचय महाभागे सन्देहो वर्त्तते मम" ।

इति ब्रह्मवैवर्त्ते श्रीकृष्णजन्मखण्डे १० अध्यायः ।

अवधार्य्यः, त्रि, (अव + धृ + ण्यत् ।) अवधारणीयः ... अवपूर्व्वकधृधातोर्ण्यत् प्रत्ययेन निष्पन्न । नि... श्चेयं ॥

अवधिः, पुं, (अव + धा + कि ।) अवधानं। सीमा। कालः। ("अथ चेदवधिः प्रतीक्ष्यते" इति भारविः ।) विलं। इति विश्वमेदिन्यौ ॥

अवधीर, त्, क, अवज्ञाया। (अदन्त + चुरा०-उभय० सक०-सेट् ।) अवधीरयति। आवधीरयत् साधुमसाधुः। इति दुर्गादासः ॥

अवधूत, पुं, (अव + धू + क्तः ।) सन्न्यासाश्रमी। तद्विधानं सन्न्यासिशब्दे द्रष्टव्यं। तद्भेदा यथा। देव्युवाच।
"द्विविधावाश्रमौ प्रोक्तौ गार्हस्थ्यो भैक्षुकस्तथा।
किमिदं श्रूयते चित्रमवधूताश्चतुर्विधाः ॥
एतद्वेदितुमिच्छामि तत्त्वतः कथय प्रभो।
चतुर्विधावधूतानां लक्षणानि विशेषतः ॥
सदाशिव उवाच।
ब्रह्ममन्त्रोपासका ये ब्राह्मणक्षत्रियादयः।
गृहाश्रमे वसन्तोऽपि ज्ञेयास्ते यतयः प्रिये ॥
पूर्णाभिषेकविधिना संस्कृता ये च मानवाः।
शैवावधूतास्ते ज्ञेयाः पूजनीयाः कुलार्च्चिते ॥
ब्रह्मावधूतः शैवाश्च स्वाश्रमाचारवर्त्तिनः।
विदध्युः सर्व्वकर्म्माणि शम्भवीरितवर्त्मना ॥
विना ब्रह्मार्पितञ्चैते तथा चक्रार्पितं विना।
निषिद्धमन्नं तोयञ्च न स्पृशेयुः कदाचन ॥
ब्रह्मावधूतकौलानां कौलानामभिषेकिणां।
प्रागेव कथितो धर्म्म आचारश्च वरानने ॥
स्नानं सन्ध्यासनं पानं दानञ्च दाररक्षणं।
सर्व्वमागममार्गेण शैवब्रह्मावधूतयोः" ॥
इति महानिर्व्वाणतन्त्रे १४ उल्लासः ॥*॥ अन्यच्च।
शङ्कर उवाच।
"शृणु देवि प्रवक्ष्यामि अवधूतो यथा भवेत्।
वीरस्य मूर्त्तिं जानीयात् सदा तत्त्वपरायणः ॥
यद्रूपं कथितं सर्व्वं सन्न्यासधारणं परं।
तद्रूपं सर्व्वकर्म्माणि प्रकुर्य्याद्वीरवल्लभ ॥
दण्डिनो मुण्डनं चामावास्यायामाचरेद्यथा।
तथा नैव प्रकुर्य्यात्तु वीरस्य मुण्डनं प्रिये ॥
असंस्कृतं केशजालमुक्ताजालम्बिकचोच्चयं।
अस्थिमाला विभूषा वा रुद्राक्षानपि धारयेत् ॥
दिगम्बरो वा वीरेन्द्रश्चाथ वा कौपिनी भवेत्।
रक्तचन्दनसिक्ताङ्गं कुर्य्याद्भस्माङ्गभूषया" ॥
इति निर्व्वाणतन्त्रे १४ पटलः ॥*॥ अपि च।
"स्फकरोटि विधार्य्यैव काष्ठदण्डं तथा प्रिये।
परस्य चाजिनञ्चैव योगीव धारयेत् सदा ॥
खट्टाङ्गं धारयेद्योगी वासरूपकवाससी।
कपाले धारयेच्चक्रं चन्दनाद्यैर्व्विशेषतः ॥
एवं पिङ्गलकं वस्त्रं धारयेत् सर्व्वदा सुत" ।
सुत इति शिवस्य सम्बोधनं।
सुदर्शनाख्यं यच्चक्रं तत्तु सधारःद्बुधः ॥
विषर्षी कपिलश्चैव मड्डुडिण्डिमझर्झरान्।
वादयन् डमरुं योगी यत्र कुत्राश्रमे स्थितः" ॥
इति योगसारे २ परिच्छेदः ॥*॥ अपरञ्च।
"क्षमा दानं तपो ध्यानं बालभावेन शैलजे।
शिवोऽहं भैरवानन्दो मुक्तोऽहं कुलनायकः ॥
एवं भावपरो मन्त्री हेतुयुक्तः सदाशिवः।
संविदासेवनं कुर्य्यात् सदा कारणसेवनं ॥
भवेत् साक्षात् स पुरुषः शम्भुरूपो न संशयः" ।
इति निर्व्वाणतन्त्रं ॥*॥ किञ्च।
"ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः सामान्य एव च।
कुलावधूतसंस्कारे पञ्चानामधिकारिता" ॥
इति महानिर्व्वाणतन्त्रं ॥*॥ अन्यच्च।
"निर्व्वाणमुक्तिमाप्नोति ब्राह्मणो वीरभावतः।
अवधूतः क्षत्रियश्च महायोगी न संशयः ॥
स्वरूपोऽपि भवेद्वैश्यः शूद्रोऽपि सत्यलोकवान्।
सम्पूर्णफलमाप्नोति विप्रो निर्व्वाणतां व्रजेत् ॥
त्रिभागं फलमाप्नोति क्षत्रियो वीरभावतः।
पादद्वयन्तु वैश्यस्य शूद्रस्य चैकपादकः" ॥*॥
दशनामावधूतानां प्रत्येकं नाम प्रागुक्तमिदानीमपि तेषां प्रधानत्वेनाङ्गीकरणार्थं संज्ञाकथनगर्भं लक्षणविशेषमाह।
"अवधूतस्य चाख्यानं शृणुष्व पर्व्वतात्मजे।
वनारण्ये भारती च गिरिश्च पुरिरेव च ॥
एकस्थाने तु संस्थित्य इष्टध्यानादिकञ्चरेत्।
यो मन्त्रदानं तपसा सवनं परिकीर्त्तितः ॥
लम्बकेशो जटाजूटः सदा वातुलवद्भवेत्।
अन्तर्य्योगी महावीरोऽरण्यसंज्ञश्च शैलजे ॥
नानाशास्त्रेषु यो विज्ञो नानाकर्म्मविशारदः।
सदेष्टदेवीभावेन भावयेद् यो हि चाबला ॥
स एव भारतीवीरो महाज्ञानी जितेन्द्रियः।
सदोर्द्ध्ववाहुर्य्यो वीरो मुक्तकेशो दिगम्बरः ॥
सर्व्वत्र समभावेन भावयेत् यो नरोत्तम ॥
इष्टदेवीं विना नास्ति स गिरिः परिकीर्त्तितः ॥
नानादेशेषु पीठेषु क्षेत्रेषु तीर्थभूमिषु।
भ्रमणं कुरुते नित्यं कुर्य्याद्यत्नेन पूजनं ॥
देवताया सदा ध्यानं श्रीगुरोः पूजनं तथा।
अन्तर्य्योगेषु यो निष्ठः स वीरः पुरिरेव च ॥
अवधूताश्रमे देवि। यस्य भक्तिः सुनिश्चला।
तस्य तुष्टा भवेत् काली किं न सिद्ध्यति भूतले ॥
अवधूतं समालोक्य शम्भुवत् पूजनं चरेत्।
शक्तितः पञ्चतत्त्वानि यत्नेनैव निवेदयेत्।
अशक्तः परमेशानि भक्तितः परितोषयेत्" ॥
इति निर्व्वाणतन्त्रं ॥*॥ अपि च।
"भक्तावधूतो द्विविधः पूर्णापूर्णविभेदतः।
पूर्णः परमहंसाख्यः परिव्राडपरः स्मृतः ॥
कृतावधूतसंस्कारो यदि स्याज्ज्ञानदुर्व्वलः।
तदा लोकालये तिष्ठन्नात्मानं स तु शोधयेत् ॥
रक्षन् स्वजातिचिह्नञ्च कुर्व्वन् कर्म्माणि कौलवत्।
सदा ब्रह्मपरो भूत्वा साधयेज्ज्ञानमुत्तमं" ॥
इति महानिर्व्वाणतन्त्रं ॥*॥ अपि च।
"अवधूतः शिवः साक्षादवधूतः सदाशिवः।
अवधूती शिवादेवी अवधूताश्रमं शृणु ॥
चतुराश्रमिणां मध्ये अवधूताश्रमो महान्।
अवधूतश्च द्विविधो गृहस्थश्च चिलानुगः ॥
सचेलश्चापि दिग्वासा विधियोनिविहारवान्।
सदारः सर्व्वदारश्च साट्टहासो दिगम्बरः ॥
गृहावधूतो देवेशि द्विवयस्तु सदाशिवः" ।
इति मुण्डमालातन्त्रे २ पटलः ॥*॥ अवधूतस्य ओम् तत् सदिति मन्त्रेण कर्म्मकर्त्तव्यतामाह।
"ॐ तत्सन्मन्त्रमुच्चार्य्य सोऽहमस्मीति चिन्तयन्।
कुर्य्यादात्मोचितं कर्म्म सदा वैराग्यमाश्रितः ॥
कुर्व्वन् कर्म्माण्यनासक्तो नलिनीदलनीरवत्।
यतेतात्मानमुद्धर्त्तुं तत्त्वज्ञानविवेकतः" ॥*॥
सर्व्वेषामोम् तत्सदिति निर्द्देशेन कर्म्मफलमाह।
"ॐ तत्सदिति मन्त्रेण यो यत्कर्म्म समाचरेत्।
गृहस्थो वाप्युदासीनस्तस्याभीष्टाय तद्भवेत्" ॥*॥
तन्मन्त्रक्रियमाणकर्म्मणः सम्पूर्णत्वमपि।
"जपहोमप्रतिष्ठा च संस्कारात्खिलाः क्रियाः।
ॐ तत्सदिति निष्पन्नाः संपूर्णाः स्युर्न संशयः ॥
किमन्यैर्व्वहुभिर्म्मन्त्रैः किमन्यैर्भूरिसाधनैः।
ब्राह्मेणानेन मन्त्रेण सर्व्वकर्म्माणि साधयेत् ॥
सुखसाध्यमवाञ्छ्यं संपूर्णफलदायकं।
नास्त्येतस्मान्महामन्त्रादुपायान्तरमम्बिके ॥
पुरप्रदेशे देहे वा लिखित्वा धारयेदिमं।
गेहे तस्य महातीर्थं देहः पुण्यमयो भवेत् ॥
निगमागमतन्त्राणां सारात् सारतरो मनुः।
ॐ तत्सदिति देवेशि तवाग्रे सत्यमीरितं ॥
चतुर्व्विधानां तत्त्वानामन्येषामपि वस्तुना ॥
मन्त्रान्ते शोधनेनाशं स्याद्वेदेतेन शोधितं ॥
पश्यन् सर्व्वत्र सद्रूपं जपंस्तत् सन्महामनुं।
स्वेच्छाचारः शुद्धचित्तः स एव भुवि कौलराट् ॥
जपादस्य भवेत् सिद्धो मुक्तः स्यादर्थचिन्तनात्।
साक्षाद्ब्रह्ममयो देही सार्थमेनं जपेन्मनुं ॥
त्रिपदोऽयं महामन्त्रः सर्व्वकारणकारणं।
साधनादस्य मन्त्रस्य भवेन्मृत्युञ्जयः स्वयं ॥
युग्मयुग्मपदं वापि प्रत्येकं पदमेव वा।
जप्त्वैतस्य महेशानि साधकः सिद्धिभाग्भवेत्" ।
इति मन्त्रप्रशंसा ॥*॥ शैवावधूतस्य सर्व्वकर्म्मानधिकारमाह।
"शैवावधूतसंस्कारविधूताखिलकर्म्मणः।
नापि दैवे नवा पित्र्ये नार्षे ह्यत्येऽधिकारिता" ॥*॥
अथ परमहंसः।
"चतुर्णामवधूतानां तुरीयो हंस उच्यते।
त्रयोऽन्ये योगभोगाढ्या मुक्ताः सर्व्वे शिवोपमाः ॥
हंसो न कुर्य्यात् स्त्रीसङ्गं न विधत्ते परिग्रहं।
प्रारब्धमश्नन् विहरेत् निषेधविधिवर्जितः ॥
त्यजेत् स्वजातिचिह्नानि कर्म्माणि गृहमेधिनां।
तुरीयो विचरेत् क्षौणीं निःसङ्कल्पो निरुद्यमः ॥
सदात्मभावसन्तुष्टः शोकमोहविवर्ज्जितः।
निर्निकेतस्तितिक्षुः स्यान्निःसङ्को निरुपद्रवः ॥
नार्पणं भक्ष्यपेयानां न तस्य ध्यानधारणा।
मुक्तो विमुक्तो निर्द्वन्द्वो हंसाचारपरो यतिः ॥
इति ते कथितं देवि। चतुर्णां कुलयोगिनां।
लक्षणं सविशेषेण साधूनां मत्स्वरूपिणां ॥
एतेषां दर्शनात् स्पर्शादालापात् परितोषणात्।
सर्व्वतीर्थफलावाप्तिर्जायते मनुजन्मनां" ॥
इति महानिर्व्वाणतन्त्रं ॥

अवध्य, त्रि, (वधमर्हति, यत्, ततो नञ्समासः ।) मारणानर्हं। वधायोग्यं। अनर्थकवाक्यं। इति विश्वमेदिन्यौ। यथा,—

"अवध्याश्च स्त्रियं प्राहुस्तिर्य्यग्योनिगतास्वपि ।"
शत्रुस्त्रीणामवध्यत्वमाह मत्स्यपुराणं ।
"किं त्वया न श्रुतं लोके अवध्या शत्रुयोषित" ।
इति प्रायश्चित्ततत्त्वं ॥*॥ आत्मन अवध्यत्व यथा,—
"देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्व्वस्य भारत ।
तस्मात् सर्व्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि" ॥
इति श्रीभगवद्गीताया २ अध्याय ॥*॥ तद्वधे पापं यथा,—
"यावानवध्यस्य वधे तावान् वध्यस्य मोक्षणे ।
अधर्म्मो नृपतेर्दृष्टो धर्म्मस्तु विनियच्छतः" ॥
इति मानवे ९ अध्याये २४९ श्लोक ॥

अवध्वंस, पु, (अव + ध्वन्स + घञ् ।) परित्यागः । निन्दन । अवचूर्णन । इति मेदिनी ॥

अवध्वस्तः, त्रि, (अव + ध्वन्स + क्त ।) परित्यक्तः । निन्दित । अवचूर्णित । इति मेदिनी ॥

अवनं, क्ली, (अव + ल्युट् ।) प्रीणन । इत्यमर ॥ रक्षणं । इति हेमचन्द्र ॥ गमन । स्पृहा । तर्पणं । शोभनं । श्रवणं । प्राप्ति । आलिङ्गनं । याचनं । प्रवेशन । सत्ता । वृद्धि । यद्दणा । वध । शक्ति । अवगमन । काम । करण । एते अवधात्वर्था ॥

अवनत, त्रि, (अव + नम् + क्त ।) नम्रं । नतभागः । नोया इति भाषा । तत्पर्य्याय' । अवाग्र २ आनत ३ नत ४ । इत्यमर तट्टीका च ॥ (अधोभूत । "लिखन्नास्ते भूमिं बहिरवनत प्राणदयितः" । इति अमरुशतके ।)

अवनद्ध, क्ली, (अव + नह् + क्त ।) आनद्ध । मृदङ्गादिवाद्य । इत्यमरटीकाया स्वामी ॥ (आवद्ध । आच्छादित । यथाह मनुः,—
"चर्म्मावनद्ध दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ।"
लिप्त यथा, "स्तानावनद्धघनशोणितशोणपाणिरुत्तंसयिष्यति कचास्तव देवि भीम ।" इति वेणीसंहारनाटकम् ।)

अवनय', पु, (अव + नी + भावे अच् ।) अवनाय । निपातन । अध पातन । इति भरत ॥

अवनाट, त्रि, (अवनता नासिका, प्र दिसमास, नतार्थे नासिकाया नाटादेशः अर्श आद्यच् ।) नतनासिक । खाँदा छेपडानाकव्यक्ति इति भाषा । तत्पर्य्याय । अवटीट २ अवभ्रट ३ । इत्यमर ॥

अवनाय, पु, (अव + नी + घञ् ।) अवनय । अधोनयनं । इत्यमरः ॥ नीचे फेलान इति भाषा ।

अवनि', स्त्री, (अव + अनि ।) पृथिवी । इत्यमर ॥ ("तामुन्निद्रामवनिशयना सौधवातायनस्थ" । इति मेघदूते ।)

अवनी, स्त्री, (अव + अनि + ङीप् ।) पृथ्वी । इति भरत ॥ आयमाद्या मता । इति गणनिर्घण्ट ॥

अवनीपति', पु, (अवन्या पति, षष्ठीतत्पुरुष । राजा । इति जटाधर ॥ ("स मया सम्पदाभाग प्रीतिमानवनीपतौ" । इति मात्स्यपुराणे ।)

अवनेजनं, क्ली, ( अव + निज् + ल्युट् । ) पिण्डदानार्थमास्तृतकुशोपरि जलसेचनं यथा ब्रह्मपुराणम्,—
"सपुष्पं जलमादाय तेषा पृष्ठे पृथक् पृथक् ।
अप्रदक्षिणं नेनिज्यात् गोत्रनामानुमन्त्रितं ॥
पितुरवनेजन मूलदेशे पितामहप्रपितामहयोस्तु अवनेजन मध्यदेशाग्रदेशयो' । मातामहादीनामप्येवं । इति । पिण्डोपरि जलसेचनं । यथा ब्रह्मपुराणं,—
"ततो दर्भेषु विधिवत् सम्मार्ज्य च करन्तत ।
प्रक्षाल्य च जलेनाथ त्रिराचम्य हरिं स्मरेत् ।
"तेभ्य स्वस्वपात्रेभ्यो जलेनैवावनेजन ।
दत्त्वात्र पितरस्तेति पठेच्चोदङ्मुखस्थित" ॥
इति च श्राद्धतत्त्वं ॥ (प्रक्षालनं ।
"न कुर्य्यात् गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम्" ।
इति मनुः ।)

अवन्ति', पुं, (अव + झिच् ।) अवन्तीदेशः । इति हेमचन्द्र' ॥ नदीविशेष । इत्युणादिकोषः ॥ यथा,
"प्राग्ज्योतिषा' कामरूपा मालवा' स्युरवन्तय" ।
इति हेमचन्द्र ॥ अपि च ।
"अनूपास्तुण्डिकेरास्च वीतिहोत्रा अवन्तयः ।
एते जनपदाः ख्याता विन्ध्यपृष्ठनिवासिन" ॥
इति मत्स्यपुराणे ९५ अध्याय' ॥

अवन्तिका, स्त्री, (अवति अव रक्षणादौ, बाहुलकात् झिच् तत' स्वार्थे कन्, टाप् ।) उज्जयनीनगरी ।
"अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।
पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः" ॥
इति स्कान्दपुराणे ॥

अवन्तिसोम, क्ली, ( अवन्तिषु अभिषुतं सोम, शाकपार्थिवादित्वात् समासः ।) काञ्जिक । इत्यमरसिंह' ॥ काँजि इति भाषा । (काञ्जिकशब्देऽस्य गुणा व्याख्येया' ।)

अवन्ती, स्त्री, मालवदेशस्य नगरी । उजैन इति ख्याता । तत्पर्य्याय । उज्जयिनी २ विशाला ३ पुष्पकरण्डिनी ४ । इति हेमचन्द्र' ॥ यथा,—
"ताम्रपर्णीं समासाद्य शैलार्द्धशिखरोर्द्धतः ।
अवन्तीसञ्ज्ञको देश' कालिका तत्र तिष्ठति" ॥
इति शक्तिसङ्गमतन्त्रे ७ पटल' ॥ अन्यच ।
"उत्पन्नोर्कः कलिङ्गे तु यमुनायाञ्च चन्द्रमा ।
अवन्त्याञ्च कुजो जातो मागधे च हिमांशुज" ॥
इति संस्कारतत्त्वधृतमत्स्यपुराण ॥ अन्यत् पूर्व्वलिखित ॥ ("प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् ।" इति मेघदूते ।)

अवन्ध्य , त्रि, (वन्ध्ये साधुरिति वन्ध्य , वन्ध + यत्, ततो नञ्समास ।) फलवान् । फलकाले फलयुक्तस्य । तत्पर्य्याय । फलेग्रहि २ फलग्रहि ३ । इत्यमर ॥
("कर्त्तुं यच प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्याम्" । इति मेघदूते ।)

अवपात, पु, (अव + पत् + घञ् ।) रन्ध्र । गर्त्त । इति हेमचन्द्र ॥ अधःपतन ॥ (हस्त्यादीनां धरणार्थं तृणकुशादिना प्रच्छन्नो गर्त्त । यथा,—
"अवपातस्तु हस्त्यर्थे गर्त्तश्छन्नस्तृणादिना"
इति यादव ।
"रोधांसि निघ्नन्नवपातमग्न'
करीव वन्य' परुषं ररास" ।
इति रघुवंशे । नाटकादौ भयादिजनित[...]
सम्भ्रमादिवर्णनेन प्रस्तुतस्य परिवर्त्त । य[...]
"अवपातन्तु निष्क्राम-प्रवेश-त्रास-विद्रवै"
इति दशरूपे ।)

अवभृथः, पु, ( अवभ्रियते अनेन, अव + [...] कथन् ।) दीक्षान्तयज्ञ' । प्रधानयागसम[...] परयज्ञ' । यज्ञादेर्न्यूनाधिक-दोष-शान्ति[...] न्तक शेष कर्त्तव्य-होम इति यावत् ॥ इ[...] तट्टीका च ॥ यज्ञावशेषस्नान । इति त्रिकाण्डशेषस्च ॥
("ततस्चकारावभृथं विधिदृष्टेन कर्म्मणा"
इति भारते ।
"भुवं कोष्णेन कुण्डोध्नी मेध्येनावभृथादपि"
इति रघुवंशे ।)

अवभ्रट , त्रि, (अवनतं नासिकायाः, नते न[...] काया सञ्ज्ञायामिति भ्रटच् । अवभ्रटा ना[...] अस्ति अस्य इति अर्श आद्यच् ।) नतना[...] व्यक्ति' । इत्यमर ॥ खाँदा इति भाषा ।

अवमः, त्रि, ( अवति अस्मात् आत्मानम्, अव र[...] णादौ, अवद्येति सूत्रेण अवतेः अमः प्र[...] निपातित । अवो भवो वा, अवोधयो[...] स्येति म ।) अधमः । निन्दित । इत्यमरः ॥
("अनलकानलकानवमां पुरीम्" । इति रघुवंशे)

अवम, क्ली, तिथ्यन्तद्वयस्पृगेकदिनवारः । एक[...] एकतिथिर शेष अपरतिथिर आद्यन्तस्[...] इति यावत् ॥ इति ज्योतिषशास्त्रे प्रसिद्ध[...] यथा "तिथ्यन्तद्वयमेको दिनवार' स्पृशति [...] तद्भवत्यवमदिन । त्रिदिनस्पृक्तिथिस्त्र्यहस्[...] नादस्र" । इति ज्योतिषतत्त्व ॥

अवमत, त्रि, (अव + मन् + क्त ।) अवज्ञात । अ[...] मानित । अनादृतं । इत्यमर ॥
("सुख ह्यवमतः शेते सुखञ्च प्रतिबुध्यते" ।
इति मनु ।)

अवमति', पु, (अवान्तरगता अमात्यादीनां कार्[...] मतिर्यस्य ।) स्वामी । ईश्वरः । पतिः । प्रभुः । नेता । इति जटाधर ॥

अवमर्द', पु, (अव + मृद + घञ् ।) पीडनं । अर्द[...] इत्यमरः ॥ शस्यादिसम्पन्नदेशस्य परचक्रेण पी[...] डन । इति भरतः ॥
("अन्यावमर्द्दस्त्वयि सन्निविष्टो
यथा न गर्वेर्गुरुदारसत्त्वाः" ।
इति रामायणे ।) शत्रुकृतगाढ़प्रहार इति केचित् । पदाक्रमणमिति केचित् ॥

अवमान , पुं, (अव + मन् + भावे घञ् ।) अनादर । अमर्य्यादा । यथा,—
"सम्मानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्व्वदा" ।
इति मानवे २ अध्याये १६२ श्लोक ॥

"मानावमानद्वन्द्वसहिष्णुत्वमनेन विधीयते"। इति कुल्लूकभट्टः ॥

अवमाननं, क्ली, (अव + मन् + णिच् + ल्युट्।) अपमान। यथा। अवमानन अवमानना। मान कि पार्थे अवपूर्व्व ज्ञीषि अश्नीति स्मन। इत्यमरटीकायां भरत ॥

अवमानना, स्त्री, (अव + मन + णिच् + युच्।) अवज्ञा। अनादर। इत्यमरसिंहः ॥ ("अतोऽवमाननाऽस्माक मानिना भवता कृता"। इति विष्णुपुराणे।)

अवमानित, त्रि, (अव + मान + क्त।) कृतापमानः। अवज्ञात। अनादृतः। इत्यमर ॥ ("विप्रलब्धा तु सा ज्ञेया नितान्तमवमानिता"। इति साहित्यदर्पणे।)

अवमान्य, त्रि, (अव + मन + ण्यत्।) अवमाननीय। यथा,—

"या रोगिणी स्यात्तु हिता सम्पन्ना चैव शीलत ॥
सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित्"॥

इति मानवे ९ अध्याये ८२ श्लोक ॥

अवमूर्द्धशय, त्रि, (अवमूर्द्ध + शी + अच्।) अधोमुखशायी। अवनतो मूर्द्धा अस्येत्यवमूर्द्ध। तथाविध शेते इत्यवमूर्द्धशय ॥ ("उत्तानशया देवा अवमूर्द्धशया मनुष्याः" इत्युक्त।)

अवमूर्द्धशायी, [न्] त्रि, (अवमूर्द्ध + शी + णिनि।) अधोमुखशायी। अवमूर्द्ध यथा स्यात् तथा शयितु शीलमस्य इत्यर्थे णिन् प्रत्ययेन निष्पन्न ॥

अवयवः, पु, (अवयौति इति यु मिश्रणे + पचाद्यच्।) अङ्ग। इत्यमर ॥ ("स्त्रैरेवावयवैः प्रियस्य विशतस्तन्व्या कृतं मङ्गल"। इति अमरुशतके। उपकरणं। अंश। एकदेश।

"तेषामवयवान् सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसा"।

इति मनुसंहितायां। न्यायमते आरम्भकद्रव्यम्, तत् उपादानकारणतया च व्यवह्रियते यदुक्तं,—

"अनित्या तु तदन्या स्यात् सैवावयवयोगिनी"।

इति भाषापरिच्छेदे। प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमान्यनुमानावयवाश्च।)

अवर, त्रि, (न व्रियते इति वृञ्वरणे + ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च इति अप्।) चरम। इति मेदिनी। कनिष्ठ। अश्रेष्ठ। यथा,—

"श्रीनेशेन विना शम्भु एषविश्वेन तत्पुन।
न नाना शम्भुना रामादर्शेणाधोऽवरोऽवर"॥

इति मुग्धबोधव्याकरणे वोपदेव ॥ निकृष्ट। यथा,—

"दूरेण ह्यवरं कर्म्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः"॥

इति श्रीभगवद्गीताया २ अध्याये ४९ श्लोकः ॥

अवरं, क्ली, (वृ + अप् ततो नञ्समास।) गजान्त्यजङ्घादिदेश। इत्यमरमेदिन्यौ ॥

अवरजः, पु, (अवर + जन् + ड।) कनिष्ठभ्राता। इत्यमरसिंह ॥ ("अस्य चावरज विद्धि भ्रातरं मा तु लक्ष्मणम्"। इति रामायणे। हीनवर्णजातः।

"द्वौ शूरावरजौ वीरविक्रमाख्यौ निजाख्यया"। इति राजतरङ्गिण्यां ॥ शूद्र।

"यदि स्त्री यद्यवरज श्रेयः किञ्चित् समाचरेत्।
तत्सर्व्वमाचरेत् युक्तो यत्र वास्य रमेन्मन"॥

इति मानवे।)

अवरतः, [स्] व्य, (अवर + तसिल्।) अवरस्तात्। चरमे। इति सिद्धान्तकौमुदी ॥

अवरति, स्त्री, (अव + रम् + क्तिन्।) विराम। निवृत्तिः। इत्यमरः ॥

अवरवर्ण, पु, स्त्री, (अवरश्चासौ वर्णश्चेति, कर्म्मधारय।) शूद्र। इत्यमर ॥

अवरवर्णक, पु, स्त्री, (अवरवर्ण + कन् स्वार्थे।) चतुर्थवर्ण। शूद्र। इति रत्नावली ॥

अवरव्रतः, पुं, (नास्ति वरं यस्मात् तत् अवरं अत्यन्तश्रेष्ठ व्रतं यस्य।) सूर्य्य। इति त्रिकाण्डशेष ॥

अवरस्तात्, व्य, (अवर + प्रथमाद्यर्थे दिक्शब्देभ्य इति अस्ताति।) अवरत। पश्चात्। इति सिद्धान्तकौमुदी ॥

अवरा, स्त्री, (नास्ति वरा श्रेष्ठा यस्याः। अवर + टाप्।) दुर्गा। इति विश्व ॥

अवरार्द्ध्य, त्रि, (अवरार्द्धे भव इति अवरार्द्ध यत्।) अवरार्द्धभव। शेषार्द्धजातः। इति केचित् ॥

अवरीण, त्रि, (अवरीयते स्म इति अव + रीङ् स्रवणे क्त।) धिक्कृत। तिरस्कृत। निन्दित। इत्यमर ॥

अवरोध, पु, (अव + रुध् + भावे घञ्।) तिरोधान। (आधारे घञ्।) राजस्त्रीगृह। राजगृह। इति विश्वहेमचन्द्रौ ॥ ("आपानभूमिगमनमवरोधस्य दर्शनम्"। इति रामायणे।) राजदाराः। इति मेदिनी ॥

("यस्यावरोधस्तनचन्दनाना
प्रक्षालनाद्वारिविहारकाले।
कलिन्दकन्या मथुराङ्गतापि
गङ्गोर्म्मिसंसक्तजलेव भाति"॥

इति रघुवंशे। निरोध। बाधा। अन्तरायः। आच्छादन। केदारादिवेष्टनं।)

अवरोधक, त्रि, (अव + रुध + ण्वुल्।) अवरोधकारक। अवरोधकर्त्ता। अवपूर्व्वकरुधधातो णकप्रत्ययेन निष्पन्न ॥ ("सुधन्वा वीर्य्यवान् राजा मिथिलामवरोधक"। इति रामायणे।)

अवरोधनं, क्ली, (अवरुध्यते अत्र रुध आवरणे कर्म्मणि ल्युट्।) राजान्तःपुरं। इत्यमरसिंह ॥ (अव + रुध् + ल्युट् भावे।) रोधकरणं। यथा,—

"कृष्ण त्वदीय-पद-पङ्कज-पञ्जरान्ते
अद्यैव मे विशतु मानस-राजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते"॥

इति पाण्डवगीता ॥

अवरोधिक, पुं, (अवरोध + तत्र नियुक्त इति ठक्। संज्ञापूर्व्वकत्वात् वृद्ध्यभावः। अवरोधः निवासत्वेन अस्ति अस्य वा ठन्।) राजान्तःपुररक्षक। इति हेमचन्द्र ॥

अवरोह, पु, (अव + रुह् + भावे घञ्।) अवतरण। आरोहण। (कर्त्तरि संज्ञायां घञ्।) लतोद्गम। इति मेदिनी ॥ वृक्षमूलादग्रपर्य्यन्तं गता लता। शाखाशिफा। इत्यमर। बोधा नामना इति भाषा ॥ ("सुदूरमथ गत्वा तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ। अवरोहशताकीर्णं वटमासाद्य तस्थतुः"॥ इति रामायणे।) स्वर्ग। इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अवरोहशाखी, [न्] पु, (अवरोहति अधोगच्छति मूलमस्या तादृशी या शाखा सा विद्यते अस्य मत्वर्थीय इनि।) न्यग्रोध। इति राजनिर्घण्ट ॥ (न्यग्रोधशब्देऽस्य गुणाज्ञेया ॥)

अवरोहिका, स्त्री, (अवरोहति अधोगच्छति अव + रुह + ण्वुल् + टाप् अत इत्वं।) अश्वगन्धालता। इति राजनिर्घण्टः ॥

अवरोही, [न्] पु, (अव + रुह + णिनि।) वटवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः ॥ (वटशब्देऽस्य गुणादयो ज्ञातव्या।)

अवर्ण, पु, (वर्ण्यते प्रशस्यते अनेन इति वर्णः ततो विरोधे नञ्समासः।) निन्दा। परीवादः। इत्यमरसिंह ॥

("सोढुं न तत्पूर्व्वमवर्णमीशे
आलानिक स्थाणुमिव द्विपेन्द्र"।

इति रघुवंशे।)

अवलग्न, पु, क्ली, (अवलग्यते इति अव + लग + क्त। इडभावः। लस्ज + क्त, वा।) मध्यदेश। इत्यमरः ॥ माजा इति भाषा। ("विपुलतरोन्मुखलोचनावलग्नम्"। इति माघ।)

अवलग्न, त्रि, (अव + लग + क्त।) संलग्न। संयुक्त। इति मेदिनी ॥

अवलम्ब, पुं, (अव + लवि + अच्।) अवलम्बनं। अवपूर्व्वलम्बधातोरच्प्रत्ययेन निष्पन्न ॥ (आश्रयः।)

अवलम्बनं, क्ली, (अव + लवि + आधारे ल्युट्।) आश्रयः। यथा,—

"प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ
विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्त्तुरभू-
न्न पतिष्यतः करसहस्रमपि"॥

इति माघे ९ सर्गे ॥

अवलम्बित, त्रि, (अव + लवि + क्त।) अविलम्बितं। शीघ्र। इति जटाधर ॥ अधोलम्बायमानं। कृतावलम्बनं। आश्रितं ॥

अवलक्ष, पु, (अवलक्ष्यते इति अव + लक्ष + घञ्।) वलक्ष। श्वेतवर्ण। (अर्श आदित्वात् अच्।) तद्वति त्रि। इत्यमरटीकायां स्वामी ॥

अवलिप्त, त्रि, (अव + लिप् + क्त।) धनादिगर्व्वितः। यथा,—

"न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुक्कशैः।
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः"॥

इति मानवे ४ अध्याये ७९ श्लोक। अवलिप्ता धनादिगर्व्विता इति कुल्लूकभट्टः ॥

"अवलिप्तासि मैव त्वं देवि शृङ्गि ममाग्रतः"।

इति देवीमाहात्म्यम् ॥

**अवलिप्तता**, स्त्री, (अवलिप्त + तल् भावे ।) अह-ङ्कारः । इति हेमचन्द्रः ॥ ("तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्य्यशक्तिः स्थिरे"। इति नीतिशतके ।)

**अवलीढं**, त्रि, (अव + लिह + क्त कर्म्मणि ।) भक्षित । यथा मनुः,—
"पतत्रिणावलीढञ्च शुना संस्पृष्टमेव च" ।
इत्यादि । "पतत्रिणावलीढ़ काकादिना भक्षितं" ।
इत्याह्निकतत्त्वम् ॥

**अवलीला**, स्त्री, (अवरा लीला ।) हेला । अनायासः ।
यथा,—
"रतिञ्च नूतनं प्राप्य विषतुल्यं पुरातनं ।
कान्तं दृष्ट्वा हिनस्त्येव सोपायेनावलीलया" ॥
इति ब्रह्मवैवर्त्ते श्रीकृष्णजन्मखण्डे २३ अध्यायः ।
अपिच ।
"शूलञ्च भ्रमणं कृत्वा पपात दानवोपरि ।
चकार भस्मसात्तञ्च सरथञ्चावलीलया" ॥
इति च तत्रैव प्रकृतिखण्डे १८ अध्याय ॥

**अवलुण्ठनं**, क्ली, (अव + लुठि + भावे ल्युट् ।) लुण्ठन । लोटा गड़ागड़ी इतिभाषा । अवपूर्व्वकलुठधा-तोरनट्प्रत्ययेन निष्पन्न ॥

**अवलेपः**, पु, (अव + लिप् + भावे घञ् ।) अहङ्कारः । ("दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्" इति मेघदूते ।) लेपनं । दूषणं । इति मेदिनी ॥ सङ्गः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

**अवलेपन**, क्ली, (अव + लिप् + ल्युट् भावे ।) विले-पन । म्रक्षणं । माखा इति भाषा । अवपूर्व्वक-लिपधातोरनट् प्रत्ययेन निष्पन्न ॥

**अवलेह**, पु, ( अवलिह्यते क्वाथादेः पुनः पाकात् घनीभूततया खाद्यते इति अव + लिह + कर्म्मणि घञ् । ) लेह्यौषध । तस्य लक्षणं पर्य्यायश्च यथा,—
"क्वाथादेर्यत् पुनः पाकात् घनत्वं सा रसक्रिया ।
सोऽवलेहश्चलेहश्च प्राश इत्युच्यते बुधैः" ॥
("जिह्वालेह्यावलेहिका") इति च वैद्यकपरि-भाषा । यथा,—
"कट्फलं पौष्करं शृङ्गी व्योषं यासश्च कारवी ।
श्लक्ष्णचूर्णीकृत चैतन्मधुना सह लेहयेत ॥
एषावलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणं ।
हिक्कां श्वासञ्च कासञ्च कण्ठरोगञ्च नाशयेत् ॥
एतयोन्य कफोद्रेके चूर्णमार्द्रकजे रसे" ।
तन्त्रान्तरे च उक्तः ।
"अष्टाङ्गं मधुना लिह्यादार्द्रकस्य रसेन वा ।
समोहं दारुणं हन्यात्तन्द्राकाससमन्वितम्" इति ॥
"सर्व्वेषु सन्निपातेषु न क्षौद्रमवचारयेत् ।
शीतोपचारि क्षौद्रं स्यात्शीतञ्चात्र विरुध्यते" ॥
अयमभिप्रायः । सन्निपातज्वरेषु श्लेष्मनिग्रहार्थं सर्व्वदा स्वेदो हित उक्तः । तत्राग्निसम्बन्धाद्देह-स्योष्णता तिष्ठेदेव । उष्णेन मधुना विरोधः । उक्तञ्च सुश्रुतेन ।
"उष्णैर्विरुध्यते सर्वं विषान्वयतया मधु ।
उष्णार्त्तमुष्णैरुष्णञ्च तन्निहन्ति यथा विषं" इति ॥

शीतोपचारि क्षौद्रमिति । शीतेनोपचारोऽस्या-स्तीति शीतोपचारि । शीतञ्चात्र सन्निपाते विरुध्यते । अयमवलेहः प्रायेणोर्द्ध्वजत्रुजरोग-हरत्वात् सायमुपयुज्यते । यत उक्तं चरकेण ।
"ऊर्द्ध्वजत्रुगदघ्नी या सा सायमवलेहिका ।
अधोरोगहरी या सा भोजनात्प्राक् प्रयुज्यते" ।
पौष्करं पुष्करमूलं तदलाभे कुष्ठं देयं ॥
शृङ्गी कर्कटशृङ्गी । व्योषं शुण्ठीपिप्पलीमरिचानि च । यासो यवासः । केचित् यासस्थाने यवानीं प्रक्षिपन्ति । कारवी मगरेला इति लोके । अष्टा-ङ्गावलेहिका ॥*॥
"छिन्नमामलकं पिष्ट्वा द्राक्षया सह मेलयेत् ।
विश्वमेयजसयुक्तं मधुना सह लेहयेत् ॥
तेनास्य शाम्यति श्वासः कासो मूर्च्छारुचिस्तथा" ॥
इत्यवलेहः ॥*॥ अन्यत् यथा,—
"पिप्पलीं त्रिफलाञ्चापि सममागां ज्वरी लिहन् ।
मधुना सर्पिषा वापि कासी श्वासी सुखी भवेत् ॥
कट्फलं पौष्करं शृङ्गी कृष्णा च मधुना सह ।
श्वासकासज्वरहरो लेहोऽयं कफनाशन" ॥
चातुर्भद्रिका ॥ ० ॥
"कट्फलं पौष्करं शृङ्गी यवानी कारवी तथा ।
कटुत्रयञ्च सर्व्वाणि सममागानि चूर्णयेत् ॥
आर्द्रकस्य रसैर्लिह्यान्मधुना वा कफज्वरी ।
कासश्वासारुचिच्छर्द्दिश्लेष्मानिलनिवृत्तये" ॥
अष्टाङ्गावलेह । इति भावप्रकाशः ॥
("क्वाथस्य स्यात् पुनः पाकात् घनत्वं सा रसक्रिया ।
सोऽवलेहश्च लेहः स्यात् तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता ॥
सिता चतुर्गुणा कार्य्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुड ।
द्रव चतुर्गुणं दद्यादिति सर्व्वत्र निश्चयः ॥
सुपक्वे तन्तुमत्त्व स्यादवलेहेऽप्सु मज्जनं ।
स्थिरत्वं पीडिते मुद्रा गन्धवर्णरसोद्भवः ॥
दुग्धमिक्षुरसं यूषं पञ्चमूलकषायकं ।
वासाक्वाथं यथायोग्यमनुपानं प्रशस्यते ॥*॥
तदुदाहरणं । यथा,—
"कण्टकारीतुला नीर-द्रोणे पक्त्वा कषायकं ।
पादशेषं गृहीत्वा च तस्मिंश्चूर्णानि दापयेत् ॥
पृथक् पलांशान्येतानि गुडूचीचव्यचित्रकाः ।
मुस्तं कर्कटशृङ्गी च त्र्यूषणं धन्वयासकं ॥
भार्गी रास्ना शठी चैव शर्करा पलविंशतिः ।
प्रत्येकञ्च पलान्यष्टौ प्रदद्याद्घृततैलयोः ॥
पक्त्वा लेहत्वमानीय शीते मधु पलाष्टक ।
चतुष्पलं तु गोक्षीर्य्याः पिप्पलीनां चतुष्पल ॥
क्षिप्त्वा निदध्यात् सुदृढे मृण्मये भाजने शुभे ।
लेहोऽयं हन्ति हिक्कार्त्तिंश्वासकासानशेषतः ॥*॥
कण्टकार्य्यवलेहः ॥*॥ इति च शार्ङ्गधरः ॥)

**अवलेहन**, क्ली, (अव + लिह् + भावे ल्युट् ।) लेहन । जिह्वाद्वारा खादन । चाटन् इति भाषा । अव-लेह । अवपूर्व्वलिहधातोर्भावेऽनट्प्रत्ययेन निष्पन्न ॥

**अवलोकन**, क्ली, (अव + लुक् + ल्युट् भावे ।) दर्शन । आलोकन । इति हेमचन्द्रः ॥
("जलवेलावलोकनकुतूहली" ।
इति नागानन्दे ।)

**अवलोकितः**, पु, ( अव + लोक + भावे क्त ततो-ऽस्त्यर्थे अच् ।) लोकनाथ । बुद्धः । इति विश्व-मेदिन्यौ ॥

**अवलोकित**, त्रि, (अव + लोक + कर्म्मणि क्त ।) निरीक्षित । दृष्टं । इति विश्वमेदिन्यौ । (भावे क्त ।) प्रेक्षणक्रियायां, क्ली ॥

**अवल्गुज**, पु, (अवल्गोरशोभनाज्जायते इति अव-ल्गु + जन् + ड ।) सोमराजी । इत्यमरः । इत्य-वर्णसोमराजी । हाकुच् यस्य प्रसिद्धि । तस्य गुणाः । वायु कफ-कुष्ठ त्वग्दोष-नाशित्व । इति राजवल्लभः । अस्य विवरणं वाकुची शब्दे द्रष्टव्य ॥
("अवल्गुजाद्बीजकर्षं पीत्वा कोष्णेन वारिणा ।
भोजनं सर्पिषा कार्य्यं सर्व्वकुष्ठप्रणाशनम्" ।
इति वैद्यकचक्रपाणिसङ्ग्रहः ॥)

**अववाद**, पु, (अव + वद् + घञ् ।) आज्ञा । निन्दा । विश्वास । इति मेदिनी ॥

**अवश**, त्रि, (न विद्यते वशमायत्तत्वं यस्य ।) अवशीभूत । विवशः ।
यथा,—
"श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः ।
अतो न रोदितव्यञ्च क्रिया कार्य्या विधानतः" ।
इति शुद्धितत्त्व ॥ (क्लीं, अवश्य । निश्चितम् ।)

**अवशक्थिक**, त्रि, (अवबद्धे शक्थिनी येन ।) वस्त्रादिद्वारा पृष्ठजानुजङ्घादयदृढबन्धनपूर्व्वको पविष्ट । फाँडवान्धिया वसा इति भाषा । यथा । कात्यायन ।
"आसनारूढपादस्तु जानुनोर्ज्जङ्घयोस्तथा ।
कृतावशक्थिको यस्तु प्रौढपादः स उच्यते" ।
आसनारूढपाद आसनारूढपादतलः । जानु-नोर्ज्जङ्घयो कृतावशक्थिको वस्त्रादिना कृतपृष्ठ-जानुजङ्घाबन्ध । इत्याह्निकतत्त्वं ॥

**अवशिष्ट**, त्रि, (अवशिष्यते इति अव + शिष + क्त ।) शेष । उद्वर्त्तः । अवशेषाश्रय । यथा,—
"वल्मीकमूषिकोत्खाता मृदमन्तर्ज्जला तथा ।
शौचावशिष्टा गेहाच्च नादद्यात् लेपसम्भवा" ।
इत्याह्निकतत्त्व ॥

**अवश्य**, अ, (न वश्य ।) निश्चय । तत्पर्य्यायः । नूनं २ । निश्चितं ३ । इत्यमरः ॥
("अवश्य याति तिर्य्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः" । इति मनुः ॥ ) (न + वश + यत् ।) अनायत्ते त्रि ।

**अवश्यय**, स्त्री, (अव + श्यै + ण । पृषोदरादित्वात् ह्रस्वः ।) कुज्झटिका । इति शब्दरत्नावली । (कुज्झटिकाशब्देऽस्य विशेषो ज्ञेय ।)

**अवश्याय**, पुं, ( अवश्यायते शैत्यमापद्यते इति श्यैङ् गतौ + श्याद्व्यधेति णः । ततो आतो युगिति युक् । ) हिम । इत्यमरः ॥
("अवश्यायनिपातेन किञ्चित्प्रक्लिन्नशाद्वला" ।
इति रामायणे ।) गर्व्वः । इति विश्वप्रकाशः ।

**अवष्कयणी**, स्त्री, वष्कयनी । चिरप्रसूता गौः । इत्य-मरटीकायां सारसुन्दरी ॥

**अवष्टब्ध**, त्रि, ( अवष्टभ्यते स्म, ष्टभि स्तम्भे स्तम्भु

रोधने वा क्तः। स्तम्भे अवाच्चेति षः। अवा-
ष्टालम्बन इति सूत्रेण आविदूर्य्ये स्तम्भे षत्व-
विधानादवष्टब्धशब्द आसन्नपर इति अवष्टभ्नीना-
वष्टब्धे इत्यत्र मनोरमायां स्थितं।) अविदूरं।
समीपं। अवलम्बितं। आश्रितं। इत्यमरः॥ बद्धः।
रुद्धः। इति भरतः॥ आक्रान्तः। इति मेदिनी॥

अवष्टम्भः, पुं, (अव+स्तम्भु रोधे इति+घञ्। षत्वञ्च।) स्वर्णं।

("रघोरवष्टम्भमयेन पत्रिणा
हृदि क्षतो गोत्रभिदप्यमर्षणः"।

इति रघुवंशे।) स्तम्भः। प्रारम्भः। इति मेदिनी॥ सौष्ठवं। इति हलायुधः॥ (अवलम्बनं। रोधनम्। निष्पन्दता।)

अवष्वाणः, स्त्री, (अव+स्वन शब्दे+घञ्। षत्वञ्च।) भक्षणं। इति हेमचन्द्रः॥

अवस्, व्य, (अवर+पूर्व्वाधरावराणामित्यसिप्रत्ययः, तत्सन्नियोगेन अवरस्य अवादेशश्च।) व्यतिरेकः। इति केचित्॥

अवसः, पुं, (अव रक्षणादौ अवति इति अत्यविचमीत्यादिना असच् प्रत्ययः।) राजा। सूर्य्यः। इति सिद्धान्तकौमुदी॥

अवस, स्त्री, (अव+असिच् भावे।) रक्षणं। वैदिकशब्दोऽयं॥

अवसक्थिका, स्त्री, (अवबद्धे सक्थिनी यया वस्त्रप्रणाल्या सा, अव+सक्थि+समासे कप्।) खट्वा। तत्पर्य्यायः। पर्य्यस्तिका २ परिकरः ३ पर्य्यङ्कः ४। इति हेमचन्द्रः॥ (पर्य्यङ्कबन्धः। वस्त्रादिद्वारा पृष्ठजानु-जङ्घा बध्वा दृढबन्धनपूर्व्वकोपवेशनं। यथा,—

"आसनारूढपादस्तु जानुनोर्जङ्घयोस्तथा।
कृतावसक्थिको यस्तु प्रौढपादः स उच्यते"॥

इति कात्यायनः।

"शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम्।
नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च"॥

इति मनुः।)

अवसथः, पुं, (अव+सो+कथन्।) छात्रनिलयः। इति हेमचन्द्रः॥ पाठशाला चौपाडी यस्य प्रसिद्धिः। ग्रामः। इति शब्दरत्नावली॥ गृहं। इति हलायुधः॥

अवसथ्यं, पुं, (अवसथ+यत्।) छात्रवेश्म। इति हेमचन्द्रः॥ चौपाडी इति भाषा॥

अवसन्नः, त्रि, (अव+सद+क्त।) अवसादप्राप्तः। विषस्सः। यथा,—

"महिम्नः पारन्ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्व्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः"॥

इति पुष्पदन्तकृतशिवस्तोत्रं। अपि च।

"आचारेणावसन्नोऽपि पुनः प्रार्थयते यदि"।

इति व्यवहारतत्त्वं॥

अवसरः, पुं, (अव+सृ+अच्।) प्रस्तावः। मन्त्रविशेषः। वर्षणं। इति मेदिनी॥ वत्सरः। क्षणः। इति हेमचन्द्रः॥ अवकाशः। यथा। "गोवधे एका चेद्बहुभिरित्युपदेशेन दण्डवत् प्रायश्चित्तानि भवन्तीत्यतिदेशानवसरात्। तदवसरत्वे प्रत्येकं पूर्णप्रायश्चित्तद्विगुणं स्यात्"। इति प्रायश्चित्ततत्त्वं॥ (योग्यकालः। क्रियास्थितियोग्यतासम्पादकरूपः कालिकोऽवकाशः। यथा,—

"कामस्तु बाणावसरं समीक्ष्य"। इति कुमारे। शिष्यजिज्ञासानिवृत्तावव्यवहितत्वरूपः सङ्गतिविशेषः। अनन्तरवक्तव्यत्वम् अवसरः। "उपमानेऽवसरसङ्गतिः"। इति जगदीशः।)

अवसर्गः, पुं, (अव+सृज्+घञ्।) स्वेच्छाचारः। तत्पर्य्यायः। प्रकामं २ स्वाच्छन्द्यं ३ अनुमननं ४। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अवसर्पः, पुं, (अव+सृप्+अच्।) अपसर्पः। चरः। इत्यमरटीकायां भरतः॥

अवसर्पिणी, स्त्री, (अव+सृप+णिनि ङीप्।) जिनानां कालविशेषः। स तु दशकोटिकोटिसागरवर्षेण समाप्यते। इति हेमचन्द्रः॥

अवसव्य, त्रि, अपसव्यं। दक्षिणं। इति रायमुकुटः॥

अवसादः, पुं, (अव+सद्+घञ्।) अवसन्नता। तत्पर्य्यायः। विषादः २ सादः ३ विषस्सता ४। इति हेमचन्द्रः॥ (शेषः। क्षयः। यथा,—

"धैर्य्यावसादेन हृतप्रसादा
वन्यद्विपेनेव निदाघसिन्धुः"।

इति किरातार्ज्जुनीये।)

अवसानं, क्ली, (अव+सो+ल्युट्।) क्रियासमाप्तिः। शेषः। तत्पर्य्यायः। सातिः २। इत्यमरः॥ विरामः ३। इति जटाधरः॥ मृत्युः।

("पुंसोऽवसानं व्रजतोऽपि निष्ठुरे-
रिष्टैर्धनैः पञ्चपदीनमुच्यते"।

इति पञ्चतन्त्रे।) सीमा। इति हेमचन्द्रः॥

अवसायः, पुं, (अव+सो+घञ्।) शेषः। समाप्तिः। निश्चयः। इति मेदिनी॥

अवसितं, त्रि, (अव+सो+क्त।) परिपक्वमर्दितधान्यं। तत्पर्य्यायः। ऋद्धं २। इति भरतमेदिन्यौ॥ ज्ञातं। अवसानगतं। समाप्तं। तत्पर्य्यायः। सितं २। इत्यमरमेदिन्यौ॥ ("यदि नेपथ्यविधानम् अवसितम्"। इति शाकुन्तले।)

अवसेकिमः, पुं, (अवसेकेन+निर्वृत्तः। अवसेक+इमनुच्।) वटकः। इति हेमचन्द्रः॥ बड़ा इति-भाषा॥

अवस्कन्दः, पुं, (अव+स्कन्द+अच्।) विजिगीषूणां निवेशस्थानं। शिविरं। इति हलायुधः॥ अवगाहनं। यथा,—

"लतानुपातं कुसुमान्यगृह्णात्
स नद्यवस्कन्दमुपास्पृशच्च।
कुतूहलाच्चारुशिलोपवेशं
काकुत्स्थ ईषत् स्मयमान आस्त"॥

इति भट्टौ २ सर्गे ११ श्लोकः॥ नद्यामवस्कन्दोऽवगाहो यत्र स्नानक्रियायां। इति तट्टीकायां भरतः॥ (आक्रमणं। यथा,—

"अवस्कन्दभयाद् राजा प्रजागरकृतश्रमम्।
दिवासुप्तं समाहन्यान्निद्राव्याकुलसैनिकम्"॥

इति हितोपदेशः।)

अवस्कन्दनं, क्ली, (अव+स्कन्द+ल्युट्।) अवगाहनं। इति भट्टिः॥ अवतरणं। इति महाभारतं॥ अवपूर्व्वस्कन्दधातोरनट्प्रत्ययेन निष्पन्नं॥

अवस्करः, पुं, (अव कीर्य्यते क्षिप्यते इति। अव+कॄ+अप्+सुट्।) विष्ठा। गुह्यं। इत्यमरमेदिन्यौ॥ संमार्ज्जन्यादिनिक्षिप्तधूल्यादि। इत्यमरटीकायां मथुरानाथः सारसुन्दरी च॥

अवस्तात्, व्य, (अवरस्मिन्, अवरस्मात्, अवरमित्यर्थे अस्ताति।) अवरे। पश्चात्। शेषे। अन्ते। इति पाणिनिः॥ ("अवस्तात्स्वर्गलोकं प्रापयन्ति"। इति शतपथब्राह्मणे।)

अवस्तारः, पुं, (अव+स्तॄ+घञ्।) यवनिकादि। कानात् इत्यादि भाषा॥ अवस्तीर्य्यतेऽनेनेति स्तृञ् आच्छादने घञ्॥

अवस्तु, क्ली, (न वस्तु। नञ्तत्पुरुषः।) असद्वस्तु। (यथा,—

"अवस्तुनिर्ब्बन्धपरे कथं नु ते
करोऽयमामुक्तविवाहकौतुकः"।

इति कुमारे।) वेदान्तमते अज्ञानादिसकलजड़समूहः॥

अवस्था, स्त्री, (अव+स्था+अङ्।) दशा। कालिकविशेषः। इत्यमरः॥

"कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि।
कैशोरमापञ्चदशात् यौवनन्तु ततः परं॥
आषोडशाद्भवेद्बालस्तरुणस्तत उच्यते।
वृद्धः स्यात् सप्ततेरूर्द्ध्वं वर्षीयान् नवतेः परं"॥

इति स्मृतिः॥

अवस्थाचतुष्टयं, क्ली, (अवस्थायाश्चतुष्टयं। तत्पुरुषः।) कालकृतचतुर्व्विधदशा। यथा। "आपञ्चदशवर्षं बाल्यं। आत्रिंशद्वर्षं कौमारं। आपञ्चाशद्वर्षं यौवनं। पञ्चाशत ऊर्द्ध्वं वृद्धत्वं"। इति वैद्यकशास्त्रे॥

अवस्थानं, क्ली, (अव+स्था+ल्युट्।) स्थितिः। वासः। यथा। "परं सन्निकर्षश्च उपर्य्यधोभावापन्नसमसूत्रपातन्यायेनैकाश्रयावच्छेदेन सद्भावस्थानरूपः"। इति तिथ्यादितत्त्वं॥ (अवस्था। प्रतिष्ठा। यथा, "कीदृक् ते व्यसनावस्थानम्"। इति पञ्चतन्त्रे।

"मज्ञा दृढमवस्थानं स कृत्वा कपिकुञ्जरः"।

इति रामायणं॥)

अवस्थित, त्रि, (अव+स्था+क्त।) कृतावस्थानः। अवस्थितिविशिष्टः। स्थितः। यथा।

"यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्त्तराष्ट्राः"।

इति श्रीभगवद्गीतायां २ अध्याये ६ श्लोकः॥

अवस्थितिः, स्त्री, (अव+स्था+क्तिन्।) अवस्थानं। थाका। इति भाषा। अवपूर्व्वकस्थाधातोः क्तिप्रत्ययेन निष्पन्ना॥ (अनुसरणम्। अभ्यासः।)

अवहस्तः, पुं, (अवरं हस्तस्य। एकदेशी तत्पुरुषः।) हस्तपृष्ठं। इति हेमचन्द्रः॥

अवहारः, पुं, (अव+हृ+घञ्।) चौरः। द्यूतयुद्धादिविश्रामः। निमन्त्रणं। उपनेतव्यद्रव्यं।

ग्राहनामजलजन्तु । इति विश्वमेदिन्यौ । धर्म्मान्तर । इति शब्दरत्नावली ॥ (आह्वानम् । स्वधर्म्मपरित्यागपूर्व्वकधर्म्मान्तरग्रहणम् । प्रत्यर्पणम् ।)

अवहारक, पु, (अवहार + स्वार्थे क ।) जलजन्तुविशेष । हाङ्गर इति ख्यात । जलहस्तीति केचित् । तत्पर्य्याय । अवग्राह २ नक्रराज ३ अवहार ४ । इति शब्दरत्नावली ॥ युद्धादिनिवर्त्तके त्रि ।

अवहार्य्य, त्रि, (अव + हृ + ण्यत् ।) समर्पणीय । यथा,—
"आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हत ।
अवहार्य्यौ भवेतां तौ दीर्घकालमवस्थितौ" ॥
इति मानवे ८ अध्याये १४५ श्लोक ॥ (अर्थदण्डयोग्य । यथा,—
"अवहार्य्यो भवेच्चैव सान्वय षट्शत दमम् ।
निरन्वयोऽनपसर प्राप्त स्याच्चौरकिल्बिषम्" ॥
इति मनु ।)

अवहालिका, स्त्री, (अव + हल् + ण्वुल् + टाप् ।) प्राचीर । इति हारावली ॥

अवहित, त्रि, (अव + धा + क्त ।) विख्यात । अवधान गत । इति धरणी ॥ (सावधान । प्रमादरहित । यथा,—
"प्रद्युम्नश्चावहितो भूत्वा यद्वृत्त नन्दने पुरा" ।
इति मार्कण्डेयपुराणम् ॥)

अवहित्था, स्त्री,क्ली, (न वहिस्तिष्ठतीति अवहि + स्था + क + टाप् । पृषोदरादित्वात् साधु ।) आकारगुप्ति । रत्यादिसूचकमुखरागादिराकार । अङ्गवैकृतमिति वोपालित ॥ भयलज्जादिना तस्य गोपन । इत्यमरटीकाया भरत ॥ (तल्लक्षण, यथा साहित्यदर्पणे,—
"भयगौरवलज्जादेर्हर्षाद्याकारगुप्तिरवहित्था ।
व्यापारान्तरसक्त्यन्यथाभाषण-विलोकनादिकरी" ॥ उदाहरणम् । यथा कुमारसम्भवे,—
"एव वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्व्वती" ॥
लज्जावशात् कमलदलगणनाव्याजेन हर्ष जुगोप इत्यर्थ । अनेन अवहित्थाख्य सञ्चारी भाव उक्त, तदुक्त,—
"अवहित्था तु लज्जादेर्हर्षाद्याकारगोपन" ।
इति मल्लिनाथः ।)

अवहेल, क्ली, स्त्री, (अव + हेड् + घञ् डस्य ल, डलयोरेकत्वस्मरणात् ।) अनादर अवज्ञा । इत्यमर ॥

अवहेलन, क्ली, (अव + हेड् + ल्युट् ।) अवहेला अवमानना । इति शब्दरत्नावली ॥

अवहेलित, क्ली, (अव + हेड + क्त ।) अनादर । अवहेला । तद्विशिष्टे त्रि ॥ कृतावहेलनवस्तु । अवहेल जातमस्य इत्यर्थे इतप्रत्ययेन निष्पन्न ॥

अवक्षुत, क्ली, (अव + क्षु + क्त ।) उपरिक्षतक्षुत । यथा मनु,—
"द्विषदन्न नगर्य्यन्न पतितान्नमवक्षुत" ।
इत्याह्निकतत्त्व ॥

अवाक्, [च्] त्रि, (नास्ति वाक् यस्य स ।) वाक्यरहित । इत्यमरः ॥ बोवा इति भाषा । क्विबन्तवच्धातोर्नञ्समासेऽय प्रयोग ॥ दक्षिण । अधोमुख । एतदर्थयो अवपूर्व्वान्चधातोः प्रयोग ॥

अवाक्पुष्पी, स्त्री, (अवाक् अधोमुख पुष्पमस्याः) शतपुष्पा । शलुफा इति ख्याता । मिश्रेया । इत्यमररत्नमाले ॥ मौरी इति भाषा । वृक्षविशेषः । रेठाङ्गली चोरङ्गली चोरखड्की इति भाषा । तत्पर्य्याय । अधःपुष्पी २ मङ्गल्या ३ अमरपुष्पिका ४ । इति रत्नमाला ॥

अवाक्शिरा, [स्] पु, (अवाक् अवनत शिरो यस्य ।) अधोमुख । यथा,—
"अवाक्शिरास्तमस्यन्धे किल्बिषी नरक व्रजेत् ।
य प्रश्न वितथ ब्रूयात् पृष्टः सन् धर्म्मनिश्चये" ॥
इति मानवे ८ अध्याये ९४ श्लोक ॥
("इति ब्रुवति रामे तु लज्जयाऽवाक्शिरास्तदा"
इति रामायणम् ॥)

अवाग्र, त्रि, (अवनतमग्रमस्य ।) नम्र । अवनत । इत्यमर ॥

अवाङ्, [न्च] त्रि, (अव + अन्च + क्विप् ।) नीचवदन । तत्पर्य्याय । अधोमुख २ अवाङ्मुख ३ अवाचीन ४ इत्यमर-जटाधरौ ॥
("साक्षी दृष्टश्रुतादन्यत् विब्रुवन्नार्य्यसंसदि ।
अवाङ् नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते" ॥
इति मनु ।)

अवाङ्मुख, त्रि, (अवाङ्मुखमस्य ।) अधोवदन । यथा,
"तत् श्रुत्वा स बल स्नेह-हर्ष-दुःख-त्रपाकुल ।
अवाङ्मुख प्राप्तकाल तामुवाचाश्रुगद्गद" ॥
इति कथासरित्सागरे अलङ्कारवतीलम्बके ६३ तरङ्ग ॥

अवाची, स्त्री, (अव + अन्च + क्विप् + ङीप् । दक्षिणदिक् । इति वोपदेवादय ॥ अधोदिक् । इति व्याडि ॥ अधोमुखी ॥

अवाचीन, त्रि, (अवाच्या भव । अवाची + ख ।) दक्षिणदिग्भववस्तु । अधोमुख । इति स्वामि-जटाधरौ ॥

अवाच्य, क्ली, (न + वच + ण्यत् ।) दुर्व्वाक्य । तत्पर्य्याय । अनक्षर २ । इत्यमर ॥ वचनानर्ह । अनक्षर गालि प्रभृति इति मधुः । निन्दितान्यक्षराणि अत्र अनक्षर अव्ययानामनेकार्थत्वात् नञ् निन्दायां । एवमवाच्य वक्तुमयोग्य वचस्तौ वाचि हस्वासोरिति घञ् भुजवचेति कनिषेध ॥ इति भरतः ॥
("वाच्यावाच्ये हि कुपितो न विजानाति कर्हिचित्" ।
इति भारते ।
"अवाच्य वदतो जिह्वा कथ न पतिता तव" ।
इति रामायणे ।)

अवाच्य, त्रि, (अवाच् + भवार्थे यत् ।) अनिन्दित । इति स्मृति ॥ अवक्तव्य । वचनानर्ह । यथा,—
"अनक्षरमवाच्यन्तु वचनार्ह न यद्भवेत् ।
एष वन्ध्यासुतो याति खपुष्पकृतशेखर ॥
मृगतृष्णाम्भसि स्नात शशशृङ्गधनुर्द्धर" ।
इति शब्दरत्नावली ॥ (अवरदेशकालादौ भव ।

अवाग्देशः, पु, (अवाचो देश ।) योनिः । इ[...]
त्रिकाण्डशेष ॥

अवादी, [न्] त्रि, (वद + णिन् । न वादी । न[...] तत्पुरुष ।) अविरोधी । अविवादी । अवक्त[...] अवदनशील । वदधातोर्णिन् प्रत्ययानन्तर न[...] समासनिष्पन्न ॥

अवाध, त्रि, (नास्ति वाधा यस्मिन् ।) वाधाशून्य[...] अनर्गल । तत्पर्य्याय । निरर्गल २ । इत्यमर[...]

अवाध्य, त्रि, वाधानर्ह । वाधायोग्य । अवाधनीय[...] अवाधितव्य । न वाध्यः अवाध्य इति न[...] समासनिष्पन्न ॥

अवान, त्रि, (अव + अन् + अच् ।) शुष्कप्रलाशि[...] इति शब्दरत्नावली ॥
("अवानमम्बुकादस्मेकमात्मफल किल" ।
इति भारते ।)

अवान्तर, त्रि, (अवगतमन्तर मध्यम् । प्रादि[...] मास ।) प्रधानान्त पाति । इय फलश्रुतिर्न श्रे[...] परमपुरुषार्थसाधनपरा न भवति । किन्तु व[...] मुखाना मोक्षविवक्षया अवान्तरकर्म्मफलै का[...] रुच्युत्पादनमात्र । यथा भैषज्ये औषधे रुच्युत्पा[...] यथा,—
"पिव निम्ब प्रदास्यामि खलु ते खण्डलड्डुकान्[...]
पित्रैवमुक्तः पिवति तिक्तमप्यतिबालक" ॥
"अत्र तिक्तनिम्बादिपानस्य न खलु खण्डादिका[...] एव प्रयोजन किन्त्वारोग्य तथा वेदोऽप्यवान[...] फलै प्रलोभयन् मोक्षायैव कर्म्माणि विधत्ते[...]
इति मलमासतत्त्व ॥

अवापितधान्य, त्रि, ( अवापित अकृतवपन धान्य[...] अकृतवपनधान्य । रोपितधान्य । रोयाधान इ[...] भाषा । तत् वापितधान्यापेक्षया किञ्चिद्धीनगुण[...] इति राजवल्लभ ॥

अवार, क्ली, ( अव + ऋ + घञ् ।) अर्व्वाक्कूल[...] नद्यादे । पूर्व्वतीर । इत्यमर ॥ एपार इति भाषा[...]

अवारपार, पु, (अवार अर्व्वाक्तीर पार उत्[...] तीरञ्च यस्य ।) समुद्र । इति हेमचन्द्रः ॥

अवारपारीण, त्रि, (अवारपारे गच्छतीति । अ[...] रपार + ख ।) पारग । नद्यादिपारगतव्यक्ति[...] इति पाणिनि ॥

अवारिका, स्त्री, ( नास्ति वारि यत्र ततः स[...] कन् + टाप् ।) धन्याक । धनिया इति भाष[...] अवरिका च पाठ । इति राजनिर्घण्ट ॥

अवारित, त्रि, ( न वारित । नञ्समासः ।) अब[...] वारण । अनिवारित । यथा,—
"अवारितद्वारतया तिरश्चा-
मन्तःपुरे तस्य निविश्य राज्ञ ।
गतेषु रम्येष्वधिक विशेष-
मध्यापयामः परमाणुमध्या" ॥
इति नैषधे ३ सर्गे ४२ श्लोक ॥

अवारीण, त्रि, (अवार गच्छतीत्यर्थे ख ।) प[...] रग । नदीपारगत । इति पाणिनिः ॥

अवार्य्य, त्रि, ( न वार्य्य । नञ्समासः) अनिवार्य्य[...]

अवारणीय । अवारितव्य । वारणायोग्यं । यथा,—
"नमस्ते नित्यविलसद्दैवावस्तनिकेतन ।
अवार्य्यवीर्य्यवन्द्य विष्णोर्यत् प्रणमाम्यहं" ॥
इत्युत्कलखण्डे २७ अध्यायः ॥

अवासा, [स्] त्रि, (नास्ति वासो यस्य ।) वस्त्ररहित । नग्न । इत्यमर ॥

अवास्तवं, त्रि, अयथार्थं । मिथ्या । न वास्तवं अवास्तवमिति नञ्समासनिष्पन्नं ॥

अवाद्य, त्रि, परिरक्षक । अवपूर्ब्बकाद्धाधातोरत् प्रत्ययेन निष्पन्न ॥

अवि, पुं, (अव + इन् ।) सूर्य्य । पर्ब्बत । मेष । इत्यमर ॥ [इति मनु ।)
("श्वशूकरखरोष्ट्राणां गोऽजाविमृगपक्षिणां" ।
"मूत्राणि हस्तिकरभमहिषीखरवाजिना ।
गोऽजावीनां स्त्रिया पुंसां मूत्रवर्ग उदाहृत" ॥
इति वैद्यकरसेन्द्रसारसंग्रहे ॥)
नाथ । मूषिककम्बल । इति मेदिनी ॥ प्राचीर वायु । इति दण्डी ॥

अवि, स्त्री, ऋतुमती । इत्यमर ॥

अविकट, पु, (अवीनां मेषाणाम् सघात । अवि + कटच् ।) मेषसमूह । इति संक्षिप्तसारपरिशिष्टं ॥ भेडारपाल इति भाषा ।

अविकट, त्रि, अविशाल । अकराल । अविस्तार । न विकट अविकट इति नञ्समासनिष्पन्न ॥

अविक, क्ली, (अवि + क ।) हीरकं । इति राजनिर्घण्टः ॥ (हीरकशब्देऽस्य गुणादयो ज्ञातव्या ॥

अविकारी, [न्] त्रि, (न विकारी + नञ्तत्पुरुष ।) विकाराजनक । यथा बृहस्पति ।
"कन्दमूलफले पुष्पे शस्ते शुक्तरसन्तु यत् ।
अविकारि भवेन्मेध्यमभक्ष्य तद्विकारकृत्" ॥
इत्याह्निकाचारतत्त्व ॥

अविगन्धिका, स्त्री, (अवेर्म्मेषस्य गन्ध इव गन्धोऽस्या । तत स्वार्थे कन् ।) अजगन्धावृक्ष । इति राजनिर्घण्टः ॥

अविगीत, त्रि, (न विगीतम् । नञ्तत्पुरुष ।) अनिन्दित । यथा । "नापि मङ्गलं सफलमविगीतशिष्टाचारविषयत्वाद्दर्शवत्" । इति मङ्गलवादचिन्तामणि ॥

अविघ्न, पु, (न विघ्न । नञ्तत्पुरुष ।) करमर्दकवृक्ष । इत्यमर ॥ पानिआमला इति ख्यात । इति सारसुन्दरी ॥

अविचार, पु, (नास्ति विचारो यस्येति ।) अन्याय । अत्याचार । विचाररहिते त्रि । (विचाराभाव ।) यथा,—
"अविचारेण सर्व्वाभिरनुलेपयेन्तु तत् पुन ।
ससारोत्तारणायालमेतद्वेदविदो विदु" ॥
इति मत्स्यपुराण ॥

अविचारित, त्रि, (न विचारित । नञ्तत्पुरुष ।) अकृतविचार । अविवेचित । अविचारशब्दादितच्प्रत्ययेन निष्पन्न ॥ ("अत सर्व्वथाऽविचारित कर्म्म न कर्त्तव्यम्" । इति पञ्चतन्त्रम् । अविवेचित सम्यग्विवेचन विना । यथा,—
"स किंभृत्य स किं मन्त्री य आदावेव भूपतिम् ।
युद्धोद्योग स्वभूत्याग निर्दिशत्यविचारितम्" ॥
इति हितोपदेश ।)

अविच्छिन्नं, क्ली, (न विच्छिन्न, नञ्तत् ।) विच्छेदाभाववत् । अनिष्पत्तिमत् । यथा,—
"अविच्छिन्ने कथम्भावे यत् प्रधानस्य पच्यते ।
अविज्ञातफलं कर्म्म तस्य प्रकरणाङ्गता" ॥
इति मलमासतत्त्वम् ॥

अविज्ञ, त्रि, (न विज्ञ । नञ्तत्पुरुष ।) अप्रवीण । अनिपुण । अनभिज्ञ । अशिक्षित । अकृती । यथा,—
"एते सर्व्वे गुणा कान्त सन्ति कान्ते त्वयि ध्रुव ।
त्वां न वाञ्छन्ति या कान्तास्ता अविज्ञाश्च वञ्चिता" ॥
इति ब्रह्मवैवर्त्ते श्रीकृष्णजन्मखण्डे २३ अध्याय ॥

अविज्ञेय, त्रि, (न विज्ञेयं । नञ्तत्पुरुष ।) दुर्ज्ञेय । यथा,—
"आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्व्वत" ॥
इति मानवे १ अध्याय ॥

अविडीनं, क्ली, (न विडीनम् । नञ्तत्पुरुष ।) पक्षिणा आभिमुख्याभिगमन । इति महाभारत ॥

अवितं, त्रि, (अव + क्त ।) पातं । रक्षितं । इत्यमर ॥

अवितथं, क्ली, (न वितथम् । नञ्तत्पुरुष ।) सत्यं । ("अवितथमाह प्रियवदा" । इति शाकुन्तले ।) तद्विशिष्टे त्रि । इति रत्नावली ॥ (सार्थक । यथा,—"वत्स ! अवितथैषा तव भारती भवतु" । इति नागानन्दे ।)

अवित्यज, पु, क्ली, (न विशेषेण त्यज्यते रसायनादिषु इति । न + वि + त्यज + क ।) पारद । इति राजनिर्घण्टः ॥

अविदूस, क्ली, (अवेर्मेषस्य दुग्धम् । अवे दुग्धे सोढदूसमरीसच, इति दूसप्रत्यय ।) मेषदुग्ध । इति हेमचन्द्र ॥ (मेषदुग्धविवरणेऽस्य विशेषो ज्ञेय ॥)

अविद्धकर्णा, स्त्री, पाठा । पाकनादि इति ख्याता । इति भङ्गराज । इत्यमरटीकायां भरत ॥

अविद्धकर्णी, स्त्री, (न विद्धं पर्णरूपं कर्णो यस्या ।) विद्धकर्णलता । इति भरत ॥ (माचिकाशब्देऽम्बष्ठकीशब्दे चास्या गुणादयो ज्ञातव्या ॥)

अविद्य, त्रि, (नास्ति विद्या यस्य स ।) विद्यारहित । अविद्वान् । विद्याहीन । यथा,—
"अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनु" ।
अपि च । कात्यायन ।
"नाविद्यानान्तु वैद्येन देयं विद्याधनात् क्वचित्" ॥
इति दायतत्त्वं ॥ अन्यच्च ।
"अविद्यानान्तु सर्व्वेषामीहातश्चेद्धन भवेत् ।
समस्तत्र विभाग स्यादपित्र्य इति धारणा" ॥
इति मानवे ९ अध्याये २०५ श्लोकः ॥

अविद्यमान, त्रि, (न विद्यमान । नञ्तत्पुरुष ।) अवर्त्तमान । सत्तारहित । अभाव । यथा नारद,—
"अविद्यमाने पित्रर्थे स्वांशादुद्धृत्य वा पुन ।
अवश्यकार्य्या सस्कारा भ्रातृभि पूर्ब्बसस्कृतै" ॥
इति दायतत्त्वं ॥

अविद्या, स्त्री, (न विद्या । नञ्तत्पुरुष ।) अज्ञान । इत्यमर ॥ माया । इति वेदान्ते ॥ (अहङ्कारहेतुकमज्ञान, मिथ्याज्ञान, विद्याविरोधिनी, अयथार्थबुद्धिः । यदुक्तम्,—
"अविद्याया अविद्यात्वमिदमेव तु लक्षणम् ।
यत्प्रमाणासहिष्णुत्वमन्यथा वस्तु सा भवेत्" ॥
अन्यच्च,
"सेयं भ्रान्तिर्निरालम्बा सर्व्वन्यायविरोधिनी ।
सहते न विचार सा तमो यद्वद्दिवाकरम्" ।
अयमहमहङ्कारपरवत्स्वनात्मस्वात्मबुद्धि । यथा,—"शरीरे मनुष्योऽहमित्यादि" । इयञ्च सर्व्वक्लेशमूलभूता तम इत्युच्यते ।
"अविरोधितया कर्म्म नाऽविद्यां विनिवर्त्तयेत् ।
विद्याविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिरसङ्घवत्" ॥
इति आत्मबोध ।)

अविधि, पु, (न विधि । नञ्तत्पुरुष ।) अविधान । शास्त्राविहितं । यथा,—
"येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विता ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्ब्बक" ॥
इति श्रीभगवद्गीतायां ९ अध्याये २३ श्लोकः ॥
अपि च याज्ञवल्क्य ।
"वसेत् स नरके घोरे दिनानि पशुरोमभि ।
अमितानि दुराचारो यो हन्त्यविधिना पशून्" ॥
इत्याह्निकतत्त्व ॥

अविन, पु, (अव + इनच् ।) यष्टा । यागकर्त्ता । इत्युणादिकोष ॥

अविनय, पु, (न विनय । नञ्तत्पुरुष ।) विनयाभाव । यथा,—
"बहवोऽविनयान्नष्टा राजान सपरिच्छदा ।
वनस्था अपि राज्यानि विनयात् प्रतिपेदिरे ॥
वेणो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिव ।
सुदासो यवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च" ॥
इति मानवे ७ अध्याये ४०।४१ श्लोकौ ॥ (अशिष्टाचार । यथा,—
"अयमाचारत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यकासु" ।
इति शाकुन्तले ।) अविनीते त्रि ॥

अविनाभाव, पु, (विना व्यापक विना न भाव स्थिति ।) व्याप्ति । व्याप्यनिष्ठव्यापकनिरूपितधर्म्म । यथा,—"वह्निमान् धूमात्" इत्यादौ धूमनिष्ठा वह्निनिरूपिता व्याप्ति ॥ इति न्यायमीमांसयोर्मत ॥ तत्पदार्थे तत्पदार्थाभाववद्वृत्तित्वाभाव । यथा । केयमाकाङ्क्षा न तावदविनाभाव । नील सरोजमित्यादौ तदभावात् । विमल जल नद्या कच्छे महिष इत्यत्र जलान्वितनद्या अविनाभावात् कच्छे साकाङ्क्षतापत्तेश्च । इत्याकाङ्क्षाचिन्तामणि । अविनाभाव इति । तत्पदार्थेन विना यो भाव सत्त्व तदभाव इत्यर्थ । तत्पदार्थे तत्पदार्थाभाववद्वृत्तित्वाभावस्तत्पदार्थे तत्पदार्थाकाङ्क्षा इति भाव । इति तट्टीका माथुरी ॥

अविनीत, त्रि, (न विनीतः। नञ्तत्पुरुषः।) विनयरहितव्यक्तिः। तत्पर्य्यायः। समुद्धतः २। इत्यमरः॥ (यथा,—
"न चापि प्रतिकूलेन नाविनीतेन राघव।
राज्यं पालयितुं शक्यं राज्ञा तीक्ष्णेन वा पुनः"॥
इति रामायणे। अनियमितः। यथा,—
"नाविनीतैर्व्रजेद्धुर्य्यैर्न च क्षुद्व्याधिपीडितैः"॥
इति मनुः।)

अविनीता, स्त्री, (न विनीता। नञ्तत्पुरुषः।) पुंश्चली। असती। इति हेमचन्द्रः॥

अविपट, पुं, (अवि+पटच्।) अवीनां विस्तारः इति संक्षिप्तसारव्याकरणपरिशिष्टः। कम्बलादि॥

अविप्रिय, पुं, (अवि+प्री+क।) श्यामाकतृणः। इति राजनिर्घण्टः॥ (यदा न विप्रियः इत्येव स्यात् तदा त्रिः।)

अविप्रिया, स्त्री, (अवीनां मेषादीनां प्रिया।) श्वेतालता। इति राजनिर्घण्टः॥

अविभक्त, त्रि, (न विभक्तः। नञ्तत्पुरुषः।) अपृथक्। यथा तत्त्वचिन्तामणौ।
"विभक्ता अविभक्ता वा कुर्य्युः श्राद्धमदैविकम्।
मघासु च तथान्यत्र नाधिकारः पृथग्विना"॥
इति मलमासतत्त्वम्॥

अविभाज्य, त्रि, (न विभाज्यम्। नञ्तत्पुरुषः।) विभागायोग्यः। अथ विभाज्याविभाज्ये। तत्र व्यासः।
"अनाश्रित्य पितृद्रव्यं स्वशक्त्याप्नोति यद्धनम्।
दायादेभ्यो न तद्दद्यात् विद्यालब्धञ्च यद्भवेत्"॥
विद्याधनमाह कात्यायनः।
"उपन्यस्ते तु यल्लब्धं विद्यया पणपूर्व्वकम्।
विद्याधनन्तु तद्विद्यात् विभागे न नियोजयेत्॥
शिष्यादार्त्विज्यतः प्रश्नात् सन्दिग्धप्रश्ननिर्णयात्।
स्वज्ञानशंसनाद्वादाल्लब्धं प्राध्ययनाच्च यत्॥
विद्याधनन्तु तत्प्राहुर्विभागे न प्रयोजयेत्।
शिल्पेष्वपि हि धर्म्मोऽयं मूल्याद्यच्चाधिकं भवेत्॥
परं निरस्य यल्लब्धं विद्यया द्यूतपूर्व्वकम्।
विद्याधनन्तु तद्विद्यात् न विभाज्यं बृहस्पतिः"॥•॥
यदि भवान् भद्रमुपन्यस्यति तदा भवत एव मयैतद्देयमिति पणिते यत्रोपन्यासे निस्तीर्य्य लभते तन्न विभाज्यं। शिष्यादध्यापितात्। आर्त्विज्यतः यजमानाद्दक्षिणया लब्धधनं न प्रतिग्रहलब्धं वेतनरूपत्वात्तस्य। तथा यत्किञ्चिद्विद्याप्रश्ने निस्तीर्णेऽपणिते यदि कश्चित् परितोषाद्ददाति। तथा योऽस्मिन् शास्त्रार्थे अस्माकं संशयमपनयति तस्मै धनमिदं ददानीत्युपस्थितस्य संशयमपनीय यल्लब्धं। वादिनोर्व्वा सन्देहे न्यायकरणार्थमागतयोः सम्यङ्निरूपणेन यल्लब्धं सभ्यांशादिकं तथा शास्त्रादिप्रकृष्टज्ञानं सम्भाव्य यत् प्रतिग्रहादिना लब्धं। तथा शास्त्रज्ञानविवादे अन्यत्रापि यत्र कुत्रचिदन्योन्यज्ञानविवादे निर्ज्जित्य यल्लब्धं। तथैकस्मिन् देये बहूनामुपस्थिते येन प्रकृष्टत्वात् यल्लब्धं। तथा शिल्पादिविद्यया चित्रकरस्वर्णकारादिभिर्यल्लब्धं। तथा द्यूतेनापि परं निर्ज्जित्य यल्लब्धं। तत्सर्व्वमविभाज्यमिति। तस्माच्च पणादिविद्यया लब्धमर्ज्जकस्यैव सर्व्वदेयमिति। प्रदर्शनार्थन्तु कात्यायनेन निरूपितमिति दायभागः॥•॥ नारदः।
"कुटुम्बं बिभृयाद्भ्रातुर्यो विद्यामधिगच्छतः।
भागं विद्याधनात्तस्मात् स लभेताश्रुतोऽपि सन्"॥
बिभृयादित्येकवचननिर्देशात् भरणं। यदि विद्यामभ्यस्यतो भ्रातुः कुटुम्बमपरो भ्राता स्वयं पितृधनं व्ययीकृत्य बिभर्त्ति तदा तद्विद्यार्ज्जितधने तस्याधिकारः। अश्रुतो मूर्खः। कल्पतरुमिताक्षरादीपकलिकासु। कात्यायनः।
"परभक्तोपयोगेन विद्या प्राप्तान्यतस्तु या।
तया लब्धं धनं यत्तु विद्याप्राप्तं तदुच्यते"॥
अन्यतः पितृमातृकुलव्यतिरिक्तात्॥•॥ अत्र विशेषयति स एव।
"नाविद्यानान्तु वैद्येन देयं विद्याधनात् क्वचित्।
समविद्याधिकानान्तु देयं वैद्येन तद्धनं"॥
तत्रोपार्ज्जितविद्यापदमुभाभ्यां सम्बध्यते तेन समविद्याधिकविद्यानां भागो न तु न्यूनविद्यो। वैद्येन विदुषा॥•॥ पुनर्व्विशेषयति।
"कुले विनीतविद्यानां भ्रातृणां पितृतोऽपि वा।
शौर्य्यप्राप्तन्तु यद्वित्तं विभाज्यं तद्बृहस्पतिः"॥
कुले स्वकुले पितामहपितृव्यादिभ्यः। पितृत एव वा। शिक्षितविद्यानां भ्रातृणां। यद्विद्याशौर्य्यं प्राप्तं धनं तद्विभजनीयमिति कल्पतरुरत्नाकरौ। पुनः कात्यायनः॥
"क्षमाहरोऽर्द्धहरो वा पुत्त्रवित्तार्ज्जनात् पिता"।
पुत्त्रवित्तार्ज्जनात्। छत्रिभिरितमासो मध्यवत् प्रकाशत इति न्यायात् पुत्त्रार्ज्जितवित्तात् पितुर्द्व्यंशित्वं पितृधनानुपघातविषयं भ्रातृधनोपघातविषयञ्च। अर्ज्जकस्य तु द्व्यंशित्वं भ्रातृधनोपघाते तु तेषामप्येकांशित्वं वक्ष्यमाणव्यासवचनात्। पितुरर्द्धहरत्वन्तु पितृद्रव्योपघातादगुणवत्त्वाच्चेति दायभागः। अनुपघाते पिता द्व्यंशहरः अर्ज्जकत्वात् स्वयमपि द्व्यंशहरः इतरेषामेकांशित्वं। भ्रातृद्रव्योपघाते तु तस्याप्येकांश इति द्व्यंशार्द्धांशयोर्भेदकथनं॥•॥ पुनः कात्यायनः।
"नीप्रचारस्य रथ्या च वस्त्रं यच्चाङ्गयोजितं।
प्रयोज्यं न विभज्येत शिल्पार्थन्तु बृहस्पतिः"॥
प्रयोज्यं यद्यस्य प्रयोजनार्हं पुस्तकादि न तन्मूर्खादिभिः सह पण्डितादिभिर्व्विभजनीयं एवमेव दायभागमदनपारिजातादयः। याज्ञवल्क्यः।
"पितृभ्यां यच्च यद्दत्तं तत्तस्यैव धनं भवेत्"।
पुत्त्रदुहित्रोर्यद्दत्तमलङ्कारादि दत्तं तत्तस्यैवेति शूलपाणिउपाध्यायाः॥ नारदः।
"शौर्य्यभार्य्याधने चोभे यच्च विद्याधनं भवेत्।
त्रीण्येतान्यविभाज्यानि प्रसादो यश्च पैतृकः"॥
प्राप्तञ्च सह भार्य्ययेति भरद्वाजवचनात् भार्य्याप्राप्तिकाले लब्धं धनं भार्य्याधनमौद्वाहिकमित्यर्थः। चोभे इत्यत्र हित्वेति पाठे एतत्त्रिकं हित्वान्यद्विभजेदित्यनुवर्त्तते अत एतान्यविभाज्यानीति। न वास्तुविभागो नोदकभाजनानां गोपथानां स्त्रीणामयोगक्षेमाणां प्रचारस्य चाविभागः इति प्रजापतिरिति। यस्मिन् वास्तुनि देवः स्थानादिर्यं स्थानं अपरे च गृहस्थानान्तरे तथा चेत् तदा येन यत् स्थानं तत्तस्यैव। प्रचारः॥•॥ साधारणधनार्ज्जितेऽपि विशेषमाह व्यासः।
"साधारणं समाश्रित्य यत्किञ्चिद्वाहनायुधं।
शौर्य्यादिनाप्नोति धनं भ्रातरस्तत्र भागिनः।
तस्य भागद्वयं देयं शेषास्तु समभागिनः"।
अत्र भ्रातर इत्युपलक्षणं पितृव्यादयोऽपि। तथा। तस्यार्ज्जकस्य। साधारणोपघाते द्रव्यतोऽल्पस्यान्यस्य महतो वा उपघातस्तत्तुल्यं भागकल्पना कार्य्येति दायभागरत्नाकरौ।
"क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हृतमभ्युद्धरेत्तु यः।
दायादेभ्यो न तद्दद्यात् विद्यया लब्धमेव च"।
पितृपितामहागतं क्रमादन्यैर्हृतं योऽशक्तानुमत्या उद्धरति तदन्येभ्यो न दद्यात्।
भूमौ तु विशेषयति शङ्खः।
"पूर्व्वनष्टान्तु यो भूमिमेकः एवोद्धरेत् क्रमात्।
यथाभागं लभन्तेऽन्ये दत्त्वांशन्तु तुरीयकं"॥
एतदपि स्मृतिमहार्णवकामधेनुपारिजातप्रभृतिलिखनाद्व्याख्येयमिति रत्नाकरः। तत्र, दायभागमिताक्षराप्रभृतिभिर्द्दर्शितत्वात्। इति दायतत्त्वम्॥

अविमरीस, स्त्री, (अवि+मरीसच्। अवेर्मरीसच्प्रत्ययः।) मेषदुग्धं। इति हेमचन्द्रः। ("तर्पणाद्योतनैर्नस्यैरपश्चनृप्यमाविकं"। इति शार्ङ्गधरः।)

अविमुक्त, क्ली, (वि+मुच्+क्त। ततो, न विमुक्तं। नञ्तत्पुरुषः।) वाराणसीक्षेत्रं। यथा,—
"मुने प्रलयकालेऽपि न तत् क्षेत्रं कदाचन।
विमुक्तं न शिवाभ्यां यदविमुक्तं ततो विदुः।
अविमुक्तं तदारभ्य क्षेत्रमेतदुदीर्य्यते।
अस्यानन्दवनं नाम पुराऽकारि पिनाकिना।
क्षेत्रस्यानन्दहेतुत्वादविमुक्तमनन्तरं॥
आनन्दकन्दबीजानामङ्कुराणि यतस्ततः।
ज्ञेयानि सर्व्वलिङ्गानि तस्मिन्नानन्दकानने।
अविमुक्तमिति ख्यातमासीदित्य घटोद्भव"।
इति काशीखण्डे २६ अध्यायः॥ (मूर्द्धचिबुकान्तरालस्थाने च। यथा,—
'एष योऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा सोऽविमुक्ते प्रतिष्ठित' इति। "आमनन्ति चैनं परमेश्वरमस्मिन् मूर्द्धचिबुकान्तराले"। इति च भाष्ये।)

अविमुक्त, पुं, (न विमुक्तः। नञ्तत्पुरुषः।) वाराणसीक्षेत्रं। इति काशीखण्डे। अत्यक्ते त्रि।

अविरत, क्ली, (न विरतम्। नञ्तत्पुरुषः।) सततं। अनवरतं।
("अविरतोज्झितवारिविपाण्डुभि-
र्विरहितैरचिरद्युतितेजसा"॥
इति किरातार्ज्जुनीये।) तद्वति त्रि। इत्यमरः।

अविरल, त्रि, (न विरलः। नञ्तत्पुरुषः।) विरलरहितः। तत्पर्य्यायः। निविरीसं २ घनं ३

निविड ४ निरन्तर ५ सान्द्र ६ नीरन्ध्र ७ बहल ८ दृढं ९ गाढ १० । इति हेमचन्द्र ॥

अविरोध, पु, (न विरोध । नञ्तत्पुरुष ।) विरोधाभाव । यथा,—
"श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी ।
अविरोधे सदा कार्य्यं स्मार्त्तं वैदिकवत् सता" ॥
इति श्राद्धतत्त्वधृतजावालवचनं ॥ अपि च ।
"अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालका ।
भूतानामविरोधेन पूजाकर्म्म करोम्यहं" ॥
इत्याह्निकतत्त्व ॥

अविलम्बन, क्ली, (न विलम्बनम् । नञ्तत्पुरुष ।) शीघ्रं । अविलम्बित । इति रायमुकुट ॥

अविलम्बितं, क्ली, (वि + लबि + क्त । ततो नञ्तत्पुरुष ।) विलम्बाभाव । तत्पर्य्याय । शीघ्र २ त्वरित ३ लघु ४ क्षिप्रं ५ अर ६ द्रुत ७ सत्वर ८ चपलं ९ तूर्णं १० आशु ११ । इत्यमर ॥

अविलम्बित, त्रि, (न विलम्बित । नञ्समास ।) त्वरायुक्त । तत्पर्य्याय । उच्चण्ड २ । इत्यमर ॥ अवलम्बितं ३ । यथा,—
"अविलम्बितमुच्चण्डे केऽप्याङ्करवलम्बितं" ।
इति जटाधर ॥

अविला, स्त्री, (अव + इलच् ।) मेषी । भेडी । इति हेमचन्द्र ॥ (नास्ति विल यत्रेत्यर्थे, त्रि ॥)

अविवाद, पु, (न विवाद । नञ्तत्पुरुष ।) विवादाभावः । यथा,—
"यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थित ।
तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गा मा कुरून् गम" ॥
इति मानवे ८ अध्याये ९२ श्लोक ॥

अविवादी, [न्] त्रि, (न विवादी । नञ्तत्पुरुष ।) विवादरहित । निर्व्विवादी । नञ्पूर्व्वविवादशब्दादिन्प्रत्ययेन निष्पन्न ॥

अविवाहितः, पुं, स्त्री, (न विवाहित । नञ्तत्पुरुषः ।) अनूढ । अकृतोद्वाह । अकृतोपयम । अपरिणीत । अकृतपाणिग्रह । आइवड इति भाषा । नञ्पूर्व्वविवाहशब्दादितप्रत्ययेन निष्पन्न ॥

अविवाह्या, स्त्री, (न विवाह्या । नञ्तत्पुरुष ।) विवाहानर्हा । यथा । सुमन्तु । "मातृपितृसम्बद्धा आसप्तमादविवाह्याः कन्या भवन्ति" । आपञ्चमादन्येषा मत । नारदोऽपि ।
"आसप्तमात् पञ्चमाच्च बन्धुभ्य पितृमातृतः ।
अविवाह्या सगोत्रा च समानप्रवरा तथा ॥
सप्तमे पञ्चमे वापि येषा वैवाहिकी क्रिया ।
ते च सन्तानिनः सर्व्वे पतिताः शूद्रता गता" ॥ * ॥
सर्व्वाः पितृपत्न्यो मातरस्तद्भ्रातरो मातुलास्तद्दुहितरो भगिन्यस्तदपत्यानि भागिनेयानि तास्ताविवाह्या अन्यथा सङ्करकारिण्यस्तथाध्यापयितुरेतदेवेति । तास्च यथा । पितृपितामहादीना सप्ताना सन्तति सप्तमीपर्य्यन्ता नोद्वाह्या । एवं पितृबन्धुप्रभृतिसम्बन्धघटकानां सप्तानां सन्ततिः सप्तमीपर्य्यन्ता नोद्वाह्या । एवं मातामहप्रमातामहादीनां पञ्चाना सन्ततिः पञ्चमीपर्य्यन्ता नोद्वाह्या । एवं मातृबन्धुप्रभृतिसम्बन्धघटकाना पञ्चाना सन्तति पञ्चमीपर्य्यन्ता नोद्वाह्या । बन्धुतन्मात्रोरसत्वेऽपि पितृमातामहमातृमातामहप्रभृत्युपरितनानां पञ्चाना त्रयाणा सप्तमीपञ्चमीपर्य्यन्ता नोद्वाह्येति । एवञ्च पितुर्म्मातुश्च मातामहकन्यान्तरसत्वे तामादाय सप्तमीपञ्चमीपर्य्यन्ताया परीहारः । एव बन्ध्वन्तरेऽप्यूह्यं । बन्ध्वपेक्षया त्रिगोत्रगणन परत सर्वत्र । पूर्व्वन्तु पितुर्म्मातुश्च मातुलपुत्ररूपबन्धोरपि स्वापेक्षया अन्येषा बन्धूना मातामहगोत्रापेक्षया त्रिगोत्रगणनं सर्वसामञ्जस्य स्यात् । अन्यथा पितु पितामहदौहित्रीकन्याया पितामहभगिनीपुत्त्रबन्ध्वपेक्षया त्रिगोत्रात् पराया विवाह प्रसज्येत स चायुक्त । पितृगोत्रापेक्षया तस्यास्त्रिगोत्रमध्यवर्त्तित्वात् । एव पितु प्रमातामहदौहित्रीकन्याया पितामहीभगिनीपुत्त्रबन्ध्वपेक्षया त्रिगोत्रात् पराया विवाह प्रसज्येत स चाप्ययुक्त । पितामहीभ्रातृपुत्त्रबन्ध्वपेक्षया तस्यास्त्रिगोत्रमध्यवर्त्तित्वात् । एव मातुः प्रपितामहदौहित्रीकन्याया मातामहभगिनीपुत्त्रबन्ध्वपेक्षया त्रिगोत्रात् पराया विवाह प्रसज्येत स चायुक्त । वरस्य मातामहापेक्षया तस्यास्त्रिगोत्रमध्यवर्त्तित्वात् । एव मातु प्रमातामहदौहित्रीकन्याया मातामहीभगिनीपुत्त्रबन्ध्वपेक्षया त्रिगोत्रात् पराया विवाह प्रसज्येत स चायुक्तः । मातामहीभ्रातृपुत्रबन्ध्वपेक्षया तस्या स्त्रिगोत्रमध्यवर्त्तित्वात् । इति । एवं मातृसपत्नीभ्रातृसन्तति पितृमातृसगोत्रादयोऽप्यविवाह्या ॥ * ॥ असवर्णाया अविवाह्यत्वं यथा । कलौ त्वसवर्णाया अविवाह्यत्वमाह वृहन्नारदीयं ।
"समुद्रयात्रास्वीकार कमण्डलुविधारण ।
द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा" ॥
इत्यादि । इत्युद्वाहतत्त्व ॥

अविवेक, पु, (न विवेक । नञ्तत्पुरुष । नास्ति विवेको यस्य इति समासे वाच्यलिङ्ग ।) सदसद्विवेचनाराहित्य । यथा । "देहात्मनोरविवेकादस्यैवं शोको भवतीति तद्विवेकप्रदर्शनार्थं श्रीभगवानुवाच अशोच्यानित्यादि" । इति श्रीभगवद्गीता २ अध्यायस्य ११ श्लोकटीका ॥ तद्वति त्रि ॥ अविमृश्यकारी । यथा,—("सहसा विदधीत न क्रियामविवेक परमापदाम्पदम्" ॥ इति किरातार्ज्जुनीये ॥ सदसद्विवेकरहित । यथा,—
"उत्तमोत्तममप्राप्यमविवेकोऽभिवाञ्छसि" । इति विष्णुपुराणं ।)

अविवेकी, [न्] त्रि, (न विवेकी । नञ्तत्पुरुषः ।) विवेकशून्य । अविवेचक । यथा । "तस्मादविवेकिन सुखमात्रलिप्सवो नात्राधिकारिणः") इति मुक्तिवादस्य गादाधरी टीका । अपि च ।
"अस्मिन् प्रसन्ने देवेन्द्रे परम धाम लभ्यते ।
मयाविवेकिना तस्य हृदये जनिता व्यथा ॥
सर्व्वपापहरो विष्णुः स मया व्यथित कृतः" ।
इति पाद्मे क्रियायोगसारे ११ अध्याय ॥

अविवेचकः, त्रि, (न विवेचक । नञ्तत्पुरुष ।) विवेचनारहितः । अविवेकी । न विवेचकः अविवेचकः इति नञ्समासनिष्पन्नः ॥

अविशेष, त्रि, (न विशेष । नञ्तत्पुरुषः ।) विशेषरहितः । अभेद । तुल्यः । विशेषाभावे, पु ॥ विशेषाभाव । यथा,—
"पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवं ।
अविशेषेण कर्त्तव्यं विशेषान्नरक व्रजेत्" ॥
इति श्राद्धतत्त्व ॥ ("सांख्यादिमतसिद्धानि तन्मात्राख्यानि सूक्ष्मभूतानि, तानि च इदमेतदेवंगुणकमिति व्यावृत्ततया नानुभूयन्ते इत्यविशेषाः सूक्ष्मास्चोच्यन्ते" । तथा च विष्णुपुराणे,—
"तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रास्तेन तन्मात्रता स्मृता ।
न शान्ता नापि घोरास्ते न मूढास्चाविशेषिण" ॥
इति ।)

अविश्रान्त, त्रि, विश्रामरहितः । विश्रान्तिशून्यः । अनवरते, क्ली । विपूर्व्वश्रमधातो क्तप्रत्ययानन्तरं नञ्समासनिष्पन्न ॥ ("अविश्रान्तं पत्युर्गुणगणकथाम्रेडनजडा" ॥ इति आनन्दलहर्य्याम् ॥)

अविश्राम, क्ली, (नास्ति विश्रामो यस्मिन् इति ।) विश्रामराहित्यं । यथा,—
"अविश्रामं वहेत् भारं शीतोष्णञ्च न विन्दति ।
ससन्तोषस्तथा नित्यं त्रीणि शिक्षेत गर्द्दभात्" ॥
इति चाणक्य ॥

अविश्वस्त, त्रि, (न विश्वस्त । नञ्तत्पुरुष ।) विश्वासानर्हं । अकृतविश्वासः । प्रत्ययायोग्यः । यथा,—
"न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासात् भयमुत्पन्न मूलान्यपि निकृन्तति" ॥
इति चाणक्य ॥
("विश्वस्तवदविश्वस्ता वञ्चयन्त पुरोचनम्" ।
इति भारते ॥)

अविश्वासा, स्त्री, (नास्ति विश्वासो यस्याम् सा ।) चिरप्रसूता गौः । केलेनगाइ इति भाषा । इति शब्दचन्द्रिका ॥

अविष, पुं, (अव + टिषच् ।) समुद्र । इति कातन्त्रीयोणादिवृत्ति । (राजा । पृथिवी । स्वर्गः । रक्षकमात्रे त्रि ।) विषशून्ये त्रि ॥ (यथा,—
"इत्येता अविषा व्याख्याताः" ॥ इति सुश्रुते ॥)

अविषा, स्त्री, (नास्ति विषं यस्याम् ।) निर्व्विषातृणं । इति राजनिर्घण्टः ॥

अविषी, स्त्री, (अविष + ङीप् ।) नदी । इत्युणादिवृत्तावुज्ज्वलदत्त ॥

अविसोढं, क्ली, (अवेर्दुग्धम् । अवि + सोढच् ।) मेषदुग्ध । इति हेमचन्द्रः ॥

अविस्पष्ट, क्ली, (वि + स्पश + क्त । ततो नञ्समास ।) अस्पष्टवाक्यं । तत्पर्य्यायः । क्लिष्टं २ । इत्यमर ॥
("नाविस्पष्टमधियीत न शूद्रजनसन्निधौ" ॥
इति मनु ॥ अस्फुटः । यथा,—
"विरुद्धि कम्पस्य प्रथयवितरां साध्वसवशादविस्पष्टां दृष्टिं विरयति पुनर्वाम्यसविता" ॥
इति रत्नावल्याम् ॥)

अवी, स्त्री, ( अवत्यात्मानं लज्जया । अव + ई । ) ऋतुमती । इति हेमचन्द्रः ॥

अवीचि, पुं, (नास्ति वीचिः प्रकाशः सुखं वा यत्र ।) नरकविशेष । इति शब्दरत्नावली ॥
("अवीचिमन्धतामिस्रं कुम्भीपाकं तथैव च ।
असिपत्रवनञ्चैव तापनञ्चैव विंशकम्" ॥
इति याज्ञवल्क्यः ॥ ) वाच्यलिङ्गस्तु तरङ्गशून्ये ॥

अवीचि, पु, (नास्ति वीचि सुखं यस्मिन्) } नरकवि-
अवीचिमत्, क्ली, (अवीचि + मतुप् ।) } शेष । यथा । "वैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयःपानमिति । य स्त्विह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथञ्चित् स वै प्रेत्य नरके अवीचिमत्यधःशिरा निरवकाशे योजनशतोच्छ्रायात् गिरिमूर्द्ध्नः संपात्यते । यत्र जलमिव स्थलमश्मपृष्ठमभासते तदवीचिमत् तिलशो विशीर्य्यमाणशरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपतति"। इति श्रीभागवते ५ स्कन्धे २६ अध्याय ॥

अवीचिमय, पु, (अवीचि + मयट् । ) नरकभेद । "य साक्ष्यादौ अनृतं वदति स निरवकाशेऽवीचिमये अधःशिरा निपात्यते यत्र" । इति श्रीभागवते ॥

अवीर, त्रि, (नास्ति वीरो यस्य ।) सत्वरहितः । निर्व्वीर्य्यः । इति मेदिनी ॥

अवीरा, स्त्री, (नास्ति वीर पुत्रादिर्यस्याः ।) अजातापत्यविधवा । इति स्मृति । निष्पतिसुता । इत्यमरमेदिन्यौ ॥ तदन्नभोजने दोषप्रायश्चित्ते यथा,—
"यो विप्रोऽवीरान्नभोजी ऋतुस्नातान्नभोजक ।
भगजीवी वार्द्धुषिको विषहीनो यथोरग" ॥
इति ब्रह्मवैवर्त्ते प्रकृतिखण्डे २१ अध्याय ॥ * ॥
अपि च ।
"अवीरान्नञ्च यो भुङ्क्ते योनिजीवी च ब्राह्मणः ।
यस्त्रिसन्ध्याविहीनश्च स गोहत्यां लभेत् ध्रुव" ॥
इति च तत्रैव २७ अध्याय ॥ * ॥ विष्णुः । गणगणिकास्तेनगायनकान्नानि भुक्त्वा सप्तरात्रं पयसा वर्त्तेत । अवीरास्त्रीस्वर्णकारससर्गपतितानाञ्च । इति प्रायश्चित्तविवेक ॥ * ॥ सामान्येनाभोज्यान्नभोजनप्रकरणे मनु,— [इत्यादि ।
"नाश्रोत्रियकृते यज्ञे ग्रामयाजिकृते तथा" ।
"अनर्च्चितं वृथामांसमवीरायाश्च योषित "
इत्यादिकञ्चोपक्रम्य ।
'भुक्त्वा चान्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यह" ।
"मत्या भुक्त्वा चरेत् कृच्छ्रं रेतो विण्मूत्रमेव" ॥
इति । अवीरा पतिपुत्रविहीना नि सम्बन्धिनी । स्वसम्बन्धिन्यास्तु श्राद्धादिनाभ्यनुज्ञानात् व्यवहारात् धनाधिकाराच्च । इति च प्रायश्चित्तविवेकः ॥ * ॥ अस्या धनाधिकारो यथा याज्ञवल्क्यः,—
"पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा ।
तत्सुतो गोत्रजो बन्धु शिष्या सब्रह्मचारिण ॥
एषामभावे पूर्व्वस्य धनभागुत्तरोत्तर ।
स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्व्ववर्णेष्वय विधि" ॥
तथा विष्णुः । अपुत्रस्य धनं पत्न्यभिगामि तदभावे दुहितृगामि । इत्यादि । तेन प्रपौत्रपर्य्यन्तानामभावे पत्नी धनाधिकारिणी । यथा कात्यायन ।
"भर्त्तृदायं मृते पत्यौ विन्यसेत् स्त्री यथेष्टत ।
विद्यमाने तु संरक्षेत् क्षपयेत् तत्कुलेऽन्यथा ॥
अपुत्रा शयनं भर्त्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता ।
भुञ्जीतामरणात् क्षान्ता दायादा ऊर्द्ध्वमाप्नुयु" ॥
यथेष्टत इति धर्म्मार्थं । तथा च व्यास ।
"लोकान्तरस्थं भर्त्तारमात्मानञ्च वरानने ।
तारयत्युभय नारी नित्य धर्म्मपरायणा" ॥
मदनपारिजातधृता स्मृति ।
"यद्यदिष्टतमं लोके यद्यत् पत्यु समीहितं ।
तत्तद्गुणवते देय पतिप्रीणनकाम्यया" ॥
भर्त्तुः शयनं पालयन्ती नान्यगामिनी । अतएव हरिवंशीयपुण्यकव्रतोपाख्याने ॥
"दानोपवासपुण्यानि सुकृतान्यप्यरुन्धति ।
निष्फलान्यसतीनां हि पुण्यकानि तथा शुभे" ॥
तथा वृहन्मनु,—
"अपुत्रा शयनं भर्त्तु पालयन्ती व्रते स्थिता ।
पत्न्येव दद्यात् तत्पिण्डं कृत्स्नमंशं लभेत च" ॥
तत्पिण्डमित्यत्र तदित्यनुषज्य । तच्छब्देन भर्त्तु परामर्शात् भर्त्तु कृत्स्नमंशं यावदंशं हरेत् न तु वर्त्तनोचितमात्र । इति दायतत्त्व ॥ * ॥ अस्याः पतिश्राद्धाधिकारो यथा । पुत्रपौत्रप्रपौत्राभावे पत्नी । तथा च शङ्ख ।
"पितु पुत्रेण कर्त्तव्या पिण्डदानोदकक्रिया ।
तदभावे तु पत्नी स्यात् तदभावे सहोदर ॥
भार्य्यापिण्डं पतिर्द्दद्यात् भर्त्रे भार्य्या तथैव च ।
श्वश्र्वादेश्च स्नुषा चैव तदभावे द्विजोत्तम" ॥
इत्यादि ॥
"अपुत्रा स्त्री यथा पुत्र पुत्रवत्यपि भर्त्तरि ।
पिण्डं दद्यात् जलञ्चैव जलमात्रन्तु पुत्रिणी" ॥
इति निर्मूल समूलत्वेऽपि कालदेशान्तरितपुत्रसद्भावविषयमिति श्राद्धविवेकप्रभृतय । इति ॥ * ॥ अस्या भर्त्रादितर्पणाधिकारो यथा स्मृति ।
"तर्पणं प्रत्यहं कार्य्यं भर्त्तु कुशतिलोदकै ।
तत्पितुस्तत्पितुश्चापि नामगोत्रादिपूर्व्वकं" ॥
एतत्तु तर्पणं पुत्रपौत्राद्यभावविषयमिति मदनपारिजातः । इति ॥ * ॥ मृतायास्तस्या आद्यश्राद्धादि पञ्चदशश्राद्धं कर्त्तव्यं न तु सपिण्डन । यथा । अत्र सपत्नीपुत्रस्य पुत्रत्वातिदेशात् तत्सत्वेऽपि स्त्रीणां सपिण्डनं मैथिलैरुक्तं तन्न ।
"पुत्रेणैव तु कर्त्तव्य सपिण्डीकरण स्त्रियाः ।
पुत्रस्य पुत्रस्त्वन्ये भ्रातृपुत्रादयोऽपि ये" ॥
इति लघुहारीतवचने एवकारेण अतिदिष्टपुत्रनिषेधात् । पुत्रेणेति तत्सत्त्वमात्रविवक्षित ।
"सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते" ।
इति मार्कण्डेयपुराणैकवाक्यत्वात् ।
"यानि पञ्चदशाद्यानि अपुत्रस्येतराणि च ।
एकस्यैव तु दातव्यमपुत्रायाश्च योषितः" ॥
इति छन्दोगपरिशिष्टेन आद्यपञ्चदशश्राद्धं प्रेतत्वपरीहारोक्तत्वाच्च । एतत्पुत्राभावे द्रष्टव्यं । ततश्च शिशौ पुत्रे अन्येनापि सपिण्ड्यते । एवं पतिसत्वेऽपि । अतएव मैथिलैरवीरायाः सपिण्डनं नास्तीत्युक्तं । इति च शुद्धितत्त्व ॥

अवेद्य, पुं, (विद + ण्यत् । ततो, न वेद्यः नञ्स मास ।) गोवत्सक । इति शब्दचन्द्रिका । बाछुर इतिभाषा । अज्ञेये त्रि ॥ (अविवाह्यः । यथा,—
"व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च ।
स्वकर्म्मणाञ्च त्यागेन जायन्ते वर्णसङ्कराः" ।
इति मनुः ।)

अवेल, पुं, (नास्ति वेला यस्य सः ।) अपलाप । अपह्नवः । इति मेदिनी ॥

अवेला, स्त्री, पूगचर्व्वित । इति मेदिनी । चिवान गुया इति भाषा । अमराङ्क । इति लोकप्रसिद्ध । वेलाशून्ये त्रि ॥

अवेक्षण, क्ली, ( अव + ईक्ष + ल्युट् । ) अवेक्षा । दर्शन । यथा । "कृताकृतावेक्षणवत् स्वयं तत्प्रोपवेशनस्य कर्त्तव्यत्वात्" । इति संस्कारतत्त्व । (तथाच ।
"दूरादवेक्षणं हास सम्प्रश्ने सादरो भृशम् ।
परोक्षेऽपि गुणश्लाघा स्मरणं प्रियवस्तुषु" ।
इति हितोपदेशे ॥ अवधानम् । प्रतिजागर । अनुसन्धानम् । यथा,—
"नियन्तुं शोक स्वयमेव धीमान
वर्णाश्रमावेक्षणजागरूक ।"
इति रघुवंशे ॥)

अवेक्षा, स्त्री, (अव + ईक्ष + अ + ततष्टाप् ।) अवेक्षण । प्रत्यक्षदृष्टि । तत्पर्य्याय । प्रतिजागरः २ । इत्यमर । (अवधानम् । अनुसन्धानम् । यथा,—
"अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ।
रक्षितं वर्द्धयेत् वृद्ध्या वृद्धं दानेन निक्षिपेत्" ।
इति मनु ।
("यदि रामस्य नावेक्षा त्वयि स्यान्मातृवत्सदा" ।
इति रामायणे । )

अवेक्षित, त्रि, ( अव + ईक्ष + क्त । ) दृष्ट । यथा मनु ।
"केशकीटावपन्नञ्च पदा स्पृष्टञ्च कामत ।
भ्रूणघ्नावेक्षितञ्चैव संस्पृष्टञ्चाप्युदक्यया" ।
इत्याह्निकाचारतत्त्वम् ॥ ( कृतावधान । यथा, रघुवंशे । 'स कदाचिदवेक्षितप्रज" । )

अवैध, त्रि, (न वैध विधित आगत । नञ्तत्पुरुष ।) विध्यविषय । विधिविवर्ज्जित । विधिप्राप्तभिन्न । ("अवैधं पञ्चमं कुर्व्वन् राज्ञो दण्डेन शुध्यति" ।
इति स्मृति ॥)

अवोद, त्रि, ( अव + उन्द + घञ् । ) आर्द्र । इति जटाधर ॥

अवोध, त्रि, (नास्ति बोधो ज्ञानं यस्य ।) निर्बोधः । अज्ञान ।

अवोक्षण, क्ली, ( अव + उक्ष + ल्युट् । ) प्रोक्षणविशेषः । नुब्जहस्तेन जलक्षेपण । यथा हारीतः ।

"तस्मादङ्गिरवोच्यैतद्द्वादालभ्य एव च" ।
अवोच्य प्रोच्य इति रत्नाकर ॥ नव्यवर्द्धमान-
धृतम् ।
"उत्तानेन तु हस्तेन प्रोक्षणं समुदाहृतम् ।
न्युब्जताभ्युक्षणं प्रोक्तं तिरश्चावोक्षणं स्मृतम्" ॥
इति शुद्धितत्त्वम् ॥

अब्द, पु, (अव+दन् ॥ औणादिकोऽय ।) वत्सर ।
मेघ । मुस्ता । इति रायमुकुट सारसुन्दरी च ॥
(मुस्तार्थे प्रयोगो यथा,—
"किराताब्दामृताविश्वचन्दनोदीच्यवत्सरै ।
शोथातिसारशमन विशेषाज्ज्वरनाशनम्" ॥
इति वैद्यकचक्रपाणिसङ्ग्रह ।)

अव्यक्त, पु, (वि+अन्ज+क्त । ततो नञ्समास ।)
विष्णु । शिव । कन्दर्प । इति मेदिनी । मूर्ख इति
हेमचन्द्र । अस्फुटे त्रि ॥)

अव्यक्तं, क्ली, प्रकृति । आत्मा । इति हेमचन्द्र ।
महदादि । परमात्मा । इति मेदिनी ॥
("योऽसावतीन्द्रियग्राह्य सूक्ष्मोऽव्यक्त सनातन ।
सर्व्वभूतमयोऽचिन्त्य स एव स्वयमुद्बभौ" ॥
इति मानवे ॥
गणितादौ अज्ञातराश्यादि । अदृश्य । साङ्ख्यमते
सर्व्वकारण रूपादिहीनतया चक्षुराद्यगोचर
प्रधानं महदादि ।
"महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुष पर" ।
इति कठोपनिषद् ॥
वेदान्तमते सूक्ष्मशरीरं स्वापावस्थाया शब्द-
प्रवृत्तिनिमित्तैर्जातिगुणक्रियासम्बन्धैर्वर्ज्जित नि-
र्व्विकार निराकार ब्रह्म । परमात्मा, मायोपा
धिक ब्रह्म, सूक्ष्ममतीन्द्रिय लिङ्गग्राह्य परब्रह्म ।
यदुक्तम्,—
"अव्यक्तमिति विज्ञेय लिङ्गग्राह्यमतीन्द्रियम्" ।
रूपादिविहीनत्वेन चक्षुराद्यगोचरो योगाभ्या-
सावसेयो भाव ।
"ब्राह्म स्वर कारणमात्रवाचो
बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति" । इति रघुवंशे ॥
प्रकृतिः । तथा हि,—"यत् सर्व्वस्य जगतो
वीजभूतमव्याकृतमनामरूपमतत्त्वं सर्व्वकार्य्यकार-
णशक्तिसमाहाररूपं अव्यक्ताव्याकृताकाशादिना-
मवाच्य परमात्मन्योतप्रोतभावेन समाश्रितं वट-
कणिकायामिव वटवृक्षशक्ति । सत्त्वादिरूपेण
निरूप्यमाणे व्यक्तिरस्य नास्तीत्यव्यक्तम्" ।
यदुक्तम् । "हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेक-
माश्रित लिङ्गम् । सावयव परतन्त्र व्यक्त विप-
रीतमव्यक्तम्" ॥ ० ॥ सर्व्वभूतानां कारणमकारणं
सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः स-
म्भवहेतुरव्यक्त नाम । तदेक बहूना क्षेत्रज्ञाना-
मधिष्ठाम समुद्र इवोदकानां भावाना" ॥ इति
सुश्रुत ॥
"अनादिः पुरुषो नित्यो विपरीतस्तु हेतुज ।
सदकारणवन्नित्य दृष्ट हेतुमदन्यथा ॥
तदेव भावादग्राह्य नित्यत्वान्न कुतश्चन ।
भावाज्ज्ञेयं तदव्यक्तमचिन्त्यं व्यक्तमन्यथा" ॥ इति ॥
"अव्यक्तमात्मा क्षेत्रज्ञ शाश्वतो विभुरव्ययः" ।
इति च ॥
"अतोऽन्यत् पुनरव्यक्त लिङ्गग्राह्यमतीन्द्रिय" ॥
इति च ॥
"अव्यक्तमस्य क्षेत्रस्य क्षेत्रज्ञमृषयो विदु" ॥
इति च चरक ॥)

अव्यक्तराग, पु, (न व्यक्तोऽल्पव्यक्तो रागोऽरुणिमा ।)
ईषल्लोहितवर्ण । तत्पर्य्याय । अरुण २ । इत्य-
मर ॥ ताम्र ३ गौर ४ । इति जटाधर ॥

अव्यङ्ग, त्रि, (न सन्ति व्यङ्गानि यस्य ।) व्यङ्ग-
रहित । अविकलाङ्ग । यथा,—
"तत आहूय धर्म्मज्ञं ब्राह्मण वेदपारगं ।
अव्यङ्गावयव पूज्य गन्धधूपार्च्चनादिभि" ॥
इति मत्स्यपुराणे ६६ अध्यायः ॥

अव्यङ्गा, स्त्री, ( अवेर्मेषस्य अङ्ग शृङ्गमिव अङ्गं
यस्या ।) शूकशिम्बी । इति केचित् ॥ अमर-
कोषे अव्यण्डा इति तट्टीकाया अव्यण्डा इति
च पाठ ॥ व्यङ्गरहिते अविकलाङ्गे च त्रि ॥

अव्यङ्ग्य, क्ली, (नास्ति व्यङ्ग्यालङ्कारो यस्मिन् ।) व्यङ्ग्या-
लङ्काररहितकाव्यं ॥ यथा,—
"सव्यङ्ग्यमुत्तम काव्यमव्यङ्ग्यमधमं स्मृत ।
किञ्चिद्व्यङ्ग्यसमायुक्त मध्यम परिकीर्त्तित" ॥
इति काव्यचन्द्रिका ॥

अव्यञ्जन, पु, (नास्ति व्यञ्जनं शुभलक्षणं शृङ्ग, यस्य ।)
शृङ्गहीनपशु । इति हलायुध ॥ अस्फुटे त्रि ॥
(अनुद्भिन्नरजस्वलाचिह्ना कन्या । यथा,—
"असंप्राप्तरजा गौरी प्राप्ते रजसि रोहिणी ।
अव्यञ्जना भवेत् कन्या कुचहीना च नग्निका" ॥
इति पञ्चतन्त्रे ॥)

अव्यण्डा, स्त्री, (न विगतमण्ड वीजमस्या ।) अव्यण्डा
इति कुत्रचिदमरकोषे पाठ ॥ आलकुशीति
भाषा ।

अव्यथ, त्रि, (नास्ति व्यथा यस्य स ।) पीडारहित ।
व्यथाशून्य । सर्पे पु । इति मेदिनी ॥

अव्यथा, स्त्री, (न व्यथा । नञ्तत्पुरुषः ।) हरी-
तकी ॥ पद्मचारिणी । इत्यमर ॥

अव्यथि, पु, अश्व । सङ्ग्रामे न बिभ्यतीति अव्यथि ।
व्यथ भयसञ्चलनयो सर्व्वधातुभ्य इति इन्प्रत्ययः
ततो नञ्समास । वेदप्रयोगोऽय ॥

अव्यथिष, पु, (न+व्यथ+टिषच् ।) समुद्र । सूर्य्यः ।
इति सिद्धान्तकौमुद्या उणादिवृत्तिः ॥

अव्यथिषी, स्त्री, (अव्यथिष+ङीप् ।) पृथिवी ।
अर्द्धरात्र । इति सिद्धान्तकौमुदी ॥

अव्यथ्य, त्रि, (न+व्यथ+क्यप् ।) व्यथाशून्य ।
इति पाणिनि ॥

अव्यय, क्ली, पु, (न+वि+इन्+अच् ।) शब्द-
विशेष । तत्परे विभक्तिर्न तिष्ठति अतएव लि-
ङ्गत्रयाविकृत । तथाच कातन्त्रे,—
"सदृश त्रिषु लिङ्गेषु सर्व्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्व्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्" ॥
(क्ली, अनाद्यन्त विकारशून्य परब्रह्म । यथा,—
"अनणवस्थजमक्षसमदीर्घमजमव्ययम् ।
अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्" ॥
इति आत्मबोधे ॥)

अव्यय, पु, (नास्ति व्ययो यस्य ।) विष्णु ।
("नमस्कृत्य सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।
पुरुषायाप्रमेयाय शाश्वतायाव्ययाय च" ॥
इति मार्कण्डेयपुराणे ॥) व्ययरहिते, त्रि । इति
मेदिनी ॥ (अविनाशी । नित्यपुरुषः । यथा,—
"तमस परमापदव्ययं पुरुष योगसमाधिना
रघु" ॥ इति रघुवंशे ।
"सूक्ष्माभ्यो मूर्त्तिमात्राभ्यः संभवत्यव्ययाद्व्ययम्" ।
इति मानवे ॥)

अव्यर्थ, त्रि, (न व्यर्थ । नञ्तत्पुरुष ।) अमोघ ।
सफल । यथा,—
"दुर्निवार्य्यञ्च दुर्द्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम् ।
तेजसा चक्रतुल्यञ्च सर्व्वशस्त्रास्त्रघातकम्" ॥
इति ब्रह्मवैवर्त्ते प्रकृतिखण्डे १८ अध्याय ॥

अव्यवसायवान्, [त्] त्रि, ( अव्यवसाय+मतुप् ।
मस्य व ।) व्यवसायरहित । अव्यवसायी ।
तत्पर्य्याय । शिक्षु २ । इति त्रिकाण्डशेष ॥
( अनुशीलनरहित ।)

अव्यवस्था, स्त्री, ( वि+अव+स्था+अङ् । ततो
नञ्समास ।) अवसिद्धान्त । अविधि । शास्त्र-
विरुद्धव्यवस्था । इति नञ्समासनिष्पन्ना ॥
(चञ्चले । यथा, कुमारे,
"स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्था" ॥)

अव्यवस्थित, त्रि, (न व्यवस्थित । नञ्समास ।)
नीतिशास्त्रादिव्यवस्थानभिज्ञ । सिद्धान्तरहित ।
यथा,—
"क्वचिद्रुष्ट क्वचित्तुष्टो रुष्टस्तुष्ट क्षणे क्षणे ।
अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्कर" ॥
इति हितोपदेश ॥

अव्यवहार्य्य, त्रि, (वि+अव+हृ+ण्यत् । ततोनञ्-
समास ।) व्यवहारायोग्य । अव्यवहरणीय ।
यथा । ज्ञानतश्चाण्डालान्यस्त्रीगमने तत्तुल्यतया
द्विगुणव्रताचरणे कृतेऽपि न व्यवहार्य्य । यथा
याज्ञवल्क्य ।
"प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यदज्ञानकृत भवेत् ।
कामतोऽव्यवहार्य्यस्तु वचनादिह जायते" ॥
पापान्तरेऽप्यव्यवहार्य्यत्वं याज्ञवल्क्योक्तम् ।
"शरणागतबालस्त्रीहिंसकान् सवसेन्न तु ।
चीर्णव्रतानपि सदा कृतघ्नसहितानिमान्" ॥
"अत्र च कामतो महापातकादिहत्यापकर्तु-
रव्यवहार्य्यत्वदर्शनात् कामतो बहुतरगुणयुक्त-
शरणागतादिहन्तॄणामव्यवहार्य्यत्व न तु हीनतर-
हन्तॄणां अन्यथा विषमशिष्टतापत्तिः स्यात्" ।
इति प्रायश्चित्ततत्त्वम् ॥

अव्यवहित, त्रि, (वि+अव+धा+क्त । ततो नञ्-
तत्पुरुष ।) व्यवधानशून्य । तत्पर्य्याय । ससक्तं २
अपटान्तर ३ अपदान्तरं ४ । इत्यमर ॥ तट्टीका
च ॥ लग्न ५ । इति शब्दरत्नावली ॥ ("सिसा-
धयिषाविरहविशिष्टलक्षणाव्यवहितोत्तरलक्षणोत्प-
त्तिकानुमितिकभिन्नेति" ॥ इति दीधितिः ॥)

अव्यवहृतः, त्रि, (न व्यवहृतः। नञ्तत्पुरुषः।) अकृतव्यवहारः। इति नञ्समासनिष्पन्नः॥

अव्याजः, पु, (न व्याजः। नञ्तत्पुरुषः।) छलाभावः। यथा।
"इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः
तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया
शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति"॥
इत्यभिज्ञानशकुन्तलानाटके प्रथमोऽङ्कः।
शीघ्रं। यथा। "सेक्तव्यो यदि मारवस्तरुरयं पाथोदपाथोलवैरव्याजं परिषिञ्च किं चिरयसे काल परिक्रामति। मूले सिक्तरसे दले विगलिते शीर्णे तथा वल्कले न स्यादस्य परिस्थितेः प्रभुरहो धारापि वारां तव॥" इत्युद्भटः॥

अव्याप्यं, त्रि, (न व्याप्य। नञ्तत्पुरुषः।) अव्यापनीय। व्याप्तिरहित। अनधीन। यथा। "नापि साध्यव्यापकाव्याप्यत्वेन व्याप्तिविरहोन्नायकतया साध्यव्याप्यव्यापकत्वेनोपाधेरेव साध्यव्यापकत्वसाधनात्। तस्मादुपाधिर्हेत्वाभासान्तरमिति"। इत्युपाधिवादचिन्तामणिः। अपि च,
"अव्याप्यवृत्तिः क्षणिको विशेषगुण इष्यते"।
इति भाषापरिच्छेदः॥

अव्याप्यवृत्तिः, त्रि, (अव्याप्य सर्व्वावच्छेदमप्राप्य वृत्तिर्यस्य।) किञ्चिदवच्छिन्नवृत्ति।
("अव्याप्यवृत्तिः क्षणिको विशेषगुण इष्यते"।
इति भाषापरिच्छेदः।)
स्वसमानाधिकरणाभावप्रतियोगीति यावत्। दैशिककालिकभेदेन स द्विविधः। तत्पर्य्यायः। प्रादेशिकः २। आत्मनो विशेषगुणाः। बुद्धि १ सुखं २ दुःखं ३ इच्छा ४ द्वेष ५ यत्न ६ धर्म्म ७ अधर्म्म ८ भावनाख्यसंस्कार ९ आकाशस्य विशेषगुणः शब्दः १०। सामान्यगुणौ संयोग ११ विभागश्च १२। एते सर्व्वे अव्याप्यवृत्तयः स्युः। इति न्यायभाषा॥

अव्याहत, त्रि, (न व्याहतम्। नञ्तत्पुरुषः।) व्याघातशून्य। यथा।
"यस्य त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहतं सदा।
वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति"॥
इति शब्दमाला॥ किञ्च। विष्णुपुराणम्।
"अन्नं बलाय मे भूमेरपामग्न्यनिलस्य च।
भवत्वेतत् परिणतौ ममास्त्वव्याहतं सुखम्॥
प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा।
अन्नं पुष्टिकरञ्चास्तु ममास्त्वव्याहतं सुखम्"॥
इत्याह्निकाचारतत्त्वम्॥ (अकुण्ठित। यथा,—
"वेदशास्त्रार्थविज्ञाने येषामव्याहता मतिः"।
इति मार्कण्डेयपुराणे।)

अव्याहृतः, त्रि, अकथितः। न व्याहृतः अव्याहृत नञ्समासनिष्पन्नः॥

अश ऊ ङ न (स्वादिं-आत्म-सक-वेट्।) व्याप्तिसंहत्योः। ऊ ङ अश्निष्यते अष्टते। न अश्नोति। संहतिः समूहः। इति दुर्गादासः॥
("यद्ददाति गयास्थश्च सर्व्वमानन्त्यमश्नुते"।
इति याज्ञवल्क्यसंहिता।)

अश श (क्र्यादि-पर-सक-सेट्।) भोजने। अश्नात्यन्नं बुभुक्षितः। इति दुर्गादासः।

अशकुम्भी, स्त्री, (अशा सलिलं स्कुम्नाति व्याप्नोति इति। अशा + स्कुम्भ + ट + पृषोदरादित्वात्।) पानीयपृष्ठजः। इति रत्नमाला॥ पाना इति भाषा।

अशक्य, त्रि, (न शक्यम्। नञ्तत्पुरुषः।) अशकनीय। असाध्य। यथा। "अशक्ये अध्यवसाय समर्थना"। इति मुग्धबोधव्याकरणम्॥

अशक्त, त्रि, (न शक्त। नञ्तत्पुरुषः।) शक्तिरहित। असमर्थ यथा। मनुः।
"बिभृयादेच्छतः सर्व्वान् ज्येष्ठो भ्राता यथा पिता।
भ्राता शक्तः कनिष्ठो वा शक्त्यपेक्षा कुले स्थितिः"॥
इति दायतत्त्वम्॥
"उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते"।
इति तिथ्यादितत्त्वम्॥

अशत्रु, पु, (न + शद् + क्रुन्। नञ्तत्पुरुषः।) चन्द्र। इति शब्दचन्द्रिका॥ शत्रुरहिते मित्रे च त्रि॥

अशन, क्ली, (अश + ल्युट्।) भक्षण। अन्नं। इति हेमचन्द्रः॥ ("शीतं निर्झरवारि पानमशनं कन्दाः सहाया मृगाः॥" इति नागानन्दे॥
"विशिष्टमिष्टसंस्कारैः पथ्यैरिष्टैरसादिभिः।
मनोज्ञं शुचि नात्युष्णं प्रत्यग्रमशनं हितं"॥
इति सुश्रुतः॥)

अशन, पु, असनवृक्ष। पीतशालवृक्ष। इति रायमुकुटः॥ (असनशब्देऽस्य विशेषो ज्ञातव्यः॥)

अशनपर्णी, स्त्री, (अशनस्य शालवृक्षविशेषस्य पर्णमिव पर्णमस्याः।) वृक्षविशेष। तत्पर्य्यायः। वातकः २ शीतलः ३ शीतलवातकः ४ असनपर्णी ५ शनपर्णी ६ सनपर्णी ७ शीतः ८ शीतकः ९ अपराजिता १०। माराटी इति ख्याता। इति शब्दरत्नावली॥

अशनाया, स्त्री, (अशन + क्यच्।) भोजनेच्छा। क्षुधा। इत्यमरः॥
("अन्नाद्वा अशनाया निवर्त्तते पानात्पिपासा"। इति शतपथब्राह्मणे। "धुताशनायः फलवद्विभूत्या"। इति भट्टौ।)

अशनायित, त्रि, (अशनाय + क्त। अशनाया भोजनेच्छा जाता अस्य इति इतच् वा।) क्षुधित। इत्यमरः॥

अशनिः, पु, स्त्री, (अश्नाति संघातं करोति। अश + अनि।) वज्र। इत्यमरः। विद्युत्॥ ("अथवा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एष वेधसा" इति रघुवंशे।)

अशर्म्म [न्,] क्ली, (न शर्म्म। नञ्समासः। नास्ति शर्म्म यस्मिन् इति समासे वाच्यलिङ्गः।) कष्ट। दुःखं।
("एकौघभूतं तदशर्म्म कृष्णा
विभावरीं ध्वान्तमिव प्रपेदे॥"
इति भारविः॥) तद्विशिष्टे त्रि। इति जटाधरः॥

अशाखा, स्त्री, (नास्ति शाखा यस्याः।) शूकी...
इति राजनिर्घण्टः॥

अशित, त्रि, (अश + क्त।) भुक्त। खादित।...
इति हेमचन्द्रः॥
("आप एव तदशितं नयन्ते"।
"तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते"।
इति च छान्दोग्ये उपनिषदि॥
"अशितं मात्रया काले पथ्यं याति जरां सुखं"...
इति वाभटः॥ "यावद् यस्याशनमशितम...
हत्य प्रकृति यथाकालं जरां गच्छति, याव...
मात्रा प्रमाणं वेदितव्यं भवति"॥ इति चरक...

अशितङ्गवीन, त्रि, (अशिता भोजिता गावो य...
अशितगो + ख + निपातनात् मुमागमः।)...
शितङ्गवीनं। पूर्व्वंगवादिचरितक्षेत्रादि। इ...
रटीकासारसुन्दरी॥

अशित्र, त्रि, (अश + इत्र।) चौरः। इत्युणा...
कोषः॥ (चरु।)

अशिर, क्ली, (अश + इर।) हीरकः। इति रा...
निर्घण्टः॥ (हीरकशब्देऽस्य विशेषो ज्ञेयः।)

अशिर, पु, (अश भोजने + इर।) अग्निः। राक्ष...
सूर्य्यः। इति मेदिनी॥

अशिरा, स्त्री, अशिरराक्षसस्त्री। इत्युणादिकोष...

अशिश्विका, स्त्री, (अशिश्वी + स्वार्थे कन्।) अ...
पत्या। कन्यापुत्रविहीना स्त्री। इति शब्दर...
वली॥ आँटकुडी इति भाषा॥

अशिश्वी, स्त्री, (नास्ति शिशुर्यस्याः इति। नि...
तनात् ङीप्।) अशिश्विका। इत्यमरः॥

अशिक्षित, त्रि, (न शिक्षित। नञ्समासः।) शि...
क्षारहित। अनिपुण। अनभिज्ञ। यथा। "...
सारथेरकौशल्यात् यानमन्यथा गच्छति...
हिंसायां अशिक्षितसारथिनियोगात् स्वामी...
शतं दण्डं दाप्यः स्यात्"। इति कुल्लूकभट्टव्याख्या...
नात्। इति प्रायश्चित्ततत्त्वं॥

अशीत, त्रि, (न शीत। नञ्तत्पुरुषः।) शीता...
भावयुक्त। यथा,—
"अशीतास्तरवो माघे फाल्गुने पशुपक्षिणौ।
चैत्रे जलधराः सर्व्वे वैशाखे नरवानरौ"।
इति पुराणं॥

अशीतिः, त्रि, (अष्टदशतः परिमाणमस्य। पङ्क्ति...
विंशतीत्यादिना निपातनात् प्रकृतेरशीभावस्ति...
प्रत्ययश्च।) संख्याविशेष। ८० आशी इति...
भाषा। यथा मनुः,—
"अशीतिभागं गृह्णीयात्
मासात् वार्द्धुषिकः शतात्।
द्विकं शतं वा गृह्णीयात्
सतां धर्म्ममनुस्मरन्"॥
इत्याह्निकाचारतत्त्वं॥ अपि च।
"अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडश।
प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च"॥
इति प्रायश्चित्ततत्त्वं॥

अशुद्ध, त्रि, (न शुद्धम्। नञ्तत्पुरुषः।) अपवित्र।
अकृतशोधन। अशौचयुक्त। यथा। शङ्खः,—

"ततः श्राद्धमशुद्धौ तु कुर्य्यादेकादशे तथा ।
कर्त्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः" ॥
इति ।
"शुद्धा भर्त्तुश्चतुर्थेऽह्नि अशुद्धा दैवपैत्रयोः ।
दैवे कर्म्मणि पैत्रे च पञ्चमेऽहनि शुद्ध्यति" ॥
इति च शुद्धितत्त्वं ॥ (वर्णाद्यशुद्धियुक्तः ।)

अशुभं, क्ली, (न शुभम् । नञ्तत्पुरुषः । नास्ति शुभं यस्येति समासे वाच्यलिङ्ग एव ।) पापं । इति हेमचन्द्रः ॥ अमङ्गलं ।
("न च किञ्चिदुवाचैनं शुभं वा यदि वाशुभम्" ।
मा च वोऽस्त्वशुभं किञ्चित्सर्व्वथा पाण्डुनन्दना" ॥
इति च भारते ॥) तद्युक्ते त्रि । यथा,—
"सर्व्वाशुभानां परिमोक्षकारि
सम्पूजनं देववरस्य विष्णोः" ।
इति ज्योतिस्तत्त्वं ॥ अपि च । मदनपारिजातधृतं ।
"अशुभं खञ्जनं दृष्ट्वा देवब्राह्मणपूजनं ।
दानं कुर्व्वीत कुर्य्याच्च स्नानं सर्व्वौषधीजलैः" ॥
इति तिथ्यादितत्त्वं ॥

अशून्यशयनव्रतं, क्ली, (न शून्यं शयनं यस्मात्, तत् व्रतम् ।) श्रावणकृष्णद्वितीयाकर्त्तव्यव्रतविशेषः । यथा,—
"ब्रह्मोवाच ।
भगवन् । पुरुषस्येह स्त्रियाश्च विरहादिकं ।
शोक-व्याधि-भयं दुःखं न भवेद्येन तद्वद ॥
भगवानुवाच ।
श्रावणस्य द्वितीयायां कृष्णायां मधुसूदनः ।
क्षीरार्णवे सलक्ष्मीकः सदा वसति केशवः ॥
तस्यां सम्पूज्य गोविन्दं सर्व्वान् कामान् समश्नुते ।
गो-भू-हिरण्य-दानादि सप्तकल्पशतानुगं ॥
अशून्यशयना नाम द्वितीया या प्रकीर्त्तिता ।
तस्यां सम्पूजयेद्विष्णुमेभिर्म्मन्त्रैर्व्विधानतः ॥
श्रीवत्सधारिन् श्रीकान्त श्रीधाम श्रीपतेऽव्यय ।
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्म्मार्थकामदः ॥
अग्नयो मा प्रणश्यन्तु देवताः पुरुषोत्तम ।
पितरो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदतः ॥
लक्ष्म्या वियुज्यते देवो न कदाचिद् यथा भवान् ।
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे वियुज्यतु ॥
लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा ।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथैव मधुसूदन ॥
गीतवादित्रनिर्घोषं देवस्याग्रे तु कारयेत् ।
घण्टा भवेदशक्तस्य सर्व्ववाद्यमयी यतः ॥
एवं सम्पूज्य गोविन्दमश्नीयात्तैलवर्ज्जितं ।
नक्तमक्षारलवणं यावत्तत्स्याच्चतुष्टयं ॥
ततः प्रभाते सञ्जाते लक्ष्मीपतिसमन्वितां ।
दीपान्नभाजनैर्युक्तां शय्यां दद्याद्विलक्षणां ॥
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुतां ।
अभीष्टोपस्करैर्युक्तां शुक्लपुष्पाम्बरावृतां ॥
सोपधानकविश्रामां फलैर्नानाविधैर्युतां ।
तथाभरणधान्यैश्च यथाशक्त्या समन्वितां ॥
अव्यङ्गाङ्गाय विप्राय वैष्णवाय कुटुम्बिने ।
दातव्या वेदविदुषे न बकव्रतिने क्वचित् ॥
तत्रोपवेश्य दाम्पत्यमलंकृत्य विधानतः ।
पत्न्यास्तु भाजनं दद्यात् भक्ष्यभोज्यसमन्वितं ।
ब्राह्मणस्यापि सौवर्णीमुपस्करसमन्वितां ।
प्रतिमां देवदेवस्य सोदकुम्भां निवेदयेत् ॥
एवं यस्तु पुमान् कुर्य्यादशून्यशयनं हरेः ।
वित्तशाठ्येन रहितो नारायणपरायणः ॥
न तस्य पत्न्या विरहः कदाचिदपि जायते ।
नारी चाविधवा ब्रह्मन् यावच्चन्द्रार्कतारकं ॥
न विरूपं न शोकार्त्तं दाम्पत्यं जायते क्वचित् ।
न पुत्रपशुरत्नानि क्षयं यान्ति पितामह ॥
सप्तकल्पसहस्राणि सप्तकल्पशतानि च ।
कुर्व्वन्नशून्यशयनं विष्णुलोके महीयते" ॥
इति मत्स्यपुराणे अशून्यशयनव्रतं ६७ अध्यायः ॥

अशृतं, त्रि, (न शृतम् । नञ्तत्पुरुषः ।) अपक्वं । इति रत्नमाला ॥
"तण्डुलात् षोडशगुणे शृते वाप्यशृते तथा ।
तोये पेया पचेत्तावद्यावत् सिक्थकनिर्गमः" ॥
इति वैद्यकपरिभाषा ॥

अशेषं, त्रि, (नास्ति शेषो यस्येति ।) शेषरहितं । निःशेषं ॥ सर्व्वं । इत्यमरः ॥
("स्थानं प्राप्स्यस्यशेषाणां जगतामपि पूजितम्" ॥
"अहिंसादिष्वशेषेषु गुणेषु गुणिनां वरः" ॥
इति च विष्णुपुराणम् ॥ अशेषेण । यथा,—
"अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया
तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः" ।
इति कुमारे ।
"वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः" ॥
इति गीतायाम् ॥)

अशोकं, क्ली, पारदः । इति मेदिनी ॥ शोकरहिते त्रि ॥

अशोकः, पुं, (नास्ति शोको यस्मात् ।) स्वनामख्यातपुष्पवृक्षविशेषः । तत्पर्य्यायः । शोकनाशः २ विशोकः ३ वञ्जुलद्रुमः ४ वञ्जुलः ५ मधुपुष्पः ६ अपशोकः ७ कङ्केल्लिः ८ केलिकः ९ रक्तपल्लवः १० चित्रः ११ विचित्रः १२ कर्णपूरः १३ सुभगः १४ दोहली १५ ताम्रपल्लवः १६ रोगितरुः १७ हेमपुष्पः १८ रामा १९ वामाङ्घ्रिघातनः २० पिण्डीपुष्पः २१ नटः २२ पल्लवद्रुः २३ । अस्य गुणाः शीतलत्वं । हृद्यत्वं । पित्तदाहश्रमापहत्वं । गुल्मशूलोदराध्माननाशित्वं । कृमिकारकत्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ अस्य पर्य्यायगुणाः ।
"अशोको हेमपुष्पश्च वञ्जुलस्ताम्रपल्लवः ।
कङ्केल्लिः पिण्डपुष्पश्च गन्धपुष्पो नटस्तथा ॥
अशोकः शीतलस्तिक्तो ग्राही वर्ण्यः कषायकः ।
दोषापचीतृषादाहकृमिशोषविषास्रजित्" ॥
इति भावप्रकाशः ॥
अस्य कलिकाभक्षणविधिरशोकाष्टमीशब्दे द्रष्टव्यः ॥ (योषितां सनूपुरचरणप्रहारेण अशोकानां पुष्पोद्गमो भवतीति कविसमयप्रसिद्धिः । यदुक्तम् ।
"पादाघातादशोकं विकसति बकुलं योषितामास्यमद्यैः" । इति साहित्यदर्पणे । अपरञ्च ।
"पादाहतः प्रमदया विकसत्यशोकः
शोकं जहाति बकुलो मुखशीधुसिक्तः" ।
अपरञ्च ।
"सनूपुररवेण स्त्रीचरणेनाभिताडनम् ।
दोहदं यदशोकस्य ततः पुष्पोद्गमो भवेत्" ॥
कुमारसम्भवेऽपि ।
"असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः" । इति ॥
"कुसुमं कृतदोहदस्त्वया
यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति" ।
इति रघुवंशे ।
"अशोकवल्कलक्वाथशृतं दुग्धं सुशीतलं ।
यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनः ॥"
इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहः ॥
"अशोकवल्कलप्रस्थं तोयाढके विपाचितं ।
तेन पादावशेषेण जीरकेण तथैव च ॥
घृतप्रस्थं पचेदेतत्प्रक्षिप्य च तथापरं ।
तण्डुलाम्बूत्थजात्क्षीरं प्रस्थं प्रस्थं पृथक् पृथक् ॥
केशराजरसस्यापि प्रस्थमेकं भिषग्वरः ।
जीवनीयैः पियालैश्च परूषसरलाञ्जनैः ॥
यष्ट्याह्वाशोकमूलञ्च मृद्वीका च शतावरी ।
तण्डुलीयकमूलञ्च कल्कैरेतैः पलार्द्धकैः ॥
शर्कराया पलान्यष्टौ गर्भदन्त्वाश्चूर्णितं ।
पुष्यायोगेन तत्पीतं निहन्यात् सर्व्वदोषजं ॥
श्वेतं कृष्णं तथा नीलं प्रदरं हन्ति दुस्तरं ।
कुक्षिशूलं योनिशूलं पृष्ठशूलञ्च दारुणं ॥
मन्दाग्निमरुचिं पाण्डुं कृशतां श्वासकासिनां ।
अशोकघृतमेतत्तु विख्यातं स्त्रीगदेषु च" ॥ * ॥
अशोकघृतं ॥ * ॥
इति वैद्यकस्नेहमालिकायां ॥)

अशोकः, त्रि, (नास्ति शोको यस्येति वाच्यलिङ्गः ।) शोकरहितः । यथा,
"त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ।
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु" ॥
इति तिथ्यादितत्त्वं ॥ (स्वनामख्यातो दशरथस्य मन्त्री । उक्तं रामायणे ।
"धृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थोऽप्यर्थसाधकः ।
अशोको धर्म्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽभवत्" ॥
स्वनामख्यातो नृपतिश्च, यथा भारते ।
"अशोको नाम राजाभून्महावीर्य्योऽपराजितः ।
तस्मादवरजो यस्तु राजन्नश्वपतिः स्मृतः" ॥

अशोकरोहिणी, स्त्री, (अशोकइव रोहतीति । अशोक + रुह + णिन् + ङीप् ।) कटुरोहिणी । इत्यमरः ॥ कट्कीति भाषा । ("अशोकरोहिणी-वैजयन्ती-सुवर्च्चला-पुनर्नवा-वृश्चिकाली ज्योतिष्मती-प्रभृतीनि समासेन तिक्तो वर्गः" ।
इति सुश्रुते ॥)

अशोकषष्ठी, स्त्री, (अशोका शोकादिरहिता या षष्ठी ।) चैत्रस्य शुक्ला षष्ठी । तस्यां षष्ठीपूजा यथा,
"चैत्रे मास्यसिते पक्षे षष्ठ्यां षष्ठीं समर्चयेत् ।
सुखाय पुत्रलाभाय शुक्लपक्षे तथैव च" ॥
इत्युत्तरकामाख्यातन्त्रे ११ पटलः ॥०॥
"प्रसूताया द्वादशे मासि सम्पूज्यापत्यवृद्धये ।

सुते जाते तथा षष्ठी षष्ठी दारुरूपिणी ॥
वैशाखे चान्दनी षष्ठी ज्यैष्ठे चारण्यसञ्ज्ञिता ।
आषाढे कार्दमी ज्ञेया श्रावणे लुण्ठनी मता ॥
भाद्रे चपेटी विख्याता दुर्गाख्याश्वयुजे तथा ।
नाड्याख्या कार्त्तिके मासि मार्गे मूलकरूपिणी ॥
पौषे मास्यन्नरूपा च शीतला तपसि स्मृता ॥
गोरूपिणी फाल्गुने च चैत्रेऽशोका प्रकीर्त्तिता" ॥
इति स्कान्दपुराणम् ॥

अशोका, स्त्री, ( न विद्यते शोको दुःखं यस्याम् । ) कटुकी । इत्यमरः । अर्हतां शासनदेवताभेदः । इति हेमचन्द्रः ॥

अशोकारि, पुं, (अशोकस्य अरिः ।) कदम्बवृक्षः । इति शब्दचन्द्रिका ॥

अशोकाष्टमी, स्त्री, ( न विद्यते शोको यस्यां सा । एवम्भूता अष्टमी । ) चैत्रमासीयशुक्लाष्टमी । तत्राष्टसङ्ख्याशोककलिकायुक्तजलपानं कर्त्तव्यम् । यथा, अथाशोकाष्टमी स्कान्दे ।
"मीने मधौ शुक्लपक्षे अशोकाख्या तथाष्टमी ।
पिबेदशोककलिकाः स्नायाल्लौहित्यवारिणि" ॥
अशोकाख्येत्युपादानात्तिथिमात्रेऽपि तत्पानं । फलन्तु मन्त्रलिङ्गात् शोकराहित्यमवगन्तव्यं । लौहित्यवारिणि ब्रह्मपुत्राख्यनदजले । पुनर्वसुयोगे तु फलाधिक्यं । आह लिङ्गगरुडपुराणयोः ।
"अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ।
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः" ॥
पानमन्त्रस्तु ।
"त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ।
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु" ॥
स्त्रीशूद्रकर्त्तृकपानेऽपि प्रागुक्तयुक्त्या स्वयं मन्त्रः पठनीयः । स्त्रीपक्षे ऊहोऽपि नास्ति विवृतमेकादशीतत्त्वे । अशोकपानन्तु पञ्चमार्द्धप्रहरव्यापिन्यामष्टम्यां भ्रातृद्वितीयोक्तवत् । इति तिथ्यादितत्त्वं ॥ * ॥ अपि च । अत्र स्रोतोजले बुधवारे पुनर्व्वसुनक्षत्रयुक्तशुक्लाष्टम्यां वाजपेययज्ञजन्यफलसमफलप्राप्तिकामः स्नायात् । ब्रह्मपुत्रे तु सर्व्वपापक्षयपूर्व्वकतीर्थस्नानजन्यफलप्राप्तिकामः स्नायात् । स्नानेतिकर्त्तव्यतां विधाय ।
"ॐ, ब्रह्मपुत्र महाभाग शान्तनोः कुलनन्दन ।
अमोघागर्भसम्भूत पापं लौहित्य मे हर" ॥
इति पठित्वा स्नायात् ।
केवलशुक्लाष्टम्यां ब्रह्मपदगमनफलं । पञ्चमार्द्धप्रहरव्यापिन्यां पुनर्व्वसुयुक्तायां केवलायां वा शुक्लाष्टम्यां शोकरहितत्वकामः अष्टावशोककलिका अहं पिबामि इति सङ्कल्प्य,—
"त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ।
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु" ॥
इति पठित्वा विष्णुपदजलमिश्रिता अशोककलिका अष्टौ पिबेत् । स्त्रीशूद्रानुपनीतैरपि मन्त्रः पठनीयः पौराणिकत्वात् । स्त्रीपक्षे लिङ्गोहो नास्ति प्रकृते समवेतार्थत्वात् । इति कृत्यतत्त्वं ॥

अशोच, पुं, (न शोचः । नञ्समासः ।) शोकाभावः । तत्पर्य्यायः । अनुहरतिः । इति त्रिकाण्डशेषः ।

अशोच्य, त्रि, (शुच् + कर्म्मणि ण्यत् । ततो नञ्तत्पुरुषः ।) शोकायोग्यः । अशोचनीयः । यथा,—
"अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः" ॥
इति श्रीभगवद्गीतायां २ अध्याये ११ श्लोकः ॥
(तथा च चाणक्ये,—
"अशोच्यो निर्धनः प्राज्ञोऽशोच्यः पण्डितबान्धवः ।
अशोच्या विधवा नारी पुत्रपौत्रप्रतिष्ठिता" )

अशौच, क्ली, (शुचेः पवित्रताया भावः शौचं ततो नञ्तत्पुरुषः ।) शुचित्वाभावः । स्मृतौ तु । वैदिककर्म्मानर्हत्वप्रयोजकीभूतसंस्कारविशेषः । यथा । वैदिककर्म्मानर्हत्वप्रयोजकसंस्कारविशेषरूपमशौचं । वैदिककर्म्मार्हत्वप्रयोजकसंस्काररूपं शौचं । न चाशौचाभाव एव शुद्धिर्नसंस्कारविशेष इति वाच्यं । अघानां यौगपद्येत्विति न वर्द्धयेदघानि इत्येताभ्यामशौचे पापपर्य्यायाघपदप्रदर्शनात् अशौचपदस्य यथाभावरूपत्वं । तथा,—
"देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनां ।
आयान्ति तस्मात्तदहः पुण्यं पवित्रं सर्व्वदा" ॥
इत्यादित्यपुराणीयेन शौचे पुण्यपददर्शनात् शौचस्यापि भावरूपता प्रतीयते । इति शुद्धितत्त्वं ॥ * ॥ मन्त्रदगुरुमरणे अशौचं यथा,—
"गृहीतो देवतामन्त्रः सावित्रीग्रहणं कृतं ।
यस्मात्तस्य त्रिरात्रन्तु ब्रह्मविद्याग्रहो यतः ॥
उपनीयाध्यापको यस्तस्मिन्नपि त्रिरात्रकं ।
वेदवेदाङ्गशास्त्राणां व्याख्यानं शिक्षितं यतः ॥
ज्ञानं प्रतिष्ठितं येन वेदाभ्यासो यतः कृतः ।
तस्मिन्मृते चैकरात्रं गुरौ शिष्ये तथैव च ॥"
इति मत्स्यसूक्ते महातन्त्रे ३५ पटलः ॥ अपि च ।
"गुरावुपरते चैव त्र्यहाणि शिष्यसन्ततौ" ।
इति विज्ञानतन्त्रं ॥ * ॥ अन्यत् पूर्व्वलिखितं । विहितकर्म्मविरोध्यदृष्टविशेषः । तदनेकविधं तत्र शुद्धितत्त्वोक्ताशौचानि सङ्गृह्यन्ते ॥

अथ सपिण्डाद्यशौचं १ ॥

जनने मरणे च सप्तमपुरुषपर्य्यन्तं सम्पूर्णाशौचं । तत्र विप्रस्य दशाहं क्षत्रियस्य द्वादशाहं । वैश्यस्य पञ्चदशाहं । शूद्रस्य मासः ॥ ( यथाह मनुः ।
"शुध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति" ॥)
जनने मरणे च दशमपुरुषपर्य्यन्तं सर्व्वेषां वर्णानां त्र्यहं । चतुर्द्दशपुरुषपर्य्यन्तं पक्षिणी ॥
जनने मरणे च जन्मनामस्मृतिपर्य्यन्तं सर्व्ववर्णानामेकाहं ॥ जन्मनामस्मृतेरभावे स्नानमात्रं ॥
अशौचं प्रति कन्यायास्त्रिपुरुषं सापिण्ड्यं ॥ मातामहमरणे सर्व्वेषां वर्णानां त्रिरात्रं ॥
मातृष्वस्रीय-पितृष्वस्रीय-मातुलपुत्र-भागिनेयमरणे सर्व्ववर्णानां पक्षिणी ॥
पितामहभगिनीपुत्र--पितामहीभगिनीपुत्र–पितामहीभ्रातृपुत्ररूप-पितृबान्धवत्रयमरणे सर्व्ववर्णानां पक्षिणी ॥
मातामहभगिनीपुत्र मातामहीभगिनीपुत्र-मातामहीभ्रातृपुत्ररूप-मातृबान्धवत्रयमरणे सर्व्ववर्णानामहोरात्रं ॥
एकग्रामवासिस्वगोत्रजमरणे सर्व्ववर्णानामहोरात्रं ॥
औरसव्यतिरिक्तपुत्रजननमरणयोः परपूर्व्वभार्य्याप्रसवमरणयोश्च सर्व्ववर्णानां त्रिरात्रं ॥
आचार्य्यमरणे ब्राह्मणादिवर्णत्रयाणां त्रिरात्रं समानजातीयोत्कृष्टजातीयपुरुषान्तर-संगृहीतस्वभार्य्यामरणे सर्व्वेषां त्रिरात्रं ॥ हीनवर्णोपभुक्ता मरणे तु नाशौचं ॥
भगिनीपुत्रगृहे मातृष्वसृभ्रातृपुत्रगृहे पितृष्वसृ पैतृष्वस्रीयगृहे मातुलपुत्रस्य जामातृश्वश्रूश्वशुरयोर्म्मरणे भगिनीपुत्रादिचतुर्णां त्रिरात्रं ॥
श्वश्रूश्वशुरयोः सन्निधिमरणे सर्व्ववर्णानां त्रिरात्रं ॥ श्वश्रूश्वशुरयोरेकग्रामस्थितयोर्म्मरणे सर्व्वेषां पक्षिणी ॥
श्वश्रूश्वशुरयोर्भिन्नग्राममरणे सर्व्वेषामहोरात्रं ॥
भगिनी-मातुलानी-मातुल पितृष्वसृ-मातृष्वसृ गुर्व्वङ्गना-मातामही-मरणे सर्व्वेषां पक्षिणी ॥
आचार्य्यपत्नीपुत्रयोरुपाध्यायस्य मातृवैमात्रेयस्य श्यालकस्य सहाध्यायिनः शिष्यस्य च मरणे सर्व्ववर्णानामहोरात्रं ॥ मातृष्वसृपुत्र-पितृष्वसृपुत्र मातुलपुत्ररूपात्मबान्धवत्रयमरणे सर्व्ववर्णानां पक्षिणी ॥
(तथा च मनुः —
"मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्त्विग्बान्धवेषु च" ।
प्रथममन्येनोढा तेनैव जनितपुत्रा पुत्रसहिते वान्यमाश्रिता पश्चात्तेनापि जनितपुत्रा तयोः पुत्रयोर्यथासम्भवं प्रसवमरणयोर्द्वितीयपुत्रपितुस्त्रिरात्रं । तत्सपिण्डानामेकरात्रं । तद्द्वितीयपितुर्म्मरणे तथाविधपुत्रयोरपि त्रिरात्रं । तथाविधपुत्रयोः परस्परप्रसवमरणयोर्म्मातृजात्युक्ताशौचं ॥
दौहित्रमरणे सर्व्वेषां वर्णानां पक्षिणी ॥
पितृमातृमरणे ऊढानां कन्यानां त्रिरात्रं ॥ यदि मातुलमातृष्वसृपितृष्वसृप्रभृतीनां दहनवहनं करोति तदा सर्व्वेषां वर्णानां त्रिरात्रं ॥
मातामहादीनां त्रिरात्राभ्यन्तरं मरणश्रवणे तच्छेषेण शुद्धिः । तत्कालोत्तरश्रवणे तु नाशौचं । किन्त्वाचारात् स्नानमात्रं ॥

अथ बालाद्यशौचं ॥ २

नवमादिमासजातबालस्याशौचकालाभ्यन्तरे मरणे मातापित्रोरस्पृश्यत्वं युक्तं तदेव स्वजात्युक्तजननाशौचं । ज्ञातीनान्त्वशौचं नास्ति ॥
नवमादिमासमृतजातयोः कन्यापुत्रयोः पित्रादिसपिण्डानां मातुश्च जननाशौचं ॥ तत्र ब्राह्मणानां दशाहं शूद्राणां मासः ॥ पुत्रजन्मनि पितुः सचेलं स्नानं । पुत्रमुखदर्शनात्परं पुनः सचेलं स्नानं ॥
(तथाच संवर्त्तः,—
"जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचेलं तु विधीयते ।

माता शुध्येद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः” ॥)

पुत्त्रकन्याजनने ब्राह्मण्या दशाहानन्तरं लौकिककर्म्माधिकारः ।

पुत्त्रजनने ब्राह्मण्या विंशतिरात्रोत्तरस्नानात् वैदिककर्म्माधिकारः ।

कन्याजनने ब्राह्मण्या मासोत्तरस्नानात् वैदिककर्म्माधिकारः ॥

शूद्राया कन्यापुत्त्रजनने त्रयोदशाहोत्तरं लौकिककर्म्माधिकारः । वैदिककर्म्मणि तु मासोत्तरस्नानात् शुद्धिः ॥

एतत् सर्व्वं कन्यापुत्त्रयोर्विद्यमानत्वे बोध्यं ॥

जननाशौचोत्तरं षण्मासाभ्यन्तरमजातदन्तमरणे मातापित्रोरेकाहः । सपिण्डानान्तु सद्यः शौचं ॥

षण्मासाभ्यन्तरेऽपि जातदन्तस्य मरणे मातापित्रोस्त्र्यहः । सपिण्डानामेकाहः ॥ षण्मासोपरि द्विवर्षपर्य्यन्त बालकमरणे मातापित्रोस्त्र्यहः । सपिण्डानामकृतचूडे एकाहः । कृतचूडे त्र्यहः ॥

(अत्र मनुः,—

“नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ।
निर्वृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥
ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः ।
अलङ्कृत्य शुचौ भूमावस्थिसञ्चयनादृते ॥
नास्य कार्य्योऽग्निसंस्कारो न च कार्य्योदकक्रिया ।
अरण्ये काष्ठवत् त्यक्त्वा क्षपेयुस्त्र्यहमेव वा ॥”)

द्विवर्षोपरि मासत्रयाधिकषड्वर्षपर्य्यन्तमनुपनीतबालकस्य मरणे मातापित्रादिसपिण्डानां त्र्यहः ॥

तन्मध्येऽप्युपनीतस्य मरणे दशाहः । मासत्रयाधिकषड्वर्षोपरि मरणे पित्रादिसपिण्डानां दशाहः ॥

शूद्रस्य षण्मासाभ्यन्तरे अनुत्पन्नदन्तस्य मरणे त्रिरात्रः । उत्पन्नदन्तस्य पञ्चाहः ॥ षण्मासोपरि द्विवर्षाभ्यन्तरे अकृतचूडमरणे पञ्चाहः । तत्रापि कृतचूडमरणे द्वादशाहः ॥ द्विवर्षोपरि षड्वर्षाभ्यन्तरे मरणे द्वादशाहः । अत्रापि दैवात् कृतोद्वाहे मासो व्यवह्रियते ॥ षड्वर्षोपरि मासः ॥

अथ स्त्र्यशौचं ॥ ३

कन्याया जन्मावधिद्विवर्षाभ्यन्तरे मरणे सर्व्ववर्णानां पित्रादिसपिण्डानां सद्यः शौचं । द्विवर्षोपरि वाग्दानपर्य्यन्तमेकाहः ॥

वाग्दानोत्तरं विवाहपर्य्यन्तं कन्यामरणे भर्तृकुले पितृकुले च त्रिरात्रं

(“स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः” ।
इति मनुः ।)

विवाहोत्तरं मरणे भर्तृकुलएव सम्पूर्णाशौचं ॥

दन्तजन्मपर्य्यन्तं भगिनीमरणे सोदराणां सद्यः शौचं ॥

चूडापर्य्यन्तं भगिनीमरणे एकरात्रं । विवाहपर्य्यन्तं त्रिरात्रं ॥

दत्तकन्याया पितृगृहे प्रसवमरणयोः पित्रोः सोदरादिसवर्णयोस्त्रिरात्रं । तथाविधबन्धूनामेकरात्रं । तथाविधसवर्णानान्तु अनेकाह पूर्णाशौचं । एतत्सर्वं सर्व्वसाधारणं ॥

अथ गर्भस्रावाशौचं ॥ ४

षण्मासाभ्यन्तरे गर्भस्रावे सर्व्ववर्णस्त्रीणामेवाशौचं । तच्च लौकिकवैदिककर्म्मणोर्गर्भमाससमसङ्ख्यदिनव्यापकं ॥ (इति मनुः ।)

(“रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति” ॥

द्वितीयमासावधिगर्भस्रावे माससमसङ्ख्यदिनाधिकादेकदिनात्परं ब्राह्मण्या वैदिककर्म्माधिकारः ॥ क्षत्रियाया गर्भमाससमसङ्ख्यदिनाधिकात् दिनद्वयात् । वैश्याया दिनत्रयात् । शूद्राया षड्दिनात् ॥

सप्तमाष्टममासयोर्गर्भपतने मातुः सम्पूर्णाशौचं । सगुणसपिण्डानां सद्यः शौचं । निर्गुणपित्रादिसपिण्डानामहोरात्रं । यथेष्टाचरणशीलानां सपिण्डानां त्रिरात्रं तत्र जातस्य तद्दिनएव मरणे एव ज्ञेयं ॥ सप्तमाष्टममासजातबालस्य जन्मद्वितीयदिनादौ मरणे नवमादिमासजातबालकमरणवदशौचं । तच्च बालाद्यशौचे विवृतं ॥

अथ मृत्युविशेषाशौचं ॥ ५

शास्त्राननुमतबुद्धिपूर्व्वकात्मघातिनो नाशौचदाहश्राद्धादि ॥

शास्त्रानुमत्या अनशनादिमृतस्य प्रमादादनशनाशनि-वह्नि-जलोच्चदेशप्रपतन-सङ्ग्राम-शृङ्गि-दंष्ट्रि-नखि-व्याल-विष-चण्डाल-चौर-हतस्य च त्रिरात्रं ॥ शृङ्ग्यादिभिः स्त्रिया च क्रीडां कुर्व्वतः प्रमदाप्रमादमृतस्य नाशौचादि ॥ नागविप्रियकारित्वेन तद्धतस्य मरणोद्देशप्रवृत्तविद्युद्धतस्य चौर्य्यदोषेण राज्ञा हतस्य कलहं कृत्वा चाण्डालादैरसमानवर्णैर्हतस्य विप्रादेर्व्याधिजनकौषधस्य विषस्य वह्नेर्वा दातुर्म्मरणे पाषण्डाश्रितस्य नित्यपरापकारिणः क्रोधात् स्वयं प्रायविषवह्न्यादिशस्त्रोद्बन्धन जल-गिरि वृक्षप्रपात-मृतस्य चर्म्मास्थ्यादिमयपात्रनिर्म्माटविप्रादेर्म्मनुष्यविक्रयस्थानाधिकारिणः कण्ठदेशोत्पन्नभगरोगस्य पुंकर्म्माशक्तनपुंसकस्य ब्राह्मणविषयापराधकरणान्निहतस्य बुद्धिपूर्व्वकब्राह्मणहतस्य च महापातकिनो गलत्कुष्ठिनस्य एवंविधपतितानां मरणे च न दाहाशौचादिकं कार्य्यं । तत्कृत्वा तप्तकृच्छ्रद्वयं कुर्य्यात् ॥

( अत्र मनुः,—

“वृथासङ्करजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् ।
आत्मनस्त्यागिनाञ्चैव निवर्त्तेतोदकक्रिया ॥
पाषण्डमाश्रितानाञ्च चरन्तीनाञ्च कामतः ।
गर्भभर्त्तृद्रुहाञ्चैव सुरापीनाञ्च योषिताम्” ॥

इति । ) म्लेच्छतस्करादिभिर्युद्धे स्वाम्यर्थं हतविप्रादेर्दाहाशौचादिकमस्त्येव ॥

कृतप्रायश्चित्तगलत्कुष्ठिनो दाहाशौचादिकं कार्य्यं ॥

शस्त्रैकाभिमुखहतस्य तु सद्यः शौचं दाहादि च ॥

गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा दण्डेन युद्धे हतस्याहोरात्रमशौचं ॥

नृपतिरहितयुद्धे नगुडादिहतस्य पराङ्मुखहतस्य च त्रिरात्राशौचं ॥

गोविप्रपालनेऽभिमुखयुद्धहतस्य सद्यः शौचं पराङ्मुखहतस्य तु त्रिरात्रं ॥

लौकिकपारिभाषिकोभयशस्त्रघातेतरक्षतमरणे सर्व्ववर्णानां सप्ताहमध्ये त्र्यहं सप्ताहादूर्द्ध्वं सम्पूर्णाशौचं ॥

लौकिकपारिभाषिकशस्त्रघातमरणे त्र्यहमध्ये त्र्यहं त्र्यहादूर्द्ध्वं प्रकृताशौचं ॥

लौकिकशस्त्रघातः खड्गशरादिघातः ॥ पारिभाषिकशस्त्रघातस्तु ।

“पक्षिमत्स्यमृगैर्ये तु दंष्ट्रिशृङ्गिनखैर्हताः ।
पतनानशनप्रायैर्व्वज्राग्निविषबन्धनैः ॥
मृता जलप्रवेशेन ते वै शस्त्रहता स्मृताः” ॥

इति देवीपुराणोक्तः ॥

अथ विदेशस्थाशौचं ॥ ६

अशौचकालाभ्यन्तरे विदेशस्थजननमरणाशौचश्रवणे शेषाहोभिः शुद्धिः ॥

(“विगतं तु विदेशस्थं शृणुयात् यो ह्यनिर्दशम् ।
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्” ॥
इति मनुः ।)

अशौचकालोत्तरं विदेशस्थज्ञातिजननश्रवणेऽशौचं नास्त्येव । पुत्त्रजननश्रवणे तु सचेलस्नानात् शुद्धिः ॥ ( अत्र मनुराह ।

“निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्त्रस्य जन्म च ।
सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः” ॥ )

सम्पूर्णाशौचिमरणे वर्षाभ्यन्तरश्रवणे सपिण्डानां त्रिरात्रेण शुद्धिः । सचेलस्नानादस्पृश्यत्वनिवृत्तिः । वर्षोत्तरश्रवणे तु सपिण्डानां स्नानेन शुद्धिः ॥ ( अत्र मनुः ।

“अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वापो विशुध्यति” ॥)

मातृ-पितृ भर्तृ मरणे वर्षोत्तरश्रवणे पुत्त्रपत्न्योरेकाहेन शुद्धिः ॥ द्विवर्षोत्तरश्रवणे स्नानमात्रं ॥ पूर्णाशौचातिक्रमएव विदेशस्थमरणाशौचश्रवणे त्र्यहाशौचं । न खण्डाशौचातिक्रमे । यत्र मरणमात्रं श्रुतं विशिष्य मासादिकमज्ञातं तत्र श्रवणदिनावधिसजात्युक्तमशौचं । खण्डाशौचेऽपि महागुरुनिपाते दशरात्रं ॥

अथाशौचसङ्करः ॥ ७

जननाशौचमध्ये जननाशौचान्तरपाते मरणाशौचमध्ये मरणाशौचान्तरपाते च पूर्व्वाशौचकालेन सर्व्ववर्णानां शुद्धिः ॥ ( यथाह मनुः —

“अन्तर्दशाहे स्यातास्चेत् पुनर्म्मरणजन्मनी ।
तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम्” ॥)

पूर्व्वजननाशौचान्तदिने पूर्व्वजननाशौचान्तरपाते पूर्व्वमरणाशौचान्तदिने पूर्व्वमरणाशौचान्तरपाते च पूर्व्वाशौचान्तिमदिनोत्तरदिनद्वयेन शुद्धिः ॥ पूर्व्वजननाशौचान्तिमदिवसीयोत्तरप्रभाते सूर्य्योदयात् पूर्व्वं तत्पाते सूर्य्योदयावधिदिनत्रयेण शुद्धिः ॥

एवं मरणाशौचेऽपि ॥

पूर्व्वाशौचर्द्धितदिनद्वयाभ्यन्तरेऽशौचान्तरपाते पूर्व्वाशौचशमनेन शुद्धिः ॥

अशौचस्थितदाशौचान्तदिनकृत्यं श्राद्धादिकमेकदैव तद्दितीयदिने तस्य श्राद्धादिकं तद्दिने ॥

अत्र च अशौचान्तिमदिनतत्प्रभातयो स्वपुत्रजनने पितृमातृभर्तृमरणे च न दिनद्वयत्रयवृद्धि । किन्तु स्वपुत्रजननावधि पितृमातृभर्तृमरणावधि च पूर्णाशौच ॥ ज्ञातिजननाशौचपूर्व्वार्द्धे • स्वपुत्रजनने ज्ञातिजननाशौचकालेन शुद्धि ॥ परार्द्धे चेत् स्वपुत्रजननाशौचकालेन शुद्धि ॥

ज्ञातिमरणाशौचकालमध्ये पितृमातृभर्तृमरणे पूर्व्वार्द्धे पूर्व्वाशौचकालेन परार्द्धे पराशौचकालेन शुद्धिः ॥

स्वपुत्रजननाशौचान्तिमदिनतत्प्रभातयोर्ज्ञातिजनने पितृमातृभर्तृमरणाशौचान्तिमदिनतत्प्रभातयोर्ज्ञातिमरणेऽपि न दिनद्वयत्रयवृद्धि । किन्तु पूर्व्वाशौचकालेन शुद्धि ॥

स्वपुत्रजननाशौचान्तिमदिनतत्प्रभातयोः स्वपुत्रान्तरजनने एव मातृमरणाशौचान्तिमदिनतत्प्रभातयो पितृमरणे पितृमरणाशौचान्तिमदिनतत्प्रभातयोर्म्मातृमरणे च क्रमेण दिनद्वयत्रयवृद्धि ॥

जननाशौचद्वयसन्निपाते पूर्व्वजातो यदाशौचकालाभ्यन्तरे मृतस्तदा सपिण्डाना सद्यःशौचेन पूर्व्वाशौचनाश ॥ तन्नाशादेव परार्द्धजातबालस्य मातृपितृव्यतिरिक्तसपिण्डाना पूर्व्वार्द्धजातबालस्य मातापित्रादिसकलसपिण्डाना परजननाशौचस्य निवृत्ति ॥ पूर्व्वजातबालस्य मातापित्रोस्त्वस्पृश्यत्वयुक्तस्वजात्युक्तजननाशौच ॥ जननाशौचद्वयसन्निपाते प्रथमजननाशौचपूर्व्वार्द्धजातबालमरणे तन्मातापित्रो पूर्व्वाशौचकालपर्य्यन्त अङ्गास्पृश्यत्वयुक्तमशौच ॥ परार्द्धजातबालमरणे तु तज्जननावधि तन्मातापित्रोरङ्गास्पृश्यत्वयुक्तस्वजात्युक्तजननाशौचं । विशेषातिरिक्तसमसङ्ख्यदिवसीयजननमरणाशौचयो सन्निपाते मरणाशौचकालेन शुद्धिः । असमसङ्ख्यदिवसीयजननमरणाशौचयो सन्निपाते तु दीर्घाशौचकालेन शुद्धिः ॥ शूद्रेतराया पुत्रजननप्रयुक्तविंशतिरात्राशौचाभ्यन्तरे पत्युर्म्मरणेऽपि पुत्रजननाशौचकालेन शुद्धि ॥

पूर्व्वोक्तसपिण्डद्वयजननवर्द्धिताशौचमध्ये पितृमातृभर्तृमरणेऽपि वर्द्धितसपिण्डद्वयजननाशौचकालेन शुद्धिः । एकाहे पूर्णाशौचिसपिण्डद्वयमरणे यावदशौच तावत् सर्व्वसपिण्डानामस्पृश्यत्व ॥

सकुल्यपर्य्यायसमानोदकमरणे विद्युदादिमरणेऽपि अशौच त्रिरात्र । अङ्गास्पृश्यत्वमेकरात्र । तेनैतत् त्रिरात्रद्वय गुरु ॥ विदेशस्थमरणे अर्थात् अशौचमध्ये अश्रुतसपिण्डमरणे त्रिरात्राशौच अङ्गास्पृश्यत्वस्नानापनेय । अतस्तल्लघु । एषा सन्निपाते गुरुणैव शुद्धि ॥

विदेशमृतज्ञातित्रिरात्राशौचस्य लघुत्व विदेशमृतपितृमातृभर्तृत्रिरात्राशौचेन शुद्धि ॥

तुल्यत्रिरात्राशौचसन्निपाते पूर्व्वेणैव शुद्धि ॥

कन्यापुत्रयमजोत्पत्तौ सर्व्ववर्णाया मातुर्म्मासेन शुद्धि पित्रादिसपिण्डाना स्वजात्युक्ताशौचं ॥ तयोरशौचमध्ये एकतरमरणे शूद्राभिन्नमातुः कन्यामरणात् सद्य शुद्धिः । न तु पुत्रमरणात ॥ पित्रादिसपिण्डानान्तु प्रथमजातमरणात् शुद्धि । न तु परजातमरणात् ॥ शूद्राया यमजोत्पत्तौ प्रथमजातमरणाशौचेन शुद्धि । न तु परजातमरणात् ॥ पित्रादिसपिण्डानान्तु प्रथमजातमरणात् शुद्धि न तु परजातमरणात् ॥ एवमन्यद्भाव्यं सुधीभि ॥

अथ शवानुगमनाद्यशौचं ॥ ८

ब्राह्मणशवानुगमने ब्राह्मणस्य सचेलस्नानाग्निस्पर्शघृतप्राशने शुद्धि ॥

क्षत्त्रियशवानुगमने ब्राह्मणस्य एकाहेन शुद्धि ॥

वैश्यशवानुगमने ब्राह्मणस्य द्व्यहेन शुद्धि ॥ शूद्रशवानुगमने ब्राह्मणस्य प्राणायामशतेन दिनत्रयेण च शुद्धिः ॥

प्रमादात् शूद्रशवानुगमने ब्राह्मणस्य जलावगाहनाग्निस्पर्शघृतप्राशने शुद्धि ॥

अनाथब्राह्मणस्य धर्म्मबुद्ध्या दहनवहनयो स्नानघृतप्राशनाभ्या सद्य शौच ॥

लोभेन सजातीयदाहे स्वस्वजात्युक्ताशौच ॥

असजातीयशवदहनवहनस्पर्शे शवजात्युक्ताशौच॥

स्नेहादसम्बन्धिदाहकविप्रादेस्तद्गृहवासे त्रिरात्र । अशौचिकुलान्नभोजने तत्तुल्याशौच ॥ अशौचान्नभोजन विना तद्गृहवासेऽहोरात्र ॥

विशेषवचनाभावे सम्बन्धिनो मातुलादेरस्नेहेनापि दाहे त्रिरात्र ॥

चिताधूमसेवने स्नानात् शुद्धि ॥ (यथाह मनु ।

"असपिण्ड द्विज प्रेत विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ।
विशुध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान् ॥
यद्यन्नमत्ति तेषा तु दशाहेनैव शुध्यति ।
अनदन्नन्नमह्नैव स चेत् तस्मिन् गृहे वसेत् ॥
अनुगम्येच्छया प्रेत ज्ञातिमज्ञातिमेव वा ।
स्नात्वा सचेल स्पृष्ट्वाग्नि घृत प्राश्य विशुध्यति" ॥)

शूद्रे मृतेऽस्थिसञ्चयनकालाभ्यन्तरे तद्गृह गत्वाश्रुनिपातेन विप्रस्य त्रिरात्रं ॥ स्थानान्तरेऽश्रुपातनेऽहोरात्र ॥

शूद्रे मृतेऽस्थिसञ्चयनकालादूर्द्ध मासाभ्यन्तरे तद्गृहेऽश्रुपातने विप्रस्याहोरात्र सचेलस्नानञ्च ॥

अस्थिसञ्चयनात् पूर्व्व विप्रगृहे रोदने विप्रस्य एकाहेन शुद्धिः ॥

क्षत्रवैश्ययोर्गृहे रोदने विप्रस्य द्व्यहेन शुद्धि ॥

शूद्रस्तु सर्व्वत्र रोदने नक्तेन शुद्ध ॥

मृतशूद्रस्य बान्धवै सह रोदनरहितविलापमात्रे ब्राह्मणस्याहोरात्र ॥

अस्थिसञ्चयनकालस्तु पूर्णाशौचे ब्राह्मणस्य चतुर्थाहः । क्षत्रियस्य षष्ठाह । वैश्यस्य अष्टमाहः । शूद्रस्य दशमाह ॥ त्र्यहाशौचे सर्व्वेषां द्वितीयाहः ॥

पूर्णाशौचिमरणे ब्राह्मणस्य चतुर्थाहेऽस्पृश्यतानिवृत्ति ॥ क्षत्रियस्य षष्ठदिने । वैश्यस्य अष्टमदिने । शूद्रस्य दशमदिनेऽस्पृश्यतानिवृत्ति ॥

सर्व्वस्य खण्डाशौचे त्रिभागकालेनास्पृश्यतानिवृत्तिः ।

अतीतेऽशौचे सचेलस्नानेनास्पृश्यतानिवृत्तिः ॥

जननाशौचे सपिण्डानां अस्पृश्यता नास्ति ॥ पुत्रोत्पत्तौ स्नानात् पूर्व्व पितुर्विमातृणाञ्चास्पृश्यत्व ॥

सूतिकास्पर्शे पितुर्विमातृणाञ्च सूतिकातुल्यकालास्पृश्यत्वं । अन्येषा स्नानमात्र ॥

कन्यापुत्रयोर्ज्जनने मातुर्दशरात्रमस्पृश्यत्व ॥

कन्यापुत्रयोर्जनने शूद्रायास्त्रयोदशरात्रमस्पृश्यत्व॥

अथ क्षताशौच ॥ ९

नाभेरूर्द्धमधोवा रुधिरस्रवे सन्ध्यावन्दनाद्यतिरिक्तकर्म्मण्येकाहः ॥

दन्तरक्तस्रवे सर्व्वत्र कर्म्मण्येकाह ॥

अथ रजस्वलाशौच ॥ १०

तत्र प्रथमदिनावधि त्रिरात्रमशौच ॥ त्रिरात्रात् पर सप्तदशाहपर्य्यन्त रजोदर्शनेऽशौचाभाव ॥

अष्टादशाहे रजोदर्शने एकाहमशौच ॥

ऊनविंशदिने रजोदर्शने द्व्यहाशौच ॥

ऊनविंशतिदिनात् पर रजोदर्शने त्रिरात्राशौचा रजस्वला चतुर्थेऽह्नि भर्तृसेवनादिलौकिककर्म्मणि शुद्धा । पञ्चमेऽहनि दैवपैत्रकर्म्मणोः शुद्धा ॥ ("शुद्धाभर्त्तुश्चतुर्थेऽह्नि अशुद्धा दैवपैत्रयो । दैवे कर्म्मणि पैत्रे च पञ्चमेऽहनि शुध्यति" । इति शुद्धितत्त्वे ।)

रजस्वलाया अशौचमध्ये सूतिकास्पर्शे अन्यत्र जातिस्पर्शे च त्रिरात्रोपवासेन शुद्धि ॥ उपवासस्तु अशौचात् पर करणीय ॥

भर्तृपूरकपिण्डदानकाले यदि रजस्वला भवति तदा वस्त्र त्यक्त्वा पुन स्नात्वा पूरक दद्यात् किन्तु शुद्ध्युत्तराशौचदिनासत्त्वएवाय विधि । तत्सत्त्वे तु शुद्धया भूत्वा देय ॥

आब्दिकश्राद्धकालेऽपुत्रभार्य्या यदि रजस्वला भवति तदा पञ्चमेऽहनि तच्छ्राद्धं कुर्य्यात् ॥ (अभिषिक्तक्षत्रियाणां चान्द्रायणादिव्रतकारिणां गवामयनादियागप्रवृत्तानाञ्च सपिण्डमरणादावशौचाभावएव । उक्तञ्च मनुना ।

"न राज्ञामघदोषोऽस्ति व्रतिनां न च सत्रिणाम् ।
ऐन्द्र स्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा" ।

विष्णुनाप्युक्तम् । "अशौच न राज्ञां राजकर्म्मणि, न व्रतिनां व्रते, न सत्रिणां सत्रे" । इति ।)

इत्यशौचव्यवस्था समाप्ता ॥

अश्मः, पु, पर्व्वत । मेघ । वैदिकशब्दोऽय ।

अश्मकदली, स्त्री, (अश्मा इव कदलीफल यस्याः ।) कदलीविशेष । इति राजनिर्घण्टः ॥ अस्याः गुणपर्य्यायौ काष्ठकदलीशब्दे द्रष्टव्यौ ॥

अश्मकेतु, स्त्री, ( अश्मेव केतुरस्याः ।) क्षुद्रपाषाणभेदावृत्त ॥ इति राजनिर्घण्टः ॥

अश्मगर्भ, पु, (अश्मेव गर्भो यस्य ।) हरिन्मणिः । मरकत । इत्यमर ॥

अश्मगर्भज, क्ली, (अश्मनो गर्भाज्जायते इति । अश्मगर्भ + जन् + ड ।) मरकत । इति राजनिर्घण्टः ॥ पान्ना इति भाषा ॥ (पु, पाषाणजो वह्नि ।)

अश्मघ्नः, पु, (अश्मान पाषाण हन्ति भिनत्तीति । अश्म

+हन्+टक्।) पाषाणभेदकवृक्षः। इति राज-
निर्घण्टः॥ छायालुडी इति भाषा॥ अश्मभेदशब्दे-
ऽस्य पर्य्यायगुणौ ज्ञातव्यौ॥

अश्मजं, क्ली, (अश्मनः प्रस्तराज्जायते इति। अश्मन्
+जन+ड।) शिलाजतु। इत्यमरः॥ लौहं
इति राजनिर्घण्टः॥
("अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्।
तेषां सर्व्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति॥"
इति मनुः॥ शिलाजत्वर्थे वैद्यकचक्रपाणिसंग्र-
हस्थाश्मरीरोगचिकित्सायां वर्ण्यते यथा॥
'अमृता चाश्मजं देयं'॥)

अश्मजतुक, क्ली, (अश्मजतु+स्वार्थे कन्।) शिला-
जतु। इति राजनिर्घण्टः॥ (शिलाजतुशब्देऽस्य
विशेषविवरणं ज्ञेयं॥)

अश्मदारणः, पुं, (अश्मानं दारयतीति। अश्म+
दृ+णिच्+ल्युट्।) टङ्कः। पाषाणविदारणास्त्रं।
इति जटाधरः॥ टाँकी इति पश्चिमदेशे ख्यातः॥

अश्मन्त, क्ली, (अश्मनः प्रस्तरस्यापि अन्तो भवत्यत्र।
शकन्ध्वादिरयं।) चुल्ली। अशुभं। मरणं। अन-
वधिः। क्षेत्रं। इति मेदिनी॥ (पुं, धर्म्मात्
मरुत्वत्यां जातः स्वनामख्यातो मरुद्देवः। तथा च
हरिवंशे।
"मरुत्वती मरुत्वन्तो देवानजनयत्सुतान्।"
"अश्मन्तं चित्ररश्मिञ्च तथा निष्कुषितं नृप॥")

अश्मन्तक, क्ली, (अश्मन्त+स्वार्थे कन्।) चुल्ली।
मल्लिकाच्छादनं। दीपाधाराच्छादनं। इति मे-
दिनी॥ सेज आँधारिया इत्यादि भाषा।

अश्मन्तक, पुं, अश्मन्त+कन्।) तृणविशेषः। अस्त्र-
कुचाइ इति भाषा। तत्पर्य्यायः। अस्फोटक २।
इति रत्नमाला॥ वृक्षविशेषः। आवुटा इति
पश्चिमदेशे ख्यातः। तत्पर्य्यायः। इन्दुक २ कुराली
३ अम्लपत्र ४ सूक्ष्मत्वक् ५ नीलपत्रः ६ यमलप-
त्रक ७। अस्य गुणाः। मधुरत्वं। कषायत्वं। सुशी-
तलत्वं। पित्तप्रमेहविदाहतृष्णाविषमज्वरविषा-
र्त्तिच्छर्द्दिभूतनाशित्वञ्च॥ इति राजनिर्घण्टः॥

अश्मपुष्प, क्ली, (अश्मनः पुष्पमिव।) शैलेयं। शैल-
जनामगन्धद्रव्यं। इत्यमरः॥

अश्ममाल, क्ली, (अश्मेव भालयति चूर्णितं करोति।
भलचूर्णने। भल+णिच्+अण्। पृषोदरादि-
त्वात् लस्य लत्वम्।) द्रव्यचूर्णार्थलौहादिपात्रं।
तत्पर्य्यायः। लौहभाण्ड २। इति शब्दचन्द्रिका॥
हामानदिस्ता इति भाषा॥

अश्मभित्, [द्,] पुं, (अश्मानं भिनत्तीति। अश्म+
भिद्+क्विप्।) पाषाणभेदी वृक्षः। इति रत्न-
माला॥ प्रस्तरभेदके त्रि॥

अश्मभेद, पुं, (अश्मनो भेदो भवत्यस्मात्।) पाषाण-
भेदी वृक्षः। इति रत्नमाला॥ (अस्य गुणाः।
"अश्मभेदो हिमस्तिक्तः कषायो वस्तिशोधनः।
भेदनो हन्ति दोषार्शोगुल्मकृच्छ्राश्महृद्रुजः॥
योनिरोगान् प्रमेहांश्च प्लीहशूलव्रणानि च"।
इति भावप्रकाशः॥
"एरण्डो विजपूरश्च गोक्षुरः वृहतीद्वयं।
अश्मभेदस्तथाबिल्व एतन्मूलः शृतः शृतः॥
एरण्डतैलहिङ्ग्वाढ्यो यवक्षारः ससैन्धवः।
स्तनकवङ्कटीमेढ्रहृदयोत्थव्यथां जयेत्"॥
इति शार्ङ्गधरः॥)

अश्मयोनि, पुं, (अश्मा योनिरुत्पत्तिस्थानं यस्य।)
मरकतमणिः। इत्यमरटीकायां भरतः॥

अश्मर, त्रि, (अश्मनोऽयमिति। अश्म+र।) प्रस्तर-
सम्बन्धीयः। इति पाणिनिः॥ पाथुरिया इति
भाषा।

अश्मरी, स्त्री, (अश्मानं राति ददाति या। अश्मन्+
रा+क+गौरादित्वात् ङीष्। मूत्रकृच्छ्ररोगो
हि मूत्रद्वारे प्रस्तरमिव कठिनमांसं रचयति।)
मूत्रकृच्छ्ररोगः। पाथरी इति भाषा। यथा।
अथाश्मर्य्यधिकारः। अत्राश्मर्य्याः सन्निकृष्टनिदानं
सङ्ख्याञ्चाह।
"वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजा मता।
प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्व्वा अश्मर्य्यः स्युर्यमोपमाः"॥
श्लेष्माश्रयाः श्लेष्मसमवायिकारणाः। शुक्रजां
विना। शुक्रजायास्तु शुक्रस्यैव समवायिकारण-
त्वात्। अन्ये तु शुक्राश्मर्य्यामपि कफकारणत्व-
मिच्छन्ति। प्रायःशब्दश्चात्र विशेषार्थः। यमो-
पमाश्चिकित्सां विना॥ * ॥ सम्प्राप्तिमाह।

"विशोषयेद्वस्तिगतं सशुक्रं
मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा।
यदा तदाश्मर्य्युपजायते तु
क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः॥

पवनो वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं कफं वा
शोषमुपनयेत् यदा तदा अश्मरी क्रमेण क्रमशो
वर्द्धमाना। यथा गोः पित्तेषु रोचनेत्यन्वयः॥ * ॥
पूर्व्वरूपमाह।
"नैकदोषाश्रयाः सर्व्वा अथासां पूर्व्वलक्षणं।
वस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक्॥
मूत्रे वस्तसगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः"।
वस्तः छागलः॥ * ॥ सामान्यलक्षणमाह।
"सामान्यलिङ्गं रुङ्नाभिसेवनीवस्तिमूर्द्धसु।
विशीर्णधारं मूत्रं स्यात् तया मार्गनिरोधने॥
तद्व्यपायात् सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमं।
तत्संक्षोभात् क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत्"॥
वस्तिमूर्द्धा नाभेरधोदेशः। विशीर्णधारं सवि-
च्छेदधारं। तया अश्मर्य्या। मार्गः मूत्रवाहि
स्रोतः। तद्व्यपायात् कदाचिद्वायुना अश्मर्य्या
मूत्रमार्गादन्यत्र गमनात्। सुखं मेहेत् मूत्रयेत्।
गोमेदकोपमं गोमेदको मणिः किञ्चिल्लोहित-
स्तद्वर्णं। तत्संक्षोभात् तस्या अश्मर्य्याः सञ्चारात्।
घर्षणेन मूत्रवहे स्रोतसि क्षते जाते सास्रं सरक्तं
मेहेत्। आयासात् प्रवाहणादिजनितात्॥ * ॥
वातोल्वणामाह।
"तत्र वाताद्भृशं त्वार्त्तो दन्तान् खादति वेपते।
मृद्गाति मेहनं नाभिं पीडयत्यपि सङ्क्वणन्॥
सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्म्मेहति विन्दुशः।
श्यावारुणाश्मरी चास्य स्याच्चिता कण्टकैरिव"॥
सङ्क्वणन् आर्त्तनादं कुर्व्वन् नाभिदेशं पीडयति।
शकृत् पुरीषं सानिलं मुञ्चति। मुहुर्व्वारंवारं।
विन्दुशः विन्दुं विन्दुं मेहति मूत्रयेत्। श्यावे-
त्यादि श्यावा किञ्चित् श्यामा। अरुणा किञ्चि-
द्रक्ता। एवं चाश्मर्य्या वर्णाकारकथनं व्या-
ख्यायां प्रत्यक्षसंवादिशास्त्रप्रामाण्यख्यापनार्थ-
माह। चिताकण्टकैरिव वदरीवीजवत् क्षुद्रा-
ङ्कुरैर्वेष्टिता॥ * ॥ पित्तोल्वणामाह।
"पित्तेन दह्यते वस्तिः पच्यमान इवोष्मवान्।
भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्ता पीता सिताश्मरी"॥
दह्यते साक्षादग्निनेव। वस्तिरिति मूत्रकोषः।
पच्यमान इव क्षारेणेव। उष्मवान् उष्णस्पर्शः॥ * ॥
कफोल्वणामाह।
"वस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः।
अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाथवा सिता"॥
महती कुक्कुटाण्डतुल्या। मधुवर्णा ईषत्पिङ्गल-
शुक्ला॥
"एता भवन्ति बालानां तेषामेव हि भूयसा।
आश्रयोपचयाल्पत्वात् ग्रहणाहरणे सुखाः"॥
एताः दोषत्रयजनिताः बालानां स्युः॥ यतः सर्व्वा
एवाश्मर्य्यो विशेषतः श्लेष्मसमवायिकारणाः। बाला-
स्तु विशेषतस्तन्निदानसेविनो भवन्ति। उक्तञ्च
सुश्रुतेन। प्रायेणैता अश्मर्य्यो दिवास्वप्नसमश-
नाध्यशनस्निग्धशीतगुरुमधुराहारप्रियत्वात् विशे-
षेण बालानां भवन्तीति। भूयः पदोपादानात्
महतामपि त्रिदोषजनिता भवन्ति। तेषामेव
बालानामेव। ग्रहणाहरणे सुखाः ग्रहणं निष्का-
सनार्थमङ्गुलिभ्यां। आहरणं पाचनादिपूर्व्वकं
निष्कासनं तत्र सुखाः सुखदाः। तत्र हेतुमाह।
आश्रयोपचयाल्पत्वादिति आश्रयो वस्तिः तस्यो-
पचयः स्थौल्यं तस्याल्पत्वात्॥ * ॥ शुक्राश्मरीमाह।
"शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात्"।
अव्ययानामनेकार्थत्वात् तुशब्दोऽत्रावधारणार्थः।
तेन महतामेव न तु बालानां। तेषां वक्ष्यमाण-
सम्प्राप्तेरसम्भवात्। न तु शुक्राभावो वाच्यः।
शुक्रधारणात् वेगात् च्यवमानस्य शुक्रस्य धार-
णात्॥ * ॥ शुक्राश्मर्य्याः सम्प्राप्तिमाह।
"स्थानाच्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः।
शोषयत्युपसंहृत्य शुक्रं तच्छुक्रमश्मरी"॥
अनिलः मैथुनवेगेन स्थानाच्युतं। अमुक्तं मैथुन-
वेगधारणेन धृतं शुक्रं। मुष्कयोः मेढ्रस्थितयोः।
मेढ्रवृषणयोरन्तरं इति सुश्रुतवचनात्। तेन
मेढ्रवृषणमध्यगतवस्तिमुखे उपसंहृत्य एकीकृत्य
शोषयति। तच्छुक्रमश्मरी तथाभूतं शुक्रमेवा-
श्मरी॥ * ॥ अस्या लक्षणमाह।
"वस्तिरुङ्मूत्रकृच्छ्रत्वमुष्कश्वयथुकारिणी।
तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते॥
पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्य्येव च शर्करा"।
तस्यां शुक्राश्मर्य्यां। उत्पन्नमात्रायां यदा सा काथ-
मपि विलीयते विलयं याति तदा शुक्रं एति
मूत्रमार्गात् प्रवर्त्तते। पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्
तुशब्दोऽवधारणे। तेन अस्मिन्नेव अवकाशे
स्थाने मेढ्रवृषणयोरन्तरे पीड़िते सति सा

विलीयते अन्तर्लीना भवति ॥ अवस्थाभेदादश्मरी शर्करा सिकता भवतीत्याह । अश्मर्य्येव च शर्करा चकारात् सिकता च भवति । शर्करासिकतयोश्च भेदो महत्त्वाल्पत्वाभ्यां बोद्धव्यः ॥ कथमश्मरी शर्करा भवतीत्याह । सा भिन्नमूर्त्तिर्वातेन शर्करेत्यभिधीयते । सा अश्मरी ॥*॥ शर्कराया पातमवरोधञ्च सहेतुकमाह ।

"अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे ।
निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते ।
मूत्रस्रोतःप्रवृत्ता सा सक्ता कुर्य्यादुपद्रवान्" ॥

सा अश्मरी । तस्मिन् वायौ । अनुलोमगे मूत्रस्रोतःसु सम्यक्प्रवृत्ते मूत्रेण सह सा शर्करा निरेति पतति । प्रतिलोमगे ऊर्द्ध्वप्रवृत्ते वायौ विबध्यते । तदा मूत्रस्रोतःश्रिता सक्ता लग्ना स्यात्तदा उपद्रवान् कुर्य्यात् । तानेवोपद्रवानाह ।

"दौर्ब्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिशूलमथारुचिम् ।
पाण्डुत्वमुष्णवातञ्च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम्" ॥

दौर्ब्बल्यमिन्द्रियाणां । सदनं अवसन्नत्वं । कार्श्यमङ्गानां । उदरैकदेशे शूलं । उष्णवातं मूत्राघातविशेषः ॥*॥ अश्मरी शर्करा सिकतानामरिष्टमाह ।

"प्रसूननाभिवृषणं बद्धमूत्रं रुजान्वितम् ।
अश्मरी क्षपयत्याशु शर्करा सिकतान्विता" ॥

शर्करा सिकतेति च नामद्वयमन्वर्थं ॥*॥

अथाश्मर्य्याश्चिकित्सा ।

"शुण्ठ्यग्निमन्थपाषाणशिग्रुवरुणगोक्षुरैः ।
अभयारग्वधफलैः क्वाथं कृत्वा विचक्षणः ॥
रामठक्षारलवणचूर्णं क्षिप्त्वा पिबेन्नरः ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च नाशमायाति निश्चितं ॥
क्वाथः शुण्ठ्यादिनामायं दीपनः पाचनः परः ।
हन्ति कोष्ठाश्रितं वातं कटिरुग्गदमेढ्रजं" ॥

रुक्शूलं ।
शुण्ठ्यादिक्वाथः ॥*॥

"एलोपकुल्यामधुकाश्मभेद-
कौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः ।
शृतं पिबेदश्मजतुप्रगाढ़ं
सशर्करं मूत्रगदेऽश्मरीषु" ॥

उरुबूक एरण्डस्तस्यात्र मूलं । मूत्रगदे मूत्रकृच्छ्रे ।
एलादिक्वाथः ॥*॥

"कूष्माण्डकरसं हिङ्गुयवक्षारयुतं पिबेत् ।
बस्तौ मेढ्रे शूलयुक्ते अश्मरीशर्करान्वयेत्" ॥*॥

"वरुणत्वक्शिलाभेदशुण्ठीगोक्षुरकैः शृतं ।
कषायः क्षारसंयुक्तः शर्करां पातयत्यधः" ॥

क्षारो यवक्षारः ॥*॥

"त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतं ।
अवीक्षीरेण सप्ताहादश्मरीनाशनं पिबेत्" ॥

अवीर्मेषी ॥*॥

"वरुणत्वक्कषायस्तु पीतो गुडसमन्वितः ।
अश्मरीं पातयत्याशु बस्तिशूलञ्च नाशयेत्" ॥*॥
"क्वाथो वरुणमूलस्य तस्य कल्केन संयुतः ।
शिग्रुमूलस्य च क्वाथः कदुष्णोऽश्मरीं हरेत्" ॥*॥
"शृङ्गवेरयवक्षारपथ्याकालीयकान्वितः ।
दधिमण्डो भिनत्त्याशु अश्मरीमाशु पानतः" ॥

शृङ्गवेरं नागरं ॥*॥

"नो जग्धं कृमिभिर्घनं सुतरुणं स्निग्धं शुचिस्थानजं
पक्षे पुण्यनिरीक्षिते वरुणकं छित्त्वा तुलां ग्राहयेत् ।
संगृह्याशु चतुर्गुणाम्बुनि पचेत् पादावशेषं जलं
तत्तुल्येन गुड़ेन वै दृढ़तरे भाण्डे पचेत्तत् पुनः ॥
सान्द्रे वै घनतां गुडे परिणते प्रक्षेपमेषां पलं
शुण्ठ्योर्व्वारुकबीजगोक्षुरकणापाषाणभित्शीतलाः ।
कुष्माण्डत्रपुषाक्षबीजकुनटीवास्तूकशोभाञ्जन
द्राक्षैलागिरिजाभयाकृमिहृताचूर्णीकृतानाक्षिपेत् ॥
पथ्याशी प्रतिवासरं गुड़मसुं योऽक्षप्रमाणं नरः
खादेत्तस्य समस्तदोषजनिताश्मर्य्यः पतन्ति द्रुतं" ॥

एर्व्वारुकबीजं कर्कटीबीजं । पाषाणभित् पाथरछोड़ीति लोके । शीतला नीलदूर्व्वा । तथाच ।

"नीलदूर्व्वा स्मृता शस्य शाद्वलं हरितं तथा ।
शतपर्व्वा शीतकुम्भी शीतला वामनी तथा" ॥

इति निर्घण्टौ धन्वन्तरिः ॥ कुनटी धान्यकं । गिरिजं शिलाजतु । कृमिहृत् विडङ्गं । वरुणादिगुड़ः ॥*॥

"मञ्जिष्ठा त्रापुषं बीजं जीरकं शतपुष्पिका ।
धात्रीफलं बदरकं गन्धकञ्च मनःशिला ॥
एतेषां समभागानां चूर्णं टङ्कमितं नरः ।
भक्षयेन्मधुना सार्द्धं पतेत्तस्याश्मरी ध्रुवं" ॥*॥
"पलद्वयमिते कोष्णे कुलत्थस्य शृते तु यः ।
लवणं शरपुङ्खस्य सार्द्धमाषद्वयोन्मितं ॥
क्षिप्त्वा पिबेत् पतेत्तस्य मूत्रेण सममश्मरी ।
शर्करा सिकता चापि दृष्टमेतदनेकधा" ॥

इत्यश्मर्य्यधिकारः ॥*॥ इति भावप्रकाशः ॥
(अस्या निरुक्तिमाह भोजः ।

"तुल्यतामश्मना याति तस्मात्तामश्मरीं विदुः" ।

इति माधवकृतरुग्विनिश्चयस्यान्यतमटीकाकृतोक्तम् ॥

"पितृमातृकदोषेण अथवा मूत्ररोधनात् ।
अतिपथ्याचाभिचारैर्जायते चाश्मरीगदः ॥
मूत्राविष्टौ च पितरौ सुरतं कुरुतो यदि ।
मूत्रेण सहितं शुक्रं च्यवते गर्भसम्भवं ॥
पश्चाज्जस्य सदेहस्य स च तत्र प्रजायते ।
मूत्रं मूत्रस्य संस्थाने करोति बन्धनं त्रिषु ॥
सोऽप्यसाध्यो मूत्रगदस्तस्मादुद्भवति मानुषे ।
तारुण्ये चापि साध्यश्च जायते मूत्रशर्करा ॥
विपरीतेन चोत्ताने स्त्रिया च पुरुषेण वा ।
शुक्रञ्च प्रवहेत्तस्य स्त्रीशुक्रं विचिनोति च ॥
पुनश्च मेहने वायुः वातेन शोषितश्च तत् ।
इय दर्त्तं प्रपद्येत मूत्रद्वारं रुणद्धि च ॥
तेन मूत्रप्ररोधश्च जायते तीव्रवेदना ।
अण्डसन्धिस्थिता याति शर्करा शस्त्रसाध्यका ॥
अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु पुत्र ! महामते" ।

अस्याश्चिकित्सा यथा ॥

"शुण्ठीगोक्षुरकस्यैव वरुणस्य त्वचस्तथा ।
क्वाथो गुड़यवक्षारयुतश्चाश्मरिनाशनः ॥ १ ॥
गोक्षुरकस्य बीजानां धातुमाक्षिकसंयुतं ।
चूर्णं माहिषदुग्धेन पानञ्चाश्मरिपातनं" ॥ २ ॥

अस्याः पथ्यानि यथा ॥

"पुराणयष्टिकाशालिरक्ततण्डुलकास्तथा ।
श्यामाकः कोद्रवोद्दालो मर्कटीव्रणधान्यकं ॥
कुलत्थयवगोधूमास्तथा चैवाढकी भिषक् ।
वातघ्नाश्च प्रयोक्तव्या भोजने वातरोगिणां ॥
कौञ्चाद्यानि च मांसानि पथ्यान्यश्मरिनाशने" ।

इति हारीतः ॥

"विशोषयेद्वस्तिगतन्तु शुक्रं
मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा ।
यदा तदाश्मर्य्युपजायते तु
क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥
कदम्बपुष्पाकृतिरश्मतुल्या
श्लक्ष्णा त्रिपुट्याप्यथवापि मृद्वी ।
मूत्रस्य चेन्मार्गमुपैति रुद्ध्वा
मूत्रं रुजां तस्य करोति बस्तौ ॥
ससेवनीमेहनबस्तिशूलं
विशीर्णधारञ्च करोति मूत्रं ।
मृद्गाति मेढ्रं स तु वेदनार्त्तो
मुहुः शकृन्मुञ्चति मेहते च ॥
क्षोभात् क्षते मूत्रयतीह सासृक्
तस्याः सुखं मेहति च व्यपायात् ।
एषाश्मरी मारुतभिन्नमूर्त्तिः
स्याच्छर्करामूत्रपथात् क्षरन्ती" ॥*॥

चिकित्सा यथा ॥*॥

"क्रिया हिता त्वश्मरिशर्कराभ्यां
कृच्छ्रे तथैवेह कफानिलाभ्यां ।
कार्य्याश्मरीभेदनपातनाय
विशेषयुक्तं शृणु कर्म्मसिद्धं ॥
पाषाणभेदं वृषकं श्वदंष्ट्रा-
पाठाभयाव्योषशठीनिकुम्भाः ।
हिंस्राखराश्वासितिमारकाभ्या-
मेर्व्वारुकाणां त्रपुषस्य बीजं ॥
उपकुञ्चिका हिङ्गु सवेतसाम्लं
स्याद्द्वे बृहत्यौ हपुषा वचा च ।
चूर्णं पिबेदश्मरिभेदि पक्वं
सर्पिश्च गोमूत्रचतुर्गुणन्तैः ॥ १ ॥
शिग्रोस्तु यूषो मृदुमूलकल्का-
द्विल्वप्रमाणाद्घृततैलभृष्टात् ।
शीतोऽश्मभित्स्याद्दधिमण्डयुक्तः
पेयः प्रकामं लवणेन युक्तः ॥ २ ॥
जलेन शोभाञ्जनमूलकल्कः
शृतो हितश्चाश्मरिशर्कराभ्यां ॥ ३ ॥
पीत्वा च मद्यं निगदं रथेन
हयेन वा शीघ्रजवेन यायात् ।
तैः शर्करा प्रच्यवतेऽश्मरी तु
शाम्येन्नचेच्छल्यविदुद्धरेत्ताम्" ॥ ४ ॥

अस्या वर्ज्जनीयान्याह ।

"व्यायामसन्धारणशुष्कभक्ष्य-
पिष्टान्नवातार्ककरव्यवायान् ।
खर्ज्जूर-शालूक-कपित्थ-जम्बु
बिसं कषायञ्च रसं भजेन्न" ॥

इति च चरकः ।)
चतस्रोऽश्मर्य्यो भवन्ति । श्लेष्मणा वातेन पित्तेन

शुक्रेण चेति ॥ तत्रासंशोधनशीलस्यापथ्यकारिणः प्रकुपितः श्लेष्मा मूत्रसम्पृक्तोऽनुप्रविश्य वस्तिमश्मरीं जनयति । तस्याः पूर्व्वरूपाणि वस्तिपीडारोचकौ मूत्रकृच्छ्रं वस्तिशिरोमुष्कशेफसां वेदना कृच्छ्रा ज्वरावसादौ वस्तगन्धित्वं मूत्रस्येति ॥

"यथास्वं वेदनावर्णौ दुष्टः सान्द्रमथाविलम् ।
पूर्व्वरूपेऽश्मनः कृच्छ्रान्मूत्रं सृजति मानवः" ॥

अथ जातासु नाभि-वस्ति-सेवनी-मेहनेष्वन्यतमस्मिन् मेहतो वेदना मूत्रधारासङ्गः सरुधिरमूत्रता मूत्रविकिरणञ्च गोमेदकप्रकाशमनाविलं ससिकतं विसृजति धावन-लङ्घन-प्लवन-पृष्ठ-यानाध्वगमनैश्चास्य वेदना भवति ॥

तत्र श्लेष्माश्मरी श्लेष्मलमन्नमभ्यवहरतोऽत्यर्थमुपलिप्याथ परिवृद्धिं प्राप्य वस्तिमुखमधिष्ठाय स्रोतो निरुणद्धि तस्य मूत्रप्रतिघाताद्दाल्यते भिद्यते निस्तुद्यत इव च वस्तिर्गुरुः शीतश्च भवति । अश्मरी चात्र श्वेता स्निग्धा महती कुक्कुटाण्डप्रतीकाशा मधूकपुष्पवर्णा वा भवति तां श्लैष्मिकीमिति विद्यात् ॥

पित्तयुक्तस्तु श्लेष्मा सङ्घातमुपगम्य यथोक्तां परिवृद्धिं प्राप्य वस्तिमुखमधिष्ठाय स्रोतो निरुणद्धि तस्य मूत्रप्रतीघातादुष्यते चूष्यते दह्यते पच्यत इव वस्तिरुष्णवातश्च भवति । अश्मरी चात्र सरक्ता पीतावभासा कृष्णा भल्लातकास्थिप्रतिमा मधुवर्णा वा भवति तां पैत्तिकीमिति विद्यात् ॥

वातयुक्तस्तु श्लेष्मा सङ्घातमुपगम्य यथोक्तां परिवृद्धिं प्राप्य वस्तिमुखमधिष्ठाय स्रोतो निरुणद्धि तस्य मूत्रप्रतीघातात्तीव्रा वेदना भवति तथात्यर्थं पीड्यमानो दन्तान् खादति नाभिं पीडयति मेढ्रं मृद्नाति वायुं स्पृशति विशर्द्धते विदहति वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण वास्य मेहतो निःसरन्ति । अश्मरी चात्र श्यामा परुषा विषमा खरा कदम्बपुष्पवत् कण्टकाचिता भवति तां वातिकीमिति विद्यात् ॥

प्रायेणैतास्तिस्रोऽश्मर्य्यो दिवास्वप्न-समशनाध्यशन-शीत-स्निग्ध-गुरु-मधुराहारप्रियत्वादिविशेषेण बालानां भवन्ति तेषामेवाल्पवस्तिकायत्वादनुपचितमांसत्वाच्च वस्ते सुखग्रहणाहरणा भवन्ति ॥ महतान्तु शुक्राश्मरी शुक्रनिमित्ता भवति । मैथुनाभिघातादतिमैथुनाद्वा शुक्रस्य तिष्ठन्निर्गच्छद्विमार्गगमनादनिलोऽभित सम्हृत्य मेढ्रवृषणयोरन्तरे सहरति संहृत्य चोपशोषयति सा मूत्रमार्गमावृणोति मूत्रकृच्छ्रं वस्तिवेदनां वृषणयोश्च श्वयथुमापादयति पीडितमात्रे च तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रविलयमापद्यते तां शुक्राश्मरीमिति विद्यात् ॥

अस्याश्चिकित्सा यथा ॥

"अश्मरी दारुणो व्याधिरन्तकप्रतिमो मतः ।
औषधैस्तरुणः साध्यः प्रवृद्धश्छेदमर्हति ॥
तस्य पूर्व्वेषु रूपेषु स्नेहादिक्रम इष्यते ।
तेनास्यापचयं यान्ति व्याधेर्मूलान्यशेषतः ॥
घृतैः क्षारैः कषायैश्च क्षीरैः सोत्तरवस्तिभिः ।
यदि नोपशमं गच्छेत् छेदस्तत्रोत्तमो विधिः ॥
कुशलस्यापि वैद्यस्य यतः सिद्धिरिहाध्रुवा ।
उपक्रमो जघन्योऽयमतः स परिकीर्त्तितः ॥
अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत् ।
तस्मादापृच्छ्य कर्त्तव्यमीश्वरं साधुकारिणा" ॥

अथ रोगान्वितमुपस्निग्धमपकृष्टदोषमीषत् कर्शितमभ्यक्तस्विन्नशरीरं भुक्तवन्तं कृतवलिमङ्गलस्वस्तिवाचनमग्रोपहरणीयोक्तेन विधानेनोपकल्पितसम्भारमाश्वास्य ततो बलवन्तमविक्लवमाजानुसमे फलके प्रागुपवेश्य पुरुषस्य तस्योत्सङ्गे निषन्नपूर्व्वकायमुत्तानमुन्नतकटीकं वस्त्राधारकोपविष्टं सङ्कुचितजानुकूर्परमितरेण सहावबद्धं सूत्रेण शाटकैर्व्वा ततः स्वभ्यक्तनाभिप्रदेशस्य वामपार्श्वं विमृद्य मुष्टिनावपीडयेदधोनाभेर्यावदश्मर्य्यधः प्रपन्नेति । ततः स्नेहाभ्यक्ते कृत्तनखे वामहस्तप्रदेशिनीमध्यमे पायौ प्रणिधायानुसेवनीमासाद्य प्रयत्नबलाभ्यां पायुमेढ्रान्तरमानीय निर्व्वलीकमनायतमविषमञ्च वस्तिं सन्निवेश्य भृशमुत्पीडयेदङ्गुलिभ्यां यथाग्रन्थिरिवोन्नतं शल्यं भवति ॥

"सचेद्गृहीतशल्ये तु विवृत्ताक्षो विचेतनः ।
हतवस्तुमुन्नशीर्षश्च निर्व्विकारो मृतोपमः ॥
न तस्य निर्हरेच्छल्यं निर्हरेत्तु म्रियेत सः ।
विना त्वेतेषु रूपेषु निर्हर्त्तुं समुपाचरेत् ॥"
इति सुश्रुतः ॥

"अयोरजः श्लक्ष्णपिष्टं मधुना सह योजयेत् ।
अश्मरीं विनिहन्त्याशु मूत्रकृच्छ्रञ्च दारुणम् ॥"
॥•॥ लौहप्रयोगः ॥•॥
इति वैद्यकरसेन्द्रसारसंग्रहः ॥)

अश्मरीघ्न, पु, (अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं हन्ति । अश्मरी + हन् + टक् ।) वरुणवृक्षः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अश्मरीहर, पु, (अश्मरीं हरति । अश्मरी + हृ + अच् ।) धान्यविशेषः । इति रत्नमाला ॥ दे धान इति ख्यातः ।
"वरुणः कफवातघ्नो भेदी चोष्णोऽश्मरीहरः" ।
इति वैद्यकद्रव्यगुणः ॥)

अश्मसार, पुं, क्ली, (अश्मनः सारः ।) लौहः । इत्यमरः ॥ ("प्राणाः सत्वरमश्मसारकठिना गच्छन्ति गच्छन्त्वमी" । इति साहित्यदर्पणे ।)

अश्मीर, पुं, स्त्री, (अश्मन् + ईर ।) अश्मरीरोगः ॥ इत्युणादिकोषः ॥

अश्मोत्थ, क्ली, (अश्मन उत्तिष्ठति यत् । उत् + स्था + क ।) शिलाजतु । इति राजनिर्घण्टः ॥

अश्रं, क्ली, (अश्नुते व्याप्नोति नेत्रं कण्ठं वा अश् + रक् ।) नेत्रजलम् । इत्युणादिकोषः ॥
("तामप्यश्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यम्" ।
इति मेघदूते ॥
"सखीभिरश्रोत्तरमीक्षितामिमाम्" । इति कुमारे ॥) रक्तम् । इत्यमरटीका ॥

अश्रद्धान, त्रि, (न श्रद्धानः । नञ्तत्पुरुषः ।) श्रद्धाहीनः । यथा देवलः ।
"प्रत्ययो धर्म्मकार्य्येषु तथा श्रद्धेत्युदाहृता ।
नास्ति ह्यश्रद्दधानस्य धर्म्मकृत्ये प्रयोजनम्" ॥
इति श्राद्धतत्त्वं ॥

अश्रद्धा, स्त्री, (न श्रद्धा । नञ्तत्पुरुषः ।) शास्त्रार्थे अदृढप्रत्ययः । यथा,—
"विधिहीनं भावदुष्टं कृतमश्रद्धया च यत् ।
तद्धरन्त्यसुरास्तस्य मूढस्य दुष्कृतात्मनः" ॥
इति श्राद्धतत्त्वम् ॥ (मानसिकवृत्तिभेदः । यथा श्रुतौ,—
"कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत् सर्वं मन एव" ॥
"अश्रद्धया च यद्दत्तं तत्तामसमुदाहृतम्" ॥
इति गीतायाम् ।)

अश्रद्धेय, त्रि, श्रद्धानर्हं । आदरायोग्यः । शास्त्रार्थादृढप्रत्यययोग्यं । श्रत् शब्दपूर्व्वक धाधातोर्यप्रत्यये पश्चान्नञ्समासेन निष्पन्नं ॥ ("किमनेनाश्रद्धेयव्याधवचनप्रत्ययमात्रपरिगृहीतेनाग्रहेण" । इति पञ्चतन्त्रे ।)

अश्रप, पु, स्त्री, (अश्रं रक्तं पिबति यः । अश्र + पा + ड ।) राक्षसः । इत्यमरः ॥

अश्राद्धभोजी, [न्] त्रि, (न श्राद्धभोजी । नञ्तत्पुरुषः ।) श्राद्धान्नाभक्षकः । यथा । दुर्गसिंहोऽपि अश्राद्धभोजीत्यस्य सति भोजने अश्राद्धमेव भुङ्क्ते न श्राद्धमिति न नियमः । तथात्वे व्रतलोपः स्यात् । इति प्रायश्चित्ततत्त्वम् ॥

अश्राद्धी, [न्] पु, (अश्राद्धमस्त्यस्य । अश्राद्ध + इन् ।) श्राद्धपञ्चयज्ञशून्यः । यथा मनुः ।
"नाद्यात् शूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः ।
आददीताममेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम्" ॥
अश्राद्धिनः श्राद्धपञ्चयज्ञशून्यस्य । इत्याह्निकाचारतत्त्वम् ॥

अश्राद्धेय, पु, (न श्राद्धेयः । नञ्समासः ।) श्राद्धानर्हः । श्राद्धायोग्यब्राह्मणः । यथा । अत्रिकाश्यपौ,—
"पितुर्गेहे च या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ।
भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वृषली स्मृता ॥
यस्तु तां वरयेत् कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्ब्बलः ।
अश्राद्धेयमपाङ्क्तेयं तं विद्याद्वृषलीपतिम्" ॥
इत्युद्वाहतत्त्वम् ॥

अश्रान्तं, क्ली, (अविद्यमानं श्रान्तमत्र । नञ्समासः ) अनवरतं । नित्यं । इत्यमरः ॥ श्रमरहिते त्रि ॥

अश्रान्त, त्रि, श्रमरहितः । यथा । "अश्रान्तश्रुतिपाठपूतरसनाविर्भूतभूरिस्तवा जिह्मब्रह्ममुखौघविघ्नितनवस्वर्गक्रियाकेलिना । पूर्व्वं गाधिसुतेन सामिघटिता मुक्तानु मन्दाकिनी यत् प्रासादद्कूलवल्लिरनिलान्दोलैरखेलद्दिवि" ॥ इति नैषधे १ सर्गे ॥

अश्रि, स्त्री, (अश्नाति अश्नुते वा । अश भोजने अशू व्याप्तौ वा । आश्रीयते प्राहारार्थम् । अशिश्रिहनिभ्यां क्रस्वश्चेति इण् स च डित् डित्वात् टिलोपः आडो ह्रस्वः ।) गृहादेः कोणः । इति हेमचन्द्रः ॥ अस्त्रादेरग्रभागः । इत्यमरः ॥

("इतस्य हन्तुः कुलिशं कुण्ठिताश्रीव लक्ष्यते"।
इति कुमारे।
"वधो वा एष यद्यूपः सोऽस्याश्रिः कर्त्तव्योऽश्रिमे वध"। इति ऐतरेयब्राह्मणे।)

**अश्री**, स्त्री, अश्रिः। अस्त्रादेरग्रभाग। इत्यमरटीका।

**अश्रु**, क्ली, (अश्नुते नेत्रमिति। अश्+क्रुन्। अथवा न श्रयति इति। न+श्रि+कुन्।) चक्षुर्जलं। तत्पर्य्यायः। नेत्राम्बु २ रोदनं ३ अस्रं ४ अश्र ५ अस्रु ६ वाष्प ७। इत्यमरकोषशब्दरत्नावल्यौ। ("श्रुतदेहविसर्ज्जनः पितुश्चिरमश्रूणि विमुच्य राघवः"। इति रघुवंशे।) नेत्रोद ८। इति जटाधरः।

**अश्रुतं**, त्रि, (न श्रुतं। नञ्तत्पुरुषः।) अश्रुतश्रवणं। अनाकर्णितं। अशुना इति भाषा। यथा,—
"श्रुतार्थस्य परित्यागात् अश्रुतार्थस्य कल्पनात्।
प्राप्तस्य बाधादित्येव परिसंख्या त्रिदोषिका"।
इति प्रायश्चित्ततत्त्वं।

**अश्रेषा**, स्त्री, (नास्ति श्रेषो यस्याम्।) अश्विन्यादिसप्तविंशतिनक्षत्रान्तर्गतनवमनक्षत्रं। अस्य रूपं। चक्राकृतिपञ्चनक्षत्रात्मकं। इति दीपिका। तस्याधिदेवता सर्पः। यथा। अश्वि-यम दहन-कमलज-शशि-शूलभृददिति-जीव फणि-पितरः। इत्यादि ज्योतिस्तत्त्वम्। सा केतुग्रहस्य जन्मनक्षत्रं। यथा,—
"विशाखानलतोयानि वैश्वं च भगदैवतं।
पुष्या मैत्र्या यम सर्पा जन्मभान्यर्कतः क्रमात्"।
इति दीपिका। सा च अधोमुखगणः। यथा,—
"अश्लेषवह्नियमपित्र्यविशाखयुक्त
पूर्व्वात्रयं शतभिषा च मघाप्युडूनि।
एतान्यधोमुखगणानि शिवानि नित्यं
विद्यार्थभूमिखननेषु च शोभितानि"।
इति ज्योतिस्तत्त्वं। *। तस्या मस्तकोपरि उदये राशिलग्ननिरूपणं यथा,—
"मौलिगे भुजगभे स्वपुच्छके
भङ्गकृतिनि सप्ततारके।
नारिकेलिरसिके तुलोदयात्
निर्दयर्ज्जलधिलग्नसिञ्जिनिका" ॥ ३। २४।
इति कालिदासकृतरात्रिलग्ननिरूपणं। तत्र जातफलं।
"कृपाटनः स्याददिदुष्टचेता
कष्टप्रदश्चापि कृथा जनानां।
सर्पे सदर्पी हि शठार्णितार्थ
कन्दर्पसन्तप्तमना मनुष्य"।
इति कोष्ठीप्रदीपः।

**अश्रेषाभव**, पुं, (अश्रेषायां भव।) केतुग्रहः। इति हारावली।

**अश्व**, पुं, (अश्नुते मार्गं व्याप्नोति। अशू व्याप्तौ अशूप्रुषिलटीति क्वन्।) घोटकः। तत्पर्य्यायः। घोटि २ घोटी ३ वीतिः ४ घोट ५ घोटक ६ तुरग ७ तुरङ्ग ८ तुरङ्गम ९ वाजी १० वाह ११ अर्व्वा १२ गन्धर्व्व १३ हय १४ सैन्धव १५ सप्ति १६। इत्यमरः सटीकाच।
("जितसिंहभया नागा यत्राश्वा बिलयोनयः"।
इति कुमारे।
"गन्धर्व्वमुखजितचामरचारुचमरम्"।
इति शिशुपालवधे।) अश्वेन भक्षणगुणाः। वातश्लेष्मनाशकत्वं बलकारित्वञ्च। इति राजवल्लभ। पुरुषविशेषः। तस्य लक्षणं।
"काष्ठतुल्यवपुर्धृष्टो मिथ्याचारश्च निर्भयः।
द्वादशाङ्गुलमेढ्रश्च दरिद्रश्च हयो मतः"।
इति रतिमञ्जरी। (स्वनामख्यातो दानवः। यो श्वफल्कस्य पुत्रः। यथा,—
"चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च।
अश्वग्रीवोऽश्ववाहश्च सुपार्श्वकगवेषणौ।
अरिष्टनेमिरश्वश्च।" इति हरिवंशे। स्वनामख्यातो दानवश्च यथा महाभारते।
"चत्वारिंशद्दनोः पुत्राः ख्याताः सर्व्वत्र भारत।
सर्भानुरश्वोऽश्वपतिर्वृषपर्व्वा जकस्तथा"।)

**अश्वकन्दिका**, स्त्री, अश्वगन्धावृक्षः। इति रत्नमाला।

**अश्वकर्ण**, पुं, (अश्वस्य कर्णमिव पत्रमस्य।) शालवृक्षविशेषः। लताशाल इति केचित्। तत्पर्य्यायः। जरद्रुमः २ तार्क्ष्यप्रसवः ३ शस्यसम्बरः ४ धन्यः ५ दीर्घपर्णः ६ कुशिकः ७ कौशिकः ८। अस्य गुणाः। कटुत्वं। तिक्तत्वं। स्निग्धत्वं। "व्रणविस्फोटविपादिकण्डूविरादोषार्त्तिनाशित्वञ्च"। इति राजनिर्घण्टः।
("सालतालाश्वकर्णानां पर्णैर्बहुभिरावृताम्"।
इति रामायणे।
"अश्वकर्णः कषायः स्याद्व्रणस्वेदकफक्रिमीन्।
ब्रध्नविद्रधिबाधिर्य्ययोनिकर्णगदान् हरेत्"।
इति भावप्रकाशः।
"बिल्वीफलं साश्वकर्णं सन्यक्ष्मत् कफपित्तजित्।
छर्द्दिदाहज्वरमित्तादककासश्वासक्षयापहः"।
इति सुश्रुत।)

**अश्वकर्णक**, पुं, (अश्वकर्ण+स्वार्थे कन्।) शालवृक्षः। इत्यमरः।

**अश्वकिनी**, स्त्री, (अश्वक+इन्+ङीप्।) अश्विनीनक्षत्रं। इति हेमचन्द्रः।

**अश्वखुर**, पुं, (अश्वस्य खुरमिवाकृतिर्यस्य।) नखी नामगन्धद्रव्यं। इति रत्नमाला।

**अश्वखुरा**, स्त्री, अपराजितालता। इति राजनिर्घण्टः।

**अश्वखुरी**, (स्त्री) अपराजितालता। इति शब्दमाला।

**अश्वगन्धा**, स्त्री, (अश्वस्य गन्ध एकदेशो मेढ्रमिव मूलमस्याः।) स्वनामख्यातक्षुद्रवृक्षविशेषः। अश्वगन्ध इतिख्याता। तत्पर्य्यायः। हयगन्धा २ वाजिगन्धा ३ अश्वगन्धिका ४ वस्त्रा ५ तुरगगन्धा ६ कम्बुका ७ अश्वावरोहिका ८ कम्बुकाष्ठा ९ अवरोहिका १० वाराहकर्णी ११ तुरगा १२ वनजा १३ वाजिनी १४ हया १५ पुष्टिदा १६ बलदा १७ पुष्टिः १८ पीवरा १९ पलाशपर्णी २० वातघ्नी २१ श्यामला २२ कामरूपिणी २३ काला २४ प्रियकरी २५ गन्धपत्री २६ हयप्रिया २७ वाराहपत्री २८ अस्या गुणाः। कटुत्वं। उष्णत्वं। तिक्तत्वं। मदगन्धित्वं। बलपुष्टिकारित्वं। वातकासश्वासक्षयव्रणरात्र्याधिनाशित्वञ्च। इति रत्नमालाराजनिर्घण्टराजवल्लभाः।
"गन्धान्ता वाजिनामादिरश्वगन्धा हयाह्वया।
वाराहकर्णी वरदा वरदा कुष्ठगन्धिनी"।
क्वचित्पुस्तके अत्र वरदास्थाने वदरीति पाठः।
"अश्वगन्धानिलश्लेष्मश्वित्रशोथक्षयापहा।
बल्या रसायनी तिक्ता कषायोष्णातिशुक्रला"।
इति भावप्रकाशः।
("यवाश्वगन्धा यष्ट्याह्वैस्तिलैश्चोद्वर्त्तनं हितम्।
शतावर्य्यश्वगन्धाभ्यां पयस्यैरण्डजीवनैः"।
इति सुश्रुते।
"अश्वगन्धाश्च वातघ्नी बल्या रुच्या रसायनी"।
इति वैद्यकद्रव्यगुणः।
"पादकल्कोऽश्वगन्धाया क्षीरे दशगुणे पचेत्।
घृतं पेयं कुमाराणां पुष्टिकृद्बलवर्द्धनं"।
। *। अश्वगन्धाघृत। *।
इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहः।)

**अश्वगोयुग**, क्ली, (द्वावश्वौ। द्वित्वे, अश्व+गोयुगच्।) अश्वद्वयं। इति पाणिनिः। एक योडाघोडा इति भाषा।

**अश्वगोष्ठं**, क्ली, (अश्वानां स्थानं। गोष्ठादयः स्थानादिषु पशुनामभ्य इति, अश्व+गोष्ठच्।) अश्वस्थानं। आस्तबल इति पारसीभाषा। यथा,—
"पशुभ्यः स्थानदिष्टके गोष्ठगोयुगषड्गव।"
इत्यनेन अश्वशब्दात् गोष्ठप्रत्ययेन निष्पन्नं।
इति मुग्धबोधव्याकरणं।

**अश्वग्रीव**, पुं, (अश्वस्य ग्रीवाइव ग्रीवा यस्य।) विष्णुदैत्यासुरविशेषः। इति हेमचन्द्रः। (यथाह भारते।
"अश्वग्रीवश्च सूक्ष्मश्च तुहुण्डश्च महाबलः"।
तत्रैव च।
"अश्वग्रीव इति ख्यातः पृथिव्यां सोऽभवन्नृपः"।
स्वनामख्यातो वृष्णिवंशीयो नृपतिः स हि चित्रकस्य पुत्रो वृष्णिनरपतेः पौत्रः। यथा हरिवंशे,—
"चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च।
अश्वग्रीवोऽश्ववाहश्च सुपार्श्वकगवेषणौ"।)

**अश्वघ्नः**, पुं, (अश्वं हन्तीति। अश्व+हन्+टक्।) करवीरपुष्पवृक्षः। इति रत्नमाला।

**अश्वतर**, पुं, स्त्री, (तनुरश्वः। वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्व इति ष्टरच्। अश्वेनाश्वायामुत्पन्नोऽश्वः। अश्वत्व च जातिः। तत्संचरितस्योक्तधर्मस्य तनुत्व अन्यपितृकत्वात्।) अश्वायां गर्द्दभेन जातः पशुविशेषः। इति स्मृतिः। खचर इति भाषा।।
("हयानश्वतरानुष्ट्रांस्तथैव सुरभेः सुतान्"।
इति रामायणे।
"सकृद्दुष्टं हि यो मित्रं पुनः सन्धातुमिच्छति।
स मृत्युमुपगृह्णाति गर्भादश्वतरी यथा"।
इति पञ्चतन्त्रे।)

अश्वतरः, पुं, ऐरावतः। नागराजविशेषः। इति मेदिनी॥
("कम्बलाश्वतरौ चापि नागकालीयकस्तथा"।
"ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ"॥
इति च महाभारते॥) गन्धर्व्वविशेषः। पुंवत्सः। इति धरणिः॥

अश्वत्थः, पुं, (अश्वत्थं फलमस्यास्ति। मूले स्थितत्वात्। अर्श-आद्यच्। अश्वत्थवत् कामकर्म्मवातेरितनित्यप्रचलितस्वभावत्वात् आशुविनाशित्वेन श्वोऽपि स्थास्यतीति विश्वासानर्हत्वात् मायामयसंसारवृक्षः। शाल्मलिवटाद्यपेक्षया न श्वस्थिरं तिष्ठति अश्व इव तिष्ठति वा। स्था गतिनिवृत्तौ। पृषोदरादित्वात् पूर्व्वोत्तरपदान्तयोः सकारयोर्लकारौ सुपिस्थ इति कः।) स्वनामख्यातवृक्षविशेषः। पिपर इति पश्चिमदेशीयभाषा। तत्पर्य्यायः। बोधिद्रुमः २ चलदलः ३ पिप्पलः ४ कुञ्जराशनः ५। इत्यमरः॥ अच्युतावासः ६ चलपत्रः ७ पवित्रकः ८ शुभदः ९ बोधिवृक्षः १० याज्ञिकः ११ गजभक्षकः १२ श्रीमान् १३ क्षीरद्रुमः १४ विप्रः १५ मङ्गल्यः १६ श्यामलः १७ गुह्यपुष्पः १८ सेव्यः १९ सत्यः २० शुचिद्रुमः २१ धनुर्वृक्षः २२। अस्य गुणाः। सुमधुरत्वम्। कषायत्वम्। शीतलत्वम्। कफपित्तविनाशित्वम्। रक्तदाहप्रशमनकारित्वञ्च॥ तत्फलस्य गुणाः। सद्यो योनिदोषहारित्वम्। शीतलत्वम्। अतिहृद्यत्वम्। पित्तास्रविषार्त्तिदाहच्छर्द्दिशोषारुचिदोषनाशित्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः॥
("अश्वत्थोडुम्बरप्लक्षन्यग्रोधानां फलानि च।
कषायमधुराम्लानि वातलानि गुरूणि च"॥
इति चरकः॥
"अश्वत्थदेवायतनश्मशान-
वल्मीकसम्भाषु चतुष्पथेषु।
यास्ते सपित्रे परिवर्ज्जनीया
अच्छे मया मर्म्मसु ये च दृष्टाः"॥
इति सुश्रुतः॥)
अथाश्वत्थवन्दनकालमन्त्राः।
"अश्वत्थ वन्द्येन्नित्यं पूर्व्वाह्णे प्रहरद्वये।
अत ऊर्द्ध्वं न वन्देत अश्वत्थन्तु कदाचन॥
(ॐ) अक्षिस्पन्दं भुजस्पन्दं तथा दुःस्वप्नदर्शनम्।
शत्रूणाञ्च समुत्थानमश्वत्थ शमयाशु मे॥
अश्वत्थरूपी भगवान् प्रीयतां मे जनार्द्दनः।
त्वां दृष्ट्वा नश्यते पापं दृष्ट्वा लक्ष्मीः प्रवर्त्तते॥
प्रदक्षिणे भवेदायुः सदाश्वत्थ नमोऽस्तु ते"॥
इति स्मृतिसारे कृत्यचिन्तामणिवचनम्॥ गर्द्दभाण्डवृक्षः। इति विश्वः॥
"बोधिः पिप्पलोऽप्यश्वत्थश्चलपत्रो गजाशनः।
पिप्पलो दुर्ज्जरः शीतः पित्तश्लेष्मव्रणास्रजित्॥
गुरुस्तुवरको रूक्षो वर्ण्यो योनिविशोधनः"॥
अथ तिन्दुकभेदः। गजहड् इति हिन्दिभाषा।
"पारिशोऽन्यः कपीतनश्च कर्णिपूलः फलदण्डः।
गर्द्दभाण्डः कन्दरालकपीतनसुपार्श्वकाः॥
पारीशो दुर्ज्जरः स्निग्धः क्रिमिशुक्रकफप्रदः।
फलेऽम्लमधुरो मूले कषायः स्वादुमज्जकः"॥
इति भावप्रकाशः॥ तस्य विष्णुस्वरूपत्वं यथा,—
ऋषय ऊचुः।
"कथं त्वयाश्वत्थवटौ गोब्राह्मणसमौ स्मृतौ।
सर्व्वेभ्योऽपि तरुभ्यस्तौ कथं पूज्यतमौ स्मृतौ"॥
सूत उवाच॥
"अश्वत्थरूपी भगवान् विष्णुरेव न संशयः।
रुद्ररूपी वटस्तद्वत् पलाशो ब्रह्मरूपधृक्॥
दर्शनस्पर्शसेवासु ते वै पापहराः स्मृताः।
दुःखापद्व्याधिदुष्टानां विनाशकारिणो ध्रुवम्"॥
ऋषय ऊचुः।
"कथं वृक्षत्वमापन्ना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
एतन्नः कथय सर्व्वज्ञ संशयोऽत्र महान् हि नः"॥
सूत उवाच।
"पार्व्वतीशिवयोर्द्देवैः सुरतं कुर्व्वतोः किल।
अग्निं ब्राह्मणवेशेन प्रेष्य विघ्नः कृतः पुरा॥
ततस्तु पार्व्वती क्रुद्धा शशाप त्रिदिवौकसः।
रेतःसेकसुखभ्रंशकम्पमाना तदा रुषा"॥
पार्व्वत्युवाच।
"कृमिकीटादयोऽप्येते जानन्ति सुरते सुखम्।
तस्मान्मम सुखभ्रंशात् यूयं वृक्षत्वमाप्स्यथ"॥
सूत उवाच।
"एवं सा पार्व्वती देवी अशपत् क्रुद्धमानसा।
तस्माद्वृक्षत्वमापन्ना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥
तस्मादिमौ विष्णुमहेश्वरावुभौ
बभूवतुर्बोधिवटौ मुनीश्वराः।
बोधिस्त्वयं पार्किदिने विनैव
न संस्पृशेदर्कजवारयोगात्"॥
इति पाद्मे उत्तरखण्डे १६० अध्यायः॥ ८॥
ऋषय ऊचुः।
"अस्पृश्यत्वं कथं जातं सूत बोधितरोः स्वयम्।
स्पृश्यत्वञ्च कथं प्राप्तस्तथा च शनिवासरे"॥
सूत उवाच।
"समुद्रमथनाद्यानि रत्नान्याशु सुरोत्तमाः।
श्रेष्ठञ्च कौस्तुभं तेषु विष्णवे प्रददुः सुराः॥
यावद्ग्रहीतुकामोऽसौ लक्ष्मीं भार्य्यार्थमात्मनः।
तावद्विज्ञापयामास लक्ष्मीस्तं चक्रपाणिनम्"॥
लक्ष्मीरुवाच।
"अकृत्वा कथं ज्येष्ठा कनिष्ठा परिणीयते।
तस्मान्ममाग्रजामेतामलक्ष्मीं मधुसूदन॥
विवाह्योद्वाहमां पश्चात् एष धर्म्मः सनातनः।
तस्मात् धर्म्मव्यतिक्रमं न कुर्य्याः मधुसूदन॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा स विष्णुर्लोकभावनः।
उद्दालकाय मुनये सुदीर्घतपसे तदा॥
आत्मवाक्यानुरोधेन तामलक्ष्मीं ददौ किल।
रूक्षांक्षीं दुःखवदनां विरूपां विकृतां तनुम्।
सदारुणानना कृष्णां कर्कशां निरतिस्पृहाम्॥
स मुनिर्विष्णुवाक्यात्तामङ्गीकृत्य स्वमाश्रमम्।
वेदध्वनिसमायुक्तमानयामास धर्म्मवित्॥
होमधूमसुगन्धाढ्यं वेदघोषेण नादितम्॥
आश्रमं तं विलोक्याथ व्यथिता साब्रवीदिदम्।"
ज्येष्ठोवाच।
"नहि वासानुरूपोऽयं वेदध्वनियुतो मम॥
नागमिष्ये मो ब्रह्मन् नयस्वान्यत्र मां द्रुतम्"।
उद्दालक उवाच।
"कथं नायासि किञ्चात्र वर्त्तते स्वमतं तव।
तव योग्या च वसतिः का भवेत्तद्वदस्व मा"॥
ज्येष्ठोवाच।
"वेदध्वनिर्भवेद्यस्मिन् अतिथीनाञ्च पूजनम्।
यज्ञदानादिकं यत्र नैव तत्र वसाम्यहम्॥
परस्परानुरागेण दाम्पत्यं यत्र विद्यते।
पितृदेवार्च्चनं यत्र तत्र नैव वसाम्यहम्॥
द्यूतचौर्य्ये न विद्येते परद्रव्यापहारिणः।
परदाररता यत्र तत्र स्थाने रतिर्म्मम॥
वृद्धसज्जनविप्राणां यत्र स्यादवमाननम्।
निष्ठुरं भाषणं यत्र तत्र स्थास्याम्यहम्"॥
सूत उवाच।
"इति तद्वचनं श्रुत्वा विषण्णवदनोऽभवत्।
उद्दालकस्ततो वाक्यं तामलक्ष्मीमुवाच ह"॥
उद्दालक उवाच।
"अश्वत्थवृक्षमूलेऽस्मिन् अलक्ष्मीः स्थीयतां क्षणम्।
आश्रमस्थानमालोक्य यावदायाम्यहं पुनः"॥
सूत उवाच।
"इति तां तत्र संस्थाप्य जगामोद्दालको मुनिः।
प्रतीक्षन्ती चिरं तत्र यदा न तं ददर्श सा॥
तदा रुरोद करुणं भर्त्तुस्त्यागेन दुःखिता।
तत्तस्याः क्रन्दितं लक्ष्मीर्वैकुण्ठभवनेऽशृणोत्॥
तदा विज्ञापयामास विष्णुमुद्विग्नमानसा"।
लक्ष्मीरुवाच।
"स्वामिन् मद्भगिनी ज्येष्ठा स्वामित्यागेन दुःखिता।
तामाश्वासयितुं याहि कृपानो गच्छ मे प्रिय"॥
सूत उवाच।
"लक्ष्म्या सह ततो विष्णुस्तत्रागात् करुणान्वितः।
आश्वासयन्नलक्ष्मीं तामिदं वाक्यमभाषत"॥
विष्णुरुवाच।
"अश्वत्थवृक्षमाश्रित्य सदालक्ष्मीः स्थिरा भव।
ममांशसम्भवो ह्येष आवासस्ते मया कृतः॥
मन्दवारे सदा नूनं लक्ष्मीरत्रागमिष्यति।
अस्पृश्योऽसौ भवेत्तस्मात् मन्दवारं विना किल"॥
इति पाद्मे उत्तरखण्डे १६१ अध्यायः॥ ९॥
वैशाखमासे तस्य सेचनफलं यथा,—
"वैशाखे विष्णुदेवत्य विष्णुमश्वत्थरूपिणम्।
चतुर्थ्यङ्गमधावभिषेकेन वैशाखे नरः॥
गदारूपमाधवतोयेन कुर्य्यादाश्वत्थसेचनम्।
सोऽपि याति परं स्थानं विमुक्तः पापकोटिभिः॥
अश्वत्थमूलं विप्रर्षे यो बध्नाति दिने दिने।
अश्वत्थरूपी भगवान् किं तस्मै न हि दास्यति॥
अश्वत्थद्रुममालोक्य प्रणामं कुरुते नरः।
आयुर्व्वृद्धिर्भवेत्तस्य सर्व्वतो सर्व्वसम्पदः॥

यथाश्वत्थतले विप्र धर्म्मकर्म्म विधीयते।
न्यूनातिरिक्तता न स्यात्तस्मिन् कर्म्मणि जैमिने॥
तत्र तीर्थानि सर्व्वाणि त्रिस्रोतादीनि जैमिने।
यत्राश्वत्थतरुस्तिष्ठेत् एकोऽपि शाखिनां वरः॥
अश्वत्थपूजको यस्तु स एव हरिपूजकः।
अश्वत्थमूर्त्तिर्भगवान् स्वयमेव यतो द्विज॥
तस्मान्महाद्विजश्रेष्ठ योऽश्वत्थं हन्ति मूढ़धीः।
संसारे नास्ति तत्कर्म्म यत् कृत्वा स च शुध्यति॥
अश्वत्थो वृक्षराजोऽयं हरिमूर्त्तिः प्रकीर्त्तितः।
तस्मादश्वत्थहन्तृणां त्राता कोऽपि न विद्यते॥
अश्वत्थं पश्यतो विप्र स्पृशतः स्मरतस्तथा।
देहस्थं पातकं तस्य हरेत् प्रणमतो हरिः॥
विलोक्याश्वत्थहन्तारं यः शक्तो न निवारयेत्।
तन्नेत्रयुग्मं वडिशैर्यमेनोत्पाट्यते स्वयं॥
अश्वत्थच्छेदनं मूढ़ मा कुर्व्विति वदेन्न यः।
तस्य जिह्वां क्षुरिकया स्वयं कृन्तति भास्करिः॥
अश्वत्थशाखामेकां यः स्वल्पामपि निहन्ति यः।
स कोटिब्रह्महत्यानां फलं प्राप्नोति मानवः॥
यत्पापं ब्रह्महत्यायां गुरुस्त्रीगमने च यत्।
सुरापाने तथा स्तेये न्यासापहरणे तथा॥
यत्पापं भ्रूणहत्यायां गोहत्यायां द्विजोत्तम।
स्त्रीहत्यायाञ्च यत्पापं परस्त्रीगमने तथा॥
शरणागतहत्यायां हत्यायां सुहृदां तथा।
विश्वासवाक्याकथने परहिंसाविधौ च यत्॥
यत् पापं परनिन्दायां हरिवासरभोजने।
अश्वत्थच्छेदनाद्घोरं तत् पापं प्राप्यते जनैः॥
विष्णुमूर्त्तेर्जनो मोहादश्वत्थस्य निहन्ता यः।
तत्तुल्यः पातकी कोऽपि न श्रुतः क्षितिमण्डले॥
वदाम्यश्वत्थमाहात्म्यं सर्व्वपापप्रणाशनं।
साक्षादेव स्वयं विष्णुरश्वत्थोऽखिलविश्वराट्॥
तद्भक्तिं कुर्व्वतः पुंसो विद्यते नाशुभं क्वचित्।
अश्वत्थं सेवते यस्तु विष्णुबुद्ध्या नरोत्तमः॥
तस्य प्रसन्नो भगवान् ददाति परमं पदं"।
इति पाद्मे क्रियायोगसारे अश्वत्थसेचनं नाम ११ अध्यायः॥
(अस्थिररूपः संसारवृक्षः। यथा, गीतायाम्।
"ऊर्द्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्"॥
विस्तरस्तु गीतायाः पञ्चदशेऽध्याये द्रष्टव्यः॥)

अश्वत्थभेदः, पुं, (अश्वत्थस्य भेदो विभिन्नता यस्मिन्।) स्थालीवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥

अश्वत्था, स्त्री, पूर्णिमातिथिः। इति मेदिनी॥

अश्वत्थामा, [न्,] पुं, (अश्वस्येव स्थाम बलं यस्य। पृषोदरादिवत् सस्य तः। अथवा अश्व इव तिष्ठति युद्धे। अश्व+स्था+मनिन्।) द्रोणाचार्य्यपुत्त्रः। स तु चिरजीवी महारथी च। तत्पर्य्यायः। कृपीसुतः २ द्रौणायनः ३। इति त्रिकाण्डशेषः॥ द्रौणिः ४। इति स्मार्त्ताः॥ दक्षा-भावे द्रोणिः ५॥ (अयं खलु जात एव अश्व इव ननाद अतोऽस्य अश्वत्थामेति नाम। तथा च भारते।
"अजनत् गौतमीपुत्त्रमश्वत्थामानमेव च।
स जातमात्रो व्यनदत् यथैवोच्चैःश्रवा हयः॥
तच्छ्रुत्वान्तर्हितं भूतमन्तरीक्षस्थमब्रवीत्।
अश्वस्येवास्य यत् स्थाम नदतः प्रदिशो गतम्॥
अश्वत्थामैव बालोऽयं तस्मान्नाम्ना भविष्यति"।)

अश्वत्थी, स्त्री, (क्षुद्रोऽश्वत्थः। अश्वत्थ+अल्पार्थे ङीप्।) वृक्षविशेषः। पिप्पली इति लोके। तत्पर्य्यायः। लघुपत्त्री २ पवित्रा ३ ह्रस्वपत्त्रिका ४ पिप्पलीका ५ वनस्था ६ अश्वत्थिका ७। अस्या गुणाः। मधुरत्वं। कषायत्वं। अस्रपित्तनाशित्वं। विषदाहप्रशमनकारित्वं। गुर्व्विण्या हितकारित्वञ्च॥ इति राजनिर्घण्टः॥

अश्वदंष्ट्रा, स्त्री, (अश्वस्य दंष्ट्रा इव आकृतिर्यस्याः।) गोक्षुरवृक्षः। इत्यमरः॥

अश्वन्त, क्ली, (अश्नु-(सु)-नामन्तो यस्मिन्।) अशुभं। क्षेत्रं। चुल्ली। अनवधि। मृतं। इति हेमचन्द्रः॥

अश्वपाल, पुं, (अश्वान् पालयतीति, अश्व+पाल+कर्म्मणि उपपदे अण् प्रत्ययः।) घोटकरक्षकः। इति अश्वपालिकशब्दटीकायां दुर्गादासः॥ सहस् इति पारसीभाषा। ("दत्तातङ्कोऽङ्गनानामनुसृतसरणिः सम्भ्रमादश्वपालैः प्रभ्रष्टोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरायाः" इति रत्नावल्याम्।)

अश्वपुच्छी, स्त्री, (अश्वस्य पुच्छमिव केशरोऽस्याः।) माषपर्णीवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥

अश्ववाल, पुं, (अश्वस्य वाल इव। काशस्य पुष्पं अश्ववालवत् विभाति।) काशः। केशा इति भाषा। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अश्वमहिषिका, स्त्री, (अश्वमहिषयोर्वैरम्। द्वन्द्वाद्वुन् वैरमैथुनिकयोरिति अश्वमहिष+वुन्।) अश्वमहिषयोर्नित्यवैरं। इति शब्दरत्नावली॥

अश्वमारः } अश्वमारकः } पुं, (अश्वं मारयति। अश्व+मृ+णिच्+अण्।) करवीरवृक्षः। इति शब्दरत्नावली॥ ("काद्याग्निवतकुटजाऽश्वमारकटफलहरिद्रादयनिम्बसप्तच्छदमालत्यस्त्रायमाणा चेति"। इति सुश्रुते॥
"करवीरः श्वेतपुष्पः शतकुम्भोऽश्वमारकः"।
इति भावप्रकाशः॥
"तत्र शीतकाश्वमारगुञ्जेत्यादि।
सुश्रुतस्य कल्पस्थानेऽभिहितं॥")

अश्वमुखः, पुं, (अश्वस्य मुखमिव मुखं यस्य।) किन्नरः। इति हलायुधः॥ (स्त्री, किन्नरी। किम्पुरुषस्त्री। यथा कुमारे।
"न दुर्व्वहश्रोणिपयोधरार्त्ता
भिन्दन्ति मन्दां गतिमश्वमुख्यः"॥)

अश्वमेध, पुं, (अश्वः मेध्यते हिंस्यते यत्र। मेध-हिंसने+घञ्।) यज्ञविशेषः। इति जटाधरः॥ यत्र लक्षणविशेषाक्रान्तमश्वं सम्प्रोक्ष्य कपाले जयपत्रं बद्ध्वा त्यजेत् तद्रक्षार्थं पुरुषविशेषं नियोजयेत्। संवत्सरान्ते अश्वे आगते सति अथवा केनापि सबद्धे युद्धं कृत्वा तमानीय यथाविधि वधं कृत्वा तद्वपया होमं कर्त्तव्यः। कामनानुसारेण तत्फलम्। मोक्षः ब्रह्महत्यापापक्षयः स्वर्गश्च। यथा। आपस्तम्बः।
"राजा सार्व्वभौमः अश्वमेधेन यजेत नाप्यसार्व्वभौमः"। इति॥ प्रायश्चित्तात्मकाश्वमेधो यथा। विष्णुः।
"अनुपातकिनस्त्वेते महापातकिनो यथा।
अश्वमेधेन शुध्यन्ति तीर्थानुसरणेन वा"॥
अपि च।
"अश्वमेधेन शुध्यन्ति महापातकिनस्त्विमे"।
इति विष्णूक्ताश्वमेधस्य प्रायश्चित्तत्वम्। पापक्षयस्वर्गोभयसाधकस्य तु तस्यापि न प्रायश्चित्तत्वम्। इति प्रायश्चित्ततत्त्वम्॥ ०॥ कलौ तस्य निषेधो यथा बृहन्नारदीये।
"दीर्घकालं ब्रह्मचर्य्यं नरमेधाश्वमेधकौ।
महाप्रस्थानगमनं गोमेधञ्च तथा मखं॥
इमान् धर्म्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्म्मनीषिणः"।
इत्युद्वाहतत्त्वम्॥ अन्यच्च। ब्रह्मपुराणम्।
"नराश्वमेधौ मद्यञ्च कलौ वर्ज्यौ द्विजातिभिः"।
इति तिथ्यादितत्त्वम्॥ ०॥ तत्फलजनककर्म्माणि यथा,—
"वैशाखे मासि यः कुर्य्यात् प्रपां माधवतुष्टये।
दिने दिनेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः"॥
इति पाद्मे क्रियायोगसारे ११ अध्यायः॥
अपि च ब्रह्माण्डे॥
"स्नानन्तु भक्त्या गङ्गायां कर्त्तुकामस्य गच्छतः।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं मर्त्त्यस्य जायते"॥
इति प्रायश्चित्ततत्त्वम्॥

अश्वमेधिक, पुं, (अश्वमेधाय हितः। अश्वमेध+ठक्, ठञ् वा।) अश्वमेधयागोपयुक्तघोटकः। इति जटाधरः॥ (क्लीवलिङ्गे स्वनामख्यातं महाभारतान्तर्गतं चतुर्द्दशपर्व्व। यथा,—
"ततोऽश्वमेधिकं पर्व्व सर्वपापप्रणाशनम्"।
"ततोऽश्वमेधिकं पर्व्व प्रोक्तं तच्च चतुर्द्दशम्"।)

अश्वमेधीय, पुं, (अश्वमेधाय हितः। अश्वमेध+छ।) अश्वमेधयज्ञीयाश्वः। तत्पर्य्यायः ययुः २। इत्यमरः॥ तस्य लक्षणम्।
"कालाम्भोधरसङ्काशः स्वर्णवर्णमुखो बली।
यस्य पार्श्वावुभावर्द्धचन्द्राकारौ सुशोभनौ॥
पुच्छं विद्युत्प्रतीकाशमुदरं कुन्दसन्निभं।
पादाश्चैव हरिद्वर्णाः कर्णौ सिन्दूरसन्निभौ॥
ज्वलदग्निनिभा जिह्वा चक्षुषी भास्करोपमे।
विराजितो रोमराज्या सानुलोमविलोमया॥
विचित्रैर्व्विविधैर्व्वर्णैश्चित्रो रजतबिन्दुभिः।
यो वेगे वायुतुल्यः स्यादुच्चैःश्रवा यथा॥
यस्य गात्रोद्भवो गन्धो गन्धर्व्वमपि मोहयेत्।
एवं लक्षणसंयुक्तो यज्ञीयः पशुरुच्यते॥
अश्वस्य पालकाश्चातिबलवान् पुत्र उच्यते।
शत्रुतुल्यं सहदामि शत्रुविघ्नं कपूत्तम"॥
इति वाशिष्ठरामायणम्॥

अश्वयुक्, [ज्] स्त्री, (अश्वं युनक्ति रूपेणानुकरोतीति अश्व+युज्+क्विप्।) अश्विनीनक्षत्रं। इत्यमरः॥

अश्वयुक् [ज्] } अश्वयुजः } पुं, (अश्वेन नक्षत्रेण युक् युक्ता पौर्णमासी अस्त्यस्मिन्।) आश्विनमासः।

इति शब्दरत्नावली ॥ ("अश्वयुक् कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कुर्य्यादिति स्मृति"।भाद्रपदाश्वयुजौ वर्षा। इति सुश्रुत'।)

अश्वरक्ष, पु, (अश्वान् रक्षतीति। अश्व+रक्ष+अण्।) घोटकरक्षक। अश्वपाल। इति जटाधर'॥

अश्वरोधक, पु, (अश्वान् रुणद्धि। अश्व+रुध्+ण्वुल्।) करवीरवृक्ष। इति राजनिर्घण्ट॥

अश्वलाला, स्त्री, (अश्वस्य लालेवाकारेण।) सर्पविशेष। तत्पर्य्याय। गृहागृह २ ब्रह्मसर्प ३। इति त्रिकाण्डशेष॥

अश्ववक्त्र,पु, (अश्वस्य वक्त्रमिव वक्त्रं यस्य।) किन्नर। इति शब्दरत्नमाला॥

अश्ववडवं, स्त्री, अश्ववडवाना समाहार। अश्ववडवयोर्द्वन्द्वे अश्ववडवौ। अश्ववडवाना द्वन्द्वे अश्ववडवा। इत्यमरटीकाया भरत सारसुन्दरी च। घोडा घुडीर समाहारद्वन्द्वसमासे क्लीवलिङ्गेर एकवचन हय इतरेतरद्वन्द्वे पुलिङ्गेर द्विवचन बहुवचन हय इति भाषा॥

अश्ववह, पु, (अश्वेन उह्यते य स। अश्व+वह+अच्।) अश्ववाहक। इति जटाधर। घोडसओयार इति भाषा॥

अश्ववार', पु, (अश्वं वारयतीति। अश्व+वृ+अण्।) सादी। इति हेमचन्द्र। घोडसओयार इति भाषा॥

("परस्परोत्पीडितजानुभागा
दु'खेन निष्क्रमुरश्ववारा"।

इति माघे।)

अश्ववारण', पु, (अश्व वारयति+अश्व+वृ+णिच्+ल्यु।) गलकम्बलरहितगोसदृशपशुविशेष। तत्पर्य्याय। गवय २ वनगव ३ गोसदृक्ष ४। इति हेमचन्द्र॥

अश्ववित्, [द्] पु, (अश्वं अश्वविद्या वेत्तीति। अश्व+विद्+क्विप्।) नलराज। इति त्रिकाण्डशेष॥ (नलस्य राज्ञोऽश्वविद्याज्ञता वर्णिता भारते। यथा।

"बाहुकस्तमुवाचाथ देहि विद्यामिमा मम।
मत्तोऽपि चाश्वहृदय गृहाण पुरुषर्षभ॥
ऋतुपर्णो ततो राजा बाहुक कार्य्यगौरवात्।
हयज्ञानस्य लोभाच्च त तथेत्यब्रवीद्वचः॥
यथोक्त त्व गृहाणेदमक्षाणां हृदयं पर।
निक्षेपो मेऽश्वहृदय त्वयि तिष्ठतु बाहुक"॥

बाहुको बाहुकवेशधारी नल।)

अश्ववैद्य, पु, घोटकचिकित्सक। सालोतरी इति हिन्दिभाषा। अश्वस्य वैद्य इति षष्ठीतत्पुरुषसमासनिष्पन्न'॥

अश्वशाला, स्त्री, घोटकगृह। घोडार पाइशाल। आस्तवल् इति भाषा। यथा वाजिशाला तु मन्दुरा। इत्यमर॥ द्वे अश्वावस्थानगृहे। वाजिनोऽश्वस्य शाला गृह वाजिशाला। अश्वशालादि च। इति तट्टीकाया भरत॥ ("कोषागारमायुधागारमश्वशाला हस्तिशालाश्च"। इति भारते।)

अश्वशृगालिका स्त्री, (अश्वशृगालयोर्वैरम्। द्वन्द्वाद्वुन् वैरमैथुनिकयोरिति वुन्।) अश्वशृगालयोर्वैरम्। इति शब्दरत्नावली॥

अश्वषड्गव, क्ली, (अश्व+षड्गवच्।) अश्वषट्क। षडश्वा। इति पाणिनि॥

अश्वसेनन्टपनन्दन, पु, (अश्वसेनो नृपस्तस्य नन्दन।) सनत्कुमार। इति हेमचन्द्र'॥

अश्वा, स्त्री, (अश्व+टाप्।) घोटकी। घुडी इति भाषा। तत्पर्य्याय। वामी २ वडवा ३। इत्यमर॥

अश्वारि, पु, (अश्वानामरि।) महिष। इति जटाधर॥

अश्वारूढ', पु, (अश्व आरूढो येन।) अश्वारोह। घोटकोपरि कृतारोहण। यथा।"अश्वारोहास्तु सादिन"। इत्यमर॥ द्वे अश्वारूढे। अश्वमारोहन्ति अश्वारोहा ढात् घण्। सादयन्ति श्रमयन्ति अश्वान् सादिन' ग्रहादित्वात् णिन्। इति तट्टीकाया भरत॥

अश्वारोह', त्रि, (अश्वमारोहतीति। अश्व+आ+रुह+अण्।) अश्वपृष्ठस्थितयोद्धा। घोडसोयार इति भाषा। तत्पर्य्याय। सादीर इत्यमर॥ अश्ववह ३। इति जटाधर'॥ अश्ववार ४ तुरगी ५। इति हेमचन्द्र॥

अश्वारोहा, स्त्री, अश्वगन्धावृक्ष। अश्ववाहके त्रि। इति मेदिनी॥ (अश्वगन्धाशब्देऽस्या गुणा व्याख्याता।)

अश्वारोही, [न्] त्रि, अश्वारोहणविशिष्ट। अश्वारूढ'। अश्वारोहणकर्त्ता। अश्वारोहणशील'॥ घोडसोयार इति भाषा। अश्वमारोढु शीलमस्येत्यर्थे णिन्प्रत्ययेन निष्पन्न॥

अश्वावरोहक, पु, अश्वगन्धावृक्ष'। इति रत्नमाला।

अश्वाक्ष, (अश्वस्याक्षीव।) देवसर्षपवृक्ष। इति राजनिर्घण्टः॥

अश्विनी, स्त्री, (अश्व अश्वरूप विद्यते यस्या। अश्व+इन्+ङीप्।) सप्तविंशतिनक्षत्रान्तर्गतप्रथमनक्षत्रं। अश्विन्यादयो रेवत्यन्ताः सप्तविंशतितारा दक्षस्यापत्यत्वात् दाक्षायण्य उच्यन्ते। तत्पर्य्यायः। अश्वयुक् २ दाक्षायणी ३। इत्यमर॥ सा चन्द्रस्य भार्य्या। नवपादात्मकमेषराशेरादिचतुष्पादरूपा च॥ अस्या रूपं। घोटकमुखाकृतितारात्रयात्मक। अस्या अधिष्ठात्री देवता अश्वारूढपुरुषः। इति ज्योतिःशास्त्र। तस्या जातफल। "सदैव देवाभ्युदितो विनीतः सत्त्वान्वित प्राप्तसमस्तसम्पत्। योषाविभूषात्मजभूरितोष स्यादश्विनीजन्मनि मानवस्य"। इति कोष्ठीप्रदीप॥ तस्य मस्तकोपरि उदये कर्कटलग्नस्य १।२० त्रिंशत्पलाधिकदण्डैको गतो भवति। यथा। "तन्वि घोटकमुखाकृतौ त्रिभे मस्तकोर्द्धपथभाजि वाजिनि। चारुचन्द्रमुखि कर्कटोदयात् निर्गता गगनरत्नलिप्तिका"॥ इति श्रीकालिदासकृतरात्रिलग्ननिर्णय॥

अश्विनीकुमारौ, पु, (अश्विन्या अश्वीभूतसंज्ञानामसूर्य्यपत्न्या यमजौ कुमारौ।) अश्विनीसुतौ। अश्वीभूतसंज्ञानामसूर्य्यपत्न्या यमजपुत्त्रौ। तौ देवचिकित्सकौ। (यथा हरिवंशे,

"विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यामरिन्दम।।
तस्य भार्य्याभवत्संज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वत"॥
"देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजा वरौ"।)

नित्यद्विवचनान्तशब्दोऽय।

अश्विनीपुत्त्रौ, पु, (अश्विन्या पुत्त्रौ।) स्वर्वैद्यौ। इति हेमचन्द्र॥

अश्विनीसुतौ, पु, (अश्विन्या सुतौ।) अश्विनीपुत्त्रौ। तयो' पर्य्याय। स्वर्वैद्यौ २ अश्विनौ ३ दस्रौ ४ नासत्यौ ५ आश्विनेयौ ६। इत्यमर। नासिक्यौ ७ गदागदौ ८। इति जटाधर'॥ पुष्करस्रजौ ९। इति शब्दरत्नावली॥

अश्विनौ, पु, (प्रशस्ता अश्वा सन्ति ययो। इनि। यद्वा, अश्विन्याम् जातौ। सन्धिवेलेत्यणो नक्षत्रेभ्यो बहुलमिति लुकि लुक्तद्धितलुकीति ङीपो लुक्॥) अश्विनीकुमारौ। इत्यमर॥

("त्वाष्ट्री तु सवितुर्भार्य्या वडवारूपधारिणी।
असूयत महाभागा सान्तरीक्षेऽश्विनावुभौ"॥

इति महाभारते।

"किमश्विनौ सोमरस पिपासू"।

इति भट्टौ।)

("अश्विनौ देवभिषजौ यज्ञवाहाविति स्मृतौ।
दक्षस्य हि शिरश्छिन्न पुनस्ताभ्या समाहित॥
प्रशीर्णा दशना पूष्णो नेत्रे नष्टे भगस्य च।
वज्रिणश्च भुजस्तम्भस्ताभ्यामेव चिकित्सित॥
चिकित्सितश्च शीतांशुर्गृहीतो राजयक्ष्मणा।
सोमाभिपतितश्चन्द्र' कृतस्ताभ्या पुन सुखी॥
भार्गवश्च्यवन कामी वृद्ध सन् विकृति गत।
वीतवर्णस्वरोपेत' कृतस्ताभ्या पुनर्युवा॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभि कर्म्मभिर्भिषगुत्तमौ।
बभूवतुर्भृश पूज्याविन्द्रादीना महात्मना॥
ग्रहास्तोत्राणि मन्त्राणि तथान्यानि हवींषि च।
धूम्राश्च पशवस्ताभ्यां प्रकल्प्यन्ते द्विजातिभि॥
प्रातश्च सवने सोमं शक्रोऽश्विभ्यां सहाश्नुते।
सौत्रामण्याश्च भगवानश्विभ्या सह मोदते॥
इन्द्राग्नी चाश्विनौ चैव स्तूयन्ते प्रायशो द्विजै।
स्तूयन्ते वेदवाक्येषु न तथान्या हि देवता॥
अमरैरजरैस्तावद्विबुधै साधिपैर्ध्रुवै।
पूज्येते प्रयतैरेवमश्विनौ भिषजाविति॥'

इति चरक॥

"श्रूयते हि यथा रुद्रेण यज्ञस्य शिरश्छिन्नमिति ततो देवा अश्विनावभिगम्योचु। भगवन्तौ न श्रेष्ठतमौ युवा भविष्यथ'। भवद्भ्या यज्ञस्य शिर सन्धातव्य। तावूचतुरेवमस्त्विति। अथ तयोर्थे देवा इन्द्र यज्ञभागेन प्रासादयन्। ताभ्या यज्ञस्य शिर संहितमिति"॥ इति सुश्रुत॥)

अश्वीन, त्रि, एकाश्वकरणकदिनैकगम्यस्थानादि। आश्विन इत्यमर॥ वृद्ध्यभावपक्षे अश्विन॥

अश्वीय, क्ली, (अश्वानां समूह'। अश्व+छ।) अश्ववृन्द। अश्वसमूह'। तत्पर्य्याय'। आश्व२। इत्यमर॥

अश्रीय, त्रि, (अश्राय हितः। अश्र+छ।) अश्रहितकारी। इति मेदिनी॥ अश्रसम्बन्धीयः॥

अष ऋ (भ्वादि-उभं-सकं-सेट्।) दीप्तौ। ग्रहणे। गतौ। इति कविकल्पद्रुमः॥ ऋ अषति अषते। इति दुर्गादासः॥

अषडक्षीणः, त्रि, (अविद्यमानानि षडक्षीणि यत्र। अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मेति साधुः ख। अक्षिशब्दोऽत्र ओनेन्द्रिये वर्त्तते। बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोरिति षच्।) यो मन्त्रादिर्द्वाभ्यां क्रियते न तृतीयादीनां गोचरः। इत्यमरः। दुइजने करा मन्त्रणा इति भाषा॥

अषाढ़, पु, (अषाढ्या युक्ता पौर्णमासी आषाढी, सा यत्र मासे अण् वा ह्रस्वः। आषाढी पूर्णिमा प्रयोजनमस्य। प्रयोजनार्थे अण्।) आषाढ़मासः। व्रते पालाशदण्डः। इत्यमरटीकाधृतद्विरूपकोषः॥

अषाढ़कः, पु, (अषाढ़+स्वार्थे कन्।) आषाढ़मासः। इति शब्दमाला॥

अष्ट [न्] त्रि, (अश्नुते अशू व्याप्तौ कनिन्। सप्यशूभ्यां तुट् चेति कनिन्।) संख्याविशेषः। ८ आट इति भाषा। नित्यबहुवचनान्तशब्दोऽयम्। इति व्याकरणम्॥ अष्टवाचकशब्दाः। योगाङ्गं १ वसुः २ शिवमूर्त्तिः ३ दिग्गजः ४ सिद्धिः ५ ब्रह्मश्रुतिः ६ व्याकरणं ७ दिक्पालः ८ अहिः ९ कुलाद्रिः १० ऐश्वर्य्यं ११। इति कविकल्पलता॥

अष्टकः, त्रि, (अष्टावध्याया परिमाणमस्य। अष्टन् + कन्।) अष्टसंख्या। अष्ट एवाष्टकं स्वार्थे कप्रत्ययः। अष्टसंख्याविशिष्टं यथा,—"गङ्गाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते वाल्मीकिना विरचितं सुखदं मनुष्यः"। इति वाल्मीकीयगङ्गाष्टकम्॥ अपि च।

"अच्युतं केशवं विष्णुं हरिं सत्यं जनार्दनम्।
हंसं नारायणञ्चैव एतन्नामाष्टकं शुभम्"॥

इति ब्रह्मपुराणे श्रीविष्णुनामाष्टकं स्तोत्रम्॥

अष्टकर्णः, पु, (अष्टौ कर्णा यस्य।) ब्रह्मा। इति शब्दरत्नावली॥

अष्टका, स्त्री, (अश्नन्ति पितरोऽस्याम्। अश्+तकन्।) श्राद्धविशेषः। तिथिभेदः। तद्यथा। गौणचान्द्रपौषमाघफाल्गुनमासीयकृष्णाष्टमी। आश्विनकृष्णाष्टमी च। एतासु श्राद्धमावश्यकम्। यथा। आग्रहायण्या ऊर्द्ध्वं तिसृषु कृष्णाष्टमीषु श्राद्धानि नित्यानि। यथा गोभिलः।

"अष्टका योर्द्ध्वमाग्रहायण्यास्तमिस्राष्टमी"।

इति। ब्रह्मपुराणे।

"पित्र्यदानाय मूले स्युरष्टकास्तिस्र एव च।
कृष्णपक्षे वरिष्ठा हि पूर्व्वा चैन्द्री विभाव्यते॥
प्राजापत्या द्वितीया स्यात् तृतीया वैश्वदेविकी।
आद्या पूपैः सदा कार्य्या मांसैरन्या भवेत्तथा॥
शाकैः कार्य्या तृतीया स्यादेष द्रव्यगतो विधिः"।

मन्त्रे प्रधानस्थाने अमावास्याया अमावास्या हि श्राद्धस्य प्रधानकालत्वादिति यावत्। ऐन्द्री कामेरिन्द्रदेवताकयागसम्बन्धात्। एवं प्राजापत्या वैश्वदेवकी च। मांसैः पशोः। तथा च गोभिलः।

"यद्युवाप्यतरसम्भारः स्यात्तदापि पशुनैव कुर्य्यात्" इति। यद्युवेति निपातसमुदायो यद्यर्थे। पशुरपि छाग एव। छागोऽनादेशे पशुः। इति गौतमात्। न च तैथ्या ऊर्द्ध्वमष्टम्यां गौः। इति गोभिलसूत्रेण गवोपदेशात् कथमनुपदिष्टत्वमिति वाच्यम्। तदसम्भवे पशुरित्यनेन य पशुरुपदिष्टस्तस्य विशेषतोऽनुपदिष्टत्वात्। सैषी पौषी। वस्तुतस्तु हरिवंशे मृगोऽपि विहितः। यथा,—

"इक्ष्वाकुणा विकुक्षिर्वै अष्टकायामथादिशत्।
मांसमानय श्राद्धाय मृगं हत्वा महाबल"॥

इति। स्त्रिया वधाभावमाह सएव।

"अवध्याय स्त्रियं प्राहुस्तिर्य्यग्योनिगतामपि"।

एतदर्द्धं ब्रह्मपुराणेऽपि। आरण्यानामगम्य प्रोक्षितत्वं वक्ष्यते। पश्वभावे स्थालीपाकेन। यथा गोभिलः। "अपि वा स्थालीपाकं कुर्व्वीत"। इति। तद्विधानन्तु।

"स्थालीपाकं पशुस्थाने कुर्य्याद्यद्यानुकल्पिकम्।
श्रपयेत्तं सवत्सायास्तरुण्या गोः पयस्यनु"॥

इति छन्दोगपरिशिष्टोक्तं ग्राह्यम्। अन्विति ओदनचरोः पश्चात्। अतएव शातातपः।

"नवोदके नवान्ने च गृहप्रच्छादने तथा।
पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च॥
तस्माद्दद्यात् सदा युक्तो विद्वत्सु ब्राह्मणेषु च"।

तस्मादन्नं प्रधानं। पूपादिकन्तूपकरणत्वेन प्रधानानामावश्यकं उभयत्र सदेति श्रवणात्। तथा च।

"नित्यं सदा यावदायुर्न कदाचिदतिक्रमेत्।
उपेत्यातिक्रमे दोषश्रुतेरत्यागदर्शनात्॥
फलाश्रुतेर्व्वीप्सया च तन्नित्यमिति कीर्त्तितम्"।

इति तिथ्यादितत्त्वम्॥

गौणचान्द्रपौषस्य कृष्णाष्टमी पूपाष्टका। गौणचान्द्रमाघस्य कृष्णाष्टमी मांसाष्टका। गौणचान्द्रफाल्गुनस्य कृष्णाष्टमी शाकाष्टका। केषाञ्चिन्मते गौणचान्द्राश्विनस्य कृष्णाष्टमी अष्टकापदवाच्या। तासु क्रमात् पूपमांसशाकैः मातृपौरुषिकं श्राद्धं कर्त्तव्यं। इति ब्रह्मवायुविष्णुधर्म्मोत्तरपुराणानि॥

अष्टकाङ्गः, स्त्री, (अष्टकमङ्गमस्य।) नयपीठी। इति त्रिकाण्डशेषः॥ पाशार छक् इति भाषा।

अष्टपात्, [द्], पु, (अष्टौ पादा यस्य।) लूता। माकडसा। इति भाषा। शरभः। इति हेमचन्द्रः॥

अष्टपादः, पुं, (अष्टौ पादा यस्य।) ऊर्णनाभविशेषः। तत्पर्य्यायः। किन्तुः २। इति त्रिकाण्डशेषः॥

अष्टपादिका, स्त्री, (अष्टसु दिक्षु पादा यस्याः। अन्त्यलोपः। ङीपि सञ्ज्ञायां कन् ह्रस्वः।) लताविशेषः। इति रत्नमाला॥ छापरमाली इति भाषा॥

अष्टम, त्रि, अष्टानां पूरणः। इति व्याकरणम्॥ (तस्य पूरणे डट्। नान्तादसंख्यादेर्मट्।) यथा। कात्यायनः।

"अष्टमेऽपि चतुर्द्दश्यां क्षीणो भवति चन्द्रमाः।
अमावास्याष्टमांशे च ततः किल भवेदणुः"॥

इति श्राद्धतत्त्वम्॥ अपि च।

"सावर्णिः सूर्य्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टम।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्गदतो मम"॥

इति देवीमाहात्म्यम्॥

अष्टमङ्गल, क्ली, (अष्टप्रकारं मङ्गलम्।) अष्टप्रक[illegible] मङ्गलद्रव्यं। तद्यथा,—

"मृगराजो वृषो नागः कलसो व्यजनन्तथा।
वैजयन्ती तथा भेरी दीप इत्यष्टमङ्गलम्"॥

इति वृहन्नन्दिकेश्वरपुराणोक्तदुर्गोत्सवपद्धतौ [illegible]

"लोकेऽस्मिन् मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताश[illegible]
हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाऽष्टमः"[illegible]

इति शुद्धितत्त्वम्॥

अष्टमङ्गल, पुं, (अष्टौ मङ्गलानि शुभचिह्ना[illegible] यस्मिन्।) श्वेतवर्णमुखवक्षःखुरकेशपुच्छयुक्ताश्व[illegible] टकः। इति हेमचन्द्रः॥

अष्टमङ्गलघृत, क्ली, (अष्टाभिः मङ्गलजनकद्रव्यैः कृ[illegible] यद्घृतं।) अष्टौषधयुक्तपक्वघृतं। यथा,—

"वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि च।
सारिवा सैन्धवञ्चैव पिप्पली घृतमष्टमम्॥
सिद्धं घृतमिदं मेध्यं पिबेत् प्रातर्द्दिने दिने।
दृढ़स्मृतिः कुमाराणां पिबतामष्टमङ्गलम्"॥

इति भावप्रकाशः॥

अष्टमान, क्ली, (अष्टौ मुष्टयः परिमाणमस्य।) कुडव[illegible] परिमाणं। शरावाङ्कं। इति वैद्यकपरिभाषायां [illegible]
("प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात् कुडवोऽर्द्धशरावकः॥
अष्टमानञ्च स ज्ञेयः", इति शार्ङ्गधरः॥)

अष्टमिका, स्त्री, (अष्टम+कन्+स्त्रियामाप्।) शुक्तिपरिमाणं। चतुस्तोलकं। इति वैद्यकपरि[illegible]भाषायां॥
("स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा"॥ इति शार्ङ्गधरः॥)

अष्टमी, स्त्री, (अष्टानां पूरणी। अष्टम+ङीप्।) क्षीरकाकोली। इति शब्दचन्द्रिका॥ तिथिविशेषः। सा चन्द्रस्याष्टमकलाक्रियारूपा। तदुपलक्षितकालरूपा च। सा च शुक्ला नवमीयुता ग्राह्या युग्मात्। कृष्णा च सप्तमीयुता। यथा निगमः।

"कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्द्दशी।
पूर्व्वविद्धैव कर्त्तव्या परविद्धा न कुत्रचित्॥
उपवासादिकार्य्येषु एष धर्म्मः सनातनः"॥०॥

भविष्यपुराणे।

"चतुर्द्दश्यां तथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः।
योऽब्दमेकं न भुञ्जीत शिवार्च्चनपरो नरः॥
यत् पुण्यमध्वरे प्रोक्तं सततं सत्रयाजिनां।
तत्पुण्यं सकलं तस्य शिवलोकञ्च गच्छति"॥

ततश्च सततसत्रयाज्यध्वरपुण्यसमपुण्यप्राप्तिः शिवलोकगतिश्च फलं। फाल्गुनशुक्लाष्टमीचतुर्द्दश्योरारभ्य वर्षं यावत् प्रत्यष्टमीप्रतिचतुर्द्दश्युपवासव्रतं॥०॥ कालिकापुराणे।

"एषा ललितकान्ताख्या देवी मङ्गलचण्डिका।
वरदाभयहस्ता च द्विभुजा गौरदेहिका॥

रक्तपद्मासनस्था च मुकुटकुण्डलमण्डिता ।
रक्तकौषेयवस्त्रा तु स्मितवक्त्रा शुभानना ॥
नवयौवनसम्पन्ना चार्व्वङ्गी ललितप्रभा ।
उमया भाषित मन्त्र यत् पूर्व्वं त्वेकमक्षर ॥
मन्त्रमस्यास्तु तज्ज्ञेय तेन देवीं प्रपूजयेत्” ।
एकमक्षर शक्तिवीजरूप ।
“तथाष्टम्या नवम्याश्च पूजा कार्य्या विवृद्धये ।
पटेषु प्रतिमाया वा घटे मङ्गलचण्डिका ॥
य पूजयेद्भौमवारे शुभैर्दूर्व्वाक्षतै शिवां ।
सततं साधक सोऽपि काममिष्टमवाप्नुयात्” ॥*॥
ज्योतिषे। शनैश्चरस्य वारेण वारेणाङ्गारकस्य च।
“कृष्णाष्टमी चतुर्द्दश्यौ पुण्यात् पुण्यतरे स्मृते” ॥
तथा—
“सोमवारेऽप्यमावास्या आदित्याह्ने तु सप्तमी ।
चतुर्थ्यङ्गारवारे च अष्टमी च बृहस्पतौ ॥
अत्र यत् क्रियते पापमथवा धर्म्मसञ्चय ।
षष्टिजन्मसहस्राणि प्रतिजन्म तदक्षय” ॥
इति तिथ्यादितत्त्वं ॥*॥ श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रतं अष्टकाश्राद्ध भीष्माष्टमीकृत्यञ्च तत्तच्छब्दे द्रष्टव्य ॥ महाष्टमीकृत्यं महाष्टमीशब्दे द्रष्टव्य ॥ तत्र जातफल ।

“भूपालत प्राप्तधन कृशाङ्ग
सुखी कृपालुर्युवतिप्रियश्च ।
चतुष्पदाढ्यो धनधान्ययुक्त
स्यादष्टमीजो मनुज सुधीर ॥”

इति कोष्ठीप्रदीप ॥

अष्टमूर्त्ति, पुं, (अष्टौ मूर्त्तयो यस्य ।) शिव । इति हेमचन्द्र ॥ तत्प्रत्येकमूर्त्तिनामानि । क्षितिमूर्त्ति सर्व्व १ जलमूर्त्तिर्भव २ अग्निमूर्त्ति रुद्र ३ वायुमूर्त्तिरुग्र ४ आकाशमूर्त्तिर्भीम ५ यजमानमूर्त्ति पशुपति ६ चन्द्रमूर्त्तिर्म्महादेव ७ सूर्य्यमूर्त्तिरीशान ८। इति तन्त्रशास्त्र ॥ एता शरभरूपिशिवस्याष्टपादा इति कालिकापुराणं ॥ यथा ।
“अष्टमूर्त्तिर्निधीशश्च ज्ञानचक्षुस्तपोमय” ।
इति वटुकभैरवस्तोत्र ॥ तस्याष्टमूर्त्तयो यथा ।
“अथाग्नि रविरिन्दुश्च भूमिराप प्रभञ्जन ।
यजमान खमष्टौ च महादेवस्य मूर्त्तय” ॥
इति शब्दमाला ॥

(“अवेहि मा किङ्करमष्टमूर्त्ते
कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम्” ॥

इति रघुवंशे ॥ तथा कुमारे च ।

“तत्राग्निमाधाय समित्समिद्ध
स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्त्ति” ॥)

अष्टलोहकं, क्ली, अष्टधातुविशेषः। तद्यथा। सुवर्णं १ रजत २ ताम्र ३ रङ्गं ४ सीस ५ कान्तलोह ६ मुण्डलोह ७ तीक्ष्णलोह ८। इति राजनिर्घण्ट ॥

अष्टवर्ग, पु, (अष्टाना औषधविशेषानां रविप्रभृतीनां वा वर्ग ।) औषधविशेषाष्टकं । तद्यथा। प्रथम १ जीवक २ मेद ३ महामेद ४ ऋद्धि ५ वृद्धि ६ काकोली ७ क्षीरकाकोली ८। इति वैद्यकपरिभाषा। एकीकृतैतदौषधगुणा । रक्तपित्तशुक्रवायुपित्तनाशित्वं। इति राजवल्लभ ॥
(“जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके ।
अष्टवर्गोऽष्टभिर्द्रव्यै कथितश्चरकादिभि ॥
अष्टवर्गो हिम स्वादुर्बृंहणो शुक्रलो गुरु ।
भग्नसन्धानकृत् कामबलासबलवर्द्धन ॥
वातपित्तास्रतृट्दाहज्वरमेहक्षयप्रणुत्” ।
इति भावप्रकाश ॥)
ज्योतिषशास्त्रोक्तगोचरविशेष । तद्यथा। आदौ रव्यादिसप्तग्रहाणां राहोश्च अष्टमासकोष्ठं कृत्वा प्रत्येकमासकोष्ठे जन्मकालीनग्रहाधिष्ठितराश्यवधिस्वाद्दिनकृच्छुभद इत्यादि दीपिकोक्तवचनाङ्कसंख्यकगृहे रेखा विन्यसेत् तत्र रवेर्द्वादशकोष्ठे ४८ चन्द्रस्य ४९ कुजस्य ३९ बुधस्य ५५ गुरोः ५६ भृगो ५२ शने ३९ राहो ३९ एतत्संख्यका रेखा देया । तत प्रत्येकगृहस्थरेखा द्विगुणीकृत्य अष्टाधिकाश्चेत् अष्टभि शोधयेत् । शेषा रेखा शुभा ख्याता । अष्टोनाश्चेत्तदा विन्दुभिरष्टाना पूरण कार्य्यं। तत्र विन्दवोऽशुभा ख्याता । अष्टौ चेत् तदा विन्दुरेखयोरभावस्तत्र सम परिकीर्त्तितं ॥ तस्य नामगुणा ।
“जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ वृद्धिऋद्धिके ।
अष्टवर्गोऽष्टभिर्द्रव्यै कथितश्चरकादिभि ॥
अष्टवर्गो हिम स्वादुर्बृंहण शुक्रलो गुरु ।
भग्नसन्धानकृत् बल्य शरीरबलवर्द्धन ॥
वातपित्तास्रतृट्दाहज्वरमेहक्षयप्रणुत्” ।
इति भावप्रकाशः ॥*। ज्योति शास्त्रोक्तगणनया रेखाविन्दुभ्या शुभाशुभफलसूचकजन्मकालीनाष्टग्रहसमुदाय । यथा। अथाष्टवर्ग ।
“जन्मकालग्रहस्थित्या फल वक्ष्ये शुभाशुभ” ।
स्वाद्दिनकृत् शुभद क्षितिपक्षसमुद्रनगादिकपक्षगतो १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । ऽथ विभावरिभर्त्तुस्त्र्यङ्गदशेषगतो ३ । ६ । १० । ११ । ऽथ कुजाद्रविवत् १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । अथ सोमसुतात्रिशरर्त्तुनवादिषु यात । ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । १२ । देवगुरोर्विषयर्त्तुनवेशगतो ५ । ६ । ९ । ११ । ऽथ सुरारिगुरो समथाचलभास्करयात । ६ । ७ । १२ । तीक्ष्णमरीचिसुतादपि भास्करवत् । १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । अथ लग्नगृहात् त्रिकृताङ्गदशादिषु यात ३ । ४ । ६ । १० । ११ । १२ । रविरेखा । ४८ । भुजङ्गविलासाभिधानमालादण्डकेनादित्याष्टवर्ग ॥*॥ चन्द्र शुभोऽर्कात्रिकालाग्निदन्तावलाशशिवस्थ । ३ । ६ । ७ । ८ । १० । ११ । स्वत स्वात् कुरामर्त्तुगाशाशिवस्थ । १ । ३ । ६ । ७ । १० । ११ । आराद्द्विवह्नीषुषड्गोदिगीशेष्व । २ । ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । य ज्ञात् कुरामाब्धिबाणागदन्तावलाशाशिवस्थ १ । ३ । ४ । ५ । ७ । ८ । १० । ११ । जीवात् कुदृग्वेदशैलेभकाष्ठाशिवस्थो १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ । ऽथ शुक्रात्त्रिवेदेषु-शैलग्रहाशाशिवस्थ ३ । ४ । ५ । ७ । ९ । १० । ११ । तीक्ष्णांशुदेहोद्भवाद्रामबाणर्त्तुशम्भुस्थितो ३ । ५ । ६ । ११ । ऽथोदयाद्व्यब्धिवर्त्तुकाष्ठाशिवस्थ । ३ । ६ । १० । ११ । चन्द्ररेखा । ४९ । कामबाणाभिधानमालादण्डकेन चन्द्राष्टवर्ग ॥*॥ कुजोऽर्काच्छुभो वह्निबाणर्त्तुदिक्शम्भुगो ३ । ५ । ६ । १० । ११ । ऽथेन्दुतो रामकालेशग ३ । ६ । ११ । स्वत स्वात् कुदृग्वेदसप्ताष्टदिक्शम्भुग स्यात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ । निशानाथपुत्राद्गुणेष्वङ्गरुद्रोपयात । ३ । ५ । ६ । ११ । ततो जीवत कालकाष्ठाशिवार्कोपयातो ६ । १० । ११ । १२ । ऽथ देवारिपूज्यादनेष्टो गजेशार्कसस्थ । ६ । ८ । ११ । १२ । ततः सूर्य्यपुत्रात् कुवेदागनागग्रहाशाशिवस्थो १ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । ऽथ लग्नात् कुरामाङ्गदिक्शम्भुयात । १ । ३ । ६ । १० । ११ । कुजरेखा ३९ । सिंहविलासाभिधानमालादण्डकेन भौमाष्टवर्ग ॥*॥ ज्ञ शुभोऽर्कत शरर्त्तुगोशिवार्कगो ५ । ६ । ९ । ११ । १२ । ऽथ चन्द्रतो द्विवेदकालनागदिक्महेश्वरेषु । २ । ४ । ६ । ८ । १० । ११ । भूमिजात् कुदृक्कृतागनागगोदशेशग । १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । ततः स्वत कुवह्निपञ्चषट्स्वादिकेषु । १ । ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । १२ । वाक्पतेरसाष्टशम्भुसूर्य्यगो ६ । ८ । ११ । १२ । ऽथ शुक्रत कुवाऽऽवह्निवेदपञ्चनागगोशिवेषु । १ । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । ११ पङ्गुतः कुदृक्कृतागनागपञ्चकस्थितो ऽथ । १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ । लग्नत क्षितिद्विवेदकालनागदिक्शिवेषु । १ । २ । ४ । ६ । ८ । १० । ११ । बुधरेखा । ५५ । अशोकमञ्जरीसञ्ज्ञकमालादण्डकेन बुधाष्टवर्गः ॥*॥ सुरराजगुरुः शुभदो रवित कुयमानलवेदनगादिकपञ्चगतो १ । २ । ३ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । ऽथ विधोर्द्विशराचलगोशिवगो २ । ५ । ७ । ९ । ११ । वसुधातनयात् कुयमाब्धिनगाष्टदशेशगतो १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ । ऽथ बुधात् क्षितियुग्मकृतेषुरसग्रहदिक्गिरिशोपगत १ । २ । ४ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । स्वदनु स्वत एकयमानलवारिधिपर्व्वतनागदशेशगतो १ । २ । ३ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ । ऽथ सितादयमपञ्चरसग्रहदिशिवगो २ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । रविनन्दनतो दहनेषुरसार्कगत ३ । ५ । ६ । १२ । अथ लग्नगृहात् कुयमाब्धिशरर्त्तुनगग्रहदिग्गिरिशोपगत १ । २ । ४ । ५ । ६ । ७ । ९ । १० । ११ । गुरुरेखा ५६ । कुसुमस्तवकाभिधानमालादण्डकेन बृहस्पतेरष्टवर्गः ॥*॥ भृगु शुभो रवेर्गनेशसूर्य्यगो । ८ । ११ । १२ । ऽथ चन्द्रतः पाशपञ्चकाष्टगोशिवार्कग । १ । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । ११ । १२ । कुजात् त्रिवेदकालगोशिवार्कगो ३ । ४ । ६ । ९ । ११ । १२ । ऽथ बोधनात् त्रिबाणकालरन्ध्ररुद्रसस्थित । ३ । ५ । ६ । ९ । ११ । गुरो शराष्टरन्ध्रदिक्महेशग । ५ । ८ । ९ । १० ।

११ । ततः तत कुपञ्चकाष्टरन्ध्रदिक्शिवोपग १ । ५ । ८ । ६ । १० । ११ । शनेर्गुणाब्धिपञ्चना-गगोदशेशगो । ३ । ४ । ५ । ८ । ६ । १० । ११ । ऽथ लग्नत कुपञ्चकाष्टगोशिवस्थित । १ । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ६ । ११ । शुक्ररेखा । ५२ । अनङ्ग-शेखराभिधानमालादण्डकेन मार्गवाष्टवर्ग ॥ * ॥ शुभ पङ्क्तुरर्कात् आयमाम्भोधिशैलाष्टदिक्श-म्भुग । १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ । इन्दुतो रामकालेशगत । ३ । ६ । ११ । आस्तुतादक्षि-बाणर्त्तुकाष्ठाशिवार्कोपगो । ३ । ५ । ६ । १० । ११ । १२ । ऽथ क्षत कालदन्तावलादिस्थितो । ६ । ८ । ६ । १० । ११ । १२ । जीवतो बाणकालेश-मार्त्तण्डयात । ५ । ६ । ११ । १२ । ततो दैत्य-पूज्यादनेष्ट शिवार्कोपयातः । ६ । ११ । १२ । खलो वीतिहोत्रेषु कालेशयात । ३ । ५ । ६ । ११ । ततो लग्नत आगुणाम्भोधिषड्दिक्शिवेशस्थित । १ । ३ । ४ । ६ । १० । ११ । शनिरेखा ३९ । मत्तमातङ्गलीलाभिधानदण्डकेन शनेश्चराष्टवर्ग । इति दीपिका ॥ * ॥ राहु शुभोऽर्काद्भुजवह्नि-वेदर्त्तुरन्ध्रगो । २ । ३ । ४ । ६ । ६ । अथ चन्द्रात् कुरामवेदाङ्गग । १ । ३ । ४ । ६ । तत कुजा-द्वह्निबाणाङ्गरन्ध्रगतो । ३ । ५ । ६ । ६ । ऽथ बुधाच्छशिपञ्चवह्निबाणरन्ध्रग । १ । २ । ३ । ५ । ६ । ततो जीवाद्व्यथवाह्ववेदाङ्गरन्ध्रग । ३ । ४ । ६ । ६ । तत शुक्रात् पञ्चवह्निबाणरन्ध्रगत । २ । ३ । ५ । ६ । ततः सौरात् पञ्चबाणर्त्तुग । २ । ५ । ६ । तत तत शशिवेदबाणरिपुरन्ध्रगो । १ । ४ । ५ । ६ । ६ । ऽथ लग्नाद्वेदरन्ध्र-दिग्रुद्रसूर्य्यगत । ४ । ६ । १० । ११ । १२ । राहुरेखा । ३९ । मृगेन्द्रविलासाभिधानदण्डकेन राहोरष्टवर्ग ॥ * ॥ सूर्य्यादेकद्विचतु सप्ताष्ट-दशैकादशेषु । १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ । सोमात्त्रिषड्दशैकादशेष । ३ । ६ । १० । ११ । भौमात्त्रिपञ्चषडेकादशेषु । ३ । ५ । ६ । ११ । बुधात् षडष्टनवदशैकादशेषु । ६ । ८ । ६ । १० । ११ । गुरो पञ्चषडेकादशद्वादशेषु । ५ । ६ । ११ । १२ । शुक्रात् षडेकादशद्वादशेषु ६ । ११ । १२ । शनेस्त्रिपञ्चाष्टदशैकादशेषु । ३ । ५ । ८ । १० । ११ । लग्नादेकत्रिचतु षड्दशैकादशेषु । १ । ३ । ४ । ६ । ११ । एव लग्नरेखा ३७ ॥ * ॥

"इति निगदितमिष्ट नेष्टमन्यद्विशेषा-
दधिकफलविपाक जन्मभासञ्च दद्यु ।
उपचयगृहमित्रस्वोच्चगा पुष्टमिष्ट
त्वपचयगृहनीचारातिभे नेष्टसम्पत् ॥
यावती यावती रेखा ग्रहाणामष्टवर्गके ।
तावतीं द्विगुणीकृत्य अष्टाभि परिशोधयेत् ॥
अष्टोपरि भवेद्रेखा अष्टाभ्यन्तरविन्दव ।
अष्टाभिस्तु समो यत्र तत् समं परिकीर्त्तितम् ॥
रेखा ग्रहाच्छुभे देया विन्दवश्चेतरत्र तु ।
रेखाविन्दू समानौ चेत् समस्तत्र निगद्यते ॥
रेखाधिक्ये शुभ ज्ञेय तद्वद्विन्दोरथाशुभम् ।
श्रीरानन्दस्तथा श्रेयो भोगो राज्य भवेत्तथा ॥
मलिनोऽथ विपच्चैव हानिर्मृत्युर्भवेत्तथा ।
ह्यादिरेखा ह्यादिविन्दो फलान्येतान्यनुक्रमात् ॥
रेखायां वत्सरो ज्ञेय सार्द्धसप्तदिन समे ।
अष्टवर्गदशायु स्यात् दिनं चतुर्थं विन्दुषु" ॥
इत्यायुर्द्दाय । इत्यष्टवर्ग ॥ * ॥ नन्दी ।
"अष्टवर्गशुभे श्रीमान् कर्म्म कुर्य्यान्नमस्वरे ।
गोचरस्थैस्तदप्राप्तौ तदप्राप्तौ च वेधगे ॥
व्रतारम्भे विवाहे च यात्राया क्षुरकर्म्मणि ।
अविशुद्धाष्टवर्गस्य समस्ता निष्फला क्रिया ॥
"सतत दिशति नराणा
राशौ मध्येऽष्टवर्गफल निखिल ।
भावफल प्रथमार्द्धे
दृष्टिफलान्यर्द्धभुक्तेषु" ॥
इत्यष्टवर्गार्थकथनम् । इति ज्योतिस्तत्त्वम् ॥

अष्टश्रवा, [स्] पु, ( अष्टौ श्रवांसि यस्य । चतु-र्मुखस्य ब्रह्मण प्रतिमुख द्विकर्णतया तथात्वम् ।) ब्रह्मा । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अष्टाकपाल, पुं, (अष्टसु कपालेषु सस्कृत । सस्कृत भक्ष्य इत्यणोद्विगोर्लुगनपत्ये इति लुक् । अष्टम कपाले हविषीत्यात्वम् ।) यज्ञविशेष । यत्र अष्टसु कपालेषु पुरोडाश पक्त्वा हूयते । इति श्रुति ॥

अष्टाङ्गार्घ्य, पु, ( अष्टौ अङ्गानि उपकरणानि यस्य तादृशोऽर्घ्य । ) अष्टद्रव्यघटितपूजोपकरणवि-शेष । यथा,—
"आप क्षीर कुशाग्राणि दधि सर्पि सतण्डुला ।
यवा सिद्धार्थकाश्चैव अष्टाङ्गार्घ्य प्रकीर्त्तित " ॥
इति तन्त्रम् ॥
"आप क्षीर कुशाग्राणि घृत मधु तथा दधि ।
रक्तानि करवीराणि तथा रक्तञ्च चन्दनम् ॥
अष्टाङ्ग एष अर्घ्यो व भानवे परिकीर्त्तित" ।
इति काशीखण्डम् ॥

अष्टादश [न्] त्रि, ( अष्टाधिका दश ।) अष्टाधिक-दशसंख्या । १८ आठार इति भाषा । नित्यबहु-वचनान्तशब्दोऽय । इति सिद्धान्तकौमुदी ॥ (यथा मनु ।
"अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक्" ।) अथाष्टादशवाचकशब्दा यथा । द्वीप १ विद्या २ पुराण ३ स्मृति ४ धान्य ५ । इति कविकल्पलता ॥
("अगाहताष्टादशता जिगीषया
नवद्वयद्वीपपृथकजयश्रियाम् ।"
इति नैषधे ।
"अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुत" ।
इति भारते ॥)

अष्टादशाङ्ग, पु, (अष्टादश अङ्गानि यस्मिन् ।) अष्टादशद्रव्यात्मकपाचन । स चतुर्व्विध । दश-मूल्यादि १ । भूनिम्बादि २ । द्राक्षादि ३ । मुस्तादि ४ । तद्यथा ।
"दशमूली शठी शृङ्गी पौष्कर सदुरालभा ।
भार्गी कुटजवीजञ्च पटोल कटुरोहिणी ॥
अष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापह ।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्तिहिक्काश्वासवमीहर" ॥ १ ॥
"भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्द-
तिक्तेन्द्रवीजधनिकेभकणाकषाय ।
तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोह
श्वासादियुक्तमखिल ज्वरमाशु हन्ति" ॥
"द्राक्षामृता शठी शृङ्गी मुस्तक रक्तचन्दन ।
नागर कटुका पाठा भूनिम्ब सदुरालभ ॥
उशीर पद्मक धान्य वालक कण्टकारिका ।
पुष्कर पिचुमर्द्दश्च क्वाथ शीर्णज्वरापह ॥
कास श्वासश्च विषम श्वयथूदरनाशन ।
अष्टादशाङ्गमुदितमेतत् स्यात् सन्निपातनुत्" ॥
मुस्तपर्पटकोशीरदेवदारुमहौषध ।
त्रिफला धन्वयासश्च नीली काम्पिल्लक त्रिवृत् ॥
किराततिक्तक पाठा वलाकटुकरोहिणी ।
मधुक पिप्पलीमूल मुस्ताद्यो गण उच्यते ॥
अष्टादशाङ्गमुदितमेतद्वा सन्निपातनुत् ।
पित्तोत्तरे सन्निपाते हितश्चोक्त मनीषिभि ॥
मन्यास्तम्भउरोघाते उर पार्श्वशिरोग्रहे" ॥ ४ ॥
इति सुखबोध ॥

अष्टापद, पुं,क्ली, (अष्टसु धातुषु पद प्रतिष्ठा यस्य पक्षे पक्षे अष्टौ पदानि यस्येति वा । अष्टन सज्ञायामिति दीर्घ ।) स्वर्ण । धुस्तूर । शारीय फलक । इत्यमरमेदिनीकरौ ॥ पाशार छक इति भाषा । यथा "धुस्तूर कनकाह्वय" । इत्य मरदर्शनात् । अष्टापदशब्दस्य कनकवाचकत्वात् । ("आवर्जिताष्टापदकुम्भतोयै ।"
इति कुमारसम्भवे ॥
"स रामकरमुक्तेन निहतो द्यूतमण्डले ।
अष्टापदेन बलवान् राजा वज्रधरोपम ॥"
इति हरिवंशे ॥)

अष्टापद, पु, ( अष्टौ पदानि यस्य ।) शरभ मर्कट । इति मेदिनी ॥ लूता । चन्द्रमल्ली । क्रिमि । कैलासपर्व्वत । इति हेमचन्द्र ॥ की लक । इति धरणि ॥

अष्टापदी, स्त्री, (अष्टौ पादा यस्या । सङ्ख्यासु पूर्व्व स्येति पादस्यान्तलोपे पादोऽन्यतरस्यामिति ङीपि पाद पत् ॥) चन्द्रमल्ली । इति मेदिनी ॥

अष्टारचक्रवान् [ त् ] पु, (अष्टारमष्टकोण चक्र विद्यते यस्य । अष्टारचक्र + मतुप् । मस्य व ।) जिनविशेष । तत्पर्य्याय । मञ्जुश्री २ ज्ञान दर्पण ३ मञ्जुभद्र ४ मञ्जुघोष ५ कुमार ६ स्थिरचक्र ७ वज्रधर ८ प्रज्ञाकाय ९ वादिराट् १० नीलोत्पली ११ महाराज १२ नील १३ शार्दूलवाहन १४ धियाम्पति १५ पूर्व्वजिन १६ खड्गी १७ दण्डी १८ विभूषण १९ बालव्रत २० पञ्चचीर २१ सिंहकेलि २२ शिखाधर २३ वागीश्वर २४ । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अष्ठि, स्त्री, (अस्यते पृथिव्या क्षिप्यते इति + अस + क्तिन् । पृषोदरादित्वात् ठत्वम् ।) वीज । इत्युणादिकोष ॥ आँठि इति भाषा ।

अष्ठीवान् [ त् ] पु, स्त्री, (अतिशयितमस्थि यस्मिन् । अस्थि + मतुप् । मस्य व । आसन्दीवदष्ठीवदिति निपातनादस्थिशब्दस्याष्ठीभाव ।) जानु । इत्य-

मर ॥ आँठु इति भाषा ।

अस ल भावे । (अदा-पर-अक-सेट् ।) भाव सत्ता । सा चेह विद्यमानतैव । ल अस्ति विष्णुः । इति दुर्गादास ॥ (वि + अति) , अतिक्रमे । पराभवे । "अन्यो व्यतिस्ते तु ममापि धर्म्म" इति भट्टौ । (अभि) भागसत्तायाम् । "यदत्र ममाभिस्यात् दीयताम्" । इति पाणिनिः । (आविस्) आविर्भावे ।

"तेषामाविरभूद् ब्रह्मा परिम्लानमुखश्रियाम्" ।

इति कुमारे । (प्रादुस्) प्रादुर्भावे । उद्भवे ।

"महाभूतादिवृत्तौजा प्रादुरासीत्तमोनुद" ।

इति मनुः ।)

अस इ र् य उ क्षेपे । (दिवा-परं-सकं-सेट् ।) इति कविकल्पद्रुमः ॥ य अस्यति । उ असित्वा अस्त्वा । इर् आस्थत् आसीत् । अस्यमान महागदा इति भट्टौ ताच्छील्ये शतु शान । इति दुर्गादास ॥

("तस्मिन्नास्थदिषीकास्त्रं रामो रामावबोधित" ।

इति रघुवंशे । (अति) अतिक्रमे । पराभवे ।

"सङ्गमिस्वैकमत्यस्यन्नेकेन च बहून् जनान्" ।

इति रामायणे । (वि + अति) उत्ताने ।

"व्यत्यस्तपाणिना कार्य्यमुपसंग्रहणं गुरोः" ।

इति मनु । (अप) दूरनिक्षेपे ।

चौरानपास्यज्जनकस्य कन्या

नेय प्रतिज्ञा मम दत्तपूर्व्वा" ।

इति रामायणे । (अभि) अभ्यासे ।

"अभ्यस्यन्ति तटाघात निर्ज्जितैरावता गजा" ।

इति कुमारे । (नि) निक्षेपे । "न मद्विधो न्यस्यति भारमुग्रम्" । इति भट्टौ । (उप + नि) प्रस्तावे ।

"स तु तत्र विशेषदुर्लभ सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः" । इति किराते । (स + उप + नि) प्रमाणादिना दृढीकरणे ।

"त्वया च मया समुपन्यस्तेष्वपि मन्त्रेष्ववज्ञान वाक्पारुष्यञ्च कृतम्" । इति हितोपदेशे । (प्रति + नि) स्थापने ।

"तथैवायुधजालानि भ्रातृभ्या कवचानि च ।

रथोपस्थे प्रतिन्यस्य सचर्म्म कठिन च यत्" ॥

इति रामायणे । (निर्) दूरीकरणे । पराभवे ।

"यश्चासि सर्व्वभुर्ता निरास्थत्" ।

"तानर्द्दिदरखादीच निरास्थच तथाहतान्" ॥

इति च भट्टौ । (परि) विस्तृतौ । "पर्य्यस्यन्निह निचयः सहस्रसख्यो" । किराते ॥ "ताम्रोष्ठपर्य्यस्तरुच स्मितस्य" । इति कुमारे ॥ पातने च ।

"दासीघटमपां पूर्णं पर्य्यस्येत् प्रेतवत् सदा" ।

इति मानवे ॥ (सम्) सयोगे । एकत्र सङ्क्षेपे । यथा,—

"सर्व्वोऽप्यवयवोऽङ्गा समस्यते ।"

"अव्ययं समर्थेन सह समस्यते ।"

इति च पाणिनिः । इत्यादिः ॥

अस भ् अयार्थे । (भादिं-उभ सकं-सेट् ।) अमार्थो दीप्तियहणगतयः ॥ "वासुदेव परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते" । उपगच्छतीत्यर्थ । लावण्य उत्पाद इवास यत्र इत्यादिसिद्धौ अनेकार्थत्वात् सत्तार्थोऽयमपीति रमानाथ । अनुप्रयोगादन्यत्रापि परोक्षायामस्तेर्भूभावं केचिन्नेच्छन्तीति धातुप्रदीप । इति दुर्गादास ॥

असंख्य:, त्रि, असख्यनीय । सख्यारहित । अपरिमित । न विद्यते सख्या यस्येति बहुव्रीहि । अगणनीय । यथा,—

"असख्य द्विपरार्द्धादि पुद्गलात्मात्यनन्तक" ।

इति हेमचन्द्र ॥ अपि च ।

"शतयोजनविस्तीर्णे शतस्कन्धसमन्विते ।

असख्यशाखानिकरैरसख्यफलसयुते" ॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते गणपतिखण्डे ४१ अध्याय ॥

असंख्यातं, त्रि, सख्यारहितं । यथा । मदनपारिजाते ।

"अकृत्यग्रेण यज्जप्त यज्जप्त मेखलङ्घित ।

असख्यातञ्च यज्जप्त तत्सर्व्वं निष्फल भवेत्" ॥

इत्याह्निकाचारतत्त्व ॥

असंस्कृत, त्रि, (न सस्कृत । नञ्समास ।) सस्काररहित । यथा । आपस्तम्ब ।

"असंस्कृत सुत श्रेष्ठो नापरो वेन्णारग" ।

इति शुद्धितत्त्व ॥ अन्यच्च ।

"असस्कृतप्रमीतस्य पिता न श्राद्धमाचरेत् ।

यदि स्नेहाघरेच्छ्राद्ध सपिण्डीकरण विना" ॥

इति ।

"असस्कृतौ न संस्कार्य्यौ पूर्व्वौ पौत्त्रप्रपौत्त्रकै ।

पितर तत्र सस्कुर्य्यादिति धर्म्मो व्यवस्थित" ॥

इति च श्राद्धतत्त्व ॥

असस्कृतवाक्य, स्त्री, (असस्कृतं संस्कृतेतर वाक्यम् ।) सस्कृतेतरभाषा । तत्पर्य्याय । अपभ्रंश २ अपशब्द ३ । इत्यमरटीका ॥

असस्थान, स्त्री, असस्थिति सस्थानाभाव । न सस्थानमसस्थानमिति नञ्समासनिष्पन्न ॥

असहत, पु, (न सहन्यते येन । न + सम् + हन् + करणे क्त ।) व्यूहविशेष । स तु सेनाना पृथग्वृत्ति । इति रायमुकुटादय ॥ (दण्ड । भोग । मण्डल ।) असमूहिते असहते च त्रि ॥

असंहत, त्रि, असमय: । सहतो समः न सहतः असहत इति नञ्समासनिष्पन्न ॥

असकृत्, अ, (न सकृत् । नञ्समास ।) पुन पुन । वार वार । इत्यमर ॥

("अनेकस्यैकधा साम्यमसकृदाप्यनेकधा" ।

इति साहित्यदर्पणे ।

"अभ्यासेनासकृच्चैतान् गुणैश्च परिचोदयेत्" ।

इति मानवे ।)

असङ्कल्पित, त्रि, (न सङ्कल्पित । नञ्समास ।) सङ्कल्पाविषय । यथा । विष्णुपुराणे ।

"कर्म्माण्यसङ्कल्पिततत्फलानि

सन्यस्य विष्णौ परमात्मरूपे ।

अवाप्य तां कर्म्ममहीमनन्ते

तस्मिन् लय ते त्वमला प्रयान्ति" ॥

इति मलमासतत्त्व ॥

असङ्कुल, पु, (न सङ्कुल ।) विस्तृत पन्था । इति हेमचन्द्र ॥

असङ्ख्य, त्रि, सङ्ख्यारहित । अगणनीय । स तु द्विपरार्द्धादि । इति हेमचन्द्र ॥

असङ्गत, त्रि, (न सङ्गत । नञ्तत्पुरुष ।) सङ्गतिरहित । नासङ्गतं प्रयुञ्जीतेति प्रसिद्धि ॥ यथा । वस्तुतस्तु जिज्ञासुमेकपुरुष प्रति सङ्गतमपि अतादृशमन्यं प्रति असङ्गतमिति यं प्रति पादयितुमानन्तर्य्याभिधानं तादृशाभिधानप्रयोजकतत्पुरुषीयजिज्ञासाजनकज्ञानविषयोऽर्थ तं प्रति सङ्गतिरिति पुरुषविशेषनियन्त्रित सङ्गतित्व वाच्य । इत्यनुमितिग्रन्थीयगदाधरी ॥ अयुक्त । यथा देवीपुराणं ।

"घखद्वये जन्मतिथिर्यदि स्यात्

पूज्या तदा जन्मभसंयुता च ।

असङ्गता भेन दिनद्वयेऽपि

पूज्या परा या भवतीह यत्नात्" ॥

इति तिथ्यादितत्त्व ॥ (असभ्य । अशिक्षित । यथा हितोपदेशे ।

"आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्य

विद्याविहीनमकुलीनमसङ्गत वा" ॥)

असती, स्त्री, (न सती स्त्री । नञ्समास ।) भ्रष्टा । व्यभिचारिणी तत्पर्य्याय । पुंश्चली २ धर्षिणी ३ बन्धकी ४ कुलटा ५ इत्वरी ६ स्वैरिणी ७ पांशुला ८ । इत्यमर ॥ दृष्टा ९ दुष्टा १० धर्षिता ११ । इति शब्दरत्नावली ॥ लञ्चा १२ निशाचरी १३ चपारण्डा १४ । इति जटाधरः ॥ ("आबाल्यादसती सती सुरपुरीं कुन्ती समारोहयत्" । इति धर्म्मविवेके ।)

असतीसुत, पु, स्त्री, (असत्या सुत ।) व्यभिचारिणीपुत्त्र । तत्पर्य्यायः । बान्धकिनेयः २ बन्धुल ३ कौलटेर ४ कौलटेय ५ । इत्यमर ॥

"बन्धुल कौलटेरश्च कौलटेयोऽसतीसुत ।

तथा बान्धकिनेयस्तु स्यात् कौलकेय इत्यपि ॥

अथ सत्यान्तु भिक्षुक्या पुत्त्रो भवति य पुन ।

तत्र कौलटिनेयः स्यात्कौलटेयोऽपि स स्मृत" ॥

इति शब्दरत्नावली ॥ अपि च । असतीसूनु कौलटेर५ बन्धुल ।

"अपि बान्धकिनेय स्यात्कौलटेयोऽतिभिक्षुकी ।

कुलटापि सती सा चेत् कौलटेयस्तदात्मज ॥

अपि कौलटिनेय स्यात्" । इति जटाधरः ॥

असतीसूनु, पु, (असत्या सूनुः ।) कुलटापुत्र । इति जटाधर ॥

असत्, त्रि, (अस् + शतृ ततो नञ्समासः ।) अविद्यमानं । असाधु । मूर्ख । ब्रह्मभिन्नवस्तु । इति वेदान्त ॥ जडवर्ग । यथा,—

"यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।

तस्य सर्व्वस्य या शक्ति सा त्वं किं स्तूयसे तदा" ॥

इति देवीमाहात्म्ये १ अध्याय ॥ सत् चेतनवर्ग । असत् जडवर्ग ।

"तस्य सर्व्वस्य या शक्ति सा यदा त्वं तदा कथ"

स्तूयसेत्यर्थ । इति सप्तशतीटीकाया नागोजीभट्ट ॥ • । निष्फल । यथा,—

"अश्रद्धया हुत दत्तं तपस्तप्तं कृतञ्च यत् ।

असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह" ॥
इति श्रीभगवद्गीतायां १७ अध्याये २८ श्लोक ॥) ।
निन्दित । यथा,—
"असत्कुलप्रसूता या कान्त विज्ञातुमच्छमा" ।
इति ब्रह्मवैवर्त्ते प्रकृतिखण्ड ॥) । अनित्य । यथा ।
"अज्ञानन्तु सदसद्भ्यामनिर्व्वचनीय" । इत्यादि वेदान्तसार ॥

असत्पथः, पुं, (न सन् पन्था ।) मन्दपथ । तत्पर्य्यायः । कुपथ २ कापथ ३ व्यध्व ४ दुरध्व ५ विपथ ६ कदध्वा ७ विपथ ८ कुत्सितवर्त्म ९ । इति शब्दरत्नावली ॥

असदध्येता, (तृ) त्रि, (असत् निषिद्धशास्त्रमधीते इति । असत्+अधि+इङ्+तृच् ।) असदध्ययनशाली । तत्पर्य्याय । अजप २ । इति हेमचन्द्र ॥

असदृश, त्रि, (न सदृश । नञ्तत्पुरुष ।) अतुल्य । अनुपमेयः । यथासदृशी स्तुतिरिति पुष्पदन्त ॥ यथा । ब्रह्मवैवर्त्ते ।
"वित्तशाठ्यमकुर्व्वाणः सम्यक्फलमवाप्नुयात् ।
कुर्व्वाणो वित्तशाठ्यन्तु लभते ऽसदृश फलम्" ॥
इति तिथ्यादितत्त्व ॥

असद्ग्रह, पु, (असति अप्राप्ये वस्तुनि ग्रह आग्रह ।) अखट्टि । इति त्रिकाण्डशेष ॥ बालकादीना खोइट आवदार इत्यादिभाषा ।

असन, क्ली, (अस्यते इति । अस+ल्युट् ।) क्षेपण । इति मेदिनी ॥ ("हयणनिरसने विनियोग" । इति भवदेव ।)

असनः, पु, वृक्षविशेष । पियाशाल इति ख्यात । तत्पर्य्यायः । महासर्ज्ज २ सौरि ३ बन्धूकपुष्पः ४ प्रियकः ५ बीजवृक्ष ६ नीलक प्रियसालक ८ ।
("प्रियविमानितमानवतीरुषा
निरसनैरसनैरवृथार्थता" ।
इति शिशुपाले ।) अस्य गुणाः । कटुत्व । उष्णत्व । तिक्तत्व । वातार्त्तिदोषगलदोषरक्तमण्डलनाशित्व । सारकत्व । इति राजनिर्घण्ट ॥ वृक्षभेद । आसन इति ख्यातः । तत्पर्य्याय । अजकर्ण २ वनेसर्ज्ज ३ महासर्ज्ज ४ । इति रत्नमाला ॥ अस्य गुणा । कफपित्तनाशित्व । इति राजवल्लभ ।
("बीजक पीतसारश्च पीतशालक इत्यपि ।
बन्धूकपुष्प प्रियक सर्ज्जकश्चासन स्मृतः ॥
बीजकः कुष्ठवीसर्पश्वित्रमेहगुदक्रिमीन् ।
हन्तिश्लेष्मास्रपित्तञ्च त्वच्य केश्यो रसायन" ॥
इति भावप्रकाशेऽस्य पर्य्यायगुणौ कथितौ ॥)

असनपर्णी, स्त्री, (असनस्य पर्णमिव पर्णमस्या ।) वृक्षविशेष । तत्पर्य्याय । वालक २ शीतलः ३ शीतलवात ४ अपराजिता ५ शणपर्णी ६ । इत्यमर ॥ शीत ७ शीतक ८ सनपर्णी ९ । इति शब्दरत्नावली ॥ मारावी इति भरतः । ओसान इति सारसुन्दरी ॥

असन्, [त्] पु, इन्द्र । इति त्रिकाण्डशेष ॥

असन्तुष्ट, त्रि, (न सन्तुष्ट । नञ्समास ।) सम्यक् तुष्टिरहित । सन्तोषशून्य । यथा,—
"असन्तुष्टा द्विजा नष्टा सन्तुष्टा इव पार्थिवा" ।
इति चाणक्यं ॥

असन्नद्ध, त्रि, (न सम्यक् नद्ध स्वकार्य्यक्षम ।) समुद्धत । पण्डिताभिमानी । दर्पित । इति जटाधर ॥ अकृतसन्नाह ॥

असन्मान, स्त्री, मानहानि । अमर्य्यादा । अनादर । असाधुमान । असञ्च तत् मानश्चेति कर्म्मधारयसमासनिष्पन्नं ॥

असभ्य, त्रि, असभासत् । समानुपयुक्तः । असामाजिकः ॥ न सभ्य असभ्य इति नञ्समासनिष्पन्न । खल । यथा,—
"अयन्त्वसभ्यस्तव जन्म नो गृहे
श्रुत्वाग्रजास्ते न्यवधीत् सुरेश्वर ।
स तेऽवतार पुरुषैः समर्पित
श्रुत्वाधुनैवाभिसरत्युदायुधः" ॥
इति श्रीभागवते १० स्कन्धे ३ अध्याये २० श्लोक ॥ असभ्य खल । समर्पित कथित । इति श्रीधरस्वामी ॥

असम, पु, (नास्ति समो यस्य ।) बुद्ध । इति शब्दरत्नावली ॥

असमः, त्रि, विषम । अतुल्य । यथा । "इत्येषा सहकारिशक्तिरसमा माया दुरुन्नीतितो मूलत्वात् प्रकृति प्रबोधभयतोऽविद्येति यस्योदिता" । इति कुसुमाञ्जलौ १ स्तवक ॥

असमञ्जस,स्त्री, (न समञ्जस युक्तियुक्तम् ।) असङ्गत । अनुपयुक्तं । तत्पर्य्याय । दुर्जात २ दुःसमञ्ज ३ । इति त्रिकाण्डशेष ॥ ("अतिप्रणयादेतन्मयोक्तमसमञ्जसम्" । इति कथासरित्सागरे । (पु) सगरराजज्येष्ठपुत्र । यथा हरिवंशे ।
"केशिन्यसूत सगरादसमञ्जसमात्मजम्" ।)

असमय, प, (अपकृष्ट समय । नञ्समास ।) अकाल । दुःसमय । यथा,—
"एतान् जनान्न सेवेत व्याधिसङ्कस्य दुर्ज्जय ।
सर्व्वे मोक्षमसमये काले सर्व्वं ग्रसिष्यति" ॥
इति ब्रह्मवैवर्त्ते ब्रह्मखण्डे १९ अध्याय ॥

असमर्थ, त्रि, (न समर्थ । नञ्समास ।) अशक्त । दुर्बल । यथा । ब्रह्मवैवर्त्ते ।
"उपवासासमर्थश्चेदेक विप्रन्तु भोजयेत् ।
तावद्धनानि वा दद्याद् यद्भुक्ताद्विगुणा भवेत्" ।
इति तिथ्यादितत्त्व ॥

असमवायिकारण, क्ली, (न समवायि कार्य्येण कारणेन वा सह एकस्मिन्नर्थे समवेत कारणम् ।) समवायिकारणासन्नकारण । समवायिकारणे प्रत्यासन्नजनक । यथा । घट प्रति कपालद्वयसयोग । एतत्कारण गुण कर्म्म च । समवायिकारणे प्रत्यासन्न द्वेधा ये कारण हय । इति न्यायभाषा ॥ (एतत् कारणन्तु सर्व्वत्र द्रव्ये गुण गुणे गुण कर्म्म च । तदुक्त भाषापरिच्छेदे ।
"गुणकर्म्ममात्रवृत्ति ज्ञेयमथाप्यसमवायिहेतुत्वम्" ।)

असमान, त्रि, (नास्ति समानो यस्य ।) अतुल्य । विजातीय । सजातीयभिन्न । यथा शङ्ख ।
"समानाशौच प्रथमे प्रथमेन समापयेत् ।
असमान द्वितीयेन धर्म्मराजवचो यथा" ॥
इति शुद्धितत्त्व ॥

असमाप्त, त्रि, (न समाप्त । नञ्तत्पुरुषः ।) समाप्तिरहित । असम्पूर्ण । अनिष्पन्न । यथा । स्मृति
"असमाप्ते व्रते पूर्व्वे नैव कुर्य्याद्व्रतान्तर" ।
इति तिथ्यादितत्त्व ॥

असमीक्ष्यकारी, [न्] त्रि, (समीक्ष्य विविच्य करोतीति । असमीक्ष्य+कृ+णिनि ।) अविवेचनापूर्व्वककर्म्मकर्त्ता । तत्पर्य्याय । जाल्म २ इत्यमर ॥ ("उचितमेवैतत् ममासमीक्ष्यकारिणः" । इति हितोपदेशे ।)

असम्बद्ध, त्रि, (न सम्बद्ध परस्परान्वययुक्तं । नञ्समासः ।) अनर्थकवाक्य । तत्पर्य्याय । अबद्ध २ इति जटाधर ॥
("असम्बद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिध्यति" ।
इति मनु । विशृङ्खल । अनियमः । यथा भारते
"असम्बद्धा महाराज । तान् निघ्नन्ति ते गजा"
इति ॥)

असम्मतः, त्रि, (न सम्मतः । नञ्समासः । अनभिमतः । तत्पर्य्याय । प्रणाय्यः २ । इति हेमचन्द्र ।
("असम्मत कस्तव मुक्तिमार्गे
पुनर्भवक्लेशभयात् प्रपन्नः" ।
इति कुमारे ।)

असम्मान, स्त्री, अमर्य्यादा । अपमान । सम्यक्मानाभावः । न सम्मानं असम्मानमिति नञ्समास निष्पन्न ॥

असरः, पु, (अस+अर ।) वृक्षविशेषः । इति शब्दचन्द्रिका ॥ कुकुरसोंका इतिख्यात ।

असहन, पु, स्त्री, (न सहन । नञ्समास ।) शत्रुः । इति हेमचन्द्र ॥ (अधीर । असहिष्णु । यथा,—
"कस्मात् प्राप्य तिरस्क्रियामसहनोऽप्यस्मादिति प्रस्तुते" । इति महावीरचरिते ।
"प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ" ।
इति रत्नावल्या । क्षमाराहित्यम् । यथा, साहित्य दर्पणे ।
"अधिक्षेपापमानादेः प्रयुक्तस्य परेण यत् ।
प्राणात्ययेऽप्यसहन तत्तेज समुदाहृतम्" ॥
इति ।)

असह्यः, त्रि, (न सह्यः । नञ्तत्पुरुष ।) असहनीयः । असोढव्यः । सहनायोग्यः । यथा,—
"वर रामशरा सह्या न च वैभीषण वच ।
असह्य ज्ञातिदुर्व्वाक्य मेघान्तरितरौद्रवत्" ॥
इति महानाटक ॥ ज्ञातिदुर्व्वाक्यमित्यत्र दुर्व्वचो ज्ञातेरिति च पाठः ॥

असाधारण, त्रि, (न साधारण सामान्यधर्म्मयुक्तम् । नञ्समास ।) साधारणभिन्न । असामान्य । विशेष । न्यायमते साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगिहेतु । यथा वह्निमान् जलत्वादित्यादिः । यथा । "यत्तु प्रयागे व्यहस्नाने कोटीकृते माघसप्तमीस्नानादावसाधारणसङ्कल्पेन पुनस्तथैव

प्रातःस्नानाचरण" इति तिथ्यादितत्त्वम् ॥ किञ्च
"असाधारणशरीरव्यापारार्ज्जितमविदङ्गो दातुमनिच्छन् दद्यात्"। इति दायभाग ॥ अतुल्य।
इति शूद्रवर्गे साधारणशब्दार्थदर्शनात् ॥

असाध्य, त्रि, (न साध्य साधयितुमशक्यम्।) असाधनीय। साधनायोग्य। अशक्य। असाधितव्य।
यथा,—
"सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरा बलि।
जायन्तेऽर्शांसि मत्स्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत्"॥
इति भावप्रकाश ॥ अपि च।
"य इदं प्रपठेन्नित्य दुर्गानामशतात्मक।
नासाध्य विद्यते तस्य त्रिषु लोकेषु पार्व्वति" ॥
इति विश्वसारतन्त्रे दुर्गाशतनामात्मक स्तोत्र ॥
("साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्याश्चासाध्यता तथा।
घ्नन्ति प्राणानसाध्यास्तु नराणामक्रियावताम्"।
"अमर्म्मोपहिते देशे शिरासन्ध्यस्थिवर्ज्जिते।
विकारो योऽनुपर्य्येति तदसाध्यस्य लक्षण" ॥
इति सुश्रुत ॥)

असाध्वी, स्त्री, (न साध्वी। नञ्समास।) अपतिव्रता। यथा ज्योतिस्तत्त्वम्,—
"कन्यातुलाम्बन्मिथुने च साध्वी
शेषेष्वसाध्वी धनवर्ज्जिता च।
निन्द्योऽपि जन्मे द्विपदाश इष्ट
कन्यादिलग्नेष्वपि नान्यभाग" ॥ इति।

असान्द्र, त्रि, (न सान्द्र निविड। नञ्तत्पुरुष।) अनिविड। विरल। इति जटाधरः ॥

असाम्प्रत, व्य, (न साम्प्रतम् युक्तम्। नञ्तत्पुरुष।) अयुक्त। अनुचित। तथा च कालिदास।
"विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वय छेत्तुमसाम्प्रतम्"।
इति। कुमारे २। ५५ ॥
("समवृत्यसाम्प्रत वक्तुमुक्ते मुसलपाणिना"।
इति माघे। "अविधाय विवाहसत्क्रियामनयोर्गम्यत इत्यसाम्प्रतम्"। इति रघौ ८। ६०।)

असार, पु, (नास्ति सारो यस्य।) एरण्डवृक्ष। इति शब्दचन्द्रिका ॥

असार, त्रि, (नास्ति सारो यस्य।) साररहितवस्तु। स्थिरांशशून्य। तत्पर्य्याय। फल्गु २। इत्यमर ॥ नि सार ३ निष्फल ४। इति शब्दरत्नावली ॥ वार्त्त ५। इति जटाधर ॥
(यथा—मनुसंहिताया ८। २०३।
"नान्यदन्येन संसृष्टरूप विक्रयमर्हति।
न चासार न च न्यून न दूरे न तिरोहितम्"।
"असारे खलु संसारे त्रीणि साराणि भावयेत्"।
इति हितोपदेशे ॥
"निदर्शनमसाराणा लघुर्बहुतृणा नर।"
इति माघे ॥
"बहूनामप्यसाराणां समवायो बलावह।"
इति पञ्चतन्त्रे ॥
"धिगिमां देहभृतामसारताम्।" इति रघुवंशे।
"अतो विपरीतास्त्वसारा" ॥ इति चरक ॥)

असार, क्ली, नास्ति सारो यस्य।) अगुरु। इति राजनिर्घण्ट ॥ (अगुरुशब्देऽस्य विशेषो ज्ञेय ॥)

असाक्षात्, व्य, (न साक्षात्। नञ्तत्पुरुष।) अप्रत्यक्ष। अदर्शन। अगोचर ॥ अतुल्य। इति साक्षात् शब्दार्थदर्शनात् ॥

असि, स्त्री, (अस्यते अवगाहनेन पापानि दूरीकरोति या। अस+इन्।) नदीविशेष। सा च काशीदक्षिणादिक्स्थिता। यथा।
"तस्मात् विश्वेश्वराज्ञैव काशीवासेऽत्र कारण।
असिश्च वरणा यत्र क्षेत्ररक्षाकृतौ कृते ॥
वाराणसीति विख्याता तदारभ्य महामुने।
असेश्च वरणायाश्च सङ्गम प्राप्य काशिका ॥
वाराणसीच करणामयदिव्यमूर्त्ते-
रुत्सृज्य यत्र तु तनुं तनुभृत् सुखेन।
विश्वेशवृन्दमहसि यत् सहसा प्रविश्य
रूपेण ता वितनुता पदवी दधाति ॥
जातो मृतो बहुषु तीर्थवरेषु ये त्व
जन्तोर्न जातु भवशान्तिरभूमिमज्य।
वाराणसीति गदतीह मृतोऽमृतत्व
प्राप्याधुना मम बलात् स्मरशासन स्यात्" ॥
इति काशीखण्डे ३० अध्याय ॥

असिः, पु, (असतीति। अस दीप्तौ इति।) अस्त्रभेद। खाँडा तरवाल इत्यादि भाषा। तत्पर्य्याय। खड्ग २ निस्त्रिंश ३ चन्द्रहास ४ रिष्टिः ५ कौक्षेयक ६ मण्डलाग्र ७ करपाल ८ कृपाण ९ इत्यमर ॥ प्रवालक १० भद्रात्मज ११ रिष्ट १२ ऋष्टि १३ धाराविष १४ कौक्षेय १५ तरवारि १६ तरवाज १७ कृपाणक १८ करवाल १९ कृपाणी २० शस्त्र २१। इति शब्दरत्नावली ॥ विशसन २२। इति त्रिकाण्डशेष ॥
("पर्णशालामथ क्षिप्रं विकृष्टासि प्रविश्य स।
वैरूप्यपौनरुक्त्येन भीषणा तामयोजयत्" ॥
इति रघुवंशे १२। ४० ॥
"स्कन्दनाम्नि समे युध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा।
वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्म्मायुधैः स्थले ॥"
इति मनौ ७। १९२ ॥) तस्य स्तुतिर्यथा।
"असिर्विशसन खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासद।
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्म्मपालो नमोऽस्तु ते ॥
इत्यष्टौ तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा।
नक्षत्र कृत्तिका ते तु गुरुर्देवो महेश्वर ॥
हिरण्यञ्च शरीरन्ते धाता देवो जनार्द्दन।
पिता पितामहो देवस्त्व मा पालय सर्व्वदा ॥
नीलजीमूतसङ्काशस्तीक्ष्णदंष्ट्र कृशोदर।
भावशुद्धोऽमर्षणश्च अतितेजास्तथैव च ॥
इय येन धृता क्षौणी हतश्च महिषासुर।
तीक्ष्णधाराय शुद्धाय तस्मै खड्गाय ते नम" ॥
इति वृहन्नन्दिकेश्वरपुराणोयदुर्गोत्सवपद्धतिधृतवाराहीतन्त्र ॥

असिक, क्ली, (असति दीप्यते यत्। अस्+इकन्।) अधरचिबुकयोर्म्मध्यभाग। इति हेमचन्द्र ॥

असिक्निका, स्त्री, असिक्नी। दासी। इति जटाधर ॥
("गतोगणस्तूर्णमसिक्निकाना"। इति पाणिनि।

असिक्नी, स्त्री, (न सिता शुक्लकेशा। छन्दसि क्नमेक इति तस्य क्न नान्तत्वात् ङीप् च।) अवरुद्धान्तःपुरचारिणी प्रेष्या ॥ इत्यमर ॥ नदीविशेष। इति मेदिनी ॥ (दक्षपत्नी वीरणसुता। यथा हरिवंशे। "असिक्नीमावहत्पत्नीं वीरणस्य प्रजापते। सुतां सुतपसा युक्ताम्" इति ॥)

असिगण्ड, पु, (अस्यते क्षिप्यते इति असि क्षिप्त इत्यर्थ। असि गण्डो यस्मिन्।) क्षुद्रोपधान। इति जटाधर ॥ छोटबालिश इति भाषा ॥

असित, पु, (न सित शुक्ल। नञ्समास।) कृष्णवर्ण। तद्विशिष्टे त्रि। (यथा पुष्पदन्ते ॥
"असितगिरिनिभ स्यात् कज्जल सिन्धुपात्रम्"।
"चकाशे विनिविष्टेन स सन्ध्येव शिशाऽसिता"।
इति रामायणे ॥) इत्यमर ॥ शनिग्रह। कृष्णपक्ष। इति हलायुध ॥ (स्वनामख्यात सूर्य्यवंशोद्भवो भरतपुत्त्रो राजा। यथा, रामायणे—
"भरतात् तु महातेजा असितो समजायत"।
स्वनामख्यात कश्चित् व्यासशिष्यो मुनि। यथा हरिवंशे।
"असितस्यैकपर्णा तु देवलस्य महात्मन"।
पर्व्वतभेद। यथा भारते,—
"तत्र पुण्यह्रद ख्यातो मैनाकश्चैव पर्व्वत।
बहुमूलफलोपेतस्त्वसितो नाम पर्व्वत" ॥)

असिता, स्त्री, (न सिता। असित पलितयो प्रतिषेधात् वर्णादनुदात्तादिति ङीष् तकारस्य क्नकारादेशश्च न।) नीलीवृक्ष। इति राजनिर्घण्ट ॥ या अवृद्धा भद्रादेवीभि प्रेष्यते अन्त पुरे च पुन पुन स्चरति सा। इत्यमरटीकाया भरत ॥ या अवृद्धा युवती कृष्णकेशा प्रेष्या दासी अन्त पुरे चरति सा इति सारसुन्दरी ॥ (स्वनामख्याता स्वर्वेश्या। यथा हरिवंशे।
"असिता च सुबाहुश्च सुवृत्ता सुमुखी तथा"।)

असिताभ्रशेखर, पु, (असित कृष्णवर्ण अभ्रो मेघ इव शेखरो यस्य।) बुद्धविशेष। इति त्रिकाण्डशेषः ॥

असितार्च्चि [स्] पु, (असिता कृष्णा अर्च्चि शिखा यस्य।) अग्नि। इति त्रिकाण्डशेष ॥

असितालु, पु, (असित आलु।) नीलालु। इति राजनिर्घण्ट ॥

असितोत्पल, क्ली, (असितमुत्पलम्।) नीलोत्पल। इति राजनिर्घण्ट ॥ (यथा चरक।
"उत्पलानि कषायाणि पित्तरक्तहराणि च" ॥)

असिदंष्ट्र, पु, (असिरिव तीक्ष्णा दंष्ट्रा यस्य।) जलजन्तुविशेष। मकर इति ख्यात। इति शब्दरत्नावली ॥

असिदंष्ट्रक, पु, (असिदंष्ट्र+स्वार्थे कन्।) असिदंष्ट्र। मकर। इति त्रिकाण्डशेष ॥

असिद्ध, त्रि, (न सिद्धम्। नञ्समास।) अपक्व। असिन्न। इति रत्नमाला ॥ सिद्धिरहित ॥
("स्वयमसिद्ध कथ परान् साधयेत्" इति न्याय।
न्यायमते, आश्रयासिद्धत्वादिमिदोषैर्दुष्टो हेतु। यथा, भाषापरिच्छेदे।

"अनेकान्तो विरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः ।
कालात्ययोपदिष्टश्च हेत्वाभासास्तु पञ्चधा" ॥)

**असिद्धि**, स्त्री, ( न सिद्धिः । नञ्समासः ।) अनिष्पत्तिः । न्यायमते सा त्रिविधा । पक्षासिद्धिः १ यथा काञ्चनमयपर्व्वतो वह्निमान् इत्यादि १ । स्वरूपासिद्धिः २ यथा, पर्व्वतः काञ्चनमयवह्निमान् इत्यादिः २ । व्याप्यत्वासिद्धिः ३ यथा, पर्व्वतो वह्निमान् ज्वलत्वादित्यादि ३ । (यथा भाषापरिच्छेदे ।
"आश्रयासिद्धिराद्या स्यात् स्वरूपासिद्धिरप्यथ ।
व्याप्यत्वासिद्धिरपरा स्यादसिद्धिरतस्त्रिधा ॥
पक्षासिद्धिर्यत्र पक्षो भवेन्मणिमयो गिरिः ।
ह्रदो द्रव्यं धूमवत्त्वादत्रासिद्धिरथापरा ॥
व्याप्यत्वासिद्धिरपरा नीलधूमादिके भवेत्" ।)

**असिधाव**, पुं, (असिं धावति निर्म्मलं करोतीति । असि+धाव+अण् ।) शस्त्रमार्ज्जकः । इति जटाधरः ॥ शिकलकर इति भाषा ।

**असिधावक**, पुं, (असिधाव+स्वार्थे कन् ।) असिधारकर्त्ता । शस्त्रमार्ज्जकः । इत्यमरः ॥

**असिधेनु**, स्त्री, ( असिर्धेनुरिव यस्याः । असेर्धेनुसादृश्येन छुरिकाया स्वल्पत्वसादृश्यम् ।) छुरिका । इति हलायुधः ॥ छुरी इति भाषा ।

**असिधेनुका**, स्त्री, ( असिर्धेनुका इव यस्याः ।) छुरिका । इत्यमरः ॥

**असिपत्र**, पुं, (इक्षुपक्षे, असिरिव तीक्ष्णं पत्रं यस्य ।) इक्षुः । खड्गकोषः । नरकविशेषः । इति मेदिनी ॥ गुण्डनाम तृणं । इति राजनिर्घण्टः ॥

**असिपत्रक**, पुं, ( असिपत्र+कन् ।) इक्षुः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

**असिपत्रवन**, क्ली, (असिरिव तीक्ष्णानि पत्राणि यस्य तादृशं वनं ।) नरकविशेषः । "पत्रैश्च विदार्य्यते" । इति मनुः ॥ ("यस्त्विह वै निजपथादनापद्यपगतः पाषण्डञ्चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्रासावितस्ततो धावमान उभयतोधारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्व्वाङ्गो हा हतोऽस्मीति परमया वेदनया मूर्च्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्म्महा पाषण्डानुगमनफलं भुङ्क्ते" । इति श्रीभागवते ॥
"असिपत्रवनं नाम नरकं शृणु चापरम् ।
योजनानां सहस्रं वै ज्वलदग्न्यास्तृतावनि ॥
तत्र सूर्य्यकरैश्चण्डैः कल्पकालाग्निदारुणैः ।
प्रपतन्ति सदा तत्र प्राणिनो नरकौकसः ॥
तन्मध्ये च वनं शीतं स्निग्धपत्रं विभाव्यते ।
पत्राणि यत्र खड्गानि फलानि द्विजसत्तम" ॥
इति मार्कण्डेयपुराणे ।)

**असिपुच्छक**, पुं, ( असिरिव पुच्छो यस्य ।) शिशुमारः । इति हारावली ॥

**असिपुत्रिका**, स्त्री, (असेः पुत्रीव ।) छुरिका । इति हलायुधः ॥

**असिपुत्री**, स्त्री,(असेः पुत्रीव ।) इत्यमरः ॥ छुरिका ॥ छुरी इति भाषा ।

**असिमेद**, पुं, (असिरिव मेदो निर्य्यासो यस्य ।) विट्खदिरः । इति शब्दरत्नावली ॥ (इरिमेदशब्देऽस्य गुणा ज्ञेयाः ॥)

**असिहेति**, पुं, ( असिर्हेतिः प्रधानास्त्रं यस्य ।) खड्गधारी योद्धा । तत्पर्य्यायः । नैस्त्रिंशिकः २ । इत्यमरः ॥

**असु**, क्ली, (अस्यतेऽनेन । अस्+उ ।) चित्तं । उपतापः । इत्युणादिकोषः ॥

**असु**, पुं, (अस्यन्ते इति । अस्+उ ।) प्राणः पञ्चप्राणेषु बहुवचनान्तः । असवः । इत्यमरः ॥ ("तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति" । इति नीतिशतके । ९९ श्लोकः ।)

**असुख**, क्ली, ( न सुखम् । नञ्समासः ।) दुःखं । इति हेमचन्द्रः ॥
(यथा मनुसंहितायां १२ । १९ ।
"तौ धर्म्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह ।
याभ्यां प्राप्नोति संपृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम्" ॥
तत्रैव ४ । ७० ।
"न कर्म्म निष्फलं कुर्य्यान्नायत्यामसुखोदयम्" ।)

**असुधारण**, क्ली, (असूनां धारणं ।) जीवनं । इत्यमरः ॥

**असुभृत्**, त्रि, (असून् बिभर्त्तीति । असु+भृ+क्विप् ।) प्राणी । जीवः । यथा । "वृतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा महदहमादयो ऽण्डमसृजन् यदनुग्रहतः" । इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे ८७ अध्याये १४ श्लोकः ॥

**असुर**, पुं, स्त्री, ( अस्यति देवान् क्षिपति इति । अस+उरन् । यद्वा न सुर विरोधे नञ्तत्पुरुषः । यद्वा नास्ति सुरा यस्य सः । सूर्य्यपक्षे असति दीप्यते इति उरन् ।) सुरविरोधी । स तु कश्यपात् दितिगर्भजातः । तत्पर्य्यायः । दैत्यः २ दैतेयः ३ दनुजः ४ इन्द्रारिः ५ दानवः ६ शुक्रशिष्यः ७ दितिसुतः ८ पूर्व्वदेवः ९ सुरद्विट् १० देवरिपुः ११ देवारिः १२ इत्यमरः ॥ ("सुरा प्रतिग्रहाद्देवाः सुरा इत्यभिविश्रुताः । अप्रतिग्रहणात्तस्या दैतेयाश्चासुराः स्मृताः" ॥ इति रामायणे ।) सूर्य्यः । इति मेदिनी । राहुः इति ज्योतिःशास्त्रम् ॥

**असुररिपु**, पुं, (असुराणां रिपुः ।) विष्णुः । इति शब्दरत्नावली ॥

**असुरसा**, स्त्री, (न विद्यते सु शोभनो रसो यस्याः ।) वर्व्वरी । इति रत्नमाला । वावुइ तुलसी इति भाषा । (वर्व्वरीशब्देऽस्या विशेषो ज्ञातव्यः ॥)

**असुरा**, स्त्री, रात्रिः । राशिः । इति मेदिनी ॥

**असुराह्व**, क्ली, ( असुरस्याह्वा आह्वा यस्य ।) कांस्यं । इति हेमचन्द्रः ॥

**असुरी**, स्त्री, (अस्+उरन्+ङीष् ।) राजिका । इत्यमरटीकायां भरतादयः । राई सर्षा इति भाषा ॥ असुरपत्नी ॥

**असूर्क्षण**, क्ली, (न+सूर्क्ष+ल्युट् ।) अवज्ञा । अनादरः । इत्यमरः ।

**असुस्थ**, त्रि, ( न सुस्थः । नञ्समासः ।) सुखाःस्थितिरहितः । रोगी ॥

**असूक्षण**, क्ली, (न+सूर्क्ष+ल्युट्) अवज्ञा । अनादरः । इत्यमरः ॥

**असूया**, स्त्री, (असू च असूयायाम् । असू+यक् च ।) गुणेषु दोषाविष्करणं । परगुणे दोषारोपः । इत्यमरः ॥ (यथा साहित्यदर्पणे ।
"असूयान्यगुणर्द्धीनामौद्धत्यादसहिष्णुता ।
दोषोद्घोषभ्रूविभेदावज्ञाक्रोधेङ्गितादिकृत्" ॥
इयञ्च "हर्षासूया विषादाः" । इत्यादिना व्यभिचारिभावमध्येऽपि परिगणिता ॥)

**असूर्य्यम्पश्या**, स्त्री, ( सूर्य्यमपि न पश्यति या । न+सूर्य्य+दृश+खश् । सत्यपि सूर्य्यदर्शने प्रयोगो भवति । यदा तु सूर्य्यदर्शनाभावमात्रम् सूर्य्यस्य चन्द्रादेर्दर्शनं वा विवक्षितं तदा खश् न भवति ।) राजपत्न्यादिः । इति कलापपाणिनी ॥ ("असूर्य्यम्पश्यरूपा त्वं किमभीररार्य्यसे" इति भट्टिः ॥)

**असूर्क्षणम्**, **असूर्क्षण**, } क्ली, (सूर्क्ष आदरे तस्मात् ल्युट् ततो नञ्समासः ।) अनादरः । इत्यमरः ।

**असृक्**, [ज्] क्ली (न+सृज+क्विप् ।) रक्तम् । इत्यमरः ॥ ("पानमप्यसृजः क्षिप्रं क्षपीडां जलौकसाम्" । इति दृष्टान्तशतकम् ।) कुङ्कुमं इति राजनिर्घण्टः ॥ विष्कुम्भादि सप्तविंशतियोगान्तर्गतषोडशयोगः ॥ तत्र जातफलम् ।
"धनी कुरूपः कुमतिर्दुरात्मा
विदेशगामी रुधिरप्रकोपः ।
महाप्रलोभी पुरुषो बलीया-
नसृक् प्रसूतौ किल यस्य जन्तोः" ।
इति कोष्ठीप्रदीपः । रक्तार्थे यथा, वैद्यके ॥
"रसादसृक्मांसमेदोऽस्थि मज्जशुक्राणि धातवः"
"तस्य पित्तमसृक्श्वास दग्ध्वा रोगाय कल्पते" ।
"वातासृक् पूर्व्वलक्षणं ।" इति माधवकरः ॥
"विदाह्यन्नं विरुद्धञ्च तत्तच्चासृक् प्रदूषणं ।
भजतां विधिहीनञ्च स्वप्नजागरमैथुनं ॥
प्रायेण सुकुमाराणामचङ्क्रमणशीलिनां ।
अभिघातादशुद्धेश्च नृणामसृजि दूषिते ॥
वातलैः शीतलैर्वायुर्वृद्धः क्रुद्धो विमार्गगः ।
तादृशेनासृजा रुद्धः प्राक् तदेव प्रदूषयेत्" ॥
इति वाग्भटः ॥
"असृजः श्लेष्मणश्चापि यः प्रसादः परो मतः" ।
"तदर्शाद्दादशात्काले वर्त्तमानमसृक् पुनः ।
जरापक्वशरीराणां यातिपञ्चाशतः क्षयं ॥
मदमूर्च्छा श्रमार्त्तानां वातविण्मूत्रसङ्गिनां ।
निद्राभिभूतशीतानां नृणां नासृक् प्रवर्त्तते" ॥
इति सुश्रुतः ॥)

**असृक्कर**, पुं, (असृक् शोणितं करोतीति । असृज्+कृ+ट ।) शरीरस्थधातुः । इति हेमचन्द्रः ॥ (भुक्तस्याहारादिकस्य प्रथमं रसरूपता, रसस्य परिपाकतो रक्तरूपता इति वैद्यके प्रसिद्धिः । "रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते" ॥ इति सुश्रुतः ॥)

**असृक्प**, पुं, स्त्री, (असृक् पिबतीति । असृज्+पा+ड) राक्षसः इति हेमचन्द्रः ॥

असृग्धरा, स्त्री, (असृक् शोणितं धरतीति । असृज् +धृ+अच् ।) चर्म्म । इत्यमरटीकायां भरतादय ॥

असृपाटी, स्त्री, पु, ( न+सृप्+काट् ।) रक्तधारा इत्यमरटीकासारसुन्दरी ।

असेचनक,त्रि, (न सिच्यते मनो यस्मिन् । न+सिच् +ल्युट् । संज्ञायां कन् ।) यस्य दर्शनात् तृप्ते रन्तो नास्ति तत् । अत्यन्तप्रियदर्शन । इत्यमर । याहाके देखिया तृप्तिर शेष ना हय एमन वस्तु । ("नयनयुगासेचनक मानसवृत्त्यापि दुष्प्राप" । इति साहित्यदर्पणे ॥)

असौम्यस्वर, त्रि, (असौम्य कठोर स्वरो यस्य ।) काकवत् मन्दस्वरयुक्त । तत्पर्य्याय । अस्वर २ । इत्यमरसिंह ॥

असौष्ठवं, क्ली, (न सौष्ठव । नञ्समास ) अप्रशसनीयत्व । अशोभनत्व । अनातिशय्यं । नञ् पूर्व्वात् सुष्ठुशब्दात् भावे ष्णप्रत्यय ॥ ("गमनमलस शून्या दृष्टि शरीरमसौष्ठव" । इति मालतीमाधवे । अलङ्कारशास्त्रे स्मरदशाभेद । यथा साहित्यदर्पणे । "असौष्ठव मलापत्तिस्तापस्तु विरहज्वर" ॥)

अस्त ,पु, (अस्यन्त रविकिरणा यस्मिन् । अस्+त ।) अस्ताचल । पश्चिमाचल । तत्पर्य्याय । चरमक्ष्माभृत् २ । इत्यमरमेदिन्यौ ॥
("विडम्बयत्यस्तनिमग्नसूर्य्यम्" । इति रघु ।
"सहस्रशिखरश्चैव नानातीर्थसमाकुलम् ।
मकार रत्नसङ्कीर्णं भूयोऽस्त नाम पर्व्वत" ॥
इति हरिवंशे ।)
लग्नात् सप्तमस्थानं । इति दीपिका ॥

अस्त, त्रि, (अस्+क्त ।) क्षिप्त । अवसानप्राप्त । इति मेदिनी ॥ ("पतिरपास्तसञ्ज्ञा मति" । इति मालतीमाधवे ॥ "निरस्तगाम्भीर्य्यमपास्तधैर्य्य" । इति माघे ॥ सूर्य्यास्तगमन । "करजाल मस्तसमयेऽपि सताम्" । इति माघे ॥
तथा कुमारसम्भवे २ । २३ ।
"यमोपि विलिखन् भूमि दण्डेनास्तमितत्विषा ।
कुरुतेऽस्मिन्नमोघेपि निर्व्वाणालातलाघवम्" ॥)

अस्त, स्त्री, मृत्यु । इति हेमचन्द्र ॥

अस्तक, पु, (अस्त+कन् ।) मोक्ष । निर्व्वाण । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अस्तम्, व्य, (अस्+तम् ।) अदर्शनं । इत्यमरः ॥ (राज्यमस्तमितेश्वरम्" इति रघु ॥)

अस्तमती, स्त्री, (अस्त अततीति । अस्तम्+अत्+अच्+गौरादित्वात् ङीष् ।) शालपर्णी वृक्ष । इति शब्दरत्नावली ॥

अस्ताघ, त्रि, ( अस्त गत अघं मालिन्य यस्मात् ।) अगाधः । अतिगभीरः । इति हेमचन्द्रः ।

अस्ताचल, पु, (अस्ताय अचल । यद्वा अस्त पश्चिमोऽचल ) अस्तगिरि । पश्चिमाचल । इति शब्दरत्नावली । ("अस्ताचलचूडावलम्बिनि भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि" । इति हितोपदेशे ॥)

अस्ताद्रि , पु, (अस्त पश्चिमोऽद्रि पर्व्वत ।) अस्ताचल । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अस्ति, व्य, (अस्+श्तिक्) विद्यमानता । तत्पर्य्याय सत्त्व २ । इत्यमर ॥ असधातोस्तिपि कृतेऽप्येतद्रूपं ॥ (यथा चाणक्ये ।
"अतिथिर्बालकश्चैव राजा भार्य्या तथैव च ।
अस्ति नास्ति न जानन्ति देहि देहि पुन पुन" ॥)

अस्तिमान्, त्रि, (अस्ति विद्यमानमिति विद्यते यस्य अस्ति+मतुप् ।) धनी इति हेमचन्द्र ॥

अस्तु, व्य (अस्+तुन् ।) अङ्गीकार । असूया । पीडा । इति विश्वमेदिनौ । असधातो तुपि कृतेऽप्येतद्रूपं स्यात् ॥

अस्त्यान, क्ली, (न स्त्यान । नञ्समास ।) भर्त्सनं । निन्दा । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अस्त्र, क्ली, (अस्यते क्षिप्यते यत् । अस्+ष्ट्रन् ।) प्रहारयोग्यद्रव्यमात्रं । हातियार इति भाषा । तत्पर्य्याय । आयुध २ प्रहरण ३ शस्त्र ४ । इत्यमर ॥ खड्ग ५ । धनु ६ । इति मेदिनी । क्षेपनयोग्यवाणादि । इति रायमुकुट ॥ ("प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्" । "प्रत्याहृतास्त्रो गिरीशप्रभावात्" । इति च रघु ॥) तन्निरूपन यथा,—
"दण्डसाध्य यतो राज्य स दण्ड शास्त्रसंश्रित ।
अस्त्राणि भूमिपालाना निरूप्यन्ते तत क्रमात्" ॥
अथ गणना ।
"खड्गचर्म्म धनुर्व्वाणौ शल्वभल्लौ तथापरौ ।
अर्द्धचन्द्रश्च नाराच शक्तियष्टी तथा परे ॥
परशुश्चक्रशूले च परिघश्चैवमादयः ।
अस्त्रभेदा समुद्दिष्टा श्रीमद्भोजमहीभुजा" ॥
वात्स्यन्तु ।
"अस्त्रन्तु द्विविध प्रोक्त निर्म्माय मायिकन्तथा ।
खड्गादिकन्तु निर्म्माय मायिक दहनादिक ॥
दहनोऽथ जल काष्ठ लोष्ट्र शब्दादयस्तथा ।
तप्ततैलादिकञ्चैव मायिकस्यास्त्रमुच्यते ॥
खड्गादीनान्तुगणना पूर्व्वमेव निदर्शिता ।
अस्त्रात्मनैव निर्द्दिष्ट कवचादिरपीष्यते" ॥
इति युक्तिकल्पतरु ॥ * ॥
खड्गचर्म्मादि परीक्षा तत्तच्छब्दे द्रष्टव्या ॥

अस्त्रकण्टक , पु, ( अस्त्र कण्टक इव । वाणास्त्रस्य कण्टकाकृतित्वात् ।) वाण । इति त्रिकाण्डशेष ॥

अस्त्रकारक ,पु, (अस्त्राणां कारक ।) अस्त्रनिर्म्माता । शस्त्रनिर्म्मायक । आयुधकार । अस्त्रकारी ॥

अस्त्रचिकित्सक , पुं, (अस्त्रेण चिकित्सतीति । अस्त्र +कित्+स्वार्थे सन्+ण्वुल् ।) शस्त्रवैद्य ॥ ( "छेद्यादिष्वनभिज्ञो य स्नेहादिषु च कर्म्मसु" । इत्यादि सुश्रुत ॥)

अस्त्रजित्, क्ली, (अस्त्र अस्त्राघातज व्रणादिक जयति निवारयति । अस्त्र+जि+क्विप् ।) वृक्षविशेष । कवाट् वेट्ट इति ख्यातं । कवाडवण्टुया इति केचित् । अस्य पर्य्याय । कवाटवक्रशब्दे द्रष्टव्य । अस्त्रजित् इति च पाठ । इति रत्नमाला ॥

अस्त्रमार्ज्ज ,पु, (अस्त्र मार्ष्टि । अस्त्र+मृज्+अण् ।) अस्त्रमार्ज्जकः । शानकर । तत्पर्य्याय । शस्त्रमार्ज्ज २ । असिधाव ३ । असिधावक ४ । इति शब्दरत्नावली ॥

अस्त्रसायक , पु, नाराचास्त्र । समुदयलौहमयवाण । इति शब्दमाला ॥

अस्त्रागार, क्ली, (अस्त्राणामागारं ।) अस्त्ररक्षणगृह । सेलाखाना इति पारस्यभाषा । तत्पर्य्याय । आयुधागारं २ । यथा,—
"स्यामना जातितत्वज्ञ सतत प्रतिजागृता ।
राज्ञ स्यादायुधागारे दक्ष कर्म्मसु चोद्यत" ॥
इति मात्स्ये १८९ अध्याय ॥

अस्त्रागार , पुं, अस्त्ररक्षणगृह । सेलाखाना इति भाषा ॥

अस्थागं, त्रि, (अस्थामस्थिति गच्छति प्राप्नोतीति । अस्था+गम+ड ।) अगाध । अतिगभीर । इति हेमचन्द्र ॥

अस्थाघ, त्रि, (अस्थामस्थितिं हन्तीति । अस्था+हन+अप् ।) अतलस्पर्श । इति हेमचन्द्र ॥

अस्थान, त्रि, (नास्ति स्थानं प्राशस्त्य यत्र) अतलस्पर्श । इति जटाधर ॥ मन्दस्थले क्ली ॥ ("अस्थाने पतितामतीवमहतामेतादृशी स्याद्गति" । इति नीतिप्रपञ्चे ।)

अस्थाय, त्रि, अगाधं । स्थीयते यत्रेत्यधिकरणवाच्ये घञि कृते पश्चादादन्तादयन्प्रत्यये स्थाय ततो न स्थायमस्थायमिति नञ्समासनिष्पन्न । न सम्भवति स्थाय स्थितिर्यत्र इति केचित् ॥

अस्थायी, [ न् ] त्रि, स्थितिरहित । नश्वर । स्थासु शीलमस्येति शीलार्थे णिनि स्थायी, न स्थायी अस्थायीति नञ्समासनिष्पन्न ॥

अस्थार, त्रि, (अस्थामस्थिति राति । अस्था+रा +ड ।) अतलस्पर्श । अगाध । इति शब्दरत्नावली ॥

अस्थावर, क्ली, स्थावरेतरद्रव्य । जङ्गमवस्तु । न स्थावर अस्थावर इति नञ्समासनिष्पन्न ॥

अस्थावर, त्रि, (न स्थावरम् । नञ्समास ।) स्थावरेतरद्रव्य । जङ्गमवस्तु । इति स्मृति ॥

अस्थि, क्ली, (अस्यते क्षिप्यते यत् । अस्+क्थिन् ।) शरीरस्थसप्तधात्वन्तर्गतधातुविशेष । हाड़ इति भाषा । तत्सङ्ख्यादि शारीरशब्दे द्रष्टव्य ॥ तत्पर्य्याय । कीकस २ कुल्य ३ मेदोज ४ । इत्यमरादय ॥ ( अस्थिस्वरूपाद्युक्त भावप्रकाशे ।
"मेदो यत् स्वाग्निना पक्व वायुना चातिशोषितं ।
तदस्थिसञ्ज्ञा लभते स सार सर्व्वविग्रहे ॥
अभ्यन्तरगतैः सारैर्यथा तिष्ठन्ति भूरुहा ।
अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिना ध्रुव ॥
तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम् ।
अस्थीनि न विनश्यन्ति सारा एतानि सर्व्वथा" ॥
"मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जत शुक्रसम्भवः" ॥
इति सुश्रुत ॥
त्रीणि सषष्ठान्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषन्ते । शल्यतन्त्रेषु त्रीण्येवशतानि । तेषा सविंशमस्थिशत शाखासु । सप्तदशोत्तर शत श्रोणि पार्श्वपृष्ठोदरोरस्सु । ग्रीवा प्रत्यूर्द्ध त्रिषष्टिः । एव-

मस्था त्रीणि शतानि पूर्य्यन्ते ॥
एकैकस्यान्तु पादाङ्गुल्यां त्रीणि त्रीणि तानि पञ्च-
दश । तलकूर्च्चगुल्फसंश्रितानि दश । पार्ष्ण्यामेकं ।
जङ्घायां द्वे । जान्वन्येकं । एकमूराविति । त्रिंशदेव-
मेकस्मिन् सक्थीनि भवन्ति । एतेनेतर सक्थि
बाहू च व्याख्यातौ ॥ श्रोण्यां पञ्च तेषां गुदभग-
नितम्बेषु चत्वारि । त्रिकसंश्रितमेकं । पार्श्वे
षट्त्रिंशदेवमेकस्मिन् द्वितीयेऽप्येवं । पृष्ठे त्रिं-
शत् । अष्टावुरसि । द्वे अक्षकसंज्ञे । ग्रीवायां
नवकं । कण्ठनाड्यां चत्वारि । द्वे हन्वो । दन्ता
द्वात्रिंशत् । नासायां त्रीणि । एकं तालुनि । गण्ड-
कर्णशङ्खेष्वेकैकं । षट् शिरसि ॥ एतानि पञ्च-
विधानि भवन्ति । तद्यथा ।
कपाल-रुचक-तरुण-वलय-नलकसंज्ञानि । तेषां
जानुनितम्बांसगण्डतालुशङ्खशिरःसु कपालानि ।
दशनास्तु रुचकानि । घ्राणकर्णग्रीवाक्षिकोषेषु
तरुणानि । पाणिपादपार्श्वपृष्ठोदरोरःसु वल-
यानि । शेषाणि नलकसंज्ञानि ॥
"मांसान्यत्र निबद्धानि सिराभिः स्नायुभिस्तथा ।
अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न शीर्य्यन्ते पतन्ति वा" ॥
इति च सुश्रुते ॥) बीजं । इति रायमुकुटः वैद्य-
कञ्च ॥ आँटी इति भाषा ।

अस्थिकुण्ड, क्ली, (अस्थ्नां कुण्डम् ।) अस्थिपूर्णनरक-
कुण्डविशेषः । यथा,—
"पितॄणां यो विष्णुपदे पिण्डं नैव ददाति च ।
स च तिष्ठत्यस्थिकुण्डे स्वलोमाब्दं महेश्वरि" ॥
इति ब्रह्मवैवर्त्ते प्रकृतिखण्डे २७ अध्यायः ॥

अस्थिकृत्, पु, (अस्थि करोति यः । अस्थि + कृ +
क्विप् ।) शरीरस्थमेदो धातुः । इति हेमचन्द्रः ॥
(मेदसोऽस्थि । इति सुश्रुतः ।)

अस्थिज, पु, (अस्थ्नो जायते इति । अस्थि + जन +
ड ।) मज्जा । इति राजनिर्घण्टः ॥
(मज्जशब्देऽस्य गुणादयो द्रष्टव्याः ।)

अस्थितुण्ड, पु, स्त्री, (अस्थीव दारुणं तुण्डं यस्य ।)
पक्षी । शब्दमाला ॥ [इति हेमचन्द्रः ॥

अस्थिधन्वा, [न्] पु, (अस्थिमयं धनुर्यस्य ।) शिवः ।

अस्थिपञ्जर, पुं, (अस्थि पञ्जर इव ।) शरीरास्थि-
समूहः । तत्पर्य्यायः । करङ्कः २ कङ्कालः ३ । इति
हेमचन्द्रः ॥

अस्थिभक्ष, पु, स्त्री, (अस्थि भक्षयति । अस्थि +
भक्ष + अच् ।) कुक्कुरः । इति हारावली । (पक्षि-
विशेषः । हाडगिला इति भाषा ।)

अस्थिभुक् [ज्] पु, स्त्री, (अस्थि भुङ्क्ते इति । अस्थि +
भुज् + क्विप् ।) कुक्कुरः । इति हेमचन्द्रः ॥

अस्थिमाली, [न्], पु, (अस्थिमाला विद्यते यस्य
अस्थिमाला + इन् ) शिवः । इति हेमचन्द्रः ।
("शूलहस्तोऽस्थिमाली" इति शिवशतके ।)

अस्थिर, त्रि, (न स्थिरः । नञ्तत्पुरुषः ।) चञ्चल-
प्रकृतिः । तत्पर्य्यायः । सङ्कसुकः २ । इत्यमरः ।
अनिश्चितः । इति स्वामी ॥
("लुब्धः क्रूरोऽलसोऽसत्यः प्रमादी भीरुरस्थिरः" ॥
इति हितोपदेशे ।)

अस्थिरमति, त्रि, (अस्थिरा मतिर्यस्य ।) चञ्चल-
बुद्धिः । यथा । "विक्रान्तं कुलमुख्यमस्थिरमतिं
वित्तेश्वरं साङ्गिरा" । इति ज्योतिस्तत्त्वे द्विग्रह-
योगफलं ॥

अस्थिरविभूति, स्त्री, (अस्थिरा विभूतिः ।) चञ्चलै-
श्वर्य्यं । यथा । "अस्थिरविभूतिमैत्रं चलमटनं
स्खलितनियममपि चरमे" । इति ज्योतिस्तत्त्वे
राशिफलं ॥

अस्थिविग्रह, पु, (अस्थिसारो विग्रहो यस्य ।)
भृङ्गिनामकशिवसहचरः । इति हेमचन्द्रः ॥

अस्थिशृङ्खला, स्त्री, (अस्थ्नां शृङ्खला योजनकारणम् ।)
ग्रन्थिमान् वृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (हाड-
योडा इति भाषा । यथा भावप्रकाशे ॥
"काण्डं त्वग्विरहितमस्थिशृङ्खलाया
माषार्द्धं द्विदलमकञ्चुकं तदर्द्धम् ।
सपिष्टं सुतनु । ततस्तिलस्य तैले
सपक्वं वटकमतीव वातहारि" ॥)

अस्थिसंहार, पु, (अस्थीनि संहरति योजयति ।
अस्थि + सम + हृ + अण् ।) वृक्षविशेषः । हाडभाङ्गा
हाडजोडा इति भाषा । तत्पर्य्यायः । वज्रवल्ली
२ ग्रन्थिमान् ३ कुलिशः ४ अमरः ५ । इति
रत्नमाला ॥ हस्तिशुण्डी ६ वनातिक्ता ७ । इति
हारावली । अस्य गुणाः । बलास्थिभग्नहित-
कारित्वं । वायुनाशित्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥
यथा,—
"ग्रन्थिमानस्थिसंहारी वज्राङ्गी चास्थिशृङ्खला ।
अस्थिसंहारकः प्रोक्तो वातश्लेष्महरोऽस्थियुक् ॥
उष्णः सरः कृमिघ्नश्च दुर्नामघ्नोऽक्षिरोगजित् ।
रूक्षः स्वादुर्लघुर्वृष्यः पाचनः पित्तलः स्मृतः ॥
काण्डं त्वग्विरहितमस्थिशृङ्खलाया
माषार्द्धं द्विदलमकञ्चुकं तदर्द्धं ।
सपिष्टं सुतनु ततस्तिलस्य तैले
सपक्वं वटकमतीव वातहारि" ॥
इति भावप्रकाशः ॥
("अस्थिभग्नेऽस्थिसंहारो हितोवल्योऽनिलापहः"
इति वैद्यकद्रव्यगुणः ।)

अस्थिसंहारी, स्त्री, (अस्थीनि संहरति या । अस्थि
+ सम् + हृ + अण् + स्त्रियां ङीप्) ग्रन्थिमान्
वृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥
(अस्थिसंहारशब्देऽस्य गुणा ज्ञातव्याः ।)

अस्थिसार, पु, (अस्थ्नः सारः पाकपरिणामः )
मज्जा । इति राजनिर्घण्टः ॥

अस्थिस्नेहसञ्चक, पु, ( अस्थ्नः स्नेहस्तस्य सञ्चकः ।)
मज्जा । इति राजनिर्घण्टः ॥

अस्थैर्य्य, क्ली, अस्थिरता । स्थिरस्य भाव इत्यर्थे
ष्यञ्प्रत्यये स्थैर्य्यं न स्थैर्य्यमस्थैर्य्यमिति नञ्-
समासेन निष्पन्नं ॥ ("अस्थैर्य्येण विभूतयोऽप्युप-
हता यस्य न किं केन वा" । इति वैराग्यशत-
कम् । २९ श्लोकः ।)

अस्निग्धदारु, क्ली, (अस्निग्धं कठोरं दारु ।) देव-
काष्ठं । देवदारुभेदः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अस्पष्ट, त्रि, (न स्पष्टम् । नञ्तत्पुरुषः ।) अव्यक्तं
अस्फुटं । यथा । क्लिष्टं । अस्पष्टं । इति मु
बोधव्याकरणं ॥

अस्पृहा, स्त्री, (न स्पृहा । नञ्समासः ।) इच्
भावः । यथा,—
"यथोत्पन्नेन सन्तोषः कर्त्तव्योऽप्यल्पवस्तुना ।
परस्याचिन्तयित्वार्थं सास्पृहा परिकीर्त्तिता"
इत्येकादशीतत्त्वं ॥ (नास्ति स्पृहा यस्येति ब
त्रि, स्पृहा रहितः । उदासीनः ।)

अस्फुट, त्रि, (न स्फुटम् । नञ्समासः ।) अस्प
अव्यक्तं । क्लिष्टवाक्यं । इति हेमचन्द्रः ॥

अस्फुटवाक्, [च्] त्रि, (अस्फुटा वाक् यस्य ।) अस्प
वक्ता । तत्पर्य्यायः । लोहलः २ । इत्यमरसिंह

अस्मद्, त्रि, आत्मवाची सर्व्वनामशब्दः । अस्य स्
यथा । अहं, आमि । आवां, आमरा दुइ । व
आमरा अनेक । इत्यादि व्याकरणं ॥ एकविंश
विभक्तिषु तस्य रूपाणि यथा । अहं १ आवां
वयं ३ । २ । मां ४ आवां ५ अस्मान् ६ । ३
मया ७ आवाभ्यां ८ अस्माभिः ९ । ४ । मह्यं
आवाभ्यां ११ अस्मभ्यं १२ । ५ । मत् १३ आव
भ्यां १४ अस्मत् १५ । ६ । मम १६ आवयोः १
अस्माकं १८ । ७ । मयि १९ आवयोः २० अस्मा
२१ । ७ । एतानि त्रिषु लिङ्गेषु समानानि
द्वितीया-चतुर्थी षष्ठीनां एकवचन-द्विवचन बहुव
चनविभक्तिषु तस्य रूपान्तराणि यथा । द्विती
कवचने मा । चतुर्थी-षष्ठोरेकवचने मे । आस
द्विवचने नौ । आसां बहुवचने नः । श्लोकपाद
वाक्यादौ एतानि रूपाणि न स्युः । च वा हा
एव शब्दयोगे अदर्शनार्थदृशर्थधातुयोगे च
स्युः । इति व्याकरणं ॥

अस्मन्त, क्ली, अश्मन्तं । चुल्ली । इति रायमुकुटः
उनान आखा इति भाषा ॥

अस्र, पु, (अस् + रक् ।) कोणः । केशः । इत्यमरः ।

अस्र, क्ली, (अस्यते क्षिप्यते यत् । अस् + र ।) रक्तं
अश्रु । इत्यमरः ॥ (रक्तार्थे यथा,—
"पिपासादाहपित्तास्रयुक्तं पित्तज्वरं जयेत्" ।
इति शार्ङ्गधरः ॥
"क्षीणेऽस्रे मधुराकाङ्क्षा मूर्च्छा च त्वचि रूक्षता ।
शैथिल्यञ्च सिराणां स्याद्वातादुन्मार्गगामिता" ।
इति भावप्रकाशः ॥ "अस्रस्राविणो विस्राः" इति ।
'अशुद्धौ बलिनोऽप्यस्रं न प्रस्थात् स्रावयेत्परं" ।
इति वाभटः ॥ " ॥ नेत्रजलार्थे यथा,—
"कुर्य्यात्सास्रं शिरोहर्षं तेनाप्युद्रोचणाद्दृतं" ।
इति वाभटः ॥ * ॥ आलस्यनयने साम्रे, इति
चरकः ।)

अस्रकण्ठ, पु, (अस्रं कण्ठे यस्य ।) बाणः । इति
हारावली ॥

अस्रखदिर, पु, (अस्रवर्णः खदिरः ।) रक्तखदिर-
वृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥
(खदिरशब्देऽस्यगुणादयो ज्ञेयाः ।)

अस्रज, क्ली (अस्रात् रक्तात् परिपाकेण जायते यत् ।
अस्र + जन् + ड ।) मांसं । इति राजनिर्घण्टः ॥
(मांसशब्देऽस्यविशेषो ज्ञातव्यः ।)

अस्रप, पु, स्त्री, (अस्रं पिबतीति । अस्र+पा+ड ।) राक्षस । इत्यमर ॥
("दिरागमं लघुध्रुवे चरेऽस्रपे मृदूडुनि"।
इति मुहूर्त्तचिन्तामणि । जलौका ।)

अस्रपत्रक', पु, (अस्रमिव रक्तं पत्रं यस्य । सञ्ज्ञायां कन् ।) भिण्डावृक्ष । इति राजनिर्घण्ट ॥

अस्रपा, स्त्री, (अस्रं रक्तं पिबति या । अस्र+पा+ड+टाप् ।) जलौका । इति हेमचन्द्र ॥

अस्रफला, स्त्री, (अस्रमिव रक्तं फलं यस्या ।) सल्लकीवृक्ष । इति राजनिर्घण्ट ॥

अस्रमातृका, स्त्री, (अस्रस्य रक्तस्य मातेव पोषिका । सञ्ज्ञायां कन् । एषा हि शरीरस्थधातूनां श्रेष्ठा ।) शरीररस । इति राजनिर्घण्ट' ॥

अस्ररोधिनी, स्त्री, (अस्रं क्षतजरक्तं रुणद्धि या । अस्र+रुध+णिन्+स्त्रियां ङीप् ।) लज्जालुलता । इति रत्नमालाराजनिर्घण्टौ ॥

अस्रविन्दुच्छदा, स्त्री, (अस्रविन्दुरिव विन्दु च्छदे पत्रे यस्या' ।) लक्ष्मणा नाम कन्द ॥ इति राजनिर्घण्ट ॥

अस्रार्ज्जक', पु, (अस्राणामर्ज्जक ।) श्वेततुलसी । इति रत्नमाला ॥

अस्रु, क्ली, (अस्यते क्षिप्यते । अस्+रु ।) चक्षुर्ज्जल । तत्पर्य्याय । नेत्राम्बु २ रोदनं ३ अस्र ४ अश्रु ५ । इत्यमर ॥ वास्प ६ । इति शब्दरत्नावली ॥ लोच ७ । इति जटाधर ॥ ("श्रुत्वा श्रुत्वास्रुधारा त्यजति" । इति कीचकवध ।
"रागास्रुवेदनाशान्तौ परं लेखनमञ्जन" ।
इति वाभट ॥)

अस्वच्छन्द, त्रि, (न स्वच्छन्द' । नञ्समास ।) अधीन । आयत्त । इत्यमर ॥

अस्वतन्त्र, त्रि, (न स्वतन्त्र । नञ्समास ।) परतन्त्र । पराधीन । इति जटाधर ॥

अस्वप्न, पु, (नास्ति स्वप्नो निद्रा यस्य ।) देवता । इत्यमर ॥ (निद्राया अभावार्थे यथा, —
"अस्वप्न' सन्ततारुक् च मज्जास्थिकुपितेऽनिले"॥
इति माधवकर ॥
"मज्जस्थोऽस्थिषु सौषिर्य्यमस्वप्न स्तब्धतां रुज" ॥
इति वाभट ॥)

अस्वर, त्रि, (अप्रशस्त स्वरो यस्य ।) मन्दस्वरयुक्त । तत्पर्य्याय । असौम्यस्वर २ । इत्यमर ॥
("अथ गद्गदशब्दस्तु विलपन् वसुधाधिप ।
उवाच मृदुमन्दार्थं वचनं दीनमस्वरम्" ॥
इति रामायणे ॥)

अस्वाध्याय, पु, (न विद्यते स्वाध्यायो वेदाध्ययन यस्य ।) विधिपूर्व्वकवेदाध्ययनहीन । तत्पर्य्याय । निराकृति २ । इत्यमर ॥ अनध्याय । अध्ययने निषिद्धदिन । तद्यथा । चन्द्रसूर्य्यग्रहणदिनानि । तानि तु । ग्रस्तास्ते ३ दिनानि । अन्यत्र १ दिनं । सन्ध्यागर्ज्जने १ दिन । माघादिमासचतुष्टये गर्ज्जनमात्रे तद्दिन । निर्घातशब्दे १ दिन । भूकम्पे १ दिन । उल्कापाते १ दिन । महोल्कापाते आकालिक । एकवेदसमापनानन्तर १ दिन । आरण्यकनामकवेदभागसमापनानन्तर १ दिन । पञ्चपर्व्वाणि ५ दिनानि । चैत्रशुक्लप्रतिपत् १ दिन । श्रावणशुक्लप्रतिपत् १ दिन । मार्गशुक्लप्रतिपत १ दिन । एता प्रतिपदो नित्या' । अन्या काम्या । वज्रपाते आकालिक । विद्युत्समकालीनमेघशब्दे आकालिक । चतुर्द्दशमन्वन्तरा १४ तिथय । युगाद्या ४ तिथय । माघमासस्योभयपक्षीयद्वितीया २ दिने । आश्विनस्योभयपक्षीयद्वितीया २ दिने । चैत्रकृष्णपक्षद्वितीया १ दिनं । कार्त्तिकस्योभयपक्षीयद्वितीया २ दिने । आषाढस्योभयपक्षीयद्वितीया २ दिने । मार्गमासस्योभयपक्षीयद्वितीया २ दिने । फाल्गुनमासस्योभयपक्षीयद्वितीया २ दिने । उत्सवदिनानि अनेकानि । अक्षयतृतीया १ दिन । इति स्मृति ॥
("कृष्णोऽष्टमी तन्निधनेऽहनी द्वे
कृष्णेतरेऽप्येवमहर्द्विसन्ध्य ।
अकालविद्युत् स्तनयित्नुघोषे
स्वतन्त्रराष्ट्रक्षितिपव्यथासु ॥
श्मशानयानायतनाहवेषु
महोत्सवौत्पातिकदर्शनेषु ।
नाध्येयमन्येषु च येषु विप्रा
नाधीयते नाशुचिना च नित्य" ॥ इति सुश्रुत ॥)

अस्वामिक, त्रि, (नास्ति स्वामी उत्तराधिकारी यस्मिन् ।) स्वामिरहितवस्तु । अकर्तृक । वेयोरिस् इति पारस्य भाषा । यथा । एतच्च अग्रदान स्वभूमौ अस्वामिकायाञ्च न दद्यात् । अस्वामिकान्याह यम ।
"अटव्य पर्व्वता पुण्या नद्यस्तीर्थानि यानि च ।
सर्व्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तेषु परिग्रह" ॥
पुण्या इति विशेषणात् अटव्यो नैमिषाद्या पर्व्वता हिमालयाद्या । नद्यो गङ्गाद्या । तीर्थानि पुरुषोत्तमादिक्षेत्राणि । वाराणस्याद्यायतनानि च । स्वाम्यभावे हेतुमाह न हि तेष्विति । इति श्राद्धतत्त्व ॥

अस्वामिविक्रय, पु, (अस्वामिना अनधिकारिणा कृतो विक्रय ।) अस्वामिकर्तृकविक्रय । यथा सम्प्रत्यस्वामिविक्रयाख्य व्यवहारपदमुपक्रमते । तस्य च लक्षणं नारदेनोक्त ।
"निक्षिप्त वा परद्रव्य नष्ट लब्ध्वापहृत्य वा ।
विक्रीयतेऽसमक्षं यत्स ज्ञेयोऽस्वामिविक्रय" ॥
इति तत्र किमित्याह ।
"स्वं लभेतान्यविक्रीत क्रेतुर्दोषोऽप्रकाशिते ।
हीनाद्रहो हीनमूल्ये वेलाहीने च तस्कर" ॥
स्व आत्मसम्बन्धिद्रव्य अन्यविक्रीतमस्वामिविक्रीत यदि पश्यति तद[illegible] गृह्णीयात् । अस्वामिविक्रयस्य त्वप्र[illegible] वणी [illegible] दत्ता- [illegible] [illegible]त्वेन तुल्यत्वात् । त[illegible] [illegible] दत्तमाधिश्च विनिवर्त्ते[illegible] [illegible] ते गोपिते क्रये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सम्भाव्यद्रव्यादपि हीनमूल्ये अल्पतरेण मूल्येन क्रये । वेलाहीने वेलया हीनो वेलाहीन क्रयो राज्यादौ कृत तत्र च क्रेता तस्करो भवति । तस्करवत् दण्डभाक् भवतीत्यर्थ । यथोक्त ।
"द्रव्य मस्वामिविक्रीत प्राप्य स्वामी तदाप्नुयात् ।
प्रकाशक्रयतः शुद्धि क्रेतु स्तेय रह क्रयात्" इति ॥
स्वाम्यभियुक्तेन क्रेत्रा कि कर्त्तव्यमित्यत आह ।
"नष्टापहृतमासाद्य हर्त्तारं ग्राहयेन्नर ।
देशकालातिपत्तौ च गृहीत्वा स्वयमर्पयेत्" ॥
नष्टमपहृत वान्यदीय क्रयादिना प्राप्य हर्त्तारं ग्राहयेत् चौरोद्धरणकादिभि । आत्मविशुद्ध्यर्थ राजदण्डाप्राप्त्यर्थञ्च । अथाविदितदेशान्तर गत कालान्तरे वा विपन्नस्तदा मूलसमाहरणाशक्तो विक्रेतारमदर्शयित्वैव स्वयमेव तद्धन नाष्टिकस्य समर्पयेत् । तावतैवासौ शुद्धो भवतीति श्रीकराचार्य्येण व्याख्यातं । तदिदमनुपपन्न । विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिरित्यनेन पौनरुक्त्यप्रसङ्गात् । अतोऽन्यथा व्याख्यायते । नष्टापहृतमिति नाष्टिकप्रत्ययमुपदेश । नष्टमपहृतं वा आत्मीय द्रव्यमासाद्य क्रेतृहस्तस्थ ज्ञात्वा त हर्त्तार क्रेतार स्थानपालादिभिर्ग्राहयेत् । देशकालातिपत्तौ देशकालातिक्रमे स्थानपालाद्यसन्निधाने तद्विज्ञापनकालात् प्राक्पलायनाशङ्कया स्वयमेव गृहीत्वा तेभ्य समर्पयेत् ॥ * ॥
ग्राहिते हर्त्तरि कि कर्त्तव्यमित्यत आह ।
"विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धि स्वामी द्रव्य नृपो दम ।
क्रेता मूल्यमवाप्नोति तस्माद्यस्तस्य विक्रयी" ।
यद्यसौ गृहीत क्रेता न मयेद मपहृत अन्यसकाशात् प्राप्तमिति वक्ति तदा तस्य क्रेतु र्विक्रेतृदर्शनमात्रेण शुद्धिर्भवति । न पुनरसावभियोज्य । किन्तु तत्प्रदर्शितेन विक्रेत्रा सह नाष्टिकस्य विवाद । यथाह बृहस्पति ।
"मूले समाहृते क्रेता नाभियोज्य कथञ्चन ।
मूलेन सह वादस्तु नाष्टिकस्य विधीयते" ॥ इति तस्मिञ्च विवादे यद्यस्वामिविक्रयनिश्चयो भवति तदास्य नष्टापहृतस्य गवादिद्रव्यस्य यो विक्रयी विक्रेता तस्य सकाशात् स्वामी नाष्टिक स्वीय । द्रव्यमवाप्नोति चौरस्यापराधानुरूप दण्डं क्रेता च मूल्यमवाप्नोति । अथासौ देशान्तर गत' तदा योजनसङ्ख्यानयनार्थ कालो देयः ।
"प्रकाशं वा क्रय कुर्य्यात् मूल वापि समर्पयेत् ।
मूलानयनकालश्च देय स्तत्राध्वसङ्ख्ययेति स्मरणात् ॥ * ॥ अथाविज्ञातदेशतया मूलमाहर्त्तुं न शक्नोति तदा क्रयं शोधयित्वैव शुद्धो भवति । असमाहार्य्यमूलस्तु क्रयमेव वि[illegible] [illegible]
वचनात् । यदा पुन [illegible]
क्रय न शोधयति मूलश्च
एव दण्डभाग्भवती[illegible]
"अनु [illegible] ।
यथा[illegible]

"आगमेनोपभोगेन नष्टं भाव्यमतोऽन्यथा।
पञ्चबन्धो दमस्तस्य राज्ञे तेनाविभाविते" ॥
आगमेन रिक्थक्रयादिना उपभोगेन च मदीय-मिदं द्रव्यं तस्यैव नष्टमपहृतं वेत्यपि भाव्यं साधनीयं तत्स्वामिना अतोऽन्यथा तेन स्वामिना अविभाविते पञ्चबन्धो नष्टद्रव्यस्य पञ्चमांशो दमो नाष्टिकेन राज्ञे देयः ॥ * ॥ अत्रैवायं क्रमः। पूर्व्वस्वामी नष्टमात्मीयं साधयेत् ततः क्रेता चौर्य्यपरिहारार्थं मूल्यलाभाय च विक्रेतारमानयेत्। आनेतुं न शक्नोति तदात्मदोषपरिहाराय क्रयं शोधयित्वा नाष्टिकस्य समर्पयेदिति ॥ * ॥
तस्करस्य प्रच्छादकं प्रत्याह।
"हृतं प्रणष्टं यो द्रव्यं परहस्तादवाप्नुयात्।
अनिवेद्य नृपे दण्ड्यः स तु षण्णवतिं पणान्" ॥
हृतं प्रणष्टं वा चौरादिहस्तस्थं द्रव्यमनेन मदीयं द्रव्यमपहृतमिति नृपस्यानिवेद्यैव दर्पादिना यो गृह्णात्यसौ षडुत्तरान् नवतिपणान् दण्डनीयः। तस्करप्रच्छादकत्वेन दुष्टत्वात् ॥ * ॥
राजपुरुषानीतं प्रत्याह।
"शौल्किकैः स्थानपालैर्व्वा नष्टापहृतमाहृतम्।
अर्व्वाक् सम्वत्सरात् स्वामी हरेत परतो नृपः" ॥
यदा तु शुल्काधिकारिभिः स्थानरक्षिभिर्व्वा नष्टमपहृतं द्रव्यं राजपार्श्वं प्रत्यानीतं तदा सम्वत्सरादर्व्वाक्प्राप्तश्चेत् नाष्टिकस्तद्द्रव्यमवाप्नुयात्। ऊर्द्ध्वं पुनः सम्वत्सराद्राजा गृह्णीयात्। स्वपुरुषानीतञ्च द्रव्यं जनसमूहेषूद्घोष्य यावत् सम्वत्सरं राज्ञा रक्षणीयं। यथाह गौतमः। प्रणष्टमस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रब्रूयुर्विख्याप्य सम्वत्सरं राज्ञा रक्ष्यमिति। यत् पुनर्मनुना विध्यन्तरमुक्तं—
"प्रणष्टस्वामिकं द्रव्यं राजा त्र्यब्दं निधापयेत्।
अर्व्वाक् त्र्यब्दात् हरेत् स्वामी परतो नृपतिर्हरेत्" ॥
इति ॥ तच्छ्रुतवृत्तसम्पन्नब्राह्मणविषयं। रक्षणनिमित्तं षड्भागादिग्रहणञ्च तेनैवोक्तं।
"आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृप।
दशमं द्वादशं वापि सतां धर्म्ममनुस्मरन्" ॥ इति।
तृतीयद्वितीयप्रथमवत्सरेषु यथाक्रमं षष्ठादयो भागा वेदितव्याः। प्रपञ्चितञ्चैतत् पुरस्तात् ॥ * ॥
मनूक्तषड्भागादिग्रहणस्य द्रव्यविशेषे अपवादमाह।
"पणानेकशफे दद्यात् चतुरः पञ्च मानुषे।
महिषोष्ट्रगवां द्वौ द्वौ पादं पादमजाविके" ॥
एकशफे अश्वादौ प्रणष्टाधिगते तत्स्वामी राज्ञे रक्षणनिमित्तं चतुरः पणान् दद्यात्। मानुषे मनुष्यजातीये द्रव्ये पञ्च पणान्। महिषोष्ट्रगवां रक्षणनिमित्तं प्रत्येकं द्वौ द्वौ पणौ। अजाविके पुनः प्रत्येकं पादं पादं दद्यादिति सर्व्वत्रानुषज्यते। अजाविकमिति समासनिर्द्देशेऽपि पादं पादमिति वीप्साबलात् प्रत्येकं सम्बन्धो गम्यते ॥ इत्यस्वामिकविक्रयप्रकरणं। इति मिताक्षरायां व्यवहाराध्यायः ॥

अस्वामी, [न्] त्रि, (न स्वामी अधिकारी नञ्समासः।) स्वामिभिन्नः। यथा। बृहस्पतिः।
"अस्वामिना तु यद्भुक्तं गृहक्षेत्रापणादिकं।
सुहृद्बन्धुसकुल्यस्य न तद्भोगेन हीयते" ॥
इति दायतत्त्वं ॥
अस्वाम्य, क्ली, (न स्वाम्यम्। नञ्समासः।) स्वामित्वाभावः। यथा देवलः।
"अस्वाम्यं हि भवेदेषां निर्द्दोषे पितरि स्थिते"।
इति दायतत्त्वं ॥
अस्वास्थ्य, क्ली, सुस्थत्वाभावः। सुस्थताराहित्यं। स्वास्थ्यस्याभावः अस्वास्थ्यमित्यव्ययीभावसमासनिष्पन्नं ॥ (यथा शिशुपालवधे।
"विस्रंह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली
य इत्यमस्वास्थ्यमहर्द्दिवन्दिव" ॥
भुक्ते स्वास्थ्यमुपैति च, इति ग्रहणीरोगेऽभिहितं माधवकरेण सङ्गृहीतञ्च। अत्र हि अभुक्तेऽस्वास्थ्यमिति तात्पर्य्यं ॥)
अह इ क भासे। (उभ चुरा-अक-सेट्।) दीप्तिरिति यावत्। इति कविकल्पद्रुमः ॥ इ क अंहयति। भासो दीप्तिः। इति दुर्गादासः ॥
अह इ ङ गतौ। (भ्वादि आत्म सक-सेट्।) इति कविकल्पद्रुमः ॥ इ अंहते। ङ अंहते। इति दुर्गादासः ॥
अह, व्य, प्रशंसा। क्षेपणं। नियोगः। विनिग्रहः। इति मेदिनी ॥
अहं, त्रि, अस्मदशब्दस्य प्रथमान्तस्य रूपं। आमि इति भाषा। यथा आह्निकतत्त्वं,—
"अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवास्मि न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्" ॥
(तथा च रघुवंशे १। ६८।
"सोऽहमिज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः")
अहंयु, त्रि, (अहमस्यास्तीति अहंशब्दात् "अहंशुभयोर्युस्" इति युस्।) अहङ्कारयुक्तः। गर्व्वान्वितः। तत्पर्य्यायः। अहङ्कारवान् २। इत्यमरः ॥ ("अहंयुनाथ क्षितिपः शुभंयुः"। इति भट्टिः।)
अहः [न्], क्ली, दिवा। इत्यमरः ॥ [टीका ॥
अहःपति, पुं, (अह्नः पतिः।) सूर्य्यः। इत्यमर-
अहङ्कार, पुं, (अहमिति ज्ञानं क्रियतेऽनेन। अहं+कृ+घञ्।) अहङ्कृतिः। तत्पर्य्यायः। गर्व्वः २ अभिमानः ३ इत्यमरः ॥ पुराणमते स त्रिविधः। सात्त्विकः १ राजसः २ तामसश्च ३। सात्त्विकाहङ्कारात् इन्द्रियाधिष्ठातारो देवा मनश्च जातं। राजसाहङ्कारात् दशेन्द्रियाणि जातानि। तामसाहङ्कारात् सूक्ष्मपञ्चभूतानि जातानि। वेदान्तमते अभिमानात्मिकान्तःकरणवृत्तिः ॥ अहमित्यभिमानः। स च शरीरादिविषयको मिथ्याज्ञानमुच्यते। इति गौतमसूत्रवृत्तिः। "अहमित्यव्ययं तस्य करणं। अहमिति किरति अनेति वा अहङ्कारः। करोतेः किरतेर्व्वा घञ्। कारप्रत्ययः इत्यन्ये"। इत्यमरटीकायां भरतः। मदः ४ स्मयः ५ अवलेपः ६ दर्पः ७। इति जटाधरः। अहङ्कृतिः ८ उद्धतमनस्कत्वं ९। मानः १० चित्तसमुन्नतिः ११। यथा।
"गर्व्वोमदोऽभिमानः स्यादहङ्कारस्त्वहङ्कृतिः।
स्यादुद्धतमनस्कत्वे मानश्चित्तसमुन्नतिः ॥
अहङ्कारस्य पर्य्याय इति केचित् प्रचक्षते" ॥
इति शब्दरत्नावली ॥ (अहङ्कारस्याश्रय आत्मा यथा, भाषापरिच्छेदे।
"अहङ्कारस्याश्रयोऽयं मनोमात्रस्य गोचरः"।
अहङ्कारतत्त्वं। यथाह मनौ, १। १४।
"मनसश्चाप्यहङ्कारमभिमन्तारमीश्वरम्"।
गर्व्वोन्नत्यम्। यदुक्तं।
"अहङ्कारश्च सर्व्वेषां पापवीजममङ्गलम्।
महाप्रेषु च सर्व्वेषां गर्व्वपर्य्यन्तमुन्नतिः" ॥
स च द्विविधः, विशेषरूपः सामान्यरूपश्चेति। तत्रायमहं एतस्य पुत्र इत्येवं व्यक्तमभिमन्यमानो विशेषरूपो व्यष्ट्यहङ्कारः। अस्मीत्येतावन्मात्रमभिमन्यमानः सामान्यरूपः समष्ट्यहङ्कारः। स च हिरण्यगर्भो महान् आत्मेति च सर्व्वानुस्यूतत्वादुच्यते। अहमभिमानरूपो योऽहङ्कारः स सर्व्वसाधारणः। आरोपितगुणैरात्मनो महत्त्वाभिमानः। अहमेव श्रेष्ठ इति दुरभिमानः। महाकुलप्रसूतोऽहं महतां शिष्यो नास्ति द्वितीयो मत्समः इत्यभिमानः। आत्मश्लाघनाभावेऽपि मनसि प्रादुर्भूतोऽहं सर्व्वोत्कृष्ट इति गर्व्वः।)
अहङ्कारवान्, त्रि, (अहङ्कारो विद्यतेऽस्य। अहङ्कार+मतुप्। मस्य वः।) गर्व्वान्वितः। इत्यमरः ॥ तत्पर्य्यायः। अहंयुः २। इत्यमरः ॥ अहङ्कारान्वितः ३। इति शब्दरत्नावली। गर्व्वितः ४। इति जटाधरः ॥
अहङ्कारी, [न्] त्रि, गर्व्वयुक्तः। अहङ्कारो विद्यते यस्येति अस्त्यर्थे णिनिप्रत्ययेन निष्पन्नः। अभिमानी। गर्व्वान्वितः ॥ (दशरूपके ॥
"धीरोद्धतस्त्वहङ्कारी चपलश्चण्डो विकत्थनः"।)
अहङ्कृति, स्त्री, (अहम्+कृ+क्तिन्।) अहङ्कारः। गर्व्वः। इति शब्दरत्नावली ॥ (यथा पञ्चतन्त्रे ॥
"युध्यतेऽहङ्कृतिं कृत्वा दुर्ब्बलो यो बलीयसा"।)
अहत, क्ली, (हन्+क्त। ततो नञ्समासः।) नवाम्बरं। नूतनवस्त्रं। इति हलायुधशब्दरत्नावल्यौ ॥ (अहतलक्षणं यथा महाभारते,—
"ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्नधारितम्।
अहतं तद्विजानीयात् यावत् सर्व्वकर्म्मसु" ॥
"अहतैश्चैव वासोभिर्माल्यैरुच्चावचैरपि"। इति।
"अहतानि च वासांसि रथञ्च शुभलक्षणम्"।
इति रामायणे। अनाहते, त्रि, ॥
अहमहमिका, स्त्री, (अहमहं शब्दोऽस्त्यत्र, वीप्सायां द्वित्वम्। व्रीह्यादित्वात् ठन्। ततष्टाप्।) परस्पराहङ्कारः। इत्यमरः। परस्परं परमपेक्ष्य परस्यापरमपेक्ष्य परस्य योऽहङ्कारोऽहमेव श्रेष्ठोऽहमेव श्रेष्ठ इति मानः। इति भरतः। आमि बड आमि बड बलिया परस्पर अहङ्कार इति भाषा ॥ (यथा पञ्चतन्त्रे,—

"इत्यहमहमिकया तयोर्विवदतो"।)

अहम्पूर्व्विका, स्त्री, (अहं पूर्व्वं अहं पूर्व्वमिति कथनं यत्र । अहम्पूर्व्व+ठन्+स्वार्थे कन्+ततष्टाप् ।) अहम्पूर्व्वं अग्रे यास्यामि अहं पूर्व्वं अग्रे यास्यामि इत्यन्योऽन्यं योधानां धावनक्रिया । इत्यमरः । आमि अग्रे याव वलिया गेला क्रिमे परस्पर आगे धाओया इति भाषा । (यथा किराते,—
"युगेषु दुर्गेषु च तुल्यविक्रमै-
र्ज्जवादहम्पूर्व्विकया यियासुभिः"।)

अहम्मतिः, स्त्री, (अहम्प्रधाना मतिर्ज्ञानं ।) अविद्या । अज्ञानम् । इत्यमरः ॥

अहर्गणः, पुं, (अह्नां गणः) मास इति हारावली । अहानां मध्यादिज्ञानार्थं श्वेतवाराहकल्पावधि-स्वायम्भुवमन्वन्तरावधि वा कल्पावधिकल्पाद्यवधि वा इष्टकालपर्यन्तं मन्वादिगणितदिनसमूहः । तत्पर्य्यायः । द्युवृन्दः २ । दिनौघः ३ । द्युगणः ४ । दिनपिण्डः ५ । इति ज्योतिःशास्त्रम् ॥

अहर्ज्जरः, पुं, (अहोभिर्लोकान् जरयति । अहन्+जॄ+णिच्+अच् । यद्वा अहानि जीर्य्यन्त्य-स्मिन्नन्तर्भवन्त्यस्मिन् । अहन्+जॄ+अच् ।) संवत्सरः । यथा । "यथापः प्रवता यन्ति यथा मासा अह-र्ज्जरं । एवं मां ब्रह्मचारिणो धातरायन्तु सर्व्वतः स्वाहा" । इति तैत्तिरीयोपनिषदि शिक्षावल्ली ॥ यथा लोके आपः प्रवता प्रवणवता निम्नवता देशेन यन्ति गच्छन्ति । यथा वा मासा अहर्ज्जरं संवत्सरोऽहर्ज्जरोऽहोभिः परिवर्त्तमानो लोकान् जरयतीति अहानि वा अस्मिन् जीर्य्यन्ति अन्त-र्भवन्तीत्यहर्ज्जरः । तञ्च यथा मासा यन्ति एवं मां ब्रह्मचारिणो हे धातः सर्व्वस्य विधातः मामायन्तु आयान्तु सर्व्वतः सर्व्वदिग्भ्यः । इति शङ्करा-चार्य्यकृतभाष्यम् ॥

अहर्पतिः, पुं, (अह्नः पतिः । पक्षे अहःपतिः ।) सूर्य्यः । इत्यमरः । (यथा रघुवंशे १० । ५४ ।
"द्यावापृथिव्योः प्रत्यग्रमहर्पतिरिवातपम्" ।)

अहर्ब्बान्धवः } पुं, (अह्नो बान्धवः । अह्नो मणिरिव
अहर्म्मणिः } च ।) सूर्य्यः । इति हेमचन्द्रः । अर्क-वृक्षः ।

अहर्म्मुखं, क्ली, (अह्नो मुखं ।) प्रत्यूषः । इत्यमरः ॥

अहल्य, त्रि, (हलेन कृष्टं । ततो नञ्समासः ।) हलाकृष्टक्षेत्रादि । आकृष्टभूमिः ॥

अहल्या, स्त्री, ब्रह्मोदितदेव । (यथा रामायणे ।
"विधात्रा यत्नतः सृष्टा अहल्या च तपस्विनी ।
हल्लञ्च यत्तयोर्गत्वा अहल्या समभूदत" ॥
गौतममुनिपत्नी । इति मेदिनी । सा च महा-साध्वी । प्रातः काले तस्या नामस्मरणे महापातक-नाशो भवति । यथा प्रातः,—
"अहल्या द्रौपदी कुन्ती तारा मन्दोदरी तथा ।
पञ्चकन्याः स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्" ॥
त्रेतायुगे इन्द्रः गौतमरूपधारी सन् तस्या सतीत्वं नाशितवान् । ततो गौतमशापेन सा पाषाणदेहा बभूव । ततस्त्रेतायुगे श्रीरामचन्द्रपादस्पर्शात् शापात् विमुक्ता सती पुनः पूर्व्वरूपा

मानवी भूता । इति रामायणम् ॥

अहस्करः, पुं, (अहः करोति । अहन्+कृ+ट । कस्कादित्वात् सः ।) सूर्य्यः । इति हेमचन्द्रः । अर्कवृक्षः ॥

अहस्पतिः, पुं, (अह्नः पतिरिव ।) सूर्य्यः । इत्यमरः । अर्कवृक्षः । अमरे तत्पर्य्याये अर्काङ्ग इति दर्शनात् ॥

अहह, व्य, (अहं जहातीति । अहम्+हा+ड । पृषोदरादित्वात्तस्लोपः ।) अद्भुतम् । खेदः । परि-क्लेशः । प्रकर्षः । सम्बोधनम् । इति मेदिनी ॥ (आश्चर्य्यम् । विस्मयः । यथा हितोपदेशे ।
"अहह ! महापङ्के पतितोऽसि" ।
"अहह ! तात ! पतामि दारुणे" ।
इति महानाटके ।)

अहहा, व्य, (अहं जहातीति । अहम्+हा+क्विप् । पृषोदरादित्वात् साधुः ।) अद्भुतं । खेदः । इत्यमरटीकायां रायमुकुटादयः । अत्र अहह-शब्दार्थोऽपि मन्तव्यः ॥

अहार्य्यः, पुं, (हृ+ण्यत् । ततो नञ्समासः ।) पर्व्वतः । इत्यमरमेदिन्यौ ॥

अहार्य्य, त्रि, (न हार्य्यः । नञ्समासः ।) हर्त्तुमशक्यः । अहरणीयः । अहरणीयः । इति मेदिनी ॥
("अहार्य्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः"
"तथात्मभूतैः कालज्ञैरहार्य्यैः परिचारकैः" ॥
इति च मनुः ८ । १८९ ।)

अहिः, पुं, (आहन्तीति । आ+हन्+इण् । हन हिंसागत्योः । आङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्चेति इण् । स च डित् । डित्वात् टिलोपः । आङो ह्रस्वश्च ।) वृत्रासुरः । सर्पः । इत्यमरः । सूर्य्यः । पथिकः । राहुः । इत्यनेकार्थध्वनिमञ्जरी ॥ (सीसकः । राहुः । वप्रः । अश्लेषानक्षत्रम् । खलः । "विष-धरतोऽप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः । यदयं नकुलद्वेषी सकुलद्वेषी पुनः पिशुनः" । इति वासवदत्तायां प्रस्तावनायाम् ।)

अहिंसा, स्त्री, (न हिंसा । नञ्समासः ।) कुलिक-वृक्षः । कुलेखाड़ा इति ख्याता । अस्या गुणाः । विषदोषापहारित्वम् । इति राजनिर्घण्टः । (कोकिलाक्षप्रसिद्धाया गुणादयो ज्ञेयाः । हिंसा-रहिते, त्रि ।)

अहिंस्रा, स्त्री, (न+हिंस्+रक्+टाप् ।) ताम्र-मूलिका । इति शब्दचन्द्रिका ॥

अहिकान्तः, पुं, (अहेः सर्पस्य कान्तः प्रियः । भक्ष्य-त्वात् ।) वायुः । इति हेमचन्द्रः ॥

अहिच्छत्रः, पुं, (अहेः सर्पस्य छत्रमिव आकृतिरस्य ।) देशविशेषः । तत्पर्य्यायः । छत्रकः । मेषशृङ्गीवृक्षः । इति हेमचन्द्रः ॥

अहिच्छत्रा, स्त्री, शर्करा । इति राजनिर्घण्टः । चिनि इति भाषा । नगरीविशेषः । इति ज्योतिस्तत्त्वम् । यथा कूर्म्मविभागे । "कैलासे मानसरसि अहिच्छत्रे च तीर्थेषु । दिव्यान्तरीक्षभौमेषु नरो भवति सुखान्वितः" । इति ज्योतिस्तत्त्वम् ।

अहिजित्, पुं, (अहिं वृत्रं वृत्रासुरं वा जितवान् अहि+जि+क्विप् ।) विष्णुः । कालीयनाग-दमनात् । इन्द्रः । वृत्रासुरनाशात् ।

अहित, त्रि, (न हितं । नञ्समासः ।) शत्रुः । इत्यमरः । (यथा रघुवंशे ४ । २८ ।
"स ययौ प्रथमं प्राचीं तुल्यः प्राचीनबर्हिषा ।
अहिताननिलोद्धूतैस्तर्ज्जयन्निव केतुभिः" ।)
अपथ्यं इति शब्दचन्द्रिका ॥
("यथाक्तान्यहितानि दशनपवनमारुतादिषु प्रश-स्तान्यभिघातविषादीनि ।" इति सुश्रुते ।
प्रतिकूलः । अशुभकरः । यथा वैराग्यशतके ।
"लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम्" । ३५ ॥
"परोऽपि हितवान् बन्धुर्बन्धुरप्यहितः परः ।
अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम्" ॥ इति हितोपदेशे । अहिताहारोपयोगिनां पुनः कार-णतो न सद्यो दोषवान् भवत्यपचारः, नहि सर्व्वाण्यपथ्यानि तुल्यदोषाणि न च सर्व्वे दोषा-स्तुल्यबलाः । न च सर्व्वाणि शरीराणि व्याधि-क्षमत्वे समर्थानि । तदेव ह्यपथ्यं देशकालसंयोग-वीर्य्यप्रमाणातियोगात् भूयस्तरमपथ्यं सम्पद्यते । स एव दोषः संसृष्टयोनिर्विरुद्धोपक्रमो गम्भी-रानुगतः प्राणायतनसमुत्थो मर्म्मोपघाती वा भूयान् कष्टतमः क्षिप्रकारितमश्च सम्पद्यते इति चरकः ।
"इह खलु यस्माद्द्रव्याणि स्वभावतः संयोगतः-श्चैकान्तहितान्येकान्ताहितानि हिताहितानि भवन्ति" । "यथाक्तान्यहितानि दशनपवनमारुता-दिषु प्रशस्तान्यभिघातविषादीनि ।"
"दुग्धस्यैकान्तहितता विषस्यैकान्ततोऽहित एव पृष्ठमांसादिषु मतेषु मणिमानिषु ।
एकान्तहितता विज्ञेया मुच्यते नान्यथा" ॥
"विरुद्धान्येवमादीनि स्ववीर्य्यविपाकतः ।
तान्येवमाहिताण्येव शेषं विद्याद्धिताहितं" ॥
इति सुश्रुते ।)

अहितुण्डिकः, पुं, (अहेः तुण्डं मुखं, तेन दीव्यति यः सः । अहितुण्ड+ठक् । मन्त्रादिपूर्व्वकत्वात् स्वार्थे ।) भिक्षार्थं सर्पक्रीडकः । तत्पर्य्यायः । व्यालग्राही २ । इत्यमरः । साप्उड़े इति भाषा ॥

अहिद्विट्, [ष्] पुं, (अहिं वृत्रासुरं सर्पं वा द्वेष्टि यः । अहि+द्विष्+क्विप् ।) इन्द्रः । गरुडः । मयूरः । नकुलः । इति मेदिनी ॥
("अहिद्विषमद्भुतवतः निरत्नः" । इति माघे ।
"एकादशव्यापारहरिमेकुरः
दधौ मयातेति दशाङ्गीनि" ।
इति कालिकापुराणे ।)

अहिपुत्रकः } स्त्री, अहिपुत्रादिः । शिल्प-
अहिपुत्रिका } शिल्पिविशेषः । [illegible] । अहिपुत्रको मत्स्यविशेष इति भाषा । [illegible] ।

अहिभुक्, पुं, (अहिं सर्पं भुङ्क्ते इत्यर्थः । अहिं भुङ्क्ते ।) मयूरविशेषः । तत्पर्य्यायः । नकुलः । गरुडः । इति शब्दरत्नावली ।

अहिपूतन, पु, क्षुद्ररोगविशेषः । तल्लक्षणं यथा,—
"शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् ।
स्विन्ने वा स्नाप्यमानस्य कण्डूरक्तकफोद्भवा ॥
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ।
एकीभूतं व्रणं घोरं तं विद्यादहिपूतनं" ॥ * ॥
तच्चिकित्सा यथा भावप्रकाशे,—
"तत्र संशोधनैः पूर्व्वं धात्रीस्तन्यं विशोधयेत् ।
त्रिफलाखदिरक्वाथैर्व्रणानां क्षालनं हितं ॥
शङ्खसौवीरयष्ट्याह्वैर्लेपः कार्य्योऽहिपूतने" । इति
(रुग्विनिश्चयटीकाकृता विजयेन व्याख्याप्रसङ्गतो
भोजवचनं यदाहृतं तद्यथा,—यदुक्तं ।
"दुष्टस्तन्यस्य पानेन मलस्याक्षालनेन च ।
कण्ड्वाढ्यरुजावद्भिः पिडकैश्च समाचितं ॥
अहिपूतनं सम्भवति यथादोषञ्च दारुणं" ॥
इति सनिदानलक्षणसम्प्राप्तिकं चिकित्सितं वाभ-
टेन वा यदुक्तं तद्यथा,—
"मलोपलेपात् स्वेदाद्वा गुदे रक्तकफोद्भवः ।
ताम्रोव्रणोऽन्तः कण्डूमान् जायते भूर्य्युपद्रवः ॥
केचित्तं मातृकादोषं वदन्त्यन्येऽहिपूतनं ।
पृष्ठारुं गुदकुन्दञ्च केचिच्च तमनामिकं" ॥ * ॥
चिकित्सा ।
"तत्र धात्र्याः पयः शोध्यं पित्तश्लेष्महरौषधैः । १
धृतशीतञ्च शीताम्बु-युक्तमन्तरपानकं ॥ २
सक्षौद्रतार्क्ष्यशैलेन व्रणं तेन च लेपयेत् । ३
त्रिफलाबदरीप्लक्षत्वक् क्वाथं परिषेचितं ॥ ४
कासीश-रोचना-तुत्थ-मनोह्वालरसाञ्जनैः । ५
लेपयेदम्लपिष्टैर्वा चूर्णितैर्वावचूर्णयेत् । ६
सूक्ष्मक्षौरथवा यष्टीशङ्खसौवीरकाञ्जनैः । ७
सारिवाशङ्खनाभिभ्यामशनस्य त्वचोऽथवा" ॥ ८ ॥
चक्रपाणिसंग्रहे तु ॥
"पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितं ।
पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रामप्यहिपूतनां" ॥
पटोलाद्यघृतं ॥ * ॥ )

अहिफेन, क्ली, ( अहेः सर्पस्य फेनं गरलमिव । अत्युग्रत्वात् ।) ऊफेनं । इति राजनिर्घण्टः ॥ आफिं इति भाषा । ( अस्य पर्य्यायमाह भावप्रकाशकारः ।
"उक्तं खसफलक्षीरमाफूकमहिफेनकं" ।
अस्य कार्य्यञ्चाह शार्ङ्गधरः ।
"पूर्व्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकञ्च गच्छति ।
व्यवायि तद्यथा भङ्गा फेनञ्चाहिसमुद्भवं" ॥
अपरञ्चाफेनशब्दे आफूकशब्दे च ज्ञातव्यं ॥)

अहिब्रध्न, पु, ( अहिः ब्रध्ने यस्य ।) शिवः ।
("अजैकपादहिब्रध्नः पिनाकी चापराजितः" ।
इति हरिवंशे ।) रुद्रविशेषः ॥ इति जटाधरः ॥
( यथा हरिवंशे ।
"सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादश विनिर्म्ममे ।
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ॥
अजैकपादहिब्रध्नस्त्वष्टा रुद्राश्च भारत" । इति ।)

अहिब्रध्नदेवता, स्त्री, ( अहिब्रध्नो रुद्रोऽधिष्ठात्री देवता यस्याः ।) उत्तरभाद्रपदनक्षत्रं । इति ज्योतिःशास्त्रं ॥

अहिभय, क्ली, ( अहेः सर्पतुल्यस्वपक्षात् सर्पाद्वा भयं ।) राज्ञां स्वपक्षोद्भवभयं । इत्यमरः ॥ सर्पभयं ॥

अहिभयदा, स्त्री, (अहेर्भयं द्यति खण्डयतीति । अहिभय + दो + क) भूम्यामलकी । इति राजनिर्घण्टः ॥ (भूम्यामलकीशब्देऽस्या गुणावली ज्ञातव्या ॥ )

अहिभुक्, [ ज् ] पु, (अहिं भुङ्क्ते । अहि + भुज् + क्विप् ।) गरुडः । मयूरः ॥ इत्यमरः ॥ नाकुली । गन्धनाकुली । इति राजनिर्घण्टः ॥

अहिमर्द्दनी, स्त्री, ( अहेर्मर्द्दनं भवत्यस्याः ।) गन्धनाकुलीनाम कन्दविशेषः ॥ इति राजनिर्घण्टः ॥

अहिमार, पु, (अहिं मारयति यः सः । अहि + मृ + णिच् + अण् ।) अरिमेदवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

अहिमेदक, पु, (अहिं मेदयति स्पर्शमात्रेण गलयति यः सः ।) अरिमेदवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (अरिमेदशब्देऽस्य गुणादयो ज्ञेयाः ॥)

अहिलता, स्त्री, (अहिरिव लता । दीर्घाकारत्वात् ।) गन्धनाकुली । ताम्बूली । इति राजनिर्घण्टः ॥

अहीरणि, पु, ( अहीन् ईरयति दूरीकरोति । अहि + ईर + अणि ।) द्विमुखसर्पः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अहे, व्य, क्षेपः । वियोगः । इति शब्दमाला ॥

अहेरु, स्त्री, ( न हिनोति । हि गतौ बाहुलकाद् रुः । ततो नञ्समासः ।) शतमूली । इत्यमरः ॥

अहो, व्य, ( न + हा + डो ।) धिगर्थः । शोकः । करुणार्थः । विषादः । सम्बोधनं । प्रशंसा । विस्मयः । पदपूरणं । असूया । वितर्कः । इति मेदिनी ॥ (यथा रामायणे अयोध्याकाण्डे ॥
"अहो धिगिति मामेषां वाचमुक्त्वा नराधिप" ।
"अहो मधुरमासां दर्शनं" । इति शाकुन्तले प्रथमाङ्के ।)

अहोरात्र, पु, (अहश्च रात्रिश्च तयोः समाहारः । रात्राह्नाहाः पुंसि । अह सर्व्वैकदेशे टच् इति टच् ।) दिवानिशं । स तु सूर्य्योदयद्वयपरिच्छिन्नत्रिंशन्मुहूर्त्तात्मककालः । इत्यमरः ॥ मनुष्याणां मासेन पैत्रोऽहोरात्रो भवति । मनुष्याणामेकवर्षेण देवानामहोरात्रो भवति । द्विसहस्रगुणितमानुष्यचतुर्युगमानेन ब्रह्मणोऽहोरात्रो भवति । तत्र मनुष्यमानेन ८६४००००००० वर्षा भवन्ति ॥

अहोवत, व्य (अहो च वत च ।) अनुकम्पा । खेदः । सम्बोधनं । इति विश्वमेदिनौ ॥
("अहोवतासिस्पृहणीयवीर्य्यः" । इति कुमारे ।
"अहोवत । कीदृशीं वयोऽवस्थामापन्नोऽस्मि" ।
इति शाकुन्तले । [इति गीता ॥)
"अहोवत । महत्पापं कर्त्तुं व्यवसिता वयम्" ।

अह्नाय, व्य, (ऊ ङ व्यपनयने । बाहुलकाद्भावे घञ् । वृद्धिः । पृषोदरादित्वात् वस्य यः । ततो नञ्समासः ।) झटिति । द्रुतं । इत्यमरः ॥
(अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज" । इति कुमारे ।
"अह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम्" । इति रघौ ।
"स्वच्छन्दोच्छलदच्छकच्छकुहरच्छातेतराम्बुच्छटा
मूर्च्छन्मोहमहर्षिहर्षविहितस्नानाह्निकाह्नाय वः" । इति काव्यप्रकाशे ।)

अह्रीक, पु, (नास्ति ह्रीर्लज्जा यस्य ।) बौद्धः । क्षपणकः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

अह्लला, स्त्री, (न + ह्ले + डल् ।) भल्लातकवृक्षः । इति शब्दचन्द्रिका ॥ भेला इति भाषा ।

---

# आ

आ, आकारः । द्वितीयस्वरवर्णः । अस्योच्चारणस्थानं कण्ठः । स च दीर्घः प्लुतश्च भवति ।
"आकारं परमाश्चर्य्यं शङ्खज्योतिर्म्मयं प्रिये ।
ब्रह्मविष्णुमयं वर्णं तथा रुद्रमयं प्रिये ।
पञ्चप्राणमयं वर्णं स्वयं परमकुण्डली" ॥
इति कामधेनुतन्त्रे ॥ अस्य लेखनप्रकारो यथा—
"अकाररूपमासाद्य दक्षकोडायता त्वधः ।
ब्रह्मादयस्तथा शक्तिस्तासु तिष्ठन्ति नित्यशः" ॥
इति वर्णोद्धारतन्त्रं । तस्य नामानि यथा—
"आकारो विजयानन्तो दीर्घच्छायो विनायकः ।
क्षीरोदधिः पयोदश्च पाशो दीर्घास्यवृत्तकौ ॥
प्रचण्ड एकजो रुद्रो नारायण इभेश्वरः ।
प्रतिष्ठा मानदा कान्तो विश्वान्तको गजान्तकः ॥
पितामहो द्विठान्तो भूः क्रिया कान्तिश्च सम्भवः ।
द्वितीया मानदा काशी विघ्नराजः कुजो वियत् ॥
स्वरान्तकश्च हृदयमङ्गुष्ठो भगमालिनी" ॥
इति वर्णाभिधानं ॥

आ, व्य, स्मृतिः । यथा । "आज्ञातं सजटायुरेष" । वाक्यं । यथा । "आ एवं मन्यसे" । इत्यमरः ॥ (पूर्व्वं नैवं मस्था इदानीं त्वेवं मन्यसे इत्यर्थः ।) अनुकम्पा । (यथा, आ देवदत्तो दरिद्रः इति ।) समुच्चयः । इति मेदिनी ॥ (यथा, देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च आ ।) क्वचित् निषिद्धसन्धिवर्णः । आशब्दो योऽचा न सन्धीयते स इत्यर्थः । इति भरतः ॥ ("आ एवं तत्त्वमर्य्यादा आ एवं तत्कृतं मया" । इति मुग्धबोधम् ।)

आ, व्य, एवं । स्वीकारः । इत्यमरः ॥

आ, पु, महेश्वरः । इति पुरुषोत्तमः ॥ पितामहः । वाक्यं । यथा अग्निपुराणे एकाक्षराभिधानं ।
"अ विष्णुः प्रतिषेधः स्यादा पितामहवाक्ययोः ।
सीमायामथाव्यय आ भवेत् सक्रोधपीडयोः" ॥

आः, [ स् ] व्य, कोपः । यथा । आः पापदुर्म्मुख । ("आः किमेतदितिक्रोधादाभाष्य महिषासुरः" । इति मार्कण्डेयपुराणम् ।
"आः पापे दुर्विनीते महाश्वेते" । इति कादम्बर्य्यां ।) पीडा । यथा आः शीतं । इत्यमरभरतौ । स्मृतिः । स्पर्द्धा । तर्ज्जनं । इति शब्दरत्नावली ॥

आकम्पित, त्रि, ( आकम्प्यते स्म । आङ् + कपि + क्त ।) कम्पविशिष्टः । तत्पर्य्यायः । वेल्लितं २ प्रेङ्खितं ३ आधूतं ४ आधुतं ५ चलितं ६ इत्यमरः ॥ कम्पितं ७ धुतं ८ व्याधूतं ९ विधूतं १० धूतं ११ प्रकम्पितं १२ । इति शब्दरत्नावली ॥
("अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी" । इति रघौ ।

"आकम्पितानि हृदयानि मनस्विनीनां
वातैः प्रफुल्लसहकारकृताधिवासैः"।
इति ऋतुसंहारे ॥)

आकरः, पु, (आकीर्य्यन्ते धातवोऽत्र । आङ्+कॄ+अप् । यद्वा आकुर्व्वन्ति सम्भूय कुर्व्वन्ति व्यवहारमत्रेति वा । आ+कृ+घ ।) धातुरत्नादि-उत्पत्तिस्थानं । तत्पर्य्यायः । खनिः २ इत्यमरः ॥
("आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः"।
इति हितोपदेशे ।
"शैलेन्द्रो हिमवान् नाम धातूनामाकरो महान्"
इति रामायणम् ।) समूहः ।
("शब्दार्थकारकग्राममर्थमण्डलमण्डलम्"।
इति कविकल्पद्रुमः ।) श्रेष्ठः । इति मेदिनी ॥

आकर्णनं, क्ली, (आ+कर्ण+ल्युट् ।) श्रवणं॥
("मुदा तदाकर्णनतत्परोऽभूत्"। इति नैषधे ।)

आकर्षः, पु, (आकृष्यते इति । आ+कृष+घञ् ।) पाशकः । पाशा इति भाषा । अक्षक्रीडा । पाशा खेला इति भाषा । सारिफलकः । इत्यमरः ॥ छक इति भाषा । (यथा महाभारते ।
"आकर्षस्ते वाक्फलः सुप्रणीतो
हृदि प्रौढो मन्त्रपदः समाधिः"।
इन्द्रियं । धनुरभ्यासवस्तु । आकर्षणं । इति मेदिनी ॥ आकृष्यते अनेन । आँकुषी इति भाषा । यथा । "आकर्ष इव स्वा आकर्षस्वः"। इति मुग्धबोधव्याकरणं ॥ आकर्षतुल्य इति ज्ञापनार्थ-इव शब्दः । इति दुर्गादासः ॥ (अयस्कान्तः । निकषोपलः ।)

आकर्षणं, क्ली, (आ+कृष्+ल्युट् ।) आकर्षः । बलादानयनं । टानन इति भाषा । यथा,—
"सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मागमिष्यसि" ॥
इति मार्कण्डेये देवीमाहात्म्यम् ॥ * ॥
तन्त्रोक्तकर्म्मविशेषद्वारा योषादानयनं । यथा । अथाकर्षणं ।
"आकर्षणविधानानि कथयामि समासतः ।
यद्दृष्ट्वा भैरवे तन्त्रे यद्दृष्ट्वा भूतडामरे॥
श्रीबीजं मान्मथं बीजं लज्जाबीजं समुद्धरेत् ।
प्रथमं प्रणवं दत्त्वा त्रिपुरादेविपदं ततः ॥
अमुकीति पदं दत्त्वा आकर्षय द्विधा पदं ।
स्वाहान्तं मन्त्रमुद्धृत्य जपेद्दशसहस्रकं ॥
षट्कोणचक्रमालिख्य रक्तचन्दनकुङ्कुमैः ।
षडङ्गं कारयेन्मन्त्री लज्जाबीजसमन्वितं ॥
षड्दीर्घभाक्स्वरेणैव नादविन्दुविभूषितं ॥
रक्तपुष्पाक्षतधूपादिनैवेद्यैः प्रपूज्य तां ।
भावयन् चेतसा देवीं त्रिनेत्रां चन्द्रशेखरां ।
बालार्ककिरणप्रख्यां सिन्दूरारुणविग्रहां ॥
पाशञ्च दक्षिणे पाणौ जपमालाञ्च वामके ।
मन्त्रस्यास्य प्रभावेण रम्भामपि तथोर्व्वशीं ॥
आकर्षयेन्न सन्देहः किं पुनर्मानवीमिह ॥ * ॥
भूर्जपत्रे समालिख्य कुङ्कुमालक्तवारिणा ॥
काश्मीरागुरुकस्तूरीरोचनामिलितेन च ।
अनामारक्तमिश्रेण कामबाह्नीमनुं लिखेत् ॥
ॐ क्रीं कमलाक्षि अमुकीमाकर्षाकर्षय ॐ फट्॥
इमं मन्त्रं जपेदादौ सहस्रैकं ततः पुनः ।
तद्भूर्जपत्रमादाय गुलिकां कारयेत् सुधीः ॥
तेनैव साध्यपादोत्थमृत्तिकापङ्कवेष्टिता ।
शोषिता तेजसा भानोर्वेष्टयेत् त्रिकटुकैः पुनः ॥
प्रतिमां स्त्रीनिभां कृत्वा क्षिपेत्तस्यास्तदोदरे ।
गुलिकां पातयेत् पात्रे प्रतिमां साध्यरूपिणीं ॥
तादृशाभिमुखो भूत्वा निर्जने निशि साधकः ।
ततस्तद्गतचित्तश्च तावत् कालं जपेन्मनुं ।
यावदायाति सन्त्रस्ता मदनालसविग्रहा ॥*॥
अथान्यत् कथयाम्यत्र नृपाकर्षणहेतवे ।
देवस्यापि नरस्यापि मोहिनीमन्त्रजापतः ॥
अथ मन्त्रं महेशान्यास्तारमादौ ततस्त्रपां ।
पञ्चशायकवीजञ्च दत्त्वाथ भुवनेश्वरीं ॥
मोहिनीति च नामान्ते फट्कारं पुनरालिखेत् ।
स्वाहान्तमन्त्रमुक्तञ्च मध्यवीजेन कारयेत् ॥
षडङ्गान् दीर्घयुक्ताद्यैश्चक्रेऽष्टदलके यजेत् ।
प्रथमं साध्यनामानि लेख्यानि च कर्णोदरे ॥
महारजनरक्तेन पूर्व्वमन्त्रपदं युतं ।
मोहिनीं पद्मकिञ्जल्के जृम्भिणीं स्तम्भिनीं तथा॥
वशङ्करीं कुलेशीञ्च ततो वै विश्ववासिनीं ।
आकर्षिणीं ततः क्लिन्नामर्च्चयेदष्टपत्रके ॥
गन्धपुष्पादिधूपाद्यैर्भक्तियुक्तेन चेतसा ।
लक्षजपेन सर्व्वेषां शीघ्रमाकर्षणं भवेत् ॥ * ॥
क्ली कालिकायै धीमहि
तन्नः कालि प्रचोदयात् ।
ॐ आकर्षिणी वज्रधारिणी
ॐ फट् स्वाहा अमुकीमाकर्षय ॥
प्रणवं पूर्व्वमुद्धृत्य उग्रसेनी ततः परं ।
नितम्बिनी वह्निजाया विद्या परमदुर्लभा ॥
सिन्दूरपुत्तलिं कृत्वा तस्या नाम हृदि विलिख्य पणमूल्येन ताम्बूलं समानीय आमशरावद्वये नैवेद्यं कृत्वा कृष्णाष्टोत्तरशततुलस्या मूलमन्त्र-पठिते पुत्तल्या हृदि नामस्थाने ताडिते सति सा समायाति"। इति श्रीकृष्णानन्दविद्यावागीश-कृतषट्कर्म्मदीपिका तन्त्रसारश्च ॥

आकर्षणी, स्त्री, (आकृष्यते अनया । आ+कृष्+ल्युट्+स्त्रियां ङीप् ।) फलपुष्पाद्याकर्षकयष्टिकाविशेषः । आँकुषी इति भाषा ॥

आकलनं, क्ली, (आ+कल्+ल्युट् ।) आकाङ्क्षा । परिसंख्या । बन्धनं । इति मेदिनी ॥ ("सेवामि सानुनयमाकलनाय यन्त्रा"। इति माघः ।)

आकल्पः, पु, (आ+कृप्+घञ् ।) वेशः । इत्यमरः ॥ कल्पनं । इति मेदिनी ॥ मण्डनं । रोगः । इति हेमचन्द्रः ॥ वेशार्थे यथा रघौ,—
("अस्पृष्टकविधिसर्व्वाङ्गीनमाकल्पजातं
विलसितपदमाद्यं यौवनं सा प्रपेदे"।
"स्तोकाप्याकल्परचना विच्छित्तिः कान्तिपोषकृत्"। इति साहित्यदर्पणे तृतीयपरिच्छेदे ।
कल्पपर्य्यन्ते च, यथा—"आकल्पं नरकं भुङ्क्ते"। इति स्मृतिः ।)

आकल्पकः, पु, (आकल्प+कन् ।) तमः । मोहः । ग्रन्थिः । उत्कण्ठा । हर्षः । इति मेदिनी ॥

आकाषः, पु, (आकष्यते यत्र, आ+कष्+अच् ।) प्रस्तरविशेषः । इति शब्दरत्नावली ॥ कष्टिपातर इति भाषा ।

आकस्मिकः, त्रि, (अकस्मात् भवः । अकस्मात्+ठञ् ।) अकस्मादुद्भवः । हठाज्जातः ॥ ("आकस्मिकप्रत्यवभासा च देवी वाचमनुष्टुभेन छन्दसा परिणतामभ्युदैरयत्"। इति उत्तररामचरितम् ॥)

आकाङ्क्षा, स्त्री, (आङ्+काङ्क्ष+अच्+टाप् ।) इच्छा । अभिलाषः । इत्यमरः ॥ (रमणीयवस्तुस्पृहा । यदुक्तं साहित्यदर्पणे ।
"आकाङ्क्षा रमणीयत्वात् वस्तुनो या स्पृहा तु सा"।
अपेक्षा । जिज्ञासा । अनुसन्धानं । यथा पदाङ्कदूते,—
"नाकाङ्क्षा किं भवति विपुलश्रीमतोऽर्थान्तरेषु"।)
न्यायमते । यत्पदं ऋते यत्पदान्वयबोधो न भवति तत्पदे तत्पदवत्ता । प्रतीतिपर्य्यवसानविरहः । इत्यालङ्कारिकाः ॥

आकायः, पु, (आङ्+चि+घञ् ।) निवासः । इति वोपदेवः ॥

आकारः, पु, (आ+कृ+घञ् ।) इङ्गितं । अभिप्रायानुरूपचेष्टाविष्करणं । सङ्केत ठार इत्यादि भाषा । आकृतिः । मूर्त्तिः । इत्यमरः ॥
("तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च"।
इति रघौ १ । २० ।
"आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च"।
इति हितोपदेशे सुहृद्भेदः । मूर्त्तिः । "आकारसदृशप्रज्ञः"। इति रघौ १ । १५ ।)

आकारगुप्तिः, स्त्री, (आकारस्य गुप्तिः ।) रत्यादिसूचको मुखरागादिराकारः । आकारोऽङ्गवैकृतमिति वोपालितः ॥ गुप्तिर्गोपनं । आकारस्य भयलज्जादिना गुप्तिराकारगुप्तिः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥ तत्पर्य्यायः । अवहित्था २ । इत्यमरः ॥ अङ्गविकृतस्य रोमाञ्चादेराच्छादनात् अवहि स्थितिरवहित्था । इति सारसुन्दरी ॥
("भयगौरवलज्जादेर्हर्षाद्याकारगुप्तिरवहित्था"।
इति साहित्यदर्पणम् ।)

आकारगोपनं, क्ली, (आकारस्य गोपनं ।) आकारगुप्तिः । रत्यादिसूचकमुखरागादिगोपनं । इति हेमचन्द्रः ॥

आकारणा, स्त्री, स्त्री, (आङ्+कृ+णिच्+ल्युट् ।) आह्वानं । इत्यमरः ॥ डाकन इति भाषा ।
("तैश्च मणिभद्राकारणाय कश्चित् प्रेषितः"।
इति पञ्चतन्त्रम् ।)

आकालिकः, त्रि, (समानकालौ आद्यन्तौ यस्य । "आकालिकडाद्यन्तवचने" इति समानकालस्याकालादेशः । इकट् प्रत्ययश्च निपातनात् । यद्वा अकाले भवम् । अकाल+ठञ् ।) क्षणध्वंसि । इति धरणिः ॥ समानकालीनजन्मविनाशशाली । इति सङ्क्षिप्तसारः ॥ अकालसम्भवः । आरम्भकालात् तत्सजातीयकालस्थायि । किमित्त कालमारभ्य परेद्युर्यावत्कालं स एव कालस्तावदकाल-

स्तन भव। इति सिद्धान्तः।(यथा मनौ ४।१०५
("नित्यानध्याय एव स्यात् ग्रामेषु नगरेषु च"।
"तपसि स्थितानुवर्तिकत्वाता
आकालिकी वीक्ष्य मधुप्रवृत्तिम्"।
इति कुमारसम्भवे ३। ३४।)

आकालिकप्रलय, पु, (आकालिक प्रलय।) प्रलय विशेषः। स्वायम्भुवमन्वन्तरे कपिलशापेन अकाले जगत्प्लावनम्। तद्विवरणं यथा—

श्रीमार्कण्डेय उवाच।
"आकालिकोऽयं प्रलयो यतो भगवता कृतः।
तत् शृण्वन्तु महाभागा नारायण लोकसंश्रयः।
यथा वा मत्स्यरूपेण वेदानानाय शार्ङ्गिणा।
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम्"।

श्रीकपिल उवाच।
"स्वायम्भुव मनुश्रेष्ठ सद्धर्म्मज्ञ महामते।
ममैकमीप्सितार्थं त्वं देहि प्रार्थयतोऽधुना।
जगत् सर्व्वं तवेदं त्वया च परिपालितं।
त्वया सर्व्वं जगत् सृष्टं त्वमेव जगतां पतिः।
तस्मै देहि इदं स्थानं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्
पुण्यं पापहरं रम्यं ब्रह्मप्रभवमुत्तमम्।
अहं हि सर्व्वभूतानां भूत्वा प्रत्यक्षदर्शिवान्।
उद्धरिष्ये जगज्जातान् निर्माय ज्ञानदीपिकाम्।
अज्ञानसागरे मग्नमधुना सकलं जगत्।
ज्ञानदीपं प्रदायाहं तारयिष्ये जगत्पते"।

श्रीमनुरुवाच।
"यदि त्वयाखिलजगद्धितार्थं ज्ञानदीपिका।
चिकीर्षिता तप कार्य्यं किं स्थानार्थनया तव।
देवागाराणि तीर्थानि क्षेत्राणि सरितस्तथा।
बहूनि पुण्यभाञ्जत्र तिष्ठन्ति कपिल क्षितौ।
तेषामेकतमं त्वमिदानीं कुरुषे तव।
स्थाने अस्मिन् तप सिद्धौ न भविष्यति तत् किं"।

कपिल उवाच।
"त्वयि विश्रम्भमाधाय तपसः सिद्धयेऽचिरात्।
स्थानं मया प्रार्थितं ते त्वं मां क्षिपसि वैधुमि।
अवाच्यन्ते वचो मेऽद्य प्रार्थनायां विकत्थन।
यत्त्वं वदसि तस्माच्च फलमेतदवाप्नुहि।
इदं त्रिभुवनं सर्व्वं सदेवासुरमानुषं।
हतप्रहतविध्वस्तमचिरेण भविष्यति।
न चिरात् द्रक्ष्यसि मनो जलपूर्णं जगत्त्रयं।
हतप्रहतविध्वस्तं तव गर्व्वविघातनं।
एवमुक्त्वा मुनीन्द्रोऽसौ कपिलस्तपसां निधिः।
अन्तर्दधे जगामापि तदा ब्रह्मसदो मुनिः।
कपिलस्य वचः श्रुत्वा विषण्णवदनो मनुः।
भावीति प्रतिपद्याशु मनुर्नोवाच किञ्चन।
विशालां बदरीं यातो गङ्गाद्वारान्तिकं मनुः।
प्रविश्य तपसे यत्नमकरोल्लोकभावनः।
आराधयामास हरिं जगत्कारणकारणं।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वभाविने।
इति जप्यं प्रजपतो मनोः स्वायम्भुवस्य तु।
प्रससाद जगन्नाथ केशवो न चिरादथ।
ततः क्षुद्रझषो भूत्वा दूर्व्वादलसमप्रभः।
कर्परकलिकादुग्धतुल्यनेत्रयुगोज्ज्वलः।
तपनाम्भः महाभाग मनुं स्वायम्भुवं मुनिं।
आससाद ततः क्षुद्रमत्स्यरूपी जनार्द्दनः।
उवाच च महाभागं मनुं स्वायम्भुवं तदा।
तपोनिधे महाभाग भीतं मां त्रातुमर्हसि।
नित्यं तुदन्ति मां मीना ग्रसितुं मत्स्यकाः प्रति।
अत्र प्रतिदिनं सर्वे मीना दृष्ट्वा ग्रसन्ति मां।
स्वायम्भुवी महाभागं भगवान् इत्थं मुनिं।
प्राहोऽयं मत्स्यरूपी मनि मां परिपालय।
इति तस्य वचः श्रुत्वा मनुः स्वायम्भुवस्तदा।
अलिञ्जरे तोयपूर्णे स्थापयित्वाऽभ्यरक्षत।
स ववृधे तस्मिन् मत्स्यो वर्द्धमानो दिने दिने।
मानसरोवरं प्राप्तः देहोऽस्यातिविवर्द्धत।
महाघटप्रमाणं तु पश्चात् स महात्मना।
मत्स्यरूपमपि कुम्भं वर्द्धमानमसौ।
स च सरित्प्रमाणो मत्स्योऽपि देहेन
सञ्चरितुं मत्स्यो क्षोभयन् तीर्थं देहे"।
इति कालिकापुराणे ३१ अध्यायः।

श्रीमार्कण्डेय उवाच।
"ततस्तदा दीर्घतरं दृष्ट्वा मत्स्यं मनुः स्वयं।
गृहीत्वा पाणिना तं तु कासारे सरसीं ददौ।
ततस्तत्र विपुलं दृष्ट्वा सागरान्तिकमे।
सरसोऽन्तर्विस्तीर्णे सार्द्धयोजनमानके।
नानामीनगणोपेते शीतामलजलोत्करे।
सन्तानार्थं मत्स्यं निधाय मनुस्तदा।
पालयामास पुत्रवत् स्वयमेव स्वयं मनुः।
सोऽचिरेण कालेन पीनो वैशाविदोऽभवत्।
स समन्तात् सरति हृदयादे दिग्भोगमा।
स एकदा महामत्स्यः पूर्व्वापरतटद्वये।
शिरःपुच्छे निधायाशु गुरुदेहः समुत्थितः।
स्वायम्भुव महाभाग पुच्छोऽस्मि पाहि मामिति।
तं तथा स मनुर्दृष्ट्वा क्लोभन्ते मीनपुङ्गवं।
आससाद तदा मत्स्यं नयाहं च करेण तं।
न शक्नोम्यहमुद्धर्त्तुं पृथुत्वेनाकल्पमूर्त्ति।
इति सञ्चिन्तयन्नेव प्रोद्धारं करेण तं।
भगवानपि विश्वात्मा मत्स्यरूपी जनार्द्दनः।
स्वायम्भुवकरं प्राप्य लघिमानमुपाश्रयत्।
ततः कराभ्यामुद्धृत्य स्कन्धे कृत्वाथ सं मनुः।
निनाय सागरं तत्र तोये च निदधे ततः।
यथेच्छमत्र वर्द्धस्व न कोऽपि त्वां हनिष्यति।
अचिरेणैव सम्पूर्णदेहस्त्वं समवाप्नुहि।
इत्युक्ता स महाभागः सर्व्वप्राणभृतांवरः।
अतुलं चिन्तयंस्तस्य विस्मयं परमं गतः।
मत्स्योऽपि न चिरादेव पूर्णकायस्तदा महान्।
सर्व्वतः पूरयामास देहभोगेन सागरं।
तं पूर्णकायमालोक्य यतीतायामं समुच्छ्रितं।
शृङ्गैः शिराभीरचितं मानसाचलसन्निभं।
रुन्धन्तं सागरं सर्व्वं देहभोगाचलीकृतं।
स्वायम्भुवो मनुर्धीमान् मेने मत्स्यं न तं तदा।
ततः प्रप्रच्छ तं स्वामी मत्स्यं स्वायम्भुवो मनुः।
विचिन्त्य लघिमानञ्च मत्स्यमूर्त्तिं तदाद्भुतां"।

श्रीमनुरुवाच।
"न त्वां मत्स्यमहं मन्ये कस्त्वं मे वद सत्तम।
महत्त्वं लघिमानञ्च विभ्रायत् प्रभवन्।
के भवान् गायत्वा विष्णुः शम्भुर्वा मीनरूपधृक्।
न वेद्मि त्वां महाभाग सर्व्वं वद महामते"।

श्रीमत्स्य उवाच।
"आराधितोऽहं त्वया नित्यं यो हरिः स सनातनः।
तवेष्टकामसिद्ध्यर्थं प्रादुर्भूत समादितः।
कामसिद्ध्यर्थमिदं दैत्य मया रामेण मूर्त्तिना।
तत्रविभोऽहं तां मूर्त्तिमिमां विद्धि मनो मम"।

श्रीमार्कण्डेय उवाच।
"इति तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोरमिततेजसः।
ज्ञात्वा प्रणतवान् विष्णुं मनुस्तुष्टाव केशव"।

श्रीमनुरुवाच।
"नमस्ते मत्स्यरूपमास्थाय पते हरे।
मायया ब्रह्मलीलानुयन्त्ररूपाय च।
जगत्प्रागत सर्व्वाद्य जगद्धाम हरे पर।
सुरेश परमेशान नारायण सुरेश्वर"।
इत्यादिस्तोत्रम्।

श्रीमार्कण्डेय उवाच।
"स्वायम्भुवेन मनुना संस्तुतो मत्स्यरूपधृक्।
नारायणस्तदा प्राह मेघगम्भीरनिस्वनः"।

श्रीभगवानुवाच।
"तुष्टोऽस्मि तपसा तेऽद्य भक्त्या चापि स्तुतो मुहुः।
यथार्थं तपसा त्वं वरं वरय सुव्रत।
इष्टार्थं सम्प्रदास्यामि तुभ्यं नाथ विचारणा।
वरयालोचितान्कामान् लोकानां वा हितं यत्"।

मनुरुवाच।
"यदि देयो वरो मेऽद्य लोकानां यो हितो भवेत्।
तस्मै देहि वरं विष्णो यं वक्ष्यामि प्रसन्न मे।
शशाप कपिलः पूर्व्वं मदर्थे भुवनत्रयं।
हतप्रहतविध्वस्तं सकलं ते भविष्यति।
येनेयमुद्धृता पृथ्वी येनेयं परिपालिता।
संहरिष्यति यस्त्वेमां तेऽधुना प्लावयन्त्विनां।
ततोऽहं दीनहृदयस्त्वामेव शरणं गतः।
न यथेदं त्रिभुवनं जलाप्लुतं भविष्यति।
हतप्रहतविध्वस्तं तथा त्वं देहि मे वरं"।

श्रीभगवानुवाच।
"न मत्तः कपिलो भिन्नस्तथा न कपिलादहं।
यदुक्तं मुनिना तेन मयोक्तं विहितं मनो।
तस्मात्तदुदितं तेन तत् सत्यं नान्यथा भवेत्।
करिष्ये तत्र साहाय्यं स्वायम्भुव निबोध तत्।
हतप्रहतविध्वस्ते लोयमये जगत्त्रये।
न चिरादेव तत्तोयं शोषयिष्यामि वै मनो।
यावज्जलप्लवस्तावत् यथा कार्य्यं त्वया मनो।
तस्मै निगदितं तथ्यं शृणुष्वावहितोऽधुना।
सर्व्वबीजकाष्ठैर्नेका नौका विधीयतां।
तामहं दर्शयिष्यामि यथा नो भिद्यते जले।
दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता।
धारिणी सर्व्वबीजानां भुवनत्रयवर्द्धिनी।
सर्व्ववाजिकटच्छायां भूरिवल्कलतन्तुभिः।
नवयोजनदीर्घान्तु श्यामत्रयसविस्तृतां।
कुरु त्वं मनो तूर्णं रक्षतीमीरिकां वटीं।
जगद्धात्री जगन्माया लोकमाता जगन्मयी।

दृढयिष्यति ता रज्जुं न त्रुट्यति यथा तथा ।
सर्व्वाणि वीजान्यादाय सवेदान् सप्त वै ऋषीन् ॥
तस्यां नावि निसन्नस्त्वं वर्त्तमाने जलप्लवे ।
दक्षेण सह संगम्य स्मरिष्यसि मनो मम ॥
स्मृतोऽहं तूर्णमायास्ये भवतो निकटं प्रति ।
श्यामलेनाथ शृङ्गेण त्वं मां ज्ञास्यसि वै तदा ॥
यावत् प्रहतविध्वस्तं हतं स्याद्भुवनत्रयं ।
तावत् पृष्ठेन तां नावं वोढाहं नात्र संशयः ॥
जलप्लवे तु संपूर्णे शृङ्गे मम च तां हरिं ।
त्वं तया वटिकया तूर्णं सदा नेष्यसि वै दृढं ॥
बद्धायां नावि मे शृङ्गे दैवमानेन वत्सरान् ।
सहस्रं प्रेरयिष्यामि तां नावं शोषयन् जलं ॥
ततः शुष्केषु तोयेषु प्रोन्नते शिखरे गिरेः ।
हिमाचलस्य बद्ध्वा तां तस्मिन्नावमहं मनो ॥
त्वां वै गोपयिता नित्यं तावत्तु शोषये जलं ।
चिन्तितोऽहं त्वया यास्ये यदाहं निकटं तव ॥
शृङ्गेण श्यामलेनैव त्वं मां ज्ञास्यसि पुष्करे ।
पुनः सृष्टिं ततः कृत्वा मत्प्रसादान्महामते ॥
त्रैलोक्यदुर्लभामृद्धिमवाप्स्यसि सनातनीं ।
अहमाराधितो येन जप्येन भवता मनो ॥
सर्व्वसिद्धिर्भवेत्तस्य यस्तोषयति तेन मां" ।
श्रीमार्कण्डेय उवाच ।
"इति दत्त्वा वरं तस्मै मत्स्यस्तेन नमस्कृतः ।
अन्तर्दधे जगन्नाथो लोकानुग्रहकारकः ॥
स्वायम्भुवोऽपि भगवानन्तर्द्धानं गते हरौ ।
यथोक्तं हरिणा पूर्व्वं नावं रज्जुं तथाकरोत् ॥
सर्व्वयाज्ञियवृक्षौघान् छित्त्वा स्वायम्भुवस्तदा ।
उद्वेन कारयामास नावं दृढतरां ततः ॥
तेषां वल्कसमुद्भूतसूत्रसंवेष्टैर्वटीरिकां ।
पूर्व्वोक्तेन प्रमाणेन कारयामास वै मनुः ॥
ततः कालेन महता वृत्तं युद्धं महाद्भुतं ।
विष्णोर्यज्ञवराहस्य सरभस्य हरस्य च ॥
ततो जलप्लवे भूते विध्वस्ते भुवनत्रये ।
तया रज्ज्वा तरिं बद्ध्वा वीजान्यादाय सर्व्वशः ॥
वेदान्ऋषीन् तथा सप्त दक्षं चादाय वै मनुः ।
तस्यां नावि समाधाय तोयमग्ने चराचरे ॥
स्वायम्भुवस्तदा मत्स्यं हरिं सस्मार वै ततः ।
ततो जलानामुपरि सशृङ्गः इव पर्व्वतः ॥
उद्दीप्तस्वैकशृङ्गेण विष्णुर्मत्स्यस्वरूपधृक् ।
आगतस्तत्र न चिरादत्रास्ते स मनुर्हरिं ॥
तरिमारुह्य विपुले तोयराशौ भयङ्करे ।
यावच्चलाचलं तोयं तावत् पृष्ठे तरिं न्यधात् ॥
जले प्रकृतिमापन्ने शृङ्गे बद्ध्वा तरिं तदा ।
तां नावं चोदयामास सहस्रं दैववत्सरान् ॥
स्वयं नावमवष्टभ्य दधार परमेश्वरः ।
योगनिद्रा जगद्धात्री समासीदद्वटीरिकां ॥
ततः शनैः शनैस्तोये शोषं गच्छति वै चिरात् ।
पश्चिमं हिमवत्शृङ्गमुन्नतं तोयमध्यतः ॥
द्विसाहस्रैर्योजनानामुच्छ्रितस्य हिमप्रभोः ।
पञ्चाशत्तु सहस्राणि शृङ्गं तत्तस्य चोच्छ्रितं ॥
तस्मिन् शृङ्गे ततो नावं बद्ध्वा मत्स्यात्मधृक् हरिः ।
जगाम शोषणायाशु जलानां जगतां पतिः ॥

एवं हि मत्स्यरूपेण वेदास्त्राताश्च शार्ङ्गिणा ।
कपिलस्य तु शापेन कृतोऽथाकालिको लयः ॥
आकालिकोऽयं प्रलयो यतो भगवता कृतः ।
इति वः कथितं सर्व्वं यथावत् द्विजसत्तमाः" ॥
इति कालिकापुराणे ३२ अध्यायः ॥

आकालिकी, स्त्री, (अकाल + ठञ् + ङीप् ।) विद्युत् । इति हेमचन्द्रः ॥

आकाश, पु, क्ली, (आ समन्तात् काशन्ते दीप्यन्ते सूर्य्यादयो यत्र । आ + काश् + घञ् ।) पञ्चभूतान्तर्गतभूतविशेषः । स तु शून्यः । तत्पर्य्यायः । द्यो २ द्यौ ३ अभ्रं ४ अम्भ ५ व्योम ६ पुष्करं ७ अम्बरं ८ नभः ९ अन्तरीक्षं १० अन्तरिक्षं ११ गगनं १२ अनन्तं १३ सुरवर्त्म १४ खं १५ वियत् १६ विष्णुपदं १७ विहायः १८ । इत्यमरः ॥ नाकः १९ अनङ्गः २० नभसं २१ मेघवेश्म २२ महाविलं २३ । इति जटाधरः ॥ मरुद्वर्त्म २४ मेघवर्त्म २५ त्रिपिष्टपं २६ । इति शब्दरत्नावली ॥ न्यायमते अस्य सामन्यगुणाः सङ्ख्यादिपञ्च । विशेषगुणः शब्दः । स तु नित्यः अशरीरी च । अस्येन्द्रियं कर्णः । स त्वेकः किन्तु उपाधिभेदेन नाना भवति ।
("शब्दः श्रोत्रेन्द्रियञ्चापि छिद्राणि च विविक्तता ।
वियतः कथिता एते गुणागुणविचारिभिः" ॥
तथा च भाषापरिच्छेदे ।
"आकाशस्य तु विज्ञेयः शब्दो वैशेषिको गुणः ।
इन्द्रियं तु भवेत् श्रोत्रमेकः सन्नप्युपाधितः" ॥)
वेदान्तमते स जन्यः ॥

आकाशगङ्गा, स्त्री, (आकाशपथवाहिनी गङ्गा ।) स्वर्गगङ्गा । यथा, शिवरात्रिव्रतकथायां,—
"आकाशगङ्गासलिलतरङ्गगणनादिते ।
त्रैगुण्यलसितैश्चामरवृन्दैरुपवीजिते" ॥
("नदत्याकाशगङ्गायाः स्रोतस्युद्दामदिग्गजे" ।
इति रघौ १ । ७८ ।
"उभौ यदि व्योम्नि पृथक् प्रवाहा-
वाकाशगङ्गापयसः पतेताम्" । इति माघः ।)

आकाशजननी [न्] पु, (आकाशमार्गस्य जननी ।) प्रगण्डीमध्यस्थितजनानां वाह्यार्थदर्शनार्थानि सूक्ष्मच्छिद्राणि । यद्द्वारा आग्नेयास्त्रगुलिकाः प्रक्षिप्यन्ते । इति राजधर्म्मः ॥ (आकाशजननी स्त्री आकाशपथस्य जननीव पोषिका । इति केचित् ।)

आकाशदीप, पु, (आकाशे दीयमानो दीपः ।) कार्त्तिकमासे भगवदुद्देशेन नभसि दत्तप्रदीपः । यथा । कार्त्तिके आकाशदीप उक्तो निर्णयामृते पुष्करपुराणे ।
"तुलायां तिलतैलेन सायंकाले समागते ।
आकाशदीपं यो दद्यात् मासमेकं हरिं प्रति ॥
महतीं श्रियमाप्नोति रूपसौभाग्यसम्पदम्" । इति तद्विधिश्च हेमाद्रौ आदिपुराणे ।
"दिवाकरेऽस्ताचलमौलिभूते
गृहाददूरे पुरुषप्रमाणं ।
यूपाकृति यज्ञियवृक्षदारु-
मारोप्य भूमावथ तस्य मूर्द्धि ॥
यवाङ्कुलच्छिद्रयुतास्तु मध्ये
द्विहस्तदीर्घा अथ पट्टिकास्तु ।
कृत्वा चतस्रोऽष्टदलाकृतीस्तु
याभिर्भवेदष्टदिशानुसारी ॥
तत्कर्णिकायान्तु महाप्रकाशो
दीपः प्रदेयो दलगास्तथाष्टौ ।
निवेद्य धर्म्माय हराय भूम्यै
दामोदरायाप्यथ धर्म्मराजे ॥
प्रजापतिभ्यस्त्वथ सत्पृष्ठभ्यः
प्रेतेभ्य एवाथ तमःस्थितेभ्यः" । इति ।
अपरार्के त्वन्यो मन्त्रो यथा,—
"दामोदराय नभसि तुलायां लोलया सह ।
प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे" ॥
इति निर्णयसिन्धौ २ परिच्छेदे कार्त्तिकमाहात्म्यं ॥

आकाशप्रदीप, पु, (आकाशे दीयमानः प्रदीपः ।) तुलायां दीयमानलक्ष्मीदामोदरसम्प्रदानाकाशदीपः । तथाच ब्रह्माण्डपुराणे ।
"तुलायां तिलतैलेन सायं सन्ध्यासमागमे ।
आकाशदीपं यो दद्यात् मासमेकं निरन्तरं ।
सश्रीकाय श्रीपतये स श्रीमान् भुवि जायते ॥
ॐ दामोदराय नभसि तुलायां लोलया सह ।
प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे ॥
इति मन्त्रेण यो दद्यात् प्रदीपं सर्पिरादिना ।
आकाशे मण्डपे वापि स चाक्षयफलं लभेत् ।
विष्णुवेश्मनि यो दद्यात् कार्त्तिके मासि दीपकं ॥
अग्निष्टोमसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः" ॥

आकाशमांसी, स्त्री, (आकाशजाता मांसी ।) सूक्ष्मजटामांसी । केदारे उत्पत्तिरस्याः । तत्पर्य्यायः । निरालम्बा २ खसम्भवा ३ शेवाली ४ सूक्ष्मपत्री ५ गौरी ६ पर्व्वतवासिनी ७ अभ्रमांसी ८ । अस्या गुणाः । हिमत्वं । शोषव्रणनाडीरोगनाशित्वं । लूतागर्द्दभकज्वालाहारित्वं । वर्णकारित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥

आकाशमूली, स्त्री, (आकाशे भूमिरहितस्थाने मूलमस्याः । ङीप् ।) कुम्भिका । इति हारावली ॥ पाना इति ख्याता । (कुम्भिकाशब्देऽस्या गुणा ज्ञातव्याः ।)

आकाशरक्षी [न्] पु, (आकाशे उच्चस्थाने स्थितः सन् रक्षतियः । आकाश + रक्ष + णिन् ।) प्रगण्डीस्थितप्रणिधिः । दुर्गवहिः प्राचीरोपरिस्थितचरः । इति राजधर्म्मः ॥

आकाशवल्ली, स्त्री, (आकाशस्य वल्लीव । अत्युच्चशिखत्वात् ।) लताविशेषः । आकाशवेल अमरवेल इति ख्याता । तत्पर्य्यायः । खवल्ली २ दुस्पर्शा ३ व्योमवल्लिका ४ । अस्या गुणाः । मधुरत्वं । कटुत्वं । पित्तनाशित्वं । शुक्रवर्द्धकत्वं । रसायनत्वं । वलकारित्वं । दिव्यौषधिपरत्वं । इति राजनिर्घण्टः ॥
"आकाशवल्ली तु बुधैः कथितामरवल्लरी ।
खवल्ली ग्राहिणी तिक्ता पिच्छिलाक्ष्यामयापहा ॥
तुवरामिकरी हृद्या पित्तश्लेष्मामनाशिनी" ।
इति भावप्रकाशः ॥

आकाशवाणी, स्त्री, (आकाशादुद्भवा वाणी।) अशरीरिणी वाक्। देववाणी। इति पुराण॥

आकाशसलिलं, क्ली, (आकाशात्पतित सलिल जल।) दिव्योदक। इति राजनिर्घण्ट॥

आकिञ्चन, क्ली, (अकिञ्चनस्य दरिद्रस्य भाव। अकिञ्चन + अण्।) अकिञ्चनता॥

आकीर्ण, त्रि, (आङ् + कॄ श विक्षेपे + क्त।) व्याप्त। तत्पर्य्याय। सङ्कीर्ण २ सङ्कुल ३। इत्यमर। समाकीर्ण ४। इति शब्दरत्नावली॥ (यथा, रघुवंशे। प्रथमसर्गे ५० श्लोक।
"आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभि" ॥)
जलादिभिर्निरवकाश। इति भरत॥

आकुञ्चन, त्रि, (आङ् + कुचि + ल्युट्।) न्यायमते पञ्चप्रकारकर्म्मान्तर्गतकर्म्मविशेष। सङ्कोच॥ (प्रसारितस्य सञ्चितत्वसम्पादन। नमनं। वक्रता सम्पादन। यथा। भाषापरिच्छेदे।
"उत्क्षेपण ततोऽवक्षेपणमाकुञ्चन तथा।
प्रसारणञ्च गमन कर्म्माण्येतानि पञ्च च" ॥)

आकुल, त्रि, (आङ् + कुल + क।) व्याकुल। तत्पर्य्याय। व्यस्त २ अप्रगुण ३। इत्यमरः॥ (यथा शाकुन्तले। 'विभवगुरुभि कृत्यैस्तस्य प्रतिच्छायामाकुला" ॥)

आकूत, क्ली, (आङ् + कूङ् + क्त) अभिप्राय) आशय। इति हेमचन्द्रः॥ (तात्पर्य्य। इच्छा। यथा साहित्यदर्पणे। २य परिच्छेदे।
"हसन्नेत्रार्पिताकूत लीलापद्म निमीलित"। इति
"हृदयनिहित भावाकूत वमद्भिरिवेक्षणै" ॥
इति शाकुन्तले।)

आकृति, स्त्री, (आक्रियते इय गौरय अस्य इति व्यज्यतेऽनया। आङ् + कृ + क्तिन्।) रूप। शरीर। जाति। इति मेदिनी॥ (यथा शाकुन्तले प्रथमाङ्के।
"किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीना" ॥
न्यायमते सामान्यं, जाति। "आकृतिर्जातिलिङ्गाख्या"। इति न्यायसूत्रम्। जातिलिङ्गमित्याख्या यस्या जातेर्गोत्वादेर्हि सास्नादिसंस्थानविशेषो लिङ्गम्। तस्य च परम्परया द्रव्यवृत्तित्वम्। जातिद्रव्यासमवायिकारणतावच्छेदिकालिङ्ग धर्म्मो यस्या सा इत्यर्थ इति कश्चित्॥)

आकृतिच्छत्रा, स्त्री, (आकृत्या छत्रमिव या।) घोषातकीवृक्ष। श्वेतघोषा इति भाषा। इति रत्नमाला॥ (घोषकशब्देऽस्या विशेषो ज्ञेय।)

आकृष्ट, त्रि, (आङ् + कृष् + कर्म्मणि + क्त।) कृताकर्षण। आकर्षित॥ (प्रलोभित, मुग्ध। यथा हितोपदेशे। "ततो लोभाकृष्टेन केनचित् पान्थेनालोचित" ॥ इति)

आकोकेर, पु, मकरराशि। इति ज्योतिस्तत्त्व॥

आक्रन्द, पु, (आङ् + क्रन्द + घञ् + अच् वा।) रोदन। यथा रामायणे।
("तासामाक्रन्दशब्देन सहसोद्भ्रान्तलोचन"।)
आह्वानं। मित्र। दारुणयुद्ध। भ्राता। इति मेदिनी॥ध्वनि (यथारामायणे।



"तत्रैव निशि नागानामाक्रन्द श्रूयते महान्" ॥)
नाथ। पार्ष्णिग्राहात् परो राजा। इति धरणि। (यथा मानवे ७। २०७।
"पार्ष्णिग्राहञ्च सम्प्रेक्ष्य तथाक्रन्दञ्च मण्डले"।)

आक्रमः, पु, (आङ् + क्रम् + अच्।) आक्रमण। तत्पर्य्याय। अधिक्रम २ क्रान्ति ३। इति हेमचन्द्र॥ (अधिरोह। व्याप्तिः। विक्षेपः। अधिगम। प्राप्ति। अधिकार॥)

आक्रमण, क्ली, (आङ + क्रम् + ल्युट्।) आक्रमकरण। ("य एकवर्त्ती नृपतिः देशाक्रमणमाचरति"। इति कुल्लूकभट्ट।) व्यापन॥ (अतिवर्त्तन। यथा रामायणे।
"कण्टकाक्रमणक्लान्ता वनमद्य गमिष्यति"।
आरोहणम्। यथा रामायणे।
"न देवलोकाक्रमण नामरत्वमह वृणे"।)

आक्रान्त, त्रि, (आङ् + क्रम + क्त) कृताक्रमण। अधिक्रान्त। आक्रमविशिष्ट। इति हलायुध॥ (अभिभूत। पराभूत। वशीभूत। यथा मनु —
"न पाषण्डिगणाक्रान्ते नोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभि"।)

आक्रीड, पु, (आङ् + क्रीड् + घञ्।) राजोपवन। राज्ञ साधारण वन। इत्यमर॥ (केलीकाननं, लीलास्थान। यथा, रामायणे।
"आक्रीडालङ्कृत स्फीत सुविभक्त सुसस्कृत"।
तथा च कुमारे। २। ६७।
"अक्रीडपर्व्वतास्तेन कल्पिता स्वेषु वेश्मसु"।
कुरुत्यामन्टपपुत्त्र स्वनामख्यात पौरव" ॥
यथा हरिवंशे।
"दुष्मन्तस्य तु दायाद कुरुत्याम प्रजेश्वर।
कुरुत्यामादयाक्रीडस्तत्सारस्तस्य चात्मजा" ॥)

आक्रोश, पु, (आङ् + क्रुश + घञ्।) क्रोधात्कर्त्तव्यनिश्चय। तत्पर्य्याय। आक्षेप २ अभिषङ्ग ३ शाप ४। इति हेमचन्द्रः॥ (यथा रामायणे।
"आक्रोश मम मातुश्च प्रमार्ज्जय पुरुषर्षभ" इति।)

आक्रोशन, क्ली, (आङ् + क्रुश् + ल्युट्।) अभिशाप। तत्पर्य्याय। अभिषङ्गः २ अभीषङ्ग ३। इत्यमर॥

आक्षपाटिक, पु, (अक्षपटे नियुक्त। अक्षपट + ठक्।) अक्षदर्शक। धर्म्माध्यक्षः। इति जटाधर॥

आक्षपाद, पु, (अक्षपाद + अण्) नैयायिकः। इति भूरिप्रयोग॥

आक्षारणा, स्त्री, क्ली, (आङ् + क्षर + णिच् + युच्।) मैथुन प्रति आक्रोशः। इत्यमरः॥ परस्त्रीनिमित्त पुस परपुरुषनिमित्त स्त्रिया वा दूषण। यथा "कृतागम्यागमनस्त्व स्थानान्तर गच्छ"। इति भरत॥ छेनालि अपवाद इति भाषा॥

आक्षारित, त्रि, (आङ + क्षर + णिच् + क्त।) परस्त्रिया परपुरुषे वा मैथुन प्रति मिथ्यादूषितं। अपवादग्रस्त। इत्यमर॥

आक्षिक, पुं, आच्छुकवृक्ष। इति रत्नमाला॥ आचेर गाछ इति भाषा। (द्यूतनिमित्त। पाश क्रीडाविषयक। अत्र अक्षैर्दीव्यति जितो वा इति अक्ष + ठञ्। यथा मानवे। ८।१५९॥
"प्रातिभाव्य वृथादानमाक्षिक सौरिकञ्च यत्।



दण्डशुल्कावशेषञ्च न पुत्त्रो दातुमर्हति" ॥
("पित्तश्लेष्मप्रशमनस्त्वक्ष वातिकमाक्षिकीफलं।
मधुराम्लविपाकञ्च वातपित्तहरञ्च तत्" ॥
इति चरक॥
"आक्षिक पाण्डुरोगघ्नो व्रण्य संग्राहको लघु
इति सुश्रुत॥)

आक्षीव, पु, (आङ् + क्षीव + अच्।) अक्षीव
शोभाञ्जनवृक्षः। इति रायमुकुटः॥

आक्षेपः, पुं, (आङ् + क्षिप् + घञ्।) अपवाद
इत्यमरः॥ भर्त्सन। (यथा—नीतिशतके। ४२।
'क्षान्त्येवाक्षेपरुक्षाक्षरमुखरमुखान्दुर्मुखान्दूषय
सन्त साश्चर्य्यचर्य्या जगति बहुमता कस्यनाभ्यर्थनीय
आकर्षण।
("नवपरिणयलज्जाभूषणां तत्र गौरीं।
वदनमपहरन्तीं तत्कृताक्षेपमीश" ॥
इति कुमारे। ७। ९५। विन्यासः। स्थापनं।
"कर्णार्पितो लोध्रकषायरूक्षे
गोरोचनाक्षेपनितान्तगौरे।
तस्या कपोले परभागलाभात्"।
इति कुमारे। ७। १७ अपहरण। यथा,–
"यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां"। १। १४ कुमारे
उपस्थिति। यथा साहित्यदर्पणम्।
"मुख्यार्थस्येतराक्षेपो वाक्यार्थेऽन्वयसिद्धये"।
इति।) काव्यालङ्कारः। इति मेदिनी॥ (अ
शृङ्गारप्रकरणे विशेषो द्रष्टव्यः।)

आक्षेपकः, पु, (आङ् + क्षिप् + ण्वुल्।) निन्दाक
व्याध। इति मेदिनी॥ वातरोगविशेषः। त
कारणलक्षणे। निदाने यथा—
"यदा तु धमनी सर्व्वा कुपितोऽभ्येति मारुत
तदा क्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः॥
मुहुर्मुहुस्तदाक्षपादाक्षेपक इति स्मृत"।

आक्षोट, पु, (अक्षोट एव स्वार्थे अण्।) अक्षोट
वृक्ष। पर्व्वतजपीलुवृक्षः। इति शब्दरत्नावली
("वातामाभिषुकाक्षोटमकूलकनिकोचका।
गुरूष्णस्निग्धमधुरा सोरुमाणा बलप्रदा।
वातघ्ना बृंहणा वृष्या कफपित्ताभिवर्द्धनाः" ॥
इति चरक॥)

आक्षोड, पु, आक्षोटवृक्ष। इत्यमरटीकाया
भरत॥

आक्षोदन, क्ली, (आङ् + क्षुद + ल्युट्।) मृगया
इत्यमर॥

आखण्डलः, पुं, (आङ् + खण्ड + कलच्।) इन्द्रः
इत्यमरः॥ (यथा कुमारसम्भवे। तृतीयसर्गे। ११
"आखण्डल काममिद बभाषे"।)

आखनिकः, पुं, (आङ् + खन + इकन्।) चौरः
उन्दुरु। शूकरः इति मेदिनी॥ (खनित्रादिक
खननसाधनद्रव्य। खननकर्त्ता।)

आखात, पु, क्ली, (आङ् + खन् + क्त।) अखात।
देवखात। इत्यमरटीकायां रायमुकुट॥

आखुः, पु, (आङ् + खन + कु।) मूषिकः। इत्यमरः॥
(यथा नीतिशतके। "कृत्वाखुविवरं स्वय निपतितो नक्त मुखे भोगिन"।) शूकरः। चौरः।

इति हेमचन्द्रः ॥ देवताडवृक्षः । इति रत्नमाला ॥ (आखुमांसगुणा यथा,—
("आखोर्मांसं सपदि बहुधा खण्डखण्डीकृतं यत्तैले पाच्यं द्रवति नितरां यावदेतन्न सम्यक् ।
तत्तैलाक्तं वसनमनिशं योनिभागे दधाना, हन्ति क्रीडाकरभगफलं नात्र सन्देहबुद्धिः" ॥
इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहः ॥)

आखुकर्णी, स्त्री (आखोः कर्णमिव पत्रमस्याः । आखुकर्ण+ङीप् ) लताविशेषः । मूषाकाणी इति भाषा । तत्पर्य्यायः । द्रवन्तिका २ द्रवन्ती ३ चित्रा ४ सुवर्णी ५ उन्दुरुकर्णी ६ न्यग्रोधी ७ मूषककर्णी ८ वृश्चिकर्णी ९ बहुकर्णिका १० माता ११ भूमिचरी १२ चण्डा १३ शम्बरी १४ बहुपादिका १५ प्रत्यक्श्रेणी १६ वृषा १७ पुत्त्रश्रेणी १८ अद्रिभूः १९ । अस्या गुणाः । कटुत्वं उष्णत्वं । कफपित्तहरत्वं । सारकत्वं । आनाहज्वरशूलनाशित्वं । परमपाचकत्वं । इति राजनिर्घण्टः ॥
"आकुपर्णी आकुकर्णी कर्णिका भूदरीभवा ।
आखुकर्णी कटुस्तिक्ता कषाया शीतला लघुः ॥
विपाके कटुका मूत्रकफामयकृमिप्रणुत्" ।
इति भावप्रकाशः ॥

आखुगः, पुं, (आखुना गच्छति यः । गणेशस्य मूषिकवाहनत्वात् तथात्वं ।) गणेशः । इति हेमचन्द्रः ॥

आखुपर्णिका, स्त्री, ( आखोः कर्णमिव पर्णमस्याः ।) लताविशेषः । इति रत्नमाला ॥ इन्दुरकाणी इति भाषा । (आखुपर्णीशब्दे आखुकर्णीशब्दे चास्या गुणादयो ज्ञातव्याः ।)

आखुपर्णी, स्त्री, ( आखोः कर्णमिव पर्णमस्य । ।) आखुपर्णिका । इति रत्नमाला ॥
"मुस्ताखुपर्णीफलदारुशिग्रु-
क्वाथः सकृष्णः कृमिशत्रुकल्कः ।
मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान्
कृमीन्निहन्यात् कृमिजांश्च रोगान्" ॥
इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहः ।
"आखुपर्णीकिशलयैः सुपिष्टैः पिष्टमिश्रितैः ।
पक्त्वा पूपलिकां खादेद्धान्याम्लञ्च पिबेदनु" ॥
इति वाभटः ॥ गुणादयोऽन्येऽस्या आखुकर्णीशब्दे ज्ञातव्याः ॥)

आखुपाषाणः, पुं, पाषाणभेदः । आखुपाषाणनामोऽयं लोहसङ्करकारकः । इति राजनिर्घण्टः ॥

आखुभुक् [ ज् ] पुं, ( आखून् भुङ्क्ते यः । आखु+भुज्+क्विप्) विडालः । इत्यमरः ॥

आखुरथ, पुं, (आखुः रथो वाहनं यस्य ।) गणेशः । इति हलायुधः ॥

आखुविषहा, स्त्री, ( आखोर्विषं हन्ति या ।) देवताडवृक्षः । इति जटाधरः ॥ देवदालीलता । इति राजनिर्घण्टः ॥

आखेटः, पुं, (आङ्+खिट्+घञ् ) मृगया । इत्यमरः ॥ शिकार इति भाषा । ("सुभगाखेटभूमित्वं" । कथासरित्सागरे १५ । १२० ।

आखेटकः, पुं, ( आङ्+खिट्+ण्वुल् । ) मृगया । इति शब्दरत्नावली ॥ यथा मत्स्यतन्त्रे ।
"आखेटकस्य धर्म्मेण विभवाः स्युर्वशे नृणाम् ।
नृपजाः प्रेरयत्येको हन्त्यन्योऽत्र मृगानिव" ॥)

आखेटशीर्षकं, क्ली, कुट्टिमभेदः । इति शब्दरत्नावली ॥ सुडङ्ग इति भाषा । (यदुक्तं ।
"कपिशीर्षं द्रुमशीर्षं तथाचाखेटशीर्षकं ।
इति कुट्टिमभेदाः स्युः शाब्दिकैः समुदाहृताः" ।)

आखेटिकः, पुं, ( आखेटे मृगयायां कुशलः । आखेट+ठक् ।) मृगयाकुशलकुक्कुरः । तत्पर्य्यायः । आखेटिकः २ विश्वकद्रुः ३ । इति हारावली ॥ (मृगयाकर्त्ता । त्रासजनकः । भयङ्करः । मृगयुः । व्याधः ।)

आखोटः, पुं, (आख+उट् ।) फलवृक्षविशेषः । आखरोट् इति भाषा । तत्पर्य्यायः । पार्व्वतीयः २ फलस्नेहः ३ गुडाशयः ४ कीरेष्टः ५ कन्दरालः ६ मधुमज्जा ७ वृहच्छदः । अस्य गुणाः । मधुरत्वं । बलकारित्वं । स्निग्धत्वं । उष्णत्वं । वातपित्तनाशित्वं । रक्तदोषप्रशमनत्वं । शीतलत्वं । कफकोपनत्वं । इति राजनिर्घण्टः ॥ (आक्षोडशब्दे आक्षोटशब्दे चास्य गुणादिकं ज्ञेयं ।)

आख्या, स्त्री, (आङ्+ख्या+अङ्+टाप् ) नाम । सञ्ज्ञा । इत्यमरः ॥ यथा कुमारसम्भवे १ । २६ ।
"उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा
पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम" ।

आख्यातं, त्रि, (आङ्+ख्या+क्त ) कथितं । उक्तं । इत्यमरः ॥ (प्रथितः, प्रसिद्धः, प्रकाशितः ।) व्याकरणोक्तधातूत्तरविहिततिङ्प्रत्ययादि ॥

आख्यानं, क्ली, (आङ्+ख्या+ल्युट् ) कथनं । यथा
"कथितं सर्व्वमाख्यानं ब्रह्मपुत्त्र यथागमं ।
देवी मङ्गलचण्डी या तदाख्यानं निशामय" ॥
इति ब्रह्मवैवर्त्ते प्रकृतिखण्डे ४१ अध्यायः ॥

आख्यायिका, स्त्री, ( आङ्+ख्या+ण्वुल् । टाप् ।) उपलब्धार्थकथा । इत्यमरः ॥ इतिहास उपन्यास इति ख्याता ॥ (आख्यायिकालक्षणं । यथा,—
"प्रबन्धकल्पनां स्तोकसत्यां प्राज्ञाः कथां विदुः ।
परम्पराश्रया या स्यात् सा मताख्यायिका क्वचित्"
इति च साहित्यदर्पणे ।
"आख्यायिका कथावत्स्यात् कवेर्वंशादिकीर्त्तनं"

आगः, [स्] क्ली, पापं । अपराधः । इत्यमरः ॥ (यथा शिशुपालवधे ३य सर्गे १०८ श्लोकः ।
"सहिष्ये शतमागांसि सूनोस्ते इति यत्त्वया" ।)

आगतं, त्रि, (आङ्+गम्+क्तः । ) आयातं । उपस्थितं ॥ (लब्धः । प्राप्तः यथा, हितोपदेशे ।
"आगतन्तु भयं वीक्ष्य प्रतिकुर्य्याद् यथोचितम्" ।)

आगन्तुः, त्रि, ( आङ्+गम्+तुन् । ) अतिथिः । इत्यमरः ॥ आगमनशीलः । अनियतः ॥
("अकस्मादागन्तुना सह विश्वासो न युक्तः" ।
इति हितोपदेशः । आकस्मिकरोगादि । यथा,
"आगन्त्वपि शरीरशल्यव्यतिरेकेण यावन्तोभावा दुःखमुत्पादयन्ति" । इति सुश्रुतः ।
निजागन्तुभेदेन रोगस्य कारणद्वैविध्यादागन्तुशब्दोऽयमामयस्यान्यतरकारणवाची ।
तद्यथा,—
"द्विविधा पुनः प्रकृतिरेषामागन्तुनिजविभागात्" । "मुखानि तु खल्वागन्तोर्नखदशनपतनाभिचाराभिशापाभिषङ्गवधबन्ध-पीडन-रज्जु दहन-मन्त्राशनि-भूतोपसर्गादीनि" ।
"आगन्तुर्हि व्यथापूर्व्वमुत्पन्नो जघन्यं
वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यमापादयति" ।
उदाहरणं । "तत्रागन्तवश्छेदनभेदनक्षणनभञ्जनपिच्छनोत्पेषणवेष्टनप्रहार-वध-बन्धन-व्यधन-पीडनादिभिर्व्वा । भल्लातक-पुष्पफलरसात्मगुप्तास्पर्शकृमिशूकाहितपत्त्रलतागुल्मसंस्पर्शनैर्वा स्वेदनपरिसर्पणावमूत्रणैर्व्वा विषिणाम् ॥ सविषाविषप्राणिदन्तविषाणनखनिपातनैर्व्वा ।
सागरविषवात-हिम-दहन-संस्पर्शनैर्व्वा शोथाः समुपजायन्ते" ॥ इति चरकेणोक्तं ॥

आगन्तुकं, त्रि, ( आगन्तु+स्वार्थे कन् ) आहार्य्यं । अनित्यस्थायि । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (अज्ञातकुलशीलादिर्नवागतः पुरुषः । यथा
"त्यक्ता च मूलभृत्यानपास्यायमागन्तुकः पुरस्कृतः" । इति हितोपदेशे ॥ अतिथिः । अज्ञातस्वामिकः पश्वादिः । यथा याज्ञवल्क्ये ॥
"महोक्षोत्सृष्टपशवः सूतिकागन्तुकादयः ।
पालो येषां तु ते मोच्या दैवराजपरिप्लुताः" ॥
आकस्मिकक्षतादिरोगः । यथा, सुश्रुते ।
"शलश्वल आशुगमने धातुस्तस्य शल्यमितिरूपं
तत् द्विविधं, शारीरमागन्तुकं च" । इति ॥)

आगमं, क्ली, (आङ्+गम+अच् ।) तन्त्रशास्त्रं । अस्यार्थः । यथा तन्त्रशास्त्रे ॥
"आगतं पञ्चवक्त्रात्तु गतञ्च गिरिजानने ।
मतञ्च वासुदेवस्य तस्मादागममुच्यते" ॥ इति
(एतल्लक्षणं यथा,—
"सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां तथार्च्चनं ।
साधनञ्चैव सर्व्वेषां पुरश्चरणमेव च ॥
षट्कर्म्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः ।
सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तं त्वागमं तद्विदुर्बुधाः" ॥ इति
यथा रघुवंशे । १० । २६ ।
"बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः" )

आगमः, पुं, (आ+गम्+अप् ।) शास्त्रमात्रं ।)
("आगमादिव तमोपहादितः
सम्भवन्ति मतयो भवच्छिदः" ।
इति किराते । ५ । २२ । ) आगमनं । इति मेदिनीकरहेमचन्द्रौ ॥ ( अर्थादीनामागमः । यथा, नीतिशतके ७३ श्लोके । "नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च" । इति । प्राप्तिः । उपार्जनम् ।
"नाधर्म्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान् प्रति वर्त्तते" ।
इति मनुः ॥)
साक्षिपत्रादिः । इति व्यवहारमातृका ॥ प्रकृतिप्रत्ययानुपघाति कार्य्यं । इति व्याकरणं ॥ (शास्त्रज्ञानं । श्रुतवत्ता । यथा,
"आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः" ।
इति रघुवंशे १म सर्गे १५ । यथा च रघौ १४ । ८० ।
"तामर्पयामास च शोकदीनां
तदागमप्रीतिषु तापसीषु" ॥)

आगमन, क्ली, आङ्पूर्ब्बगमधातोरनट्प्रत्ययान्तस्य रूपमिदं। आसा इति भाषा॥ (यथा रघुवंशे।
"रामस्त्वासन्नदेशत्वात् भरतागमनं पुनः"।
स्त्रीसङ्गम। यथा,—
"अन्यागमनपापस्य पापं पृच्छन् स निष्कृतिः"।
इति राजतरङ्गिणी।)

आगमावर्त्ता, स्त्री, वृश्चिकालीवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥

आगमित, त्रि, (आ+गम+णिच+क्त) अधीतं। पठितं। इति जटाधरः॥ (ज्ञापितं प्रापितं।)

आगाध, क्ली, (अगाध एव। स्वार्थे अण्।) अगाधं। अतिगभीरं इत्यमरटीकायां मथुरानाथः॥

आगान्तु, त्रि, आगन्तुकः। अतिथिः। इत्यमरटीकायां नीलकण्ठः॥ (अभ्यागतः। आगन्तुः।)

आगामी, [न्] त्रि, (आङ्+गम्+णिनि।) भविष्यत्कालः। इति राजनिर्घण्टः॥ (यथा, द्वितीयदेशे। "भो यजमान। आगामिन्याममावास्यायां यक्ष्यामि यज्ञम्"।)

आगार, क्ली, (आग+ऋ+अण्) गृहं। इत्यमरटीका॥ (यथा मनुः।
"आकीर्णं भिक्षुकैर्वान्यैरागारमुपसंव्रजेत्।)

आगु, [र्] स्त्री, आगूः। प्रतिज्ञा। इत्यमरटीकायां रमानाथः॥

आगू, स्त्री, (आ-गमे क्विपि गम क्वावित्यन्तलोपे ऊङगमादीनामित्यकारादेशः।) प्रतिज्ञा। इत्यमरः॥

आग्नीध्र, क्ली, (अग्निमिन्धे, इन्धीदीप्तौ, क्विप्, नलोपः। अग्नीध स्थानं, अग्नीध शरणं रन्। तत्रस्थितत्वात् ऋत्विगप्याग्नीध्र उच्यते) अग्नीधः। कोष्ठगृहः। इत्यमरटीकायां रमानाथः॥ आग्नेय्या अग्नीध्रमुपतिष्ठते इत्यत्र आग्नीध्रं मण्डपमित्याख्यानदर्शनात्। धनदागारं वर्गीयऋत्विजि च॥ (स्वायम्भुवस्य प्रथमस्य मनोर्दशपुत्रमध्ये परिगणितः स्वनामख्यातः पुत्रः। यथा हरिवंशे।
"आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः।
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यसवलः पुत्रः सवनश्च॥
मनोः स्वायम्भुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः"।
प्रियव्रतनृपपुत्रः स्वनामख्यातो मनुवंशीयो नृपतिः। यदुक्तं,—
"आग्नीध्रो नाम नृपतिर्जम्बुनाथो मनोः कुले।
तज्जातो नृपसङ्घाभिः कथ्यन्ते भरतादयः"॥
प्रियव्रतस्य राज्ञः दशपुत्रमध्येपरिगणितः स्वनामख्यातः पुत्रः। यदुक्तम् विष्णुपुराणे २।१॥
"प्रियव्रतसुता ख्यातास्तेषां नामानि मे शृणु॥
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान् द्युतिमांस्तथा।
मेधा मेधातिथिर्भव्यः सवनः पुत्र एव च॥
ज्योतिष्मान् दशमस्तेषां सत्यनामा सुतोऽभवत्"॥)

आग्नेय, क्ली, (अग्निर्देवता यस्य।) स्वर्णं। इति राजनिर्घण्टः॥ देशविशेषः। इति शब्दरत्नावली॥ रक्तं। इति हेमचन्द्रः॥ घृतं। इति पाणिनिः॥

आग्नेय, पु, (अग्निर्देवतास्य अण्। अग्निनोक्तं पुराणं यदाग्नेयं वेदसम्मितमित्युक्तलक्षणे महापुराणभेदे वह्निपुराणे च। अग्निदेवताके द्रव्यमात्रे च त्रि। अग्नियोषिति स्वाहायाम् अग्निदेवताकायामृचि च। आग्नेयव्रतं। यथा मनौ ९।३१०।
"दुष्टसामन्तहिंस्रस्य तदाग्नेयव्रतं स्मृतम्"।) अगस्त्यमुनि। इति पाणिनिः॥ अग्निसम्बन्धीये त्रि।

आग्नेयी, स्त्री, (आग्नेय+ङीप्।) अग्निकोणः॥ स्वाहा। इति जटाधरः॥

आग्रयण, क्ली, नवशस्येष्टिः। यथा,—
"शरद्वसन्तयोः केचिन्नवयज्ञं प्रचक्षते।
धान्यपाकवशादन्ये श्यामाको वनिनः स्मृतः"॥
इत्यनेन शरद्वसन्तविहितनवशस्येष्टेः।
"श्यामाकैर्व्रीहिभिश्चैव यवैरन्योन्यकालतः।
प्रशस्यं युज्यतेऽवश्यं न त्वाग्रयणात्ययः"॥
इति कालान्तरदर्शनात् श्राद्धेऽपि तथा इति। आग्रयणं नवशस्येष्टिः। इति मलमासतत्त्वं॥

आग्रह, पु, (आङ्+ग्रह+अप्) अनुग्रहः। आसक्तिः। आक्रमः। ग्रहणं। इति मेदिनी॥ (प्रसादः, अभिनिवेशः, आसङ्गः, यथा,
"इत्याग्रहात् वदन्तं तं स पिता तत्र नीतवान्"॥ इति कथासरित्सागरे २५।९९।)

आग्रहायण, पु, मार्गशीर्षमासः। इति रायमुकुटः॥

आग्रहायणिक, पु, (आग्रहायण्या मृगशिरसा युक्ता पौर्णमासी अस्मिन्। आग्रहायणी+ठक्) अग्रहायणमासः। मतभेदे वत्सरादयमासोऽयं। अस्मिन् मासे वृश्चिकराशिस्थो रविः। तत्पर्य्यायः। मार्गशीर्षः २ सहाः ३ मार्गः ४। इत्यमरः॥ आग्रहायणी ५ अलकः ६ सहः ७ मार्गशिरः ८। इति शब्दरत्नावली॥ अग्रहायणसम्बन्धिनि त्रि।

आग्रहायणी, स्त्री, (अग्रे हायनमस्याः। मतभेदे मार्गशीर्षमारभ्य वर्षप्रवृत्तेः। प्रज्ञाद्यण्। पूर्व्वपदादिति णत्वं। गौरादित्वात् ङीष्) मृगशिरोनक्षत्रं। इत्यमरः॥ अग्रहायणमासस्य पौर्णमासी॥

आघट्टक, पु, (आङ्+घट्ट+वुन्। ततः स्वार्थे कः) रक्तापामार्गः। इति राजनिर्घण्टः॥

आघाट, पु, (आङ्+घट्+घञ्) सीमा। इति हेमचन्द्रः॥ अपामार्गः। इति राजनिर्घण्टः॥

आघात, पु, (आङ्+हन्+घञ्) वधस्थानं। इति त्रिकाण्डशेषः॥ हननं। छेदनं। चोट कोप इत्यादि भाषा॥ (यथा साहित्यदर्पणे। "पादाघातादशोकः विकसति बकुलः योषितामास्यमद्यैः"॥)

आघातन, क्ली, (आङ्+हन्+स्वार्थे णिच्+ल्युट्) वधस्थानं। इति हारावली॥ हननं॥

आघार, पु, (आङ्+घृ+घञ्) घृतं। इति हेमचन्द्रः। ऋग्वेदिना स्रुवेण चतुराज्यं स्रुचि दत्त्वा प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीमग्नेर्वायव्यकोणादारभ्याग्नेयीं यावदविच्छिन्नघृतधारादानं। पुनः स्रुवेण चतुराज्यं स्रुचि दत्त्वा इन्द्रं ध्यात्वाग्नेर्नैरृतकोणादारभ्य ऐशानीं यावदविच्छिन्नघृतधारादानं। इति कालेसिः॥ यजुर्वेदिनान्तु स्रुवेण मन्त्रोच्चारणपूर्व्वकपूर्व्वोक्तक्रमेण घृतधारादानं। इति पशुपतिः॥

आघूर्णित, त्रि, (आङ्+घूर्ण+क्त) घूर्णितनेत्रादि। घूराण इति भाषा। यथा, देवीमाहात्म्ये॥
"आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे"।

आघ्राण, क्ली, (आङ्+घ्रा+ल्युट्) तृप्तिः। इति हेमचन्द्रः॥ गन्धग्रहणं। सोंका इति भाषा। "भेदश्चां गन्धाघ्राणतः।" इति कथासरित्सागरे १३।१९।)

आघ्रात, त्रि, (आङ्+घ्रा+क्त) शिङ्घितः। आक्रान्तः। इति मेदिनी॥ तृप्तः। इति हेमचन्द्रः॥ (घ्राणविषयीकृतः। यथा, नागानन्दे। "नीतं किं न निशा शशाङ्कधवला नाघ्रातमिन्दीवरं।)

आर्घ्य, क्ली, पीतवर्णदीर्घतुण्डषट्पदसन्निभमाक्षिकोत्पन्नमधु। अस्य गुणाः। अतिशयचक्षुर्हितकारित्वं। कफपित्तरक्तदोषनाशित्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः॥ यथा, भावप्रकाशे॥
"मधूकवृक्षान्निर्यासि जरत्काष्ठाश्रमोद्भवा।
स्रवन्त्यार्घ्यं तदा ख्यातं श्वेतकं मालवे पुनः॥
तीक्ष्णतुण्डास्तु या पीता मक्षिका षट्पदोपमा।
आर्घ्यास्तास्तत्कृतं यत्तदार्घ्यमित्यपरे जगुः"॥
("आर्घ्यं मध्वतिचक्षुष्यं कफपित्तहरं परं।
कषायं कटुपाके च बल्यं तिक्तमवातकृत्"॥
इति सुश्रुतः॥)

आङ्, अ, उपसर्गविशेषः। अस्यार्थः। ईषत् यथा आपिङ्गलः। अभिव्याप्तिः। यथा आजन्म ब्रह्मचारी। सीमा। यथा आसमुद्रक्षितीशानां। इति रघौ १ म सर्गे। धातुयोगजः। यथा आगोह्नतिः। इत्यमरभरतौ॥ समन्तात्। ग्रहणं। प्रश्लेषवृत्तिः। इति दुर्गादासः॥

आङ्ग, क्ली, (अङ्गस्य इदं। अङ्ग+अण्) कोमलाङ्गं। इति त्रिकाण्डशेषः॥

आङ्गार, क्ली, (अङ्गार+अण्) अङ्गारसमूहः। इति रायमुकुटः॥

आङ्गिक, त्रि, (अङ्ग+ठक्) अङ्गनिष्पन्नभावव्यञ्जकभ्रूक्षेपादि। इत्यमरः॥ मार्दङ्गिकः। इति शब्दरत्नावली॥ (यथा साहित्यदर्पणे।
"भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः।
आङ्गिको वाचिकश्चैवमाहार्य्यः सात्त्विकस्तथा"॥)

आङ्गिरस, पु, (अङ्गिरस्+अण्) बृहस्पतिः। इत्यमरः। (यथा मनुः। २।१५१।
"अध्यापयामास पितॄन् शिशुराङ्गिरसः कविः।
पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान्"॥)

आचमन, क्ली, (आङ्+चम्+ल्युट्) वैधकर्म्मारम्भात् पूर्व्वं वारत्रयजलपानानन्तरं यथाक्रमं शाङ्गस्पर्शरूपशुद्धिजनकक्रिया। तत्पर्य्यायः। उपस्पर्शः २। इत्यमरः॥ आचमः ३ शुचिप्रणीः ४। इति शब्दरत्नावली॥ तद्विधानं यथा॥
"त्रिराचामेदपः पूर्व्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखं।
सम्मृज्याङ्गुष्ठमूलेन त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत्॥
अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरं।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः॥
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोर्नाभिं हृदयन्तु तलेन वै।
सर्व्वाभिस्तु शिरः पश्चाद्बाहू चाग्रेण संस्पृशेत्॥

ऋचो यजूंषि सामानि त्रिः पिबन् प्रीणयेत् क्रमात्।
अथर्वाङ्गिरसौ पूर्व्वं द्विः प्रमार्ज्ज्य नयेन्मुखं ॥
सेतिहासपुराणानि वेदाङ्गानि यथाक्रमं।
मुखं नासिके वायुं नेत्रे सूर्य्यं श्रुती दिशः ॥
प्राणग्रन्थिमथो नाभिं ब्रह्माणं हृदयं स्पृशेत्।
रुद्रं मूर्द्धानमाप्नोति प्रीणात्यथ शिखां स्पृशेत् ॥
बाहू यमेन्द्रवरुणकुबेरवसुधाः स्तथा।
अङ्गुष्ठ चरणौ विष्णुमिन्द्रादिं तर्पयेत् ॥
वासुकिप्रमुखान् नागान् जलं पतति यत् क्षितौ।
येऽन्तरा विन्दवो यान्ति व्यासमद्य तर्पयेद्विजः ॥
अग्निवायुसूर्य्येन्द्रा गिरयोऽङ्गुलिपर्व्वसु।
गङ्गाद्याः सरितस्तासु या रेखाः करमध्यगाः ॥
तले सोमः सतीर्थश्च स्मृतोऽतः पावनः करः।
इति गारुडे २१५ अध्यायः ॥ १ ॥
अन्यत्र। अथाचमनं। पराशरः। यथा,—
"कृत्वाथ शौचं प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च मृज्जलैः।
निबद्धशिख आसीनो द्विज आचमनं चरेत्" ॥
आपस्तम्बः। यथा,—
"इत्येवमद्भिराजानु प्रक्षाल्य चरणौ पृथक्।
हस्तौ चामणिबन्धाभ्यां पश्चादासीत संयतः" ॥
आजान्विति अश्वश्रमादिना तत्पर्य्यन्तमशौचे
आजङ्घात इति हारीतोक्तं सामान्यतः।
"कृत्वोपवीतं सव्यांशे वाङ्मनःकायसंयतः" ॥ ० ॥
शिखाबन्धे विशेषमाह ब्रह्मपुराणम्।
"गायत्र्या तु शिखां बद्ध्वा नैर्ऋत्या ब्रह्मरन्ध्रतः।
जुटिकाञ्च ततो बद्ध्वा ततः कर्म्म समारभेत्" ॥
याज्ञवल्क्यः। यथा,—
"अन्तर्जानु शुचौ देशे उपविष्ट उदङ्मुखः।
प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत्"।
अन्तर्जानु जानुनोर्मध्ये हस्तौ कृत्वेति शेषः ॥
भविष्यपुराणे। यथा,—
"समौ तु चरणौ कृत्वा तथा बद्धशिखोऽन्वपः"।
आचामेदित्यनुक्तौ देवलः। यथा,—
"शिखां बद्ध्वा वसित्वा तु निर्णिक्ते वाससी शुभे।
मौनी भूत्वा समादाय नोद्धृत्य विलोकयन्" ॥ २ ॥
आपद्यवरोधे तु मनुः। यथा,—
"कायत्रैदशिकाभ्यान्तु न पित्र्येण कदाचन"।
मार्कण्डेयः। यथा,—
"अपविन्नेन हस्तेन कुर्य्यादाचमनक्रियां।
नोच्छिष्टः सन् पवित्रन्तु भुक्तोच्छिष्टन्तु वर्जयेत्" ॥
उदकग्रहणे परिमाणमाह भरद्वाजः। यथा,—
"आयतं पर्व्वणां कृत्वा गोकर्णाकृतिमत् करं।
संहताङ्गुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विजः ॥
मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां शेषेणाचमनं चरेत्।
माषमज्जनमात्रन्तु संगृह्य त्रिः पिबेदपः" ॥
दाक्षायण्यः। यथा,—
"अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः।
हृत्कण्ठतालुगाभिश्च यथासंख्यं द्विजातयः ॥
शुध्येरन् स्त्री च शूद्रश्च सकृत् स्पृष्टाभिरन्ततः"।
कर्मान्तेऽप्याचामो। यथा,—
"अशुद्धाभिरफेनाभिः पूताभिर्वीक्ष्य चक्षुषा।
बहुभिरमत्स्याभिरिद्भिर्वाङ्गिराचमेत्" ॥
चतुर्व्वेति भावशुद्ध्यपेक्षया ॥ ३ ॥
आचमनप्रकारमाह दक्षः।
"प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च त्रिः पिबेदम्बु वीक्षितं।
संवृत्याङ्गुष्ठमूलेन द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखं ॥
संहत्य तिसृभिः पूर्व्वमास्यमेवमुपस्पृशेत्।
अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरं ॥
अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः।
नाभिं कनिष्ठाङ्गुष्ठेन हृदयन्तु तलेन वै ॥
सर्व्वाभिस्तु शिरोदेशं बाहू चाग्रेण संस्पृशेत्"।
पुनः पुनरिति घ्राणादीनां गोलकद्वयाभिप्रायेण।
इति श्रीदत्तः ॥ ४ ॥
वीक्षणानुष्णयोरपवादमाह यमः।
"रात्रावनीक्षितेनापि शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः।
उदकेनातुराणाञ्च तथोष्णेनोष्णपायिनां" ॥ ५ ॥
मुखमार्ज्जनानन्तरं व्यासः। "वामहस्ते पादौ
शिरश्च दक्षिणेन पाणिना जलेनाभ्युक्षयेत्" इति
सामवेदिक्रमः। यजुर्व्वेदिनान्तु गौतमः। "पादौ
चाभ्युक्षयेत् खानि चोपस्पृशेत् शीर्षाणि मूर्द्ध्नि
दद्यात् उदकविन्दून्" ॥ ६ ॥
इन्द्रियस्पर्शे विशेषमाह मनुः। "खानि चैव
स्पृशेदद्भिः" इति। नाभिस्पर्शे व्यासः। यथा,—
"ततः स्पृशेन्नाभिदेशं पुनरापश्च संस्पृशेत्"।
इन्द्रियस्पर्शानन्तरं भविष्ये। यथा,—
"यद्भूमावुदकं वीर समुत्सृजति दानव।
वासुकिप्रमुखान्नागान् तेन प्रीणाति मानवः" ॥ ७ ॥
जलस्थलोभयकर्म्मानुष्ठानार्थञ्च जलस्थलैकचरणे
नाचमनं कर्त्तव्यमाह पैठीनसिः। "अन्तरुदके
आचान्तो अन्तरेव शुद्धो भवति वहिरुदके आ-
चान्तो वहिरेव शुद्धः स्यात् तस्मादन्तरेकं वहि-
रेकञ्च कृत्वा पादमाचामेत् सर्व्वत्र पूतो भवति"
इति ॥ ८ ॥ जलमध्ये जानोरूर्द्धमुत्तिष्ठन्नाचमन-
माह विष्णुः। यथा,—
"जानोरूर्द्ध्वं जले तिष्ठन्नाचान्तः शुचितामियात्।
अधस्ताच्छतकृत्वोऽपि समाचान्तो न शुध्यति" ॥
हारीतः। यथा,—
"आर्द्रवासा जले कुर्य्यात्तर्पणाचमनं जपं।
शुष्कवासाः स्थले कुर्य्यात्तर्पणाचमनं जपं" ॥ ९ ॥
आचमननिषेधे देवलः। यथा,—
सोपानत्को जलस्थो वा मुक्तकेशोऽपि वा पुनः।
उष्णीषी वापि नाचामेद्वस्त्रेणावेष्ट्य वा शिरः ॥
न गच्छन्न शयानश्च न चलन्न परान् स्पृशन्।
न हसन् नैव सञ्जल्पन्नात्मानञ्चैव वीक्षयन् ॥
केशनीवीमध कायमस्पृशन् धरणीमपि।
यदि स्पृशति चैतानि भूयः प्रक्षालयेत् करं"।
आकारं हृदयं। तथा व्यासः।
"शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकच्छशिखोऽपि वा।
अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्" ॥
मरीचिः। यथा,
"न वहिर्जानु संध्यां नाचामेन्न चाप्यतः।
न पादुकास्थो नाप्यर्थं शुचिः प्रयतमानसः ॥
भुञ्जानः सोऽप्याचामेद्यान्यापि वा पुनः।
जानुभ्यामूर्द्ध्वमाचम्य पदे विप्रः शुध्यति"।
शाट्यायनः। यथा,
"स्नानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्च्चनं।
प्रौढपादो न कुर्व्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम्" ॥ १० ॥
द्विराचमननिमित्तानि ॥
"स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे।
आचान्तः पुनराचामेद्वासो विपरिधाय च" ॥
ब्रह्मपुराणे ॥ यथा,
"होमे भोजनकाले च सन्ध्ययोरुभयोरपि।
आचान्तः पुनराचामेदन्यत्रापि सकृत् सकृत्" ॥ ११ ॥
अथाचमननिमित्तानि ॥
"निष्ठीवने तथाभ्यङ्गे तथा पादावसेचने।
उच्छिष्टस्य च सम्भाषादशुच्युपहतस्य च ॥
सन्देहेषु च सर्व्वेषु शिखां बद्ध्वा तथैव च।
विना यज्ञोपवीतेन नित्यमेवमुपस्पृशेत् ॥
उष्ट्रवायससंस्पर्शे दर्शने चान्त्यवासिनां" ॥
हारीतः। यथा,
स्त्रीशूद्रोच्छिष्टसम्भाषणे मूत्रपुरीषोत्सर्गदर्शने
देवमभिगन्तुकाम आचामेत् ॥ १२ ॥
अथ आचमनप्रतिप्रसवमाह स्मृतिः। यथा,
"क्षुते निष्ठीवने सुप्ते परिधानेऽश्रुपातने।
कर्म्मस्थ एषु नाचामेद्दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्" ॥
वृद्धशातातपः।
"वातकर्म्मणि निष्ठीवे दन्तश्लिष्टे तथानृते।
क्षुते पतितसम्भाषे दक्षिणश्रवणं स्पृशेत्" ॥
मार्कण्डेयपुराणम् ॥ यथा,
"कुर्य्यादालम्भनं स्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनम्।
कुर्व्वीतालम्भनं वापि दक्षिणश्रवणस्य च ॥
यथाविभवतो ह्येतत् पूर्व्वाभावे ततः परम्" ॥ १३ ॥
आचमने जलाधारनिषेधमाह। उशना ॥ यथा,
"कांस्यायसेन पात्रेण त्रपुसीसकपित्तलैः।
आचान्तः शतकृत्वोऽपि न कदाचित् शुचिर्भवेत्" ॥
इति गोपालचक्रवर्त्तिकृताचारनिर्णयः ॥
"आयतं पर्व्वणां कृत्वा गोकर्णाकृतिवत् करं।
संहताङ्गुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विजः ॥
मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां शेषेणाचमनं चरेत्।
माषमज्जनमात्रन्तु संगृह्य त्रिः पिबेदपः" ॥
इति भरद्वाजः ॥
"अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः।
हृत्कण्ठतालुगाभिश्च यथासंख्यं द्विजातयः ॥
शुध्येरन् स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः" ॥
इति याज्ञवल्क्यः ॥
"हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः।
वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः" ॥
इति मनुः ॥
"निरुक्तैरधिकं तीर्थं शूद्रजातेर्न्यूनं च।
महदाचमनाच्छ्रेष्ठं वेदोक्तं चैव" ॥
इति मिताक्षरा ॥
आचमनकः, पु, (आचमन + कन्।) निष्ठीवनपात्रं।
पिकदान् डाबर् इति भाषा। तत्पर्य्यायः।
प्रतिग्रहः २ पतद्ग्रहः ३ पतद्ग्रहः ४। इति
हारावली। (प्रतिग्राहपतद्ग्राहपतद्ग्रहपर्य्या-
याः इति। इति शब्दार्थचिन्तामणिः।)

आचमनीयं, क्ली, (आचम्यतेऽनेन । आङ्+चम्+अनीयर् ।) मुखप्रक्षालनार्थजल । तद्दानविधिर्यथा, कालिकापुराणे ६७ अध्याय ॥
"दद्यादाचमनीयन्तु सुगन्धिसलिलैः शुभैः ।
कर्पूरवासितैर्व्वापि कृष्णागुरुसुधूपितैः ॥
यथा तथा सुगन्धैर्व्वा प्रसन्नैः फेनवर्ज्जितैः ।
तत्तैजसेन पात्रेण शङ्खेनाथ प्रदापयेत् ॥
उदकं दीयते यत्तु प्रसन्नं फेनवर्ज्जितं ।
आचमनाय देवेभ्यस्तदाचमनमुच्यते ॥
केवलं तोयपात्रेण तदा दद्यान्नमिश्रितं ।
वासितन्तु सुगन्धाद्यैः कर्त्तव्यं यदि लभ्यते ॥
आयुर्ब्बलं यशोवृद्धिं प्रदायाचमनीयकं ।
लभते साधको नित्यं कामांश्चैव यथेप्सितान्" ॥

आचरणं, क्ली, (आङ्+चर्+ल्युट्) आचारः । व्यवहारः ॥ ("अधीतिबोधाचरणप्रचारणैः" । इति नैषधे । )

आचरितं, त्रि, (आङ्+चर्+क्त) कृताचरणं । ("जलं वामकरे कृत्वा या सन्ध्याचरिता द्विजैः" । इति काशीखण्डे ।) व्यवहृतं ॥ (यदुक्तं ।
"दारपुत्रपशून् हृत्वा कृत्वा द्वारोपवेशनं ।
यत्रार्थी दाप्यतेऽर्थं स्वं तदाचरितमुच्यते" ॥
एतत्तु पारिभाषिकं ॥)

आचान्तः, त्रि, (आङ्+चम्+क्त) कृताचमनः । यथा । बौधायनः ।
"स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे ।
आचान्तः पुनराचामेत् वासो विपरिधाय च" ॥
इत्याह्निकतत्त्वं ।

आचामः, पुं, (आङ्+चम्+घञ्) आचमनं । इति शब्दरत्नावली ॥ भक्तमण्डः । इत्यमरः ॥ (भक्षणं । पानं । यथा, काव्यप्रकाशे ।
"चकोर्य्य एव निपुणाश्चन्द्रिकाचामकर्म्मणि" ॥)

आचारः, पुं, (आङ्+चर्+घञ्) व्यवहारः । तत्पर्य्यायः । चरित्रं २ चरितं ३ चारित्रं ४ चरणं ५ वृत्तं ६ शीलं ७ । इति हेमचन्द्रः ॥ स्नानाचमनादिः । इति मानवे २ अध्याये ६९ श्लोकटीकायां कुल्लूकभट्टः । व्यवहारः ॥ स तु विचारः । यथा बृहस्पतिः ।
"आचारेणावसन्नोऽपि पुनर्लेखयते यदि ।
सोऽभिधेयो जितः पूर्व्वं प्राङ्न्यायस्तु स उच्यते" ॥
इति व्यवहारतत्त्वं ॥ चरित्रं । एतद्विवरणं सदाचारशब्दे द्रष्टव्यं ॥ ( रघु । २ । १० । "आचारलाजैरिव पौरकन्याः" ।)

आचारवर्ज्जितः, त्रि, (आचारेण वर्ज्जितः ।) आचारबहिर्भूतः । इति जटाधरः ॥ (अव्यवस्थितः । नियमरहितः ।)

आचारी, स्त्री, (आङ्+चार+ङीष्) हिलमोचिका लता । इति राजनिर्घण्टः ॥ हेलञ्चा इति ख्याता । आचारविशिष्टे त्रि । (हिलमोचिकाशब्देऽस्या गुणादयो ज्ञातव्याः ॥)

आचार्य्यः, पुं, (आङ्+चर्+ण्यत् ।) वेदाध्यापकः । वैदिकमन्त्रव्याख्याकर्त्ता । तत्पर्य्यायः । मन्त्रव्याख्याकृत् २ । इत्यमरः ॥ द्रोणाचार्य्यः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ तल्लक्षणं यथा,—
"उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेत् द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्य्यं प्रचक्षते" ॥
इति मानवे २ । १४० ॥
( ततोऽनन्तरमाचार्य्यं परीक्षेत । तद्यथा,— "पर्य्यवदातश्रुतं परिदृष्टकर्म्माणं दक्षं दक्षिणं शुचिं जितहस्तमुपकरणवन्तं सर्व्वेन्द्रियोपपन्नं प्रकृतिज्ञं प्रतिपत्तिज्ञमनुपस्कृतविद्यमनहङ्कृतमनसूयकमकोपनं क्लेशक्षमं शिष्यवत्सलमध्यापकं ज्ञानदानसमर्थमित्येवङ्गुणो ह्याचार्य्यः सुक्षेत्रमार्त्तवो मेघ इव शस्यगुणैः सुशिष्यमाशु वैद्यगुणैः सम्पादयति । तमुपसृत्यारिराधयिषुरुपचरेदग्निवच्च देववच्च राजवच्च पितृवच्च भर्त्तृवच्चाप्रमत्तस्ततस्तत्प्रसादात् कृत्स्नं शास्त्रमधिगम्य शास्त्रस्य दृढतायामभिधानसौष्ठवस्यार्थस्य विज्ञाने वचनशक्तौ च भूयः प्रयतेत सम्यक्" । इति चरके ॥)

आचार्य्या, स्त्री, (आचार्य्य+टाप् ।) मन्त्रव्याख्याकर्त्री । इत्यमरसिंहः ॥ ( वेदादिशास्त्राध्यापनकर्त्री । )

आचार्य्याणी, स्त्री, (आङ्+चर्+ण्यत्+ङीप्+आनुक् ॥) आचार्य्यपत्नी । इत्यमरः ॥ (यथा महावीरचरिते ॥
"त्र्यम्बकं देवमाचार्य्यमाचार्य्याणीञ्च पार्व्वतीं" ॥)

आचितं, क्ली, ( आङ्+चि+क्त । ) दशभारपरिमाणं । इत्यमरः । २५ मोन इति भाषा ॥

आचितः, पुं, (आङ्+चि+क्त ।) शाकटो भारः । इत्यमरः । एक गाडिर बोझा इति भाषा ॥ अयुतपलं । इति मेदिनी ॥

आचितः, त्रि, (आङ्+चि+क्त) सङ्गृहीतः । छन्नः । इति मेदिनी ॥ (एकत्र सन्निवेशितः, आकीर्णः, व्याप्तः, ग्रथितः, गुम्फितः । यथा भारवि । "कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ" ॥ यथा रघुवंशे ।
"अर्द्धाचिता सत्वरमुत्थितायाः
पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती" ।)

आच्छुकः, पुं, वृक्षविशेषः । आच इति भाषा । तत्पर्य्यायः । रञ्जनद्रुः २ पत्तीकः ३ मर्च्छकः ४ आच्छिकः ५ । इति रत्नमाला ॥

आच्छन्नः, त्रि, (आङ्+छद्+क्त ।) आच्छादितः । आवृतः । यथा । "मेघाच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनं" । इत्यमरः ॥
("पङ्कपांशुजलाच्छन्नं सुव्यक्तं दस्युविद्रुतं" ।
इति हितोपदेशः ॥)

आच्छादः, पुं, (आङ्+छद्+घञ् ।) वस्त्रं । इति हेमचन्द्रः ॥

आच्छादनं, क्ली, ( आङ्+छद्+ल्युट् । ) वस्त्रं । इत्यमरः ॥ सपिधानं । अपवृतिमात्रं । इति मेदिनी ॥ (यथा मनुः । ३ । ५९ ॥
"तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः" ॥)

आच्छादितः, त्रि, (आङ्+छद्+णिच्+क्त ) कृताच्छादनः । आवृतः । ढाका इति भाषा ।

आच्छुरितं, क्ली, (आङ्+छुर्+क्तः) सशब्दहास्यं । नखवाद्यं । इति धरणिः ॥ आवृतं । (यथा कथासरित्सागरे ।
"न सेहे पांशुकेनापि क्षिप्रमाच्छुरितं वपुः" ।

आच्छुरितकं, क्ली, (आङ्+छुर्+भावे क्त । ततः स्वार्थे कन्) सोत्प्रासहासः । इत्यमरः ॥ हास्यं नखाघातविशेषः । इति मेदिनीकरहेमचन्द्रौ ।

आच्छोदनं, क्ली, (आङ्+छिद्+ल्युट् । तत एमोदरादित्वात् इत ओत् ।) मृगया । इत्यमरः ।

आछि, इ, आयामे । (भ्वादिं-परं सकं-सेट् ।) इति कविकल्पद्रुमः ॥ इत्यादौ हित्वाभाव प्रकृति भ्रमनिरासार्थं । इ आञ्छते । आयामो दीर्घीकरणं । आञ्छति कटं शिल्पी । इति । दुर्गादासः ।

आजं, क्ली, (अज+अण् । अजसम्बन्धी छागस्य घृतमांसादि ) घृतं । इति जटाधरः ॥ (यथा वैद्यके ।
"गव्यमाजं तथा चौष्ट्रमाविकं माहिषञ्च यत् ।
अतो धातुविरुद्धार्थमाजं मांसं प्रशस्यते" ॥)
(तथाच रामायणे । २ । ९१ । ६७ ।
"आजैश्चापि च वाराहैर्निष्ठानवरसञ्चयैः" ।
घृतार्थे—गव्यादिघृतभेदेन यदुक्तं तत्सर्व्वं घृतशब्दे ज्ञातव्यं किन्त्वाजशब्दव्युत्पत्त्या दुग्धादिकं यदुपलभ्यते तदन्यत्र प्रदर्श्यते ।
"आजं दधि भवेच्चोष्णं क्षयवातविनाशनं ।
दुर्नामश्वासकासेषु हितमग्निप्रदीपनं ॥
विपाके मधुरं रुच्यं रक्तपित्तप्रसादनं ।
शस्तं कार्श्यापहं प्रोक्तं वातपित्तनिबर्हणं" ।
इति हारीतसुश्रुतौ ।
"नातिशीतं गुरुस्निग्धं मांसमाजमदोषलं ।
शरीरधातुसामान्यादनभिष्यन्दि बृंहणं" ।
इति चरको वाभटश्च ॥
"गव्यतुल्यगुणन्त्वाजं विशेषाच्छोषिणां हितं ।
दीपनं लघु संग्राहि श्वासकासास्रपित्तनुत् ।
अजानामल्पकायत्वात् कटुतिक्तनिषेवनात् ।
नात्यम्बुपानाद्व्यायामात् सर्व्वव्याधिहरं पयः" ।
"दध्याजं कफपित्तघ्नं लघुवातक्षयापहं ।
दुर्नामश्वासकासेषु हितमग्नेः प्रदीपनं ॥
विपाके मधुरं रुच्यं रक्तपित्तप्रसादनं" ॥
"आजं घृतं दीपनीयं चक्षुष्यं बलवर्द्धनं ।
कासे श्वासे क्षये चापि पथ्यं पाके च तल्लघु" ।
इति च सुश्रुतः ॥ )

आजकं, क्ली, (अज+वुञ्) अजसमूहः । छागलेर पाल इति भाषा । इत्यमरः ॥

आजकारः, पुं, (आज+कृ+अण्) शिववृषः । इति शब्दरत्नावली ॥

आजगवं, क्ली, (अजगव+प्रज्ञाद्यण्) शिवधनुः । इति हेमचन्द्रः ॥

आजन्मसुरभिपत्रः, पुं, (आ जन्मनः सुरभीणि पत्राणि यस्य सः) मरुवकवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

आजानेयः, पुं, स्त्री, (अज्+घञ्+आज+आनेयः) कुलीनाश्वः । श्रेष्ठघोटकः । इत्यमरः ॥ "शक्तिभिर्भिन्नहृदयाः स्खलन्तोऽपि पदे पदे । आजानन्ति यतः संज्ञामाजानेयास्ततः स्मृताः" ॥ इत्यश्वतन्त्रं ।

आजिः, स्त्री, (अज्+इन्) । युद्धं । समानभूमिः ।

इत्यमरकोषमेदिन्यौ। रणं। इति हेमचन्द्रः। (युद्धार्थे यथा,—"आवृण्वती लोचनमार्गमाजौ रजोऽन्धकारस्य विजृम्भितस्य"। इति रघुः।७।४३।) आक्षेपः। इति शब्दरत्नावली॥

आजीवः, पुं, (आङ्+जीव+घञ्।) जीविका। इत्यमरः॥ ("बहुमूलफलो रम्यः स्वाजीवः प्रतिभाति मे"॥ इति रामायणे।)

आजुः, [र्] स्त्री, (आङ्+जुर्+क्विप्।) आजूः। विष्टिः। इति स्वामी॥

आजूः, स्त्री, (आ+जु गतौ+क्विप् दीर्घश्च।) वेतनं विना कर्म्मकारः। वेगार इति भाषा। इत्यमरः॥ (यदुक्तम्,
"हठादभृतिकः क्लेशो विष्टिराजूश्च कीर्त्त्यते"।)

आज्ञप्त, त्रि, (आ+ज्ञा+णिच्+क्त।) आज्ञाप्राप्तः। यथा, देवीमाहात्म्यम्।
"आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः"॥

आज्ञा, स्त्री, (आङ्+ज्ञा+अङ्+टाप्।) आदेशः। तत्पर्य्यायः। अववादः २ निर्देशः ३ निदेशः ४ शासनं ५ शिष्टिः ६। इत्यमरः॥ ("तथेति शेषामिव भर्त्तुराज्ञा"। इति कुमारे। ३।२२।
"पश्चात् वनाय गच्छेति तदाज्ञा मुदितोऽग्रहीत्"
इति रघौ।१२।७।)

आज्ञाकारी, [न्] त्रि, (आज्ञा+कृ+णिन्।) आज्ञया कर्म्मकारी। आज्ञावहः। आज्ञानुवर्त्ती॥

आज्ञाचक्र, क्ली, षट्चक्रान्तर्गतषष्ठचक्रम्। तथा च तन्त्रे,—"आज्ञानामाम्बुजं तद्धिमकरसदृशं ध्यानधामप्रकाशं हक्षाभ्यां वै कलाभ्यां प्रविलसितवपुर्नेत्रपत्रं सुशुभ्रं। तन्मध्ये हाकिनी सा शशिसमधवला वक्त्रषट्कं दधाना विद्यां मुद्रां कपालं डमरुजपवटीं बिभ्रती शुद्धचित्ता॥ एतत् पद्मान्तराले निवसति च मनः सूक्ष्मरूपं प्रसिद्धम्"॥ इति तत्त्वचिन्तामणौ षष्ठप्रकाशः॥

आज्ञापक, त्रि, (आङ्+ज्ञा+णिच्+ण्वुल्।) आज्ञाकर्त्ता।

आज्ञापत्र, (आज्ञायै पत्रं।) क्ली आदेशलिपिः। निदेशलिखनं। हुकुमनामा इति पारस्यभाषा॥

आज्ञापन, क्ली, (आङ्+ज्ञापि+ल्युट्।) विज्ञापनं। जानान इति भाषा॥

आज्ञाप्त, त्रि, (आङ्+ज्ञापि+क्त।) आज्ञप्तिविशिष्टः। लब्धाज्ञः। आज्ञाप्राप्तः॥

आज्य, क्ली, (आङ् पूर्व्वात् अञ्जेः संज्ञायामिति क्यप्।) घृतं। इत्यमरः॥ श्रीवासः। इत्यजयपालः॥ (यागक्रियासाधनं तैलदुग्धादिकमपि आज्यशब्देनोच्यते। यदुक्तं गृह्यसङ्ग्रहे।
"घृतं वा यदि वा तैलं पयो वा दधि यावकं।
आज्यस्थाने नियुक्तानामाज्यशब्दो विधीयते"॥
यथा रघुवंशे।७।२०। "तत्रार्च्चितो भोजपतेः पुरोधाः हुत्वाग्निमाज्यादिभिरग्निकल्पः"॥)

आज्यभाग, पुं, (आज्यस्य भागः) ऋग्वेदिना अग्नेरुत्तरभागे सुवेणाग्निसम्प्रदानकाज्याहुतिः तद्दक्षिणभागे सोमसम्प्रदानकाहुतिश्च। इति कालेशिः।
यजुर्व्वेदिनान्तु अग्नेरुत्तरदक्षिणयोः पश्चिमादिप्राच्यन्तघृतधारा। इति पशुपतिः॥

आञ्जनेय, पुं, (अञ्जनाया अपत्यं, अञ्जना+ढक्।) अञ्जनानामवानरीपुत्त्रः। स तु हनूमान्। इति त्रिकाण्डशेषः॥ (यथा महानाटके।
"उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयं"॥)

आञ्जिनेय, पुं, (आञ्जन+ढक्+इट्।) जन्तुविशेषः। आजनाइ इति ख्यातः। इति शब्दमाला॥

आटि, पुं, (आङ्+अट+इन्।) पक्षिविशेषः। शरालि इति ख्यातः। इत्यमरः॥

आटीकन, क्ली, (आङ्+टीक्+ल्युट्।) वत्सानां गमनं। इति त्रिकाण्डशेषः॥

आटीकर, पुं, (आटीक+र।) वृषः। इति भूरिप्रयोगः॥

आटोप, पुं, (आङ्+टुप्+घञ्।) दर्पः। इति हेमचन्द्रः॥ वायुजन्य-उदरगुड्गुडाशब्दः। इति वैद्यकं॥ (गर्व्वः, सम्भ्रमः, संरम्भः। यथा-पञ्चतन्त्रे "विषं भवतु मा वाभूत् फटाटोपो भयङ्करः"। यथा शिशुपालवधे। 'साटोपमुर्व्वीमनिशं नदन्तः'।
"आटोपहृल्लासवमीगुरुत्व-
स्तैमित्यमावाहककफप्रसेकैः"।
इति माधवकरः।)

आडम्बर, पुं, (आङ्+दम्+वरच्। तत दस्थाने डः। आडम्व्यते डवि क्षेपे घञ् भावे वा। आडम्वं राति रमयति वा आतोऽनुपेति कः। मूलविभुजेति वा कः। आडम्वयति वा बाहुलकादरन्।) पटहः। तूर्य्यरवः। गजेन्द्रगर्जनं। इत्यमरः॥ आरम्भः। इति त्रिकाण्डशेषः॥ पक्ष्म। दर्पः। इति मेदिनी॥ क्रोधः। इति स्वामी॥ हर्षः। इति शब्दरत्नावली॥ (आयोजनं। एकत्र सन्निवेशः, यथा, भामिनीविलासे। "धातः किं नु विधौ विधातुमुचितो धाराधराडम्बरः"॥ युद्धं। रवार्थे यथा,
"असारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान्।
नहि तादृक्ध्वनिः स्वर्णे यथा कांस्ये प्रजायते"॥)

आडि, स्त्री, (आङ्+अड+इन्।) शरालिपक्षी। इत्यमरः॥ स्वनामख्यातमत्स्यविशेषः। अस्या गुणाः। गुरुत्वं। स्निग्धत्वं। वातश्लेष्मप्रकोपनत्वं। अतिबलशुक्रमेधाभिवृद्धिकारित्वञ्च॥ इति राजवल्लभः॥ (विश्वामित्रशापेन वशिष्ठो महर्षिराडिपक्षिरूपतां गत इति पौराणिकी कथा॥ यथा मार्कण्डेयपुराणे आडिवकयुद्धे,—
"श्रुत्वा शापं महातेजा विश्वामित्रोऽपि कौशिकः।
त्वमप्याडिर्भवस्वेति प्रतिशापमयच्छत॥
आडिः सोऽप्युन्नतग्रीवो वकं पक्षाभ्यताडयत्"॥)

आडू, पुं, (अण शब्दे। अनेडश्चेत्यू।) उडुपः। भेला माड इत्यादि भाषा। इत्युणादिकोषः।

आढ़क, क्ली, (आ समन्तात् ढौकते ढौक्यते वा ढौक गतौ अच् घञ् वा पृषोदरादि। परिमाणविशेषः। आढा इति भाषा। यथा,—
"शतयोजनविस्तीर्णं त्रिंशद्योजनमायतं।
आढकस्य भवेन्मानं मुनिभिः परिकीर्त्तितं"॥
अपि च॥
"त्रिंशद्योजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतं।
विंशयोजनगम्भीरमाढकं परिकीर्त्तितं"॥
इति गणपतिभट्टः। इति ज्योतिस्तत्त्वं॥

आढक, पुं, क्ली, चतुःप्रस्थपरिमाणं। आडी इति भाषा। इत्यमरः॥ द्रोणचतुर्थभागः। इति लीलावती॥ अष्टमुष्टिर्भवेत् कुञ्चिरित्यादिवचनात् षट्पञ्चाशदधिकद्विशतमुष्टिर्भवति। व्यवहारे षोडशसेरो विंशतिसेरो वा। वैद्यकमते अष्टशरावपरिमाणं। तत्पर्य्यायः। पात्रं २ कंसः ३ भाजनं ४। इति परिभाषा॥ ("चतुःप्रस्थैस्तथाढकं।
भाजनं कांस्यपात्रञ्च चतुःषष्टिपलञ्च तत्"॥
इति शार्ङ्गधरः।
"चतुःप्रस्थमथाढकं।
"पात्रं तदेव विज्ञेयं कंसप्रस्थाष्टकन्तथा"॥
इति चरकः।)
अपचयविवक्षाया आढकिकेत्यपि स्यात्। इत्यमरटीकासारसुन्दरी॥ आढिका। इति भरतः॥

आढकिक, त्रि, (आढक+ठञ्।) आढकपरिमितवीजवपनादियोग्यक्षेत्रादि। इत्यमरः॥

आढकी, स्त्री, शमीधान्यविशेषः। अरहर इति भाषा। तत्पर्य्यायः। तुवरी २ वर्य्या ३ करवीरभुजा ४ वृत्तबीजा ५ पीतपुष्पा ६। अस्या गुणाः। कषायत्वं। मधुरत्वं। कफपित्तनाशित्वञ्च। तद्दिदलगुणाः। ईषद्वातरुचिकारित्वं। गुरुत्वं। ग्राहित्वञ्च। पीता रक्ता सिता त्रिविधेयं। श्वेता दोषदा। लोहिता रुच्या वल्या पित्ततापादिहन्त्री च। पीता दीपनी पित्तदाहध्वंसिनी च॥ तद्युग्मं वल्यं। इति राजनिर्घण्टः॥ अमरमते तत्पर्य्यायः। काक्षी २ मृत्स्ना ३ तुवरिका ४ मृतालकं ५ सुराष्ट्रजं ६। भरतमल्लिकमते एतत्षट्कं अरहरस्य। सारसुन्दरीमते तुवरिकाख्यगन्धद्रव्यस्य। केषाञ्चिन्मते सुगन्धिमृत्तिकायाः॥ (अस्याः पर्य्यायगुणावाह।
'आढकी तुवरी चापि सा प्रोक्ता शणपुष्पिका॥
आढकी तुवरा रूक्षा मधुरा शीतला लघुः।
ग्राहिणी वातजननी वर्ण्या पित्तकफास्रजित्"॥
इति भावप्रकाशः॥
"मृदुः कषाया च सरक्तपित्तं
निहन्ति कासानतिवातला स्यात्।
गुल्मज्वरारोचककासच्छर्द्दि-
हृद्रोगदुर्नामहराढकी स्यात्"॥
इति हारीतः॥
'आढकी कफपित्तघ्नी वातला,"। इति चरकः॥
'आढकी कफपित्तघ्नी नातिवातप्रकोपनी"।
इति सुश्रुतः॥)

आढकीन, त्रि, (आढक+ख।) आढकिक। इत्यमरटीका॥

आढ्य, त्रि, (आढौकते ढौकृ गतौ बाहुलकात् क्यः।) धनवान्। इत्यमरः॥ युक्तः। विशिष्टः। अन्वितः। यथा, धनाढ्यः गुणाढ्य इत्यादि॥ (यथा मनुः ८।१६९। "चत्वारस्तूपचीयन्ते विप्र आढ्यो वणिङ् नृपः"। यथा भगवद्गीतायाम्,— "आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया"॥)

आणक, त्रि, (अणक एव स्वार्थे अण्।) अणकः। अधमः। इति रायमुकुटः॥

आणवीन, त्रि, (अणु+खञ्।) अणव्यः। अणुधान्योद्भवोचितक्षेत्रं। इत्यमरटीकायां रायमुकुटः।

आणि, पु, स्त्री, (अण+इन्।) अक्षाग्रकीलकः॥ अश्रिः। सीमा। इति मेदिनी॥

आतङ्क, पु, (आङ्+तकि+घञ्।) रोगः। (यथा, याज्ञवल्क्यः,— "दृष्ट्वा पथि निरातङ्कं कृत्वा वा ब्रह्महा शुचिः"।) सन्तापः। शङ्का। (यथा, महावीरचरिते,— "आतङ्कश्रमसाहसव्यतिकरोत्कम्पचञ्चत्स्तना"।) मुरजध्वनिः। इति मेदिनीकरहेमचन्द्रौ॥ ज्वरः। इति राजनिर्घण्टः॥ ("नानातन्त्रविहीनानां भिषजामल्पमेधसाम्। सुखं विज्ञातुमातङ्कमयमेव भविष्यति"॥ इति माधवकरः॥ रोगार्थे उदाहरणं यथा सुश्रुते। "प्रश्नेन च विजानीयात् देशं कालं जातिं सात्म्यमातङ्कसमुत्पत्तिं वेदनासमुच्छ्रायं बलमित्यादि"॥ ज्वरार्थे पर्य्यायानाह। "ज्वरो विकारो रोगश्च व्याधिरातङ्क एव च। एकार्थनामपर्य्यायैर्विविधैरभिधीयते"॥ इति चरकः॥)

आतञ्चन, क्ली, (आङ्+तञ्च+ल्युट्।) प्रतिवापः। गलितस्य स्वर्णादेर्द्रव्यान्तरेणावचूर्णनं। इति स्वामी॥ निक्षेपणं। इति सुभूतिः॥ उपद्रवः। इति रायमुकुटः॥ द्रवद्रव्यप्रक्षेपणोचितचूर्णं। इति सारसुन्दरी॥ जवनं। वेगः। आप्यायनं। तर्पणं। इत्यमरमेदिन्यौ॥

आततायी, [न्] त्रि, (आतत+अय+णिनि।) वधोद्यतः। इत्यमरः॥ "अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः। क्षेत्रदारापहारी च षडेते आततायिनः॥ आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्। नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन"॥ इति भगवद्गीताटीकायां श्रीधरस्वामी॥

आतप, पु, (आङ्+तप+अच्।) रौद्रं। तत्पर्य्यायः। प्रकाशः २ द्योतः ३। इत्यमरः॥ दिनज्योतिः ४ सूर्य्यालोकः ५ दिनप्रभा ६ रविप्रकाशः ७ प्रद्योतः ८ तमारिः ९ तापनः १० द्युतिः ११। अस्य गुणाः। कटुत्वं। रूक्षत्वं। स्वेदमूर्च्छातृष्णादाहवैवर्ण्यजनकत्वं। नेत्ररोगप्रकोपनत्वञ्च॥ इति राजनिर्घण्टः॥ ("आतपः कटुको रूक्षः स्वेदमूर्च्छातृषावहः। दाहवैवर्ण्यजननो नेत्ररोगप्रकोपनः"॥ "आतपः पित्ततृष्णाग्निस्वेदमूर्च्छाभ्रमास्रकृत्। दाहवैवर्ण्यकारी च" इति सुश्रुतः॥ यथा शाकुन्तले,— "कथमातपे गमिष्यसि परिबाधाकोमलैरङ्गैः"॥ यथा ऋतुसंहारे, १।११।— "मृगाः प्रचण्डातपतापिता भृशम्"॥)

आतपत्र, क्ली, (आतप+त्रै+क) छत्रं। इत्यमरः॥ (यथा शाकुन्तले,— "राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रं"। यथा रामायणे,— "पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्द्धनि"॥ "छत्रशब्देऽस्य गुणादयो ज्ञातव्याः"।)

आतपत्रक, क्ली, छत्रं। इति शब्दरत्नावली॥

आतपवारण, क्ली, (आतप+वारि+ल्युट्।) छत्रं। इति हेमचन्द्रः॥ (यथा रघुवंशे, ३।७०। "नृपतिककुदं दत्वा यूने सितातपवारणं"। "अनुदितान्यसितातपवारणः"॥)

आतपाभाव, पुं, (आतपस्य अभावः। षष्ठीतत्पुरुषः।) छाया। इति राजनिर्घण्टः॥

आतर, पु, (आङ्+तॄ+अप्। आतरत्यनेन, पुंसि सञ्ज्ञायामिति घः) नद्यादितरणाय देयकपर्दकादि। तत्पर्य्यायः। तरपण्यं २। इत्यमरः॥ पारानीकडि नौकाभाड़ा इति भाषा॥

आतर्पण, क्ली, (आङ्+तृप्+ल्युट्।) प्रीणनं। तृप्तिः। मङ्गलालेपनं। आलिपना इति भाषा। इति मेदिनी॥ (यथा मेदिनी। "आतर्पणं प्रीणने स्यात् मङ्गलालेपनेऽपि च"॥)

आतापी, [न्] पुं, (आङ्+तापि+णिनि।) आतायी। चिल्लः। इत्यमरटीकायां स्वामी॥ (असुरभेदः। चिल इति ख्यातः पक्षिभेदः॥)

आतायी, [न्] पु, (आङ्+ताय+णिनि।) चिल्लः। चिल इति भाषा। इत्यमरः॥

आतार, पु, (आङ्+तॄ+घञ्।) आतरः। तरपण्यं। इति शब्दरत्नावली॥

आति, पुं, (अत+इण्।) पक्षी। इति सिद्धान्तकौमुद्यामुणादिवृत्तिः॥

आतिथेय, त्रि, (अतिथि+ढञ्। अतिथौ साधुः।) अतिथिसेवाकारकः। इत्यमरः॥ (यथा रघुवंशे, ५।२। "प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः॥ यथा कुमारसम्भवे, ५।३१। "तमातिथेयी बहुमानपूर्व्वया सपर्य्यया"। यथा मनुः, ३।१८। "दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु"।)

आतिथ्य, त्रि, (अतिथि+ञ्य।) अतिथ्यर्थवस्तु। अतिथिभक्ष्यादिद्रव्यं इत्यमरः॥ अतिथिसेवा च॥ ("यथा हितोपदेशे। "अरावप्युचितं कार्य्यमातिथ्यं गृहमागते"॥)

आतिथ्य, पु, अतिथिः। इति मेदिनी॥

आतु, पु, (आङ्+तॄ+डु।) भेलकः। भेला माड़ इत्यादि भाषा। इति शब्दमाला॥

आतुर, त्रि, (आङ्+तुर+क) रोगी। तत्पर्य्यायः। आमयावी २ विकृतः ३ व्याधितः ४ अपटुः ५ अभ्यमितः ६ अभ्यान्तः ७। इत्यमरः॥ (यथा हितोपदेशे। वैद्यानामातुरः श्रेयान्। यथा मनुः, ४।१२९। "न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि"॥ आतुरावस्थास्वपि कार्य्याकार्य्यं प्रति कालाकालसञ्ज्ञा। तद्यथा—अस्यामवस्थायामस्य भेषजस्य कालोऽकालः पुनरस्येति। एतदपि भवत्यवस्थाविशेषेण तस्मादातुरावस्थास्वपि हि कालाकालसञ्ज्ञा। तस्य परीक्षा मुहुर्म्मुहुरातुरस्य सर्व्वावस्थाविशेषावेक्षणं यथावद्भेषजप्रयोगार्थं। न ह्यतिपतितकालमप्राप्तकालं वा भेषजमुपयुज्यमानं यौगिकं भवति। कालोऽपि हि भैषज्ययोगपर्य्याप्तिमभिनिर्व्वर्त्तयति॥ इति चरकः॥ आतुरमुपक्रममाणेन भिषजायुरेवादौ परीक्षेत। इति सुश्रुतः॥)

आतृप्य, क्ली, (आङ्+तृप्+क्यप्।) फलविशेषः। आता इति भाषा। अस्य गुणाः। तृप्तिजनकत्वं। रक्तवर्द्धकत्वं। स्वादुत्वं। शीतलत्वं। बलमांसकारित्वं। हृद्यत्वं। दाहरक्तपित्तवायुनाशित्वञ्च। इति द्रव्यगुणः॥

आतोद्य, क्ली, (आङ्+तुद+ण्यत्।) वाद्यं। तच्चतुर्विधं। वीणादिवाद्यं ततं १ मुरजादिवाद्यं आनद्धं २ वंशादिवाद्यं शुषिरं ३ कांस्यतालादिवाद्यं घनं ४ इत्यमरः॥ (यथा रघुवंशे। "स्वनमातोद्यशिरोनिवेशिता। "आतोद्यं ग्राहयामास समत्याजयदायुधं"॥)

आत्तगन्ध, त्रि, (आत्तः अरिणा गृहीतः गन्धो गर्व्वो यस्य सः बहुव्रीहिः।) दूरीभूताहङ्कारः। तत्पर्य्यायः। अभिभूतः २। इति हेमचन्द्रः॥ गृहीतगन्धः॥ (यथा रघुवंशे १३।७। "पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धा शरण्यमेनं शतशो महीध्राः"।)

आत्तगर्व्व, त्रि, (आत्तः अरिणा गृहीतः गर्व्वो यस्य स बहुव्रीहिः।) अरिणा गृहीतगर्व्वः। दूरीभूताहङ्कारः। भग्नदर्पः। इत्यमरः॥

आत्मगुप्ता, स्त्री, (आत्मना गुप्ता। तृतीया तत्पुरुषः।) लताविशेषः। आलकुशी इति भाषा। तत्पर्य्यायः। मर्कटी २ कण्डुरा ३ अव्यण्डा ४ कच्छुरा ५ जटा ६ जड़ा ७ शूकशिम्बा ८ आमगुप्ता ९ ऋषभी १० कपिकच्छुरा ११। इति रत्नमाला। ("माषैः समानं फलमात्मगुप्तं"। इति सुश्रुतः। विशेषोऽस्याः कपिकच्छुशब्दे द्रष्टव्यः।)

आत्मग्राही, [न्] त्रि, (आत्मन्+ग्रह+णिन्।) आत्मम्भरिः। स्वार्थी॥

आत्मघाती, [न्] त्रि, (आत्मन्+हन्+णिन्।) आत्महन्ता। यथा कूर्म्मपुराणे॥ "व्यापादयेद्वृथात्मानं स्वयं योऽग्न्युदकादिभिः। विहितं तस्य नाशौचं नाग्निर्नाप्युदकादिकं"॥ आत्महननकर्त्ता। अवैधबुद्धिपूर्व्वकात्महननस्य प्रायश्चित्तं यथा,— 'इन्द्रियैरपरित्यक्ता ये च मूढा विषादिनः।

घातयन्ति स्वमात्मानं चण्डालादिहताश्च ये ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च दयया समभिप्लुता ।
यथ श्राद्ध प्रतन्वन्ति विष्णुनामप्रतिष्ठित ॥
तथा ते सप्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य स्वयम्भुवे" ।
इति हेमाद्रौ वृद्धशातातपेनोक्तम् ॥
"आत्मनो घातशुद्ध्यर्थं चरेच्चान्द्रायणद्वय ।
तप्तकृच्छ्रचतुष्कञ्च त्रिंशत् कृच्छ्राणि वा पुन ॥
अर्व्वाक् संवत्सराद् कुर्य्याद्दहनादि यथोदित ।
कृत्वा नारायणबलिमनित्यत्वात्तदायुष ' ॥
इदञ्चात्मवधनिमित्तं तज्जातिवधप्रायश्चित्तेन समुचित कार्य्यम् । इति निर्णयसिन्धौ ५ परिच्छेद ॥ अन्यत् पतितशब्दे द्रष्टव्यम् ॥ * ॥ आत्मत्यागिषु विशेषमाह गौतम । "प्रायोऽनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम्" इति । प्रायो महाप्रस्थानं । अनाशकमनशन । प्रपतनं शैल शिखरादवपातन । इत्यादिनिमित्तै शास्त्राविहितमार्गेण इच्छापूर्व्वकमृतानामशौचादिक न कर्त्तव्यमित्यर्थः । अङ्गिरा ।
"चाण्डालादुदकात् सर्पात् ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि ।
दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरण पापकर्म्मिणा ॥
उदक पिण्डदानञ्च प्रेतेभ्यो यत् प्रदीयते ।
नोपतिष्ठति तत्सर्व्वं अन्तरीक्षे विनश्यति" ॥
यथा मनु ।
"वृथासङ्करजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठता ।
आत्मनस्त्यागिना चैव निवर्त्ततोदकक्रिया" ॥
वृथासङ्करजातानामिति वृथाजाता पञ्चमहायज्ञादिरहिता । सङ्करजाता प्रतिलोमजा ॥ * ॥ प्रमादात् पूर्व्वोक्तनिमित्तैर्म्मरणे विद्यते एवाशौचादिक । अतएवाङ्गिरा ।
"अथ कश्चित् प्रमादेन म्रियेताग्न्युदकादिभि ।
तस्याशौच विधातव्य कर्त्तव्या चोदकक्रिया" ॥
चाण्डालादिमृताहिताग्न्यादीनां प्रतिपत्तिकर्म्म च स्मृत्यन्तरेऽभिहितं ।
"वैतान प्रक्षिपेदप्सु आवसथ्य चतुष्पथे ।
पात्राणि तु दहेदग्नौ यजमाने वृथामृते" ॥
वृथामृत अविहितमार्गेण मृत । तथा,—
"आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया ।
तेषामपि च गङ्गायास्तीरे संस्थापन मत" ॥
गङ्गेति पुण्यनद्युपलक्षण ॥ * ॥ एव पूर्व्वोक्तनिन्दितमरणे मृतानां स्नेहादिनामाद्यौर्द्ध्वदेहिककरणे स्मृत्यन्तरे प्रायश्चित्तमाम्नात ।
"कृत्वाग्निमुदक स्नान स्पर्शन वहन तथा ।
"रज्जुच्छेदाश्रुपातञ्च तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति" । इति ।
एतच्च बुद्धिपूर्व्वे प्रत्येकमग्न्यादिकरणे ॥
अबुद्धिपूर्व्वके तु संवर्त्त ।
"एषामन्यतमं प्रेत यो वहेत दहेत वा ।
कटोदकक्रिया कृत्वा कृच्छ्र सान्तपनं चरेत् ' ॥
यच्च सुमन्त्वादिभिर्मासं भैक्षाहारस्त्रिषवणञ्च । तथा रजकाद्याभोजनादिक चाभिहित तदशक्तविषये देशकालाद्यपेक्षानुसारेण बोद्धव्य ॥ * ॥ यत्तु वृद्धादिसुप्तभिषक्क्रियस्यात्महननमनुज्ञातमादिपुराणे ।
"वृद्ध शौचस्मृतेर्लुप्त प्रत्याख्यातभिषक्क्रिय ।
आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनाम्बुभि ॥
तस्य त्रिरात्रमाशौच द्वितीये त्वस्थिसञ्चय ।
तृतीये तूदक कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत्" ॥
तथा,—
"गच्छेत् महापथ वापि तुषारगिरिमादरात् ।
प्रयागे वटशाखाया देहत्यागं करोति य ॥
स्वयं देहविनाशस्य काले प्राप्ते महामति ।
उत्तमान् प्राप्नुयाल्लोकान्नात्मघाती भवेत् क्वचित् ॥
एतेषामधिकारस्तु सर्व्वेषा सर्व्वजन्तुषु ।
नराणामथ नारीणा सर्व्ववर्णेषु सर्व्वदा ॥
अशौच स्यात् त्र्यहं तेषा वज्रानलहतेषु च ।
वाराणस्यां म्रियेद्यस्तु प्रत्याख्यातभिषक्क्रिय ॥
प्रणव तारक ब्रूते नान्यथा कस्यचित् क्वचित्" ।
विवस्वान् ।
"सर्व्वेन्द्रियविमुक्तस्य स्वव्यापाराक्षमस्य च ।
प्रायश्चित्तमनुज्ञातमग्निपातो महापथ " ॥
धर्म्मार्ज्जनासमर्थस्य द्वादशवार्षिकादिरूपप्रायश्चित्तासमर्थस्य । एव शास्त्राविहितमार्गेण मृताना चाण्डालादिमृताना संवत्सरादूर्द्ध्वमौर्द्ध्वदेहिक कार्य्य । षट्त्रिंशन्मते ।
"गोब्राह्मणहतानाञ्च पतितानां तथैव च ।
ऊर्द्ध्व संवत्सरात् कुर्य्यात् सर्व्वमेवौर्द्ध्वदेहिक" ॥ * ॥
अत्रापर विशेषमाह पराशर ।
"चाण्डालेन श्वपाकेन गोभिर्व्विप्रैर्हतो यदि ।
आहिताग्निर्मृतो विप्रो विषेणात्मघातक ॥
दहेत ब्राह्मण विप्रो लोकाग्नौ मन्त्रवर्ज्जित ।
दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरेण क्षालयेत्तत ॥
स्वेनाग्निना स्वमन्त्रेण पृथगेतत् पुनर्दहेत्" ॥ * ॥
संवत्सरादर्व्वागपि तत्तत्पापानुसारेण द्विगुणादिप्रायश्चित्त विधाय नारायणबलिञ्च कृत्वा और्द्ध्वदेहिक कार्य्य । आयुषोऽनित्यत्वेन संवत्सरानन्तरमौर्द्ध्वदेहिकादिलोपप्रसङ्गात् । तच्च नारायणबलि कृत्वा । तथा च वृद्धयाज्ञवल्क्य ।
"नारायणबलि कार्य्यो लोकगर्हाभयान्नरै ।
तथा तेषा भवेत् शौच नान्यथेत्यब्रवीद्यम " ॥
नारायणबलौ कृते और्द्ध्वदेहिककरणे भवतीत्यर्थ ॥ * ॥ सर्पहते तु विशेष । संवत्सर यावत् पञ्चम्या नागपूजा विधाय तदनन्तर नारायणबलि कृत्वा सौवर्णनाग प्रत्यक्षा गाञ्च व्यासोद्देशेन ब्राह्मणाय दत्त्वा और्द्ध्वदेहिक कुर्य्यात् ॥ * ॥ नारायणबलिस्वरूपञ्च विष्णुनाभिहित ।
"एकादशीं समासाद्य शुक्लपक्षस्य वै तिथि ।
विष्णुं समर्च्चयेद्देव यम वैवस्वत तथा ॥
दशपिण्डान् घृताभ्यक्तान् दर्भेषु मधुसंयुतान् ।
तिलमिश्रान् प्रदद्याद्वै संयतो दक्षिणामुख ॥
विष्णुं बुद्धौ समासाद्य नद्यम्भसि तत क्षिपेत् ।
नामगोत्रग्रह कृत्वा पुष्पैरभ्यर्च्च्य तत ॥
धूपदीपप्रदानञ्च भक्ष्यभोज्य तथापरं ।
विद्यातप समृद्धान् वै कुलोत्पन्नान् समाहितान् ॥
निमन्त्रयेत विप्रान् वै पञ्च सप्त नवापि वा ।
अपरेऽहनि सम्प्राप्ते मध्याह्ने समुपोषित ॥
विष्णोरभ्यर्च्चनं कृत्वा विप्रांस्तानुपवेशयेत् ।
उदङ्मुखान् यथाज्येष्ठ पितृरूपमनुस्मरन् ॥
मनो निवेश्य विष्णौ वै सर्व्व कुर्य्यादतन्द्रित ।
आवाहनादि यत् प्रोक्त दैवपूर्व्व तदाचरेत् ॥
तृप्तान् ज्ञात्वा ततो विप्रांस्तृप्तिं पृष्ट्वा यथाविधि ।
हविष्यव्यञ्जनेनैव तिलादिसहितेन च ॥
पञ्च पिण्डान् प्रदद्याच्च देवरूपमनुस्मरन् ।
प्रथम विष्णवे दद्यात् ब्रह्मणे च शिवाय च ॥
यमाय सानुचाराय चतुर्थ पिण्डमुत्सृजेत् ।
मृतं सङ्कीर्त्य मनसा गोत्रपूर्व्वमत पर ॥
विष्णोर्नाम गृहीत्वैव पञ्चम पूर्व्ववत् क्षिपेत् ।
विप्रानाचम्य विधिवत् दक्षिणाभि समर्च्चयेत् ॥
एक वृद्धतम विप्रं हिरण्येन समर्च्चयेत् ।
गवा वस्त्रेण भूम्या च प्रेत त मनसा स्मरेत् ॥
ततस्तिलाम्भो विप्रास्तु हस्तैर्दर्भसमन्वितै ।
क्षिपेयुर्गोत्रपूर्व्वन्तु नाम बुद्धौ निवेश्य च ॥
हविर्गन्धतिलाम्भस्तु तस्मै दद्यु समाहिता ।
मित्रभृत्यजनै सार्द्ध पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यत " ॥
भविष्यपुराणे ।
"सुवर्णतारनिष्पन्न नाग कृत्वा तथैव गा ।
व्यासाय दत्त्वा विधिवत् पितुरानृण्यमाप्तवान्" ॥
इति मदनपारिजाते ५ स्तवक ॥

**आत्मघोष**, पु, (आत्मान घोषयतीति । आत्मन् + घुष् + अण् ।) काक । इत्यमर ॥ कुक्कुट । इति शब्दचन्द्रिका ॥

**आत्मज**, पु, (आत्मन् + जन् + ड । आत्मा वै जायते पुत्र इति श्रुते ।) पुत्र । इत्यमर ॥ मनु, १७।१४ ।
"तस्यार्थे सर्व्वभूतानां गोप्तारं धर्म्ममात्मज" ।
यथा रामायणे,—
"दिश प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजा" ॥)

**आत्मजन्मा** [न्] पु, (आत्मन जन्म यस्य स बहुव्रीहि ।) पुत्र । इति शब्दरत्नावली ॥
यथा कुमारसम्भवे, ६ । २८ ।
"अत आहर्त्तुमिच्छामि पार्व्वतीमात्मजन्मने" ।
यथा रघुवंशे, १ । ३३ ।
"तस्यामात्मानुरूपायामात्मजन्मसमुत्सुक " ॥)

**आत्मजा**, स्त्री, (आत्मन् + जन् + ड + आप् ।) कन्या । इत्यमर ॥ बुद्धि । इति शब्दरत्नावली ॥

**आत्मतत्त्व**, क्ली, (आत्मन तत्त्व स्वरूपम् ।) तत्तद्रासक नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यस्वभाव प्रत्यक्चैतन्यमेवात्मतत्त्व । पुत्रादिभासकं नित्यशुद्धत्वादिस्वरूपमेवात्मवस्त्विति यावत् । एतद्विवरण यथा । "इदानीं प्रत्यगात्मनि इदमिदमयमयमारोपयतीति विशेष उच्यते । तथाच । अतिप्राकृतस्तु आत्मा वै जायते पुत्र इत्यादि श्रुते स्वस्मिन्निव स्वपुत्रेऽपि प्रेमदर्शनात् पुत्रे पुष्टे नष्टेऽहमेव पुष्टो नष्टश्चेत्याद्यनुभवाच्च पुत्र आत्मेति वदति ॥ १ ॥ चार्व्वाकस्तु स वा एष पुरुषोऽन्नरसमय इत्यादि श्रुते प्रदीप्तगृहात् स्वपुत्र परित्यज्यापि स्वस्य निर्गमदर्शनात् स्थूलोऽहं कृशोऽहं इत्याद्यनुभवाच्च स्थूलशरीरमात्मेति वदति ॥ २ ॥ अपरश्चार्व्वाक तेऽप्राणा प्रजापति पितर [illegible]

रित्यादिश्रुतेः इन्द्रियाणामभावे शरीरचलना-भावात् काणोऽहं बधिरोऽहं इत्याद्यनुभवाच्च इन्द्रियाण्यात्मेति वदति ॥ ३ ॥ अन्यस्तु चार्व्वाकः अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमय इत्यादिश्रुतेः प्राणा-भावे इन्द्रियचलनायोगात् अहमशनायावानहं पिपासावान् इत्याद्यनुभवाच्च प्राण आत्मेति वदति ॥ ४ ॥ इतरस्तु चार्व्वाकः अन्योऽन्तर आत्मा मनोमय इत्यादिश्रुतेः मनसि सुप्ते प्राणादेर-भावात् अहं सङ्कल्पवानहं विकल्पवानित्याद्य-नुभवाच्च मन आत्मेति वदति ॥ ५ ॥ बौद्धस्त्वन्यो-ऽन्तर आत्मा विज्ञानमय इत्यादिश्रुतेः कर्त्तुरभावे करणस्य शक्त्यभावात् अहं कर्त्ताहं भोक्ता इत्या-द्यनुभवाच्च बुद्धिरात्मेति वदति ॥ ६ ॥ प्राभाकर-तार्किकौ तु अन्योऽन्तर आत्मा आनन्दमय इत्यादिश्रुतेः सुषुप्तौ बुद्ध्यादीनामज्ञाने लयदर्श-नात् अहमज्ञोऽहं ज्ञानीत्याद्यनुभवाच्च अज्ञान-मात्मेति वदतः ॥ ७ ॥ भट्टस्तु प्रज्ञानघन एवानन्द-मय आत्मेत्यादिश्रुतेः सुषुप्तौ प्रकाशाप्रकाशसद्-भावात् मामहं न जानामि इत्याद्यनुभवाच्च अज्ञा-नोपहितं चैतन्यमात्मेति वदति ॥ ८ ॥ अपरो बौद्धः असदेवेदमग्र आसीदित्यादिश्रुतेः सुषुप्तौ सर्व्वा-भावादहं सुषुप्तौ नासमित्युत्थितस्य स्वाभाव-परामर्शविषयानुभवाच्च शून्यमात्मेति वदति ॥ ९ ॥ एतेषां पुत्रादीनां शून्यपर्य्यन्तानामनात्मत्व-मुच्यते। एतैरतिप्राकृतवादिभिरुक्तेषु श्रुति-युक्त्यनुभवाभासेषु पूर्ब्बपूर्ब्बोक्तश्रुतियुक्त्यनुभवाभासा-नामुत्तरोत्तरश्रुतियुक्त्यनुभवाभासैरात्मत्वबाधदर्श-नात् पुत्रादीनामनात्मत्वं स्पष्टमेवेति ॥ १० ॥ किञ्च प्रत्यगस्थूलोऽचक्षुरप्राणोऽमना अकर्त्ता चैतन्यं चिन्मात्रं सदित्यादिप्रबलश्रुतिविरोधात् अस्य पुत्रादिशून्यपर्य्यन्तस्य जडस्य चैतन्यभास्यत्वेन घटादिवदनित्यत्वात् अहं ब्रह्मेति विद्वदनुभव-प्राबल्याच्च तत्तच्छ्रुतियुक्त्यनुभवाभासानां बाधित-त्वादपि पुत्रादिशून्यपर्य्यन्तमखिलमनात्मैव। अत-स्तत्तद्भासकं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यस्वभावं प्रत्यक्-चैतन्यमेवात्मतत्त्वमिति वेदान्तविदनुभवः" । इति वेदान्तसारः (५०—५८) ।

आत्मदर्शः, पुं, (आत्मन् + दृश् + घ ।) दर्पणः । इति हेमचन्द्रः । (यथा रघुवंशे । "निश्वासवाष्पापगमात् प्रपन्नः प्रसादमात्मीयमिवात्मदर्शः" ।)

आत्मनीन, त्रि, (आत्मन् + ख ।) आत्मने हितः । इति व्याकरणम् ॥ पथ्यः । इति राजनिर्घण्टः ॥ ("भजनिर्वृतिमात्मनीनाम्" । इति प्रबोधचन्द्रो-दये ।)

आत्मनीनः, पुं, (आत्मन् + ख ।) सुतः । श्यालः ॥ प्राणाधारः । विदूषकः । इत्यजयः ॥

आत्मबन्धुः, पुं, (आत्मनः बन्धुः । षष्ठीतत्पुरुषः ।) यदुक्तम् "आत्ममातृस्वसुः पुत्त्रा आत्मपितृस्वसुः सुताः । आत्ममातुलपुत्त्राश्च विज्ञेया आत्म-बान्धवाः" ।) पितृस्वसृपुत्त्रः । मातुलपुत्त्रः । मातृ-स्वसृपुत्त्रः । इति स्मृतिः ॥

आत्मवीरः, पुं, (आत्मा वीर इव यस्य ।) प्राणवान् । श्यालकः । विदूषकः । इति मेदिनी ॥

आत्मभूः, पुं, (आत्मन् + भू + क्विप् ।) ब्रह्मा । काम-देवः । कन्दर्पः । विष्णुः । शिवः । इति शब्द-रत्नावली ॥

(यथा रघुः १० । २० ।

"सर्व्वज्ञस्त्वमविज्ञातः सर्व्वयोनिस्त्वमात्मभूः" ।)

आत्मगुप्ता, स्त्री, (आत्मन् + गुप + टाप् ।) कपि-कच्छुः । इति शब्दमाला ॥ (दुरालभात्मे-ऽप्यात्मगुप्तोच्चटे ।)

आत्मम्भरिः, त्रि, (आत्मानं बिभर्त्ति, आत्मन् + भृ + इन् + मुम् ।) आत्मोदरमात्रभरणकर्त्ता । स्वोदरपूरकः । कुक्षिम्भरिः । उदरम्भरिः । इत्यमरः ॥ (स्वार्थपरः, परार्थनिरपेक्षः स्वार्थ-साधनपरः । यथा भट्टिकाव्ये । "आत्मम्भरि-स्त्वं पिशितैर्नराणाम्" । यथा हितोपदेशे ।

"स्वार्थं परित्यज्य उदारचेतसः ।

आत्मम्भरिः पुत्त्रकलत्रकाद्यैः" ॥)

आत्मयोनिः, पुं, (आत्मा योनिः उत्पत्तिस्थानं यस्य बहुव्रीहिः ।) ब्रह्मा । विष्णुः । शिवः । कामदेवः । इति मेदिनीकोषशब्दरत्नावल्यौ । (यथा कुमारे ६ । ९ ।

"इदं चकौतुकयावत्

प्रवृत्तिमनुवृत्तमात्मयोनिः" ।)

आत्मरक्षा, स्त्री, महेन्द्रवारुणीलता । इति राज-निर्घण्टः ॥ (आत्मनो रक्षणम् ।)

आत्मरूपा, स्त्री, शतावरी । इति राजनिर्घण्टः ॥

आत्मच्छाया, स्त्री, ( आत्मनः छाया । ) आत्मनः प्रतिच्छाया ॥

आत्महत्या, स्त्री, ( आत्मनः हत्या । ) आत्मघातः । मरणम् ॥

आत्महा, [न्] पुं, (आत्मन् + हन् + क्विप् ।) देवलः । इति शब्दरत्नावली ॥ आत्मघाती । "नरदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारं । मया-नुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा" ॥ इति श्रीभागवतम् । (अपरञ्च यथा, "लब्ध्वा कथञ्चित् नरजन्म दुर्लभं तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनं । यस्त्वात्ममुक्त्यै न यतेत मूढधीः स आत्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात्" ।)

आत्मा, [न्] पुं, (अतति सन्ततभावेन जाग्रदादि-सर्व्वावस्थास अनुवर्त्तते, अत सातत्यगमने + मनिण् ।) यत्नः । धृतिः । बुद्धिः । स्वभावः । ब्रह्म । देहः । इत्यमरः ॥ मनः । इति मेदिनी ॥ परमात्मा । इति धरणी ॥ पुत्त्रः । इति शब्दरत्नावली ॥ जीवः । अर्कः । हुताशनः । वायुः । इति हेमचन्द्रः ॥

("आत्मन्च करणैर्योगात् ज्ञानं तस्य प्रवर्त्तते" ।

"अयमात्मा क्षेत्रज्ञः शाश्वतो विभुरव्ययः" ।

"चेतनावान् यतश्चात्मा ततः कर्त्ता निरुच्यते" ।

"देही सर्व्वगतोह्यात्मा स्वे स्वे संस्पर्शनेन्द्रिये ।

सर्व्वाः सर्व्वाश्रयस्थास्तु नात्मातो वेत्ति वेदनाः" ॥

"विभुत्वमत एवास्य यस्मात् सर्व्वगतो महान् ।

मनसश्च समाधानात् पश्यत्यात्मा तिरस्कृतः" ॥

"अनादित्वात्मस्य आत्मनः क्षेत्रपारम्पर्य्यमनादिकं" ।

"न सर्व्वगं सर्व्वशरीरगञ्च,

न विश्वकर्म्मा न च विश्वरूपः ।

न चेतनावानपि नेन्द्रियश्च,

न नित्यसूक्ष्मस्तु च गम्यते ॥

स आत्मनः कारणमस्ति किञ्चित्,

भूतानि विज्ञानमतश्च देहे ।

भूतानि तस्मात् क्रमशोऽपि तानि,

निजस्वरूपाणि च सप्तधातुम् ॥

भूतानि मातापितृसम्भवानि,

रसाच्च भूतानि कलावशेषे ।

आकाशतः पुष्पमिवागमानि-

र्गत्वानि भूतानि दृढोदराणि ॥

भूतानि चत्वारि तु कर्म्मजानि,

यान्यात्मलीनानि विशन्ति गर्भं ।

स बीजधर्म्मा ह्यपरापराणि,

देहान्तराण्यात्मनि याति याति ॥

रूपादिरूपमतः प्रसिद्ध,

कर्म्मात्मकस्य मनसो मनश्च ।

भवन्ति येऽत्राकृतिबुद्धिभेदा

रजस्तमस्तत्र च कर्म्महेतुः ॥

अतीन्द्रियैस्तैरतिसूक्ष्मरूपै-

रात्मा कदाचिन्न वियुज्यते ।

न कर्म्मणा नैव मनोमतिभ्यां

न चाप्यहङ्कारविकारदोषैः" ॥

इति चरकः ।

"यदा यदात्मानमतिकान्दः भवे

तदा मनस्यधितिष्ठतीन्द्रियं ।

ततो मनोऽधिष्ठितमिन्द्रियं घटे-

प्रवर्त्तते सत्त्वबुद्धिसम्भवे" ।

इति वैद्यकचक्रपाणिदत्तः ।)

आत्माधीनः, पुं, (आत्मनोऽधीनः ।) पुत्रः । प्राणा-धारः । श्यालकः । विदूषकः । इति हेमचन्द्रः ।

आत्मारी, [न्] पुं, (आत्मन् + अश + णिन् ।) मत्स्यः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

आत्माश्रयः, पुं, (आत्मा आश्रयो यस्य सः ।) तर्क-विशेषः । तस्य लक्षणम् । स्वापेक्षापादकप्रसङ्गः । अपेक्षा च ज्ञप्तौ उत्पत्तौ स्थितौ च ग्राह्या । तद्यथा यथा । एतद्घटज्ञानं यद्येतद्घटज्ञानजन्यं स्यात् एतद्घटज्ञानभिन्नं स्यात् । द्वितीया तु घटो-ऽयं यद्येतद्घटजनकः स्यात् एतद्घटभिन्नः स्यात् । तृतीया च अयं घटो यद्येतद्घटवृत्तिः स्यात् तदात्मत्वेनोपलभ्येत इति ॥

आत्मीय, त्रि, (आत्मन् + छ ।) स्वकीयः । स्वः । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा रघुवंशे । "प्रसादमात्मीयमिवात्मदर्शः" । कुमारसम्भवे । २ । १९ ॥ "किमिदं द्युतिमात्मीयां न बिभर्त्ति यथा पुरा" ।)

आत्मोद्भवा, स्त्री, (आत्मनः उद्भवो यस्याः सा ।) माषपर्णी । इति राजनिर्घण्टः । कन्या । पुत्रे, पुं । (माषपर्णीशब्देऽस्या विशेषो ज्ञातव्यः ।)

आत्रेयः, पुं, (अत्रेरपत्यं पुमान् । अत्रि + ढक् ।) अत्रिमुनिपुत्त्रः । स च दत्तः । दुर्व्वासाः । चन्द्रश्च ।

इति मेदिनी ॥ शरीरस्थरसधातुः । इति हेमचन्द्रः ॥

आत्रेयिका, स्त्री, (अत्रि+ढक्+कन्+टाप् ।) ऋतुमती । इति हलायुधः ॥

आत्रेयी, स्त्री, (अत्रि+ढक्+ङीप् ।) पुष्पवती स्त्री । (यथाह अङ्गिराः,—
"आहिताग्नेर्ब्राह्मणस्य हत्वा पत्नीमनिन्दिताम् ।
ब्रह्महत्याव्रतं कुर्य्यात् आत्रेयीघ्नस्तथैव च" ॥)
नदीविशेषः । इति मेदिनी ॥ (अत्रिमुनिपत्नी ।) यथा भारते,—
"सरयूर्वारवत्या च लाङ्गली च सरिद्वरा ।
करतोया तथात्रेयी लौहित्यश्च महानदः" ॥)

आथर्व्वणं, क्ली, (अथर्व्वन्+अण् ।) अथर्व्वणां समूहः । अथर्व्वनाम्ना मुनिना प्रोक्तो वेदः अथर्व्वा तेषां सङ्घः । इत्यमरः ॥ शान्तिस्तदः । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा महावीरचरिते ।
"आथर्व्वणस्तोम इवाभिचारः" ।)

आथर्व्वणः, पुं, (अथर्व्व वेत्तीति । अथर्व्वन्+अण् ।) पुरोहितः । अथर्व्ववेदज्ञब्राह्मणः । इति हेमचन्द्रः ॥

आदरः, पुं, (आङ्+दृ+अप् ।) आरम्भः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ समादरः । सम्मानः ॥ (यथा किरातार्ज्जुनीये ५ । १६ ।
"स जगदे वचनं प्रियमादरात्
मुखरतावसरे हि विराजते" ।
कुमारसम्भवे ६ । १३ ।
"तद्दर्शनादभूत् शम्भोर्भूयान् दारार्थमादरः" ।
हितोपदेशे ।
"सन्तुष्टस्य करप्राप्तेऽप्यर्थे भवति नादरः" ।)

आदर्य्यः, त्रि, (आङ्+दृ+ण्यत् ।) आदरणीयः । आदर्त्तव्यः ॥ आदरोपयुक्तः ॥

आदर्शः, पुं, (आङ्+दृश्+घञ् ।) दर्पणः । टीका । प्रतिपुस्तकम् । इति मेदिनी ॥ (यथा भगवद्गीतायां ।
"धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्" ॥)

आदानं, क्ली, (आङ्+दा+ल्युट् ।) ग्रहणम् । अश्वाभरणम् । इति मेदिनीहेमचन्द्रौ ॥ रोगलक्षणम् । इति राजनिर्घण्टः । (स्वीकारः प्रतिग्रहः । यथा कुमारसम्भवे ५ । ११ ॥
"कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः" ॥ मनु, ७ । २०४ ।
"आदानमप्रियकरं दानञ्च प्रियकारकम् ।
अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते" ॥)

आदानी, स्त्री, (आ+दा+ल्युट्+ङीप् ।) हस्तिघोषालता । इति रत्नमाला ॥

आदिः, पुं, (आङ्+दा+कि ।) पूर्ब्बः । प्रथमः । इत्यमरः ॥ पदान्ते गणसूचकः । यथा इत्यादिः ॥ (प्रारम्भः । प्राक्सत्ता । नियतपूर्ब्बवर्त्तिकारणम् । उत्पत्तिहेतुः । सामीप्ये । व्यवस्थायां । प्रकारे, अवयवार्थे च आदिशब्दस्य प्रयोगो भवति । यदुक्तं,—
"सामीप्येऽथ व्यवस्थायां प्रकारेऽवयवे तथा ।
आदिशब्दं तु मेधावी चतुर्ष्वर्थेषु लक्षयेत्" ॥
यथा माघे १ । ८ ।
"अपएव ससर्ज्जादौ तासु वीजमवासृजत्" ।
कुमारे २ । ९ । "जगदादिरनादिस्त्वम्" ॥)

आदिकविः, पुं, (आदिः प्रथमः कविः ।) ब्रह्मा । इति श्रीभागवतम् ॥ वाल्मीकिमुनिः । इति हेमचन्द्रः ॥ ("तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः" । इति भागवते १ । ४ ।)

आदिकारणं, क्ली, (आदि आद्यं कारणम् ।) पूर्ब्बनिमित्तं । मूलहेतुः । तत्पर्य्यायः । निदानं २ । इत्यमरः ॥

आदिगदाधरः, पुं, (आदिराद्यः आदौ पूजितो वा गदाधरः ।) गयास्थदेवताविशेषः । यथा,—
"गयाशिरश्छादयित्वा गुरुत्वादास्थिता शिला ।
कालान्तरेण व्यक्तश्च स्थित आदिगदाधरः ॥
तथा व्यक्तोऽव्यक्तरूपी आसीदादौ गदाधरः ।
आदिरादौ पूजितोऽत्र देवैर्ब्रह्मादिभिर्यतः ॥
पाद्याद्यगन्धपुष्पाद्यैरत आदिगदाधरः" ॥
इति गारुडे गयामाहात्म्ये ८५ अध्यायः ॥
अपिच
"गदयादाववष्टभ्य गयासुरशिरः शिला ।
निश्चलार्थं स्थितो यस्मात्तस्मादादिगदाधरः" ॥
इति वायुपुराणीयगयामाहात्म्ये ८ अध्यायः ॥

आदितालः, पुं, (आदिराद्यस्तालः ।) तालविशेषः । यथा,—सङ्गीतदामोदरः ।
"एकएव लघुर्यत्र आदितालः स कथ्यते ।
गुरुस्तत् पुरतो वाद्य प्रायेणैतन्निदर्शनम्" ॥ इति ।

आदितेयः, पुं, (अदितेरपत्यं पुमान् । अदिति+ढक् ।) अदितिपुत्त्रः । देवः । इत्यमरः ॥

आदित्यः, पुं, (अदितेरादित्यस्य वा अपत्यं+ण्य ।) देवः । सूर्य्यः । इत्यमरमेदिन्यौ ॥ द्वादशादित्यगणे बहुवचनान्तः । इत्यमरः ॥ तत्प्रत्येकनामानि । विवस्वान् १ अर्य्यमा २ पूषा ३ त्वष्टा ४ सविता ५ भगः ६ धाता ७ विधाता ८ वरुणः ९ मित्रः १० शक्रः ११ उरुक्रमः १२ । एते कश्यपात् अदितिभार्य्यायां जाताः । कल्पान्तरे त्वष्टृकन्या सञ्ज्ञा आदित्यपत्नी आदित्यस्य तेजः सोढुमसमर्था अतस्तस्याः पितृकृतादित्यद्वादशखण्डा द्वादशादित्याः । तेषां द्वादशमासेष्वेकैकस्योदयः । इति पुराणं ॥ अर्कवृक्षः । इत्यमरः ॥ आकन्द इति भाषा । ("आदित्यमण्डलस्थितो हिरण्मयोविष्णुः" । यथा शान्तिशतके । ४ । २४ ।
"आदित्यस्य गतागतैरहरहः सङ्क्षीयते जीवितम्" ।
भारते ।
"आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च
द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च" ।
हरिवंशे द्वादशादित्यकथा यथा ।
"मरीचात् कश्यपाज्जातास्तेऽदित्या दक्षकन्यया ।
तत्र शक्रश्च विष्णुश्च जज्ञाते पुनरेव हि ॥
अर्य्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा च भारत ।
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः" ॥
तस्य सवत्सरात्मनो भगवानादित्यो गतिविशेषेणाक्षिनिमेषकाष्ठाकलामुहूर्त्ताहोरात्रपक्षमासर्त्त्वयनसंवत्सरयुगप्रविभागं करोति ॥ इति सुश्रुतः)

आदित्यपत्त्रः, पुं, (आदित्यवृक्षस्य पत्त्रमिव पत्त्रमस्य ।) क्षुपविशेषः । तत्पर्य्यायः । अर्कपत्त्रः २ अर्कदलः ३ सूर्य्यपत्त्रः ४ तपनच्छदः ५ कुष्ठारिः ६ विटपः ७ सुपत्त्रः ८ रविप्रियः ९ रश्मिपतिः १० रुद्रः ११ । अस्य गुणाः । कटुत्वं । उष्णवीर्य्यत्वं । कफवातरोगजाठरगुल्मारोचकनाशित्वं । अग्निसन्दीपनत्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥

आदित्यपुष्पिका, स्त्री, (आदित्यवत् लोहितं पुष्पमस्याः ।) लोहितार्कवृक्षः । इति रत्नमाला ॥ राङ्गा आकन्द इति भाषा ।

आदित्यभक्ता, स्त्री, (आदित्यस्य भक्ता ।) ओषधीविशेषः । हुडहुडिया इति भाषा । तत्पर्य्यायः । वरदा २ अर्कभक्ता ३ सुवर्च्चला ४ सूर्य्यलता ५ सूर्य्यावर्त्ता ६ अर्ककान्ता ७ मण्डूकपर्णी ८ सुरसम्भवा ९ सौरी १० सुतेजाः ११ अर्कहिता ११ वरिष्ठा १३ मण्डूकी १४ सप्तनामा १५ देवी १६ मार्त्तण्डवल्लभा १७ विक्रान्ता १८ भास्करेष्टा १९ । अस्या गुणाः । हिमत्वं । तिक्तत्वं । कटुत्वं । उग्रत्वं । कफत्वग्दोषकण्डूव्रणकुष्ठभूतग्रहोग्रशीतज्वरनाशित्वञ्च । अन्यच्च । स्वादुपाकरसत्वं । गुरुत्वं । अपित्तवर्द्धकत्वं । क्षाररसत्वं । विष्टम्भवातनाशित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥

आदित्यसूनुः, पुं, (अदितेरपत्यं पुमान् आदित्यः सूर्य्यः तस्य सूनुः षष्ठीतत्पुरुषः ।) सुग्रीववानरः । इति हेमचन्द्रः ॥ यमः । शनैश्चरः । सावर्णिमनुः । वैवस्वतमनुः । इति पुराणम् ॥ (कर्णः ।)

आदिदेवः, पुं, (आदिः कारणं स च देवश्चेति कर्म्मधारयः ।) नारायणः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (जगदुपादानादिगुणवान् वासुदेवः विष्णुः, महादेवः, ब्रह्मा च यथा, भगवद्गीतायां, १० । १२ ।
"परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥
त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्" ॥
यथा, महाभारते,—सूर्य्यस्य नामाष्टशतमध्ये परिगणितो नामभेदः ।
"अंशुमन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः" ॥)

आदिमः, त्रि, (आदौ भवः अग्रादिपश्चात् डिमच् । यद्वा मध्यान्म इत्यत्रादेश्चेति वचनात् म ।) आद्यः । प्रथमभववस्तु । इत्यमरटीका व्याकरणञ्च ॥ (यथाह भाषापरिच्छेदे,—
"एते पञ्चान्यथासिद्धा दण्डत्वादिकमादिमम्" ।
"आदिमः शैलशैलादिसंयोगः परिकीर्त्तितः" ॥)

आदिराजः, पुं, (आदिः प्रथमः राजा इति राजाहःसखिभ्यष्टच् ।) पृथुराजः । इति हेमचन्द्रः ॥ (महीक्षितामाद्यो वैवस्वतो मनुः । अविक्षित्पुत्त्रः स्वनामख्यातः पौरवो राजा । यथा, रामायणे ।
"आदिराजो मनुरिव प्रजानां परिरक्षिता" ॥
महाभारते ।
"अविक्षितः परिक्षित्तु शबलाश्वश्च वीर्य्यवान् ।
आदिराजो विराजश्च शाल्मलिश्च महाबलः" ॥)

आदिवराह, पुं, (आदिः कारणं स च वराहश्चेति कर्म्मधारयः ।) विष्णुः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ आदिशूकरः । आद्यकोलः ॥

आदिष्ट, क्ली, (आङ्+दिश्+क्त ।) उच्छिष्टम् । इति मेदिनी ॥

आदिष्ट, त्रि, (आङ्+दिश्+क्त ।) आदेशितः । आज्ञप्तः इति मेदिनी । (निर्द्दिष्टः, उपदिष्टः, अनुशासितः, अभिहितः ।)

आदीनव, पुं, (दीङ् क्षये भावे क्त । आदन आदीनम्, आदीनमस्त्यस्येति मतुप् । आदीनस्य वा मत् । मस्य वः इति माङ्गल्यात् वाते क ।) क्लेशः । इत्यमरः ॥ दोषः । दुरन्तः । इति मेदिनी ॥ (यथा, शिशुपालवधे २ । २९ ।

"यदासदेवेगादीनमनादीनवमीरितम्" ।)

आदीपनं, क्ली, (आदीप्यते आङ्+दीप्+भावे ल्युट् ।) आलिम्पनम् । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ आलिपना इति भाषा ।

आदृत, त्रि, (आङ्+दृङ्+आद्रियते स कर्म्मणि क्त ।) कृतादरः । सादरः । अर्च्चितः । पूजितः । इत्यमरः ॥ (सावधानः, अवहितः, अप्रमत्तः । यथा, पञ्चतन्त्रे,

"आत्मास्मादृतो रक्षेत्प्रमादाद्धि विनश्यति" ।)

आदृत्य, त्रि, (आङ्+दृ+क्यप् ।) आदरणीयः । आदरयोग्यः ॥

आदेश, पुं, (आङ्+दिश्+भावे घञ् ।) आज्ञा । इति हेमचन्द्रः ॥ ज्योतिःशास्त्रफलम् । इति सिद्धान्तशिरोमणिः ॥ वर्णस्य वर्णान्तरोत्पत्तिः । प्रकृतिप्रत्ययोपघातिकार्य्यम् । इति व्याकरणम् ॥ (अनुमतिः, शासनं, उपदेशः, शास्त्राचार्य्योपदेशगम्यो वार्त्तासञ्चारः, कार्य्यभेदः, यथा मुग्धबोधे "स्वामिवदादेशः" । यथा, मनुः, ८ । २५८ ।

"मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्रायैश्चाणिकैः सह" ।)

आदेशी, [न्] पुं, (आङ्+दिश्+णिनि ।) दैवज्ञः । गणकः । इति हेमचन्द्रः ॥ (त्रि, आदेशकर्त्ता, उपदेष्टा, यथा, रघुवंशे, ४ । ६८ ।

"कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम्" ।)

आदेष्टा, [ऋ] पुं, (आदिशति ऋत्विगादीन् यागादिविषयसम्पादनाय प्रेरयति । आङ्+दिश अतिसर्ज्जने+तृच् ।) यागविषये ममेष्टसम्पादनाय यथार्थं कर्म्म कुर्व्विति ऋत्विजामादेशकः । तत्पर्य्यायः व्रती २ यष्टा ३ यजमानः ४ । इत्यमरः ॥ अभ्यादेष्टा ५ याजकः ६ । इति हेमचन्द्रः ॥ आदेशकर्त्ता ॥

आद्य, क्ली, (अद्यते यत् अद् कर्म्मणि ण्यत् ।) धान्यम् । इति राजनिर्घण्टः ॥ अदनीयद्रव्ये त्रि ॥ (यथा— मनुः, ५ । २४ ।

"यत्पर्य्युषितमप्याद्यं हविः शेषञ्च यद्भवेत् ।

चिरस्थितमपि त्वाद्य"—इत्यादि ।)

आद्यः, त्रि, (आदौ भवः दिगादिभ्यो यत् यद्वा अद्यते य अद् कर्म्मणि ण्यत् ।) प्रथमः । इत्यमरः ॥ (यथा महाभारते,—

"बोधितोऽहं नृपश्रेष्ठ त्वयैवाद्येन कर्म्मणा" । रघुवंशे, १ । ११ ।

"आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव" ।) भक्ष्यः । यथा मनुः ५ । ३९ ।

"पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः" ।

आद्यकवि, पुं, (आद्यश्च कविश्चेति कर्म्मधारयः ।) वाल्मीकिमुनिः । इति भूरिप्रयोगः ॥ (पुराणकविः ब्रह्मा) ।

आद्यमाषक, पुं, (आद्य+माष्+ण्वुल् इति माष्+क ।) माषकपरिमाणम् । पञ्चरत्तिका । इत्यमरः ॥ तदुक्तं भास्कराचार्य्येण,—

"दशार्द्धगुञ्जं प्रवदन्ति माषं" ।)

आद्यबीज, क्ली, (आद्यं मुख्यं बीजं कारणं ।) आदिकारणम् । इति जटाधरः ॥

आद्या, स्त्री, (आदौ भवा दिगादित्वात् यत् टाप् ।) दुर्गा । इति शब्दरत्नावली । काली । तारा । त्रिपुरसुन्दरी । भुवनेश्वरी । इति तन्त्रसारधृतनीलतन्त्रादिशिवोक्तत्वात् । प्रथमा स्त्री । महाविद्या । यथा, मुण्डमालातन्त्रे १० पटलः ॥

"काली तु दक्षिणे काली आद्या नीलाद्या भुवनेश्वरी ।

द्वादशे नायिनी आद्या सर्व्वे सर्व्वे प्रकीर्त्तिता ॥

मानमेन प्रवक्ष्यामि रूपेदं श्रावणे ।

न भेदं कालिकायाश्च ताराया ब्रह्मणीश्वरि ॥

षोडशा भुवनायाश्च भैरव्याश्छिन्नरैश्वरि ।

छिन्नायाश्च धूमायाः भीमायाः परमेश्वरि ॥

सतत कमलायुक्ताः मातङ्ग्याश्च सुरेश्वरि ।

न च भेदो महेशानि विद्यायाः वरवर्णिनि" ॥ आदिभूते त्रि ॥

आद्यून, त्रि, (आम् पूर्व्वात् दीव्यतेरकर्म्मकत्वात् क्त । दिवोविजिगीषायामिति निष्ठातस्य नत्वम् यस्य विभाषेति नेट्, च्छ्वोरित्यूट् ।) औदरिकः । इत्यमरः ॥ पेटुक इति भाषा । (यद्वा, अमरे ।

"आद्यून स्यादौदरिके विजिगीषाविवर्ज्जिते" ।

"आद्यून शरदङ्घ्रिणेव प्रायोपवेशावलम्बितः" ।

इति किराते ११ । ५ ।) आदिदीनः ॥

आद्योपान्त, क्ली, (आद्यश्च उपान्तश्च द्वन्द्व ।) पूर्व्वापरम् । इत्यकारणागादि इति भाषा ॥

आधमन, स्त्री, (आधीयते आङ्+धा+कमनच् ।) बन्धकः । इति स्मृतिः । (आधिः । यथा मनुः,—

"योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम् ।

यत्र वाप्युपधिं पश्येत् तत्सर्व्वं विनिवर्त्तयेत्" ॥

आधान, क्ली, (आधीयते आङ्+धा+भावे ल्युट् यद्वा आधीयते स्थाप्यते यत् कर्म्मणि ल्युट् ।) गर्भाधानम् । अग्न्याधानम् । स्थापितद्रव्यम् । इति स्मृतिः ॥ (ग्रहणम्, धारणम् । अधिगमः, करणम् । सम्पादनम् । श्रौतानि स्मार्त्तानि वा ग्रहणं, ब्राह्मणानां प्रतिदिनकर्त्तव्या विहितवह्निस्थापनपूर्व्वकहोमादिक्रिया, यजनं, होमः । यथा रघुवंशे, १ । २४ ।

"प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।

स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः" ॥

यथा मनुः, ५ । १६८ ।

"भार्य्यायै पूर्व्वमारिण्यै दत्वाग्नीनन्त्यकर्म्मणि ।

पुनर्द्दारक्रियां कुर्य्यात् पुनराधानमेव च" ॥

यथा महाभारते,—

"गर्भेषो पुनराधान विधिपूर्व्वेण कर्म्मणा" ।

यथा मेघदूते, पूर्व्वमेघे । ९ ।

"तस्मा स्थिता नयनपि प्रकः कौतुकाधानहेतो"

आधानिक, क्ली, (आधानं गर्भाधानं प्रयोजनमस्य प्रयोजनमिति ठञ् ।) गर्भाधानसंस्कारः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

आधार, पुं, (आध्रियते अस्मिन् इति आधा अध्यायन्यायेति सूत्रे अवहारगाधारेत्यादिसूत्रेणाधिकरणे घञ् । व्याकरणशास्त्रे अधिकरण कारकं, तल्लक्षणं यथा सिद्धान्तकौमुद्यां, आधारोऽधिकरणम् कर्त्तृकर्म्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधार कारकमधिकरणसंज्ञं स्यात् । तच्च स्थाली औपश्लेषिकं वैषयिकमभिव्यापकञ्चेति त्रिविधं । यथा सिद्धान्तकौमुद्यां, औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा यथा—कटे आस्ते । स्थाल्यां पचति मोक्षे इच्छास्ति । सर्व्वस्मिन्नात्मास्ति ।) अधिकरणम् । आलवालम् । अनुधारणम् । इति मेदिनी ॥ क्षेत्रादिसेकार्थं सेतुः । जलपात जल निरुध्य यत्र स्थाप्यते स आधारः जलकन्दरादिः । बाँध इति ख्यातः इत्यमरटीकायां भरतः ॥ इत्यर्थे जलस्य आधारः । इति वैकुण्ठः ॥ क्षेत्रादिसेकार्थं जलधारणस्थानमाधार इति मधु ॥ (यथा रघुवंशे १ ।

"आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः

संवर्द्धितानां सुतनिर्व्विशेषम् ।

कच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लवो वः

श्रमच्छिदामाश्रमपादपानाम्" ॥

याज्ञवल्क्यः ।

"तथात्मकोऽप्यनेकस्तु जलाधारेष्विवांशुमान्" ।)

आधार्म्मिक, त्रि, (अधर्म्म+ठञ् ।) अधार्म्मिकः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (यथा मनुः ।

"नाधार्म्मिके वसेद्ग्रामे" ॥ )

आधि, पुं, (आङ्+धा+कि ।) मनःपीडा । प्रत्याशा । बन्धकः । व्यसनम् । अधिष्ठानम् । इति मेदिनी ॥

(यथा, हितोपदेशे ।

"आधिव्याधिपरीताय अद्य श्वो वा विनाशिने ।

कोऽहि नाम शरीराय धर्म्मापेतं समाचरेत्" ॥

तथा च वैराग्यशतके ।

"आधिव्याधिशतैर्ज्जनस्य

विविधैरारोग्यमुन्मूल्यते" ।)

आधिक्य, क्ली, (अधिक+ष्यञ् ।) अधिकस्य भावः । अधिकत्वम् । अतिशयता । यथा ।

"युग्मायामपि रात्रौ चेत् शोणितं प्रचुरं तथा ।

कन्या च पुंवत् भवति शुक्राधिक्ये पुमान् भवेत्" ।

इति ज्योतिस्तत्त्वम् ॥ (श्रेष्ठता । उत्कर्षः । प्राबल्यम् । यथा साहित्यदर्पणे । १० परि ।

"आधिक्यमुपमेयस्योपमानात् न्यूनताथवा" ।

यथा, मनुः ७ । १६९ ।

"यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः" ॥

आधिक्य नाम यदायुर्वेदे भाव्यमाने वार्हस्पत मौशनसम् अन्यदा प्रतिसम्बन्धार्थमुच्यते यथा

पुनः प्रतिसम्बद्धमपि द्विरभिधीयते तत् पुनरुक्त- दोषाधिकं तच्च पुनरुक्तं द्विविधं, अर्थपुनरुक्तं शब्दपुनरुक्तञ्च। तत्रार्थपुनरुक्तं नाम यथा,— "भेषजमौषधं साधनम्" इति, शब्दपुनरुक्तं "पुनर्भेषजं भेषजम्" इति चरकः ॥)

**आधिस्थ**, त्रि, ( आधि+स्था+क। ) दक्ष। व्यथितः। इत्यजयपालः ॥

**आधिदैविक**, त्रि, ( अधि+देव+ठञ्। अनुशतिकादीनां च इत्युभयपदवृद्धिः।) दुःखविशेषः। तद्यथा,। "आधिदैविकं यक्षराक्षसविनायकग्रहाद्यावेशनिबन्धनं"। इति साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी ॥ (देवतामधिकृत्य,प्रवृत्तं,दाहशीतादिजनितं दुःखं। अतिवातादिवृष्ट्यादिहेतुकं दुःखं। देवतामधिकृत्य प्रवृत्तं शास्त्रम्। यथा मनुः ६। ८३।
"अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च।
आध्यात्मिकञ्च सततं वेदान्ताभिहितञ्च यत्" ॥
"तत्तु सप्तविधे व्याधावुपनिपतति" इति सुश्रुतः।)

**आधिपत्य**, क्ली, ( अधिपति+ष्यञ्। ) अधिपतेर्भावः। स्वामित्वं। प्रभुत्वं। ऐश्वर्य्यं। यथा,
"नहि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणां।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यं" ॥
इति श्रीभगवद्गीतायां २ अध्यायः ८ ॥
(यथा मनुः १२। १००।
"सर्व्वलोकाधिपत्यञ्च वेदशास्त्रविदर्हति"।)

**आधिभोग**, पुं, (आधेर्बन्धकस्य भोगः।) बन्धकद्रव्यस्य भोगः ॥

**आधिभौतिक**, त्रि, (अधिभूत+ठञ्। अनुशतिकादीनां चेत्युभयपदवृद्धिः।) दुःखविशेषः। यथा। "बाह्योपायसाध्यं दुःखं द्वेधा। आधिभौतिकमाधिदैविकञ्च। तत्राधिभौतिकं मानुषपशुमृगपक्षिसरीसृपस्थावरनिमित्तं"। इति साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी ॥ ("तत्तु सप्तविधे व्याधावुपनिपतति"। इति सुश्रुतः ॥)

**आधिमन्यव**, पुं, (आधि+मन्यु+अण्।) ज्वराग्निः। इति हारावली ॥

**आधिवेदनिकं**, त्रि, (अधि+विद+ल्युट्। ततः अधिवेदन+ठञ्।) द्वितीयविवाहार्थं प्रथमस्त्रियै दत्तधनादि। यथा,—
"आधिविन्नस्त्रियै देयमाधिवेदनिकं समं।
न दत्तं स्त्रीधनं यस्यै दत्ते त्वर्द्धं प्रकीर्त्तितं" ॥
इति याज्ञवल्क्यः ॥

**आधुतः**, त्रि, ( आङ्+धु+क्तः। ) आधूतः। कम्पितः। इत्यमरटीकायां रायमुकुटः ॥

**आधुनिकः**, त्रि, ( अधुना+ठञ्। ) अधुनाजातः। नव्यः ॥

**आधूतः**, त्रि, ( आङ+धू+क्त। ) कम्पितः। इत्यमरः ॥ ( विक्षिप्तः, अभिभूतः, व्याकुलितः। आन्दोलितः, चालितः। यथा, रघुवंशे, १। ३८।
"पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूतवनराजिभिः"।)

**आधेयं**, त्रि, (आङ+धा+यत्।) आधारस्थितवस्तु। यथा। शाब्दबोधे चैकपदार्थे अपरपदार्थसंसर्गः संसर्गमर्य्यादया भासते। स च क्वचिद्भेद क्वचिदतिरिक्त एवाधाराधेयप्रतियोग्यनुयोगिविषयविषयिभावादि। इति गदाधरभट्टाचार्य्यकृतप्रथमव्युत्पत्तिवादः ॥ उत्पाद्य। यथा,—
"सत्त्वे निविशतेऽपैति पृथग्जातिषु दृश्यते।
आधेयश्चाक्रियाजश्च सोऽसत्त्वप्रकृतिर्गुणः" ॥
इति वोपदेवकृतमुग्धबोधीयकारिका ॥ आधेयः उत्पाद्यः। यथा पक्वमृण्मयपात्रेषु रक्ततागुणः स वह्निसंयोगादिना निष्पाद्यते। इति तट्टीकायां दुर्गादासः ॥

**आधोरणः**, पुं, (आधोरयति धोरुङ्गतिचातुर्य्ये कर्त्तरि ल्युः।) हस्तिपकः। माहुत इति भाषा। ("आधोरणा हस्तिपका हस्त्यारोहा निषादिनः"। अमरः। यथा,—रघुवंशे ७। ४६।
"आधोरणानां गजसन्निपाते
शिरांसि चक्रैर्निशितैः क्षुराग्रैः" ॥)

**आध्मात**, पुं, (आङ्+ध्मा+क्तः।) शब्दितः। दग्धः। वातरोगविशेषः। सयतः। इति मेदिनी ॥ (स्फीतः दर्पादिना उद्धतः, विवर्द्धितः। यदुक्तं। "ततो मानाध्मातः स पतति यदा शोकगहने"। हितोपदेशे। "ततोऽसौ दर्पाध्मातस्तस्योपरि आत्मानं निक्षिप्य पञ्चत्वं गतः"। उत्तरचरिते। "ज्यानिर्घोषममन्ददुन्दुभिरवैराध्मातमुज्जृम्भयन्"।)

**आध्मान**, क्ली, ( आङ्+ध्मा+ल्युट्।) वातव्याधिविशेषः। तस्य रूपं।
"साटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशं।
आध्मानमिति जानीयाद्घोरं वातनिरोधजं" ॥
इति निदानं ॥ पेटफाँपा इति भाषा।
तस्य चिकित्सा यथा,—
"आध्माने लङ्घनं पूर्व्वं दीपनं पाचनं ततः।
फलवर्त्तिक्रिया कुर्य्यात् वस्तिकर्म्म च शोधनं ॥
कर्षमात्रा भवेत् कृष्णा त्रिवृता स्यात् पलोन्मिता।
खण्डादपि पलं ग्राह्यं चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥
मधुनाक्षमितं लिह्यात् चूर्णमाध्माननाशनं" ॥
नारायणचूर्णं ॥ १ ॥
"दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिङ्गुसैन्धवैः।
सिम्लं कौमारस्तपिष्टैः शूलाध्मानयुतोदरं ॥
हैमवती वचा। दारुषट्कलेपः ॥ २ ॥
"अभयारग्वधो धात्री दन्ती तिक्ता स्नुही त्रिवृत्।
मुस्ता प्रत्येकमेतानि ग्राह्याणि पलमात्रया ॥
तानि सञ्चूर्ण्य सर्व्वाणि जलाढकयुगे पचेत्।
तत्र तोयेऽष्टमं भागं कषायमवशेषयेत् ॥
निस्तुषजैपालबीजानि नवानि पलमात्रया।
तनुवस्त्रधृतान्येव तस्मिन् क्वाथे शनैः पचेत् ॥
ज्वालयेदनलं मन्दं यावत् क्वाथो घनो भवेत्।
ततः खल्ले क्षिपेत् भागानष्टौ जैपालबीजतः ॥
भागांस्त्रीन् नागराद्द्वौ च मरिचात् द्वौ च पारदात्।
गन्धकात् द्वौ च तानीह यावद्यामं विमर्दयेत् ॥
रसो नाराचनामायं भक्षितो रक्तिकामितः।
जलेन शीतलेनैव रोगानेतान् विनाशयेत् ॥
आध्मानं शूलमानाहं प्रत्याध्मानं तथैव च।
उदावर्त्तं तथा गुल्ममुदराणि हरत्यसौ ॥
वेगे शान्ते च भुञ्जीत शर्करासहितं दधि।
ततस्तत्सैन्धवेनापि ततो दध्योदनं मनाक्" ॥
महानाराचो रसः ॥ ३ ॥ इति भावप्रकाशः ॥
(वायुना सवेदनमुदरपरिपूर्णत्वमाध्मानत्वं। इति रुग्विनिश्चयग्रन्थव्याख्यानकृद्विजयरक्षितः ॥)

**आध्मानी**, स्त्री, (आङ्+ध्मा+ल्युट्+ङीप्।) नलिकानामगन्धद्रव्यं। इति राजनिर्घण्टः ॥

**आध्या**, स्त्री, (आङ्+ध्यै+अङ्+टाप्।) चिन्ता। स्मृतिः। इति शब्दरत्नावली ॥

**आध्यात्मिकं**, त्रि, ( आत्मानमधिकृत्य भवं अधि+आत्मन्+ठञ्।) दुःखविशेषः। यथा। दुःखानां त्रयं दुःखत्रयं तत् खल्वाध्यात्मिकं चाधिभौतिकं चाधिदैविकञ्च। तत्राध्यात्मिकं द्विविधं शारीरं मानसञ्च। शारीरं वातपित्तश्लेष्मणां निमित्तं। मानसं कामक्रोधलोभमोहेर्षाविषादविशेषादर्शननिबन्धनं। सर्व्वं चैतदान्तरोपायसाध्यत्वात् आध्यात्मिकं दुःखं। इति साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी ॥ (आत्मतत्त्वविषयकं। यथा, मनुः २। ११७।
"लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्व्वमभिवादयेत्" ॥

**आध्यान**, क्ली, (आङ्+ध्यै+ल्युट्।) ध्यानं। चिन्ता। इत्यमरः ॥

**आध्यापकः**, पुं, ( आ सम्यक् अध्यापयति यः इति अध्यापकः। स एव स्वार्थे अण्।) अध्यापकः। इति शब्दरत्नावली ॥

**आन**, पुं, (अन्+घञ्) उच्छ्वासः। वहिर्मुखश्वासः। इति हेमचन्द्रः ॥ (अन्तःस्थितस्य प्राणवायोर्नासिकयोच्छ्वासः।)

**आनक**, पुं, (आङ्+अन्+ण्वुल्) पटहः। भेरी। मृदङ्गः। शब्दयुक्तमेघः। इति मेदिनी ॥
(यथा, भगवद्गीतायां १। १३।
"ततः शङ्खाश्च भेर्य्यश्च पणवानकगोमुखाः"।)

**आनकदुन्दुभि**, पुं,(आनका दुन्दुभयो देववाद्यविशेषा यस्य जन्मनि। वसुदेवजन्मनि देवा दुन्दुभिध्वनिञ्चक्रुः।) वसुदेवः। इत्यमरः ॥ (कृष्णपिता। यथा—हरिवंशे ॥
"वसुदेवो महाबाहुः पूर्व्वमानकदुन्दुभिः।
जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्यः प्राणदन् दिवि ॥
आनकानाञ्च संह्रादः सुमहानभवद्दिवि"।)

**आनकदुन्दुभिः**, पुं स्त्री, (आनकः प्रोत्साहको दुन्दुभिः।) बृहड्ढक्का। इत्यमरटीकायां भरतः ॥

**आनत**, त्रि, (आङ्+नम्+क्त।) नतः। तत्पर्य्यायः। अवाग्रः २ अवनतः ३। इत्यमरः ॥ (अधोमुखः, विनतः, प्रणतः, विनयनम्रः। यथा, हरिवंशे ॥
"पितृभ्योऽर्हं पादान् वै नमश्चक्रुरानतौ"।
महाभारते।
"स कदाचित् मृगं विद्धा वाणेनानतपर्व्वणा"।
मनुः।
"रम्यमानतसामन्तं स्वाजीव्यं देशमावसेत्"।)

**आनतिकरः**, त्रि, (आनति+कृ+अच्।) पारितो-

नक, यथा। प्रायश्चित्तोपदेशाय वस्त्रादिना ब्राह्मणस्तोषणीय। यथा मिताक्षरायां पराशरः।
"पापं प्रख्यापयेत् पापी धेनुं दत्त्वा तथा वृषं"।
एतश्चोपलक्षणं।
"प्रख्याप्य पापं वक्तृभ्य किञ्चिद्दत्त्वा व्रतं चरेत्।"
इति स्मृते।
देवलवचने "तोषयित्वा द्विजोत्तमान् इति"। अत्र तोषयित्वा इति श्रवणात् आगतिकरणेन तदग्रहणाद्दोष। इति प्रायश्चित्ततत्त्वं॥

आनद्ध, क्ली, (आनह्यते चर्म्मणा बध्यते इति। आङ्+नह+क्त।) चर्म्मवद्धमुखवाद्यमात्र। तत्तु मुरजादि। इत्यमरः॥ वाद्यमात्र। तत्तु वेशभूषादि। इत्यजयपाल॥

आनद्ध, त्रि, (आङ्+नह्+कर्म्मणि+क्त।) सन्धित। वद्ध। इति मेदिनी॥ (यथा सुश्रुते।
"छन्नस्तुषारैः सविता हिमानद्धा नभाश्रया"।)

आनन, क्ली, (आनिति अनेन। आङ्+अन्+ल्युट्) मुख। इत्यमरः॥ ("तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वर" इति रघु। ३। ३।)

आनन्द, पुं, (आङ्+नन्द+घञ्) आह्लाद। तत्पर्य्यायः। आनन्दथु २ शर्म्म ३ शात ४ सुख ५ मुत् ६ प्रीति ७ प्रमोद ८ हर्ष ९ प्रमद १० आमोद ११ सम्मद १२। इत्यमर॥
(यथा, उत्तरचरिते।
"यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र स्निग्धाश्च सम्मदः"।
मनु।
"आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन"।)
वासुदेवस्य बलविशेष। इति हेमचन्द्र॥

आनन्द, त्रि, (आनन्द+अर्श आदित्वात् अच्।) आनन्दविशिष्टः। हर्षयुक्तः। सुखी। इत्यमरटीका॥ ("गुणे शुक्लादय पुंसि गुणिलिङ्गास्तु तद्वति"। इत्यमरोक्तेः अत्र गुणिलिङ्ग।)

आनन्दथु, पु, (आङ्+नन्द+अथुच्।) आनन्दः। हर्ष। इत्यमर॥ तद्युक्ते त्रि॥

आनन्दन, क्ली, (आङ्+नदि+ल्युट्) गमनागमनसमये सुहृदादेरालिङ्गनारोग्यस्वागतादिप्रश्नादिद्वारा आनन्दोत्पादन। तत्पर्य्याय। सभाजन २ सभाजनः ३ सुभाजन ४ आप्रश्न ५ आमन्त्रण ६॥ इत्यमरः तट्टीका च॥ (आनन्दजनन, हर्षोत्पादन। प्रमोदकरः, सुखजनक। यदुक्तं।
"मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतस"।
इति हितोपदेशे।)

आनन्दपट, क्ली, (आनन्दाय पटम्।) नवोढावस्त्रं। इति हारावली॥

आनन्दप्रभव, क्ली, (आनन्द प्रभवोऽस्य तत्।) रेत। वीर्य्यं। इति हेमचन्द्रः॥
("वाय्वाकाशादिभिर्भावैः सौम्यं जायतेऽस्थिषु।
तेन स्रवन्ति तच्छुक्रं नवात् कुम्भादिवोदकं॥
स्रोतोभिः स्यन्दते देहात् समन्तात् शुक्रवाहिभिः।
हर्षेणोदीरित रागात् सङ्कल्पाच्च मनोभवात्॥
वस्तौ सम्भृत्य निर्य्याति स्थलान्निम्नादिवोदक।"
इति चरकः॥

"कम्पदेहाश्रितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा।
स्त्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत् सम्प्रवर्त्तते॥"
इति सुश्रुतः।)

आनन्दमयकोष, पुं, (आनन्दमयस्य परमात्मनः कोष इवावरक।) सत्त्वप्रधानाज्ञान। तत्पर्य्यायः। कारणशरीरं २ सुषुप्तिः ३। इति वेदान्तः॥

आनन्दा, स्त्री, (आनन्दयति या। आङ्+नन्द+णिच्+अच्+टाप्) विजया। आरामशीतला। इति राजनिर्घण्ट॥ [इति शब्दमाला॥

आनन्दि, पु, (आङ्+नन्द+कि।) आनन्द। हर्ष।

आनन्दित, त्रि, (आङ्+नन्द+क्त। यद्वा आनन्दः सञ्जातोऽस्य। आनन्द+इतच्।) आनन्दयुक्त। हृष्ट। आह्लादितः॥ (यथा महाभारते॥
"जनमानन्दिता सर्व्वे मधुराया वसामहे॥")

आनन्दी, [न्] त्रि, (आनन्द+इनि।) आनन्दविशिष्ट॥

आनन्दी, स्त्री, वृक्षविशेष। आक्रन्दपाता इति ख्याता। इति शब्दचन्द्रिका॥

आनय, पुं, (आनीयते वेदाध्ययनायात्र। आङ्+नीङ+अच्) उपनयन। इति हेमचन्द्र॥

आनयन, क्ली, (आङ्+नी+ल्युट्।) स्थानान्तरनयन। आना इति भाषा॥ (यथा रामायणे।
"व्यादिशत्पुरुषांस्तत्र गवामानयने बहून्"।)

आनर्त्त, पु, (आङ्+नृत्+घञ्।) देशविशेषः। द्वारका इति ख्याता। नृत्यस्थान। युद्ध। इत्यमर॥ जल। इति मेदिनी॥ आनर्त्तदेशवासी लोक। इत्यमरटीका॥ (यथा हरिवंशे। "आनर्त्तान् कालकूटांश्च कुलिन्दांश्च विजित्य सः"॥
स्वनामख्यातो राजा।
"शर्य्यातेर्मिथुनं त्वासीदानर्त्तो नाम विश्रुत।
"आनर्त्तस्य तु दायादो रेवो नाम महाद्युति"॥
"आनर्त्तविषयश्चासीत् पुरी चास्य कुशस्थली"।
"आनर्त्तस्त्त विभो पुत्र सुकुमारस्ततोऽभवत्"।)

आनाय, पु, (आङ्+नीञ्+घञ्।) जाल। इत्यमर।

आनाय्य, पु, (आनाय्यते गार्हपत्यादानीय संस्क्रियतेऽसौ आङ्+नी+ण्यत्।) दक्षिणाग्नि। इत्यमरः॥ गार्हपत्यादग्नेरानीय यो दक्षिणाग्निरारोप्यते। तत्र। इति भरत॥ होम करिवार निमित्ते घर हइते आनिया दक्षिणदिके राखा आगुन् इति भाषा॥

आनाह, पुं, (आङ्+नह्+घञ्।) मूत्रपुरीषरोधकरोग। तत्पर्य्यायः। विबन्ध २। इत्यमरः॥ विष्टम्भः ३ मलरोधन ४। इति राजनिर्घण्ट॥ ("आनाहार्त्तं ततो दृष्ट्वा तत्सैन्यमसुखार्द्दितम्"। इति महाभारते।) तस्य सम्प्राप्तिरूपे। यथा,
"आम शकृद्वा निचितं क्रमेण
भूयो विबद्धं विगुणानिलेन।
प्रवर्त्तमान न यथास्वमेन
विकारमानाहमुदाहरन्ति"॥ इति निदान॥
("यस्य वातः प्रकुपित कुक्षिमाश्रित्य तिष्ठति।
नाधो व्रजति नाप्यूर्द्ध्वमानाहस्तस्य जायते"॥
इति चरकः॥

अस्य चिकित्सामाह। भावप्रकाशे यथा,—
"तुल्यकारणकार्य्यत्वादुदावर्त्तहरीं क्रिया।
आनाहेषु च कुर्व्वीत विशेषश्चाभिधीयते॥•॥
त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विपञ्चचतुर्भागिका।
गुडेन तुल्या गुटिका हरत्यानाहमुल्बणम्॥•॥
वर्त्तिस्त्रिकटुसैन्धव
सर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलै।
मधुनि गुडे वा पक्वै-
र्विहिता साङ्गुष्ठसम्मिता विधि॥
वर्त्तिरियं दृष्टफला
शनै प्रणिहिता गुदे घृताभ्यक्ता।
आनाहमुदरजार्त्ति
शमयति जठर तथा गुल्मम्॥•॥
इति त्रिकटुकाद्यावर्त्ति॥•॥
पक्वाशयसङ्कटे तु चिकित्सा यथा,—
"उदावर्त्तक्रियानाहे सामे लङ्घनपाचनम्"॥
"द्विगत्तना हिङ्गुवचा सकुष्ठा
सुवर्चिका चेति विडङ्गचूर्णं।
सुखाम्बुनानाहविसूचिकार्त्ति-
हृद्रोगगुल्मोर्द्ध्वसमीरणघ्नम्॥•॥
वचाभयाचित्रकयावशूकान्
सपिप्पलीकातिविषान् सकुष्ठान्।
उष्णाम्बुनानाहविमूढवातान्
पीत्वा जयेदाशु हितौदनाशी॥•॥
त्रिवृद्धरीतकीश्यामा स्नुहीक्षीरेण भावयेत्।
वटिका मूत्रपीतास्ता श्रेष्ठा आनाहभेदिका॥•॥
राठ धूम विड्व्योष-गुड मूत्रैर्विपाचिता।
गुदेऽङ्गुष्ठसमावर्त्तिर्निधेयानाहशूलनुत्॥•॥
मूलक शुष्कमामस्य वर्षाभूमूलपञ्चकम्।
आरेवतफलस्यापि पक्वा तेन पचेद्घृतम्।
तत् पीतमात्र शमयेदुदावर्त्तमसंशयम्"॥•॥
शुष्कमूलकाद्य घृतम्॥•॥) देह्यं। इति रमानाथ॥

आनिलि, पु, (अनिलस्य वायोरपत्य अनिल+इञ्।) हनूमान्। इति त्रिकाण्डशेष॥ (भीम।)

आनिली, स्त्री, (अनिल+अण्+ङीप्।) स्वाति नक्षत्र। इति हेमचन्द्र॥

आनील, पुं, नीलघोटक। इति हेमचन्द्र॥ (असित। ईषन्नील। यथा किरातार्ज्जुनीये,
"आनीलाभैर्विरचितपरभागा रत्नैः"।)

आनुकूल्य, क्ली, (अनुकूल+ष्यञ्।) अनुकूलता॥ (साम्मुख्य। प्रसाद। सहायता। यथा याज्ञवल्क्यः।
"यत्रानुकूल्यं दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्द्धते"।
यथा,—रामायणे।
"रमतश्चानुकूल्येन ययु संवत्सरा दश"।)

आनुगत्य, क्ली, (अनुगतस्य भावः कर्म्म वा। अनुगत+ष्यञ्।) अनुगतत्व। अनुगतस्य भाव इत्यर्थे ष्यञ्प्रत्ययेन निष्पन्नम्॥

आनुपूर्व्वी, स्त्री, क्ली, (अनुपूर्व्व+ष्यञ्।) परिपाटी। अनुक्रमः। इत्यमरः॥ (यथा मनुः ३। २३।
"षड़ानुपूर्व्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरो वरान्"॥
यथा रामायणे।
"आनुपूर्व्व्या स धर्म्मज्ञ प्रप्रच्छ कुशलं कुले"।)

आनुमानिक:, त्रि, ( अनुमानाय हित: । अनुमान +ठक् । युक्तिसिद्ध । साङ्ख्यमते प्रधानं प्रकृति ।) अनुमानसम्बन्धीय । अनुमानविषयीभूत: ॥

आनुरक्ति:, स्त्री, (आ + अनु + रन्ज + क्ति ।) अनुराग । (आसक्ति । अनुरक्ति ॥)

आनुविधित्सा, स्त्री, (आ + अनु + वि + धा + सन् + अङ् + टाप् ।) उपकृतेरप्रत्युपकारेच्छा । इति पुराणम् ॥

आनूप:, पु, ( अनूप + अण् । ) अनूपदेशस्थजन्तुमात्रं । तच्च खड्गिमहिषवराहादि । एषां मांसगुणा: । गुरुत्व । उष्णत्व । मधुरत्व । स्निग्धत्व । शुक्रकारित्वं । वायुनाशित्वञ्च । इति राजवल्लभ ॥ अनूपदेशजजलगुणा: । घनत्व । गुरुत्व । पिच्छिलत्व । मधुरत्व । श्लेष्मजनकत्व । स्निग्धत्व । अभिमाशित्व । प्रमेहश्लीपदच्छर्द्दिगलगण्डादिरोगकारित्वञ्च । इति राजनिर्घण्ट ॥ अनूपदेशस्थजन्तोर्लक्षणं तन्मांसस्य गुणाश्च ।

"कुलेचरा प्लवाश्चापि कोशस्था पादिनस्तथा ।
मत्स्या एते समाख्याता पञ्चधानूपजातय: ॥
आनूपा मधुरा: स्निग्धा गुरवो वह्निमर्द्दना ।
श्लेष्मला: पिच्छिलाश्चापि मांसपुष्टिप्रदा भृश ॥
तथाभिष्यन्दिनस्ते हि प्रायोऽपथ्यतमा: स्मृता " ॥

इति भावप्रकाश: ॥

("सृमरश्चमर खड्गो महिषो गवयो गज ।
न्यङ्कुर्वराहश्चानूपा मृगा सर्व्वे रुरुस्तथा" ॥
"गुरूष्णो मधुरो नातिधान्वानूपनिषेवणात्" ।

इति चरक ॥ तथाच हारीत ॥

"आनूपास्तेषु विज्ञेया श्लेष्मला वातकोपना " ।

आनूपवर्गस्तु पञ्चविध । यथा । "कूलचरा: प्लवा: कोशस्था पादिनो मत्स्याश्चेति" इति सुश्रुत ॥ बहुजलयुक्ते, त्रि ।)

आनृशंस्य, क्ली, ( अनृशंसस्य भाव । अनृशंस + ष्यञ् ।) अनिष्ठुरता ॥ (अक्रौर्य्य । अहिंसत्व । कारुण्य । यथा मनु १ । १०१, २ । ५४, ३ । ११२ ।
"आनृशंस्यात् ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीतरे जना " ।
"अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यं च केवलम्" ॥
"भोजयेत् सह भृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजनम्" ॥)

आन्तरीक्ष, क्ली, ( अन्तरीक्ष + अण् ।) अन्तरीक्ष । गगन । इति हिरूपकोष ॥ (यथा महाभारते ।

"उत्पातांस्त्रिविधान् प्राहुर्नारदो भगवानृषि ।
दिव्यांश्चैवान्तरीक्षांश्च पार्थिवांश्च पितामह" ॥)

अन्तरीक्षभववस्तुनि त्रि ॥ (यथा रामायणे ।

"स्वस्ति तेऽस्त्वान्तरीक्षेभ्य पार्थिवेभ्य पुन पुन" ॥)

आन्तिका, स्त्री, (अन्तिक + अण् + टाप् ।) अन्तिका । ज्येष्ठा भगिनी ॥ इति हिरूपकोष ॥

आन्तिक, त्रि, (अन्त + ठक् ।) अन्ते भव: । अन्तसम्बन्धीय ॥

आन्दोल त् क् दोलने । (अदन्तचुरा०-उभ०-अक० सेट् ।) इति कविकल्पद्रुम: ॥ आन्दुदोलत् । इति दुर्गादास: ॥

आन्दोलन, क्ली, ( आन्दोल + ल्युट् ।) चलनं । कम्पनं ॥ ("किन्त्वासामरविन्दसुन्दरदृशा द्राक् चामरान्दोलनादुद्वेल्लद्भुजवल्लिकङ्कणझनत्कारक्षण वार्य्यताम्" । इति कालिदास । पुन पुनरभ्यास । मुहुरालोचनम् ।)

आन्दोलित, त्रि, ( आन्दोल + क्त । ) कृतान्दोलन । तत्पर्य्याय: । चलित २ कम्पित ३ धूत ४ वेल्लित ५ । इति हेमचन्द्र ॥

आन्धसिक , त्रि, (अन्धस् + ठक् ।) पाचक । सूपकार । इत्यमर ॥

आन्वयिक , त्रि, ( अन्वय + ठक् ।) प्रशस्तकुलज: । सत्कुलोद्भव । तत्पर्य्याय । कौल २ । इति त्रिकाण्डशेष । अन्वयसम्बन्धी ॥ (कुलीन । दिव्यभावरत: । कुलाचारी । साधक: । "ऊर्द्ध्वस्रोतसिक: शैव कौल आन्वयिक: स्मृत:" । इति त्रिकाण्डशेष ।)

आन्वीक्षिकी, स्त्री, ( श्रवणादनु ईक्षा पर्य्यालोचना प्रयोजनमस्या: । अनु + ईक्षा + ठञ् + ङीप् । ) तर्कविद्या । न्यायविद्या । इत्यमर ॥ दुर्गा । यथा,

"आत्मवेदनशीलत्वादन्वीक्षणपराथवा ।
अन्वीक्षा कुरुते यस्मात्तस्मादान्वीक्षिकी स्मृता" ॥

इति देवीपुराणे ४५ अध्याय ॥ ( अध्यात्मविद्या, प्रत्यक्षपरोक्षाभ्यामीक्षितस्य अर्थस्यानु पश्चात् ईक्षणं अन्वीक्षा सा प्रयोजन यस्या: सा आन्वीक्षिकी अनुमानविद्या न्यायदर्शनवैशेषिकादिका । इयं हि त्रयीवार्त्तादिविद्याचतुष्टयान्तर्गता आत्मविज्ञानहेतुका धर्म्मार्थसंसाधिका राजभिरवश्य रक्षणीया सती विद्येति कथ्यते ॥ यथा, कामन्दकीयनीतिसारे ।

"आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती ।
विद्याश्चतस्र एवैता लोकसंस्थितिहेतव " ॥
"आन्वीक्षिक्यात्म विज्ञान धर्म्माधर्म्मौ त्रयोस्थितौ ।
अर्थानर्थौ च वार्त्ताया दण्डनीतौ नयानयौ" ॥

इति ।)

आप ऌ न औ कि व्यापने । (चुरा० पक्षे भ्वादि० स्वादि० वा-उभ०-पर०-सक०-सेट् ।) इति कविकल्पद्रुम ॥ ऌ आपत् । न आप्नोति कीर्त्तिं ब्रह्माण्डं । औ आप्ता । कि आपयति आपति । स्वराज्य प्राप्स्यते भवान् । इति गणकृतानित्यत्वात् । इति दुर्गादास ॥ (पालने ।

"त्व स्वेऽन्तरे सर्व्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम्" ।

इति मनु । (अभि) अभिलाषे ।

"नान्यदत्तमभीप्सामि स्थानमम्ब । स्वकर्म्मणा ।
इच्छामि तदह स्थान यन्न प्राप पिता मम" ॥

इति विष्णुपुराणम् । (प्रति + अव) प्रतिग्रहणे ।

"ता प्रत्यवापुरविलम्बितमुत्तरन्तो
धौताङ्कजमनवनीलपयोजपत्रे" । इति ।

शिशुपालवधे । (प्र) उपगमने ।

"ते च प्रापुरुदन्वन्त बुबुधे चादिपूरुष " ।

इति रघुवंशे १० । ६ । इत्यादि ।)

आप:, पु, (आप् + घञ् ।) अष्टवसुमध्ये वसुविशेष । इति जटाधर: ॥

आप [स्] स्त्री, ( आप् + असुन् । ) जल । पापं । इत्युणादिकोष ॥

आपक्व, त्रि, ( आङ् + पच् + क्त । ) ईषत्पक्वकलायादि । तत्पर्य्याय: । पौलि: २ अभ्यूष: ३ । इत्यमर: ॥ रुटी इति केचित् ॥ (यथा ऋतुसंहारे । ।

"आपक्वशालिललितानतगात्रयष्टि:
प्राप्ता शरन्नववधूरिव रम्यरूपा" ॥ १ ॥)

आपगा, स्त्री, ( अपां समूह आपं । तस्य समूह इत्यण् । तत आपेन जलसमूहेन गच्छति प्रचलतीति । आप् + गम् + ड + टाप् ।) नदी । इत्यमर: । (यथा रामायणे ।

"आपगा: कृतपुण्यास्ता पद्मिन्यश्च सरांसि च" ॥
"आपगाश्च महानूपा: सानुमन्तश्च पर्व्वता:" ॥

तथाच माघे २ । १०० ।

"सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा" ॥)

आपण , पु, ( आङ् + पण + अच् । ) पण्यविक्रयशाला । दोकान इति भाषा । तत्पर्य्याय । निषद्या २ विपणि: ३ पण्यवीथिका ४ । इत्यमर ॥ चतुष्का हट्टे इत्यन्ये । आपणादिद्वय हट्टे विपण्यादिद्वयं हट्टगृहे इति केचित् । इत्यमरटीकायां भरत । (यथा रामायणे ।

"माल्यापणेषु राजन्ते नाद्य पण्यानि वै तथा" ।

तथा महाभारते ।

"भक्ष्यमाल्यापणानाञ्च ददृशु श्रियमुत्तमा" ॥)

आपणिक , पु, (आङ् + पण् + इकन् । अथवा आपण + ठक् ।) वणिक । इत्युणादिकोष: ॥ दोकानि मुदि व्यवसायी इत्यादि भाषा । (पण्यानां क्रयविक्रयादिविषयके, त्रि ॥)

आपतिक , पु, ( आङ् + पत् + इकन् ।) श्येनपक्षी । बाज इति भाषा । दैवायत्ते त्रि । इत्युणादिकोष ॥

आपत्, [ द् ] स्त्री, (आङ् + पद् + क्विप् ।) विपत् । विपत्ति । इत्यमर ॥ यथा ।

"आपत्सु मूढो द्युतिमानय सम्यक् प्रतिपद्यते ।
कर्म्माण्यवश्यकार्य्याणि तमाड पुरुष बुधा:" ॥

इति वह्निपुराणम् ॥ ० ॥ किञ्च ।

"आपदि किं शरणीयं शरणीय चरणयुगलमम्बाया । तच्छरण किं कुरुते ब्रह्मादीनपि किङ्करान् कुरुते" ॥ इत्युद्भट ॥०॥ मनु ११ । २९-३० ।
"विश्वैश्च देवै साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभि: ।
आपत्सु मरणाद्भीतैर्व्विधे: प्रतिनिधि कृत " ॥
"प्रभु: प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्त्तते ।
न साम्परायिक तस्य दुर्म्मतेर्व्विद्यते फलम्" ॥

इत्येकादशीतत्त्वम् ॥

"आपत्काले तु विप्रेण भुक्त शूद्रगृहे यदि ।
मनस्तापेन शुद्ध्येत्तु द्रुपदां वा शत जपेत्" ॥

इति प्रायश्चित्ततत्त्वम् ॥ ० ॥

"आपदर्थे धन रक्षेत् दारान् रक्षेत् धनैरपि ।
आत्मान सतत रक्षेत् दारैरपि धनैरपि" । इति ।
"जानीयात् प्रेषणे भृत्यान् बान्धवान् व्यसनागमे ।
मित्रञ्चापदि काले च भार्य्याञ्च विभवक्षये" ॥

इति च चाणक्यम् ॥ २९ ॥ २१ ॥

आपत्ति , स्त्री, ( आङ् + पद् + क्तिन् । ) दोष । इति हेमचन्द्र ॥ प्रापण । आपत् । इति मेदिनी ॥

आपत्प्राप्त:, त्रि, ( आपद प्राप्त । २या तत्पुरुष: । )

विपद्ग्रस्त । तत्पर्य्याय । आपन्नः २ । इत्यमर ॥

आपद्, स्त्री, ( आङ् + पद् + क्विप् । ) विपत्ति । इत्यमर ॥ (यथा हितोपदेशे ।
"आपदामापतन्तीना हितोऽप्यायाति हेतुता" ।)

आपदा, स्त्री, (आ + पद् + अङ् + टाप् ।) विपत्ति । इति रायमुकुट ॥

आपन, क्ली, (आप् + ल्युट् ।) प्रापणम् ॥ मरीच । इति शब्दचन्द्रिका ।

आपनिक, पु, ( आङ् + पन् + इकन् । ) इन्द्रनीलमणि । किरातः । इत्युणादिकोषः ॥

आपन्न, त्रि, ( आङ् + पद् + क्तः । ) आपद्ग्रस्तः । तत्पर्य्याय । आपत्प्राप्त २ । इत्यमर ॥ प्राप्तः । इति मेदिनी ॥ (यथा भागवते,—
"आपन्न ससृति घोरा यन्नाम विवशो गृणन् ।
तत सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वय भय" ॥
यथा हितोपदेशे,—
"बलीयसाभियुक्तस्तु नृपोऽनन्यप्रतिक्रिय ।
आपन्नः सन्धिमन्विच्छेत्कुर्व्वाण कालयापन" ॥ )

आपन्नसत्त्वा, स्त्री, (आपन्न प्राप्त सत्त्व गर्भरूपेण जन्तुरनया ।) गर्भवती । इत्यमर ॥
("समममापन्नसत्त्वास्ता रेजुरापाण्डुरत्विष" ।
इति रघु १० । ५० ।
"नार्य्यश्चापन्नसत्त्वायास्तथातिद्रुतमश्नत" ॥
इति सुश्रुत ॥)

आपमित्यक, क्ली, ( मेङ् प्रणिदाने उदीर्चा माङो व्यतीहारे इति क्त्वा । कुगतीति समास । समासेऽनञ्पूर्व्वे क्त्वो ल्यबिति ल्यबादेश । मयतेरिदन्यतरस्यामितीत्व अपमित्य निर्वृत्त । अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनाविति कक् ।) विनिमयात् प्राप्त । इत्यमर ॥ वदल करिया लओया द्रव्य इति भाषा ।

आपव, पुं, (आपोर्व्वरुणस्यापत्य पुमान् । आपु + अपत्यार्थे अण् ।) वशिष्ठमुनि । इति महाभारत ॥
("तत्ते शापात् विनिर्मुक्ता आपवस्य महात्मन" ।
इति महाभारते । तथा च हरिवंशे,—
"य लेभे वरुण पुत्त्र पुरा भास्वन्तमुत्तमम् ।
वशिष्ठ नाम स मुनि ख्यात आपव इत्युत" ॥)

आपस्तम्बः, पुं, धर्म्मशास्त्रप्रयोजकमुनिविशेष ।
"मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिरा ।
यमापस्तम्बसंवर्त्ता कात्यायनबृहस्पती ॥
पराशरव्यासशङ्खलिखिता दक्षगोतमौ ।
शातातपो वशिष्ठश्च धर्म्मशास्त्रप्रयोजकाः" ॥
इति याज्ञवल्क्यवचन ॥

आपस्तम्भिनी, स्त्री, (आप स्तभ्नातीति । आपस् + स्तम्भ + णिनि ।) लिङ्गिनीलता । इति राजनिर्घण्ट ॥

आपाकः, पु, (आङ् + पच् + घञ् ।) कुम्भकारस्य तत्पात्रदहनस्थान । इति जटाधरः ॥पोयान् इति भाषा ।

आपात, पुं, (आङ् + पत् + घञ् ।) पतनं । तत्काल । इति मेदिनी ॥ पातन । इति शब्दचन्द्रिका ॥ (यथा हितोपदेशे ।
"आपातरमणीयाना सयोगाना प्रिये सह" ।
"आपातरम्या विषयाः पर्य्यन्तपरितापिन" ।
तथा च मनुः ११ । ९ ।
"मध्वापातो विषास्वाद स धर्म्मप्रतिरूपक" ।)

आपान, क्ली, (आपीयते अस्मिन् । आङ् + पा + अधि + ल्युट् ।) मद्यपानार्थसभा । तत्पर्य्याय । पानगोष्ठिका २ । इत्यमरः ॥ मद खावार चक्र इति भाषा ॥ (यथा महाभारते, वनपर्व्वणि २८० अध्याये ।
"गन्धर्व्वाप्सरसो भद्रे । मामापानगतं सदा" ।
१३ । तत्रैव २ अध्याये ।
"आपाने पानकलिता दैवेनाभिप्रणोदिता" ।
"ददर्श यदुवीराणामापाने वैशस महत्" ।)

आपालि, पुं, ( आङ् + पल् + इन् । ) केशकीट । इति जटाधर ॥ उकुन इति भाषा ।

आपिञ्जर, क्ली, (ईषत् पिञ्जरम् ।) स्वर्णं । इति राजनिर्घण्ट ॥
( "आपिञ्जरा बद्धरजःकणत्वा-
न्मञ्जर्य्युदारा शुशुभेऽर्ज्जुनस्य" ॥
इति रघु १६ । ५१ । स्वर्णशब्देऽस्य गुणादयो वक्तव्याः ॥)

आपीड, पु, ( आङ् + पीड् + पचाद्यच् । ) शिखास्थितमाल्य । तत्पर्य्याय । शेखरः २ । इत्यमर ॥ (यथा रघुवंशे १८ । २८ ।
"तस्मिन् कुलापीडनिभे निपीड
सम्यक् महीं शासति शासनाङ्क" ।)

आपीत, क्ली, (आङ् + पा + क्त ।) माक्षिकधातु । इति राजनिर्घण्टः ॥ (यथा रामायणे ।
"आपीतवर्णवदन प्रसुप्तमिव भूमिप" ।)

आपीन, क्ली, (ओ प्यायी वृद्धौ । आङ् + प्याय + क्त । प्याय पी निष्ठाया सोपसर्गस्य न ।) ऊधः । गरुर पालान् । इति भाषा । इत्यमरः ॥ (यथा रघुवंशे २ । १८ ।
"आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात्
गृष्टिर्गुरुत्वाद्वपुषो नरेन्द्रः" ॥)

आपीन, त्रि, (आङ् + प्याय + क्त ।) ईषत्स्थूलः । सम्यक्स्थूल ॥

आपीनः, पु, कूप । इति वोपदेवः ॥

आपूपिक, क्ली, (अपूपाना समूह । अपूप + ठक् ।) अपूपसमूहः । बडपिष्टक । इत्यमरः ॥

आपूपिक, त्रि, ( अपूपा पण्यमस्य । अपूप + ठक् । ) पिष्टकजीवी । पिष्टकविक्रयकर्त्ता । तत्पर्य्यायः । कान्दविकः २ भक्ष्यकार ३ । इत्यमर ॥ मयरा हालुइकर रुटिओयाला । इत्यादि भाषा ॥

आपूप्य, पु, ( अपूप + यत् । ) शक्तु । चूर्णकः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ छातु मयदा वेसम इत्यादि भाषा ।

आपूर्त्ति, स्त्री, ( आङ् + पॄ + क्ति । ) ईषत्पूरण । सम्यक्पूरण ॥

आपूष, क्ली, (आ + पूष् वृद्धौ + करणे घञ् ।) रङ्ग । इति राजनिर्घण्ट ॥ रां इति भाषा ॥ (रङ्गशब्देऽस्य गुणादयो ज्ञातव्याः ॥)

आपृच्छा, स्त्री, (आङ् + प्रच्छ + अङ् + ततः टाप् ।) आभाषण । आलापः । इति हेमचन्द्र ॥

आपोक्लिम, क्ली, लग्नात् तृतीयषष्ठनवमद्वादशस्थान इति ज्योति शास्त्र ॥

आप्तः, त्रि, ( आप + क्तः । ) प्रत्ययितः । विश्वस्त इत्यमरः ॥ (यथा मानवे ७ । ८० ।
"सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेत् बलि" ।)
प्राप्तः । लब्ध । (तेभ्य किमाप्त मया । इति कालिदासः ।) सत्य । इति हेमचन्द्रः ॥ (हितः । कुशलः
"कुमारभृत्याकुशलैरनुष्ठिते
भिषग्भिराप्तैरथ गर्भभर्म्मणि" ।
इति रघुवंशे ३ । १२ । सन्निकृष्टः । आत्मीयः ।
"असपिण्ड द्विज प्रेत विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ।
विशुध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान्" ॥
इति मनुः ५।१०२ । "आप्तान् सन्निकृष्टान् सहोदरमातृभगिन्यादीन्" इति तट्टीका । बहु । अधिक । यथा मनु ।
"यजेत राजा क्रतुभिर्व्विविधैराप्तदक्षिणै" ।
"राजा नानाप्रकारान् बहुदक्षिणान् अश्वमेधादियज्ञान् कुर्य्यात्" । इति तट्टीका ।

आप्त, पुं, (आप् + क्त ।) भ्रमप्रमादविप्रलिप्साकरणापाटवरूपदोषचतुष्टयरहित । स च ऋष्यादिः । इति स्मृतिः । आप्तास्तावत् ॥
"रजस्तमोभ्यां निर्म्मुक्तास्तपोज्ञानबलेन ये ।
येषा त्रैकालममल ज्ञानमव्याहत सदा ॥
आप्ताः शिष्टा विबुद्धास्ते तेषा वाक्यमसंशय ।
सत्य वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्य नीरजस्तमाः" ॥
इति चरकः ॥ )

आप्तगर्व्व, त्रि, ( आप्त प्राप्त गर्व्वो येन सः । प्राप्ताहङ्कार ॥

आप्ता, स्त्री, जटा । इति हारावली ॥

आप्ति, स्त्री, ( आप् + क्ति । ) सम्बन्ध । योग । लाभ । प्राप्तिः । इति हेमचन्द्रः ॥

आप्तोक्ति, स्त्री, ( आप्तस्य भ्रमप्रमादादिशून्यजनस्य उक्ति । ) सिद्धान्तवाक्य । तत्पर्य्याय । राद्ध २ सिद्धान्त ३ अभ्योतः ४ समयः ५ आगमः ६ । इति हेमचन्द्र ॥

आप्य, त्रि, ( अपां विकार तस्य विकार इत्यण्, तस्मात् स्वार्थे ष्यञ् ।) जलविकारज । फेनादि । तत्पर्य्याय । अम्मय २ । इत्यमरः ॥ (यथा हरिवंशे ।
"आप्या प्रभूता ऋभव पृथकाश्च दिवौकसः ।
लेखा नाम महाराज पञ्च देवगणा स्मृताः" ॥
"तस्मादाप्यो रसः परस्परसंसर्गात् परस्परानुग्रहात् परस्परानुप्रवेशाच्च सर्व्वेषु सर्व्वेषां सान्निध्यमस्त्युत्कर्षापकर्षात्तु ग्रहण" । इति सुश्रुत ॥)

आप्य, क्ली, वाप्यच्चः । इत्यमरटीकायां रायमुकुटः । कुड़ इति भाषा ॥

आप्यायन, क्ली, ( आङ् + प्याय् + ल्युट् ।) तर्पण । प्रीणन । तृप्ति । इति राजनिर्घण्टः ॥ ( यथा महाभारते,—
"पितृप्रसादमिच्छेय तव चाप्यायनं पुनः" ।
यथा मनु, ३।२१३, ३।२०३ ।
"लोकस्याप्यायने युक्तान् श्राद्धदेवान् द्विजोत्तमान्।"

"दैवकार्य्याद्द्विजातीनां पितृकार्य्यं विशिष्यते ।
दैवं हि पितृकार्य्यस्य पूर्व्वमाप्यायनं स्मृतम्" ॥)

आप्यायित, त्रि, (आङ् + प्याय् + णिच् + क्त ।) तृप्त । प्रीत । वर्द्धित । यथा,—
"एषा सूर्य्यस्य वीर्य्येण सोमस्याप्यायिता तनुः ।
पौर्णमास्यां स दृश्येत सम्पूर्णो दिवसक्रमात्" ॥
इति कौर्म्मे ४० अध्यायः ॥ आनन्दित । इति लोकप्रसिद्ध ॥ (यथा हितोपदेशे ।
"आप्यायितोऽहं भवतामनेन वचनामृतेन" ॥)

आप्रच्छन, क्ली, (आङ् + प्रच्छ + ल्युट् ।) गमनागमनादिसमये सुहृदादेरालिङ्गनारोग्यप्रश्नस्वागतादिनानन्दन । इत्यमरः ॥

आप्रच्छन्न, क्ली, (आङ् + प्र + छद् + क्त ।) आप्रच्छन । तत्पर्य्यायः । आनन्दन २ सभाजन ३ ॥ इति हेमचन्द्रः ॥ [ग्रपर्य्यन्त ॥

आप्रपद, क्ली, (प्रपद पादाग्र । तत्पर्य्यन्तं ।) पादा-

आप्रपदीन, त्रि, (आप्रपद पदाग्रान्तं व्याप्नोतीति । आङ् + प्र + पद + ख ।) पादाग्रपर्य्यन्तपतितवस्त्रादि । इत्यमरः ॥ ('आप्रपदीनां कण्ठे यम दोलामिव गुणकुसुममालामारूढाम्" । इति हर्षचरिते ५म उच्छ्वासः ।)

आप्लव, पुं, (आङ् + प्लु + अप् ।) स्नानं । इत्यमरः ॥

आप्लवव्रती, [न्] पु, (आप्लवते प्लुङ् + अच्, आप्लवः स्नानं व्रती च । आप्लवः स्नानं तत्र व्रती नियमो यस्येति मुकुटः ।) आप्लुतव्रती । स्नातकब्राह्मण । इत्यमरटीकायां भरत ॥

आप्लाव, पुं, (आङ् + प्लुङ् + घञ् । जलप्रक्षेपः, जलसेचनं, जलमध्ये सम्यगवगाहन, जलप्लावन, जलानां सर्व्वत समुच्छलन ।) स्नान । इत्यमरः ॥

आप्लुतः, पु, (आङ् + प्लुङ् + क्त ।) आप्लुतव्रती । स्नातक । इति मेदिनी ॥

आप्लुत, त्रि, (आङ् + प्लु + क्त ।) स्नात । कृतस्नान । इति मेदिनी ॥ (आप्लुत सर्व्वपापेभ्य स गङ्गायां यमुनेत । इति भारते ।) स्नाने क्ली इति हेमचन्द्र ॥ (आर्द्रीकृत । सिक्त । पञ्चतन्त्रे,—
"अन्ये जर्ज्जरितकलेवरा रुधिराप्लुताः" । इति )

आप्लुतव्रती, [न्] पु, (आप्लुतस्य स्नातकस्य व्रतमस्यास्तीति । आप्लुतव्रत + इनि ।) समाप्तवेदाध्ययनस्नानशील । ब्रह्मचर्य्यं त्यक्त्वा यो गृहाश्रमं गत सः । समाप्तवेदाध्ययनो य स्नानशील आश्रमान्तरं न गत सोऽपि । आप्लुत स्नान तत्र व्रती नित्यस्नायी इति व्युत्पत्ति । इत्यमरटीकायां भरतः ॥

आप्वा, [न्] पु, (आप् + क्वनिप् ।) वायुः । इति सिद्धान्तकौमुद्यामुणादिवृत्ति ॥

आफूकं, क्ली, अफेन । इति वैद्यक ॥ आफि इति भाषा । (अस्य गुणानाह । भावप्रकाशे ॥
"आफूकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वातपित्तलम्" ।)

आबद्ध, पु, (आङ् + बन्ध + क्त ।) दृढबन्धन । प्रेम । अलङ्कारः । इति विश्वमेदिन्यौ ॥ (यथा मेघदूते ९ ।
"गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमाला" ॥)
योत्रं । इति मेदिनी ॥

आबन्ध, पुं, (आबध्यतेऽनेन आङ् + बन्ध + घञ् ।) योत्र । इत्यमरहेमचन्द्रौ ॥ योतदड़ी इति भाषा । भूषण । प्रेम । बन्धन । इति हेमचन्द्र ॥
(यथा अमरुशतके । ३८ ॥
"गते प्रेमाबन्धे प्रणयबहुमाने विगलिते" ।)

आबलि, स्त्री, आलि । श्रेणी । इत्यमर ॥ (समूह, आवली ।)

आविद्ध, त्रि, (आङ् + व्यध् + क्त ।) वक्र । क्षिप्त । इत्यमरः । पराहत । इति मेदिनी ॥ मूर्ख । इति शब्दरत्नावली ॥

आविधः, पु, वेधनास्त्रं । इत्यमरः ॥ भोमर तुरपन इत्यादि भाषा ।

आविल, त्रि, (आ + बिल + क ।) अनच्छ । अनिर्म्मल । इत्यमरः ॥

आबिलकन्द, पु, मालाकन्द । इति राजनिर्घण्ट ॥

आवुत्त, पुं, (आप् + क्विप् + आपमुत्तनोति । अन्येभ्योपीति ड ।) नाट्योक्तौ भगिनीपति । इत्यमरः ॥

आभरण, क्ली (आभ्रियतेऽनेन । भृञ् भरणे । ल्युट् ।) भूषण । अलङ्कार । इत्यमरः ॥ (तच्चतुर्व्विधं, आवेध्य बन्धनीय, क्षेप्य, आरोप्य चेति । तत्र आवेध्य कुण्डलादि, बन्धनीय कुसुमादिकं, क्षेप्य नूपुरादिकं, आरोप्य हारादि । यदुक्त,—
"आङ्गिकमाभरणं चतुर्धा परिकीर्त्तित ।
आवेध्य बन्धनीयञ्च क्षेप्यमारोप्यमेव तत्" ॥
(यथा मनु, ७ । २२२ ।
"वाहनानि च सर्व्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च" ।
यथा कुमारसम्भवे । ५ । ४४ ॥
"किमित्यपास्याभरणानि यौवने
धृत त्वया वार्द्धकशोभि वल्कल" ॥)

आभा, स्त्री, (आङ् + भा + अङ् + टाप् ।) शोभा कान्ति । इति हेमचन्द्र ॥ दीप्तिः । ज्योति ॥ (वातरोगभेद । बबुले । यथा भावप्रकाशे वातव्याधौ त्रिकशूलचिकित्सा,—
"आभा बबुलपर्य्याय कथित कोविदैरिह" ।)

आभाति, स्त्री, (आङ् + भा + क्तिन् दीप्ति, ज्योति ।) छाया । इति राजनिर्घण्ट ॥

आभाषण, क्ली, (आङ् + भाष + ल्युट् ।) आलाप । कथन । इत्यमर ॥ (यथा रघुवंशे । २ । ५८ ॥
"सम्बन्धमाभाषणपूर्व्वमाहुः" ।)

आभासः, पु, (आङ् + भास् + पचाद्यच् ।) सदृश । प्रतिबिम्बं । इति वेदान्त ॥ दीप्ति । अभिप्रायः ॥ (प्रतिबिम्बादिवदवास्तवस्वरूपमविद्याकार्य्यं, मृषाबुद्धि । यथा अध्यात्मरामायणे,—
"आभासस्तु मृषाबुद्धिरविद्याकार्य्यमुच्यते ।
अविच्छिन्न तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पत ॥
आभासस्त्वपर बिम्बभूतमेव त्रिधा चिति ।
साभासबुद्धे कर्त्तृत्वमवच्छिन्ने विकारिणि" ॥
तथा च पञ्चदश्यां ६—७ ।
"चित्राधारेण वस्त्रेण सदृशा इव कल्पिता ।
पृथक् पृथक् चिदाभासाश्चैतन्याध्यस्तदेहिना ॥
कल्पन्ते जीवनामानो बहुधा संसरन्त्यमी ।
वस्त्राभासे स्थितान् वर्णान् यद्वदाधारवस्त्रगान्" ॥)

आभास्वर, पु, (आङ् + भास् + वरच् ।) चतुःषष्टिसङ्ख्यकगणदेवताविशेष । इत्यमरः ॥ (यदुक्त, आभास्वरास्तु चतुःषष्टि । यद्वा,—
"आत्मा ज्ञाता दमो दान्तः शान्तिर्ज्ञानं शमस्तपः ।
कामः क्रोधो मदो मोहो द्वादशाभास्वरा इमे" ॥)

आभिजन., पु, (अभिजनादागत । अभिजन + अण् ।) अभिजनस्य भाव । कुलसम्बन्धीयः । गाँइ पदवी इत्यादि भाषा ॥ (यथा कुमारसम्भवे, १ । २६ ।
"तां पार्व्वतीत्याभिजनेन नाम्ना
बन्धुप्रियां बन्धुजनो जुहाव" ॥)

आभिजात्य, क्ली, (अभिजात + ष्यञ् ।) अभिजातस्य भाव । कौलिन्य । पाण्डित्य ॥ (महावंशजननजनितमर्य्यादा । यथा रामायणे,—
"आभिजात्य हि ते मन्ये यथा मातुस्तथैव च" ॥)

आभिधा, स्त्री, (अभि + धा + अङ् + टाप् ।) शब्द । इति शब्दरत्नावली ॥

आभिधातक, क्ली, (अभिधा + तक् + अच् ।) शब्द । इति शब्दरत्नावली ॥

आभिरूप्य, क्ली, (अभिरूप + ष्यञ् ।) अभिरूपस्य भाव । यथा,—
"अर्च्चकस्य तपोयोगादर्च्चनस्यातिशायनात् ।
आभिरूप्याच्च बिम्बानां देव सान्निध्यमृच्छति" ॥
इति तिथ्यादितत्त्वधृतहयशीर्षपञ्चरात्रीयवचनं ॥

आभीर, पु, (आ समन्तात् भियं राति । रा दाने आत इति क ।) गोप । इत्यमरः ॥ आहिर इति भाषा । स च ब्राह्मणादम्बष्ठायां जात । इति मनु ॥

आभीरपल्लि, स्त्री, (आभीराणां पल्लि ।) गोपपल्ली । इत्यमरटीकायां रायमुकुट ॥ गोयालापाड़ा इति भाषा ॥

आभीरपल्ली, स्त्री, (आभीराणां पल्ली ।) गोपगृहसमूह । गोपग्राम । गोपगृह । गोपस्थान । तत्पर्य्याय । घोष २ । इत्यमर ॥

आभीरी, स्त्री, (आभीरप्रयोगादितिजातेरिति च ङीष् ।) गोपस्त्रीजाति । गोपपत्नी । तत्पर्य्यायः । महाशूद्री २ । इत्यमर ॥ आहिरिणी इति भाषा ॥

आभील, क्ली, (आ समन्तात् भियं लाति जनयति । आङ् + भी + ला + क ।) कष्ट । कृच्छ्र । इत्यमर ॥ (भयावह, भीतिजनक । यथा मेदिनी,—
"आभील न दयो कृच्छ्रे वाच्यलिङ्ग भयानके" ॥
यथा महाभारते,—
"रात्रौ निशीथे स्वाभीले गतेऽर्द्धसमये नृप ।
प्रचारे पुरुषादानां रक्षसा घोरकर्म्मणाम्" ॥)

आभील, त्रि, (आङ् + भी + ला + क ।) कष्टयुक्त । इत्यमरः ॥ भयानक । इति मेदिनी ॥

आभीक्ष्ण्य, क्ली, (अभीक्ष्ण + ष्यञ् ।) अत्यर्थ । नित्यं । तद्युक्तक्रियायां त्रि । इति शब्दरत्नावली ॥

आभेरी, स्त्री, रागिणीविशेष । इति हलायुध ॥

आभोग, पु, (आङ् + भुज + घञ् ।) परिपूर्णता । इत्यमर ॥ (यथा मेघदूते, उत्तरमेघे २१ ।
"गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण" ।

यथा शाकुन्तले । "अकथितोऽपि ज्ञायत एव यथायमाभोगस्तपोवनस्य" ॥)
वरुणस्य छत्र । यत्न । इति मेदिनी ॥ कविनामयुक्तगानसमापककविता । भणिता इति भाषा । यथा,—
"यत्रैव कविनाम स्यात् स आभोग इतीरित" । इति सङ्गीतदामोदरः ॥

आभ्युदयिक, त्रि, (अभ्युदय प्रयोजनम् अस्य । अभ्युदय्+ठक् ।) अभ्युदयनिमित्तश्राद्धादि । यथा । अथाभ्युदयिकश्राद्ध । तत्र गोभिल । आभ्युदयिके श्राद्धे युग्मानाशयेत् प्रदक्षिणमुपचारः ऋजवो दर्भा यवैस्तिलार्थ । सम्पन्नमिति तृप्तिप्रश्न । दधिवदराक्षतमिश्रा पिण्डा नान्दीमुखा पितर प्रीयन्तामिति दैवे वाचयित्वा नान्दीमुखेभ्य पितृभ्यः पितामहेभ्य प्रपितामहेभ्यो मातामहेभ्यः प्रमातामहेभ्यो वृद्धप्रमातामहेभ्यश्च प्रीयन्ता न स्वधाञ्च प्रयुञ्जीत इति । अभ्युदयो विवाहादिस्तदर्थं श्राद्ध आभ्युदयिक । आभ्युदयिके अभ्युदयनिमित्तके । अभ्युदयः इष्टलाभ । स च भूतभविष्यद्भेदेन द्विविध । तत्र भूत पुत्त्रजन्मादि भविष्यत् विवाहादि । एवञ्च श्राद्धविवेकादौ श्राद्धभेदगणने वृद्धिश्राद्धत्वेन कार्म्माङ्गत्वेन च यदुभयत्वमुक्त तदुभयमेवात्राभ्युदयिकत्वेनोपपन्न तेनाभिलापे आभ्युदयिकश्राद्धमिति प्रयोज्य । अत्र यवैस्तिलार्थ इत्यनेन पार्व्वणश्राद्धप्राप्ततिलस्थाने यवविधानात् आभ्युदयिकस्यापि पार्व्वणप्रकृतित्वं प्रतीयते । अन्यथा तिलार्थं इत्युपादान व्यर्थं स्यात् । ततश्च पार्व्वणप्रकृतिकत्वेन पित्र अयुग्मब्राह्मणप्राप्तौ तन्निराशाय पितृपक्षे ब्राह्मणयुग्मत्वोपदेशः दैवे युग्मत्वस्य पार्व्वणप्राप्तत्वात्तदर्थोपदेश । 
"अपसव्य तत कृत्वा पितृणामप्रदक्षिण" । इति याज्ञवल्क्यवचनेन देवकर्म्मानन्तर पितृकर्म्मकरणे प्राप्तवामोपचारनिराशाय प्रदक्षिणमुपचार तेन देवपितृकर्म्मकरणाय दक्षिणावर्त्तेन गन्तव्य । द्विगुणभुग्नत्वनिराशाय ऋजवो दर्भा इति ऋजुत्वोपदेशः । तृप्ता स्थ इत्यनेन तृप्तिप्रश्ने सम्पन्नमिति प्रष्टव्य । योग्यत्वात् सुसम्पन्नमिति प्रोक्ते इति वक्ष्यमाणच्छन्दोगपरिशिष्टवचनाच्च सुसम्पन्नमित्युत्तर । एतद्धर्म्मयब्राह्मणपक्षेऽप्यबाधितत्वादाद्य । दधिवदराक्षतमिश्रा इत्यनेन दध्यादिमिश्रणमावश्यक । अक्षतो यव ।
"अक्षतास्तु यवा प्रोक्ता भृष्टा धाना भवन्ति ते" । इति भट्टनारायणधृतत्वात् । अतएव वक्ष्यमाणच्छन्दोगपरिशिष्टवचने अक्षतमनुक्त्वा सयोज्य यवकर्क्कन्धुदधिभिरिति निःसन्दिग्धमुक्त । स्वधावाचनप्रश्ननिवृत्तये नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामित्युपदेश । तत्र स्वधां वाचयिष्ये इति पितृपक्षएव प्रश्नः अतएव तन्निवृत्तये दैव इति आदौ देवपक्षे नान्दीमुखाः पितर प्रीयन्तामिति प्रश्न । उत्तरञ्च प्रीयन्तामिति । तत पितृपक्षे स्वधावाचनस्थानीयत्वेन वृद्धप्रमातामहेभ्यश्च इति चकारनिर्द्देशेन च स्वधोच्यतामितिवत् प्रत्येकमेव प्रीयन्तामिति पृच्छेत् प्रत्युत्तरञ्च अस्तु स्वधा इतिवत् तन्त्रेणैव प्रीयन्तामिति । अत्र नान्दीमुखा पितर इत्यादि नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्य इति निर्द्देशेन च नान्दीमुख पितृगणमिति विष्णुपुराणेन च मातामहेभ्यश्च तथा नान्दीमुखेभ्य एव च इति ब्रह्मपुराणेन च नान्दीमुखपदश्रुतेस्तद्विशेषणविशिष्टस्यैवाभ्युदयिके देवत्वात् ततस्तत्रापि प्रीयन्तामितिवन्नान्दीमुखेभ्य पितामहेभ्य इति वाच्य । न तु नान्दीमुखविशेषणशून्य पितामहेभ्य प्रीयन्तामिति पितृदयितोक्त युक्तम् । नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्य प्रीयन्तामित्यत्रान्वितस्य नान्दीमुखेभ्य इत्यस्य पितामहेभ्य इत्यादावनन्वयित्वेन प्रागुक्तयुक्त्या प्राप्तस्य नान्दीमुखविशेषणस्य पितामहेभ्य इत्यादावपि प्राप्ते । एतेनात्र मैथिलोक्त तन्त्रता विधानमपि निरस्त । पार्व्वणवत् स्वधा प्राप्तेः तन्निराशाय न स्वधा प्रयुञ्जीतेति अत्र विशेषादभिलापे मन्त्रे च स्वधापदनिवृत्तिः । अभिलापे नम इति ब्रूयात् । "अमुकामुकगोत्रैतत् तुभ्यमन्न स्वधा नम" । इति ब्रह्मपुराणे श्राद्धे स्वधा नम पदयोस्त्यागबोधकत्वेन विकल्पादाभ्युदयिके स्वधानिषेधान्नम एवान्वेति । पितृन्नयत्व देववदित्यनेनापि पार्व्वणोक्तविश्वदेवपद्धीयनम एव प्रतीयते न तु मैथिलोक्त स्वाहेति । श्राद्धे तथा प्रयोगे प्रमाणाभावात् । एवमाश्वलायनगृह्ये यवोऽसीति मन्त्रे तु पुष्ट्या इति श्रुतेर्मन्त्रमात्रे स्वधापदस्थाने पुष्टिपदप्रयोग । इति श्राद्धतत्त्व । अन्यत् नान्दीमुखशब्दे द्रष्टव्य ॥

आम, त्रि, (आम्यते ईषत्पच्यते । आ+अम+कर्म्मणि घञ् ।) पाकरहित । काँचा इति भाषा । तत्पर्य्याय । अपक्व २ असिद्ध ३ अशृत ४ । इति रत्नमाला ॥
("आममपक्वकम छित्त्वा नातिसारे क्रिया यत" । इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रह ॥
"मन्दत्वमागुरुत्वाविट् पक्वातृत्सृजते जले । विनातिद्रवसङ्घातशैत्यश्लेष्मप्रदूषणात् ॥ परीक्ष्यैव पुरा आम निरामं वा सदोषिणा । विधिनोपाचरेत्सम्यक् पाचनेनेतरेण वा" ॥
चिकित्सा यथा,—
"चित्रक पिप्पलीमूल द्वौ क्षारौ लवणानि च । व्योम हिङ्गुमजमोदाञ्च चव्यञ्चैकत्र चूर्णयेत् ॥ गुडिका मातुलुङ्गस्य दाडिमस्य रसेन वा । कृता विपाचयत्यामन्दीपयन्त्याशु चानल" ॥ इति चित्रकाद्यगुडिका । इति चरक ॥)

आम, क्ली, षट्प्रकाराजीर्णरोगमध्ये रोगविशेषः । तस्य कारणरूपे ।
"आम विदग्ध विष्टब्ध कफपित्तानिलैस्त्रिभिः । अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषत ॥ अजीर्णं पञ्चम केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च । वदन्ति षष्ठ चाजीर्णं प्राकृत प्रतिवासर ॥ तत्रामे गुरुतोत्क्लेदः शोथो गण्डाक्षिकूटगः । उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्ध प्रवर्त्तते" ॥ इति निदान ॥ अन्यच्च ।
"भुक्तमन्नावशेषे यत् रस भूयस्त्वमाचितं । गतमामाशये यस्मात्तस्मादाम तदुच्यते ॥ अन्नमन्नरस केचित् केचिच्च मलसञ्चय । प्रथमा दोषदुष्टिञ्च आममित्यभिधीयते" ॥ अपक्व । यथा,—
"यस्य क्षेत्रगत प्राज्ञः सतुष धान्यमुच्यते । आम विलुषमित्युक्तं खिन्नमन्नमुदाहृत" ॥ इति श्राद्धतत्त्वधृतवशिष्ठवचनं ॥ रोगविशेष सल्लक्षणादि अजीर्णशब्दे द्रष्टव्यं ॥
("उष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचित । दुष्टमामाशयगत रसमामं प्रचक्षते ॥ आमेन तेन सम्पृक्ता दोषादूष्याश्च दूषिता । सामा इत्युपदिश्यन्ते ये च रोगास्तदुद्भवाः ॥ स्रोतोरोधबलभ्रंशगौरवानिलमूढता । आलस्यापक्तिनिष्ठीवमलभेदारुचिक्लमाः ॥ लिङ्ग मलाना सामाना निरामाणां विपर्य्ययः" । इति चरक ॥
"आमेऽजीर्णे तु वमयेत् क्षारास्तं लघु ग्रसते । पुष्पकासीशमिश्र वा चीरेण लवणेन च । सदाडिमरस सर्पिः पिबेद्धातेऽधिके सति" ॥ इति च चरकः ॥)

आम,पु, (अम+घञ् ।) रोगमात्र । रोगभेदः । इति मेदिनी ॥ मलवैषम्यरोगः । इति राजनिर्घण्ट ।
("पिबेत् स मरिकर्त्तामे मद्ये वा दाडिमाम्बुना । विड्भेन लवणा पिष्ट बिल्व चित्रकनागर" ॥ इति चरकः ।)

आमगन्धि, क्ली, (आमस्यापक्वस्य गन्धइव गन्धो यत्र ।) चिताधूमादिगन्धयुक्त । अपक्वमांसादि गन्धविशिष्ट । तत्पर्य्यायः । विस्र २ विश्र ३ । इत्यमर ॥

आमगड, पु, (आमगडयतीति । आ+मड़ि+णिच्+अच् ।) एरण्डवृक्ष । इति राजनिर्घण्टप्रभृतन्दरलावल्यौ ॥ (एरण्डशब्देऽस्य गुणादयो व्याख्येयाः ।)

आमनस्य, क्ली, (अमनसो भाव । ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् ।) पीड़ा । दुःख । इत्यमर ॥

आमन्त्रण, क्ली, (आ+मन्त्र+भावे ल्युट् ।) सम्बोधन । इति हेमचन्द्र ॥ आप्रच्छन । इति जटाधर ॥ निमन्त्रण । इति स्मृति ॥ निमन्त्रणविशेष । यदकरणे प्रत्यवायो नास्ति । यथा "इह भुञ्जीत भवान्" । इति मुग्धबोधव्याकरण ॥

आमय, क्ली, (आम रोग यात्यनेन । आम+या+क ।) कुष्ठनामौषधि । इतिराजनिर्घण्ट ॥ कुड़ इति भाषा ।

आमयः, पुं, (अम रोगे+भावे+अच् । मीञ् हिंसाया करणे अच् वा ।) रोगः । इत्यमरः ॥
("तदयुक्त विविधैर्योगैर्निहन्यादामयान् बहून्" । इति सुश्रुत ॥
"तत्र व्याधिरामयो गद आतङ्को यक्ष्मा ज्वरो विकारो रोग इत्यनर्थान्तर" । इति चरक ।)

आमयावी, [न्] त्रि, (आमयोऽस्यास्ति आमयस्य दीर्घश्च इति दीर्घश्चेति विनिः ।) रोगी । इत्यमर

आमर्षः, पु, (मृष + घञ् + नञ्समासः । अन्येषा-
मप्रीति दीर्घः ।) क्रोधः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥
("निरुद्योगं निरामर्षं निर्वीर्य्यमरिनन्दनं" ।
इति रामायणे ।)

आमलक, स्त्री, (आ + मल + क्वुन् शिलिङ्गत्वयोः ।
आमलक्याः फलं । फलेलुगिति विकारावयवप्रत्य-
यस्य लुक् ।) आमलकीविशेषः । काठ आमला-
इति भाषा । तत्पर्य्यायः । काष्ठधात्रीफलम् २ क्षुद्रा-
मलकं ३ क्षुद्रजातीफलं ४ । अस्य गुणाः । कषा-
यत्वं । कटुत्वं । शीतत्वं । पित्तास्रदोषनाशित्वञ्च ।
इति राजनिर्घण्टः ॥
("वृक्षामलकं शीतमम्लं पित्तकफापहं" ।
इति वाभटः ॥
"विद्यादामलके सर्व्वान् रसान् लवणवर्ज्जितान् ।
स्वेदमेदःकफोत्क्लेदपित्तरोगविनाशनं" ॥
इति चरकः ।)

आमलकः, पुं, (आङ् + मल + क्वुन् ।) वासकवृक्षः ।
इति शब्दचन्द्रिका ॥ (यथा मार्कण्डेयपुराणे ।
"भल्लातकानामलकांस्तिन्दुकांश्च मदापहान्" ।)

आमलकी, स्त्री, (आङ् + मल + क्वुन् + जातेरिति
ङीष् ।) स्वनामख्यातफलवृक्षविशेषः । आमला
इति भाषा । तत्पर्य्यायः । तिष्यफला २ अमृता ३
वयस्था ४ वयःस्था ५ कायस्था ६ । इत्यमरः-
टीका च ॥ श्रीफला ७ धात्रिका ८ शिवा ९
शान्ता १० धात्री ११ अमृतफला १२ वृष्या १३
वृत्तफला १४ रोचनी १५ । इति राजनिर्घण्टः ॥
कर्षफला १६ तिष्या १७ इति रत्नमाला ॥
अस्या गुणाः । हरीतकीगुणवद्गुणत्वं । विशे-
षेण शुक्रकारित्वं । शीतवीर्य्यत्वं । अम्लत्वात् वायु-
नाशित्वं । शैत्यमाधुर्य्यात् पित्तनाशित्वं । कषाय-
रूक्षत्वात् कफनाशित्वं । सर्व्वफलाधिकगुणत्वं ।
भोजनादिमध्यान्ते प्राशस्त्यं । निरत्ययत्वं । दोष-
हरत्वञ्च ॥ अस्य मज्जगुणाः । तृष्णाच्छर्द्दिकफ-
वायुनाशित्वं । लघुत्वं । कषायत्वं । बलकारित्वञ्च ।
इति राजवल्लभः ॥ अपि च । लघुत्वं । दाहवमि-
मेहशोफनाशित्वं । रसायनत्वं । कटुत्वं । रुचि-
करत्वं । रक्तदोषनाशित्वं । श्रमविवन्धाध्मान-
विष्टम्भदोषप्रशमनकारित्वञ्च । अस्य मज्जगो
विभीतकमज्जवद्गुणत्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ।
(अस्या नामानि गुणाश्च ।
"त्रिष्वामलकमाख्यातं धात्री तिष्यफलामृता ।
हरीतकीसमं धात्रीफलं किन्तु विशेषतः ॥
रक्तपित्तप्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम् ।
हन्ति वातं तदम्लत्वात् पित्तं माधुर्य्यशैत्यतः ॥
कफं रूक्षकषायत्वात् फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित् ।
यस्य यस्य फलस्येह वीर्य्यं भवति यादृशम् ॥
तस्य तस्यैव वीर्य्येण मज्जानमपि निर्द्दिशेत्" ।
इति भावप्रकाशः ॥
"तान् गुणांस्तानि कर्म्माणि विद्यादामलकीष्वपि ।
यान्युक्तानि हरीतक्या वीर्य्यस्य तु विपर्य्ययः" ॥
इति चरकः ।)
तद्वृक्षफलगुणाः । कफपित्तनाशित्वं । अम्लत्वं ।
स्वादुकषायरसत्वं पाके पित्तनाशित्वञ्च । इति राज-
वल्लभः ॥ तस्या उत्पत्तिर्यथा । सख्यावूचतुः ।
"उक्तास्त्वया महेशानि तुलसीविल्वसम्भवाः ।
अनयोस्तुल्य एकः को शिवविष्णुप्रियस्तरुः ॥
तदावां श्रोतुमिच्छावः शिवसुन्दरि कथ्यतां" ।

देव्युवाच ।

"अस्ति विल्वतुलसीतरुतुल्यः
पुण्य एक उत विष्णुशिवार्हः ।
नामतोऽमलक इत्यपि सख्यौ
रोपितः कमलयाथ मयापि ॥
कदाचित् देवयात्रायां प्रभासे पुण्यतीर्थके ।
सर्व्वे देवाः समायाता दिने पुण्ये च कुत्रचित् ॥
तत्राहञ्च स्वयं लक्ष्मीरेकस्थाने समागते ।
तत्रावयोर्मतिर्जाता शिवविष्णुप्रपूजने ॥
अथ श्रियमवोचञ्च सामुद्रि शृणु मे मतिं ।
स्वकल्पितेन द्रव्येण पूजयेऽहं हरिं प्रभुं ॥
मामुवाच ततो लक्ष्मीर्गद्गदाक्षरभाषिणी ॥
ममाप्येवं मतिर्जाता त्वमवोचः स्वयं यथा ।
स्वकल्पितेन द्रव्येण पूजयेऽहं त्रिलोचनं" ॥

देव्युवाच ।

"सजये विजये देवि ! तयोरेवम्भूतयोस्तदा ।
नयनेषु सुजातानि अमलाश्रुजलानि च ॥
तानि नौ नयनेभ्यश्च निपेतुर्भुवि हे सखि ।
ततो जाता द्रुमाः पृथ्व्यां चत्वारो विमलप्रभाः ॥
ख्याता आमलकी नाम्ना जाता कादमलाद्यतः ।
श्यामलच्छदवृन्दास्ते कर्व्वूरस्कन्धमूलकाः ॥
शिरायथितपत्राली पञ्चमालाकपञ्चकाः ।
विल्वस्य च तुलस्याश्च ये गुणाः कथिताः सखि ॥
ते ते गुणाः सर्व्व एव आमलक्यां समाहिताः ।
पञ्चमालादलैरस्याः शिवविष्णू सुरेश्वरौ ॥
सर्व्वथा पूजितौ स्यातां सख्यौ नास्त्यत्र संशयः ।
माघे मासि सितायां तामेकादश्यां समुद्भवां ॥
शुभामामलकीं दृष्ट्वा समेताः सर्व्वदेवताः ।
ऋषयस्ते सशिष्याश्च हर्षमापुः परं तदा ॥
शिवाच्युतस्वरूपाञ्च दृष्ट्वा तुष्टुवुस्तदा" ॥ ० ॥
अस्या नमस्कारमन्त्रादिः ।
"नमाम्यामलकीं देवीं पञ्चमालाद्यलङ्कृतां ।
शिवविष्णुप्रियां दिव्यां श्रीमतीं सुन्दरप्रभां ॥
एतेन खलु मन्त्रेण सर्व्वा अस्याः क्रिया मताः ।
एतामुद्दिश्य तीर्थानि चीर्णव्रतानि मनीषिभिः ॥
विल्वदलवदेवेह पृथिव्यां कर्म्मणा स्मृते ।
सिषिचुस्तामामलकीं सर्व्वतीर्थजलैर्द्विजाः ॥
अथ सर्व्वसुराश्चापि मुनीनाञ्च तदाज्ञया ।
मया सम्पूजितः शम्भुः श्रीश्च प्रभुमपूजयत् ॥
तदा जयजयध्वानो बभूव क्षितिमण्डले ।
आकाशे पुष्पवृष्टिश्च शङ्खशब्दाश्च पुष्कलाः ॥
दृष्ट्वा ह्यामलकी देवी दधारानन्दमुत्तमम् ।
तेन धात्रीति नाम्नापि राजत्यामलकी शुभा ॥
नमस्कृत्य ह्यामलकीं गता देवा दिशास्तथा ।
ब्रह्मविष्णुशिवाश्चापि तत्राधिष्ठानमाश्रिताः ॥
जाता ह्यामलकी देवी परमानन्ददायिनी ।
मान्या श्लाघ्या च पूज्या च प्रबभूव तथा सखीतिव" ।
इति बृहद्धर्म्मपुराणे आमलकीप्रादुर्भावः १२
अध्यायः ॥ * ॥ एकादश्यां तत्र विष्णुप्रीतिर्यथा ।
"तुष्यत्यामलकैर्विष्णुरेकादश्यां विशेषतः ।
श्रीकामः सर्व्वदा स्नानं कुर्व्वीतामलकैर्नरः" ॥
इति गारुडे २१५ अध्यायः ॥

आमवात, पु, (आमोऽपाकहेतुः वातः ।) स्वनामख्यात-
रोगविशेषः । तस्य निदानपूर्व्विकां संप्राप्तिमाह ।
"विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च ।
स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्व्वतस्तथा ॥
वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति ।
तेनात्यर्थमपक्वोऽसौ धमनीभिः प्रपद्यते ॥
वातपित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः ।
स्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः ॥
जनयत्यग्निदौर्ब्बल्यं हृदयस्य च गौरवं ।
व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः" ॥
विरुद्धाहारचेष्टस्य विरुद्धाहारः क्षीरमत्स्यादि ।
विरुद्धा चेष्टा भुक्त्वा व्यायामादि । तद्युक्तस्य ।
निश्चलस्य निर्व्व्यापारस्य । "स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं
व्यायामं कुर्व्वतः" इति मिलितो हेतुः । श्लेष्म-
स्थानं आमाशयसन्ध्यादि । तेन श्लेष्मस्थानगतेन
अत्यर्थं अपक्वः । पित्तस्थानगमने तु पक्वोऽभ-
विष्यदित्यभिप्रायः । असौ आमः धमनीभिः
प्रपद्यते धमनीमार्गैश्चलति । भूयो दूषितः अति-
शयेन दूषितः । सोऽन्नजो रसः । आमः स्रो-
तांसि अभिष्यन्दयति संस्तभ्य रसवहशिराव-
रोधं कृत्वा स्रोतांसि गुरूणि करोति । नानावर्णः
वातादिजनितवर्णभेदान्नानावर्णः ॥ * ॥ आमस्य
लक्षणमाह ।
"अजीर्णात् यो रसो जातः सञ्चितो हि क्रमेण तैः ।
आमसंज्ञां स लभते शिरोगात्ररुजाकरः" ॥
अजीर्णात् भुक्तादजीर्णात् ॥ * ॥ आमवातस्य सा-
मान्यलक्षणमाह ।
"युगपत् कुपितावेतौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ ।
स्तब्धञ्च कुरुते गात्रमामवातः स उच्यते" ॥
एतौ वातकफौ । त्रिकसन्धिप्रवेशकौ वेदनयेति
बोद्धव्यौ ॥ * ॥ तन्त्रान्तरे तस्य लक्षणान्तरमाह ।
"अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा ह्यालस्यं गौरवं ज्वरः ।
अपाकः शूनताङ्गानां आमवातस्य लक्षणम्" ॥ * ॥
अस्यैवातिवृद्धस्य लक्षणमाह ।
"स कष्टः सर्व्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत् ।
हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानूरुसन्धिषु ॥
करोति सरुजं शोथं यत्र दोषः प्रपद्यते ।
स देशो रुज्यतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥
जनयेत् सोऽग्निदौर्ब्बल्यं प्रसेकारुचिगौरवम् ।
उत्साहहानिं वैरस्यं दाहञ्च बहुमूत्रतां ॥
कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्य्ययं ।
तृट्छर्द्दिभ्रममूर्च्छाश्च हृद्ग्रहं विड्विबद्धतां ॥
जाड्यान्त्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान्" ।
यदा प्रकुपितो भवेत् प्रकर्षेण कुपितः स्यात्तदा
वक्ष्यमाणानुपद्रवान् करोति । तानाह हस्तेत्यादि ।
यत्र दोषः दुष्टः आमः प्रपद्यते गच्छति । जाड्यं
अकर्म्मण्यम् । अन्यानुपद्रवान् [illegible]दीन्

॥*॥ तस्यैव विशिष्टानि लक्षणान्याह ।
“पित्तात् दाह सरागञ्च सशूल पवनात्मक ।
स्तिमित गुरुकण्डूक कफजुष्ट तमादिशेत्” ॥
गुरुकण्डूक बहुकण्डूकम् ॥*॥ तस्यासाध्यत्वादि-
कमाह ।
“एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ।
सर्व्वदेहचर शोथः सकष्ट साम्निपातिक” ॥*॥
अथ आमवातस्य चिकित्सा ।
“लङ्घन स्वेदन तिक्त दीपनानि कटूनि च ।
रेचन स्नेहनमपि वस्तयश्चाममारुते ॥
रूक्षस्वेदो विधातव्यो वालुकापुटकैरपि ।
उपनाहाश्च कर्त्तव्यास्तेऽपि स्नेहविवर्जिता ॥*॥
वास्तूकमत्र वार्त्ताक पटोल कारवेल्लकं ।
कोरदूषा यवा पथ्या षष्टिका शालयोऽनवा” ॥
अभवाः पुराणा ।
“लावकाना तथा मास हितं तक्रेण सस्कृत ।
हितञ्च यूष कौलत्थ कणायश्च्यणकस्य च” ॥*॥
“चित्रक कटुका पथ्या नागरातिविषामृता ।
चूर्णिता कोष्णतोयेन पिबेदामानिलापहा ।१।
शटी शुण्ठी शिवासैन्द्रा देवाह्वातिविषामृता ।
क्वथिता प्रपिबेदामवाती रूक्षञ्च भोजयेत् ॥
देवाह्वा देवदारु ।२।
आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिण ।
एकएव निहन्तायमेरण्डस्नेहकेशरी ।३।
एरण्डस्नेहयुक्ता हरीतकीं भक्षयेद्विधिवत् ।
आमानिलार्त्तियुक्तो युक्तो वृद्ध्या च गृध्रस्या ।४।
श्वेत पुनर्नवामूल तेन तैल प्रसाधयेत् ।
आमवातरुज हन्ति पादाभ्यञ्जनमर्द्दनात् ।५।
आरग्वधस्य पत्राणि भृष्टानि कटुतैलत ।
आमवातप्रशान्त्यर्थं खादेद्भक्ताहृतानि च ।६।
शुण्ठीगोक्षुरकक्काथ प्रात प्रातर्निषेवित ।
आमवाते कटीशूले पाचन रुक्प्रणाशन ।७।
कटीशूले पिबेत्तैल एरण्डफलसम्भव ।
महौषधगुडूच्योश्च क्काथ मागधिकायुत ॥
विश्वोश्चैरण्डवीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत् ।
तत्पायस कटीशूले गृध्रस्या परमौषध ।८।
रास्ना वातारिमूलञ्च वासक सदुरालभ ।
शटीदारुवलामुस्तनागरातिविषाभया ॥
श्वदंष्ट्राव्याधिघातश्च मिसिधान्य पुनर्नवा ।
अश्वगन्धामृता कृष्णा वृद्धदारः शतावरी ॥
वचा सहचरश्चैव चविका वृहतीद्वय ।
समभागानि सर्व्वाणि रास्नात्र द्विगुणा मता ॥
पिबेत् कषायमेतेषामष्टभागावशेषित ।
क्षिप्त्वा नागरचूर्णञ्च प्रक्षेपोऽत्र यथामल ॥
सर्व्वेषु वातरोगेषु सामेषु तु विशेषतः ।
पक्षाघातेऽर्दिते कम्पे कुब्जे सन्धिगतेऽनिले ॥
जानुजङ्घास्थिपीडासु गृध्रस्याञ्च हनुग्रहे ।
उरुस्तम्भे वातरक्ते विश्वच्यां क्रोष्टुशीर्षके ॥
हृदामये च दुर्नाम्नि योनिशुक्रामयेषु च ।
पुंसा मेढ्रगते वाते स्त्रीणां वन्ध्यामये तथा ॥
योषिता गर्भद मुख्य नास्त्यस्मात् परमौषध ।
महारास्नादिकः क्काथो वेधसाय विनिर्म्मितः” ॥

महारास्नादिक्काथः ।९। “अजमोदामरिच-
पिप्पलीविडङ्गसुरदारुचित्रकशताह्वाः । सैन्धव-
मागधिमूल भागा नवकस्य पलिकाः स्यु ॥ शुण्ठी
दशपलिका स्यात् पलानि तावन्ति वृद्धदारस्य ।
अभया पलानि पञ्च सर्व्वाणि चूर्णं विधापयेदेषा ॥
समगुडवटकानदतश्चूर्णं वा कोष्णवारिणा पिवतः ।
नश्यन्त्यामानिलजाः सर्व्वे रोगा सदारुणाः शीघ्रं ।
आनाहशूलतूनी प्रतितूनी गृध्रसी गुल्मः । कटि-
पृष्ठपरिस्फुटनं स्फुटन चैवास्थिजङ्घयोस्तीव्र ॥
श्वयथुस्तथाङ्गसन्धिषु ये चान्येऽप्यामवातजा रोगाः
सर्व्वे प्रयान्ति शान्ति तमइव सूर्य्यांशुविध्वस्त ॥
अजमोदादिचूर्णमोदक ।१०।
“आमवाते हितोऽतीव पथ्यादिर्गुग्गुलुर्मतः” ।
तथैव योगराजाख्यस्मरकादिचिकित्सके ।११।
नागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य कुडव तथा ।
क्षीराढकसमायुक्त खण्डस्यार्द्धशत पल ॥
व्योषत्रिजातकद्व्यात् प्रत्येकञ्च पलं पलं ।
निक्षिपेच्छीतीभूते तत्र खादेदग्निबल यथा ॥
आमवातप्रशमन धातुपुष्टिकर पर ।
बल्यमायुष्यमोजस्य वलीपलितनाशन” ॥
शुण्ठीखण्ड ।१२।
“मेथिकायाः पलान्यष्टौ शुण्ठ्या अष्ट पलानि च ।
तयोश्चूर्णं पटे पूत दुग्धे मृद्वग्निना पचेत् ॥
दुग्धाढकयुगे गव्यं घृतमष्टपलं क्षिपेत् ।
तत्तावत्सुपचेत् यावत् भवेदतिघन पय ॥
पुन पचेत् शनैस्तत्र दत्त्वाढकमितां सितां ।
ततः पाके सुविज्ञाते ज्वलनादवतारयेत् ॥
मरिच पिप्पली शुण्ठी कणामूल सचित्रक ।
यवानी जीरकौ धान्य कारवी शतपुष्पिका ॥
जातीफल शटीत्वक् च पत्रक मद्रमुस्तक ।
गृह्णीयात् पलमेतेषां सर्व्वेषाञ्च पृथक् पृथक् ॥
षडक्ष नागर तत्र मरिच च षडक्षक ।
एषा चूर्णं परिक्षिप्य सर्व्वं समिश्रं रक्षयेत् ॥
एतत्तु भेषज प्रोक्त मेथिकापाकसञ्ज्ञक ।
भक्षयेत् पलमात्र तत् यथा वाग्निबल तथा ॥
आमवात निहन्त्येतत् सर्व्वांश्च पवनामयान् ।
ज्वरांश्च विषमान् हन्ति पाण्डुरोग सकामल ॥
हन्त्युन्मादमपस्मार प्रमेहान् वातशोणित ।
अम्लपित्त शीतपित्त शिरःपीड़ां दृगामय ॥
प्रदर सूतिकारोग हन्यादेतन्न सशय ।
वपुषः पुष्टिकृद्बल्य वीर्य्यवृद्धिकर पर” ॥
मेथिकापाक ।१३।

“रसो रसोनस्य पिचुप्रमाण
क्षिपेच्च तत्राक्षमित घृत गो ।
पिबेदुभे तेन दहत्यवश्य
शिखीव तूल हि महामवात” ॥

सामान्यवातव्याधिचिकित्सायां हि लिखित रसो-
नाष्टकमामवाते अतिगुणद ।१४।
“सैन्धव श्रेयसी रास्ना शतपुष्पा यवानिका ।
स्वर्जिका मरिच कुष्ठं शुण्ठी सौवर्च्चलं विड ॥
वचाजमोदा मधुकं पौष्कर मधुर कणा ।
एतान्यर्द्धपलांशानि सूक्ष्मकल्कानि कारयेत् ॥
प्रस्थमेरण्डतैलस्य प्रस्थोऽम्बु शतपुष्पजं ।
काञ्जिक द्विगुण दत्त्वा मस्तु च द्विगुणं तथा ॥
एतत् सर्व्व संभार शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
सिद्धमेतत् प्रयोक्तव्यमामवातहर पर ॥
पाने चाभ्यञ्जने वस्तौ कुरुतेऽग्निञ्च भृश ।
वातार्त्ते वङ्क्षणे शूले कटीजानूरुसन्धिजे ॥
तथा हृत्पार्श्वजे शूले शस्त श्लेष्मणि पीडिते ।
अन्यांश्चानिलजान् रोगान् नाशयत्याशु देहिनां”
वृहत्सैन्धवाद्य तैल ।१५।
“दधिमत्स्यगुडक्षीरपोतकीमाषपिष्टक ।
वर्जयेदामवातार्त्तो गुडमांसमनूपज” ॥
इत्यामवाताधिकार । इति भावप्रकाशः ॥
(आत्रेयउवाच ।
“लक्षण शृणु पुत्र ! त्व समासेन वदाम्यह ।
गुर्व्वाहारप्रपुष्टेन मन्दाग्नेश्च व्यवायिन ॥
तर्पिते कन्दशाकैस्तु आमोवायुसमीरितः ।
श्लेष्मस्थाने प्रपच्यैव जायते बहुवेदन ॥
आमातिसारो वर्त्तेत सन्धौ शोफ प्रजायते ।
जडत्वञ्चैव गात्राणा वलासपतन मुखे ॥
पृष्ठमन्यात्रिकेजातवेदनार्त्तोऽपि सीदति ।
अङ्गं वैकल्यमायाति आमवाते भिषग्वर” ॥
चिकित्सा यथा ॥*॥
“तस्य नो स्नेहन कार्य्यं पाचनञ्च विधीयते ।
आम सज्ञयते प्राज्ञैः चतुर्धा भेदलक्षणे” ॥
विष्टम्भ्यामलक्षण यथा ॥*॥
“विष्टम्भी गुल्मवान्मेही आमः पक्काम एव च ।
सर्व्वाङ्गगो भवेत्त्वान्यो वक्ष्ये तस्यापि लक्षण ॥
विष्टम्भो गुरु आध्मान वस्तिशूलञ्च जायते ।
तस्यापि पाचन कार्य्यं स्नेहनञ्चैव कारयेत्” ॥
गुल्मशङ्कामलक्षण यथा ॥*॥
“जठर गर्ज्जते यस्य गुल्मवत् परिपीड्यते ।
कटीदेशे जडत्वञ्च आमगुल्माभिशङ्कित ॥
तस्यादौ लङ्घनानि स्युर्ज्ञात्वा देहवलावल ।
पाचन नैव कर्त्तव्य गुल्मपाके विमूर्च्छति ॥
पाचिते चापि गुल्मामे तदाशु मरण ध्रुवम्” ।
स्नेहामलक्षण यथा ॥*॥
“यस्य च स्निग्धता गात्रे जाड्य मन्दाग्निको वली ।
स्नेहामो विज्ञेयो यस्य स्नेहीवामः प्रकीर्त्तित ॥
तस्य नो स्नेहन कार्य्यंस्तोपवासञ्च कारयेत् ।
पाचनञ्चैव कर्त्तव्यमामश्चैवातिसारयेत्” ।
आमस्य लक्षण यथा ॥*॥
“यस्य शोफागम जाड्य तथा चैव जलोदर ।
अरुच्यामातिसारश्च सचासाध्यो विजानता ॥
प्रत्याख्येया क्रिया कार्य्या जीवितस्यापि सशये ।
पाचन पाचित ज्ञात्वा तस्माच्चूर्णानि दापयेत्” ॥
चिकित्सा यथा ॥*॥
“आमवाते कणायुक्त दशमूलीजल पिबेत् ।
गुडूची नागर पथ्या चूर्णमेतद्गुडान्वित ॥
धान्यनागररास्नाब्ददेवदारुवचाभयाः ।
पाचनञ्चामवाते च श्रेष्ठमेतत्सुखावह” ॥)
आमातीसार, पुं, ( आमरोगेण कृतः अतीसारः ।)
षट्प्रकारातीसारमध्ये रोगविशेषः । तस्य

संप्राप्तिरूपे ।

अन्नाजीर्णात् प्रद्रुताः क्षोभयन्त
कोष्ठं दोषा धातुसंघान् मलांश्च ।
नानावर्णं नैकशः सारयन्ति
शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति ।
पुरीषं भृशदुर्गन्धि पिच्छिलं चामसंज्ञितं" ॥
इति निदानं ॥
(चिकित्सा यथा,—
"न तु संग्रहणं दद्यात् पूर्व्वमामातीसारिणे ।
दोषाह्यादौ रुध्यमाना जनयन्त्यामयान् बहून् ॥
शोथपाण्ड्वामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान् ।
दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शोगदांस्तथा ॥
क्षीणधातुबलार्त्तस्य बहुदोषोऽति निःसृतः ।
आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात् पाचनान्मरणं भवेत्"
इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहः ॥*॥
"अभया मस्तुना पिष्टा मधुशर्करयान्विता ।
आमातीसारं शमयेद् गुडामलकमेव च ॥
वत्सकं जीरके द्वे च दध्ना पिष्टन्तु दापयेत् ।
आमातिसारशमनं वस्तिशूलं नियच्छति" ॥
इति हारीतः ॥*॥ "तस्य रूपाणि विज्जल-
माममविलुतमवसादितं । रूक्ष इव सशब्दमशब्दं
वा विबद्धमूत्रवातमतिसार्य्यते पुरीषं वायुश्चान्त-
कोष्ठस्य सशब्दशूलं तिर्य्यक् चरति विबद्ध इत्या-
मातिसारः" ।
"आमे परिणते यस्तु विबद्धमतिसार्य्यते ।
सशूलपिच्छमल्पाल्पं बहुशः सप्रवाहिकं ॥
तं मूलकानां यूषेण बदराणामथापि वा ।
उपोदकायाः क्षीरिण्या यवान्या वास्तुकस्य वा ॥
सुवर्च्चलायाश्चञ्चोर्व्वा शाकेनावल्गुजस्य वा ।
शठ्या कर्कारुकाणां वा जीवन्त्याश्चिर्भटस्य वा ॥
लोणीकायाः सपाठाया शुष्कशाकेन वा पुनः ।
दधिदाडिमसिद्धेन बहुस्नेहेन भोजयेत्" ॥
इति चरकः ॥)
आमात्य, त्रि, (अमात्य एव स्वार्थे अण् ।) अमात्यः ।
मन्त्री । इति द्विरूपकोषः ॥ बलाध्यक्षः ।
आमानस्य, क्ली, (न प्रशस्तं मानसं यस्य स अमा-
नसस्तस्य भावः । अमानस + ष्यञ् ।) आमनस्यं ।
पीडा । दुःखं । इति शब्दरत्नावली ॥
आमान्नं, क्ली, (आमञ्च तत् अन्नञ्चेति कर्मधारयः ।)
अपक्वान्नं । काँचाचाउल इति भाषा । तद्दानमन्त्रो
यथा,—
"आमान्नं ते प्रयच्छामि फलताम्बूलसंयुतं ।
सघृतं परमं दिव्यं मया भक्त्या निवेदितं" ॥
इति रुद्रनन्दिकेश्वरपुराणोक्तदुर्गोत्सवपद्धतिः ॥*॥
बलात् चाण्डालादिस्वामिकापक्वान्नभोजनप्राय-
श्चित्तं यथा । चाण्डालान्नं भुक्त्वा त्रिरात्रमुपवसेत्
सिद्धं भुक्त्वा पराकः । इति बलाद्भोजनविषयं ।
इति प्रायश्चित्तविवेकः ॥ त्रिरात्रमामान्नविषयं ।
पराकं सिद्धमित्युक्तेः । पराकमाह मनुः ।
"यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनं ।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्व्वपापापनोदनः" ॥
"तेनान्नामान्ने सिद्धान्नप्रायश्चित्ततुरीयभागविधा-
नाद्ज्ञानादावपि तत्तुरीयकल्पना इति" । इति
प्रायश्चित्ततत्त्वं ॥*॥ आमान्नद्वारा कर्त्तव्यश्राद्धानि ।
यथा,—
"आपद्यनग्नौ तीर्थे च चन्द्रसूर्य्यग्रहे तथा ।
आमश्राद्धं द्विजैः कार्य्यं शूद्रेण तु सदैव हि" ॥
इति श्राद्धतत्त्वधृतप्रचेतोवचनं ॥ अपि च ।
योगिनीतन्त्रे ।
"निरग्नेरामश्राद्धे तु अन्नं न क्षालयेत् क्वचित् ।
वृद्धौ च क्षालयेदन्नं संक्रमे ग्रहणेषु च" ॥
इति तिथ्यादितत्त्वम् ॥*॥
आमाशय, पुं, (आमस्य आशयः षष्ठीतत्पुरुषः ।)
अपक्वस्थानं । तत्तु नाभिस्तनयोर्म्मध्यभागः । इति
शब्दचन्द्रिका ॥ (यथा महाभारते,—
"पक्वाशयस्त्वधोनाभ्यामूर्द्ध्वमामाशयः स्थितः" ।
यथा च सुश्रुते,—
"पक्वामाशययोर्मध्ये शिराप्रभवा नाभिर्नाम" ॥*॥
"नाभिस्तनान्तरं जन्तोराहुरामाशयं बुधाः" ।
"आमाशयस्तु तदधः" इति भावप्रकाशः ॥
"तत्रामाशयः पित्ताशयस्योपरिष्टात् तत्प्रत्यनी-
कत्वादूर्द्ध्वगतित्वात्तेजसश्चन्द्र इवादित्यस्य स चतु-
र्व्विधस्याहारस्याधारः" । "आमाशयः श्लेष्मणः" ।
इति सुश्रुतः ॥)
आमिक्षा, स्त्री, (आमिष्यते मिषु सेचने बाहुलकात्
सक् ।) शृतोष्णदुग्धे दधियोगसम्भवा या । क्षीरसा
इति ख्याता । छाना इति केचित् । इत्यमरः ॥
तत्पर्य्यायः । दधिकूर्च्चिका २ पयस्या ३ क्षीर-
सन्तानिका ४ । इति राजवल्लभादयः ॥
("ग्राहिणी वातला रूक्षा दुर्ज्जरा तक्रकूर्च्चिका" ।
इति सुश्रुतः अत्र हि तक्रकूर्च्चिका शब्देनामि-
क्षोच्यते इति पर्य्यायान्तरदृष्टत्वात् ।)
आमिष, क्ली, पुं, (आमिष्यते भुज्यते मिष् सेचने
घञ् संज्ञापूर्व्वकत्वान्न गुणः ।) मांसं । इत्यमरः ॥
भोग्यवस्तु । सम्भोगः । उत्कोचः । इति मेदिनी ॥
सुन्दराकाररूपादि । लोभसञ्चयः । इति हेम-
चन्द्रः ॥ लाभः । कामगुणः । रूपं । भोजनं ।
इति हारावली ॥
आमिषप्रियः, पुं, (आमिषं प्रियं यस्य सः ।)
कङ्कपक्षी । इति राजनिर्घण्टः ॥ मांसाभि-
लाषिणि त्रि ॥
आमिषाशी, न्, त्रि, (आमिषं अश्नाति आमिष +
अश् + णिनि ।) मत्स्यमांसभोजनशीलः । तत्प-
र्य्यायः । शौष्कलः २ । इत्यमरः ॥
आमिषी, स्त्री, (आमिषवदाकारोऽस्त्यस्या जटाया-
मिति अर्श आदित्वादच् गौरादीत्वात् ङीष् च ।)
मिषी । जटामांसी । इति केचित् । इत्यमर-
टीकायां भरतः ॥
आमीक्षा, स्त्री, (आमिष्यते, मिषु सेचने बाहु-
लकात् सक् ।) आमिक्षा । आवर्त्तिते तप्ते क्षीरे
दधियोगात् या वटिकाकारा विकृतिर्जायते सा ।
इति पुरुषोत्तमः ॥
आमुक्तः, त्रि, (आङ् + मुच् + क्तः ।) पिनद्धः । परि-
हितवस्त्रादि । इत्यमरः ॥ परिहितकवचव्यक्ति ॥
आमुष, पुं, (आम + वप् + क ।) कण्टकयुक्तवंश-
विशेषः । इति शब्दचन्द्रिका ॥ वेउडवाँश ।
इति ख्यातः ।
आमुष्यायणः, त्रि, (अमुष्य अपत्यम् + फक् । अलुक् ।)
ख्यातवंशोद्भवः । सत्कुलजातः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥
आमूल, क्ली, (मूलपर्य्यन्तं आमूलं । अव्ययीभावः ।)
मूलपर्य्यन्तं ॥ (प्रारम्भावधि । यथा, शाकुन्तले ।)
"आमूलशुद्धसन्तति कुलमेतत् पौरवं प्रजाबन्ध्ये" ।)
आमोदः, पुं, (आङ् + मुद् + घञ् ।) अतिदूरगामि-
गन्धः । इत्यमरः ॥ गन्धः । हर्षः । इति मेदिनी ॥
सुमहद्गन्धः । इति शब्दरत्नावली ।
(यथा रघुवंशे । १।४३ ।
"आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिःश्वासानुकारिणम्" ।)
आमोदन, क्ली, (आङ् + मुद् + ल्युट् ।) आमोद-
करणं । हर्षणं ॥ प्रीणनं । आनन्दनं ।
आमोदितः, त्रि, (आ + मुद् + णिच् + क्त । यद्वा
आमोदः सञ्जातोऽस्य तारकादित्वादितच् ।) आ-
नन्दितः । सुगन्धितः । सद्गन्धयुक्तः । यथा,—
"पारिजातप्रसूनोत्थगन्धामोदितदिङ्मुखे" ।
इति शिवरात्रिव्रतकथा ॥ आनन्दितः । आमोद-
शब्दादितप्रत्ययेन निष्पन्नः ॥
आमोदी, [न्] त्रि, (आमोद + णिनि ।) मुखवासनं ।
इत्यमरः ॥ कर्पूरादिवटिकाकृतमुखगन्धः । इति
सारसुन्दरी ॥ मुखवासनवटिकादिः । आमोद-
युक्तः कर्पूरादिरामोदी । इति भरतः ॥ नानाद्रव्य-
रचित एकैकश एव वा कर्पूरादिभिर्मुखोपयोग्य-
मुखवासनवटिकादिः । इति सर्व्वस्वं । गन्धयुक्तः ।
हर्षविशिष्टः ॥ (यथा भर्त्तृहरिः ।
"नवकुटजकदम्बामोदिनो गन्धवाहाः" ।)
आम्नाय, पुं, (आङ् + म्ना + घञ् + युक् ।) श्रुतिः ।
वेदः । (यथा महावीरचरिते ।
"तृतीयो ह्येष मेध्योऽभिराम्नाय पञ्चमोऽथवा" ।
उत्तरचरिते ।
"समांसो मधुपर्क इत्याम्नायं बहुमन्यमाना" ।)
संप्रदायः । गुरुपरम्पराप्राप्तोपदेश इति यावत् ॥
इत्यमरः ॥ निगमः । उपदेशः । इति मेदिनी ॥
कुलं । आगमः । इति हेमचन्द्रः ॥ कुलक्रमः । इति
शब्दरत्नावली ॥ (उपदेशः, शिक्षादानं, तन्त्र-
शास्त्रं, अभ्यासः, आम्रेडनं, आलोचनं ।)
आम्बिकेयः, पुं, (अम्बिकाया अपत्यं स्त्रीभ्यो ढक् ।)
धृतराष्ट्रो राजा । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (यथा
महाभारते ।

"परं श्रेयः पाण्डवेया मयोक्तं
न मे तच्च श्रुतवानाम्बिकेयः" ।)

कार्त्तिकेयः ।
आम्रः, पुं, (अम्यते अम गत्यादौ अमितम्योर्दीर्घश्चेति
रक् दीर्घश्च ।) फलवृक्षविशेषः । आम गाछ इति
भाषा । तत्पर्य्यायः । चूतः २ रसालः ३ । अति-
सौरभश्चेत् सहकारः ४ । इत्यमरः ॥ कामशरः ।
कामवल्लभः ६ कामाङ्गः ७ कीरेष्टः ८ माधवद्रुमः
९ भृङ्गाभीष्टः १० सीधुरसः ११ मधूली १२

कोकिलोत्सव १३ वसन्तदूत १४ अम्लफलः १५ मोदाख्य १६ मन्मथालय १७ मध्वावासः १८ सुमदन १९ पिकरागः २० नृपप्रिय २१ प्रियाम्बु २२ कोकिलावासः २३। इति राजनिर्घण्टः। माकन्द २४ षट्पदातिथि २५ मधुव्रतः २६ वसन्तद्रु २७ पिकप्रियः २८ स्त्रीप्रिय २९ गन्धबन्धुः ३० अलिप्रियः ३१। इति शब्दरत्नावली॥ मदिरासखः ३२। इति जटाधरः॥ बालाम्रफलगुणाः। वायुरक्तपित्तकारित्वं। इति राजवल्लभः॥ अपिच। कषायत्व। अम्लरसत्व। सुगन्धित्व॥ कफामयनाशित्व। अस्रकरत्व। पित्तप्रकोपवायुरक्तदोषपटुत्वादिरुचिप्रदत्वञ्च। तच्च बद्धास्थितादृक्। इति राजनिर्घण्टः॥ * ॥ मध्याम्रगुणाः। पित्तकारित्व॥ * ॥ पक्वाम्रगुणाः। वर्णरुचिमांसशुक्रबलकारित्व। पित्ताविरोधित्व। वायुनाशित्व। हृद्यत्व। गुरुत्वं। अनुलोमनत्व। इति राजवल्लभः॥ अपिच। त्रिदोषशमताकारित्व। स्वादुत्व। पुष्टिजनकत्व। अधिकधातुप्रचयकारित्व। तृप्तिकान्तिकारित्व। तृष्णाश्रमशमनत्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः॥ * ॥ मधुयुक्ताम्रगुणाः। क्षयरोगप्लीहवातश्लेष्मरोगनाशित्व॥ * ॥ घृतयुक्ताम्रगुणाः। वातपित्तनाशित्व। अग्निबलवर्णकारित्वञ्च॥ * ॥ दुग्धयुक्ताम्रगुणाः। शीतलत्व। स्वादुत्व। गुरुत्व। स्निग्धत्व। भेदकत्व। वातपित्तहारित्व। शुक्रबलवर्द्धकत्वञ्च॥ * ॥ तत्फलास्थिगुणाः। तृष्णाच्छर्द्दिमेहातीसारनाशित्व। इति राजवल्लभः॥ * ॥ तत्त्वग्गुणाः। कषायत्व॥ * ॥ तन्मूलगुणाः। सुगन्धित्व। कषायत्व। रुचिकारित्व। सग्राहित्व। शीतलत्वञ्च॥ * ॥ तत्पुष्पगुणौ। रुचिकारित्व। अग्निदीपनत्वञ्च॥ * ॥ आम्रपेषीगुणाः। कषायत्व। अम्लत्वं। भेदकत्व। कफवातनाशित्वञ्च॥ * ॥ कृत्रिमपक्वाम्रगुणाः॥ अम्लरसहानेर्मधुरत्वाच्च पित्तनाशित्व॥ * ॥ चुषिताम्रगुणाः॥ परमरुचिबलवीर्य्यकारित्व। लघुत्व। शीतलत्व। शीघ्रपाकित्व। वातपित्तहारित्व। सारकत्वञ्च॥ * ॥ तद्गालितरसगुणाः। बलकारित्व। गुरुत्व। वातहरत्व। सारकत्व। हृद्यत्व। तृप्तिजनकत्व। अतिशयबृंहणत्व। कफवर्द्धकत्वञ्च॥ * ॥ तत्खण्डगुणाः॥ गुरुत्व। रोचकत्व। गुरुपाकित्व। मधुरत्व। बृंहणत्व। बलकारित्व। शीतलत्व। वातनाशित्वञ्च॥ * ॥ अतिशयाम्रभक्षणगुणाः॥ मन्दाग्निविषमज्वररक्तामयबद्धगुदोदरनयनामयकारित्व। "एतदम्लाम्रविषय न तु मधुराम्रपर। मधुरस्य पर नेत्रहितत्वादिगुणत्वात्॥ यद्यतिशयभक्षणं करोति तदा शुण्ठीजलानुपान। अथवा सौवर्च्चलेन सह जीर प्रयोक्तव्य"॥ * ॥
तत्पल्लवगुणाः। रुचिकारित्व। कफपित्तनाशित्वञ्च॥ * ॥ तथा च राजनिर्घण्टः।
"आम्रमामं जल क्षिप्त मर्द्दित दृढ़पाणिना।
सिताशीताम्बुसंयुक्त कर्पूरमरिचान्वित॥
प्रपाणकमिद श्रेष्ठ भीमसेनेन निर्म्मितं।
सद्यो रुचिकर बल्यं शीघ्रमिन्द्रियतर्पणम्"॥

(तत्रादावाम्रस्य नामानि गुणाश्च।
"आम्रः प्रोक्तो रसालश्च सहकारोऽतिसौरभः।
कामाङ्गो मधुदूतश्च माकन्दः पिकवल्लभः॥ * ॥
आम्रपुष्पमतीसारकफपित्तप्रमेहनुत्।
असृग्दुष्टिहरं शीत रुचिकृद्ग्राहि वातलम्॥
आम्र बाल कषायाम्ल रुच्य मारुतपित्तकृत्।
तरुणन्तु तदत्यम्ल रूक्ष दोषत्रयास्रकृत्॥
आम्रमाम त्वचाहीनमातपेऽतिविशोषितम्॥
अम्ल स्वादुकषाय स्याद्भेदन कफवातजित्॥ * ॥
पक्वन्तु मधुर वृष्य स्निग्ध बलसुखप्रदम्॥
गुरु वातहर हृद्य वर्ण्य शीतमपित्तलम्।
कषायानुरस वह्नि-श्लेष्म-शुक्र-विवर्द्धनम्॥ * ॥
तदेव वृक्षसम्पक्व गुरुवातहर परम्।
मधुराम्लरस किञ्चित् भवेत् पित्तप्रकोपनम्॥ * ॥
आम्र कृत्रिमपक्वञ्च तद्भवेत् पित्तनाशनम्॥ * ॥
रसस्याम्लस्य हीनत्त्वात् माधुर्य्याच्च विशेषतः॥
चूषित तत्पर रुच्य बल्य वीर्य्यकर लघु॥
शीतल शीघ्रपाकि स्याद्वातपित्तहर सरम्॥ * ॥
तद्रसो गालितो बल्यो गुरुर्वातहरः सरः।
अहृद्यस्तर्पणोऽतीव बृंहणः कफवर्द्धनः॥ * ॥
तस्य खण्ड गुरुपर रोचन चिरपाकि च।
मधुर बृंहण बल्य शीतल वातनाशनम्॥
वातपित्तहर रुच्य बृंहण बलवर्द्धनम्॥ * ॥
वृष्य वर्णकर स्वादु दुग्धाम्र गुरु शीतलम्॥ * ॥
मन्दानलत्व विषमज्वरञ्च
रक्तामय बद्धगुदोदरञ्च।
आम्रातियोगो नयनामय वा
करोति तस्मादति तानि नाद्यात्॥
एतदम्लाम्रविषय मधुराम्लपर न तु।
मधुरस्य पर नेत्रहितत्वाद्या गुणा यतः॥
शुण्ठ्यम्भसोऽनुपान स्यादाम्राणामतिभक्षणे।
जीरक वा प्रयोक्तव्य सह सौवर्च्चलेन च"॥ * ॥
आम्रबीजस्य गुणाः।
"आम्रबीज कषाय स्याच्छर्द्यतीसारनाशनम्।
ईषदम्लञ्च मधुर तथा हृदयदाहनुत्"॥ * ॥
आम्रनवपल्लवस्य गुणाः॥
"आम्रस्य पल्लव रुच्य कफपित्तविनाशनम्"॥ * ॥
इति भावप्रकाशः॥
"अपक्वमाम्र फलमेव शस्त
सग्राहि पित्तास्रजि कोपनञ्च।
तथा विपक्व मधुरन्तु चास्य,
मेद्य सपित्तामयनाशनञ्च"॥
इति हारीतः॥
"वातपित्तास्रकृद्बाल बद्धास्थि कफपित्तकृत्॥
गुर्व्वाम्र वातजित् स्वाद्वम्ल कफशुक्रकृत्"।
इति वाभटः॥
"रक्तपित्तकर बालमापूर्ण पित्तवर्द्धनम्।
पक्वमाम्र जयेद्वायु मांसशुक्रबलप्रदम्"॥ * ॥
"आम्रामलककोलाश्च बृंहणा बलवर्द्धनाः।
रोचनास्तर्पणाश्चोक्ताः स्नेहमाधुर्य्यगौरवात्"॥
इति चरकः॥
"पित्तानिलकर बाल पित्तल बद्धकेशरम्॥
हृद्य वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम्।
कषायानुरस स्वादु वातघ्न बृंहणं गुरु॥
पित्ताविरोधि सम्पक्वमाम्र शुक्रविवर्द्धनम्।
बृंहणं मधुरं बल्य गुरु विष्टभ्य जीर्य्यति"॥
इति सुश्रुतः॥)

आम्रगन्धक, पु, (आम्रगन्ध + कन्।) समष्ठिल वृक्ष। इति राजनिर्घण्टः॥

आम्रपेषी, स्त्री, (आम्रस्य पेषी।) शुष्काम्रखण्ड। आमसी इति भाषा। अस्या गुणाः। अम्लत्व। कषायत्व। उष्णत्व। भेदकत्व कफवातनाशित्वञ्च। इति राजवल्लभः॥

आम्रात, पु, (आम्र + अत् + अच्।) आम्रातक। इति शब्दमाला॥ (अस्य गुणाः। यदुक्तं।
"आम्रातमम्ल वातघ्न गुर्व्वुष्ण रुचिकृत् परम्।
पक्वन्तु तुवर स्वादुरसपाक हिम सरम्।
तर्पण श्लेष्मल स्निग्ध वृष्य विष्टम्भि बृंहणम्।
गुरु बल्य मरुत्पित्तक्षतदाहक्षयास्रजित्"।
"राजाम्रश्च आम्रात कामाङ्गो राजपुत्रक।
राजाम्रन्तुवर स्वादु विशद शीतल गुरु॥
ग्राहि रूक्ष विबन्धाध्मवातकृत् कफपित्तनुत्"।
इति भावप्रकाशः॥ तथा च चरके।
"मधुर बृंहण बल्यमाम्रात तर्पण गुरु।
सस्नेह श्लेष्मल शीत वृष्य विष्टभ्य जीर्य्यति"॥)

आम्रातक, पु, (आम्र तद्रसम् आ ईषत् अतति माति। अत सातत्यगमने क्वुनादित्वात् वुन्।) वृक्षविशेष। आमड़ा इति भाषा। तत्पर्य्यायः। पीतन २ कपीतन ३। इत्यमरः॥ वर्षपाकी ४। इति रत्नमाला॥ पीतनक ५ कपिचूड़ा ६ अम्लवाटिक ७ भृङ्गीफल ८ रसाढ्य ९ तनुक्षीर १० कपिप्रिय ११ अम्बरातक १२ अम्बरीय १३ कपिचूड़ १४। इति जटाधरः॥ तदपक्वफलगुणाः। कषायत्व। अम्लत्व। हृत्कण्ठहर्षणत्वञ्च। तत्पक्वफलगुणाः। मधुराम्लत्व। स्निग्धत्व। पित्तकफनाशित्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः॥ अपिच। तृप्तिबलविष्टम्भाजीर्णकारित्वम्। गुरुत्वञ्च। इति राजवल्लभः॥ आम्रावर्त्तः। इति राजनिर्घण्टः॥ (यथा मार्कण्डेयपुराणे।
"आम्रानाम्रातकान् भव्यान्
नारिकेलान् सतिन्दुकान्"। इति।
अस्य पर्य्यायो गुणाश्च।
"आम्रातकः पीतनश्च मर्कटाम्र कपीतन॥
आम्रातमम्ल वातघ्न गुरूष्ण रुचिकृत्सरम्।
पक्वन्तु तुवर स्वादु रसे पाके हिम स्मृत॥
तर्पण श्लेष्मल स्निग्ध वृष्य विष्टम्भि बृंहण।
गुरु बल्यम्मरुत्पित्तक्षतदाहक्षयास्रजित्"॥
इति भावप्रकाशः॥
"आम्रातकफल वृष्य सस्नेह श्लेष्मवर्द्धन"।
इति सुश्रुतः॥)

आम्रावर्त्तः, पुं, (आम्रस्य आवर्त्तः।) आम्रशुष्करस। तत्पर्य्यायः। आम्रातक २। आमसत्त्व इति भाषा। अस्य गुणाः। तृष्णाच्छर्द्दिवातपित्तहरत्वम्। सारकत्वम्। रुचिकारित्वम्। सूर्य्या-

-सुभि पाकात् लघुलघु। "पक्कस्य सहकारस्य-
कटे विस्तारितो रस। घर्म्मसुष्को मुञ्जदत्त
आम्रातक इति स्मृत"॥ इति राजनिर्घण्ट॥
(यदुक्तम्।
"आम्रावर्त्तस्तृषाच्छर्द्दिवातपित्तहर' सर।
रुच्य' सूर्य्यांसुभि पाकाल्लघुश्च स हि कीर्त्तित"।)
आम्रेडित, क्ली, (आङ्+म्रेडि+क्तः।) द्विस्त्रि-
रुक्तम्। इत्यमर॥ दुइ तिन् वार वला इति
भाषा। (उन्मत्तेन यथा कथितस्य पुन पुन' कथन
क्रियते एवं कथितस्य द्विस्त्रिवारकथनम्।)
आम्लवेतस, पु, (आम्लोऽम्लरसयुक्तो वेतस'।)
अम्लवेतसवृक्ष। इति राजनिर्घण्ट॥
(अम्लवेतसशब्देऽस्य विशेषो ज्ञेय॥)
आम्ला, त्रि, (आ सम्यक् अम्ला अम्लरसयुक्ता।)
तिन्तिडीवृक्ष'। इति शब्दरत्नावली॥ श्रीवल्ली।
इति राजनिर्घण्ट'॥
आम्लिका, स्त्री, (आम्ला+कन्।) तिन्तिडीवृक्ष'।
इत्यमरटीकाया रायमुकुट'॥ अम्लोद्गारः। इति
शब्दमाला॥ (यथा चरके।
"आम्लिकाया फल पक्क तस्मादल्पान्तर गुणै"॥)
आम्लीका, स्त्री, (अम्ल+ठक्।) तिन्तिडीवृक्ष।
इत्यमरटीका॥
आय', पु, (आङ्+या+ड।) धनागम। प्राप्ति।
लाभ'। (यथा मनु। ८। ४१९।
"अहन्यहन्यवेक्षेत कर्म्मान्तान् वाहनानि च।
आयव्ययौ च नियतावाकरान् कोषमेव च"॥)
स्त्र्यागाररक्षक'। इति हलायुध॥ (ज्योतिष-
प्रसिद्धमेकादशभवनम्।)
आय'शूलिक', त्रि, (अय'शूलेन अर्थानन्विच्छति।
अय'शूलदण्डाजिनाभ्या ठकठञाविति ठक्।)
तीक्ष्णकर्म्मा। क्षिप्रकारी। इति भूरिप्रयोग॥
(यदुक्तम्।
"तीक्ष्णोपायेन योऽन्विच्छेत्स आय शूलिको जन"।)
आयतः, त्रि,(आङ्+यम्+क्त।) दीर्घ'। इत्यमर॥
लम्बा इति भाषा। (विस्तृतः। विशाल। आ-
कृष्टः। यथा पञ्चतन्त्रे।
"तन्तवोऽप्यायता नित्यं तन्तवो बहुलाः समा"।)
आयतच्छदा, स्त्री, (आयताः छदा यस्याः सा।)
कदलीवृक्ष। इति त्रिकाण्डशेष॥
आयतनं,क्ली, (आङ्+यत+ल्युट्।) यज्ञस्थान। देव-
स्थान। तत्पर्य्यायः। चैत्य २। इत्यमरः॥
यथा रामायणे,—
"येभ्यः प्रणमसे पुत्र। चैत्येष्वायतनेषु च"।
"समित्कुशपवित्राणि वेद्यश्चायतनानि च।
अग्निशालानि च विप्राणां शैला वृक्षा क्षुदा' क्षुपाः"॥
आश्रयः, विश्रामस्थान। यथा चाणक्यः।
"नासमीक्ष्य परं स्थान पूर्व्वमायतनं त्यजेत्"॥
कुमारसम्भवे, ७।५।
"स्नेहस्तदेकायतनं जगाम"।
महासन भिटा इत्यादिख्यातो वास्तुदेशः।
याज्ञवल्क्यः,— [व्याधिनिदानम्।)
"आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु"।)

आयति', स्त्री,(आङ्+यम्+क्तिन्।) उत्तरकाल।
भविष्यत्काल।
(यथा मनु', ७। १६९, ७। १७८।
"यदावगच्छेदायत्यामाधिक्य ध्रुवमात्मन'।
तदात्वे चाल्पिका पीडा तदा सन्धि समाश्रयेत्"।
"आयति सर्व्वकार्य्याणा तदात्वञ्च विचारयेत्"॥)
प्रभाव। कोषदण्डज तेज। इत्यमर॥ दैर्घ्य।
सङ्ग। इति विश्वहेमचन्द्रौ॥ प्रापण। इति
धरणी॥ (राजतरङ्गिणी।
"प्रतापमायति शोभा हेमन्ताहस्य वारिद।
स्मृतिशेषा करोत्येव लोभस्य पृथिवीभुजा"॥)
आयत्त, त्रि, (आङ्+यम्+क्त।) अधीन। वशी-
भूत'। इत्यमर'॥ (यथा पञ्चतन्त्रे,—
"तत् भद्र। स्वयत्नायत्तो ह्यात्मा सर्व्वस्य"।)
आयत्तिः स्त्री,(आङ्+यत्+क्तिन्।) दिन। स्नेहः।
वशित्वं। सामर्थ्य। सीमा। इति विश्व हेम
चन्द्रश्च॥ शयनं। दैर्घ्य। प्रभाव। भविष्यत्काल।
इति धरणी॥ (न्यायपथावलम्बिता। अधीनता।)
आयल्लक, क्ली, उत्कण्ठा। इति हेमचन्द्र॥
आयस, क्ली, (अयस्+अण्।) लौह। इति
भरत राजनिर्घण्टश्च॥ अयोनिर्मितादौ, त्रि॥
(यथा महाभारते,—
"आयसं हृदय मन्ये तस्य दुष्कृतकर्म्मण"।
यथा मनु, ८। ३१५।
"शक्ति चोभयतस्तीक्ष्णामायस दण्डमेव वा"।
रघुवंशे, १७। ६३।
"स चकर्ष परस्मात् तदयस्कान्त इवायसम्"।
(अयोजनितार्थे यथा,—
"विपाके कटु शीतञ्च सर्व्वश्रेष्ठ तदायसम्"॥
इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहे॥)
आयसी, स्त्री, (अयसा निर्म्मिता। अयस्+अण्+
ङीप्।) लौहमयकवच'। तत्पर्य्याय। अङ्गरक्षिणी
२ जालिका ३ जालप्राया ४। इति हेमचन्द्र'॥
आयस्त, त्रि, (आङ्+यस्+कर्त्तरि क्त।) तेजित।
क्षिप्त'। क्लेशित। कुपितः। हत। इति मेदिनी॥
(प्रयत्नशील, कार्य्योत्सुक', यत्नसिद्ध, कष्टसिद्ध।)
आयात, त्रि, (आङ्+या+क्त'।) आगतं। यथा,
"हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलु।
आयाता ब्रह्मण' शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते"॥
इति मार्कण्डेये देवीमाहात्म्यम्॥
आयान, क्ली, (आङ्+या+ल्युट्।) स्वभाव। इति
जटाधरः॥ आगमन॥ (यथा महाभारते,—
"आयाने वासि विदितो रामस्य विदितात्मन"।
आयाम,पु, (आङ्+यम्+घञ्।) दैर्घ्य। इत्यमर'॥
(यथा रामायणे,—
"योजनायमविस्तारमेकैको धरणीतलम्"।
मेघदूते, पूर्व्वमेघे। ५८।
"तेनोदीर्घो दिशमनुसरेस्तिर्य्यगायामशोभी"।)
आयास,पु, (आङ्+यस्+घञ्।) श्रान्ति। तत्-
पर्य्यायः। श्रम' २ क्लमः ३ क्लेशः ४ परिश्रम ५
प्रयास ६ व्यायामः ७। इति हेमचन्द्र॥ (अति-
यत्न। प्रयत्न'। यथा साहित्यदर्पणे,—

"रत्यायासमनस्तापक्षुत्पिपासादिसम्भवा"।
महाभारते,—
"शोकहर्षौ तथायास सर्व्व स्नेहात् प्रवर्त्तते"।
रामायणे,—
"नैवायास क्वचित् भद्रे प्राप्स्यसे न च विप्रिय"।)
आयुः, पु, क्ली, (एति इण् गतौ छन्दसीण इत्युण्।)
जीवितव्याप्यकाल। इति जटाधर॥ (जीवनं,
प्राण। यथा महाभारते,—
"अहं केशरिण' क्षेत्रे वायुना जगदायुना।
जात कमलपत्राक्षो हनूमान्नाम वानर"।
स्वनामख्यातश्चन्द्रवंशीयो राजा, स च नहुषस्य
पिता। यथा महाभारते,—
"नहुषो नाम राजर्षिर्व्यक्तं ते श्रोत्रमागत'।
तत्रैव पूर्व्वपूर्व्वेषामायोर्वंशधर' सुतः"।
पुरूरवस पुत्रः स्वनामख्यातो राजा।
यथा हरिवंशे,—
"बुधस्य तु महाराज विद्वान् पुत्रः पुरूरवा"।
"तस्य पुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोपमाः।
दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमावसु"।
ह्रदस्य पुत्रः स्वनामख्यातोऽसुरः।
यथा हरिवंशे,—
"ह्रदस्य पुत्रो ह्यायुर्वै शिवि' कालस्तथैव च"।)
आयु, [स्] क्ली, (एति गच्छतीति इण्+उसि+
णिच्च।) जीवितकाल। परमायुः। इत्यमर॥ तत्-
पर्य्याय। विजीवित २ नित्यग ३ अनुबन्ध' ४।
"पुरुषा सर्व्वसिद्धाश्च चतुर्वर्षशतायुष।
कृते त्रेतादिकेऽप्येवं पादशो ह्रसति क्रमात्"॥
इति वैद्यकं॥
"अरोगा सर्व्वसिद्धार्थास्चतुर्व्वर्षशतायुष।
कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादश"॥
इति मनु' १। १८३॥ घृत। इति राजनिर्घण्ट॥
("नाभिस्थ प्राणपवन स्पृष्ट्वा हृत्कमलान्तरं।
कण्ठाद्बहिर्विनिर्याति पातु विष्णुपदामृतं॥
पीत्वा चाम्बरपीयुष पुनरायाति वेगत'।
प्रीणयन् देहमखिल जीवयन् जठरानलम्॥
शरीरप्राणयोरेव संयोगादायुरुच्यते"।
इति शार्ङ्गधर'॥
"शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितं।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्य्यायैरायुरुच्यते"॥ इति।
"वर्षशतं खल्वायुष प्रमाणमस्मिन् काले। सन्ति
पुनरधिकोनवर्षशतजीविनो मनुष्या। तेषां
विकृतिवर्ज्यै प्रकृत्यादिबलविशेषैरायुषो लक्ष-
णतश्च प्रमाणमुपलभ्य वयसस्त्रित्व विभजेत"।
"तन्त्रेण तत्रायुरुक्त स्वलक्षणतो यथावदिहैव
तत्र शरीरमानसाभ्या रोगाभ्यामनभिद्रुतस्य
विशेषेण यौवनवत' समन्वागतबलवीर्य्यपौरुष-
पराक्रमस्य ज्ञानविज्ञानेन्द्रियेन्द्रियार्थबलसमुदाये
वर्त्तमानस्य परमर्द्धिरुचिरविविधोपभोगस्य स-
मृद्धसर्व्वारम्भस्य यथेष्टविचारणात् सुखमायु-
रुच्यते"। इति च।
"असुखमतो विपर्य्ययेण हितैषिण' पुनर्भूतानां-
स्मरणादुपरतस्य सत्यवादिनः शमपरस्य परी-

ह्यकारिणोऽप्रमत्तस्य त्रिवर्गं परस्परेणानुपहतमुपसेवमानस्य पूजार्हसम्पूजकस्य ज्ञानविज्ञानोपशमशीलस्य वृद्धोपसेविनः सुनियतरागरोषेर्ष्यामदमानवेगस्य सततं विविधप्रदानपरस्य तपोज्ञानप्रशमनित्यस्याध्यात्मविदस्तत्परस्य लोकमिमञ्चामुञ्चापेक्षमाणस्य स्मृतिमतो हितमायुरुच्यते"। इति च ॥

"अहितमतो विपर्य्ययेण प्रमाणमायुषस्त्वर्थेन्द्रियमनोबुद्धिचेष्टादीनां विकृतिलक्षणैरुपलभ्यते अनिमित्तैरिदमस्मात् क्षणान्मुहूर्त्ताद्दिवसात्त्रिपञ्चदश-सप्तदश-द्वादशाहात् पक्षान्मासात् षण्मासात् संवत्सराद्वा स्वभावमापत्स्यते इति। तत्र स्वभावः प्रवृत्तेरुपरमो मरणमनित्यतानिरोध इत्येकोऽर्थः। इत्यायुषः प्रमाणमतो विपरीतमप्रमाणम्"। इति च ॥

"वर्षशतं खल्वायुषः प्रमाणमस्मिन् काले तस्य निमित्तं प्रकृतिगुणात्मसम्पत् सात्म्योपसेवनञ्चेति"। इति च चरकः ॥)

**आयुक्तः,** त्रि, (आङ्+युज्+क्तः।) कर्म्माध्यक्षः। तत्पर्य्यायः। नियोगी २ कर्म्मसचिवः ३ व्यापृतः ४। इति हेमचन्द्रः ॥

**आयुधः,** पुं, (आयुध्यते अनेनेति। आङ्+युध्+क।) अस्त्रम्। इत्यमरः ॥ (आयुधानां त्रयो भेदाः। प्रहरणानि, पाणिमुक्तानि, यन्त्रमुक्तानि चेति। तत्र प्रहरणानि खड्गादीनि, पाणिमुक्तानि चक्रादीनि, यन्त्रमुक्तानि शरादीनि। "हतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः"। "किं वक्ष्यत्ययमेवमद्य विमुखं मामुद्यतेऽप्यायुधे"। इति उत्तरचरिते।)

**आयुधधर्म्मिणी,** स्त्री, (आयुधस्येव धर्म्मो विद्यते यस्याः। आयुधधर्म्म+इन्+ङीप्।) जयन्तीवृक्षः। इति शब्दचन्द्रिका ॥

**आयुधागारं,** क्ली, (आयुधानाम् आगारम्। षष्ठीतत्।) अस्त्रगृहम्। सेलाखाना इति ख्यातम्। इति महाभारते राजधर्म्मः ॥ तत्र नियुक्तस्य लक्षणं यथा,—

"स्वामिभक्तोऽनिवृत्तश्च सततं प्रतिजागृता।
राज्ञः स्यादायुधागारे दक्षः कर्म्मसु चोद्यतः"॥

इति मात्स्ये १९८ अध्यायः ॥ (यथा मनुः ९।२८०।

"कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान्।
हस्त्यश्वरथहर्त्तॄंश्च हन्यादेवाविचारयन्"॥)

**आयुधिकः,** पुं, (आयुधेन जीवति, आयुध+ठक्।) अस्त्रजीवी। तत्पर्य्यायः। शस्त्राजीवः २ काण्डपृष्ठः ३ आयुधीयः ४। इत्यमरः ॥ (यथा महाभारते १६।७।३६।

"न मादरक्ष्यैः सयुक्ताः नानारायुधिका ययुः"।

**आयुधीयः,** पुं, (आयुध+छ।) आयुधिकः। इत्यमरः ॥ (योद्धा। यथा मनुः ७।२२२।

"अलङ्कृतश्च सम्पश्येदायुधीयं पुनर्जनम्"।

उत्तरचरिते ६। "वर्ज्जयन्ति विस्फुरितशस्त्राः कुमारमायुधीयश्रेणयः"।) [रत्नमाला ॥

**आयुर्द्रव्यं,** क्ली, (आयुषो द्रव्यम्।) औषधम्। इति

**आयुर्व्वेदः,** पुं, (आयुरनेन विन्दति वेत्ति वेत्यायुर्व्वेदः। आयुस्+विद्+करणे घञ्।) अष्टादशविद्यान्तर्गतधन्वन्तरिप्रणीतविद्याविशेषः। वैद्यकशास्त्रं। चिकित्साशास्त्रं। तत्तु अथर्व्ववेदान्तर्गतं। यथा,

"विधाताथर्व्वसर्व्वस्वमायुर्व्वेदं प्रकाशयन्।
स्वनाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयीमृजुम्"॥

इति भावप्रकाशः ॥

चरणव्यूहमते ऋग्वेदस्योपवेदः आयुर्व्वेदः। अथर्व्ववेदस्य शस्त्रशास्त्राण्युपवेदः ॥*॥ अथायुर्व्वेदस्य विवरणम्।

"ऋग्यजुःसामाथर्व्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः।
विचिन्त्य तेषामर्थं चैवायुर्व्वेदं चकार सः ॥
कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः।
स्वतन्त्रसंहितां तस्मात् भास्करश्च चकार सः ॥
भास्करश्च स्वशिष्येभ्य आयुर्व्वेदं स्वसंहिताम्।
प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्ततः ॥
तेषां नामानि विदुषां तन्त्राणि तत्कृतानि च।
व्याधिप्रणाशबीजानि साध्वि मत्तो निशामय ॥
धन्वन्तरिर्दिवोदासः काशीराजोऽश्विनीसुतौ।
नकुलः सहदेवोऽर्किश्च्यवनो जनको बुधः ॥
जावालो जाजलिः पैलः करथोऽगस्त्य एव च।
एते वेदाङ्गवेदज्ञाः षोडश व्याधिनाशकाः ॥
चिकित्सातत्त्वविज्ञानं नाम तन्त्रं मनोरमम्।
धन्वन्तरिश्च भगवान् चकार प्रथमे सति ॥
चिकित्सादर्पणं नाम दिवोदासश्चकार सः।
चिकित्साकौमुदीं दिव्यां काशीराजश्चकार सः ॥
चिकित्सासारतन्त्रञ्च भ्रमघ्नं चाश्विनीसुतौ।
तन्त्रं वैद्यकसर्व्वस्वं नकुलश्च चकार सः ॥
चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुविमर्द्दनम्।
ज्ञानार्णवं महातन्त्रं यमराजश्चकार सः ॥
च्यवनो जीवदानञ्च चकार भगवानृषिः।
चकार जनको योगी वैद्यसन्देहभञ्जनम् ॥
सर्व्वसारं चन्द्रसुतो जावालस्तन्त्रसारकम्।
वेदाङ्गसारं तन्त्रञ्च चकार जाजलिर्मुनिः ॥
पैलो निदानं करथस्तन्त्रं सर्व्वधरं परम्।
द्वैधनिर्णयतन्त्रञ्च चकार कुम्भसम्भवः ॥
चिकित्साशास्त्रबीजानि तन्त्राण्येतानि षोडश।
व्याधिप्रणाशबीजानि बलाधानकराणि च ॥
मथित्वा ज्ञानमन्थानैरायुर्व्वेदपयोनिधिम्।
ततस्तन्त्राण्युज्जह्रुर्नवनीतानि कोविदाः ॥
एतानि क्रमशो दृष्ट्वा दिव्यां भास्करसंहिताम्।
आयुर्व्वेदं सर्व्वबीजं सर्व्वं जानामि सुन्दरि ॥
व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥
आयुर्व्वेदस्य विज्ञाता चिकित्सासु यथार्थवित्।
धर्म्मिष्ठश्च दयालुश्च तेन वैद्यः प्रकीर्त्तितः"॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते ब्रह्मखण्डे १६ अध्यायः ॥*॥ तस्य लक्षणम् यथा,—

"आयुर्हिताहितं व्याधिनिदानं शमनं तथा।
विद्यन्ते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्व्वेद उच्यते"॥

तस्य निरुक्तिर्यथा,—

"अनेन पुरुषो यस्मात् आयुर्विन्दति वेत्ति च।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्व्वेद इति स्मृतः"॥

इति भावप्रकाशः ॥*॥ अन्यत् रोगशब्दे वेदशब्दे वैद्यशब्दे च द्रष्टव्यम् ॥

("हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितं।
मानञ्च तच्च यत्रोक्तमायुर्व्वेदः स उच्यते"॥
"तस्यायुषः पुण्यतमो वेदो वेदविदां मतः।
वक्ष्यते यन्मनुष्याणां लोकयोरुभयोर्हितं"॥

"किमायुः कस्मादायुर्व्वेदः किञ्चायुर्व्वेदः शाश्व
ऽशाश्वत इति। कानि चास्याङ्गानि केश्चायम
सयः किमर्थञ्चेति"।

"तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णामृक्सामयजुरथ
वेदानामात्मनोऽथर्व्ववेदे भक्तिरादेश्या वेदो ह्या
र्व्वणः स्वस्त्ययनबलिमङ्गलहोमनियमप्रायश्चि
त्तोपवासमन्त्रादिपरिग्रहाच्चिकित्सां प्राह चि
कित्सा चायुषो हितायोपदिश्यते वेदञ्चोपदि
श्यायुर्वाच्य तत्रायुश्चेतनाप्रवृत्तिर्जीवितमनुबन्धो
धारि चेत्येकोऽर्थः, तदा आयुर्व्वेदयत्यायुर्व्वेदः कथ
मुच्यते स्वलक्षणतः सुखासुखतो हिताहितत
प्रमाणाप्रमाणतश्च यतश्चायुष्याण्यनायुष्याणि द्रव्य
गुणकर्म्माणि वेदयत्यतोऽप्यायुर्व्वेदः तत्रायुष्याणि
अनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्म्माणि केवलेनोप
देक्ष्यन्ते"।

"तानिन्द्रः सहस्रदृगमरगुरुरब्रवीत् स्वागत
ब्रह्मविदां ज्ञानतपोधनानां ब्रह्मर्षीणामस्ति भुवो
ग्लानिरप्रभावत्वं वैस्वर्य्यं वैवर्ण्यञ्च ग्राम्यवासकृत
मसुखमसुखानुबन्धञ्च। ग्राम्यो हि वासो मूल
मशस्तानां तत्कृतं पुण्यकृद्भिरनुग्रहः प्रजानां
स्वशरीरमवेक्षितुं कालश्चायमायुर्व्वेदोपदेशस्य
ब्रह्मर्षीणामात्मनः प्रजानाञ्चानुग्रहार्थमायुर्व्वेदमश्विनौ मह्यं प्रयच्छतां प्रजापतिरश्विभ्यां। प्रजापतये ब्रह्मा प्रजानामल्पमायुर्जराव्याधिबहुलमसुखमसुखानुबन्धं अल्पत्वादल्पतपोदमनियमदानाध्ययनसञ्चयं मत्वा पुण्यतममायुःप्रकर्षकरं जराव्याधिप्रशमनमूर्ज्जस्करममृतशिवं शरण्यमुदात्तं भवन्तो मत्तः श्रोतुमर्हथोपधारयितुं प्रकाशयितुञ्च प्रजानुग्रहार्थमार्षं ब्रह्म च मैत्रीं कारुण्यमात्मनश्चानुत्तमं पुण्यमुदारं ब्राह्ममक्षयं कर्म्मेति"। इति चरकः ॥

"तामुवाच भगवान् स्वागतं वः। सर्व्वे वा मीमांस्या अध्याप्याश्च भवन्तो वत्साः! इह खल्वायुर्व्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्व्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रञ्च कृतवान् स्वयम्भूः। ततोऽल्पायुष्ट्वमल्पमेधस्त्वञ्चावलोक्य नराणां भूयोऽष्टधा प्रणीतवान् ॥ तद्यथा ॥ शल्यं शालाक्यं कायचिकित्सा भूतविद्या कौमारभृत्यमगदतन्त्रं रसायनतन्त्रं वाजीकरणतन्त्रमिति"॥

"वत्स! सुश्रुत! इह खल्वायुर्व्वेदप्रयोजनं व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्य रक्षणञ्च। आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विन्दतीत्यायुर्व्वेदः। तस्याङ्गवरमाद्यमागमप्रत्यक्षानुमानोपमानैरविरुद्धमुच्यमानमुपधारय। एतद्धि प्रथमं प्रागभिघातव्रणसंरोहाद्यज्ञशिरःसन्धानाच्च"।

"यदिदं शाश्वतं पुण्यं स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं वृत्तिकरञ्चेति"॥

"ब्रह्मा प्रोवाच ततः प्रजापतिरधिजगे तस्मादश्विनावश्विभ्यामिन्द्र इन्द्रादहं मया तिह प्रदेयमर्थिभ्यः प्रजाहितहेतो" ॥ इति सुश्रुत ॥ )

आयुर्वेदी, [न्] त्रि, (आयुर्वेदो ज्ञातव्यत्वेन विद्यते यस्य। आयुर्वेद + इनि।) आयुर्वेदज्ञः। चिकित्सक। वैद्यः। इति हेमचन्द्रः राजनिर्घण्टश्च॥

आयुर्योग, पु, (आयुषो जीवितकालस्य योगो भवत्यस्मात्।) औषध। इति राजनिर्घण्ट।

आयुष्मान्, [त्] त्रि, (आयुस् + मतुप्।) चिरजीवी। दीर्घायुः। तत्पर्य्याय। जैवातृक २। इत्यमरः॥ (यथा मनु, २।१२५,३।२६३।
"आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने"।
"आयुष्मन्त सुत सूते यशोमेधासमन्वित" इति च॥)

आयुष्मान्, पुं, विष्कुम्भादिसप्तविंशतियोगान्तर्गततृतीययोग। तत्र जातफल। "यस्यायुष्मान् जन्मकाले भवुष्मान् याने यान तस्य देशेषु कार्य्य। कुर्य्यान्नून क्रीडन पुष्पवाच्या दासैर्व्वासैरन्वितो गर्व्वितश्च" ॥ इति दीपिका ॥
("आयुष्मान् सत्त्ववान् साध्यो द्रव्यवानात्मवानपि" इति सुश्रुतः ॥)

आयुष्य, त्रि, (आयुष् + यत्।) पथ्य। इति राजनिर्घण्ट ॥ आयुर्हितकारक ॥ (मनु। ४।१०६।
"धन्यं यशस्यमायुष्य स्वर्ग्यं चातिथिपूजनं"। तत्रैव २। ५१।
"आयुष्य प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्य दक्षिणामुखम्"।
"आयुष्य भोजन जीर्णे वेगानाञ्चाविधारण। ब्रह्मचर्य्यमहिंसा च साहसानाञ्च वर्ज्जन" ॥ इति सुश्रुत ॥
"आयुष्या दीपनी चैव चक्षुष्या प्रशप्रोधिनी"। इति हारीत।)

आयुष्यसूक्त, क्ली, (आयुष्यञ्च तत्सूक्तञ्चेति। कर्म्मधारय।) नान्दीश्राद्धादौ वसुधारासम्पातगानान्तरपाठ्यो वैदिकमन्त्रविशेष।
सामगाना तन्मन्त्रो यथा,—
ओँ आयुर्विश्वायुर्विश्व विश्वमायुरशिमहि। प्रजात्वष्टरधिनिधेह्यस्मै शतं जीवेम शरदो वयन्ते। आयुषे मे पवस्व वर्चसे मे पवस्व विदु पृथिव्या दिवो जनित्र्याः प्रस्तवन्त्वापोध्चरन्ती सोमो होद्राय ममायुषे मम ब्रह्मवर्च्चसाय यजमानस्यर्द्ध्या अमुष्य राज्याय। अमुष्य स्थाने यदर्थ वृद्धिस्तस्य षष्ठ्यन्तनाम प्रयोज्य। इति रघुनन्दनभट्टाचार्य्यकृतश्राद्धप्रयोगतत्त्व ॥*॥
यजुर्विदां तन्मन्त्रो यथा,—
ओँ आयुष्यं वर्चस्य रायस्पोषमौद्भिदं इदं हिरण्य वर्चस्व जैत्रायाविशताद्दुमा। न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोज प्रथमजं ह्येतत्। यो बिभर्त्ति दाक्षायणं हिरण्यं सदेवेषु कृणुते दीर्घमायुः समनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः। यदा बध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः। तन्म आबध्नामि शतशारदया युष्माक्षरदष्टिर्ययास"। इति वक्तृतयजुर्वेदीयश्राद्धप्रयोगतत्त्व॥

आयुस्कर, त्रि, (आयुस् + कृ + क।) परमायुर्जनकः॥ (आयुर्वृद्धिजनक।
"सर्पिर्गुडमधुक्षीरमधुसर्पिभिर्दधिसरेण तैलेन वा गुडेन पयसा घृतेन यवशक्तुभिर्वा सह। तिलैन सहमाक्षिकेण पललेन सूपेन वा वपुस्करमरुष्करं परममेध्यमायुस्कर" ॥ इति वाभट ॥)

आयोग, पु, (आङ् + युज् + घञ्।) गन्धमाल्योपहार। व्यापार। रोध। इति हेमचन्द्र ॥ (यथा रामायणे,—
"सरले कर्णिकारैश्च किंशुकैश्च सुपुष्पिते। स देशो भ्रमरायोग प्रदीप्त इव लक्ष्यते" ॥)

आयोगव, पु, (अयोगव एव स्वार्थे अण्।) शूद्राद्वैश्याया जातो जातिविशेष। इति हेमचन्द्र ॥ तस्य कर्म्म काष्ठतक्षण। (यथा मनु १०।१२, १०।१६।
"शूद्रादायोगव क्षत्ता चण्डालश्चाधमो नृणां। वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसङ्कराः" ॥
"आयोगवोऽयं क्षत्ता च चाण्डालश्चाधमो नृणा। प्रातिलोम्येन जायन्ते शूद्रादपसदास्त्रय" ॥)

आयोजन, क्ली, (आङ् + युज् + ल्युट्।) उद्योग। आहरण। द्रव्यासादन। यथा,—
"कुत्रचित् तण्डुलाः सन्ति न च स्थाली न चेन्धनं। तेषामायोजन कुर्व्वन् मुख्य कर्त्तामिधीयते" ॥ इति गोयीचन्द्रधृतकारिका॥

आयोधन, क्ली, (आङ् + युध + ल्युट्।) युद्ध। वध। इति मेदिनी ॥ (रघुवंशे, ६।४२।
"आयोधने कृष्णगतिं सहायमवाप्य य क्षत्रियकालरात्रि"।
भट्टि, "आयोधने स्वायुकमस्त्रजातम्"। रघु, ५। ७१। "आयोधनाग्रसरता त्वयि वीर। याते।)

आर, क्ली, (आङ् + ऋ + भावे घञ्।) मुण्डायस। मुण्डलोह। इति राजनिर्घण्टः॥ पित्तल। इत्यमरटीका॥ कोण। प्रान्तभाग। इत्यानन्दलहरीटीका॥ (चक्राङ्ककाष्ठभेद। यथा महाभारते,
"आरान्तरेणावपतत् सच्चिपाङ्क क्षणेन ह"।
"यस्मिन्निषद्विंशतारण्यं वेदार्थ स नरः कवि" ॥)

आरः, पुं, (आङ् + ऋ + कर्त्तरि संज्ञाया घञ्।) मङ्गलग्रह। शनिः। पित्तल। इति हेमचन्द्र ॥ वृक्षभेदः। तत्पर्य्याय। मधुराम्लफल २। इति रत्नमाला॥ रेफल इति ख्यात ॥

आरकूट, पुं क्ली। (आर कूटयति स्तूपीकरोति पचाद्यच्।) पित्तलं। इत्यमर ॥ (यथा नैषधे।
"अकाञ्चने काञ्चनपायिकाङ्कके किमारकूटाभरणेन न श्रिय" ।)

आरक्ष, त्रि, (आरक्षतीति। आङ् + रक्ष + अच्।) रक्षायुक्त। इति शब्दरत्नावली ॥ रक्षणीय। इति विश्वः॥

आरक्ष,पु, (आङ् + रक्ष + अच्।) गजकुम्भसन्धि। इति त्रिकाण्डशेष॥

आरग्वध, पुं, (आ + रगे शङ्काया क्विप्। आरगं रोगशङ्कामपि हन्ति वध वधादिगणश्च।) वृक्षविशेष। सोनालु सोंदालि इति ख्यात। तत्पर्य्याय। राजवृक्ष २ सम्पाक ३ चतुरङ्गुल ४ आरेवतः ५ व्याधिघात ६ कृतमाल ७ सुवर्णक ८। इत्यमरः॥ मन्थान ९ रोचन १० दीर्घफल ११ नृपद्रुम १२ हिमपुष्प १३ राजतरु १४ कण्डुघ्न १५ ज्वरान्तक १६ अरुज १७ स्वर्णपुष्प १८ स्वर्णाङ्ग १९ कुष्ठसूदनः २० कर्णामरणक २१ महाराजद्रुम २२ कर्णिकार २३ स्वर्णाङ्ग २४। इति राजनिर्घण्ट॥ प्रग्रह २५। इति रत्नमाला॥ अस्य गुणा। अतिमधुरत्वं। शीतलत्व। शूलज्वरकण्डुकुष्ठमेहकफविष्टम्भनाशित्वञ्च। इति राजनिर्घण्ट॥ अपि च। ज्वरहृद्रोगवातरक्तोदावर्त्तरोगे अतिशयपथ्यत्वं। मृदुत्वञ्च। अस्य फलगुणा। मधुरत्वं। शुक्रकारित्वं। वातपित्तहारित्वञ्च। इति राजवल्लभः॥ आमलतास इति हिन्दीभाषा।
"आरग्वधो राजवृक्ष सम्पाकश्चतुरङ्गुलः। आरेवतव्याधिघातकृतमालसुवर्णका॥
कर्णिकारो दीर्घफलः स्वर्णाङ्ग स्वर्णभूषणः। आरग्वधो गुरु स्वादुः शीतल स्रंसनोत्तमः॥
ज्वरहृद्रोगपित्तास्रवातोदावर्त्तशूलनुत्। तत्फलं स्रंसनं रुच्य कुष्ठपित्तकफापहं॥
ज्वरे तु सतत पथ्यं कोष्ठशुद्धिकरं परं"। इति भावप्रकाशः॥
(व्यवहारो यथा,—
"बाले वृद्धे क्षते क्षीणे सुकुमारे च मानवे। योज्योऽमृदुत्वादयितव्याद्विशेषाच्चतुरङ्गुल"।*॥
ग्रहणप्रणाली यथा॥*॥
"फलकाले फलन्तस्य ग्राह्य परिणतञ्च यत्। तेषा गुणवता भारं सिकतासु निधापयेत्॥
सप्तरात्रात् समुद्धृत्य शोषयेदातपे भिषक्। ततो मज्जानमुद्धृत्य शुचौ भाण्डे निधापयेत्"।*॥
सयोगविशेषे गुणा यथा॥*॥
"द्राक्षारससयुतो देयो दाहोदावर्त्तपीडिते। चतुर्व्वर्षसुखं बाले यावद्द्वादशवार्षिके।*॥
चतुरङ्गुलमज्जा तु प्रदत्तं वाथवाञ्जलिं। सुरामण्डेन सयुक्तमथवा कोलसीधुना॥
दधिमण्डेन वा युक्तं रसेनामलकस्य वा। त्वाला शीतकषायं तं पिबेत् सौवीरकेण वा" ॥ इति चरकः॥)

आरट्ट, पु, (आङ् + रट् + टच्।) देशविशेषः। त्रिकाण्डशेषे क्षत्रियवर्गे आरट्टशब्ददर्शनात्॥ तत्र आरट्टोऽपि पाठ ॥ (यथा भारते,—
"पञ्चनद्यो वहन्त्येता यत्र पीलुवनान्युत। शतद्रुश्च विपाशा च तृतीयैरावती तथा॥
चन्द्रभागा वितस्ता च सिन्धुषष्ठा वहिर्गिरे.। आरट्टा नाम ते देशा नष्टधर्म्मा न तान् व्रजेत्"।
"पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र निःसृत्य पर्व्वतात्। आरट्टा नाम वाह्लीका न तेष्वार्य्यो द्व्यहं वसेत्"॥)

आरट्टज, पु, (आरट्टदेशे जायते आरट्ट + जन + ड।) आरट्टदेशोद्भवघोटकः। इति जटाधर;

त्रिकाण्डशेषभूरिप्रयोगौ च ॥ (आरट्टदेशोत्पन्ने, त्रि। यथा महाभारते,—

"सौधो पानं गुरुतल्पावमर्द्दी
भ्रूणहत्या परवित्तापहारः।
येषां धर्म्मस्तान् प्रति नास्त्यधर्म्म-
आरट्टजान् पञ्चनदान् धिगस्तु" ॥)

**आरणि**, पु, (आङ्+ऋ+अणिच्।) आवर्त्तः। तत्पर्य्यायः। कुलहण्डकः २। इति हारावली ॥ पाकमारा जल इत्यादि भाषा ॥

**आरण्यपशु**, पु, (अरण्ये भव। अरण्य+अञ्+स चासौ पशुश्चेति कर्म्मधारय।) अरण्यजातपशु। स च सप्तधा यथा। महिष १ वानरः २ ऋक्ष ३ सरीसृप ४ रुरु ५ पृषतः ६ मृग ७। इति तिथ्यादितत्त्वे पैठीनसि ॥

**आरण्यमुद्गा**, स्त्री, (अरण्यमुद्गस्येवाकार पर्णं यस्याः। तत स्वार्थे अण्।) मुद्गपर्णी। मुगानी इति भाषा। इति राजनिर्घण्ट ॥

**आरण्यराशिः**, पु, (अरण्ये भव आरण्य अत्र सिंह एव स एव राशिः।) सिंहराशि। मकरप्रथमार्द्ध। मीनमेषवृषराशय। इति दीपिका ॥

**आरति**, स्त्री, (आङ्+रम्+क्तिन्।) विरति। निवृत्ति। इत्यमर ॥ (उपरम, नीराजनम्।)

**आरनाल**, क्ली, (आर्च्छति आङ्+ऋ+अच् आर। नल गन्धे ज्वलतीति ण नाल। आर नालो गन्धो यस्य।) काञ्जिक। इति हेमचन्द्रः ॥

"आरनालन्तु गोधूमैरामै स्यामिस्तुषीकृतै।
पक्वैर्वा सन्धितैस्तत्तु सौवीरसदृश गुणैः" ॥

इति राजनिर्घण्ट ॥

("लाक्षा हरिद्रा मञ्जिष्ठा कल्कैस्तैल विपाचयेत्।
षड्गुणेनारनालेन दाहशीतज्वरापह" ॥ * ॥

लाक्षादितैले ॥ * ॥ इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रह ॥)

**आरनालक**, क्ली, (आरनालम् एव स्वार्थे क।) काञ्जिक। इत्यमर ॥ काञ्जि इति भाषा।

**आरब्ध**, त्रि, (आङ्+रम्+क्त।) कृतारम्भ। आरम्भे क्ली। यथा,—

"आरब्ध मलमासात् प्राक् यत् कर्म्म न समापित।
आगते मलमासेऽपि तद् समाप्य न संशय" ॥

इति मलमासतत्त्व ॥ * ॥ आरब्धकर्म्मण्यशौचाभावो यथा,—

"व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे।
आरब्धे सूतक न स्यादनारब्धे तु सूतक" ॥

इति तिथ्यादितत्त्व ॥

**आरम्भ**, पु, (आङ्+रभि+घञ्।) प्रथमकृति। तत्पर्य्यायः। प्रक्रमः १ उपक्रम २ अभ्यादान ३ उद्घात ४ आरम्भ ५। इत्यमरः ॥ अभ्यादानादित्रयमारम्भमात्रे। प्रक्रमादिपञ्च आरम्भमात्रे इत्येके। केचित्तु प्रक्रमादिद्वय प्रथमारम्भे ॥ अभ्यादानादित्रय आरम्भमात्रे। इति बङ्गभिरक्तमपि न साधु यतः प्रथमकृतिरेव आरम्भः तत्पूर्व्वयं आरम्भे शेषत्रय आरब्धे इत्याङ। इति भरतः ॥ त्वरा। उद्यमः। वधः। दर्प। इति मेदिनी ॥ प्रस्तावना। इति त्रिकाण्डशेष ॥ आद्यकृतिः। यथा,—

"मीनादिस्थो रविर्येषामारम्भप्रथमक्षणे।
भवेत्तेऽब्दे चान्द्रमासास्तेचाद्या द्वादश स्मृताः" ॥

आरम्भप्रथमक्षणे आद्यकृत्याद्यसमये। इति मलमासतत्त्वम् ॥ पारिभाषिकारम्भो यथा,—

"आरम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतजापयोः।
नान्दीश्राद्ध विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिष्क्रिया" ॥

इति तिथ्यादितत्त्वम् ॥ (यथा मेघदूते। ३०।—
"नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छाम्"।
साहित्यदर्पणे। प्रथमपरिच्छेदे।
"ग्रन्थारम्भे निर्विघ्नेन प्रारिप्सितपरिसमाप्ति काम"। रघुवंशे। १।१५।
"आगमै सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदय"।)

**आरव**, पु, (आङ्+रु+अप्।) शब्द। इत्यमर ॥ (यथा रामायणे। "वानराश्चक्रुरारव"।)

**आरवी**, स्त्री, आरवनामकम्लेच्छदेशीयभाषा। यथा,

"ज्येष्ठाश्लेषा मघा पूर्व्वा रेवती भरणीद्वये"।
विशाखार्द्रोत्तराषाढशतभे पापवासरे ॥
लग्ने स्थिरे सचन्द्रे च पारसीमारवीं पठेत्"।

इति गणपतिमुहूर्त्त ॥

**आरा**, स्त्री, (आङ्+ऋ+अच्+टाप्।) चर्म्मभेदकास्त्र। तत्पर्य्याय। चर्म्मप्रभेदिका २। इत्यमर ॥

"उद्यम्यारामग्रकायोत्थितस्य"। इति माघ।)

**आराग्रं**, क्ली, (आराया अग्र षष्ठीतत्।) अर्द्धचन्द्राद्यस्त्रमुखं।

"अर्द्धचन्द्रखुरप्रादिधाराग्र मुखमुच्यते"।
"आराग्रन्तु मुखन्तेषां पुष्पपत्रादिभेदतः" ॥ इति

हलायुधः ॥

**आरात्**, व्य, (आ राति। रा दाने बाहुलकादातिप्रत्यय।) दूरं। निकट। इत्यमरः ॥ (यथा, उत्तरचरिते।
"मेघमालेव यश्चायमारादपि विभाव्यते"। इति
"तमर्थमारादभिवर्त्तमानम्"। इति रघौ २।१०।

**आरातिः**, पु, (आङ्+रा+क्तिन्।) अराति। शत्रुः। इति भरतः द्विरूपकोषश्च ॥

**आरात्रिक**, क्ली, (आङ+रात्रि+कन्।) नीराजननिमित्तदीप। नीराजना। नीराजनपात्रञ्च। आरति इति भाषा। तथाच हरिभक्तिविलासे।

"ततश्च मूलमन्त्रेण दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रय।
महानीराजन कुर्य्यात् महावाद्यजयस्वनैः ॥
प्रज्वालयेत्तदर्थञ्च कर्पूरेण घृतेन वा।
आरात्रिक शुभे पात्रे विषमानेकवर्त्तिकं" ॥

अन्यच्च।

"आदौ चतुष्पादतले च विष्णो-
र्द्वौ नाभिदेशे मुखमण्डलैकं।
सर्व्वेषु चाङ्गेष्वपि सप्तवारा-
नारात्रिक भक्तजनस्तु कुर्य्यात्" ॥

**आराधन**, क्ली, (आङ्+राध्+ल्युट्।) साधन। प्राप्ति। तोषण। इत्यमरः ॥ पचन। इति मेदिनी ॥ (यथा वैराग्यशतके दृष्टान्तद्वये ५।
'मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः"। उत्तरचरिते। प्रथमाङ्के।

"स्नेह दयाञ्च सौख्यञ्च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा" ॥

कुमारसम्भवे १। ५९।

"आराधनायास्य सखीसमेतां
समादिदेश प्रयता तनूजाम्"।)

**आराधना**, स्त्री, (आङ्+राध्+णिच्+युच्+स्त्रीत्वात् टाप्।) साधना। तत्पर्य्यायः। सेवा [...] भक्ति ३ परिचर्य्या ४ प्रसादना ५ शुश्रूषा ६ उपास्तिः ७ वरिवस्याः ८ परिष्टिः ९ उपचार १०। इति हेमचन्द्रः ॥

**आराम**, पु, (आरम्यतेऽत्र, आङ्+रम्+आधारे घञ्।) उपवन। इत्यमरः ॥ बागान् इति भाषा (यथा, मनु,—८। २६२। ८। २६४।
"क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च"।
"गृह तडागमाराम क्षेत्र वा भीषया हरन्"।)

**आरामशीतला**, स्त्री, (आरामलात् शीतला स्निग्धा।) सुगन्धिपत्रिविशेष। वच्चर्य्यादिवर्गे लिखिता तत्पर्य्याय। आनन्दी २ शीतला ३ सुगन्धिनी [...] रामा ५ महानन्दा ६ गन्धाढ्या ७ रामशीतल[...] ८। अस्या गुणा। तिक्तत्व। शीतलत्व। पित्त[...]हारित्वं। दाहशोषप्रशमनत्व। विस्फोटव्रणरोप[...]णत्वञ्च। इति राजनिर्घण्ट ॥ (यथा वैद्यके।
"आरामशीतला तिक्ता शीतला पित्तहारिणी"।)

**आरालिक**, त्रि, (अराल कुटिल चरति इति ठक्।) सूपकारः। पाचकः। इत्यमरः ॥

**आरावः**, पु, (आङ्+रु+घञ्।) शब्दः। इत्यमरः ॥ (यथा महाभारते।
"आराव माल्ववर्गस्य भृगूणां क्षत्रियैर्वधे"।
"आराव सुमहानासीत्"।)

**आरु**, पुं, (ऋ+उण्।) वृक्षभेदः। कर्कटः। शूकर[...] इति मेदिनी ॥

**आरू**, पु, (ऋच्छति अर्यते वा। ऋ+ऊ+णिच।) पिङ्गलवर्णः। तद्युक्ते त्रि। इत्युणादिकोष ॥

**आरूक**, क्ली, (आरू+कन्।) हिमाचले प्रसिद्धौ षधीविशेष। आड इति भाषा। तत्पर्य्यायः [...] वीरसेन २ वीर ३ वीरारक ४। तत्पत्रपुष्पादिभेदतः चतुर्जातिः। तेषां गुणाः। मधुरत्व। हि[...]मत्व। अर्शःप्रमेहगुल्मास्रदोषनाशित्वञ्च। इति राजनिर्घण्ट ॥ (यथा चरके।
"अर्शं परुषक द्राक्षा वदर्य्यारुकाणि च"।)

**आरूढः**, त्रि, (आङ्+रुह्+कर्त्तरि क्तः।) कृता[...]रोहणः। वृक्षादिर उपर चड़ा थाकि इति भाषा। यथा,—

"राम रामेति रामेति कूजन्त मधुराक्षर।
आरूढकविताशाख वन्दे वाल्मीकिकोकिल" ॥

इति रामायणपाठस्य पूर्व्वपाठ्यश्लोकः ॥ (यथा स्मृतिः।

"आरूढो नैष्ठिक धर्म्मं यस्तु प्रच्यवते पुन।
प्रायश्चित्त न पश्यामि येन शुध्येत् स आत्महा" ॥

गीता।

"योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते"।)

**आरेवतं**, क्ली, (आरेवयति निःसारयति मलं सारकत्वात्। रेव् प्लवगतौ। णिच् + विच्॥ अतति। अत + अच्। तत आरेव् चासौ अतश्चेति।) पारावतवृक्षफल। इति राजनिर्घण्टः॥
("मूलकं शुष्कमानञ्च वर्षाभू पञ्चमूलकं।
आरेवतफलञ्चांशु पक्त्वा तेन घृतं पचेत्"॥
इति सुश्रुते वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहे च॥)

**आरेवतः**, पु, (आरेवयति रेचयति मलं सारकत्वात् आङ् + रेव् + णिच् + विच् + अतच्।) आरग्वधवृक्षः। इत्यमरः॥

**आरोग्यं**, क्ली, (अरोगस्य भावः। ष्यञ्।) व्याध्यभाव। तत्पर्य्यायः। अनामयं २। इत्यमरः॥ पाटवं ३ लाघवं ४ वार्त्तं ५। इति राजनिर्घण्टः॥ ("आरोग्यं तत् सुखावहं"। इति शार्ङ्गधरः॥
"धर्म्मार्थकाममोक्षाणामारोग्य मूलमुत्तमम्"।
"सुखसञ्ज्ञकमारोग्यम्,"
"वेदाध्ययनशब्दाश्च सुखो वायु प्रदक्षिण।
पथि वेश्मप्रवेशे तु विद्यादारोग्यलक्षणम्॥"
इति चरकः॥
"सुखमार्थं समासेन सद्वृत्तस्यैतदीरितं।
आरोग्यमायुरर्थो वा मासद्भिः प्राप्यते नृभि"॥
इति सुश्रुतः॥)

**आरोग्यशाला**, स्त्री, (आरोग्यार्था शाला। मध्यपदलोपिकर्म्मधारयः।) आरोग्यदानगृहं। चिकित्सालय। यथा,—
"धर्म्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं साधनं यतः।
अतस्त्वारोग्यदाता च नरो भवति सर्व्वद॥
आरोग्यशाला कुर्व्वीत महौषधपरिच्छदा।
विदग्धवैद्यसंयुक्ता मञ्जनरससंयुता॥
वैद्यस्तु शास्त्रवित् प्राज्ञो दृष्टौषधपराक्रमः।
ओषधीमूलतत्त्वज्ञ समुद्धरणकालवित्॥
बलवीर्य्यविपाकज्ञ शालिमांसौषधीगणे।
त्यागिवद्देहिना तद्वदनुकूलः प्रियवदः"॥
इति वैद्यक॥

**आरोपः**, पु, (आङ् + रुह् + णिच् + घञ्।) मिथ्याज्ञानं। यथा। "असर्पभूते रज्जौ सर्पारोपवत् वस्तुन्यवस्त्वारोप अध्यारोप"। इति वेदान्तसारः॥ मिथ्याविष्करण। यथा। "असूया तु दोषारोपो गुणेष्वपि"। इत्यमर॥
(यथा साहित्यदर्पणे। १०म परिच्छेदे।
"आरोपाध्यवसानाभ्यां प्रत्येकं ता अपि द्विधा"।
"रूपितं रोपितारोपो विषये निरपह्नवे"॥
"यत्र कस्यचिदारोपः परारोपणकारणं"।)

**आरोपणं**, क्ली, (आङ् + रुह् + णिच् + ल्युट्।) न्यास। संस्थापनं॥ (शस्यादीनां रोपण। शरासनादौ ज्यादीनां संयोजनं, उन्नमन, समुत्थापन, यथा साहित्यदर्पणे। १०म परिच्छेदे।
"यत्र कस्यचिदारोप परारोपणकारणम्"।
रामायणे। आदिकाण्डे।
"यद्यस्य धनुषो राम कुर्य्यादारोपण मुने"।)

**आरोपितं**, त्रि, (आङ् + रुह् + णिच् + क्त।) कृतारोपणं। निहितं। न्यस्तं। इति हलायुधः॥ कल्पितं॥ (यथा कुमारसम्भवे ३। ३५।
"तं देशमारोपितपुष्पचापे"। काव्यप्रकाशे।
"समस्तवस्तुविषय श्रौता आरोपिता यदा"।)

**आरोहः**, पु, (आङ् + रुह् + घञ्।) दैर्घ्यं॥ वरस्त्रियाः श्रोणिः। इत्यमरः॥ (यथा माघे "आरोहैर्निविडबृहन्नितम्बविम्बै"।) अवरोहः। आरोहणं। गजारोहः। समुच्छ्रय। इति मेदिनी॥ ("आरोहमिव रत्नानां प्रतिष्ठानमिव श्रियः"। इति रामायणे।) परिमाणविशेषः। नितम्बः। इति हेमचन्द्रः॥ (आरोहति यः। आङ् + रुह् + अच्। निषादी। यथा, हरिवंशे,—
"अश्वाश्च पर्य्यधावन्त हतारोहा दिशो दश"।)

**आरोहक**, त्रि, (आङ् + रुह् + ण्वुल्।) आरोहणकर्त्ता॥

**आरोहणं**, क्ली, (आरुह्यतेऽनेन। आङ् + रुह् + ल्युट्।) सोपान। सिँडि इति भाषा। (भावे ल्युट्।) समारोह। नीचादूर्द्धगमनमिति यावत्। (यथा कुमारसम्भवे १। ३९।
"आरोहणार्थं नवयौवनेन
कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्"।)
प्ररोहणं। अङ्कुरादिजननमिति यावत्। इति मेदिनी॥

**आर्किः**, पु, (अर्कस्यापत्यं। अर्क + इञ्।) अर्कपुत्रः। शनैश्चरः। इति ज्योतिःशास्त्रं॥ (वैवस्वतमनु, सुग्रीव, कर्णश्च।)

**आर्गलः**, पु स्त्री, (अर्गल एव स्वार्थे अण्।) अर्गलः। इति द्विरूपकोषः॥ खिल इति भाषा।

**आर्गवधः**, पु, आरग्वधवृक्षः। इति शब्दचन्द्रिका॥ ("आरग्वधशब्देऽस्य गुणादयो ज्ञातव्याः"।)

**आर्घा**, स्त्री, (आङ् + अर्घ् + अच्।) पीता दीर्घतुण्डा षट्पदसन्निभा मक्षिका। इति राजनिर्घण्टः॥

**आर्घ्यं**, क्ली, (आर्घया मक्षिकया विहितम्। आर्घा + यत्।) आर्घानाममक्षिकोत्पन्नमधु। तस्य गुणाः। अतिशयचक्षुर्हितकारित्व। कफपित्तास्रदोषनाशित्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः॥ (यदुक्तं,—
"मधूकवृक्षनिर्यास जरत्कार्व्वाश्रमोद्भवा।
स्रवन्त्यार्घ्यं तदाख्यातं श्वेतक मालवे पुन॥
तीक्ष्णतुण्डास्तु याः पीता मक्षिका षट्पदोपमाः।
आर्घास्तास्तत्कृत यत् तदार्घ्यमित्यपरे जगुः"॥
यथा सुश्रुते,—
"आर्घ्यं मध्वतिचक्षुष्य कफपित्तहरं परं।
कषाय कटु पाके च बल्य तिक्तमवातकृत्"॥
इद हि अष्टविधमधुजातिमध्ये परिगणितम्।
"पौत्तिक भ्रामर क्षौद्र माक्षिकं छात्रमेव च।
आर्घ्यमौद्दालिकं दालमित्यष्टौ मधुजातयः"॥)

**आर्त्तः**, त्रि, (आङ् + ऋ + क्त।) पीड़ितः। अस्वस्थ। यथा,—
"आर्त्तानां मार्गमाणाना प्रायश्चित्तानि ये द्विजा।
जानन्तो न प्रयच्छन्ति तेऽपि तद्दोषभागिनः"॥
इति प्रायश्चित्ततत्त्वं॥ (दुःखित, कातर, शोकाभिभूतः, उद्वेजित, विरक्त, अपहृत, उत्पीड़ितः। यथा शाकुन्तले, प्रथमाङ्के।
"आर्त्तत्राणाय वः शस्त्र न प्रहर्त्तुमनागसि"।
"द्वेष्योऽपि सम्मत शिष्टस्तस्यार्त्तस्य यथौषधम्"।
इति रघौ। १। २८। (तथा च चरके॥
"नाश्विनावार्त्त भेषजेनोपपादयेतां"। इति॥

**आर्त्तगलः**, पुं, (आर्त्त इव गलति पचाद्यच्।) नीलझिण्टी। तत्पर्य्यायः। बाणः २ बाणा ३ दासी ४ आर्त्तगलः ५। इत्यमरस्तट्टीका च॥
("दासे आर्त्तगलश्च सः"। इति भावप्रकाशः॥)

**आर्त्तवं**, क्ली, (ऋतुरस्य प्राप्त, अण् यद्वा ऋतुरेव। प्रज्ञादिभ्यश्चेत्यण्।) स्त्रीरजः। इत्यमरः॥ पुष्पं। इति मेदिनी॥ (यथा मनुः, ३। ४८।
"तस्मात् युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियं"।
"नोपगच्छेत् प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्त्तवदर्शने"॥
अथार्त्तवस्य स्वरूपमाह।
स्त्रीणां रस एव मासेनार्त्तवं भवतीत्युक्ता पुनराह सुश्रुत एव।
"मासेनोपचितं काले धमनीभ्यस्तदार्त्तवं।
ईषत्कृष्णविवर्णञ्च वायुर्योनिमुखं नयेत्"॥
गर्भग्रहणयोग्यस्यार्त्तवस्य लक्षणमाह।
"शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमं।
तदार्त्तव प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत्"॥
आर्त्तवस्य वर्णद्वयाभिधानं। वातादिप्रकृतिभेदेन वर्णभेदात्। यद्वासो न विरञ्जयेत्। यद्वासो यस्य प्रक्षालितं तद्वासस्त्यजति न तु विकृतरक्तं कुर्य्यात्"।
इति भावप्रकाश॥
"मासान्निष्पिच्छदाहार्त्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च।
नैवातिबहुलात्यल्पमार्त्तवं शुद्धमादिशेत्॥
गुञ्जाफलसवर्णञ्च पद्मालक्तकसन्निभं।
इन्द्रगोपकसङ्काशमार्त्तवं शुद्धमेव तत्"॥
इति चरक,—
"शशासृक्प्रतिम यत्तु यद्वा लाक्षारसोपम।
तदार्त्तव प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत्॥
विधिमुत्तरवस्त्यन्त कुर्य्यादार्त्तवशुद्धये॥
स्त्रीणां स्नेहादियुक्तानां चतसृष्वार्त्तवादिषु।
कुर्य्यात् कल्कान् पिचूंश्चापि पथ्यान्याचमनानि च॥
ग्रन्थिभूते पिबेत् पाठां भूषण वृक्षकाणि च।
दुर्गन्धे पूयसङ्काशे मज्जतुल्ये तथार्त्तवे॥
पिबेद्भद्रश्रियः क्वाथचन्दनक्वाथमेव च"।
"आर्त्तव शोणितन्त्वाग्नेयमग्नीषोमीयत्वाद्गर्भस्य पाञ्चभौतिकञ्चापरजीवरक्तमाङ्कराचार्य्याः"॥
"एवं मासेन रसः शुक्रीभवति स्त्रीणाञ्चार्त्तवमिति"॥ इति सुश्रुतः॥)

**आर्त्तव** त्रि, (ऋतुः प्राप्तोऽस्य। अण्।) ऋतूद्भवः। इति मेदिनीकरहेमचन्द्रौ॥ यथा रामायणे,—
"आर्त्तवान्युपसृष्टानि पुष्पाणि च फलानि च"
रघौ ८। ३६।
"अभिभूय विभूतिमार्त्तवीं
मधुगन्धातिशयेन वीरुधाम्"।)

**आर्त्तवी**, स्त्री, वाजिनी। घोटकी। इति राजनिर्घण्टः॥

**आर्त्तिः**, स्त्री, (आङ् + ऋ + क्तिन्।) पीड़ा। धनुष्कोटिः। इत्यमरटीकायां भरतः॥ रोगः। इति

राजनिर्घण्टः ॥ (यथा मेघदूते, पूर्ब्बमेघे । ५४ ।
"आपन्नार्त्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्" ।
सुश्रुते,—
"दाहातिसारपित्तास्रमूर्च्छामद्यविषार्त्तिषु" ।)
आर्द्र, त्रि, (अर्द्द् + रक् दीर्घश्च ।) सजलवस्तु । भिजा इति भाषा । तत्पर्य्यायः । सार्द्र २ क्लिन्न ३ स्तिमित ४ तिमित ५ समुन्न ६ उत्त ७ । इत्यमरः ॥ (तच्च द्विविधं यदुक्तं,—
"आर्द्रं द्रव्यं द्विधा प्रोक्तं सरसं नीरसं तथा ।
सदुग्धं गुप्तरसकं द्विधा नीरसमुच्यते ॥
वास्तूकं सार्षपं शाकं निर्गुण्डीरण्डमार्षकम् ।
धुस्तूराद्यमिदं सर्व्वमार्द्रं सरसमुच्यते ॥
वटाश्वत्थकरीराद्यमार्द्रद्रव्यं तु नीरसम् ।
सदुग्धं तु द्विधा प्रोक्तं मृदु तीक्ष्णमिति क्रमात् ।
शातला वज्रसीहुण्डसौरिण्याद्यास्तु तीक्ष्णका ।
दुग्धिकार्कक्षीरिण्याद्या मृदुदुग्धा प्रकीर्त्तिता" ॥
यथा रघुवंशे, "आर्द्राक्षतारोपणमन्वभूता" ।
मेघदूते उत्तरमेघे २५ ।
"तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चित्") ॥
आर्द्रक, क्ली, (अर्द्दयति कफं आर्द्र । ततः कन् । यद्वा आर्द्रयति जिह्वाम् । क्वुन् ।) कटुमूलविशेषः । आदा इति भाषा । तत्पर्य्यायः । शृङ्गवेर २ इत्यमरः ॥ कटुभद्र ३ कटूत्कट ४ । इति केचित् ॥ गुल्ममूल ५ मूलज ६ कन्दर ७ वर ८ महीज ९ सैकतेष्ट १० अनूपज ११ अपाकशाक १२ चान्द्राख्य १३ राजच्छत्र १४ सुशाकक १५ शार्ङ्ग १६ आर्द्रशाक १७ सच्छाक १८ । इति राजनिर्घण्टः ॥ अस्य गुणाः । कफवातविबन्धानाहशूलजपित्तनाशित्व । हृद्यत्व । रुचिशुक्रकारित्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥ अपिच । उष्णत्व । कटुत्व । विपाके शीतलत्व । गुरुत्व । अग्निदीपनत्व । शोथकण्ठामयनाशित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ लवणार्द्रकगुणाः । भोजनाग्रे पथ्यत्व । जिह्वाकण्ठविशोधनत्व । अग्निसन्दीपनत्व । हृद्यत्व,—
"वातपित्तकफेभानां शरीरवनचारिणाम् ।
एक एव निहन्तास्ति लवणार्द्रककेशरी" ॥
इति द्रव्यगुणः,—
"आर्द्रकं शृङ्गवेरं स्यात् कटुभद्रं तथार्द्रिका ।
आर्द्रिका भेदिनी गुर्व्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनी तथा ।
कटुका मधुरा पाके रूक्षवातकफापहा ।
ये गुणाः कथिता शुण्ठ्यास्तेऽपि सन्त्यार्द्रकेऽखिलाः ।
भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम् ।
अग्निसन्दीपनं रुच्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥
कुष्ठे पाण्ड्वामये कृच्छ्रे रक्तपित्ते व्रणे ज्वरे ।
दाहे निदाघशरदोर्नैव पूजितमार्द्रकम्" ॥
इति भावप्रकाशः ॥
(तद्वदार्द्रकमेतच्च, इति वाभटः ॥
"रोचनं दीपनं वृष्यमार्द्रकं विश्वभेषजम् ।
वातश्लेष्मविबन्धेषु रसस्तस्योपदिश्यते" ॥
इति चरकः ॥
"कफानिलहरं स्वर्य्यं विबन्धानाहशूलनुत् ।
कट्‌वुष्णं रोचनं हृद्यं वृष्यञ्चैवार्द्रकं स्मृतम्" ॥
इति सुश्रुतः ॥)
आर्द्रपटी, [न्] पुं, (आर्द्रपट + इनि ।) आर्द्ररक्तवस्त्रास्तरकर्त्तृकशत्रुनाशफलकाभिचारकर्म्मविशेषः । यथा । "अथार्द्रपटी । प्रणवो हृदयं भगवति चामुण्डे रक्तवाससे अप्रतिहतरूपपराक्रमे अमुकवधाय चिचेतसे वह्निवल्लभा । आर्द्ररक्तपटेनावृतः समुद्रगामिनीनदीतटे ऊषरभूमौ वा दक्षिणामुखं ऊर्द्ध्वमाकर्षयेत् यावत् पटः शुष्यति तावत् प्राणा शुष्यन्ति शत्रोः" । इति तन्त्रसारः ॥ आर्द्रपटविशिष्टे, त्रि ॥
आर्द्रमाषा, स्त्री, माषपर्णी । इति राजनिर्घण्टः ॥ माषाणी इति भाषा ।
आर्द्रशाक, क्ली, (आर्द्रं शाकमस्य ।) आर्द्रकं । इति राजनिर्घण्टः ॥
आर्द्रा, स्त्री, (आर्द्र + टाप् ।) अश्विन्यादिसप्तविंशतिनक्षत्रान्तर्गतषष्ठनक्षत्रं । अस्य रूपं । पद्माकृत्युज्ज्वलैकतारकामयं । अस्या अधिष्ठात्री देवता शिवः । इति कालिदासः ॥ मणितुल्यैकतारात्मकं । इति केचित् ॥ तत्र जातफलं ।
"क्षुधाधिको रूक्षशरीरकान्तिः
कलिप्रियः कोपयुतोऽविनीतः ।
प्रसूतिकाले च भवेत् किलार्द्रा
नचार्द्रचेता शरणागतेऽपि" ।
इति कोष्ठीप्रदीपः ॥
आर्द्रालुब्धक, पुं, (आर्द्राया तन्नाम्ना प्रसिद्धनक्षत्रे लुब्धक इव ।) केतुग्रहः । इति हलायुधः ॥
आर्द्रिका, स्त्री, (आर्द्रक + टाप् ।) आर्द्रकं । इति भावप्रकाशः ॥
("आर्द्रिका तिक्तमधुरा मूत्रला न च पित्तहृत्" ॥ इति वाभटः ।)
आर्य्यः, त्रि, (अर्त्तुं प्रशस्तमाचरितुं योग्यः । अर्य्यते वा ॥ ऋ + ण्यत् ।) सत्कुलोद्भवः । इत्यमरः ॥ पूज्यः । श्रेष्ठः । बुद्धः । इति शब्दरत्नावली ॥ सङ्गतः । इत्यजयः ॥ (मान्यः, उदारचरितः, शान्तचित्तः । यथा, रामायणे, ३ काण्डे ।
"योऽहमार्य्येण परवान् भ्रात्रा ज्येष्ठेन भाविनि" ।
न्यायपथावलम्बी, प्रशस्ताचारशीलः, सततकर्त्तव्यकर्म्मानुष्ठाता । यदुक्तं,
"कर्त्तव्यमाचरन् काममकर्त्तव्यमनाचरन् ।
तिष्ठति प्राकृताचारे स तु आर्य्य इति स्मृतः" ॥
धार्म्मिकः । धर्म्मशीलः । यथा, मनुः, १० । ५७ ।
"आर्य्यरूपमिवानार्य्यं कर्म्मभिः स्वैर्विभावयेत्" ।
उचितः । यथा, रामायणे,—
"मार्गमार्य्यं प्रपन्नस्य नानुमन्येत कः पुमान्" ॥
नाट्योक्तौ सम्मानसूचकमिदं नाम प्रायेण मान्यजनाह्वाने व्यवह्रियते । यथा, साहित्यदर्पणे, षष्ठपरिच्छेदे ।
"स्वेच्छया नामभिर्विप्रैर्विप्र आर्य्येति चेतरैः" ।
"वाच्यौ नटीसूत्रधारावार्य्यनाम्ना परस्परं" ॥)
आर्य्यः, पुं, (अर्त्तुं सदाचरितुं योग्यः । ऋ + ण्यत् ।) स्वामी । बुद्धः । इति हेमचन्द्रः ॥ सुहृत् । इत्यजयः । (श्रेष्ठवर्णः । म्लेच्छेतरजातिः । यदुक्तं महाभारते ।
"म्लेच्छाश्चान्ये बहुविधाः पूर्व्वं ये निकृता रणे ।
आर्य्याश्च पृथिवीपालाः" । इति । स्वनामख्यातः सावर्णमनोः पुत्रः । यथा, हरिवंशे ।
"वरीयांश्चावरीयांश्च संमतो धृतिमान् वसुः ।
चरिष्णुरार्य्यो धृष्णुश्च राजा सुमतिरेव च ।
सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्या दश भारत ।" ॥)
आर्य्यक, क्ली, पिण्डपात्रादिपितृकार्य्यं । इति त्रिकाण्डशेषः ॥
आर्य्यक, पुं, (आर्य्य + स्वार्थे कन् ।) पितामहः । मातामहः । इति शब्दमाला ॥ (यथा रामायणे,—
"अद्य ते कतिचिद्राज्यस्यातस्यार्य्यकवेश्मनि" ।
"आर्य्यकस्ते तु कुशली युधाजिन्मातुलस्तव" ॥
महाभारते,—
"आर्य्यकेण च दृष्टः स पृथाया आर्य्यकेण च ।
तदा दौहित्रदौहित्रः परिष्वक्तः सुपीडितम्" ।
पूज्यव्यक्तिमात्रम् । स्वनामख्यातो नागश्रेष्ठः, यथा महाभारते,—
"आर्य्यकश्चोग्रकश्चैव नागः कलशपोतकः" ।)
आर्य्यका, स्त्री, (आर्य्यक + टाप् । उदीचामात इति पक्षे इत्वाभावः ।) श्रेष्ठा स्त्री । इति वोपदेवः ।
आर्य्यपुत्त्र, पुं, (आर्य्यस्य पुत्त्रः । षष्ठीतत्पुरुषः ।) भर्त्ता । स्वामी । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा रामायणे,—
"आर्य्यपुत्त्र ! पिता माता भ्राता पुत्त्रस्तथा स्नुषा ।
स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते" ॥)
गुरुपुत्त्रः । मान्यस्य पुत्त्रः ।
आर्य्यमिश्र, त्रि, (आर्य्यः श्रेष्ठो मिश्रश्च ।) गौरवितः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (माननीयः, पूज्यः । यथा रामायणे, २ काण्डे ।
"समक्षमार्य्यमिश्राणां साधूनां गुणवर्त्तिनाम्" ।
उत्तरचरिते, प्रस्तावनायां ।
"अद्य खलु भगवतः कालप्रियनाथस्य यात्रायामार्य्यमिश्रान् विज्ञापयामि" ।)
आर्य्या, स्त्री, (ऋ + ण्यत् + स्त्रियां टाप् ।) पार्व्वती । इति त्रिकाण्डशेषः । छन्दोविशेषः । तस्या लक्षणम् ।
"यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रा स्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्य्या" ॥
इति श्रुतबोधः ॥ अपिच ।
"लक्ष्मैतत्सप्तगणा गोपेता भवति नेह विषमे जः ।
षष्ठो जश्च न लघुर्वा प्रथमेऽर्द्धे नियतमार्य्यायाः ॥
षष्ठे द्वितीयलात्परके न्ले मुखलाच्च सयतिपदनियमः ।
चरमेऽर्द्धे पञ्चमके तस्मादिह भवति षष्ठो लः" ॥
सा नवधा ।
"पथ्या विपुला चपला मुखचपला जघनचपला च ।
गीत्युपगीत्युद्गीतय आर्य्यागीतिश्च नवधार्य्या" ॥
इति छन्दोमञ्जरी ॥ श्रेष्ठा स्त्री ॥
आर्य्यावर्त्त, पुं, (आर्य्या आवर्त्तन्तेऽत्र । आर्य्य + आ + वृत् + आधारे घञ् ।) विन्ध्यहिमाचलयोर्मध्यदेशः । तत्पर्य्यायः । पुण्यभूमिः २ । इत्यमरः ॥ यथा,—
"आसमुद्रात्तु वै पूर्ब्बादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः" ॥
इति मानवे २ । २२ ॥ अपि च, अमरे ।—

"आर्य्यावर्त्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमागयोः"।

आर्य्यिका, स्त्री, (आर्य्य + स्वार्थे कन् + अत इत्वं।) श्रेष्ठा स्त्री। इति वोपदेवः॥

आर्षं, पु, (ऋषेरिदं। ऋषि + अण्।) विवाहविशेषः। यत्र वरात् गोद्वयं गृहीत्वा तेनैव सह कन्यादानं। यथा, याज्ञवल्क्यः,—

"यज्ञस्थायर्त्विजे दैव आर्षं आदाय गोयुगं।
चतुर्द्दश प्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट्"॥

(यथा मनुः, ३। २९।
"एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्म्मतः।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्म्मः स उच्यते"॥)

ऋषिप्रणीते त्रि॥ (यथा मनुः १२।१०६।
"आर्षं धर्म्मोपदेशञ्च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्म्मं वेद नेतरः"॥

आर्षभिः, पुं, (ऋषभस्यापत्यम्। ऋषभ + इञ्।) ऋषभपुत्त्रः। स तु भरतराजचक्रवर्त्ती। इति हेमचन्द्रः॥

आर्षभी, स्त्री, (ऋषभस्य वृषस्य प्रिया। ऋषभ + अण् + ङीप्।) कपिकच्छ्वृक्षः। इति राजनिर्घण्टः।
(मध्यममार्गे नक्षत्रविशेषाणां संज्ञाविशेषः। यथा,
"तथा द्वे चापि फल्गुन्यौ मघा चैवार्षभी मता"।
कपिकच्छुशब्देऽस्या गुणादयो ज्ञातव्याः॥)

आर्षभ्यः, पु, (ऋषभस्य प्रकृतिः। ऋषभ + ञ्य।) षण्ढोपयुक्तवृषः। तत्पर्य्यायः। षण्ढतायोग्यः २। इत्यमरः॥ षाँडेर उपयुक्त एँडे इति भाषा॥

आर्हत, पु, (अर्हन् जिन एव। अर्हत् + अण्।) जिनविशेषः। तत्पर्य्यायः। वादवादी २। इति हेमचन्द्रः॥

आलं, क्ली, (आलयति भूषयतीति। आ + अल् + अच्।) हरितालं। इत्यमरः॥ अनर्थे त्रि। इति हेमचन्द्रः॥ (यथा वैद्यकरसेन्द्रसारसंग्रहे॥)
("हरितालं तालमालमालं शैलूषभूषणम्।
पिञ्जकं रोमहरणं तालकं पीतमित्यपि"॥)

आलगर्द्दः, पु, (अलगर्द्द एव। स्वार्थे अण्।) अलगर्द्दः। जलसर्पः।

आलम्ब, पु, (आङ् + लबि + घञ्।) अवलम्बः। आश्रयः॥ (शरणम्। गतिः। "इह हि पतता नास्त्यालम्बो न चापि निवर्त्तनम्"। इति शान्तिशतके ३।२।) अधोलम्बनम्। यथा, रामायणे,—
"शोभते किञ्चिदालम्बैः शालयः कनकप्रभाः"॥)

आलम्बन, क्ली, (आङ् + लम्ब + ल्युट्।) अवलम्बनं। विभावविशेषः। यथा,—
"आलम्बनोद्दीपनाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।
आलम्बनं नायकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात्"॥
इति साहित्यदर्पणे ३य परिच्छेदः।

आलम्भ, पु, (आङ् + लभि + घञ्।) मारणं। वधः। इत्यमरः॥ (यथा स्मृतिः, "अश्वालम्भं गवालम्भं"। मेघदूते पूर्व्वमेघे। ४६।
"व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्"।
छेदनम्। कर्त्तनम्। मनुः ११।१४४।
"कृष्टजानामोषधीनां जातानां च स्वयं वने।

इत्यालम्भेऽनुगच्छेत् गां दिनमेकं पयोव्रतः"॥
स्पर्शः। आलिङ्गनम्। यथा मनुः २।१७९।
"द्यूतञ्च जनवादञ्च परिवादं तथाऽनृतं।
स्त्रीणाञ्च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च"॥)

आलम्भ्या, स्त्री, (आङ् + लभि + ण्यत्।) वधार्ह्या। हननीया। इति वोपदेवः॥

आलयः, पु, (आलीयतेऽस्मिन्। आ + ली + आधारे अच्।) गृहं। इत्यमरः॥ (यथा कुमारे १।१।)
"हिमालयो नाम नगाधिराजः" नैषधे, "तत्रामरालयमरालमरालकेशी"। रामायणे ३ काण्डे।
"न हि दुष्टात्मनामार्य्या निवसन्त्यालये चिरं"।
अयपर्य्यन्ते, क्ली। भागवते १ अध्याये ५। "पिबत भागवतं रसमालयम्")॥

आलवाल, क्ली, (आ समन्तात् जलस्य लवमालाति आ + लव + ला + क।) तरुमूलसेचनार्थस्वल्पजलाधारः। चारमाडा इति भाषा। तत्पर्य्यायः। आवालः २ आवापः ३। इत्यमरः॥ (रघुवंशे १।५१।
"विश्वासाय विहङ्गानामालवालाम्बुपायिनाम्"।
माघे। "विपुलालवालभृतवारिदर्पणा"।)

आलस, त्रि, (अलस + स्वार्थे अण्।) अलसः। आलस्ययुक्तः। इति द्विरूपकोषः॥

आलस्यं, क्ली, (अलस + ष्यञ्।) अलसस्य भावः। अलसता। तत्पर्य्यायः। तन्द्रा २ कौसीद्यं ३। इति हेमचन्द्रः॥ मन्दता ४ मान्द्यं ५ कार्य्यद्वेषः ६। इति राजनिर्घण्टः॥ (यदुक्तं। "आलस्यं श्रमगर्भाद्यैर्जाड्यं जृम्भासितादिकृत्" इत्युक्तलक्षणो व्यभिचारिभावभेदः। सुश्रुते।
"सुखस्पर्शप्रसङ्गित्वं दुःखद्वेषणलोलता।
शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्म्मण्यालस्यमुच्यते"॥)

आलस्य, त्रि, (अलस एव। अलस + स्वार्थे ष्यञ्।) अलसयुक्तः। तत्पर्य्यायः। मन्दः २ तुन्दपरिमृजः ३ शीतकः ४ अलसः ५ अनुष्णः ६। इत्यमरः॥

आलातं, क्ली, (अलातमेव। अलात + स्वार्थे अण्।) अलातं। अङ्गारः॥

आलान, क्ली, (आलीयतेऽत्र। आङ् + ली + ल्युट्। विभाषा लीयतेरित्यात्त्वम्।) गजबन्धनस्तम्भः। इत्यमरः॥ गजबन्धनरज्जुः। इति नीलकण्ठः॥ (रघुवंशे १।७१।
"अरुन्तुदमिवालानमनिर्वाणस्य दन्तिनः"।
कादम्बर्य्यां। "इममदमलिनमालानस्तम्भयुगलमुपहसन्तमिवोरुदण्डद्वयेन"।
रघुवंशे ४।६९, ४।८१।
"गजालानपरिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्द्धमानताः"।
"तद्गजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्रुमैः"॥)
बन्धनं। इति रायमुकुटः॥ रज्जुः। इति मेदिनी॥

आलापः, पु, (आङ् + लप् + घञ्।) कथोपकथनं। सम्भाषणं। तत्पर्य्यायः। आभाषणं २। इत्यमरः॥
(साहित्यदर्पणे, प्रथमपरिच्छेदे।
"काव्यालापाश्च ये केचित् गीतकान्यखिलानि च"।)

आलाप्य, त्रि, (आङ् + लप् + कर्म्मणि ण्यत्।) आलापयोग्यः। आलापनीयः॥

आलावर्त्तं, क्ली, (आलमत्यर्थमावर्त्तते इति आल + आ + वृत् + अच्।) वस्त्रनिर्म्मितव्यजनं। इति हेमचन्द्रः॥ कापडेर पाखा इति भाषा।

आलावुः, स्त्री, अलावुः। इति शब्दरत्नावली॥ लाउ इति भाषा। (अलावुशब्देऽस्या विशेषो ज्ञेयः॥

आलावूः, स्त्री, अलावुः। इति शब्दरत्नावली॥

आलास्यः, पु, (आलं पर्य्याप्तं आस्यं मुखं यस्य सः।) कुम्भीरः। इति हेमचन्द्रः॥

आलिः, स्त्री, (आलयति भूषयति। आ + अल भूषणे अच इ।) वयस्या। (यथा कुमारसम्भवे। ५।८३।
("निवार्य्यतामालि किमप्ययं वटुः,
पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः"।)
(आलति निवारयति जलं। अल वारणे। सर्व्वधातुभ्य इन्।) सेतुः। (अल्यतेऽनया। अल् + इन्।) पङ्क्तिः। इति मेदिनी अमरश्च॥ सन्ततिः। इति शब्दरत्नावली॥

आलिः, पु, (आलति दंशने समर्थो भवति। आ + अल् + बाहुलकात् इण्।) वृश्चिकः। भ्रमरः। इति हारावली अमरटीका च॥

आलिः, त्रि, (आङ् + अल् + इण्।) विशदाशयः। निर्म्मलान्तःकरणः। इति मेदिनी॥ अनर्थः। इति हेमचन्द्रः॥

आलिङ्गनं, क्ली, (आङ् + लिङ्ग + ल्युट्।) प्रीतिपूर्व्वकपरस्परास्लेषः। कोलाकोलि इति भाषा। तत्पर्य्यायः। अङ्कपालिः २ स्लिषा ३। इति त्रिकाण्डशेषः॥ परिरम्भः ४ परीरम्भः ५ परिष्वङ्गः ६ संश्लेषः ७ उपगूहनं ८। इत्यमरः॥ तत्प्रभेदा यथा। आमोदालिङ्गनं १ मुदितालिङ्गनं २ प्रेमालिङ्गनं ३ आनन्दालिङ्गनं ४ कृत्यालिङ्गनं ५ मदनालिङ्गनं ६ विनोदालिङ्गनं ७। इति कामशास्त्रम्॥
("आलिङ्गनान्यधिकृताः स्फुटमापुरेव"।
इति माघः। यथा मेघदूते उत्तरमेघे ९।
"यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासितानां"।)

आलिङ्गी, [न्] पु, (आ + लिङ्ग + इनि।) आलिङ्ग्यमृदङ्गविशेषः। इत्यमरटीकायां स्वामी शब्दरत्नावली च॥

आलिङ्ग्य, पु, (आ + लिङ्ग + ण्यत्।) यवाकृतिमृदङ्गः। इत्यमरः॥ मादोल इति भाषा। यथा शब्दार्णवे॥
"चतुरङ्गुलहीनोऽङ्घ्र्यास्यमुखे चैकाङ्गुलेन यः।
यवाकृतिः स आलिङ्ग्य आलिङ्ग्य स हि वाद्यते"॥

आलिञ्जरः, पुं, (अलिञ्जर + अण्।) अलिञ्जरः। इति त्रिकाण्डशेषः॥ जाला इति भाषा।

आलिन्द, पुं, (अलिन्द + अण्।) अलिन्दः। वहिर्द्वारप्रकोष्ठः। गृहान्तरशय्यार्थवेदिका। इति रायमुकुटः शब्दरत्नावली च॥ गृहैकदेशः। इत्यमरमाला॥

आलिन्दकः, पु, (आलिन्द एव स्वार्थे कः।) आलिन्दः। इति शब्दरत्नावली॥

आलिम्पन, क्ली, (आङ् + लिम्प + ल्युट्।) मङ्गलालेपनं। आलिपना इति भाषा। तत्पर्य्यायः। आतर्पणं २ आदीपनं ३ मण्डोदकं ४। इति त्रिकाण्डशेषः॥

"अमन्त्रिका तु कार्य्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः" ॥)

आवृत, त्रि, (आङ्+वृ+क्तः।) छन्नावरण। तत्पर्य्यायः। वेष्टितम् २ वलयितम् ३ संवीतम् ४ रुद्धम् ५। इत्यमरः॥ (आच्छादित, प्रावृत, आकीर्ण। वर्णभेद, स च ब्राह्मणादुग्रजातीयायां जातः।)

आवृत्तः, त्रि, (आङ्+वृत्+क्त।) छन्नावरण। आवृत। इत्यमरटीका॥ (आवृत्त, क्रमवैपरीत्येन स्थापित, प्रतिनिवृत्त, पलायित, उद्वर्त्तित, परिवर्त्तित। यथा उत्तरचरिते,

"स एतस्य एव सन्दर्भोऽस्माकमावृत्त"।)

आवेगः, पु, (आङ्+विज्+घञ्।) त्वरा। इति हेमचन्द्रः॥ (यथा दशरूपके,—

"आवेगः सम्भ्रमोऽस्मिन्नभिसरजनिते शस्त्रनागादियोगो वातात् पांशूपदिग्धस्त्वरितपदगतिर्वर्षणे पिण्डिताङ्गः"। यथा अमरुशतके ८, ३।

"आवेगादवधीरित प्रियतमस्तूष्णीं स्थितस्तत्क्षणात्"।)

आवेगी, स्त्री, (आङ्+विज्+घञ्+ङीप्।) वृद्धदारकवृक्षः। इत्यमरः राजनिर्घण्टश्च।

(अस्या गुणादयो वृद्धदारकशब्दे ज्ञातव्याः।)

आवेदन, क्ली, (आङ्+विद्+ल्युट्।) निवेदनं। (विज्ञापनम्।)

आवेश, पु, (आङ्+विश्+घञ्।) अहङ्कारविशेष। तत्पर्य्याय। सरम्भ २ आटोप ३। अपस्माररोग। इति हेमचन्द्रः॥ भूतादिना रोग। तत्पर्य्याय। भूतसञ्चार २ भूतक्रान्ति ३ ग्रहामय ४। इति राजनिर्घण्टः॥ आसक्ति। अभिनिवेश॥ (यथा रघुवंशे, ५।१९।

"तस्मै सभायावेशविवर्ज्जिताय"।)

आवेशन, क्ली, (आविश्यतेऽस्मिन्। आङ्+विश्+ल्युट्।) शिल्पशाला। इत्यमरः॥ (मनु, ९।२६५।

"जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च"। (भावे ल्युट्।) भूतावेश। (यथा, साहित्यदर्पणे ३ परिच्छेदे।

"मनःक्षेपस्त्वपस्मारो ग्रहाद्यावेशनादिजः"।) प्रवेश। इति मेदिनी॥ कोपः। इति धरणी॥ परिवेश। इति हेमचन्द्रः॥

आवेशिकः, त्रि, (आवेश सरम्भ प्राप्त। आवेश+ठञ्।) आगन्तु। अतिथि। इत्यमरः॥ स्वीय। असाधारण। तत्पर्य्यायः। अन्यासाधारण २ प्रातिष्ठित ३। इति त्रिकाण्डशेष॥

आवेष्टकः, पु, (आङ्+वेष्ट+ण्वुल्।) प्राचीरादिः। इति हलायुध॥ पाँचिल बेड़ा इत्यादि भाषा॥

आवोधनं, क्ली, (आङ्+बुध्+ल्युट्।) ज्ञानम्। बुद्धि॥

आशंसा, स्त्री, (आङ्+शन्स+अङ्+टाप्।) इच्छा। आकाङ्क्षा। इति हेमचन्द्रः॥ (रघुवंशे, १२।४४।

"निदध्ये विजयाशंसा चापे सीताञ्च लक्ष्मणे"।)

आशंसिता, [तृ] त्रि, (आङ्+शन्स+तृच्।) आशंसाकर्त्ता॥ आकाङ्क्षाशीलः। इत्यमरः॥

आशंसु, त्रि, (आङ्+शन्स+उ।) आशंसिता। इच्छु॥ इत्यमरः॥

आशाकः, त्रि, (आङ्+शक्+क्त।) शङ्काकुशाभि-निविष्ट॥

आशङ्का, स्त्री, (आङ्+शकि+अ+टाप्।) भयं। त्रासः। इति हेमचन्द्रः॥ (सशय, वितर्क।) शाकुन्तले, प्रथमाङ्के।

"नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्द चरन्ति"। कथासरित्सागरे, १८ तरङ्गे।

"तत् श्रुत्वा विगताशङ्कास्तामवादददयिताम्"।)

आशनः, प, (अशन+स्वार्थे अण्।) अशनवृक्ष। इति भरत द्विरूपकोषश्च॥

आशय, प, (आङ्+शीङ्+अच्।) अभिप्राय। पनसवृक्ष। आधारः। इति विश्वमेदिन्यौ॥ विभव। किम्पचानः। चेत। शरीर। कोष्ठागार। इत्यजयपाल। धर्म्माधर्म्मौ। अदृष्ट। इति कुसुमाञ्जलि॥ (अभिप्रायार्थे यथा, कथासरित्सागरे, १२ तरङ्गे।

"तथाप्याशय बुद्ध्वा तस्य सोऽपि नृपात्मजः"। चित्तार्थे यथा, भगवद्गीतायां, १०।२०।

"अहमात्मा गुडाकेश सर्व्वभूताशयस्थितः"।

"आशया सप्त"। 'वाताशयस्तु वाताशय पित्ताशय श्लेष्माशयो रक्ताशय आमाशय पक्वाशयो मूत्राशय स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टम"इति। सुश्रुत॥)

आशयाश, प, (आशेरतेऽस्मिन्नित्याशय। एरच्। आधार। तमश्नाति। कर्म्मण्यण्।) आश्रयाश। अग्नि। इत्यमरटीकायां स्वामी॥

आशर, पु, (आ शृणाति शॄ हिंसायां+पचाद्यच्।) अग्नि। राक्षस। इति मेदिनी॥

आशा, स्त्री, (आ समन्तात् अश्नुते व्याप्नोतीति। आङ्+अश्+पचाद्यच्+टाप्।) दीर्घाकाङ्क्षा। आयता तृष्णा। (यथा, शान्तिशतके, ४।२६।

"आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला"। दिक्। इत्यमरः।

वासवाशामुखे भाति इन्दुश्चन्दनविन्दुवत्"॥ इति साहित्यदर्पणे १० परिच्छेदे। स्वनामख्याता दक्षप्रजापतिकन्या। यथा, हरिवंशे,—

"श्रीर्ह्रीर्धृतिस्तथा कीर्त्तिराशा मेधा च सन्नता"।)

आशाढ, पु, आषाढमास। व्रतिनां पलाशदण्ड। इत्यमरटीका द्विरूपकोषश्च॥

आशाढा, स्त्री, पूर्व्वाषाढानक्षत्र। उत्तराषाढा च॥

आशापुरसम्भव, पुं, (आशापुरात् सम्भवो यस्य।) भूमिजगुग्गुलु। इति राजनिर्घण्टः॥

आशाबन्धः, पुं, (आशाया बन्धः। षष्ठीतत्।) समाश्वासः। (मेघदूते,—

"आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां। सद्यः पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि"॥) प्रत्याशा। मर्कटजालक। माकड़सार जाल इति भाषा। इति मेदिनी॥

आशित, त्रि, (आङ्+अश्+क्त।) अशित। भुक्त इति जटाधरः॥

आशितङ्गवीन, त्रि, (आशिता भोजिता गावो यत्र अयङ्क्ताशितम्भवमिति तु। निपातन पूर्व्वस्य मुम्।) अशिताङ्गवीन। गावो यत्राशित पूर्व। इत्यमरः॥ (यथा भट्टिकाव्ये ४र्थ सर्गे।

"दिव्याशीतङ्गवीनानि वर्न्यैयन्त्राशितम्भवम्"।) पूर्ब्बे ये स्थाने गरु चरियाछे इति भाषा।

आशितम्भव, क्ली, (आशित+भू+खच्+मुम आगम।) अन्नादि। तृप्ती च। इति मेदिनी॥ (याव अन्नेन अतिथ्यादि भोजित तृप्तोभवति याव अन्नादिकम्। यथा, भट्टिकाव्ये ४र्थ सर्गे,—

"दिव्याशिताङ्गवीनानि वन्यैर्यत्राशितम्भवम्"।)

आशिता [तृ] त्रि, (आ अश्नातीति। आ+अश्+तृच्।) बहुभोजनशील। अतिशयभोक्ता। इति हेमचन्द्रः॥

आशिर, पुं, (आ+अश+किरच्।) राक्षस अग्नि। इति सिद्धान्तकौमुद्यामुणादिवृत्ति (सूर्य्य।)

आशी, [स्] स्त्री, (आङ्+शास्+क्विप्+उपधाया इत्वम्) आशीर्व्वादः। सर्पदन्त। इत्यमरः वृद्धिनामौषधि। इति राजनिर्घण्ट॥ (हित प्रार्थन, अभीष्टवस्तुप्रार्थन। यदुक्त,—

"वात्सल्यात् यत्र मान्येन कनिष्ठस्याभिधीयते। इष्टावधारक वाक्यमाशीः सा परिकीर्त्तिता" यथा, कुमारे ७।४७।

"तस्मै जयाशीः ससृजे पुरस्तात्"।)

आशी, स्त्री, (आङ्+अश्+अच्+ङीप्।) हिताशसन। अहिदन्त। सर्पविष। इति शब्दरत्नावली॥ [इति विश्वविद्या।

"आशी तामनुगता दष्टा तथा दष्टो न जीवति"।

आशीर्व्वाद, पु, (आशिषो वाद षष्ठीतत्।) आशीर्वचन। मङ्गलप्रार्थना॥ (यथा, मनु। २।३३।

"मङ्गल्य दीर्घवर्णान्तमाशीर्व्वादाभिधानवत्"।)

आशीविष, पु, (आशिषि दंष्ट्रायां विषमस्य स पृषोदरादित्वात् साधु।) सर्प। इत्यमरः॥ रघुवंशे,—३।५७।

"गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनै"।

आशु, पु, क्ली, (अश्+उण्।) प्रावृट्कालसमुद्भव धान्य। आउश इति भाषा। तत्पर्य्याय। व्रीहिः २ पाटल ३। अस्य गुणा। मधुरत्वम्। पाके अम्लत्वम्। पित्तकारित्वम्। गुरुत्वञ्च। इति राजवल्लभ॥

आशु, क्ली, (अश्नुते इति। अशूङ् व्याप्तौ उण्।) शीघ्रम्। द्रुतम्। (यथा शाकुन्तले १ अङ्के।

("तदाशु कृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्"।)

तद्वद्गामि चेत् त्रि। इत्यमरः॥

आशुगः, पु, (आशु शीघ्रं गच्छतीति। आशु+गम्+ड।) वायुः। बाणः। (रघुवंशे, १२।९१।

"रावणस्यापि रामास्तो भित्त्वा हृदयमाशुगः"।) शीघ्रगामिनि, त्रि। इत्यमरः॥ मनुः ४।६८।

("विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्षणान्वितैः"।)

आशुपर्णी, स्त्री, शल्लकीलता। इति रत्नमाला॥

आशुव्रीहिः, पु, (आशुः व्रीहिः।) आशुधान्य। इत्यमरटीकायां भरतमुकुटौ॥

आशुशुक्षणिः, पुं, ( आ समन्तात् शोष्टुमिच्छति । आङ्+शुष्+सन्+अनि ।) अग्निः । इत्यमरः ॥ (यथा कादम्बर्य्याम्,—“मन्त्रपूतानि हवींषि प्रतिगृह्णाति एतत्प्रीत्या आशुशुक्षणिः” ।) वायुः । इति सिद्धान्तकौमुद्यामुणादिवृत्तिः ॥

आश्मकुटी, [न्] पुं, पर्व्वतः । इति शब्दमाला ॥

आश्चर्य्यं, क्ली, (आङ्+चर्+ण्यत्+सुट् निपातनात् ।) अपूर्व्वं । तत्पर्य्यायः । विस्मयः २ अद्भुतं ३ चित्रं ४ । इत्यमरः ॥ (यथा, रघौ १६।८७ ।
“गन्धोदग्रं तदनु ववृषुः पुष्पमाश्चर्य्यमेघाः” ।)

आश्मन, पुं, ( अश्मन्+अण् । ) अरुणः । सूर्य्यसारथिः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (अश्मनि प्रस्तरे भवमित्यर्थे अश्मन्+अण् । शिलाभववस्तुनि त्रि । यथा भट्टौ ४ । २६ ।
“यश्चापमाश्मनप्रख्यं सेषु धत्तेऽन्यदुर्व्वहम्” ।)

आश्रम, पुं,क्ली, (आङ्+श्रम+घञ् ।) शास्त्रोक्तधर्म्मविशेषः । आश्राम्यन्ति स्व स्व तपश्चरन्त्यत्र । स चतुर्विधः । ब्रह्मचर्य्यं १ गार्हस्थ्यं २ वानप्रस्थं ३ सन्न्यासः ४ । इति स्मृतिः ॥ ब्रह्मचारी । गृही । वानप्रस्थः । भिक्षुः । इत्यमरः ॥ मुनीनां वासस्थानं । वनं । मठः । इति मेदिनी ॥ ( कलियुगे तु ब्रह्मचर्य्यवानप्रस्थौ न स्तः केवलं गृहस्थभिक्षुकाश्रमावेव, यदुक्तं । महानिर्व्वाणतन्त्रे ।
“गार्हस्थ्यो भैक्षुकश्चैव आश्रमौ द्वौ कलौ युगे” ।
रघुवंशे, १।४८ ।
“स दुष्प्रापयशाः प्रापदाश्रमं श्रान्तवाहनः” ।)

आश्रमिकः, त्रि, ( आश्रम+ठक् ।) आश्रमयुक्तः । इति शब्दरत्नावली ॥

आश्रयः, पुं, ( आङ्+श्रि+अच् ।) राज्ञां सन्ध्यादिषड्गुणान्तर्गतगुणविशेषः । इत्यमरः ॥ व्यपदेशः । (यथा, मनुः २।११ ।
“योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः” ।
सामीप्यं । आधारः । इति जटाधरः ॥ (यथा, शान्तिशतके ४।६ । “वासो वल्कलमाश्रयो गिरिगुहा शय्या लतावल्लरी” ।)
गृहं । इति हेमचन्द्रः ॥ सश्रयणं । अवलम्बनं । (यथा, मनुः ७।७२ ।
“क्षीणाद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगगर्त्ताश्रयाप्सराः” ।)
राज्ञां तन्निर्णयो यथा,—
“अस्थितौ यदि कल्याणं भवेत् संश्रयणं तथा ।
भवति श्रेयसे राज्ञां विपरीतं न कर्हिचित् ॥
उच्छिद्यमानो बलिना आश्रयेत् बलवत्तरं ।
विनीतवत्तत्र कालं नयेदिति मतिर्ध्रुवा ॥
दद्यात् अर्थं वा कोषं वा भूमिं वा भूतिसम्भवां ।
आश्रयेदभियोक्तारं समाश्रयगुणान्वितं ॥
वीतव्यसनमश्रान्तं महोत्साहं महामतिं ।
प्रविशन्ति महाराजमपांपतिमिवापगाः ॥
अव्यवसायिनमलसं दैवपरं साहसाच्च परिहीनं ।
प्रमदेव वृद्धपतिं नेच्छन्त्युपगूहितुं कमला ॥
उत्साहात् श्रियमाप्नोति उत्साहाच्च महद्यशः ।
तस्मात् सर्व्वोपधाशुद्धमुत्साहं नित्यमाचरेत् ॥
अमर्षश्चैव शौर्य्यञ्च शीघ्रकारित्वमेव च ।
तत्कर्म्मणि प्रवीणत्वमित्युत्साहगुणा मताः ॥
व्यसनस्यागमद्वारमनुत्साहो महीपतेः ।
सामदानदण्डभेदा इत्युपायचतुष्टयं ।
सामसिद्धं प्रशंसन्ति सर्व्वतश्च विपश्चितः ॥
स्ववन्निवामृतं वाचा सामोपायं समाचरेत् ।
लुब्धं क्षीणं प्रदानेन सत्कृत्य वशमानयेत् ।
भेदं कुर्व्वीत यत्नेन महामात्यपुरोधसां ॥
यथाबलं प्रकुर्व्वीत दुष्टदण्डनिपातनं” ॥
इति युक्तिकल्पतरौ १ अध्यायः ॥

आश्रयाशः, पुं, ( आश्रयमाधारमपि अश्नाति यः आश्रय+अश्+कर्म्मणि उपपदे अण् ।) अग्निः । (यथा, हितोपदेशे । २ ।
“दुर्वृत्तः क्रियते धूर्त्तैः श्रीमानात्मविवृद्धये ।
किं नाम खलसंसर्गः कुरुते नाश्रयाशवत्” ।)
चित्रकवृक्षः । इत्यमरः ॥

आश्रयाशः, त्रि, (आश्रयं स्वालम्बनस्थानमपि अश्नाति यः । आश्रय+अश्+अण् ।) आश्रयनाशकः । आश्रयध्वंसी । इति मेदिनी ॥

आश्रव, त्रि, ( आ सम्यक् शृणोति वाक्यं यः । आङ्+श्रु+पचाद्यच् ।) वचनस्थितः । इति मेदिनी ॥ कथार बाध्य इति भाषा ।
( “दृष्टदोषमपि तन्न सोऽत्यजत्
सङ्गवस्तु भिषजामनाश्रवः” ।)
इति रघुवंशम् । १९।४९ ।)

आश्रवः, पुं, ( आङ् । श्रु+अच् । ) अङ्गीकारः । क्लेशः । इति मेदिनी ॥ दोषः । इति हेमचन्द्रः ॥

आश्रिः, स्त्री, (अश्रिरेव । अश्रि+इञ् ।) अश्रिः । कोणः ॥

आश्रित, त्रि, (आङ्+श्रि+क्तः । ) आश्रयप्राप्तः । शरणागतः । न्यायमते परमाण्वाकाशादिनित्यद्रव्यभिन्नसर्व्वद्रव्याणां आश्रितत्वं साधर्म्म्यं ॥ (अवलम्बितः, अनुरक्तः, आधेयः, अधीनः, वशवर्त्ती ।)

आश्रुतः, त्रि, (आङ्+श्रु+क्तः ।) अङ्गीकृतः । स्वीकृतः । इत्यमरः ॥ आकर्णितः । कृतश्रवणः ॥

आश्लेषः, पुं, (आङ्+श्लिष्+घञ् ।) आलिङ्गनं । इति हलायुधः ॥ (मेघदूते, पूर्ब्बमेघे ३ ।
“कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे” ।)
एकदेशसम्बन्धः । यथा । कानने रेमे । इति व्याकरणं ॥ (अश्लेषा एव । अश्लेषा+अण् । स्त्रियां टाप् ।) अश्लेषा । अश्लेषानक्षत्रसम्बन्धिनि, त्रि । (यथा, तैत्तिरीयसंहितायां ।४।४।१०।१ ।
“आश्लेषानक्षत्रं सर्पा देवताः” ।)

आश्वं, क्ली, (अश्वानां समूहः । अश्व+अण् ।) अश्ववृन्दं । घोटकसमूहः । इत्यमरः ॥ (अश्वस्य भावः कर्म्म वा ।)

आश्वत्थं, क्ली, (अश्वत्थस्य इदम् । अश्वत्थ+अण् ।) अश्वत्थवृक्षफलं । इत्यमरः ॥

आश्वपालिकः, पुं, (अश्वपालस्यापत्यम् । अश्वपाल+ठक् ।) अश्वपालस्य पुत्त्रः । इति व्याकरणं ॥

आश्वयुज, पुं, (आश्वयुजी पूर्णिमा विद्यतेऽस्य । आश्वयुजी+अण् ।) आश्विनमासः । इत्यमरः ॥ आश्विनसम्बन्धिनि त्रि ॥ (मनुः, ६।१५ ।
“त्यजेदाश्वयुजे मासि मुन्यन्नं पूर्ब्बसञ्चितम् ।
जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च” ॥)

आश्वयुजी, स्त्री, (अश्वयुजा युक्ता पौर्णमासी । अश्वयुज्+अण्+ङीप् ।) आश्विनी पूर्णिमा । इति शब्दरत्नावली ॥

आश्वास, पुं, (आङ्+श्वस्+घञ् ।) निर्वृतिः । आख्यायिकापरिच्छेदः । इति मेदिनी ॥ आशाप्रदानं ॥ (आश्रयदानं, भीतस्य भयनिवारणार्थं सान्त्वनं । उत्तरचरिते, षष्ठाङ्के ।
“आश्वासस्नेहभक्तीनामेकमालम्बनं महत्” ।)

आश्विनः, पुं, (अश्विनीनक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी यत्र मासे सः । अश्विनी+अण् ।) वैशाखादिद्वादशमासान्तर्गतषष्ठमासः । रवेः कन्याराशिस्थितिकालः । तत्पर्य्यायः । इषः २ आश्वयुजः ३ । इत्यमरः ॥ शारदः ४ । इति राजनिर्घण्टः ॥ तत्र जातफलं ।
“राज्ञां प्रियः काव्यकलाविदग्धः
स्याद्धर्म्मकर्मा यशसा तीक्ष्णबुद्धिः ।
सुखी वदान्यो बहुमानशाली
भक्तो भवेदाश्विनमासजन्मा” ॥
इति कोष्ठीप्रदीपः ॥

आश्विनेयौ, पुं, (अश्विन्या अपत्ये । अश्विनी+ढक् ।) अश्विनीकुमारौ । इत्यमरः ॥ (पाण्डुपुत्त्रौ नकुलसहदेवनामानौ, अश्विनीकुमारजातत्वात् तयोस्तथात्वम् ।)

आश्वीन, त्रि, (अश्वेनैकाहेनातिक्रम्यते । अश्वस्यैकाहगम इति खञ् ।) यदध्वं एकेनाश्वेन एकेन दिनेन गम्यते तत् । इत्यमरः ॥ एक घोडाय एक दिने यावार पथ इति भाषा ।

आषाढः, पुं, (आषाढया नक्षत्रेण युक्ता पूर्णिमा यस्मिन् । आषाढा+नक्षत्रेण युक्तः कालः इति अण् । पलाशदण्डपक्षे आषाढः प्रयोजनमस्य इति विशाखाषाढादण् मन्थदण्डयोरित्यण् ।) वैशाखादिद्वादशमासान्तर्गततृतीयमासः । रवेः मिथुनराशिस्थितिकालः । पूर्व्वोत्तराषाढान्यतरनक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी यत्र मासे सः । तत्पर्य्यायः । शुचिः २ । इत्यमरः ॥ तत्र जातफलं ।
“अनल्पजल्पी प्रमदाभिलाषी
प्रमादशीलो गुरुवत्सलश्च ।
बहुव्ययो मन्दहुताशनः स्या-
दाषाढमासप्रभवो मनुष्यः” ॥
इति कोष्ठीप्रदीपः ॥ व्रतिनां पलाशदण्डः ।
(“अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाक्
ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा” ।
इति कुमारे । ५।३० ।)
मलयपर्व्वतः । इति मेदिनी ॥

आषाढकः, पुं, (आषाढ एव+आषाढ+स्वार्थे कः ।) आषाढमासः ॥

आषाढभवः, पुं, (आषाढ+भू+अच् ।) मङ्गलग्रहः । इति हारावली ॥ आषाढमासजाते त्रि ॥

आषाढा, स्त्री, पूर्व्वाषाढानक्षत्रं । उत्तराषाढानक्षत्रं । इति शब्दरत्नावली ॥

आली, स्त्री, (आलि + ङीष् ।) सखी । पङ्क्तिः । वृश्चिकः । इत्यमरटीकायां भरतादयः ॥ सेतुः । इति शब्दरत्नावली ॥ (श्रेण्यर्थे यथा कुमारे ६।४९ ।
"तोयान्तर्भास्करालीव रेजे मुनिपरम्परा" ।)

आलीढ़,क्ली, (आङ् + लिह् + क्त ।) धन्विनां दक्षिणजानुप्रसारवामपादसंकोचरूपावस्थानम् । इत्यमरः । (यथा, रघौ ३ । ५२ ।
"अतिष्ठदालीढविशेषशोभिना
वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः" ।
(तल्लक्षणं यथा, चिन्तामणिधृतम् ।
"भग्निता पूर्व्वजङ्घा च पश्चिमा प्रगुणा भवेत् ।
अयमो मध्यकायस्य स्यादालीढस्य लक्षणम्" ।)

आलीढ,त्रि, (आङ् + लिह + क्त ।) भक्षित । भुक्त । इति मेदिनी ॥ (क्षत, रघुवंशे, २ । ३७ ।
"सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः" ।)

आलीढक, क्ली, (आलीढ एव स्वार्थे क ।) तरुणकानां स्त्रीषु क्रीड़नं । इति हारावली ॥ बाकुरेर खेला इति भाषा । आटीलकमिति क्वचित् पाठः ॥

आलीनक, क्ली, (आलीन + कन् ।) रङ्ग । इति हेमचन्द्र ॥ रां इति भाषा ।

आलु,क्ली, (आङ् + लु + डु ।) भेलक । स्वनामख्यातमूलविशेष । इति मेदिनी ॥ अस्य गुणाः । रक्तपित्तनाशित्व । गुरुत्व । स्वादुत्व । शीतलत्व । स्तनदुग्धशुक्रकारित्वञ्च । इति द्रव्यगुणः ॥

आलुः, स्त्री, (आलाति । आङ् + ला + डु ।) स्वल्पवारिधानिका । घटी झारी इत्यादि भाषा । तत्पर्य्याय । कर्करी २ गलन्तिका ३ । इत्यमरः ॥

आलु, पुं, पेचक । इति शब्दरत्नावली ॥ काष्ठालु । इति राजनिर्घण्टः ॥

आलुक, क्ली, (आलु + स्वार्थे कन् ।) मूलविशेष आलु इति भाषा । इति राजवल्लभ ॥ एलवालुक । इति राजनिर्घण्टः ॥ तद्विवरण यथा,—
"आलुकमप्यालूक तत् कथित वीरसेनस्य ।
काष्ठालुकशङ्खालुकहस्त्यालुकानि कथ्यन्ते ॥
पिण्डालुकमध्वालुकरक्तालुकानि व्यक्तानि" ।
काष्ठालुक काठिन्ययुक्तकटाल । शङ्खालुक श्वेततायुक्तशङ्खालु । हस्त्यालुक दीर्घतायुक्तमहाशरीर । पिण्डालुक वर्त्तुलसुथनी । मध्वालुकं मधुरतायुक्तरोमान्वितदीर्घसुथनी । रक्तालुक रताङ्ग तरड़ा इति च । एषां गुणाः ।
"आलुक शीतल सर्व्वं विष्टम्भि मधुर गुरु ।
सृष्टमूत्रमल रूक्ष दुर्ज्जर रक्तपित्तनुत् ॥
कफानिलकर बल्य वृष्य स्तन्यविवर्द्धनम्" ।
इति भावप्रकाशः ॥
("आलुकानि च सर्व्वाणि तथा सूप्यानि लाघ्नया ।
स्विन्न निष्पीड़ितरस स्नेहाढ्य नातिदोषलम्" ॥
इति वाभटः ॥
"विदारीकन्दशतावरीविसमृणालशृङ्गाटककशेरुकपिण्डालुकमध्वालुकहस्त्यालुककाष्ठालुकशङ्खालुकरक्तालुकेन्दीवरोत्पलकन्दप्रभृतीनि" ॥
"रक्तपित्तहराण्याशु शीतानि मधुराणि च ।
गुरूणि बहुशुक्राणि स्तन्यवृद्धिकराणि च" ॥
इति सुश्रुतः ॥)

आलुकः, पु, (आलाति पृथ्वीं कामरोगं वा आङ् + ला + डु + संज्ञायां कन् ।) काष्ठालु । इति राजनिर्घण्टः ॥ शेषनागः । इति हेमचन्द्रः ॥

आलुकी, स्त्री, दीर्घाकाररक्तवर्णालुः । चुपड़ इति नाम । यथा, भावप्रकाशे ॥
"रक्तालुभेदो या दीर्घा तन्वी च प्रथितालुकी ।
आलुकी वलकृत् स्निग्धा गुर्व्वी हृत्कफनाशिनी ।
विष्टम्भकारिणी तैले तलितातिरुचिप्रदा" ॥

आलेख्यं, क्ली, (आङ् + लिख् + ण्यत् ।) चित्रं । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा माघे, २।६७ ।
"इति संरम्भिणो वाणीर्बलस्यालेख्यदेवताः" ।
"निशीथदीपाः सहसा हतत्विषो
बभूवुरालेख्यसमर्पिता इव" । रघुवंशे ३।१५ ।)

आलेख्यशेष, त्रि, (आलेख्य चित्रमेव शेषो यस्य सः ।) मृतः । इति हेमचन्द्र ॥ (यथा रघुवंशे, १४।१५ ।
"वाष्पायमाणो बलिमन्निकेत-
मालेख्यशेषस्य पितुर्व्विवेश" ।)

आलोकः, पु, (आङ् + लुक् + घञ् ।) दर्शन । देखा इति भाषा । द्योतः । आलो इति भाषा । शान्तिशतके, ४ । ६ ।
"आलोकाय निशासु चन्द्रकिरणाः सख्य कुरङ्गैः सह" । मेघदूते पूर्व्वमेघे ३८ ।
"सद्यालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः" ।
यथा शाकुन्तले, प्रथमाङ्के ।
"यदालोके सूक्ष्म व्रजति सहसा तद्विपुलताम्" ।
(यथा, रामायणे ४ काण्डे । ५० । २४ ।
"आलोक ददृशुर्व्वीरा नीराशा जीविते यदा" ।
वन्दिभाषणम् । स्तुतिरिति यावत् । इति मेदिनी ॥
(रघुवंशे । २ । ९ ।
"उदीरयामासुरिवोन्मदाना-
मालोकशब्द वयसां विरावैः" ॥)

आलोकन, क्ली, (आङ् + लोक् + ल्युट् ।) दर्शनं । इत्यमरः ॥ (रघुवंशे, ७ । ५ । "ततस्तदालोकनतत्पराणां," कुमारसम्भवे । २ । ४५ ।
"भुवनालोकनप्रीतिः स्वर्गिभिर्नानुभूयते" ।
माघे, ११ । ३३ ।
"व्रजति हि सफलत्व वल्लभालोकनेन" ।)

आलोचनं, क्ली, ( आङ् + लुच् + ल्युट् ।) दर्शन । विवेचन ॥ (यथा हेमचन्द्र, "रहस्यालोचनमन्त्रः" । सांख्यमते निर्विकल्पक ज्ञान निर्द्धर्म्मक शुद्धवस्तुविषयक प्राथमिक ज्ञान । यदुक्तं ।
"अस्ति ह्यालोचन ज्ञान प्रथम निर्विकल्पकम् ।
बालमूकादिविज्ञानसदृश शुद्धवस्तुजम् ॥
ततःपर पुनर्वस्तु धर्म्मैर्जात्यादिभिर्यया" ।
"बुद्ध्यावसीयते सापि प्रत्यक्षत्वेन सम्मता" ।
"शब्दादिषु पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः" ॥ सांख्यकारिका ।)

आवनेय, पुं, (अवन्या अपत्य अवनी + ढक् ।) मङ्गलग्रह । इति ज्योतिःशास्त्र ॥ (यथा काशीखण्डे । १७ अध्याये ।
"उत्पत्ति चास्य वक्ष्यामो भूसुतोऽथ यथाभवत् ।
पुरा तपस्यत शम्भोर्दाक्षायण्या वियोगतः ॥
भालस्थलात्पपातैकः स्वेदविन्दुर्महीतले ।
तत कुमारः सञ्जज्ञे लोहिताङ्गो महीतलात् ॥
स्नेहसम्वर्द्धितः सोऽथ धात्र्या धात्रीस्वरूपया ।
माहेय इत्यतः ख्याति परामय गतस्ततः" ॥ )

आवपनं, क्ली, (आोप्यते स्थाप्यतेऽत्र । आङ् + वप् + आधारे ल्युट् ।) द्रव्यस्थापनपात्र । भाण्ड । इत्यमर ॥ सम्यक्क्षुरिकर्म्म । सम्यग्वीजतन्तुवपनं । (यथा महाभारते, आदिपर्व्वणि ।
"प्रभुरग्नि प्रतपने भूमिरावपने प्रभुः ।
प्रभुः सूर्य्यः प्रकाशित्वे सता चाभ्यागतः प्रभुः" ।
"अग्निर्हिमस्य भैषज्यं भूमिरावपन महत्" ।)

आवरण, क्ली, (आङ् + वृ + ल्युट् ।) फलकं । इति हेमचन्द्रः ॥ ढाल इति भाषा । आच्छादनं । ढाकन इति भाषा ॥ ( यथा महाभारते, आदिपर्व्वणि
"विचित्राणि च वासांसि प्रावारावरणानि च" ।
"सूर्य्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः
कल्पेत लोकस्य कथ तमिस्रा" । इति रघुः ५ । १३ । मनुः । ३ । १६३ ।
"स्रोतसा भेदको यश्च तेषाञ्चावरणे रतः" ॥ )

आवरणशक्ति, स्त्री, (आवरणे शक्तिः ।) मायाशक्तिः । यथा । "स्वल्पोऽपि मेघो बहुयोजनविस्तीर्णमादित्यमण्डल अवलोकयितृजननयनपथपिधायकतयाच्छादयतीव तथैवाज्ञान परिच्छिन्नमपि आत्मानमपरिच्छिन्नमसंसारिण अवलोकयितृबुद्धिपिधायकतयाच्छादयतीव तादृश सामर्थ्य" ॥ इति वेदान्तः ॥

आवर्त्त, क्ली, (आङ् + वृत् + घञ् ।) माक्षिकधातुः । इति राजनिर्घण्ट ॥ (आवर्त्तन । चक्राकारेण भ्रमण ।)

आवर्त्त,पु, (आङ् + वृत् + घञ् ।) जलभ्रमः । इत्यमरः ॥ घूर्णा इति भाषा । (रघुवंशे ६ । ५२ ।
"न्टप तमावर्त्तमनोज्ञनाभि" । )
चिन्ता । आवर्त्तन । इति मेदिनी ॥ मेघनायकचतुष्टयान्तर्गतमेघाधिपविशेषः । इति पुराणज्योतिषञ्च । (यथा मेघदूते पूर्व्वमेघे ६ ।
"जात वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्त्तकानाम्" ।)
राजावर्त्तनामोपरत्न । इति राजनिर्घण्टः ॥

आवर्त्तकी, स्त्री, ( आवर्त्त इव कायति प्रकाशते । आवर्त्त + कै + क + ङीष् । ) लताविशेषः । भगवल्ली इति लोकये प्रसिद्धा । तत्पर्य्यायः । तिन्दुकिनी २ विभाण्डी ३ विषाणिका ४ रक्तलता ५ मनोज्ञा ६ रक्तपुष्पी ७ महत्ताली ८ पीतकीला ९ चर्म्मरङ्गा १० । अस्या गुणा । कषायत्वम् । अम्लत्वम् । शीतवीर्य्यकारित्वम् । पित्तनाशित्वञ्च । भद्रदन्तिकाख्यः । इति राजनिर्घण्टः ॥

आवर्त्तन, क्ली, (आङ् + वृत् + ल्युट् ।) दुग्धादेरालोड़न । आओटान इति भाषा । धातुद्रव्यस्य द्रवीकरण । इत्यमरटीका ॥ गलान इति भाषा । सूर्य्यस्य पश्चिमदिगवस्थितच्छायायाः पूर्व्वदिग्गमनारम्भकालः । "आवर्त्तनात्तु पूर्व्वाह्णो ह्यपराह्णस्ततःपर" इति स्मृतिः ॥

आवर्त्तनी, स्त्री, (आङ्+वृत्+ल्युट्+ङीप्।) धातुद्रव्यद्रावणार्थमृत्पात्र। मुछी इति भाषा। तत्पर्य्यायः। तैजसावर्त्तनी २ मूषा ३ मूषः ४। इति शब्दरत्नावली॥

आवर्त्तनमणि, पुं, (आवर्त्तनाकारो मणिः।) राजावर्त्तनामोपरत्न। इति राजनिर्घण्टः॥

आवर्त्तिनी, स्त्री, (आवर्त्त+इनि+ङीप्।) अजशृङ्गीवृक्षः। इति रत्नमाला॥

आवर्हितः, त्रि, (आङ्+वृह्+क्तः।) उन्मूलितः। उत्पाटितः। इति हेमचन्द्रः।

आवलिः, स्त्री, (आङ्+वल+इन्।) श्रेणी। पंक्तिः। इत्यमरः॥

आवली, स्त्री, (आङ्+वल्+इन्+ङीप्।) आवलिः। इत्यमरः॥ (यथा अमरुशतके ३॥ "आलोलामलकावलीं विलुलितां बिभ्रच्चलत्कुण्डलं"। "द्विजावलीव्याजनिशाकरांशुभिः"। इति माघे १।२५।)

आवल्य, क्ली, (अवल+ष्यञ्।) अवलस्य भावः। दौर्ब्बल्यं॥

आवश्यकं, त्रि, (अवश्य+मनोज्ञादित्वाद्वुञ्। अव्ययानां भमात्रे इति टिलोपः।) अवश्यकर्त्तव्यं। नैश्चयिकं। उचितं। यथा। "ण्योरावश्यके। उवर्णान्तादावश्यकेऽर्थे ण्यण् स्यात्"। इति मुग्धबोधव्याकरणं॥ किञ्च। आवश्यकपर्व्वादिक्रियमाणस्य नित्यनैमित्तिकत्वं। इति तिथ्यादितत्त्वं॥ (यथा साहित्यदर्पणे,। "आवश्यकानां कार्य्याणां अविरोधादिनिर्म्मितः"।)

आवसथं, क्ली, (आवसन्ति आगत्य वसन्ति अस्मिन्। आङ्+वस+अथच्।) गृहं। इति हेमचन्द्रः॥ (वसतिस्थानं। विश्रामस्थानं। अग्निगृहं। अग्निहोत्रस्थानं।
रघुवंशे, ८।१४ "निवसन्नावसथे पुराद्वहिः"। मनु। ३।१०७।
"आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम्"।)

आवसथ, पुं, (आवसन्त्यत्र। आ+वस+अधिकरणे अथच्।) गृहं। (यथा, हितोपदेशे मित्रलाभे "अस्ति चम्पकाभिधानायां नगर्य्यां परिव्राजकावसथः"।) आर्य्याकोषः। आर्य्याच्छन्दसो ग्रन्थभेदः। व्रतविशेषः। इत्युणादिकोषः॥

आवसितः, त्रि, (आवस्यते आच्छाद्यते आङ्+वस् आच्छादने+क्तः।) परिपक्वमर्द्दितधान्यं। इति भरतः॥ बङ्क्षितधान्यं। इति सुभूतिः॥ सम्पन्नधान्यं। इत्यन्ये॥ तत्पर्य्यायः ऋद्धं २। इत्यमरः॥

आवहः, पुं, (आभिमुख्येन वहतीति। आङ्+वह्+अच्।) सप्तवाय्वन्तर्गतवायुविशेषः। स च भूवायुः। इति पुराणज्योतिषे॥ (यथा, मनु, ८।३४७।
"द्यौ शुक्रज्योतिरादित्यौ नन्दो हरिस्तपास्तथा। चित्रज्योतिः सत्यज्योतिर्ज्योतिष्मान् स्वान्त आवहः"॥ इति प्रापकः। जनकः। यथा मनुः,—
"समुत्सृजेत्साहसिकान् सर्व्वभूतभयावहान्"। रघुवंशे। १४।५, "शोकावहां भर्त्तुरनुप्रवृत्तिम्"।)

आवहमान, त्रि, (आङ्+वह्+शानच्।) क्रमागतं॥ (परम्परागतं, धारावाहि।)

आवाधा, स्त्री, (आ सम्यक् वाधा।) दुःखं। पीडा। इति शब्दरत्नावली। भूखण्डं। त्रिकोणक्षेत्रमध्यरज्जुनिक्षेपेण यत् खण्डद्वयं जायते तत्। इति लीलावती॥

आवापः, पुं, (आ वपन्ति सलिलमत्र। आङ्+वप्+घञ्।) आलवालं। इत्यमरः॥ वलयः। (यथा महाभारते १४ पर्व्वणि।
"मोहात् पपात गाण्डीवमावापश्च करादपि"।) शत्रुचिन्तनं। (परराष्ट्रचिन्तनम्। यथा, माघे। २।८८।
"तन्त्रावापविदा योगैर्मण्डलान्यधितिष्ठता"।) पानभेदः। इति हेमचन्द्रः॥ भाण्डवपनं। परिक्षेपः। इति मेदिनी॥ निम्नोन्नतभूमिः। इत्यजयः॥ पात्रं। इति शब्दरत्नावली॥ प्रधानहोमः। इति स्मृतिः॥

आवापकः, पुं, (आ उप्यते इति। आङ्+वप्+कर्म्मणि घञ्+संज्ञायां कन् वा।) वलयः। इत्यमरः॥

आवापनं, क्ली, (आवाप्यतेऽनेनेति आङ्+वप्+णिच्+करणे ल्युट्।) सूत्रयन्त्रं। इति शब्दमाला॥ ताँत् इति भाषा।

आवारि, क्ली, (आङ्+वृ+इः।) हट्टवेश्म। इत्युणादिकोषः॥ दोकान हाट्चालि इत्यादि भाषा।

आवाल, क्ली, (आङ्+वल्+घञ्।) आलवालं। इत्यमरः॥ (वालकमभिव्याप्य इत्यर्थे।) वालकपर्य्यन्तम्॥

आवाल्य, क्ली, (वाल्यात् आ आवाल्यं पर्य्यन्तार्थेऽव्ययीभावः।) वाल्यावस्थापर्य्यन्तं॥ (यथा धर्म्मविवेके,—"आवाल्यादसती सती सुरपुरीं कुन्ती समारोहयत्"।)

आवास, पुं, (आ वसन्ति अत्र इति। आङ्+वस्+अधिकरणे घञ्।) गृहं इति हेमचन्द्रः॥ (यथा गीतगोविन्दे। ४।१०।
"आवासो विपिनायते प्रियसखीमालापि जालायते"।)

आवाहनं, क्ली, (आङ्+वह्+णिच्+ल्युट्।) आह्वानं। निमन्त्रणं। यथा,—
"प्रतिमास्थानेष्वप्सु नौ नावाहनविसर्ज्जने"।
इति। विनायकादीनां व्याहृतिभिरावाहनमाह मत्स्यपुराणं।
"विनायकं तथा दुर्गां वायुमाकाशमेव च।
आवाहयेद्व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ"॥
इति च तिथ्यादितत्त्वं॥ आवाहनीमुद्रा मुद्राशब्दे द्रष्टव्या॥

आवाहनी, स्त्री, (आवाह्यतेऽनया। आङ्+वह्+णिच्+करणे ल्युट् ङीप्।) मुद्राविशेषः। यथा,
"हस्ताभ्यामञ्जलिं बद्ध्वानामिकामूलपर्व्वणोः।
अङ्गुष्ठौ निक्षिपेत् सेयं मुद्रा त्वावाहनी स्मृता"॥
इति तन्त्रशास्त्रं॥

आविः, [स्] अ, (अवते। उस्शब्दे+इस्।) प्राकाश्यम्। प्रस्फुटत्वं। तत्पर्य्यायः। प्रादुः २। इत्यमरः॥

आविक, पुं, (अविना मेषलोम्ना कृतम् इति अवि+ठक्।) कम्बलः। इति हलायुधः॥ (त्रि, मेषलोम्ना निर्म्मितं,। २।४१
"वसोरनानुपूर्व्व्येण शाणक्षौमाविकानि च"।
मेडीदुग्धं। यथा वैद्यके,—
"आविकं लवणं स्वादु स्निग्धोष्णं चाश्मरीप्रणुत्।
अहृद्यं तर्पणं केश्यं शुक्रपित्तकफप्रदम्॥
गुरु कासेऽनिलोद्भूते केवले चानिले वरम्"।
इति।)

आविग्न, पुं, (आङ्+विज्+क्तः।) अविग्नः। करमर्द्दकः। इति शब्दरत्नावली॥ पाणि आमला इति ख्यातः। इत्यमरटीकासारसुन्दरी॥ (उद्विग्नः उत्कण्ठितः।)

आविर्भाव, पुं, (आविस्+भू+घञ्।) प्रकाशः। देवावतरणं। प्रादुर्भावः। यथा,—
"तदा मे मनसा ध्यातो दयासिन्धुर्जनार्द्दनः।
भक्तानामनुकम्पार्थं यश्चाविर्भावमिच्छति"॥
इति जैमिनिभारते आश्वमेधिके पर्व्वणि २ अध्यायः॥

आविर्भूत, त्रि, (आविस्+भू+क्त।) प्रकाशितः। अधिष्ठितः। जन्मयुक्तः। अवतीर्णः। प्रादुर्भूतः। आविर्भावविशिष्टः। यथा,—
"उच्चस्थे ग्रहपञ्चके सुरगुरौ सेन्दौ नवम्यां तिथौ।
लग्ने कर्कटके पुनर्व्वसुदिने मेषं गते पूषणि।
निर्द्दग्धुं निखिलाः पलाशसमिधो मध्यादयोध्यारणेराविर्भूतमभूदपूर्व्वविभवं यत्किञ्चिदेकं महः"॥
"तत्राष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी।
आविर्भूता महाघोरा योगिनीकोटिभिः सह"॥
इति च तिथ्यादितत्त्वम्॥

आविष्कार, पुं, (आविस्+कृ+घञ्।) प्रकाशः॥ (यथा साहित्यदर्पणे, २ परिच्छेदे।
"आविष्कारातिशयश्चाभिधेयवत् स्फुटं प्रतीयते"।)

आविष्कृत, त्रि, (आविस्+कृ+क्तः।) प्रकाशितः। तत्पर्य्यायः। प्रकटितः २। इति हेमचन्द्रः। (यथा उत्तरचरिते, षष्ठाङ्के। "आविष्कृतं कथाप्रावीण्यं वत्सेन"।)

आविष्ट, त्रि, (आ+विश+क्त।) प्रेतवाहितः। भूतादिग्रस्तः। इति त्रिकाण्डशेषः॥ आवेशयुक्तः। निविष्टः॥ (उपहतः। यथा कामन्दके,
"आविष्ट इव दुःखेन हृद्गतेन गरीयसा"।)

आवीरचूर्ण, क्ली, (आवीरमेव चूर्णम्।) फल्गु। फागु इति वङ्गभाषा। आवीर इति हिन्दीभाषा। यथा,—
"चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतं।
आवीरचूर्णं रुचिरं गृह्यतां परमेश्वर"॥
इति ब्रह्मवैवर्त्ते श्रीकृष्णजन्मखण्डे ८ अध्यायः॥

आवुक, पुं, (अवति रक्षतीति। अव+बाहुलकादुण्+कन्।) नाट्योक्तौ पिता। इत्यमरः॥

आवृत्, स्त्री, (आङ्+वृत्+क्विप्।) अनुक्रमः। परिपाटी। इत्यमरः॥ (प्रकारः। जातकर्म्मादिक्रियाकलापः। यथा मनुः, १।१४८। २।६६।
"अमन्त्रिकैवावृता कार्य्या पिण्डनिर्वपणं स्त्रियः"।

नं, त्रि, (आङ्+स्कन्द+भावे ल्युट्।) तिरस्कारः। रणः। शोषणं। इति मेदिनी॥ (यथा, किराते ६।२५। "चरणास्कन्दननामिता चलेन्द्र"।)

आस्कन्दितं, क्ली, (आङ्+स्कन्द+भावे+क्त।) अश्वगतिविशेषः। स च सम्यग्गतिः। इत्यमरः॥

आस्कन्दितक, क्ली, (आस्कन्दितमेव स्वार्थे कन्।) आस्कन्दित। अश्वानां पञ्चमगति। तत्पर्य्याय। उत्तेरित २ उपकण्ठ ३। इति हेमचन्द्र॥ ("उत्तेरितमुपकण्ठमास्कन्दितकमित्यपि। उत्प्लुत्योत्प्लुत्य गमनं कोपादिवाखिलैः पदैः"। हेमचन्द्र॥)

आस्तर, पु, (आस्तीर्य्यतेऽसौ। आङ्+स्तॄ+अप्।) करिकम्बल। इति हेमचन्द्र॥ वस्त्राद्यास्तरण॥ (यथा शान्तिशतके, २।१९। "वासो वल्कलमास्तरः किशलयान्योकस्तरूणां तलम्"॥)

आस्तरण, क्ली, (आस्तीर्य्यते यत् येन वा आङ्+स्तॄ+कर्म्मणि करणे वा ल्युट्।) हस्तिपृष्ठस्थितचित्रकम्बल। झुल इति भाषा। तत्पर्य्यायः। प्रवेणी २ वर्णः ३ परिस्तोम ४ कुथा ५ कुथ ६। इत्यमरः॥ प्रवेणिः ७ परिष्टोमः ८ कुथ ९। इत्यमरटीका॥ (शय्या, कुशासन। यथा रामायणे,२ काण्डे।
"राज्ञ्वास्तरणे पूर्व्वमयोध्यायामिवासने"।
महाभारते, आदिपर्व्वणि।
"दर्भास्तरणमास्तीर्य्य निश्चयात् धृतराष्ट्रज"॥)

आस्तिक, पुं, (अस्तीत्यस्य। अस्ति+ठक्।) मुनिविशेष। स तु जरत्कारुमुनिपुत्र। तत्पिता गर्भस्थं तं ज्ञात्वास्तीत्युक्त्वा गत इत्यस्मादास्तिक। (यथा,—
"अस्तीत्युक्त्वा गतो यस्मात् पिता गर्भस्थमेव तम्।
वनं तस्मादिदं तस्य नामास्तिकेति विश्रुतम्"॥)
इति महाभारतम्॥
("आस्तिकस्य मुनेर्माता भगिनी वासुकेस्तथा"।
इति मनसाप्रणाममन्त्रः।)

आस्तिकः, त्रि, (अस्ति ईश्वर इति मतिर्यस्य। अस्ति+ठक्।) नास्तिकभिन्नः। ईश्वरोऽस्तीतिवादी। वेदप्रामाण्यवादी। तत्पर्य्यायः। श्रद्धालु २ श्राद्धः ३। इति हेमचन्द्र॥
("सत्यधर्म्मच्युतात् पुंसः क्रुद्धादाशीविषादिव।
अनास्तिकोऽप्युद्विजते जनः किं पुनरास्तिकः"॥
इति महाभारते आदिपर्व्वणि॥)

आस्तिकार्थदः, पुं, (आस्तिकस्य मुनेरर्थं सर्पसत्रात् निवृत्तिरूपप्रयोजनं ददाति यः। जनमेजयो राजा आस्तिकमुनिवचनात् सर्पयज्ञात् विरराम इति पौराणिकी कथा।) जनमेजयो राजा। इति शब्दरत्नावली॥

आस्तीक, पुं, आस्तिकमुनि। इति त्रिकाण्डशेषः॥

आस्तीकजननी, स्त्री, (आस्तीकस्य जननी माता, षष्ठीतत्पुरुषः।) आस्तिकमाता। मनसा देवी। इति शब्दरत्नावली॥

आस्था, स्त्री, (आङ्+स्था+अङ्+टाप्।) यत्नः। आलम्बनं। आस्थानं। अपेक्षा। इति मेदिनीकारहेमचन्द्रौ॥ (श्रद्धा। आदरः। प्रतिष्ठा। यथा, रघौ १०।४३।
"दैवात् सर्गादवध्यत्व मर्त्येष्वास्थापराङ्मुखः"।
"विनश्वरे विहायास्था यशः पालय मित्र मे"।
इति हितोपदेशः॥)

आस्थान, क्ली, (आस्थीयतेऽस्मिन् इति। आङ्+स्था+ल्युट्।) सभा। इत्यमरः। (यथा, किराते १।१६। "अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलं
तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम्"।)
यत्नः। इत्यजय॥ (आश्रय। स्थानम्।)

आस्थानी, स्त्री, (आस्थान+ङीप्।) सभा। इत्यमरः॥ ("आस्थान्यां समये समं नृपजनः सायन्तने सम्पतन्"। इति रत्नावली।)

आस्पद,क्ली, (आपद्यतेऽस्मिन् इति। आस्पदं प्रतिष्ठायामिति निपातनात् सुट्।) प्रतिष्ठा। कार्य्यं। इत्यमरः॥ प्रभुत्व। इति धरणी। स्थान। इति हेमचन्द्र॥ ("रागस्यास्पदमित्यवैमि न हि मे ध्वंसीति न प्रत्यय"। इति नागानन्दे। तथा च रघौ ३।३६।
"नरेन्द्रमूलायतनादनन्तरं
तदास्पदं श्रीर्युवराजसंज्ञितम्"।)

आस्पन्दन, क्ली, (आङ्+स्पन्द+ल्युट्।) स्पन्दन। कम्पनम्॥

आस्फाल, पु, (आङ्+स्फुल्+घञ्।) हस्तिकर्णास्फालन। हातिर काण नाड़ा इति भाषा। तत्पर्य्यायः। झलज्झला। इति हारावली-त्रिकाण्डशेषौ॥ (आस्फालन। सञ्चालन।)

आस्फालन, क्ली, (आङ्+स्फुल्+णिच्+ल्युट्।) आटोपः। प्रागल्भ्यम्॥ (यथा रघौ ६।७३।
"ऐरावतास्फालनविश्लथं यः
संघट्टयन्नङ्गदमङ्गदेन"।)

आस्फुजित्, पु, (आस्फु+जि+क्विप्।) शुक्राचार्य्य। इति त्रिकाण्डशेष॥

आस्फोटः, पुं, (आङ्+स्फुट्+अच्।) आस्फोतवृक्ष। इति शब्दरत्नावली॥ आकन्द इति भाषा। भूरादेर्बाह्वादिशब्दः। इति श्रीभागवतम्॥
("कक्षैः कक्ष्या विधुन्वानावास्फोटं तत्र चक्रतुः"। इति महाभारते सभापर्व्वणि।)

आस्फोटक, पुं, (आङ्+स्फुट्+ण्वुल्।) पर्व्वतजपीलुवृक्षः। इति शब्दमाला॥ आकरोट इति भाषा।

आस्फोटन,क्ली, (आङ्+स्फुट्+ल्युट्।) विकाशः। सुन्दरा। इति धरणी॥ बाह्वादिशब्दः। ताल ठोका इत्यादि भाषा॥ (यथा रामायणे ५ काण्डे।
"आस्फोटननिनादांश्च मालानां तत्र खेलताम्"॥
धान्यादेस्तुषविक्षेपकरणम्।)

आस्फोटनी, स्त्री, (आस्फुट्यतेऽनया। स्फुट्+करणे-ल्युट्+ङीप्।) वेधनिका। इत्यमरः॥ तुरपन भ्रमर इत्यादि भाषा।

आस्फोटा, स्त्री, (आस्फोटयतीति। आङ्+स्फुट्+अच्+टाप्।) नवमल्ली। वनमल्ली। इति शब्दरत्नावली॥ (नवमल्लीशब्देऽस्या विशेषो ज्ञेय

आस्फोत, पुं, (आस्फोटयतीति। आङ्+स्फुट्+अच्+पृषोदरादित्वात् साधु।) अर्कवृक्ष। कोविदारकवृक्षः। इति मेदिनी॥ भूपलाशवृक्ष इति शब्दचन्द्रिका॥ (यथा, वाभटे।
("मूलं सप्ताङ्गात्तकुशिरीषाश्वमारादर्कान्मालत्यास्चित्रकास्फोतनिम्बात्।
वीजं कारञ्जं सार्षपं प्रापुन्नाटं
श्रेष्ठा जन्तुघ्नं कूषणं द्वे हरिद्रे"॥)

आस्फोतक, पुं, (आस्फोत एव स्वार्थे कन्।) अ वृक्ष। इति राजनिर्घण्ट॥

आस्फोता, स्त्री, (आस्फोत+टाप्।) अपराजि वनमल्लिका। इति मेदिनी॥ सारिवावृक्षः। इ राजनिर्घण्टः। वृक्षविशेष। हापरमाली ख्याता। अस्या गुणौ। कुष्ठविषरोगनाशित इति राजवल्लभ॥

आस्य, क्ली, (अस्यते ग्रासोऽस्मिन् इति असु क्षेप हत्यल्युट इति ण्यत्। यदा आस्यन्दते अन्नादि प्रस्रवति इति स्यन्द् प्रस्रवणे+ड।) मुख। मु मध्यम्। (यथा, मनुः १।९५।)
("यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः"
(आस्ये भवमास्य।) मुखभवे त्रि। इति मेदिनी

आस्यपत्र,क्ली, (आस्यमिव पत्राणि यस्य तत्।) प इति शब्दचन्द्रिका।

आस्यलाङ्गल, पु, (आस्य लाङ्गलं भूविदारकयन्त्रमिव यस्य।) शूकरः। इति हेमचन्द्र॥

आस्यलोम, [न्] क्ली, (आस्यस्य लोम।) श्मश्रु इति हेमचन्द्र॥

आस्या, स्त्री, (आस्+ण्यत्।) स्थितिः। इत्यमर मेदिनी च॥ (आसनं, इति वैद्यमाधवकररोग विनिश्चयसंग्रहे। यथा,—
"आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि"
सुश्रुतेऽस्या गुणा यथा,
"आस्या वर्णकफस्थौल्यसौकुमार्य्यकरी सुखा"

आस्यासवः, पु, (आस्यस्य मुखस्य आसव इव लाला। इति हेमचन्द्रः॥ थुथु लाल इत्यादि भाषा

आस्रप, पुं, (आस्रं पिबतीति। आस्र+पा+क मूलानक्षत्र। इति हेमचन्द्रः॥ (राक्षस।)

आस्रवः, पु, (आङ्+स्रु+अच्।) क्लेशः। क इत्यमर॥

आह, व्य, (उवाच इत्यर्थे कालमात्रे निपातोऽय क्षेपः। नियोगः। इति मेदिनी॥ दृढ़सम्भावन इति शब्दरत्नावली॥

आहकज्वरः, पुं, (आहको नासारोग एव ज्वरः नासारोगविशेषः। नासाज्वर इति ख्यात तस्य लक्षणम्।
"तनुना रक्तशोथेन युक्तो नासापुटान्तरे।
गात्रशूलज्वरकरः श्लेष्मणा ह्याहकः स्मृतः"॥
इति वैद्यकम्॥ (आहव इति क्वचिद्वैद्यके पाठ तद्यथा, आहवज्वरस्य लक्षणम्।
"शोथः सरक्तो नासायां यथास्यौ ज्वरस्तथा वातश्लेष्माद्युत्यश्च आहवास्य विनिर्दिशेत्"।

अस्य चिकित्सा यथा, वैद्यकचिकित्सारत्ने ॥
"दूर्व्वाचव्य फल माषकुलत्थौ वशपत्रिका ।
जलस्थलभवौ कर्णमोरटाखरमञ्जरी ॥
दण्डोत्पलस्य मूलानि क्वाथ्यादष्टगुणेऽम्भसि ।
तत्पादशेषिते तैल तुला कृत्वा विपाचयेत् ।
तत्तैल प्रतिमर्षेण आहवाख्य ज्वर जयेत्" ॥
॥*॥ दूर्व्वाद्यं तैलं ॥*॥)

आहतं, क्ली, (आ + हन् + क्त ।) पुरातनवस्त्र । नूतनवस्त्रं । इति मेदिनी ॥ म्टषार्थकवाक्य । इत्यमर ॥

आहत, त्रि, (आ + हन् + क्त ।) गुणितः । ताडितः । इति मेदिनी ॥ ("प्रति दिवस याति लयं वसन्तवाताहतेव शिशिरश्री"। इति पञ्चतन्त्रम् । ज्ञातः । मिथ्योक्तः । इत्यजय ॥ निहत । "द्यूना विशतिराहताक्षौहिणीनाम्"। इति महाभारतम् ।)

आहत, पु, (आहन्यते यः + आङ् + हन् + कर्म्मणि + क्त ।) आनकः । ढक्का । इति मेदिनी ॥

आहतलक्षण, त्रि, (आहत अभ्यस्त लक्षण यस्य ।) गुणै प्रतीत । गुणेन ख्यात । तत्पर्य्याय । क्षतलक्षण २ । इत्यमर ॥

आहर, पु, (आङ् + हृ + अच् ।) उच्छास । अन्तर्मुखश्वास ॥ इति हेमचन्द्र ॥ (आहरणशीले वाच्यलिङ्ग एव । यथा, रघौ १।४९ ।
"वनान्तरादुपावृत्तै समित्कुशफलाहरै" ।)

आहरण, क्ली, (आङ् + हृ + भावे ल्युट् ।) द्रव्यानयन । आसादनम् । यथा । देवीपुराण ।
"म्टदाहरणसघट्टप्रतिष्ठाह्वानमेव च ।
स्नपनं पूजनञ्चैव विसर्जनगत पर" ॥
इति तिथ्यादितत्त्वम् ॥

आहव, पु, (आह्वयते अरिर्यस्मिन् । आङ + ह्वे + अप् ।) युद्धं ।
("यदाश्रौष भीष्ममत्यन्तशूरम्
हतं पार्थेनाहवेष्वप्रधृष्यम्" ॥
इति महाभारते आदिपर्व्वणि १।१८२ ।
आह्वयते आज्यादिक यत्र । आङ् + ह्वे + अप ।) यज्ञः । इति शब्दरत्नावली ॥

आहवनीय, पु, (आह्वयते आज्यादिरस्मिन् । आङ् + ह्वे + अनीयर् ।) यज्ञाग्निविशेष । इत्यमर । गार्हपत्यादुद्धृत्य होमार्थं य संस्क्रियते सः । इति भरत ॥ (यथा, मनौ २।२३१ ।
"गुरुराहवनीयस्तु साग्निरेता गरीयसी" ।)

आहार, पु, (आङ् + हृ + घञ् ।) द्रव्यगलाधःकरण । तत्पर्य्याय । जग्धिः २ भोजन ३ जेमन ४ लेपः ५ निघसः ६ न्याद ७ । इत्यमरः ॥ जमनं ८ विघस ९ इति तट्टीका ॥ प्रत्यवसानं १० भक्षणं ११ अशन १२ ॥ इति रत्नमाला ॥ अभ्यवहार १३ खदन १४ निगर १५ । इति राजनिर्घण्ट ॥ अस्य गुणा । सद्यस्तृप्तिजनकत्व । बलकारित्व । देहधारकत्वञ्च । इति राजवल्लभ ॥
("तमुवाच भगवानात्रेय । हिताहारोपयोग एक एव पुरुषस्याभिवृद्धिकरो भवति । अहिताहारोपयोगः पुनर्व्याधिनिमित्तमिति" ।
"तमुवाच भगवानात्रेयः । यदाहारजातमग्निवेश । समांश्चैव शरीरधातून् प्रकृतौ स्थापयति, विषमांश्च समीकरोतीत्येतद्धितं विद्धि तद्धित विपरीतं इत्येतद्धिताहितलक्षणमनपवादम्भवति एव वादिनञ्च भगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच । भगवन्नन्वेतदेवमुपदिष्टं भूयिष्ठकल्पाः सर्व्वभिषजो विज्ञास्यन्ति । तमुवाच भगवानात्रेय । येषा विदितमाहारतत्त्वमग्निवेश । गुणतो द्रव्यत कर्मत सर्व्वावयवतो मात्रादयो भावास्तत्र तदेवमुपदिष्टं विज्ञातुमुत्सहेरन् यथा तु खल्वेतदुपदिष्ट भूयिष्ठकल्पा सर्व्वभिषजो विज्ञास्यन्ति तथैतदुपदेक्ष्याम । मात्रादीन् भावानुदाहरन्तस्तेषां हि बहुविधविकल्पा भवन्ति । आहारविधिविशेषास्तु खलु लक्षणतश्चावयवतश्चानुव्याख्यास्याम । तद्यथा, आहारत्वमाहारस्यैकविधमर्थाभेदात् । स पुनर्द्वियोनि स्थावरजङ्गमात्मकत्वात् । द्विविध प्रभावो हिताहितोदर्कविशेषात् । चतुर्विधोपयोग पानाशनभक्ष्यलेह्योपयोगात् । षडास्वादो रसभेदतः षड्विधत्वात्" । इति चरकः ॥
"यदाहारगुणै पान विपरीतं तदिष्यते ।
अन्नानुपान धातूनां दृष्ट यन्न विरोधि च" ॥
इति च चरक ॥
"प्राणिना पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसाञ्च षट्सु रसेष्वायत्तो रसा पुनर्द्रव्याश्रया " ॥
"स च तत्रोदर्कैर्गुणैराहार प्रक्लिन्नो भिन्नसङ्घातः सुखकरश्च भवति" ।
"आहार प्रीणन सद्यो बलकृद्देहधारक ।
आयुस्तेज समुत्साहस्मृत्योजोऽग्निविवर्द्धनः" ॥
इति सुश्रुत ॥) स त्रिविध । सात्त्विकः १ राजसिक २ तामसिक ३ । सात्त्विकाहारो यथा,— ८ श्लोक ।
"आयु-सत्त्व बलारोग्य-सुख प्रीति-विवर्द्धना ।
रस्या स्निग्धा स्थिरा हृद्या आहारा सात्त्विकप्रिया" । राजसिकारो यथा, ९ श्लोक ।
"कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दु खशोकामयप्रदा " ॥
तामसिकाहारो यथा, १० श्लोकः ।
"यातयाम गतरस पूतिपर्य्युषितञ्च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्य भोजन तामसप्रियम्" ॥
इति श्रीभगवद्गीता १७ अध्याय ॥ आहरण । इति मेदिनी ॥
("स पुनर्देवयान्योक्तः पुष्पाहारो यदृच्छया" । इति महाभारतम् । आदिपर्व्वणि ७६ । सम्भवपर्व्वणि ७६।२५ ।)

आहारसम्भवः, पु, (आहारात् सम्भवो यस्य ।) शरीरस्थरसधातु । इति हेमचन्द्र ॥

आहार्य्यं, त्रि, (आङ् + हृ + ण्यत् ।) आगन्तुक । इति त्रिकाण्डशेषः ॥
("आहार्य्यैर्नीयमानं हि छाया दु खेन हृद्यताम्" इति कामन्दक ।) आहरणीय ॥ (यथा, मनु ८।२०२ । "अथ मूलमनाहार्य्यं प्रकाशक्रयशोधित" ।) (शस्त्रकर्म्मभेदः । यथा सुश्रुते "तच्च शस्त्रकर्म्माष्टविध, तद्यथा,—छेद्यं भेद्य, लेख्य वेध्य एष्यम्, आहार्य्यं, विस्राव्यं, सीव्यमिति" ।
"आहार्य्याशर्करास्त्रिस्रो दण्डकर्णमलाश्मरी" ।)

आहार्य्य पु, नाट्योक्तौ व्यञ्जकविशेषः । स तु भूषादिना रचित । इति हेमचन्द्र ॥ (यथा साहित्यदर्पणे । षष्ठाङ्के ।
"भवेदभिनयोऽवस्थानुकार स चतुर्व्विध ।
आङ्गिको वाचिकश्चैवमाहार्य्यः सात्त्विकस्तथा" ॥)

आहार्य्यशोभा, स्त्री, (आहार्य्यात् या शोभा ।) कृत्रिमशोभा । चित्रभूषादिना कृतद्युति । इति जटाधर ॥ (यथा, भट्टिकाव्ये २य सर्गे,—
"आहार्य्यशोभारहितैरमायै
रैक्षिष्ट पुम्भिः प्रचितान् स गोष्ठान्" ।)

आहाव, पु, (आङ् + ह्वे + अप् ॥ निपातनात् वृद्धि ।) कूपसमीपे पश्वादिजलपानार्थंकृतस्वल्पजलाशयः । इत्यमर ॥ चौवाच्चा इति भाषा । (आह्वयतेऽरिरत्र इति व्युत्पत्त्या ।) युद्धं । आह्वान । इति धरणि ॥ (आह्वयतेऽत्र इति आ + ह्वे + अधिकरणे घञ् ।) अग्नि ।)

आहिक, पु, (अहिरिव आकृतिर्यस्य । अहि + ठक् ।) पाणिनिमुनि । इति त्रिकाण्डशेष ॥ केतुग्रहः । इति हेमचन्द्र ॥

आहित, त्रि, (आङ् + धा + क्त ।) न्यस्त । अर्पितः । स्थापित । इति हलायुध ॥
(यथा, किराते ।
"व्यावर्त्तनैरहिपतेरयमाहिताङ्क" ।)

आहितलक्षण, त्रि, (आहित लक्षणं यस्य ।) आहतलक्षण । इत्यमरटीकायां रमानाथ ॥ गुणादिद्वारा ख्यातः ।

आहिताग्नि, पु, (आहित स्थापितोऽग्निर्येन ।) साग्निक । अग्निहोत्री इति स्मृति ॥
("न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मन" । इति मनु ३।२८२ । तथा च रघौ २ ४४ ॥
"गुरोरपीदं धनमाहिताग्ने" ।)

आहितुण्डिक, पु, (अहितुण्डेन दीव्यति । अहितुण्ड + ठक् ।) व्यालग्राही । सापुड़िया इति भाषा । इत्यमरः शब्दरत्नावली च ॥ (यथा पञ्चतन्त्रम् ।
"वैद्यसांवत्सराचार्य्या स्वपक्षेऽधिकृताश्चरा ।
यथाहितुण्डिकोन्मत्ता सर्व्वं जानन्ति प्रभुषु" ।)

आहुत, क्ली, (आङ् + हु + क्त ।) अतिथ्यादि पञ्चमहायज्ञान्तर्गतयज्ञविशेषः । स तु नृयज्ञः । इति जटाधर ॥

आहुतिः, स्त्री, (आ + हु + क्तिन् ।) देवोद्देशे मन्त्रोच्चारणपूर्व्वकोऽग्नौ हविर्निक्षेपः । तत्पर्य्याय । देवयज्ञ २ होम ३ होत्रं ४ वषट्कारः ५ । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा, रघौ १।५३ ।
"पुनानं पवनोद्धूतैर्धूमैराहुतिगन्धिभिः" ।
धर्म्मात् मरुद्वत्या जातः स्वनामख्यातो मरुद्भेदः । यथा हरिवंशे,—
"मरुद्वती मरुत्वन्तो देवानजनयत् सुतान् ।
नक्षत्र चाहुतिं चैव चारित्रं भवमागमम्" ।)

आहुल्यं, क्ली, (आङ् + हल् + क्यप् ।) क्षुपविशेषः तरवट इति काश्मीरादौ ख्यातं । तत्पर्य्यायः ।

पृथक् पृथक् कल्पयेच्च पीठमन्नं तादृगासनम् ।
न पद्मासनं कुर्य्यात् कदाचिदपि पूजने ॥
न प्राणकृन्तसम्भूतमखिलं दिरदात्मते ।
मातङ्गदन्तसञ्जातमासनं कामिके चरेत् ॥
धर्म्मपूर्व्वादिव ग्राह्यं तथा गन्धमगस्य च ॥
सलिले यदि कुर्व्वीत देवतानां प्रपूजनम् ॥
तत्राप्यासनमासीनो नोत्थितस्तु समाचरेत् ।
तोये शिलामयं कुर्य्यादासनं कौशमेव वा ॥
दारवं तैजसं वापि नान्यदासनमाचरेत् ।
आसनारोपसंस्थानं स्नानाभावे तु पूजकः ॥
आसनं कल्पयित्वा तु मनसा पूजयेज्जले ॥
यथासनस्य संस्थानं तोयमध्ये न विद्यते ॥
अन्यत्र वा तदा स्थित्वा देवपूजां समाचरेत् ।
इत्येतत् कथितं पुत्त्र पूज्यपूजकसत्कृतम् ॥
आसनं पात्रमधुना शृणु वेतालभैरव" ॥
इति कालिकापुराणे ६७ अध्यायः ॥

आसनः, पु, (असु क्षेपणे + ल्युः + प्रज्ञाद्यण् ।) जीवकवृक्षः । इति मेदिनी ॥ (जीवकशब्देऽस्य विशेषो ज्ञेयः ।)

आसना, स्त्री, (आस्यतेऽस्याम् । आस + ण्यासश्रन्थो युच् ।) स्थितिः । इत्यमरः ॥

आसनी, स्त्री, (आस्यतेऽस्मिन् । आस + अधिकरणे ल्युट् + स्त्रियां ङीप् ।) विपणिः । (आस + भावे + ल्युट् + ङीप्) स्थितिः । इति मेदिनी ॥

आसन्दः, पुं, (आसं ददातीति । आस + दा + क ।) वासुदेवः । इति मेदिनी ॥

आसन्दी, स्त्री, (आस्यतेऽस्याम् । आस् । अन्दादयश्चेति साधुः ।) क्षुद्रखट्वा । इति मेदिनी ॥ (यथा, शतपथब्राह्मणे ५।४।४।१। "तस्मादेतां आसन्दीमाहरन्ति सैषा खादिरी वितृण्णा भवति सेय वपृथुता भरतानाम्" ।)

आसन्नः, त्रि, (आङ् + सद् + क्त ।) निकटः । इत्यमरः ॥ (समीपवर्त्ती, कुमारसम्भवे, ३।४४॥ "आसीनमासन्नशरीरपातः" । आसन्नाभिमुखः सूर्य्यः ।)

आसवः, पुं, (आङ् + सु + अप् ।) मद्यविशेषः । तत्पर्य्यायः । मैरेयं २ शीधुः ३ । इत्यमरः ॥
"शीधुरिक्षुरसैः पक्वैरपक्वैरासवो भवेत् ।
मैरेयं धातकीपुष्पगुडधानाम्लसंहितम्" ॥
इति माधवेन भेदः कृतस्तथापि सूक्ष्ममनादृत्ये दमुक्तम् । इति भरतः ॥ मद्यमात्रम् । इति राजनिर्घण्टः ॥ (यथा मनुः ११।९५।
"यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवं ।
तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः" ।)
("द्रवयोर्भेषजयोः सिद्धं मद्यं स आसवः" ।
इति शार्ङ्गधरः । यथा भावप्रकाशे ।
"आसवस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः समाः" ।)
आसवभेदेन गुणभेदो यथा ॥
"छेदी मध्वासवस्तीक्ष्णो मेहपीनसकासजित्" ।
"शार्करः सुरभिः स्वादुर्हृद्यो नातिमदो लघुः" ।
इति च वाग्भटः ॥
"मुखप्रियः सुखमदः सुगन्धिर्बस्तिरोगनुत् ।
जरणीयः परिणतो हृद्यो वर्ण्यश्च शार्करः" ॥
"रोचनो दीपनो हृद्यः शोषशोफार्शसांहितः ।
स्नेहश्लेष्मविकारघ्नो वर्ण्यः पक्वरसो मतः" ॥
"मृद्वी भिन्नशकृद्वातो गौडस्तर्पणदीपनः ।
छेदी मध्वासवस्तीक्ष्णो मैरेयो मधुरो गुरुः" ॥
इति चरकः ॥ तथा च सुश्रुते ॥
"तीक्ष्णः सुरासवो हृद्यो मूत्रलः कफवातनुत् ॥
मुखप्रियः स्थिरमदो विज्ञेयोऽनिलनाशनः ।
लघुर्म्मध्वासवश्छेदी मेहकुष्ठविषापहः ॥
तिक्तः कषायः शोफघ्नस्तीक्ष्णः स्वादुरवातकृत् ।
तीक्ष्णः कषायो मदकृद्दुर्नामकफगुल्महृत् ॥
कृमिमेदोऽनिलहरो मैरेयो मधुरो गुरुः ।
बल्यः पित्तहरो वर्ण्यो मृद्वीकेक्षुरसासवः" ॥)

आसवद्रुः, पु, (आसवस्य द्रुः ।) तालवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

आसादितः, त्रि, (आङ् + सद् + णिच् + क्त ।) प्राप्तः । लब्धः । इत्यमरः ॥ (सन्निधापितः, आयोजितः, सम्पादितः ।)

आसारः, पु, (आङ् + सृ + घञ् ।) धारासम्पातः । वेगवद्वृष्टिः । (मेघदूते, "त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना" । प्रसरणम् । सैन्यानां सर्व्वतो व्याप्तिः । इत्यमरः ॥ (यथा पञ्चतन्त्रे ।३।४६।
"तस्माद् दुर्गं दृढं कृत्वा सुभटासारसंयुतं" ।)
सुहृद्बलम् । इति मेदिनी ॥ (यथा पञ्चतन्त्रे ३।२६।
"अज्ञातवीवधासारतोयशस्यो भवेत्तु यः" ।)

आसीनः, त्रि, (आस् + शानच् ।) उपविष्टः । इति जटाधरः ॥ वसा लोक इत्यादि भाषा ।

आसीनप्रचलायितं, क्ली, (आसीनेन उपविष्टेन प्रचलवदाचरितम् ।) उपविश्य निद्रावशेन दोलनम् । इति राजवल्लभः ॥ ढोला इति भाषा ।

आसुतिः, पु, (आसूयते + आङ् + सुञ् + क्तिन् ।) मद्यसन्धानम् । इति हेमचन्द्रः ॥ मद चोयान इति भाषा ।

आसुतीवलः, पु, (आसुतिरस्यास्ति रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् । वलेति दीर्घः ।) यज्वा । शौण्डिकः । इति हेमचन्द्रः ॥ (कन्यापालः, सूदजातिविशेषः ।)

आसुरः, पुं, (असुर + प्रज्ञाद्यण् ।) असुरः । इति सिद्धान्तकौमुद्यामुणादिवृत्तिः ॥
ब्राह्म्याद्यष्टधाविवाहान्तर्गतविवाहविशेषः ।
"आसुरो द्रविणादानात्" ॥ इति याज्ञवल्क्यः ।
"ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म्म उच्यते" ॥
इति मनुः ३।३१।

आसुरं, क्ली, विड्लवणम् । इति राजनिर्घण्टः ॥
असुरस्य भावः । (यथा गीतायां ७।१५।
"न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः" ।)
असुरसम्बन्धिनि त्रि । इति व्याकरणम् ॥

आसुरं, त्रि, (असुरस्येदम् । असुर + अण् ।) असुरसम्बन्धि । यथा —
"यस्मिन् मते पुराणे च दिव्ये देवा न रेमिरे ।
आसुरं तद्भवेत् कार्य्यं हव्यं कव्यं मनवर्जितम्" ।
इति श्राद्धतत्त्वे ऋग्वेदीयवृषोत्सर्गपरिशिष्टम् ॥ अपि च ।
"स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं राहुदर्शने ।
आसुरी रात्रिरन्यत्र तस्मात्तां परिवर्ज्जयेत्" ॥
इति श्राद्धतत्त्वधृतयमवचनम् ॥ (आसुरसर्गो यथा ।
"द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥
प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥
असत्यमप्रतिष्ठन्ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत् कामहैतुकम् ॥
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्म्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान् प्रवर्त्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥
चिन्तामपरिमेयाञ्च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥
इदमद्य मया लब्धमिदं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी ॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥
आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्व्वकम् ॥
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधञ्च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥
तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्" ॥
इति श्रीभगवद्गीतायां १६ अध्यायः ॥)

आसुरी, स्त्री, (असुरस्य इयं । असुर + तस्येदमित्यण् ततः ङीप् ।) राजिका । राइ सर्षा इति भाषा । इति राजनिर्घण्टः ॥ त्रिविधचिकित्सान्तर्गतचिकित्साविशेषः । सा च छेदभेदादात्मिका । इति वैद्यकशब्दचन्द्रिका च ॥

आसेचनः, त्रि, (न सिच्यते मनोऽत्र । नञ् + सिच् + अधिकरणे ल्युट् । ततः स्वार्थे अण् ।) यस्य दर्शने इतरेच्छा न जायते सः । तत्पर्य्यायः । अदभ्रिकृत् २ । इति हारावली ॥ (आ + सिच् + करणे + ल्युट् । आसेचनपात्रम् । यथा, ऋग्वेदे १।१६२।१३। "या पात्र पूष्ण आसेचनानि" ।)

आसेचनकं, त्रि, (आसेचनं एव स्वार्थे कन् ।) असेचनकः । आसेचनः । इत्यमरटीकायां रायमुकुटः ॥ (यथा, साहित्यदर्पणे १०म परिच्छेदे ।
"नयनयुगासेचनकं मानसवृत्त्यापि दुष्प्राप्यम्" ।)

हलराख्य २ नागर ३ नम्बट ४ शिम्बीफल ५ सुपुष्प ६ पीतपुष्प ७ काञ्चनपुष्पकं ८ नपमाकुल्यक ९ शरत्पुष्प १०। तस्य गुणाः। तिक्तत्वं। शीतलत्वं। चक्षुर्हितत्वम्। पित्तदाहमुखरोगकुष्ठकण्डूतिजन्तुमूत्रामयनाशित्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः॥

आह्नतं, क्ली, (आ + ह्वे + क्त।) प्रलयपर्य्यन्तं। यथा,—
"कदम्बानि पटोलानि वृन्ताकबदराणि च।
न त्यजेत् कार्त्तिके मासि यावदाह्नतनारकी"॥
"आह्नतानि आभूतानि प्रलयपर्य्यन्तानीति यावत्"। इति तिथ्यादितत्त्वम्॥

आहूत, त्रि. (आङ् + ह्वे + क्त।) कृताह्वान। यथा,—
"प्रगायतः स्ववीर्य्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि"॥
इति श्रीभागवते १ स्कन्धे ६। ३४॥

आहूति, स्त्री, (आङ् + ह्वे + क्तिन्।) आह्वानं। इति शब्दरत्नावली॥

आहेय, त्रि, (अहेः भवः। अहि + ढञ्।) अहिसम्बन्धि। तद्विषचर्म्मादि। इत्यमरः॥

आहो, अ, (आ हन्तीति। आङ् + हन् + डो।) विकल्पः। इत्यमरः॥ प्रश्नः। (यथा शाकुन्तले पञ्चमाङ्के।
"दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांशुलः"।)
विचारः। इति मेदिनीकरहेमचन्द्रौ॥
("आहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः"।
इति शाकुन्तले प्रथमाङ्के।)

आहोपुरुषिका, स्त्री, (अहो अहमेव पुरुषः। मयूरव्यंसकादित्वात् समासः। अहोपुरुषस्य भावः। अहोपुरुष + वुञ् + स्त्रीत्वात् टाप्।) दर्पात् यात्मनि सम्भावना सा। इत्यमरः॥ अधिकार्थवचनेन शक्तेरप्रतिघाताविष्करणं। आत्मविषयकार्य्यसिद्धिजननशक्त्याविष्करणं। इति भरतः॥ (यथा, भट्टौ ५।२७।
"आहोपुरुषिका पश्य मम सद्रत्नकान्तिभिः"।)

आहोस्वित्, अ, (आहो च स्वित्।) आहो। विकल्पः। इत्यमरटीका॥

आह्नः, पुं, (अह्नां समूहः।) दिनसमूहः। इति व्याकरणम्॥

आह्निक, त्रि, (अह्ना निर्वृत्तः। अहन् + ठञ्।) दिननिर्व्वर्त्त्यं। दिनसाध्यं। इति मेदिनी॥ दिनसम्बन्धी॥

आह्निक, क्ली, (अह्ना निर्वृत्तः। अहन् + ठञ्।) भोजनं। प्रकरणसमूहः। ग्रन्थभागः। नित्यक्रिया। इति मेदिनीकरहेमचन्द्रौ॥

अथ रघुनन्दनभट्टाचार्य्यकृताह्निकाचारतत्त्वोक्तकर्म्माणि सङ्क्षेपेण लिख्यन्ते॥

— तत्र

समाप्य

नमस्कृत्य दक्षिणपश्चिमभूमौ विन्यस्य कर्कोटकनागदमयन्तीनलऋतुपर्णनामकीर्त्तनात् स्मृत्वा नेत्रमुखे प्रक्षाल्य दिराचामेत्॥

ततः नैर्ऋत्यां दक्षिणस्यां वा दिशि मूत्रपुरीषोत्सर्गं जलमृत्तिकाशौचञ्च कृत्वा दिराचम्य हरिं स्मृत्वा दिवा सूर्य्ये रात्रौ चन्द्रे तारे वा तदभावे अग्निं पश्येत्॥

ततो दन्तधावनं। दन्तकाष्ठाभावे निषिद्धदिने च द्वादशगण्डूषजलैः पर्णैर्वा मुखं शोधयित्वा दिराचामेत्।

ततः प्रातःस्नानं तिलकं सन्ध्यातर्पणञ्च कृत्वा सूर्य्योदयपर्य्यन्तं गायत्रीं जपेत्॥ स्नानाशक्तौ आर्द्रवस्त्रेण गात्रमार्ज्जनं मन्त्रस्नानञ्च कृत्वा सन्ध्योपासनं कुर्य्यात्॥

तत आदर्शादिदर्शनं दधिदूर्व्वादिमङ्गलद्रव्यस्पर्शञ्च कुर्य्यात् इति॥ *॥

अथ द्वितीययामार्द्धकृत्यम्॥
वेदविद्याभ्यासः। समित्पुष्पाद्याहरणञ्च॥ *॥

अथ तृतीययामार्द्धकृत्यम्।
गुरुदेवधार्म्मिकोपासनं। कुटुम्बभरणार्थमीश्वरोपासनादि च॥ *

अथ चतुर्थयामार्द्धकृत्यम्।
मध्याह्नस्नानं। तत्र परखातोदके चेत् तदा सप्त पञ्च त्रीन् वा मृत्पिण्डान् तीरे क्षिप्त्वा नाभिमात्रोदके कुशहस्तः सशिरस्कमज्जनं कृत्वा दिराचम्य सङ्कल्प्य यथाविधि निर्मज्जेत्॥

तत स्नानवस्त्रपाणिव्यतिरेकेण गात्रमार्ज्जनं तिलकं तर्पणञ्च कुर्य्यात्॥

ततः अष्टमसुहूर्त्ते मध्याह्नसन्ध्यां समाप्य ब्रह्मयज्ञं विधाय देवपूजनं कृत्वा पादोदकं नैवेद्यञ्च यथाकाले उपयुञ्जीत॥ *॥

अथ पञ्चमयामार्द्धकृत्यम्॥
बलिवैश्वदेवकर्म्मणी काम्यबलिकर्म्म वामदेव्यगानं गानाशक्तौ तस्य त्रिः पाठः पार्व्वणश्राद्धानन्तरं बलिवैश्वदेवकर्म्मणी कर्त्तव्ये॥

बलिकर्म्मानन्तरमतिथिलाभार्थं मुहूर्त्तं गोदोहनकालं वा अभोजनेन प्रतीक्षेत। सन्न्यासिने भिक्षादिकं दत्त्वा तदनुव्रजेत्। तदानीमतिथिलाभे नित्यश्राद्धान्तरमतिथीन् भोजयेत्। भोजनासामर्थ्ये भिक्षां दद्यात्। अतिथ्यलाभे ब्राह्मणाय दानं तदसम्भवे अग्नौ जले वा किञ्चिदन्नं क्षिपेत्॥

ततो नित्यश्राद्धं। वामदेव्यगानं तदशक्तौ ऋक्त्रयं पठेत्। नित्यश्राद्धकरणासामर्थ्ये बलितर्पणाभ्यां पितृयज्ञसिद्धिः॥ ततो गोग्रासदानं गोनमस्कारञ्च कुर्य्यात्॥ ततो यथाविधि भोजनं। विष्णुपादोदकादिकं पूर्व्वमस्पृष्टीतश्चेत् इदानीं स्वीकुर्य्यात्॥ तत स्थानान्तरं न गत्वा मृद्भिर्षर्षणैर्मुखहस्तौ शोधयित्वा तृणादिना दन्तलग्नद्रव्यमपनीय जलगण्डूषैर्मुखाभ्यन्तरं संशोध्य पाणिपादौ प्रक्षालयेत्॥

तत आसनस्थ एव भूमौ पादौ संस्थाप्य दिराचम्य मुखं तुलसीपत्रादिना संशोध्य दक्षिणपादा-

कुष्ठे दक्षिणहस्तेन मन्त्रेण जलं दद्यात्॥
ततो मन्त्रीमाजनामावेऽस्युचितादविलम्बमेव अन्नपानमुक्त्य उच्छिष्टमपनीय तत्स्थानं गोमयोदकाभ्यां सिञ्चेत्॥

तत सप्त आसने उपविश्य इष्टदेवतानाम अन्नजीर्णतार्थं मन्त्रपाठपूर्व्वकं वामहस्तेनोदर स्पृष्ट्वा पादशतगमनानन्तरं वामपार्श्वेन कि काल शयित्वा ताम्बूलादिमुखवासद्रव्यं भोज इति॥ *॥

अथ षष्ठसप्तमयामार्द्धकृत्यम्।
इतिहासपुराणादिश्रवणम्॥

अथाष्टमयामार्द्धकृत्यम्॥
लौकिकचिन्ताकरणम्। सायंसन्ध्योपासन इष्टदेवतास्मरणादिकञ्च कुर्य्यात्॥ *॥

अथ रात्रिकृत्यम्।
सन्ध्यानन्तरमिष्टदेवतामन्त्रजपचिकीर्षापाठ नानायज्ञकरणानि कुर्य्यात्॥

ततोऽन्नादिपाके जाते पूर्व्ववद्बलिवैश्वदेवकर्म कृत्वा अतिथिलाभेऽन्नादिकं तस्मै दत्त्वा अव भरणीयैः सह सार्द्धप्रहराभ्यन्तरेऽनतिदृप्तं भुञ्जीत। अन्नभोजनाभावे ताम्बूलादिकं भोक्तव्य प्रथमयामाभ्यन्तरे विद्याभ्यासं कुर्य्यात्॥ शयनं। शुचिदेशे खट्टोपरि शय्यां कृत्वा शि देशे पूर्णकुम्भं निधाय रात्रिवासः परिधाय प्रच लितपाणिपादो दिराचान्तः पूर्व्वशिरा दक्षि शिरा वा पद्मनाभं स्मृत्वा रामद्वयाभ्यन्तर शयीत॥ *॥

अथ दारोपगमनम्।
ऋतौ निषिद्धेतरदिने स्त्रीसम्भोगं कृत्वा दक्षिणपार्श्वेन स्वापयेत्॥

तत अविलम्बेन मूत्रपुरीषोत्सर्गवत् मृज्जलाभ्यां लिङ्गं हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य दिराचम्य स्वापयेत् ऋतुभिन्नगमने तु लिङ्गप्रक्षालनमाचमनद्वयमात्र कुर्य्यात्। स्त्रियास्तु ऋतावनृतावपि मेमादिच्छ नानन्तरमाचमनमात्रं न स्नानं॥ स्वापनात् पूर्व्वं मूत्रपुरीषोत्सर्गौ न कुर्य्यात्। सम्भोगानन्त तस्यां रात्रौ एकशय्यायां न शयीयातां। अनृत वपि गर्भवत्त्वेऽपि कामुकीमुपेयात्॥

ऋतावभिगम्य प्रातर्नैमित्तिकमङ्गस्नानञ्च कुर्य्यात्॥

ऋतुगमनं पुत्रोत्पत्तिपर्य्यन्तमावश्यकम्॥ इत्या ह्निकाचारतत्त्वोक्तकर्म्म समाप्तं॥ *॥

आह्लादः, पुं, (आङ् + ह्लद् + घञ्।) आनन्दः हर्षः। यथा। श्रीभागवते १०। ५। १॥
"नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलङ्कृतान्॥"

आह्लादित, त्रि, आनन्दितः। हृष्टः। जाताह्लादः इतोऽस्य जाते इत्यनेन आह्लादशब्दात् इतप्रत्ययेन निष्पन्नः॥

आह्वयः, पुं, (आङ् + ह्वे + अच्। यद्वा आह्वेयायते प्राप्यते इति। आह्व + या + घञर्थे कः।) नाम। इत्यमरः॥ (यथा, रामायणे, बालकाण्डे ३। ७॥

"कृत्वा तु तन्महाप्राज्ञः कार्य्यं रामायणाख्यम्"।)
अष्टादशव्यवहारपदान्तर्गतो व्यवहारविशेषः।
यथाह मनुः अष्टमे। ८।५।६।७। "तेषामाद्यमृणा-
दानं" इत्युपक्रम्य। "स्त्रीपुंधर्मौ विभागश्च द्यूत-
माह्वय एव च"।)

आह्वा, स्त्री, (आह्वानमिति। आङ्+ह्वे+अङ्।)
नाम। संज्ञा। इत्यमरः॥

आह्वानं, क्ली, (आङ्+ह्वे+भावे ल्युट्।) आवा-
हन। डाका इति भाषा। तत्पर्य्यायः। हूति २
आकारणं ३। इत्यमरः॥ (यथा मनुः ८।१२६।
"जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम्"।)
(आह्वयतेऽनेन। करणे ल्युट्।) नाम। इति शब्द-
रत्नावली॥

---

## इ

इ, इकारः। तृतीयस्वरवर्णः। अस्योच्चारणस्थान
तालु। स च ह्रस्वो दीर्घः प्लुतश्च भवति।
(अयञ्च उदात्तानुदात्तस्वरित-भेदात् त्रिविधः।
अनुनासिकाननुनासिकभेदाच्च प्रत्येकं द्विविध
एतेन षड्विध एव।)
"इकारं परमानन्दसुगन्धकुसुमच्छविम्।
हरिब्रह्ममयं वर्णं सदा रुद्रयुतं प्रिये॥
सदा शक्तिमयं देवि गुरुब्रह्ममयं तथा।
सदाशिवमयं वर्णं परं ब्रह्मसमन्वितम्॥
हरिब्रह्मात्मकं वर्णं गुणत्रयसमन्वितम्।
इकारं परमेशानि स्वयं कुण्डली मूर्त्तिमान्"॥
इति कामधेनुतन्त्रम्॥ (वङ्गीयभाषायां।)
तस्य लेखनप्रकारो यथा,
"ऊर्द्ध्वाधः कुञ्चिता मध्ये रेखा तत्सङ्गता भवेत्।
लक्ष्मीर्व्वाणी तथेन्द्राणी क्रमात्तास्वेव संवसेत्॥
शीर्षाधःकुञ्चिता रेखा दक्षोर्द्ध्वा कामरूपिणी।
मात्राशक्तिः कोणयुता ध्यानमस्य प्रचक्ष्यते"॥
इति वर्णोद्धारतन्त्रम्॥*॥ (यद्यपि सिद्धान्त-
कौमुद्यां "इचुयशानाम् तालु" इति सामान्यत
उक्तं तथापि शब्देन्दुशेखरादिष्वस्य विस्तरतो
विवृतिरुक्ता। यथा,—"तुल्यास्य प्रयत्नमिति
सूत्रेण प्रशब्देन विलक्षणयत्नबोधेऽपि लोके
यत्नप्रयत्नयोः पर्य्यायतेति ध्वनयन्नाह प्रयत्नो
हि द्विधा इति क्वचित् यत्नो द्विधेत्येव पाठः।
एतेषां आभ्यन्तरत्व वर्णोत्पत्ते प्राग्भावित्वात्।
तथाहि नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितः प्राणो
नाम वायुः ऊर्द्ध्वमाक्रमन् उरःप्रभृतीनि स्था-
नान्याहन्ति ततो वर्णस्य तदभिव्यञ्जकध्वनेर्वा-
त्पत्तिरुत्पत्ते। प्राक् जिह्वाग्रोपाग्रमध्यमूलानि
वर्णोत्पत्तिस्थानं ताल्वादि यदा सम्यक् स्पृशन्ति
तदा स्पृष्टता ईषत्स्पर्शे ईषत्स्पृष्टता समी-
पावस्थाने संवृतता दूरावस्थाने विवृतता अतएव
इचयशानां तालव्यत्वाविशेषेऽपि चवर्गे उच्चा-
रयितव्ये जिह्वाग्रादीनां तालुस्थानेन सम्यक् स्पर्शः
यकारे ईषत् स्पर्शः शकारेकारयोः समीपदू-
रावस्थानं। स्पृष्टं प्रयतनमिति यतेर्नपुंसके भावे
ल्युट्। प्रयत्नमित्यपपाठः नडन्तस्य पुंस्त्वात्।
"शेषाः स्पृष्टा हलःप्रोक्ताः" इत्यादि। यथा,
शिक्षाया शब्देन्दुसारः। तथाहि "अचोऽस्पृष्टा
यणस्त्वीषत् नेमस्पृष्टाः शलः स्मृताः। "शेषाः
स्पृष्टाः हलःप्रोक्ताः" इत्यादि। अत्र अचः
अस्पृष्टा स्पर्शाभावरूपविवृतत्ववन्तः यणस्त्वीषत्
अस्पृष्टा इत्यनुषज्यते तेन ईषदस्पृष्टा ईषद्विवृता
इत्यर्थः। नेम इत्यर्द्धे तेन शलः ईषत् विवृताः
यणमपेक्ष्याधिकविवृतत्ववन्त इत्यर्थः। अपि च—
"अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। हो-
तारं रत्नधातमम्"। ईळे इत्येतत् समस्तमपि-
पदमनुदात्तम् "तिङ्ङतिङः" इति सूत्रेण अति-
ङन्तादग्निशब्दात् परस्य ईळे इति तिङन्तस्य
निघातविधानात् अग्निमीळे इति पदयोः स-
ंहिताकाले तु धातुगतस्य ईकारस्य स्वरितत्वम्
"उदात्तानुदात्तस्वरितः" इति सूत्रेण उदात्तात्
परस्यानुदात्तस्य स्थाने स्वरितः स्यात् इत्यर्थकेनानु-
दात्तस्य ईकारस्य स्थाने स्वरितादेशात् ततःपरस्य
ळे इत्यत्र एकारस्य तिङ्प्रत्ययरूपस्य स्वरितात्
संहितायाम् पूर्व्वस्यैकारस्य नितरां उदात्तत्वम्।
अपरञ्च ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नइति सूच्य-
ते। अत्र मूलम् पाणिनीयशिक्षाग्रन्थे। यथा,—
"कण्ठ्यावहा विचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू"।
"स्वराणामुष्मणाञ्चैव विवृतं करणं मतम्"।)
तस्य नामानि यथा,—
"इः सूक्ष्मा शाल्मली विद्या चन्द्रः पूषा सुगुह्यकः।
सुमित्रः सुन्दरो वीरः कोटरः काटरः पयः॥
भ्रूमध्यो माधवस्तुष्टिर्दक्षनेत्रञ्च नासिका।
शान्तः कान्तः कामिनी च कामो विघ्नविनायकः॥
नेपालो भरणी रुद्रो नित्या क्लिन्ना च पावका"।
इति वर्णाभिधानतन्त्रम्॥ (मातृकान्यासेऽस्य
दक्षिणचक्षुषि स्थानम्। यथा, मातृकान्यास-
धृतमन्त्रः "इं नमो दक्षिणचक्षुषि ईं नमो
वामचक्षुषि"। इति।)

इ, } गतौ। (भ्वादिं-इलपक्षे अदा-पर-सक-अनिट्।)
इल, } अयति। ल एति। पृथक्पाठसामर्थ्यात् पूर्व्वो
न लित्। शेषस्तु इन गताविति प्रसिद्धः। यिनो-
ऽध्यगावित्यादिषु ग्रहणमस्यैव। इति दुर्गादासः॥
(उत्।) उदये। समुन्नतौ। यथा,—
"उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे" इति।
(अभि+उत्।) अभ्युदये। समुन्नतौ। सर्व्वे गत्यर्था
ज्ञानार्थाः प्राप्त्यर्थाश्च इत्यनेन प्राप्त्यर्थेऽप्यस्य बहुल
प्रयोगः। यथा,—मनुः।
"ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम्"।
"अयमेति मन्दं मन्दं कावेरीवारिपावनः पवनः"।
इति साहित्यदर्पणम्। (अति) अतिक्रमे। परा-
भवे। यथा, हितोपदेशे। १।
"अतीत्य हि गुणान् सर्व्वान् स्वभावो मूर्द्ध्नि वर्त्तते"।
"ततः परं जनस्थानं क्रोशत्रयमतीत्य वै"।
इति रामायणे। (अनु) अनुकरणम्।
"धातुरादेशमन्वेति तद्यथा हि तदर्पणः।
गात्माधीनो मनुष्योऽयं कालं भजति कश्चन"॥
इति महाभारते। (अप) अपगमने। पलायने।
"प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते"। इति शाकुन्तले।
(सम्+आ) सम्मिलने। "देवास्त्वैतान् समेत्यो-
चुर्न्याय्य व शिशुरुक्तवान्"। इति मनुः। २।
१५२। इत्यादयो ज्ञेयाः।)

इ, ल, स्मृत्या। (अदा- परं-सकं-अनिट्।) अधि-
पूर्व्वोऽयं। अधिग्रहणं अन्यपूर्व्वस्य केवलस्य च
प्रयोगनिरासार्थं। एवं सर्व्वत्र। ल अध्येति तव
लक्ष्मणः। इक स्मरणे इति प्रसिद्धोऽयं। इन्व-
दिक इत्यत्रास्यैव ग्रहणम्। इति दुर्गादासः॥

इ ङ ल अध्ययने। (अदा०-आ०-सक०-अनिट्।)
अधिपूर्व्वोऽय। अध्ययनमर्थतः शब्दतश्च गुरुतो
ग्रहणं। ङ ल वेदमधीते विप्रः। इति दुर्गादासः॥
("यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः"
इति मनुः। २।१२७।)

इ, व्य, भेद। क्रोधोक्तिः। अपाकरणं। अनुकम्पा।
इति मेदिनी॥ खेदः। इति हेमचन्द्रः॥।

इंरेज, पु, लण्डदेशजातम्लेच्छजातिविशेष। यथा,—
"अधिपा मण्डलानाञ्च सङ्ग्रामेष्वपराजिताः।
इंरेजा नव षट् पञ्च लण्ड्रजाश्चापि भाविनः"॥
इति मेरुतन्त्रे २३ प्रकाशः॥

इ, [स] व्य, कोपः। सन्तापः। दुःखभावना। इति
शब्दरत्नावली॥

इ, पु, (अस्य विष्णोः श्रीकृष्णस्यापत्यम् पुमान्।
अ+इञ्।) कामदेव। इति पुरुषोत्तमहला-
युधौ॥ यथा, आग्नेये एकाक्षराभिधानम्।
"इः कामे रतिलक्ष्मीगौरी उः शिवे ब्रह्मकाय ऊः"॥

इक्कटः, पु, तृणविशेषः। तत्पर्य्यायः। बङ्कमूल २।
इति त्रिकाण्डशेषः। कोशाङ्गः ३ इत्कटः ४। इति
हारावली॥ (इत्कटशब्देऽस्य विशेषो द्रष्टव्यः॥)

इक्षुः, पु, (इष्यतेऽभिलष्यतेऽसौ इति। इष्+क्सु।)
स्वनामख्याततृणं। आक् इति भाषा। तत्पर्य्यायः।
रसालः २। इत्यमरः॥ कर्कोटकः ३ वंशः ४
कान्तारः ५ सुकुमारकः ६ असिपत्रः ७ मधुतृण ८
वृष्य ९ गुडतृण १०। इति राजनिर्घण्टः॥
मृत्युपुष्पः ११ महारसः १२ असिपत्रः १३ को-
शकारः १४ इक्षवः १५। इति शब्दरत्नावली॥
पयोधरः १६। इति जटाधरः॥*॥ तस्य भेदाः।
वंशकः १ कान्तारः २ भीरुः ३ पौण्ड्रः ४। इति
रत्नमाला॥ सामान्येक्षुगुणाः। रक्तपित्तनाशित्वं
बलशुक्रकफकारित्वं। पाके मधुरत्वं। स्निग्धत्वं
गुरुत्वं। शीतलत्वं। मूत्रशुद्धिकारित्वञ्च। तस्य
मूले अतिमधुरत्वं। मध्ये मधुरत्वं। ग्रन्थिस्थ
अग्रभागेषु लवणरसत्वञ्च। इति राजवल्लभः॥
मूलादूर्द्ध्वं मधुरत्वं। मध्ये अतिमधुरत्वं। अग्र
क्रमात् लवणत्वं नीरसत्वञ्च॥ अभुक्ते इक्षुभक्षणगुणाः
पित्तदाहत्वं। भुक्ते वातप्रकोपणत्वं। भुक्तिमध्ये
गुरुतरत्वञ्च॥ इति राजनिर्घण्टः॥ दन्तनिष्पी-
डितेक्षुरसगुणाः। हिमत्वं। शुक्रकारित्वं। तृप्ति-
जनकत्वम्। जीवनहितकारित्वम्। वायुरक्तपित्त-
नाशित्वं। स्वादुत्वं। स्निग्धत्वं। प्रीतिदातृत्वं। रक्त-
वर्द्धकत्वं। सुखप्रह्लादकारित्वं। धातुवर्द्धकत्वञ्च
इति राजवल्लभः॥ अपि च। रक्तदोषप्रशमन

कारित्व। अल्पश्लेष्मदायित्व। हृद्यत्व। रुचिजनकत्व। मूत्रशुद्धिकारित्व। देहस्य कान्तिदायित्व। बल-कारित्व। पीयूषोपमत्व। त्रिदोषशमनत्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः॥ यन्त्रनिष्पीडितरसगुणा। रक्तशुक्रकारित्व। शीतलत्व। सारकत्व। रुचि-करत्व। दाहजनकत्वञ्च॥ इति राजवल्लभः॥ अ-पि च। दन्तनिष्पीडितरसगुणवद्गुणत्व। किञ्चित् पित्तवायुनाशित्व। अकोमलत्व। अस्वादुत्व। च्चीरविष्टम्भदाहकारित्वञ्च। पर्य्युषिततद्रसगुणा। वान्तिहरत्व। वातजनकत्वं। जाड्यप्रतिश्यायरोग-दायित्व। कफवायुकारित्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः॥ तत्पक्वरसगुणा। गुरुत्व। सुतीक्ष्णत्व। कफवान-नाशित्वञ्च। इति राजवल्लभः॥ स्निग्धत्व। अति शयगुरुत्व। अतिपाके विदाहित्व। पित्तास्रदोष-कारित्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः॥

अस्य विकाराः॥

"लशीकाफाणितगुडखण्डमत्स्यण्डिकासिता।
निर्म्मला लघवो ज्ञेया शीतवीर्य्या यथोत्तरम्"॥

इति राजवल्लभः। अथेक्षुवर्गः। तन्नेक्षोर्नामानि गुणाश्च।

"इक्षुर्दीर्घच्छद प्रोक्तस्तथा भूरिरसोऽपि च।
गुडमूलोऽसिपत्रश्च तथा मधुतृणः स्मृत॥
इक्षवो रक्तपित्तघ्ना बल्या वृष्या कफप्रदा।
स्वादुपाकरसा स्निग्धा गुरवो मूत्रला हिमा"॥*॥

अथेक्षुभेदाः।

"पौण्ड्रको भीरुकश्चापि वंशक शतपोरक।
कान्तारस्तापसेक्षुश्च काण्डेक्षु सूचिपत्रक॥
नैपालो दीर्घपत्रश्च नीलपोरोऽथ कोशकृत्।
इत्येता जातयस्तेषा कथयामि गुणानपि"॥*॥

अथ पौण्ड्रकभीरुकयोर्गुणाः।

"वातपित्तप्रशमनो मधुरो रसपाकयो।
सुशीतो वृंहणो बल्यः पौण्ड्रको भीरुकस्तथा"॥*॥

अथ कोशकारगुणाः।

"कोशकारो गुरु शीतो रक्तपित्तक्षयापहः"॥*॥

अथ कान्तारेक्षुगुणाः।

"कान्तारेक्षुर्गुरुर्वृष्य श्लेष्मलो वृंहणः सर"॥*॥

अथ दीर्घपोरवंशकयोर्गुणाः।

"दीर्घपोर सुकठिन सक्षारो वंशक स्मृत"॥*॥

अथ शतपोरकगुणाः।

"शतपर्व्वा भवेत् किञ्चित् कोशकारगुणान्वितः।
विशेषात् किञ्चिदुष्णश्च सक्षार पवनापहः"॥*॥

अथ मनोगुप्तागुणाः।

"मनोगुप्ता वातहरी तृष्णामयविनाशिनी।
सुशीता मधुरातीव रक्तपित्तविनाशिनी"॥*॥

अथ तापसेक्षुगुणाः।

"तापसेक्षुर्भवेत् मृद्वी मधुरा श्लेष्मकोपना।
तर्पणी रुचिकृच्चापि वृष्या च बलकारिणी"॥*॥

अथ बालयुववृद्धेक्षुगुणाः।

"बाल इक्षु कफ कुर्य्यान्मेदोमेहकरश्च स।
युवा तु वातहृत् स्वादुरीषत्तीक्ष्णश्च पित्तनुत्॥
रक्तपित्तहरो वृद्धः क्षतहृत् बलवीर्य्यकृत्"॥*॥

अथाङ्गभेदेन भेदः।

"मूले तु मधुरोऽत्यर्थं मध्येऽपि मधुरः स्मृत।
अग्रे ग्रन्थिषु च ज्ञेयं इक्षुः पटुरसो जने"॥*॥

अथ दन्तपीडितेक्षुरसगुणाः॥

"दन्तनिष्पीडितस्येक्षो रसः पित्तास्रनाशन।
शर्करासमवीर्य्य स्यादविदाही कफप्रदः"॥*॥

अथ यन्त्रपीडितस्येक्षुरसस्य गुणाः।

"मूलाग्रजन्तु ग्रन्थ्यादिपीडनान्मलसङ्करात्।
किञ्चित् काल विधृत्या च विकृति याति यान्त्रिक॥
तस्माद्विदाही विष्टम्भी गुरु स्याद्यान्त्रिको रस"॥

अथ पर्य्युषितस्येक्षुरसस्य गुणा।

"रस पर्य्युषितो नेष्टो ह्यम्लो वातापहो गुरु।
कफपित्तकरः शोषी भेदनश्चातिमूत्रल"॥*॥

अथ पक्वस्येक्षुरसस्य गुणाः।

"पक्वो रसो गुरु स्निग्ध सुतीक्ष्ण कफवातनुत्॥
गुल्मानाहप्रशमन किञ्चित्पित्तहर स्मृतः"॥*॥

अथेक्षुरसस्य विकाराणा गुणाः।

"इक्षोर्विकारास्तृड्दाहमूर्च्छापित्तास्रनाशना।
गुरवो मधुरा बल्या स्निग्धा वातहरा सरा॥
वृष्या मोहहरा शीता वृंहणा विषहारिण"॥

इति भावप्रकाशः॥

(अथ श्वेतेक्षुगुणाः।

"रसायनोत्तमो बल्यो रोगवारणमुत्तम।
स्निग्धश्च तर्पणो वृष्यो वृंहणश्च सञ्जीवनः॥
स्वादुगुणाभिवृद्धत्वाद्वातपित्तप्रशान्तिकृत्।
वृष्योऽप्यन्तर्विदाही स्यात् सितेक्षुः कफकृन्मत"॥

अथ कृष्णेक्षुगुणाः।

"तद्वत् सुकृष्णो भवन गुणानां
वृष्यो भवेत्तर्पणवृंहणश्च।
सञ्जीवन स्यान्मधुरो रसेन
शोषापहर्त्ता श्रमशोककारी"॥*॥

अथ यन्त्रोद्भवरसगुणाः।

"यन्त्रेण पीडितरस कथितो गुरुश्च
वृष्य कफञ्च कुरुतेऽथ सुशीतलश्च।
पाके विदाहिबलकृच्च सुशोभनश्च
संसेवितो रुधिरपित्तरुज निहन्ति"॥*॥

अथ दन्तपीडितरसगुणाः।

"दन्तेन पीडितरसो रुचिकृद्गुरुश्च
सन्तर्पणो बलकरः कफकृच्छ्रमघ्न।
विष्टम्भकोऽपि रुधिरञ्च तथैव पित्त
शोष निहन्ति मधुर स हिमो सरश्च"॥*॥

अथ पक्वरसगुणाः॥*॥

"पक्वो गुरुतर स्निग्ध सुतीक्ष्णः कफवातहा।
पित्तघ्नोऽपि विशेषेण गुल्मातिसारकासनुत्"॥*॥

इति हारीत। तथा च वाभट शार्ङ्गधरश्च।

"इक्षोः रसो गुरु स्निग्धो वृंहणः कफमूत्रकृत्।
वृष्य शीतोऽस्रपित्तघ्न स्वादुपाकरसः सरः।
सोऽग्रे सलवणो दन्तपीडित शर्करासमः॥
मूलाग्रजन्तुजग्धादिपीडनान्मलसङ्करात्।
किञ्चित्काल विधृत्या च विकृति याति यान्त्रिक॥
विदाही गुरुविष्टम्भी तेनासौ तत्र पौण्ड्रक।
शैत्यप्रसादमाधुर्य्यैर्वरस्तमनु वांशिकः॥
शतपर्व्वककान्तारनैपालाद्यास्तत क्रमात्।
सक्षाराः सकषायाश्च सोष्णाः किञ्चिद्विदाहिनः"

"वृष्य शीतः स्थिर स्निग्धो वृंहणो मधुरो रस
श्लेष्मणो भक्षितस्येक्षोर्यान्त्रिकस्तु विदह्यते॥
शैत्यात् प्रसादान्माधुर्य्यात् पौण्ड्रकाद्वंशको वरः"

इति चरकः॥ तथा च सुश्रुते॥

"इक्षवो मधुरा विपाका गुरवः शीताः स्निग्धा बल्या वृष्या मूत्रला रक्तपित्तप्रशमना कृमिकफकराश्चेति ते चानेकविधा। तद्यथा,—
"पौण्ड्रको भीरुकश्चैव वंशकः शतपोरकः।
कान्तारस्तापसेक्षुश्च काष्ठेक्षुः सूचिपत्रक॥
नैपालो दीर्घपत्रश्च नीलपोरोऽथ कोशकृत्।
इत्येता जातय स्थौल्याद्गुणान् वक्ष्याम्यत परम्॥
सुशीतो मधुरः स्निग्धो वृंहण श्लेष्मणः सर।
अविदाही गुरुर्वृष्य पौण्ड्रको भीरुकस्तथा॥
आभ्यां तुल्यगुण किञ्चित्सक्षारो वंशको मतः।
वंशवच्छतपोरस्तु किञ्चिदुष्णः स वातहा॥
कान्तारतापसाविक्षू वंशकानुगुणौ मतौ।
एवंगुणस्तु काष्ठेक्षु, स तु वातप्रकोपणः॥
सूचीपत्रो नीलपोरो नैपालो दीर्घपत्रकः।
वातला कफपित्तघ्ना सकषाया विदाहिनः॥
कोशकारो गुरुः शीतो रक्तपित्तक्षयापहः।
अतीवमधुरो मूले मध्ये मधुर एव तु॥
अग्रेष्वक्षिषु विज्ञेय इक्षूणा लवणो रसः।
अविदाही कफकरो वातपित्तनिवारणः॥
वक्त्रप्रह्लादनो वृष्यो दन्तनिष्पीडितो रसः।
गुरुर्विदाही विष्टम्भी यान्त्रिकस्तु प्रकीर्त्तितः॥
पक्वो गुरुः सरः स्निग्ध सुतीक्ष्ण कफवातनुत्"।)
कोकिलाक्षवृक्ष। इति राजनिर्घण्टः॥

इक्षुकाण्ड,पुं, (इक्षुवृक्षस्य काण्ड इव काण्डो यस्य।) मुञ्जक। शरमुञ्ज इति ख्यात। इति शब्द-चन्द्रिका॥ (यथा, रामायणे २।९१।१५।
"अपरास्त्रोदक शीतमिक्षुकाण्डरसोपमम्"।)
काशतृणम्। इति राजनिर्घण्टः॥

इक्षुगन्ध, पु, (इक्षुवृक्षस्य गन्ध इव गन्धो यस्य।) काशतृणम्। इति भावप्रकाशः॥ क्षुद्रगोक्षुरक-वृक्ष। इति राजनिर्घण्टः॥

इक्षुगन्धा, स्त्री, (इक्षुगन्ध+टाप्।) गोक्षुरकवृक्षः। गोखुरी इति भाषा। शुक्लभूमिकुष्माण्डः। को-किलाक्षवृक्षः। कुलिया खारा इति भाषा। काशतृणम्। इत्यमरो मेदिनी च॥ काशिया इति भाषा।

इक्षुगन्धिका, स्त्री, (इक्षुगन्ध+कन्+टाप्।) भूमि-कुष्माण्ड। इति शब्दरत्नावली॥ (भूमिकुष्माण्ड-शब्देऽस्या गुणादयो ज्ञेया।)

इक्षुतुल्या, स्त्री, (इक्षोस्तुल्या।) तृणविशेषः। का-नाखु इति ख्याता। तत्पर्य्यायः। इक्षालिका २ अनिक्षु ३ इक्षुवालिका ४। इति रत्नमाला॥

इक्षुदर्भा, स्त्री, (इक्षुवृक्षस्य दर्भो बन्ध इव दर्भो-यस्याः।) तृणविशेषः। तत्पर्य्यायः। सुदर्भा २ पत्राढ्या ३ तृणमणिका ४। अस्या गुणाः। समधु-रत्वं। स्निग्धत्वं। ईषत्कषायत्वं। कफपित्तहरत्वं। रुचिजनकत्व। लघुत्व। परमतृप्तिकारित्वञ्च।

इति राजनिर्घण्टः ॥

इक्षुनेत्र, क्ली, (इक्षोर्नेत्र ।) इक्षुमूल । इति राजनिर्घण्ट ॥

इक्षुपत्र, पु, (इक्षोः पत्रमिव तीक्ष्णं पत्रं यस्य ।) यावनालनामधान्यविशेष । इति राजनिर्घण्ट ॥ जोयार' इति भाषा ।

इक्षुपूर', पु, (इक्षुरिव पूर्य्यते । इक्षु+पृ+क ।) शरवृक्षः । इति राजनिर्घण्ट ॥ (शरवृक्षशब्दे-ऽस्य गुणादयो ज्ञातव्या ।)

इक्षुबालिका, स्त्री, (इक्षोर्बालिकेव तदाकृतित्वात् ।) इक्षुतुल्या । इति रत्नमाला ॥ खगाखु इति ख्याता । काश । इति राजनिर्घण्ट' ॥ काशिया इति भाषा ।

इक्षुमूल, क्ली, (इक्षोः मूलमिव मूलं यस्य ।) वृक्षविशेष । तत्पर्य्याय । इक्षुनेत्र २ मोरटकं ३ वंश-नेत्र ४ वंशमूल ५ मोरट ६ वंशपूरक ७ । इति राजनिर्घण्ट॥ (“अतीव मधुरो मूलः” इति सुश्रुतः ।)

इक्षुयोनि, पुं, ( इक्षोर्योनिरुत्पत्तिकारणं ।) पुण्ड्रक-इक्षु । इति राजनिर्घण्टः ॥ (तत्र पौण्ड्रक । शैत्य-प्रसादमाधुर्य्यैर्वर', इति वाभट' । पौण्ड्रकशब्दे चास्य विशेषो ज्ञेय ॥)

इक्षुर', पुं, (इक्षुमिक्षुवत् गन्ध राति ददातीति । इक्षु+रा+क ।) कोकिलाक्षवृक्ष । इति रत्न-माला ॥ कुलिया खारा इति भाषा । इक्षु । गोक्षुरकवृक्ष' । इति शब्दरत्नावली ॥ काश । इति राजनिर्घण्ट ॥

इक्षुरक', पु, (इक्षुर+स्वार्थे+क ।) कोकिलाक्ष-वृक्ष । स्थूलशर । काशवृक्ष । इति राजनिर्घण्टः ।
(“स्वयङ्गुप्तेक्षुरकयो फलचूर्णं सशर्करम् ।
धारोष्णेन नर' पीत्वा पयसा न क्षय व्रजेत्” ॥
इति सुश्रुतः ॥)

इक्षुरसः, पुं, (इक्षोरिव रसो यस्य ।) काशवृक्ष । इति भावप्रकाश ॥ (इक्षुवृक्षस्य रस । अस्य गुणा' क्रमेण यथा, दन्तपीडितेक्षुरसगुणा । जीवन-हितकारित्वं, हिमत्वं, शुक्रकारित्व, तृप्तिजनकत्व, वायुरक्तपित्तनाशित्व, स्वादुत्वं, रक्तवर्द्धकत्व धातु-वर्द्धकत्वञ्च यथा भावप्रकाशः ।
“दन्तनिष्पीडितस्येक्षो रसः पित्तास्रनाशन ।
शर्करासमवीर्य्य' स्यादविदाही कफप्रद'” ॥
यन्त्रनिष्पीडितरसगुणा', रक्तशुक्रकारित्वम्, शी-तलत्व, सारकत्व, दाहजनकत्व, किञ्चित् पित्त-वायुनाशित्व, क्षीरविष्टम्भदाहकारित्वञ्च यथा, भावप्रकाशे,—
“मूलाग्रजन्तुजग्धादिपीड़नात् मलसंकरात् ।
किञ्चित्काल विधृत्याच विकृतिं याति यान्त्रिक' ॥
तस्मात् विदाही विष्टम्भी गुरुः स्यात् यान्त्रिको रसः । पर्य्युषितेक्षुरसगुणाः । वान्तिहरत्व, वातज-नकत्वं, नाशप्रतिश्यायरोगदातृत्व, कफवायुकारि-त्वञ्च । यथा भावप्रकाशे ।
“रसः पर्य्युषितो नेष्टो ह्यम्लो वातापहो गुरु' ।
कफपित्तकर' शोषी भेदनश्चातिमूत्रल” ॥ * ॥
पक्वेक्षुरसगुणा । गुरुत्व । सतीक्ष्णत्व । कफ-

वातनाशित्व । स्निग्धत्व । अतिपाके विदाहत्वं । पित्तास्रदोषशोषकारित्वञ्च । यथा भावप्रकाशे ।
“पक्वो रसो गुरु स्निग्ध सुतीक्ष्ण कफवातनुत् ।
गुल्मानाहप्रशमन किञ्चित् पित्तहर स्मृत” ॥ * ॥
इक्षुरसविकारगुणा । यथा भावप्रकाशे ।
“इक्षोर्विकारास्तृड्दाहमूर्च्छापित्तास्रनाशना' ।
गुरवो मधुरा बल्या स्निग्धा वातहराः सरा ।
वृष्या मोहहरा शीता वृंहणा विषहारिण” ॥)

इक्षुरसक्वाथ, पु, (इक्षुरसस्य क्वाथ ।) गुड़ । इति हेमचन्द्र ॥ (गुडशब्देऽस्य गुणादयो व्याख्येयाः ।)

इक्षुरसोद, पु, (इक्षुरसवत् उदकं यस्य उदकस्य उदभाव ।) इक्षुसमुद्र । इति जटाधर ॥

इक्षुवल्लरी, स्त्री, (इक्षुरिव सुस्वादा वल्लरी ।) क्षीर-विदारी । क्षीरकन्द । इति राजनिर्घण्ट ॥

इक्षुवल्ली, स्त्री, (इक्षुरिव सुस्वादा वल्ली लता ।) क्षीरविदारी । इति राजनिर्घण्ट ॥

इक्षुवाटिका, स्त्री, पुण्ड्रकः । इति राजनिर्घण्ट । पुडि आक् इति भाषा ।

इक्षुवाटी, स्त्री, ( इक्षोर्वाटीव । ) पुण्ड्रक । इति राजनिर्घण्ट ।

इक्षुवेष्टन, पु (इक्षोरिव वेष्टन यस्य ।) भद्रमुञ्ज । इति राजनिर्घण्ट ॥

इक्षुशाकट, क्ली, (इक्षो क्षेत्र । इक्षुशब्दात् क्षेत्रे शाकटशाकिनौ इति शाकटप्रत्यय ।) इक्षुक्षेत्रम् । इति व्याकरणम् ॥ इक्षुर भूमि इति भाषा ।

इक्षुशाकिनं, क्ली, ( इक्षोर्भवनं क्षेत्र वा । इक्षु+शाकिन ।) इक्षुक्षेत्र । इति व्याकरणम् ॥

इक्षुसार',पु,(इक्षोः सार ।) गुड । इति राजनिर्घण्ट ॥

इक्ष्वाकु पु, (इक्षुमाकरोतीति । इक्षु+आङ्+कृ +मितद्र्वादित्वात् डु । यद्वा इक्षु इति शब्दं अकतीति अक गतौ बाहुलकादुण् ।) वैवस्वतमनु-पुत्त्र । स तु सत्ययुगे अयोध्याया सूर्य्यवंशीयादि-राज । इति पुराणम् ॥ (गीतायाम् । ४ । १ ।
“विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्” ।
इक्ष्वाकोर्गोत्रे जाता इति व्युत्पत्त्या वाच्यलिङ्ग ।
इक्ष्वाकुवंशोद्भवा । यथा रघु' । १।७२ ।
“इक्ष्वाकूणा दुरापेऽर्थे त्वदधीना हि सिद्धय” ।)

इक्ष्वाकु, स्त्री, ( इक्षु+आङ्+कृ+डु ।) कटु-तुम्बी । इत्यमरो मेदिनी च ॥ तितलाउ इति भाषा । (“इक्ष्वाकुकुसुमचूर्णं वा पूर्व्ववदेव क्षीरेण काशश्वासच्छर्द्दिकफरोगेषूपयोग ”। इति सुश्रुते ।
“सिद्ध वक्ष्याम्यथेक्ष्वाकुकल्प येषा प्रशस्यते” ।
अस्या पर्य्यायो यथा ।
“लम्बाऽथ कटुकालाबुतुम्बी पिण्डफला तथा ।
इक्ष्वाकौ फलिनी चैव प्रोच्यते तस्य कल्पना” ॥
अस्या रोगविशेषे प्रशस्तता यथा ।
“कासश्वासविषच्छर्द्दिज्वरार्त्ते कफकर्षिते ।
प्रताम्यति नरे चैव वमनार्थं तदिष्यते” ॥
अवस्थाभेदेनास्या व्यवहारो यथा ।
“अपुष्पस्य प्रवालानां मुष्टिं प्रादेशसम्मितम् ।
क्षीरप्रस्थे शृत दद्यात् पित्तोद्रिक्ते कफज्वरे ॥
पुष्पादिषु च चत्वार क्षीरे जीमूतके यथा ।
योगाद्धरितपाण्डूना सुरामण्डेन पञ्चम ॥
फलस्य रसभागञ्च त्रिगुणक्षीरसाधितम् ।
उरःस्थिते कफे दद्यात् स्वरभेदे सपीनसे ॥
हृतमध्येफलेजीर्णे स्थित क्षीर यदा दधि ।
जात स्यात् कफजे कासे श्वासे वम्याञ्च तत्पिबेत् ॥
मस्तुना वा फलान्मध्य पाण्डुकुष्ठविषार्द्दित' ।
तेन तक्र विपक्व वा सक्षौद्रलवणं पिबेत् ॥
अजाक्षीरेण बीजानि भावयेत् पाययेत च ।
विषगुल्मोदरग्रन्थिगण्डेषु श्लीपदेषु च ॥
तुम्ब्या फलरसे शुष्के सपुष्पैरवचूर्णितम् ।
छर्द्दयेन्माल्यमाघ्राय गन्धसम्पत्सुखोचित ॥
भक्षयेत्फलमध्य वा गुडेन पक्वेन च ।
इक्ष्वाकुफलतैल वा सिद्ध वा पूर्व्ववद्घृतम् ॥
पञ्चाशद्शतद्धानि फणादीना यथोत्तरम् ।
पिबेद्दिमृद्य बीजानि कषायेष्वासुत पृथक् ।
यष्ट्याह्वकोविदाराद्यैर्मुष्टिमन्तर्नख पिबेत् ॥
कषायैः कोविदाराद्यैर्मात्रास्व फलवत् स्मृता ।
गुल्ममेहे प्रसेके च कल्क मांसरसे पिबेत् ॥
नर साधु वमत्येव न च दौर्ब्बल्यमश्नुते” ॥
“इक्ष्वाकुमूल मदन विशल्यातिविषे वचां ।
कुष्ठ किण्वाम्भिको चापि पिबेत्तुल्यानि पूर्व्ववत्” ॥
इति चरक ॥)

इक्ष्वारि, पु, (इक्षुवृक्षस्य अरि ।) काशवृक्षं । इति राजनिर्घण्ट ॥ ( काशशब्देऽस्य गुणादयो ज्ञा-तव्या ।)

इक्ष्वालिक, पु, (इक्षुरिव अलति व्याप्नोतीति । ) काशवृक्षं । इति भावप्रकाशः ॥

इक्ष्वालिका, स्त्री, (इक्ष्वालिक+टाप् ।) इक्षुतुल्या । इति रत्नमाला ॥ खागाखु इति भाषा । खागड़ा इति केचित् ॥

इख, गतौ । (भ्वादिं-परं-सकं-सेट् ।) इति कवि-कल्पद्रुम ॥ तृतीयस्वरादि । एखति । इति दुर्गादास ॥

इख, इ, गतौ । (भ्वादि-परं-सकं-सेट्-इदित् ।) इति कविकल्पद्रुम ॥ तृतीयस्वरादिः । इ, इङ्खते । इति दुर्गादासः ॥

इग, इ, गतौ । (भ्वादि-परं-सकं-सेट्,इदित् ।) इति कविकल्पद्रुम ॥ तृतीयस्वरादि । इ, इङ्गति इङ्गित । इति दुर्गादासः ॥ (यदुक्त भारते ।
“त्वया सृष्टमिदं विश्व यच्चेङ्ग यच्च नेङ्गति” ।

इङ्गं, त्रि, (इगि+क ।) अद्भुत । जङ्गम । इति मेदिनीकरहेमचन्द्रौ ॥ (यथा, भारते ।
(“त्वया सृष्टमिद विश्व यच्चेङ्ग यच्च नेङ्गति” ।)

इङ्ग, पुं, ( इङ्ग+घञ् ।) इङ्गित । ज्ञान । इति मेदिनीकरहेमचन्द्रौ ॥

इङ्गितं, क्ली, (इगि+क्त ।) अभिप्रायानुरूपचेष्टा-विष्करण । ठार सङ्केत ।इत्यादि भाषा । तत्प-र्य्याय । आकारः २ इङ्गः ३ । इत्यमर ॥ गमनं । चेष्टा । इति हेमचन्द्र ॥
(“आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारेण लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मन ” ॥
हितोपदेशे सुहृद्भेदः । (तथाच रघु १।२० ।)

"तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च"।)

इङ्गुद, पु (इङ्गं गतिं अवखण्डयतीति। इङ्ग+दो +क। अस्य उक्।) इङ्गुदीवृक्ष। इत्यमर-भरतौ॥

("इङ्गुदं तिक्तमधुरं स्निग्धोष्णं कफवातजित्"।

इति चरक॥०॥ विशेषोऽन्यदिङ्गुदीशब्दे ज्ञेय।)

इङ्गुदी, स्त्री, (इङ्गुद+ङीप्।) वृक्षविशेष। इङ्गोट इति भाषा। जीयापुता इति तु वङ्गदेशीयाः प्रमादेन वदन्ति तस्य तु पुत्रजीव इत्यादीनि नामानि प्रसिद्धानि। तत्पर्य्याय। तापसतरु २। इत्यमरः॥ हिङ्गुपत्र ३ विषकण्टः ४ अग्निधान्तक ५ गौरत्वक् ६ तनुपत्र ७ मूलारि ८ तापसद्रुम ९ तीक्ष्णकण्ट १० तैलफलः ११ पूतिगन्ध १२ विगन्धक १३ क्रोष्टुफल १४।

(यथा रघु १४।८२।

"ता इङ्गुदीस्नेहकृतप्रदीप-

मास्तीर्णमेध्याजिनतल्पमन्तः"॥)

अस्या गुणा। मदगन्धित्व। कटुत्वम्। उष्णत्वम्। फेनिलत्वम्। लघुत्वम्। रसायनत्वम्। जन्तु-वातामयकफश्वयथुनाशित्वञ्च। इति राजनिर्घण्ट॥

(अस्य पर्य्यायपूर्ब्बक गुणानाह।

"इङ्गुदोऽङ्गारवृक्षश्च तिक्तकस्तापसद्रुम।

इङ्गुदः कुष्ठभूतादिग्रहव्रणविषक्रिमीन्॥

हन्त्युष्णश्वित्रशूलघ्नस्तिक्तकः कटुपाकवान्"।

इति भावप्रकाश॥) ज्योतिष्मतीवृक्ष। इति रत्नमाला॥ लताफट्की इति भाषा।

इङ्गुल, पु, स्त्री, इङ्गुदीवृक्षः। इति भरतो द्विरूप-कोषश्च॥

इच्छा, स्त्री, (एषणं इच्छा। इष्+श+टाप्।) मनोधर्म्मविशेष। तत्पर्य्याय। आकाङ्क्षा २ वाञ्छा ३ दोहदः ४ स्पृहा ५ ईहा ६ तृट् ७ लिप्सा ८ मनोरथ ९ काम १० अभिलाषः ११ तर्ष १२। इत्यमर॥ रुक् १३ इषा १४ श्रद्धा १५ तृष्णा १६ रुचि १७ मति १८ दोहल १९ छन्द २० इट् २१। इति जटाधरः॥ (यथा मनौ ५।४५

"योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया"।)। न्यायमते अस्याः कारणम्। (यथा, भाषापरि-च्छेदे। १४८, १४९।)

"निर्दुःखत्वे सुखे चेच्छा तज्ज्ञानादेव जायते।

इच्छा तु तदुपाये स्यादिष्टोपायत्वधीर्य्यदि॥

चिकीर्षा कृतिसाध्यत्वप्रकारेच्छा तु या भवेत्।

तद्धेतुः कृतिसाध्येष्टसाधनत्वमतिर्भवेत्"॥

अस्याः प्रतिबन्धः। "बलवद्द्विष्टहेतुत्वमतिः स्यात् प्रतिबन्धिका"। इति भाषापरिच्छेदे १४८॥

इच्छावती, स्त्री, (इच्छा विद्यते यस्याः। इच्छा+ मतुप्। मस्य वः।) धनादीच्छायुक्ता स्त्री। तत्-पर्य्यायः। कामुका २। इत्यमरः॥

इच्छावसुः, पु, (इच्छयाभिलाषमात्रेणैव वसु धन यस्य।) कुवेर। इति जटाधर॥

इच्छु, त्रि, (इच्छतीति। इषधातोर्निपातनात् सिद्धम्।) इच्छाविशिष्टः। आकाङ्क्षायुक्त। इति व्याकरणम्॥ (यथा, रामायणे।४।४।८।

("शरण्य शरणेच्छूनां पितुरादेशपालकः"।)

इच्छुकः, पुं, (इच्छु+कन्।) वृक्षविशेषः। इति शब्द-चन्द्रिका॥ टाबालेबु इति ख्यातः।

इज्जल, पुं, (यजतीति। इ+क्विप्+तुक्, इत् जल यस्य।) हिज्जलवृक्षः। हिजल गाछ इति भाषा। तत्पर्य्याय। निचुल २ अम्बुज ३। इत्यमर॥ (सपर्य्यायगुणाः यथा, भावप्रकाशे।

"इज्जलो हिज्जलश्चापि निचुलश्चाम्बुजस्तथा।

ज्जलश्चैतस्य वदेपो हिज्जलोऽथ विषापह"॥)

इज्य, पुं, (इज्या विद्यते यस्य। इज्या अर्श आद्यच्।) वृहस्पतिः। इति ज्योतिषं शब्दरत्नावली च॥

("जीवाङ्गिरोभानुजेज्यानां चैवाभि त्र्यम्बकादयः"।)

इज्य, त्रि, (इज्या पूजाऽस्यस्य। अर्श आद्यच्।) गुरु। पूजनीयः। इति मेदिनी॥

इज्या, स्त्री, (यजनं इति। यज+भावे क्यप्+टाप्।) दान। यज्ञः। (यथा, रघु। १। ६८।)

("सोऽहमिज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलित")

पूजा। सङ्गम। इति मेदिनी॥ (कर्म्मणि क्यप्।) गौः। इति राजनिर्घण्ट॥ कुट्टनी। इति त्रि-काण्डशेष॥

इज्याशील, पु, (इज्या यज्ञ शीलयति पुनःपुनरा-चरतीति। इज्या+शील+अ।) पुनःपुनर्यज्ञ कर्त्ता। तत्पर्य्यायः। यायजूक २। इत्यमर॥

इञ्चाक, पु, मत्स्यविशेष। इति त्रिकाण्डशेष॥ इचा मोचाचिङ्डि इति भाषा। (चिङ्गटशब्दे-ऽस्य गुणादयो ज्ञातव्याः॥)

इट गत्या। (भ्वादि-परं-सक-सेट्।) इति कवि-कल्पद्रुमः॥ एटति। इति दुर्गादास॥

इट्[ष्]स्त्री, (इष्+क्विप्।) इच्छा। इति जटाधरः॥

इट्चरः, पु, (एषणमिति इट्। इष्+क्विप्। तेन चरति इति। इष्+चर्+अच्।) षण्डः। इत्य-मर॥ षाँड इति भाषा।

इडा, स्त्री, (इल्+क+टाप्।) बुधग्रहभार्य्या। सा इक्ष्वाकुराजकन्या। (यथा हरिवंशे,—

"तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता।

दिव्यसंहनना चैव इडा जज्ञे इति श्रुति"॥)

गौ। (यथा, भारते,—

"इडाज्यहोमाहुतिभिर्मन्त्रशिक्षाविशारदैः"।)

वचन। (देवीभेद। यथा, हरिवंशे,—

'श्रुतिःप्रीतिरिडाकान्तिः शान्तिः पुष्टिःक्रिया तथा'।)

पृथ्वी। इति मेदिनी॥ (यथा, महाभारते, सौप्तिकपर्व्वणि २१५।१०।

"पतत्रिसङ्घे स जघन्यरात्रे

प्रबोध्यते नूनमिडातलस्थ"।) स्वर्ग।

शरीरस्य वामभागस्था नाडी। इति हेमचन्द्रः॥

(तथा च षट्चक्रभेदे श्लोके।

"मेरोर्बाह्यप्रदेशे शशिमिहिरशिरे सव्यदक्षे निषण्णे, मध्ये नाडी सुषुम्ना त्रितयगुणमयी चन्द्र-सूर्य्याग्निरूपा"।

"मेरोर्मेरुदण्डस्य बाह्यप्रदेशे वहिर्भागे सव्यदक्षे वामदक्षिणे पार्श्वे शशिमिहिरशिरे चन्द्रसूर्य्या-त्मिके नाड्यौ इडापिङ्गलानाडीद्वयमिति निर्गलि-तार्थः। निषण्णे वर्त्तेते"। ज्ञानसङ्कलनीतन्त्रे।

"इडा नाम स्थिता गङ्गा यमुना पिङ्गला स्मृता।

गङ्गायमुनयोर्मध्ये सुषुम्णा च सरस्वती॥

एतासां सङ्गमो यत्र त्रिवेणी सा प्रकीर्त्तिता

तत्र स्नात सदा योगी सर्व्वपापैः प्रमुच्यते"॥

इयन्तु सकामकर्म्मानुष्ठायिनीवानां पुनरावृ-त्तिकारिणी धूममार्गा पितृयानरूपिणी।

अनयोरिडापिङ्गलयोर्मध्ये गता सुषुम्नैव ब्र-ह्मनाडी यस्यां नाड्यां इद सर्व्वं विश्व प्रतिष्ठितम्।

यथा उत्तरगीतायाम्। २ अध्याये।

"इडा च वामनिश्वास सोममण्डलगोचरा।

पितृयानमिति ज्ञेया वाममाश्रित्य तिष्ठति॥१२

गुदस्य पृष्ठभागेऽस्मिन् वीणादण्डस्य देहभृत्।

दीर्घास्थि मूर्द्ध्नि पर्य्यन्त ब्रह्मदण्डेति कथ्यते॥१३

तस्यान्ते सुषिरं सूक्ष्म ब्रह्मनाडीति सूरिभि॥१४

इडा पिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्ना सूक्ष्मरूपिणी॥

सर्व्व प्रतिष्ठित यस्यां सर्व्वग सर्व्वतोमुखम्"॥१५

पर आसामिडादीनां नाडीनां शोधनमकुर्व्वन् योगी कदाप्यात्मप्रसादं लब्धुं नार्हति यथा मगवच्छङ्करोक्तयोगशास्त्रे।

"ईरितानि समभ्यस्य वाञ्छितानि यथाविधि।

प्राणायाम ततो गार्गि जितासनगतोऽभ्यसेत्।

मृदासने कुशान् सम्यक् आस्तीर्य्याजिनमेव च।

लम्बोदरञ्च सम्पूज्य फलमोदकमक्षणै॥

तदासने सुखासीनः सव्ये न्यस्येतरं करम्।

समग्रीवशिरा सम्यक् संवृतास्य सुनिश्चल।

प्राङ्मुखोदङ्मुखोवापि नासाग्रन्यस्तलोचन॥

अतिभुक्तमभुक्तञ्च वर्ज्जयित्वा प्रयत्नत।

नाडीसंशोधनं कुर्य्यात् उक्तमार्गेण यत्नतः॥

वृथा क्लेशो भवेत्तस्य तच्छोधनमकुर्व्वत।

नासाग्रे शशभृद्बीजं चन्द्रातपवितानितम्।

सप्तमस्य तु वर्गस्य चतुर्थ वर्गसयुतम्।

विश्वमध्यस्थमालोक्य नासाग्रे चक्षुषी उभे॥

इडया पूरयेद्वायु बाह्य द्वादशमात्रकै।

ततोऽग्नि पूर्ब्बवद्ध्यायेत् स्फुरज्ज्वालावलीयुतम्।

रवष्ठ विन्दुसयुक्त शिखिमण्डलसंस्थितम्॥

ध्यायेद्विरेचयेद्वायुं मन्द पिङ्गलया पुन।

पुन पिङ्गलयापूर्य्य प्राण दक्षिणतः सुधी॥

तद्वद्विरेचयेद्वायुमिडया तु शनै शनै।

त्रिचतुर्वत्सरञ्चापि त्रिचतुर्मासमेव च।

गुरुणोक्तप्रकारेण रहस्येव समभ्यसेत्"॥)

इडाचिका, स्त्री, (इडावत् अचति। इडा+अच्+ ण्वुल्। टाप्+अत इत्वम्।) वरटा। बोल्ता इति भाषा। इति शब्दचन्द्रिका॥

इडिका, स्त्री, (इडा+स्वार्थे क, इत्वम्।) पृथ्वी। इति शब्दरत्नावली॥

इडिक्क, पुं, (इडिक+कै+क।) वनच्छाग। इति हेमचन्द्र॥

इड्वरः, पुं, (इट्+वृ+अप्।) इट्चरः। वृषः। इत्यमरटीकायां स्वामी॥

इत, इ बन्धे। (इदित्-दिवा-आत्म-सक-सेट्।) इ इन्त्यते। इति दुर्गादासः॥

इत, त्रि, (इ + क्त ।) गत । स्मृत । इति मेदिनी ॥ (प्राप्त । ज्ञाने, क्ली ।)

इतः, [स्] व्य, (अस्मादिति निपातनात् सिद्धम् ।) नियम । पञ्चम्यर्थ । (यथा कुमारे २ । २८ । "तद्ब्रूत वत्सा किमित प्रार्थयध्व समागता" ।) विभाग । इति विश्व ॥

इतर, त्रि, (इना कामेन तरतीति । इ + तॄ + अच् यद्वा इतेन ज्ञानेन त्रीयते इति बाहुलकात् अर ।) अन्यः ("वामेतरस्तस्य कर प्रहर्त्तु" । इति रघु । २।३१ ।) नीच । इत्यमर ॥

इतरविशेष, पु, (इतरस्मात् विशेष ।) अन्यप्रभेद ॥

इतरेतरं, त्रि, अन्योऽन्य । परस्परं । इति हेमचन्द्र ॥ यथा, रघु । ७ । ५४ ।)
("व्यूहावुभौ तावितरेतरस्मात्
भङ्गं जयस्यापतुरव्यवस्थम्" ।)

इतरेद्युः, [स्] व्य, (इतर + एद्युस् ।) इतरस्मिन्नहनि । अन्यदिने । इत्यमरः ॥

इतस्तत, व्य, अत्र तत्र । एखाने सेखाने इति भाषा । यथा,—
"द्वे सहस्रे रथाना स गजानामयुत रणे ।
इतस्ततो धावमान सुरथो रथिना वर" ॥
इति जैमिनिभारते आश्वमेधिके पर्व्वणि २० अध्याय ॥ अपि च ।
"ताडितास्तेन वीरेण फणीन्द्रास्त्रासमागता ।
इतस्ततस्ते तन्मुक्ता गता पातालमुज्ज्वला" ॥
इति पाद्मे पातालखण्डे ४४ अध्याय ॥

इति, व्य, (इण् + क्तिच् ।)-हेतु । (यथा, रघु ।२।२२।
"वत्सोत्सुकापि स्तिमिता सपर्य्यां,
प्रत्यग्रहीत्सेति ननन्दतुस्तौ" ।)
प्रकरणम् । (यथा, मनु ।२।१५ ॥
"उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ।
सर्व्वथा वर्त्तते यज्ञ इतीय वैदिकी श्रुति" ॥)
प्रकाश । (यथा, रघु । १ । १२ ।
"दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव" ॥)
आदिः । समाप्ति । इत्यमर ॥ निदर्शनम् । ("आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव" । इति मनु । १।१० ।) प्रकार । अनुकर्ष । परछतिः । इति मेदिनी ॥ (विवक्षानियम । प्रत्यक्ष । अवधारणा । परामर्शः । मानम् । इत्यमर्थः । एवार्थः । "गुणानित्येव तान् विद्धि" । इति रामायणे । १म काण्डे ।)

इतिकथ, त्रि, (इति इत्थ प्रकारेण कथा यस्य ।) अश्रद्धेय । नष्ट । इति मेदिनी ॥

इतिकथा, स्त्री, अर्थशून्यवाक्य । इति मेदिनी ॥

इतिह, व्य, (इति एवं च ह किल च ।) पारम्पर्य्योपदेशः । तत्पर्य्याय । ऐतिह्य २ । इत्यमर ॥

इतिहास, पु, (इतिह आस्तेऽस्मिन् । इतिह + आस + घञ् ।) पूर्व्ववृत्तान्त । प्राचीनकथा । तत्पर्य्याय । पुरावृत्त २ । इत्यमर ॥ (यथा, मनु । ३ । २३२ ।
"आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च" ।)
व्यासादिप्रणीतभारतादिग्रन्थ । इति भरत ॥

इत्कट, पु, (इतं समीपस्थ जन कटति आच्छादयति फलेन इति । इत् + कट् + अच् ।) वृक्षविशेष । ओकडा इति भाषा । तत्पर्य्याय । नड़मूल २ वाटीदीर्घ ३ खरच्छद ४ । इति रत्नमाला ॥ ("वीरणशालिषष्टिकेक्षुवालिकादर्भकुशकाशगुन्द्रेत्कटकत्तृणमूलानीति दशेमानि स्तन्यजननानि भवन्ति" । इति चरक ॥)

इत्किला, स्त्री, रोचनाख्यगन्धद्रव्यम् । इति शब्दचन्द्रिका ॥

इत्थं, व्य, (इदम् + थमु । एतेतौरथोरिति इदादेश ।) इदप्रकार । इति वोपदेव ॥ एइ प्रकार इतिभाषा । (यथा रघौ । २ । २५ ।
"इत्थ व्रतं धारयत प्रजार्थं
समं महिष्या महनीयकीर्त्ते ।)

इत्य, त्रि, (इ + क्यप् ।) गम्य । इति व्याकरणम् ॥

इत्वर, त्रि, (एतीति + इ + क्वरप् ।) क्रूरकर्म्मा । पथिक । दुर्व्विध । नीच । इति हेमचन्द्र ॥

इत्वरी, स्त्री, (एति परपुरुष प्राप्नोतीति । इ + क्वरप् + ङीप् ।) असती । इत्यमरो मेदिनी च ॥ अभिसारिका । इति हेमचन्द्र ॥

इद, इ, परमैश्वर्य्ये । (इदित् भ्वादि-पर-सक-सेट् ।) इति कविकल्पद्रुम ॥ इ इन्दते इन्दति इन्द्र । इति दुर्गादासः ॥

इद, [म्] त्रि, (एति, इण् गतौ, इणो दमुगिदि दशपादीवृत्ति । यद्वा इन्दति, इदि परमैश्वर्य्ये, इन्दे कमिर्नलोपश्चेति दीक्षित ।) पुरोवर्त्तिवाचकसर्व्वनाम । इति व्याकरणम् ॥ एइ इति भाषा ।

इदकार्य्या, स्त्री, (इदम् कार्य्यं यस्या ।) दुरालभावृक्ष । इति शब्दचन्द्रिका ॥

इदा, स्त्री, सवत्सरादिवर्षपञ्चकान्तर्गततृतीयवत्सर । इति मलमासतत्त्वं ॥ अस्या विवरणम् वत्सरशब्दे द्रष्टव्यम् ॥

इदानीं, [न्] व्य, (इदम् + दानीं, इदम इश् ।) अस्मिन् काले । सम्प्रति । इत्यमर ॥
("हविषे दीर्घसत्रस्य सा चेदानीं प्रचेतस" । इति रघु । १ । ८० ।) वाक्यभूषणम् । इति शब्दरत्नावली ॥

इदानीन्तन, त्रि, (इदानीं + भवार्थे ट्यु ।) इदानीम्भवं । सम्प्रतिजात । आधुनिक । इति व्याकरणम् ॥
"वासना चेदानीन्तनी प्राक्तनी च रसास्वादहेतु" ।
इति साहित्यदर्पणे ३ परिच्छेदे ।२६। )

इदावत्सर, पुं, (इदा इति वत्सर ।) सवत्सरादिपञ्चान्तर्गतवत्सरविशेष । अस्मिन् वत्सरे अन्नवस्त्रदान महाफलम् । इति विष्णुधर्म्मोत्तरम् ॥ ("सवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोसीद्वत्सरोऽसि" । इति वाजसनेयीसंहिता ।२७।४५।)

इद्ध, क्ली, (इन्द + क्त ।) आतप । दीप्ति । इति मेदिनी ॥ आश्चर्य्य । इति जटाधर ॥

इद्ध, त्रि, निर्म्मल । इति शब्दरत्नावली ॥

इद्वत्सर, पु, इदावत्सर । यथा,—
"सवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीय परिवत्सर ।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थस्त्वनुवत्सर ॥
पञ्चमो वत्सरस्तेषा तदेभि पञ्चभिर्युगं ।
तेषु संवत्सरो ह्यग्नि सूर्य्यस्तु परिवत्सर ॥
सोम इद्वत्सरस्तेषा वायुश्चैवानुवत्सर ।
रुद्रस्तु वत्सरो ज्ञेय पञ्चाब्दा ये युगात्मका" ॥
इति देवीपुराणे कालव्यवस्थानामाध्याय ॥

इध्म, क्ली, (इन्ध + मक् ।) अग्निसन्दीपनकाष्ठम् । इत्यमर ॥ जालानि काठ इति भाषा ।
("तत्रेध्मानयने शुक्रो नियुक्त काश्यपेन ह" ।
इति भारते ।)

इन, पु, (एतीति । इ + नक् ।) सूर्य्य । प्रभुः । ("वस न इनस्पति" । ऋग्वेदे । ४३ । २ ।) नृपभेद । इत्युणादिकोष ॥

इनाग्नी, स्त्री, वटपत्रीवृक्ष । इति राजनिर्घण्ट ॥

इन्दम्बरं, क्ली, (इन्द महार्हम् अम्बरं नीलवस्त्रमिव ।) इन्दीवर । नीलोत्पलं । इति शब्दमाला ॥

इन्दिन्दिर, पु, भ्रमर । इति हेमचन्द्र ॥

इन्दिरा, स्त्री, (इन्द + किरच + टाप् ।) लक्ष्मी । इति जटाधर त्रिकाण्डशेषश्च ॥ ("मन्दं मन्द मन्दिरादिन्दिरेव" इति भामिनीविलासे ।) शोभा । कान्ति । यथा, "निशि नि सरदिन्दिर काथ तुलयाम कलयापि पङ्कजम्" । इति भामिनीविलासे ।)

इन्दिरामन्दिरं, क्ली, (इन्दिराया मन्दिर वासस्थान मिव ।) विष्णुः । इति राजवल्लभ ॥

इन्दिरालय, क्ली, (इन्दिराया लक्ष्म्या आलय ।) पद्म । इति शब्दरत्नावली । क्लीवत्वमभिधानात् ॥

इन्दिरावरं, क्ली, (इन्दिराया लक्ष्म्या वर प्रिय ।) नीलोत्पल । इति शब्दरत्नावली ॥

इन्दिवर, क्ली, (इन्दतीति । इदि परमैश्वर्य्ये, इगुपधात् किदिति इन् । इन्दिर्लक्ष्मीस्तस्याः वर प्रिय ।) नीलोत्पल । इति शब्दमाला ॥

इन्दीवर, क्ली, (इन्दी लक्ष्मीस्तस्याः वर प्रिय ।) नीलपद्म । तत्पर्य्याय । नीलाम्बुजन्म २ । इत्यमरः । कुवलय ३ नीलाब्ज ४ नीलोत्पल ५ । इति रत्नमाला ॥ ("इन्दीवरेण नयन मुखमम्बुजेन" । इति कालिदास । "इन्दीवरश्यामतनुर्नृपोऽसौ" । इति रघु ।६।६५।) (नीलोत्पलशब्देऽस्य गुणादयो ज्ञेयाः ।)

इन्दीवरिणी, स्त्री, (इन्दीवर + इनि ङीप् ।) उत्पलिनी । इति राजनिर्घण्ट ॥ (नीलोत्पलसमूह ।)

इन्दीवरी, स्त्री, (इन्दीवरमस्त्यस्या । अर्श आद्यच गौरादित्वात् ङीष् ।) शतमूली । इति मेदिनीराजनिर्घण्टौ ॥
("वासानिम्बपटोलकेतकिबलाकुष्माण्डकेन्दीवरी"
इति परिभाषाया ॥)

इन्दीवारं, क्ली, (इन्द्या लक्ष्म्या वारो वरण यस्मिन् ।) इन्दीवरं । इत्यमरटीकाया रायमुकुट ॥

इन्दुः, पु, (उनत्ति अमृतधारया भुवं क्लिन्ना करोति इति । उन्द + उ + आदेरिच ।) चन्द्र ।
("दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव" ।
इति रघु ।१।१२। ) कर्पूर । इत्यमर ॥
(चन्द्रसमसंख्य एकसंख्यायुक्त । मृगशिरानक्षत्रम् ॥
"दिवार्ककिरणैर्जुष्ट स्पृष्टमिन्दुकरैर्निशि" ।

इति वैद्यकद्रव्यगुणः ॥)

इन्दुकः, पु, (इन्दुरिव शुभ्रत्वात्। इन्दु+कन्।) अश्मन्तकवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥

इन्दुकमला, स्त्री, (इन्दुश्चन्द्र इव शुभ्रं कमलम्।) सितोत्पलम्। इति राजनिर्घण्टः॥

इन्दुकलिका, स्त्री, (इन्दुरिव शुक्ला कलिका यस्याः।) केतकी। इति राजनिर्घण्टः॥ (केतकीशब्देऽस्या विशेषो ज्ञेयः॥)

इन्दुकान्त, पु, (इन्दुः कान्तः प्रियो यस्य। चन्द्रोदयेऽस्य निष्यन्दतीतिभावः।) चन्द्रकान्तमणिः। इति राजनिर्घण्टः॥

इन्दुकान्ता, स्त्री, (इन्दुः कान्तो यस्याः।) रात्रिः। इति हेमचन्द्रः॥

इन्दुजनक, पु, (इन्दोर्जनकः।) समुद्रः। इति त्रिकाण्डशेषः॥ (समुद्रात् चन्द्रोत्पत्तिकथा भारते आदिपर्व्वणि अष्टादशाध्याये द्रष्टव्या। यथा,—

"ततः शतसहस्रांशुर्मथ्यमानात्तु सागरात्।
प्रसन्नात्मा समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः"॥३४॥)

इन्दुजा, स्त्री, (इन्दोर्जायते या। इन्दु+जन्+ड।) नर्म्मदा नदी। इति हेमचन्द्रः। नर्व्वदा इति ख्याता। (इयञ्च प्रतीच्यामवन्तिषु स्थिता प्रत्यक्स्रोतावहा च। यथा,—

"अवन्तिषु प्रतीच्यां वै कीर्त्तयिष्यामि ते दिशि।
यानि तत्र पवित्राणि पुण्यान्यायतनानि च॥
प्रियङ्ग्वाम्रवनोपेता वानीरफलमालिनी।
प्रत्यक्स्रोता नदी पुण्या नर्मदा तत्र भारत"।॥
इति भारते आदिपर्व्वणि ८९ अध्यायः॥)

इन्दुपुत्र, पु, (इन्दोः पुत्रः।) बुधग्रहः। इति शब्दरत्नावली॥

इन्दुपुष्पिका, स्त्री, (इन्दुरिव शुभ्रं पुष्पं यस्याः।) कलिकारीवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥ बिषलाङ्गला इति भाषा।

इन्दुभृत्, पु, (इन्दुं बिभर्त्तीति। इन्दु+भृ+क्विप्।) शिवः। इति हेमचन्द्रः॥

इन्दुमती, स्त्री, (इन्दुः पूर्णेन्दुर्विद्यते यस्याः। इन्दु+मतुप्।) पूर्णिमा। इति राजनिर्घण्टः॥ (इन्दुमती पूर्णिमेव आनन्ददायिका स्वनामख्याता विदर्भराजभगिनी, अजराजपत्नी। यथा,—रघुः।

"अथेश्वरेण क्रथकैशिकानां
स्वयंवरार्थं स्वसुरिन्दुमत्याः"। ५।३९।
"वसुधामपि हस्तगामिनी-
मकरोदिन्दुमतीमिवापराम्" ।८।१।)

इन्दुरत्न, क्ली, (इन्दुरिव शुभ्रं रत्नम्।) मुक्ता। इति राजनिर्घण्टः॥

इन्दुलेखा, स्त्री, (इन्दोश्चन्द्रस्य लेखेव।) अमृता। सोमलता। शशिकला। इति मेदिनी। यमानिका इति शब्दमाला॥

इन्दुलोहक, क्ली, (इन्दुलोह+कन्।) रौप्यं। इति राजनिर्घण्टः।

इन्दुवल्ली, स्त्री, (इन्दोर्वल्ली लता।) सोमलता। इति जटाधरः॥ (सोमलताशब्देऽस्या गुणादयो व्याख्येयाः॥)

इन्दुव्रत, क्ली, (इन्दवे इन्दुलोकार्थं वा व्रतं।) चान्द्रायणव्रतं। इति त्रिकाण्डशेषः॥ (यथा, महाभारते॥)

("इन्दुव्रतसहस्रं तु यश्चरेत् कायशोधनम्।
पिबेत् यश्चापि गङ्गाम्भः समौ स्यातां न वा समौ")

इन्दूरः, पुं, मूषिकः। इति जटाधरः। इंदुर इति भाषा॥ (गणेशवाहनं। इति पुराणम्।)

इन्द्र, पु, (इन्दतीति। इदि परमैश्वर्य्ये तस्मात् रन् प्रत्ययः।) देवराजः। स तु अदितिपुत्रः। पूर्व्वदिक्पतिश्च। तस्य भार्य्या शची। पुत्रा जयन्तः १ ऋषभः २ मीढ्वांश्च ३। अस्त्रं वज्रं। वाहनं ऐरावतः। पुरी अमरावती। वनं नन्दनं। तत्पर्य्यायः। मरुत्वान् २ मघवा ३ बिडौजाः ४ पाकशासनः ५ वृद्धश्रवाः ६ सुनासीरः ७ पुरुहूतः ८ पुरन्दरः ९ जिष्णुः १० लेखर्षभः ११ शक्रः १२ शतमन्युः १३ दिवस्पतिः १४ सुत्रामा १५ गोत्रभित् १६ वज्री १७ वासवः १८ वृत्रहा १९ वृषा २० वास्तोष्पतिः २१ सुरपतिः २२ बलारातिः २३ शचीपतिः २४ जम्भभेदी २५ हरिहयः २६ स्वाराट् २७ नमुचिसूदनः २८ सङ्क्रन्दनः २९ दुश्च्यवनः ३० तुराषाट् ३१ मेघवाहनः ३२ आखण्डलः ३३ सहस्राक्षः ३४ ऋभुक्षाः ३५। इत्यमरः। महेन्द्रः ३६ कौशिकः ३७ पूतक्रतुः ३८ विश्वम्भरः ३९ हरिः ४० पुरदंशाः ४१ शतधृतिः ४२ पृतनाषाड् ४३ अहिद्विषः ४४। इति जटाधरः॥ वज्रपाणिः ४५ देवराजः ४६ पर्व्वतारिः ४७ पर्य्यण्यः ४८ देवताधिपः ४९ नाकनाथः ५० पूर्व्वदिक्पतिः ५१ पुलोमारिः ५२ अर्हः ५३ प्राचीनबर्हिः ५४ तपस्तक्षः ५५। इति शब्दरत्नावली। तस्य चतुर्द्दश नाम भेदा यथा।

"इन्द्रश्च विश्वभुग् ज्ञेयो विपश्चित्तदनन्तरम्।
विभुः प्रभुः शिखिश्चैव तथैव च मनोजवः।
तेजस्वी साम्प्रतस्त्विन्द्रो बलिर्भाव्यस्त्वनन्तरम्॥
अद्भुतस्त्रिदिवश्चैव दशमस्त्विन्द्र उच्यते।
सुशान्तिश्च सुकीर्त्तिश्च ऋतधाता दिवस्पतिः।
इति भूता भविष्याश्च इन्द्रा ज्ञेयाश्चतुर्द्दश"॥
इति देवीपुराणे कालव्यवस्थाध्यायः।

विष्कुम्भादिसप्तविंशतियोगान्तर्गतषड्विंशयोगः। तत्र जातफलम्।

"प्रतापशीलो बलवान् गुणाढ्यः
स्नेहाधिकः श्रीकमलाभ्युपेतः।
किलेन्द्रयोगो यदि जन्मकाले
महेन्द्रतुल्यः पुरुषः प्रसन्नः"।

इति कोष्ठीप्रदीपः॥ *॥ अन्तरात्मा। आदित्यविशेषः। इति मेदिनी (यथा, हरिवंशे।
"तत्र शक्रश्च विष्णुश्च जज्ञाते पुनरेव हि"।)
कुटजवृक्षः। रात्रिः। इति धरणी॥ उपद्वीपविशेषः। इति शब्दमाला॥ परमेश्वरः। इति वेदान्तः॥ ("इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" इति श्रुतिः॥ इन्द्रियं। श्रेष्ठः। प्रथमः। यथा, नरेन्द्रो राजा। पक्षीन्द्रो गरुडः। इत्यादिः।)

इन्द्रक, क्ली, (इन्द्रस्य ऐश्वर्य्यशालिनः कं सुखं यस्मिन्।) सभागृहम्। तत्पर्य्यायः। आस्थानगृहं २। इति हेमचन्द्रः॥

इन्द्रकील, पु, (इन्द्रस्य कील इव।) मन्दरपर्व्वत। इति हेमचन्द्रः॥ (यथा रामायणे ३।८०।१८।
"तत्रेन्द्रकीलप्रतिमा प्रतोलिवरशोभिता।)

इन्द्रकुञ्जर, पु, (इन्द्रस्य कुञ्जरः।) ऐरावतहस्ती। इति जटाधरः॥

इन्द्रकोष, पु, (इन्द्रस्य ऐश्वर्य्यशालिनः कोष। मञ्चः। खट्वा। इति त्रिकाण्डशेषः॥ तमङ्ग इति हेमचन्द्रः। घोटकला गोञ्जला इत्यादिख्यात निर्यूहोऽपि। यथा, महेश्वरः।
"निर्यूहः शेखरे द्वारे निर्य्यासे नागदन्तके"।

इन्द्रगोप, पु, (इन्द्रो गोपो रक्षको यस्य।) रक्तवर्ण कीटविशेषः। मखमली इति भाषा। तत्पर्य्याय अग्निरजः २ वैराटः ३ तितिभः ४ अग्निकः ५ इति हेमचन्द्रः। शक्रगोपः ६ वर्षाभूः ७ रक्तवर्णः इति राजनिर्घण्टः॥ ("अविरलवितरेवष्टी गोपैः"। इति किराते। १९।३।)

इन्द्रचन्दन, क्ली, (इन्द्रस्य चन्दनं वृक्षविशेष हरिचन्दनम्। इति राजनिर्घण्टः॥

इन्द्रचिर्भिटी, स्त्री, लताविशेषः। तत्पर्य्यायः। इन्द्र वरा २ युग्मफला ३ दीर्घवृन्ता ४ उत्तमारणी पुष्पमञ्जरिका ६ शोणी ७ करभा ८ नलिका ९ अस्या गुणाः। कटुत्वं। शीतत्वं। पित्तश्लेष्मकास दोषप्रशमनमिनाशित्वं। चक्षुर्हितकारित्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः॥

इन्द्रच्छन्द, [स्] स्त्री, (इन्द्र इव सहस्रगुच्छेन छाद्य इति। इन्द्र+छद्+असुन्। निपातनात् सिद्ध सहस्रगुच्छहारः। इति हेमचन्द्रः॥

इन्द्रजाल, क्ली, (इन्द्राणामिन्द्रियाणां जालं आव रकम्। यद्वा इन्द्रस्य परमेश्वरस्य जालं माय इव।) मायाकर्म्म। भोजबाजि, भेल्कि इत्या भाषा। तत्पर्य्यायः। कुहकः २ जालं ३ कुहृति ४ तद्विवरणमग्र्यो यथा,—

"अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चेन्द्रजालमनुत्तमम्।
व्याधिदारिद्र्यहरणं जरामृत्युविनाशनम्॥
इन्द्रस्य यो न जानाति जालेशं रुद्रभाषितम्।
निग्रहानुग्रहे तस्य का शक्तिः परमेश्वरि।॥
न तेषां जायते सिद्धिर्गोत्रे क्षेत्रे स्थलेऽपि वा।
इन्द्रजालं न जानाति स क्रुद्धः किं करिष्यति।
न जीवति वरारोहे संसारे दुःखसागरे।
इन्द्रजालं न जानाति कुतः सौख्यं भवेत्तत॥
कौतूहलं कुतस्तेषां कुतः कामा वरानने।।
संसारसागरे घोरे कामलुब्धाश्च मानवाः।
रुद्रकर्म्म न हि तेषां कुतः सौख्यं विधीयते॥
यथा नदीनदाः सर्व्वे सागरे समुपागताः।
तथा सर्व्वाणि शास्त्राणि इन्द्रजालस्थितानि च॥
तन्त्राणाञ्च यथा भानुः शीतलानां यथा शशी।
गम्भीराणां यथा सिन्धुर्जालेन्द्रश्च तथा प्रिये।।
तथा किं बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनः पुनः।
जालेन्द्रस्य समं शास्त्रं न भूतं न भविष्यति"॥"
"अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ओषधीनां विधिं वरे।
येन विज्ञानमात्रेण सर्व्वसिद्धिर्भविष्यति॥
महाकालस्य बीजानि प्रथमेकं समाहरेत्।

धात्रीरसेन देवेशि । सप्त वारान् विभावयेत्” ॥ गुटिका कर्त्तव्या तां गुटिकां मुखे निक्षिप्य पारावतो भवति ॥ १ ॥ “अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शृणु त्वं मम वल्लभे । छागस्य शीर्षं सङ्गृह्य कृष्णमृत्तिका पूरयित्वा पुनर्धुस्तूरवीजानि वापयेत् काले तानि पुष्पितानि भवन्ति तदा यस्योपरि निक्षिपेत् स छागो भवति ॥ २ ॥ मयूरशीर्षमादाय कृष्णचतुर्दश्यां मृत्तिकां पूरयेत् शणवीजानि वापयेत् यदा फलितो पुष्पितो भवति तदा शणवीजानि ग्रीवायां बन्धयेत् तेन मयूरो भवेत् ॥ ३ ॥ कृष्णचतुर्दश्यां मयूरशीर्षमादाय कृष्णमृत्तिका पूरयेत् कार्पासवीजानि वापयेत् यदा फलिता पुष्पिता भवन्ति पुष्पफले सङ्गृह्य समस्तं पेषयित्वा अङ्गं विलिप्य पानीयमध्ये प्रविश्य तथा जले तिष्ठेत् यथा स्थले ॥ ४ ॥ कृष्णा काक-शीर्षमादाय काकमाचीवीजानि वापयेत् यदा फलिता पुष्पिता भवन्ति तत्फलं सङ्गृह्य मुखे प्रक्षिप्य काको भवति काक इव गच्छति मङ्क्षा उद्गीर्णे मोक्षः ॥ ५ ॥ पारावतशीर्षमादाय कृष्णमृत्तिका पूरयित्वा तिलवीजानि वापयेत् क्षीरोदकेन सिञ्चनीयं यदा पुष्पिता भवन्ति तदा मुखे संस्थाप्य अन्तर्हितो भवेत् ॥ ६ ॥ तेषां फलानां चूर्णं कृत्वा तेन चूर्णेन यं स्पृशति स किङ्करो भवेत् सर्व्वस्वं ददाति ॥ ७ ॥ तानि तिलानि सङ्गृह्य नेत्राञ्जनेन सह पिष्ट्वा कपिलादुग्धेन गुटिकां कारयेत् । सप्तरात्रं पाचयेत् । तां गुटिकां मुखे निक्षिप्य अन्तर्हितो भवति देवैरपि न दृश्यते मनुष्याणां का कथा । उद्गीर्णेन पुरुषो भवति । शीर्षेदर्शनात् स्त्रियः सर्व्वे जनाश्च वश्या भवन्ति ॥ ८ ॥ गृध्रशिरः समादाय कृष्णचतुर्दश्यां कृष्णमृत्तिका निक्षिपेत् लशुनवीजानि वापयेत् यदा फलं पुष्पं भवति तदा पुष्यनक्षत्रे पुष्पं गृहीत्वा अञ्जनेन सह कपिलाघृतेन कज्जलं पातयेत् चक्षुरञ्जनीयं तावत् योजनशतं पश्यति मेदिन्यां दिवा नक्षत्राण्यपि पश्यति लाभस्तस्य । किञ्चित् कर्त्तुमिच्छति तत् करोति न संशयः ॥ ९ ॥ अन्ये च सर्व्वे जीवा एव उष्ट्रगर्द्दभमहिष्यादिवघुरछञ्जीवाः । यत् यत् वीजं यस्य शिरसि वापयेत् यदा पुष्पितः फलितो भवति तदा यस्य वीजानि मुखे निक्षिप्यन्ते स जीवो भवति नात्र सन्देहः ॥ १० ॥ * ॥ अथ सर्व्वेषां धारणमन्त्रः । ॐ क्रीं क्रीं क्रें ऐं लं लं ॐ मौ स्वाहा । एकादशाक्षरो मनुरस्य पुरश्चरणं लक्षजपः । दशांशहोमः घृतेन तर्पणं मार्ज्जनं ब्राह्मणभोजनादिकं कारयित्वा सिद्धिर्भवति ॥ * ॥

अथ वश्याधिकारः ।

“मातुलुङ्गस्य मूलन्तु धुस्तूरवीजकेन च ।
पलाशपुष्पमादाय सूक्ष्मचूर्णन्तु कारयेत् ॥
योऽस्य गन्धं समाघ्राति स च स्नेहेन पश्यति ।
दुन्दुभिं पटहांश्चैव शङ्खांश्चैव तु लेपयेत् ॥
एष भूतोपसृष्टानां कुमारीणां स्त्रियां च ।
श्रूयते सेव्यमानानां तथापत्यापजीविनां ॥
न चाभिदंशते येन यत्रैव सोऽगदो भवेत्” ।

अत्र मन्त्रः ।
ॐ “रक्तचामुण्डे अमुकं मे वशमानय क्रीं क्रीं हूं फट् । अयुतं जप्तव्यम् । ॐ नमोऽस्तु आदित्याय किलि किलि चिलि चिलि धूम लिहि यक्षिणि मोदते ह्रि शाकिनि अनिरुद्धशूलपाणि स्वाहा ॥ वर्णाः ४० शिलाकृतिके मन्त्रे । ॐ नमो गुह्यवासिन्यै गुह्यपति गुह्यिले मनोजवो ॐ ए ॐ विञ्चे नमः । शिलायां कृतिं करलिखितां खदिरानलसन्तप्तलिङ्गां यतो नवयोषितोऽपि आकर्षणं । वर्णाः २६ । ॐ नमः कपालरुद्राय सर्व्वलोकवशङ्कराय अनाथायाप्रतिहतबलवीर्य्यपराक्रमप्रभवाय हा हा हे हे पच पच मारय मारय कपट कपट क्राट सर्पं कर्म्मकरि अमुकं मे वशमानय स्वाहा । ७७ । वर्णाः अयुतजपाद्वशीकरोति ॥ * ॥ अन्यप्रकारः ।

“पारावतस्य हृदयं चक्षुर्जिह्वा च शोणितम् ।
अञ्जनं रोचनयुतं वनितावशकृत् परम्” ॥

तत्र मन्त्रः । ॐ नय नय महारिणि नमो देव्यै स्वाहा ॥ १५ ॥ एकविंशतिवारान् परिजप्य सिद्धिर्भवति ॥ * ॥ अन्यप्रकारः ।

“कपालं मानुषं गृह्य कनकस्य फलानि च ।
कर्पूरं मधुसंयुक्तं निघृष्य तिलकेन च ॥
नारी वा पुरुषोऽनेन वश्यो भवति नित्यशः ।
एष कापालिको योगो वशिष्ठस्य शुभं मतम्” ॥ * ॥

अन्यप्रकारः । पुरुषार्थी ।

“कर्पूरं वालुकं लाक्षा रजसा सप्तभावितं ।
रतिकाले भगं लिप्य पतिर्दासो भविष्यति” ॥ * ॥

अन्यप्रकारः ।

“नरजिह्वां समुद्धृत्य सूक्ष्मचूर्णन्तु कारयेत् ।
जलेन च सुशीतेन दापयेत् तद्विचक्षणः ॥
पाने फले च पुष्पे च भक्ष्ये भोज्ये च दापयेत् ।
प्रजापतिकुलोद्भूता यदि साक्षादरुन्धती ॥
साभिसक्ता प्रियं याति नान्यं पुरुषमिच्छति” ॥ * ॥

अन्यप्रकारः ।

“कनकश्चाप्यपामार्गं सुरसा गौरसर्षपाः ।
तिलतैलेन पिष्टापि योनिलेपः प्रशस्यते” ॥

अत्र मन्त्रः । ॐ नमः शय्यायै दरि विदरि यामिनि अमुकं मे वशमानय स्वाहा ॥ * ॥ अन्यप्रकारः । हरितालं श्मशाने कृष्णचतुर्दश्यां क्षिप्तं कुष्ठविमिश्रं ग्राह्यं अवश्यं वशी भवेत् स नरः ॥ * ॥ अन्यप्रकारः । ऋतुनवलोचनतालालजटास्थिवाणसाधितं तैलं सकलमनुजेन्द्रललनावशङ्करं मकरालये पुष्ये । नरतैलं प्रेताम्बरवर्त्तिकं कृत्वा माघे रात्रौ प्रज्वाल्यार्करक्षस्कन्धे कज्जलं कृत्वा चक्षुषी अभ्यञ्जयेत् यं पश्यति स वश्यो भवति ॥ * ॥ अन्यप्रकारः ।

“कर्णदन्तमलं लाला स्वदेहाक्षिमलत्रयम् ।
नासिकोद्भवरक्तञ्च चूर्णमेवद्दलायुतम् ॥
एतत् सर्व्वं समुद्धृत्य गुटिकां कारयेद्बुधः ।
पानभोजनके देया वशीकरणमुत्तमम्” ॥ * ॥

अन्यप्रकारः ।

काकजिह्वा वचा कुष्ठं आत्मनो रुधिरं स्त्रियः ।
तद्भावितञ्च मञ्जिष्ठा तगरं गौरसर्षपाः ॥
शिवनिर्माल्यसंयुक्तं समभागानि कारयेत् ।
भोज्ये पानेऽथवा देया स्त्रीणान्तु वशकारका ॥
नित्यं पुरुषमिच्छन्ती मृतमप्यनुगच्छति ॥ * ॥

अन्यप्रकारः । कृष्णसर्पमष्टाङ्गुलप्रमाणं शिरश्छित्वास्यास्य सर्षपादिभिः पूरयित्वा छायायां शुष्कं शोषयेत् । परतः सर्षपान् ग्राहयित्वा तानि यस्मै दीयते स वश्यो भवति ॥ * ॥ अन्यप्रकारः ॥ पूगीफलं निर्गिलित्वापानमार्गे निर्गतं गृह्य धुस्तूररसान्तरितं कृत्वा सप्तदिनानि पूजयेत् ॥ पुनः कुङ्कुमचन्दनैरधिभाव्य यस्मै दीयते स वश्यो भवति ॥ * ॥ अन्यप्रकारः ।

“दर्दुरयुग्मं गृहीत्वा तद्धूमेन दाहयेत् ।
तद्भस्म सह पानेन वश्यकृत् परमो मतः” ॥ * ॥

अन्यप्रकारः ।

“अजगन्धस्य पत्राणि वचा कुष्ठेन भावयेत् ।
श्मशानभस्मसंयुक्तं चूर्णञ्चेत्त्रिषु दुर्लभम् ॥
अनेनैव तु चूर्णेन जोटयेत् निम्ब पादपम् ।
पुष्पितं फलितं दृष्ट्वा चूर्णं वृक्षादिलमयेत् ।
तत्क्षणात् फलते वृक्षो नरनारीषु का कथा ॥ * ॥

अन्यप्रकारः ।

“जिह्वामूले सप्तरात्रं सैन्धवेनापि मिश्रितम् ।
ददाति यस्य पानेषु सोऽपि वश्यो भवेत् क्षणात्” ॥ * ॥

अन्यप्रकारः ।

“गोपित्तं सैन्धवञ्चैव वृहतीफलमेव च ।
लेपमेतत् प्रयोक्तव्यं नरनारीवशङ्करम्” ॥ * ॥

अन्यप्रकारः ।

“लालामूलं चूर्णयित्वा रक्तरेतःसमन्वितं ।
दद्यात् पानेन प्रमदा क्षिप्रमेव वशं नयेत् ॥
पुत्रादिञ्च धनं त्यक्त्वा दासीवत् भवति तु सा ।
यत्र वा नीयते तत्र पश्चात् भ्रमति विह्वला” ॥ * ॥

अन्यप्रकारः । वल्मीकमृत्तिकायाः प्रतिकृतिं कृत्वा क्षीरेण स्नाप्य आज्येन वा अभ्यज्य तस्य ललाटाकृतिमेकविंशतिवारं जुहुयात् त्रिरात्रेण वश्यो भवति सप्तरात्रेणाथवा । देवीञ्च गान्धारीं यक्षिणीं शक्रस्यापि पत्नीं वशमानयति ॥ * ॥ अन्यप्रकारः ।

“उद्गात् पक्षिणो मलमात्मनो रुधिरान्वितम् ।
स्त्रीपुंसयोः प्रदातव्यं वशीकरणमुत्तमम्” ॥

अत्र मन्त्रः । त्रिशूलिने त्रिनेत्राय हिलि हिलि स्वाहा । वर्णाः १४ । सप्तजप्तेन सिद्धिः ॥ * ॥

अन्यप्रकारः ।

“कृष्णपक्षचतुर्दश्यां मृतभस्म तु ग्राहयेत् ।
स्त्रीणाञ्च मूर्द्ध्नि दातव्यं विद्यया परिजप्तया ॥
दह्यते मुह्यते नारी पच्यते शुष्यतेऽपि च ।
अङ्गानि चैव भज्यन्ते यदि तं न समाविशेत्” ॥

अत्र मन्त्रः । ॐ नमश्चामुण्डे श्मशानवासिनि स्वाहा । वर्णाः । १४ । सप्तरात्रेण प्रेरकः ॥ * ॥

अन्यप्रकारः ।

“श्वेतार्कं रोचनायुक्तं आत्ममूत्रेण पेषयेत् ।
ललाटे तिलकं कृत्वा त्रैलोक्यं क्षोभयेत् क्षणात् ।
दृष्टमात्रेण तेनैव सर्व्वा भवति किङ्करः” ॥ * ॥

अन्यप्रकारः ।

"श्वेतार्कं चन्दनेनैव रमयेत् सह सेमयेत् ।
दीयते कस्यचिद्दामि पश्चाद्दासी भविष्यति ॥ * ॥

अथ पतिवशीकरणम् ।

"मधुक सह तैलेन सार्षपेण तु पेषयेत् ।
एतेन पाणिमभ्यज्य भर्त्ता सा सहिता स्वपेत् ॥
सप्तसे मैथुनीभावे पतिर्दासो भविष्यति" ॥ * ॥
अन्यच्च ।

"मन शिलाकुङ्कुमसर्षपाश्च
तथा च कुष्ठ सहदेवदारु ।
रक्तश्च रक्ता पत्रितेन सार्द्धम्
प्रपेषयेत् सूक्ष्मतरं महान्तम् ॥
प्रस्नातपूर्व्वाभिमुखोऽपि भूत्वा
सस्मृत्य लक्ष्मीश्वरकेण पूज्य ।
तत प्रकुर्य्यात् तिलकं ललाटे
वामाच्च हस्ताचतुरङ्गुलीभि ॥
पुष्टत्यमात्रेण भवेत् स कान्ता-
दासातिदासश्च किमत्र चित्रम्" ॥ * ॥

अथ लिङ्गलेपाधिकार ।

"वृहतीफलमूलानि पिप्पली मरिचानि च ।
भया रोचनया सार्द्धं लिङ्गलेपोत्तमो मतः ॥
नि शेषस्त्रीजनार्थं नाम्ना स्त्रीहृदयाङ्कुशम् ।
मोहन शस्त्रमेतद्धि मदनस्य स्मृत बुधै" ॥ * ॥
अन्यच्च ।
"कुष्ठच्च धातकीपुष्प मरिचानि वचा तथा ।
अनेन लिङ्गमालिप्य कान्तां श्यामा वशं नयेत् ॥
तासाञ्चित्तहरोऽप्येष मृतमप्यनुगच्छति ।
विवशा भक्तिभावेन पश्चात् सर्व्वं प्रयच्छति" ॥ * ॥
अन्यच्च ।
"पञ्चरत्नानि सगृह्य शुभानि च यथेच्छया ।
सर्व्वाणि समभागानि प्रियङ्गुश्चापि तत्समम् ॥
नागर दशभागेन लेप कान्तावशङ्कर" ॥ * ॥
अन्यच्च ।
"देवदारु वचा कुष्ठ चतुर्थं वैश्वभेषज ।
आम्रवीजसंयुक्त गौरीश्यामावशङ्करम्" ॥ * ॥
अन्यच्च ।
"हरिद्रा वृहतीमूल भद्रमुस्त तथोत्पलम् ।
विडङ्ग कृष्णा वेण्व समभागानि कारयेत् ॥
लिङ्गलेपोत्तमो ह्येष रक्ताच्छीवशङ्कर" ॥ * ॥
अन्यच्च ।
"हरिद्रा पिप्पलीमूल पद्म मधुकमेव च ।
एतानि समभागानि नवनीतेन पेषयेत् ॥
लिङ्गलेपोत्तमो ह्येष गौरीप्रीतायं शाङ्करः" ॥ * ॥
"कौशिकशोणितलेपात् सेचनाद्वा पुष्ट भवेल्लिङ्ग ।
तदग्रान्तेऽस्थसम्भमय कीलकसदृश भवेच्च ॥
कौशिक रुधिरं गृह्य गोमूत्रेण च पेषयेत् ।
वीर्य्यं हि स्तम्भयेन्नित्य प्रहरार्द्धं न संशयः" ॥ * ॥
सर्व्वसाधारणो मन्त्र । ॐ ए ह्रीं क्लीं श्रीं फट् स्वाहा । अनेन मन्त्रेण सर्व्वयोगानभिमन्त्र्य सिद्धि" । इति श्रीपार्व्वतीपुत्रश्रीनित्यनाथविरचिते सिद्धखण्डे तन्त्रसारे कौतूहलविद्यानाम इन्द्रजालतन्त्रम् ॥ * ॥ पुस्तकत्रयमालोच्य यथासाध्य शोधितमेतत् ॥ * ॥ * ॥ अपिच । ईश्वर उवाच ।

इन्द्र

"इन्द्रजालं विना रक्षां न करोतीति निश्चितम् ।
रक्षामन्त्र महामन्त्र सर्व्वसिद्धिप्रदायकम्" ॥
"ॐ नमो नारायणाय विश्वम्भराय इन्द्रजालकौतुकानि दर्शय दर्शय सिद्धि कुरु कुरु स्वाहा" अष्टोत्तरशतजपेन सिद्धिः ॥ * ॥ अथ रक्षामन्त्रः ।
"ॐ नमः परब्रह्मपरमात्मने मम शरीरे पाहि पाहि कुरु कुरु" ॥
"उलूकस्य कपालेन घृतेनाहृतकज्जल ।
तेन नेत्राञ्जन कृत्वा रात्रौ पठति पुस्तकम् ॥ १ ॥
अङ्कोलवीजनिक्षिप्ते गुरुवारे मुखे गले ।
मन्त्रेण सिञ्चयेन्नित्य यावद्वीजफल च वै ॥
तिलोत्थैर्वेष्टित कृत्वा एकवीज मुखे स्थितम् ।
मत्तमातङ्गवीर्य्यन्तु वायुतुल्यपराक्रम ॥
दशशैलमिवोत्पाटन्नाम योजन रूप्यमागकम् ।
एव सख्या त्रिलोही च ज्ञातव्या सर्व्वकर्म्मणि ॥२॥
यानि कानि च वीजानि अङ्कम स्थलमेव च ।
अङ्कोलवीजनिक्षिप्ते मुखे भूमितले ध्रुवम् ॥
तद्वीजं मुखमध्यस्थ त्रिलोहैर्वेष्टित कुरु ।
तद्रूपो हि भवेत्कर्म्मा नान्यथा शङ्करोदितम् ॥३॥
यानि कानि च वीजानि अङ्कोलतैलमेलनात् ।
सफलो जायते वृक्ष सिद्धियोगमदाहृतम् ॥ ४ ॥
शवमुखे विन्दुमात्र तत्तैल निःक्षिपेद्यदि ।
एकयाम भवेत् जीवो नान्यथा शङ्करोदितम् ॥५॥
शिशुवीजस्थित तैल पारावतपुरीषकम् ।
वराहस्य वसायुक्त गृहीत्वा च सम समम् ॥
गर्दभस्य वसायुक्त हरिताल मन शिला ।
एभिस्तु तिलक कृत्वा यथा लङ्केश्वरो नृप ॥ ६ ॥
उलूकविष्ठा गृहीत्वा तु एरण्डतैलपेषणात् ।
यस्याङ्गे निक्षिपेत् विन्दु स क्षिप्तो जायते ध्रुवम् ॥७॥
सर्पदन्त गृहीत्वा तु कृष्णवृश्चिककण्टकम् ।
कृकलासरक्तसंयुक्त सूक्ष्मचूर्णन्तु कारयेत् ॥
यस्याङ्गे निक्षिपेच्चूर्णं सद्यो याति यमालयम् ॥ ८ ॥
सिन्दुर गन्धक ताम्र सम पिष्टा मन शिलाम् ।
तल्लिप्तवस्त्र शिरसि अग्निवत् दृश्यते ध्रुवम् ॥ ९ ॥
अर्कक्षीर वटक्षीर क्षीर डुम्बरसम्भवम् ।
गृहीत्वा पात्रके लिप्ते जलपूर्णं करोति च ।
दुग्ध सञ्जायते तत्र महाकौतुककौतुकम् ॥१०॥
अङ्कोलतैलजिह्वाङ्को दृश्यते राक्षसाकृति ।
पलायन्ते नरा सर्व्वे पशुपक्षिगजादयः ॥११॥
अङ्कोलस्य तु तैलेन दीप प्रज्वालयेन्नरः ।
रात्रौ पश्यति भूतानि खेचराणि महीतले ॥१२॥
बुधे वा शनिवारे वा कृकलास परिगृह्य च ।
शवमूत्रयते यत्र कृकलास तत्र निःक्षिपेत् ॥
निखनेद्भूमिमध्ये तु उद्धृते च पुनः सुखी ।
नपुंसक भवेत् सत्य नान्यथा शङ्करोदितम् ॥१३॥
गन्धक हरितालश्च गोमूत्रश्च विष तथा ।
सूक्ष्मचूर्णमय कृत्वा किञ्चिदग्नि विनिक्षिपेत् ॥
विघ्नाः सर्व्वे पलायन्ते यथा युद्धेषु कातराः ॥१४॥
इति दत्तात्रेयतन्त्रे ईश्वरदत्तात्रेयसवादे इन्द्रजालकौतुकदर्शन नाम एकादशः पटल ॥ * ॥ * ॥
अन्यच्च ।
"वश्याकर्षणकर्म्माणि वसन्ते योजयेत् प्रिये ।

इन्द्र

ग्रीष्मे विद्वेषण कुर्य्यात् प्रावृषि स्तम्भनं तथा ।
शिशिरे मारणञ्चैव शान्तिक शरदि स्मृतम् ।
हेमन्ते पौष्टिकमासाद्य ऋतुकर्म्मविशारद ।
वसन्तश्चैव पूर्व्वाह्ने ग्रीष्मो मध्याह्न उच्यते ।
वर्षा ज्ञेयापराह्णे तु प्रदोषे शिशिरः स्मृत ।
अर्द्धरात्रे च हेमन्तः शरद तत्पर स्मृतम्" ॥ * ॥

अथ पक्षादिनिर्णय ।

"कृष्णपक्षे मारणादि शुक्लपक्षे च वर्द्धनम् ।
द्वादश्यां मारण कर्म्म एकादश्यां तथैव च ।
तृतीयां नवमीञ्चैव वश्याकर्षे कारयेत् ।
स्तम्भनञ्च चतुर्दश्यां चतुर्थ्यां प्रतिपद्यपि ॥
द्वितीयां षष्ठीमष्टम्यां कारयेत् शान्तिकर्म्म च ।
अश्विनीमृगमूलाश्च पुष्या पुनर्व्वसुस्तथा ॥
वश्याकर्षे कर्त्तव्य कारयेच्च सदा बुध ।
ज्येष्ठा च उत्तराषाढा अनुराधा च रोहिणी ।
कारयेन्मारणं शान्ति स्तम्भन विजय तथा ।
विधिमन्त्रसमायुक्तमौषध सफल भवेत्" ॥ * ॥

अथ वशीकरणम् ।

"सिन्दूरमाक्षिककपोतमलानि पिष्ट्वा
लिङ्ग विलिप्य रमते तरुणीं नवोढां ।
शान्तिं न याति पुरुषो मनसापि नून
दासी भवेदिति मनोहरदिव्यमूर्त्तिं ॥
पुष्ये रुद्रजटामूल मुखस्य कारयेद्बुध ।
ताम्बूलादौ प्रदातव्य वश्या भवति निश्चितम् ॥
तथैव पाटलीमूल ताम्बूलेन तु वश्यकृत् ।
नागपुष्प प्रियङ्गुश्च तगर पद्मकेशरम् ॥
जटामांसी सम नीत्वा चूर्णयेत् मन्त्रवित्तम ।
साङ्ग धूपयते तेन भजते कामवत् स्त्रिय" ॥
ॐ मूली मूली महामूली सर्व्वं सक्षोभमयेभ्य उपद्रवेभ्यः स्वाहा । धूपमन्त्र ॥
"पानीयस्याञ्जलीन् सप्त दत्त्वा विद्यामिमा जपेत् ।
सालङ्कारां नवां कन्यां लभते मासमात्रत ॥
ॐ विश्वावसुर्नाम गन्धर्व्वः कन्यानामधिपति सुरूपां सालङ्कारा देहि मे नमस्तस्मै विश्वावसवे स्वाहा ।
"कन्यागृहे शालकाष्ठ क्षिपेदेकादशाङ्गुलम् ।
कृत्ते च पूर्व्वफल्गुन्यां यस्तां कन्यां प्रयच्छति ॥ * ॥

अथ सर्व्वजनवशीकरणम् ।

"शिला च रोचनामूल वारिणा तिलकं कृते ।
दृष्टमात्रे वश याति नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥
सर्पेण वेष्टन कृत्वा तेनैव तिलके कृते ।
सम्भाषणेन सर्व्वेषां त्रैलोक्य वशमानयेत्" ॥
ॐ ह्रीं क्लीं ऐं ह्रीं भोगप्रदा भैरवी मातङ्गी त्रैलोक्य वशमानय स्वाहा । औषधोपरि सहस्रजप कुर्य्यात् । पुनः सप्तवारजपेन तिलक कारयेत् शक्रसमोऽपि वश्यो भवति । इति कालनाथविरचिते इन्द्रजाले १ अध्यायः ॥ * ॥
अथाकर्षणम् । ॐ क्ली चामुण्डे ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा । अनेन मन्त्रेण स्त्रियं दृष्ट्वा जप कुर्य्यात् तत्कृत्यात् एतत समागच्छति । पूर्व्वमेवायुतजपेन सिद्धिः ॥
"अङ्गोशायां समादाय अर्ज्जुनस्य च भ्रमरकम् ।
कमलमूलेन सपिष्य स्त्रीणां शिरसि दापयेत् ॥

पुरुषस्य पशूना वा क्षिपेदाकर्षणं भवेत्” ॥ * ॥
अथ जय ।
“गोजिह्वा शिखिमूल वा मुखे शिरसि संस्थिता ।
कुरुते सर्व्ववादेषु जय पुष्ये समुद्धृते ॥
मार्गशीर्षपौर्णमास्या शिखिमूल समुद्धरेत् ।
बाहौ शिरसि वा धार्य्यं विवादे विजयो भवेत् ॥
गिरिकर्णी शमी गुञ्जा श्वेतवर्णा समाहरेत् ।
चन्दनेनान्वितस्तैव तिलकेन जयी नर ॥
कृष्णार्कवटावल्लिर्विद्रुम पञ्चमस्तथा ।
तिलक कुरुते यस्तु पश्येत्त पञ्चधा रिपु ॥
आर्द्रायां वटवन्दाकं गृहीत्वा धारयेत् करे ।
सङ्ग्रामे जयमाप्नोति जया स्मृत्वा जयी भवेत्” ॥
अस्य मन्त्रः । ॐ नमो महाबलपराक्रम समस्त-
विद्याविशारद अमुकस्य भूजबल बन्धय बन्धय
दृष्टि स्तम्भय स्तम्भय अङ्गानि धूनय धूनय पातय
पातय महीतले क्रीं ॥ * ॥ अथ सौभाग्यम् ।
“पुष्योद्धृतं सितार्कस्य मूल वामेतरे भुजे ।
बद्धा सौभाग्यमाप्नोति दुर्भगापि न संशय ॥
रक्तचित्रार्कमूलन्तु सोमग्रस्ते समुद्धृत ।
क्षौद्रैः पिष्ट्वा वटीं कुर्य्यात् तिलक शुभमङ्गना” ॥ * ॥
अथ ईश्वरादिक्रोधोपशमन । ॐ शान्ते प्रशान्ते
सर्व्वक्रोधोपशमनि स्वाहा ।
अनेन मन्त्रेण त्रिःसप्तधा जपेन मुख मार्जयेत् ।
तत क्रोधोपशमन भवति” ॥ * ॥ गजनिवारणम् ।
“श्वेतापराजितामूल हस्तस्थं वारयेत् गजम् ।
मूल त्रिमूल्या वक्त्रस्थ गजवशकरं भवेत्” ॥ * ॥
व्याघ्रनिवारण ।
“मुखस्थ वृहतीमूलं हस्तस्थ व्याघ्रभीतिजित्” ।
क्रीं क्रीं क्रीं श्रीं श्रीं श्रीं स्वाहा ।
इत्यष्टाक्षरमन्त्रेण लोष्ट्रं पठित्वा क्षिपेत् ।
तदा मुखं न चालयति गन्तुमशक्य ॥
“मूल कृष्णचतुर्दश्या ग्राहयेल्लाङ्गलीभवम् ।
हस्तस्थ व्याघ्रभीतादिभयहृत् परिकीर्त्तितम्” ॥
इति इन्द्रजालतन्त्रे ३ उपदेश ॥ * ॥ अथ स्तम्भनम् ।
“श्वेतगुञ्जोत्थित मूलं मुखस्थं दृष्टतुण्डजित्” ।
ॐ क्रीं रक्ष रक्ष चामुण्डे तुरु तुरु अमुक मे
वशमानय वशमानय स्वाहा । अथ चण्डामन्त्र ।
उक्तयोगसिद्धि ॥
“पुष्यार्के मधुवन्दाक गृहीत्वा प्रक्षिपेद्बुध ।
सभामध्ये च सर्व्वेषां मूकस्तम्भ प्रजायते” ॥ * ॥
मेघस्तम्भनम् । इष्टकद्वयसम्पुटमध्ये मेघसख्यक-
चतुरस्र विलिख्य उद्याने स्थापयेत्तदा मेघान्
स्तम्भयति । मन्त्र । “मेघान् स्तम्भय स्तम्भय” ॥ * ॥
नौकास्तम्भनम् ।
“भरण्या क्षीरकाष्ठस्य कील पञ्चाङ्गुल क्षिपेत् ।
नौकामध्ये तदा नौकास्तम्भन जायते ध्रुवम्” ॥ * ॥
निद्रास्तम्भनम् ।
‘मूलं वृहत्या मधुक पिष्ट्वा नस्य समाचरेत् ।
निद्रास्तम्भनमेतद्धि मूलदेवेन भाषितम्” ॥ * ॥
शस्त्रस्तम्भनम् ।
“कपित्थस्य च वन्दाकं कृत्तिकाया समाहरेत् ।
वक्त्रस्थन्तु देवस्य शस्त्रस्तम्भनकं परम् ॥

करे सुदर्शनामूलबन्धनात् स्तम्भन तथा” ।
ॐ अहो कुम्भकर्ण महाराक्षस निकषागर्भ-
सम्भूत परसैन्यस्तम्भन महाभय रुद्र आज्ञापय
स्वाहा । अष्टोत्तरसहस्रजपात् सिद्धि ॥
“गृहीत्वा शुभनक्षत्रे अपामार्गस्य मूलकम् ।
लेपमात्रे शरीराणां सर्व्वशस्त्रनिवारणम् ॥
पुष्यार्के श्वेतगुञ्जाया मूलमुद्धृत्य धारयेत् ।
हस्ते काण्डभय नास्ति सङ्ग्रामे च कदाचन” ॥ * ॥

गोमहिष्यादिस्तम्भनम् ।

“उष्ट्रस्यास्थि चतुर्दिक्षु निखनेत् भूतले ध्रुवम् ।
गां मेषीं महिषीं वाजीं स्तम्भयेत् करिणीमपि” ॥ * ॥

बुद्धिस्तम्भनम् ।

“भृङ्गराजमपामार्गं सिद्धार्थं सहदेविकाम् ।
लोल वचाञ्च श्वेतार्कं ध्रुवमेषा समाहरेत् ॥
लौहपात्रे विनिक्षिप्य द्विदिनान्ते समुद्धरेत् ।
तिलके सर्व्वभूताना बुद्धिस्तम्भकर परम्” ॥
ॐ नमो भगवते विश्वामित्राय नम सर्व्व-
मुखीभ्यां विश्वामित्र आगच्छ आगच्छ स्वाहा ।
उक्तयोगस्याय मन्त्र ॥ * ॥ चौरगतिस्तम्भनम् ।
ॐ ब्रह्मवेशिनि शिवे रक्ष रक्ष स्वाहा । अनेन
मन्त्रेण सप्तपाशान् गृहीत्वा त्रीणि कण्ठां बद्धा
अपरान् मुष्टिभ्यां धारयेत् । इति चौराणां गति-
स्तम्भनम् । * ॥ गर्भस्तम्भनम् ।
“ग्राह्य कृष्णचतुर्दश्यां धूस्तूरस्य तु मूलकम् ।
कट्यां बद्धा रमेत् कान्ता न गर्भं धारयेत् क्वचित् ॥
मुक्तेन लभते गर्भं पुरा नागार्ज्जुनोदितम् ।
तन्मूलचूर्णं योनिस्थ न गर्भ सम्भवेत् क्वचित् ॥
सिद्धार्थमूल शिरसि बद्धा कान्ता रमेत्तु यां ।
न गर्भं धारयेत् सा स्त्री मुक्तेन लभते पुन ” ॥ * ॥

शुक्रस्तम्भनम् ।

“नीलीमूलं श्मशानस्थ कट्यां बद्धा तु वीर्य्यधृक ।
रक्तापामार्गमूलन्तु सोमवारे निमन्त्रयेत् ॥
भौमे प्रात समुद्धृत्य कट्या बद्धा तु वीर्य्यधृक्” ॥
इति कामरत्ने ३ उपदेश ॥ * ॥ मोहनम् ।

“भृङ्गीवचानलदसर्ज्जरस समान
कृत्वा त्रुटि मलयजञ्च षडेकमिश्रम् ।
यो धूपयेन्निजगृह वसनं शरीर
तस्यापि दास इव मोहमुपैति लोक ” ॥

भृङ्गराज केशराजो लज्जा च सहदेविका ।
एभिस्तु तिलक कृत्वा त्रैलोक्य मोहयेन्नर ” ॥
ॐ अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ फट् ।
“अनेनैव तु मन्त्रेण कृत्वा ताम्बूलभावनम् ।
साध्यस्य मुखनिक्षिप्ते मोहमायाति तत्क्षणात्” ॥
ॐ भीं क्षीं भों मोहय । इम मन्त्र वारत्रय
जपेत् । मोहमाप्नोति मानव ॥ * ॥ देहरञ्जनम् ।
“कदम्बपत्र लोध्रञ्च अर्ज्जुनस्य च पुष्पकम् ।
पिष्ट्वा गात्रोद्वर्त्तनाच्च कायदुर्गन्धनाशनम् ॥

एला शटी-पत्रक-चन्दनानि
तोयाभयाशिग्रुघनामयानि ।
ससौरभोऽय सुरराजयोग
ख्यात सुगन्धो नरमोहयोग्य ” ॥ * ॥

मुखरञ्जनम् ।

“रसालजम्बूफलगर्भसार
सकर्कटो माक्षिकसंयुतश्च ।
स्थितो मुखान्ते पुरुषस्य रात्रौ
करोति पुसा मुखवासमिष्टम् ॥
चूर्णं सुराकेशरकुष्ठकाना
प्रातर्दिनान्ते परिलेढि या स्त्री ।
अप्यर्द्धमासेन मुखस्य वास
कर्पूरतुल्यो भवति प्रकाश ” ॥ * ॥

केशकृष्णीकरणादि ।

“लोहकिट्ट जवापुष्प पिष्ट्वा धात्रीफलं समम् ।
त्रिदिन लेपयेत् शीर्षे त्रिमास केशरञ्जनम्” ॥
इति कृष्णीकरणम् ॥ * ॥ केशशुक्लीकरणम् ।
“वचाक्षीरेण सप्ताहं अन्वहं भावयेत्तिलम् ।
तत्तैललिप्ता केशा स्यु शुक्लाश्च नात्र संशय ॥
इति कामरत्ने ४ उपदेश ॥ * ॥ अथ वाजीकरण
“अश्विन्या वटवन्दाकं क्षीरै पिष्ट्वा महाबल ।
पुष्योद्धृत पिबेन्मूल श्वेतार्कस्य प्रयत्नत ॥
सप्तरात्रन्तु गोक्षीरैर्वृद्धोऽपि तरुणायते” ।

“चूर्णं विदार्य्या स्वरसेन तस्या
विभावित भास्कररश्मिजाले ।
मध्वाज्यसमिश्रितमेव लीढ्वे-
द्दशस्त्रियो गच्छति निर्विशङ्क ” ॥ * ॥

जन्मवन्ध्याचिकित्सा ।

“समूलपत्रा सर्पाक्षीं रविवारे समुद्धरेत् ।
एकवर्णगवा क्षीरे कन्याहस्तेन पेषयेत् ॥
ऋतुकाले पिबेत् वन्ध्या पलार्द्ध तद्दिने दिने ।
क्षीरशाल्यन्नमुद्गञ्च लघ्वाहार प्रदापयेत् ॥
एव सप्तदिन कुर्य्यात् वन्ध्या भवति गर्भिणी ।
उद्वेग भयशोकञ्च दिवानिद्रा विवर्जयेत् ॥
न कर्म्म कारयेत् किञ्चित् वर्जयेत् सावगाहनम् ।
पतिसङ्ग चरेत् सा च नात्र कार्य्या विचारणा ॥
कृष्णापराजितामूलं छागीक्षीरेण सपिबेत् ।
ऋतुकाले समायाते भुक्ता गर्भधरा भवेत् ॥
गोक्षुरस्य तु वीजन्तु पिबेन्निर्गुण्डिकारसै ।
त्रिरात्र सप्तरात्र वा वन्ध्या भवति गर्भिणी” ॥
इतीन्द्रजाले जन्मवन्ध्याचिकित्सा ॥ * ॥

अथ काकवन्ध्याचिकित्सा ।

“अश्वगन्धीयमूलन्तु ग्राहयेत् पुष्यभास्करे ।
पेषयेन्महिषीक्षीरै पलार्द्ध भक्षयेत् सदा ॥
सप्ताहाल्लभते गर्भं काकवन्ध्या चिरायुषम्” ।
इतीन्द्रजाले काकवन्ध्याचिकित्सा ॥ * ॥

अथ मृतवत्साचिकित्सा ।

“प्राङ्मुख कृत्तिकाऋक्षे वन्ध्या कर्कोटकीं हरेत् ।
तत्कन्द पेषयेत्तोयै कर्षमात्र सदा पिबेत् ॥

या वीजपूरद्रुममूलमेक
क्षीरेण पक्व प्रपिबेत् विमिश्रम् ।
ऋतौ निज या तु पति प्रयाति
दीर्घायुष सा तनय प्रसूते ॥

मञ्जिष्ठा मधुक कुष्ठ त्रिफला शर्करा वला ।
मेदा पयस्या काकोली मूलञ्चैवाश्वगन्धजम् ॥
अजमोदा हरिद्रे द्वे हिङ्गु कटुकारोहिणी ।
उत्पल कुमुद द्राक्षा काकल्यौ तन्मूलद्वयम् ॥

एतेषां कर्षकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
शतावरीरसं क्षीरं घृतस्येह चतुर्गुणम् ॥
संपिबेन्नियता नारी नित्यं स्त्रीषु च शस्यते ।
पुत्त्रान् जनयते नारी मेधाढ्यान् प्रियदर्शनान् ॥
या चैवास्थिरगर्भा स्यात् या नारी जनयेत् मृतम् ।
अल्पायुषञ्च जनयेत् या च कन्यां प्रसूयते ।
योनिदोषे रजोदोषे गर्भस्रावे च शस्यते ।
प्रजावर्द्धनमायुष्यं सर्व्वग्रहनिवारणम् ॥
नाम्ना फलघृतं ह्येतदायुष्यं परिकीर्त्तितम् ।
नोक्तञ्च लक्ष्मणामूलं वदन्त्यत्र चिकित्सकाः ॥
जीववत्सा मुख्यवर्णा घृतमत्र तु दीयते ॥
आरण्यगोमयेनात्र वह्निर्ज्वाला प्रदीयते" ।
अत्र पयस्या क्षीरयुक्ता भूमिकुष्माण्डम् । उत्पलं ।
नीलं । इतीन्द्रजाले मृतवत्साचिकित्सा ॥ * ॥
अथ गर्भस्रावचिकित्सा । प्रथमे मासि ।
"गोक्षीरे पेषयेत्तुल्यं पद्मकेशरचन्दनम् ।
पतने तं पिबेन्नारी महागर्भः स्थिरो भवेत् ॥
अथवा मधुकं दारु शरच्चन्द्रस्य वीजकम् ।
समिश्य क्षीरकाकोलीं पिबेत् क्षीरैश्च गोभवैः ॥ १ ॥
नीलोत्पलं मृणालञ्च यष्टी कर्कटशृङ्गिका ।
गोक्षीरश्च द्वितीये च पीत्वा शाम्यति वेदना ॥ २ ॥
श्रीखण्डं तगरं कुष्ठं मृणालं पद्मकेशरम् ।
पिबेत् शीतोदकैः पिष्ट्वा तृतीये वेदनावती ॥
अथवा क्षीरकाकोलीबलानन्तापयः पिबेत् ॥ ३ ॥
शीतोत्पलं मृणालानि गोक्षीरकं-कशेरुकम् ।
तुर्य्यमासे गवां क्षीरं पिबेत् सा वेदनापरा ॥
अथवा मधुकं रास्ना श्यामा ब्राह्मणयष्टिका ।
अनन्ता पेषयित्वा तु गवां क्षीरैः समं पिबेत् ॥ ४ ॥
पुनर्णवा च काकोली तगरं नीलमुत्पलम् ।
गोक्षीरं पञ्चमे मासि गर्भक्लेशहरं भवेत् ॥
अथवा वृहतीयुग्मं यज्ञाङ्गं काट्फलं त्वचः ।
गोघृतं क्षीरसंयुक्तं पिबेत् पिष्ट्वा च पञ्चमे ॥ ५ ॥
सिता काशाखुमञ्जा च शीततोयेन पेषयेत् ।
षष्ठे मासि गवां क्षीरैः पिबेत् क्लेशं निवर्त्तयेत् ॥
अथवा गोक्षुरं शिग्रु मधुकं पृश्निपर्णिकाम् ।
बलायुक्तां पिबेत् पिष्ट्वा गोदुग्धे षष्ठमासके ॥ ६ ॥
काष्ठकं पौष्करं मूलं शृङ्गाटं नीलमुत्पलम् ।
पिष्ट्वा च सप्तमे मासि क्षीरैः पीत्वा प्रशाम्यति ॥
अथवा मकरन्द्राक्षा शृङ्गाटञ्च सकेशरम् ।
मृणालं शर्करायुक्तं क्षीरैः पेयन्तु सप्तमे ॥ ७ ॥
यष्टी पद्माक्षार्कमुस्तं केशरं गजपिप्पली ।
नीलोत्पलं गवां क्षीरैः पिबेदष्टममासके ॥
अथवा विल्वमूलञ्च कपित्थं वृहती शमी ।
इक्षुपाटलयोर्मूलं एभिः क्षीरं प्रसाधयेत् ।
तत्क्षीरमष्टमे पीत्वा गर्भे शाम्यति वेदना ॥ ८ ॥
विशालावीजकक्कोलं मधुना सह लेपयेत् ।
वेदना नवमे मासि शान्तिमाप्नोति नान्यथा ॥
अथवा मधुकं श्यामा ह्यनन्ता क्षीरकाकली ।
एभिः सिद्धं पिबेत् क्षीरं नवमे वेदनावती ॥ ९ ॥
शर्करा गोस्तनी द्राक्षा सक्षुद्रं नीलमुत्पलम् ।
पाययेत् दशमे मासि गवां क्षीरैः प्रशान्तये ॥
अथवा शुण्ठसिद्धं गोक्षीरं दशमे पिबेत् ।
अथवा मधुकं दारु शुण्ठीक्षीरेण संपिबेत् ॥ १० ॥

क्षौद्रं हयं चन्दनसिन्धुजातं
महेन्द्रराजं पयसा सुपिष्टम् ।
गर्भं क्षरन्तं प्रतिहन्ति शीघ्रं
योगो विमुञ्चन् किल मूलदेवः" ॥
इति इन्द्रजाले गर्भस्रावचिकित्सा ॥ * ॥

अथ गर्भशुष्कम् ।

"गोक्षीरं शर्करायुक्तं गर्भशुष्कप्रशान्तये ।
पिबेद्वा मधुकं चूर्णं गाम्भारीफलचूर्णकम् ॥
समांसं गव्यदुग्धेन गर्भिणी च प्रशान्तये" ॥ * ॥

अथ सुखप्रसवयोगः ।

"श्वेतं पुनर्णवामूलं पूर्णं योनौ प्रवेशयेत् ।
तत्क्षणात् प्रसूते नारी गर्भे सति प्रपीड़िते ॥
वासकस्य तु मूलन्तु पोत्तरस्य समुद्धरेत् ।
कट्यां बद्धा समसूत्रैः सुखं नारी प्रसूयते ॥
सहदेव्याश्च मूलं वा कटिस्थं प्रसवेत् सुखम् ।
अपामार्गस्य मूलन्तु ग्राहयेच्चतुरङ्गुलम् ॥
द्वारि प्रवेशयेत् योनौ तत्क्षणात् सा प्रसूयते" ॥ * ॥

अथ स्तनवर्द्धनं स्तनोत्थापनञ्च ।

"तैलं वचादाडिमकल्कसिद्धं
सिद्धार्थजं लेपनतो नितान्तम् ।
नारीकुचौ चारुतरौ सुपीनौ
कुर्य्यादसौ योगवरः प्रदिष्टः ॥
श्रीपर्णिकाया रसवल्कसिद्धं
तिलोद्भवं तैलवरं प्रदिष्टम् ।
तुलेन वक्षोजयुगे प्रदेयं
प्रयाति वृद्धिं पतितोऽपि नार्य्याः ॥
प्रथमकुसुमकाले नस्ययोगेन पीतं
सनियममभरास्यं तण्डुलाम्भो युवत्या ।
कुचयुगलसुपीनं क्वापि नो याति पातं
कथितमिति पुरैव चक्रदत्तेन योगः" ॥ * ॥

अथ योनिसंस्कारः ।

"प्रक्षालयेन्निम्बकषायनीरै-
स्त्रिनान्यकृष्णागुरुगुग्गुलानाम् ।
धूपेन योनिं निशि धूपयित्वा
नारी प्रमोदं विदधातु भर्त्तुः" ॥ * ॥

अथ लोमशातनम् ।

"पलाशभस्मान्विततालचूर्णै-
रम्भाम्बुमिश्रैः परिलिप्य भूयः ।
कन्दर्पगेहे मृगलोचनानां
रोमाणि रोहन्ति कदापि नैव" ॥

इति इन्द्रजालतन्त्रसंग्रहः ॥ युद्धे क्षुद्रोपायविशेषः ।
इति हेमचन्द्रः ॥

इन्द्रजालिकः, त्रि, (इन्द्रजालं करोति इन्द्रजालेन दीव्यतीति वा । इन्द्रजाल + ठक् ।) कुहककारी । इति जटाधरः ॥ वाजीकर इति भाषा ।

इन्द्रजित्, पुं, (इन्द्रं जितवान् इति । इन्द्र + जि + क्विप् ।) रावणपुत्त्रः । तत्पर्य्यायः । मेघनादः २ मन्दोदरीसुतः ३ । इति जटाधरः ॥ (अस्य जन्मविवरणं यथा, रामायणे ७।१२। सर्गे,
"एवमुक्तस्तदा राम ! राक्षसेन्द्रेण दानवः ।
महर्षेस्तनयं ज्ञात्वा मयो दानवपुङ्गवः ॥
दातुं दुहितरं तस्मै रोचयामास तत्र वै ॥ १६ ॥
करेण तु करं तस्या ग्राहयित्वा मयस्तदा ।
प्रहसन् प्राह दैत्येन्द्रो राक्षसेन्द्रमिदं वचः ॥ १७ ॥
इयं ममात्मजा राजन् हेमयाप्सरसा धृता ।
कन्या मन्दोदरी नाम पत्न्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ १८ ॥
वाढमित्येव तं राम ! दशग्रीवोऽभ्यभाषत ।
प्रज्वाल्य तत्र चैवाग्निमकरोत् पाणिसङ्ग्रहम्" ॥ १९ ॥
"ततो मन्दोदरी पुत्त्रं मेघनादमजीजनत् ।
स एष इन्द्रजिन्नाम युष्माभिरभिधीयते ॥ २८ ॥
जातमात्रेण हि पुरा तेन रावणसूनुना ।
रुदता सुमहान् मुक्तो नादो जलधरोपमः ॥ २९ ॥
जड़ीकृता च सा लङ्का तस्य नादेन राघव ! ।
पिता तस्याकरोत् नाम मेघनाद इति स्वयम्" ॥ ३० ॥
अस्य यथा इन्द्रजिदित्यभिधानं जातं तदपि उक्तं तत्रैव ३५ सर्गे ।
"जिते महेन्द्रेऽतिबले रावणस्य सुतेन वै ।
प्रजापतिं पुरस्कृत्य ययुर्लङ्कां सुरास्तदा ॥ १ ॥
तत्र रावणमासाद्य पुत्त्रभ्रातृभिरावृतम् ।
अब्रवीद्गगने तिष्ठन् सामपूर्व्वं प्रजापतिः ॥ २ ॥
वत्स रावण ! तुष्टोऽस्मि पुत्त्रस्य तव संयुगे ।
अहोऽस्य विक्रमौदार्य्यं तव तुल्योऽधिकोऽपि वा ॥ ३ ॥
जितं हि भवता सर्व्वं त्रैलोक्यं स्वेन तेजसा ।
कृता प्रतिज्ञा सफला प्रीतोऽस्मि ससुतस्य ते ॥ ४ ॥
अयञ्च पुत्त्रोऽतिबलस्तव रावण वीर्य्यवान् ।
जगतीन्द्रजिदित्येव परिख्यातो भविष्यति ॥ ५ ॥
बलवान् दुर्जयश्चैव भविष्यत्येव राक्षसः ।
यं समाश्रित्य ते राजन् स्थापितास्त्रिदशा वशे" ॥ ६ ॥
महावीरो लक्ष्मणस्तु विभीषणेन वानरादिभिश्च सह निकुम्भिलां गत्वा तत्रस्थमेनमिन्द्रजितं व्यापादयामास इति तत्रैव लङ्काकाण्डे ५ सर्गमारभ्य ७ सर्गेषु उक्तम् ॥
स्वनामख्यातो दानवः । यथा हरिवंशे । ३ । ८३ ।
"इन्द्रजित् सत्यजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ।
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च" ॥)

इन्द्रजिद्विजयी, [न्] पुं, (इन्द्रजितः रावणपुत्त्रस्य विजयी इति । इन्द्रजित् + वि + जि + णिनि ।) लक्ष्मणः । इति शब्दरत्नावली ॥ (अस्य विवरणन्तु रामायणे । ६ । ९१ सर्गे उक्तम् । यथा,—
"इत्युक्त्वा बाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम् ।
लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति ॥ ७२ ॥
ऐन्द्रास्त्रेण समायोज्य लक्ष्मणः परवीरहा ।
तच्छिरः सशिरस्त्राणं श्रीमत् ज्वलितकुण्डलम् ।
प्रमथ्येन्द्रजितः कायात् पातयामास भूतले" । ६३।)

इन्द्रतूलं, क्ली, (इन्द्रस्य तूलं । आकाशे उड्डीयमानत्वात् ।) आकाशपतिततूलम् । आकाशबुड़ि सुता इति भाषा । तत्पर्य्यायः । वृद्धसूत्रकम् २ ग्रीष्महासम् ३ वंशकफम् ४ वाततूलम् ५ मरुद्ध्वजम् ६ । इति हारावली ॥

इन्द्रतूलकं, क्ली, (इन्द्रतूलमेव । इन्द्रतूल + स्वार्थे कन् ।) इन्द्रतूलं । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

इन्द्रदारुः, पुं, (इन्द्रस्य दारुः ।) देवदारुवृक्षः । इति भावप्रकाशः ॥ (अस्य पर्य्यायः ।

"देवदारु स्मृतं दारुभद्रं दार्व्विन्द्रदारु च ।
मस्तदारुद्रुकिलिमं किलिमं सुरभूरुहः" ॥)

**इन्द्रद्रुः**, पुं, (इन्द्रस्य द्रुर्वृक्षः ।) अर्ज्जुनवृक्षः । इत्यमरः ॥ कुटजवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

**इन्द्रद्रुम**, पुं, (इन्द्रस्य द्रुमो वृक्षः ।) अर्ज्जुनवृक्षः । इति शब्दरत्नावली ॥

**इन्द्रनील**, पुं, (इन्द्रवत् नीलः ।) मरकतमणिः । इति हेमचन्द्रः ॥ पान्ना इति भाषा । (अस्य परीक्षा यथा, चिन्तामणिधृतवचनम् ।
"क्षीरमध्ये क्षिपेत् नीरं क्षीरञ्चेत् नीलतां व्रजेत् ।
इन्द्रनीलमिति ख्यातं तदाहि रत्नकोविदैः" ॥
"क्वचित् प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलै-
र्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा" ॥
इति रघुवंशे । १३।५४। यथा, भावप्रकाशे ॥
अथ इन्द्रनीलगोमेदयोर्नामानि ।
"नीलन्त्विन्द्रनीलञ्च गोमेदः पीतरत्नकम्" ।)

**इन्द्रनीलक**, पुं, (इन्द्रनील + स्वार्थे कन् ।) मरकतमणिः । इति शब्दरत्नावली ॥

**इन्द्रपुष्पा**, स्त्री, (इन्द्रनीलवत् पुष्पं यस्याः ।) लाङ्गलिकीवृक्षः । इति रत्नमाला ॥ विषलाङ्गला इति ख्याता । (लाङ्गलिकीशब्देऽस्या विवरणं ज्ञेयं । )

**इन्द्रपुष्पिका**, स्त्री, (इन्द्रपुष्पेव । कन् ।) कलिकारी । इति राजनिर्घण्टः ॥ विषलाङ्गला इति भाषा ।

**इन्द्रप्रस्थ**, क्ली, (इन्द्रस्य इन्द्रकीलस्य प्रस्थम् इव ।) राजयुधिष्ठिरनिर्म्मितनगरम् । अधुना दिल्ली इति ख्यातम् । (यथा, महाभारते १।२०८।२८।
"ततः पुण्ये शिवे देशे शान्तिं कृत्वा महारथाः ।
नगरं मापयामासुर्द्वैपायनपुरोगमाः ॥
सागरप्रतिरूपाभिः परिखाभिरलङ्कृतं" ॥
"तत्त्रिविष्टपसङ्काशं इन्द्रप्रस्थं व्यरोचत ।
मेघवृन्दमिवाकाशे विद्धं विद्युत्समावृतम्" ॥)

**इन्द्रप्रहरण**, क्ली, (इन्द्रस्य प्रहरणम् ।) इन्द्रस्यास्त्रम् । वज्रम् । इति हलायुधः ॥

**इन्द्रभेषज**, क्ली, (इन्द्रं महत् भेषजम् ।) शुण्ठी । इति शब्दरत्नावली ॥

**इन्द्रमहकामुक**, पुं, (इन्द्रमहं कामयते इति । इन्द्रमह + काम + उकञ् ।) कुक्कुरः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

**इन्द्रयव**, पुं, क्ली, (इन्द्रस्य इन्द्रवृक्षस्य यवः यवाकारबीजत्वात् तथात्वम् ।) स्वनामख्याततिक्तबीजविशेषः । तत्पर्य्यायः । कलिङ्गम् २ भद्रयवम् ३ । इत्यमरः ॥ शक्राह्वः ४ शक्रबीजम् ५ वत्सकः ६ वत्सकबीजम् ७ भद्रजः ८ कुटजः ९ कुटजबीजम् १० कलिङ्गबीजम् ११ । अस्य गुणाः । कटुत्वम् । तिक्तत्वम् । शीतत्वम् । कफवातरक्तपित्तहरत्वम् । दाहातिसारशमनत्वम् । ज्वरदोषशूलमूलनाशित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ कुड़चिर बिचि इति भाषा । यथा,—
"उक्तं कुटजबीजन्तु यवमिन्द्रयवं तथा ।
कलिङ्गञ्चापि कालिङ्गं तथा भद्रयवं स्मृतम्" ॥
इति कोषे अमरः प्राह ।
"क्वचिदिन्द्रस्य नामैव भवेत्तदभिधायकम् ।
फलानीन्द्रयवास्तस्य तथा भद्रयवा अपि" ॥
इति धन्वन्तरिः प्राह ।
"ऐन्द्रं यवं त्रिदोषघ्नं संग्राहि कटु शीतलम् ।
ज्वरातीसाररक्तार्शःकृमिविसर्पकुष्ठनुत् ॥
दीपनं गुदकीलास्रवातास्रश्लेष्मशूलजित्" ।
इति भावप्रकाशः ॥ (यथा, वैद्यकद्रव्यगुणे ।
"तद्बीजं ज्वरजित्तिक्तं रक्तपित्तातिसारजित्" ।)

**इन्द्रलुप्त**, क्ली, (इन्द्राणां इन्द्रनीलवर्णकेशानां लुप्तं लोपो यस्मात् ।) केशरोगविशेषः । टाक इति भाषा । तस्य लक्षणम् ।
"रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम् ।
प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥
रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसम्भवः ।
तदिन्द्रलुप्तं खालत्यं रुज्येति च विभाव्यते" ॥
इति निदानम् ॥ खालत्यं रुज्येति च तस्य पर्य्यायकथनम् । तथाच भोजः ।
"तदिन्द्रलुप्तमित्याहुः खल्लीं रुज्याञ्च केचन" ।
कार्त्तिकस्त्वाह । "इन्द्रलुप्तं श्मश्रुणि भवति खालत्यं शिरोरुहेष्वेव रुज्या सवेदनेति आगमस्तत्र नास्ति" ॥
इति तट्टीका ॥ अथेन्द्रलुप्तस्य चिकित्सा ।
"तिक्तपटोलीपत्रस्वरसैर्घृष्टा शमं याति ।
चिरकालजापि रुज्या नियतं दिवसत्रयेणैव ॥
गोक्षुरस्तिलपुष्पाणि तुल्यञ्च मधुसर्पिषः ।
शिरः प्रलेपितं तेन केशैः समुपचीयते ॥
हस्तिदन्तमसीं कृत्वा छागीदुग्धरसाञ्जनं ।
लोमान्यनेन जायन्ते लेपात् पाणितलेष्वपि ॥
यष्टीन्दीवरमृद्वीकातैलाज्यक्षीरलेपनैः ।
इन्द्रलुप्तं शमं याति केशाः स्युश्च घना दृढाः ॥
जातीकरञ्जवरुणकरवीराभिपाचितम् ।
तैलमभ्यञ्जनाद्धन्ति इन्द्रलुप्तं न संशयः ॥
स्नुहीपयः पयोऽर्कस्य लाङ्गलीमार्कवो विषम् ।
अजामूत्रं सगोमूत्रं रक्तिका सेन्द्रवारुणी ॥
सिद्धार्थकस्तीक्ष्णगन्धा सम्यगेभिर्विपाचितम् ।
तैलं भवति नियमात् खालित्यव्याधिनाशनम् ॥
स्नुहीदुग्धादितैलम्" । इति भावप्रकाशः ॥
('केशघ्नस्य चिकित्सान्तु शृणु हारीत' साम्प्रतम् ।
रूक्षं सपाण्डुरं वातात् पित्तादक्तं सदाहकम् ॥
कफान्वितं भवेत् स्निग्धं रक्तात्याक्तं व्रजन्ति तत् ।
सन्निपातेन सदृशं जायते सर्व्वलक्षणम्" ॥
अस्य चिकित्सा यथा ॥ * ॥
"गुडेन सुरसा शुण्ठी मातुलुङ्गरसेन तु ।
केशघ्ने वातसम्भूते धावनञ्च प्रशस्यते ॥ १ ॥
त्रिफलाञ्च वचा शुण्ठीं गुडेनापि प्रपेषितम् ।
धावनं कफसम्भूते चेन्द्रलुप्ते प्रशस्यते ॥ २ ॥
पैत्तिके च हितं दुग्धं नवनीतान्वितन्तथा ।
सिताशिवाफलं यष्टी पैत्तिके धावनं मतम् ॥ ३ ॥
भृङ्गराजरसं ग्राह्यं शृङ्गवेररसन्तथा ।
सौवीरकरसेनापि तिलान् पिष्ट्वा प्रलेपनम् ॥
पश्चात् कार्य्यं पूरुषेण स्नानमुष्णेन वारिणा ।
धवार्ज्जुनकदम्बस्य शिरीषमपि रोहितम् ॥
क्वाथनेषां शिरोदग्धं शमयेदिन्द्रलुप्तकम् ।
कुरुवकस्य पुष्पेण जपाया कुसुमेन च ॥
दग्धस्य चेन्द्रलुप्तस्य कृतमेव निवारणम् ।
पैत्तिकानि च लिङ्गानि दृष्ट्वा दुग्धेन धावनम् ॥
शीतलानि प्रदेयानि पैत्तिकेन विधीयते" ॥
"धुस्तूरपत्राणि च मागधीना
निशा विशालागृहधूमकुष्ठम् ।
घृतेन युक्तञ्च जलेन पिष्टं
शिरःप्रलेपे क्षतवारणं स्यात् ॥
पित्ते क्षते दोषयुते च रोगे
पटोलपत्रं पिचुमर्द्दकं वा ।
तथामलक्या फलमेव पिष्ट्वा
घृतेन खण्डेन प्रलेपनञ्च ॥
निवार्य्यते मस्तकजं क्षतञ्च
शिरोर्त्तिसङ्घान् विनिहन्ति चैतत् ।
गजेन्द्रदन्तस्य मसीं गृहीत्वा
प्रलेपनं वा नवनीतकेन ॥
तिलार्कभल्लातकदग्धमाष-
क्षारस्य लेपो नवनीतकेन ।
सर्पस्य क्षारस्य तथा प्रयोगः
खल्लाटके केशचयं करोति" ॥
इति हारीतः ॥
"तेजोऽनिलाद्यैः सह केशभूमिम्
दग्ध्वाशु कुर्य्यात् खलतिन्नरस्य" ॥ * ॥
चिकित्सा यथा चरके ।
"खालत्ये पलिते वल्यां हरिल्लोम्नि च शोधितम् ।
नस्यैस्तैलैः शिरोवक्त्रप्रलेपैश्चाप्युपाचरेत् ॥
सिद्धं विदारीगन्धाद्यैर्जीवनीयैरथापि च ।
नस्यं स्यादणुतैलं वा खालत्यपलितापहम्" ।)

**इन्द्रलुप्त**, पुं, (इन्द्राणां इन्द्रनीलवत् केशानां लुप्तं नाशो यस्मात् ।) केशनाशकरोगः । तत्पर्य्यायः । इन्द्रलुप्तकः २ केशघ्नः ३ । इति राजनिर्घण्टः ॥

**इन्द्रलुप्तक**, क्ली, (इन्द्रलुप्त + स्वार्थे कन् ।) इन्द्रलुप्तरोगः । इति भूरिप्रयोगो जटाधरहेमचन्द्रौ च ॥

**इन्द्रवारुणिका**, स्त्री, (इन्द्रवारुणी + कन् + टाप् ।) इन्द्रवारुणीलता । इति शब्दचन्द्रिका ॥

**इन्द्रवारुणी**, स्त्री, (इन्द्रं वारयति । इन्द्र + वृ + णिच् + उन् । ङीप्) लताविशेषः । राखाल ससा इति भाषा ॥ तत्पर्य्यायः । विशाला २ । इत्यमरः ॥ ऐन्द्री ३ चित्रा ४ गवाक्षी ५ गजचिर्भटा ६ मृगेर्व्वारु ७ पिटङ्गीकी ८ मृगादनी ९ । इति रत्नमाला ॥ इन्द्रा १० अरुणा ११ गवादनी १२ क्षुद्रसहा १३ इन्द्रचिर्भिटी १४ सूर्य्या १५ विषघ्नी १६ गणकर्णिका १७ अमरा १८ माता १९ सुकर्णी २० सुफला २१ तारका २२ वृषभाक्षी २३ पीतपुष्पा २४ इन्द्रवल्लरी २५ हेमपुष्पी २६ क्षुद्रफला २७ वारुणी २८ बालकप्रिया २९ रक्तैर्व्वारु ३० विषलता ३१ शक्रवल्ली ३२ विषापहा ३३ अमृता ३४ विषवल्ली ३५ । चित्रफला ३६ । इति जटाधरः ॥ अपि च ।
'ऐन्द्रीन्द्रवारुणी चित्रा गवाक्षी च गवादनी ।
वारुणी च परा प्रोक्ता सा विशाला महाफला ॥
श्वेतपुष्पा मृगाक्षी च मृगैर्वारुर्मृगादनी ।
गवादनीद्वयं तिक्तं पाके कटुरसं लघु ॥
वीर्य्योष्णं कामलापित्तकफप्लीहोदरापहम् ।

श्वासकासापह कुष्ठगुल्मग्रन्थिव्रणप्रणुत् ॥
प्रमेहमूढगर्भगगण्डामयविषापहम्”।
इति भावप्रकाशः ॥ अस्या गुणाः । तिक्तत्वम् । कटुत्वम् । शीतत्वम् । रेचनत्वम् । गुल्मपित्तोदरश्लेष्मक्रिमिकुष्ठज्वरापहत्वञ्च ॥ इति राजनिर्घण्टः ॥

इन्द्रवृद्धा, स्त्री, ( इन्द्रेण इन्द्रियजनितदोषेण वृद्धा । यद्वा इन्द्र श्रेष्ठोऽपि वृद्ध क्रशो भवति यस्या ।) व्रणरोगविशेष । तस्य लक्षणम् ।
“पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिडकाभि समाचिताम् ।
इन्द्रवृद्धान्तु ता विद्याद्वातपित्तोत्थिता भिषक्” ॥
इति निदानम् ॥ तस्याश्चिकित्सा ।
विवृत्तामिन्द्रवृद्धाञ्च गर्द्दभीं जालगर्द्दभम् ।
पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया साधयेत् भिषक् ।
पाके तु शोधयेदाज्यपक्वैर्मधुरभेषजै ” ॥
इति भावप्रकाशः ॥
(“या पद्मकर्णिकाकारा पिटिका पिटिकान्विता ।
साविद्धा वातपित्ताभ्या ताभ्यामेव च गर्द्दभी” ॥)

इन्द्रवृक्षः, पु, (इन्द्रस्य वृक्ष ।) देवदारु । इति जटाधर ॥ (देवदारुशब्देऽस्य गुणादयो ज्ञातव्या ॥)

इन्द्रसावर्णिं, पु, चतुर्द्दशमनु । अस्मिन् मन्वन्तरे वृहद्भानुरवतार । शुचिरिन्द्र । पवित्रचाक्षुषादयो देवा । अग्निबाहुशुचिशुद्धमागधाद्या सप्तर्षय । उरुगम्भीरब्रध्नाद्या मनुपुत्रा भविष्यन्ति ॥ इति श्रीभागवतम् ॥ ( अय हि भौत्यनाम्ना चाख्यात । यथा, विष्णुपुराणे ३ । २ ।
“भौत्यश्चतुर्द्दशश्चात्र मैत्रेय भविता मनु ।
शुचिरिन्द्र सुरगणास्तत्र पञ्च शृणुष्व तान् । ४० ।
चाक्षुषाश्च पवित्राश्च कनिष्ठा भ्राजिरस्तथा ।
वचोवृद्धाश्च वै देवा सप्तर्षीनपि मे शृणु । ४१ ।
अग्निबाहु शुचि शुक्रो मागधोऽग्नीध्र एव च ।
युक्तस्तथाजितश्चान्यो मनुपुत्रानत शृणु । ४२ ।
उरुगम्भीरब्रध्नाद्या मनोस्तस्य सुता नृपा ” ।४३।
मार्कण्डेयपुराणेऽपि १०० अध्याये उक्तरूपेण वर्णितम् । अधुना तु सप्तममन्वन्तरस्याष्टाविंशति-तम युग ।)

इन्द्रसुत, पु, (इन्द्रस्य सुतः ।) वालिनामवानरराज । इति हेमचन्द्र ॥ अर्ज्जुनवृक्ष । इति राजनिर्घण्ट ॥ जयन्त । अर्ज्जुनः ॥

इन्द्रसुरस, पु, (इन्द्र इन्द्रवृक्ष इव सुरस सुपथ्यरस ।) सिन्दुवारवृक्ष । इत्यमर ॥ निसिन्दा इति ख्यात । (सिन्दुवारशब्दे निर्गुण्डीशब्दे च अस्य गुणादयो ज्ञेया ॥)

इन्द्रसुरिस, पु, वृक्षविशेष । निसिन्दा इति भाषा । तत्पर्य्याय । इन्द्राणी २ निर्गुण्डी ३ सुरसा ४ । इति रत्नमाला ॥ इन्द्रसुरस ५ सिन्दुवार ६ इन्द्राणिका ७ । इत्यमर ॥ विसन्धक ८ सिन्धक ९ सुरसः १० सिन्धुवारित ११ इन्द्रालिका १२ सिन्धुवारक १३ । इति शब्दरत्नावली ॥ (इन्द्राणीशब्देऽस्य विशेषो ज्ञेय ।)

इन्द्रा, स्त्री, (इदि + रन् ।) फणिज्झकवृक्ष । इति मेदिनी ॥ काँटा नामीर इति भाषा । इन्द्रपत्नी । शची । इति शब्दरत्नावली ॥

इन्द्राग्निधूम, पु, (इन्द्राग्नेर्मेघवह्नेर्धूम इव ।) हिम । इति हारावली ॥

इन्द्राणिका, स्त्री, ( इन्द्राणी + कन् । ) इन्द्रसुरिसवृक्ष । इत्यमर ॥

इन्द्राणी, स्त्री, (इन्द्रस्य ऐश्वर्य्यशालिन सुरराजस्य वा पत्नी । इन्द्र + इन्द्रवरुणेति ङीष् आनुक् च ।) दुर्गा । यथा,—
“ऐश्वर्य्यं परम यस्या वशे चैव सुरासुरा ।
इदि परमैश्वर्य्ये च इन्द्राणी तेन सा शिवा” ॥
इति देवीपुराणे ४५ अध्याय ॥ * ॥ इन्द्रभार्य्या । तत्पर्य्याय । पुलोमजा २ शची ३ । इत्यमर ॥ पौलोमी ४ । इति मेदिनी ॥ पूतक्रतायी ५ । इति जटाधर ॥ माहेन्द्री ६ जयवाहिनी ७ ऐन्द्री ८ शतावरी ९ । इति शब्दरत्नावली ॥
(“यथेन्द्राणी महेन्द्रस्य लक्ष्मीर्लक्ष्मीपतेर्यथा” ॥
इति भविष्यपुराणे षट्पञ्चमीव्रतकथायाम् । इन्द्रशक्ति । यथा ऋग्वेदे १ । २२ । १२ । “इहेन्द्राणी मुपह्वये वरुणानीं” । “इन्द्राणीं इन्द्रस्य सूर्य्यस्य वायोर्वाशक्तिम्” । इति दयानन्दसरस्वतीकृतभाष्यम् ।) इन्द्रसुरिसवृक्ष । स्त्रीणां करण । इति मेदिनी ॥ नीलसिन्दुवारवृक्ष । स्थूलैला । सूक्ष्मैला । इति राजनिर्घण्ट ॥ अष्टमातृकान्तर्गतमातृकाविशेष ॥ इति स्मृतिः ॥

इन्द्रानुज, पुं, ( अनु पश्चात् जायते इति अनुज कनिष्ठ । इन्द्रस्यानुज । विष्णु खलु काश्यपात् अदितौ वामनरूपेण इन्द्रस्य पश्चात् जात ।) विष्णु । इति हेमचन्द्र ॥ ( विवृतिर्वामनशब्दे द्रष्टव्या । )

इन्द्रायुध, स्त्री, (इन्द्रस्यायुधमिव चापाकृतित्वात् ।) इन्द्रधनु । इत्यमरः ॥ रामधनुक गण्डी इत्यादि भाषा ।
(“स नाद मेघनादस्य धनुश्चेन्द्रायुधप्रभम्” ।
इति रघुवंशे । १२ । ७९ । तथा, मनु । ४ । ५९ ।
“न दिवीन्द्रायुध दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद्बुध ” ।)

इन्द्रारि, पु, (इन्द्रस्य अरि शत्रु ।) असुर । इत्यमर ॥

इन्द्रावरज, पु, (इन्द्रस्य अवरज वामनरूपेण अनुजः ।) विष्णु । इत्यमर ॥

इन्द्राशन, पु, (इन्द्रस्य अशन खाद्यद्रव्यम् ।) सविदावृक्ष । इति शब्दमाला ॥ सिद्धि इति भाषा । गुञ्जा । इति हारावली ॥ कुच इति भाषा ।
(“इन्द्राणिकेन्द्राशनकञ्च” ।
“तथाचेन्द्राशनोत्कटे ” ।
“ग्रीष्मसुन्दरमण्डूकी जयन्तीन्द्राशनस्य च” ॥
इति वैद्यकरसेन्द्रसारसंग्रहः ॥)

इन्द्रिय, क्ली, (इन्द्रस्यात्मनो लिङ्गमनुमापकम् । इन्द्रेण ईश्वरेण सृष्ट । इन्द्रेणात्मना मम चक्षुर्मम श्रोत्रमित्यादि क्रमेण ज्ञात । इन्द्रेण जुष्ट वा इत्याद्यर्थेषु इन्द्रशब्दात् निपातनात् घच् । ) ज्ञानकर्म्मसाधनम् । तत्पर्य्याय । हृषीकम् २ विषयि ३ । इत्यमर । अक्षम् ४ करणम् ५ ग्रहणम् ६ । इति राजनिर्घण्ट । तत्र तु ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च । यथा । कर्णौ १ त्वक् २ चक्षु ३ जिह्वा ४ नासिका ५

कर्म्मेन्द्रियाणि पञ्च यथा । वाक् १ पाणि २ पाद ३ पायु ४ उपस्थ ५ । अन्तरिन्द्रियाणि चत्वारि । मनः १ बुद्धिः २ अहङ्कारः ३ चित्त ४ ॥ मनस्तावदिन्द्रियाणा नियामकम् । चतुर्द्दश देवा चतुर्द्दशेन्द्रियनियन्तार । तत्र श्रोत्रस्य देवता दिक् । त्वचो वातः । चक्षुषः सूर्य्य । रसनाया प्रचेता घ्राणस्याश्विनौ । वाचो वह्नि । हस्तस्य इन्द्र । पादस्य विष्णुः । पायोर्मित्र । उपस्थस्य प्रजापतिः । मनसश्चन्द्र । बुद्धेश्चतुर्मुखः । अहङ्कारस्य शङ्कर । चित्तस्याच्युतः । इति वेदान्तः ॥ न्यायमते । पृथिव्या इन्द्रिय घ्राण । जलस्य जिह्वा । तेजसश्चक्षु । वायोस्त्वक् । आकाशस्य कर्णः । (अथ बुद्धेर्ब्रह्मा । अहङ्कारस्येश्वर । मनसश्चन्द्रमाः । दिश श्रोत्रस्य । त्वचो वायु । सूर्य्यश्चक्षुषो । रसनस्याप । पृथिवी घ्राणस्य । वचसोऽग्निः । हस्तयोरिन्द्रः । पादयोर्विष्णु । पायोर्मित्र । प्रजापतिरुपस्थस्येति । इति सुश्रुतः ॥ ) ( यथा, मनु । २ । ८८ । “इन्द्रियाणा विचरता विषये ष्वपहारिषु” ।
विज्ञानम् । यथा, ऋग्वेदे १ । १११ । २ ।
“यथा क्षयाम सर्व्ववीरया विशातन्त शर्द्धाय धासथास्विन्द्रियम्” । “इन्द्रिय विज्ञानम” इति दयानन्दभाष्यम् ।) शुक्रम् । वीर्य्यम् । इत्यमर ॥

इन्द्रियस्वाप, पु, (इन्द्रियस्य स्वाप सम्यक् निरोधः ।) प्रलय । इति राजनिर्घण्टः ॥

इन्द्रियायतन, क्ली, (इन्द्रियाणा आयतनमाश्रयस्थानम् ।) शरीरम् । इति हेमचन्द्र ॥

इन्द्रियार्थ, पुं, (इन्द्रियाणामर्थः ।) इन्द्रियजन्यज्ञानविषय । यथा । रूप । शब्द । गन्धः । रस । स्पर्श । तत्पर्य्याय । विषय २ गोचर ३ । इत्यमर ॥ (यथा, मनु । ४ । १६ ।
“इन्द्रियार्थेषु सर्व्वेषु न प्रसज्जेत कामत” ।
“अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थाद्
यशोधनानां हि यशो गरीय ” ।
इति रघु । १४ । ३५ ।)

इन्द्रेज्य, पु, (इन्द्रस्य इज्य ।) वृहस्पति । इति शब्दरत्नावली ॥

इन्ध ई ध ङ ञि दीप्तौ । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (रुधा-आत्म-अक-सेट् ।) ङ्खादिः । ई ञि इन्धोऽस्ति । ङ ध इन्धे । इति दुर्गादासः ॥

इन्धन, क्ली, (इन्धे दीप्यतेऽग्निरनेन । इन्ध + करणे + ल्युट् ।) अग्निसन्दीपनतृणकाष्ठादि । जालानी काठ इति भाषा । तत्पर्य्यायः । इध्मम् २ एध ३ समित् ४ एधम् ५ । इत्यमरः ॥ समिन्धनम् ६ । इति शब्दरत्नावली ॥ (यथा, मनुः । ७ । ११८ ।
“अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात्” ।)

इन्वका, स्त्री, इल्वलाः । मृगशिरोनक्षत्रोपरिस्थितपञ्चतारा । इत्यमरटीकायां स्वामी ॥

इभ, पुं, स्त्री, (एति गच्छतीति । इण मन् । औणादिकोऽय प्रत्यय ।) हस्ती ।
(“खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा” ।
इति मनुः । ११ । ६८ । यथा, उत्तरचरिते ।

"इभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्ध" ।)
उत्तरपदे श्रेष्ठवाचकः । इत्यमरः ॥

इभकणा, स्त्री, (इभो हस्तीव कणा ।) गजपिप्पली । इति रत्नमाला ॥ ("कर्पूरं जातिकोष सजल-मिभकणा तेजपत्र लवङ्गम्" । इति वैद्यकरसेन्द्रसारसंग्रहः ।)

इभदन्ता, स्त्री (इभस्य दन्त इव । इभदन्त + टाप् ।) नागदन्तीवृक्षः । इति रत्नमाला ॥ ( नागदन्ती-शब्देऽस्या गुणादयो ज्ञेयाः ।)

इभनिमीलिका, स्त्री, ( इभस्य हस्तिन इव निमीलिका ।) वैदग्धी । भङ्गिः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

इभपालकः, पुं, (इभाना पालक ।) हस्तिपक । इति हेमचन्द्र ॥ माऊत् इति भाषा ।

इभमाचलः, पुं, (इभमाचालयति । इभ + आङ् + चल + णिच् + बाहुलकात् ख ।) सिंह । इति भूरिप्रयोगः ॥

इभषा, स्त्री, (इभ + षा + क + टाप् ।) स्वर्णक्षीरीवृक्षः । इति रत्नमाला ॥

इभाख्यः, पुं, (इभस्य आख्या यस्मिन् । ) नागकेशर-वृक्षः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

इभोषणा, स्त्री, इभकणा । गजपिप्पली । इति शब्द-चन्द्रिका ॥ (गजपिप्पलीशब्देऽस्या विवरणम् ज्ञेयम् ।)

इभ्यः, त्रि, (इभमर्हतीति दण्डादित्वात् यत् ।) धनवान् । इत्यमरः ॥ (पुं, राजा । हस्तिपकः ।) (यथा छान्दोग्योपनिषदि ।१।१०। "उषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास । सहेभ्यम् कुल्माषाण्खादन्त बिभिक्षे" ।)

इभ्या, स्त्री, हस्तिनी । शल्लकी । इति मेदिनी ॥

इय, स्त्री, इदम् शब्दस्य स्त्रीलिङ्गे प्रथमाया रूप । एइ स्त्री इति भाषा । इति व्याकरणम् ॥

इयत्, त्रि, ( इदम् परिमाणमस्य । इदम् + वतुप् वस्य यः ।) कियत्संख्यावोधकम् । इति व्याकरणम् ॥ एतो इति भाषा । (यथा, रघुवंशे ।१३।६७।

"इयन्ति वर्षाणि तया सहोग्र
मभ्यस्यतीव व्रतमासिधारम्" ।)

इयत्ता, स्त्री, (इयत् + तल् ।) इयतो भावः । सीमा । परिमाणम् । सङ्ख्या । इत्यादि ॥
("अमेय तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया" । इति रघुवंशे । १० । ३२ ।)

इरण, त्रि, ईरिण । शून्य । ऊषरभूमि । इत्यमर-टीकायां रमानाथः ॥

इरम्मदः, पुं, (इरया उदकेन माद्यति दीप्यते अधिन्यसात् इति उग्रम्पश्येरम्मदेत्यादिना खश्प्रत्ययो मुमागमश्च निपातितः ।) वज्राग्निः । तत्पर्य्याय । मेघज्योतिः २ । इत्यमरः ॥ मेघाग्नि ३ । इति जटाधरः ॥ अन्योन्यसङ्घट्टनेन मेघाग्नि इत्य यज्ज्योतिर्वृक्षादौ पतति सः । मेघेषूपलक्षण वात-गामिरपि । इति भरत ॥

इरा, स्त्री, ( इं कामं राति ददाति इति । इ + रा + क । यद्वा एतीति इ + रन् + टाप् निपातनात् गुणाभावः । ) भूमिः । वाक्यम् । मद्यम् । जलम् । इत्यमरः । (यथा, आश्वलायनगृह्यसूत्रे । २ । ९ ।

"इरा वहन्ती घृतमुक्षमाणा
मित्रेण साकं सह संविशन्तु" ।)

सरस्वती । इति शब्दरत्नावली ॥ ( अन्नम् । ) कश्यपपत्नीविशेषः ।
यथा, गारुडे ६ अध्याये ॥
"धर्म्मपत्न्यः समाख्याता कश्यपस्य वदाम्यहम् ।
अदितिर्दितिर्दनुः काला अनायु सिंहिका मुनि ।
कद्रु प्राधा इरा क्रोधा विनता सुरभि खशा" ।
तस्याः सृष्टिर्यथा ।
"इरा वृक्षलता वल्ली तृणजातिश्च सर्व्वश ।
खशा च यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा" ।
(दैत्यविशेष । यथा, हरिवंशे । ३ । ८२ ।
"मरीचिर्मघवांश्चैव इरा शङ्कुशिरा वृक" ।)

इराचर, क्ली, ( इराया चरतीति । इरा + चर् + ट ।) करका । इति त्रिकाण्डशेष ॥ वृष्टिर शील इति भाषा । जलचरे भूचरे च त्रि ॥

इराज, पु, (इरया मद्येन जायते इति । इरा + जन् + ड ।) कन्दर्पः । इति हलायुधः ॥

इरावती, स्त्री, ( इरा विद्यतेऽस्या इति । इरा + मतुप् ।) वटपत्रीवृक्ष । पाषाणभेदीविशेष । इति राजनिर्घण्ट ॥ (नदीभेदः । यथा, महाभारते ।
"विपाशा च शतद्रुश्च चन्द्रभागा सरस्वती ।
इरावती वितस्ता च सिन्धुर्देवनदी तथा" ॥

इरिणं, क्ली, ( ऋच्छतीति । ऋ गतिप्रापणयो, किदिचेति इनन् ।) शून्यम् । ऊषरभूमि । इत्य-जय ॥ (यथा, मनु । ३ । १४२ । )
"यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्" ।)

इरिमेद , पुं, (इरिणो हस्तिनो मेद इव मेदो यस्य ।) अरिमेद । विट्खदिर । इति शब्दरत्नावली राजनिर्घण्टश्च ॥
("इरिमेदो विट्खदिरः कालस्कन्धोऽरिमेदक" । इति पर्य्याय । अस्य गुणा यथा भावप्रकाशे ।
"अरिमेद कषायोष्णो मुखदन्तगदास्रजित् ।
हन्ति कण्डूविषश्लेष्मकृमिकुष्ठविषव्रणान्" ॥)

इरिवेल्लिका, स्त्री, मस्तकोद्भवव्रणजन्यपीड़ाविशेष । तस्य लक्षणम् ।
"पिडकामुत्तमाङ्गस्था वृत्तामुग्ररुजाज्वराम् ।
सर्व्वात्मिका सर्व्वलिङ्गा जानीयादिरिवेल्लिकाम्" ॥
इति निदानम् ॥ चिकित्सा यथा ।
"पैत्तिकस्य विसर्पस्य या चिकित्सा प्रकीर्त्तिता ।
तयैव भिषगेताश्च चिकित्सेदिरिवेल्लिकाम्" ॥
इति भावप्रकाशः ॥ (तथा च वाभटः ।
"त्रिलिङ्गा पिटिका वृत्ता जत्रूर्द्ध्वमिरिवेल्लिका" ।
"इरिवेल्लिका गन्धनामा जयेत्पित्तविसर्पवत्" ।
इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहे । )

इरेशः, पुं, (इरायाः ईशः । ) विष्णुः । इति शब्द-रत्नावली ॥ राजा । वागीशः । वरुणः ॥

इर्व्वारुः, पुं, स्त्री, (उर्व्व + आरु । पृषोदरादित्वात् साधुः ।) कर्कटी । इत्यमर ॥ कांकुड़ इति भाषा । अस्य गुणाः । स्वादुत्वम् । गुरुत्व । अजीर्ण-कारित्वम् । शीतलत्वञ्च । तत्पक्वस्य गुणाः । दाह-तृड्दाहक्लान्तिनाशित्वम् । इति राजवल्लभः ॥
(कर्कटीशब्देऽस्य विशेषो ज्ञातव्यः ।)

इर्व्वारुशुक्तिका, स्त्री, (इर्व्वारु शुक्तिकेव स्वयं स्फोटनात् ।) इर्व्वारुविशेष । इति हारावली ॥ फुटी इति भाषा ।

इर्व्वालु, पु, (इर्व्व + आरु । रलयोरैक्यात् ।) इर्व्वारु । इत्यमरटीकायां रायमुकुट ॥

इल, श शये, गतौ । क्षेपे । इति कविकल्पद्रुम ॥ ( तुदां-पर-सक-शयने, अकं-सेट् । ) श इलति । शय शयन । इति दुर्गादास ॥

इल, क क्षेपे । इति कविकल्पद्रुम ॥ ( चुरां-उभ-सक-सेट् ।) क्रखादि । क एलयति । इति दुर्गादासः ॥

इलविला, स्त्री, कुबेरमाता । सा च विश्रव पत्नी । इति पुराणम् ॥

इला, स्त्री, (इलति विष्णुवरात् पुस्त्व प्राप्नोति इति । इल + क + टाप् । ) वैवस्वतमनुकन्या । सा च विष्णुवरात् पुंस्त्व प्राप्य सुद्युम्ननाम्ना ख्याता । पश्चात् शङ्करशप्तकुमारवन प्रविश्य पुन स्त्रीत्व गता । बुधस्ता भार्य्यात्वेन स्वीकृत्य पुरूरवसं जनयामास । ततस्तस्या पुरोहितो वशिष्ठः शङ्करमाराध्य तस्यै मास स्त्रीत्व मासं पुंस्त्व दत्तवान् इति श्रीभागवत ॥ कर्द्दमप्रजापतिपुत्त्र इलः कार्त्तिकेयजन्मदेशं प्रविश्य स्त्री भूत्वा इलानाम्ना ख्यातः तत पार्व्वतीमाराध्य मासं स्त्रीत्वं मास पुंस्त्वञ्च प्राप्तवान् । इति रामायणं ॥ पृथिवी । गौ । वाक्य । इति मेदिनी ॥

इलावृतं, क्ली, ( इलया आवृतं । ) जम्बुद्वीपस्य नव-वर्षान्तर्गतवर्षविशेष । इति त्रिकाण्डशेष । तच्च सुमेरुपर्व्वत संवेष्ट्यास्ते । तस्य सीमा उत्तरे नीलपर्व्वत । दक्षिणे निषध । पश्चिमे माल्य-वान् । पूर्व्वे गन्धमादनपर्व्वत । इति श्रीभागवतम् ॥ अग्नीध्रस्य स्वनामख्यातः पुत्त्र स तु पितु सकाशात् इलावृत नाम वर्षमलभत । यदुक्तं विष्णुपुराणे । २ । १ । १६, १७, १८ ।
"जम्बुद्वीपेश्वरो यस्तु अग्नीध्रो मुनिसत्तम ।
तस्य पुत्रा बभूवुस्ते प्रजापतिसमा नव ॥
नाभि किम्पुरुषश्चैव हरिवर्ष इलावृतः ।
रम्यो हिरण्वान् षष्ठस्तु कुरुर्भद्राश्व एव च ॥
केतुमालस्तथैवान्यः साधुचेष्टो नृपोऽभवत्" ॥)

इलिका, स्त्री, ( इला एव । इला + स्वार्थे कन् + टाप् । ) पृथिवी । इति शब्दरत्नावली ॥

इली, स्त्री, (इल गतौ क्षेपणे च इति, कृदिकारादिति वा ङीष् । ) ईली । करपालिका । इत्य-मरटीकाया रायमुकुट ॥ हालकुरि इति भाषा ।

इलीशः, पुं, ( इलन्ति अप्सु द्रुतं गच्छन्ति इति इला द्रुतगामिनो मत्स्याः । इल + क । तेषां ईशः । ) स्वनामख्यातमत्स्यविशेषः । इति शब्दरत्नावली ॥
("इलीशो जितपीयूषो वाचा वाचामगोचरः ।
रोहितो नो हितः प्रोक्तो मद्गुरो मद्गुरो प्रिय" ॥
इत्युद्भट ।
"इलीशो मधुरः स्निग्ध पित्तश्लेष्माग्निमान्द्यकृत्" ।
इति वैद्यकमत्स्यसूक्त ॥)

इल्लल, पुं, पक्षिविशेषः। इति शब्दचन्द्रिका॥

इल्लिश, पु, इलीशमत्स्य। तत्पर्य्याय। वारि-कर्पूर २ गाङ्गेयः ३ शफराधिप ४ जलताल ५। इति त्रिकाण्डशेषः॥ इलीशः ६ राजशफरः ७ इल्लीश ८ जलतापी ९। इति शब्दरत्नावली॥ अस्य गुणा। पित्तश्लेष्माग्निवृद्धिकारित्वम्। मधुरत्वम्। हृद्यत्वञ्च। इति राजवल्लभराजनिर्घण्टौ॥ "इल्लिशो मधुर स्निग्धो रोचनो वह्निवर्द्धन। पित्तहृत् कफकृत् किञ्चित् लघुर्वृष्योऽनिलापह"॥ इति भावप्रकाश॥

इल्वका, स्त्री, इल्वलाः। नित्यबहुवचनान्तशब्दोऽय। इति भरतो द्विरूपकोषश्च॥

इल्वल, पुं, (इल्+वलच्। निपातनात् गुणाभावः।) दैत्यविशेष। स च वातापेर्भ्राता। (स च सिंहिकासुत। यथा, हरिवंशे। ३य अध्याये। "सैंहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबला।९८। ऐश बल्यश्च बलिनौ नमश्चैव तथाबल। वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वल खसृमस्तथा" ॥९९॥ तस्य विवृतिर्यथा महाभारते तीर्थयात्रापर्व्वणि अगस्त्योपाख्याने ९६ अध्याय।

लोमश उवाच।

"इल्वलो नाम दैतेय आसीत्कौरवनन्दन। मणिमत्या पुरि पुरा वातापिस्तस्य चानुज।४। स ब्राह्मण तपोयुक्तमुवाच दितिनन्दन। पुत्त्र मे भगवानेकमिन्द्रतुल्य प्रयच्छतु॥५॥ तस्मिन् स ब्राह्मणो नादात् पुत्त्र वासवसम्मितम्। चुक्रोध सोऽसुरस्तस्य ब्राह्मणस्य ततो भृशम्॥६॥ तदा प्रभृति राजेन्द्र इल्वलो ब्रह्महासुर। मन्युमान् भ्रातर छाग मायावी ह्यकरोत्ततः॥७॥ मेषरूपी च वातापी कामरूप्यभवत् क्षणात्। सस्कृत्य च भोजयति ततो विप्र जिघांसति॥८॥ स आह्वयति य वाचा गत वैवस्वतक्षयम्। स पुनर्देहमास्थाय जीवन् समत्यदृश्यत॥९॥ ततो वातापिमसुर छाग कृत्वा सुसस्कृतम्। त ब्राह्मण भोजयित्वा पुनरेव समाह्वयत्॥१०॥ तामिल्वलेन महता स्वरेण वाचमीरिताम्। श्रुत्वातिमायो बलवान् क्षिप्र ब्राह्मणकण्टक॥११॥ तस्य पार्श्वं विनिर्भिद्य ब्राह्मणस्य महासुरः। वातापि प्रहसन् राजन् निश्चक्राम विशाम्पते॥१२॥ एव स ब्राह्मणान् राजन् भोजयित्वा पुन पुन। हिंसयामास दैतेय इल्वलो दुष्टचेतन॥१३॥ अगस्त्यश्चापि भगवानेतस्मिन् काल एव तु। पितॄन् ददर्श गर्त्ते वै लम्बमानानधोमुखान्॥१४॥ तत ९९ अध्याये इल्वलेन अगस्त्यातिथ्य कृतम्॥ यथा,—

लोमश उवाच।

"इल्वलस्तान् विदित्वा तु महर्षिसहितान् नृपान्। उपस्थितान् सहामात्यो विषयान्ते ह्यपूजयत्।१। तेषा ततोऽसुरश्रेष्ठस्त्वातिथ्यमकरोत् तदा। सुसस्कृतेन कौरव्य भ्रात्रा वातापिना तदा।२। ततो राजर्षय सर्व्वे विषण्णा गतचेतस। वातापि सस्कृत दृष्ट्वा मेषभूत महासुरम्।३। अथाब्रवीदगस्त्यस्तान् राजर्षीनृषिसत्तम। विषादो वो न कर्त्तव्यो ह्यह भोक्ष्ये महासुरं।४। धुर्य्यासनमथासाद्य निषसाद महामुनिः। त पर्य्यवेशयद्दैत्येन्द्रः इल्वल प्रहसन्निव।५। अगस्त्य एव कृत्स्नन्तु वातापि बुभुजे तत। भुक्तवत्यसुराह्वानमकरोत्तस्य चेल्वल।६। ततो वायु प्रादुरभूत् अधस्तस्य महात्मनः। शब्देन महता तात गर्ज्जन्निव यथा घन।७। वातापे निष्क्रमस्वेति पुन पुनरुवाच ह।८। त प्रहस्याब्रवीत् राजन् अगस्त्यो मुनिसत्तमः। कुतो निष्क्रमितु शक्तो मया जीर्णस्तु सोऽसुर ९। इल्वलस्तु विषण्णोऽभूद्दृष्ट्वा जीर्ण महासुरम्। प्राञ्जलिश्च सहामात्यैरिद वचनमब्रवीत्।१०।) मत्स्यविशेष। इति मेदिनी॥

इल्वला, स्त्री, (इल+वलच्।) मृगशिरोनक्षत्र-शिरो देशस्थिताः पञ्चतारा। इत्यमरः॥ (नित्य-बहुवचनान्तोऽयम्।)

इव, इ, व्याप्तौ। (इदित्-भ्वादि--पर-सक-सेट्।) प्रीणने। इति कविकल्पद्रुमः॥ ऋस्वादि। इ इन्व्यते। दन्त्यवकारपरत्वान्नानुस्वार। प्रीणनं केचिन्न मन्यते। इति दुर्गादास॥

इव, व्य, सादृश्यम्। साम्यम्। इत्यमरः॥ (यथा, रघौ।१।१। "वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। जगत पितरौ वन्दे पार्व्वतीपरमेश्वरौ"॥) (उत्प्रेक्षा। यथा, साहित्यदर्पणे १० परिच्छेदे। "मुखमेणीदृशो भाति पूर्णचन्द्र इवापर"।) ईषत्। वाक्यालङ्कार। (यथा, शाकुन्तले १ अङ्के। "किमिव हि मधुराणां मण्डन नाकृतीनाम्"। एवार्थ। यथा, ऋग्वेदे १।१८४।३। "श्रिये पुषन्निषुकृतेव देवा" "इवशब्द एवार्थे" इति भाष्यम्। अवधारणार्थ। यथा, शतपथब्राह्मणे भद्त्रेव तु ईश्वरा" "इवशब्दोऽवधारणार्थ इति भाष्यम्।)

इशीका, स्त्री, इषीका। गजचक्षुर्गोलक। इत्य-मरटीकाया भरत॥

इष य सर्पणे। गतौ। इति कविकल्पद्रुम॥ (दिवा-पर-सक सेट्।) ऋस्वादिः। य इष्यति। सर्पण गति। इति दुर्गादास॥

इष उ श वाञ्छे। इति कविकल्पद्रुम॥ (तुदा-पर-अक-सेट्। उ एषित्वा इष्ट्वा। वेमसह-लुभेत्यादिसूत्रेणैवेष्टसिद्धेऽप्यस्योदनुबन्धकृतसूत्रे इ षगाभीक्ष्ण्ये इष्य सर्पणे इत्येतयोरप्राप्तये विशे षणार्थ। न च यिवादियहणवत्तत्र इच्छ इति ग्रहणेनैवेष्टसिद्धिरिति वाच्य लाघवाभावे प्राचीन-मतस्यैव न्याय्यत्वात्। श इच्छती इच्छन्ती। अस्यैव इच्छादेश। इच्छति धन लोक। इति दुर्गादासः॥

इष ग आभीक्ष्ण्ये। पौन पुन्येन करणे। इति कवि-कल्पद्रुमः॥ (क्र्यादि-पर-अक-सेट्।) ग इष्णाति पण्डित। पुण्य पुन पुन करोतीत्यर्थ। इति दुर्गादास॥

इष, पुं, (इष्यते गम्यतेऽस्मिन् जिगीषुभिरिति। इष+क।) आश्विनमास। इत्यमर॥ (यथा, शतपथब्राह्मणे।४।३। "यच्छरद्दूर्जस्य ओषधय पच्यन्ते ते ने द्वैताविषस्योर्गस्य"। इषर्जौ शरत्" इति सुश्रुत॥)

इषिका, स्त्री, (इष्+क्वुनादिभ्यो वुन्।) इषीका गजचक्षुर्गोलक। तुलिका। इत्यमरटीकायां राय मुकुट॥

इषिर, पु, (इष्यति गच्छतीति। इष+किरच्।) अग्नि। इत्युणादिकोषः॥ (गमनशीले, त्रि, यथा, ऋग्वेदे।७।३५।४। "श न इषिरो अभिवा-तात"। "इषिरः गतिशीलः" इति भाष्यम्।)

इषीका, स्त्री, (ईष्यते इति। ईषेः कित् ह्रस्व श्चेतीकन् ह्रस्वश्च।) गजाक्षिकूटक। हस्तिचक्षु-र्गोलक। इत्यमर॥ तूलिका। इति रायमुकुट॥ काशतृण। इति हेमचन्द्र॥ ("पताकाना पुच्छेषु त्वयेषीका प्रवेशिता"। "इषीकाञ्च यथा मुञ्जात् कश्चित् निष्कृष्य दर्शयेत्। योगी निष्कृष्य चात्मान तथा पश्यति देहतः"। इति च महाभारते। "तस्मिन्नास्थदिषीकास्त्र रामो रामावबोधितः"। इति रघु १२।२३"। इषीकास्त्र काशास्त्र "इषीका काशमुच्यते" इति हलायुध। इति तट्टीका।)

इषुः, पुं, स्त्री, (इष्यति गच्छतीति। इष्+उ।) बाणः। इत्यमर॥ ("उत्कर्ष स च धन्विना यदिषव सिध्यन्ति लक्ष्ये चले"। इति शाकुन्तले २ अङ्के।)

इषुधि, स्त्री, (इषवो धीयन्तेऽस्मिन्। इषु+धा कि।) तूणः। इत्यमर॥ ("धनुर्गाण्डीवमादाय तथाक्षय्ये महेषुधी"। इति महाभारते १।२९।)

इषुपुङ्खा, स्त्री, शरपुङ्खावृक्ष। इति राजनिर्घण्ट॥

इष्टि, स्त्री, (इज्यते इष्यते वा यज इष वा+भावे क्त।) यज्ञादिकर्म्म। (यथा, हेमचन्द्र। "अग्निहोत्र तप सत्य वेदाना चार्थपालनम्। आतिथ्य वैश्यदेवञ्च इष्टमित्यभिधीयते"॥) यथेप्सित। काम। इत्यमर॥ संस्कारः। इति मेदिनी॥

इष्ट, त्रि, (इष्यते इज्यते वा यत् तत्। इष यज वा+कर्म्मणि क्त।) आशंसितम्। वाञ्छितम्। पूजितम्। प्रिय। इति मेदिनी॥ (यथा, महाभारते। "उपपन्नो गुणैरिष्टै रूपवानश्वकोविदः"। मनु।४।२२९। "तिलप्रद प्रजामिष्टा दीपदश्चक्षुरुत्तमम्"।)

इष्ट, पु, (इज्यते यः। यज्+क्त।) यज्ञ। इति मेदिनी॥ एरण्डवृक्ष। इति शब्दचन्द्रिका॥ (शमीशब्देऽस्य गुणादिक बोद्धव्यम्॥)

इष्टका, } स्त्री, (इष+तकन्+टाप्।) गृहादि-
इष्टिका, } निर्म्माणार्थदग्धमृत्तिकाखण्डः। इति चितिव्यवहारे लीलावती। इट इति भाषा। तद्गृहगुणा। "कूपोदक वटच्छाया श्यामा स्त्री इष्टकालयम्। शीतकाले भवेदुष्णमुष्णकाले च शीतलम्"॥ इति चाणक्यम्॥ *॥ तद्रचितस्थाने पितृकर्म्मनि-

मेधो यथा। शङ्खलिखितौ। नेष्टकार्य्यचिते पितॄन् सन्तर्पयेत्। इति श्राद्धतत्त्वम्॥ देवोद्देश्यकेष्टकामयज्ञद्दानफलं यथा। मठादिप्रतिष्ठातत्त्वे॥

"इष्टमयात् कोटिगुणितफलं स्यात् दारुभि कृते।
कोटिकोटिगुणं पुण्यफलं स्यादिष्टकामये॥
द्विपरार्द्धगुणं पुण्यं शैलजे तु विदुर्ब्बुधाः।
मृच्छिलयोः सम श्रेय फलमाढ्यदरिद्रयोः"॥

इष्टकापथं, क्ली, (इष्टकापथः यस्य अधोवायुकरत्वात्।) वीरणमूलम्। इत्यमरः॥ (इष्टकाभिर्निर्म्मित पन्थाः।) इष्टकानिर्म्मितपथे, पुं॥

इष्टगन्ध, क्ली, (इष्टो गन्धो यस्येति।) बालुका। इति मेदिनी॥

इष्टगन्धः, त्रि, (इष्टो गन्धो यस्य।) सुगन्धिद्रव्यम्। इत्यमरः॥ (इष्टश्चासौ गन्धश्चेति वाक्ये। सौरभम्।)

इष्टा, स्त्री, (इज्यतेऽनया। यज+क्त टाप्।) शमीवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥

इष्टापूर्त्तं, क्ली, (इष्टञ्च पूर्त्तञ्च द्वयोः समाहारः।) यज्ञखातादिकर्म्म। इति हेमचन्द्रः॥ यथा।

"अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानाञ्चानुपालनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवञ्च इष्टमित्यभिधीयते॥
वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामाः पूर्त्तमित्यभिधीयते"॥

इति मलमासतत्त्वधृतजातूकर्ण्यः॥ (यथा, मार्कण्डेयपुराणे १८।६।

"इष्टापूर्त्तविनाशाय तद्राज्ञश्चौरधर्म्मिणः"॥

तथा च महाभारते। ३। ३२। ३०।

"इष्टापूर्त्तफलं न स्यात् न शिष्यो न गुरुर्भवेत्"।)

इष्टार्थोद्युक्तः, त्रि, (इष्टोऽर्थस्तस्मिन् उद्युक्तः।) उत्सुकः। उत्साहयुक्तः। इत्यमरः॥

इष्टिः, स्त्री, (इष्, यज् वा+क्तिन्।) अभिलाषः। (इति भाष्यकारेष्ट्या गतार्थत्वात्। इति पाणिनि।) यागः। इत्यमरः॥ (यथा, रघुः १०।४।

"आरेभिरे जितात्मानः पुत्त्रियामिष्टिमृत्विजः"।
"प्राजापत्यं निरूप्येष्टिं सर्व्ववेदसदक्षिणाम्"।

इति मनुः।६।३८।) श्लोकसंग्रहः। इति मेदिनी॥

इष्टिकापथिकं, क्ली, लामज्जकतृणम्। इति राजनिर्घण्टः॥

इष्टिपचः, पुं, (इष्टिं यज्ञं पचतीति। यद्वा, इष्टये स्वेच्छार्थं पचति यः। इष्टि+पच+अच्।) दनुजः। असुरः। इति शब्दरत्नावली॥

इष्टिमुट्, [ष्] पुं, (इष्टिं यागं मुष्णाति। इष्टि+मुष्+क्विप्।) दैत्यः। इति त्रिकाण्डशेषः॥

इष्टुः, स्त्री, (इष+तु।) इच्छा। इत्युणादिकोषः॥

इष्मः, पुं, (इच्छतीति इषियुधीति मक्।) कामदेवः। वसन्तकालः। इति सिद्धान्तकौमुद्यामुणादिवृत्तिः॥

इष्यः, पुं, (इष्यतेऽनेन इति। इष्+क्यप्।) वसन्तकालः। इति हेमचन्द्रः॥

इष्वः, पुं, (इष्यतेऽसौ। इष्+वन्। निपातनात् गुणाभावः।) उपदेष्टा। इत्युणादिकोषः॥

इष्वासः, त्रि, (इषून् बाणान् अस्यतीति। इषु+अस्+घञ्।) इषुक्षेपकम्। इति मेदिनी॥ तिरन्दाज इति ख्यातम्।

इष्वासः, पुं, (इषवो बाणा अस्यन्ते क्षिप्यन्तेऽनेन इषु+अस्+करणे घञ्।) धनुः। इत्यमरः॥ ("महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः"। इति रामायणे। १। १। १०। गीतायां १।४।

"अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्ज्जुनसमा युधि"।)

इह, अव्य, (अस्मिन् काले, लोके, विषये, देशे, दिशि वा इदमर्थे निपातनात् सिद्धम्।) अस्मिन्। एइ देशे एइ काले इत्यादि भाषा। इति व्याकरणम्॥ (यथा, मनुः ३।१८१।

"यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद्भवेत्"।
"षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता"।

इति हितोपदेशे।)

इहामुत्रफलभोगविरागः, पुं, (इह अस्मिन् लोके स्रक्चन्दनादिजनितोऽमुत्रामुष्मिन् लोके अमृतादिविषयोत्पन्नो योऽनित्यः फलभोगस्तस्मात् विरागो नितरां विरतिः।) ऐहिकपारत्रिकविषयभोगेभ्यो नितरां विरतिः इति वेदान्तसारे॥

---

## ई

ई दीर्घ ईकारः। चतुर्थस्वरवर्णः। अस्योच्चारणस्थानं तालु। (स च दीर्घः द्विमात्रत्वात् त्रिमात्राश्रयत्वात् प्लुतश्च भवति।) (विस्तृतिस्तु ह्रस्वइकारे द्रष्टव्या।)

"ईकारं परमेशानि स्वयं परमकुण्डली।
ब्रह्मविष्णुमयं वर्णं तथा रुद्रमयं सदा॥
पञ्चदेवमयं वर्णं पीतविद्युल्लताकृतिम्।
चतुर्ज्ञानमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा"॥

इति कामधेनुतन्त्रम्। (वङ्गीयभाषायाः।) तस्य लेखनप्रकारो यथा।

"ऊर्द्ध्वाध कुञ्चिता मध्ये त्रिकोणाधोगता पुनः।
अधोगता कोणशीर्षा कुञ्चिता दक्षतः शुभा॥
शीर्षाद्दक्षे कोणयुता कुञ्चितोर्द्ध्वगता पुनः।
चन्द्रसूर्य्याग्निरूपा सा मात्राशक्तिः प्रकीर्त्तिता"॥

इति वर्णोद्धारतन्त्रम्॥ अस्य नामानि यथा,—

"ई स्त्रीमूर्त्तिर्म्महामाया लोलाक्षी वामलोचनम्।
गोविन्दः शेखरः पुष्टिः सुभद्रा रतिसञ्ज्ञकः॥
विष्णुर्लक्ष्मीः प्रहासश्च वाग्विशुद्धः परात्परः।
कालोत्तरीयो भेरुण्डा रतिश्च पौण्ड्रवर्द्धनः॥
शिवोत्तमः शिवा तुष्टिश्चतुर्थी विन्दुमालिनी।
वैष्णवी वैन्दवी जिह्वा कामकला सनादका॥
पावकः कोटरः कीर्त्तिर्म्मोहिनी कालकारिका।
कुचद्वन्द्वं तर्ज्जनी च शान्तिस्त्रिपुरसुन्दरी"॥

इति तन्त्रोक्तवर्णाभिधानम्॥ (मातृकान्यासे ऽस्य वामचक्षुषि स्थानम्। यथा, मातृकान्यासधृतमन्त्रे। "इं नमो दक्षिणचक्षुषि ईं नमो वामचक्षुषि।)

ई, ल, कान्तौ। गतौ। व्याप्तौ। क्षेपे। प्रजने। खादने। इति कविकल्पद्रुमः॥ (अदां-पर-सक-अकं च-अनिट्।) कान्तिरिच्छा। प्रजनो गर्भग्रहणं इत्यर्थः। ल एति गौ गर्भं गृह्णाति इत्यर्थः। "न हि तरणिरुदीते दिक् पराधीनवृत्तिः"। इति गणकृतानित्यत्वादात्मनेपदं। धातुरयं कैश्चिन्न मन्यते। इति दुर्गादासः॥

ई, ङ य, गतौ। इति कविकल्पद्रुमः॥ (दिवा-आत्म-सक-अनिट्।) ङ य ईयते। इति दुर्गादासः॥

ई, अव्य, विषादः। अनुकम्पा। इति मेदिनी॥ क्रोधः। दुःखभावनं। प्रत्यक्षं। सन्निधिः। इति हेमचन्द्रः॥ (सम्बोधनम्।)

ई, पुं, कन्दर्पः। इति त्रिकाण्डशेषः॥

ई, स्त्री, (अस्य विष्णोः पत्नी। ङीप्।) लक्ष्मीः। इति विश्वमेदिन्यौ॥

ईख, इ गतौ। इति कविकल्पद्रुमः॥ (इदित्-भ्वादि-पर-सक-सेट्।) दीर्घादिः। इ ईङ्खते। इति दुर्गादासः॥ (ईख गतौ। ईखति इति केचित्।)

ईक्ष ङ दर्शने। इति कविकल्पद्रुमः॥ (भ्वादिं-आत्म-सक-सेट्।) दर्शनमिह चाक्षुषज्ञानं प्रणिधानञ्च। ङ ईक्षते चन्द्रं लोकः। "न कामवृत्तिर्व्वचनीयमीक्षते"। इति कालिदासः॥ "निरीक्षिष्यामि यान्मुनीन् इति गणकृतानित्यत्वात्" इति रमानाथः॥ "वस्तुतस्तु निरीक्षते निरीक्षः पचादित्वादच् ततो निरीक्ष इवाचरतीति क्विपि साध्यः" इति दुर्गादासः॥

ईक्षणं, क्ली, (ईक्ष+भावे, ल्युट्।) दर्शनम्। ("स्नेहान्धा धनलोभान्धाः नोपकारेक्षणक्षमाः"। इति कथासरित्सागरे।) (ईक्ष्यतेऽनेनेति करणे ल्युट्।) चक्षुः। इत्यमरः॥ ("अभिमुखे मयि संहृतमीक्षणम्"। इति शाकुन्तले। २ अङ्के।

"श्वासक्षामेक्षणा दीना सुनीतिर्व्वाक्यमब्रवीत्"।

इति विष्णुपुराणे १।११।१५। निरूपणम्। पर्य्यवेक्षणम्। यथा, मनुः ७।१४१।

"स्थापयेदासने तस्मिन् खिन्नः कार्य्येक्षणे नृणाम्"।)

ईक्षणिका, स्त्री, (ईक्षणेन हस्तरेखाद्यवलोकनेन शुभाशुभं जानाति या। ईक्षण+ठन्+टाप्।) दैवज्ञा। लक्षणादिना शुभाशुभनिरूपिणी। इत्यमरः॥ (पुं, दैवज्ञः। यथा, मनुः ९।२५८।

"मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षणिकैः सह"।)

ईज, इ, कुत्से। गतौ। इति कविकल्पद्रुमः॥ (भ्वादि-आत्म-सक-सेट्-इदित्।) इ ईञ्जते। कुत्सं कैश्चिन्न मन्यते। इति दुर्गादासः॥

ईज, ङ, कुत्से। गतौ। इति कविकल्पद्रुमः॥ (भ्वादिं-आत्म-सकं-सेट्।) दीर्घादिः। ङ ईञ्जते ईजते। कुत्सः कैश्चिन्न मन्यते। इति दुर्गादासः॥

ईड, क, स्तुतौ। इति कविकल्पद्रुमः॥ (चुरां-पर-सक-सेट्।) क ईडयति। इति दुर्गादासः॥

ईड, ङ ल, स्तुतौ। इति कविकल्पद्रुमः॥ (अदां-आत्म-सकं-सेट्।) ल ङ ईट्टे। इति दुर्गादासः॥ (यथा, रामायणे। ३य काण्डे।

"गन्धर्व्वाः सुरसंघाश्च बहवश्च महर्षयः।
अन्तरीक्षगतं देवं गीर्भिरग्र्याभिरीडिरे"॥)

ईडा, स्त्री, (ईड+क+टाप्।) स्तुतिः। इति हलायुधः॥ (प्रशंसा।)

ईडितः, त्रि, (ईड्यते स्म। ईड्+क्त।) स्तुतः। स्तवः। इत्यमरः॥ (प्रशंसितः।)

ईत, ई बन्धे। ई ईन्त्यते। इति दुर्गादासः॥ (भ्वादि-पर-सक सेट्। तेन इन्ततीति केचित्।)

ईतिः, स्त्री, (ईयतेऽनया। ई+क्तिन्।) डिम्ब। प्रवास। इत्यमरो मेदिनी च॥ क्षेत्रे षट्प्रकारोपद्रवविशेष। यथा,—
"अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषिका खगाः।
प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः"॥
इति स्मृतिः॥ (कलहभेदः। नृपतिरहितयुद्धम्।
"ईतयो व्याधयस्तन्द्रा दोषा क्रोधादयस्तथा।
उपद्रवाश्च वर्त्तन्ते आधयः क्षुद्भयं तथा"॥
इति महाभारते हनूमद्भीमसंवादे।३।१४९।३४।)

ईदृक्, [श्] त्रि, (इदम्+दृश्+क्विप्।) अयमिव दृश्यते। इति व्याकरणम्॥ इहार न्याय एइ-प्रकार इत्यादि भाषा।
("रत्नानीदृशि भूयांसि न भवन्त्येव भूतले"।
इति कथासरित्सागरे।२५।१७६॥ तथा च किराते।२।२८॥
"इदमीदृगनीदृगाशयः प्रसभं वक्तुमुपक्रमेत कः"।

ईदृक्ष, त्रि, (अयमिव दृश्यतेऽसावित्यार्थे। इदम्+दृश्+क्स दृक्षे चेति ईश्।) ईदृश। इति व्याकरणम्॥
("ईदृक्षराजकर्म्माणि भवेयुस्तदिदं वयम्"।
इति कथासरित्सागरे।)

ईदृश, त्रि, (अयमिव दृश्यतेऽसौ इदम्+दृश्+कञ्।) ईदृक्। एतत्सदृश। इति व्याकरणम्॥
("ईदृशानां विपाकोऽपि जायते परमाद्भुतः"।
इति उत्तररामचरिते।)

ईर, कि गतौ। प्रेरणे। इति कविकल्पद्रुमः। (वा, चुरा-पर-सक-सेट्।) मुदि। कि ईरयति ईरति। मुदि प्रेरणे। इति दुर्गादासः॥

ईर, ङ ल, कम्पे। गतौ। इति कविकल्पद्रुमः॥ (अदा-आत्म सक कम्पार्थे, अक-सेट्।) दीर्घादि। ङ ल ईर्त्ते लता वायुना। इति दुर्गादासः॥

ईरिका, स्त्री, वृक्षविशेष। यथा। ईरिकावणम्। इति णत्वप्रकरणे दुर्गादासः॥

ईरिण, त्रि, (ऋ+इरन्।) शून्य। ऊषरभूमि। इति मेदिनी॥ (यथा, मनुः।३।१४२॥
"यथेरिणे वीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्॥
तथार्ऽचे हविर्दत्वा न दाता लभते फलम्"॥
"ततस्तदीरिणं जातं समुद्रस्यावसर्पित"।
इति महाभारते अनुशासनपर्व्वणि। चलन।)

ईरित, त्रि, (ईर+क्त।) क्षिप्तम्। इत्यमरः॥ प्रेरितम्। कम्पितम्। गतम्। कथितम्॥ ("इतीरिते वचसि वचस्विनामुना"। इति माघे।१७।१।
"तस्य वर्म्म विभिद्याशु स बाणो मत्सुतेरितः"।
इति, महाभारते।)

ईर्क्ष्य,ईर्ष्य। (भ्वादि-पर-अक-सेट्।) पराभ्युदयासहिष्णुतायामिति यावत्। इति कविकल्पद्रुमः॥ दीर्घादिः। रेफयुक्तः। ईर्षा परादोषासहिष्णुत्वमिति केचित्। ईर्क्ष्यति खलः साधवे। षष्ठयान्त इत्येके। इति दुर्गादासः॥

ईर्म्म, क्ली, (ईर+बाहुलकात् मक्।) व्रणः। इत्यमरः॥ (यथा, भट्टिकाव्ये।४।४४।
"मृगयुमिव मृगोऽथ दक्षिणेर्म्मा"।)

ईर्य्या, स्त्री, (ईर+ण्यत्।) भिक्षुव्रतम्। इति जटाधरः॥

ईर्व्वारुः, पु, स्त्री, (ईरं वृणोतीति। ईर+वृ-बाहुलकात् उण्।) स्फुटि। इति शब्दरत्नावली॥ फुटी इति भाषा।

ईर्षा, स्त्री, (ईर्ष्यणं। ईर्ष्य+घञ्। हलात्लोप इति यकारलोपः।) अक्षमा। इति शब्दमाला॥
("कथमीर्षां न कुरुषे सुग्रीवस्य समीपतः"।)
इति रामायणे॥४।२४।३०।)

ईर्षालु, त्रि, (ईर्षा+आलुच्।) ईर्षाविशिष्ट। इति हलायुधः॥

ईर्ष्य, ईर्ष्ये। इति कविकल्पद्रुमः॥ (भ्वादि-पर-अक-सेट्।) दीर्घादिः। रेफयुक्तः। ईर्ष इति ईर्ष्यस्य घञि हलात्लोप इति यलोपे सिद्धम्। ईर्षा पराभ्युदयासहिष्णुत्वम्। परदोषासहिष्णुत्वमिति केचित्। ईर्ष्यति खलः साधवे। षष्ठयान्त इत्येके। इति दुर्गादासः॥

ईर्ष्या, स्त्री, (ईर्ष्यणं। ईर्ष्य+अच्+टाप्।) परोत्कर्षासहिष्णुता। रीष इति भाषा। तत्पर्य्याय॥ अक्षान्तिः २। इत्यमरः॥ (यथा, मनु।७।४८॥
("पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गुणाष्टकः"।
स्त्रियः पत्युरन्यप्रियासङ्गदर्शनादिजनितो मानभेद। यथा, शृङ्गारशतके॥
"वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया
समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः"।)

ईर्ष्यालु, त्रि, (ईर्ष्यां लाति। ईर्ष्या+ला+डु।) ईर्षाविशिष्ट। अक्षान्तियुक्त। तत्पर्य्यायः। कुहन २ इति हेमचन्द्रः॥ (यथा, राजतरङ्गिणी।
"दिवसे सन्निधानेन पैशुनप्रेरणा यदि।
ईर्ष्यालुना खैरिणीव रक्षितुं यदि प्रार्थ्यते"॥)

ईलि, स्त्री, (ईर्य्यते इति। ईर+इन् रस्य ल।) क्षुद्रखड्गदाकारहस्तदण्ड। इति भरतः॥ सोँटा इति ख्याता। करच्छुरीति ख्याते एकधारा इति ख्याते यवनास्त्रे वा। इति सारसुन्दरी॥

ईलिका, स्त्री, (ईलिरेव। ईलि+स्वार्थे कन् टाप्।) क्षुद्रखड्गदाकारहस्तदण्डः। इति भरतः॥ सोँटा इति ख्याता। एकधारेलीति स्वामी। तत्पर्य्याय। ईलि २ ईली ३ करपाली ४ गुप्तिका ५ करपालिका ६। इति शब्दरत्नावली॥

ईलित, त्रि, (ईड्+क्त। डस्य लः।) स्तुत। इत्यमरः॥

ईली, स्त्री, (ईर+क। कृदिकारादिति पाक्षिको ङीष्।) क्षुद्रखड्गदाकारहस्तदण्ड। तत्पर्य्यायः। करपालिका २। इत्यमरः॥

ईश, ङ, ल, ऐश्वर्य्ये। इति कविकल्पद्रुमः॥ (अदा-आत्म-अक-सेट्।) दीर्घादि। ऐश्वर्य्यमीश्वरीभावोऽधीनीकरणञ्च। ङ ल ईष्टे धनी। मायागामीशिषेण च। अत्र कर्म्मणि षष्ठी। इति दुर्गादासः॥

ईश, त्रि, (ईष्टे इति। ईश्+क।) ईश्वरः। (यथा कुमारे २।९ "जगदीशो गिरीश्वरः"।) प्रभुः इति मेदिनीकरहेमचन्द्रौ॥ (यथा, कुमारे। ३।३४ "कथञ्चिदीशा मनसा बभूव"।)

ईश, पु, (ईष्टे इति। ईश+क।) महादेवः।
("शनैः कृतप्राणविमुक्तिरीशः
पर्य्यङ्कबन्धं निविडं बिभेद"।
इति कुमारे ३।५९।) ईशानकोणाधिपतिः। इत्यमरः॥

ईशसखः, पु, (ईशस्य सखा बन्धुः राजाहःसखिभ्य टच्।) कुबेर। इति हेमचन्द्रः॥

ईशा, स्त्री, (ईश+अच्+टाप्।) लाङ्गलदण्ड। इत्यमरटीका शब्दरत्नावली च॥ (यथा महाभारते वनपर्व्वणि घोषयात्रापर्व्वणि २४०।३०।
"ईशामन्ये हयानन्ये सूतमन्ये न्यपातयन"।)
(ईशस्य महादेवस्य पत्नी। दुर्गा॥ ईशस्य प्रभोः पत्नी इति व्युत्पत्त्या स्वामिपत्नी। प्रभुस्त्री यथा, अथर्व्ववेदे ११।८।१७ "ईशा वशस्य या जाया"।)

ईशादण्ड, पु, (ईशाया लाङ्गलस्य दण्डः।) अक्ष युगयोः सन्धारणार्थो दण्ड। यथा,—
"योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव।
ईषादण्डस्तथैवास्य द्विगुणो मुनिसत्तम"॥
इति विष्णुपुराणे २ अंशे ८।२॥

ईशादन्त, पुं, (ईशेव दन्तो यस्य।) दृहद्दन्तहस्ती। तत्पर्य्याय।*महादन्त २। इति त्रिकाण्डशेषः॥ हस्तिदन्तः। इति शब्दरत्नावली॥

ईशान, क्ली, (ईश+आनश्।) ज्योतिः। इति मेदिनी॥ (तद्विशिष्टे, त्रि। यथा, ऋग्वेदे।१।१७५।४।
"मुषाय सूर्य्यं कवे चक्रमीशान ओजसा"।)

ईशान, पु, (ईष्टे। ईश्+ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्।) महादेव। इत्यमरः॥
("तस्मिन् मुहूर्त्ते पुरसुन्दरीणा-
मीशानसदर्शनलालसानाम्"॥
इति कुमारे ७।५६।
"तत्रेशानं समभ्यर्च्य त्रिरात्रोपोषितो नरः"।,
इति भारते।) एकादशरुद्रान्तर्गतरुद्रविशेषः। इति पुराणम्॥ (यथा, आश्वलायनगृह्यसूत्रे।४।९।
"हराय मृडाय शर्व्वाय शिवाय भवाय महादेवाय उग्राय भीमाय पशुपतये रुद्राय शङ्करायेशानाय स्वाहा" इति। दूतमूर्त्तिधरः शिव। स च धूम्रजटिल। यथा, मार्कण्डेये।८८।२३।
"सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता।
दूतत्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः"।)
शिवाष्टमूर्त्यन्तर्गतसूर्य्यमूर्त्तिः। इति स्मृतिरागमश्च॥ (परमेश्वरः। यथा, कृष्णयजुर्व्वेदे।
"सर्व्वेन्द्रियगुणाभासं सर्व्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्व्वस्य प्रभुमीशानं सर्व्वस्य शरणं वृहत्"।
तथा च महाभारते १।१।२२।
"आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्"॥
साध्यापुत्रो-देवताभेदः। यथा,—
"धर्म्माच्चाप्युद्भव कामः साध्या साध्यान् व्यजायत।
प्रसवं च्यवनञ्चैव ईशानं सुरभिं तथा"॥

इति भारते ।) शमीवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

ईशानी, स्त्री, (ईशस्य पत्नी ।) दुर्गा । इति मन्त्रं ॥ शमीवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

ईशिता, स्त्री, (ईशिनो भाव । ईशिन्+तल् ।) ईशित्व । अणिमाद्यष्टैश्वर्य्यान्तर्गतैश्वर्य्यविशेष । इति शब्दरत्नावली ॥

ईशिता, [ऋ] त्रि, (ईष्टे इति । ईश्+तृच् ।) ईश्वर । प्रभु । अधिपति । इत्यमरः ॥ (यथा माघे । २ । ६५ ।
"तदीशितारं चेदीनां भवास्तमवमंस्त मा" ।)

ईशित्व, स्त्री, (ईशिनो भाव । ईशिन्+त्व ।) ईशिता । देवानामष्टैश्वर्य्यान्तर्गतैश्वर्य्यविशेष । इति हेमचन्द्र ॥ (यदुक्तं ।
"अणिमा लघिमा व्याप्तिः प्राकाम्य गरिमा तथा । ईशित्वञ्च वशित्वञ्च तथा कामावशायिता" ॥)
प्रभुत्वम् । येन स्थावरादिसर्व्वभूतानि आज्ञाकारीणि भवन्ति । इत्यमरटीकासारसुन्दरी ॥

ईश्वर, त्रि, (ईश्+वरच् ।) आढ्य ।
("दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्" । इति हितोपदेशे । १ । ७६ ।) स्वामि । इति विश्वमेदिन्यौ ॥ (यथा महाभारते ।
"अह चैव हि यचान्यन्ममास्ति वसु किञ्चन । तत्सर्व्वं तव विश्वव्य कुरु प्रणयमीश्वर" ॥
नियन्ता । प्रभु ।
"ईश्वर सर्व्वभूताना धर्म्मकोषस्य गुप्तये" ।
इति मनुः । १ । ९९ ॥)

ईश्वर, पुं, (ईष्टे इति । ईश्+वरच् । यद्वा, अश्नुते व्याप्नोतीति अशधातोर्वरट् उपधाया ईत्वं च ।) शिवः । (यथा, कुमारे । ७ । ३१ ।
"तद्गौरवान्मङ्गलमण्डनश्री
सा पस्पृशे केवलमीश्वरेण" ।
"अथेश्वर देवगणैः सह सप्तर्षिभिर्विभुम्" ॥
"वाग्भिः स्थित स्तुवन् यावच्छिवे भावे शिव स्थित । शिव शिवाय भूताना स्थित ज्ञात्वा कृताञ्जलि ॥ क्रोधाभिरक्षवान् देवमह किं करवाणि ते" ।
"तमुवाचेश्वर क्रोध ज्वरो लोके भविष्यसि" ॥
इति चरके चिकित्सास्थाने तृतीयाध्याय ॥
"तत दृष्ट्वा प्रजा शेष तदा त क्रोधमीश्वर । विन्यस्तवान् स भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च" ॥
इति सुश्रुते कल्पस्थाने तृतीयाध्याय ॥)
कन्दर्प । इति मेदिनी ॥
"विशुद्धसत्त्वप्रधानाज्ञानोपहितचैतन्यम्" ।
इति वेदान्त ॥ न्यायमते ईश्वरगुणाः । सख्यादिपञ्च बुद्धिः इच्छा यत्नश्च । ईश्वरस्वरूप ब्रह्मशब्दे द्रष्टव्यम् ॥ ऐश्वर्य्यशाली । तत्पर्य्याय । राष्ट्री १ अर्य्य २ नियुत्वान् ३ इनक्षः ४ । इति वेदनिघण्टौ २ अध्यायः ॥ श्रीहरिः । यथा ।

रुद्र उवाच ।

"हरे कथय देवेश देवदेवक ईश्वर ।
को ध्येयः कश्च वै पूज्यः कैर्व्रतैस्तुष्यते परः" ॥
इत्यादि । श्रीहरिरुवाच ।
"शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा च सुरैः सह ।
अहं हि देवो देवाना सर्व्वलोकेश्वरेश्वर ॥
अहं ध्येयश्च पूज्यश्च स्तुतोऽहं स्तुतिभि सुरैः ।
अहं प्रपूजितो रुद्र ददामि परमा गतिम्" ॥
इत्यादि च गारुडे २ अध्याय ॥
(स्वनामख्यातो नृपतिभेद । यथा, महाभारते ।
"मतिमांश्च मनुष्येन्द्र ईश्वरश्चेति विश्रुत" । )

ईश्वरा, स्त्री, (ईश्वर+टाप् । प्रयोगविवक्षाभावात् न ङीष् ।) दुर्गा ।
("विन्यस्तमङ्गलमहौषधिरीश्वराया
स्रस्तोरगप्रतिसरेण करेण पाणि" ।
इति किराते । "ईश्वराया गौर्य्याः, स्थेशभासेत्यादिना वरच् । प्रयोगविवक्षाभावात् न ङीष्" इति तट्टीका ॥) लक्ष्मी । सरस्वत्यादिशक्ति । इति शब्दरत्नावली ॥

ईश्वरी, स्त्री, (ईष्टे इति+ईश्+वनिप् । वनोर चेति ङीपौ ।) ईश्वरा । इति शब्दरत्नावली ॥ ("त्वमीश्वरी देवि । चराचराणाम्" । इति मार्कण्डेयपुराणे ॥ ९१ । २ ।) लिङ्गिनीवृक्षः । वन्ध्याकर्कोटकीवृक्ष । रुद्रजटालता । नाकुलीकन्दः । इति राजनिर्घण्ट ॥

ईष उ उञ्छे । इति कविकल्पद्रुम ॥ (तुदा-पर-सक-सेट् ।) उञ्छ उद्धृतशस्यशेषापहरणं । ईषति धान्य दीन । इति दुर्गादास ॥

ईष ङ दाने । (भ्वादि-आत्म-सक-सेट् ।) ईषते । हिंसने । सर्पणे । इति कविकल्पद्रुम ॥ दीर्घादि । ङ ईषते । ईक्षो दर्शनं । इति दुर्गादास ॥

ईष, पु, (ईष्+क ।) इष । आश्विनमासः । इत्यमरटीकायां मथुरानाथ ॥ (स्वनामख्यात उत्तममनोर्दशपुत्रमध्ये एक पुत्रः । यथा,—
"औत्तमेयान् महाराज । दशपुत्रान् मनोरमान्" । १८
"ईष ऊर्ज्जस्तनूर्ज्जश्च मधुमाधव एव च ।
शुचि शुक्र सहश्चैव नभस्यो नभ एव च" ॥ १९
इति हरिवंशे ७ अध्यायः ॥)

ईषत्, अ, (ईषणमिति । ईष्+अति ।) अल्पम् । किञ्चित् । मनाक् । इत्यमर ॥
("त दृष्ट्वा कुपित पुत्रमीषत्प्रस्फुरिताधरं" ।
इति विष्णुपुराणे । १।११।१२ ।
"ईषत् सहासममल परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्त" ।
इति मार्कण्डेयपुराणे, शक्रादिमाहात्म्यम् ॥
"हृदि तिष्ठति यच्छुद्ध रक्तमीषत् सपीतकम्" ।
इति चरके सूत्रस्थाने सप्तदशाध्यायः ॥)

ईषत्कर, पुं, (ईषत्+कृ+खल् ।) अव्यय । तत्पर्य्यायः । लेशः २ उपमद ३ गन्धः ४ अनुबन्ध ५ । इति त्रिकाण्डशेष । ईषत्क्रियमाणं वस्तु । इति व्याकरण ॥

ईषत्पाण्डु, पु, (ईषत् पाण्डु ।) धूसरवर्णः । इत्यमरः ॥

ईषदुष्ण, त्रि, (ईषच्च तदुष्णञ्चेति ।) अल्पतप्तं । तत्पर्य्यायः । कोष्ण २ कवोष्णं ३ कदुष्णं ४ मन्दोष्णं ५ । इति हेमचन्द्रः ॥

ईषद्रक्तः, पुं, (ईषत् रक्त ।) अल्पलोहितवर्णः । तत्पर्य्याय । अव्यक्तराग २ अरुणः ३ । इत्यमरः ॥

ईषा, स्त्री, (ईष+क+टाप् ।) लाङ्गलदण्ड । इत्यमरः ॥ लाङ्गलेर ईष् इति भाषा ॥ (ऋग्वेदे ।
"हिरण्ययी वा रभिरीषा अक्षो" ।
रथस्यावयवभेदः । यथा, ऋग्वेदे । १० । १३५ । ३ । "रथः एकेष" ।
"ईषामन्ये ध्वजानन्ये सूतमन्ये न्यपातयन्" ।
इति महाभारते । वनपर्व्वणि २४० । २० । ईशेति क्वचित् पाठः ॥)

ईषादन्त, पुं, (ईषेव दन्तो यस्य ।) दीर्घदन्तहस्ती । तत्पर्य्यायः । उदग्रदन्त २ । इति हेमचन्द्र ॥ ("ईषादन्तान् हेमकक्षान् पद्मवर्णान् कुथावृतान्" ईषादन्ता महाकायाः सर्व्वे चाष्टकरेणव" ॥ इति च भारते ॥)

ईषिका, स्त्री, (ईष+णिकन् ।) हस्तिचक्षुर्गोलकः । इत्यमरटीकायां रायमुकुट ॥ तूलिका । इत्यमर ॥ अस्त्रविशेष । यथा,—
"सोऽभिमन्त्र्य शरेषीकामीषिकास्त्रेण वीर्य्यवान् ।
काकं तमभिसन्धाय ससर्ज पुरुषर्षभ" ॥
इति रामायण ॥

ईषिर, पु, (ईष+किरच् ।) अग्नि । इति त्रिकाण्डशेष ॥

ईषीका, स्त्री, (ईष+ईकन् । औणादिकप्रत्ययोऽयम् । मर्फरीकादित्वात् साधु ।) तूलिका । वीरणादिशलाका इत्यन्ये । आवर्त्तितमनावर्त्तितं वा सुवर्णं ज्ञातुं यत्र क्षिप्यते तदेत्यन्ये । आवर्त्तितसुवर्णं द्रवाकार यत्र नि क्षिप्यते तदेति केचित् । इत्यमरटीकायां भरत ॥

ईष्म, पु, (ईष+मक् ।) कामदेव । वसन्तकाल । इति सिद्धान्तकौमुद्यामुणादिवृत्ति ॥

ईह ङ चेष्टे । इति कविकल्पद्रुम ॥ (भ्वादि आत्म-अक सेट् ।) दीर्घादिरकर्म्मक । ङ ।
"ऐहिष्ट त कारयितु कृतात्मा
क्रतु नृप पुत्रफल मुनीन्द्रम्" ।
इति भट्टिः । १ । ११ ॥
सकर्म्मकोऽपि । "भाम भ्रमादपि नेहते" । इति जयदेव ॥ "सर्व्वः स्वार्थं समीहते" इति माघः । २।६५ ॥ इति दुर्गादासः ॥

ईहा, स्त्री, (ईह+अ+टाप् ।) चेष्टा । उद्यमः ।
("इच्छया जायते काम ईहयार्थो विवर्द्धते ।
श्रद्धया वर्द्धते धर्म्मस्तेषा फलमिदं त्रिधा" ॥
इति रामायणे ॥ ३ काण्डे । तथा च मनुः २।३७ ।
"राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे" ।
"वैश्यस्य बह्वन्नपश्वादिचेष्टार्थिन" इति तट्टीकायां कुल्लुकभट्ट ।) वाञ्छा । इच्छा । इति त्रिकाण्डशेषः ॥
("धर्म्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता ।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य श्रेयो न स्पर्शनं नृणाम्" ॥
इति महाभारते । १ । २ । ४८ ॥)

ईहामृग, पु, (ईहाप्रधानो मृगो यक ।) कुक्कुरप्रमाणहरिणाकारकपिशवर्णजन्तुविशेष । इति भरतः ॥ चोंध इति ख्यात । तत्पर्य्यायः । कोकः २ वृकः ३ । इत्यमरः ॥

महादेवोऽपि यस्मान्मां निःसारयितुमुद्यतः ।
तपोवनं मुनिं दान्तं म्लेच्छवद्वेदपारगम् ॥
तस्मात् म्लेच्छप्रियो भूयात् शङ्करस्त्वस्थिभस्मधृक् ।
एतत्तु कामरूपाख्यं म्लेच्छैः शुभं भवद्गृह ॥
स्वयं विष्णुर्न चायाति यावत् कालमिदं पुनः ।
विरलास्त्वागमा सन्तु यत्र तत्प्रतिपादकाः ॥
विरलं यस्तु जानाति कामरूपागमं बुधः ।
स एव प्राप्तकालेऽपि पूर्व्वं फलमवाप्स्यति ॥
एवमुक्त्वा वशिष्ठस्तु तत्रैवान्तरधीयत ।
ते गणाः म्लेच्छतां याता कामरूपे सुरालये ॥
वामाऽभूदुग्रतारापि शम्भुर्म्लेच्छरतोऽभवत्” ।
इति च कालिकापुराणे ८१ अध्याय ॥

उग्रत्व, क्ली, (उग्रस्य भावः । उग्र+त्व ।) उग्रता । उत्कटता । तत्पर्य्यायः । चण्डता २ । इति हेमचन्द्रः ॥

उग्रधन्वा, [न्] पुं, (उग्रं धनुर्यस्य । धनुषश्चेत्यनङ् ।) इन्द्रः । इति हेमचन्द्रः ॥ (“स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा सायुध इन्द्रो गणेन । संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्द्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता” । इति ऋग्वेदे । १०।१०३।३ ॥ शिवः । उग्रधनुर्विशिष्टे, त्रि ॥)

उग्रनासिक, त्रि, (उग्रा दीर्घा नासिका यस्य ।) दीर्घनासिकाविशिष्टः । इति हेमचन्द्रः ॥

उग्रशेखरा, स्त्री, (उग्रस्य महादेवस्य शेखरं मस्तकं वासस्थानत्वेन यस्याः ।) गङ्गा । इति शब्दरत्नावली ॥

उग्रसेनः, पुं, (उग्रा सेना यस्य ।) मथुरादेशस्य राजविशेषः । स च आहुकपुत्रः । कंसराजपिता च । परीक्षित्पुत्रः । इति श्रीभागवतम् ॥ (तथा महाभारतेऽपि “जनमेजयः पारिक्षितः सह भ्रातृभिः कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रमुपास्ते । तस्य भ्रातरस्त्रयः श्रुतसेन उग्रसेनो भीमसेनश्च” इति । तथा च तत्रैव १।६५।४२ ।
“भीमसेनोग्रसेनौ च सुपर्णो वरुणस्तथा” ॥)

उग्रसेनज, पुं, (उग्रसेनात् जायते इति । उग्रसेन+जन+ड ।) कंसनामासुरराजः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

उग्रा, स्त्री, (उच्यति क्षुधा समवैति या । उच समवाये+ऋज्रेत्यादिना रक् गश्चान्तादेशः । ततष्टाप् ।) यवानी । वचा । इति राजनिर्घण्टः ॥
(“दन्तधावे हितं श्रेष्ठं तिलोग्राचर्व्वणं सदा” । इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहे मुखरोगाधिकारे ।) छिक्किकौषधी । इति हेमचन्द्रः ॥ उग्रजातिस्त्री । (यथा मनुः १० । १९ ।
“क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते” ॥) धन्याकम् । इति रत्नमाला ॥ प्रखरा नारी ॥

उङ्कुणः, पुं, उत्कुणः । इति शब्दमाला ॥ उकुन् इति भाषा ।

उच, इ र य समवायने । मिश्रणे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (दिवा-पर-सक-सेट् ।) ऋकारादिः । इर औचत् औचित् । अस्मात् पुषादित्वात् नित्य ङ इत्यन्ये । य उच्यते केशः आगात् । इति दुर्गादासः ॥

उचितं, त्रि, (वच+“वचिवचिकुचिकुटिभ्यः कितच्” इति कितच् प्रत्ययः ।) विदितम् । न्यस्तम् । परिमितम् । युक्तम् । इति हेमचन्द्रः ॥ ग्राह्यम् । इति शब्दरत्नावली ॥

उच्च, त्रि, (उच्चिनोतीति । चिञ् चित्या अन्येभ्योऽपि इति डः । उच्चैस्त्वमस्ति अत्र वा । अर्श आद्यच्, अव्ययानामिति टिलोपः ।) उपरि । उँचु इति भाषा । तत्पर्य्यायः । प्रांशु २ उन्नतम् ३ उदग्रम् ४ उच्छ्रितम् ५ तुङ्गम् ६ । इत्यमरः ॥ उत्तुङ्ग ७ । इति तट्टीका ॥ (यथा, रघुः ३।१३ ।
“ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंश्रयैः,
असूर्य्यगैः सूचितभाग्यसम्पदम्” ।)
(ज्योतिषोक्त ग्रहाणामुच्चस्थानम् । यथा,
“अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा
झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः ।
दशशिखिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशै-
स्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः” ॥
सूर्य्यादीनां सप्तानां ग्रहाणां मेषवृषभादयो राशयः श्लोकोक्तक्रमविशिष्टा उच्चस्थानानि स्वस्वतुङ्गापेक्षया सप्तमस्थानानि च नीचानि, तत्रोच्चेष्वपि दशमादयो राशित्रिंशांशाः यथाक्रमं उच्चेषु परमोच्चा नीचेषु परमनीचा भवन्तीति ॥)

उच्चकैः, [स्] व्य, (उच्चैस्+अव्ययसर्व्वनाम्ना इति प्रागिवीयेषु अर्थेषु टेः प्रागकच् ।) उच्चैः । अतिशयोच्चम् । इति द्विरूपकोषः ॥ (यथा विष्णुपुराणम् ।
“वशिष्ठाद्यैर्दयासारैः स्तोत्रं कुर्व्वद्भिरुच्चकैः” ।
उन्नतम् । यथा माघे १।१२ ।
“गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकै-
र्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः” ॥)

उच्चटा, स्त्री, (उत्+चट्+अच्+टाप् ।) गुञ्जा । भूम्यामलकी ।
(“उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तममिष्यते ।
शतावर्य्युच्चटामूलं पेयमेवं बलार्थिना” ॥
इति सुश्रुते चिकित्सितस्थाने २६ ।)
नागरमुस्ता । इति राजनिर्घण्टः ॥ दम्भः । चर्य्या । लशुनप्रभेदः । इति हेमचन्द्रः ॥ तृणविशेषः । निर्व्विषी इति ख्याता । चेँचुया इति केचित् । इत्यमरटीकायां भरतः । तत्पर्य्यायः । चूडाला २ चक्रला ३ । इत्यमरः ॥ अम्बुपत्रा ४ जटिला ५ शुक्ला ६ उत्तानकः ७ । इति रत्नमाला ॥

उच्चण्डः, त्रि, (उत् चण्डतीति । चडि कोपे+अच् ।) त्वरान्वितः । अविलम्बितः । इत्यमरः ॥

उच्चतरुः, पुं, (उच्चः उन्नतस्तरुः ।) नारिकेलवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (नारिकेलशब्देऽस्य विवरणं ज्ञातव्यम् ॥)

उच्चताल, क्ली, (उच्चः महत्तया प्रचण्डस्तालो यत्र ।) पानगोष्ठ्यां नृत्यम् । इति हेमचन्द्रः ॥

उच्चदेवः, पुं, (उच्चः सर्व्वदेवमयत्वात् श्रेष्ठः देवः ।) श्रीकृष्णः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

उच्चन्द्र, पुं, (उत् अल्प अवशिष्टश्चन्द्रो यस्मिन् ।) रात्रिशेषः । इति शब्दरत्नावली ॥

उच्चय, पुं, (उत्+चि+अच् ।) परिधानवस्त्रग्रन्थिः । तत्पर्य्यायः । नीवी २ । इति हेमचन्द्रः ॥ (पुष्पादीनामुत्तोलनम् । यथा, रघुः १०।४४ ।
“करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैस्तच्छिरःकमलोच्चयम्” ।
“पुष्पोच्चयं नाटयति” इति शाकुन्तले १माङ्के ।) राशिः । समष्टिः । यथा,—
“शिलोच्चयोऽपि क्षितिपालमुच्चैः” । रघुः २।५१ ।
“वाक्यं स्याद्योग्यताकाङ्क्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः” । इति साहित्यदर्पणे । २ । १ ॥)

उच्चल, क्ली, (उच्चलतीति । उत्+चल्+अच् ।) मनः । इति हेमचन्द्रः ॥

उच्चललाटा, स्त्री, (उच्चमुन्नतं ललाटं यस्याः ।) उन्नतललाटवती । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

उच्चाटनं, क्ली, (उत्+चट्+णिच्+ल्युट् ।) उत्खातम् । उच्चाटन इति भाषा । षट्कर्म्मान्तर्गताभिचारकर्म्मविशेषः । अस्य देवता दुर्गा । तिथिः कृष्णा चतुर्द्दशी अष्टमी च । वारः शनिः । जपमाला साध्यस्य केशसूत्रग्रथिततुरङ्गदशनोद्भवा । फलम् । उच्चाटनं स्वदेशादेर्भ्रंशनं परकीर्त्तितम् । इति शारदातन्त्रम् ॥

उच्चारः, पुं, (उच्चार्य्यते परित्यज्यते इति । उत्+चर+णिच्+घञ् ।) विष्ठा । इत्यमरः ॥
(“मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्य्यादुदङ्मुखः” ।
इति मनुः ।४।५० ।)
“यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति ।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः” ।
इति सुश्रुते उत्तरतन्त्रे चत्वारिंशत्तमोऽध्याये ।)
उच्चारणम् ॥

उच्चारणं क्ली, (उत्+चर+णिच्+ल्युट् ।) कथनम् । वाङ्निष्पत्तिकरणम् ॥ यथा । “इत्ये अकार उच्चारणार्थे” । इति मुग्धबोधव्याकरणे, सन्धिसञ्ज्ञा २ । अपि च ।
“कर्म्मोच्चारणमात्रेण स्पष्टमात्रानुबन्धता” ।
इति कविकल्पद्रुमः ॥

उच्चावच, त्रि, (उदक् च अवाक् च । मयूरव्यंसकादित्वात् साधुः ।) अनेकप्रकारः । तत्पर्य्यायः । नैकभेद २ । इत्यमरः ॥ (यथा, मनुः १।३८ ।
(“उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च” ।
“उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं त व्याप्य तिष्ठत” ।
इति च मनुः ६ । ७३ ॥)

उच्चिङ्गट, पुं, तृणगडमत्स्यः । कोपनपुरुषः । इति मेदिनी ॥

उच्चूलः, पुं, (उद्गता चूडा यस्य । डस्य लत्वम् ।) अश्वोर्द्ध्वमुखकूर्च्चः । इति हेमचन्द्रः ॥ निशानेर माथ इति भाषा । अस्य पट्टका चवपूल ॥

उच्चैः, [स्] व्य, (उच्चीयते इति । उत्+चि+डैस् ।) उच्चम् । महत् । इत्यमरः ॥ (यथा, कुमारे ४।३० ।
“उच्चैर्बलेश्वरालेन च्यवनमहारि च” ।
“शिलोच्चयोऽपि क्षितिपालमुच्चैः” ।
इति रघुः २।५१ । यथा, माघः २।५१ ।
“अवज्ञया हेलया पादमूर्ध्नि विदिताम्” ॥)

उच्चैःश्रवाः [स्] पुं, (उच्चैः श्रवौ कर्णौ यस्य । यद्वा उच्चैः श्रवसी यस्य । यद्वा उच्चैः श्रवतीति उच्चैः

+श्रु+असुन् ।) इन्द्रघोटक । इत्यमर ॥ स तु श्वेतवर्णः समुद्रमन्थनोत्थितः। इति श्रीभागवतम् ॥
("उच्चैःउच्चैःश्रवास्तेन हयरत्नमहारि च" ॥
इति कुमारे । २ । ४७ ॥ )

उच्चैर्घुष्ट, क्ली, (उच्चैर्घुष्यते स्म । घुष + क्त।) घोषणा । इत्यमर ॥

उञ्छ, इ श उञ्छे। इति कविकल्पद्रुम ॥ (तुदा-इदित्-परं-सक सेट्।) ञ्छान्तादि । इ उञ्छति। श उञ्छती उञ्छन्ती। उञ्छ उद्धृतशस्यस्य शेषापहरणम्। (यथा, हलायुध ।
"सुलभ शस्यमुञ्छन्ति यद्देशे व्रतिनो द्विजा" ।
उञ्छ स्फोटनमित्येके। इति दुर्गादास ॥

उच्छ, ई श बन्धे। समापने अतिक्रमे । वर्जने । इति कविकल्पद्रुम' । (तुदा-पर-सक-सेट्।) ई उच्छ' । श उच्छती उच्छन्ती। चत्वारोऽर्था' । समापने । (अक०) उच्छति रात्रि । "भरण्या व्युष्टायामुषसि जनयामास तनयम्"। व्युष्टाया समाप्तायामित्यर्थ । इति दुर्गादास ॥

उच्छन्न, त्रि, (उत् + छद + क्त ।) नष्टम् । इति श्रीभगवद्गीता ॥

उच्छादन, क्ली, (उत् + छद + णिच् + ल्युट् ।) उत्सादनम् । उद्वर्त्तनम् । गन्धद्रव्यद्वारा शरीरनिर्मलीकरणम् ॥ इत्यमरटीका ॥
("यथाशक्तिप्रदानेन स्नापनोच्छादनेन च" ।
इति रामायणे। २ । १११ । १० ॥)

उच्छिलीन्ध्र, क्ली, (उत्थित शिलीन्ध्रम् ।) छत्रिका । इति श्रीभागवतम्॥ कोडक छाता इति भाषा )
("उद्गतशिलीन्ध्रे, त्रि, "कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्याम्" ॥ इति मेघदूते । पूर्व्वमेघे। १८ ॥)

उच्छिष्ट,त्रि,(उत् शिष्यते यत्। उत् + शिष + क्त ॥) भुक्तावशिष्टम् । इति पुराणम् ॥ एंटो इति भाषा । तद्भोजनप्रायश्चित्त यथा (प्रायश्चित्ततत्त्वे चाण्डालाद्यन्नभक्षणप्रायश्चित्तप्रकरणे । ) विष्णु ।
"आमश्राद्धाशने त्रिरात्र पयसा वर्त्तेत ब्राह्मण' शूद्रोच्छिष्टाशने च वमन कृत्वा सप्तरात्रमुपवसेत्" इति। एव उच्छिष्टे य पराक उक्तोऽङ्गिरसा सोऽपि प्रागुक्तसप्तदापदादिविषये बोध्य । विष्णुनापि अनुच्छिष्टे पराकोक्तेः । तथाचाङ्गिरा' ।
"चाण्डालपतितादीनामुच्छिष्टान्नस्य भक्षणे ।
द्विज' शुध्येत् पराकेण शूद्र कृच्छ्रेण शुध्यति" ॥
यत्तु मिताक्षरायामापस्तम्ब ।
"अन्त्याना भुक्तशेषन्तु भक्षयित्वा द्विजातय ।
चान्द्र कृच्छ्रं तदर्द्धन्तु ब्र... ...वेषा विधि " ॥
चान्द्र चान्द्रायणम् । कृच्छ्र तप्तकृच्छ्रम् । एतच्च ब्राह्मणस्य सकृदज्ञानविषय बलात्कारानुत्तारेऽप्येतरतामूलायुतस्त्वपरञ्च । तच्चाज्ञाने आपस्तम्बेन उच्छिष्टे चान्द्रायणविधानात् । अङ्गिरसा अन्त्यावसायिनामित्यादि प्रागुक्तवचने सामान्यतस्तप्तकृच्छ्रविधानात् अनुच्छिष्टेऽपि तथात्वादेव सर्व्वत्रानुच्छिष्टादुच्छिष्टे द्वैगुण्यं बोध्यम् । प्रायश्चित्तविवेके ससर्गप्रकरणेऽप्येवम् । अत्रियविशीस्त्रापदि चेयम्" ॥*॥ "सर्व्वत्रोच्छिष्टे तु व्रतद्वैगुण्य आपदज्ञानभुक्तोत्तारिते मासयावकव्रत तदशक्तौ धेनुद्वय षट्कार्षापणा वा देया' । तत्रोच्छिष्टान्ने पराक इति। अभ्यासभेदे त्वावृत्तिरूहणीया"। इति प्रायश्चित्ततत्त्वम् ॥ * ॥ अथोच्छिष्टस्य चाण्डालादिस्पर्शप्रायश्चित्तम्। (तत्रैव उच्छिष्टस्य चाण्डालादिस्पर्शप्रायश्चित्तप्रकरणे द्रष्टव्यम् ) आपस्तम्ब ।
"भुक्तोच्छिष्टस्त्वनाचान्तश्चाण्डालै श्वपचेन वा ।
प्रमादात् स्पर्शन गच्छेत् तत्र कुर्य्याद्विशोधनम् ॥
गायत्र्यष्टसहस्रन्तु द्रुपदा वा शत जपेत् ।
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥
भुक्तोच्छिष्टोऽन्त्यजै स्पृष्ट प्राजापत्य समाचरेत् ।
अर्द्धोच्छिष्टे स्मृतः पाद पाद आमाशने तथा" ॥
प्राजापत्य ज्ञाने अर्द्धोच्छिष्टो येनाद्यग्रास आस्ये निक्षिप्त न तु निगीर्ण । दक्ष ।
"पाने मैथुनससर्गे तथा मूत्रपुरीषयो ।
सस्पर्श यदि गच्छेत्तु शावोदक्यान्त्यजै सह ॥
दिनमेक चरेन्मूत्रे पुरीषे तु दिनद्वयम् ।"
दिनत्रय मैथुने स्यात् पाने स्याच्च चतुष्टयम् ॥
काश्यप ।
श्वशूकरान्त्यचाण्डालमद्यभाण्डरजस्वला ।
यद्युच्छिष्ट स्पृशेत्तत्र कृच्छ्र सान्तपन चरेत् ॥
एतदज्ञानाभ्यासे सान्तपने धेनुद्वय ॥ ब्रह्मपुराणे ।
"उच्छिष्टेन तु शूद्रेण विप्र स्पृष्टस्तु तादृश ।
उपवासेन शुद्धि स्यात् शुना सस्पृष्ट एव वा ॥
उच्छिष्टेन तु विप्रेण विप्र स्पृष्टस्तु तादृश ।
उभौ स्नान प्रकुर्वीत सद्य एव समाहितौ" ॥
अनुच्छिष्टशूद्रस्पर्शे उच्छिष्टब्राह्मणस्य नक्तमिति प्रायश्चित्तविवेक ॥ त्यक्त । इति हेमचन्द्र ॥ (यथा, शतपथब्राह्मणे २।३१।११ । "कृतोच्छिष्टमिदम्" । इति । अनाचान्तो भक्षक । यथा मनु २ । ५६ ।
"नचैवात्यशन कुर्य्यात् नचोच्छिष्ट' क्वचित् व्रजेत्"।

उच्छिष्टभोजन , पु, (उच्छिष्ट देवनैवेद्यावशिष्ट भोजन यस्य ।) देवनैवेद्यबलिभोजनकर्त्ता । इति हेमचन्द्र ॥

उच्छिष्टमोदन, क्ली, सिक्थम् । इति राजनिर्घण्ट । मोम इति भाषा ॥

उच्छीर्षक, क्ली, (उत् ऊर्द्ध्वस्थापित शीर्ष मस्तकं येन । बहुव्रीह्यर्थे कन् ।) उपधानम् । इति हलायुध । बालिश इति भाषा ॥

उच्छून,त्रि,(उत् + श्वि + क्त। ओदितश्चेति तस्य नः। यजादित्वात् सम्प्रसारणे पूर्व्वरूपे च हल इति दीर्घ ।) स्फीतम् । उन्नतम् । वर्द्धितम् । तथा च प्राचीना' ।
"कामिन्या' कियदुच्छूनमुरः श्रेयान् समीक्षते ।
नव्य शालिमिवोत्पन्नमतिदीन कृषीवल "॥
(स्वर्गग्रामटिकाविलुण्ठनवृथोच्छूने' किमेभिर्भुजै ।
इति साहित्यदर्पणे। १ परिच्छेदे ॥)

उच्छृङ्खल, त्रि, (उद्गत शृङ्खल निगड यस्य ।) शृङ्खलारहितं । तत्पर्य्याय । अबाध २ उद्दाम ३ अनियन्त्रित ४ अनर्गल ५ निरङ्कुश ६ । इति हेमचन्द्र ॥ (यथा, हितोपदेशे ३ । ९७ ।
("अन्यदुच्छृङ्खल सत्त्वमन्यत् शास्त्रनियन्त्रितम्" ॥
"सम्मूर्च्छदुच्छृङ्खलशङ्खनिस्वन " ।
इति माघ । १२ । १३ ॥)

उच्छ्रय , पु, (उत् + श्रि + अच् ।) पर्व्वतवृक्षादेरुच्चता । तत्पर्य्याय । उच्छ्राय २ उत्सेध ३। इत्यमर ॥ ("प्राप्ते यूपोच्छ्रये तस्मिन् षड्बैल्वा खादिरास्त्र षट्" । इति रामायणे ॥)

उच्छ्राय', पु, (उत् + श्रि + घञ् ।) उच्छ्रय । उच्चता। इत्यमर' ॥ ( यथा, याज्ञवल्क्ये ।
"ग्रहाधीना नरेन्द्राणामुच्छ्राया पतनानि च" ।
"शृङ्गोच्छ्रायै' कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थित ख" ॥
इति मेघदूते । ६० ॥)

उच्छ्रितं,त्रि, (उत् + श्रि + क्त ।) संजात । समुन्नद्ध । उच्च । प्रवृद्धं । इति मेदिनी ॥ ( यथा, महाभारते १३ । दानधर्म्मकथने । ८१ । २६ । "सर्व्वमयैर्भान्ति शृङ्गैस्तारणैरुच्छ्रितै" ।) त्यक्तं । इति हेमचन्द्र ॥

उच्छ्वसित, त्रि, (उत् + श्वस् + क्त ।) प्रफुल्लं । विकसित । इति हेमचन्द्र' ॥ (भावे + क्त । जीवितम् । स्फुरितम् । प्राणनम् । यथा, मेघदूते । १०१ ।
"त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य सम्भाव्य चैव" ।
"सा खलु भगवत कण्वस्य कुलपतेरुच्छ्वसितम्" ।
इति शाकुन्तले ३ अङ्के ॥)

उच्छ्वास , पु, (उत् + श्वस् + घञ् ।) अन्तर्मुखश्वासः । ("प्रियामुखोच्छ्वासविकम्पित मधु" । इति ऋतुसंहारे ग्रीष्मवर्णनाया ३ ।) तत्पर्य्याय । आहर २ आन ३ । इति हेमचन्द्र ॥ आख्यायिकापरिच्छेद । आश्वास । इति मेदिनी ॥ (यथा, काव्यादर्शे आख्यायिकालक्षणकथने,—
"वक्त्रं चापरवक्त्रञ्च सोच्छ्वासत्वञ्च भेदकम्" ॥)

उज्जयनी, स्त्री, विशालानगरी । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ उजैन इति पश्चिमदेशे ख्याता । वङ्गदेशे तु उजनी । इय मालवदेशस्य नगरी । मोक्षदसप्तपुर्य्यन्तर्गतपुरी । पुरा विक्रमादित्यराजधानी च अधुना महाराष्ट्रेणाधिकृता ॥ (यथा, मेघदूते पूर्व्वमेघे। २९ ॥
"सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा च भूरुज्जयिन्या " ।)

उज्जयन्त , पु, रैवतपर्व्वत । इति हेमचन्द्रः ॥

उज्जयिनी, स्त्री, उज्जयनीनगरी । तत्पर्य्याय । विशाला २ अवन्ती ३ पुष्पकरण्डिनी ४ । इति हेमचन्द्र' ॥

उज्जासनं, क्ली, (उत्, जसु हिंसायाम् । णिच् भावे ल्युट् ।) मारणम् । बध' । इत्यमर ॥

उज्जृम्भ, त्रि, (उत् + जृम्भि + घञ् ।) प्रफुल्लम् । प्रस्फुटितम् । इति हेमचन्द्र ॥
("उज्जृम्भवदनाम्भोजा भिनत्त्यङ्गानि साङ्गना" ।
इति साहित्यदर्पणे । ३ परिच्छेदे ॥)

उज्जृम्भितं, त्रि, (उत् + जृम्भि + क्त ॥) प्रफुल्लम् । चेष्टायां, क्ली । इति मेदिनी ॥

उज्ज्वल, त्रि, (उच्चैर्ज्वलति प्रकाशते इति । उत् + ज्वल् + अच् ।) दीप्तम् । विशदम् । विकाशितम् ।

("पुलहस्य सुता राजन् शलभाश्च प्रकीर्त्तिताः ।
सिंहा किम्पुरुषा व्याघ्रा यक्षा ईहामृगास्तथा" ॥
इति महाभारते । आदिपर्व्वणि ॥) (नायको मृग-
वदलभ्यामपि नायिकामीहते वाञ्छत्यत्र इति ।)
नाटकरूपकभेदः । इति मेदिनीकरहेमचन्द्रौ ॥
(तल्लक्षणं यथा, साहित्यदर्पणे षष्ठपरिच्छेदे ।
"ईहामृगो मिश्रवृत्तश्चतुरङ्कः प्रकीर्त्तितः ।
मुखप्रतिमुखे सन्धी तत्र निर्व्वहनं तथा ॥
नरदिव्यावनियमौ नायकप्रतिनायकौ ।
ख्यातौ धीरोद्धतावन्यो गूढभावादयुक्तकृत् ॥
दिव्यस्त्रियमनिच्छन्तीमपहारादिनेच्छतः ।
शृङ्गाराभासमप्यस्य किञ्चित् किञ्चित् प्रदर्शयेत् ॥
पताका नायका दिव्या मर्त्त्या अपि दशोद्धताः ।
युद्धमानीय संरम्भं परं व्याजान्निवर्त्तयेत् ॥
महात्मानो वधप्राप्ता अपि वध्याः स्युरत्र नो ।
एकाङ्को देव एवात्र नेतेत्याहुः परे पुनः ॥
दिव्यस्त्रीहेतुकं युद्धं नायकाः षडितीतरे" ॥
"मिश्रं ख्याताख्यातम् । अन्यः प्रतिनायकः ।
पताकानायकास्तु नायकप्रतिनायकयोर्मिलिता
दश । नायको मृगवदलभ्यां नायिकामत्र ईहते
वाञ्छतीति ईहामृगः । यथा—कुसुमशेखर-
विजयादि" ॥)
ईहावृक, पुं, (ईहाप्रधानो वृकः ।) ईहामृगः ।
इति शब्दरत्नावली ॥

---

## उ

उ, उकारः । पञ्चमस्वरवर्णः । अस्योच्चारणस्थानम् ओष्ठः ।
(यथा, शिक्षायाम् ।
"कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू" ।
तथा च मुग्धबोधे ।
"उत्रय पफवभमवा ओ औष्ठ्याः" ।)
स च ह्रस्वो दीर्घः प्लुतश्च भवति । (एवं त्रिधापि
प्रत्येकम् उदात्तानुदात्तस्वरितभेदेन नवसङ्ख्यकः
पुनः प्रत्येकम् अनुनासिकाननुनासिकभेदात् अष्टा-
दशविध एव भवति । अस्य ध्यानमाह ।)
"उकारं परमेशानि अधःकुण्डलिनी स्वयम् ।
पीतचम्पकसङ्काशं पञ्चदेवमयं सदा ॥
पञ्चप्राणमयं देवि चतुर्व्वर्गप्रदायकम्" ।
इति कामधेनुतन्त्रम् ॥ (वङ्गीयभाषाया) अस्य
लेखनप्रकारो यथा,—
"ऊर्द्ध्वाधो मध्यतः कुञ्चा रेखा वामगता शुभा ।
तिष्ठन्ति वायुवह्नीन्द्रा शक्तिर्मात्रा परा स्मृता" ॥
इति वर्णोद्धारतन्त्रम् ॥ अस्य नामान्तराणि यथा,—
"उः शङ्करो वर्त्तुलाक्षी भूतः कल्याणवाचकः ।
अमरेशो दक्षकर्णः षड्वक्त्रो मोहनः शिवः ॥
उग्रः प्रभुर्धृतिर्विष्णुर्विश्वकर्म्मा महेश्वरः ।
शत्रुघ्नश्चटिका पुष्टिः पञ्चमी वह्निवासिनी ॥
कामघ्नः कामना चेशो मोहिनी विघ्नहृन्मही ।
उच्चः कुटिला श्रोत्रं पारदोपो वृषो हरः" ॥
इति तन्त्रोक्तवर्णाभिधानम् ॥ (मातृकान्यासेऽस्य
दक्षिणकर्णे स्थानम् । यदुक्तं मातृकान्यासमन्त्रे
"उं नमो दक्षिणकर्णे ऊं नमो वामकर्णे" ।)
उ, ङ, शब्दे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (भ्वादिं-आत्मं
अकं-अनिट् ।) ङ अवते गौः । इति दुर्गादासः ॥
उ, व्य, (उ शब्दे+क्विप्+तुक् न ।) सम्बोधनम् ।
रोषोक्तिः । अनुकम्पा । नियोगः । पदपूरणम् ।
पादपूरणम् । इति मेदिनी ॥ प्रश्नः । अङ्गीकारः ।
इति हेमचन्द्रः ॥ इदमेव उङ् इति ख्यातं ॥
("उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा,
पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम" ॥
इति कुमारे । १ । २६ ॥)
उ, पुं, (अतति विश्वमयत्वात् सर्व्वं व्याप्नोतीति ।
अत्+डुः ।) शिवः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥
("अकारो विष्णुरुद्दिष्ट उकारस्तु महेश्वरः ।
मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेन त्रयो मताः" ॥
इति पुराणे ।) ब्रह्मा । इति कश्चिदेकाक्षरकोषः ॥
उकनाह, पुं, पीतरक्तवर्णाश्वः । स एव क्वचित्
कृष्णरक्तच्छविः । इति हेमचन्द्रः ॥
उक्ता, स्त्री, (वच्+क्त ।) एकाक्षरछन्दः । इति
मेदिनी ॥ वाक्यम् ॥
उक्त, त्रि, (उच्यते य । वच्+कर्म्मणि क्त ।) कथितः ।
तत्पर्य्यायः । भाषितः २ उदितः ३ जल्पितः ४
आख्यातः ५ अभिहितः ६ लपितः ७ इत्यमरः ॥
गदितः ८ निगदितः ९ ईरितः १० उदीरितः ११
भणितः १२ लडितः १३ रपितः १४ रठितः १५
भटितः १६ रटितः १७ व्याहृतः १८ ॥
(यथा, मार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये ८६ । ९ ।
"इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः" ॥
तथा, तत्रैव ८५ । ६६ ।
"इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तः स्मिता जगौ" ॥)
उक्ति, स्त्री, (वच्+भावे क्तिन् ।) कथनम् । तत्-
पर्य्यायः । व्याहारः २ लपितं ३ भाषितं ४ वचनं
५ वचः ६ । इत्यमरः ॥ ("अतिसच्छिद्रचिरन्तनो-
क्तिभिः" । इति मुक्तावलीसूचना । तथा, चामरे ।
"एकयोक्त्या पुष्पवन्तौ दिवाकरनिशाकरौ" ॥)
उक्थ, क्ली, (वच्+थक् ।) सामवेदः । इत्युणादि-
कोषः ॥ (यथा, ऋग्वेदे । २ । ६४ । ७ ।
"विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति" ॥
स्तोत्रम् । यथा,
"अथ योऽसावन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते सैवर्क्
तत्साम तदयजुः तत् उक्थं तद्ब्रह्म" । इति
छान्दोग्ये उपनिषदि ॥)
उक्थशा [स्] पुं, (उक्थैरुक्थानि वा शंसति ।
मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशोण्विन्नित्यन्न श्वेत-
वहादीनां डस् पदस्येति वक्तव्यम् । यत्र पदत्व-
मावि तत्र डस् । अन्यत्र णिः ॥) यजमानः ।
इति व्याकरणम् ॥ (यथा, ऋग्वेदे । ७ । १९ । ९ ।
"नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था" ।)
उक्था, स्त्री, (वच्+थक्+टाप् ।) छन्दोविशेषः ।
एकाक्षरपादमुक्था । सा द्विविधा । श्रीः १ सर्व्व-
गुरुः । यथा श्रीस्ते सास्ता । इति छन्दोमञ्जरी ।
उः २ सर्व्वलघुः । यथा । उरवतु । इति छन्दो-
ऽर्णवः ।
उक्ष सेचे । (भ्वादिं-परं-सकं-सेट् ।) इति कवि-
कल्पद्रुमः ॥ उक्षति वृक्षं मेघः । ऋट् सेकः । इति
दुर्गादासः ॥ ("उक्षाम्बचक्रनगरस्य मार्गान्" ।
इति भट्टिकाव्ये । ३ । ५ ॥)
उक्षः त्रि, (उक्ष+अच् ।) सिक्तः । धौतः ।
उक्षतर, पुं, (उक्षन्+तरप् ।) महावृषः । इति
हेमचन्द्रः ॥
उक्षा, [न्] पुं, (उक्ष+कनिन् ।) वृषः । इत्यमरः ।
(यथा, ऋग्वेदे ८ । ७२ । ९ । "उक्षा मिमाति प्रति-
यन्ति धेनवः" । तथा च कुमारे ७ । ७० ।
"तत्रावतीर्य्याच्युतदत्तहस्तः
शरद्घनाद्दीधितिमानिवोक्ष्णः" ॥)
ऋषभौषधिः ॥ इति राजनिर्घण्टः ॥
उख, गतौ । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (भ्वादिं-परं-सकं-
सेट् ।) पञ्चमस्वरी ॥ ओखति । इति दुर्गादासः ॥
उख, इ, गतौ । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (इदित्-भ्वादिं
-परं सकं-सेट् ।) पञ्चमस्वरी । इ उङ्खति । इति
दुर्गादासः ॥
उखर्व्वल, पुं, तृणविशेषः । तत्पर्य्यायः । उलपः २
भूरिपत्रः ३ सुतृणः ४ तृणोत्तमः ५ । अस्य गुणाः ।
बलदातृत्वम् । रुचिकारित्वम् । पशूनां सर्व्वदा हित-
कारित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥
उखा, स्त्री, (उख+क+टाप् ।) स्थाली । इत्य-
मरः ॥ हाँड़ि इति भाषा । (यथा, सुश्रुते ।
"इद्धं स्वतेजसा वह्निरुखागतमिवोदकम्" ॥)
उख्य, त्रि, (उखायां संस्कृतः । उखा+यत् ।) स्थाली-
पक्वमांसादि । तत्पर्य्यायः । पैठरः २ । इत्यमरः ।
("शूल्यमुख्यञ्च होमवान्" । इति भट्टिः ॥)
उखाया भवः । अग्निः । यथा, अथर्ववेदे ।
"उख्यान् (अग्नीन्) हस्तेषु बिभ्रतः" ॥)
उग्र, त्रि, (उच्यति क्रुधा समवैति । उच समवाये
+ऋज्रेन्द्रेत्यादिना रक्, गकारान्तादेशः ।) रौद्रः ।
उत्कटः । इत्यमरो मेदिनी च ॥
("लोकेषु प्रथितं घोरं तपस्तस्य भविष्यति" ॥
इति रामायणे ॥
"तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्त्तनम्" ।
इति मनुः । १२ । ७५ । यज्ञादिधारी । हारकः ।
यथा मनुः ४ । २१२ ।
"उग्रान्नं सूतिकान्नञ्च पर्य्याचान्तमनिर्दशम्" ॥)
उग्र, क्ली, वत्सनाभनामविषम् । इति राजनिर्घण्टः ।
उग्र, पुं, (उच+रक् । गकारान्तादेशः ।) महादेवः ।
वायुमूर्त्तिरयम् । इति भविष्यपुराणम् । (यथा,
महाभारते । १३ । शिवसहस्रनामकथने । १७ । ८ ।
"उग्रो वंशकरो वंशो वंशनादो ह्यनिन्दितः" ।)
नृपविशेषः । इति मार्कण्डेये । ७९ । १० ।
क्षत्रियात् शूद्रायां जातः जातिविशेषः । इत्यमरः ।
आगुरि इति भाषा । (तथा च मनुः । १० । ९ ।
"क्षत्रियात् शूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् ।
क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रो नाम प्रजायते" ॥)
अस्य कर्म्म बिलवासिगोधादिवधबन्धनम् ।
तथाच मनुः । १० । ४९ ।
"क्षत्त्रोग्रपुक्कसानान्तु बिलौकोवधबन्धनम्" ।

नक्षत्रगणविशेषः । स च पूर्व्वफल्गुनीपूर्व्वाषाढा-
पूर्व्वभाद्रपदमघाभरण्यात्मक । इति ज्योतिषं
शोभाञ्जनवृक्ष । इति शब्दचन्द्रिका ॥ केरल-
देश । इति हेमचन्द्रः ॥ ( रुद्र । उग्रोदेवः ।
स्वनामख्यातो दानवविशेष । यथा हरिवंशे ।
"वेगवान् केतुमानुग्र सोग्रव्यग्रो महासुर" ॥
धृतराष्ट्रस्य शतपुत्त्रेषु एक । यथा, धृतराष्ट्रपुत्त्र-
नामकथने १ । ११७ । ११ । महाभारते ।
"उग्रभीमरथौ वीरौ वीरबाहुरलोलुप" ॥
नरेन्द्रादित्याख्यस्य काश्मीरराजस्य स्वनामख्यातो
गुरुः । यथा, राजतरङ्गिणी ।
"दिव्यानुग्रहमागुग्राभिधो यस्य गुरुर्व्यधात्" ॥
विष्णुः । इति महाभारते । १३ । १४९ । ५९ ॥
स्त्री, योगिनीभेद' । यथा, कालिकाया । ६० अध्याय ।
"महाकाल्यथ रुद्राणी उग्रा भीमा तथैव च" ।)

उग्रकाण्ड, पुं, (उग्र काण्डो यस्य ।) कारवेल्ल । इति राजनिर्घण्ट ॥ करेला इति भाषा । कारवेल्ल शब्देऽस्य गुणादिक ज्ञेयम् ।)

उग्रगन्ध, स्त्री, (उग्रो गन्धो यस्मिन् ।) हिङ्गु । इति राजनिर्घण्ट' ॥

उग्रगन्ध, पु, (उग्रस्तीव्र गन्धो यस्मिन् ।) लशुन । कट्फल । अश्मकरञ्जः । इति राजनिर्घण्ट ॥ चम्पक' । इति शब्दचन्द्रिका ॥ उत्कटगन्धयुक्ते त्रि । (यथा, हारीते प्रथमस्थानेऽष्टमाध्याय ।
"उग्रगन्ध पुराण स्याद्दशवर्षोषितं घृतम् ।
यथा यथा जरा याति गुणवत्स्यात्तथा तथा" ॥ )

उग्रगन्धा, स्त्री, (उग्र गन्धो यस्या ।) अजमोदा । वचा । छिक्किकौषधी । इति मेदिनी ॥ अजगन्धा । यवानी । इति राजनिर्घण्ट ॥ ("वचा, यमानी च" । इति भावप्रकाशे पूर्व्वखण्डे अनेकार्थनामवर्गे ॥)

उग्रचण्डा, स्त्री, (उग्रा चण्डा कोपना स्त्री ।) देवीभेद' । यथा महिषासुर प्रति भगवतीवाक्यम् ।
"उग्रचण्डेति या मूर्त्तिर्भद्रकाली ह्यह पुन ।
यया मूर्त्त्या त्वा हनिष्ये सा दुर्गेति प्रकीर्त्तिता ॥
एतासु मूर्त्तिषु सदा पादलग्नो न्टणा भवान् ।
पूज्यो भविष्यसि त्व वै देवानामपि रक्षसाम् ॥
आदिसृष्टौ उग्रचण्डामूर्त्त्या त्व निहत पुरा ।
द्वितीयसृष्टौ तु भवान् भद्रकाल्या मया हत' ॥
दुर्गारूपेणाधुना त्वा हनिष्यामि सहानुगम्" ।
इत्यादि ॥ * ॥ तस्याः प्रादुर्भावो यथा ।
श्रीभगवानुवाच ।
"उग्रचण्डा तु या मूर्त्तिरष्टादशभुजाऽभवत् ।
सा नवम्या पुरा कृष्णपक्षे कन्या गते रवौ ॥
प्रादुर्भूता महाभागा योगिनीकोटिभिः सह" ॥ * ॥
अनया मूर्त्त्या दक्षयज्ञभङ्ग कृत । यथा,—
"आषाढस्य तु पूर्णाया सत्र द्वादशवार्षिकम् ।
दक्षः कर्त्तु समारेभे तत्र सर्व्वे दिवौकसः ॥
ततोऽह न वृतस्तेन दक्षेण सुमहात्मना ।
कपालीति सती चापि तज्जायेति च नो वृता ॥
ततो रोषसमायुक्ता प्राणास्तत्याज सा सती ।
त्यक्तदेहा सती चापि चण्डमूर्त्तिस्तदाभवत् ॥
ततः प्रवृत्ते यज्ञे तु तस्मिन् द्वादशवार्षिके ।
नवम्या कृष्णपक्षे तु कन्याया चण्डमूर्त्तिधृक् ॥
योगनिद्रा महामाया योगिनीकोटिभि सह ।
सतीरूपं परित्यज्य यज्ञभङ्गमथाकरोत् ॥
शङ्करस्य गणै सर्व्वै सहिता शङ्करेण च ।
स्वय वभञ्ज सा देवी महासत्रं महात्मन' ॥
ततो देव्या महाक्रोधे व्यतीते त्रिदिवौकस' ।
पूजयाञ्चक्रुरतुला देवीं पूर्व्वोदितेन तै ॥
पूर्व्वोदितविधानेन पूजामस्या दिवौकस. ।
कृत्वैव परमामापुर्निर्वृतिं तु खहानये ॥
एवमन्यैरपि सदा कार्य्यं देव्या प्रपूजनम् ।
विभूतिमतुला प्राप्तुं चतुर्व्वर्गप्रदायकम् ॥
यो मोहादथवालस्याद्देवीं दुर्गां महोत्सवे ।
न पूजयति दम्भाद्वा द्वेषाद्वाप्यथ भैरव ॥
क्रुद्धा भगवती तस्य कामानिष्टान्निहन्ति वै ।
परत्र च महामायावलिर्भूत्वा स जायते ॥
अष्टम्या रुधिरैर्म्मासैर्म्महामासैः सुगन्धिभि' ।
पूजयेद्बहुजातीयैर्व्वलिभिर्भोजनैः शिवा" ॥
इत्यादि ॥ * ॥ तन्मन्त्रो यथा,—
"भद्रकालीमुग्रचण्डा महामाया महोत्सवे ।
नेत्रवीजन्तु सर्व्वासा पूजने परिकीर्त्तितम् ।
तन्त्रं यथोग्रचण्डाया पृथक् त्व शृणु भैरव ॥
आद्यद्वय नेत्रवीज मन्त्रस्योपान्तमन्तरे ।
वह्निनान्तस्वरेणेन्दुविन्दुभ्या तन्त्रमौग्रकम्" ॥
इत्यादि च कालिकापुराणे ५९ । ६० अध्यायौ ॥

उग्रतारा, स्त्री, (उग्रादपि भयात् भक्तान् त्राति तारयति वा या ॥ उग्र + तॄ + णिच् + अच् + टाप् । यथा, निरुक्तौ ।
"उग्रादपि भयात् त्राति यस्मात् भक्तान् सदाम्बिका" ।) देवीविशेष । अस्या उत्पत्त्यादि यथा,—
"सर्व्वेषामेव देवानां यज्ञभागानपाहरत् ।
स्वयं शुम्भो निशुम्भश्च दिक्पालत्व तथा गतौ ॥
सर्व्वे सुरगणा सेन्द्रास्ततो गत्वा हिमाचलम् ।
गङ्गावतारनिकटे महामाया प्रतुष्टुवु ॥
अनेकसस्तुता देवी तदा सर्व्वामरोत्कर' ।
मातङ्गवनितामूर्त्तिर्भूत्वा देवानपृच्छत ॥
युष्माभिरमरैरत्र स्तूयते का च भाविनी ।
किमर्थमागता यूय मातङ्गस्याश्रम प्रति ॥
एवं ब्रुवन्त्या मातङ्ग्यास्तस्यास्तु कायकोषत' ।
समुद्भूताब्रवीद्देवी मा स्तुवन्ति सुरा इति ॥
शुम्भो निशुम्भो ह्यसुरौ बाधेते सकलान् सुरान् ।
तस्मात्तयोर्वधायाह स्तूयेऽद्य सकलै सुरै ॥
विनिःसृताया देव्यास्तु मातङ्ग्याः कायतस्तदा ।
भिन्नाञ्जननिभा कृष्णा साभूद्गौरी क्षणादपि ॥
कालिकाख्याभवत् सापि हिमाचलकृताश्रया ।
तामुग्रतारामृषयो वदन्तीह मनीषिण ॥
उग्रादपि भयात्त्राति यस्माद् भक्तान् सदाम्बिका ।
एतस्या प्रथम वीज कथित तन्त्रमेव च" ॥ * ॥
"एषैवैकजटाख्यातिर्यस्मात्तस्या जटाधिका ।
शृणु त्व चिन्तन चास्या सम्यक् वेतालभैरवौ ॥
यया ध्यात्वा महादेवीं भक्त प्राप्नोत्यभीप्सितम् ।
चतुर्भुजां कृष्णवर्णां मुण्डमालाविभूषिताम् ॥
खड्गं दक्षिणपाणिभ्या विभ्रतीन्दीवरं त्वध ।
कर्त्त्रीञ्च खर्परञ्चैव क्रमाद्वामेन विभ्रतीम् ॥
ख लिखन्तीं जटामेका विभ्रतीं शिरसा स्वयम् ।
मुण्डमाला धरा शीर्षे ग्रीवायामपि सर्व्वदा ॥
वक्षसा नागहारन्तु विभ्रतीं रक्तलोचनाम् ।
कृष्णवस्त्रधरा कट्या व्याघ्राजिनसमन्विताम् ॥
वामपाद शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम् ।
विन्यस्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहाना शवं स्वयम् ॥
साट्टहासमहाघोरा रावयुक्तातिभीषणा ।
चिन्त्योग्रतारा सततं भक्तिमद्भि सुरेश्वरभि" ॥ * ॥
"एतस्या सप्रवक्ष्यामि या अष्टौ योगिनीस्तु ता ।
महाकाल्यथ रुद्राणी उग्रा भीमा तथैव च ।
घोरा च भ्रामरी चैव महारात्रिश्च सप्तमी ॥
भैरवी चाष्टमी प्रोक्ता योगिनीस्ता प्रपूजयेत्" ।
इति कालिकापुराणे ६० अध्याय' ॥ * ॥ अपिच
"ब्रह्मशैलस्य पूर्व्वस्या भूमिपीठे व्यवस्थिता ।
"चारुनिम्न शुभावर्त्त कामाख्यानाभिमण्डलम् ॥
यत्रोग्रतारारूपेण रमते परमेश्वरी ।
तत्र तेनैव रूपेण पूजितव्या शुभात्मिका ॥
तस्यास्तु वीज पूर्व्वस्मिन् उत्तरे प्रतिपादितम् ।
रूप शृणु नरश्रेष्ठ येन ध्येया सदाशिवा ॥
कृष्णा लम्बोदरी दीर्घा विरला रक्तदन्तिका ।
चतुर्भुजा कृशाङ्गी तु दक्षे कर्त्तृकखर्परौ ॥
खड्ग चेन्दीवरं वामे शीर्षे त्वेकजटा पुनः ।
वामपाद शवस्योर्व्वां निधायोत्थाय दक्षिणम् ॥
शवस्य हृदये न्यस्य साट्टहास प्रकुर्व्वती ।
नागहारशिरोमालाभूषिता कामदा परा ॥
त्रिकोण मण्डल चास्या ऊंकारमध्यवीजकम् ।
द्वारे नानायोगिनीना नामान्यस्यास्तु तन्त्रके ॥
ज्ञेयानि नरशार्दूल तत्प्रोक्त वान्यगोचरे" ।
इति कालिकापुराणे कामाख्यारूपनिर्णये ८१ अध्याय ॥ * ॥ स' च वशिष्ठशापात् वामा भूता । यथा,—

और्व्व उवाच ।

"एतद्विष्णोर्व्वच श्रुत्वा विधिना सहित' स तु ।
अङ्गीचकार हृदये तद्वच साध्यसाधने ॥
विसृज्य तान् ब्रह्मविष्णुयमान् वृषभवाहनः ।
आदाय सगणान् सर्व्वान् कामरूपान्तर ययौ ॥
उग्रतारा ततो देवीं गणांश्च प्राह शङ्कर' ।
उत्सारयन्तु सकलान् इमान् लोकान् गणा द्रुतम् ॥
उग्रतारे महादेवि त्वञ्चाप्युत्सारय द्रुतम् ॥
ततो गणा कामरूपाद्देवीचाप्यपराजिता ।
लोकानुत्सारयामास पीठ कर्त्तु रहस्यकम् ॥
उत्सार्य्यमाणे लोके तु चतुर्व्वर्णैर्द्विजातिभि' ।
सन्ध्याचलो गतो विप्रो वशिष्ठ' कुपितो मुनि ॥
सोऽप्युग्रतारया देव्या उत्सारयितुमीशया ।
गणै सह वृतः प्राह शापं कुर्व्वन् सुदारुणम् ।
यस्मादहं धृतं धामे त्वयोत्सारयितुं मुनि ॥
तस्मात्त्व वाम्यभावेन पूज्या भव समन्त्रिका ।
मर्त्यन्ति म्लेच्छवत् यस्माद्गणास्ते मन्दबुद्धय' ।
भवन्तु म्लेच्छास्तस्माद भवत्या कामरूपके ॥

इति मेदिनी ॥ (यथा, साहित्यदर्पणे । ३ परिच्छेदे । "अस्माकं सखि ! वाससी न रुचिरे ग्रैवेयकं नोज्ज्वलं"।
"विविधोज्ज्वलवेशा तु कलनूपुरनिस्वना" ॥)

उज्ज्वलं, क्ली, (उत् + ज्वल + अच् ।) स्वर्णम् । इति राजनिर्घण्ट ॥

उज्ज्वल, पुं, (उत् + ज्वल + अच् ।) शृङ्गाररसः । इत्यमरः ॥ (यथा, नैषधे १ । १ ।
"स राशिरासीन्महसां महोज्ज्वलः" ॥)

उज्झ श त्यागे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (तुदा-पर-सक-सेट् ।) जोपधः इत्येके । उज्झिष्यति । औज्झत् । श उज्झती उज्झन्ती । इति दुर्गादासः ॥ अन्यत् उद्झधातौ द्रष्टव्यम् ॥

उज्झ, पुं, (उज्झतीति । उज्झ + अच् ।) त्यागः । विसर्जनम् । (यथा, मनुः ११।५६ ।
"ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः" ॥)

उज्झित, त्रि, (उज्झ + क्त ।) उत्सृष्टम् । त्यक्तम् । वर्जितम् । इति हलायुधः ॥ (यथा किराते । ५ । ६ ।
"अविरतोज्झितवारिविपाण्डुभिः"।
"उज्झितायास्त्वया नाथ ! तदैव मरणं वरम्" ॥
इति रामायणे २ । ३० । २० ॥)

उञ्छ, क्ली, (उछि + घञ् ।) पक्षिवच्चादानवत् शस्यग्रहणम् । यथा । उपात्तशस्यात् देशात् शेषावचयने । उञ्छेन पक्षिवच्चादानवद्ग्रहणेन शिल्यते सञ्चीयते उञ्छशिलं उछि उञ्छे शिल उञ्छे छन्दोरित्युक्ते तालव्येति इगुपधात् कः उञ्छशिलम् । सम्प्रति विस्पष्टीतं विपर्य्यस्तस्य नाम । "शक्या न चेदुञ्छशिलेन वृत्तिः । फलेन मूलेन च वारिणा च" इति । समाहारद्वन्द्वे उञ्छशिलस्य । उञ्छभैक्षस्य यच्चान्यत्तत् परिग्रहणन्तु ऋतम् । इति निगमाभिधाने क्लीवम् । पुमानुञ्छऋतशिल इति वोपालिते पुंस्युञ्छ । भवभूतिकृतशिलोञ्छे इति गोवर्द्धनः । केचिदुञ्छशिलयोर्भेदमाहुः । "प्रतिग्रहात् शिलः श्रेयस्ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते" । इति तत्र शाल्यादेर्निपातितपरित्यक्तमञ्जरीणां आदानं शिलः । शिलः धान्यमञ्जरीसंग्रहः । इति स्वामी च । एकैकशः कपोतवद्धान्यकणोद्ग्रहणमुञ्छः । तदुक्तं उञ्छो धान्यकणोच्चय इति । शिलः तालव्यादि दन्त्यादि च । धर्म्मत्वात् सत्यमिति ऋतम् । इति उञ्छशिलशब्दटीकायां भरतः ॥

उञ्छ, पुं, (उछि उञ्छे + घञ् ।) उञ्छशिलम् । इति जटाधरः ॥ (यथा, रामायणे । २।२४।२।
"मयि जाते दशरथात् कथमुञ्छेन वर्त्तयेत्" ॥)

उञ्छन, क्ली, (उछि + ल्युट् ।) आपणादिपतितकणोपादानम् । इति श्रीभागवतम् ॥ उक्कन खुँटिया लओन चुनिया लओन कुड़ाइया लओन इत्यादि भाषा ॥

उञ्छशिल, क्ली, (उञ्छश्च शिलश्चेत्येकवद्भावः ।) उञ्छवृत्तिः । सा तु स्वच्छीतशस्यदेशात् शेषावचयनम् । तत्पर्य्यायः । ऋत २ । इत्यमरः ॥ उञ्छसिल ३ उञ्छ ४ उञ्छ ५ शिल ६ । इति तट्टीका ॥ (यथा, मनुः । ४।५ ।
"ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम्" ॥)

उञ्छशील, त्रि, (उञ्छः शील वृत्त यस्य ।) उञ्छजीवी । उद्धृतशस्यस्य शेषाहरणकर्त्ता । इति पुराणम् ॥ छिचेर इति भाषा ॥

उटः, पुं, तृणपर्णादिः । इत्यमरटीकायां भरत ॥

उटज, पुं, क्ली, (उटास्तृणपर्णादयस्तेभ्यो जायते इति । उट + जन + ड ।) मुनीनां पत्ररचितगृहम् । तत्पर्य्यायः । पर्णशाला २ । इत्यमरः ॥ पर्णोटज ३ । इति शब्दरत्नावली ॥ यथा रघुः ।
("आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः" । १।५०।
"मृगैर्वर्त्तितरोमन्थमुटजाङ्गनभूमिषु" । १ । ५२ ।)
गृहमात्रम् । इत्यमरमाला ॥

उठ उपघाते । (भ्वादि-पर-सक-सेट् ।) इति कविकल्पद्रुमः ॥ ऋकारादि । ओठति खलं साधुम् । इति दुर्गादासः ॥

उड सहतौ । (पर-अक सेट् ।) सौत्रधातुरयम् । इति कविकल्पद्रुमः ॥ उडुपः । इति दुर्गादासः ॥

उडु, क्ली स्त्री, (उ रोषोक्तिपूर्व्वकं डयते इति । उ + डी + डु मितद्र्वादित्वात् डुः ।) नक्षत्रम् । इत्यमरः ॥ ("तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखम्" । इति भागवत । १०।२९।२ । तथा रघुवंशे । १९।६५ ।
"इन्दुप्रकाशान्तरितोडुतुल्या" ।)
जले क्ली । इत्यमरटीकायां भरतः ॥

उडुप, पुं क्ली, (उडुनो जलात् पाति रक्षतीति । उडु + पा + क ।) भेलकम् । भेला माड इत्यादि भाषा । तत्पर्य्यायः । प्लव २ कोल ३ । इत्यमरः ॥ भेलक ४ उडूपः ५ तरणः ६ तारणं ७ तारक ८ । इति शब्दरत्नावली ॥
("तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्" ॥ इति रघुवंशे । १।२ ।) चन्द्रे पुं । इति मेदिनी ॥
("अपश्यत् वदनं तस्य रश्मिवन्तमिवोडुपम्" । इति महाभारते । वनपर्व्वणि ॥ चर्म्मावनद्धपानपात्रं । यथा,—
"चर्म्मावनद्धमुडुपं प्लवः काष्ठं करण्डवत्" ॥
इति सज्जनः ॥ )

उडुपति, पुं, (उडूनां पतिः ।) चन्द्रः । इति पुराणज्योतिषे ॥ ("अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः" । इति कुमारे । ५।२२ ।
"परिमुग्धतां वणिगिवोडुपतेः" । इति माघे ।)

उडुपथ, पुं, (उडूनां पन्थाः ।) आकाशम् । इति हेमचन्द्रः ॥

उडुम्बर, क्ली, (उडुं वृणातीति । उडु + वृ + अच् ।) ताम्रम् । इति मेदिनी ॥ ("ताम्रं शुल्बमुडुम्बरम्" । इति वैद्यकरत्नमाला । कर्षार्थे यथा,—
"उडुम्बरञ्च पर्य्याये कर्ष एव निगद्यते" ॥
इति शार्ङ्गधरे पूर्व्वखण्डे प्रथमाध्याये ।)
कर्षपरिमाणम् । इति वैद्यकपरिभाषा ॥

उडुम्बर, पुं, (उडु + वृ + अच् ।) उदुम्बरवृक्षः । यज्ञडुमुर इति भाषा । तत्पर्य्यायः । जन्तुफल २ यज्ञाङ्गः ३ हेमदुग्धक ४ । इत्यमरः ॥ ब्रह्मवृक्षः ५ । इति रत्नमाला ॥ हेमदुग्धी ६ यज्ञफलः ७ यज्ञोडुम्बरः ८ । इति शब्दरत्नावली ॥ सदाफल ९ क्षीरवृक्षः १० सुपत्रः ११ श्वेतवल्कल १२ । इति जटाधरः ॥ अस्य गुणाः । उडुम्बरो हिमो रूक्षो गुरुः पित्तकफास्रजित् । मधुरस्तुवरो वर्ण्यो व्रणशोधनरोपणः । इति भावप्रकाशः ॥
("उडुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं कर्षमात्रकम् ।
सलिहेन्मधुना सर्व्वमनुपानं सुखावहम्" ॥
इति वैद्यकरसेन्द्रसारसंग्रहे मूत्राघाताधिकारे)
अन्यत् उदुम्बरशब्दे द्रष्टव्यम् ॥ देहली । गोवराटेर निचेर काठ इति भाषा । षण्डम् । नपुंसकमिति यावत् । कुष्ठरोगभेदः । इति मेदिनी ॥

उडुम्बरपर्णी, स्त्री, (उडुम्बरस्य पर्णमिव पर्णं यस्याः ।) दन्तीवृक्षः । इति शब्दचन्द्रिका । (उदुम्बरपर्णीशब्दे ऽस्या विशेषो ज्ञेयः ॥)

उडूप, पुं क्ली, (उडुपशब्दे ऽस्य व्युत्पत्तिर्ज्ञेया ।) उडुपः । भेला इति भाषा । चन्द्रे पुं । इति द्विरूपकोषः ॥

उड्डयन, क्ली, (उत् + डी + ल्युट् ।) नभोगतिः । ओड़ा इति भाषा । यथा नैषधे १ । १२५ ।
"गतो विरत्योड्डयने निराशताम्" ॥
("सोऽपि तमादाय सम्पातोड्डयनेन प्रस्थित" । इति पञ्चतन्त्रे ॥)

उड्डामर, त्रि, (उत्कृष्टः डामरः ।) श्रेष्ठम् । तत्पर्य्यायः । उद्भट २ उत्तालम् ३ । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (पुं तन्त्रविशेषः ॥)

उड्डीन, क्ली, (उत् + डी + क्त ।) खगगतिक्रिया । पक्षिणां ऊर्द्ध्वगमनम् । इत्यमरः ॥
("अहं सम्पातादिकामष्टानुड्डीनगतिविशेषान् वेद्मि" । इति पञ्चतन्त्रे ॥)

उड्डीयमान, त्रि, (उत् + डी + शानच् ।) उड्डयनविशिष्टपक्ष्यादि । उडन्त ओड़ता इत्यादि भाषा ।

उड्डीश, पुं, (उत् + डी + श । यद्वा उड्डानां उत्पथगामिनां योगिनामित्यर्थः ईशः महादेवस्य योगीश्वरत्वात् ।) आगमशास्त्रविशेषः । शिवः । इति मेदिनी ॥

उत्, अ, प्रश्नः । वितर्कः । इति मेदिनी ॥ अत्यर्थे सन्देहः । इति शब्दरत्नावली ॥ (ऊर्द्ध्वम् । अप्यर्थे ॥)

उत अ, (उ शब्दे + क्त ।) अत्यर्थम् । विकल्पः । समुच्चयः । वितर्कः । प्रश्नः । पादपूरणम् । इति मेदिनी ॥ (अप्यर्थे । एवार्थे । "किमेतदारण्यमुत ग्राम्यम्" । इति पञ्चतन्त्रे । "सत्त्विमयमावर्ज्य दोषः स्यात् उत यथा मे मनसि वर्त्तते" इति शाकुन्तले । "वीरो रसः किमयमित्युत दर्प एषः" । इति उत्तरचरिते ॥)

उत, त्रि, (वे + क्त । यजादित्वात् सम्प्रसारणम् ।) तन्तुसन्तानः । वोना इति भाषा । तत्पर्य्यायः । ऊत २ स्यूतम् ३ । इत्यमरः ॥

उतथ्य, पुं, मुनिविशेषः । स च अङ्गिरःपुत्रः । इति पुराणम् ॥
("त्रयस्त्वङ्गिरसः पुत्रा लोके सर्व्वत्र विश्रुताः । बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्त्तश्च धृतव्रताः" ॥
इति महाभारते आदिपर्व्वणि ॥)

उतथ्यानुज:, पु, (उतथ्यस्यानुज ।) बृहस्पति । इति त्रिकाण्डशेष ॥ (यथा माघे २।६९ ।
"तथ्यमुतथ्यानुजवत् जगादाग्रे गदाग्रजम्" ॥)

उतथ्यानुजन्मा, [न्] पुं, (उतथ्यस्य अनुजन्मा अनुज ।) बृहस्पति । इति भूरिप्रयोगः ॥

उताहो, अ, (उत च आहो च अनयोः समाहार ।) प्रश्ने । विचार । इति मेदिनी ॥ विकल्प । इत्यमर ॥
("क्षमा स्वित् श्रेयसी तात । उताहो तेज इत्युत" । यक्षी वा राक्षसी वा त्वं उताहोऽसि सुराङ्गना" ॥ इति च महाभारते ॥)

उताहोस्वित्, अ, उताहो । विकल्प । इत्यमरटीका ॥ ("अन्यदप् विदधातीह गर्भमुताहोस्वित् स्वेन कायेन याति" । इति महाभारते ॥)

उत्क:, त्रि, (उद्गत मनो यस्य । उत् + कन् ।) उन्मना । अन्यमनस्क: । इत्यमर ॥
("तत् श्रुत्वा ते श्रवणसुभग गर्ज्जितं मानसोत्काः" । इति मेघदूते । ११ । तथा कुमारे । ६।८५ ।
"अगमयद्गिरिसुतासमागमोत्क" ॥)

उत्कट, त्रि, (उद्गतः कट आवरणं आवरको वा यस्य ।) तीव्रम् । मत्तम् । इति मेदिनी ॥ विषमम् । इति शब्दरत्नावली ॥ (यथा रामायणे ५ काण्डे ।
"चन्द्रांशुनिकराभासा हाराः कासाञ्चिदुत्कटाः । स्तनमध्ये सुविन्यस्ता विरेजुर्हंसपाण्डरा" ॥)

उत्कट, क्ली, गुडत्वक् । तेजपात इति ख्यातं इति केचित् । इत्यमरभरतौ ॥ दारचिनि । इति ख्यातम् । इति राजनिर्घण्ट ॥ (अस्य पर्य्यायानाह भावप्रकाशे पूर्व्वखण्डे,
"त्वक्पत्रञ्च वराङ्गं स्याद् भृङ्गञ्चोदन्तमुत्कटम्" ॥)

उत्कट:, पु, (उद्गतमदहस्ते उच्छब्दात् स्वार्थे सम्प्रोदश्चेति कटच् ।) मद । इति शब्दरत्नावली ॥ मत्तमदहस्ती । इति हारावली ॥ शर: । इक्षु: । इति राजनिर्घण्ट: ॥

उत्कटा, स्त्री, (उद्गतः कटो यस्याः ।) सैंहलीलता । इति राजनिर्घण्ट: ॥

उत्कण्ठ, पु, (उद्गत कण्ठो यस्य ।) शृङ्गारस्य षोडशबन्धान्तर्गतत्रयोदशबन्ध । आसन यस्य प्रसिद्धि । तस्य लक्षणम् ।
"नारीपादौ च हस्तेन धारयेद्वक्षे पुन । स्तनार्पितकरः कामी बन्धश्चोत्कण्ठसञ्ज्ञक" ॥
इति रतिमञ्जरी ॥

उत्कण्ठा, स्त्री, (उत् + कठि + अ + टाप् ।) उत्कलिका । इष्टलाभे कालक्षेपासहिष्णुता । इत्यमर ॥ कामादिजातस्मृति: । इति भरत ॥ उद्वाङ्क्षया स्मरणम् । इति मधु ॥ उत्केन दयितस्मरणम् । इति सुभूति:॥ प्रियामिलाषादुन्मनस्त्वं । इत्यन्ये ॥
("गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालाम्" । इति मेघदूते । ८३ ।
"यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया" । इति शाकुन्तले । ४ र्थे अङ्के ॥)

उत्कण्ठित, त्रि, (उत्कण्ठा जातास्य । उत्कण्ठा + इतच् ।) उत्कण्ठायुक्तम् । तत्पर्य्याय । उत्कं २ उत्सुकं ३ उन्मनः ४ । इति हेमचन्द्र ॥
("साश्रेणाश्रद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन" । इति मेघदूते । १०३ ॥)

उत्कण्ठिता, स्त्री, (उत्कण्ठा सञ्जातास्या । उत्कण्ठा + इतच् + टाप् ।) स्वीयादिनायिकाभेद । अस्या लक्षणम् ।
"सङ्केतस्थलं प्रति भर्त्तुरना-
गमनकारणं चिन्तयति या" ।
अस्याश्चेष्टा । अरति-सन्ताप-जृम्भाङ्गाकृष्टि-कम्प-रुदित-स्वासावस्थाकथनादय । इति रसमञ्जरी ॥ (इयमेव विरहोत्कण्ठिता । यदुक्तं साहित्यदर्पणे तृतीयपरिच्छेदे ।
"आगन्तुं कृतचित्तोऽपि दैवान्नायाति यत्प्रियः । तदनागमनदुःखार्त्ता विरहोत्कण्ठिता तु सा" ॥
तत्रैव । १० परिच्छेदे अपह्नुतेरुदाहरणम् । यथा,—
'उत्कण्ठितासि तरले ।
नहि नहि सखि । पिच्छिल: पन्थाः' ॥)

उत्कता, स्त्री, (उत्कस्य भाव । उत्क + तल् ।) गजपिप्पली । इति शब्दचन्द्रिका ॥ उत्कस्य भाव । उत्कण्ठा ॥

उत्कर, पु, (उत्कीर्य्यते इति । उत् + कृ + अप् ।) धान्यादिराशि । स्तूप । इत्यमर ॥
("सिक्ताराजपथान् रम्यान् प्रकीर्णकुसुमोत्करान्" । इति रामायणे ॥)

उत्कर्ष, पु, (उत् + कृष् + घञ् ।) अतिशय । इत्यमर ॥ (प्राधान्य । श्रेष्ठता । यथा, "उत्कर्ष: स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले" । इति शाकुन्तले २ य अङ्के ।
"निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत्" । इति मनु ४।२४४ ॥ वृद्धि । यथा,—
"पञ्चानामपि भूतानामुत्कर्षं पुपुषुर्गुणाः" । इति रघु । ४ । ११ ।) अतिशययुक्ते त्रि ॥ स्वकालात् परकालकर्त्तव्य । इति स्मृति: ॥

उत्कल:, पुं, (उत् + कल + अच् ।) ओड्रदेश । इति त्रिकाण्डशेष ॥ उडिष्या इति भाषा । व्याधः । इति शब्दमाला ॥ पाखिमारा इति भाषा ।
("उत्कलादर्शितपथ कलिङ्गाभिमुखो ययौ" । इति रघुवंशे ४।३८ ॥ सुद्युम्नतनयः स्वनामख्यातो राजा । यदुक्तं महाभारते ।
"सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्म्मिकाः । उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च भारत ! ॥
उत्कलस्योत्कला राजन् विनताश्वस्य पश्चिमा" ॥)

उत्कल, त्रि, (उत् + कल + अच् ।) भारवाहकम् । इति शब्दमाला । मुटे इति भाषा ॥

उत्कलिका, स्त्री, (उत् + कल + वुन् + टाप् ।) उत्कण्ठा । इत्यमर ॥
("ततोऽन्येद्युः प्रतिपदं तत्तदुत्कलिकाम्भृता" । कथासरित्सागरे । २२।१०५ ।) कलिका । इति त्रिकाण्डशेष ॥ ("उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणात्" । इति रत्नावली ।) तरङ्ग: । ("वनावलीरुत्कलिकासहस्रप्रतिघातोत्कूलितशैवलाभाः" । इति माघः । ३ । ७० ।) हेला । इति हेमचन्द्र ॥

उत्कलित, त्रि, (उत् + कल + क्त ।) उन्मना । ऋद्धिमान् । इति धरणी ॥ (उत्कण्ठित: ॥)

उत्का, स्त्री, (उद्गतं मनो यस्या । उत् + कन् + टाप् ।) उत्कण्ठिता नायिका । इति रसमञ्जरी ॥

उत्काका, स्त्री, (उत्का + अक + अच् + टाप् ।) प्रतिवर्षप्रसूता गौ । इति शब्दचन्द्रिका ॥

उत्कार:, पुं, (उत्कीर्य्यते इति । उत् + कृ + घञ् ।) धान्योत्क्षेपणम् । तत्पर्य्याय । निकार २ । इत्यमर ॥ धान सारा इति भाषा । धान्यस्य राशीकरणं वा । इति भरत ॥

उत्कूट, क्ली, (उत् + कूट + क ।) उत्तानशयनम् । इति हारावली ॥ चित् हइया शोया इति भाषा ।

उत्कुण, पुं, (उत् + कुण + क ।) केशकीटः । उकुण इति भाषा । तत्पर्य्यायः । मत्कुण २ कोलकुण ३ उद्दंश ४ किटिभ ५ । इति हेमचन्द्र ॥

उत्कूट:, पु, (उन्नतं कूटमस्य ।) छत्रम् । इति हारावली॥

उत्कृष्ट, त्रि, (उत् + कृष् + क्त ।) उत्कर्षविशिष्टम् । अतिशययुक्तम् । प्रकृष्टम् । प्रशस्तम् । यथा,—
"उत्कृष्टमध्यमनिकृष्टजनेषु मैत्री,
यद्वत् शिलासु सिकतासु जलेषु रेखा ।
वैरं क्रमादधममध्यमसज्जनेषु,
यद्वत् शिलासु सिकतासु जलेषु रेखा" ॥
इत्युद्भट: ॥ (कर्षणवत्क्षेत्रादि ॥)

उत्कृष्टभूम, पु, (उत्कृष्टा प्रशस्ता भूमिर्यस्मिन् ।) प्रशस्तभूमि । इति जटाधर ॥

उत्कोचः, पुं स्त्री, (उत्कोचति अशुभं नाशयतीति । उत् + कुच + क ।) घुस् इति ख्यात । तत्पर्य्याय । प्राभृतं २ ढौकनं ३ लम्बा ४ कौशलिकं ५ आमिषं ६ उपाहार: ७ प्रदा ८ आनन्दा ९ हार १० ग्राह्य ११ अयनं १२ । इति हेमचन्द्र: ॥ उपदानकं १३ । इति त्रिकाण्डशेष ॥ अपप्रदान १४ । इति भूरिप्रयोगः ॥ (यथा, याज्ञवल्क्ये १ । ३ ॥ ३८ ।
"उत्कोचजीविनो द्रव्यहीनान् कृत्वा प्रवासयेत्" ।)

उत्क्रम, पुं, (उत् + क्रम + अच् ।) व्यतिक्रमः । विपरीति: । तत्पर्य्याय । व्युत्क्रम २ अपक्रमः ३ । इति हेमचन्द्र: ॥

उत्क्रोश, पुं स्त्री, (उत्क्रोशति प्रहरे प्रहरे शब्दं करोतीति । उत् + क्रुश + अच् ।) कुररपक्षी । इत्यमर ॥

उत्क्षिप्त, पु, (उत् + क्षिप + क्त ।) धुस्तूरफलम् । इति शब्दचन्द्रिका । ऊर्द्ध्वक्षिप्ते त्रि ॥

उत्क्षिप्तिका, स्त्री, (उत् + क्षिप् + क्तिन् + कन् + टाप् ।) कर्णभूषणविशेष । तत्पर्य्याय । कर्णान्दु २ । इति हेमचन्द्र: ॥

उत्क्षेपणं, क्ली, (उत् + क्षिप् + ल्युट् ।) व्यजनम् । धान्यमर्द्दनवस्तु । इति मेदिनी ॥ उदञ्चनम् । ऊर्द्ध्वक्षेपणम् ।
("अतिमात्रलोहिततलौ बाहू घटोत्क्षेपणात्" इति शाकुन्तले प्रथमाङ्के ।) षोडशपणकम् । इति

हेमचन्द्रः ॥ (न्यायमते पञ्चकर्म्ममध्यपरिगणितम् । यथा भाषापरिच्छेदे ।
"उत्क्षेपणं ततोऽवक्षेपणमाकुञ्चनं तथा ।
प्रसारणञ्च गमनं कर्म्माण्येतानि पञ्च च" । ६ ॥)

उत्खला, स्त्री, (उत् + खल + अच् + टाप् ।) मुरानाम गन्धद्रव्यम् । तत्पर्य्यायः । तालपर्णी २ तालपर्णा ३ तालाख्या ४ खला ५ । इति शब्दचन्द्रिका ॥ (मुराशब्देऽस्या विवरणं ज्ञेयम् ।)

उत्खात, त्रि, (उत् + खन + क्त ।) उन्मूलितम् । इति जटाधरः ॥ उपड़ान इति भाषा । ("त्याजितैः फलमुत्खातैर्भग्नैश्च बहुधा नृपैः" । इति रघुवंशे ।४।३३। विदारित । यथा,—
"शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातपङ्काभिरम्य" ।
इति मेघदूते । ११६ ॥)

उत्त, त्रि, (उनत्ति क्त । उन्दी क्लेदने अकर्म्मकत्वात् कर्त्तरि क्त । नुदविदेति पक्षे नस्याभाव ।) आर्द्रवस्तु । इत्यमरः ॥

उत्तंस, पु, (उत्तंसयति उत्तंस्यतेऽनेन वा तसि सौत्रो भूषार्थः । पचाद्यच् हलश्चेति घञ् वा ।) कर्णपूरः । कर्णाभरणम् । शेखरः । शिरोभूषणम् । इत्यमरः ॥ मतान्तरे क्लीवलिङ्गोऽपि ॥ ("नोत्तंस क्षिपति क्षितौ श्रवणतः सा मे स्फुटेऽप्यागसि" । इति साहित्यदर्पणे । ३य परिच्छेदे ॥)

उत्तप्त, क्ली, (उत् + तप + क्त ।) शुष्कमांसम् । इत्यमरः ॥

उत्तप्त, त्रि, तप्त । सन्तप्त । परिश्रुत । स्नात । इति मेदिनी ॥

उत्तभित त्रि, उन्नमितम् । इति श्रीभागवतम् ॥

उत्तम, त्रि, (अतिशयेन उत्कृष्टः । उत् + तमप् । द्रव्यप्रकर्षार्थत्वाभावात् । यद्वा उत्ताम्यति तमु अच् उत्ताम्यते वा घञ् । नोदात्तेति न वृद्धि ।) भद्रः । उत्कृष्टः । तत्पर्य्यायः । प्रधान २ प्रमुख ३ प्रवेक ४ अनुत्तम ५ मुख्य ६ वर्य्य ७ वरेण्यः ८ प्रवर्ह ९ अनवरार्द्ध्य १० परार्द्ध्य ११ अग्र १२ प्राग्रहर १३ प्राग्र्य १४ अग्र्य १५ अग्रीय १६ अग्रिय १७ । इत्यमरः ॥ मुखः १८ अग्रणी १९ तट्टीका ॥ (उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागत" । इति हितोपदेशः ।
"उत्तमाद्देवरात् पुंसः काङ्क्षन्ते पुत्त्रमापदि" ॥
इति महाभारते ॥)

उत्तम, पुं, वैशिकनामनायकभेद । तस्य लक्षणम् ।
"दयिताश्रमप्रकोपेऽपि उपचारपरायणः" ।
इति रसमञ्जरी ॥ प्रियव्रतराजपुत्त्र । स च तृतीयमनुः । अस्मिन् मन्वन्तरे सत्यसेनोऽवतार । सत्यजिदिन्द्र । सत्यवेदश्रुतभद्रादयो देवा । वशिष्ठसुता प्रमदादयः सप्तर्षय । पवनसृञ्जययज्ञहोत्राद्या मनुपुत्त्राः । इति श्रीभागवतम् ॥ (उत्तानपादस्य राज्ञः स्वनामख्यातः पुत्त्रभेदः । यथा, विष्णुपुराणे । १ । ११ । २ ॥
"तयोरुत्तानपादस्य सुरुच्यामुत्तम सुत" ॥)

उत्तमफलिनी, स्त्री, (उत्तमफल विद्यते यस्याः । उत्तमफल + इनि + ङीप् ।) दुग्धिकाख्यक्षुप । इति रत्नमाला । दूधियार इति भाषा ॥

उत्तमर्ण, पु, (उत्तममृणमस्य । ऋणमाधमर्ण्ये इति सूत्रे आधमर्ण्यशब्देन व्यवहारविशेषो लक्ष्यते ।) ऋणदाता । इत्यमरः ॥ महाजन इति भाषा । तत्पर्य्यायः । ऋणदः २ । इति जटाधरः ॥ ("अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदित ।
दापयेत् धनिकस्यार्थमधमर्णात् विभावितम्" ॥
इति मनु । ८ । ४७ ॥)

उत्तमसंग्रह, पु, (उत्तम संग्रहो यस्मिन् ।) सम्यक् संग्रहणम् । तत्तु निर्जने परभार्य्यया सह केशाकेशिपरस्परगाढालिङ्गनसहासनादिरूपमिथुनीभाव । इति मिताक्षरा ॥

उत्तमसाहस, पु, (उत्तम साहसोऽस्त्यस्मिन् ।) दण्डविशेष । स तु साशीतिपणसाहस्र । यथा ।
साशीतिपणसाहस्रो दण्ड उत्तमसाहस" ।
इति याज्ञवल्क्य ॥ सहस्रपणमितोऽपि । यथा,
"पणानां द्वे शते सार्द्धे प्रथम साहसः स्मृत ।
मध्यम पञ्च विज्ञेय सहस्र त्वेव चोत्तम" ॥
इति मनु ॥

उत्तमा, स्त्री, (अतिशयेन उत्कृष्टा । उत् + तमप् + टाप् ।) उत्कृष्टा नारी । तत्पर्य्यायः । वरारोहा २ मत्तकाशिनी ३ वरवर्णिनी ४ । इत्यमरः ॥ मत्तवारिणी ५ । मत्तकासिनी ६ । इति तट्टीका ॥ दुग्धिकाख्यक्षुप । इति मेदिनी ॥ स्वीयादिनायिकाभेद । अस्या लक्षणम् । अहितकारिण्यपि प्रिये हितकारिणी । अन्याखेला उत्तमा एव । इति रसमञ्जरी ॥

उत्तमाङ्ग, क्ली, (उत्तम प्रशस्तमङ्ग ।) मस्तक । इत्यमर ॥ ("कश्चित् द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्ग" । इति रघौ । ७।५१। "बभौ पतद्गङ्ग इवोत्तमाङ्गे" । इति कुमारे ।७।४१। मुखम् । यथा, मानवे १।९३॥
' उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्यात् ब्राह्मणश्चैव धारणात् ।
सर्व्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्म्मतो ब्राह्मण प्रभु" ॥
उत्तमाङ्ग मुख इति तट्टीका ॥)

उत्तमारणी, स्त्री, इन्दीवरी । इति राजनिर्घण्ट ॥ (इन्दीवरीशब्देऽस्या गुणादिक बोध्यम् ।)

उत्तर, क्ली, (उत् + तॄ + अप् ।) प्रतिवाक्यम् । इत्यमर ॥ जवाव इति यावनी भाषा ।
(यथा, माघे २ । २२ ।
"वचसस्तस्य सपदि क्रिया केवलमुत्तरम्" ।)
तस्य व्युत्पत्ति ।
"उत्तीर्य्यते निक्षीर्य्यते प्रकृताभियोगोऽनेन" ।
तस्य स्वरूपम् ।
"पक्षस्य व्यापक सारमसन्दिग्धमनाकुलम् ।
अव्याख्यागम्यमित्येवमुत्तर तद्विदो विदु" ॥
तस्य भेदाः ।
"मिथ्या सम्प्रतिपत्तिश्च प्रत्यवस्कन्दन तथा ।
प्राङ्न्यायश्चोत्तराःप्रोक्ताश्चत्वार शास्त्रवेदिभि" ॥
इति नारद ॥ (अथ उत्तर नाम साधर्म्योपदिष्टे वा हेतौ वैधर्म्म्यवचन वैधर्म्योपदिष्टे वा साधर्म्यवचन यथा हेतुसधर्म्माणोविकारा शीतकस्य हिव्याधेर्हेतुसाधर्म्यवचन हिमशिशिरवातसंस्पर्शा इति ब्रुवत परो ब्रूयात् हेतुविधर्म्माणो विकारा यथा शरीरावयवाना दाहौष्ण्य कोथप्रपचने हेतुवैधर्म्ये हिमशिशिरवातसंस्पर्शा इति । एतत् सविपर्य्ययमुत्तरम् । इति चरके विमानस्थानेऽष्टमोऽध्याय ॥)

उत्तर पु, विराटराजपुत्त्र । इति हेमचन्द्र ॥ (यथा महाभारते ३ । गोहरणपर्व्वणि ३५।३३ "तमुत्तर वीक्ष्य रथोत्तमे स्थितम्" । तत्रैव ३४ "सहोत्तरेणाथ तदस्य मङ्गलम्") । (स्वनामख्यातपर्व्वतभेद । यथा, "दक्षिणस्योत्तरो गिरि" । इति रामायणे ॥ उत्तरयति ससारसागरात् इति व्युत्पत्त्या शिवः । यथा, महाभारते ।१३।१४९।६६।)

उत्तर, त्रि, (उदतिशयेन उद्गत । उत् + तरप् ।) ऊर्द्ध्व । उदीची । (यथा, रामायणे ।
"उत्तरे जाह्नवीतीरे हिमवन्त शिलोच्चयम्" ।)
उत्तम इति मेदिनी अमरश्च ॥ (प्रधान । श्रेष्ठ । यथा, रघु १३।७।
"रमा इवोपप्लविन परेभ्यो,
धर्म्मोत्तर मध्यममाश्रयन्ते" ।
"महाधर्म्मोत्तरे राज्ये शान्तनुर्विनयात्मवान्" ।
इति महाभारतम् ॥) अनन्तरम् ।
("वित्त बन्धुर्वय कर्म्म विद्या भवति पञ्चमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद् यदुत्तरम्" ॥
इति मनु । २ । १३६ ॥)

उत्तरकाल, पु, (उत्तर काल ।) भविष्यत्काल । गौणकाल । यथा, हरिहरपद्धति ।
"एवमागामियागीयमुख्यकालादधस्तन ।
सकालादुत्तरो गौण काल पूर्व्वस्य कर्म्मण" ॥

उत्तरकुरु, स्त्री, (उत्तर कुरु ।) जम्बुद्वीपस्य नववर्षान्तर्गतवर्षविशेष । इति त्रिकाण्डशेष ॥
('विजित्य य प्राज्यमयच्छदुत्तरान्
कुरूनकुप्य वसु वासवोपम" ।
इति किरातार्ज्जुनीये । १ । २५ ॥)

उत्तरकोशला, स्त्री, (उत्तरे स्थिता कोशला ।) अयोध्यानगरी । इति त्रिकाण्डशेष ॥
("पितुरनन्तरमुत्तरकोशलान्
समधिगम्य समाधिजितेन्द्रियः" ॥
इति रघु ९।१॥
"यदुपते क्व गता मथुरापुरी
रघुपते क्व गतोत्तरकोशला" ।
इति उद्भटः ॥)

उत्तरक्रिया, स्त्री, (उत्तरा अन्तिमा क्रिया ।) अन्तिमक्रिया । सांवत्सरिकश्राद्धादिपित्र्यक्रिया । यथा,
"प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादनु ।
क्रियन्ते याः क्रियाः पित्र्या प्रोच्यन्ते ता नृपोत्तरा" ।
इति विष्णुपुराणम् ॥

उत्तरङ्ग क्ली, (उत्तर + गम् + खच् ।) द्वारोर्द्ध्वस्थदारु । इति हेमचन्द्रः ॥ उद्गततरङ्गे त्रि ॥
"प्रत्यग्रहीत् पार्थिववाहिनीं तां
भागीरथीं शोण इवोत्तरङ्ग" ॥ इति रघु ।७।३६।

उत्तरण, क्ली, (उत् + तॄ + ल्युट् ।) नद्यादिपारगमनम् । उत्तरण इति भाषा ॥

उत्तरत', [स्] व्य, (उत्तर+स्वार्थे+अतसुच्।) उत्तरदिग्देशकालात्। इति रायमुकुट ॥ उत्तर हइते इति भाषा। (यथा, रामायणे ४।५५। अध्याये।
"दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु कृत्वा चोत्तरत शिर।
तमेवानुमरिष्यन्त सर्व्वे संविविशुर्भुवि" ॥)

उत्तरतारं, क्ली, (उत्तरमपर तारं।) उत्तरतीरम्। इति सिद्धान्तकौमुदी ॥

उत्तरपक्ष पु, (उत्तर पक्ष।) विचारसिद्धान्त। समाधानम्। तत्पर्य्याय। सिद्धान्त २ समाधि ३ कृतान्त ४। इति त्रिकाण्डशेष ॥ सिद्धान्तानुकूलतर्कोपन्यास। इति स्मृति ॥ यथा माघे।
("प्रापयन् पवनव्याधेर्गिरमुत्तरपक्षता" ।२।१५॥)

उत्तरपाद, पु, (उत्तर पाद।) चतुष्पाद्व्यवहारान्तर्गतद्वितीयपाद। (यथाह बृहस्पति।
"पूर्व्वपक्ष स्मृत पादो द्विपादश्चोत्तर स्मृत"।)
उत्तरम्। इति व्यवहारतत्त्वम् ॥

उत्तरफल्गुनी, स्त्री, (उत्तरा फल्गुनी।) अश्विन्यादिसप्तविंशतिनक्षत्रान्तर्गतद्वादशनक्षत्रम्। अस्या रूपम्। दक्षिणोत्तरमिलिततारकाद्वयम्। इति कालिदास ॥ पर्य्यङ्करूपं तारकाद्वय। इति दीपिकाटीका ॥ अस्या अधिष्ठात्री देवता अर्य्यमा। अस्या मिश्रगुण। अस्या जातफलम्।
"दाता दयालु स्वजने सुशीलो
विशालकीर्त्ति सुमति प्रधान।
धीरो नरोऽत्यन्तमृदुस्वभाव-
स्वदुत्तराफल्गुनिकाप्रसूति" ॥
इति कोष्ठीप्रदीप ॥

उत्तरफाल्गुनी, स्त्री, (उत्तरा फाल्गुनी।) उत्तरफल्गुनीनक्षत्रम्। तत्पर्य्याय। उत्तरा २ अर्य्यमदेवा ३। इति हेमचन्द्र ॥

उत्तरभाद्रपत्, [द्] स्त्री, (उत्तरा भाद्रपत्।) उत्तरभाद्रपदानक्षत्रम्। इति ज्योतिषम् ॥

उत्तरभाद्रपदा, स्त्री, (उत्तरा भाद्रपदा।) अश्विन्यादिसप्तविंशतिनक्षत्रान्तर्गतषड्विंशनक्षत्र। तत्पर्य्याय। प्रौष्ठपदा २ अहिर्बुध्नदेवता ३। इति हेमचन्द्र ॥ अस्या रूपम्।
"उत्तरे सुमुखि तारमूर्त्तिभि-
र्युक्तमाशु मिलितद्वितारके।
नीलचामरकचे न्टयुग्मतो
लोचनाचलकला पलायिता" ॥
इति कालिदास ॥ पर्य्यङ्करूपमष्टतारात्मक। इति दीपिकाटीका ॥ अस्यां जातफलम्।
"धनी कुलीन कुशल क्रियादौ
भूपालमान्यो बलवान् महौजा।
सत्कर्म्मकर्त्ता निजबन्धुभक्तो
यद्युत्तराभाद्रपदाप्रसूत" ॥
इति कोष्ठीप्रदीप ॥

उत्तरवादी, [न्] त्रि, (उत्तर वदति य। उत्तर+वद+णिन्।) उत्तरवक्ता। इति व्यवहारतत्त्वम् ॥ आसामी इति भाषा। यथा याज्ञवल्क्य २।१७।
("पूर्व्वपक्षेऽधरीभूते भवत्युत्तरवादिन" ॥)

उत्तरसाक्षी, [न्] त्रि, स्वपक्षसम्बन्धिसाक्ष्य परिभाषता साक्षिणा य स्वय शृणोति अर्थिना श्राव्यते वा स। तथाच नारद।
"साक्षिणामपि य साक्ष्य स्वपक्ष परिभाषताम्।
श्रवणात् श्रावणाद्वापि स साक्ष्युत्तरसञ्ज्ञक" ॥
इति व्यवहारतत्त्वम्। परसाक्षी इति भाषा ॥

उत्तरसाधक त्रि, (उत्तर साधक।) साधकसहाय। सहकारी ॥

उत्तरा, स्त्री, (उत्तर+टाप्।) विराटराजकन्या। साभिमन्युपत्नी। इति मेदिनी ॥ (यथा महाभारते ३। गोहरणपर्व्वणि ३५। २३।
"स तत्र नर्म्मसयुक्तमकरोत् पाण्डवो बहु।
उत्तराया प्रमुखत सर्व्व जानन्नरिन्दम" ॥)
उत्तरा दिक्। तत्पर्य्याय। कौवेरी २ देवी ३ उदीची ४। इति राजनिर्घण्ट ॥ (यथा महाभारते २। दिग्विजयपर्व्वणि २८। १७।
"एव स पुरुषव्याघ्रो विजिग्ये दिशमुत्तराम्" ।)
अस्या दिशोऽधिपति कुबेर कर्कटवृश्चिकमीनराशयश्च। यथा। समयप्रदीप ॥
"मेषसिंहधनु प्राच्या दक्षिणस्यान्तु तत्परे।
प्रतीच्या तत्परे ज्ञेया उदीच्याश्च तत परे" ॥

उत्तरात्, व्य, (उत्तराधरदक्षिणादाति इति उत्तरादातिप्रत्यय।) उत्तरा दिक्। इत्यमरटीकायां रायमुकुट ॥ (यथा, ऋग्वेदे ६।१९।९।
"आ ते शुष्मा वृष्ण एतु पश्चादोत्तरादधरादापुरस्तात्" ॥)

उत्तराधिकारी, [न्] त्रि, (उत्तर पूर्व्वस्वामिकस्वत्वनाशानन्तर अधिकरोति पूर्व्वस्वामिकधने स्वाम्यमाप्नोतीति। उत्तर+अधि+कृ+णिन्।) प्रथमाधिकारिण पश्चादधिकारी। दायाद। ओयारिस् इति यावनी भाषा ॥ (मृतधनोत्तराधिकारिणो दायभागशब्दे द्रष्टव्या ॥)

उत्तराभास, पु, (सदुत्तरम् इव आभासते। आङ्+भास+अच्।) दुष्टोत्तरम्। तथा च कात्यायन।
"प्रकृतेन त्वसम्बन्धमत्यल्पमतिभूरि च।
पक्षैकदेशव्याप्येव तच्च नैवोत्तर भवेत्" ॥
इति व्यवहारतत्त्वम् ॥

उत्तरायण, क्ली, (उत्तरा उत्तरस्या अयनं सूर्य्यादेर्गमनम्। पूर्व्वपदात्सञ्ज्ञायामिति णत्वम्।) सूर्य्यस्य उत्तरदिग्गमनकाल। स तु माघादिषण्मासात्मक। इति हेमचन्द्र ॥ (यथाह सूर्य्यसिद्धान्त।
"भानोर्मकरसक्रान्ते षण्मासा उत्तरायणम्।
कर्कादेस्तु तथैव स्यात् षण्मासा दक्षिणायनम्" ॥
"माघादिमासयुग्मैस्तु ऋतव षट् क्रमादित।
उत्तरायणमाद्यैस्तैस्त्रिभि स्याद्दक्षिणायनम्" ।)
देवाना दिनम्। इति स्मृति ॥ (मकरसक्रान्ति।
"वानप्रस्थाश्रमिभिर्विप्रै करणीयो यागभेद" ।
यदुक्त मनुना ६।१०।
"ऋक्षेष्ट्याग्रयणञ्चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत्।
उत्तरायणञ्च क्रमशो दाक्षस्यायनमेव च" ॥
"शिशिरश्च वसन्तोऽपि ग्रीष्म स्यादुत्तरायणे"।
इति हारीते प्रथमस्थाने चतुर्थोऽध्याय ॥
"शिशिराद्यास्त्रिभिस्तैस्तु विद्यादयनमुत्तरम्।
आदानञ्च तदा दत्ते नृणा प्रतिदिन बलम् ॥
तस्मिन् ह्यत्यर्थतीक्ष्णोष्णरूक्षामार्गस्वभावत।
आदित्यपवना सौम्यान् क्षपयन्ति गुणान् भुव ॥
तिक्त कषाय कटुको बलिनोऽत्र रसा क्रमात्
तस्मादादानमाग्नेयम्"। इति सूत्रस्थाने तृतीयेऽध्याये वाभटेनोक्त ॥
"तत्र ते शीतोष्णवर्षलक्षणाश्चन्द्रादित्ययो कालविभागकरत्वादयने द्वे भवतो दक्षिणमुत्तरञ्च"।
"उत्तरञ्च शिशिरवसन्तग्रीष्मास्तेषु भगवानाप्यायतेऽर्कस्तिक्तकषायकटुकाश्च रसा बलवन्तो भवन्त्युत्तरोत्तरञ्च सर्व्वप्राणिना बलमपहीयते" ॥
इति सूत्रस्थाने षष्ठेऽध्याये सुश्रुतेनोक्तम् ॥ )

उत्तराशाढा, स्त्री, (उत्तरा आशाढा।) उत्तराषाढानक्षत्रम्। इति भरतो द्विरूपकोषश्च ॥

उत्तराशापति, पु, (उत्तराशाया उत्तरदिश अधिपति अधिष्ठाता।) कुबेर। इति हलायुध ॥

उत्तराषाढा, स्त्री, (उत्तरा आषाढा।) अश्विन्यादिसप्तविंशतिनक्षत्रान्तर्गतैकविंशनक्षत्रम्। अस्या रूपम्। सूर्पाकृतितारचतुष्टयात्मकम्। अस्या अधिदेवता विश्व। इति कालिदास ॥ गजदन्तवदष्टतारामयम्। इति दीपिकाटीका ॥
तत्र जातफलम्। यथा कोष्ठीप्रदीपे।
"दाता दयावान् विजयी विनीत
सत्कर्म्मचेता विभवै समेत।
कान्तासुतावाप्तसुखो नितान्त
वैश्वे सुवेष पुरुषो मनीषी" ॥)

उत्तरासङ्ग, पु, (उत्तरे ऊर्द्ध्वभागे आसज्यते। उत्तर+आ+सञ्ज+घञ्।) उत्तरीयवस्त्र। इत्यमर ॥
("कृताभिषेका हुतजातवेदस
त्वगुत्तरासङ्गवतीमधीतिनीम्"।
इति कुमारे ५।१६ ॥ तथा, रामायणे २।५०।४८।
"ततश्चीरोत्तरासङ्ग सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम्" ॥)

उत्तरीय, क्ली, (उत्तरस्मिन् ऊर्द्ध्वदेहभागे भवम्। उत्तर+छ।) उत्तरीयवस्त्रम्। दोव्होट् दोव्हा इत्यादि भाषा। तत्पर्य्याय। प्रावार २ उत्तरासङ्ग ३ बृहतिका ४ सव्यानम् ५। इत्यमर ॥ कच्छा ६। इति जटाधर।
("अथास्य रत्नग्रथितोत्तरीय-
मेकान्तपाण्डुस्तनलम्बिहारम्"।
इति रघु १६।४३। यथा रामायणे २ ८८।१४।
"उत्तरीयमिवासक्त सुव्यक्त सीतया तदा" ॥)

उत्तरेण, व्य, (उत्तर+एनप्।) उत्तरदिग्देशकाल। इत्यमरटीकाया रायमुकुट ॥ यथा मेघदूते १६।७५।
("किञ्चित्पश्चात् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण"।
"तत्रागार धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयम्" ॥)

उत्तरेद्यु, [स्] व्य, (उत्तरस्मिन्नहनि इत्यर्थे सद्य-पदिति उत्तरशब्दादेद्युस् प्रत्ययो निपातित।) उत्तरस्मिन्नहनि। आगामिदिने। इति शब्दरत्नावली ॥

उत्तान, त्रि, (उद्गतस्तानो विस्तारो यस्मात्।) अगम्भीरम्। ऊर्द्ध्वमुखशयितम्। इति मेदिनी ॥ चित्

इति भाषा। (ऊर्द्ध्वतलम्। यथा,
"उत्तानपाणिद्वयसन्निवेशात्
प्रफुल्लराजीवमिवाङ्कमध्ये"।
इति कुमारे ३।४५। तथा, याज्ञवल्क्यः।
"पित्र्यमात्र तदुत्तानं कृत्वा विप्रान् विसर्ज्जयेत्"।
"उत्तान लेपनाभ्यङ्गपरिषेकावगाहनैः।
विरेकास्थापनैः स्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत्"॥
इति चिकित्सास्थाने द्वाविंशेऽध्याये वाग्भटेनोक्तं॥
"उत्तानस्य प्रसुप्तस्य कांस्यं वा ताम्रभाजनम्।
नाभौ निधाय धाराम्बु शीतदाहनिवारणम्"॥
इति हारीते चिकित्सितस्थाने द्वितीयेऽध्याय॥)

उत्तानकः, पु, (उत् + तन + ण्वुल्।) उच्चटातृणम्। इति रत्नमाला॥ (उच्चटाशब्देऽस्य विशेष उक्तः॥)

उत्तानपत्रकः, पु, (उत्तानं ऊर्द्ध्वमुखं पत्रं यस्य। बहुव्रीहौ कन्।) रक्तैरण्डवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥

उत्तानपादः, पु, (उत्तानः उन्नतः पादः पदं यस्य।) राजविशेषः। स तु स्वायम्भुवमनुपुत्त्र इति पुराणम्॥ (यथा, विष्णुपुराणे १।११॥
"प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवस्य तु।
द्वौ पुत्त्रौ सुमहावीर्य्यौ धर्म्मज्ञौ कथितौ तव"॥)

उत्तानपादजः, पु, (उत्तानपादात् जायते यः। उत्तानपाद + जन् + ड।) उत्तानपादराजपुत्त्रः। तत्पर्य्यायः। ज्योतीरथः २ ग्रहाधारः ३ ध्रुवः ४। इति हारावली॥ (उत्तमः। यथा, विष्णुपुराणे १।११॥
"तयोरुत्तानपादस्य सुरुच्यामुत्तमः सुतः।
अभीष्टायामभूद्ब्रह्मन्! पितुरत्यन्तवल्लभः॥२॥
सुनीतिर्नाम या राज्ञस्तस्याभून्महिषी द्विज!
स नातिप्रीतिमांस्तस्यां तस्यामभूद्ध्रुवः सुतः॥३॥)

उत्तानशयः, त्रि, (उत्तानः शेते। शीङ् शयने पार्श्वादिषूपसंख्यानमिति अच्।) अत्यन्तशिशुः। तत्पर्य्यायः। डिम्भा २ स्तनपा ३ स्तनन्धयी ४। इत्यमरः॥ उत्तानसुप्तः॥

उत्तापः, पु, (उत् + तप् + घञ्।) तेजः। उष्मा। सन्तापः॥ (यथा, हितोपदेशः।
"प्रत्यक्षं सर्वसिद्धीनामुत्तापः प्रथमं किल"॥)

उत्तारः, त्रि, (उत् + तॄ + घञ्।) महान्। तत्पर्य्यायः। उदीर्णः २ उद्भटः ३ उदारः ४ उत्तमः ५। इति जटाधरः॥ (यथा प्रबोधचन्द्रोदये।
"संसारसागरोत्तारतरणिः"।) वमनम्। इति प्रायश्चित्तविवेकादयः॥

उत्तारी, [न्] त्रि, (उत् + तॄ + णिन्।) चपलः। इति भूरिप्रयोगः॥

उत्तालः, त्रि, (उत् + तल् + घञ्।) उत्कटः। श्रेष्ठः। विकरालः। प्लवङ्गमः। इति मेदिनी॥
("लसदुत्तालवेतालतालवाद्यं विवेश तत्।
श्मशानं छायारजनीनिवासमवनोपमम्"॥
इति कथासरित्सागरे २५। १३६॥
"अन्योन्यप्रतिघातसङ्कुलचलत्कल्लोलकोलाहलै-
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः"।
इति उत्तरचरिते। २य अङ्के।) त्वरितः। इति हेमचन्द्रः॥

उत्तीर्णः, त्रि, (उत् + तॄ + क्त।) मुक्तम्। पारगतम्॥
("तुलोत्तीर्णस्यापि प्रकटितहताशेषतमसो
रवेस्तादृक्तेजो न हि भवति कन्यां गतवतः"।
इति पद्मसंग्रहे १८॥)

उत्तुङ्गः, त्रि, (उत् अतिशयेन तुङ्गः।) उच्चः। इति जटाधरः॥
("उत्तुङ्गशैलशिखरस्थितपादपाग्रा
काकः क्षुधोऽपि फलमाप्नभते सपक्षः"।
इति उद्भटः। उन्नतः। "पीनोत्तुङ्गपयोधरेति सुमुखाम्भोजेति सुभ्रूविति"। इति भर्त्तृहरिः १।७२॥)

उत्तुषः, पु, (उद्गतस्तुषो धान्यत्वक् यस्मात्।) भृष्टधान्यम्। तत्पर्य्यायः। खाजिकः २ लाजाः ३। इति हारावली। खइ इति भाषा॥

उत्तेजना, स्त्री, (उत् + तिज् + णिच् + युच्।) प्रेरणा। व्यग्रकरणम्॥ (तीक्ष्णीकरणम्। यथा,
"व्याघट्टनोत्तेजनया मणीनाम्"। इति माघे।)

उत्तेजितं, क्ली, (उत् + तिज् + णिच् + क्त।) अश्वचतुर्थगतिः। सा च मध्यवेगेन या गतिः। तत्पर्य्यायः। रेचितम् २। इति हेमचन्द्रः॥ प्रेरिते त्रि॥

उत्तेरितं, क्ली, (उत् + तॄ + इतच्।) अश्वपञ्चमगतिः। तत्पर्य्यायः। उपकण्ठं २ आस्कन्दितकम् ३। इति हेमचन्द्रः॥ (तथा चोक्तम्,—
"उत्तेरितोऽतिवेगाश्वो न शृणोति न पश्यति"॥)

उत्तोलनं, क्ली, (उत् + तुल् + ल्युट्।) ऊर्द्ध्वनयनम्। तोला। इति भाषा॥

उत्त्यक्तः, त्रि, (उत् + त्यज् + क्त।) परित्यक्तः। ऊर्द्ध्वक्षिप्तः। विरक्तः॥

उत्त्रासः, पुं, (उत् + त्रस् + घञ्।) भयम्। इति शब्दरत्नावली॥

उत्थानं, क्ली, (उत् + स्था + ल्युट्।) सैन्यम्। युद्धम्। पौरुषम्। पुस्तकम्। उद्यमः। (यथा रामायणे ५।
"मम धर्म्मार्थमुत्थानं न काममक्रोधसंश्रितम्"।)
उद्गमः। (अभ्युदयः। यथा रघुवंशे। ६।३१।
"निदर्शयामास विशेषदृश्य-
मिन्दुं नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै"॥)
हर्षः। वास्तु। अङ्गनम्। चैत्यं। (धनार्ज्जननिमित्ता चेष्टा। यथा मनुः ९।२१५॥
"भ्रातॄणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह।
न पुत्त्रभागं विषमं पिता दद्यात् कथञ्चन"॥)
मलोत्सर्गः। इति हेमचन्द्रः॥ तन्त्रम्। तत्तु स्वमण्डलम्। सैन्यचिन्ता च। सन्निविष्टः। उपविष्टः। इत्यमरभरतौ॥ गात्रोत्तोलनम्। उठन इति भाषा। (यथा शाकुन्तले २य अङ्के। "मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः"।) यथा च,
"निशि स्वापो दिवोत्थानं सन्ध्यायां परिवर्त्तनम्।
अन्यत्र पादयोगेऽपि द्वादश्यामेव कारयेत्"॥
इति तिथ्यादितत्त्वम्॥ (पुनर्जीवनम्। मरणानन्तरं पुनर्जीवनलाभः। यथा महाभारते।
"स चापि वरयामास पितुरुत्थानमात्मनः"॥)

उत्थानैकादशी, स्त्री, (उत्थानाय हरेः प्रबोधनाय या एकादशी। अस्यां भगवान् क्षीरोदशयानो नारायणः योगनिद्रां विहाय उत्तिष्ठति।) कार्त्तिकशुक्लैकादशी॥ अथ विष्णूत्थानम्। तत्र दिवसे रेवत्यन्तयुक्तायां द्वादश्याम्। रात्रौ रेवत्यन्तपादयोगे तु दिवातृतीयभागे रेवतीयुक्तद्वादश्याम्। द्वादश्यास्तदभावे एकादशीप्रभृतिपौर्णमास्यन्तान्यतमतिथौ रेवत्यन्तपादयोगे। तदभावे केवलायां द्वादश्यां सन्ध्यायां विष्णुं सम्पूज्य
ॐ "महेन्द्ररुद्रैरभिनूयमानो
भवानृषिर्व्वन्दितवन्दनीय।
प्राप्ता तवेयं किल कौमुदाख्या
जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ॥
मेघा गता निर्म्मल एष चन्द्रः
शारद्यपुष्पाणि च लोकनाथ।
अहं ददानीति च पुण्यहेतो-
र्जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ"॥
ततश्च।
"उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते।
त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितं भुवनत्रयम्"॥
इति पठेत्। इति कृत्यतत्त्वम्॥

उत्थापनं, क्ली, (उत् + स्था + णिच् + ल्युट्।) उत्तोलनम्। उपस्थितीकरणम्॥
("किन्नु मे सुकृतं भूयात् भर्त्तुरुत्थापनं न वा"।
इति महाभारते १। आस्तीकपर्व्वणि। ४६।१०।

उत्थितः, त्रि, (उत् + स्था + क्त।) वृद्धिमत्। प्रोद्यतः। उत्पन्नम्। इत्यमरमेदिनीकरौ॥ (कृतोत्थानम्।
"अर्द्धाचिता सत्वरमुत्थितायाः"।
इति कुमारे, ७।६१। रघुवंशे च ७।१०।
"शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ"
इति मेघदूते। ११२। "न यावदेतावुदपश्यदुत्थितौ"। इति माघे। १।१५॥)

उत्थिताङ्गुलिः, पुं, (उत्थिता अङ्गुलयो यत्र।) चपेटः। विस्तृताङ्गुलिकरतलम्। इति शब्दचन्द्रिका। चापड् इति भाषा॥

उत्पतः, पु, (उत् ऊर्द्ध्वं पतति गच्छति। उत् + पत् + अच्।) पक्षी। इति त्रिकाण्डशेषः॥

उत्पतनं, क्ली, (उत् + पत् + ल्युट्।) उत्पत्तिः। ऊर्द्ध्वगमनम्। इति मेदिनी॥
("अथोत्पतनमन्त्रं सा पठित्वा ससखीजना"।
इति कथासरित्सागरे॥ विषमतरङ्गे॥)

उत्पतिता, [ऋ] त्रि, (उत् + पत् + तृच्।) ऊर्द्ध्वगमनशीलः। उपरिगमनकर्त्ता इत्यमरः॥

उत्पतिष्णुः, त्रि, (उत् + पत् + इष्णुच्।) ऊर्द्ध्वगमनशीलः। तत्पर्य्यायः। उत्पतिता २। इत्यमरः॥
("ससम्भ्रमश्चक्षुसामेलानामुत्पतिष्णवः"।
इति रघुः। ४। ४७। तथा पञ्चतन्त्रे। ३। ४१।
"मृगपतिरपि कोपात् सङ्कुचत्युत्पतिष्णुः"॥)

उत्पत्तिः, स्त्री, (उत् + पत् + क्तिन्।) उत्पतनम्। तत्पर्य्यायः। जनुः २ जननं ३ जन्म ४ जनिः ५ उद्भवः ६। इत्यमरः॥ संसारः ७ भवः ८ जातिः ९। इति जटाधरः॥ प्रभवः १० भावः ११ सम्भवः १२ जनूः १३। इति शब्दरत्नावली॥

(यथा मनु । २।६८ ।
"उत्पत्तिव्यञ्जक पुण्य कर्म्मयोगं निबोधत" ।)
(साङ्ख्यादिमते आविर्भाव । यथा, मृत्पिण्डे विद्यमानस्य घटस्याविर्भाव एव उत्पत्तिर्यथा तथैव कारणात्मना विद्यमानानां तत्त्वाना आविर्भाव एवोत्पत्तिर्विवक्षिता ॥)
उत्पन्न, त्रि, (उत् + पद + क्त ।) उत्पत्तिविशिष्ट । जात । उद्भूत ॥
उत्पलं, क्ली, (उत्पलतीति । पल गतौ पचाद्यच् ।) नीलकमलम् । कुष्ठौषधि । इति विश्व ॥ पुष्पम् । इति मेदिनी ॥ जलजपुष्पमात्रम् । तच्च पद्मकुमुदादि । तत्पर्य्याय । कुवलयम् २ । इत्यमर ॥ कुवलम् ३ । इति जटाधर ॥ कुवेलम् ४ । इति शब्दरत्नावली ॥ (यथा रघौ ३।३६ । "नवावतार कमलादिवोत्पलम्" ।) अस्य गुणा । कषायत्वम् । मधुरत्वम् । शीतलत्वम् । पित्तकफरक्तनाशित्वञ्च । इति राजवल्लभ ॥ जलपुष्पविशेष । कोन्दि इति हिन्दी भाषा । तत्पर्य्याय । अनुष्णम् २ रात्रिपुष्पम् ३ जलाश्रयम् ४ हिमाब्जम् ५ निशापुष्पम् ६ । अस्य गुणा । शीतत्वम् । स्वादुत्वम् । पित्तरक्तार्त्तिदोषनाशित्वम् । दाहश्रमवमिभ्रान्तिक्रमिज्वरहरत्वञ्च । इति राजनिर्घण्ट ॥
("उत्पलानि कषायाणि पित्तरक्तहराणि च" ।
इति सूत्रस्थाने सप्तविंशेऽध्याये चरकेणोक्तम् ॥
"तस्मादल्पान्तरगुणे विद्यात्कुवलयोत्पले" ।
इति सुश्रुते सूत्रस्थाने षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्याय ॥)
उत्पल, त्रि, (उद्गत पल मांस यस्मात् स ।) मांसशून्य । इति विश्व हेम चन्द्रश्च ॥
उत्पलगन्धिकं, क्ली, (उत्पलस्य गन्ध इव गन्धो यस्य । समासे इत् स्वार्थे कन् ।) चन्दनविशेष । तत्पर्य्याय । हरिचन्दनम् २ गोशीर्षम् ३ । इति शब्दमाला ॥
उत्पलपत्र, क्ली, (उत्पलस्य पत्रम् । नखक्षतमुत्पलपत्रमिव ।) कुवलयदलम् । (यथा विष्णुपुराणे १।४।२६ ।
तत समुत्क्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया
महावराह स्फुटपद्मलोचन ।
रसातलादुत्पलपत्रसन्निभ
समुत्थितो नील इवाचलो महान् ॥)
स्त्रीनखक्षतम् । इति हेमचन्द्र ॥ तिलकम् । इति धरणी ॥
उत्पलशारिवा, स्त्री, (उत्पलमस्त्यस्याः उत्पलाकारपुष्पत्वात् । अर्श आद्यच् । यद्वा उत्पल पलमनया । तत उत्पला चासौ शारिवा चेति ।) श्यामलता । इत्यमर ।(श्यामलताशब्देऽस्या गुणादिकं ज्ञेयम् ॥)
उत्पलिनी, स्त्री, (उत्पलानि सन्ति अस्या तेषा समूहो वा । उत्पल + इनि + ङीप् ।) पद्मसमूह । इति शब्दरत्नावली ॥ जलपुष्पविशेष । छोटी कोन्दि इति हिन्दी भाषा । तत्पर्य्याय । कैरविणी २ कुमुद्वती ३ कुमुदिनी ४ चन्द्रेष्टा ५ कुवलयिनी ६ इन्दीवरिणी ७ नीलोत्पलिनी ८ । (यथा महाभारते तीर्थयात्रापर्व्वणि ३।९६।२५ ।
"वर्द्धसे सा महाराज बिभ्रती रूपमुत्तमम् ।
अर्च्चिश्चेवोत्पलिनी शीघ्रमग्नेरिव शिखा शुभा" ॥)

अस्या गुणा । हिमत्वम् । तिक्तत्वम् । रक्तामयपित्तनाशित्वम् । वातकफकासदाहश्रमवमिभ्रमतापकारित्वञ्च । तस्या बीजगुणा । स्वादुत्वम् । रूक्षत्वम् । हिमत्वम् । गुरुत्वञ्च । इति राजनिर्घण्ट ॥
उत्पली, स्त्री, तुषचर्पटी । इति मेदिनी । तुंसेर चापड़ा इति भाषा ॥
उत्पवन,क्ली, (उत् + पू + ल्युट् ।) कुशखण्डिकाया पवित्रमध्येन जलादेरुत्क्षेपणम् । तत्र क्रम । "पवित्रद्वयमग्रे वामहस्तानामिकाङ्गुष्ठाभ्या मूले दक्षिणहस्तानामिकाङ्गुष्ठाभ्या उत्तानहस्ताभ्या गृहीत्वा आज्ये प्रक्षिप्य तयोर्मध्येनाज्यस्योत्क्षेपणम्" । इति कालेसि ॥ "पवित्रद्वयमग्रे दक्षिणहस्तानामिकाङ्गुष्ठाभ्या मूले वामहस्तानामिकाङ्गुष्ठाभ्या गृहीत्वा दक्षिणहस्तोपरिभावेन अधोमुखो यज्ञपात्राणि पवित्रमध्येन प्रोक्षणीजलस्य किञ्चिदुत्तोलनम्" । इति पशुपति ॥ "पशुपत्युक्तक्रमेण सामगाना मन्त्रोच्चारणपूर्व्वकं पवित्रद्वयमध्येनाज्या वाज्योत्क्षेपणं" ॥ इति भवदेवभट्ट ॥
उत्पश्य, त्रि, (उद्र्ध्वं पश्यतीति + उत् + दृश् + श ।) उन्मुख । ऊर्द्धदृष्टिविशिष्ट । इति हेमचन्द्र ॥
उत्पाटन, क्ली, (उत् + पट + णिच् + ल्युट् ।) उन्मूलनम् । मूल उपड़ान इति भाषा ॥ (यथा सुश्रुते ।
"निखातोत्पाटनं भङ्ग मतन निर्गमस्तथा" ॥)
उत्पाटित, त्रि, (उत् + पट + णिच् + क्त ।) कृतोत्पाटन । तत्पर्य्याय । उन्मूलितम् २ उत्खातम् ३ । इति जटाधर ॥ आवर्हितम् ४ उद्धृतम् ५ । इति हेमचन्द्र ॥
उत्पात, पु, (उत् + पत् + घञ् ।) उत्पतति अकस्मादायाति य । प्राणिना शुभाशुभसूचकमहाभूतविकारभूकम्पादि । इत्यमरटीकाया भरत ॥ तत्पर्य्याय । अजन्यम् २ उपसर्ग ३ । इत्यमर ॥ स त्रिविध । दिव्य १ यथा अपर्व्वणि चन्द्रादित्यग्रासादि । आन्तरीक्ष २ यथा, उल्कापातनिर्घातादि । भौम ३ यथा भूकम्पादि । इति दीपिकाचण्डीटीके ॥ (उत्पातानां जन्मस्थानादिक ऋतौ स्वभावप्रभवात् अदोषत्वञ्चोक्तं वृहत्संहितायां ४६ अध्याये । यथा,—
"नरपतिदेशविनाशे केतोरुदयेऽथवा ग्रहेऽर्केन्दोः ।
उत्पाताना प्रभव स्वर्तुभवश्चाप्यदोषाय ॥ ८२ ॥
येच न दोषान् जनयन्त्युत्पातास्तानृतुस्वभावकृतान् ।
ऋषिपुत्रकृतैः श्लोकैर्विद्यादेतैः समासोक्तैः ॥ ८३ ॥
वज्राशनिमहीकम्पसन्ध्यानिर्घातनिःस्वना ।
परिवेशरजोधूमरक्तार्कास्तमनोदया ॥ ८४ ॥
द्रुमेभ्योऽन्नरसस्नेहबहुपुष्पफलोद्गमा ।
गोपक्षिमदवृद्धिश्च शिवाय मधुमाधवे ॥ ८५ ॥
तारोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम् ।
अनग्निज्वलनस्फोटधूमरेण्वनिलाहतम् ॥ ८६ ॥
रक्तपद्मारुणं सान्ध्यं नभः क्षुब्धार्णवोपमम् ।
सरिताञ्चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत् ॥ ८७ ॥
शक्रायुधपरीवेषविद्युच्छुष्कविरोहणम् ।
कम्पोद्वर्त्तनवैकृत्यं रसनं दरणं क्षितेः ॥ ८८ ॥
सरोनद्युदपानानां वृद्ध्यूर्द्धतरणप्लवाः ।

सरणञ्चाद्रिगेहानां वर्षासु न भयावहम् ॥ ८९ ॥
दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्व्वविमानाद्भुतदर्शनम् ।
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं च दिवाम्बरे ॥ ९० ॥
गीतवादित्रनिर्घोषा वनपर्व्वतसानुषु ।
शस्यवृद्धिरपां हानिरपापाः शरदि स्मृताः ॥ ९१ ॥
शीतानिलतुषारत्वं नर्द्दनं मृगपक्षिणाम् ।
रक्षोयक्षादिसत्त्वानां दर्शनं वागमानुषी ॥ ९२ ॥
दिशो धूमान्धकाराश्च सनभोवनपर्व्वताः ।
उच्चैः सूर्य्योदयास्तौ च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः ॥ ९३ ॥
हिमपातानिलोत्पातविरूपाद्भुतदर्शनम् ।
कृष्णाञ्जननिभाकाशं तारोल्कापातपिञ्जरम् ॥ ९४ ॥
चित्रगर्भोद्भवाः स्त्रीषु गोऽजाश्वमृगपक्षिषु ।
पत्राङ्कुरलतानाञ्च विकाराः शिशिरे शुभाः ॥ ९५ ॥
ऋतुस्वभावजा ह्येते दृष्टाः स्वर्त्तौ शुभप्रदाः ।
ऋतोरन्यत्र चोत्पाता दृष्टास्ते भृशदारुणाः ॥ ९६ ॥
उन्मत्तानाञ्च या गाथाः शिशूनां भाषितञ्च यत् ।
स्त्रियो यच्च प्रभाषन्ते तस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥ ९७ ॥
पूर्व्वं चरति देवेषु पश्चाद् गच्छति मानुषान् ।
नाचोदिता वाग्वदति सत्या ह्येषा सरस्वती ॥ ९८ ॥
उत्पातान् गणितविवर्ज्जितोऽपि बुद्ध्वा
विख्यातो भवति नरेन्द्रवल्लभश्च ।
एतत्तन्मुनिवचनं रहस्यमुक्तं
यज्ज्ञात्वा भवति नरस्त्रिकालदर्शी" ॥ ९९ ॥
उत्पतनं । उल्लम्फ । यथा, रामायणे ५।६८।२३ ।
"एकोत्पातेन ते लङ्कामेष्यन्ति हरिपुङ्गवाः" ।
उन्नतिः । वृद्धि । यथा, हितोपदेशे ।
"करनिहितकन्दुकसमाः पातोत्पाता मनुष्याणां" ।
उत्पत्तिः । यथा, महाभारते, वनपर्व्वणि ।
"बुद्धिरात्मानुगातीव उत्पातेन विधीयते ।
तदाश्रिता हि सा ज्ञेया बुद्धिस्तस्यैषिणी भवेत्" ।)
उत्पादक, पु, (उत् + पद + णिच् + ण्वुल् ।) पशुविशेष । तत्पर्य्याय । शरभ २ कुञ्जराराति ३ अष्टपाद ४ । इति हेमचन्द्र ॥
उत्पादक, त्रि, (उत्पादयतीति । उत् + पद् + णिच् + ण्वुल् ।) उत्पादयिता । जनक । यथा मनु ।
"उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मद पिता" ।
२ । १४६ ॥
उत्पादनं,क्ली, (उत् + पद + णिच् + ल्युट् ।) जननम् । उत्पन्नकरणम् । इति व्याकरणम् ॥(यथा मनुः ।९।२७।)
"उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्" ।
उत्पादशयन, पु स्त्री, (उत्पाद ऊर्द्धपाद सन् शेते य स । उत्पाद + शी + ल्यु ।) टिट्टिभपक्षी । इति हेमचन्द्र ॥
उत्पादिका, स्त्री, ( उत् + पद + णिच् + ण्वुल् + टाप् ।) देहिकानामकीट । इति त्रिकाण्डशेष ॥ हिलमोचिका इति शब्दचन्द्रिका ॥ पूतिका । इति भरतो द्विरूपकोषश्च ॥
उत्पाली, स्त्री, (उत् + पल् + घञ् + ङीष् ।) आरोग्यम् । इति शब्दचन्द्रिका ॥
उत्पिञ्जल, त्रि, (उदतिशय पिञ्जलो व्यग्र ।) भृशाकुल । अतिशयव्याकुल । तत्पर्य्याय । समुत्पिञ्ज २ पिञ्जल ३ । इति हेमचन्द्र ॥

उत्प्रेक्षा, स्त्री, (उत्प्रेक्ष्यते इति उत्+प्र+ईक्ष+अ+टाप्।) अनवधानम्। इति मेदिनी॥ काव्यालङ्कारविशेषः। तस्य लक्षणम्।
"सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्"।
"अस्यार्थः। प्रकृतस्य उपमेयस्य समेन उपमानेन यत् सम्भावनं मिथ्यात्वेन वर्णनम्"। इति काव्यप्रकाशः॥ (अस्या भेदा बहवः। यदुक्तं साहित्यदर्पणे, दशमपरिच्छेदे। ५६—६२॥
"भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।
वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथमं द्विविधा मता॥
वाचेवादिप्रयोगे स्यादप्रयोगे परा पुनः।
जातिर्गुणः क्रिया द्रव्यं यदुत्प्रेक्ष्यं द्वयोरपि॥
तदष्टधापि प्रत्येकं भावाभावाभिमानतः।
गुणक्रियास्वरूपत्वात् निमित्तस्य पुनश्च ताः॥
द्वात्रिंशद्विधतां यान्ति तत्र वाच्याभिदाः पुनः।
विना द्रव्यं त्रिधा सर्व्वाः स्वरूपफलहेतुगाः॥
उक्त्यनुक्त्योर्निमित्तस्य द्विधा तत्र स्वरूपगाः।
प्रतीयमानाभेदाश्च प्रत्येकं फलहेतुगाः॥
उक्त्यनुक्तौ प्रस्तुतस्य प्रत्येकं ता अपि द्विधा।
अलङ्कारान्तरोत्था सा वैचित्र्यमधिकं वहेत्॥
मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादयः"॥
विस्तृतिस्तु अलङ्कारशब्दे द्रष्टव्या॥)

उत्प्लवन, क्ली, (उत्+प्लु+ल्युट्।) उल्लम्फनम्। लाफान इति भाषा॥ (यथा, मनुः। ५।११५।
"द्रव्याणां चैव सर्व्वेषां शुद्धिरुत्प्लवनं स्मृतम्"॥)

उत्प्लवा, स्त्री, (उत्+प्लु+अच्+टाप्।) नौका। इति शब्दरत्नावली॥

उत्फाल, पुं, (उत्+फल्+घञ्।) लम्फः॥
("तच्छ्रुत्वा स कृतोत्फालः शक्तिदेवोऽथ सम्भ्रमात्"। इति कथासरित्सागरे। १६ तरङ्गे॥)

उत्फुल्ल, त्रि, (उत्फलतीति। उत्+फल्+क्त। आदितश्चेतीडभावः उत्फुल्लसंफुल्लयोरुपसंख्यानमिति निष्ठातस्य लः।) प्रफुल्लः। विकसितः। इत्यमरः॥ (यथा, किराते।
("उत्फुल्लकमलपरागजन्या-
दुद्धूतः सरसिजसम्भवः परागः"।
स्फीतः। वर्द्धितः। (यथा, विष्णुपुराणे।१।६।१३॥
"हर्षोत्फुल्लकपोलेन न चापि शिरसा हृता"।
आनन्दादिना विस्फारितः। यथा, रामायणे॥
"अवस्थितैः समीपस्थैस्त्रासादुत्फुल्ललोचनैः"॥)
स्त्रीणां करणम्। उत्तानम्। इति मेदिनी॥

उत्स, पुं, (उनत्ति जलेन। उन्द+उन्दिगुधिकुषिभ्यश्चेति सः। किदित्यनुवृत्तेर्न लोपः।) प्रस्रवणम्। इत्यमरः॥ उनइ इति भाषा। यत्र स्थाने स्रुत्वा जलं गलति तत्र। इति भरतः॥ स्वाम्यादयस्तु अविच्छेदेन स्वल्पजलं यत्र स्थाने पतति निम्नञ्च बहुलीभवति तत्रेत्याहुः॥ तथा साङ्ख्योऽप्याह।
"गिरेरुपरि निर्झरादिप्रभवजलसङ्घातः"।
"अजस्रं मन्दवेगेन स्वल्पजले। इति कोकटः"॥

उत्सङ्ग, पुं, (उत्सज्जते मिलति यत्र। उत्+सञ्ज+घञ्।) क्रोडम्। इति जटाधरः॥
("उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणाम्"॥
इति मेघदूते ८६। तथा, विष्णुपुराणम्।१।११।५॥
"प्रणयेनागतं पुत्त्रम् उत्सङ्गारोहणोत्सुकम्"॥
पर्व्वतादीनां शिखरदेशः। सानु॥ यथा, रघुः।
"शिलाविभङ्गैर्मृगराजशाव-
स्तुङ्गं नगोत्सङ्गमिवारुरोह"॥ ६। २॥
सौधादीनामुपरिभागः। छाद इति भाषा॥
"सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मास्म भूरुज्जयिन्याः"। इति मेघदूते। २६। अभ्यन्तरभागः।
"वनेचराणां वनितासखानां
दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः"।
इति कुमारे।१।१०। ऊर्द्धतलः। वहिर्भागः।
"दृषदो वासितोत्सङ्गा निषण्णमृगनाभिभिः"।
इति रघुवंशे।४।७४। सङ्गमः॥ आलिङ्गनम्। विवाहः॥ व्रणाधोभागः। शोष इति भाषा॥ यथा सुश्रुते। सूत्रस्थाने।
"अभ्यन्तरमुत्सङ्गं कृत्वा भूयोऽपि विकरोति"।
गर्भः। यथा, महाभारते परीक्षिज्जन्मनि। १०। ६८। १८। १९॥
"आसीन्मम मतिः कृष्ण! पूर्णोत्सङ्गा जनार्द्दन"॥)

उत्सर्ग, पुं, (उत्+सृज्+घञ्।) त्यागः। दानम्। वर्ज्जनम्। (यथा, कुमारे।७।३५॥
"स्त्रीमङ्गलोत्सर्गविनीतवेशाः"।
"तयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः"।
इति मेघदूते। २०॥ यथा, मनुः। ११।१६३।
"तस्योत्सर्गेण शुध्यन्ति जप्येन तपसैव च"॥)
सामान्यविधिः। इति हेमचन्द्रः॥ (यथा, कुमारे। २।२७।
"अपवादैरिवोत्सर्गाः कृतव्यावृत्तयः परैः"॥)
साम्निककर्त्तव्यक्रियाविशेषः। इति तिथ्यादितत्त्वम्। अथ वैधोत्सर्गविधिः। स्नानसन्ध्याचमनानि कृत्वा नारायणनवग्रहगुरून् सम्पूज्य देयद्रव्यं वामहस्तेन धृत्वा दक्षिणहस्तेन त्रिरभ्युक्ष्य तद्द्रव्याधिपतिदेवतां सम्प्रदानञ्च अर्च्चयित्वा सङ्कल्प्य कुशतिलजलत्यागपूर्व्वकदानम्। इति स्मृतिः॥
(अपानवायोर्व्यापारः। मलमूत्रादिवर्ज्जनम्॥ उत्सृज्यते विण्मूत्रमनेनेति व्युत्पत्त्या पाय्विन्द्रियम्। यथा,—यथा, मनुः। १२।१२१।
"मनसीन्द्रं दिशः श्रोत्रे क्रान्ते विष्णुं बले हरम्।
वाच्यग्निं मित्रमुत्सर्गे प्रजने च प्रजापतिम्"॥)

उत्सर्ज्जन, क्ली, (उत्+सृज्+ल्युट्।) उत्सर्गः। तत्पर्य्यायः। त्यागः १ विहापितं ३ दानं ४ विसर्ज्जनं ५ विश्राणनं ६ वितरणं ७ स्पर्शनं ८ प्रतिपादनं ९ प्रादेशनं १० निर्व्वपणं ११ अपवर्जनं १२ अंहतिः १३। इत्यमरः॥ (साम्निककर्त्तव्यक्रियाविशेषः। (यथा, मनुः। ४। ९६।
"पुष्ये तु छन्दसां कुर्य्यात् वहिरुत्सर्ज्जनं द्विजः।
माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्व्वाह्णे प्रथमेऽहनि"॥)

उत्सर्पिणी, स्त्री, (उत्+सृप्+णिनि+ङीप्। उत्सर्पतीति वाक्ये वाच्यलिङ्ग एव।) जिनानां कालविशेषः। यथा,—हेमचन्द्रः॥
"कालो द्विविधोऽवसर्पिण्युत्सर्पिणीविभेदतः।
सागरकोटिकोटीनां विंशत्या स समाप्यते॥
अवसर्पिण्यां षड्वा उत्सर्पिण्यां तएव विपरीताः
एवं द्वादशभिररैर्विवर्त्तते कालचक्रमिदम्"॥
(उद्गमनशीला। यथा, शाकुन्तले ६ अङ्के।
"उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना"। इति॥)

उत्सर्य्या, स्त्री, (उत्+सृ+ण्यत्।) प्रजननकालप्राप्ता गौः। इति जटाधरः॥ पाल खाओनेर उपयुक्त गाइ इति भाषा।

उत्सव, पुं, (उत्+सू+अप्।) नियताह्लादजनकव्यापारः। तत्पर्य्यायः। क्षणः २ उद्धवः ३ उद्धर्षः ४ महः ५। इत्यमरः॥ (यथा मनुः।३।५९।
"तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च"॥)
उत्सेकः। इच्छाप्रसवः। कोपः। इति मेदिनी॥
(उन्नतिः। अभ्युदयः।
"उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे"॥
इति हितोपदेशे। १। १६४॥)

उत्सादन, क्ली, (उत्+सद+णिच्+ल्युट्।) समुल्लेखः। उद्वाहनम्। उद्वर्त्तनम्। इति मेदिनी॥
("उत्सादनञ्च गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने"।
इति मनुः।२।२०९॥ विनाशः। उन्मूलनम्॥
"पूर्व्वं क्षत्त्रवधं कृत्वा गतमन्युर्गतज्वरः।
क्षत्त्रस्योत्सादनं भूयो न खल्वस्य चिकीर्षितम्"॥
इति रामायणम्।१।७४।२१॥ औषधलेपनादिना व्रणस्य संशोधनम्। तथा,—सुश्रुते।
"अपामार्गोऽश्वगन्धा च तालपत्री सुवर्च्चला।
उत्सादने प्रशस्यन्ते काकोल्यादिश्च यो गणः"॥
"उत्सादनात् भवेत् स्त्रीणां विशेषात्कान्तिमद्वपुः।
प्रहर्षसौभाग्यमृजालाघवादिगुणान्वितम्"॥
इति चिकित्सितस्थाने २४ अध्याये सुश्रुतेनोक्तम्॥)

उत्सादित, त्रि, (उत्+सद+णिच्+क्त।) कृतोत्सादनम्। उद्वर्त्तितम्। निर्म्मलीकृतशरीरम्॥
(यथा, महाभारते ७।८०।१०। प्रतिज्ञापर्व्वणि॥
"उत्सादितः कषायेण बलवद्भिः सुशिक्षितैः।
आप्लुतः साधिवासेन जलेन सुसुगन्धिना"॥)

उत्सारकः, पुं, (उत्सार्य्यन्ते प्रभुद्वारतोऽनेन इति। उत्+सृ+णिच्+ण्वुल्।) द्वारपालः। इति हेमचन्द्रः॥ उत्सारणकर्त्ता॥

उत्सारण, क्ली, (उत्+सृ+णिच्+ल्युट्।) दूरीकरणम्। चालनम्। स्थानान्तरप्रापणम्॥

उत्साह, पुं, (उत्+सह+घञ्।) उद्यमः। तत्पर्य्यायः। अध्यवसायः २। इत्यमरः॥ सूत्रम्। इति मेदिनी॥ कल्याणम्। भावविशेषः। इति शब्दरत्नावली॥ (यथा, साहित्यदर्पणे ३य परिच्छेदे।
"रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च"॥)
ध्रुवकविशेषः। तल्लक्षणं यथा,—
"उत्साहः स्यात् रसे हास्ये ताले कन्दुकसञ्ज्ञके।
वर्णाद्वित्रिकरः पादैस्त्रयोदशमिताक्षरैः"॥
इति सङ्गीतदामोदरः॥

उत्साहवर्द्धन, क्ली, (उत्साहं वर्द्धयति यत्। उत्साह+वृध+ल्युट्।) उद्यमवृद्धिः। वीररसः। इत्यमरः॥

उत्सिक्त, त्रि, (उत्+सिच्+क्त।) उद्धतः। इति त्रिकाण्डशेषः॥ गर्व्वितः। वर्द्धितः। उद्रिक्तः। इति श्रीभागवतम्॥ (यथा, मनु ८। ७१।
"बालवृद्धातुराणाञ्च साक्ष्येषु वदतां मृषा।
जानीयादस्थिरां वाचमुत्सिक्तमनसां तथा"।
"वीर्य्योत्सिक्तौ हि तौ पापौ कालपाशवशङ्गतौ"।
इति रामायणे १म काण्डे॥)

उत्सिच्यमानः, त्रि, (उत्+सिच्+शानच्।) उद्रिच्यमानः। वृद्धिमान्। इति श्रीभागवतम्॥

उत्सुकः, त्रि, (उत् उद्योगे सवति सौति सुनोति वा। सु प्रसवैश्वर्य्ययोः। विचिसंज्ञापूर्व्वकत्वात् गुणाभावः। क्विपि आगमशास्त्रस्यानित्यत्वात्तुगभावो वा। ततः संज्ञायां कन्॥ यद्वा उत् सुवति। षू प्रेरणे। मितद्वादित्वात् डुः। सत्स्विति क्विप् वा। कर्म्मणि इति ह्रस्वः॥ उत्+सु+क्विप्+कन्।) वाञ्छितकर्म्मोद्यतः। तत्पर्य्यायः। इष्टार्थोद्युक्तः २। इत्यमरः॥ उत्कण्ठितः। इति हेमचन्द्रः॥ (यथा, रामायणे आदिकाण्डे।
("प्रेषयिष्यति राजा तु कुशलार्थं तवानघे।
ब्राह्मणान् नित्यशः पुत्रि मोत्सुका भूः कदाचन"॥
"वत्सोत्सुकापि स्तिमिता सपर्य्याम्"।
इति रघुवंशे २।२२॥)

उत्सूरः, पुं, (सूरः सूर्य्यमतिक्रान्तः।) दिनावसानम्। इति हेमचन्द्रः॥

उत्सृष्टः, त्रि, (उत्+सृज्+क्त।) कृतोत्सर्गः। तत्पर्य्यायः। त्यक्तः २ हीनः ३ विधुतः ४ समुज्झितः ५ धूतः ६। इत्यमरः॥ (यथा, याज्ञवल्क्ये।
"महोक्षोत्सृष्टपशवः सूतिकागन्तुकादयः"॥)

उत्सेचनं, क्ली, (उत्+सिच्+ल्युट्।) ऊर्द्ध्वसेकः। उथलन उपचन इत्यादि भाषा॥

उत्सेधः, पुं, (उत्+सिध्+घञ्।) पर्व्वतवृक्षादीनां दैर्घ्यम्।
("कूर्म्मस्त्रियोजनोत्सेधो दशयोजनमण्डलः"॥
इति महाभारते गजकूर्म्मयुद्धे। २९। २१।)
उच्छ्रयः। (यथा, कुमारे ५। ८॥
"पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति"॥
उपरिभागः। यथा, कुमारे ५।२४।
"पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः"।)
शरीरम्। इत्यमरः॥ संहननम्। इति हेमचन्द्रः॥
("सोत्सेधमुच्चार्थशिरातनुत्वम्"।
इति भावप्रकाशे शोथाधिकारे॥
"उत्सेधं संहतं शोफं तमाहुर्निचयादतः"।
इति निदानस्थाने त्रयोदशाध्याये वाभटेनोक्तम्॥)

उद्, व्य, (उ+क्विप्+तुक्। पृषोदरादित्वात् साधुः।) विंशत्युपसर्गान्तर्गतः उपसर्गविशेषः। अस्यार्थः। ऊर्द्ध्वम्। उत्कर्षः। प्राकट्यम्। नैकट्यम्। इति दुर्गादासः॥ प्रकाशः। विभागः। प्राबल्यम्। अवस्थानम्। शक्तिः। प्राधान्यम्। बन्धनम्। भावः। मोक्षः। लाभः। ऊर्द्ध्वकर्म्म। इति मेदिनी॥

उदं, क्ली, (उन्द्+अच्।) जलम्। इति शब्दरत्नावली।
("जगत्त्रयान्तोदधिसम्प्लवोदे
नारायणस्योदरनाभिनालात्"।
इति श्रीभागवते। तथा च गीतायाम् ।२।४६।
"यावानर्थ उदपाने सर्व्वतः संप्लुतोदके"॥)

उदक्, [च्] व्य, (उद्+अञ्च+क्विप्।) उत्तरदिग्देशकालाः। इति मेदिनी॥

उदकं, क्ली, (उनत्तीति। उन्दी क्लेदने+क्वुन्। उदकमिति २।३९। उणादिसूत्रेण साधु।) जलम्। इत्यमरः॥
("अनीत्वा पङ्कतां धूलिमुदकं नावतिष्ठति"।
इति माघः २।३४॥ तथा श्रीभगवद्गीता। २।४६॥
"यावानर्थ उदपाने सर्व्वतः संप्लुतोदके"।
"उदकस्योदः संज्ञायाम्" इति सूत्रेण उदादेशः।
"उदकस्योदः एकहलादौ। पाणिनि।६।३।५९।
इति विकल्पः। उदकुम्भः। उदककुम्भः। यथा, भट्टिः। २। २०। "तप क्रशाः शान्त्युदकुम्भहस्ताः"॥ उदशब्दोऽप्युदकपर्य्याय इति माघटीका। उदकस्योदः संज्ञायामिति रक्षितः। यथा, कुमारे ५।२६। "सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा"॥ इति उज्ज्वलदत्तः।
वारिशब्देऽस्य विवरणं बोद्धव्यम्॥)

उदकपरीक्षा, स्त्री, (उदकस्य उदकेन वा परीक्षा।) दिव्यविशेषः। यथा। अथोदकपरीक्षा।
पितामहः।
"तोयस्याथ प्रवक्ष्यामि विधिं धर्म्म्यं सनातनम्।
मण्डलं पुष्पधूपाभ्यां कारयेत् सुविचक्षणः॥
शरान् सम्पूजयेद्भक्त्या वैणवञ्च धनुस्तथा"।
तत्र प्रथमतो वरुणं पूजयेत्। यथा नारदः।
"गन्धमाल्यैः सुरभिभिर्मधुक्षीरघृतादिभिः।
वरुणाय प्रकुर्व्वीत पूजामादौ समाहितः"॥
ततो धर्म्मावाहनादिसकलदेवतापूजाहोमसमन्त्रकप्रतिज्ञापत्रशिरोनिवेशान्तं कर्म्म कुर्य्यात्।
कात्यायनः।
"शरांस्त्वनायसाग्रांस्तु प्रकुर्व्वीत विशुद्धये।
वेणुकाष्ठमयांश्चैव क्षेप्ता च सुदृढं क्षिपेत्"॥
पितामहः।
"क्षेप्ता च क्षत्त्रियः कार्य्यस्तद्वृत्तिर्ब्राह्मणोऽथवा॥
अक्रूरहृदयः शान्तः सोपवासस्तथा शुचिः॥
इषूंश्च प्रक्षिपेद्धीमान् मारुते वाति वा भृशम्।
विषमे भूप्रदेशे च वृक्षस्थाणुसमाकुले"॥*॥
नारदः।
"क्रूरं धनुः सप्तशतं मध्यमं षट्शतं मतम्।
मन्दं पञ्चशतं प्रोक्तमेष ज्ञेयो धनुर्विधिः"॥
अङ्गुलीनां सप्ताधिकं शतं यस्य धनुषः परिमाणं तत् सप्तशतम्। एवं षट्शतादिकम्॥*॥
पितामहः।
"मध्यमेन तु चापेन प्रक्षिपेत्तु शरत्रयम्।
हस्तानान्तु शते सार्द्धे लक्ष्यं कृत्वा विचक्षणः॥
तेषाञ्च प्रेषितानान्तु शराणां शास्त्रदर्शनात्।
मध्यमस्तु शरो ग्राह्यः पुरुषेण बलीयसा॥
शराणां पतनं ग्राह्यं सर्पणं परिवर्जयेत्।
सर्पन् सर्पन् शरो याति दूराद्दूरतरं यतः"॥
पतनं ग्राह्यमिति शरपतनस्थानपर्य्यन्तं गच्छेदित्यर्थः। तेन प्रसरणपक्षेऽपि पतनस्थानकं शरग्रहणं ततश्च प्रथमतः पुरुषान्तरेण तत्स्थाने शर[illegible]
आनेतव्यः॥*॥ नारदः।
"नदीषु नातिवेगासु तडागेषु सरःसु च।
ह्रदेषु स्थिरतोयेषु कुर्य्यात् पुंसां निमज्जनम्"॥
नातिवेगासु स्थितिविरोधिवेगशून्यासु॥*॥
विष्णुः। पङ्कशैवालदुष्टग्राहमत्स्यजलौकादिवर्ज्जिते[illegible]
तस्य नाभिमात्रजले मग्नस्यारागद्वेषिणः पुरुष[illegible]
स्यान्यस्योरू गृहीत्वा अभिमन्त्रिताम्भः प्रविशेत्[illegible]
तत्समकालञ्च नातिक्रूरमृदुना धनुषा पुरुषो[illegible]
ऽपरः शरमोक्षं कुर्य्यादिति तस्य शोध्यस्येत्यर्थः[illegible]
अन्यथा तस्येति व्यर्थं स्यात्॥*॥
अन्यपुरुषस्य स्तम्भधारणमाह स्मृतिः।
"उदके प्राङ्मुखस्तिष्ठेद्धर्म्मस्थूणां प्रगृह्य च"॥*[illegible]
प्राड्विवाककर्तृकजलाभिमन्त्रणमाह पितामहः[illegible]
तोय त्वं प्राणिनां प्राणः सृष्टेराद्यन्तु निर्म्मितम्[illegible]
शुद्धेश्च कारणं प्रोक्तं द्रव्याणां देहिनां तथा॥
अतस्त्वं दर्शयात्मानं शुभाशुभपरीक्षणे"॥*॥
शोध्यकर्तृकाभिमन्त्रणमाह याज्ञवल्क्यः।
"सत्येन माभिरक्षस्व वरुणेत्यभिशाप्य कम्।
नाभिमात्रोदकस्थस्य गृहीत्वोरू जलं विशेत्"॥
मा मां। अभिशाप्य शपथं कारयित्वा। क[illegible]
जलम्। विशेत् निमज्जेत्॥*॥ तोरणञ्च निम[illegible]
ज्जनसमीपे समे स्थाने शोध्यकर्णप्रमाणोच्छ्रित[illegible]
कार्य्यम्। यथा नारदः।
"गत्वा तु तज्जलस्थानं तटे तोरणमुच्छ्रितम्।
कुर्व्वीत कर्णमात्रन्तु भूमिभागे समे शुचौ"॥*[illegible]
शरमोक्षे विशेषमाहतुर्नारदबृहस्पती।
"शरप्रक्षेपणस्थानाद्युवा जवसमन्वितः।
गच्छेत् परमया शक्त्या यत्रासौ मध्यमः शरः॥
मध्यमं शरमादाय पुरुषोऽन्यस्तथाविधः।
प्रत्यागच्छेत्तु वेगेन यतः स पुरुषो गतः॥
आगतस्तु शरग्राही न पश्यति यदा जले।
अन्तर्ज्जलगतं सम्यक् तदा शुद्धिं विनिर्द्दिशेत्॥
अन्यथा न विशुद्धः स्यादेकाङ्गस्यापि दर्शनात्।
स्थानाद्वान्यत्र गमनाद्यस्मिन् पूर्व्वं निवेशयेत्"॥*[illegible]
जविनौ विशेषयति नारदः।
"पञ्चाशतो धावकानां यौ स्यातामधिकौ जवे।
तौ च तत्र नियोक्तव्यौ शरानयनकर्म्मणि"॥
एकाङ्गस्य दर्शनादिति कर्णाद्यभिप्रायेण।
"शिरोमात्रन्तु दृश्येत न कर्णौ नापि नासिके।
अप्सु प्रवेशने यस्य शुद्धं तमपि निर्द्दिशेत्"॥
इति विशेषाभिधानात्। कात्यायनः।
"निमज्ज्योत्प्लवते यस्तु दृष्टश्चेत् प्राणिना नरः।
पुनस्तत्र निमज्जेत दंशचिह्नविभावितः"॥
जलान्तर्गतमत्स्यजलौकादिना दष्टः समुत्प्लवते यदि[illegible]
तदा दष्टे दृष्टे पुनर्निमज्जनीय इत्यर्थः॥*॥
पितामहः।
"गन्तुश्चापि न कर्त्तव्यं सम गमनमज्जनम्।
गच्छेत् तोरणमूलात्तु शरस्थानं जवी नरः॥
तस्मिन् गते द्वितीयोऽपि वेगादादाय सायकम्।
गच्छेत्तोरणमूलन्तु यतः स पुरुषो गतः॥
आगतस्तु शरग्राही न पश्यति यदा जले।

अन्तर्ज्जलगत सम्यक् तत शुद्धि विनिर्द्दिशेत्” ॥ अत्र मज्जनसमकालगमनाभिधानात् शरमोक्षसमकाल गमन शूलपाण्युक्तमयुक्तम्। मज्जनसमकालक्षिप्त मध्यम शरमाहरेदित्यपर मुक्तमपि प्रमाणशून्यम्। ततश्च त्रिषु शरेषु मुक्तेषु एको वेगवान् मध्यमशरपतनस्थान गत्वा तमादाय तत्रैव तिष्ठति। अन्यस्तु पुरुषो वेगवान् शरमोक्षस्थाने तोरणमूले तिष्ठति एव स्थितयोस्तृतीयाया करतालिकाया प्राड्विवाकदत्ताया शोध्यो निमज्जति तत्समकालमेव तोरणमूलस्थितोऽपि द्रुततर मध्यमशरपतनस्थान गच्छति शरग्राही च तस्मिन् प्राप्ते द्रुततर तोरणमूल प्राप्यान्तर्ज्जलगत यदि न पश्यति तदा शुद्धो भवतीति वक्तुर्लार्थ ॥ * ॥ * ॥ तत्र प्रयोग । उक्तलक्षणजलाशयनिकटे तथा तोरण विधाय उक्तदेशे लक्ष्य कृत्वा तोरणसमीपे सशर धनु सपूज्य जलाशये वरुणमावाह्य पूजयित्वा तत्तीरे धर्म्मादींश्च देवान् हवनान्तमिष्ट्वा दक्षिणा कृत्वा शोध्यस्य शिरसि प्रतिज्ञापत्र बद्ध्वा प्राड्विवाको जलमभिमन्त्रयेत्। वक्ष्यमाणमन्त्रेण।

ॐ “तोय त्व प्राणिना प्राण सृष्टेराद्यन्तु निर्म्मितम्। शुद्धेश्च कारण प्रोक्त द्रव्याणा देहिना तथा ॥ अतस्त्व दर्शयात्मान शुभाशुभपरीक्षणे”। इति ॥ शोध्यस्तु ॐ “सत्येन माभिरक्षस्व वरुण” इत्यनेन जलमभिमन्त्र्य गृहीतस्थूणस्य शोध्यनाभिमात्रोदकावस्थितस्य बलीयस प्राङ्मुखस्य पुरुषस्य समीप जलमध्ये गच्छेत्। तत शरेषु त्रिषु मुक्तेषु मध्यमशरपातस्थाने मध्यमशर गृहीत्वा जविन्येकस्मिन् पुरुषे स्थिते अन्यस्मिंश्च तोरणमूलस्थिते प्राड्विवाकेन तालत्रये दत्ते शोध्यो गृहीतस्थूणप्राङ्मुखपुरुषस्योरू गृहीत्वा निमज्जति तत्समकालमेव तोरणमूलस्थोऽपि मध्यमशरस्थान द्रुत गच्छति। तत शरग्राही च तस्मिन् प्राप्ते द्रुत तोरणमूल प्राप्य जलान्तस्थ यदि न पश्यति तदा शुद्ध। कर्णाद्यङ्ग विना शिरोमात्रदर्शनेऽपि शुद्धः। मज्जनस्थानादन्यत्रगमनेऽप्यशुद्ध। ततो दक्षिणादिक दद्यात्”। इति दिव्यतत्त्वम् ॥

उदकीर्ण, पु, (उदेन जलेन कीर्णो व्याप्त ।) महाकरञ्ज। इति राजनिर्घण्ट ॥

उदकीर्य्य, पु, (उदेन कीर्य्य ।) करञ्जविशेष। इति रत्नमाला ॥ डालकरमचा डहरकरञ्ज इत्यादि भाषा। (अनयोस्तु पर्य्यायो भावप्रकाशे। “उदकीर्य्यस्तृतीयोऽन्य षड्ग्रन्था हस्तिवारुणी। मर्कटी वायसी चापि करञ्जी करभञ्जिका” ॥ गुणा अस्य करञ्जीशब्दे ज्ञातव्या ॥)

उदक्या, स्त्री, (उदक जल शुद्धिस्नानार्थमर्हतीति। उदक + दण्डादिभ्य इति यत् ।) रजस्वला। ऋतुमती। इत्यमर ॥ (यथा, मनु ४।५७। “नोदक्यामभिभाषेत यज्ञ गच्छेदनाहूत ” ॥)

उदगद्रि, पु (उदगुत्तरे योऽद्रि ।) हिमालयपर्व्वतः। इति हेमचन्द्र ॥

उदगयन, क्ली, ( उदक उत्तरस्यामयन गमनम्। ) उत्तरायणम्। इति स्मृति ॥ (यथा, मनु ।१।६७। “दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयो पुन। अहस्तत्रोदगयन रात्रि स्याद् दक्षिणायनम्” ॥ “तदादित्यस्योदगयनमादानञ्च त्रीनृतून् शिशिरादीन् ग्रीष्मान्तान् व्यवस्येत्” ॥ इति सूत्रस्थाने षष्ठेऽध्याये चरकेणोक्तम्। विस्तरश्चास्योत्तरायणशब्दे ज्ञेय ॥)

उदग्भूम, पु, (उदगुत्तरदिग्वत् प्रशस्ता भूमिर्यत्र। समासे + अच् ।) सद्भूमि। उत्कृष्टस्थानम्। इति जटाधर ॥

उदग्र, त्रि, (उद्गतमग्र यस्य ।) उच्छ्रितम्। उच्चम्। इत्यमर ॥ (विशालम्। महत्। दीर्घम्। भीमम्। “नयन् मधुलिह श्वैत्यमुदग्रदशनाशुभि” ॥ इति माघ। २। २१। तथा, रघु। २। ५३। “क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्र क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ”। “अवन्तिनाथोऽयमुदग्रबाहुः” ॥ इति च रघु। ६। ३२ ॥)

उदग्रदन्, [त्] पु, (उदग्रौ दन्तौ यस्य। अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्चेति दन्तस्य दतृ ॥) उच्चदन्तहस्ती। वृहद्दन्तयुक्ते, त्रि। इति हेमचन्द्र ॥

उदज, पु, ( उत् + अज् + समुदोरज पशुष्विति अप्। अघञपोरिति पर्य्युदासात् वीभावो न। ) पशुप्रेरणम्। इत्यमर ॥

उदञ्चन, क्ली, (उत् + अञ्च + ल्युट् ।) पिधानपात्रम्। इति हेमचन्द्र ॥ ढाकुनि इति भाषा। ( यथा, शतपथब्राह्मणे। ४। ३। ५। “ प्रतिप्रस्थाता सम्भवावानयत्युन्नेता चमसेन वोदञ्चनेन वा”। ) ऊर्द्ध्वक्षेपणम् ॥

उदञ्चित, त्रि, (उत् + अञ्च + क्त ।) ऊर्द्ध्वक्षिप्तम्। इति हेमचन्द्र ॥ ( “उदञ्चिताक्षोऽञ्चितदक्षिणोरु ”। इति भट्टि ॥ (पूजितम् ॥)

उदण्डपाल, पु, (उदण्डस्य उद्भिन्नाण्डस्य पालो गमन पलायन यत्र। मत्स्यसर्पविशेषाणामसण्ड उद्भिन्न सत्पलायते इति प्रसिद्धि ।) मत्स्यविशेष। सर्पभेद। इति मेदिनी ॥

उदधि, पु, (उदानि उदकानि वा धीयन्तेऽस्मिन्। उद + वा उदक + धा + कि ।) समुद्र। इत्यमर ॥ (“उदधेरिव निम्नगाशतेष्वभवन्नास्य विमानना क्वचित्”। इति रघु ८। ८ ॥ मेघ। घट ॥)

उदधिक्रा, पु, ( उदधि + क्रम + विट् ।) समुद्राक्रमणकर्त्ता। इति व्याकरणम् ॥

उदधिमल, पु, (उदधे समुद्रस्य मल इव ॥) समुद्रफेन। अस्य गुणा। शीतलत्वम्। कषायत्वम्। अतिवान्तिकारित्वञ्च। इति राजवल्लभ ॥

उदधिमेखला, स्त्री, (उदधिर्मेखलेव यस्या ॥) पृथिवी। इति महाभारतम् ॥ ( “चतुरुदधिमालामेखलाया भुवो भर्त्ता ”। इति कादम्बरीकथामुखे ।)

उदन्त, पु, (उद्गतो निर्गत अन्तो यस्य ।) वार्त्ता। (“कान्तोदन्त सुहृदुपनत सङ्गमात्किञ्चिदून ” ॥ इति मेघदूते” १०१। तथा, रघु। १२। ६६। “श्रुत्वा राम प्रियोदन्त मेने तत्सङ्गमोत्सुक ” साधु। इति मेदिनी ॥ वणिग्जनम्। इति शब्दरत्नावली ॥ (पाकवशात् प्राप्तान्ते, त्रि। यथा, शतपथब्राह्मणे। “प्रहृतमसदिति तदाहुर्यदृदन्त तर्हि जुहुयात् तद्धैनोदन्त कुर्य्यादुप ह दहेत् यद्यदन्त कुर्य्यादप्रजष्टि वै रेत उपदग्ध तस्मान्नोदन्त कुर्य्यात्” ॥)

उदन्तक, पु, (उदन्त + स्वार्थे कन् ।) वृत्तान्त। वार्त्ता। इति शब्दरत्नावली ॥

उदन्तिका, स्त्री, (उत् + अन्त + णिच् + ण्वुल् + टाप् ।) तृप्ति। इति हारावली ॥

उदन्या, स्त्री, (उदन्यति उदकस्येच्छा वा। सुप आत्मन क्यच्। अशनायोदन्येति ईत्वाभावः क्यचि उदकस्योदन्भावोऽपि निपात्यते अप्रत्ययादित्य ।) पिपासा। इत्यमर ॥ (यथा छान्दोग्योपनिषदि। ६। ८ ५। “अथ यत्रैतत्पुरुषः पिपासति नाम तेज एव तत्पीत नयते तद्यथा गोनायोऽश्वनाय पुरुषनाय इत्येव तत्तेज आचष्ट उदन्येति” ॥)

उदन्वान्, [त्] पु, ( उदकानि सन्त्यत्र। उदक + मतुप्। उदन्वानुदधौ चेत्युदकस्य उदन्भावो निपातित मतुपि ।) समुद्र। इत्यमरः ॥ (यथा रघु ४। ५२ ॥ “असह्यविक्रम सह्य दूरान्मुक्तमुदन्वता”। ऋषिविशेष। इति पाणिनि। ८।२।१३ ॥)

उदप आघाते। सौत्रधातुरयम्। इति कविकल्पद्रुम ॥ (पर सक सेट् ) पञ्चमस्वरादि। उदपति। इति दुर्गादास ॥ पानुबन्ध उदधातुरय भ्रम वशात् उदपेति लिखित ॥

उदपान, क्ली, पु, (उदक पीयतेऽस्मिन्। उदक + पा + अधिकरणे + ल्युट्, उदकस्य उद ।) कूपः। इत्यमर ॥ (“तडागान्युदपानानि वाप्य प्रस्रवणानि च”। इति मनु २।४८। तथा, रामायणे २।८०।१२। “निर्जलेषु च देशेषु खनयामासुरुत्तमान्। उदपानान् बहुविधान् वेदिकापरिमण्डितान्” ॥ भावे ल्युट्। जलपानम्। यथा गीतायाम्। २।४६ “यावानर्थ उदपाने सर्व्वत सम्प्लुतोदके” ॥)

उदय, पु, (उद्यन्ति ग्रहा यस्मात्। उत् + इ + अच् ।) पूर्व्वपर्व्वत। उदयाचल। (भावे + अच् ।) समुन्नति। इति मेदिनी ॥ दीप्ति। मङ्गलम्। इति शब्दरत्नावली ॥ ग्रहाणामुद्गम। तत्र सूर्य्यस्योदयविवरण यथा, विष्णुपुराणे २ अंशे ८ अध्याय ॥ * ॥

“उदयास्तमने चैव सर्व्वकालन्तु सम्मुखे।
दिशास्वशेषासु तथा मैत्रेय विदिशासु च ॥ १३ ॥
यैर्यत्र दृश्यते भास्वान् स तेषामुदयः स्मृत।
तिरोभावञ्च यत्रैति तत्रैवास्तमन रवे ॥ १४ ॥
नैवास्तमनमर्कस्य नोदय सर्व्वदा सत।
उदयास्तमनाख्यञ्च दर्शनादर्शन रवे ॥ १५ ॥
शक्रादीना पुरे तिष्ठन् स्पृशत्येष पुरत्रयम्।
विकर्णौ द्वौ विकर्णस्थस्त्रीन् कोणान् द्वे पुरे तथा ॥ १६ ॥
उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्नात्तपन् रवि।
तत पर ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्त नियच्छति ॥ १७ ॥
उदयास्तमनाभ्याञ्च स्मृते पूर्व्वापरे दिशौ।

यावत् पुरस्तात्तपति तावत् पृष्ठेऽथ पार्श्वयो ॥१८॥
ऋतेऽमरगिरेर्मेरोरुपरि ब्रह्मण सभाम् ।
ये ये मरीचयोऽर्कस्य प्रयान्ति ब्रह्मण सभाम्॥१९॥
ते ते निरस्तास्तद्भासा प्रतीपमुपयान्ति वै ।
तस्माद्दिश्युत्तरस्या वै दिवारात्रि सदैव हि ।
सर्व्वेषा द्वीपवर्षाणा मेरुरुत्तरतो यत ’ ॥२०॥
उदयास्तमने च सर्व्वकाल भवत । ते च परस्पर सम्मुखे समानसूत्रस्थे भवत । तत्र हेतुमाह । यथैवेति । रवेरुदयास्तमयौ सर्व्वकाल मध्याह्न एव सतोऽर्कस्य न स्त एव अतो रवेरुदयास्तमयत्व दर्शनादर्शनमात्रमेव ॥ दर्शनादर्शनयोरवधिमाह । शक्रादीनामिति । इन्द्राद्यन्यतमस्य पुरे मध्याह्ने तिष्ठस्तदेक पुर अभित पुरद्वय चेत्येव पुरद्वय तदन्तरालस्थौ द्वौ च विकर्णौ कोणौ उदयाद्यवस्थाभि स्पृशति स्वरश्मिभिर्भासयति । तथा विकर्णस्थ अग्न्याद्यन्यतमकोणे मध्याह्ने स्थितस्त कोण अभित स्थित कोणद्वयं चेत्येव त्रीन् कोणान् तन्मध्यवर्त्तिद्वे च पुरे तथैवोदयाद्यवस्थाभि स्पृशति । भूवलयस्यार्द्धे प्रतपन् दृश्यते तावद्दह । अर्द्धे तु न दृश्यते तावद्रात्रिरित्यर्थ । तथाहि ऐन्द्रे पुरे मध्याह्ने यदा तिष्ठति तदा सौम्यपुरस्थानामस्तमय । ऐशकोणस्थाना तृतीयो यामः । अग्निकोणस्थाना प्रथम । याम्ये स्थितानामुदय । एवं यदा याम्ये मध्याह्ने तिष्ठति तदा ऐन्द्रे अस्तमय । अग्निकोणे तृतीयो याम । नैर्ऋतिकोणे प्रथमो याम । वारुणे उदय । यदा च वारुणे मध्याह्न तदा याम्ये अस्तमय । नैर्ऋतिकोणे तृतीयो याम । वायव्ये प्रथम । सौम्ये उदय । यदा सौम्ये मध्याह्नस्तदा वारुणे अस्तमय । वायव्ये तृतीयो याम । ऐशकोणे प्रथम । ऐन्द्रे उदय । एव अग्निकोणे यदा मध्याह्नस्तदा ऐशकोणे अस्तमय । इन्द्रपुरे तृतीयो यामः । यमपुरे प्रथम । नैर्ऋतिकोणे उदय । इत्यादि योज्यम् । एव मेरो सर्व्वतः परिभ्रमन् सूर्य्योऽर्द्धभूवलय प्रकाशयन् दर्शनादर्शनाद्यपेक्षया अहोरात्रव्यवस्थाकारणमुक्त भवति ॥ सन्निधानव्यवधानकृतमेव रश्मीना वृद्धिह्रासतीव्रत्वमन्दत्वादिकमपीत्याह । उदित इति गोभिः रश्मिभि ॥ दिग्विभागोऽप्युदयास्तमयनिमित्तएवेत्याह उदयेति । यत्र यस्योदेति सा तस्य पूर्व्वा दिक् । यत्रास्तमेति सा अपरा प्रतीची । तथा श्रुति । “तस्मादसावादित्य सर्व्वा प्रजा प्रत्यगुदेति । तस्मात् सर्व्वा एवान्यतः प्रत्युदगादिति”॥ पुरस्तादुद्यन्त सूर्य्य पश्यतस्त दक्षिण-वाम-पार्श्वभागौ दक्षिणोत्तरे दिशाविति दर्शयन् रश्मिविस्तारावधिमाह । यावदिति । चतुर्दिक्षु लोकालोकाचलपर्य्यन्त तपतीत्यर्थ ॥ मेरौ तु विशेषमाह । ऋते इति । ब्रह्मसभावर्ज मेरोरुपर्य्यपि सर्व्वतस्तपति न तु ब्रह्मसभा भासयति । तत्र हेतुमाह । ये ये मरीचय इति ॥ मेरो सर्व्वतोऽपि विशेषतान्तरमाह । तस्मादिति । यतो यस्मात् सर्व्वेषा द्वीपाना वर्षाणाञ्च मेरुरुत्तरत एव स्थित । तस्मान्मेरोरुत्तरस्या दिशि सदा दिवापि अन्येषा दिनेऽपि नित्य रात्रिरेव । अय भाव । मेरु प्रदक्षिणीकुर्व्वन्त सूर्य्य ये यत्र पश्यन्ति सैव तेषा प्राची । तेषाञ्च वामभाग एव मेरु । अत सर्व्वेषा सर्व्वदा मेरुरुत्तरत एव । दक्षिणभागे च लोकालोकाचल । तस्मादुत्तरस्या दिशि सदा रात्रि । दक्षिणस्याञ्च दिशि सदा दिनमिति । यद्वा । भारतादिवर्षस्थाना सम्मुखे सूर्य्यमुद्यन्त पश्यतामुत्तरस्या दिशि वामभागे मेरोरेकत सदा दिनम् । अन्यतस्त सदा रात्रि । दक्षिणभागे तु सदा दिनमेवेत्यर्थादुक्त भवति” ॥ इति तट्टीकाया श्रीधरस्वामी ॥

उदयन, क्ली (उत् + इ + ल्युट् ।) उदयः । इति मेदिनी ॥ (यथा ऋग्वेदे १।४८।७।
“एषा युक्त परावत सूर्य्यस्योदयनादधि” ॥ )

उदयन , पु, अगस्त्यमुनि । वत्सराज । इति मेदिनी॥ (“प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदान् ग्रामवृद्धान्”। इति मेघदूते।३१।) उदयनाचार्य्य । स च कुसुमाञ्जलिग्रन्थकर्त्ता ॥

उदर, क्ली, (उत् ऋणातीति । “उदिदृणातेरजलौ पूर्व्वपदान्त्यलोपश्च” । उत् + दृ + अच् । अन्त्यलोपश्च ।) नाभिस्तनयोर्मध्यभाग । पेट इति भाषा । तत्पर्य्याय । पिचिण्ड २ कुक्षी ३ जठर ४ तुन्दम् ५ । इत्यमर ॥ युद्धम् । इति मेदिनी ॥ (“उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम्” । इति मनु । ८ । १२५ ॥ )

उदरः, पु, (उदर आश्रयत्वेनास्त्यस्य । अर्श आदित्वादच् ।) उदरस्थरोगविशेष । उदरी इति भाषा । यथा । अथोदराधिकार । तत्रोदरस्य निमित्तमाह ।
“रोगा सर्व्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च ।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्यर्जायन्ते मलसञ्चयात्” ॥
अग्नौ मन्दे सर्व्वे रोगा जायन्ते किन्तु सुतरामतिशयेन उदराणि जायन्ते । अपरानपि हेतूनाह । अजीर्णान्मलिनैश्चान्यै अत्यन्तदोषजनकै मलसञ्चयात् मलाना दोषाणा पुरीषस्य चातिवृद्धेः । अत्रोदरशब्देनोदरस्थो रोग उच्यते । यत आह ।
“तात्स्थ्यात्तद्धर्म्मताभ्याञ्च तत्समीपतयापि च ।
तत्साहचर्य्यात् शब्दाना वृत्तिरुक्ता चतुर्व्विधा” ॥*॥
सम्प्राप्तिमाह ।
“रुद्धा स्वदाम्बुवाहीनि दोषा स्रोतासि सञ्चिताः।
प्राणाग्न्यपानान् सदुष्य जनयन्त्युदर नृणाम् ॥ * ॥
सामान्यरूपमाह ।
“आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्ब्बल्य दुर्ब्बलाग्निता ।
शोथ सदनमङ्गाना सङ्गो वातपुरीषयो ।
दाहस्तन्द्रा च सर्व्वेषु जठरेषु भवन्ति हि ॥*॥
सन्निकृष्टनिदानपूर्व्विका सख्यामाह ।
“पृथक्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकै ।
सम्भवन्त्युदराण्यष्टौ तेषा लिङ्ग पृथक् शृणु ॥ * ॥
वातोदरस्य लक्षणमाह ।
“तत्र वातोदरे शोथ पाणिपान्नाभिकुक्षिषु ।
कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक् पर्व्वभेदनम् ॥
शुष्ककासोऽङ्गमर्द्दश्च गुरुता मलसग्रह ।
श्यावारुणत्वगादित्वमकस्मान्मासवृद्धिमत् ॥
सतोदभेदमुदर तनुकृष्णशिराततम् ।
आध्मानादतिवच्छब्दमाहत प्रकरोति च ॥
वायुश्चात्र सरुक् शब्दो विचरेत् सर्व्वतोगति ” ॥
पाणिपादित्यत्र व्यञ्जनान्त पाच्छब्द आर्षत्वात् । कुक्षिपार्श्वोदरेत्यत्र कुक्षिशब्द उदरस्य वामदक्षिणभागद्वयवाची । सर्व्वतोगति सकलकोष्ठे सञ्चरन् ॥*॥ पैत्तिकमाह ।
“पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता ।
भ्रमोऽतिसार पीतत्व त्वगादावुदर हरित् ॥
पीतताम्रशिरानद्ध सस्वेद सोष्म दह्यते ।
धूमायते मृदुस्पर्श क्षिप्रपाक प्रदूयते” ॥
हरित् शाकवर्णम् । सोष्म अन्तस्तापयुक्तम् । दह्यते वह्निर्दाहयुक्तम् । धूमायते धूममिवोद्गमति । क्षिप्रपाक क्षिप्रपाकात् जलोदरता याति । प्रदूयते व्यथते ॥*॥ कफोदरमाह ।
“श्लेष्मोदरेऽङ्गसदन स्वापश्वयथुगौरवम् ।
तन्द्रोत्क्लेशोऽरुचि श्वास कासः शुक्लत्वगादिता ॥
उदर स्तिमित स्निग्ध शुक्लराजीतत महत् ।
चिराभिवृद्धिकठिन शीतस्पर्श गुरु स्थिरम्” ॥
स्वाप स्पर्शाज्ञता । गौरवमङ्गानाम् । तन्द्रा निद्राकुलत्वम् । उत्क्लेशो हृल्लास । शुक्लराजीतत शुक्लशिराव्याप्तम् ॥*॥ सन्निपातोदरमाह ।
“स्त्रियोऽन्नपान नखलोममूत्र-
विडार्त्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ता ।
यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो गराश्च
दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाच्च ॥
तेनाशु रक्त कुपिताश्च दोषाः
कुर्य्यु सुघोर जठरं त्रिलिङ्गम् ।
तच्छीतवाते भृशदुर्द्दिने च
विशेषत कुप्यति दह्यते च ॥
स चातुरो मूर्च्छति हि प्रसक्त
पाण्डु कृश शुष्यति तृष्णया च ।
दूष्योदर कीर्त्तितमेतदेव
प्लीहोदर कीर्त्तयतो निबोध” ॥
स्त्रिय इत्यविवेकिसन्निहितजनोपलक्षणम् । ताश्च स्वसौभाग्यमिच्छन्त्य । विट् मार्ज्जारादीनाम् । आर्त्तव रज । अरयो वा । गरान् सयोगजानि विषाणि । दुष्टाम्बु सविषमत्स्यतृणपर्णादियुत शटितञ्च ॥ दूषीविष विषमेवामग्न्याद्युपघातेन स्वल्पप्रभावम् । यत उक्तम् ।
“जीर्ण विषघ्नौषधिभिर्हत वा
दावाग्निवातातपशोषितञ्च ।
स्वभावतो वा गुणविप्रयुक्त
विष हि दूषीविषतामुपैति” ॥
गुणविप्रयुक्त गुणवियुक्त तत् । उदरं शीततादिषु कुप्यति । दूषीविषस्य कोपात् । मूर्च्छातिविषयोगात् । प्रसक्त निरन्तरं एतदेव सन्निपातोदरम् । तन्त्रान्तरे दूष्योदर कीर्त्तितम् । अथवा परस्परं दूषयन्तीति दोषा एव दूष्याः तै कृतमुदर दूष्यो-

दरम् ॥*॥ प्लीहोदरमाह ।

"वर्द्धते प्लीहवृद्ध्या यद्विद्यात् प्लीहोदरं हि तत् ।
तद्वामे वर्द्धते पार्श्वे निमित्तं तस्य तच्च यत् ॥
यकृत्प्लीहलिङ्गानि यान्युक्तानि भिषग्वरैः ।
प्लीहोदरेऽपि दृश्यन्ते तानि सर्व्वाणि देहिनाम्" ॥

प्लीहोदरस्यैव भेदो यकृद्दाल्युदरं न पुनरधिकमित्याह । "सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रवृद्धे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव" । यकृद्दालयति दोषैर्भेदयतीति यकृद्दाल्युदरं तदेव उदरमेव ॥*॥ बद्धगुदमाह ।

"यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्व्वा,
बालाश्मभिर्व्वा पिहितं यथावत् ।
सञ्चीयते यस्य मलः सदोषः,
शनैः शनैः सङ्करवच्च नाड्याम् ॥
निरुध्यते यस्य गुदे पुरीषं
निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम् ।
हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति
तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति" ॥

उपलेपिभिः पिच्छिलैरन्नैः शाकशालुकादिभिः । बालाश्मभिः बालुकाभिः कर्क्करैर्व्वा बालैः केशैः अश्मभिः पाषाणैर्व्वा । यथावत् यस्य यत् सम्भवति । मलः पुरीषम् । सङ्करवत् समार्ज्जनीक्षिप्तहट्टधूल्यादिवत् । "सङ्करोऽवकरः पुमान्" इत्यमरः । सङ्करो घूण इति लोके । नाड्यां अन्त्रनाड्याम् । हृन्नाभिमध्ये हृन्नाभ्योर्मध्ये ॥*॥ क्षतोदरमाह ।

"शल्यं यथान्नोपहितं यदन्त्रं
भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा ।
तस्मात् क्षतोऽन्त्रात् सलिलप्रकाशः
स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः ॥
नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं
निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम् ।
एतत् परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं
दकोदरं कीर्त्तयतो निबोध" ॥

शल्यं कर्क्करादि । अन्नोपहितं अन्नमिश्रितम् । भुक्तं यदन्त्रं भिनत्ति । तथा अन्यथा आगतं भोजनं विना आगतं शरादि । तदपि यदन्त्रं भिनत्ति एतदुपलक्षणम् । जृम्भणमत्यशनं वा यदन्त्रं भिनत्ति । यत उक्तं चरके ।

"शर्क्करातृणकाष्ठास्थिकण्टकैरन्नसंयुतैः ।
भिद्येतान्त्रं यदा भुक्तैर्जृम्भयात्यशनेन वा" ॥ इति ।

तस्मात् भिन्नादन्त्रात् । गुदतस्तु भूयः अन्त्रात् संस्रुत्य पुनर्गुदतः स्रवेदित्यर्थः । दाल्यति विदीर्य्यतइव । पदसिद्धिरार्षत्वात् । एतत् क्षतोदरं तन्त्रान्तरे परिस्राव्युदरं प्रदिष्टम् ॥*॥

उदकोदरमाह ।

"यत् स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा,
वान्तो विरिक्तोऽप्यथवा निरूढः ।
पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य
स्रोतांसि दुष्यन्ति हि तद्वहानि ॥
स्नेहोपलिप्तेष्वथवापि तेषु
दकोदरं पूर्व्ववदभ्युपैति ।
स्निग्धं महत्तत् परिवृत्तनाभि
समाततं पूर्णमिवाम्बुना च ॥
यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च
शब्दायते चापि दकोदरं तत्" ॥

स्नेहपीतः पीत इत्यत्राध्यवसितादित्वात् कर्त्तरि क्तः पश्चात् स्नेहः पीतः स्नेहपीत इति तत्पुरुषः । तेन स्नेहं पीतवानित्यर्थः । अनुवासितो वा गृहीतानुवासनवस्तिः । वान्तः अत्रापि पूर्व्ववत् कर्त्तरि क्तः तेन वान्तवानित्यर्थः । एवं विरिक्तः विरिक्तवान् । तथा निरूढः गृहीतनिरूहवस्तिः । स चेदाशु शीतलं जलं पिबेत् । तस्य तद्वहानि जलवहानि स्रोतांसि दुष्यन्ति स्वकर्म्मदुष्टानि भवन्ति जलवहेषु स्रोतःसु दुष्टेषु सत्सु अन्नरसे उपस्नेहन्यायेन वह्निर्भूते दकोदरमायाति । अथवा तेषु उदकवहेषु स्रोतःसु स्नेहोपलिप्तेषु पूर्व्ववत् यथापूर्व्वम् । अन्नरसे उपस्नेहन्यायेन वहिर्नि सृते दकोदरमायाति । तथा जलेऽपि वहिर्निःसृते दकोदरमायाति । तत् उदरम् । परिवृत्तनाभि गम्भीरनाभि । समाततं स्तब्धम् । यथा दृतिः चर्म्ममयं जलाहरणपात्रम् । क्षुभ्यति अन्तर्जलदोलनेन सञ्चलति कम्पते वहिः शब्दायते कम्पमानं सत् शब्दं करोति ॥*॥

साध्यासाध्यलक्षणमाह ।

"जन्मनैवोदरं सर्व्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम् ।
बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम्" ॥

बलिनः अजाताम्बु नवोत्थितञ्च यत्नसाध्यमित्यन्वयः ।

"पक्षाद्बद्धगुदं तूर्द्ध्वं सर्व्वं जातोदकं तथा ।
प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्रञ्च दकोदरम्" ॥

छिद्रान्त्रं शरादिना छिद्रमन्त्रं यस्य तदुदरं अभावाय भवति ॥*॥

जातोदकस्योदरस्य लक्षणमाह । चरकः ।

"पयः पूर्णा दृतिरिव क्षोभं शब्दकरं मृदु ।
अप्रव्यक्तशिरःस्थूलं नितान्तमुदरं महत् ॥
आलस्यमास्यवैरस्यं मूत्रं बद्धं सकृच्छ्रतः ।
जातोदकस्य लिङ्गं स्यान्मन्दोऽग्निः पाण्डुतापि च ॥
शूलाच्च कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम् ।
बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणञ्च वर्ज्जयेत्" ॥

शूलाच्चस्थाने शूनाक्षमिति च पाठः । कुटिलोपस्थं वक्रमेहनम् । उपक्लिन्नतनुत्वच । उपरि आर्द्रा तन्वी त्वग्यस्य । स उदरिणम् ।

"पार्श्वभङ्गान्नविद्वेषशोथातीसारपीडितम् ।
विरिक्तं चाप्युदरिणं पूर्य्यमाणं विवर्ज्जयेत्" ॥

विरिक्तमपि पूर्य्यमाणं पूर्य्यमाणोदरं उदरिणं विवर्ज्जयेत् ॥*॥

अथोदरस्य चिकित्सा ।

"एरण्डतैलं दशमूलमिश्रं
गोमूत्रयुक्तं त्रिफलारसो वा ।
निहन्ति वातोदरशोथशूलान्
क्वाथः समूत्रो दशमूलजश्च ॥
कुष्ठं दन्ती यवक्षारः पाठा त्रिलवणं वचा ।
शुण्ठी चोष्णाम्बुना पीता वातोदररुजापहा" ॥

कुष्ठादिचूर्णम् ॥*॥

"लशुनस्य तुलामेकां जलद्रोणे विपाचयेत् ।
त्रिकटु त्रिफला दन्ती हिङ्गु सैन्धवचित्रकम् ॥
देवदारु वचा कुष्ठं मधु शिग्रुः पुनर्नवा ।
सौवर्च्चलं विडङ्गानि दीप्यको गजपिप्पली ॥
एतेषां पलिकान् भागान् त्रिवृतः षट्पलानि च ।
पिष्ट्वा कषायेणैतेन तैलं मृद्वग्निना पचेत् ॥
तत्पिबेत् प्रातरुत्थाय यथाग्निबलमात्रया ।
निहन्ति सकलान् रोगान् उदराणि विशेषतः ॥
मूत्रकृच्छ्रमुदावर्त्तमन्त्रवृद्धिगुदक्रमीन् ।
पार्श्वकुक्षिभवं शूलमामशूलमरोचकम् ॥
यकृदष्ठीलिकानाहान् प्लीहानं चाङ्गवेदनाम् ।
मासमात्रेण नश्यन्ति अशीतिर्वातजा गदाः" ॥

इति रसोनतैलम् ॥*॥

"पित्तोदरेषु बलिनं पूर्व्वमेव विरेचयेत् ।
दुर्व्वलं त्वनुवास्यादौ शोधयेत् क्षीरवस्तिना ।
सञ्जातबलकायाग्निं पुनः स्निग्धं विरेचयेत् ॥
पयसा च त्रिवृत्कल्कैरुरुवूकस्य शृतेन च ॥
पिप्पल्यादिगणेनाज्यं पाचितं पाययेद्भिषक् ।
नरं यथ्यभुजं नित्यं कफोदरनिवृत्तये" ॥*॥

"नागरत्रिफलाकर्षैर्दध्यम्बुपरिपेषितैः ।
पाचितं तैलमाज्यञ्च पिबेत् सर्व्वोदरापहम्" ॥

इति नागरादितैलं घृतञ्च ॥*॥

"शालिषष्टिकगोधूमयवनीवारभोजनम् ।
निरूहो रेचनं श्रेष्ठं सर्व्वेषु जठरेषु च ॥
आनूपमोदनं मांसं शाकं पिष्टकृतं तिलाः ।
व्यायामञ्च दिवास्वप्नयानपानानि वर्ज्जयेत् ॥
तथोष्णलवणाम्लानि विदाहीनि गुरूणि च ।
नाद्यादन्नानि जठरे तोयपानञ्च वर्ज्जयेत् ॥
उदराणां मलाढ्यत्वाद्बहुशः शोधनं हितम् ।
क्षीरेणैरण्डतैलं वा पिबेन्मूत्रेण वासकृत्" ॥*॥

"वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम् ।
शर्क्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥
यवानीहपुषाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी ।
सन्निपातोदरी युक्तं त्रिकटुक्षारसैन्धवैः ॥
यवानी हपुषा धान्यं त्रिफला चोपकुञ्चिका ।
कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा ॥
शताह्वा जीरको व्योषं स्वर्णक्षीरी च चित्रकम् ।
द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥
विडङ्गञ्च समांशानि दन्त्या भागत्रयं भवेत् ।
त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला स्याच्चतुर्गुणा ॥
एष नारायणो नाम्ना चूर्णो रोगगणापहः ।
एनं प्राप्य निवर्त्तन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः ॥
तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्वदराम्बुना ।
आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥
दधिमण्डेन विड्बन्धे दाडिमाम्बुभिरर्शसे ।
परिकर्त्तेषु वृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥
भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ।
हृद्रोगे ग्रहणीरोगे कुष्ठे मन्देऽनले ज्वरे ॥
दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे ।
यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम्" ॥

उपकुञ्चिका कारवी च वृहज्जीरकं । यस्य मगरैला नाम इति लोके । तस्य भागद्वयं ग्राह्यं पुनरुक्तेः । स्वर्णक्षीरी चोक इति लोके । विशाला इन्द्रवारुणी । सातला सीहुण्डभेदः सातलेतेव

प्रसिद्धा। परिकर्त्तो गुदे परिकर्त्तनवत् पीडा इति नारायणचूर्णम् ॥ * ॥

"स्नुक्क्षीरदन्तीत्रिफलाविडङ्ग-
सिंहीत्रिवृच्चित्रकसूर्य्यकल्कैः ।
घृतं विपक्वं कुडवप्रमाणं
तोयेन तस्याच्चसमेन कर्षम् ॥
पीतोष्णमम्भोऽनुपिबेद्विरेके
पेयं रसं वा प्रपिबेद्विधिज्ञः ।
नाराचमेनं जठरामयानां
मुक्तं प्रयुक्तं प्रवदन्ति सन्तः" ॥

इति नाराचघृतम् ॥ * ॥

"वच्चाण्डाः कर्षमात्राया कल्कं दध्यादिवेष्टितम् ।
निगिलेद्दारिणा नित्यमुदरव्याधिशान्तये" ॥

वज्राण्डी शूरणपत्रो मानभेदः । वज्राण्डी इति लोके ॥ * ॥

"पुनर्नवादारुनिशाभविश्वा-
पटोलपथ्यापिचुमर्द्ददारु ।
सनागरच्छिन्नरुहेति सर्व्वै
कृतं कषायो विधिना विधिज्ञै ॥
गोमूत्रयुक् गुग्गुलुना च युक्तः
पीतं प्रभाते नियतं नराणाम् ।
सर्व्वाङ्गशोथोदरपार्श्वशूल-
श्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति" ॥

पुनर्नवादिक्वाथः । इत्युदराधिकारः । इति भावप्रकाशः ॥ ("उदरं स्तिमितं गुरु" इति वैद्यकमाधवकरधृतरुग्विनिश्चयग्रन्थः । अस्य शब्दस्य रोगविशेषवाच्यत्वेऽन्याविशेषवाच्यविवृत्तिरुदररोगशब्दे ज्ञातव्या ।)

उदरग्रन्थि, पु, (उदरस्य ग्रन्थिरिव ।) गुल्मरोग । इति हेमचन्द्रः ॥

उदरत्राणं, क्ली, (उदरस्य त्राणं यस्मात् ।) उदरबन्धवस्त्रादि । तत्पर्य्यायः । नागोदः २ । इति हेमचन्द्रः ॥

उदरथि, पु, (उदृच्छति उदर्य्यते वा । उत्+ऋ+उदर्त्तेश्चिदिति गथिन् ।) समुद्रः । सूर्य्यः । इति हेमचन्द्रः ॥

उदरपिशाच, त्रि, (उदराय तत्पूरणाय पिशाच इव ।) सर्व्वान्नखादकः । तत्पर्य्यायः । सर्व्वान्नीनः २ सर्व्वान्नभक्षकः ३ । इति हेमचन्द्रः ॥

उदरम्भरि, त्रि, (उदरं बिभर्त्तीति । उदर+भृ+इन्+मुम् च । निपातसिद्धः ।) स्वोदरमात्रपूरकः । तत्पर्य्यायः । कुक्षिम्भरिः २ आत्मम्भरिः ३ । इति हेमचन्द्रः ॥

उदरव्याधि, पु, (उदरस्य व्याधि ।) उदररोगविशेष । यथा,—गारुडे १९४ अध्याय ॥

"कदलीयवक्षारन्तु पानीयेन प्रसाधितम् ।
तदास्वादनान्नश्यन्ति उदरव्याधयोऽखिला" ॥

उदररोगः, पु, (उदरस्य रोगः ।) जठरव्याधिविशेषः । उदरी इति भाषा ॥

("सिद्धविद्याधराकीर्णे कैलासे नन्दनोपमे ।
तप्यमानं तपस्तीव्रं साक्षाद्धर्म्ममिव स्थितम् ॥
आयुर्व्वेदविदां श्रेष्ठं भिषग्विद्याप्रवर्त्तकम् ।
पुनर्व्वसुं जितात्मानमग्निवेशोऽब्रवीदिदम् ॥
भगवन्नुदरैर्दुःखैर्दृश्यन्ते ह्यर्द्दिता नराः ।
शुष्कवक्त्राः कृशैर्गात्रैराध्मातोदरकुक्षयः ॥
प्रणष्टाग्निबलाहाराः सर्व्वचेष्टास्वनीश्वराः ।
दीनाः प्रतिक्रियाभावाज्जहतोऽसूननाथवत् ॥
तेषामायतनं सङ्ख्यां प्राग्रूपाकृतिभेषजान् ।
यथावज्ज्ञातुमिच्छामि गुरुणा सम्यगीरितम् ॥
सर्व्वभूतहितायर्षिं शिष्येणैव प्रचोदितः ।
सर्व्वभूतहितं वाक्यं व्याहर्त्तुमुपचक्रमे" ॥

अस्य सनिदानं सम्प्राप्तिकलक्षणं यथा,—

"अग्निदोषान्मनुष्याणां रोगसङ्घाः पृथग्विधाः ।
मलवृद्ध्या प्रवर्त्तन्ते विशेषेणोदराणि तु ॥
मन्देऽग्नौ मलिनैर्भुक्तैरपाकाद्दोषसञ्चयः ।
प्राणाग्न्यपानान् सन्दूष्य मार्गान् बद्ध्वोत्तरोत्तरान् ॥
त्वङ्मांसान्तरमागम्य कुक्षिमाध्मापयन् भृशम् ।
जनयत्युदरं तस्य हेतुं शृणु सलक्षणम्" ॥

सामान्यहेतवो यथा,—

"अत्युष्णलवणक्षारविदाह्यम्लरसाशनात् ।
मिथ्यासंसर्ज्जनाद्रूक्षविरुद्धाशुचिभोजनात् ॥
प्लीहार्शोग्रहणीदोषकर्षणात् कर्म्मविभ्रमात् ।
क्लिष्टानामप्रतीकाराद्रौक्ष्याद्वेगविधारणात् ॥
स्रोतसां दूषणादामात् सङ्क्षोभादतिपूरणात् ।
अर्शोवातशकृद्रोधादन्त्रस्फुटनभेदनात् ॥
अतिसञ्चितदोषाणां पापं कर्म्म च कुर्व्वताम् ।
उदराण्युपजायन्ते मन्दाग्नीनां विशेषतः" ॥

प्राग्रूपं यथा,—

"क्षुन्नाशः स्वादुतिस्निग्धगुर्व्वन्नं पच्यतेऽचिरात् ।
भुक्तं विदाह्यते सर्व्वं जीर्णाजीर्णं न वेत्ति च ॥
सहते नातिसौहित्यमीषच्छोफश्च पादयोः ।
शश्वद्बलक्षयोऽल्पेऽपि व्यायामे श्वासमृच्छति ॥
पुरीषनिचयो रूक्षिरुदावर्त्तकता च रुक् ।
वस्तिसन्धौ रुगाध्मानं वर्द्धते पाट्यतेऽपि च ॥
आतन्यते च जठरमपि चाल्पभोजनात् ।
राजीजन्म वलीनाश इति लिङ्गं भविष्यताम्" ॥

सम्प्राप्तिर्यथा,—

"रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहानि दोषाः स्रोतांसि सञ्चिताः ।
प्राणापानान् हि सन्दूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम्" ॥

सामान्यलक्षणं यथा,—

"कुक्षेराध्मानमाटोपः शोफः पादकरस्य च ।
मन्दोऽग्निः श्लक्ष्णगण्डत्वं कार्श्यञ्चोदरलक्षणम्" ॥

वातजस्य सनिदानसम्प्राप्तिकं लक्षणं यथा,—

"रूक्षाल्पभोजनायासवेगोदावर्त्तकर्षणैः ।
वायुः प्रकुपितः कुक्षिहृद्वस्तिगुदमार्गगः ॥
हत्वाग्निं कफमुद्धूय तेन रुद्धगतिस्तथा ।
आचिनोत्युदरं जन्तोस्त्वङ्मांसान्तरमाश्रितः" ॥

अस्य रूपाणि ।

"कुक्षि-पाणि-पाद-वृषण-श्वयथूदर-विपाटनम् अनियतौ च वृद्धिह्रासौ कुक्षि-पार्श्वशूलोदावर्त्ताङ्गमर्द्द-पर्व्वभेद-शुष्ककास-कार्श्य दौर्व्बल्यारोचक-विपाका अधोगुरुत्वं वातवर्च्चमूत्रसङ्गः श्यावारुणत्वं नखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्च्चसामपि चोदरं तनुसितराजीशिरासन्ततमाहतमाध्मातदृतिशब्दवद्भवति । वायुश्चोर्द्ध्वमधस्तिर्य्यक् च सशूलशब्दश्चरत्येतद्वातोदरं विद्यात्" ॥

पित्तजस्य सनिदानसम्प्राप्तिकं लक्षणं यथा,—

"कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णाग्न्यातपसेवनैः ।
विदाह्यध्यशनाजीर्णैश्चाशु पित्तं समाचितम् ॥
प्राप्यानिलकफौ रुद्ध्वा मार्गमुन्मार्गमास्थितम् ।
निहन्त्यामाशये वह्निं जनयत्युदरं ततः" ॥

अस्य रूपाणि ।

"दाहज्वर-तृष्णा-मूर्च्छातिसार-भ्रमाः कटुकास्यत्वं हरितहारिद्रत्वं नख-नयन-वदन त्वङ्-मूत्र-वर्च्चसामपि चोदरं नील-पीत-हारिद्र-हरित-ताम्रराजीशिरावनद्धं दह्यात् दूयते धूप्यते ऊष्मायते स्विद्यते क्लिद्यते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकञ्च भवत्येतत् पित्तोदरं विद्यात्" ॥

श्लेष्मजनितस्य सनिदानसम्प्राप्तिकं लक्षणं यथा,—

"अव्यायामदिवास्वप्नस्वाद्वतिस्निग्धपिच्छिलैः ।
दधिदुग्धोदकानूपमांसैश्चाप्युपसेवितैः ॥
क्रुद्धेन श्लेष्मणा स्रोतःस्वावृतेष्वावृतोऽनिलः ।
तमेव पीडयन् कुर्य्यादुदरं बहिरन्तगः" ॥

अस्य रूपाणि ।

"गौरवारोचकाविपाकाङ्गमर्द्द-सुप्ति-पाणि-पाद-मुष्कोरुशोफोत्क्लेश-निद्रा-श्वास-कासाः शुक्लत्वञ्च नख-नयन वदन-त्वङ्मूत्रवर्च्चसामपि चोदरं शुक्लराजीशिरासन्ततं गुरुस्तिमितस्थिरं कठिनञ्च भवत्येतत् श्लेष्मोदरं विद्यात्" ॥

त्रिदोषजस्य सनिदानसम्प्राप्तिकं लक्षणं यथा,

"दुर्ब्बलाग्नेरपथ्यामविरोधिगुरुभोजनात् ।
स्त्रीदत्तैश्च रजोरोम-विण्मूत्रास्थिनखादिभिः ॥
विषैश्च मन्दैर्वाताद्या कुपिताः सञ्चितास्त्रयः ।
शनैः कोष्ठे प्रकुर्व्वन्तो जनयन्त्युदरं नृणाम्" ॥

अस्य रूपाणि ।

"सर्व्वेषामेव दोषाणां समस्तानि लिङ्गान्युपलभ्यन्ते वर्णाश्च नखादिषूदरमपि नानावर्णराजीशिरासन्ततं भवत्येतत् सन्निपातोदरं विद्यात्" ॥

यकृत्प्लीहसमुद्भवस्य सनिदानसम्प्राप्तिकं लक्षणं यथा,—

"असितस्यातिसङ्क्षोभाद्यानयानातिचेष्टितैः ।
अतिव्यवायभाराध्ववमनव्याधिकर्षणैः ॥
वामपार्श्वाश्रितः प्लीहा च्युतः स्थानात् प्रवर्द्धते ।
शोणितं वा रसादिभ्यो विवृद्धं तं विवर्द्धयेत्" ॥

इति तस्य प्लीहा कठिनोऽष्ठिलेवादौ वर्द्धमानः कच्छपसंस्थान उपलभ्यते स चोपेक्षितः क्रमेण कुक्षिं जठरमग्न्यधिष्ठानञ्च परिक्षिपन्नुदरमभिनिर्वर्त्तयति" ॥

अस्य रूपाणि यथा,—

"दौर्व्बल्यारोचकाविपाकवर्च्चोमूत्रग्रहतमःप्रवेश-पिपासाङ्गमर्द्द-च्छर्द्दि-मूर्च्छाङ्गसाद-कास-श्वास मृदुज्वरानाहाग्निनाशकार्श्यास्यवैरस्य-पर्व्वभेद-कोष्ठ-वातशूलान्यपि चोदरमरुणवर्णं विवर्णं वा नील-हरित-हारिद्र-राजिमद्भवत्येवमेव यकृदपि दक्षिणपार्श्वस्थं कुर्य्यात्तुल्यहेतुलिङ्गौषधत्वात्तस्य प्लीहजठरेणैवावरोध इत्येतत् यकृत्प्लीहोदरं विद्यात्" ॥

बद्धगुदोदरस्य निदानपूर्ब्बिका सम्प्राप्तिर्यथा,
"पक्ष्माश्मभिः सहान्नेन भुक्तैर्बद्धायने गुदे ।
उदावर्त्तैस्तथार्शोभिरन्त्रसंमूर्च्छनेन वा ॥
अपानो मार्गसंरोधाद्धत्वाग्निं कुपितोऽनिलः ।
वर्च्चः पित्तकफान् रुद्धा जनयत्युदरं ततः" ॥
अस्य रूपाणि ।
"तृष्णा-दाह-ज्वर-मुख-तालु-शोषोरुसाद-कास-श्वास-दौर्ब्बल्यारोचकाविपाक-वर्च्चोमूत्र-सङ्गाध्मान-च्छर्द्दि-क्षवथु-शिरोहृन्नाभि-गुदशूलान्यपि चोदरं मूढवातं स्थिरमरुणं नीलराजिशिरावनद्धं सराजिकं वा प्रायो नाभ्युपरि गोपुच्छवदभिनिवर्त्तते इत्येतद् बद्धगुदोदरं विद्यात्" ॥
छिद्रोदरस्य निदानपूर्ब्बिका सम्प्राप्तिर्यथा,
"शर्करा-तृणकाष्ठास्थि-कण्टकैरन्नसंयुतैः ।
भिद्येतान्त्रं यदा भुक्तैर्जृम्भयात्यशनेन वा ।
ह्यात् पाकरसस्तेभ्यश्छिद्रेभ्यः प्रस्रवद्वहिः ।
पूरयन् गुदमन्त्रञ्च जनयत्युदरं ततः" ॥
अस्य रूपाणि ।
"इति तदधोनाभ्याः प्रायोऽभिनिवर्त्तमानमुदकोदरस्य च यथाबलञ्च दोषाणां रूपाणि दर्शयत्यपि चातुरः सलोहित-नील-पीत-पिच्छिल-कुणपगन्धामवर्च्चः उपवेशते हिक्का-श्वास-कास-तृष्णा-प्रमेहा-रोचकाविपाक-दौर्ब्बल्यपरीतश्च भवत्येतत् छिद्रोदरं विद्यात्" ॥
जलोदरस्य निदानपूर्ब्बिका सम्प्राप्तिर्यथा,—
"स्नेहपीतस्य मन्दाग्नेः क्षीणस्यातिकृशस्य वा ।
अत्यम्बुपानान्नष्टेऽग्नौ मारुतः क्लोम्नि संस्थितः ॥
स्रोतःसु रुद्धमार्गेषु कफश्चोदकमूर्च्छितः ।
वर्द्धयेतां तदेवाम्बु स्वस्थानादुदराय तौ" ॥
अस्य रूपाणि ।
"तस्य रूपाण्यनन्नकाङ्क्षापिपासा-गुदस्राव-शूल-श्वास-कास-दौर्ब्बल्यान्यपि चोदरं नानावर्णराजिभिरासन्ततमुदकपूर्णदृतिक्षोभसंस्पर्शं भवत्येतदुदकोदरं विद्यात्" ॥
एषां साध्यत्वासाध्यत्वादिलक्षणं यथा,—
"तत्राचिरोत्पन्नमनुपद्रवमनुदकप्राप्तमुदरं त्वरमाणश्चिकित्सेदुपेक्षितानां ह्येषां दोषाः स्वस्थानादपवृत्ता अपरिपाकाद्द्रवीभूताः सन्धीन् स्रोतांसि चोपक्लेदयन् स्वेदश्च बाह्येषु स्रोतःसु प्रतिहतगतिस्तिर्य्यगवतिष्ठमानस्तदेवोदकमाप्याययति" ।
तत्र पिच्छोत्पत्तौ मण्डलमुदरं गुरुस्तिमितमाकोचितमशब्दं मृदुस्पर्शमपगतराजीकमाक्रान्तं नाभ्यां सर्पतीति । ततोऽनन्तरं उदकप्रादुर्भावः ॥
तस्य रूपाणि कुक्षेरतिमात्रवृद्धिः शिरान्तर्धानगमनमुदकपूर्णदृतिसमक्षोभस्पर्शत्वञ्च ।
तदातुरमुपद्रवाः स्पृशन्ति छर्द्द्यतीसार-तमक-तृष्णा-श्वास-कास-हिक्का-दौर्ब्बल्य-पार्श्वशूलारुचि-स्वरभेद-मूत्रसङ्गादयस्तथाविधमचिकित्स्यं विद्यादिति ॥ भवति चात्र,—
"वातात् पित्तात् कफात् प्लीह्नः सन्निपातात्तथोदकात् ।
परस्परं कृच्छ्रतरमुदरं भिषगादिशेत् ॥
पक्षाद्बद्धगुदन्तूर्द्ध्वं सर्व्वं जातोदकन्तथा ।
प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्रञ्चोदरं नृणाम्" ॥
"श्वयथुः सर्व्वमर्म्मोत्थः श्वासो हिक्कारुचिः सतृट् ।
मूर्च्छाच्छर्द्द्यतिसारश्च निघ्नन्त्युदरिणं नरम्" ॥
जलजलक्षणमाह ।
"यशोथमरुणाभासं सशब्दं नातिभारिकम् ।
सदा गुड्गुडायन्तं शिराजालगवाक्षितम् ॥
नाभिं विष्टभ्य पायौ तु वेगं कृत्वा प्रणश्यति ॥
हृन्नाभिवङ्क्षणकटीगुदप्रत्येकशूलिनः ।
कर्कशं सृजतो वातं नातिमन्दे च पावके ॥
मूत्रेऽल्पे संहते लोये गात्रया विरसे मुखे ।
अजातोदकमित्येतैर्लिङ्गैर्विद्याय तत्त्वतः" ॥
अत परं वातजादिभेदेन चिकित्साविधानं यथा,
"उपक्रमेद्भिषगदोषबलकालविशेषवित् ।
वातोदरे बलवतः पूर्व्वं स्नेहैरुपाचरेत् ॥
स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात् स्नेहविरेचनम् ॥
हृते दोषे परिम्लानं वेष्टयेद्वाससोदरम् ।
तथास्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाध्मापयेत् पुनः ।
दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतसां सन्निरोधनात् ॥
सम्भवत्युदरं यस्मात् तस्मान्नित्यं विशोधयेत् ।
शुद्धं संसृज्य च क्षीरं बलार्थं पाययेत्तु तम् ॥
प्रागुत्क्लेशान्निवर्त्त्यञ्च बले लब्धे क्रमात् पयः ।
यूषैरसर्व्वा मन्दाम्ललवणैं रोचितानलम् ॥
सोदावर्त्तं पुनः स्निग्धं स्विन्नमास्थापयेन्नरम् ।
स्फुरणाक्षेपसन्ध्यस्थिपार्श्वपृष्ठत्रिकार्त्तिषु ।
दीप्ताग्निबद्धविट्कं तं रूक्षमप्यनुवासयेत् ॥
तीक्ष्णाधोभागयुक्तः स्यान्निरूहो दाशमूलिकः ।
वातघ्नाम्लशृतैरण्डतिलतैलानुवासनं ॥
अविरेच्यन्तु यं विद्याद्दुर्ब्बलं स्थविरं शिशुम् ।
सुकुमारं प्रकृत्याल्पदोषं वाथोल्बणानिलम् ॥
तं भिषक् शमनैः सर्पिर्य्यूषमांसरसौदनैः ।
वस्त्यभ्यङ्गानुवासैश्च क्षीरैश्चोपाचरेद्बुधः ॥ १ ॥
पित्तोदरे तु बलिनं पूर्व्वमेव विरेचयेत् ।
दुर्ब्बलन्त्वनुवास्यादौ शोधयेत् क्षीरवस्तिना ॥
सञ्जातबलकायाग्निं पुनः स्निग्धं विरेचयेत् ।
पयसा सत्रिवृत्कल्केनोरुवूकशृतेन वा ॥
शातलात्रायमाणाभ्यां शृतेनारग्वधेन वा ।
सकफे वा समूत्रेण सवाते तिक्तसर्पिषा ॥
पुनः क्षीरप्रयोगश्च वस्तिकर्म्मविरेचनम् ।
क्रमेण ध्रुवमातिष्ठन् युक्तः पित्तोदरं जयेत् ॥
स्निग्धं स्विन्नं विशुद्धन्तु कफोदरिणमातुरम् ।
संसर्ज्जयेत् कटुक्षारयुक्तैरन्नैः कफापहैः ॥
गोमूत्रारिष्टपानैश्च चूर्णायस्कृतिभिस्तथा ।
सक्षारैस्तैलपानैश्च शमयेत्तु कफोदरम् ॥
सन्निपातोदरे सर्व्वा यथोक्ताः कारयेत् क्रियाः ।
सोपद्रवन्तु निर्वृत्तं प्रत्याख्येयं विजानता ॥
उदावर्त्तरुजानाहैर्दाहमोहतृषाज्वरैः ।
गौरवारुचिकाठिन्यैश्चानिलादीन् यथाक्रमम् ॥
लिङ्गैः प्लीहोदरान् दृष्ट्वा रक्तं वापि स्वलक्षणैः ।
चिकित्सां सम्प्रकुर्व्वीत यथादोषं यथाबलम् ॥
स्नेहं स्वेदं विरेकञ्च निरूहमनुवासनम् ।
समीक्ष्य कारयेद्बाहौ वामे वा व्यधयेत्सिराम् ॥
षट्पलं वा पिबेत्सर्पिः पिप्पलीर्व्वा प्रयोजयेत् ।
सगुडामभयां वापि क्षारारिष्टगणांस्तथा ॥
रोहितकलतानान्तु काण्डैः सामयां जले ।
मूत्रे वा शृतमेतञ्च सप्तरात्रस्थितं पिबेत् ॥
कासश्वासगुल्ममेहार्शःप्लीहसर्व्वोदरकृमीन् ।
तद्वन्याक्काग्नकर्म्मभिर्माणं स्यात्पात्र भोजनम् ॥
अग्निकर्म्म च कुर्व्वीत भिषग्वातकफोल्बणे ।
पैत्तिके जीवनीयानि सर्पींषि क्षीरबस्तयः ॥
रक्तावसेकः संशुद्धिः क्षीरपानञ्च शस्यते ।
यूषैर्मांसरसैश्चापि दीपनीयसमायुतैः ॥
लघून्यन्नानि संसृज्य भजेत् प्लीहोदरी नरः ॥
स्विन्नाय बद्धोदरिणे मूत्रतीक्ष्णौषधान्वितम् ।
सतैललवणं दद्यान्निरूहं सानुवासनम् ॥
परिस्रंसीनि चान्नानि तीक्ष्णञ्चैव विरेचनम् ।
उदावर्त्तहरं कर्म्म कार्य्यं वातघ्नमेव च ॥
छिद्रोदरमृते स्वेदात् श्लेष्मोदरवदाचरेत् ॥
जातं जातं जलं स्राव्यमेवं तत्पातयेद्भिषक्" ॥
अरिष्टलक्षणं यथा ।
"तृष्णाकासज्वरार्त्तन्तु क्षीणमांसाग्निभोजनम् ।
वर्ज्जयेत् श्वासिनं तद्वत् शूलिनं दुर्ब्बलेन्द्रियम्" ॥
"द्रवेभ्यश्चोदकादिभ्यो नियच्छेदनुपूर्व्वशः ।
सर्व्वमेवोदरं प्रायो दोषसङ्घातजं मतम् ।
तस्मात्त्रिदोषशमनीं क्रियां सर्व्वसु कारयेत्" ॥
पथ्यनियमो यथा ।
"दोषैः कुक्षौ हि संपूर्णे वह्निर्मन्दत्वमृच्छति ।
तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥
रक्तशालीन् यवान् मुद्गान् जाङ्गलांश्च मृगद्विजान् ।
पयोमूत्रासवारिष्टान्मधुशीधूंस्तथा सुराम् ॥
यवागूमोदनं वापि यूषैरद्याद्रसैरपि ।
मन्दाम्लस्नेहकटुभिर्यवं च मूलोपसाधितैः" ॥
अपथ्यानि यथा ।
"अथौदकानूपजं मांसं शाकं पिष्टकृतं तिलान् ।
व्यायामाध्वदिवास्वप्नं यानयानञ्च वर्ज्जयेत् ॥
तथोष्णलवणाम्लानि विदाहीनि गुरूणि च ।
नाद्यादन्नानि जठरी तोयपानञ्च वर्ज्जयेत्" ॥
वातजादिभेदेन तक्रपाननियमो यथा ।
"वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम् ।
शर्करामधुकोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥
यमानीसैन्धवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी ।
पिबेन्मधुयुतं तक्रं व्यक्ताम्लं नातिपेलवम् ॥
मधुतैलवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ।
युक्तं प्लीहोदरार्त्तस्तु पिबेत्तु दकोदरी ॥
बद्धोदरी तु हपुषायवान्यजाजीसैन्धवैः ।
पिबेच्छिद्रोदरी तक्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ॥
"देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलीशिग्रुकैः ।
साश्वगन्धैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरं समैः ॥
पलाशं कत्तृणं रास्नां तद्वत्पक्त्वावसेचयेत् ।
मूत्राण्यष्टावुदरिणां सेके पाने च योजयेत् ॥
रूक्षाणां बद्धवातानां तथा संशोधनार्थिनाम् ।
दीपनीयानि सर्पींषि जठरघ्नानि वक्ष्यते ॥
पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
सक्षारैरर्द्धपलिकैर्द्विप्रस्थं सर्पिषः पचेत् ॥
कल्कैर्द्विपञ्चमूलस्य तुलार्द्धस्य रसेन च ॥

दधिमण्डातकोपेतं तत्सर्पिर्जठरापहम् ।
श्वयथुं वातविष्टम्भं गुल्मार्शांसि च नाशयेत्” ॥
इति पञ्चकोलघृतम् ॥ * ॥
“चतुर्गुणे जले मूत्रे द्विगुणे चित्रकात्पले ।
कल्के सिद्धं घृतप्रस्थं सक्षारं जठरी पिबेत्” ॥
इति चित्रकघृतम् ॥
“पटोलमूलं रजनीविडङ्गत्रिफलात्वचम् ।
काम्पिल्यकं नीलिनीं च त्रिवृतां चेति चूर्णयेत् ॥
षडाद्यान् कार्षिकानन्त्यांस्त्रीन् द्वित्रिचतुर्गुणान् ।
कृत्वा चूर्णमतो मुष्टिं गवां मूत्रेण वा पिबेत् ॥
विरिक्तो मृदु भुञ्जीत भोजनं जाङ्गलै रसैः ।
मण्डं पेयाञ्च पीत्वा च सव्योषं षडहं पयः ॥
शृतं पिबेत्ततश्चूर्णं पिबेदेवं पुनः पुनः ।
हन्ति सर्व्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च श्वयथुञ्चापकर्षति” ॥
इति पटोलाद्यं चूर्णम् ॥ * ॥
“नीलिनीं निचुलं व्योषं द्वौ क्षारौ लवणानि च ।
चित्रकञ्च पिबेच्चूर्णं सर्पिषोदरगुल्मनुत्” ॥
इति नीलिन्याद्यं चूर्णम् ॥ * ॥
“भावितानां गवां मूत्रे षष्टिकानान्तु तण्डुलैः ।
यवागूं पयसा सिद्धां प्रकामं भोजयेन्नरम् ॥
पिबेदिक्षुरसञ्चानु जठराणां निवृत्तये ।
स्वं स्वं स्थानं व्रजन्त्येषां तथा पित्तकफानिलाः ॥
क्रियातीते त्रिदोषे च जठरे चाप्यशाम्यति ।
ज्ञातीन् ससुहृदो दारान् ब्राह्मणान् नृपतीन् गुरून् ।
अनुज्ञाप्य भिषक् कर्म्म विदध्यात्संशयं ब्रुवन् ।
अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत् ॥
एवमाख्याय तस्येदमनुज्ञातः प्रयोजयेत् ।
पानभोजनसंयुक्तं विषमस्मै प्रदापयेत् ॥
यस्मिन् वा कुपितः सर्पो विसृजेद्धि फले विषम् ।
तेनास्य दोषसङ्घातः स्थिरो लीनो विमार्गगः ॥
विषेणाशु प्रमाथित्वादाशु भिन्नः प्रवर्त्तते ।
विषेण हृतदोषन्तं शीताम्बुपरिषेचितम् ॥
पाययेत भिषग्दुग्धं यवागूं वा यथाबलम् ।
त्रिवृन्मण्डूकपर्ण्योश्च शाकं सयववास्तुकम् ।
भक्षयेत्कालशाकं वा स्वरसोदकसाधितम् ॥
निरम्ललवणस्नेहं खिन्नाखिन्नमनन्नभुक् ।
मासमेकं ततश्चैव तृषितः स्वरसं पिबेत्” ॥
“इदन्तु शल्यहर्त्तॄणां कर्म्म स्यादृष्टकर्म्मणाम् ।
साचायुक्तेन शस्त्रेण पाटयेन्मतिमान् भिषक् ॥
विमार्ग्यान्त्राण्यतः पश्चाद्वीक्ष्य बद्धक्षतान्त्रयोः ।
सर्पिषाभ्यज्य केशादीनवमृज्य विमोक्षयेत् ॥
मूर्च्छनात् यच्च सम्मूढमन्त्रं यच्च विमोक्षयेत् ।
छिन्नाण्यन्त्राणि तु स्थूलैर्दंशयित्वा पिपीलिकैः ॥
बहुशः संगृहीतानि मत्वा छित्त्वा पिपीलिकान् ।
प्रतियोगे प्रवेश्यान्त्रं बहिः सीव्येद्व्रणान्ततः ।
तथा जातोदकं सर्व्वमुदरं व्यधयेद्भिषक् ॥
वामपार्श्वे त्वधो नाभेर्नाडीं दत्त्वा च गालयेत् ।
निःस्राव्य च विमृज्यैतद्वेष्टयेद्वाससोदरम् ॥
तथा वस्तिविरेकाद्यैर्म्लानं सर्व्वञ्च वेष्टयेत् ।
निःसृते लङ्घितः पेयामस्नेहलवणां पिबेत् ॥
अतः परञ्च षण्मासान् क्षीरवृत्तिर्भवेन्नरः ।
त्रीन् मासान् पयसा पेयां पिबेत्त्रींश्चापि भोजयेत् ॥
श्यामाककोरदूष्यं वा क्षीरेण लघुभोजनः ।
नरः संवत्सरेणैवं जयेत् प्राप्तं जलोदरम् ॥
प्रयोगाणाञ्च सर्व्वेषामनुक्षीरं प्रयोजयेत् ।
दोषानुबन्धरक्षार्थं बलस्थैर्य्यार्थमेव च ॥
प्रयोगापचिताङ्गानां हितं ह्युदरिणां पयः ।
सर्व्वधातुक्षयार्त्तानां देवानाममृतं यथा” ॥
इति चरके चिकित्सितस्थानेऽष्टादशोऽध्यायः ।
“धन्वन्तरिर्धर्म्मभृतां वरिष्ठो
राजर्षिरिन्द्रप्रतिमो बभूव ।
ब्रह्मर्षिपुत्त्रं विनयोपपन्नं
शिष्यं शुभं सुश्रुतमन्वशास्त ॥
पृथक्समस्तैरपि चेह दोषैः
प्लीहोदरं बद्धगुदं तथैव ।
आगन्तुकं सप्तममष्टमञ्च
दकोदरञ्चेति वदन्ति तानि ॥
सुदुर्ब्बलाग्नेरहिताशनस्य
संशुष्कपूत्यन्ननिषेवणाद्वा ।
स्नेहादिमिथ्याचरणाच्च जन्तो-
र्वृद्धिं गता कोष्ठमभिप्रपन्नाः ॥
गुल्माकृतिव्यञ्जितलक्षणानि
कुर्व्वन्ति घोराण्युदराणि दोषाः ।
कोष्ठादुपस्नेहवदन्नसारो
निःसृत्य दुष्टोऽनिलवेगनुन्नः ॥
त्वचं समुन्नम्य शनैः समन्ता-
द्विवर्द्धमानो जठरं करोति” ॥ * ॥
अस्य पूर्ब्बरूपं यथा,—
“तत्पूर्ब्बरूपं बलवर्णकाङ्क्षा-
वलीविनाशो जठरे हि राज्यः ।
जीर्णापरिज्ञानविदाहवत्यो
वस्तौ रुजः पादगतश्च शोफः” ॥
वातजादिभेदेन लक्षणानि यथा,—
“सगृह्य पार्श्वोदरपृष्ठनाभी-
र्यद्वर्द्धते कृष्णशिरावनद्धम् ।
सशूलमानाहवदुग्रशब्दम्
सतोदभेदं पवनात्मकन्तत् ॥ १ ॥
यच्चोषतृष्णाज्वरदाहयुक्तं
पीतं शिरा यत्र भवन्ति पीताः ।
पीताक्षिविण्मूत्रनखाननस्य
पित्तोत्तरं तच्चचिराभिवृद्धि ॥ २ ॥
यच्छीतलं शुक्लशिरावनद्धं
श्लक्ष्णं स्थिरं शुक्लनखाननस्य ।
स्निग्धं महच्छोफयुतं ससादं
कफोदरं तच्च चिराभिवृद्धि ॥ ३ ॥
विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तो
प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च ।
प्लीहाभिवृद्धिं सततं करोति
प्लीहोदरन्तत् प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥
वामे च पार्श्वे परिवृद्धिमेति
विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ।
मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गै-
रुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः ॥
सव्येतरस्मिन् यकृति प्रदुष्टे
ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव” ॥ ४ ॥
दूष्युदरं बद्धगुदोदरं परिस्राव्युदरं दकोदरञ्चेति
चतुर्णामुदराणां सुश्रुतीयं लक्षणादिकं यत् भाव-
प्रकाशे संगृहीतं तत्तावच्चान्यविधम् ॥
अस्य चिकित्सा यथा ।
“अष्टावुदराणि पूर्ब्बमुद्दिष्टानि तेष्वसाध्यं बद्धगुदं
परिस्रावि चावशिष्टानि कृच्छ्रसाध्यानि सर्व्वाण्येव
च प्रत्याख्यायोपक्रमेत । तेष्वाद्यश्चतुर्व्वर्गो भेषज-
साध्यः । कालप्रकर्षात् सर्व्वाण्येव शस्त्रसाध्यानि
वर्ज्जयितव्यानि वा ॥
उदरी तु गुर्व्वभिष्यन्दिरूक्षविदाहिस्निग्धपिशित-
परिषेकावगाहान् परिहरेत् । शालियष्टिकयव-
गोधूमनीवारान्नित्यमश्नीयात् ॥
तत्र वातोदरिणं विदारिगन्धादिसिद्धेन सर्पिषा
स्नेहयित्वा तिल्वकविपक्वेनानुलोम्य चित्राफलतैल-
प्रगाढेन विदारिगन्धादिकषायेणास्थापयेदनुवासयेच्च
शाल्वणेन चोपनाहयेदुदरम् । भोजयेच्चैनं विदा-
रिगन्धादिसिद्धेन क्षीरेण जाङ्गलरसेन चाभीक्ष्णं
स्वेदयेत् ॥ * ॥
पित्तोदरिणन्तु मधुरगणविपक्वेन सर्पिषा स्नेह-
यित्वा श्यामात्रिफलात्रिवृद्विपक्वेनानुलोम्य शर्क-
रामधुघृतप्रगाढेन न्यग्रोधादिकषायेणास्थापये-
दनुवासयेच्च पायसेनोपनाहयेदुदरं भोजयेच्चैनं
विदारिगन्धादिसिद्धेन पयसा ॥ * ॥ श्लेष्मोदरिणं
पिप्पल्यादिकषायसिद्धेन सर्पिषोपस्नेह्य स्नुहीक्षी-
रविपक्वेनानुलोम्य त्रिकटुकमूत्रक्षारतैलप्रगाढेन
मुष्ककादिकषायेणास्थापयेदनुवासयेच्च शणातसी-
धातकीकिण्वसर्षपमूलकबीजकल्केश्चोपनाहयेदु-
दरं भोजयेच्चैनं त्रिकटुकप्रगाढेन कुलत्थयूषेण
पायसेन वा स्वेदयेच्चाभीक्ष्णम् ॥ * ॥
दूष्योदरिणन्तु प्रत्याख्याय सप्तलाशङ्खिनीस्वरस-
सिद्धेन सर्पिषा विरेचयेन्मासमर्द्धं मासं वा
महावृक्षक्षीरसुरागोमूत्रसिद्धेन वा शुद्धकोष्ठं
मद्येनाश्वमारकगुञ्जाकाकादनीमूलकल्कं पाययेत् ।
इक्षुकाण्डानि वा कृष्णसर्पेण दंशयित्वा भक्षयेत् ।
वल्लीफलानि वा मूलजं कन्दजं वा विषमासेवयेत्
तेनागदो भवत्यन्यं वा भावमापद्यते ॥ * ॥
भवति चात्र,—
“कुपितानिलमूलत्वात् सञ्चयित्वान्मलस्य च ।
सर्व्वोदरेषु शंसन्ति बहुशस्त्वनुलोमनम्” ॥
ज्योतिष्मतीफलतैलं वा क्षीरेण स्वर्ज्जिकाहिङ्गुमिश्रं
पिबेत् ॥ गुडद्वितीयां वा हरीतकीं भक्षयेत् ॥
स्नुहीक्षीरभावितानां वा पिप्पलीनां सहस्रं का-
लेन पथ्याकृष्णाचूर्णं वा स्नुहीभावितामुत्कारिकां
पक्वां दापयेत्” ॥
“प्लीहोदरिणः स्निग्धस्विन्नस्य दध्ना भुक्तवतो वाम-
बाहौ कूर्प्पराभ्यन्तरतः शिरां विध्येद्विमर्द्दयेत्
पाणिना प्लीहानं रुधिरस्यन्दनार्थं ततः संशुद्धदेहं
समुद्रशुक्तिकाक्षारं पयसा पाययेत हिङ्गुसौवर्च्चि-
काक्षारेण स्रुतेन पलाशक्षारेण वा यवक्षारम् ।
पारिजातकेक्षुरकापामार्गक्षारं वा तैलसदृशम् ।

"वरटीदष्टसस्थान' शोथ संजायते वह्नि ।
सकण्डूस्तोदवरुज छर्द्दिज्वरविदाहवान् ॥
उदर्द्दमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे ।
वाताधिकं शीतपित्तमुदर्द्दश्च कफाधिकम्'' ॥
(अस्य चिकित्सा यथा,
"अभ्यङ्ग कटुतैलेन सेकश्चोष्णाम्बुभिस्तत ।
उदर्द्दे वमन कार्य्यं पटोलारिष्टवारिणा'' ॥
"सगुड दीप्यक यस्तु खादेत् पथ्यान्नभुङ्नर ।
तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्द सर्व्वदेहज'' ॥
इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहे ॥)

उदलावणिक, त्रि, (उदलवणेन लवणाम्भसा सिद्ध । उदलवण + ठक् ।) लवणोदकससिद्धव्यञ्जनादि । इति हलायुध ॥

उदवसितं, क्ली, (उदूर्द्धमवसीयते स्म । षो अन्तकर्म्मणि षिञ् बन्धने वा । क्त । द्यतिस्यतीतीत्वम् ।) गृहम् । इत्यमरः ॥

उदश्वित्, क्ली, (उदकेन श्वयति वर्द्धते इति । उद + श्वि + क्विप् + तुक् ।) अर्द्धजलयुक्तघोलम् । इत्यमर' ॥ अस्य गुणा । लेपात् कुष्ठरोगनाशित्वम् । दाहतृष्णामुखशोषनाशित्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥ ("अर्द्धोदकमुदश्वित्स्यात्" ॥
"उदश्विच्छ्लेष्मल बल्य श्रमघ्नं परमं मतम्" ॥
इति हारीते प्रथमस्थानेऽष्टमोऽध्याय ॥)

उदात्त, त्रि, (उत् + आ + दा + क्त ।) दयात्यागादिसम्पन्नम् । इति मेदिनी ॥ दृश्यम् । दाट । महत् । इति हेमचन्द्र ॥ (यथा, रामायणे २य काण्डे ।)
"उदात्तदन्तानाम् कुञ्जराणाम्" ।
नायकभेदः । यथा साहित्यदर्पणे ३ परिच्छेदे ॥
"अविकत्थन क्षमावान् अतिगम्भीरो महासत्त्व' ।
स्थेयान् निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रत कथित'' ॥)

उदात्त, पुं, (उच्चैरादीयते स्म । उत् + आ + दा + क्त ।) स्वरभेद । स तु वेदगाने उच्चै स्वर । इत्यमरः ॥ दानम् । वाद्यविशेष । इति शब्दरत्नावली ॥
काव्यालङ्कारभेद' । इति मेदिनी ॥ (यदुक्त साहित्यदर्पणे । १० म परिच्छेदे । ९९९ ।
"लोकातिशयसम्पत्तिवर्णनोदात्तमुच्यते ।
यद्वापि प्रस्तुतस्याङ्ग महतां चरित भवेत्" ॥)

उदान, पु, (उदूर्द्धेन अनिति अनेन । उत् + अन् + घञ् ।) कण्ठस्थवायु' । इत्यमर ॥ तस्य कर्म ऊर्द्धनयनम् । इति श्रीधरस्वामी ॥
(यथा, सङ्गीतरत्नाकरे, १ । ६४ ।
"उदान पादयोरास्ते हस्तयोरङ्गसन्धिषु ।
कर्म्मास्य देहोन्नयनोत्क्रमणादि प्रकीर्त्तितम्" ॥)
"ऊर्द्धगमनवान् कण्ठस्थानीयोत्क्रमणवायु" ।
इति वेदान्त ॥ (तथा चोक्तम् ।
"हृदि प्राणो गुदेऽपान समानो नाभिसंस्थित ।
उदान कण्ठदेशे स्यात् व्यान सर्व्वशरीरग " ॥
"उदानो नाम यत्पूर्द्धमुपैति पवनोत्तम" ।
इति महाभारते वनपर्व्वणि ॥
प्रकुपितोदानस्य लक्षण यथा ।
"हिक्का श्वासः प्रतिश्यास' कास' शोषाग्निघर्षिटका ।
हृल्लासो हृदि शूलञ्च यक्ष्मादातादिका वमि' ।
क्षवथुर्ज्जृम्भणञ्चैव तथा वैस्वर्य्यमौनसौ ॥
अरुचिश्च प्रतिश्याय एते प्रोक्ता उदानत ।
उदान श्लेष्मसंयुक्तो दोषात् हृदि प्रकुप्यति" ॥
इति चिकित्सितस्थाने २१ अध्याये हारीतेनोक्तम् ॥ * ॥
"उदान क्षवथूद्गारच्छर्द्दिनिद्रावधारणै ।
गुरुभारातिरुदितहास्याद्यैर्विहतो गदान् ॥
कण्ठरोधमनोभ्रंशच्छर्द्दरोचकपीनसान् ।
कुर्य्याच्च गलगण्डादींस्तांस्तान् जत्रूर्द्ध संश्रयान्" ।
इति निदानस्थाने षोडशेऽध्याये वाभटेनोक्तम् ॥ * ॥
अस्य स्थान कार्य्यञ्च यथा ॥
"उदानस्य पुन' स्थान नाभ्युर'कण्ठ एव च ।
वाक्प्रवृत्ति प्रयत्नोर्ज्जो बलवर्णादि कर्म्म च" ॥
इति चिकित्सास्थाने २८ अध्याये चरकेणोक्तम् ॥
"उदानो नाम यस्तूर्द्धमुपैति पवनोत्तम ॥
तेन भाषितगीतादिविशेषोऽभिप्रवर्त्तते ।
ऊर्द्धजत्रुगतान् रोगान् करोति च विशेषत " ॥
दोषान्तरगतस्यास्य लक्षण यथा ॥
"उदाने पित्तसयुक्ते मूर्च्छादाहभ्रमक्लमा ।
अस्वेदहर्षौ मन्दाग्नि शीतस्तम्भौ कफावृते" ॥
इति निदानस्थाने प्रथमेऽध्याये सुश्रुतेनोक्तम् ॥
उदरावर्त्त । नाभि' । सर्पविशेष । इति मेदिनी ॥ पद्म । इति शब्दरत्नावली ॥

उदार ,त्रि, (उत्कृष्टमासमन्तात् राति । रा + आतश्चेति क ।उदर्य्यते, ऋगतिप्रापणयोः कर्म्मणि घञ् वा ।) दाता । महान् । (यथा गीतायाम् ७।१८॥
"उदारा सर्व्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्" ॥
"उदारा महान्त मोक्षभाज एव इत्यर्थ" ॥
इति श्रीधरस्वामी ।) ऋज्वाशय । तत्पर्य्याय । दक्षिण' २ सरल ३ । इत्यमर' ॥
("क उदार समर्थस्य त्रैलोक्यस्यापि रक्षणे" ।
इति रामायणे आदिकाण्डे । गभीर । सारवान् । रम्य । न्याय्य ।
"इत्यर्थपात्रानुमितव्ययस्य
रघोरुदारामपि गा निशम्य" ।
इति रघु ५ । १२ । असाधारण । सरलाशय । शिष्ट ।
"स तथेति विनेतुरुदारमते
प्रतिगृह्य वचो विससर्ज मुनिम्" । इति रघु । ८।९१ ॥)

उदावत्सर, पु, सवत्सरादिपञ्चान्तर्गतवत्सरविशेष । अस्मिन् वर्षे रौप्यदान महाफलम् । इति विष्णुधर्म्मोत्तरम् ॥

उदावर्त्त, पुं, (उत् + आङ् + वृत् + घञ् ।) रोगविशेष । तत्पर्य्याय' । गुदग्रह' २ । इति हेमचन्द्र ॥ मलमूत्रवायुरोधकरोग । तस्य निदान संप्राप्तिश्च । यथा निदाने ।
"वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियम् ।
क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्त्तसम्भव" ॥
(अपरञ्चास्य सनिदानसम्प्राप्तिकं लक्षणं यथा,—
"कषायतिक्तोषणरूक्षभोज्यै
सन्धारणामोक्षमैथुनैश्च ।
पक्वाशये कुप्यति चेदपान'
स्रोतास्यधोगानि बली स रुद्ध्वा ॥
करोति विण्मूत्रसमीरसङ्ग
क्रमादुदावर्त्तमत सुघोरम् ।
रुग्वस्तिहृत्कुक्ष्युदरेष्वभीक्ष्णं
स पृष्ठपार्श्वेष्वतिदारुणा स्यात् ॥
आध्मानहृल्लासविकर्त्तिकाश्च
तोदोऽविपाकश्च सवस्तिशोथ ।
वर्चोऽप्रवृत्तिर्जठरे च गण्डा-
न्यूर्द्धञ्च वायुर्व्विहितो गुदे स्यात् ॥
कृच्छ्रेण शुष्कस्य चिरात्प्रवृत्ति
स्याद्वा तनु स्यात् खररूक्षशीता ।
ततश्च रोगा ज्वरमूत्रकृच्छ्र-
प्रवाहिकाहृद्ग्रहणीप्रदोषा' ॥
वम्यान्ध्य-बाधिर्य्य-शिरोऽभिताप-
वातोदराष्ठीलमनोविकारा ।
तृष्णास्रपित्तारुचिगुल्मकास-
श्वासप्रतिश्यायहितपार्श्वरोगा' ।
अन्ये च रोगा बहवोऽनिलोत्था
भवन्त्युदावर्त्तकृता सुघोरा " ॥
अस्य चिकित्सा यथा,—
"त तैलशीतज्वरनाशनोक्तै,
स्वेदैर्यथोक्तैः प्रविलीनदोषम् ।
उपाचरेद्वर्त्तिनिरूहवस्ति-
स्नेहैर्विरेकैरनुलोमनान्नै' ॥ * ॥
श्यामात्रिवृन्मागधिकामिचूर्णं
गोमूत्रपिष्ट दशभागमाषम् ।
सनीलिका द्विर्लवणा गुडेन
वर्त्ति कराङ्गुष्ठनिभां विदध्यात् ॥
पिण्याकसौवर्च्चलहिङ्गुभिर्व्वा
ससर्षपव्यूषणयावशूकैः ।
क्रिमिघ्नकम्पिल्लकशङ्खिनीभि
सुधार्कपद्मीरगुडैर्युताभि' ।
स्यात् पिप्पलीसर्षपराठवेश्म-
धूमै सगोमूत्रगुडैश्च वर्त्ति ॥ * ॥
श्यामाफलेन्द्र सपिप्पलीक
नाद्यावा तत् प्रधमेत्तु चूर्णम् ।
रक्षोघ्नतुम्बीकरहाटकृष्णा-
चूर्ण सजीमूतकसैन्धव वा ॥ * ॥
स्निग्धे गुदे तान्यनुलोमयन्ति
नरस्य वर्चोऽनिलमूत्रसङ्गम् ।
तेषां विघाते तु भिषग्विदध्यात्
स्वभ्यक्तसुस्विन्नतनोर्निरूहम् ॥
ऊर्द्धानुलोमौषधमूत्रतैल-
क्षाराम्ल-वातघ्नयुत सुतीक्ष्णम् ॥ * ॥
वातेऽधिकेऽम्ल लवणं सतैल
क्षीरेण पित्ते तु कफे समूत्रम् ।
समूत्रवर्चोऽनिलसङ्गमाशु
गुद शिराघ प्रगुणीकरोति ॥ * ॥
निरूहसुधायवतिक्ताटिकाकं
याम्योदकानूपरसैर्यवान्नम् ।
अन्येषु दृष्टानिलमूत्रविड्भि-

चरणम् । यथा, रघौ । ४ । ५३ ।
"खर्ज्जूरीस्कन्धनद्धानां मदोद्गारसुगन्धिषु ।
कटेषु करिणां पेतुः पुन्नागेभ्यः शिलीमुखाः" ।
"अथ प्रतिहतो वायुः श्लेष्मणा मारुतेन च" ।
"करोत्युद्गारबाहुल्यम्" इति भावप्रकाशे मध्यखण्डे वातरोगाधिकारे ॥ वमनप्रकारादिकं वमनशब्दे द्रष्टव्यम् ॥ यथा, शारदातिलकटीकायाम्,—
"उद्गारे नागइत्युक्तो नीलजीमूतसन्निभः" ॥ )

उद्गीत, त्रि, ( उदुच्चैर्गीयते स्म । उत् + गै + क्त । ) उच्चैर्गीतम् । इति देवीमाहात्म्यम् ॥ (यथा,— मार्कण्डेये ८४ । ६ ।
"शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीतरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्" ॥)

उद्गीथ, पुं, (उत् + गै + थक् । ) सामवेदभेदः । प्रणवः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥
("अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे
भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति" ॥
इति उत्तररामचरिते । २याङ्के" ।)
सामवेदध्वनिः । इत्यन्ये ॥ सामगानम् । इति सारसुन्दरी ॥ साम्नां द्वितीयोऽध्यायः । इति भगीरथः ॥ (भवपुत्त्रः । इति विष्णुपुराणम् ॥)

उद्गूर्ण, त्रि, (उत् + गुर + क्त । ) उद्यतम् । इत्यमरः ॥ उत्तोल्यधृतवस्त्रादि । इति भरतः ॥

उद्ग्राह, पुं, (उत् + ग्रह + घञ् ।) उद्ग्रहणम् । ऊर्द्ध्वीकृत्य कस्यचित् ग्रहणम् । इत्यमरः ॥ विद्याविचारः । इति भरतः ॥

उद्ग्राहित, त्रि, ( उत् + ग्रह + णिच् + क्त । ) उद्धृतः । बद्धः । ग्राहितः । इति मेदिनी ॥ उपन्यस्तः । इति हेमचन्द्रः ॥

उद्घ, पुं, (उद्धन्यते इति । उत् + हन् + कर्म्मणि अप् । टिलोपात् घत्वं च निपातनात् । यद्वा उद्धन्ति नीचताम् । उत् + हन् + ड ।) प्रशस्तः । प्रकाण्डः । इत्यमरः ॥ ( हस्तपुटम् । अग्निः । शरीरस्थो वायुः ॥ )

उद्घन, पुं, ( ऊर्द्ध्वं हन्यतेऽस्मिन् । उत् + हन + अप् । निपातनात् हस्य घः । ) यत्र काष्ठे काष्ठं निधाय तक्ष्यते तत् । इत्यमरः ॥ परकाठ इति भाषा ॥ (यथा, भट्टिः ७।६२ ।
"तस्मिन्नन्तर्वने पश्यन् प्रधाने सौधसद्मनि ।
लौष्टोद्घनघनस्कन्धा ललितापघना स्त्रियम्" ॥)

उद्घर्षण, क्ली, (उत् + घृष + ल्युट् ।) गात्रादिघर्षणम् । इष्टकया उद्घर्षणगुणाः । कण्डूकोठनाशित्वम् । त्वग्गताग्नितेजनत्वम् । शिरासुखकारकत्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥
("उद्घर्षणन्तु विज्ञेयं कण्डूकोठानिलापहम्" ।
इति चिकित्सितस्थाने चतुर्विंशेऽध्याये सुश्रुतेनोक्तम् ॥ समासकथनम् । उद्देशः । यथा । शल्यमिति । इति सुश्रुते उत्तरतन्त्रे ६५ अध्याये ॥)

उद्घस, क्ली, ( उत् + अद + अप् । घसादेशः । ) मांसम् । इति हारावली ॥

उद्घाट, पुं, (उत् + घट् + घञ् । ) स्तम्भभेदः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ चौकिर घर घाणा इत्यादि भाषा ।
( उद्घाटनम् ॥ )

उद्घाटक, क्ली, (उत् + घट् + णिच् + ण्वुल् । ) कूपाज्जलोत्तोलनार्थयन्त्रविशेषः । तत्पर्य्यायः । घटीयन्त्रम् २ । इति हेमचन्द्रः ॥

उद्घाटन, क्ली, ( उत् + घट् + णिच् + ल्युट् ।) कूपात् जलोत्तोलनार्थं रज्जुसहितघटः । तत्पर्य्यायः । घटीयन्त्रम् २ । इत्यमरः ॥ उत्तोलनम् । इति भरतः ॥ (यथा, हितोपदेशे । मित्रप्राप्तौ ॥
"धर्म्मं यो न करोति निश्चलमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटनम्" ॥)

उद्घाटित, त्रि, (उत् + घट् + णिच् + क्त ।) कृतोद्घाटनम् । खोला इति भाषा ॥
("स्पृष्ट्वानुद्घाटितद्वारि नाङ्गतः प्रविशेन्नरः ।
वारितार्थप्रवक्तापि पश्चाद्भ्रमशनं त्यजेत्" ॥
इति स्मृतिः ॥ तन्त्रशास्त्रम् ॥ )

उद्घाटितज्ञ, त्रि, (जानाति इति ज्ञः । उद्घाटितस्य ज्ञः । उद्घाटित + ज्ञा + क । ) प्राज्ञः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

उद्घात, पुं, (उत् + हन् + घञ् ।) आरम्भः । इत्यमरः ॥ ( यथा, कुमारे २ । १२ ।
"उद्घातः प्रणवो यासां न्यायैस्त्रिभिरुदीरणम्" ।
"आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः" ।
इति रघुवंशे । ४ । २० ॥) ग्रन्थः । ग्रन्थपरिच्छेदः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ पादस्खलनम् ।
("ययावनुद्घातसुखेन मार्गम्" । इति रघुः ।२।७२।
"रथेनानुद्घातस्तिमितगतिना" । इति शाकुन्तले । ६ अङ्के ॥ समुपक्रमः । पवनाभ्यासयोगाय कुम्भकादिचयम् । उत्तुङ्गः । (यथा, रामायणे ४ काण्डे
"पृथुप्रवृद्धशिलोद्घात" । इति ॥ ) मुद्गरम् । इति मेदिनी ॥

उद्झ, श त्यागे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (तुदा-पर-सक-सेट् ।) ऋकारादिर्दन्त्यवर्गतृतीयोपधः । क्विपि समुत्समुद्झ्याम् । स्यादौ नवद्ध इति उज्झिझिषति औज्झिझत् । श उज्झती उज्झन्ती । इति दुर्गादासः ॥

उद्दंश, पुं, (उत् + दन्श + अच् ।) कीटविशेषः । तत्पर्य्यायः । मत्कुणः २ कोणकुणः ३ किटिभिः ४ उत्कुणः ५ । इति हेमचन्द्रः ॥

उद्दण्डपाल, पुं, (उद्दण्ड इव पाल्यते इति । उद्दण्ड + पाल + + घञ् ।) सर्पविशेषः । मत्स्यभेदः । इति मेदिनी ॥

उद्दन्तुर, त्रि, (उत् अतिशयेन दन्तुरः ।) उत्तुङ्गः । करालः । उत्कटदन्तः । इति मेदिनी ॥

उद्दानं, क्ली, (उत् + दो + ल्युट् ।) बन्धनम् । इत्यमरः ॥ ( यथा, महाभारते । शान्तिपर्व्वणि ।
"उद्दाने क्रियमाणे तु मत्स्यानां तत्र रज्जुभिः" ।)
उद्दमः । चुल्ली । वाडवाग्निः । मध्यः । लग्नः । इति विश्वः ॥

उद्दाम, त्रि, ( दाम्न उद्गतः ।) बन्धनरहितः । स्वतन्त्रः । इति मेदिनी ॥ (यथा, रघुः ।१।७८॥
"मदत्याकाशगङ्गायाः स्रोतस्युद्दामदिग्गजे" ॥
"अत्यङ्कुशमिवोद्दामं गजं मदजलोद्धतम्" ।
इति रामायणे ॥) महान् । यथा ।"उद्दामदन्तुरविधुन्तुददन्तघाते" । इति प्रसन्ना ॥
("उद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि"
इति मेघदूते । २७ ॥ गम्भीरः । यथा भागवते १ मस्कन्धे । "उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहास" ॥)

उद्दाम, पुं, (उद्गतं दाम पाशो यस्य । समासे अच् ।) वरुणः । इति मेदिनी ॥ (दण्डकभेदश्छन्दोविशेषः । यथा, वृत्तरत्नाकरे ।
"यदि नयुगलं ततः सप्तरेफा-
स्तदा दण्डवृष्टिप्रयातो भवेद्दण्डकः ।
प्रतिचरणविवृद्धरेफाः स्युरर्णार्णव-
व्यालजीमूतलीलाकरोद्दामशङ्खादयः" ॥)

उद्दाल, पुं, (उत् + दल + घञ् ।) बहुवारकवृक्षः । इत्यमरः ॥ वनकोद्रवः । इति रत्नमाला ॥

उद्दालक, पुं, (उद्दाल एव । स्वार्थे कन् ।) बहुवारकवृक्षः । इति शब्दरत्नावली ॥ (मुनिभेदः । स तु आयोदधौम्यस्य शिष्यः । तस्य नामोत्पत्तिरुक्ता महाभारते १ । पौष्योपाख्याने ३ अध्याये ।
"एतस्मिन्नन्तरे कश्चिदृषिर्धौम्यो नामायोदस्तस्य शिष्यास्त्रयो बभूवुः उपमन्युरारुणिर्वेदश्चेति । २३ । स एकं शिष्यमारुणिं पाञ्चाल्यं प्रेषयामास गच्छ केदारखण्डं बधानेति । २४ । स उपाध्यायेन सन्दिष्ट आरुणिः पाञ्चाल्यस्तत्र गत्वा तत्केदारखण्डं बन्धुं नाशकत् ॥ २५ ॥ स क्लिश्यमानोऽपश्यदुपायं भवत्वेवं करिष्यामीति ॥ २६ ॥ स तत्र संविवेश केदारखण्डे शयाने च तथा तस्मिंस्तदुदकं तस्थौ ॥ २७ ॥ ततः कदाचिदुपाध्याय आयोदो धौम्यः शिष्यानपृच्छत् क्व आरुणिः पाञ्चाल्यो गत इति ॥२८॥ ते तं प्रोचुः भगवंस्त्वयैव प्रेषितो गच्छ केदारखण्डं बधानेति । स एवमुक्तस्तान् शिष्यान् प्रत्युवाच तस्मात् तत्र सर्व्वे गच्छाम यत्र स गत इति ॥ २९ ॥ स तत्र गत्वा तस्याह्वानाय शब्दं चकार भो आरुणे पाञ्चाल्य क्वासि वत्स एहीति ॥ ३० ॥ स तत् श्रुत्वारुणिरुपाध्यायवाक्यं तस्मात् केदारखण्डात् सहसोत्थाय तमुपाध्यायमुपतस्थे ॥ ३१ ॥ प्रोवाच चैनमुपाध्यायं अयमस्म्यत्र केदारखण्डे निःसरमाणमुदकमवारणीयं संरोद्धुं संविष्टो भगवच्छब्दं श्रुत्वैव सहसा विदार्य्य केदारखण्डं भगवन्तमुपस्थितः ॥३२॥ तदभिवादये भगवन्तमाज्ञापयतु भवान् किमर्थं करवाणीति ॥ ३३ ॥ स एवमुक्त उपाध्यायः प्रत्युवाच यस्मात् भवान् केदारखण्डं विदार्य्य उत्थितस्तस्मात् उद्दालक एव नाम्ना भविष्यतीत्युपाध्यायेनानुगृहीतः" । ३४ ।
अपरः स्वनामख्यातः ऋषिभेदः । स तु श्वेतकेतुपिता । यथा तत्रैव कुन्तीपुत्त्रोत्पत्त्युपाख्याने १२२ ।
"बभूवोद्दालको नाम महर्षिरिति नः श्रुतम् ।
श्वेतकेतुरिति ख्यातः पुत्त्रस्तस्याभवन् मुनिः" ॥ ९ ॥)

उद्दित, त्रि, (उत् + दो + क्त ।) बद्धः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥

उद्दीपक, त्रि, (उत् + दीप् + ण्वुल् ।) उद्दीपनकर्त्ता ॥

उद्दीपन, क्ली, (उत् + दीप् + ल्युट् ।) प्रकाशनम् ॥

विभावविशेष'। यथा,—
"आलम्बनोद्दीपनाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।
उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये" ॥ ते च।
"आलम्बनस्य चेष्टाद्या देशकालादयस्तथा" ॥
चेष्टादीत्यादिशब्दात् रूपभूषणादय। कालादि इत्यादिशब्दात् चन्द्रचन्दनकोकिलालापभ्रमरभङ्कारादय। इति साहित्यदर्पणे ॥ ३य परिच्छेद' ॥)

उद्दीप्त, त्रि, (उत्+दीप+क्त।) प्रकाशित' ॥

उद्दीप्रं, क्ली, (उत्+दीप्+रक्।) गुग्गुलु'। इत्यमरटीकायां भरतधृतवाचस्पति ॥

उद्देश, पु, (उत्+दिश्+घञ्।) अनुसन्धानम्। अन्वेषणम् ॥ (न्यायमते नाम्ना निर्द्देशः। अभिधानं यथा,—"पदार्थोद्देश"। समासकथनम्। यथा, "समासकथनमुद्देश। यथा,शल्यमिति" ॥ पर्व्वतस्य गण्डकूपः। निर्द्देश। विवरणम्।
"इत्येष ते ग्रहोद्देशो मानुषाणां प्रकीर्त्तितः"।
इति महाभारते। स्थानम्। प्रदेश।
"सपर्व्वतवनोद्देशा दक्षिणार्थे स्वयम्भुवा"।
इति महाभारते ॥)

उद्देशक', त्रि, (उत्+दिश+ण्वुल्।) उद्देशकर्त्ता। उदाहरणम्। इति लीलावती ॥

उद्देश्य, त्रि, (उत्+दिश्+ण्यत्।) उद्देष्टव्य। उद्देशनीयः। प्रयोजनम् ॥ (यत् उद्दिश्य विधेयस्य प्रवृत्ति भवति तत्। अनुवाद्यम् ॥)

उद्देहिका, स्त्री, (उद्गतो देहो यस्या।) कीटविशेष। तत्पर्य्याय। उपजिह्विका २ उत्पादिका ३ वटि ४ दिवी ५। इति हारावली ॥

उद्द्राव', पु, (उद्द्रवणम्। द्रु+उदिश्रयतियौतिपूद्रव- इति घञ्।) पलायनम्। इत्यमर ॥

उद्धत, पु, (उत्+हन्+क्त।) राजमल्लः। इति त्रिकाण्डशेष ॥

उद्धतं, त्रि, (उत्+हन्+क्त।) अविनीतम्। इति हेमचन्द्र ॥ (यथा, उत्तरचरिते षष्ठाङ्के।
"धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्"।
"मदमानसमुद्धत नृप न वियुङ्क्ते नियमेन मूढता"।
इति किराते। २। ४९ ॥ उत्थित। उत्क्षिप्त। आहतः। चालित'। यथा,—शाकुन्तले १म अङ्के ॥
"आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया"।
निविड़। घोर। यथा, पञ्चतन्त्रम् ॥ "तुषारवर्षोद्धतप्रवर्षघनधारानिपातसमाहतम्" ॥)

उद्धतमनस्कत्व, क्ली, (उद्धतं गर्व्वितं मनो यस्य तस्य भाव।) गर्व्व'। अभिमान। इति शब्दरत्नावली ॥

उद्धरण, क्ली, (उत्+हृ+ल्युट्।) उद्धारः। वान्ताशम्। उन्मूलनम्। इति मेदिनी ॥ मुक्ति'। इति शब्दरत्नावली ॥ (कण्टकादीनां ऋणादेर्व्वा शोधनम्। निराकरणम्। उत्तोलनम्। यथा,—
"यत्नवानपि तु श्रीमाञ्छाकूलोद्धरणोद्धर"।
इति महाभारते।
"कण्टकोद्धरणेनित्यमातिष्ठेत् यत्नमुत्तमम्" ॥
इति मनु' ॥ ९। २५२। व्यसनादिभ्यो विमोचनम्।
"सप्त व्यतीयुस्त्रिगुणानि तस्य
दिनानि दीनोद्धरणोचितस्य" ॥
इति रघु। २। २५ ॥)

उद्धर्षः, पु, (उद्गतो हर्षो यस्मिन्।) उत्सव'। इत्यमर' ॥ (यथा, रामायणे। ४ काण्डे।
"अशक्तोऽस्मि रणोद्धर्षे तपस्विशरणं गृहम्" ॥)

उद्धर्षणं, क्ली, (उत्+हृष्+ल्युट्।) रोमाञ्च'। इति हेमचन्द्र ॥ (त्रि, आनन्दकरम्। रोमाञ्चकरम्।) (यथा रामायणे २। २। १ ॥
"तत परिषद सर्व्वामामन्त्र्य वसुधाधिपः।
हितमुद्धर्षणं चैवमुवाच प्रथित वच" ॥)

उद्धव, पु, (उद्धुनोति दु खमिति। उत्+धूञ्+अच्।) उत्सव। इत्यमर ॥ यज्ञाग्नि। यादवविशेषः। इति मेदिनी ॥ यथा, श्रीभागवतम् ॥
"वृष्णीनां सम्मतो मन्त्री कृष्णस्य दयित सखा।
शिष्यो वृहस्पते साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तम" ॥

उद्धानं, क्ली, (उद्धीयतेऽस्मिन्। उत्+धा+ल्युट्।) चुल्ली। इत्यमर ॥

उद्धान, त्रि, (उत्+धा+ल्युट्।) उद्गत'। वमित। इति मेदिनी ॥

उद्धान्त, पु, (उद्धान्यते इति उत्+धन्+णिच्+क्त।) निर्मदहस्ती। इत्यमर ॥ उद्वान्त। इति रमानाथ ॥

उद्धार, पु, (उत्+हृ+घञ्।) ऋणम्। इत्यमर' ॥ उद्धृति। इति मेदिनी ॥ ("निमग्नस्य पुनरुद्धार एव दुर्लभ"। इति वृहदारण्यकोपनिषत्। मोचनम्। यथा, शतपथब्राह्मणे १३। ३। ४। २।
"अश्वस्य वयमुद्धारमुद्धरामहै"। मोक्ष। निर्व्वाणम् ॥ * ॥ उद्ध्रियते साधारणधनात् इत्युद्धार। यद्वा, साधारणद्रव्यात् यत् गरिष्ठ तदुद्धार। इति श्रीनाथ। उद्ध्रियते साधारणधनात् निष्कृष्य विशेषनिष्ठतया एव बोध्यते इत्युद्धार- इति अच्युतानन्द। साधारणत्वेन उद्ध्रियते इति उद्धार इति रघुनन्दन। उद्ध्रियते साधारणधनात् वहिर्भाव्यते इत्युद्धार इति श्रीकृष्ण। यथाह मनु ९। ११२ ॥
"ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्व्वद्रव्याच्च यद्वरम्।
ततोऽर्द्धं मध्यमस्य स्यात् तुरीयन्तु यवीयस" ॥
ज्येष्ठस्य विंश उद्धार उद्ध्रियते इत्युद्धार' ज्येष्ठस्याविभक्तसाधारणधनात् उद्धृत्य विंशतितमो भाग- इति तट्टीकायां कुल्लूकभट्ट ॥ * ॥ जयानन्तरं शत्रुभ्यो लब्ध धनादिकम्। यदुक्तं मनुना ७। ९७।
"राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुति।
राज्ञा च सर्व्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथक् जितम्" ॥
"उद्धार योद्धारः राज्ञे दद्युः। उद्ध्रियते इत्युद्धारः जितधनाद्युत् उत्कृष्टधन सुवर्णरजतभूम्यादि राज्ञे समर्पणीयम्"। इति तट्टीका ॥)

उद्धारं, क्ली, (उत्+हृ+घञ्।) उद्धानम्। इत्यमरटीकायां स्वामी ॥ उनन् आका इत्यादि भाषा।

उद्धारण, क्ली, (उत्+हृ+णिच्+ल्युट्।) उद्धारकरणम्। उत्तोलनम् ॥

उद्धारा, स्त्री, गुडूची। इति शब्दचन्द्रिका ॥

उद्धूनन, क्ली, (उत्+धूञ्+णिच्+ल्युट्।) एकत्रितैलालवङ्गकर्पूरकस्तूरीमरिचलचचूर्णम्। इति पाकराजेश्वर ॥

उद्धूषण, क्ली, (उत्+धूष+ल्युट्।) रोमाञ्चः। इति हलायुध ॥

उद्धृत, त्रि, (उत्+हृ+क्त।) कृतोद्धरणम्। तोला इति भाषा। तत्पर्य्याय। समुदक्तः २। इत्यमर ॥ उत्क्षिप्त। परिभुक्तोज्झित'। इति मेदिनी ॥ ("उद्धर्तुमैच्छत् प्रसभोद्धृतारिः"। इति रघु। २। ३० तथा नैषधे। १। ६९।
"इतीव वार्द्धैर्निजवेगदर्पितैः
पयोधिरोधक्षममुद्धृत रज" ॥)

उद्ध्मान, क्ली, (उत् ध्मायते अग्निरत्र। ध्मा शब्दाग्निसंयोगयो उत्पूर्व्वात् तस्मात् ल्युट्।) चुल्ली। इत्यमरटीकायां भरत ॥

उद्ध्य, पु, (उज्झति कूलमिति। उज्झ+क्यप्। निपातनात् सिद्धम्।) नद। इति व्याकरणम् ॥ ("तोयदागमइवोद्ध्यभिद्ययोः"। इति रघुः ११। ८। "कूल भिद्योद्ध्यसन्निभौ" ॥ इति भट्टिः। ५। २२ ॥)

उद्बुद्ध, त्रि, (उत्+बुध+क्त।) विकसितः। इति हलायुध ॥ (प्रबुद्धः। यथा तिथितत्त्वे,—
"उद्बुद्धा च जगद्धात्रीं पूजयेत् दीपमालया" ॥
यथा, साहित्यदर्पणे ३। १६२।
"उद्बुद्धं कारणै स्वैः स्वैर्वहिर्भाव प्रकाशयन्।
लोके य कार्य्यरूप सोऽनुभाव' काव्यनाट्ययो" ॥)

उद्बोध, पु, (उत्+बुध्+घञ्।) किञ्चित् ज्ञानम् ॥ (यथा साहित्यदर्पणे तृतीयपरिच्छेदे ४१।
"उत्साहादिसमुद्बोध साधारण्याभिमानत।
नृणामपि समुद्रादिलङ्घनादौ न दुष्यति" ॥)

उद्भट, पु, (उत्+भट+अप्।) कच्छपः। सूर्य्य'। इति मेदिनी ॥ (सूर्प इति केचित् ॥)

उद्भटः, त्रि, (उत्+भट्+अप्।) प्रवर। ("पदे पदे सन्ति भटा रणोद्भटा"।) इति नैषध ॥ श्रेष्ठाशय। तत्पर्य्याय। महेच्छ २ उदारः ३ उदात्त ४ उदीर्ण' ५ महाशयः ६ महामना ७ महात्मा ८। इति हेमचन्द्र ॥

उद्भव, पु, (उद्भवनं उद्भवत्यस्मादिति वा। उत्+भू+अप्।) जन्म। उत्पत्तिः। इत्यमरः ॥ ("दिलीपसूनुर्मणिराकरोद्भव"। इति रघुः। ३। १८। "विष्णुपादोद्भवा गङ्गा"। इति पुराणम्। विष्णु। प्रपञ्चं प्रत्युपादानकारणत्वात् ॥)

उद्भिजः, त्रि, उद्भिज्ज। इत्यमरटीकायां रमानाथ ॥

उद्भिज्ज, त्रि, (उद्भेदनमिति उद्भित् सम्पदादित्वात् क्विप्। तस्मात् जायते यत्। उद्भित्+जन्+ड।) उद्भिद्यजातमात्रम्। तच्च तरुगुल्मादि। इत्यमर' ॥ (यथा, मनु'। १। ४६। "उद्भिज्जा' स्थावरा सर्व्वे बीजकाण्डप्ररोहिण"। "इन्द्रगोपमण्डूकप्रभृतय- उद्भिज्जाः" ॥ इति सूत्रस्थाने प्रथमेऽध्याये सुश्रुतेनोक्तम् ॥)

उद्भिद्, [द्] त्रि, (उद्भिनत्ति भूमिमिति। उत्+भिद+क्विप्।) उद्भिज्जम्। इत्यमर' ॥ तच्च पञ्चधा। वृक्ष १ गुल्म' २ लता ३ वल्ली ४ तृणम् ॥ ॥ (यथा, महाभारते आदिपर्व्वणि। "सस्वेदजा

रचात् प्रसन्नागुडसीधुपायी ॥ * ॥
भूयोऽनुबन्धे तु भवेद्विरेच्यो
मूत्रप्रसन्नादधिमण्डयुक्तैः” ॥ * ॥
दिरुत्तरं हिङ्गुवचाग्निकुष्ठ
सुवर्चिका चैव विडङ्गचूर्णम् ।
सुखाम्बुनानाहविसूचिकार्त्ति-
हृद्रोगगुल्मोर्द्ध्वसमीरणघ्नम् ॥ * ॥
वचाभयाचित्रकयावशूकान्
सपिप्पलीकातिविषान् सकुष्ठान् ।
उष्णाम्बुनानाहविमूढवातान्
पीत्वा जयेदाशु रसौदनाशी” ॥ * ॥
इति चिकित्सास्थाने षड्विंशेऽध्याये चरकेणोक्तम् ॥
सुश्रुतेनोत्तरतन्त्रे ५५ अध्यायेऽस्य सनिदानसम्प्राप्तिक लक्षणं चिकित्सा चेति यदुक्तं तद्यथा ।
“अधश्चोर्द्ध्वञ्च भावानां प्रवृत्तानां स्वभावतः ।
न वेगान् धारयेत् प्राज्ञो वातादीनां जिजीविषुः ॥
वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः ।
व्याहन्यमानैरुदितैरुदावर्त्तो निरुच्यते ॥
क्षुत्तृष्णा-श्वास-निद्राणामुदावर्त्तो विधारणात् ।
तस्याभिधास्ये व्यासेन लक्षणञ्च चिकित्सितम् ॥
त्रयोदशविधस्त्वासौ भिन्न एतैस्तु कारणैः ।
अपथ्यभोजनाच्चापि वक्ष्यते च यथापरः ॥
आध्मानशूलौ हृदयोपरोधं
शिरोरुजं श्वासमतीव हिक्काम् ।
कास-प्रतिश्याय-गलग्रहांश्च
बलासपित्तप्रसरञ्च घोरम् ॥
कुर्य्यादपानोऽभिहतः स्वमार्गे
हन्यात् पुरीषं मुखतः क्षिपेद्वा ॥ १ ॥
आटोपशूलौ परिकर्त्तनञ्च
सङ्गः पुरीषस्य तथोर्द्ध्ववातः
पुरीषमास्यादथवा निरेति
पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ २ ॥
मूत्रस्य वेगेऽभिहते नरस्तु
कृच्छ्रेण मूत्रं कुरुतेऽल्पमल्पम् ।
मेढ्रे गुदे वङ्क्षणमुष्कयोश्च
नाभिप्रदेशेष्वथवापि मूर्द्ध्नि ॥
आनद्धवस्तिश्च भवन्ति तीव्रा
शूलाश्च शूलैरिव भिन्नमूर्त्तेः ॥ ३ ॥
मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा
जृम्भोपघातात् पवनात्मकाः स्युः ।
श्रोत्राननघ्राणविलोचनोत्था
भवन्ति तीव्राश्च तथा विकाराः ॥ ४ ॥
आनन्दजं शोकसमुद्भवं वा
नेत्रोदकं प्राप्तममुञ्चतो हि ।
शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च
भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥ ५ ॥
भवन्ति गाढं क्षवथोर्विघाता-
च्छिरोऽक्षिनासाश्रवणेषु रोगाः ।
कण्ठास्यपूर्णत्वमतीवतोदः
कूजश्च वायोरथवा प्रवृत्तिः ॥ ६ ॥
उद्गारवेगेऽभिहते भवन्ति
जन्तोर्विकाराः पवनप्रसूताः ॥ ७ ॥
छर्द्देर्विघातेन भवेच्च कुष्ठं
येनैव दोषेण विदग्धमन्नम् ॥ ८ ॥
मूत्राशये वा गुदमुष्कयोश्च
शोफो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च ।
शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेद्वा
ते ते विकारा विहते तु शुक्रे ॥ ९ ॥
तन्द्राङ्गमर्द्दावरुचिः श्रमश्च
क्षुधोऽभिघातात् कृशता च दृष्टेः ॥ १० ॥
कण्ठास्यशोषः श्रवणावरोध-
स्तृष्णाभिघाताद्धृदये व्यथा च ॥ ११ ॥
श्रान्तस्य निश्वासविनिग्रहेण
हृद्रोगमोहावथवापि गुल्मः ॥ १२ ॥
जृम्भाङ्गमर्द्दोऽङ्गशिरोऽक्षिजाड्य
निद्राभिघातादथवापि तन्द्रा” ॥ १३ ॥
अरिष्टलक्षणं यथा,
“तृष्णार्द्दितं परिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरभिद्रुतम् ।
शकृद्वमन्तं मतिमानुदावर्त्तिनमुत्सृजेत् ॥
अस्य चिकित्सा यथा,
“सर्व्वेष्वेतेषु विधिवदुदावर्त्तेषु कृत्स्नशः ।
वायोः क्रिया विधातव्या स्वमार्गप्रतिपत्तये ॥
सामान्यतः पृथक्त्वेन क्रिया भूयो निबोध मे ।
आस्थापनं मारुतजे स्निग्धे स्विन्ने विशिष्यते ॥१॥
पुरीषजे तु कर्त्तव्यो विधिरानाहिको भवेत् ॥२॥
सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रेष्वभिहते पिबेत् ।
एलामथ्य मद्येन क्षीरं वापि पिबेन्नरः” ॥३॥
“स्नेहस्वेदैरुदावर्त्तं जृम्भाजं समुपाचरेत् ॥४॥
अश्रुमोक्षोऽश्रुजे कार्य्यः स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः ॥५॥
तीक्ष्णाञ्जनावपीड़ाभ्यां तीक्ष्णगन्धोपसिंहनैः ।
वर्त्तिप्रयोगैरथवा क्षवशक्तिं प्रवर्त्तयेत् ॥
तीक्ष्णौषधप्रधमनैरथवादित्यरश्मिभिः ॥६॥
उद्गारजे क्रमोपेतं स्नैहिकं धूममाचरेत् ।
सुरां सौवर्चलवतीं बीजपूरकरसान्विताम् ॥७॥
छर्द्द्याघातं यथा दोषं सम्यक् स्नेहादिभिर्जयेत् ।
सक्षारलवणोपेतमभ्यङ्गं चात्र दापयेत् ॥८॥
वस्तिशुद्धिकरावापं चतुर्गुणजलम्पयः ।
आवारिनाशात् क्वथितं पीतवन्तं प्रकामतः ।
रमयेयुः प्रिया नार्य्यः शुक्रोदावर्त्तिनं नरम् ॥९॥
क्षुद्विघाते हितं स्निग्धमुष्णमल्पञ्च भोजनम् ॥१०॥
तृष्णाघाते पिबेन्मन्थं यवागूं वापि शीतलाम् ॥११॥
भोज्यो रसेन विश्रान्तः श्रमश्वासातुरो नरः ॥१२॥
निद्राघाते पिबेत् क्षीरं स्वप्याच्चेष्टकथारतः” ॥१३॥
अपरञ्च सनिदानसम्प्राप्तिकं लक्षणं चिकित्सा च ॥
“वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कषायकटुतिक्तकैः ।
भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्त्तं करोति हि ॥
वातमूत्रपुरीषासृक्कफमेदोवहानि वै ।
स्रोतांस्युदावर्त्तयति पुरीषञ्चातिवर्त्तयेत् ॥
ततो हृद्वस्तिशूलार्त्तो गौरवारुचिपीड़ितः ।
वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण कुरुते नरः ॥
श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहवमिज्वरान् ।
तृष्णाहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ॥
लभते च बहूनन्यान् विकारान् वातकोपजान् ।
तत्तैललवणाभ्यक्तं स्निग्धं स्विन्नं निरूहयेत् ।
दीपनैर्भिन्नवर्च्चस्कं भुक्तञ्चाप्यनुवासयेत् ।
नचेच्छान्तिं प्रयात्येवमुदावर्त्तः सुदारुणः ॥
अथैनं बहुशः स्विन्नं युञ्ज्यात् स्नेहविरेचनैः ।
पाययेत त्रिवृत्पीलुयवानीरसपानकैः” ॥
“देवदार्व्वग्निकं कुष्ठं वचाम्पथ्यां पलङ्कषाम् ।
पौष्कराणि च मूलानि तोयस्याढकं पचेत् ॥
पादावशिष्टं तत्पीतमुदावर्त्तं व्यपोहति” ।
घृतं यथा ।
“मूलकं शुष्कमार्द्रञ्च वर्षाभूः पञ्चमूलकम् ॥
आरेवतफलञ्चाप्सु पक्त्वा तेन घृतम्पचेत् ।
तत्पीयमानं शमयेत् उदावर्त्तमशेषतः” ॥*॥
“चूर्णं निकुम्भकम्पिल्लश्यामेक्ष्वाकामिकोद्भवम् ।
स्नुक्क्षीरधनमागध्यौ लवनाणाञ्च साधयेत् ॥
गवां मूत्रेण तां वर्त्तिं कारयेत्तु गुदानुगाम्” ।
वैद्यकरसेन्द्रसारसङ्ग्रहे यच्चिकित्सितं तद्यथा ।
“त्रिकटुपारदं पथ्याकालकफलं द्विगुणं ।
धानकुल्मीनां स्वरसैर्गुडिका कार्य्यास्तरोत्याशु ।
प्रबलजलोदरगुल्मज्वरपाण्डामयनाशिनी ।
प्रोक्ता तिमिराणिपटलविद्रधिप्रबलोदावर्त्तहरी ।
क्रिमिकोष्ठगात्रकण्डूपिडकाश्च निहन्ति शूलचय
शुद्धगुड़िका कथिता भुवने श्रीवैद्यनाथाख्या” ।
इति वैद्यनाथवटिका ॥ * ।
अथ अपथ्यानि यथा ।
“वमनं वेगरोधञ्च शमीधान्यानि कोद्रवम् ।
शालीतशाकं शालूकं जाम्बवं कर्कटीफलम् ।
पिण्याकमालुकं सर्व्वं करीरं पिष्टवैकृतम् ।
विष्टम्भीनि विरुद्धानि कषायाणि गुरूणि च ।
उदावर्त्ती प्रयत्नेन वर्जयेत् सततं नरः ।
इति वैद्यकपथ्यापथ्यविधि ।)

**उदासः**, पु, (उदस्यते इति । उत् + अस् + घञ् ।) उत्क्षेपः । उद्भावः । औदास्ययुक्ते, त्रि ॥

**उदासीन**, पु, (उदास्ते इति । उत् + आस् + शानच् + ईदास इति ईत्वम् ।) परतरः । इत्यमरः ॥ विजिगीषोः शत्रुमित्रभूमितो व्यवहितः यत्र हितत्वादेव नोपकारी नाप्यपकारी केवलमूर्द्ध्व-मासीन इव । इति भरतः ॥ (यथा, मनुः ७।१५५ ।
“मध्यमस्य प्रचारञ्च विजिगीषोश्च चेष्टितम् ।
उदासीनप्रचारञ्च शत्रोश्चैव प्रयत्नतः” ॥
मण्डलभेदः । यथा, तत्रैव ७।१५८ ।
“अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेव च ।
अरेरनन्तरं मित्रमुदासीनं तयोः परम्” ॥
उपेक्षकः । यथा, —
“उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्म्मसु” । इति गीतायाम् ॥ ९ । ९ ॥ )

**उदास्थितः**, पुं, ( उत् + आङ् + स्था + क्त ।) चरः । द्वारपालः । अध्यक्षः । इति हेमचन्द्रः ॥ प्रव्रज्यावसितः । नष्टसन्न्यासः । इति मेदिनी ॥

**उदाहरणं**, क्ली, ( उत् + आङ् + हृ + ल्युट् ।) दृष्टान्तः । तत्पर्य्यायः । उपोद्घातः २ उदाहारः ३ इति शब्दरत्नावली ॥ (यथा, माघे ।२।६३।
“प्रज्वलितान्धतमसस्तत्रोदाहरणं रविः” ।
कथाप्रसङ्गः । कथनम् । यथा, कुमारे ।६।६३।

"अथाङ्गिरसमग्रण्यमुदाहरणवस्तुषु" ॥)
पञ्चन्यायावयवान्तर्गतमिदम् ॥ (नाट्यशास्त्रे सोत्कर्षवचनोपन्यासरूपो गर्भाङ्गभेद । यदुक्तं साहित्यदर्पणे ६ष्ठ परिच्छेदे ।
"उदाहरणमुत्कर्षयुक्त वचनमुच्यते"।
यथा, वेणीसंहारे अश्वत्थामाङ्के ॥
"यो य' शस्त्र विभर्त्ति स्वभुजगुरुमदात्पाण्डवीना चमूना, यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्या गतो वा । यो यस्तत्कर्म्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीप, क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमिह जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम्" ॥
षट्त्रिंशन्नाटकलक्षणान्तर्गतलक्षणभेद । यथा, साहित्यदर्पणे ६ष्ठ परिच्छेदे ।
"यत्र तुल्यार्थयुक्तेन वाक्येनाभिप्रदर्शनात् ।
साध्यतेऽभिमतश्चार्थस्तदुदाहरण मतम् ॥ )

उदाहार', पु, ( उत् + आ + हृ + घञ् । ) उदाहरणं । इत्यमरः ॥ प्रकृतोपपादकदृष्टान्तादिः । इति भरत' ॥ युक्तिप्रापार्थनिदर्शनं इति साञ्जः ॥ प्रकृतसिद्धार्था चिन्ता । इति रायमुकुटः ॥

उदित , त्रि, (वद् + क्त । यद्वा । उत् + इण + क्त ।) उक्त' । (यथा, किराते । १ । २८ ।
"भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं
भवत्यधिक्षेपइवानुशासनम्" ॥)
बद्ध' । इत्यमर' ॥ उद्गत । प्राप्तोदय । इति मेदिनी ॥ (यथा, रामायणे ।
"उदयादुदितं दीप्त ज्वालापिण्डसमप्रभम्" ॥
"उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा" ।
इति मनु । २ । १५ ॥ तथा, किराते । ५ । ५ ।
"दधतमुच्चशिलान्तरगोपुराः,
पुर इवोदितपुष्पवना भुव " ॥)

उदितोदित , त्रि, ( उदिते कथिते शास्त्रे उदित अभ्युदित । ) शास्त्रज्ञ । इति स्मृति ॥
("पुरोहितञ्च कुर्व्वीत दैवज्ञमुदितोदितम् ।
दण्डनीत्याञ्च कुशलमथर्व्वाङ्गिरसे तथा" ॥
इति याज्ञवल्क्यः ॥)

उदीची, स्त्री, ( उत् उत्तर अञ्चत्यर्क । उत्क्रान्त दृष्टिपथ अञ्चति सूर्य्य वा । उद ईदित्यञ्चेरत ईकार । ऋत्विगादिना क्विन् । उगितश्चेति ङीप् । ) उत्तरा दिक् । इत्यमर ॥
("यदोदीच्या गतिर्भानोस्तदा सूर्य्यबलाधिकम्" ॥
इति हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने चतुर्थेऽध्याये ॥ )

उदीचीनं, त्रि, (उदीची + ख ।) उदीच्या भवं । उत्तरदिग्जातवस्तु। इति हेमचन्द्र ॥ (यथा, शतपथब्राह्मणे १३ । ८ । १ । ६ । "उदीचीनप्रवणे करोत्यु दीची वै मनुष्याणा दिक्" ॥)

उदीच्य, स्त्री, (उदीच्यां भवम् । उदीची + यत् ।) बालनामगन्धद्रव्य । इत्यमरः ॥ बाला इति ख्यातम् ।
(बालकशब्देऽस्य गुणादयो बोद्धव्याः ॥)

उदीच्य, पुं, (उदीच्यां भव । उदीची + यत् ।) शरावतिनद्याः पश्चिमोत्तरदेशः । इत्यमरः ॥
(तद्देशवासिनि त्रि, यथा, रघौ ४ । ६६ ।
"शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन् रसानिव" ॥

तथा, महाभारते युधिष्ठिरप्रबोधने ८ । ७० । २४ ।
"हता उदीच्या निहता' प्रतीच्याः
प्राच्या निरस्ता दाक्षिणात्या विशस्ता " ॥)

उदीरणं, स्त्री, (उत् + ईर + ल्युट् ।) कथनम् । इति हलायुध ॥ (यथा, कुमारे २ । १२ ।
("उद्घात' प्रणवो यासा न्यायैस्त्रिभिरुदीरणम्" ॥
प्रेरणम् । क्षेपणम् ।
"ब्रह्मास्त्रोदीरणात् शत्रोर्देवदानवकिन्नरा" ।
इति महाभारते ॥ )

उदीर्ण , त्रि, (उत् + ऋ + क्त ।) उदार । महान् । इति जटाधर ॥
("न हि राज्ञामुदीर्णानामेवम्भूतैर्नरै' क्वचित् ।
सख्यं भवति मन्दात्मन् ! श्रिया हीनैर्धनच्युतै " ॥
इति महाभारते ॥ उत्तेजित । उद्दीपित । उद्धतः । यथा, कुमारे २ । ३२ ।
"भवल्लब्धवरोदीर्णस्तारकाख्यो महासुरः" ।
"ब्रह्म क्षत्रेण संसृष्ट क्षत्र च ब्रह्मणा सह ।
उदीर्णे दहत शत्रून् वनानीवाग्निमारुतौ" ॥
इति महाभारते । पु, विष्णु । यथा, महाभारते विष्णुसहस्रनामकथने १३ । १४९ । ८० ।
"उदीर्णः सर्व्वतश्चक्षुरनीश शाश्वत स्थिर " ॥)

उदुम्बरं, स्त्री, (उं शम्भुं वृणोतीति उम्बरम् । उ + वृ + सञ्ज्ञाया खच् । अरुर्द्विषदिति मुम् । उत्कृष्टमुम्बरम् ।) ताम्रम् । इत्यमर ॥ (ताम्रशब्देऽस्य विशेषो ज्ञेय ॥ )

उदुम्बर , पु, उडम्बरवृक्ष । यज्ञडुमुर इति भाषा । तत्पर्य्याय । क्षीरवृक्ष २ हेमदुग्ध ३ सदाफलः ४ कालस्कन्धः ५ यज्ञयोग्य ६ यज्ञीय ७ सुप्रतिष्ठित' ८ शीतवल्क ९ जन्तुफलः १० पुष्पशून्य ११ पवित्रक १२ सौम्य १३ शीतफल १४ । अस्य पक्वफलगुणा । मधुरत्वम् । हिमत्वम् । कृमिकारित्वम् । रक्तपित्ततृष्णामूर्च्छादाहनाशित्वञ्च । अस्य सुपक्वफलगुणा । अतिशयशीतलत्वम् । मधुरत्वम् । पित्तश्रमशोषहारित्वञ्च । अस्यामफलगुणा । कषायत्वम् । अग्निदीपनत्वम् । रक्तविकारित्वञ्च ॥ अस्य त्वग्गुणा । शीतत्वम् । कषायत्वम् । व्रणनाशित्वम् । गर्भिणीगर्भसरक्षकत्वम् । स्तनदुग्धदातृत्वञ्च । इति राजनिर्घण्ट ॥
(अस्य पर्य्यायगुणौ यथा ।
"उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेमदुग्धक' ।
उदुम्बरो हिमो रूक्षो गुरु पित्तकफास्रजित् ॥
मधुरस्तुवरो व [illegible] व्रणशोधनरोपणः" ॥
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे१म भागे वटादिवर्गे ॥
अस्य फलगुणास्त्वाह चरक' सूत्रस्थाने सप्तविंशेऽध्याये यथा,—
"अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधाना फलानि च ।
कषायमधुराम्लानि वातलानि गुरूणि च ॥ • ॥)
कुष्ठविशेष । देहली । गोबराटेर नीचेर काठ् इति भाषा । पक्षक' । नपुसक । इति हेमचन्द्र ॥

उदुम्बरदला, स्त्री, (उदुम्बरस्य दलमिव दलमस्या ।) दन्तीवृक्ष' । इति राजनिर्घण्टः ॥ (अस्या गुणादयो दन्तीशब्दे ज्ञेया ॥ )

उदुम्बरपर्णी, स्त्री, (उदुम्बरस्य पर्णमिव पर्णमस्या ।) उडम्बरपर्णी । दन्तिकावृक्ष' । इत्यमर' ॥ (अस्या पर्य्यायास्चरकेण कल्पस्थाने १२ अध्याये उक्ता । यथा,—
"दन्त्युदुम्बरपर्णी स्यान्निकुम्भोऽथ मुकूलक " ॥ )

उदूखल, स्त्री, ( उदूर्द्ध्वञ्च तत् खञ्च । तत् लाति । आतोनुपेति क' । पृषोदरादित्वात् साधु' ।) गुग्गुलु' । इति मेदिनी ॥ तण्डुलकण्डनार्थकाष्ठनिर्म्मितपात्रम् । उखलि इति भाषा । तत्पर्य्याय । उलूखलं २ । इत्यमर ॥ ("संकुच्योदूखले विहान्" इत्यादिप्रयोगो भावप्रकाशादौ द्रष्टव्य ॥)

उदूढ , त्रि, ( उत् + वह + क्त । ) ऊढ' । स्थूल । इति मेदिनी ॥ (यथा, माघे । १ । ३६ ।)
"उदूढलोकत्रितयेन साम्प्रतम्
गुरुर्धरित्री क्रियतेतरा त्वया" ॥)

उद्गतं, त्रि, (उत् + गम + क्त ।) उद्वान्तम् । छर्द्दितवस्तु । इत्यमर' ॥ ऊर्द्ध्वगतम् । उदितम् ॥

उद्गम , पु, ( उत् + गम + अप् । ) ऊर्द्ध्वगमनम् । उदय ॥ (आविर्भाव । यथा, कुमारे । ७ । ७७ ॥
"रोमोद्गम प्रादुरभूदुमाया
स्विन्नाङ्गुलि पुङ्गवकेतुरासीत्" ।
"फलेन सहकारस्य पुष्पोद्गम इव प्रजा " ॥
इति रघुवंशे । ४ । ९ ॥ प्रस्थान बहिर्गमनम् ।
"तनयाना क्षुधार्त्ताना पश्यन् प्राणोद्गमव्यथाम्"।
इति कथासरित्सागरे ४ तरङ्गे ॥ )

उद्गमनीय, स्त्री, (उत् + गम + अनीयर् ।) धौतवस्त्रद्वयं । इत्यमर' ॥ धोया योड इति भाषा ।
("सा मङ्गलस्नानविशुद्धगात्री
गृहीतपत्युद्गमनीयवस्त्रा" ।
इति कुमारे । ७ । ११ ॥)

उद्गाढ, स्त्री, (उत् + गाह + क्त ।) अतिशय । तद्युक्ते त्रि । इत्यमर ॥ ( "प्रेमार्द्रा प्रणयस्पृश परिचयादुद्गाढरागोदया " । इति साहित्यदर्पणे । ३य परिच्छेदे ॥)

उद्गाता, [ ऋ ] पु, ( उद्गायति साम य' । उत् + गै + तृच् ।) सामवेदज्ञ । सामवेदविद्ब्राह्मणः इत्यमर ॥
("ब्रह्माण परम वक्त्रादुद्गातारञ्च सामगम् ।
होतारमथ चाध्वर्य्यु बाहुभ्यामसृजत्प्रभु " ॥
इति हरिवंशे । तथा च मनु । ८ । २०९ ।
"होता वापि हरेदश्वमुद्गाता चाप्यन क्रये" ॥
"उद्गातृहोतृब्रह्माणो यथाध्वर्य्युं विनाध्वरे" ।
इति सुश्रुते सूत्रस्थाने चतुस्त्रिंशेऽध्याये ॥)

उद्गार , पु, (उत् + गॄ + घञ् । ) उद्वमनम् । इत्यमरः ॥ ( यथा, रघौ । ६ । ६० ।
"आभाति बालातपरक्तसानु
सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराज " ॥ )
शब्द । इति भरत ॥ ( यथा महाभारते ३ ।
"तस्य लाङ्गूलनिनद पर्व्वत स गुहामुखे ।
उद्गारमिव गौर्नदमुत्ससर्ज समन्ततः" ॥ )
कण्ठगर्ज्जन । इति जटाधर' ॥ ढेकुर इति भाषा । तत्तु नागवायुकर्म्म । इति श्रीधरस्वामी ॥ (स्वावः ।

भगवता उद्भिदस्य" । उद्भिद्यते पशुफलमनेन इति निरुक्तेः यागभेद ॥)

उद्भिद्, त्रि, (उद्भिनत्तीति । उत् + भिद + इगुपधेति कः ।) तरुगुल्मादि । तत्पर्य्यायः । उद्भित् २ उद्भिज्जम् ३ । इत्यमरः ॥ उद्भिजम् ४ । इति रमानाथः ॥ (यथा महाभारते १४ पर्व्वणि । "जरायुजाण्डजातानि स्वेदजान्युद्भिदानि च" ॥)

उद्भिदं, क्ली, (उद्भिनत्तीति । उद् + भिद + क ।) पांशुलवणम् । इति रत्नमाला ॥ पांशु लुण इति भाषा । ("उद्भिदानि पलालेक्षुकरीषवेणुचितिजानि" । इति सुश्रुते सूत्रस्थाने षट्चत्वारिंशत्तमेऽध्याये ॥)

उद्भूतः, त्रि, (उद्भवति स्म । उत् + भू + क्त ।) उत्पन्नः । जातः । यथा । ईशानसंहितायाम् ।

"माघे कृष्णचतुर्द्दश्यामादिदेवो महानिशि ।
शिवलिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्य्यसमप्रभः" ॥

इति तिथ्यादितत्त्वम् ॥ (तथा, भाषापरिच्छेदे ५६ ।
"उद्भूतस्पर्शवद्द्रव्यं गोचरः सोऽपि च त्वचः" ।)

उद्भूतरूपं, क्ली, (उद्भूतं प्रत्यक्षयोग्यं रूपम् ।) नयनगोचररूपम् । यथा,—भाषापरिच्छेदे ॥ ।

"उद्भूतरूपं नयनस्य गोचरं
द्रव्याणि तद्वन्ति पृथक्त्वसंख्ये ।
विभागसंयोगपरापरत्व-
स्नेहद्रवत्वं परिमाणयुक्तम् ॥ ५४ ॥
क्रियाजाती योग्यवृत्ती समवायञ्च तादृशम् ।
गृह्णाति चक्षुः सम्बन्धादालोकोद्भूतरूपयोः" ॥ ५५ ॥

उद्भ्रमः, पुं, (उद्भ्रमणमिति । उत + भ्रम + घञ् । नोदात्तोपदेशेति न वृद्धिः ।) उद्वेगः । इत्यमरः ॥

उद्भ्रान्त, क्ली, (उत् + भ्रम + क्त ।) बाहुमुद्यम्य मण्डलाकारखड्गभ्रामणम् । इति महाभारतम् ॥ (परिभ्रान्ते, त्रि । यथा, रघौ ४ । ४६ ॥
"मारीचोद्भ्रान्तहारीता मलयाद्रेरुपत्यकाः" ॥
विकले । विह्वले । यथा, रामायणे,—
"उद्भ्रान्तहृदयश्चापि विवर्णवदनोऽभवत्" ॥)

उद्यः, पुं, नदः । इति हेमचन्द्रः ॥ (उद्यते वत् । वद + क्यप् । कथनीये, त्रि । यथा, म्लेच्छोद्यम् वाक्यम् ।)

उद्यत, त्रि, (उत् + यम + क्त ।) उत्तोल्यधृतवस्त्रादि । उद्यतशस्त्रादि । तत्पर्य्यायः । उद्गूर्णः ॥ इत्यमरः ॥ (यथा, रघुवंशे । ४ । १६ ।
"प्रजार्थसाधने तौ हि पर्य्यायोद्यतकार्म्मुकौ" ॥)

उद्यत, पुं, (उत् + यम + क्त ।) ग्रन्थपरिच्छेदः । इति जटाधरः ॥

उद्यमः, पुं, (उत् + यम + घञ् । सञ्ज्ञापूर्व्वकत्वात् वृद्ध्यभावः ।) उद्योगः । तत्पर्य्यायः । गुरणम् २ । इत्यमरः ॥ गूरणम् ३ गोरणम् ४ । इति तट्टीका ॥ उत्साहः ५ अध्यवसायः ६ उद्योगः ७ । इति जटाधरः ॥ (यथा, कुमारे ५ । ३ ।
"निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमाम्" ।
"गृहाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्" ।
इति च कुमारे ५ । ५ ।)

उद्यानं, क्ली, (उद्यान्ति क्रीडार्थमस्मिन् । उत् + या ल्युट् ।) राज्ञः साधारणं वनम् । तत्पर्य्यायः । आक्रीडः २ ।
("वाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्म्या" ।
इति मेघदूते ७ ।) निःसरणम् । प्रयोजनम् । इत्यमरः ॥

उद्यानपालः, त्रि, (उद्यानं पालयतीति । उद्यान + पालि + अण् ।) उद्यानरक्षकः । माली इति भाषा ॥
("उद्यानपालसामान्यमृतवस्तमुपासते" ॥
इति कुमारे । २ । ३६ ॥)

उद्युक्त, त्रि, (उत् + युज + क्त ।) उद्यमयुक्तः । उद्योगविशिष्टः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥ (यथा, अमरकोषः । "इष्टार्थोद्युक्तउत्सुकः" ।)

उद्योग, पुं, (उत् + युज + घञ् ।) यत्नः । चेष्टा । तत्पर्य्यायः । उत्साहः २ अध्यवसायः ३ उद्यमः ४ । इति जटाधरः ॥ (यथा, मार्कण्डेये ८८ । २ ।
"उद्योगं सर्व्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह" ।
"उद्योगादनिवृत्तस्य सुसहायस्य धीमतः ।
छायेवानुगता तस्य नित्यं श्रीः सहचारिणी" ॥
इति नीतिवाक्यम् ।
महाभारतस्य उद्योगपर्व्व । यथा, महाभारते १ । १ । ६२ ।
"उद्योगः सैन्यनिर्य्याणं श्वेतोपाख्यानमेव च" ॥)

उद्योगी, [न्] त्रि, (उद्योगोऽस्यास्तीति । उद्योग + इन् ।) उद्योगविशिष्टः । उद्यमी । तथा च ।

"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
र्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः" ॥

इति नीतिसारे १३ ॥

उद्योत, पुं, (उत् + द्युत + घञ्) आलोकः । ज्योतिः । इति हलायुधः ॥

उद्रः, पुं, (उनत्तीति । उन्द + रक् ।) जलजन्तुविशेषः । इत्यमरः ॥ उद्‌विडाल इति भाषा ।

उद्रङ्क, पुं, पुरविशेषः । "व्योमचारि पुरं सौभमुद्रङ्क प्रतिमार्गकः" । इति जटाधरः ॥

उद्रङ्गः, पुं, व्योमचारि पुरम् । तत्पर्य्यायः । खपुरं २ ऊर्द्ध्वगपुरं ३ हरिश्चन्द्रपुरं ४ सौभं ५ प्रतिमार्गकं ६ चङ्गा ७ चङ्ग ८ । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

उद्रथः, पुं, (उद्गतो रथो यस्मात् ।) रथकीलम् । ताम्रचूडपक्षी । इति मेदिनी ॥

उद्रिक्त, त्रि, (उद्रिच्यते स्म । उत् + रिच + क्त ।) स्फुटम् । स्पष्टम् । इति जटाधरः ॥

उद्रेकः, पुं, (उत् + रिच + घञ् ।) उपक्रमः । वृद्धिः ।
"अधुनैव कुरङ्गाक्षि लक्षणं जगतां मनः ।
न जाने यौवनोद्रेके जीवनस्यापि का गतिः" ॥
इत्युद्भटः ॥
"हरिस्ते साहस्रं कमलवलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्त्ति जगताम्" ॥
इति महिम्नःस्तोत्रम् ॥
("तम प्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतेः" ।
इति वैद्यकरोगविनिश्चयेऽपस्माराधिकारे ।)

उद्रेका, स्त्री, (उद्रेक + टाप् ।) महानिम्बः । इति राजनिर्घण्टः ॥

उद्वत्सरः, पुं, (उत्क्रान्तो वत्सरः ।) वत्सरः । इति हेमचन्द्रः ॥

उद्बन्धन, क्ली, (उत् + बन्ध + ल्युट्) ऊर्द्ध्वबन्धनम् इति स्मृतिः ॥ गलाय दड़ि दिया फाँसी देओन टाङ्गान इत्यादि भाषा ॥

उद्वमनं, क्ली, (उत् + वम + ल्युट् ।) उद्गीरणम् । तुलिया फेलन वाँति करण इत्यादि भाषा ॥

उद्वर्त्तं, त्रि, (उत् + वृत् + घञ् ।) अतिरिक्तः । उवरण वाडा इत्यादि भाषा । यथा । "उद्वर्त्तं हि ग्रन्थः समधिकफलमाचष्टे" । इति व्याकरणटीका ॥

उद्वर्त्तन, क्ली, (उत् + वृत् + णिच् + भावे करणे वा ल्युट् ।) उत्पतनम् । (यथा, मेघदूते ४२ । "मोघीकर्त्तुं चटुलशफरोद्वर्त्तनप्रेक्षितानि" ।) विलेपनम् । घर्षणम् । इति मेदिनी ॥ (यथा, मनुः ४ । १३२ ।
"उद्वर्त्तनमपस्नानं विण्मूत्रे रक्तमेव च ।
श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि नाधितिष्ठेत्तु कामतः" ॥)
शरीरनिर्म्मलीकरणगन्धद्रव्यादि । तत्पर्य्यायः । उत्सादनम् २ । इत्यमरः ॥ हरिद्रा सेवन आवटन इत्यादि भाषा । सामान्योद्वर्त्तनगुणाः । कफवायुमेदोवातरोगनाशित्वम् । अङ्गस्थैर्य्य-चर्म्मनिर्म्मलकारित्वञ्च ॥ हरिद्राद्युद्वर्त्तनगुणाः । कण्डूवैवर्ण्यरूक्षताहारित्वम् ॥ तिलोद्वर्त्तनगुणाः । कण्डूरूक्षतालगद्दोषनाशित्वम् । इति राजवल्लभः ॥
("उद्वर्त्तनं वातहरं कफमेदोविलापनम् ।
स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक्प्रसादकरं परम् ॥
शिरासुखविविक्तत्वं त्वक्स्थस्याग्नेश्च तेजनम्" ॥
इति चिकित्सितस्थाने २४ । अध्याये सुश्रुतेनोक्तम् ॥)

उद्वर्द्धन, क्ली, (उत् + वृध् + ल्युट् ।) अन्तर्हासः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

उद्वर्हित, त्रि, (उत् + वर्ह + क्त ।) उद्धृतः । इति भूरिप्रयोगः ॥ उद्वाहितो वा इति पाठः ॥

उद्वहः, पुं, (उदूर्द्ध्वं वहति प्रापयतीति । उत् + वह + अच् ।) पुत्रः । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा,— रघुः । ९ । ९ ।
("उदयमस्तमयञ्च रघूद्वहात्" ॥)
सप्तवाय्वन्तर्गतवायुविशेषः । स तु प्रवहवायोरूर्द्ध्वस्थितः । इति सिद्धान्तशिरोमणिः ॥
("आवहः प्रवहश्चैव विवहश्च समीरणः ।
परावहः संवहश्च उद्वहश्च महाबलः ॥
तथा परिवहः श्रीमानुत्पातभयशंसिनः ।
इत्येते क्षुभिता सप्त मारुता गगनेचराः" ॥
इति हरिवंशे । २३६ अध्याये । विवाहः ॥)

उद्वहा, स्त्री, (उद्वह + टाप् ।) कन्या । पुत्री । इति हेमचन्द्रः ॥

उद्वानः, त्रि, (उत् + वन + घञ् ।) उद्वमिता । उद्वान्तः । इत्यमरटीकायां रायमुकुटः ॥

उद्वान्त, त्रि, (उत् + वम + क्त ।) वमितवस्तु । तत्

पर्य्यायः । उद्धृतं २ । इत्यमरः ॥

उद्वान्तः,पुं,(उद्धृतं वान्तं मदो यस्मात् ।)निर्म्मदहस्ती। इति मेदिनीकरजटाधरौ ॥

उद्वासनं, क्ली, (उत्+वस्+णिच्+ल्युट् ।) मारणम् । वधः । इत्यमरः ॥ (संस्कारभेदः । यथा, कात्यायने ६ । १ । २ ॥

"अथ उपसृत्य प्राणाद्यार्थे परिस्तरणपात्रसंसादनप्रोक्षणाज्यनिर्वपणाधिश्रयणस्रुक्संमार्जनोद्वासनावेक्षणानि कृत्वाग्नीध्र उत्पूय पश्चात् आज्यग्रहणम्" ॥ )

उद्वाहः,पुं,(उत्+वह+घञ् ।) विवाहः । इत्यमरः ॥ तस्य लक्षणं भार्य्यात्वसम्पादकग्रहणम् । तस्य स्वीकाररूपज्ञानविशेषस्य समवायविषयतयोर्भेदात् वरकन्ययोर्विवाहकर्तृत्वकर्म्मत्वे । स तु अष्टविधः । वरमाहूय यथाशक्त्यलङ्कृता कन्या यत्र दीयते स ब्राह्मः १ । यत्र यज्ञस्थायर्त्विजे कन्यादानं स दैवः २ । यत्र वरात् गोद्वयं गृहीत्वा तेनैव सह कन्यादानं स आर्षः ३ । यत्र अनया सह धर्म्मं चरतं इति नियमं कृत्वा कन्यादानं स कायः ४ । यत्र धनं गृहीत्वा कन्यादानं स आसुरः ५ । यत्र कन्यावरयोरन्योन्यानुरागात् त्वं मे भार्य्या त्वं मे पतिरिति निश्चयः स गान्धर्व्वः ६ । यत्र बलात्कारेण कन्याहरणं स राक्षसः ७ । यत्र सुप्ताया मत्ताया प्रमत्ताया वा कन्याया निर्ज्जने गमनं स पैशाचः ८ । तस्य निर्णयः । सगोत्रासमानवरवयस्का समानप्रवरा पितृपेक्षयोर्द्ध्वतनपञ्चमपुरुषाणां पुत्त्रकन्यासन्ततिपरम्परया प्रत्येकसप्तमीपर्य्यन्ता अधस्तने तदपेक्षया सप्तमीपर्य्यन्ता पितृबन्ध्वपेक्षयोर्द्ध्वतनपञ्चमप्रत्येकापेक्षया सप्तमीपर्य्यन्ता अधस्तने तदपेक्षया सप्तमीपर्य्यन्ता मातामहसमानोदका मातामहापेक्षयोर्द्ध्वतनचतुर्णां पुरुषाणां पुत्त्रकन्यासन्ततिपरम्परया प्रत्येकापेक्षया पञ्चमीपर्य्यन्ता अधस्तने तदपेक्षया पञ्चमीपर्य्यन्ता मातृबन्ध्वपेक्षयोर्द्ध्वतनचतुर्णां प्रत्येकापेक्षया पञ्चमीपर्य्यन्ता अधस्तने तदपेक्षया पञ्चमीपर्य्यन्ताश्च कन्यां परित्यज्य उद्वाहः कर्त्तव्यः ॥ पितृबन्धुमातृबन्धुविरहेऽपि तयोर्योग्यतामवलम्ब्य सप्तमीपर्य्यन्तायाः पञ्चमीपर्य्यन्तायाश्च कन्यायाः परिहारः । वर्ज्जनीयानां कन्यानां मध्येऽपि या त्रिगोत्रान्तरिता सा विवाह्या । अत्र सप्तमत्वपञ्चमत्वप्रतियोगिपितृपितृबन्धुपञ्चमगणनप्रतियोगिमातामहमातृबन्धुगोत्रमादायैव त्रिगोत्रगणनम् । शूद्रस्य सगोत्राविवाहे दोषाभावः । मातृसपत्नीभ्रातृकन्यां सहोदर्य्यां अध्यापयितृकन्यां शिष्यकन्यां भ्रातृगुरुकन्याञ्च परित्यज्य विवाहः कर्त्तव्यः ॥ अथ कन्यादानाधिकारिणः । आदौ पिता । तदभावे पितामहः । तदभावे भ्राता । तदभावे पितृभ्रात्रादिः । तदभावे मातामहः । तदभावे मातुलः । तदभावे माता । तदभावे मातामहभ्रात्रादिः । एतेषामप्यभावे कन्या स्वयं वरं कुर्य्यात् ॥ अथ विवाहपूर्व्वकर्त्तव्यकर्म्म । अवश्यभावि शुभाशुभयहादिदोषशान्त्यर्थं होमो हिरण्यगोवस्त्रदानम् । ततो नान्दीश्राद्धम् । लग्नसमये वरे उपस्थिते स्वस्तिवाचनादिकं विधाय वरणम् । स्त्र्याचारादि । ततः कन्यादानं यथाशक्ति धनदानञ्च । ततः स्वगृह्योक्तविधिनाग्निं संस्थाप्य कुशण्डिका समाप्य पाणिग्रहणं सप्तपदीगमनञ्च कर्त्तव्यम् ॥ ० ॥ ज्येष्ठेऽकृतविवाहे विवाहकर्त्ता कनिष्ठः परिवेदनदोषविशिष्टो भवति । ज्येष्ठः परिवित्तिः । सा कन्या परिवेदनीया । कन्यादाता परिदायी । तत्पुरोहितः परिकर्त्ता । ते सर्व्वे पतिताः । किन्तु देशान्तरस्थक्लीवैकाण्डवैमात्रेयवेश्यासक्तशूद्रतुल्यातिरोगिजडमूकान्धवधिरकुब्जवामनकुष्ठातिवृद्धनैष्ठिकब्रह्मचारिवानप्रस्थभिक्षुकविसक्तान्यपसक्तधनवृद्धिप्रसक्तकामकारिदत्तकोन्मत्तचौरेषु ज्येष्ठेष्वनूढेष्वपि कनिष्ठविवाहे न दोषः । एवं विकृतरूपानूढा ज्येष्ठा कनिष्ठायाः सोदराया ऊढाया परिवेदनाय न भवति । इत्युद्वाहतत्त्वम् ॥

उद्वाहनं, क्ली, (उत्+वह+णिच्+ल्युट् ।) विवाहः । तत्पर्य्यायः । रणरणः २ । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ द्विसीत्यम् । द्विवारकृष्टक्षेत्रम् । इति हेमचन्द्रः ॥

उद्वाहनी, स्त्री, (उद्वाहन+ङीप् ।) वराटकः । इति हेमचन्द्रः ॥ कडि इति भाषा ॥

उद्वाहिक, त्रि, (उद्वाहस्यायम् । उद्वाह+ठक् ।) उद्वाहसम्बन्धी ॥ (यथा, मनुः । ९ । ६४ ।)

"नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु विधवावेदनं क्वचित्" ॥)

उद्वाहित, त्रि, (उत्+वह+णिच्+क्त ।) उद्वाहितः । उद्धृतः । विवाहितः । यथा । राजमार्त्तण्डे देवलः ।

"बाले वृद्धे तथैवास्ते कुरुते दैत्यमन्त्रिणि ।
उद्वाहितायाः कन्यायाः दम्पत्योरेकनाशनम्" ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वम् ॥ (कलिकाले आगमोक्तान्यमार्गेण विवाहिता गर्हिता भवति । यथा,—

"उद्वाहितापि या नारी जानीयात् सा तु गर्हिता"
इत्यागमसिद्धान्तः ॥)

उद्वाहिनी, स्त्री, (उद्वहति उद्धरतीति । उत्+वह+णिनि+ङीप् ।) रज्जुः । इति मेदिनी ॥

उद्वाहुः, त्रि, (उद्गूर्द्धे बाहू यस्य ।) ऊर्द्ध्वबाहुः । उद्वेगशब्दार्थे हेमचन्द्रेण लिखित ॥ (यथा, रघुः । १ । ३ ।
("प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्वाहुरिव वामनः" ॥)

उद्वाहुक, क्ली, ऊर्द्ध्वीकृतबाहुः । उद्वेगशब्दार्थे मेदिनीकारेण लिखितम् ॥

उद्विग्न,त्रि, (उत्+विज+क्त । ओदितश्चेति तस्य नः । ओविजी इति नेट् ।) उद्वेगयुक्तः । यथा,—

"तैर्द्दृश्यमसंधुमधुरसुभिक्षविपन्नकै ।
निमग्नोद्विग्नसङ्कीर्णैः पपे दीनेव मेदिनी"॥

इति भट्टिकाव्ये ४ । ४२ ॥ (तथा च भारते,—
"नोद्विग्नश्चरते धर्म्मं नोद्विग्नश्चरते क्रियाम्" ॥)

उद्विवर्हणं, क्ली, (उत्+वि+वृह+ल्युट् ।) उद्धारकरणम् । यथा,—

"कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो
रसाङ्गताया भुव उद्विवर्हणम्" ।

इति श्रीभागवते १३।४३ ॥ उद्विवर्हणं उद्धरणम् । इति तट्टीकायां श्रीधरस्वामी ॥

उद्वृत्तः, त्रि, (उत्+वृत्+क्त । वृत्तात्परित्यागात् उत्क्रान्तो वा ।) उत्तोलितः । उत्क्षिप्तः । परिमुक्तोज्झितः । उद्वान्तः । इति हेमचन्द्रो मेदिनी च ॥ दुर्वृत्तः ॥ (यथा, महाभारते,—
"उद्वृत्तान् सततं लोकान् राजा धर्म्मेण शास्ति वै")

उद्वेगं, क्ली, (उद्विज्यतेऽनेन इति । उत्+विज+घञ् ।) गुवाकफलम् । इत्यमरः ॥

उद्वेगः, पुं, (उत्+विज्+भावे घञ् ।) उद्वेजनम् । तत्पर्य्यायः । उद्भ्रमः २ । इत्यमरः ॥ चमत्कारः । इति भरतः ॥ विरहजन्यदुःखम् । इति रसमञ्जरी । भयं । इति हेमचन्द्रः । उद्वाहुकम् । उद्गमनम् । इति मेदिनी ॥

("नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छाम् ।
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या" ॥

इति मेघदूते पूर्व्वमेघे ३७ श्लोकः ॥

"सदय बुभुजे महाभुजः
सहसोद्वेगमियं व्रजेदिति" ।

रघुः ८ । ७ ।
"सह्योभिष्वप्यनुद्वेगो माधुर्य्यं परिकीर्त्तितम्" ।
इति साहित्यदर्पणे ॥ ३य परिच्छेदः ॥)

उद्वेग, त्रि, (उद्गतो वेगो यस्मात् ।) स्तिमितः । शीघ्रगामी । ऊर्द्ध्वबाहुः । इति हेमचन्द्रः ॥

उद्वेजनं, क्ली, (उत्+विज+ल्युट् ।) उद्वेगः ॥
("परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नॄन् महीपतिः ।
उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत्" ॥

इति मनुः ॥ ८ । ३५२ ॥)

उधः, [स्] क्ली, (वहति उनत्ति वा । वह इत्यस्य उन्द क्लेदने वा+असुन् ।) ऊधः । इत्यमरटीकायां रमानाथः ॥ गरुर पालान् इति भाषा ॥

उध्रस ग उञ्छे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (क्र्यादिं-परं-सकं-सेट् ।) एतस्यादौ पञ्चमस्वरः । मध्ये केवलधकारस्याधो रेफः । क्र्यादावुध्रस उञ्छ इत्ययमुदिच्चौरादिकः पठ्यते तस्य ध्रासयतीति रूपं अपरं ध्रस्नाति । येषां ध्रसेः उत्पूर्व्वस्य गणद्वयेऽपि पठनं तेषां मते श्नाविधावुद्ध्रस्नाति निगद्यते णिचि कृतेऽप्युद्ध्रासयत्यन्यत । अत्र उत्पूर्व्वस्येति तु उत् उकारः नतूपसर्गः । ग उध्रस्नाति भस्मं दीनः । इति दुर्गादासः ॥

उध्रस क उत्क्षेपे । उञ्छे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (चुरा-परं-सकं-सेट् ।) क उध्रासयति धूलिं वायुः । इति दुर्गादासः ॥

उन्द, ई ध क्लेदे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (रुधां-परं-सकं-सेट् ।) रुधादिः । क्लेदः आर्द्रभावः । ध उनत्ति वस्त्रं पयसा । ई उन्नः उत्तः । उन्दिदिमति । इति दुर्गादासः ॥

उन्दरः, पुं, उन्दुरः इति द्विरूपकोषः ॥

उन्दुरः, पुं, (उन्द+उर ।) मूषिकः । इति भरतो द्विरूपकोषश्च ॥ इन्दुर इति भाषा ॥

उन्दूरः, पुं, (उन्द+ऊर ।) जन्तुविशेषः । इन्दुँर इति भाषा । तत्पर्य्यायः । मूषिकः २ आखुः ३ । क्षुद्र-

च्चेत् । गिरिका ४ बालमूषिका ५ । नेङ्टे इन्दुर इति भाषा । इत्यमरः ॥ मूषकः ६ मूषः ७ मूषीकः ८ उन्दुरुः ९ खनकः १० वभ्रुः ११ वृषः १२ आखनिका १३ वृषा १४ दीना १५ मुषीका १६ । मूषा १७ मूषीका १८ मूषिका १९ । इति शब्दरत्नावली ॥ विलेशयः २० सुषिरः २१ इन्दूरः २२ । इति जटाधरः ॥ क्षुद्रस्य तस्य पर्य्यायः । चिक्का २३ पेशसनकुलः २४ चिक्का २५ । इति च शब्दरत्नावली ॥ दारुहन्त्री २६ आखनिका २७ । इति जटाधरः ॥

उन्दूरुः, पुं, (उन्द + बाहुलकात् ऊरुः ।) मूषिकः । इति हेमचन्द्रः ॥
("उन्दूरुपानवरहितं तेन वातप्रकृष्टवत्" ॥
इति वाभटे चिकित्सास्थाने नवमेऽध्याये ॥)

उन्दूरुकर्णी, स्त्री, (उन्दूरोः मूषिकस्य कर्णाविव पर्णमस्याः । उन्दूरुकर्ण + ङीष् ।) आखुकर्णीलता । इति राजनिर्घण्टः ॥

उन्नः, त्रि, (उन्द + क्त । नुदविदेति पक्षे नत्वम् ।) क्लिन्नः । दयापरः । इति हेमचन्द्रः ॥

उन्नतः, त्रि, (उत् + नम + क्त ।) वर्द्धितः । तत्पर्य्यायः । उच्चः २ प्रांशुः ३ उदग्रः ४ उच्छ्रितः ५ उत्तुङ्गः ६ । इत्यमरः ॥ उच्चैः ७ । इति शब्दरत्नावली ॥ तुङ्गः ८ । इति जटाधरः ॥ (यथा, रघुः । १ । १५ । "स्थितः सर्व्वोन्नतेनोर्व्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना" ॥ स्त्री, दिनपरिमाणज्ञानसाधन उपायः । यथा सिद्धान्तशिरोमणौ । "दिवसस्य यद्गत यच्च शेष तयोर्यदल्प तदुन्नतसञ्ज्ञ ज्ञेयम्" । (पुं, चाक्षुषमन्वन्तरे ऋषिभेदः । यथा, मार्कण्डेये ७६।५४।
"सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुन्नतो मधुः ।
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तासन्निति चर्षयः" ॥)

उन्नतनाभिः, त्रि, (उन्नतो नाभिर्यस्य ।) उच्चनाभियुक्तः । तत्पर्य्यायः । तुन्दिः २ । इति हलायुधः ॥

उन्नतानतं, त्रि, (उन्नतञ्च तत् आनतञ्चेति ।) उच्चनीचस्थानादि । तत्पर्य्यायः । बन्धुरम् २ । इत्यमरः ॥

उन्नतिः, स्त्री, (उत् + नम + क्तिन् ।) गरुडभार्य्या । समृद्धिः । ("वक्षोजौ करिकुम्भविभ्रमकरीमत्युन्नतिं गच्छतः" । इति साहित्यदर्पणे ३ य परिच्छेदे ।) उदयः । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा, सिद्धान्तशिरोमणौ ।
"मासान्तपादे प्रथमेऽथवेन्दोः
शृङ्गोन्नतिर्यद्दिवसेऽवगम्या ।
तदोदयस्ते निशि वा प्रसाध्यः
शशुर्विधोः स्वोदितनाडिकाद्यैः" ॥)

उन्नतीशः, पुं, (उन्नत्याख्यदाख्यया प्रसिद्धाया गरुडपत्न्याः ईशः स्वामी ।) गरुडपक्षी । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

उन्नमितः, त्रि, (उत् + नम् + णिच् + क्त ।) उत्तोलितः । उर्द्धीकृतः । इति श्रीधरस्वामी ॥
("अथ प्रयत्नोन्नमितानमत्फणै-
र्धृते कथञ्चित् फणिनां गणैरध" ॥
इति माघे । १ । १४ ॥)

उन्नयः, पुं, (उन्नयनम् । उत् + नी + क्वचिदपवाद-विषयेऽप्युत्सर्गोऽभिनिविशते इति अच् ।) ऊर्द्ध्वनयनम् । इत्यमरः ॥

उन्नयनं, क्ली, (उत् + नी + ल्युट् ।) वितर्कः । इति हेमचन्द्रः ॥ ऊर्द्ध्वप्रापणम् । उत्तोलनम् । तोलन उठान इत्यादि भाषा ॥
(यथा, कात्यायने । २२ । १० । ५ ।
"तेष्वेवोन्नयनमभ्यभि सोमानुन्नयन्तीति श्रुतेः," ।
उदूर्द्ध्वे नयनं यस्येति नाभ्ये वाच्यलिङ्ग" ॥)

उन्नाय पुं, (उन्नयन इति । उत् + नी + घञ् ।) उन्नयनम् । इत्यमरः ॥ (यथा भट्टिः । ७ । ३० ।
"उन्नायानधिगच्छन्तः प्रज्ञावैशसधाम्नताम्" ।)

उन्नादः, स्त्री, (उत् + नद + घञ् ।) कान्त्रिकम् । इति हेमचन्द्रः ॥

उन्निद्र, त्रि, (उद्गता निद्रा शय्या दुग्धादिका वा यस्मात् ।) प्रफुल्लः । विकसितः । इति हेमचन्द्रः ॥
("उन्निद्रपुष्पाननचम्पकपुष्पभासा" ।
इति माघः । प्रबुद्धः । शयनादुत्थितः ।
"तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः" ।
इति मेघदूते । ८८ । तथा, शाकुन्तले षष्ठाङ्के ।
"शय्याप्रान्तविवर्त्तनैर्विगमयन्नुन्निद्र एव क्षपाः" ॥)

उन्भ च श पूर्त्तौ । (तुदा + पर + सक + सेट् ।) क्रमादिः । च श उम्भति कुम्भं जलेन लोकः । उम्भामास । इति दुर्गादासः ॥

उन्मत्त, त्रि, ( उत् + मद् + क्त । ) उन्मादयुक्तः । वायुकृतचित्तविभ्रमविशिष्टः । पागल इति भाषा । तत्पर्य्यायः । उन्मादवान् २ । इत्यमरः ॥ तस्यौषधम्, यथा,—गारुडे १९९ अध्यायः ॥ * ॥
"कूर्म्ममत्स्याखुमहिषगोभद्रगाणाश्च वानरा ।
बिडालबर्हिकाकाश्च वराहोलूककुक्कुटाः ॥
एष रपाश्च विण्मूत्र मांस वा रोमशोणितम् ।
धूम दद्याज्ज्वरार्त्तस्य उन्मत्तेभ्यश्च शान्तये ॥
एतान्यौषधजातानि धूपितानि महेश्वर ।
निघ्नन्ति ज्वरमुन्माद वृक्तमिन्द्राशनिर्यथा" ॥
("तमात्मनो हतमुपघ्नन्तो देवादय कुर्व्वन्त्युन्मत्तम्" । इति निदानस्थाने सप्तमेऽध्याये ।
"देवर्षिपितृगन्धर्व्वैरुन्मत्तस्य च बुद्धिमान् ।
वर्जयेदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरकर्म्म च ॥
सर्पिष्पानादि तस्येह मृदुभैषज्यमाचरेत्" ॥
इति च चिकित्सास्थाने १४ अध्याये चरकेणोक्तम् ॥
अन्यद्विवरणमस्योन्मादशब्दे ज्ञेयम् ॥ )
तद्वाक्यप्रामाण्यं यथा,—मलमासतत्त्वे ॥
"उन्मत्तानाञ्च या गाथा शिशूनां चेष्टितं च यत् ।
स्त्रियो यच्च प्रभाषन्ते नास्ति तत्र व्यतिक्रमः ॥
आदौ गच्छति देवेषु पश्चात् गच्छति मानुषान् ।
नादेशिता वाग्वदति सत्या ह्येषा सरस्वती" ॥

उन्मत्त, पुं, ( उन्मत्तयति । उन्मत्त + तत्करोतीति णिच् + पचाद्यच् । ) धुस्तूरः । यथा,—
("श्वेतोन्मत्तस्योत्तरदिङ्मूलसिद्धस्तु पायसः ।
गुडाज्यसयुतो हन्ति सर्व्वोन्मादांश्च दोषजान्" ॥
इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहे उन्मादाधिकारे ॥)
मुचुकुन्दवृक्षः । इति मेदिनी ॥

उन्मदः, त्रि, ( उद्गतो मदो यस्य । ) उन्मादयुक्तः । उद्गतमदः । तत्पर्य्यायः । उन्मदिष्णुः २ इत्यमरः ॥ ( "उदीरयामासुरिवोन्मदानाम्" । इति रघु । २ । ९ । तथा, माघे ६ । २९ ।
"मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद-
ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे" ॥)

उन्मदिष्णु, त्रि, (उत् + मद् + इष्णुच् ।) उन्मदः । उन्मादशीलः । इत्यमरः ॥

उन्मना, [ स् ] त्रि, (उद्गत उत्कण्ठितं मनो यस्य ।) उत्कण्ठितचित्तः । तत्पर्य्यायः । उत्कः २ । इत्यमरः ॥
("उन्मनाः प्रथमजन्मचेष्टिता-
न्यस्मरन्नपि बभूव राघव"
इति रघुः । ११ । २२ । "पयोधरेणोरसि काचिदुन्मनाः" ॥ इति किराते । ८ । १९ ॥ )

उन्मन्थः, पुं, ( उत् + मथि + घञ् । ) मारणम् । वधः । इति हेमचन्द्रः ॥

उन्माथ, पुं, (उन्मथ्यतेऽनेनेति । उत् + मथ + घञ् । मारणादिपक्षे भावे घञ् ।) कूटयन्त्रम् । मृगबन्धोपयुक्तयन्त्रम् । आमिषं दत्त्वा मृगपक्षिबन्धनार्थं यत् सन्धानयन्त्रं निवेश्यते स । इत्यमरः ॥ मारणम् । घातकः । इति मेदिनी ॥
(यथा, प्रबोधचन्द्रोदये ।
"प्रभो मदयानां क इव सुवक्तोन्माथविधिषु" ॥)

उन्मादः, पुं, ( उत् + मद् + घञ् । ( महादेवः । यथा महाभारते । महादेवसहस्रनामकथने १३ । १० । ९९ । "उन्मादो मदनः कामो ह्यश्वत्थोऽर्थकरो यशः" ।) वातिकरोगविशेषः । तत्पर्य्यायः । चित्तविभ्रमः २ । इत्यमरः ॥ मतिभ्रमः ३ उन्मना ४ । इति राजनिर्घण्टः ॥ (चित्तविप्लवः ५।२।२१ ।
इति हेमचन्द्रः ॥) मानसरोगविशेषः ।
तस्यौषधं यथा,—
"वचा त्रिकटुकञ्चैव करञ्ज देवदारु च ।
मञ्जिष्ठा त्रिफला श्वेता शिरीषो रजनीद्वयम् ।
प्रियङ्गुनिम्बत्रिकटु गोमूत्रेणावघर्षितम् ।
नस्यमालेपनञ्चैव स्नानमुद्वर्त्तनम् तथा ॥
अपस्मारविषोन्मादशोषालक्ष्मीज्वरापहम् ।
भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे च शासनम्" ॥
इति गारुडे १९९ अध्यायः ॥ * ॥ अथ उन्मादाधिकारः ॥ तत्र उन्मादस्य निरुक्तिमाह ।
"मदयन्त्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः ।
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्त्तितः" ॥
अयमर्थः । यस्मादेतोरुद्धताः प्रवृद्धा दोषाः उन्मार्गमाश्रिताः मदयन्ति चित्तं विक्षिपन्ति तस्मिन् । अतोऽयमुन्माद इति कीर्त्तितः । सः उन्मादः मानसो व्याधिः मनोवैकल्यकरत्वात् ॥ * ॥ तस्यैवावस्थाभेदेन नामान्तरमाह । स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्त्ति च । स उन्मादस्तरुणो नवीनः ॥ * ॥ उन्मादस्य विप्रकृष्टनिदानमाह ।
"विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि
प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम् ।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्व्वो
मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः ।"
दुष्टं धत्तूरबीजादिसंहितम् । अशुचि रजस्वलादि-

स्पृहम्। प्रधर्षयामभिभवः। विषमास्र चेष्टा-बलवदियुद्धादय ॥ * ॥ सन्निपातज निदानमाह।

"एकैकशः सर्व्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः।
मानसेन च दुःखेन स पञ्चविध उच्यते ॥
विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम्" ॥ * ॥

तस्य सम्प्राप्तिमाह।

"तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा
बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य।
स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि
प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः" ॥

अल्पसत्त्वस्य अल्पसत्त्वगुणस्य। मलाः वातादयः। बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्येति। एतेनाश्रयस्य दुष्ट्या तदाश्रिताया बुद्धेरपि दुष्टिरुक्ता। मनोवहानि स्रोतांसि हृदयाश्रितानि दश। एतानि विशेषतो बोद्धव्यानि। यतश्चरकेण सकलशरीरस्रोतांस्येव मनोऽधिष्ठानत्वेनोक्तानि। प्रमोहयन्ति विहतं कुर्व्वन्ति ॥ * ॥

उन्मादस्य सामान्यरूपमाह।

"धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च
पर्य्याकुला दृष्टिरधीरता च।
अबद्धवाक्त्वं हृदयञ्च शून्यं
सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम्" ॥

धीविभ्रमः शुक्तिकायां रजतज्ञानम्। सत्त्वपरिप्लवः सत्त्वं मनस्तस्य चाञ्चल्यम्। अबद्धवाक्त्वं असम्बद्धभाषितम्। शून्यं स्मृतिशून्यम् ॥ * ॥

वातिकोन्मादस्य निदानपूर्व्विकां सम्प्राप्तिमाह।

"रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातु-
क्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः।
चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य
बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति शीघ्रम्" ॥

प्रदूष्य प्रकर्षेण दूषयित्वा ॥ * ॥

तस्यैव रूपमाह।

"अस्थानहास्यस्मितनृत्यगीत-
वागङ्गविक्षेपणरोदनानि।
पारुष्यकार्श्यारुणवर्णताश्च
जीर्णे बलञ्चानिलजस्य रूपम्" ॥

अस्थाने अनवसरे। हास्यादीनि रोदनान्तानि। जीर्णे आहारे। बलं व्याधेः ॥ * ॥

पैत्तिकस्य निदानपूर्व्विकां सम्प्राप्तिमाह।

"अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतै-
र्भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम्।
उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य
हृदि स्थितं पूर्व्ववदाशु कुर्य्यात्" ॥

हृदि स्थितं पित्तं चितं सञ्चितम्। पुनः अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैरुदीर्णवेगं सत् उन्मादं कुर्य्यात् पूर्व्ववत् हृदयं प्रदूष्य इत्यर्थः ॥ * ॥

तस्य रूपमाह।

"अमर्षसंरम्भविनग्नभावाः
सन्तर्जनाभिद्रवणौष्ण्यरोषाः।
प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषाः
पीतावभाः पित्तकृतस्य लिङ्गम्" ॥

अमर्षोऽसहिष्णुता। संरम्भः आरभटी आडम्बर इति यावत्। सन्तर्जनं परत्रासनम्। अभिद्रवणं पलायनम्। औष्ण्यं गात्रे। रोषो क्रोधविशेषः। प्रच्छाय इत्यादि छायाया शीतयोरन्नजलयोरभिलाषः ॥ * ॥

श्लैष्मिकस्य निदानपूर्व्विकां सम्प्राप्तिमाह।

"सम्पूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य
सोष्मा कफो मर्म्मणि संप्रवृद्धः।
बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति चित्तं
प्रमोहयन् सञ्जनयेद्विकारम्" ॥

सम्पूरणैर्भोजनादिभिः। मन्दविचेष्टितस्य व्यायामरहितस्य। सोष्मा कफ इति कफोऽप्युन्मादं करिष्यन् पित्तं सहायमपेक्षते व्याधिस्वभावात्। मर्म्मणि अत्र मर्म्मशब्देन हृदयमुच्यते। विकारमुन्मादरूपम् ॥ * ॥

तस्य रूपमाह।

"वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च
नारीविविक्तप्रियता च निद्रा।
छर्द्दिश्च लाला च बलञ्च भुक्ते
नखादिशौक्ल्यञ्च कफात्मके स्यात्" ॥

वाक्चेष्टितं मन्दं वचनमल्पम्। नारीविविक्तप्रियता नारीप्रियता विजनप्रियता च। भुक्ते सति बलं व्याधेः ॥ * ॥

सान्निपातिकस्य निदानपूर्व्वकं लक्षणमाह।

"यः सन्निपातप्रभवोऽतिघोरः
सर्व्वैः समस्तैः स तु हेतुभिः स्यात्।
सर्व्वाणि रूपाणि बिभर्त्ति तादृ-
ग्विरुद्धभैषज्यविधिर्व्विवर्ज्यः" ॥

स सान्निपातिक उन्मादः। सन्निपातग्रहणेनैव सर्व्वात्मकत्वं लब्धम्। पुनः सर्व्वैरिति यत्कृतं तद्रजस्तमःप्रापणार्थम्। तेन रजस्तमोभिर्मिलितैरित्यर्थः। तेन वातादयो रजस्तमोभिर्मनोदोषैर्मिलिताः। समस्तैश्च निदानैः कुपिता उन्मादं जनयन्ति। सर्व्वैर्हेतुभिः समस्तैर्मिलितैः स्यात्। यतोऽन्यो व्याधिः सर्व्वैर्हेतुभिर्मिलितैरेव भवतीति नियमो नास्ति। अयन्तु व्याधिप्रभावात् सर्व्वैर्हेतुभिर्म्मिलितैः स्यात्। तादृगुन्मादः विरुद्धभैषज्यविधिः। विरुद्धभैषज्यविधिरिति कोऽर्थः। त्रिदोषजे प्रत्येकं वातादिप्रत्यनीका कार्य्या। सा च परस्परविरोधिनी त्रिदोषं हन्ति किञ्चिदेव द्रव्यमामलकादि तथाप्रायोगिकम्। अतएव विवर्ज्यो न चिकित्स्य इत्यर्थः ॥ * ॥

मनोदुःखजस्य विप्रकृष्टं निदानमाह।

"चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यै-
र्वित्रासितस्य धनबान्धवसंक्षयाद्वा।
गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसो-
र्जायेत चोत्कटतरो मनसो विकारः" ॥

अन्यैर्हिंस्रादिभिः। गाढमतिशयेन। क्षते अभिहते। प्रियया प्राप्तुमशक्यया रिरंसोः पुरुषस्य विकारः उन्मादरूपः ॥ * ॥

तस्य रूपमाह।

"चित्रं ब्रवीति च मनोऽनुगतं विसंज्ञो
गायत्यथो हसति रोदिति चातिमूढः"।

चित्रमाश्चर्य्यम्। मनोऽनुगतं गोप्यमपि। विसंज्ञो विगतज्ञानः। अतीवमूढः अतीवज्ञानशून्यः। अत्र विकल्पो बोद्धव्यः ॥ * ॥

विषजस्य रूपमाह।

"रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सदीनः
श्यावाननो विषकृते तु भवेत् परासुः"।

परासुः मृतः ॥ * ॥

अरिष्टमाह।

"अवाङ्मुखस्तून्मुखो वा क्षीणमांसबलो नरः।
जागरूको ह्यसन्देहमुन्मादेन विनश्यति" ॥ * ॥

अथ देवादिकृतस्योन्मादस्य सामान्यलक्षणमाह।

"अमर्त्त्यवाग्विक्रमवीर्य्यचेष्टो
ज्ञानादिविज्ञानबलादियुक्तः।
प्रकोपकालो नियतश्च यस्य
देवादिजन्मा स मनोविकारः" ॥

अमर्त्त्यवाग्विक्रमवीर्य्यचेष्टः न मर्त्त्यस्येव मनुष्यस्येव वागादयो यत्र सः। विक्रमः पराक्रमः। वीर्य्यं शौर्य्यम्। ज्ञानादिविज्ञानबलादियुक्तः। ज्ञानं बुद्धिः। आदिपदेन तद्भेदा मेधा-विचारणा-स्मृत्यादयो गृह्यन्ते। विज्ञानं शिल्पादिविषयकं ज्ञानम्। चेष्टा पाटवम्। आदिपदेनाभिमानादि गृह्यते। नियतः वक्ष्यमाणतिथ्यादिभिः। मनोविकार उन्मादः ॥ * ॥

तत्र देवाविष्टस्य लक्षणमाह।

"सन्तुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगन्धो
निस्तन्द्रोऽवितथसंस्कृतभाषी।
तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता
ब्रह्मण्यो भवति नरः स देवजुष्टः" ॥

अतिदिव्यमाल्यगन्धः अतिशयो दिव्यमाल्यस्येव गन्धो यस्य सः। निस्तन्द्रः निद्रारहितः। अवितथं सत्यम्। ब्रह्मण्यः ब्राह्मणभक्तः ॥ * ॥

दैत्याविष्टमाह।

"संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता
जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः।
सन्तुष्टो भवति न चान्नपानजातै-
र्दुष्टात्मा भवति स देवशत्रुजुष्टः" ॥

विमार्गदृष्टिः कुमार्गरतः। दुष्टात्मा दुष्टस्वभावः।

गन्धर्व्वाविष्टमाह।

"हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी
स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः।
नृत्यन् वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं
गन्धर्व्वग्रहपरिपीड़ितो मनुष्यः" ॥

हृष्टात्मा हृष्टजीवात्मा। पुलिनं तोयोत्थितं तटम्। वनान्तरं वनमध्यम्। तयोः सेवी। स्वाचारः अनिन्दिताचारः। प्रियाणि परि समन्ततो भावेन गीतगन्धमाल्यानि यस्य स तथा। चारुचाल्पशब्दमिति हसनक्रियाया विशेषणम् ॥ * ॥

यक्षाविष्टमाह।

"ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी
गम्भीरोऽद्रुतगतिरल्पवाक् सहिष्णुः।
तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै
यो यक्षग्रहपरिपीड़ितो मनुष्यः" ॥ * ॥

पित्राविष्टमाह।

"प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डान्
शान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः।
मांसेक्षुतिलगुड़पायसाभिकाम-
स्तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिजुष्टः"॥

प्रेतानां मृतानां पितृणाम्। दिशति ददाति। अपसव्यवस्त्रः दक्षिणस्कन्धधृतोत्तरीयः॥*॥

नागाविष्टमाह।

"यस्तूर्व्व्यां प्रसरति सर्पवत् कदाचित्
सृक्कण्यौ मुहुरपि जिह्वयावलेढि।
क्रोधालुर्घृतमधुदुग्धपायसेषु-
र्विज्ञेयः स खलु भुजङ्गमेन जुष्टः"॥

प्रसरति सर्पवत् उरसा चलति। सृक्कण्यौ ओष्ठप्रान्तौ॥*॥

राक्षसाविष्टमाह।

"मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सु-
र्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः।
क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविचारी
शौचद्विट् भवति स राक्षसैर्गृहीतः"॥

अतिनिष्ठुरोऽतिनिर्दयः॥*॥

ब्रह्मराक्षसाविष्टमाह।

"देवविप्रगुरुद्वेषी वेदवेदाङ्गवित्शुचिः।
आत्मपीड़ाकरोऽहिंस्रो ब्रह्मराक्षससेवितः"॥

अहिंस्रः अहिंसाशीलः॥*॥

पिशाचाविष्टमाह।

"उद्ध्वस्तः कृशपरुषो विरुद्धभाषी
दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथातिलोलः।
बह्वाशी विजनवनान्तरोपसेवी
व्याचेष्टन् भ्रमति रुदन् पिशाचजुष्टः"॥

उद्ध्वस्तः नग्नः। दिगम्बर इति विदेहवचनात्। कृशो निर्मांसः। परुषो रूक्षः। अतिलोलः सर्व्वस्मिन् अन्नपाने लोलुपः। व्याचेष्टन् विरुद्धमाचेष्टन्। ग्रहा हिंसा क्रीड़ा पूजार्थं गृह्णन्ति। अत एवोक्तम्।

"अशुचिं भिन्नमर्य्यादं क्षतं वा यदि वाक्षतम्।
हिंस्युर्हिंसाविहारार्थं सत्कारार्थमथापि वा"॥*॥

तत्र हिंसार्थं गृहीतस्य लक्षणमाह।

"स्थूलाक्षो द्रुतमटनः सफेनवामी
निद्रालुः पतति च कम्पते च योऽति।
यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः स्यात्
सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशेऽब्दे॥"

यश्चाद्रीत्यादि यः पर्व्वतादिपतितः सन् ग्रहैर्गृहीत इत्यर्थः। आदिशब्देन भित्तिप्रासादादयो गृह्यन्ते। त्रयोदशेऽब्दे सर्व्व एव देवादिगृहीतोऽसाध्यः॥*॥

देवादीनामावेशसमयमाह।

"देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि।
गन्धर्व्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यपि॥
पितरः कृष्णपक्षे च पञ्चम्यामपि चोरगाः।
रक्षःपिशाचा रात्रौ च चतुर्दश्यां विशन्ति हि"॥

कृष्णपक्षे अमायाम्। प्रायशःपदादन्यत्रापि। तिथ्यभिधानप्रयोजनं लक्षणार्थं तत्र तिथौ बलिदानार्थञ्च॥*॥ ननु यदि देवादयो विशन्ति तदा विशन्तस्ते दृश्यन्ते कथं नेत्यत आह।

"दर्पणादीन् यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा।
स्वमणिं भास्करार्च्चिश्च यथा देहञ्च देहधृक्॥
विशन्ति न च दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम्"।

दर्पणादीत्यादिशब्देनान्यदपि निर्म्मलद्रवद्रव्यं गृह्यते। छाया प्रतिविम्बम्। स्वमणिं सूर्य्यमणिम्। देहधृक् जीवात्मा॥*॥*॥

अथोन्मादस्य चिकित्सा।

"वातिके स्नेहपानं प्राक् विरेकः पित्तसम्भवे।
कफजे वमनं कार्य्यं परो वस्त्यादिकक्रमः
यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारे चिकित्सितम्।
उन्मादे तच्च कर्त्तव्यं सामान्याद्दोषदूष्ययोः॥
जलादिद्रुमशैलेभ्यो विषमेभ्यश्च तं सदा।
रक्षेदुन्मादिनं यत्नात् सद्यः प्राणहरा हि ते"॥

ते जलादयः॥*॥

"ब्राह्मीकुष्माण्डीफलषड्ग्रन्थाशङ्खपुष्पिकास्वरसाः।
दृष्टा उन्मादहृतः पृथगेते कुष्ठमधुमिश्राः"॥

अत्र ब्राह्मीति पदं ब्राह्मीस्वरसपरम्। कुष्माण्डीफलं तद्बीजपरम्। षड्ग्रन्थे तु यथाश्रुतार्थमेव। तेनायमर्थः। वरमीकरसतोला ४ कुटकचूर्णमासा २ मधुमासा ८ पेयः। इत्येको योगः॥ कोहण्डके वीजकचूर्णमासा २ कुटकचूर्णमासा २ मधुना सनीयावलेह्यम्। द्वितीयो योगः। महाभरीवचकचूर्णमासा २ कुटकचूर्णमासा २ मधुनावलेह्यम्। तृतीयो योगः॥ शङ्खपुष्पीस्वरसतोला ४ कुटकचूर्णमासा २ मधुमासा ८ पेयः। चतुर्थयोगः॥*॥

"सिद्धार्थको हिङ्गु वचाकरञ्जौ देवदारु च।
मञ्जिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभीत्वक् कटुत्रिकम्॥
समांशानि प्रियङ्गुश्च शिरीषो रजनीद्वयम्।
वस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगदः पानमञ्जनम्॥
नस्यमालेपनञ्चैव स्नानमुद्वर्त्तनं तथा।
अपस्मारविषोन्मादकृत्यालक्ष्मीज्वरापहम्॥
भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे च शस्यते।
सर्पिरेतेन संसिद्धं सगोमूत्रं तथार्थकृत्"॥

सिद्धार्थकादि॥*॥

"सुहृद्दिष्टविनाशश्च दर्शयेदद्भुतानि च।
बद्धं सर्षपतैलाक्तं रक्षेदुत्तानमातपे॥
कपिकच्छ्वाथवा तप्तैर्लौहतैलजलैः स्पृशेत्।
कशाभिस्ताडयेत्तं वा सुबद्धं विजने गृहे॥
सर्पेणोद्धृतदंष्ट्रेण दान्तैः सिंहैर्गजैश्च तं।
त्रासयेच्छस्त्रहस्तैश्च शत्रुभिस्तस्करैस्तथा॥
अथवा राजपुरुषा वहिर्नीत्वा सुसंयतम्।
त्रासयेयुर्व्वधेनैनं तर्ज्जयन्तो नृपाज्ञया॥
देहदुःखभयेभ्यो हि यतः प्राणभयं महत्।
तेनास्य शमं याति सर्व्वतो विप्लुतं मनः॥
इष्टद्रव्यविनाशेन मनो यस्याभिहन्यते।
तस्य तत्सदृशप्राप्त्या सान्त्वाश्वासैः शमं नयेत्॥*॥
त्र्यूषणं हिङ्गु लवणं वचा कटुकरोहिणी।
शिरीषस्य करञ्जस्य वीजं गौराश्च सर्षपाः॥
गोमूत्रपिष्टैरेभिस्तु वर्त्तिर्नेत्राञ्जने हिता।
हन्त्युन्मादमपस्मारं तथा चातुर्थकं ज्वरम्"॥

त्र्यूषणाद्यञ्जनम्॥*॥

"कुष्ठाश्वगन्धे लवणाजमोदे
द्वे जीरके त्रीणि कटूनि पाठा।
मङ्गल्यपुष्पी च समान्यमूनि
सर्व्वैः समानाश्च वचा विचूर्ण्य॥
ब्राह्मीरसेनाखिलमेव भाव्य
वारत्रयं शुष्कमिदं हि चूर्णम्।
अक्षप्रमाणं मधुना घृतेन
लिह्यान्नरः सप्त दिनानि यावत्॥
सारस्वतमिदं चूर्णं ब्रह्मणा निर्म्मितं पुरा।
हिताय सर्व्वलोकानां दुर्म्मेधानां विचेतसाम्॥
एतस्याभ्यासतः पुंसां बुद्धिर्म्मेधा धृतिः स्मृतिः।
सम्पत्तिः कविताशक्तिः प्रवर्द्धेतोत्तरोत्तरम्"॥

मङ्गल्यपुष्पी शङ्खहूली इति लोके। सारस्वतचूर्णम्॥*॥

"विश्वाजमोदरजनीद्वयसैन्धवोग्रा-
पथ्याकुष्ठमगधोद्भवजीरकाणाम्।
चूर्णं प्रभातसमये लिहतः सघर्पि-
र्वाग्देवता निवसति स्वयमेव वक्त्रे"॥

विश्वाद्यं चूर्णम्॥*॥

"क्वाथ्ये विचूर्णिते त्रिंशत्पलं तन्मोड़शगुणं जलम्
पादशेषं प्रकर्त्तव्यमेष क्वाथविधिः स्मृतः॥
दशमूली तथा रास्ना वातारिश्छिन्नरुहा बला।
मूर्व्वा शतावरी चेति क्वाथ्यैस्तु कुड़वैः पृथक्॥
कृते क्वाथे घृतं प्रस्थद्वयं मृदग्निना पचेत्।
कल्कीकृतैर्वक्ष्यमाणद्रव्यैः सम्यक् पुनः पचेत्॥
विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्व्वेलवालुकम्।
स्थिरानन्ता रजन्यौ द्वे प्रियङ्गुः शारिवाद्वयम्॥
नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठादन्तीदाड़िमकेशरम्।
विडङ्गं पृश्निपर्णी च कुष्ठं चन्दनपद्मके॥
तालीसपत्रं बृहती मालतीकुसुमं नवम्।
अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैः कर्षमितैः पृथक्॥
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा पिष्टैस्तद्विपचेद्घृतम्।
महाचैतसनामेदं सर्व्वचेतोविकारहृत्॥
अपस्मारे महोन्मादे मन्देऽग्नौ ज्वरकासयोः।
वातरक्ते प्रतिश्याये शोषे कार्श्ये तृतीयके॥
मूत्रकृच्छ्रे कटीशूले विसर्पाभिहतेषु च।
पाण्ड्वामये तथा कण्ड्वां विषे मेहे गरेऽपि च॥
देवादिहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम्।
शस्तं स्त्रीणाञ्च बन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम्॥
अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्व्वग्रहनिवारणम्।
हन्ति भ्रमं मदं मूर्च्छां मेधास्मृतिमतिप्रदम्"॥

पृश्निपर्णी चाकुलीति लोके चामिया इति च। महाचैतसघृतम्॥*॥

अथ देवाद्याविष्टानां चिकित्सा।

"पूजाबल्युपहारेष्टिहोममन्त्राञ्जनादिभिः।
जयेदागन्तुमुन्मादं यथाविधि शुचिर्भिषक्॥
कृष्णामरिचसिन्धूत्थमधुगोरोचनाकृतम्।
अञ्जनं सर्व्वदेवादिकृतोन्मादहरं परम्"॥

कृष्णाद्यञ्जनम्॥*॥

"मृगजम्बुकलोमानि शल्लकी लशुनं तथा।
हिङ्गु मूत्रञ्च वस्तस्य धूपमस्य प्रयोजयेत्॥

एतेन शाम्यति क्षिप्रं बलवानपि यो ग्रहः" ।
ऋक्षलोमादिधूपः ॥ * ॥
"कल्याणकञ्च युञ्जीत महता चैतसं घृतम् ।
तैलं नारायणं चाथ महानारायणं तथा ॥
ऋते पिशाचादन्येषु प्रतिकूलं न चाचरेत् ।
रोगिणं भिषजं यत्ते क्रुद्धा हन्युर्महौजसः" ॥
इत्युन्मादाधिकारः । इति भावप्रकाशः ॥
आत्रेय उवाच ॥
"अयं मानसको व्याधिरुन्माद इति कीर्त्तितः ।
प्रमत्ता ऊर्द्धगा दोषा ऊर्द्धं गच्छन्त्यमार्गताम् ॥
उन्मादो नाम दोषोऽयं कष्टसाध्यो भिषग्वरैः ।
सोऽपि पृथग्विधैर्दोषैर्द्वन्द्वजोऽन्यः प्रकीर्त्तितः ।
अथान्यः सन्निपातेन त्रिधा भवति चापरः ॥
अशुचिविपथशून्यागारकेऽरण्यमध्ये
सभयगहनवीथीदेवतागारके च ।
अथ कथमपि भीत्या शङ्कया खिन्नचेत-
क्षुभितमनसमार्गत्याज्यमुन्मार्गयेति ॥
चिन्ताव्यथासुभयहर्षविमर्षलोभात्
देवातिथिद्विजनरेन्द्रगुरोर्विमानात् ।
प्रेमाधिकाद्युवजनादपि विप्रयोगात्
उन्मादहेतु च त्वया कथितं वरिष्ठैः ॥
तत्र गायति वा रौति विरूपं पठते यदा ।
लोलयेच्छर्दते वापि कम्पते हसते तथा ॥
धावते हनने चैव तथा जिह्वा विनश्यति ।
नरो वा भ्रमतेऽत्यर्थं पश्येद्घनमथातुरः ॥
तस्यापस्मारकं कर्म्म कर्त्तव्यं भिषजांवरैः ।
विशेषेण भूतविद्या मध्ये वक्ष्यामि चाग्रतः" ॥
इति महर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीय-
स्थाने उन्मादनिदाननामा विंशोऽध्यायः ॥
अस्य सम्प्राप्तिसहित-निदानलक्षण-चिकित्सिता-
न्याह वाभटः ॥
"उन्मादाः षट् पृथग्दोषनिचयाधिविषोद्भवा ।
उन्मादोनाम मनसो दोषैरुन्मार्गगैर्मदः ॥
शारीरमानसैर्दुष्टैरहितादन्नपानतः ।
विकृतासात्म्यसमलाद्विषमादुपयोगतः ॥
विषमस्याल्पसत्त्वस्य व्याधिवेगसमुद्भमात् ।
क्षीणस्य चेष्टावैषम्यात् पूज्यपूजाव्यतिक्रमात् ॥
आधिभिश्चित्तविभ्रंशाद्विषेणोपविषेण च ।
एभिर्विहीनसत्त्वस्य हृदि दोषाः प्रदूषिताः ॥
धियो विधाय कालुष्यं हत्वा मार्गान् मनोवहान्
उन्माद कुर्वते तेन धीविज्ञानस्मृतिभ्रमात् ॥
देही दुःखसुखभ्रष्टो भ्रष्टसारथिवद्रथः ।
भ्रमत्यचिन्तितारम्भम्"—
वातादिभेदेन लक्षणं यथा ॥
"तत्र वातात् कृशाङ्गता ॥
अस्थाने रोदनाक्रोशहसितस्मितनर्त्तनम् ।
गीतवादित्रवागङ्गविक्षेपास्फोटनानि च ॥
असाम्ना वेणुवीणादिशब्दानुकरणं मुहुः ।
आस्यात् फेनागमोऽजस्रमटनं बहुभाषिता ॥
अलङ्कारोऽनलङ्कारैरयानैर्गमनोद्यमः ।
गृद्धिरभ्यवहार्येषु तल्लाभे चावमानता ॥
उत्पिण्डितारुणाक्षित्वं जीर्णे चान्ने गदोद्भवः ॥ १ ॥
पित्तात् सन्तर्ज्जनं क्रोधो मुष्टिलोष्ठाद्यभिद्रवः ।
शीतच्छायोदकाकाङ्क्षा नग्नत्वं पीतवर्णता ।
असत्यज्वलनज्वालातारकादीपदर्शनम् ॥ २ ॥
कफादरोचकश्छर्दिरल्पेहाहारवाक्यता ।
स्त्रीकामता रहः प्रीतिर्लालासिङ्घाणकस्रुतिः ॥
बैभत्स्यं शौचविद्वेषो निद्राश्वयथुराननै ।
उन्मादो बलवान् रात्रौ भुक्तमात्रे च जायते ॥ ३ ॥
सर्व्वायतनसंस्थानसन्निपाते तदात्मकम् ।
उन्मादं दारुणं विद्यात्तं भिषक् परिवर्ज्जयेत् ॥ ४ ॥
धनकान्तादिनाशेन दुःसहेनाभिषङ्गवान् ।
पाण्डुर्दीनो मुहुर्मुह्यन् हाहेति परिदेवते ॥
रोदित्यकस्मान् म्रियते तद्गुणान् बहु मन्यते ।
शोकक्लिष्टमना ध्यायन् जागरूको विचेष्टते ॥ ५ ॥
विषेण श्याववदनो नष्टच्छायाबलेन्द्रियः ।
वेगान्तरेऽपि संभ्रान्तो रक्ताक्षस्तं विवर्जयेत्" ॥ ६ ॥
चिकित्सा यथा ॥
"अथानिलज उन्मादे स्नेहपानं प्रयोजयेत् ।
पूर्व्वमावृतमार्गे तु सस्नेहं मृदुशोधनम् ॥
कफपित्तभवेऽप्यादौ वमनं सविरेचनम् ।
तथास्य शुद्धदेहस्य प्रसादं लभते मनः ॥
इत्थमप्यनुवृत्तौ तु तीक्ष्णं नावनमञ्जनम् ।
हर्षणाश्वासनोत्त्रासभयताडनतर्ज्जनम् ॥
अभ्यङ्गोद्वर्त्तनालेपधूमान् पानञ्च सर्पिषः ।
युञ्ज्यात्तानि हि शुद्धस्य नयन्ति प्रकृतिं मनः" ॥ * ॥
"द्वौ प्रस्थौ स्वरसाद्ब्राह्म्या घृतप्रस्थञ्च साधितम् ॥
व्योषश्यामात्रिवृद्दन्तीशङ्खपुष्पीन्टपद्रुमैः ।
ससप्तलाक्रिमिहरैः कल्कितैरक्षसम्मितैः ॥
पलवृद्ध्या प्रयुञ्जीत परं मात्राचतुष्पलम् ।
उन्मादकुष्ठापस्मारहरं वन्ध्यासुतप्रदम् ॥
वाक्स्वरस्मृतिमेधाकृद्धन्यं ब्राह्मीघृतं स्मृतम्" ॥
इति ब्राह्मीघृतम् ॥ * ॥
"वरा विशाला भद्रैला देवदार्व्वेलवालुकैः ।
द्विसारिवा द्विरजनी द्विस्थिरा फलिनी नतैः ॥
बृहतीकुष्ठमञ्जिष्ठानागकेशरदाडिमैः ।
वेल्लतालीशपत्रैलामालतीमुकुलोत्पलैः ॥
सदन्तीपद्मकहिमैः कर्षांशैः सर्पिषः पचेत् ।
प्रस्थं भूतग्रहोन्मादकासापस्मारपाप्मसु ॥
पाण्डुकण्डुविषे शोफे मोहे मेहे गरे ज्वरे ।
अरेतस्यप्रजसि वा दैवोपहतचेतसि ॥
अमेधसि स्खलद्वाचि स्मृतिकामेऽल्पपावके ।
बल्यं मङ्गल्यमायुष्यं कान्तिसौभाग्यपुष्टिदम् ॥
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च" ॥
इति कल्याणघृतम् ॥ * ॥
"एभ्यो द्विसारिवादीनि जले पक्त्वैकविंशतिम् ।
रसे तस्मिन् पचेत्सर्पिर्गृष्टिक्षीरं चतुर्गुणम् ॥
वीरर्द्धिमेदाकाकोलीकपिकच्छूविषाणिभिः ।
शूर्पपर्णीयुतैरेतन्महाकल्याणकं परम् ॥
बृंहणं सन्निपातघ्नं पूर्व्वस्मादधिकं गुणैः" ॥
इति महाकल्याणघृतम् ॥ * ॥
"जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचा ॥
त्रायमाणा जया वीरा चोरकः कटुरोहिणी ।
कायस्था शूकरीच्छत्रा अतिच्छत्रा पलङ्कषा ॥
महापुरुषदन्ता च वनस्था नाकुलीद्वयम् ।
कटम्भरा वृश्चिकाली शालिपर्णी च तैर्घृतम् ॥
सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ।
महापैशाचकं नाम घृतमेतद्यथामृतम् ॥
बुद्धिमेधास्मृतिकरं बालानाञ्चाङ्गवर्द्धनम्" ॥
इति महापैशाचकं घृतम् ॥ * ॥
"अवपीडाश्च विविधाः सर्षपाः स्नेहसंयुताः ।
कटुतैलेन चाभ्यङ्गो ध्मापयेच्चास्य तद्रजः ॥
सहिङ्गुस्तीक्ष्णधूमश्च सूत्रस्थानोदितो हितः ॥ * ॥
शृगालशल्यकोलूकजलूकावृषवस्तजैः ॥
मूत्रपित्तशकृल्लोमनखचर्म्मभिराचरेत् ।
धूपधूमाञ्जनाभ्यङ्गप्रदेहपरिषेचनम् ॥
धूपयेत् सततञ्चैनं श्वगोमत्स्यैस्तु पूतिभिः ।
वातश्लेष्मात्मके प्रायः पैत्तिके तु प्रशस्यते ॥
तिक्तकं जीवनीयञ्च सर्पिः स्नेहश्च मिश्रकः ।
शिशिराण्यन्नपानानि मधुराणि लघूनि च ॥
विध्येच्छिरां यथोक्तां वा तृप्तं मेद्यामिषस्य वा ।
निवाते शाययेदेवं मुच्यते मतिविभ्रमात्" ॥
"भूतानुबन्धमीक्षेत प्रोक्तां लिङ्गाधिकाकृतिम् ॥
यद्युन्मादे ततः कुर्याद्भूतनिर्दिष्टमौषधम् ।
बलिञ्च दद्यात् पललं यावकं सक्तुपिण्डिकाम् ॥
स्निग्धं मधुरमाहारं तण्डुलान् रुधिरोक्षितान् ।
पक्वामकानि मांसानि सुरामैरेयमासवम् ॥
अतिमुक्तस्य पुष्पाणि जात्याः सहचरस्य च ।
चतुष्पथे गवां तीर्थे नदीनां सङ्गमेषु च ॥
निवृत्तामिषमद्यो यो हिताशी प्रयतः शुचिः ।
निजागन्तुभिरुन्मादैः सत्त्ववान्न स युज्यते ॥
प्रसाद इन्द्रियार्थानां बुद्ध्यात्ममनसान्तथा ।
धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलक्षणम्" ॥ * ॥
इति वाभटे उत्तरस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥
अस्य सनिदानसम्प्राप्तिर्यथा ।
"इह खलु पञ्चोन्मादा भवन्ति । तद्यथा,—
वातपित्तकफसन्निपातागन्तुनिमित्तास्तत्र दोष-
निमित्ताश्चत्वारः ।
पुरुषाणामेवंविधानां क्षिप्रमभिनिर्वर्त्तन्ते तद्यथा,
"भीरूणामुपक्लिष्टसत्त्वानामुत्सन्नदोषाणाञ्च
मलविकृतोपहितानि अनुचितान्याहारजातानि
वैषम्ययुक्तेनोपयोगविधिनोपयुञ्जानानां तन्त्रप्रयोगं
वा विषममाचरतामन्यां वा चेष्टां विषमां समा-
चरतामत्युपक्षीणदेहानाञ्च व्याधिवेगसमुद्भ्रमि-
तानामुपहतमनसां वा काम-क्रोध-लोभ-हर्ष-भय-
शोक-चिन्तोद्वेगादिभिः पुनरभिघाताभ्याहतानां
वा मनस्युपहते बुद्धौ च प्रचलितायामभ्युदीर्णा
दोषाः प्रकुपिता हृदयमुपसृत्य मनोवहानि
स्रोतांस्यावृत्य जनयन्त्युन्मादम् । उन्मादं पुनर्मनो-
बुद्धि-सञ्ज्ञा-ज्ञान-स्मृति भक्ति-शील-चेष्टाचार-
विभ्रमं विद्यात्" ॥
तस्येमानि पूर्व्वरूपाणि । तद्यथा,—
"शिरसः शून्यभावः चक्षुषो व्याकुलता स्वनः कर्ण-
योरुच्छ्वासस्याधिक्यमास्यस्रवणमनन्नाभिलाषो-
ऽरोचकाविपाकौ हृदयग्रहो ध्यानायास-सम्मो-
होद्वेगाश्चास्थाने सततं लोमहर्षो ज्वरश्चाभीक्ष्ण-

मुन्मत्तचित्तत्वमुदर्दितत्वमर्दिताकृतिकरणञ्च व्याधेः स्वप्ने च दर्शनमभीक्ष्णं भ्रान्तचलितानवस्थितानवस्थितानाञ्च रूपाणामप्रशस्तानाञ्च तिलपीडकचक्राधिरोहणं वातकुण्डलिकाभिश्चोन्मथनं निमज्जनं कलुषाणामम्भसामावर्त्तेषु चक्षुषोश्चापसर्पणमिति दोषनिमित्तानामुन्मादानां पूर्व्वरूपाणि" ॥

अत्र वातादिभेदेनास्य लक्षणानि यथा,—

"ततोऽनन्तरमुन्मादाभिनिर्वृत्तिस्तत्रेदमुन्मादविज्ञानं भवति। तद्यथा,—परिसर्पणमक्षिभ्रुवामोष्ठांस हनु-हस्त-पादविक्षेपणमकस्मादनियतानाञ्च सततङ्गिरामुत्सर्गः फेनागमनमास्यात् स्मितहसित नृत्य-गीत-वादित्र-प्रयोगाश्चास्थाने वीणा-वंश-शङ्ख-शम्यातालशब्दानुकरणमसाम्ना। यानमयानैरलङ्करणमनलङ्कारिकैर्द्रव्यैर्लोभोऽभ्यवहार्य्येष्वलब्धेषु। लब्धेषु चावमानस्तीव्रं मात्सर्य्यं कार्श्यं पारुष्यमुत्पिण्डितारुणाक्षता वातोपशय विपर्य्यासादनुपशयिता चेति वातोन्मादलिङ्गानि भवन्ति॥

अमर्षः क्रोध-संरम्भश्चास्थाने शस्त्रलोष्टकाष्ठ-मुष्टिभिरभिद्रवणं स्वेषां परेषां प्रच्छाय-शीतोदकान्नाभिलाषः। सन्तापोऽतिवेलम्। ताम्रहरित-हारिद्रसंरब्धाक्षिता पित्तोपशयविपर्य्यासादनुपशयिता चेति पित्तोन्मादलिङ्गानि भवन्ति॥

स्थानमेकदेशे तूष्णीम्भावोऽल्पशश्चङ्क्रमणं लालाशिङ्घाणकास्रवणमनन्नाभिलाषो रहस्कामता बीभत्सत्वं शौचद्वेषः स्वप्न-निद्रता श्वयथुराननेसुशुक्ल-स्तिमितमलोपदिग्धाक्षता श्लेष्मोपशयविपर्य्यासादनुपशयिता चेति श्लेष्मोन्मादलिङ्गानि भवन्ति। त्रिदोषलिङ्गसन्निपाते तु सान्निपातिकं विद्यात्। तमसाध्यमित्याचक्षते कुशलाः"॥

साधारणसाधनविधिर्यथा।

"साध्यानान्तु त्रयाणां साधनानि भवन्ति। तद्यथा,—स्नेह स्वेद-वमन-विरेचनास्थापनानुवासनोपशमननस्तःकर्म्म-धूप-धूम-पानाञ्जनावपीड-प्रधमनाभ्यङ्ग-प्रदेह-परिषेकानुलेपन-वध-बन्धनावरोधन-वित्रासन-विस्मापन-विस्मारणापतर्पण-शिराव्यधनानि॥

भोजनविधानञ्च यथास्वं युक्त्या यच्चान्यदपि किञ्चिन्निदानविपरीतमौषधं कार्य्यं तत्स्यादिति। उन्मादान् दोषजान् साध्यान् साधयेद्भिषगुत्तम। अनेन विधियुक्तेन कर्म्मणा यत्प्रकीर्त्तितम्"॥ इति॥

आगन्तुरुन्मादो यथा।

"यस्तु दोषनिमित्तेभ्य उन्मादेभ्यः समुत्थानपूर्व्वरूपलिङ्गविशेषसमन्वितो भवत्युन्मादस्तमागन्तुमाचक्षते॥

केचित् पुनः पूर्व्वकृतं कर्म्माप्रशस्तमिच्छन्ति। तस्य निमित्तं प्रज्ञापराध एवेति भगवान् पुनर्व्वसुरात्रेय उवाच॥

प्रज्ञापराधाद्ध्ययं देवर्षि-पितृ-गन्धर्व्व यक्ष-राक्षस-पिशाच-गुरु-वृद्ध-सिद्धाचार्य्य पूज्यानवमत्याहितान्याचरति अन्यद्वा किञ्चित् कर्म्माप्रशस्तमारभते।

तमात्मनो हतमुपघ्नन्तो देवादयः कुर्व्वन्त्युन्मत्तम्"॥

आगन्तून्मादस्य पूर्व्वरूपाणि यथा।

"तत्र देवादिप्रकोपनिमित्तेनागन्तून्मादेन पुरस्कृतस्येमानि पूर्व्वरूपाणि। तद्यथा—देव गो-ब्राह्मण-तपस्विनां हिंसारुचित्वं कोपनत्वं नृशंसाभिप्रायता अरतिरोजो-वर्णच्छाया बल वपुषाञ्चोपतप्तिः स्वप्ने च देवादिभिरभिभर्त्सनं प्रवर्त्तनञ्चेति ततोऽनन्तरमुन्मादाभिनिर्वृत्तिः॥

तत्रायमुन्मादकराणां भूतानामुन्मादयिष्यतामारम्भविशेषो भवति। तद्यथा। अवलोकयन्तो देवा जनयन्त्युन्मादं गुरुवृद्धसिद्धर्षयोऽभिशपन्तः पितरो धर्षयन्तः स्पृशन्तो गन्धर्व्वाः समाविशन्तो यक्षराक्षसास्त्वात्मगन्धमाघ्रापयन्तः पिशाचाः पुनरारुह्य वाहयन्त॥

तस्येमानि रूपाणि भवन्ति। तद्यथा। अमर्त्त्यबल-वीर्य्य पौरुष-पराक्रम-ग्रहण-धारण स्मरण-वचन-ज्ञान-विज्ञानान्यनियतश्चोन्मादकालः।

उन्मादयिष्यतामपि खलु देवर्षि-पितृ-गन्धर्व्व-यक्ष-राक्षस पिशाचानां गुरुवृद्धसिद्धानां वा एष्वन्तरेष्वभिगमनीया पुरुषा भवन्ति। तद्यथा—पापस्य कर्म्मणः समारम्भे पूर्व्वकृतस्य वा कर्म्मणः परिणामकाले एकस्य वा शून्यगृहवासे चतुष्पथाधिष्ठाने वा सन्ध्यावेलायामप्रयतभावे वा पर्व्वसन्धिषु वा मिथुनीभावे रजस्वलाभिगमने वा विगुणे वाऽध्ययन बलि-मङ्गल होम प्रयोगे नियमव्रतब्रह्मचर्य्ये वा महाहवे वा देश कुल-पुर-विनाशे वा महाग्रहोपगमने वा स्त्रिया प्रजनन-काले विविधभूताशुचिसंस्पर्शने वा वमनरुधिर-स्रावाशुचेरप्रयतस्य चैत्य-देवायतनाभिगमने वा मांस मधु तिल गुड़-मद्योच्छिष्टे वा दिग्वाससि वा निशि नगर-निगम-चतुष्पथे पवनश्मशानाभिगमने वा द्विज-गुरु-सुर-यति पूज्याभिधर्षणे वा धर्म्माख्यानव्यतिक्रमे वा अन्यस्य कर्म्मणोऽप्रशस्तस्यारम्भे वा इत्याघातकालाः व्याख्याता भवन्ति॥

त्रिविधन्तु खलून्मादकराणां भूतानामुन्मादने प्रयोजनम्भवति। तद्यथा। हिंसा रतिरभ्यर्च्चनञ्चेति। तेषां तत्प्रयोजनविशेषमुन्मत्ताचारविशेषलक्षणैर्विद्यात्। तत्र हिंसार्थमुन्माद्यमानोऽग्निं प्रविशत्यप्सु वा निमज्जति स्थलात् श्वभ्रे निपतति शस्त्र कशा काष्ठ-लोष्ट-मुष्टिभिर्हन्त्यात्मानमन्यच्च प्राणवधार्थमारभते। तमसाध्यं विद्यात्। साध्यौ पुनर्द्वावितरौ। तयोः साधनानि। मन्त्रौषधि-मणि-मङ्गल बल्युपहार-होम-नियम-प्रायश्चित्तोपवास-स्वस्त्ययन-प्रणिपात-गमनादीन्येवमेते पञ्चोन्मादाः व्याख्याता भवन्ति"॥

"नैव देवा न गन्धर्व्वा न पिशाचा न राक्षसाः।
न चान्ये स्वयमक्लिष्टमुपक्लिश्यन्ति मानवम्॥
ये त्वेनमनुवर्त्तन्ते क्लिश्यमानं स्वकर्म्मणा।
न तन्निमित्तः क्लेशोऽसौ न ह्यस्ति कृतकृत्यता"॥

इति चरके निदानस्थाने सप्तमोऽध्यायः॥ * ॥

चिकित्साविशेष आगन्तून्मादकारणलक्षणविशेषश्च।

"समूढ़चेता न सुखं न दुःखं
नाचारधर्म्मौ कुत एव शान्तिम्।
विन्दत्यपास्तस्मृतिबुद्धिसंज्ञो
भ्रमत्ययञ्चेतइतस्ततश्च॥
समुद्भ्रमं बुद्धिमनःस्मृतीना-
मुन्मादमागन्तुनिजोत्थमाहुः"॥

"देवर्षि गन्धर्व्व पिशाच यक्ष-
रक्षःपितॄणामभिधर्षणानि।
आगन्तुहेतुर्नियमव्रतादि-
मिथ्याकृतं कर्म्म च पूर्व्वदेहे"॥

"अदूषयन्तः पुरुषस्य देहं
देवादयः स्वैस्तु गुणप्रभावैः।
विशन्त्यदृश्यास्तरसा यथैव
च्छायातपौ दर्पणसूर्य्यकान्तौ॥
आघातकालास्तु सपूर्व्वरूपाः
प्रोक्ता निदानेऽथ सुरासुराद्याः।
उन्मादरूपाणि पृथक् निबोध
कालञ्च गम्यान् पुरुषांश्च तेषाम्"॥

तद्यथा,—सौम्यदृष्टिं गम्भीरमप्रधृष्यमकोपनमस्वप्नमभोजनाभिलाषिणमल्पस्वेदमूत्रपुरीषवातं शुभगन्धं फुल्लपद्मवदनमिति देवोन्मत्तं विद्यात्॥

गुरुवृद्धसिद्धर्षीणामभिशापाभिचाराभिध्यानानुरूपचेष्टाहारव्याहारं तैरुन्मत्तं विद्यात्॥

अप्रसन्नदृष्टिमपश्यन्तं निद्रालुं प्रतिहतवाचमनन्नाभिलाषमरोचकाविपाकपरीतं पितृभिरुन्मत्तं विद्यात्॥

चण्डं साहसिकं तीक्ष्णं गम्भीरमप्रधृष्यं मुखवाद्य-नृत्य गीतान्नपान-स्नान-माल्य-धूप-गन्ध-रक्त-वस्त्र-बलिकर्म्म-हास्य-कथायोगप्रियं शुभगन्धमिति गन्धर्व्वोन्मत्तं विद्यात्॥

असकृत् स्वप्नरोदनहास्यं नृत्य-गीत-वाद्य-कथान्नपान स्नान-माल्य-धूप-गन्धरतिं रक्तविप्लुताक्षं द्विजातिवैद्यपरिवादिनं रहस्यभाषिणमिति यक्षोन्मत्तं विद्यात्॥

नष्टनिद्रमन्नपानद्वेषिणमनाहारमपि बलिनं शस्त्रशोणितमांसरक्तमाल्याभिलाषिणं सन्तर्ज्जकमिति राक्षसोन्मत्तं विद्यात्॥

प्रहासनृत्यप्रधानं देवविप्रवैद्यद्वेषावज्ञाभिः स्तुतिवेदमन्त्रशास्त्रोदाहरणैः काष्ठादिभिरात्मपीड़नेन च ब्रह्मराक्षसोन्मत्तं विद्यात्॥

अस्वस्थचित्तं स्थानमनभिमानं नृत्यगीतहासिनं बद्धाबद्धप्रभाषिणं सङ्करकूटमलिनरथ्याचेलतृणेष्वारोहणरतिं भिन्नरूक्षवर्णस्वरं नग्नं विधावन्तं नैकत्र तिष्ठन्तं दुःखान्यावेदयन्तं नष्टस्मृतिं पिशाचोन्मत्तं विद्यात्॥

भूतादीनामावेशकालो यथा।

"तत्र शौचाचारं तपःस्वाध्यायकोविदं नरं प्रायः शुक्लप्रतिपदि त्रयोदश्याञ्च देवाः, स्नानशुचिं विविक्तसेविनं धर्म्मशास्त्रश्रुतिकाव्यकुशलं प्रायः षष्ठीनवम्योर्महर्षयः, मातृ-पितृ-गुरु वृद्ध-सिद्धाचार्य्योपसेविनं प्रायो दशम्याममावस्यायाञ्च पितरः, गन्धर्व्वास्तु स्तुतिगीतवादित्ररतिं परदार गन्ध-माल्य-प्रिय-शौचाचारं द्वादश्याञ्चतुर्द्दश्याञ्च,

सत्त्व-बल-रूप-गर्व्व-शौर्य्य-युक्त माल्यानुलेपनं हास्यप्रियमतिवाक्करण प्राय शुक्लैकादश्यां समभ्याञ्च यच्छा, स्वाध्याय-तपोनियमोपवासव्रतचर्य्या-देव-यति-गुरु-पूजारति भ्रष्टशौच ब्राह्मणमब्राह्मण वा ब्रह्मवादिन शूरमानिन देवतागार-सलिल-क्रीडनरति प्रायः शुक्लपक्षस्य पूर्णचन्द्रदर्शने च ब्रह्मराक्षसा, रक्ष पिशाचास्तु हीनसत्त्व-पिशुन-स्त्रैण-लुब्ध प्रायो द्वितीयाततीयास्वमीषु पुरुषं छिद्रमपेक्ष्याभिधर्षयन्तीत्यपरिसंख्येयाना ग्रहाणा-माविष्कृततमा ह्यष्टावेते व्याख्याता" ॥

अत्र ये असाध्यास्तेषा लक्षणानि यथा।

"सर्व्वेष्वपि तु खल्वेष यो हस्तावुद्यम्य रोष-संरम्भो निःसङ्गमन्येष्वात्मनि वा पातयेत् सह्यसाध्यो ज्ञेयस्तथा साश्रुनेत्रो मेढ्रप्रवृत्तरक्त क्षतजिह्व प्रस्रुतनासिकश्छिद्यमानमर्म्मा प्रतिहन्यमानपाणि सतत विकूजन् दुर्व्वर्णस्तृषार्त्त पूतिगन्धिश्च हिंसार्थी उन्मत्तो ज्ञेयस्त परिवर्जयेत्। रत्यर्चना-कामोन्मादिनौ तु भिषगभिप्रायाचाराभ्या बुद्धा तदङ्गोपहारबलिश्रमेण मन्त्रभैषज्यविधिनोप क्रमेत्" ॥

अस्य चिकित्सा यथा।

"लशुनाना शत त्रिंशदभयात्र्यूषणात्पलम्।
गवा चर्म्ममसी प्रस्थो द्व्याढक क्षीरमूत्रयो ॥
पुराणसर्पिष प्रस्थमेभि सिद्ध प्रयोजयेत्।
हिङ्गुचूर्णं पल शीते दत्त्वा च मधुमाणिकाम् ॥
तद्दोषागन्तुसम्भूतानुन्मादान् विषमज्वरान्।
अपस्मारांश्च हन्त्याशु पानाभ्यञ्जननावनै" ॥

लशुनाद्य घृतम् ॥ * ॥

"विशेषत पुराणञ्च घृत त पाययेद्भिषक्।
त्रिदोषघ्न पवित्रत्वाद्विशेषाद्ग्रहमोचनम् ॥
गुणकर्म्माधिक स्यानारास्वादात् कटुतिक्तकम्।
उग्रगन्ध पुराण स्याद्दशवर्षस्थित घृतम् ॥
लाक्षारससनिभ शीत तद्धि सर्व्वग्रहापहम्।
मेध्य विरेचेष्वग्र्य प्रपुराणमत परम् ॥
नासाध्यं नाम तस्यास्ति यत्स्यात् वर्षशत स्थितम्।
दृष्ट स्पृष्टमथाघ्रात तद्धि सर्व्वग्रहापहम् ॥
अपस्मारग्रहोन्मादवता शस्त विशेषत" ॥

"एतैरौषधवर्गैर्व्वा विधेयत्व स गच्छति।
अञ्जनोन्मादनालेपाञ्चावनादींश्च योजयेत् ॥
शिरीषो मधुक हिङ्गु लशुन तगर वचाम्।
कुष्ठञ्च वस्तमूत्रेण पिष्ट स्यान्नावनाञ्जनम्" ॥

इति नस्याञ्जनम् ॥ * ॥

"प्रसेके पीनसे गन्धैर्धूमवर्त्ति कृताम्पिबेत्।
वैरेचनिकधूमोक्तै श्वेताद्यैर्व्वासहिङ्गुभि" ॥

इति धूमपानम् ॥ * ॥ [शिराम्।

"शङ्खके शान्तसन्धौ वा मोक्षयेज्ज्ञो भिषक्
उन्मादे विषमे चैव ज्वरेऽपस्मार एव च" ॥

"कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसम्भवान्।
परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शम नयेत्" ॥

"देवर्षिपितृगन्धर्व्वैरुन्मत्तस्य तु बुद्धिमान्।
वर्ज्जयेदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरकर्म्म च ॥
सर्पिःपानादि तस्येह मृदुभैषज्यमाचरेत्।

पूजा बल्युपहाराश्च मन्त्राञ्जनविधींस्तथा ॥
शान्तिकर्म्मेष्टिहोमाश्च जपस्वस्त्ययनानि च।
वेदोक्तान् नियमांश्चापि प्रायश्चित्तानि चाचरेत् ॥
भूतानामधिप देवमीश्वर जगत प्रभुम्।
पूजयन् प्रयतो नित्यं जयत्युन्मादज भयम् ॥
रुद्रस्य प्रमथा नाम गणा लोके चरन्ति ये।
तेषा पूजाञ्च कुर्व्वाण उन्मादेभ्यो विमुच्यते" ॥

इति च चरके चिकित्सास्थाने चतुर्द्दशोऽध्याय ॥

अस्य विशिष्टपूर्व्वरूपं यथा।

"मोहोद्वेगौ स्वनः श्रोत्रे गात्राणामपकर्षणम्।
अत्युत्साहोऽरुचिश्चान्ने स्वप्ने कलुषभोजनम् ॥
वायुनोन्मथनञ्चापि भ्रमश्च क्रमतस्तथा।
यस्य स्यादचिरेणैवमुन्माद सोऽधिगच्छति" ॥

वातजादिभेदेन रूपाणि यथा ॥

"रूक्षच्छवि परुषवाक् धमनीततो वा
श्वासातुर कृशतनु स्फुरिताङ्गसन्धि।
आस्फोटयन् पठति गायति नृत्यशीलो
विक्रोशति भ्रमति चाप्यनिलप्रकोपात् ॥ १ ॥
तृट्स्वेददाहबहुलो बहुभुग्विनिद्र-
श्छायाहिमानिलजलान्तविहारसेवी।
तीक्ष्णो हिमाम्बुनिचयेऽपि स वह्निशङ्की
पित्ताद्दिवा नभसि पश्यति तारकाश्च ॥ २ ॥
छर्द्यग्निसादसदनारुचिकासयुक्तो
योषिद्विविक्तरतिरल्पमतिप्रकार।
निद्रापरोऽल्पकथनोऽल्पभुगुष्णसेवी
रात्रौ भृश भवति चापि कफप्रकोपात् ॥ ३ ॥
सर्व्वात्मके त्रिभिरपि व्यतिमिश्रितानि
रूपाणि वातकफपित्तकृतानि विद्यात्।
सम्पूर्णलक्षणमसाध्यमुदाहरन्ति
सर्व्वात्मक क्वचिदपि प्रवदन्ति साध्यम्" ॥ ४ ॥

अपरयोर्लक्षणानि प्रथमतोऽस्योक्तानि।

अस्य चिकित्सा यथा।

"स्निग्ध स्विन्नन्तु मनुजमुन्मादार्त्तं विशोधयेत्।
तीक्ष्णैरुभयतो भागे शिरसश्च विरेचन ॥
विविधैरवपीडैश्च सर्षपस्नेहसयुतै।
योजयित्वा च तच्चूर्णं घ्राणे नस्यन्तु योजयेत् ॥
सतत धूपयेच्चैन श्वगोमांसै सुपूतिभि।
सर्षपाणाञ्च तैलेन नस्याभ्यङ्गौ हितौ सदा ॥
दर्शयेदद्भुतान्यस्य वदेन्नाश प्रियस्य च।
भीमाकारैर्नरैर्नागैर्दान्तैर्व्यालैश्च निर्व्विषैः ॥
भीषयेत् सतत पाशै कशाभिर्वाथ ताडयेत्।
यन्त्रयित्वा सुघृत वा त्रासयेत्त तृणाग्निना ॥
प्रतुदेदारयेच्चैन मर्म्माघात विवर्ज्जयेत्।
सापिधाने जरत्कूपे सतत वा निवासयेत्" ॥

"वर्षिष्ठकुष्ठमञ्जिष्ठाकटुकैलानिशाह्वये।
तेनेद त्रिफलाहिङ्गुवाजिगन्धामरद्रुमै ॥
वचाजमोदाकाकोलीमेदामधुकपद्मकै।
सशर्कर हित सर्पि पक्व क्षीरचतुर्गुणम् ॥
बालाना ग्रहजुष्टानां पुसा दुष्टाल्पमेधसाम्।
ख्यातं फलघृतं स्त्रीणा वन्ध्यानाञ्चाशु गर्भदम्" ॥

इति फलघृतम् ॥ * ॥

"उरोऽपाङ्गललाटेषु शिराश्चास्य विमोक्षयेत्।
अपस्मारक्रियाश्चापि ग्रहोद्दिष्टाश्च कारयेत्।
शान्तदोषं विशुद्धञ्च स्नेहवस्तिभिराचरेत् ॥
शोकशल्य व्यपनयेदुन्मादे पञ्चमे भिषक्।
उन्मादेषु च सर्व्वेषु कुर्य्याच्चित्तप्रसादनम् ॥
मृदुपूर्व्व मदेऽप्येव क्रिया विद्वान् प्रयोजयेत्।
विषजे मृदुपूर्व्वाञ्च विषघ्नीं कारयेत् क्रियाम्" ॥

इति सुश्रुते उत्तरतन्त्रे द्विषष्टितमोऽध्याय ॥ * ॥

"तपांसि तीव्राणि तथैव दान
व्रतानि धर्म्मो नियमश्च सत्यम्।
गुणास्तथाष्टावपि तेषु नित्या
व्यस्ता समस्ताश्च यथाप्रभावम् ॥
न ते मनुष्यै सह सविशन्ति
न वा मनुष्यान् क्वचिदाविशन्ति।
ये वा विशन्तीति वदन्ति मोहात्
ते भूतविद्याविषयादपोह्या ॥
तेषा ग्रहाणा परिचारका ये
कोटीसहस्रायुतपद्मसङ्ख्या।
असृग्वसामांसभुज सुभीमा
निशाविहाराश्च तमाविशन्ति" ॥

"निशाचराणा तेषा हि ये देवगणसहता।
ते तु तत्सत्त्वससर्गाद्विज्ञेयास्तु तदञ्जना ॥
देवग्रहा इति पुन प्रोच्यन्ते शुचयश्च ये।
देववच्च नमस्यन्ते प्रत्यर्थ्यन्ते च देववत् ॥
स्वामिशीलक्रियाचारा क्रमएव सुरादिषु।
नैर्ऋतेया दुहितरस्तासा स प्रसव स्मृत ॥
सत्यत्वादपवृत्तेषु वृत्तिस्तेषा गणै कृता।
हिंसाविहारा ये केचिद्दिव्य भावमुपाश्रिता ॥
भूतानीति कृता सज्ञा तेषा सज्ञाप्रवक्तृभिः।
ग्रहसज्ञाभिभूतानि यस्माद्वेत्त्यनया भिषक् ॥
विद्यया भूतविद्यात्वमतएव निरुच्यते।
तेषां शान्त्यर्थमन्विच्छन् वैद्यस्तु सुसमाहित ॥
जप्यै सनियमैर्होमैरारभेत चिकित्सितम्।
रक्तानि गन्धमाल्यानि वीजानि मधुसर्पिषाम् ॥
भक्ष्याश्च सर्व्वे सर्व्वेषा सामान्यो विधिरुच्यते।
वस्त्राणि मद्यमांसानि क्षीराणि रुधिराणि च ॥
यानि तेषा यथेष्टानि तानि तेभ्य प्रदापयेत्।
हिनस्ति मनुजान् येषु प्रायशो दिवसेषु च ॥
दिनेषु तेषु देयानि तद्भूतविनिवृत्तये।
देवग्रहे देवगृहे कृत्वाग्नि प्राशयेद्बलिम् ॥
कुशस्वस्तिकपूपाज्यच्छत्रपायससम्भृतम्।
असुराय यथाकाल विदध्याच्चत्वरादिषु ॥
चतुष्पथे राक्षसस्य भीमेषु गहनेषु वा।
शून्यागारे पिशाचस्य तीव्रं बलिमुपाहरेत् ॥
पूर्व्वमाचरितैर्मन्त्रैर्भूतविद्यादिदर्शितै।
न शक्या बलिभिर्जेतु योगैस्तान् समुपाचरेत्" ॥

"नक्तमालफल व्योष मूल श्योनाकबिल्वयो।
हरिद्रे च कृतावर्त्तिं पूर्व्ववन्नयनाञ्जनम्" ॥

"न चायक्त प्रयुञ्जीत प्रयोग देवताग्रहे।
ऋते पिशाचादन्येषु प्रतिकूल न चाचरेत् ॥
वैद्यातुरौ निहन्युस्ते ध्रुवं क्रुद्धा महौजस।
हिताहितविधानञ्च नित्यमेव समाचरेत् ॥
तत प्राप्स्यति सिद्धिञ्च यशश्च विपुल भिषक्" ॥

इति च सुश्रुते उत्तरतन्त्रे षष्टितमोऽध्यायः ॥*॥
"सूतायस्तारमभ्रञ्च मुक्ता चापि समं समम् ।
सूतपादो समं वङ्गं तालं गन्धं मनःशिला ॥
तुल्यं रसाञ्जनं शुद्धमहिफेनं शिलाजतुम् ।
पञ्चानां लवणानाञ्च प्रतिभागं वसोन्मितम् ॥
भृङ्गराजभवस्वीदुग्धेनापि विमर्द्दयेत् ।
दिनान्ते पिण्डितं कृत्वा रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥
भूताङ्कुशो रसो नाम नित्यं गुञ्जाद्वयं लिहन् ।
आर्द्रकस्य रसेनापि भूतोन्मादसवातजित् ॥
पिप्पल्याक्तं पिबेच्चानु दशमूलकषायकम् ।
स्वेदयेत् कटुतुम्ब्या च तीक्ष्णमुष्णञ्च वर्ज्जयेत् ॥
माहिषञ्च घृतं क्षीरं गुर्व्वन्नमपि भक्षयेत् ।
अभ्यङ्गं कटुतैलेन हितो भूताङ्कुशो रसः" ॥
इति भूताङ्कुशो रसः ॥*॥ उन्मादभञ्जिनी वटी यथा ।
"शुद्धं मनःशिलाचूर्णं सैन्धवं कटुरोहिणी ।
वचा शिरीषवीजञ्च हिङ्गु च श्वेतसर्षपम् ॥
करञ्जवीजं त्रिकटु मलं पारावतस्य च ।
एतानि समभागानि गोमूत्रैर्वटिकां कुरु ॥
गिरिमल्लीवीजसमां छायाशुष्काञ्च कारयेत् ।
प्रातः सन्ध्यानिशाकाले चक्षुषोरञ्जनं हितम् ॥
मधुना दिवसे चाप्यथ रात्रौ चैव जलेन च ।
वटिकैषा समाख्याता नाम्ना चोन्मादभञ्जिनी ।
चातुर्थकापस्मारघ्ना सर्व्वोन्मादविनाशिनी" ॥
इति वैद्यकरसेन्द्रसारसंग्रहे उन्मादाधिकारे ॥

अत्र पथ्यानि यथा ।

"स्नेहो विरेको वमनञ्च पूर्व्वं
क्रमान्मरुत्पित्तकफोद्भवेषु ।
ततः परं वस्तिविधिश्च नस्यम्
सन्तर्प्पणं ताडनमञ्जनञ्च ॥ १ ॥
आश्वासनत्रासनबन्धनानि
भयानि दानानि च हर्षणानि ।
धूपो दमो विस्मरणं प्रदेहः
शिराव्यधः संशमनञ्च सेकः ॥ २ ॥
आश्चर्य्यकर्म्माणि च धूमपानं
धीधैर्य्यसत्त्वात्मनिवेदनानि ।
अभ्यञ्जनं स्नापनमासनञ्च
निद्रासुशीतान्यनुलेपनानि ॥ ३ ॥
गोधूममुद्गारुणशालयश्च
धारोष्णदुग्धं शतधौतसर्पिः ।
घृतं नवीनञ्च पुरातनञ्च
कूर्म्मामिषं धन्वरसा रसालम् ॥ ४ ॥
पुराणकुष्माण्डफलं पटोलं
ब्राह्मीदलं वास्तुकतण्डुलीयम् ।
खराश्वमूत्रं गगनाम्बुपथ्या
सुवर्णचूर्णानि च नारिकेलम् ॥ ५ ॥
द्राक्षाकपित्थं पनसञ्च वैद्यै-
र्विधेयमुन्मादगदेषु पथ्यम्" ॥ ६ ॥

"पूजाबल्युपहारशान्तिविषयो होमेष्टिमन्त्रक्रिया
दानं स्वस्त्ययनं व्रतानि नियमः सत्यं जपो मङ्गलम् ॥
प्रायश्चित्तविधानमञ्जनविधीरत्नौषधीधारणं
भूतानामनुरूपमिष्टचरणं गौरीपतेरर्च्चनम् ॥ ७ ॥
"४ च सुर्भुवि गुह्यकाश्च प्रमथाश्चेषां समाराधनं
देवब्राह्मणपूजनञ्च शमयेदुन्मादमागन्तुकम्" ॥ ८ ॥

अपथ्यानि यथा ॥

"मद्यं विरुद्धाशनमुष्णभोजनं
निद्राक्षुधातृट्कृतवेगधारणम् ।
व्यवायमायाढ़फलं कठिल्लकं
शाकानि पत्रप्रभवानि सर्व्वशः ॥
तिक्तानि बिम्बी च भिषक् समादिशे-
दुन्मादरोगोपहतेषु गर्हितम्" ॥

इति वैद्यकपथ्यापथ्यविधौ उन्मादाधिकारः ॥*॥)
औत्सुक्यसन्तापादिकारितमनोविपर्य्याससमुत्थ-
प्रियाश्रितवृथाव्यापारः । इति रसमञ्जरी ॥
(व्यभिचारिभावभेदः । यथा, साहित्यदर्पणे
३ । १३९ ।
"औत्सुक्योन्मादशङ्काः स्मृतिमतिसहिता व्या-
धिसन्त्रासलज्जा" । इति ॥ अस्य लक्षणं सोदा-
हरणमाह तत्रैव ३ । १५५ ।
"चित्तसम्मोह उन्मादः कामशोकभयादिभिः ।
अस्थानहासरुदितगीतप्रलपनादिकृत्" ॥
उदाहरणम् ।
"भ्रातर्द्विरेफ ! भवता भ्रमता समन्तात्
प्राणाधिका प्रियतमा मम वीक्षिता किम् ?
भृङ्गझङ्कारमनुभूय सानन्दम्—
"ब्रूषे किमोमिति सखे ! कथयाशु तन्मे
किं किं व्यवस्यति कुतोऽस्ति च कीदृशीयम्" ॥)

उन्माद, त्रि, (उत् + मद् + घञ् ।) उन्मादरोग-
युक्तः । क्षिप्तः । उन्मत्तः । इत्यमरटीकायां नील-
कण्ठः ॥ पागल इति भाषा ॥

उन्मादन, पुं, (उन्मादयत्यनेन इति । उत् + मद् +
णिच् + ल्युः ) कामदेवस्य पञ्चबाणान्तर्गतबाणवि-
शेषः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

उन्मादवान्, त्रि, (उन्मादो विद्यते अस्य । उन्माद
+ मतुप् । मस्य वः ।) उन्मादरोगविशिष्टः ।
उन्मत्तः । इत्यमरः ॥

उन्मान, पुं, (उत् + मा + ल्युट् ।) द्रोणपरिमाणम् ।
इति वैद्यकपरिभाषा ॥
("उन्मानञ्च घटो राशिर्द्रोणपर्य्यायसंज्ञितः" ।
इति पूर्व्वखण्डे प्रथमेऽध्याये शार्ङ्गधरेणोक्तम् ॥
"स एव कलशः ख्यातो घटस्तून्मानमेव च" ॥
इति कल्पस्थाने द्वादशेऽध्याये चरकेणोक्तम् ॥)

उन्मिषित, त्रि, (उत् + मिष + क्त ।) प्रफुल्लः ।
विकसितः । इति हेमचन्द्रः ॥ यथा कुमारे ।
"व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयै-
र्महातपःसाक्ष्य इव स्थिताः क्षपाः" । ५ । २५ ॥

उन्मीलन, क्ली, (उत् + मील + ल्युट् ।) उन्मेषः ।
इति हेमचन्द्रः ॥ चक्षुर्मेला इति भाषा । विकाशः ॥
("अज्ञानतिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टतः ।
ज्ञानाञ्जनशलाकाभिर्नेत्रोन्मीलनकारकः" ।
इति महाभारते । १ । १ । ८४ ॥)

उन्मीलितः, त्रि, (उत् + मील् + क्त ।) विकसितः ।
प्रस्फुटितः । इति हलायुधः ॥ ("उन्मीलितं
तूलिकयेव चित्रम्" । इति कुमारे । १ । ३२ ॥
"ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बा-
निलाः" । इति साहित्यदर्पणे १म परिच्छेदे ॥)

उन्मुख, त्रि, (उदूर्द्ध्वं मुखं यस्य ।) ऊर्द्ध्वमुखः । त-
त्पर्य्यायः । उत्पश्यः २ । इति हेमचन्द्रः ॥
("मनोभिरामाः शृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः"
इति रघु । १ । ३९ ।) उत्सुकः । यथा कुमारे । ६ । ३
"तस्मिन् संयमिनामाद्ये जाते परिणयोन्मुखे" ।
"पतिः प्रतीतः प्रसवोन्मुखीं प्रियाम्" । इति
रघुः । ३ । १२ ॥
"अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किं स्विदित्युन्मुखीभिः"
इति मेघदूते । पूर्व्वमेघे १४ ।
"इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा" ।
इति च मेघदूते उत्तरमेघे ३९ श्लोकः ॥)

उन्मुद्र, त्रि, (उद्गता मुद्रा यस्मात् ।) प्रफुल्लः ।
विकसितः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

उन्मूलित, त्रि, (उत् + मूल् + क्त ।) उत्पाटितम् ।
इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा रामायणे । ५ । ६ ।
"लङ्कामुन्मूलितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः" ॥)

उन्मेष, पुं, (उत् + मिष् + घञ् ।) चक्षुरुन्मीलनम् ।
इति हेमचन्द्रः ॥ चक्षु मेला इति भाषा ।
("खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम्"
इति मेघदूते उत्तरमेघे २० ।) स्फुरणम् ॥ यथा,
"स्वकिरणपरिवेशोन्मेषशून्याः प्रदीपाः" ॥
इति रघुः । ५ । ७४ ॥ विकाशः २ । प्रस्फोटनम् ।
यथा,—
"दीर्घिकाकमलोन्मेषो यावन्मात्रेण साध्यते" ।
इति कुमारे । २ । ३३ ॥)

उप व्य प्रादिविंशत्युपसर्गान्तर्गतउपसर्गविशेषः ।
अस्यार्थः । अनुगतिः । पश्चाद्भावः । अनुकम्पा ।
आधिक्यम् । (यथा पाणिनि २ । ३ । ९ । "उप परार्द्धे
हरेर्गुणाः । परार्द्धादधिका इत्यर्थः ।) हीनः । (यथा
मुग्धबोधे कारके ७ । "विष्णुमन्वसुरा भर्गः श्रमा-
दय उपाच्युतम्" ।) सामीप्यम् । (यथा, मुग्धबोधे
समासप्रकरणे ६७ । "उपसमिध उपसमित् ।
उपनद । उपनदि" ॥) प्राथम्यम् । इति दुर्गा
दासः ॥ दाक्षिण्यम् । सामर्थ्यम् । अत्ययः ।
भूषणम् । दोषाख्यानम् । निदर्शनम् । आश्चर्य्य
करणम् । दानम् । मारणम् । व्याप्तिः । शिक्षा ।
उपालम्भनम् । पूजा । उद्योगः । इति शब्द
रत्नावली ॥

उपकण्ठ, क्ली, (उपगतं कण्ठम् । अत्यादय इति
समासः । उपगतः कण्ठं सामीप्यमस्येति वा ।)
ग्रामान्तम् । तत्पर्य्यायः । उपशल्यम् २ । इति त्रि-
काण्डशेषः ॥ आस्कन्दितम् । अश्वपञ्चमगतिः ।
इति हेमचन्द्रः ॥ कण्ठसमीपम् ॥ (यथा, माघे ।
"प्रेम्णोपकण्ठं मुहुरङ्कभाजो
रत्नावलीरम्बुधिराबबन्ध" ।)

उपकण्ठः, त्रि, (उपगतं कण्ठं सामीप्यमस्य ।)
निकटः । इत्यमरः ॥ (यथा, कुमारे । ७ । ५१ ॥
"तस्योपकण्ठे घननीलकण्ठः
कुतूहलादुन्मुखपौरदृष्टः" ॥)

उपकरण, क्ली, (उप + कृ + ल्युट् ।) प्रधानाङ्गी-
भूतोपकारकद्रव्यम् । नृपादीनां छत्रचामरादि ।

तत्पर्य्याय । परिच्छद २ परिवर्हः ३ तन्त्रम् ४ । इति हेमचन्द्रः ॥ भोजनादौ व्यञ्जनादि ॥ यथा । "तस्मादन्नं प्रधानं सूपादिकन्तु उपकरणत्वेन शक्तानामावश्यकम्" । इति श्राद्धतत्त्वम् ॥ पूजादौ नैवेद्यादि । मृगबन्धनादौ जालादि ॥

उपकार, पु, (उप + कृ + घञ् ।) उपकृति । ("उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः" । इति माघः । २।३७॥ "कृतोपकारेव रतिर्बभूव" । इति कुमारे । ३ । ७३ ॥) विकीर्णपुष्पादिः । इति हेमचन्द्रो मेदिनी च ॥

उपकारिका, स्त्री, (उपकरोतीति । उप + कृ + ण्वुल् + टाप् + इत्वम् ।) उपकारकर्त्री । पिष्टभेदः । इति मेदिनी ॥ राजगृहम् । इत्यमरः ॥ कुसूल । मराथि इति भाषा । इति केचिदाङ्करिति भरत ॥

उपकारी, स्त्री, (उपकारयतीति । उप + कृ + णिच् + अण् + ङीष् ।) राजगृहम् । इति भरतधृतद्विरूपकोष ॥

उपकारी, [न्] त्रि, (उपकरोतीति । उप + कृ + णिनि ।) उपकारविशिष्टः । उपकारकर्त्ता । ("उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ य समाचरति पापम्" इति हितोपदेशे मित्रलाभे ॥)
तत्र दानादानविधिर्यथा । हारीत । अथासद्द्रव्यदानमस्वर्ग्यं यत्र दत्त्वा परितप्यते तद्वृदानमफल यच्चोपकारिणे ददाति ॥ उपकारिणे व्यसनोपकारिणे । तदितरोपकारिणे तु दत्त । "मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणे । दीनानाथविशिष्टेभ्यो दत्तन्तु सफल भवेत्" ॥ इति शुद्धितत्त्वम् ॥ किञ्च ।
"उपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ।
समदृष्टिर्भवास्तु त्वं सर्व्वभूतेषु केशव" ॥
इति जैमिनीये आश्वमेधिके पर्व्वणि ११ अध्याय ॥

उपकार्य्यः, त्रि, (उप + कृ + ण्यत् ।) उपकारोचित । इति मेदिनी ॥

उपकार्य्या, स्त्री, (उपक्रियते इति । उप + कृ + ण्यत् + टाप् ।) राजगृहम् । इत्यमर ॥ (पटभवनम् । यथा, रघौ ५ । ४१ ।
"तस्योपकार्य्यारचितोपचारा
वन्येतरा जानपदोपदाभिः" ॥
"शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्य्यमार्य्यं,
साकेतोपवनमुदारमध्युवास" । इति च १३ । ७९ ।)
कुसूलः । मराथि इति भाषा । इति केचिदाङ्करिति भरतः ॥

उपकुञ्चि, स्त्री, (उप + कुञ्च + कि ।) सूक्ष्मकृष्णजीरकः । इति रत्नमाला ॥ (कृष्णजीरकशब्देऽस्य गुणादयो बोध्याः ॥)

उपकुञ्चिका, स्त्री, (उप + कुञ्च + ण्वुल् + टाप् ।) कृष्णजीरक । सूक्ष्मैला । इत्यमर ॥
("कारवी करवी वद्वद्विज्ञेया सोपकुञ्चिका ।
भक्ष्यव्यञ्जनभोज्येषु विविधेष्ववचारिता" ॥
इति सूत्रस्थाने ४६ अध्याये सुश्रुतेनोक्तम् ॥)

उपकुम्भं, अव्य, (कुम्भस्य समीपे ।) कुम्भसमीपम् । इति व्याकरणम् ॥

उपकुर्व्वाण, पुं, (उप + कृ + शानच् ।) ब्रह्मचर्य्यानन्तर यो गृहस्थो भवति स । इति पुराणम् ॥ (कृतोपकारः । यथा हितोपदेशे सुहृद्भेदे,— "यतोऽनुपकुर्व्वाणो न कस्यापि उपायनं गृह्णीयात्" ॥)

उपकुल्या, स्त्री, (उपकोलति । कुल संस्त्याने बन्धुषु च । अघ्न्यादि ।) पिप्पली । इत्यमर ॥ पिपुल इति भाषा । ("कृष्णोपकुल्या मगधी" इति वैद्यकरत्नमाला ॥ "उपकुल्योषणा शौण्डी" इति भावप्रकाशे पूर्व्वखण्डे प्रथमभागे ॥ गुणादिकमस्य पिप्पलीशब्दे ज्ञातव्यम् ॥) (उपगता कुल्यामिति वाक्ये वाच्यलिङ्ग । कृत्रिमसर समीपम् ॥)

उपकूपजलाशय, पु, (उपकूपं कूपसमीपे यो जलाशय ।) कूपसमीपे शिलादिनिबद्धपशुपानार्थकृतकूपोद्धृताम्बुस्थानम् । इत्यमर ॥

उपक्रन्ता, [ऋ] त्रि, (उप + क्रम + तृच् ।) उपक्रमकर्त्ता । आरम्भकर्त्ता । इति व्याकरणम् ॥

उपक्रम, पु, (उप + क्रम + घञ् । नोदात्तोपदेशस्य इति न वृद्धि ।) ज्ञात्वारम्भ । अयमस्योपाय अनेनैतत् सिध्यतीति ज्ञात्वा प्रथमारम्भ ॥ उपधा । राज्ञा धर्म्मकामार्थभये अमात्यादेर्यत् परीक्षणा भावतत्त्वनिरूपणम् ॥ प्रक्रम । प्रथमारम्भ । इत्यमरः ॥ विक्रम । चिकित्सा । इति मेदिनी ॥ पलायनम् । इति हेमचन्द्र ॥ (उपाय । यथा,— "सामादिभिरुपक्रमै" । इति मनु । ७ । १०७ । आरम्भः । यथा,—"रामोपक्रममाचख्यौ रक्ष-परिभव नवम्" ॥ १२ । ४२ । इति रघु । "उपक्रम्यते इत्युपक्रम कर्म्मणि घञ् । रामस्य कर्तुरुपक्रमः रामोपक्रमं रामेणादौ उपक्रान्तमित्यर्थ । उपज्ञोपक्रम तदाद्याचिख्यासायामिति क्लीवत्वम्" । इति तट्टीका ॥)

उपक्रोश, पु, (उप + क्रुश + घञ् ।) निन्दा । इत्यमरः ॥ (यथा, रघुः । २ । ५३ ।
"राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः
प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्व्वा" ॥)

उपक्रोष्टा [ऋ] पु, स्त्री, (उप + क्रुश + तृच् ।) गर्द्दभः । इति श्रीभागवतम् ॥ निन्दक ॥

उपक्वण, पु, (उप + क्वण + अप् ।) प्रक्वण । वीणाशब्द । इत्यमरटीकाया रायमुकुटः ॥

उपक्षेपणधर्म्मः, पुं, (उपक्षेपणरूपो धर्म्म ।) शूद्रस्वामिकान्नस्य पाकार्थं ब्राह्मणगृहे समर्पणम् । इति शुद्धितत्त्वे कल्पतरुः ॥

उपगत, त्रि, (उप + गम् + क्त ।) अङ्गीकृत । स्वीकृत ॥ इत्यमरः ॥ (यथा रघौ ९ । १५ ।
"उपगतोऽपि च मण्डलनाभिता-
मनुदितान्यसितातपवारणः" ।) कृतमैथुनः ॥

उपगम, पु, (उप + गम् + अप् ।) अङ्गीकार । निकटगमनम् । इति मेदिनी ॥ (यथा रघौ ६ । ६९ ।
"त प्राप्य सर्व्वावयवानवद्यं
व्यावर्त्ततान्योपगमात् कुमारी" ॥)

उपगूहन, क्ली, (उप + गूह + ल्युट् ।) आलिङ्गनम् । इत्यमरः ॥ ("स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहन पुनः" इति भागवते १ । ५ । १९ ॥ तथा च साहित्यदर्पणे ६ परिच्छेदे ।
"कृति प्रमाद आनन्द समयोऽप्युपगूहनम्" ॥)

उपग्रह, पुं, (उपगृह्यते इति । उप + ग्रह + अप् ।) वन्दी । इत्यमर ॥ बँदुयान् इति भाषा । उपयोग । अनुकूलः । इति मेदिनी ॥ (ग्रहसदृशो ज्योतिःपदार्थभेदः । यथा महाभारते ३ । स्कन्दशक्रसमागमे २२६ । १ ॥
"ग्रहा सोपग्रहाश्चैव ऋषयो मातरस्तथा ।
हुताशनमुखाश्चैव दीप्ता परिषदा गणाः" ॥)

उपग्रहण, क्ली, (उप + ग्रह + ल्युट् ।) उपाकरणम् । संस्कारपूर्व्वकश्रुतिग्रहणम् । इत्यमरटीकायां रायमुकुटः ॥ (स्वीकार । यथा, रामायणे १ । ४ । ४ ।
"वेदोपग्रहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः" ।
वेदोपबृंहणार्थाय इति पाठान्तरम् ॥)

उपग्राह्य, पु, (उपगृह्यते इति । उप + ग्रह + ण्यत् ।) उपढौकनम् । इत्यमरः ॥ भेटी डालि इत्यादि भाषा ॥

उपघात, पु, (उपहन्यते अनेन । उप + हन + करणे घञ् ।) रोगः । इति राजनिर्घण्ट ॥ (भावे घञ् । विनाश । यथा,—
"तथात्वस्वेन्द्रियाणामुपघाते कथ स्मृतिः" ।
इति भाषापरिच्छेदे । ४८ । अपकार ।
"स्त्रीणाञ्च प्रेक्षणालम्भमुपघात परस्य च" ॥
इति मनु । २ । १७९ ॥)

उपघ्न, पु, (उप + हन + क ।) निकटाश्रय । इत्यमरः ॥ (यथा, रघुः । १५ । १ ।
"छेदादिवोपघ्नतरोर्व्रतत्यौ" ॥)

उपचक्रः, पु, (चक्रेण चक्रनाम्ना तुल्य ।) चक्रवाकपक्षिविशेषः । अस्य मांसगुणा । लघुत्वम् । हृद्यत्वम् । उष्णवीर्य्यत्वम् । कटुपाकित्वम् । बलाग्निवृद्धिकारित्वञ्च । इति राजवल्लभ ॥
("चकोरैरुपचक्रैश्च पक्षिभिर्जीवजीवकैः" ॥
इति महाभारते ३ भीमस्याजगरग्रहणे १७८ । ७ ॥)

उपचक्षु, [स्] क्ली, (उपगत चक्षुषोर्दर्शनार्थम् ।) द्वितीयचक्षु । चश्मा इति पारस्यभाषा । इति लोकप्रसिद्धम् ॥

उपचयः, पुं, (उप + चि + अच् ।) वृद्धि । उन्नतिः । ("स्वशक्त्युपचये केचित् परस्य व्यसने परे" । इति माघः । २ । ५७ । "तदेतेषामस्मत्पुत्राणां ज्ञानोपचये भवन्तः प्रमाणम्" । इति हितोपदेशे कथामुखम् ।) लग्नात् तृतीयषष्ठदशमैकादशस्थानानि । इति ज्योतिषम् ॥

उपचरितं, त्रि, (उपचर्य्यते स्म । उप + चर + क्त ।) उपासितम् । सेवितम् । इत्यमरः ॥

उपचर्य्या, स्त्री, (उप + चर + यत् + टाप् ।) चिकित्सा । इति शब्दायुधः ॥

उपचाय्यः पुं, (उपचीयतेऽग्निरस्मिन् इति । "अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः" ३ । १ । १३१ । इति पाणिनिसूत्रेण आयादेशौ निपात्येते । उप + चि + ण्यत् ।) यज्ञाग्निः । इत्यमरः ॥

उपचार, पुं, (उप + चर + घञ् ।) लोमप्रविकारः ।

तत्पर्य्यायः। उपचर्य्या २ चिकित्सा ३ रुक्प्रतिक्रिया ४ निग्रहः ५ वेदनानिग्रहः ६ क्रिया ७ उपक्रमः ८ श्रमः ९। इति राजनिर्घण्टः॥ सेवा। ("स मे चिरायास्खलितोपचाराम्"। इति रघौ, ५। २०।) व्यवहारः। ("प्रयुक्तपाणिग्रहणोपचारौ"। इति कुमारे ७। ८६।) उत्कोचः। इति हेमचन्द्रः॥ परस्य रञ्जनार्थं असत्यभाषणम्। यथा, कुमारे ४। ९। "उपचारपदं नचेदिदं त्वमनङ्ग कथमक्षता रतिः"॥ "उपचारज्ञता दाक्ष्यं" इति चरके सूत्रस्थाने नवमेऽध्याये॥)

उपचार्य्यं, पु, (उप + चर + ण्यत्।) चिकित्सा। इति हेमचन्द्रः॥

उपचितः, त्रि, (उपचीयते स्म। उप + चि + क्त।) दिग्धः। समृद्धः। इति विश्वमेदिन्यौ॥ (यथा रघौ ९ म—सर्गे,। "मृगवयोगवयोपचितं वनम्"।) समाहितः। इति विश्व हेमचन्द्रश्च॥ निदिग्धः। लेपादिना वर्द्धितः। इत्यमरः॥ ("यथाह हारीतः।

"प्रयतत्वाद्धोपचितमशुभं नाशयतीति"॥)

उपचित्रा, स्त्री, (उपगता चित्राम्।) मूषिकपर्णी। इत्यमरः। इँदुरकानि इति भाषा। दन्तीवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥ (दन्त्यर्थे यथा,—

"चित्रा दन्ती निकुम्भः स्यादुपचित्रा मुकूलकः"। इति वैद्यकरत्नमाला॥)

उपजापः, पु, (उप + जप् + घञ्।) भेदः। विच्छेदः। इत्यमरः॥

("तेषु तेषु चाकृतेषु प्रासरन् परोपजापाः"। इति दशकुमारे विश्रुतचरिते। तथा च माघे २। ९९।

"उपजापः कृतस्तेन तानाकोपवतस्त्वयि"॥)

उपजिह्वा, स्त्री, (उपगता जिह्वा यस्याः।) कीटविशेषः। तत्पर्य्यायः। उपदेहिका २ वम्री ३ उद्दीका ४। इति हेमचन्द्रः॥ आलजिह्वा इति ख्याता च॥ ("उपजिह्वा स्फिचौ बाहू"। इति याज्ञवल्क्यः।

"तादृगेवोपजिह्वा तु जिह्वाया उपरि स्थिता"॥ इति वाभटेनोत्तरस्थाने एकविंशेऽध्याये उक्तम्॥

चिकित्सा यथा।

"उपजिह्वा परिस्राव्य यवक्षारेण घर्षयेत्"। इति च वाभटेनोत्तरस्थाने द्वाविंशेऽध्याये उक्तम्॥)

उपजिह्विका, स्त्री, (उपजिह्वा + स्वार्थे कन्।) घण्टिका। आलजिव इति भाषा। तत्पर्य्यायः। प्रतिजिह्वा २। इति राजनिर्घण्टः॥ (ऋग्वेदे ४। ९१। २१। "यदत्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति"।) कीटभेदः। तत्पर्य्यायः। उत्पादिका २ वटिः ३ उद्देहिका ४ दिवी ५। इति हारावली॥ ("यस्य श्लेष्मा प्रकुपितो जिह्वामूलेऽवतिष्ठते। आशु सञ्जनयेत् शोथं जायतेऽस्योपजिह्विका"॥ इति चरके सूत्रस्थाने १८ अध्यायः॥

"जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वा-
मुन्नम्य जातः कफरक्तयोनिः।
प्रसेककण्डूपरिदाहयुक्ता
प्रकथ्यतेऽसावुपजिह्विकेति"॥

इति निदानस्थाने षोडशेऽध्याये सुश्रुतेनोक्तम्॥

अस्य चिकित्सा यथा।

"उपजिह्वान्तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत्।
शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैनमुपाचरेत्।
जिह्वागतानां कर्म्मोक्तं तालव्यानां प्रवक्ष्यते"॥

इति सुश्रुते चिकित्सितस्थाने २२ अध्यायः।)

उपजीविका, स्त्री, (उपजीव्यतेऽनया। उप + जीव + गुरोश्चेत्यः। स्वार्थे कन् क्वुन् वा।) उपजीव्यम्। जीवनोपायः॥

उपजोषम्, व्य, (उपजोषणम्। उप + जुष + अम्।) आनन्दः। इत्यमरः॥ (यथा, महाभारते १।

"यथोपजोषं सर्व्वश्च जनश्चिक्रीड़ भारत"।

सुखम्। यथा, रामायणे २। ८९। २२।

"आश्वासयित्वा च चमूं महात्मा
निवेशयित्वा च यथोपयोषम्"॥)

उपज्ञा, स्त्री, (उपज्ञायते। ज्ञा अवबोधने। आतश्चोपसर्गे इति कर्म्मणि अङ्।) आद्यज्ञानम्। इत्यमरः॥ तत्तु विनोपदेशेन प्रथमज्ञानम्। यथा वाल्मीकेः श्लोकनिर्म्माणे ज्ञानम्॥

("अथ प्राचेतसोपज्ञं रामायणमितस्ततः"॥ इति रघुः १५। ६३॥ "लोकेऽभूद्यदुपज्ञमेव विदुषां सौजन्यजन्यं यशः" इति मल्लिनाथटीकामुखम्॥)

उपढौकन, क्ली, (उप + ढौक + ल्युट्।) पारितोषिकद्रव्यम्। भेट् डाला इत्यादि भाषा। तत्पर्य्यायः। प्राभृतम् १ प्रदेशनम् २ उपायनम् ३ उपग्राह्य ४ उपहारः ५ उपदा ६। इत्यमरः॥

उपतप्ता, [ऋ] पु, (उप + तप् + तृच्।) उपतापकमात्रम्। तत्पर्य्यायः। स्पर्शः २ स्प्रष्टा ३। इत्यमरः॥ स्पशः ४ स्पर्द्धा ५। इति तट्टीका॥ रोगः। इत्यन्ये। इति भरतः॥

उपतापः, पु, (उप + तप् + घञ्।) त्वरा। उत्तापः। रोगः। इति मेदिनी॥ अशुभम्। पीडा। इति शब्दरत्नावली॥ (यथा, शाकुन्तले।

"विवक्षितं ह्यनुक्तमुपतापं जनयति"।

पीडादायके वाच्यलिङ्गः। यथा, कौशिकसूत्रे। १३५। "यो वनस्पतीनामुपतापो बभूव"॥)

उपत्यका, स्त्री, (उप समीपे आसन्ना भूमिः। उप + "उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः"। ५। २३४। इति त्यकन्। "त्यकनश्च निषेधः" इति इत्वाभावः।) पर्व्वतनिकटभूमिः। इत्यमरः॥ (यथा, रघुः। ४। ४६।

"मारीचोद्भ्रान्तहारीता मलयाद्रेरुपत्यकाः"॥)

उपदंशः, पुं, (उपदश्यते इति। उप + दंश + कर्म्मणि घञ्।) मद्यपानरोचकभक्ष्यद्रव्यम्। तत्पर्य्यायः। अवदंशः २ चक्षणम् ३ मद्यपासनम् ४। इति हेमचन्द्रः॥ (यथा दशकुमारे विश्रुतचरिते—

"द्विमान् उपदंशान् उपपाद्य"।

"ततस्तस्य शाल्योदनस्य दर्वीद्वयं दत्त्वा सर्पिर्मात्रां सूपम् उपदंशं च उपजहार"। इति च।) मेढ्ररोगविशेषः। बाघी इति भाषा। अथोपदंशाधिकारः। तत्रोपदंशस्य विप्रकृष्टं निद

माह।

"हस्ताभिघातान्नखदन्तघाता-
दधावनादत्युपसेवनाद्वा।
योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने
पञ्चोपदंशा विविधोपचारैः"॥

हस्ताभिघातात् हस्तेन मैथुनात्। नखदन्तघात
नखदन्तघातस्थानत्वेनानुक्तेऽपि मेढ्रने नखद
घातो बलवदनुरागोदयात्। उक्तञ्च कामशास्
"शास्त्रस्य विषयस्तावद्यावन्मन्दतरो रसः।
रतिचक्रे प्रवृत्ते तु न शास्त्रं नापि च क्रमः"।
कलहे दुष्टस्त्रीकृतो वा मेढ्रने नखदन्तघात
उत्कमादौ स्त्रियो मुखयोनयो भवन्ति। ताभि
मेढ्रने नखदन्तघातः। योनिप्रदोषात् दीर्घकर्क
योनिलोमयोगात्। योनिच्छिद्रस्यातिसूक्ष्मत्वा
वातादिदुष्टताद्वा योनिदोषात्। विविधोपचारै
दुष्टजलप्रक्षालनब्रह्मचारिणीगमनादिभिः पञ्च
पदंशाः। वातिकः पैत्तिकः श्लैष्मिकः सान्निपाति
आगन्तुजश्चेति॥ * ॥ तत्र वातिकपैत्तिकस्य चो
दंशस्य लक्षणमाह।

"सतोदभेदस्फुरणैस्तु कृष्णैः
स्फोटैर्व्यवस्येत्मरुतोपदंशम्।
पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः
पित्तेन रक्तैः पिशितावभासैः"॥

व्यवस्येत् जानीयात्। पीतैः रक्तैर्व्वेति विकल्पः॥
श्लैष्मिकं सान्निपातिकञ्चाह।

"सकण्डुरैः शोफयुतैर्महद्भिः
शुक्लैर्घनैः स्रावयुतैः कफेन।
नानाविधस्रावरुजोपपन्न-
मसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम्"॥ * ॥

असाध्यमाह।

"विशीर्णमांसं क्रिमिभिः प्रजग्धं
मुष्कावशेषं परिवर्ज्जयेत्तम्"।

विशीर्णमांसं गलितमांसम्। प्रजग्धं खादितम्
मुष्कावशेषं विशीर्णसमस्तमेढ्रनमांसत्वेनावशिष्ट
फलकोषमात्रम्॥ * ॥ उत्पन्नमात्रचिकित्साया
अकरणे दोषमाह।

"सञ्जातमात्रे न करोति मूढः
क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः।
कालेन शोफक्रिमिदाहपाकैः
प्रशीर्णशिश्नो म्रियते स तेन"।

विषये प्रसक्तः अतिस्त्रीरतः॥ * ॥ लिङ्गार्शमाह।
"अङ्कुरैरिव सञ्जातैरुपर्य्युपरि संस्थितैः।
क्रमेण जायते वर्त्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा।
कोषस्याभ्यन्तरे सन्धौ पर्व्वसन्धिगतापि च।
सवेदना पिच्छिला च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा।
लिङ्गवर्त्तिरिति ख्याता लिङ्गार्श इति चापरे"।
लिङ्गवर्त्तेः स्थानमाह। कोषाभ्यन्तरे अण्डकोषा
भ्यन्तरे। सन्धौ लिङ्गरन्ध्रसन्धौ। पर्व्वसन्धिगता
मणिपर्व्वणोः सन्धिगता॥ * ॥ * ॥
अथोपदंशस्य चिकित्सा।
"उपदंशेषु सर्व्वेषु स्निग्ध स्विन्नस्य देहिनः।

इति वैद्यकपथ्यापथ्यविधि ।) समष्ठिलश्च्छदः ! शिग्रुश्च । इति राजनिर्घण्ट । (भवे घञ् ।) दर्शनम् ॥

उपदर्शकः, पु, (उपदर्शयतीति । उप + दृश् + णिच् + ण्वुल् ।) द्वारपाल । इत्यमरटीकासारसुन्दरी॥ (दर्शयितरि, त्रि ॥)

उपदा, स्त्री, (उपदीयते इति । उप + दा + आतश्चोपसर्गे इत्यङ् ।) उपढौकनम् । इत्यमर ॥ ("उपदा विविशु शश्वत् नोत्सेक कोशलेश्वरम्" । इति रघु । ४ । ७० ।)

"प्रत्यर्प्य पूजामुपदाच्छलेन" । इति रघुः । ७।३० ।)

उपदानक, स्त्री, (उपदान + स्वार्थे कन् ।) उत्कोच । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

उपदिष्ट, त्रि, (उप + दिश् + क्त ।) उपदेशप्राप्त । यथा । "ननु शूद्रस्यापि सगोत्रा कथ न निषिध्यते इति चेदत्र उपदिष्टातिदिष्टगोत्रस्यैव निषेधो न त्वतिदिष्टातिदिष्टशूद्रगोत्रादेरिति" । इत्युद्वाहतत्त्वम् ॥

उपदी, स्त्री, (उपेत्य दीयते छिद्यते इति उप + दो + क + ङीष् ।) वन्दाकः । इति राजनिर्घण्टः ॥ परगाछा इति भाषा ॥

उपदेवता, स्त्री, (उपगता सादृश्येन देवताम् ।) यक्षभूतादि ॥ (उपदेवताश्च दश । यथाह अमर ।

"विद्याधरोऽप्सरो यक्षो रक्षो गन्धर्व्वकिन्नरौ ।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनय" ॥)

उपदेश, पुं, (उप + दिश् + घञ् ।) मन्त्रकथनम् । तत्पर्य्याय । दीक्षा २ । यथा ।

"चन्द्रसूर्य्यग्रहे तीर्थे सिद्धक्षेत्रे शिवालये ।
मन्त्रमात्रप्रकथनमुपदेश स उच्यते" ॥

इति रामार्च्चनचन्द्रिका ॥ कलावत्यादिदीक्षायामसामर्थ्ये सङ्क्षेपो यथा ।

"तत्राप्यशक्त कश्चिद्देवमभ्यर्च्य सात्त्वतम् ।
तदम्बुनाभिषिच्याष्टवारं मूलेन केशरम् ॥
निधायाष्टौ जपेत् कर्णे उपदेशे त्वय विधिः" ॥

इति विश्वसारतन्त्रम् ॥ हितकथनम् ।
(यथा, हितोपदेशे विग्रहे उक्तम् ।
"उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये" ॥)
शिक्षणम् ॥ (यथा, मनुः ८ । २७२ ।
"धर्म्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्व्वत" ।
"एवमित्युपदेशः । यथा । तथा न जागरयात् रात्रौ दिवास्वप्नञ्च वर्जयेदनेन कारणेनेत्युपदेशः ॥ अथोपदिश्यते मधुरेण श्लेष्माभिवर्द्धत इति" । इति सुश्रुते उत्तरतन्त्रे ६५ अध्याय ॥)

उपदेशी, [न्] त्रि, (उपदिशति यः । उप + दिश् + णिनि ।) उपदेष्टा ॥ (यथा हितोपदेशे मित्रलाभे ।

"गतानुगतिको लोक कुट्टनीमुपदेशिनीम् ।
प्रमाणयति नो धर्म्मे यथा गोघ्नमपि द्विजम्" ॥)

उपदेष्टा, [ऋ] त्रि, (उपदिशति य । उप + दिश् + तृच् ।) उपदेशकर्त्ता । यथा ।

"तथोपदेष्टारमपि पूजयेच्च ततो गुरुम् ।
न पूज्यते गुरुर्यत्र नरैस्तत्राफला क्रिया" ॥

इति तिथ्यादितत्त्वम् ॥ वृहस्पतिः ।
"उपदेष्टानुमन्ता च लोके तुल्यफलौ स्मृतौ" ।
इत्याह्निकतत्त्वञ्च ॥

उपदेहिका, स्त्री, (उपदेहो विद्यते यस्याः । उपदेह + ठक् ।) कीटविशेष । तत्पर्य्यायः । उपजिह्वा २ वम्री ३ उपदीका ४ । इति हेमचन्द्र ॥

उपद्रव, पु, (उप + द्रु + अप् ।) उत्पातः । इति हलायुध ॥ रोगारम्भकदोषप्रकोपजन्योऽन्यो विकार । (तल्लक्षणमुक्तं वैद्यके । यथा,—

"यो व्याधिस्तस्य यो हेतुर्दोषस्तस्य प्रकोपतः ।
योऽन्यो विकारो भवति स उपद्रव उच्यते" ॥
"व्याधेरुपरि यो व्याधिः उपद्रव उदाहृतः ।
सोपद्रवा न जीवन्ति जीवन्ति निरुपद्रवा" ॥

इति हारीते चिकित्सितस्थाने द्वितीयेऽध्याये ।
"तत्रौपसर्गिको यः पूर्व्वोत्पन्न व्याधि जघन्यकालजातो व्याधिरुपसृजति स तन्मूलएवोपद्रवसञ्ज्ञः" । इति सुश्रुते सूत्रस्थाने ३५ अध्याये ॥)

उपद्रष्टा, [ऋ] त्रि, (उप + दृश + ताच्छील्यादौ तृच् ।) उपदर्शक । उदासीनबोधरूपत्वेन गुणप्रचारदर्शी । इति गीताटीका ॥
("उपद्रष्टानुमन्ता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वर" । इति गीतायां १३ । २२ । साक्षी पुरुष । यथा, "ऋत्विग्यजमानेषु यजनकर्म्मव्यापृतेषु तत्समीपस्थोऽन्य स्वयमव्यापृतो यज्ञविद्याकुशलत्वात् ऋत्विग्यजमानव्यापारगुणदोषाणा ईक्षिता तद्वत् कार्य्यकारणव्यापारेषु स्वयमव्यापृतो विलक्षणस्तेषां कार्य्यकारणानां सव्यापाराणा समीपस्थो द्रष्टा उपद्रष्टा साक्षी पुरुषः" ॥)

उपधर्म्म, पु, (उपहीनोधर्म्म ।) पाषण्डः । इति श्रीभागवतम् ॥ (यथा मनुः २ । २३७ ।
"एष धर्म्म परः साक्षात् उपधर्म्मोऽन्य उच्यते"॥)

उपधा, स्त्री, (उपधीयते शुद्धिज्ञानमत्र । उप + धा + आतश्चोपसर्गे इत्यङ् + टाप् ।) राज्ञा धर्म्मकामार्थभयैरमात्यादेर्यत् परीक्षणम् । इत्यमर ॥ धर्म्मार्थकाममोक्षद्वारा परीक्षा । यथा ।

"धर्म्मार्थकाममोक्षैश्च प्रत्येक परिशोधनैः ।
उपेत्य धीयते यस्मादुपधा परिकीर्त्तिता ॥
अर्थकामोपधाभ्यान्तु भार्य्या पुत्रांस्तु शोधयेत् ।
धर्म्मोपधाभिर्व्विप्रांस्तु सर्व्वाभिः सचिवान् पुन" ॥

इति कालिकापुराणे ८५ अध्यायः ॥ ("भूयोभूयश्चोपधाभिर्विशोध्य स मे मतिसहायमकरवम्" । इति दशकुमारचरिते विश्रुतचरिते ।) वर्णानामुपान्त्यवर्ण । इति व्याकरणम् ॥

उपधातुः, पु, (उप सादृश्ये । धातुसदृशो धातुः ।) अष्टप्रधानधातुसदृशधातुः । स तु सप्तधा यथा । माक्षिकम् १ तुत्थकम् २ अभ्रम् ३ नीलाञ्जनम् ४ मनःशिला ५ हरितालम् ६ रसाञ्जनम् ७ ॥ शरीरस्थधातुभवोपधातु सप्तधा यथा । रसात् स्तन्यदुग्धम् १ रक्तात् स्त्रीरज २ मांसात् वसा ३ मेदसो घर्म्म ४ अस्थ्नो दन्ताः ५ मज्ज्ञः केश ६ शुक्रात् ओजः ७ । इति वैद्यकम् ॥

("स्तन्य रजश्च नारीणां काले भवति गच्छति ।
शुद्धमांसभवस्नेहः सा वसा परिकीर्त्तिता ॥
स्वेदो दन्तास्तथा केशास्तथैवौजश्च सप्तमम् ।
इति धातुभवा ज्ञेया एते सप्तोपधातवः" ॥

इति शार्ङ्गधरेण पूर्व्वखण्डे पञ्चमेऽध्याये उक्तम् ॥

"सप्तोपधातवः स्वर्णमाक्षिक तारमाक्षिकम् ।
तुत्थ कांस्य च रीतिश्च सिन्दूरश्च शिलाजतु" ॥

इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे प्रथमभागे ॥)

उपधान, स्त्री, (उपधीयते आरोप्यते मस्तकमत्र उप + धा + अधिकरणे ल्युट् ।) शिरोधानम् वालिश इति भाषा । तत्पर्य्यायः । उपबर्हः २ इत्यमरः । गण्डु ३ । इति जटाधरः ।
("सोपधाना धिय धीरा स्थेयसीं खट्टयन्ति ये" । इति माघ २।७७ । "पट्टोपधानाध्यासितशिरोभागेन" । इति कादम्बरी ।) विषम् । प्रणयः । इति मेदिनी । व्रतम् । इति हेमचन्द्रः ॥

उपधानीय, स्त्री, (उपधीयते यस्मिन् । उप + धा + अनीयर् ।) उपधानम् । इति शब्दरत्नावली ॥

उपधि, पु, (उपधीयते आरोप्यतेऽनेन । उप + धा + किः ।) कपट । इत्यमरः ॥ (यथा, मनुः ८ । १६५ ।

"योगाधमनविक्रीत योगदानप्रतिग्रहम् ।
यत्र वाप्युपधि पश्येत् तत्सर्व्वं विनिवर्त्तयेत्" ।
"अरिषु हि विजयार्थिन क्षितीशा
विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि" ।

इति किराते ॥ १ । ४५ ।) रथचक्रम् । इति हेमचन्द्रः ॥

उपधूपित, त्रि, (उप + धूप् + क्त ।) आसन्नमरणः । परिधूपित । इति मेदिनी ॥

उपधृति, स्त्री, (उप + धृ + क्तिन् ।) किरणः । इति हेमचन्द्रः ॥

उपनतः, त्रि, (उप + नम् + क्त ।) उपस्थितः । इति हेमचन्द्रः ॥ ("अचिरोपनतां स मेदिनीं" । इति रघुः ८ । ७ ॥ नम्र । यथा, माघे । १२ । ३३ ।

"शौरे प्रतापोपनतैरितस्ततः
समागतैः प्रश्रयनम्रमूर्त्तिभिः" ॥)

उपनद, } स्त्री, नद्याः समीपम् । इति मुग्धबोध-
उपनदि, } व्याकरणम् ॥ ( तथा पाणिनीये ।
"नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः" । ५ । ४ । ११० ।
इत्यनेन सिद्धम् ॥)

उपनयः, पुं, (उप समीपे नीयते येन कर्म्मणा । उप + नी + अच् ।) उपनयनम् । इति हेमचन्द्रः ॥ ("गृह्योक्तकर्म्मणा येन समीपं नीयते गुरो ।
बालो वेदाय तद्योगात् बालस्योपनय विदुः" ॥
इति स्मृतिः । भावे + अच् । प्रापणम् । यथा, महाभारते ३ । २ । २४ ।
"नानमस्य प्रियाख्याने सम्भोगोपनयैस्तथा" ।
न्यायमते यो यो धूमवान् स वह्निमान् अयमपि तथेत्यादिरूप न्यायावयवभेदः ॥)

उपनयन, स्त्री, (अध्ययनार्थं आचार्य्यस्य उप समीप नीयते येन कर्म्मणा इति । उप + नी ल्युट् ।) ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां यज्ञसूत्रधारणादिरूपप्रधानसंस्कारः । अध्यापनार्थमाचार्य्यसमीप नीयते येन कर्म्मणा तदुपनयनम् । यथा स्मृतिः ।
"गृह्योक्तकर्म्मणा येन समीप नीयते गुरोः ।

बालो वेदाय तद्योगाद्बालस्योपनयं विदुः” ॥*॥ तत्पर्य्यायः । वटूकरणम् २ । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ उपनायः ३ उपनयः ४ आनयः ५ । इति हेमचन्द्रः ॥ तस्य कालः ।

“गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम् ।
ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्य्यं विप्रस्य पञ्चमे” ॥

ब्राह्मणस्य गर्भावधिषोडशवर्षपर्य्यन्तम् ॥ तत्र गर्भाष्टमवर्षो मुख्यः । क्षत्त्रियस्य द्वाविंशतिवर्षपर्य्यन्तम् । तत्रैकादशवर्षो मुख्यः । वैश्यस्य चतुर्व्विंशतिवर्षपर्य्यन्तम् । तत्र द्वादशवर्षो मुख्यः । इति स्मृतिः ॥ सैके द्वादशे । तत्राशक्तौ प्रायश्चित्तं कृत्वा तदुत्तरे कार्य्यम् ।

“गृह्योक्तकर्म्मणा येन समीपं नीयते गुरोः ।
बालो वेदाय तद्योगाद्बालस्योपनयं विदुः ॥
रक्षावे तथा शक्रच्चते पाठनिषेधनात् ।
उपनयनं न तत्र स्यात् इति मन्वादिसम्मतम्” ॥

कृत्यचिन्तामणौ ।

“जन्मोदये जन्मसु तारकासु
मासेऽथवा जन्मनि जन्मभे वा ।
व्रतेन विप्रो न बहुश्रुतोऽपि
विद्याविशेषैः प्रथितः पृथिव्यां ॥
अस्तं गते दैत्यगुरौ गुरौ वा
क्षत्त्रेऽपि वा पापयुतेऽप्यनुक्ते ।
व्रतोपनीतो दिवसे प्रयाणं
प्रयाति देवैरपि रक्षितो यः” ॥

उदये लग्ने । व्रतेन उपनयनेन । भुजबलभीमकृत्यचिन्तामण्योः ।

“स्वातीशक्रधनाश्विमित्रकरभे पौष्णेज्यचित्राहरिव्विन्दौ तोयपतौ भगे दितिसुते भाद्रद्वये सागरे ।
केन्द्रस्थे भृगुजेऽङ्गिरःशशिसुते चन्द्रे च तारे शुभे कर्त्तव्यं व्रतकर्म्म मङ्गलतिथौ वाराः सितार्केन्द्यकाः” ॥

तोयपतिः शतभिषा । अदितिसुतः उत्तरफल्गुनी । सागरः पूर्व्वाषाढा । दीपिकायाम् ।

जीवार्केन्दूडुशुद्धौ हरिशयनवह्निभास्करे चोत्तरस्थे,
स्वाध्याये वेदवर्णाधिपदृढशुभदे चौरिभे गादितौ च ।
शुक्रार्केन्द्यर्द्धलग्ने रविमदनतिथिं प्रोह्य षष्ठाष्टमेन्दुं,
गो जीवास्तातिचारेऽर्कसितगुरुदिने कालशुद्धौ
व्रतं स्यात्” ॥

रविमदनतिथिं सप्तमीं त्रयोदशीम् ॥*॥ कृत्यचिन्तामणौ ।

“माघे द्रविणशीलाढ्य फाल्गुने च दृढव्रतः ।
चैत्रे भवति मेधावी वैशाखे कोविदो भवेत् ॥
ज्यैष्ठे गहननीतिज्ञ आषाढ़े क्रतुभाजनः ।
शेषेष्वन्येषु रात्रिः स्यान्निषिद्धं निशि च व्रतम्” ॥

राजमार्त्तण्डे ।

“पुनर्व्वसौ कृतो विप्रः पुनःसंस्कारमर्हति” ।

वृद्धगर्गः ।

“रवियुक्तानध्यायान् सप्तमीं च त्रयोदशीम् ।
पक्षयोर्माघमासस्य द्वितीयां परिवर्जयेत्” ॥

चैत्रशुक्लतृतीया आषाढ़शुक्लदशमी मन्वन्तरादित्वेन निषिद्धा वैशाखशुक्लतृतीया युगादित्वेन निषिद्धेति । अष्टमश्रुचिरमायां रिक्तासु बहुदोषभाक् । शुक्लपक्ष एव विहितं प्रागुक्ताश्वलायनवचनात् ॥*॥ सामगानां कृष्णपक्षेऽप्युपनयनं श्रीपतिरत्नमालाकृत्यचिन्तामणिधृतवात्स्यवचनात् । यथा ।

“शाखाधिपे बलिनि केन्द्रगतेऽथ वास्मिन्
वारेऽस्य चोपनयनं कथितं द्विजानाम् ।
नीचस्थितेऽरिगृहगेऽथ पराजिते वा
जीवे भृगावुपनयः स्मृतिकर्म्महीनः” ॥

अस्य शाखाधिपस्य ॥ दीपिकायां ।

“ऋग्वेदाधिपतिर्जीवो यजुर्व्वेदाधिपः सितः ।
सामवेदाधिपो भौमः शशिजोऽथर्व्ववेदराट्” ॥

वेदाधिपकथनम् ॥*॥

“ब्राह्मणे शुक्रवागीशौ क्षत्त्रिये भौमभास्करौ ।
चन्द्रो वैश्ये बुधः शूद्रे पतिर्मन्दोऽन्त्यजे जने” ॥

वर्णाधिपकथनम् ॥*॥ पराजयलक्षणं वक्ष्ये यात्रायाम् ।

अत्रापि विवाहवद्दशयोगभङ्गवर्ज्जनम् ।

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

“षोडशाब्दो हि विप्रस्य राजन्यस्य द्विविंशतिः ।
विंशतिः सचतुर्थी च वैश्यस्य परिकीर्त्तिता ॥
सावित्री नातिवर्त्तेत अत ऊर्द्ध्वं निवर्त्तते” ॥

अत्र षोडशवर्षस्य उपनयनाङ्गता प्रतीयते ॥

“पतिता यस्य सावित्री दशवर्षाणि पञ्च च ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण तथा राजन्यवैश्ययोः ॥
प्रायश्चित्तं भवेदेषां प्रोवाच वदतां वरः” ॥

इति यमवचने तदनङ्गता प्रतीयते । अनयोर्गर्भजन्मप्रभृतिगणनाभ्यामविरुद्धार्थता । तथा च माण्डव्यः । “व्रतबन्धविवाहे च वत्सरपरिकल्पनं माङ्गराचार्य्याः । आधानपूर्व्वमेके प्रसूतिपूर्व्वं सदान्ये तु” ॥*॥ यत्तु द्विजानुपक्रम्य पैठिनसिवचनं द्वादशषोडशविंशतिश्चेदतीता अवरुद्धकाला भवन्ति इति द्वादशवर्षाद्युपरि ब्राह्मणादीनां महाव्याहृतिहोमप्रायश्चित्तार्थम् । षोड़शोपरि तु व्रात्यहोमादिगुरुप्रायश्चित्तार्थमिति । इत्युपनयनम् । इति ज्योतिस्तत्त्वम् ॥

अथ उपनयनस्यानुष्ठानक्रमः ।

तत्र प्रथमं प्रातः कृतस्नानः कृतवृद्धिश्राद्धः पिता कृतवृद्धिश्राद्धेन पित्रान्य एवाचार्य्यो वृतस्तदसम्भवे माणवकवृतो वा समुद्भवनामानमग्निं संस्थाप्य विरूपाक्षजपान्तां कुशकण्डिकां समाप्य माणवकं प्रातर्भोजयित्वा अग्न्युत्तरतो नीत्वा शिखया सह मुण्डितं स्नापितं कुण्डलाद्यलङ्कृतं क्षौमवस्त्रावृतं तदसम्भवे शुक्लाहतकार्पासिकवस्त्रावृतं माणवकं दक्षिणे पूर्व्वाभिमुखं निधाय प्रकृतकर्म्मारम्भे प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा तत्तन्मन्त्रैर्व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात् । ततः आचार्य्यः पञ्चभिर्म्मन्त्रैः पञ्चाहुतीर्जुहुयात् । तत आचार्य्यः उदगग्रेषु कुशेषु कृताञ्जलिः प्राङ्मुखः ऊर्द्ध्वस्तिष्ठेत् । अग्न्याचार्य्ययोर्म्मध्ये माणवकोऽपि कृताञ्जलिराचार्य्याभिमुखः उदगग्रेषु कुशेषु ऊर्द्ध्वस्तिष्ठेत् । माणवकस्य दक्षिणतः स्थितो मन्त्रवान् ब्राह्मणो माणवकस्य अञ्जलिमुदकेन पूरयति पश्चात् आचार्य्यस्यापि । ततो गृहीतजलाञ्जलिराचार्य्यो गृहीतजलाञ्जलिं माणवकं पश्यन् मन्त्रं जपति । तत आचार्य्यो माणवकं मन्त्रं पाठयति । ततो माणवकस्याभिवादनार्थं देवताश्रयं नक्षत्राश्रयं गोत्राश्रयं वा माणवकनाम कल्पयित्वा आचार्य्यो माणवकं कथयति । तत आचार्य्यो माणवकं मन्त्रेण नामधेयं पृच्छति । माणवकः पूर्व्वाचार्य्यकल्पितं नाम मन्त्रेण कथयति । तत आचार्य्यमाणवकौ पूर्व्वगृहीतजलाञ्जली त्यजेताम् । आचार्य्यस्तु दक्षिणेन पाणिना माणवकस्य साङ्गुष्ठं दक्षिणं पाणिं मन्त्रेण गृह्णाति । ततो गृहीतमाणवकहस्तो मन्त्रं जपत्याचार्य्यः । ततो माणवकमाचार्य्यो मन्त्रेण प्रदक्षिणेन भ्रामयित्वा प्राङ्मुखं करोति । ततो माणवकस्य दक्षिणस्कन्धं स्पृष्ट्वा अवतीर्णेन दक्षिणपाणिना अव्यवहितं नाभिदेशं आचार्य्यो मन्त्रेण स्पृशति । ततो माणवकस्य नाभेरुपरिदेशं मन्त्रेण आचार्य्यः स्पृशति । ततो माणवकहृदयदेशं मन्त्रेणाचार्य्यः स्पृशति । ततो दक्षिणेन पाणिना आचार्य्यो माणवकस्य दक्षिणस्कन्धं स्पृशन् मन्त्रं जपति । ततो वामेन पाणिना माणवकस्य वामस्कन्धं स्पृशन्नाचार्य्यो मन्त्रं जपति । अथाचार्य्यो माणवकं मन्त्रेण सम्बोधयति । अथ सम्बोधितं माणवकं आचार्य्यो मन्त्रेण प्रेषयति । ब्रह्मचारी तु सर्व्वत्र बाढ़मिति ब्रूयात् । ततोऽग्नेरुत्तरभागे गत्वा आचार्य्यः उदगग्रेषु कुशेषु प्राङ्मुख उपविशति । तत आचार्य्याभिमुखो माणवकः पाणितदक्षिणजानुः उदगग्रेषु कुशेषु उपविशति । ततः प्रवरसंख्यया पञ्च वा त्रयो वा मेखलायज्ञोपवीतरूपग्रन्थयः कर्त्तव्याः । अथैनं माणवकमाचार्य्यस्त्रिःप्रदक्षिणं कारयित्वा त्रिवृतां मुञ्जमेखलां परिधापयन् मन्त्रद्वयं वाचयति । ततो यज्ञोपवीतं कृष्णसाराजिनान्वितं आचार्य्यो माणवकं मन्त्रेण परिधापयेत् । ततो माणवकमाचार्य्यस्य उपसन्नो भवति । ततस्तमुपसन्नमाणवकं आचार्य्यः प्रथमं पादं पादं ततोऽर्द्धमर्द्धं ततः कृत्स्नां सावित्रीं अध्यापयेत् । तत आचार्य्यो माणवकं महाव्याहृतीः पृथक् पृथक् ज्ञात्वा प्रणवपूर्व्विकाः अध्यापयेत् । ततो वैल्वं पालाशं वा माणवकपरिमाणदण्डं माणवकाय प्रयच्छन् आचार्य्यो माणवकं मन्त्रं वाचयति । अथ गृहीतदण्डो ब्रह्मचारी प्रथमं मातरं भिक्षां प्रार्थयति । ततो मातृबन्धून् ततः पितरं ततः पितृबन्धून् ततोऽन्यांश्च प्रार्थयेत् । ततः सर्व्वं लब्धभैक्षं आचार्य्याय निवेदयेत् । ततः पूर्व्ववदाचार्य्यो व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमं कृत्वा प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा प्रकृतं कर्म्म समाप्य उदीच्य शाट्यायनहोमादिवामदेव्यगानान्तं कर्म्म निर्व्वर्त्तयेत् । तत्र यदि पितैवाचार्य्यस्तदा कर्म्मकारयितृब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात् । अथान्य-

एवाचार्य्यो वृतः तदा येन वृत स तस्मै दक्षिणा दद्यात्। ब्रह्मचारी तु तत्रैव स्थाने दिनान्त यावत् वाग्यतस्तिष्ठेत्। ततः प्राप्तायां सन्ध्यायां सन्ध्यामुपास्य कुशण्डिकोक्तविधानेन समुद्भवनामानमग्निं संस्थाप्य मन्त्र जप्ता दक्षिण जानु भूमौ निधाय दक्षिणपश्चिमोत्तरक्रमेण उदकाञ्जलिसेकमग्निपर्य्युक्षणञ्च कृत्वा समिद्धोम कुर्य्यात्। तत प्रादेशप्रमाणघृताक्तसमित्त्रय गृहीत्वा आद्यन्तयोस्तूष्णीं मध्ये समन्त्रक अग्नौ जुहुयात्। तत कर्म्मशेषोक्तविधिना पुनरपि अग्निपर्य्युक्षणोपक्रम दक्षिणपश्चिमोत्तरक्रमेण उदकाञ्जलिसेक कुर्य्यात्। तत ब्रह्मचारी अग्निमभिवाद्य मन्त्रेणाग्नि विसृज्य अतीतायां सन्ध्यायां भिक्षालब्धमन्न क्षारलवणवर्जित सघृतमुदकेनाभ्युक्ष्य भक्षणप्रकरणोक्तविधिना भुञ्जीत। एतच्चाग्निकर्म्म समावर्त्तनपर्य्यन्त प्रत्यह साय प्रात कर्त्तव्यम्॥ इत्युपनयनकर्म्म समाप्तम्॥ इति भवदेवभट्ट॥ (ब्राह्मण-क्षत्त्रिय वैश्यानामन्यतममन्वय-वय शील-शौर्य्य-शौचाचार-विनय-शक्ति-बल-मेधा-धृति-स्मृति-मति-प्रतिपत्तियुक्त तनुजिह्वौष्ठदन्ताग्रमृजुवक्त्राक्षिनास प्रसन्नचित्त-वाक्चेष्ट क्लेशसहञ्च भिषक् शिष्यमुपनयेत्। अतो विपरीतगुण नोपनयेत्।

उपनयनीयन्तु ब्राह्मण प्रशस्तेषु तिथिकरण-मुहूर्त्तनक्षत्रेषु प्रशस्तायां दिशि शुचौ समे देशे चतुर्हस्त चतुरस्र स्थण्डिलमुपलिप्य गोमयेन दर्भै संस्तीर्य्य पुष्पैर्लाजभक्तै रत्नैश्च देवता पूजयित्वा विप्रान् भिषजश्च तत्रोल्लिख्याभ्युक्ष्य च दक्षिणतो ब्राह्मण स्थापयित्वाग्निमुपसमाधाय खदिर-पलाश-देवदारु-विल्वाना समिद्भिश्चतुर्णां वा क्षीरवृक्षाणा न्यग्रोधोडुम्बराश्वत्थमधूकाना दधि-मधु-घृताक्ताभिर्दार्व्वीहौमिकेन विधिना-स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहुयात्। सप्रणवाभिर्महाव्याहृतिभिस्तत प्रतिदैवतमृषींश्च स्वाहाकारञ्च कुर्य्यात् शिष्यमपि कारयेत्॥ ब्राह्मणस्त्रयाणा वर्णानामुपनयन कर्त्तुमर्हति राजन्यो द्वयस्य वैश्यो वैश्यस्यैवेति। शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्न मन्त्रवर्ज्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके॥ ततोऽग्नि त्रि परिणीयाग्निसाक्षिक शिष्य ब्रूयात्। काम-क्रोध-लोभ-मोह-मानाहङ्कारेर्ष्यापारुष्य--पैशुन्यानृतालस्याय-शस्यानि हित्वा नीच-नख-रोम्ना शुचिना कषाय-वाससा सत्यव्रतब्रह्मचर्य्याभिवादनतत्परेणावश्य भवितव्य मदनुमतस्थान-गमन-शयनासन-भोजनाध्ययन-परेण भूत्वा मत्प्रियहितेषु वर्त्तितव्यमतोऽन्यथा ते वर्त्तमानस्याधर्म्मो भवत्यफला च विद्या न च प्राकाश्य प्राप्नोति। अह वा त्वयि सम्यग्वर्त्तमाने यद्यन्यथादर्शी स्यामेनोभाग् भवेय-मफलविद्यश्च। द्विज-गुरु-दरिद्र-मित्र-प्रव्रजितोपनत-साध्वनाथाभ्युपगताना चात्मबान्धवानामिव स्वभेषजै प्रतिकर्त्तव्यमेव साधु भवति। व्याधशाकुनिक-पतित-पापकारिणा न च प्रतिकर्त्तव्यमेव विद्या प्रकाशते मित्रयशो धर्म्मार्थकामाश्च प्राप्नोति॥

भवनस्यात्र॥

"कृष्णोऽष्टमी तन्निधनेऽहनी द्वे
कृष्णेतरेऽप्येवमहर्द्विसन्ध्यम्।
अकालविद्युत्-स्तनयित्नुघोषे
स्वतन्त्रराष्ट्रक्षितिपव्यथासु॥
श्मशानयानायतनाहवेषु
महोत्सवौत्पातिकदर्शनेषु।
नाध्येयमन्येषु च येषु विप्रा-
नाधीयते नाशुचिना च नित्यम्"॥

इति सुश्रुते सूत्रस्थाने द्वितीयोऽध्यायः॥)

उपनाय, पु, (उपनीयते आचार्य्यसमीपमिति। उप + नी + घञ्।) उपनयनम्। इति हेमचन्द्र॥

उपनायक, पु, (उपमितो नायकेन।) नायकगुणोत्कर्षकथक। यथा,—

"नायकस्य गुणोत्कर्षकथका उपनायका"।

इति सङ्गीतदामोदर॥ *॥ उपपतिश्च॥ (उपनयतीति। उप + नी + ण्वुल्। प्रापके, त्रि॥)

उपनाह, पु, (उपनह्यते ऽस्मिन्। उप + नह + घञ्।) वीणादितन्त्रबन्धनस्थानम्। तत्पर्य्याय। निबन्धनम् २। इत्यमरः॥ व्रणालेपपिण्ड। इति मेदिनी॥ प्रलेप इति भाषा। (यथाह सुश्रुत।

"आदौ विम्लापन कुर्य्यात् द्वितीयमवसेचनम्।
तृतीयमुपनाहञ्च चतुर्थी पाटनक्रियाम्"॥)

उपनिधि, पु, (उपनिधीयते इति। उप + नि + धा + कि।) उपन्यस्तवस्तु। स्थाप्यद्रव्यम्। तत्पर्य्याय। न्यास। २। इत्यमर॥

("वासनस्थमनाख्याय हस्ते न्यस्य यदर्पितम्।
द्रव्यमुपनिधि प्रोक्त स्मृतिषु स्मृतिवेदिभि"॥)

वासुदेवपुत्त्रः। इति विष्णुपुराणम्॥)

उपनिषत्, [द्] स्त्री, (उपनिषद्यते प्राप्यते ब्रह्मविद्या अनया इति। उप + नि + सद + क्विप्।) धर्म्म। वेदान्तशास्त्रम्। निर्जनस्थानम्। इति मेदिनी॥ (वेदशिरोभाग। तत्र चतुर्णां वेदाना अशीतिसहितशताधिकसहस्रसंख्यका उपनिषद। तथाहि। ऋच एकविंशति। यजुषो नवाधिकशतम्। साम्न सहस्रम्। पञ्चाशदुपनिषदोऽथर्वणस्य॥ ब्रह्मविद्या।) समीपसदनम्। इति त्रिकाण्डशेष॥ तत्त्वम्। इत्यमरटीकायां भरतः॥ (द्विजातिकर्त्तव्यो व्रतभेदः। यथा, आश्वलायनगृह्यकारिका।

"प्रथम स्यात् महानाम्नी द्वितीयञ्च महाव्रतम्।
तृतीय स्यादुपनिषद् गोदानञ्च तत परम्"॥)

(मुक्तिकोपनिषदि अष्टाधिकशतोपनिषद्भेदा प्रदर्शिता। यथा,—

"ईश केन कठ प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरिः॥७॥
ऐतरेयञ्च छान्दोग्य वृहदारण्यक तथा॥१०॥
ब्रह्म कैवल्य-जाबाल-श्वेताश्वा हस आरुणि॥१६॥
१ २ ३ ४ ५
गर्भो नारायणो हसो विन्दुर्नाद-शिरः शिखा॥२३॥
६
मैत्रायणी कौषितकी वृहज्जाबाल-तापनी॥२७॥
कालाग्निरुद्र-मैत्रेयी सुबाल-क्षुरि-मन्त्रिका॥३२॥
७
सर्व्वसार निरालम्ब रहस्य वज्रसूचिकम्॥३६॥
८ ९ १० ११
तेजोनाद-ध्यान-विद्या योगतत्त्वात्मबोधकम्॥४२॥
१२ १३ १४ १५
परिव्राट्-त्रिशिखी-सीता-चूडानिर्व्वाण-मण्डलम्॥४८॥
१६ १७
दक्षिणाशरभ स्कान्द महानारायणाऽद्वयम्॥५३॥
१८
रहस्य रामतपन वासुदेवञ्च मुद्गलम्॥५७॥
१९ २०
शाण्डिल्य पैङ्गल भिक्षु महच्छारीरक शिखा॥६३॥
२१
तुरीयातीत-सन्यास-परिव्राजाक्षमालिका॥६७॥
२२
अव्यक्तैकाक्षर पूर्णा सूर्य्याक्ष्यध्यात्म-कुण्डिका॥७४॥
सावित्र्यात्मा पाशुपत परब्रह्मावधूतकम्॥७९॥
२३
त्रिपुरातापन देवी त्रिपुरा कठ-भावना॥८४॥
२४ २५ २६ २७
हृदय कुण्डली भस्म रुद्राक्षगण-दर्शनम्॥९०॥
२८
तारसार-महावाक्य-पञ्चब्रह्माग्निहोत्रकम्॥९४॥
गोपालतापन कृष्ण याज्ञवल्क्य वराहकम्॥९८॥
शाट्यायनी हयग्रीव दत्तात्रेय च गारुडम्॥१०२॥
२९ ३०
कलि-जाबालि-सौभाग्य-रहस्य-ऋच-मुक्तिका"॥१०८॥

अत्र स्थितानामेकदेशवाचिशब्दानां विवृतिः।

१ हस परमहस। २ विन्दुरमृतविन्दु। ३ नादोऽमृतनाद। ४ शिरोऽथर्व्वशिरः। ५ शिखाथर्व्वशिखा। ६ तापनी नृसिंहतापनी। ७ रहस्य शुकरहस्यम्। ८ तेज तेजोविन्दु। ९ नादो नादविन्दु। १० ध्यान ध्यानविन्दुः। ११ विद्या ब्रह्मविद्या। १२ परिव्राट् नारदपरिव्राट्। १३ त्रिशिखी त्रिशिखीब्राह्मण। १४ चूड़ा योगचूड़ामणिः। १५ मण्डल मण्डलब्राह्मण। १६ दक्षिणा दक्षिणामूर्त्ति। १७ अद्वय तारक। १८ रहस्य रामरहस्यम्। १९ महत् महोपनिषत्। २० शिखा योगशिखा। २१ परिव्राज परमहसपरिव्राजक। २२ पूर्णाऽन्नपूर्णा। २३ कठः कठरुद्र। २४ कुण्डली योगकुण्डली। २५ भस्म भस्मजाबालः। २६ गण गणपति। २७ दर्शन जाबालदर्शनम्। २८ अग्निहोत्रक प्राणाग्निहोत्रम्। २९। कलिः कलिसन्तरणम्। ३० रहस्य सरस्वतीरहस्यम्॥

आसा मध्ये या यद्वेदान्तर्गतास्ता अपि तत्रैव प्रदर्शिता। यथा,—

सामवेदान्तर्गता षोड़शसंख्यका उपनिषदः।

अव्यक्तम् १ आरुणि २ कुण्डिका ३ केन ४ छान्दोग्यम् ५ (जा)बालदर्शनम् ६ जाबाली ७ महत् ८ मैत्रायणी ९ मैत्रेयी १० योगचूडामणिः ११ रुद्राक्षम् १२ वज्रसूचिकम् १३ वासुदेवम् १४ सन्यासम् १५ सावित्री १६॥ *॥

शुक्लयजुर्व्वेदान्तर्गता ऊनविंशतिसंख्यकाः उपनिषदः यथा,—

अधीताध्यात्मम् १ ईशावास्यम् २ (जा)बालम् ३

तारसारः ४ तुरीयम् ५ त्रिशिखी ६ निरालम्बम् ७ परमहंस ८ पैङ्गलम् ९ ब्राह्मणमण्डलम् १० ब्राह्मणद्वयतारकम् ११ भिक्षु १२ मन्त्रिका १३ मुक्तिका १४ याज्ञवल्क्यम् १५ बृहदारण्यकम् १६ शाट्यायनी १७ सुबालः १८ हंस १९ ॥*॥

कृष्णयजुर्व्वेदान्तर्गता द्वात्रिंशत्-संख्यका उपनिषद यथा,—

अक्षि १ अमृतनाद २ अमृतविन्दु ३ अवधूतम् ४ एकाक्षरा ५ कठरुद्र ६ कठवल्ली ७ कलिसन्तरणम् ८ कालाग्निरुद्र ९ कैवल्यम् १० क्षुरिका ११ गर्भ १२ तेजोविन्दु १३ तैत्तिरीयकम् १४ दक्षिणामूर्त्ति १५ ध्यानविन्दु १६ नारायण १७ पञ्चब्रह्म १८ प्राणाग्निहोत्रम् १९ ब्रह्म २० ब्रह्मविद्या २१ योगकुण्डलिनी २२ योगतत्त्वम् २३ योगशिखा २४ वराह २५ शारीरकम् २६ शुकरहस्यम् २७ श्वेताश्वतर २८ सर्व्वसार २९ स्कन्द ३० सरस्वतीरहस्यम् ३१ हृदयम् ३२ ॥*॥

ऋग्वेदान्तर्गता दशसंख्यका उपनिषद यथा,—

अक्षमालिका १ आत्मप्रबोध २ ऐतरेय ३ कौषितकी ४ त्रिपुरा ५ नादविन्दु ६ निर्व्वाणम् ७ मुद्गलाष्टकञ्च ९ सौभाग्यम् १० ॥ * ॥

अथर्व्ववेदान्तर्गता एकत्रिंशत्संख्यका उपनिषद,

अथर्व्वशिखा १ अथर्व्वशिर २ कृष्ण ३ गणपति ४ गारुडम् ५ गोपालतापनम् ६ जावालम् ७ त्रिपुरातपनम् ८ दत्तात्रेय ९ देवी १० नारदपरिव्राजकः ११ नृसिंहतापनी १२ परब्रह्म १३ परिव्राजकान्नपूर्णा १४ परमहंसः १५ पाशुपतम् १६ प्रश्नम् १७ भस्म १८ भावना १९ महानारायणम् २० महावाक्यम् २१ माण्डूक्यम् २२ मुण्डकम् २३ रामतापनी २४ रामरहस्यम् २५ बृहज्जाबालम् २६ शरभम् २७ शाण्डिल्यम् २८ सीता २९ सूर्य्यात्म ३० हयग्रीवम् ३१ ॥*॥)

उपनिष्कर, क्ली, (उपनिष्किरन्ति सैन्यान्यत्र । उप + निस् + कॄ + घ । ऋदोरप् तु न । अपोबाधकस्य ल्युटोऽपि घस्यापवादत्वात् । यद्वा उप निष्कीर्य्यते सैन्यैर्ह्न्यते इति । कृ + कर्म्मणि अप् । इदुदुपधस्येति ष ।) पुरपथ । इत्यमर ॥ राजपथ । इति हेमचन्द्र ॥

उपनिष्क्रमणं क्ली, (उपक्राम्यतेऽनेन उप + निर् + क्रम + ल्युट् । ) राजपथ । इति हेमचन्द्र ॥ निष्क्रमणनामसंस्कार ॥

उपनीत, पुं, (उप + नी + क्त ।) कृतोपनयन । इति स्मृति ॥ ("अथोपनीतं विधिवद् विपश्चित" । इति रघु । ३ । २९ ।) निकटप्राप्ते त्रि ॥

उपन्यास, पु, ( उप + नि + अस् क्षेपणे + घञ् । ) वाङ्मुखम्। तत्पर्य्याय । वाङ्मुखम् २ । इत्यमरः ॥ ("तस्मात् ब्रह्मजिज्ञासोपन्यासमुखेन" । इति शारीरकभाष्ये ॥ ९४ । ७ । विचार । यथा, मनुः ८।३१ ।

"विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासं निबोधत" ॥

"वक्ष्याम्यहं सर्व्वजनहित विचार प्रस्तुत" ।

इति तट्टीका ।)

धनादीनामर्पणम् । गच्छित इति भाषा ॥)

उपपति, पु, (उपमित पत्या । अवादय क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया इति समास ।) जार । इत्यमर ॥ ना इति भाषा । तस्य लक्षणम् । आचारहानिहेतु पति । स चतुर्व्विध । सार्व्वकालिकपराङ्गनापराङ्मुखत्वे सति सर्व्वकालमनुरक्तोऽनुकूल १ । सकलनायिकाविषयसमसहजानुरागो दक्षिण २ । भूयो नि शङ्क कृतदोषोऽपि भूयो निवारितोऽपि भूय प्रश्रयपरायणो धृष्ट ३ । कामिनीविषयकपटपटु शठ ४ । इति रसमञ्जरी ॥ (यथा, मनु ३ । १५५ ।

"पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपतिर्गृहे" ॥)

उपपत्ति, स्त्री, (उप + पद + क्तिन् ।) सङ्गति । निर्वृत्ति । समाधानम् । सिद्धान्त । प्रकरणप्रतिपाद्यार्थसाधने तत्र तत्र श्रूयमाणा युक्ति । इति वेदान्तसार ॥ ("उपपत्तिमदूर्ज्जिताश्रयम्" । इति भारवि । २ । १ ॥) हेतु । यथा,—

"श्रोतव्य श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभि" ।

इत्यत्र उपपत्तिभिर्वङ्गभिर्हेतुभिरिति पक्षतायश्यमाथुरी ॥ सङ्गति । यथा,—

"लक्षणा शक्यसम्बन्धस्तात्पर्य्यानुपपत्तित" ।

इति भाषापरिच्छेद । ८२ ॥ (उपाय । यथा माघे ।

"अपेक्षितान्योन्यबलोपपत्तिभि" । सिद्धि । प्राप्ति । "स्वार्थोपपत्तिं प्रति दुर्ब्बलाश" । इति रघु ॥ ५ । १२ ॥)

उपपद, क्ली, (उपोच्चारित पदम् ।) लेश । इति त्रिकाण्डशेष ॥ समीपोच्चारणीयपदम् । (यथा, रघौ १६ । ४० । "तस्या स राजोपपद निशान्तम्" ॥) यथा वा नामोत्तरे शर्म्मवर्म्मादि । समभिव्याहृतस्वार्थपोषकपदम् । यथा प्रहारादौ प्रादि । इति व्याकरणम् ॥

उपपातक, क्ली, ( उपपातयति नरके यत् । उप + पत् + णिच् + ण्वुल् । यद्वा उपमितं पातकेन । ) पापविशेष । तत्तु ऊनपञ्चाशद्विधयथा । गोवध १ अयाज्ययाजनम् २ परदारगमनम् ३ आत्मविक्रय ४ गुरुत्याग ५ मातृत्याग ६ पितृत्याग ७ एषां शुश्रूषाद्यकरण त्याग । स्वाध्यायत्याग ८ स तु सर्व्वदा ब्रह्मयज्ञत्याग । अधीतवेदविस्मरणञ्च । अग्नित्याग ९ स तु स्मार्त्ताग्निहोत्रत्याग । सुतत्याग १० स तु तस्य संस्कारभरणाद्यकरणम् । परिवित्तिता ११ सा तु कनिष्ठेन आदौ विवाहे कृते ज्येष्ठस्य । परिवेदनं १२ तत्तु अकृतदारज्येष्ठसत्त्वे कनिष्ठस्य । तयो कन्यादान १३ तयोर्याजन १४ तत्तु तयोरेव विवाहादौ पौरोहित्यम् । कन्याया दूषणं १५ तत्तु मैथुनवर्जमङ्गुलीप्रक्षेपादिना दूषणम् । अङ्गुल्या योनिविदारणमिति यावत् । वार्द्धुष्य १६ तत्तु निषिद्धवृद्धिजीवनम् । व्रतलोप १७ स तु ब्रह्मचारिणो मैथुनम् । तडागविक्रय १८ आरामविक्रय १९ दारविक्रय २० अपत्यविक्रय २१ व्रात्यता २२ सा तु यथाकालमनुपनयनम् । बान्धवत्याग २३ भृताध्यापनम् २४ तत्तु प्रतिनियतवेतनग्रहणपूर्व्वमध्यापनम् । भृताध्ययनम् २५ तत्तु वेतनप्रदानपूर्व्वकाध्ययनम् । अपण्यानां विक्रय २६ स तु तिललाक्षागोरसादीनां ब्राह्मणेन विक्रय । सर्व्वाकरेष्वधीकार २७ स तु सुवर्णाद्युत्पत्तिस्थानेषु राजाज्ञया अधिकार । महायन्त्रप्रवर्त्तन २८ तत्तु महता उदकप्रवाहप्रतिबन्धहेतुना सेतुबन्धादीनाञ्च प्रवर्त्तन अथवा तैलादियन्त्रस्य शस्त्रतेजनादियन्त्रस्य च । ओषधिहिंसन २९ तत्तु धान्यादीनां यथाकथञ्चिन्नाश । स्त्र्याजीव ३० स तु भार्य्यादिस्त्रीणां वेश्यात्वं कृत्वा तदुपजीवनम् । अभिचारकर्म्म ३१ तत्तु श्येनादिना यज्ञेन अनपराद्धस्य मारणम् । मूलकर्म्म ३२ तत्तु मन्त्रौषधादिना वशीकरणम् । इन्धनार्थमशुष्कद्रुमाणां छेदनं ३३ आत्मार्थं क्रियारम्भ ३४ स तु अनातुरस्य देवपित्राद्युद्देशमन्तरेण पाकाद्यनुष्ठानम् । निन्दितान्नस्य भक्षणम् ३५ तत्तु लशुनादे सकृदनिच्छया अथवा गणकदेवलतस्कराद्यन्नभक्षणम् । अनाहिताग्निता ३६ सा तु समर्थस्य श्रौतस्मार्त्ताग्न्यपरिग्रह । स्तेयं ३७ तत्तु सुवर्णद्रव्यादन्यसारद्रव्यापहरणम् । देवर्षिपितॄणां ऋणाशोधन ३८ असच्छास्त्राभिगमनम् ३९ तत्तु श्रुतिस्मृतिविरुद्धशास्त्रशिक्षणम् पापण्डशास्त्राभ्यासो वा । कौशीलव्यक्रिया ४० सा तु तौर्य्यत्रिकस्य सततानुष्ठानम् । धान्यस्तेय ४१ पशुस्तेयम् ४२ कुप्यस्तेयम् ४३ मद्यपस्त्रीनिषेवनम् ४४ स्त्रीवध ४५ शूद्रवध ४६ वैश्यवध ४७ क्षत्रियवध ४८ नास्तिक्यम् ४९ । तत्तु अदृष्टार्थकर्म्माभावबुद्धिः । नास्ति परलोक इति वा । इति मनु शूलपाणिश्च ॥ (अस्य प्रायश्चित्तादिक प्रायश्चित्तशब्दे द्रष्टव्यम् ॥)

उपपाप, क्ली, ( उपमित पापेन । ) उपपातकम् । इति स्मृति ॥

उपपुरं, क्ली, ( उप समीपे पुरम् ।) शाखानगरम् । इति हेमचन्द्र ॥

उपपुराण, क्ली, ( उपमित पुराणै । ) व्यासकृताष्टादशपुराणसदृशनानामुन्यादिप्रणीताष्टादशपुराणम् । यथा,—

"अन्यान्युपपुराणानि मुनिभि कथितान्यपि ।
आद्य सनत्कुमारोक्त १ नारसिंहं २ तत परम् ॥
तृतीय वायवीयञ्च ३ कुमारेण च भाषितम् ।
चतुर्थं शिवधर्म्माख्य ४ साक्षान्नन्दीशभाषितम् ॥
दुर्व्वाससोक्तमाश्चर्य्यं ५ नारदीयमत परम् ६ ।
नन्दिकेश्वरयुग्मञ्च ७ तथैवोशनसेरितम् ८ ॥
कापिल ९ वारुण १० शाम्ब ११ कालिकाह्वयमेव च १२ ।
माहेश्वर १३ तथा कल्की १४ दैव १५ सर्व्वार्थसिद्धिदम् ॥
पराशरोक्तमपरम् १६ मारीचम् १७ भास्कराह्वयम् १८ ।"

अत्र दैव देवीपुराणम् । इति मलमासतत्त्वधृतकूर्म्मपुराणम् ॥ (एषां विवृतिस्तत्तच्छब्दे द्रष्टव्या ॥)

उपपुष्पिका, स्त्री, (उपगता पुष्पमिव विकाशत्वम् । जृम्भणसमये मुखव्यादानात् तथात्वम् । ) जृम्भा । हाइ इति भाषा । तत्पर्य्याय । हाफिका २ । इति हारावली ॥

उपप्रदानं, क्ली, (उप समीपे प्रदानम् ।) उत्कोच । इति हेमचन्द्रः ॥ घुस इति भाषा । (यथा कथा-सरित्सागरे २४ तरङ्गे ।
"उपप्रदानं शिशूनामेव शास्त्रकार्य्यौपधम्" ॥)

उपप्लव, पु, (उप + प्लु + अप् ।) राहुग्रहः । विप्लवः । उत्पात । इति मेदिनी ॥
("उपप्लवाय लोकानां धूमकेतुरिवोत्थित" ।) इति कुमारे । २ । ३२ ।) ग्रहणम् । यथा "उपप्लवे चन्द्रमसो रवेश्च" । इति स्मृति । (उत्पात-सूचकोऽनिलादि । यथा, "कच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लवो वः" । इति रघु । ५ । ६ । भीति । "तथा इवोपप्लविनः परेभ्य" । इति रघु । १६ । ७ ।
"उपप्लविनो भयवन्त" । इति मल्लिनाथ ।)

उपभूषण, क्ली, (उपमित भूषणेन ।) घण्टाचामरादि । यथा,—
"घण्टाचामरकुम्भादिमालोपकरणादिकम् ।
तद्भूषणान्तरे दद्यादुपमात्तदुपभूषणम्" ॥ इति ।
"प्रावारः पानपात्रञ्च गेण्डुको व्यजनमेव च ।
पर्य्यङ्कादि यदन्यच्च सर्व्वं तदुपभूषणम्" ॥
इति च कालिकापुराणे ६८ अध्याय ॥

उपभृत्, स्त्री, (उप + भृ + क्विप् ।) चमसाकारयज्ञ-पात्र । इत्यमर ॥ (यथा, श्रौतसूत्रे । १ । १० । ८ ।
"पाणिभ्यां जुहूं परिगृह्योपभृत्याधानम् ।)

उपभोग, पु, (उप + भुज + घञ् ।) भोजनाति-रिक्तभोगः । तत्पर्य्याय । निर्व्वेश २ । इत्यमर ॥
("प्रियोपभोगचिह्नेषु पौरोभाग्यमिवाचरन्" ।
इति रघु । १२ । २२ । तथा च स्मृति ।
"आगमेनोपभोगेन नष्टं भाव्यमतोऽन्यथा" ।
"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति" ।
इति मनु । २ । ९४ ॥)

उपमा, स्त्री, (उपमीयते इति । उप + मा + अङ् + टाप् ।) उपमानम् । सादृश्यम् । इत्यमर ॥
("स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना" । इति माघे १।४।
"अपि लङ्घितमध्वानं बुबुधे न बुधोपम" ।
इति रघु । १ । ४७ ।) तस्य वैदिकपर्य्याय । इदमिव १ इव यथा २ अग्निर्णये ३ चतुरश्चिद्ददमानात् ४ ब्राह्मणाव्रतचारिणः ५ वृक्षस्यनुते-पुरश्च्छवयाः ६ जारआभग ७ मेषोभूतोऽभीयन्नय ८ तद्रूपं ९ तद्वर्णं १० तद्वत् ११ तथा १२ । इति द्वादशोपमा । इति वेदनिघण्टौ ३ अध्यायः ॥ (अर्थालङ्कारभेद । विस्तृतिस्तु उपमा-लङ्कारशब्दे द्रष्टव्या ॥)

उपमाता, [ऋ] स्त्री, (उपमिता माता ।) धात्री । इति जटाधरः ॥ मातृ सदृशी । सा षड्विधा यथाह स्मृतिः ।
"मातुःस्वसा मातुलानी पितृव्यस्त्री पितृस्वसा ।
श्वश्रूः पूर्व्वजपत्नी च मातृतुल्या प्रकीर्त्तिताः" ॥
उपमानकर्त्तरि त्रि ॥

उपमान, क्ली, (उपमीयते इति । उप + मा + ल्युट् ।) उपमा । इत्यमर ॥ (यथा, कुमारे । ४ । ५ ।
"उपमानमभूद्विलासिनां
करणं यत्तव कान्तिमत्तया" ।

सादृश्यज्ञानम् । उपमितिकरणम् । यथा गौर्गवय-स्तथैवेतिवाक्ये । "प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधन-मुपमानम्" । इति न्यायसूत्रम् । प्रसिद्धस्य पूर्व्वप्रमितस्य गवादेः साधर्म्यात् सादृश्यात् तज्ज्ञानात् साध्यस्य गवयादिपदवाच्यत्वस्य साधनं सिद्धिरुपमानमुपमितिर्यत इत्यर्थः प्राचीन च करणमुपमानम् । अत्र च वैधर्म्योपमितिमपि मन्यन्ते टीकाकृत । यथा च अतिदीर्घग्रीवत्वादिमच्च-न्तरवैधर्म्यांश्च मत् । उष्ट्रे करभपदवाच्यतायाम् । एवमन्योऽपि उमानस्य निग्रह इति भाष्य । तथा मुद्गपर्णीसदृशी पायधी विष एत्तीत्यतिदेश वाक्यार्थ स्मृते मुद्गपर्णीसादृश्यज्ञाने जाते इयमोषधी विषहरणीत्युपमित्या विषयीक्रियते इत्यादि ॥)

उपमालङ्कार, पु, (उपमैव अलङ्कार ।) साम्या लङ्कार । यथा । उपमामाह ।
"साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयो" ।
तद्भेदा । सा द्विविधा । पूर्णा लुप्ता च । तत्र लक्षणम् । यथा, -
"सा पूर्णा यदि सामान्यधर्म्म औपम्यवाचि च" ।
इय मत औपम्यार्थौ च । तत्प्रत्ययस्तु ।
"श्रौती यथेववाशब्दा इवार्थो वा वतिर्यदि ।
आर्थी तुल्यसमानाद्यास्तुल्यार्थो यत्र वा वति" ॥
द्वे विधा । तद्धिते समासेऽथ वाक्ये । उदाहरणम् ।
"सौरभमम्भोरुहवन्मुखस्य कुम्भाविव स्तनौ पीनौ ।
हृदयं मदयति वदनं तव शरदिन्दुर्यथा बाले" ॥
अत्र क्रमेण त्रिविधा श्रौती ।
"मधुरः सुधावदधरः
पल्लवतुल्योऽतिपेलवः पाणिः ।
चकितमृगलोचनाभ्यां
सदृशी चपले च लोचने तस्याः" ॥
अत्र क्रमेण त्रिविधा आर्थी । पूर्णा षडेव तत् ।
"लुप्ता सामान्यधर्म्मादेरेकस्य यदि वा द्वयो ॥
त्रयाणां वानुपादाने श्रौत्यार्थी सापि पूर्व्ववत्" ॥
इयञ्च तद्धिते श्रौत्या असम्भवात् पूर्व्वोक्तरीत्या पञ्चप्रकारा । उदाहरणम् ।
"मुखमिन्दुर्यथा पाणि पल्लवेन समः प्रिये ।
वाचः सुधा इवौष्ठस्ते बिम्बतुल्यो मनोऽश्मवत्" ॥
"सा लुप्ता पञ्चधा पुन" ।
आधारकर्म्मविहिते द्विविधे च क्यचि क्यङि ।
कर्म्मकर्त्रोर्णमुलि च स्यादेवं पञ्चधा पुनः" ॥
उदाहरणम् ।
"अन्तःपुरीयसि रणेषु सुतीयसि त्वं
पौरं जनं तव सदा रमणीयते श्रीः ।
दृष्टः प्रियाभिरमृतद्युतिदर्शमिन्द्र-
सञ्चारमत्र भुवि सञ्चरसि क्षितीश" ॥
तदेव दशप्रकारा लुप्ता । सा पुनर्द्विधा । वाक्य-गता समासगता च । यथा ।
"उपमानानुपादाने द्विधा वाक्यसमासयोः" ।
श्रौत्यार्थीत्वभेदेन चतुर्व्विधत्वसम्भवेऽपि प्राचीन-रीत्या द्विप्रकारत्वमेवोक्तम् । पुनर्द्विधा ।
"औपम्यवाचिनो लोपे समासे क्विपि च द्विधा"

उदाहरणम् ।
"वदनं मृगशावाक्ष्याः सुधाकरमनोहरम्" ।
"गर्द्दभति श्रुतिपरुषं व्यक्तं निनदन्महात्मनां पुरतः" ।
पुनर्धर्म्मोपमानयोर्लोपे द्विधा । तद्यथा ।
"द्विधा समासे वाक्ये च लोपे धर्म्मोपमानयोः" ।
उदाहरणम् ।
"तस्या मुखेन सदृशं रम्यं नास्ते न वा नयनतुल्यम्" ।
पुनर्द्विधा ।
"क्विप्समासगता द्वेधा धर्म्मे वादिविलोपने" ।
उदाहरणम् । विधवति मुखाब्जमस्या इत्यादि ।
"उपमेयस्य लोपे तु स्यादेका प्रत्यये क्यचि" ।
उदाहरणम् ।
"अरातिविक्रमालोकविकस्वरविलोचनः ।
कृपाणोदग्रदोर्द्दण्डः स सहस्रायुधीयति" ॥
धर्म्मोपमेयलोपेऽन्या च । उदाहरणम् । "यश्चसि प्रसरति भवतः क्षीरोदीयन्ति सागराः सर्व्वे" ।
त्रिलोपे च समासगा । यथा । राजते मृगलोचनेत्यादि ।
"तेनोपमाया भेदाः स्युः सप्तविंशतिसंख्यकाः" ।
पूर्णा षड्विधा । लुप्ता चैकविंशतिविधेति मिलिता सप्तविंशतिप्रकारोपमा" । इति साहित्य-दर्पणस्य १० परिच्छेदात् सङ्कलित ॥

उपमिति, स्त्री, (उप + मि + क्तिन् ।) उपमा । इति शब्दरत्नावली ॥ न्यायमते सादृश्यज्ञानजन्यज्ञानम् यथा "गोसदृशो गवयपदवाच्य इत्याकारशक्तिज्ञानम् । अस्य करणं गवादिसादृश्यवत् पिण्डप्रत्यक्षम् । अस्य व्यापार अतिदेशवाक्यार्थस्मरणम्" । इत्युपमानखण्डम् । अपि च । भाषा परिच्छेदे ॥ ७९-८० ॥
"ग्रामीणस्य प्रथमतः पश्यतो गवयादिकम् ।
सादृश्यधीर्गवादीनां या स्यात् सोपमितिः स्मृता ।
वाक्यार्थस्यातिदेशस्य स्मृतिर्व्यापार उच्यते ।
गवयादिपदानान्तु शक्तिधीरुपमाफलम् ॥
पदज्ञानन्तु करणं शक्तिधीरुपमाफलम्" ॥

उपमेत, पु, (उपमां इत प्राप्त ।) शालवृक्षः । इति शब्दचन्द्रिका ॥ (शालवृक्षो हि सर्व्वोन्नततया उन्नतानामुपमास्थानम् । इत्यर्थ ॥)

उपयन्ता, [ऋ] पु, (उप + यम + तृच् ।) पति । इति जटाधरः ॥ ("अथोपयन्तारमलं समाधिना" । इति कुमारे ५ । ४५ । "अथोपयन्त्रा सदृशेन युक्ताम्" । इति रघुः ॥ ७ । १ ॥)

उपयम, पु, (उप + यम् + अप् ।) विवाहः । इत्यमर ॥

उपयाचक, त्रि, (उप समीपे याचते इति । उप + याच + ण्वुल् ।) समीपे याच्ञाकर्त्ता ॥

उपयाचित, त्रि, (उप + याच् + क्त ।) ईप्सितसिद्धये देवाय देयं वस्तु । तत्पर्य्यायः । दिव्यदोहदम् २ । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (प्रार्थितम् । यथा, कथा-सरित्सागरे १३ तरङ्गे ।
"तस्योपयाचितान्येव तत्रत्या कुर्व्वते जना ।
तत्तद्वाञ्छितसंसिद्धिहेतोस्तत्रैवपायने" ॥)

उपयाचितक, त्रि, (उपयाचित + कन् ।) उपयाचि-

तम्। खेटखब्धये देवदेयम्। इति जटाधरः॥ (यथा, कादम्बरी। "सिद्धायतनानि कृतविविधदेवतोपयाचितकानि"॥)

उपयामः, पुं, (उप+यम्+घञ्।) विवाहः। इत्यमरः। (यज्ञाङ्गपात्रविशेषः। यथा यजुर्व्वेदे ७। ४। ११। "उपयामगृहीतोऽसि"। उपयाम्यतेऽनेन। उप+यम+णिच्+अच्। इति व्युत्पत्त्या सिद्धम्॥)

उपयुक्तः, त्रि, (उप+युज्+क्त।) योग्यः। उचितः॥

उपयोगः, पुं, (उपयुज्यते इति। उप+युज्+घञ्।) आचरणम्। इति विजयरक्षितः। इष्टसिद्ध्यर्थव्यापारः। इति विष्णुमिश्रः॥ ("अनङ्गलेखक्रिययोपयोगम्"। इति कुमारे। १। ७॥ भोजनम्। "औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम्"। इति निदानस्थाने प्रथमेऽध्याये वाभटेनोक्तम्॥)

उपयोगिता, स्त्री (उपयोगिन्+तल्।) उपयोगिनो भावः। फलसाधनता। प्रयोजनम्। आनुकूल्यम्॥

उपयोगी, [न्] त्रि, (उपयोगोऽस्यास्तीति। उपयोग+इनि।) उपयुक्तद्रव्यादि। क्रियासाधनम्। अनुकूलः॥ ("तदुपयोगीनि—शारीरकसूत्रादीनि"। इति वेदान्तसारे। २॥ उपभोगद्रव्यम्। यथा कथासरित्सागरे। १५ तरङ्गे।
"अस्ति कन्यारत्नं मे गृह्यतामुपयोगि चेत्"॥)

उपयोष, व्य, उपजोषम्। आनन्दः। इत्यमरटीकायां भरतः॥

उपरक्तः, पुं, (उप+रञ्ज+क्त।) राहुग्रस्तः सूर्य्यश्चन्द्रश्च। इत्यमरः॥ राहुः। इति हेमचन्द्रः॥

उपरक्तः, त्रि, (उप+रञ्ज+क्त।) व्यसनार्त्तः। दैवमानुषान्यतरपीडायुक्तः। इत्यमरः॥

उपरक्षणं, क्ली (उपगतं रक्षणं यत्र।) रक्षणार्थं सैन्यस्थापनम्। चौकी इति ख्यातम्। तत्पर्य्यायः। सञ्जनम् २। इत्यमरः॥

उपरतः, त्रि, (उप+रम+क्त।) मृतः। इति स्मृतिः॥ (यथाह नारदः।
"पितुर्य्युपरते पुत्त्रा विभजेयुर्धनं पितुः"॥)
विरतः॥

उपरतस्पृहः, त्रि, (उपरता नष्टा स्पृहा धनाद्याकाङ्क्षा यस्य।) सत्यपि सत्त्वे स्वगतधनेच्छारहितः। स्वसमानाधिकरणस्वसमानकालीनेच्छाप्रागभावासमानकालीनेच्छाध्वंसवान्। इति दायतत्त्वम्॥ इच्छारहितः॥ ("पितुर्य्युपरतस्पृहे"। इति याज्ञवल्क्यः॥)

उपरतिः, स्त्री, (उप+रम्+क्तिन्।) विरतिः। इति हेमचन्द्रः॥ (यथा, मार्कण्डेये ९१। ८।
"विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि। नमोऽस्तु ते"॥)
"निगृहीतेन्द्रियाणां विषयेभ्य उपरमणम्। अथवा विहितकर्म्मणां विधिना परित्यागः"। इति वेदान्तः॥

उपरमः, पुं, (उप+रम+घञ्। निपातनात् न वृद्धिः।) उपरतिः। इति हेमचन्द्रः॥ ("फेनोपरमे कल्कमथ नियोजयेत्"। इति वैद्यके॥)

उपरसः, पुं, (उपमितं रसेन।) उपधातुः। तद्यथा। गैरेयम्। खर्परम्। अञ्जनम्। कङ्कुष्ठम्। गन्धारी। गैरिकम्। क्षितिनागः। शैलेयः। इति राजनिर्घण्टः॥
"गन्धो हिङ्गुलमभ्रतालकशिला स्रोतोऽञ्जनं टङ्कणम्, राजावर्त्तकचुम्बकौ स्फटिकया शङ्खः खटी गैरिकम्। कासीसं रसकं कपर्द्दसिकता बोलाश्च कङ्कुष्ठकम्, सौराष्ट्री च मता अमी उपरसाः सूतस्य किञ्चिद्गुणैः"॥ इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे प्रथमभागे॥)

उपरागः, पुं, (उप+रञ्ज+घञ्।) राहुग्रस्तश्चन्द्रः। सूर्य्यश्च। इत्यमरः॥ ("उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणीयोगम्"। इति शाकुन्तले। निकटस्थितत्वात् निजगुणादेरन्यत्रारोपणम्। यथा स्फटिकस्तम्भे रक्तपुष्पाणां रक्तिमारोपः।) राहुः। विगानम्। परीवादः। इति हेमचन्द्रः॥ दुर्नयः। ग्रहकल्लोलः। व्यसनम्। इति मेदिनी॥ (यथा रघौ १६। ७। "बिभर्षि चाकारमनिर्वृतानां मृणालिनी हैममिवोपरागम्"॥)

उपरामः, पुं, (उप+रम्+घञ्।) निवृत्तिः। तत्पर्य्यायः। आरतिः २ अवरतिः ३ विरतिः ४ इत्यमरः॥ विरामः ५ उपरमः ६ इति भरतः॥ आरामः ७ उपरतिः ८ इति हेमचन्द्रः॥

उपरि, व्य, (ऊर्द्ध्वे ऊर्द्ध्वाया ऊर्द्ध्वात् ऊर्द्ध्वाया ऊर्द्ध्वं ऊर्द्ध्वा वा वसत्यागतो रमणीयं वा। "उपर्य्युपरिष्टात्"। ५।३।३१। इति ऊर्द्ध्वस्योपादेशो रिल् प्रत्ययश्च॥) ऊर्द्ध्वम्। इति व्याकरणम्॥ उपर इति भाषा।
("त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्याः। मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति"॥
इति मेघदूते उत्तरमेघे ३४ श्लोकः।
"अवाङ्मुखस्योपरि पुष्पवृष्टिः
पपात विद्याधरहस्तमुक्ता"।
इति रघु। २। ६०॥)

उपरिष्टात्, व्य, (ऊर्द्ध्वे ऊर्द्ध्वाया ऊर्द्ध्वात् ऊर्द्ध्वाया ऊर्द्ध्वं ऊर्द्ध्वा वा वसति आगतो रमणीयं वा। "उपरि उपरिष्टात्"। ५। ३। ३१। इत्यूर्द्ध्वस्य उपादेशो रिष्टातिल् प्रत्ययश्च।) उपरि। ऊर्द्ध्वम्। इति हेमचन्द्रः॥ (यथा रामायणे ४ काण्डे। "नाधस्तान्नोपरिष्टाच्च गतिर्नाभूत् नचाम्बरे"॥)

उपरीतकः, पुं, शृङ्गारबन्धविशेषः। आसन बाँधन इत्यादि भाषा। तस्य लक्षणं यथा।
"एकपादमुरौ कृत्वा द्वितीयं स्कन्धसंस्थितम्। नारीं कामयते कामी बन्धः स्यादुपरीतकः"॥
इति रतिमञ्जरी॥ अत्र विपरीतकोऽपि पाठः॥

उपरूपकं, क्ली, (उपमितं रूपकेण।) नाटकविशेषः। स तु अष्टादशविधः। यथा।
"नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्। प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा॥ संलापकं श्रीगदितं शिल्पकञ्च विलासिका। दुर्म्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च॥ अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिणः। विना विशेषं सर्व्वेषां लक्ष्म नाटकवन्मतम्"॥
इति साहित्यदर्पणे ६ परिच्छेदः॥

उपरोधः, पुं, (उप+रुध्+घञ्।) अनुरोधः॥ (प्रतिबन्धः। "अन्येषामपि मैत्त्रोपजीविनां हत्युपरोधं करोषि"। इति महाभारते आदिपर्व्वणि। ३। ४५। "तपोधननिवासिनामुपरोधो माभूत्"। इति शाकुन्तले प्रथमाङ्के॥)

उपरोधकं, क्ली, (उप+रुध्+ण्वुल्।) गर्भागारम्। वासगृहम्। इति शब्दरत्नावली॥

उपर्य्युपरि, व्य, ऊर्द्ध्वोर्द्ध्वं। उपर उपरि इति भाषा। सामीप्यम्। यथा "उपर्य्युपरि ग्रामम्"। इति व्याकरणम्॥

उपलः, पुं, (उपलाति। उप+ला+क। यद्वा, उं शम्भुं पलति य। उ+पल+अच्।) पाषाणः। (यथा,—
"रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम्"।
इति मेघदूते पूर्व्वमेघे १९ श्लोकः।) रत्नम्। इति मेदिनी॥ (यथा मनुः। ११। १६७।
"मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च। अयःकांस्योपलानाञ्च द्वादशाहं कणान्नता"॥
वालुका। यथा, "भिषगुपलाप्रक्षिणी नना"। इति ऋग्वेदे। ९। ११२। ३। "उपलेषु वालुकासु" इति भाष्यम्॥)

उपलक्षणं, क्ली, (उप+लक्ष्+ल्युट्।) अजहत्स्वार्थलक्षणा।
("स्वसिद्धये पराक्षेपः परार्थे स्वसमर्पणम्। उपादानं लक्षणञ्चेत्युक्ता शुद्धैव सा द्विधा॥ यथा कुन्ताः प्रविशन्ति। इत्युपादानम्। गङ्गायां घोषः। इत्युपलक्षणम्"। इति काव्यप्रकाशः॥)
एकपदेन तदर्थान्यपदार्थकथनम्। यथा, शुद्धितत्त्वम्।
"देशान्तरे मृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम्। निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसम्"॥
अत्र पादुकाद्वयमित्युपलक्षणं द्रव्यान्तरमपि॥

उपलक्ष्यः, पुं, (उप+लक्ष+ण्यत्।) आश्रयः। अवलम्बनम्॥

उपलधिप्रियः, पुं, (उपलधि प्रियो यस्य।) चमरनामवनजन्तुः। इति राजनिर्घण्टः॥

उपलब्धार्था, स्त्री, (उपलब्धः अर्थो यस्याः।) आख्यायिका। इत्यमरः॥ हितोपदेशादिकथा॥

उपलब्धिः, स्त्री, (उप+लभ+क्तिन्।) मतिः। प्राप्तिः। (यथा, रघुः ५। ५६। "तथा हि मे स्यात् स्वपदोपलब्धिः"॥) ज्ञानम्। इति मेदिनी॥ (यथा महाभारते १४। अनुगीतापर्व्वणि। २२। २९।
"कामन्तु न स्वेषु गुणेषु सङ्गः
कामञ्च नान्योन्यगुणोपलब्धिः।
अस्मान् विना नास्ति तवोपलब्धि-
स्तावदृते त्वां न भवेत् प्रहर्षः"॥)

उपलभेदी, पुं, (उपलं भिनत्तीति। उपल+भिद्+णिनि।) पाषाणभेदी वृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥ (अश्मभेदशब्देऽस्य गुणादयो ज्ञातव्याः॥)

उपलम्भः, पुं, (उप+लभ+घञ्। उपसर्गात् खलघञोरिति नुम्।) अनुभवः। इत्यमरः॥ (यथा रघुः १४। २।
"विस्पष्टमस्रान्धतया न दृष्टौ

उपस्थाता, [ऋ] त्रि, (उप समीपे तिष्ठतीति । उप + स्था + तृच् ।) भृत्य । "प्रेष्यो भृत्य उपस्थाता सेवकोऽभिसरोऽनुगः"। इति शब्दमाला ॥ (ऋत्विग्भेदे, पु ॥
"भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् ।
गुणवत् कारण ज्ञेय विकारस्योपशान्तये" ॥
इति चरके सूत्रस्थाने नवमोऽध्याय ।)

उपस्थित, त्रि, (उप समीपे तिष्ठति स्म । उप + स्था + क्त ।) समीपस्थित । तत्पर्य्याय । उपनत २ उपसन्न ३। इति हेमचन्द्र ॥ (यथा, रघुवंशे १।८७।
"उपस्थितेय कल्याणी नाम्नि कीर्त्तित एव यत्" ।
"हैयङ्गवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान्" ।
इति च रघु १ । ४५ ।) भ्रष्ट । शोधित । इति जटाधर ॥ (अनार्ष । यथा पाणिनि ।६।१।१२९। "अप्लुतवदुपस्थिते" अत्र सिद्धान्तकौमुदी । उपस्थितोऽनार्ष" । इति ॥)

उपस्पर्श, पु, (उप + स्पृश् + घञ् ।) स्पर्शमात्रम् । स्नानम् । आचमनम् । इति मेदिनी ॥

उपस्पर्शन, क्ली, (उप + स्पृश् + ल्युट् ।) उपस्पर्श । इति धरणि ॥ (यथा रामायणे २।७५।२४ ।
"उपस्पर्शनकाले तु त्वां रक्षन्तु रघूत्तम ।" ॥)

उपस्वत्व, क्ली, (उपगत स्वत्वम् ।) उत्पन्नम् । लभ्यम् । स्वत्वास्पदीभूतभूम्यादिलब्धधनादि ॥

उपहत, त्रि, (उप + हन् + क्त ।) नष्ट । उत्पातग्रस्त । अशुद्धद्रव्यम् ॥ ("कारत्यवज्ञोपहत पृथक्जनम्" । इति किराते । "किमेभिराशोपहता तमर्त्तिभि"। इति कुमारे । ५ । ७६ ॥)

उपहसित, क्ली, (उप + हस् + क्त ।) हास्यभेद इति । जटाधर ॥ (यथा साहित्यदर्पणे ३य-परिच्छेदे २२८।
"ज्येष्ठाना स्मितहसिते मध्याना विहसितावहसिते च । नीचानामपहसित तथातिहसित च षड्भेदा ॥ मधुरस्वर विहसित सासशिरःकम्पमवहसित । अपहसित सास्राक्ष विक्षिप्ताङ्ग भवत्यतिहसितम्"।) अपहसितमत्र उपहसितम् इत्यपि पाठः ॥

उपहार, पु, (उप + हृ + घञ् ।) उपढौकनद्रव्यम् । तत्पर्य्याय । प्राभृतम् २ प्रदेशनम् ३ उपायनम् ४ उपग्राह्य ५ उपदा ६। इत्यमर ॥ (यथा,— रघौ ४। ८४।
"रत्नपुष्पोपहारेण च्छायामानर्च्च पादयो" ,
"बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः"।
इति मेघदूते पूर्व्वमेघे ३३ श्लोक । यथा,— कुमारे । ६ । ४२।
"ज्योतिषां प्रतिविम्बानि प्राप्नुवन्त्युपहारताम्" ॥
उपगतो हार इति वाक्ये हारनिकटस्थद्रव्यम् । यथा,—नैषधे। १।४८ ॥
"उरोभुवा कुम्भयुगेन जृम्भित
नवोपहारेण वयस्कृतेन किम्" ॥)

उपहालक, पु, कुन्तलदेश । इति हेमचन्द्रः ॥

उपहास, पु, (उप + हस् + घञ् ।) परीहास । निन्दार्थवाक्यादि । विद्रूप ठाट्टा इत्यादि भाषा । "उपहासाय किं न स्यात् असत्सङ्गो मनीषिणाम्"।
इति मलमासतत्त्वम् ॥ (तथा, रघु । १२ । ३७ ।
"फलमस्योपहासस्य सद्य प्राप्स्यसि पश्य माम्" ॥)

उपह्वर, क्ली, (उपह्वरन्त्यत्र । उप + ह्वृ + घ ।) निर्जनस्थानम् । (यथा ऋग्वेदे ८।६।२८। "उपह्वरे गिरीणाम्" ।) निकटम् । इत्यमर ॥
("ऊर्म्मीप्रवाहैर्जाह्नव्या समानीतमुपह्वरम्" ।
इति महाभारते ।३। कुण्डलाहरणपर्व्वणि ३०८।४॥
"सर्व्वाणाह्नय उपह्वरे वैयान्" । इति हर्षचरिते पञ्चमोच्छ्वासे ॥)

उपह्वर, पु, (उप + ह्वृ + घ ।) रथः । इत्युणादिकोषः ॥ (प्रान्तभाग । यथा ऋग्वेदे । १ । ८७।२ ।
"उपह्वरेषु यदचिध्व ययि वय इव मरुतः केनचित्पथा" ॥)

उपांशु, पु, (उपगता अंशवो यत्र ।) जपभेद । इति मेदिनी ॥
"जिह्वौष्ठौ चालयेत् किञ्चिद्देवतागतमानस ।
निजश्रवणयोग्य स्यादुपांशु स जपः स्मृत" ॥
इत्यागम ॥ (निगूढे वाच्यलिङ्ग । यथा, महाभारते । १।३।१९ । "अस्य त्वेकमुपांशुव्रत यदेनं कश्चित् ब्राह्मणा कश्चिदर्थं अभियाचेत्त तस्मै दद्यादयम्" ॥)

उपांशु, अ, विजनम् । रह । इत्यमरो मेदिनी च ॥ (यथा, रघु ८।१८। "परिचेतुमुपांशु धारणा कुशपूत प्रवयास्तु विष्टरम्" ।)

उपाकरण, क्ली, (उपाक्रियतेऽनेन । उप + आ + कृ + ल्युट् ।) संस्कारपूर्व्वकश्रुतिग्रहणम् । इत्यमर । पशूनां संस्कारपूर्व्वकहननम् । इति स्मृतिः ॥ (यथा, आश्वलायने १० । ४ । "उपाकरणकालेऽश्वमानीय" ॥)

उपाकर्म्म, [न्] (क्ली, उपाक्रियतेऽनेन । उप + आ + कृ + मनिन् ।) उपाकरणम् । इत्यमरटीकायां रायमुकुट ॥ (यथा मनु । ४ । ११९ ।
"उपाकर्म्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्र क्षेपणं स्मृतम्" ॥)

उपाकृत, त्रि, (उप + आ + कृ + क्त ।) उपद्रुतम् । इति मेदिनी ॥

उपाकृत, पु, (उ + आ + कृ + क्त ।) यज्ञे अभिमन्त्र्य हतः पशु । इत्यमरः ॥
("अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च" ।
इति मनु ।) उपद्रवः । इति हेमचन्द्र ॥

उपाख्यान, क्ली, (उप + आ + ख्या + ल्युट् ।) पूर्व्ववृत्तान्तकथनम् । आख्यानम् । वर्णनम् । विशेषकथनम् । यथा,—
"सर्व्वाख्यान श्रुत ब्रह्मन् अतीवपरमाद्भुतम् ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि दुर्गोपाख्यानमुत्तमम्" ॥
इति ब्रह्मवैवर्त्ते प्रकृतिखण्डे ४४ अध्याय ॥
"शृणु नारद वक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम्" ।
इति च तत्रैव ३८ अध्याय ॥
("चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारत प्रोच्यते बुधै" ॥
इति महाभारते १ । १ । १०१ ॥)

उपागम, पु, (उप + आ + गम् + अप् ।) स्वीकारः । निकटगमनम् । इत्यमर ॥

उपायग्रहण, क्ली, (उप + आ + ग्रह् + ल्युट् ।) ... करणम् । संस्कारपूर्व्वकवेदग्रहणम् । इत... टीकायां रायमुकुटः ॥

उपाङ्ग, पु, (उपमित अङ्गेन ।) तिलकम् । ... र्य्याय । पत्रावली २ पत्रलेखा ३ पत्राङ्गु... पुण्ड्र ५ तमालपत्रकम् ६ चित्रकम् ७। इति ... धर ॥ (पुराण न्याय-मीमांसा धर्म्मशास्त्राणि ... उपाङ्गानि ॥)

उपात्त, त्रि, (उप + आ + दा + क्त ।) प्राप्तम् । य...
"तत्र केचिदुपात्तस्य दुरितस्य प्रपद्यते ।
अनुत्पत्ति तथा चान्ये प्रत्यवायस्य मन्यते ।
नित्यक्रिया तथा चान्ये ह्यनुषङ्गफला श्रुतिम्"...
इति प्रायश्चित्ततत्त्वीयशावालमविष्यपुराणवचन...

उपात्त, पु, (उप समीपे आत्तः ।) निर्म्मदहस्... इति हलायुध ॥

उपात्यय, पु, (उप + अति + इ + अच् । उपगत... अत्यय अतिक्रम्य गमन वा ।) शास्त्रतो लो... व्यवहाराच व्यतिक्रम । अतिक्रम । क्रमोल्ल... नम् । द्वयो पर्य्याय । पर्य्याय २ अतिपात ... इत्यमर ॥ (यथा पाणिनि ३।३।३८। "प... वनुपात्यय इण" ॥)

उपादान, क्ली, (उप + आङ् + दा + ल्युट् ।) स्व... विषयेभ्य इन्द्रियाकर्षणम् । तत्पर्य्याय । प्रत्याहा... २। इत्यमर ॥ (ग्रहणम् । "स्यादात्मनोऽप्युपाद... नात् एषोपादानलक्षणा"। इति साहित्यदर्प... १० परिच्छेद ।) हेतुः । इति त्रिकाण्डशेष ॥ न्या... मते ॥ समवायिकारणम् । प्रवृत्तिजनकज्ञानञ्च ।

उपादेय, त्रि, (उप + आ + दा + यत् ।) ग्राह्य... उत्तमः । उत्कृष्ट । इति वेदान्त ॥
("भवे सौख्य हित्वा शमसुखमुपादेयमनघम्"...
इति शान्तिशतके । १ । २१ ।) विधेयकर्म्म । इति... तिथितत्त्वम् ॥

उपाधि, पु, (उप + आ + धा + कि ।) धर्म्मचिन्ता... कुटुम्बव्यापृत । इत्यमर ॥ छलम् । (यथा रामायणे २ । १११ । २९ ।
"उपाधिर्न मया कार्य्यो वनवासे जुगुप्सित" ।)
विशेषणम् । इति मेदिनी ॥ ("पदार्थविभाजको... पाधिमत्तम्"। इति मुक्तावली । ८ ।) नामचिह्नम् । इति शब्दरत्नावली ॥ न्यायमते साध्यव्यापकत्वे सति हेतोरव्यापक । यथा धूमवान् वह्निरित्यत्र आर्द्रकाष्ठ उपाधिः । अस्य प्रयोजनम् । व्यभिचारस्यानुमानम् । अलङ्कारमते जातिगुणक्रिया यदृच्छास्वरूप ॥

उपाध्यायः, पुं, (उपेत्य अधीयतेऽस्मात् । उप + अधि + इ + घञ् ।) अध्यापकः । इत्यमरः ॥ वेदैकदेशाध्यापक । यथा,—
"एकदेशन्तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः ।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते" ॥
इति भविष्ये २ अध्याय ॥ मानवे २ । १४५ श्लोके च ॥

उपाध्याया, स्त्री, (उपेत्याधीयतेऽस्याः । इङश्चेति-सूत्रे अपादाने स्त्रियामुपसंख्यान तदन्ताच्च वा

पौष्योपाख्याने । ३ । १२० । "न हि मे मन्युरद्यापि उपशमं गच्छति" । तथा प्रबोधचन्द्रोदये । ५ । १५ । "तदायमपि शतक्रतुः सम्प्रति परमामुपशमनिष्ठां प्राप्तः" ।)

उपशय, पुं, (उप + शी + अच् ।) निदानपञ्चकान्तर्गतरोगज्ञानकारणः । तस्य लक्षणम् ।
"हेतुव्याधिविपर्य्यस्तविपर्य्यस्तार्थकारिणाम् ।
औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ।
विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः" ।
इति निदानम् ॥ ("अस्मिन्नर्थे उपशयः पुनर्हेतुव्याधिविपरीतानां विपरीतार्थकारिणाञ्चौषधाहारविहाराणां उपयोगः सुखानुबन्धः" । इति चरके निदानस्थाने प्रथमोऽध्यायः ।)

उपशल्य, क्ली, (उपगतं शल्यम् ।) ग्रामप्रान्तभागः । तत्पर्य्यायः । ग्रामान्तम् २ । इत्यमरः ॥
(यथा रघौ १५ । ६० ।
"उपशल्यनिविष्टैस्तैश्चतुर्द्वारमुखी बभौ" ॥
"अस्य विश्रान्तोपशल्ये कमप्यापीडमासाद्य" ।
इति दशकुमारे ॥)

उपशायः, पुं, (उप + शी + घञ् ।) पर्य्यायशयनार्थकः । प्रहरिकादीनां क्रमेण शयनम् । तत्पर्य्यायः । विशायः २ । इत्यमरः ॥

उपश्रुत, त्रि, (उप + श्रु + क्त ।) प्रतिश्रुतम् । अङ्गीकृतम् । इत्यमरः ॥

उपश्रुति, स्त्री, (उपश्रूयते । उप + श्रु + क्तिन् ।) दैवप्रश्नः । यथाह हारावली ॥
"नक्तं निर्गत्य यत् किञ्चिच्छुभाशुभकरं वचः ।
श्रूयते तद्विदुर्धीरा दैवप्रश्नमुपश्रुतिम्" ॥
(उप समीपे श्रुतिः श्रवणम् । समीपश्रवणम् । उपमिता श्रुत्या । वेदसदृशी श्रुतिसदृशत्वात् तथात्वम् ।)

उपष्टम्भक, पुं, (उप + स्तम्भ + ण्वुल् ।) आधिकरणम् । यथा । उद्भूतवादीन् तेजोभागोपष्टम्भकतया प्रत्यक्षयोग्यत्वात् । इति बौद्धाधिकारदीधित्यामपि ।

उपसंग्रह, पुं, (उपसंगृह्यते इति । उप + सम् + ग्रह् + घञ् ।) पादस्पर्शपूर्व्वकनमस्कारः । तत्पर्य्यायः । पादग्रहणम् २ अभिवादनम् ३ । इति हेमचन्द्रः । (उपचयनम् । यथा, महाभारते ९ । गदायुद्धपर्व्वणि । १८ । १५ ।
"उपातिष्ठन्त दाशार्हाः पर्य्यङ्के योधसंग्रहे" ।)

उपसंग्राह्य, त्रि, (उपसंगृह्यते इति । उप + सम् + ग्रह् + ण्यत् ।) उपसंग्रहणीयम् । अभिवाद्यम् । पादे ग्रहीतव्यम् । इति स्मृतिः ।
(यथा मनुः । २ । १३२ ।
"भ्रातुर्भार्य्योपसंग्राह्या सवर्णाऽहन्यहन्यपि" ।)

उपसंव्यानं, क्ली, (उपसंवीयतेऽनेन । उप + सम् + व्ये + करणे ल्युट् इति ल्युट् ।) परिधानवसनम् । इत्यमरः ॥ (यथा कुमारे [illegible] ।
"[illegible]" ।)

उपसंहार, पुं, (उपसंहरणम् । उप + सम् + हृ + घञ् ।) समाप्तिः । शेषः । यथा ।
"उपक्रमोपसंहारयोः शुश्रूषकीर्त्तिताय" ।
इति सप्तमीप्रकरणे तिथ्यादितत्त्वलिखनम् ॥
(एकत्रीकरणम् । समापनम् ।)

उपसत्ति, स्त्री, (उप + सद् + क्तिन् ।) सङ्गमनम् । प्रतिपादनम् । सेवा । इति हेमचन्द्रः ।

उपसद्, पुं, (उप + सद् + क्विप् ।) अग्निविशेषः । यथा । वह्निपुराणे गणभेदनामाध्याये ॥
"गार्हपत्यो दक्षिणाग्निस्तथैवाहवनीयकः ।
एतेऽग्नयस्त्रयो मुख्याः शेषाश्चोपसदस्त्रयः" ॥
(स्त्री, यज्ञभेदः । आश्वलायने ४।८।१ "यथोपसद्भिः प्रचरति" । इति । समीपस्थिते वाच्यलिङ्गः ।)

उपसदन, क्ली, (सद्मनः गृहस्य समीपे । यद्वा, उप + सद + ल्युट् ।) गृहसमीपम् । (यथा रामायणे २ । ५० । २६ ।
"धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुङ्गव ।
यस्योपसदनं ब्रह्मन् प्राप्तोऽसि मुनिभिः सह" ॥
उपसेवनम् । प्राप्तिः । यथा, महाभारते वनपर्व्वणि ।
"तत्रोपसदनं चक्रे द्रोणस्येष्वस्त्रकर्म्मणि" ।)

उपसन्न, त्रि, (उप + सद् + क्त ।) उपगतः । उपस्थितः । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा, महाभारते १२ । मोक्षधर्म्मपर्व्वणि । २८७ । ११ ।
"ब्रवीतु भगवांस्तन्मे उपसन्नोऽस्म्यधीहि भोः" ।)

उपसम्पन्न, त्रि, (उप + सम् + पद् + क्त ।) यज्ञार्थं हतपशुः । तत्पर्य्यायः । प्रमीतः २ प्रोक्षितः ३ । पाकेन रूपरसादिसम्पन्नव्यञ्जनादि । तत्पर्य्यायः । प्रणीतः २ । इत्यमरः । पर्य्याप्तः । संस्कृतः । प्राप्तः । मृतः । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा, मनुः । ५ । ८१ ।
"श्रोत्रिये तूपसम्पन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्" ।)

उपसर, पुं, (उप + सृ + अप् ।) स्त्रीगव्यादिषु पुङ्गवादीनां प्रथमगर्भाधानाय मैथुनाभियोगः । तत्पर्य्यायः । प्रजनः २ । इत्यमरः ॥ (यथा, पाणिनिः ३ । ३ । ७१ । "प्रजननं प्रथमगर्भग्रहणं गवामुपसरः" । निरवच्छेदगमनम् । यथा, भट्टिः । "वीनामुपसरं दृष्ट्वा" । अत्र जयमङ्गलाप्याह । "वीनां उपसरं नैरन्तर्य्येण निर्गमनम्" ।)

उपसर्ग, पुं, (उप + सृज् + घञ् ।) रोगभेदः । (यथा, सुश्रुते । "क्षीणं हन्युरुपसर्गाः प्रभूताः" ।) उपद्रवः । इति मेदिनी ॥ (यथा, मार्कण्डेये ९२ । ७ ।
"उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान्" ।)
धातोः पूर्व्ववर्त्ति[illegible]मव्ययम् । यथा । प्र । परा । अप । सम् । नि । अव । अनु । निर् । दुर् । वि । अधि । सु । उत् । परि । प्रति । अभि । अति । अपि । उप । आङ् । अस्य प्रमाणम् ।
"निपाताश्चादयो ज्ञेया उपसर्गास्तु प्रादयः ।
द्योतकत्वात् क्रियायोगे लोकादवगता इमे" ॥
स त्रिधा । "धात्वर्थं बाधते कश्चित्" । यथा आदत्ते । "कश्चित्तमनुवर्त्तते" । यथा प्रणमे । "तमेव विशिनष्ट्यन्यः" । यथा प्रकर्षति । "उप-सर्गास्त्रिधा" । अपि च ।
"उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्" ॥
इति मुग्धबोधटीकायां दुर्गादासः ॥

उपसर्ज्जनं, क्ली, (उप + सृज् + ल्युट् ।) प्रधानभिन्नम् । तत्पर्य्यायः । अप्रधानम् २ अप्राग्र्यम् ३ । इत्यमरः ॥
(यथा, मनुः ८ । २११ ।
"उपसर्ज्जनं प्रधानस्य धर्म्मतो नोपपद्यते" ।
(विशेषणम् । त्यागः । उपद्रवः । यथा अनध्यायप्रकरणे मनुः,—
"निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषाञ्चोपसर्ज्जने" ।)

उपसर्पक, त्रि, (उप + सृप् + ण्वुल् ।) उपसर्पणकर्त्ता । उपगन्ता ।

उपसर्य्या, स्त्री, (उप + सृ + उपसर्य्या काल्या प्रजने इति साधुः ।) प्राप्तगर्भग्रहणकाला गौः । ऋतुमती गौः । तत्पर्य्यायः । काल्या २ । इत्यमरः ॥ कालप्राप्ता ३ [illegible] ४ । इति शब्दरत्नावली ॥

उपसार्य्य, त्रि, (उप + सृ + ण्यत् ।) समीपगमनीयः । (यथा, पाणिनिः ३।१।१०४ । "प्रजने काल्यति [illegible] उपसार्य्या काशी प्राप्तव्या इत्यर्थः" ।)

उपसूर्य्यक, क्ली, सूर्य्यमुपगतं उपसूर्य्यं स्वार्थे कन् । चन्द्रपक्षे उपसूर्य्यमिव उपसूर्य्यकं स्वार्थे कन् ॥ चन्द्रसूर्य्यमण्डलम् । इत्यमरः ॥

उपसृष्ट, क्ली, (उपसृज्यते स्म इति । उप + सृज् + क्त ।) मैथुनम् । इति त्रिकाण्डशेषः । उपसर्गयुक्ते त्रि । तथा च याज्ञवल्क्यः ।
"तेनोपसृष्टो [illegible]" ।
(ग्रहोपग्रस्तार्कादि । यथा मनुः,
"नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कदाचन ।
नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम्" ॥
व्याप्तम् । यथा, रघुः "रोगोपसृष्टतनुदुर्व्वसतिं मुमुक्षुः" ।)

उपस्कर, पुं, (उप + कृ + अप् समवाये चेति सुट् ।) व्यञ्जनादिसम्भारार्थमन्नाद्युपकरणादि । बेसार् वाटना इत्यादि भाषा । तत्पर्य्यायः । वेसवारः २ । इत्यमरः ॥ (यथा रामायणे । २ । ९५ । ८ ।
"[illegible] प्रासादानुपस्करान् ।
[illegible]" ।)
गृहावश्यकद्रव्यम् । तत्र [illegible] । [illegible] । इति [illegible] ।
तथा च [illegible] ।
"[illegible] ।
[illegible]" ।
(तथा च मनुः । ३ । ६८ ।
"पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः" ।
"[illegible]" । इति [illegible] कुल्लूकभट्टः ।)

उपस्त्री, स्त्री (उपमिता स्त्रिया ।) उपपत्नी । [illegible] इति भाषा ।

उपस्थ, पुं, (उप + स्था + क ।) लिङ्गम् । भगः । क्रोडः । इति मेदिनी ॥ ("[illegible]", इति [illegible] । ६९ ।) गुह्यम् । इति हेमचन्द्रः । (यथा, मनुः । ८ । १२५ ।
"उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम्" ।)
निकटे त्रि । इति शब्दरत्नावली ॥

शास्त्रशुद्धिः ।

अथ यथाशास्त्रं निष्कृष्टसात्त्विककर्म्मैकबुद्धिं प्रदर्श्य दुर्ब्बलाधिकारिणो भक्तियोगावलम्बिनः कर्त्तव्यमपि प्रदर्शयाम । यथा भागवते ३।२९।१० ।
"कर्म्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम् ।
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः" ॥

दुर्ब्बलभक्तियोगाधिकारिकर्त्तव्यता च तत्रैव । ११।११।३४-४२ ।
"मल्लिङ्गमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्च्चनम् ।
परिचर्य्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्म्मानुकीर्त्तनम् ॥
मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव ।
सर्व्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ॥
मज्जन्मकर्म्मकथनं मम पर्व्वानुमोदनम् ।
गीत-ताण्डव-वादित्र-गोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ॥
यात्रा बलिविधानञ्च सर्व्ववार्षिकपर्व्वसु ।
वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥
ममार्च्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः ।
उद्यानोपवनाक्रीडपुरमन्दिरकर्म्मणि ॥
सम्मार्ज्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्त्तनैः ।
गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया ॥
अमानित्वमदम्भित्वं कृतस्यापरिकीर्त्तनम् ।
अपि दीपावलोकं मे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम् ॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ।
तत्तन्निवेदितं मह्यं तदानन्त्याय कल्पते ॥
सूर्य्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ।
भूरात्मा सर्व्वभूतानि भद्र पूजापदानि च" ॥
हे भद्र । एतानि मम पूजास्थानानि । अधुना कस्मिन् स्थाने केन यजेत इत्याह तत्रैव ११।११।४३-४५ ।
"सूर्य्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम् ।
आतिथ्येन तु विप्राग्र्ये गोष्वङ्ग यवसादिना ॥
वैष्णवे बन्धुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया ।
वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥
स्थण्डिले मन्त्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि ।
क्षेत्रज्ञं सर्व्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम्" ॥

हृदि खे हृदयाकाशे । मुख्यधिया प्राणदृष्ट्या । जले जलाञ्जलिप्रदानरूपतर्पणपूर्व्वकैर्द्रव्यैः । स्थण्डिले भूमौ मन्त्रन्यासैः । भोगैरिति । देहे भोगैरात्मानं यतैरन्नादिभिर्देहस्थपरमात्मानं यजेऽहं नत्वविद्याकर्म्मजनितं देहं बिभर्म्मीति चिन्तयेत् । क्षेत्रज्ञमिति । सर्व्वभूतेषु क्षेत्रज्ञरूपेणावस्थितं कूटस्थमप्येतत्स्वरूपं मां समत्वेन यजेत ॥ एतेषु स्थानेषु तव कीदृग्रूपं ध्येयमित्यपेक्षायामाह तत्रैव ११।११।४६-४७ ।
"धिष्ण्येष्वित्येषु मद्रूपं शङ्खचक्रगदाम्बुजैः ।
युक्तं चतुर्भुजं शान्तं ध्यायन्नर्च्चेत् समाहितः ॥
इष्टापूर्त्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः ।
लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया" ॥
अत्र 'मल्लिङ्गमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्च्चनम्' इत्यारभ्य "लभते मयि सद्भक्तिम्" इत्यन्तैरेतैश्चतुर्द्दशश्लोकैर्बाह्याभ्यागतभूतप्रतिमाद्यर्च्चनादिरूपा भक्तियोगोपयोगिक्रियैव सद्भक्तिसाधनं प्रदर्शयामास स्वयं भगवान् । अतएव तदा दुर्ब्बलाधिकारिणा भक्तियोगाश्रयिणापि प्रयत्नेन क्रियायोग एव कर्त्तव्य इति बोध्यतेऽन्यथा चित्तशुद्ध्यभावात् ज्ञानं न लभेत इति तात्पर्य्यार्थः ॥

ननु तत्त्वज्ञानं किन्तु शास्त्रविहितक्रियायोगशून्यया भक्त्या क्रमेण निर्गुणया भक्त्यैवैव चरितार्थतेति चेन्न तयोस्तत्त्वज्ञाननिर्गुणभक्तियोगयोर्न्नान्तरे वैलक्षण्यदर्शनात् उभयोरेवात्मसाक्षात्काररूपचरमफललाभोक्तत्वाच्च । यथा श्रीमद्भागवते ३।२९।११-१२ ।
"मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्व्वगुहाशये ।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे" ॥
ईदृग्भक्तिर्यदि बहुजन्मार्जितसुकृतिवशात् कस्यापि कथञ्चिदुत्पद्येत तर्हि सालोक्यादिमुक्तिः साधकान्तरैः प्रार्थनीया भगवता स्वयं दीयमानामपि तादृग्भक्तो नेच्छतीति तन्निस्पृहतां दर्शयन्नाह । तत्रैव ३।२९।१३ ।
"सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः" ॥
अपि च तत्त्वज्ञानिनो निर्गुणभक्तस्य च तयोः शब्दत एव भेदः न तु लक्षणतः यत उभावेव लक्षणादिना सर्व्वत्र एकाचारौ एकनिष्ठाविकभावापन्नौ लक्ष्येते । यथा भागवते ११।११। २९-३३ । भगवद्भक्तलक्षणमुपदिष्टवानुद्धवं प्रति भगवान् ।
"कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्व्वदेहिनाम् ।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्व्वोपकारकः ॥
कामैरहतधीर्द्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः ।
अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥
अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमान् जितषड्गुणः ।
अमानी मानदः कल्यो मैत्रः कारुणिकः कविः" ॥
कविः क्रान्तदर्शी सर्व्वज्ञ इत्यर्थः ।
"आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयादिष्टानपि स्वकान् ।
धर्म्मान् सन्त्यज्य यः सर्व्वान् मां भजेत स सत्तमः ॥
ज्ञात्वाज्ञात्वाथ ये वै मां यावान् यश्चास्मि यादृशः ।
भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः" ॥
तथा, ज्ञानिनोऽपि लक्षणं प्रदर्शयामास । यथा, तत्रैव ११।११।१२-१७ ।
"न तथा बध्यते विद्वान् तत्र तत्रादयन् गुणान् ।
प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सवितानिलः ॥
वैशारद्येक्षयासङ्गशितया छिन्नसंशयः ।
प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्त्तते ॥
यस्य स्युर्वीतसङ्कल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधियाम् ।
वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोऽपि हि तद्गुणैः ॥
यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किञ्चिद्यदृच्छया ।
अर्च्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥
न स्तुवीत न निन्देत कुर्व्वतः साध्वसाधु वा ।
वदतो गुणदोषाभ्यां वर्ज्जितः समदृङ्मुनिः ॥
न कुर्य्यान्न वदेत् किञ्चिन्न ध्यायेत् साध्वसाधु वा ।
आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः" ॥

ननु भक्तिज्ञानयोश्चरमफलैकत्वेऽपि भक्तेः समधिकप्रशंसादर्शनात् भक्तिरेव गरीयसीति चेत् न भक्तिवत् ज्ञानस्यापि प्रशंसादर्शनात् आत्मसाक्षात्कृतौ साक्षात्कारणत्वाच्च । यथा श्रीमद्भागवते ११।१९।१—५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।
"यो विद्याश्रुतसम्पन्नः आत्मवान्नानुमानिकः ।
मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥
ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च सम्मतः ।
स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मदृते प्रियः ॥
ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुर्मम ।
ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्त्ति माम् ॥
तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च ।
नालं कुर्व्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ॥
तस्माज्ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो भज मां भक्तिभावितः" ॥
किञ्च भगवद्गीतायां ४।३३-३९ ।
"श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्व्वं कर्म्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥
तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥
यज्ज्ञात्वा न पुनर्म्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥
अपि चेदसि सर्व्वेभ्यः पापेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्व्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥
यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्ज्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्व्वकर्म्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत् स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥
श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति" ॥

अतएव निर्गुणभक्तिज्ञानयोर्न्न कियदप्यन्तरं मन्यन्ते तत्त्वदृशः स्वरूपकार्य्ययोरेकात्मत्वात् अतत्त्वदर्शिनोऽज्ञाः स्वाविद्यानोपहितत्वात् भिन्नदृशो भवन्ति ॥ परं भक्तियोगमुपरि सम्प्रसारे ज्ञानविज्ञानसम्पन्ना भक्तिरेव प्रशस्यतेति सम्यक् हितसाधनीति प्रदर्शितवानुद्धवाय भगवान् ॥ यथा भागवते ११।१९।४५-४६ ।
"भावोऽद्वयानपायिन्या सर्व्वतोऽन्तर्बहिस्तमम् ।
सर्व्वोत्पत्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं नोपयाति मे ॥
इति स्वधर्म्मनिर्णिक्तसत्त्वो निर्ज्ञातमद्गतिः ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो नचिरात् समुपैति माम्" ।

निष्कामानुष्ठितभक्तिरेव हि ज्ञानं सा निर्गुणा सती परमप्रेमानन्दरूपेण परिणमते सुतरां तदा मद्य मात्मानन्दमय तत्त्वज्ञानं प्रकाशते । तयोर्नैकत्वरूपत्वात् न क्वापि निर्गुणभक्तिज्ञानयोर्भेदः दृश्यते । यथा छान्दोग्ये "कं ब्रह्म खं ब्रह्म । यदन्तरम्बरमन्त यद्विभाति नास्ति निग्रहदैवतम्" । इति ज्ञानभक्त्योरेकरूपत्वात् ... क्वचित् ... द्वैतानन्देन ... निर्गुणभक्ति ... भेदो दर्शितः ...

उपा

उपा

प्रतिकूलेन विपर्य्ययक्रमेण वा चित्तं यथा येन प्रकारेण स्थिरमचञ्चलं शान्तं चित्तं स्यात् तथा प्राणमार्गं शोधयेदित्यर्थः । तेन किं स्यादित्यत आह । तत्रैव ३।२८।१०॥

"मनोऽचिरात् स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः ।
वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम्"॥

निरुद्धप्राणस्य योगिनः मनोऽचिरात् [illegible] पित्तलोहवत् अविद्याकामकर्म्मजनितमलं विरजस्कं जनितपापविषयमित्यर्थः । विहाय विरजं निर्म्मलं स्यात् । इदानीं पूर्व्वोपदिष्टप्राणायामादिना केन कार्य्येण किं फलं स्यात् तत्तत् क्रमेण स्पष्टं बोधयति । तत्रैव ३।२८।११-१२॥

"प्राणायामैर्द्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषान् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥
यदा मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितम् ।
काष्ठां भगवतो ध्यायेत् स्वनासाग्रावलोकनः"॥

प्राणायामद्वारा वातपित्तश्लेष्मादिदोषान् धारणया पापानि प्रत्याहारेण इन्द्रियार्थसङ्गेन विषयसंसर्गान् ध्यानेन अनीश्वरान् शोकमोहादिमानदम्भक्रोधमात्सर्य्यादिदोषान् दहेदित्यन्वयः । अनेन विधिना यदा मनः स्थिरतां याति तदा सुज्ञानी योगी प्रथमे धारणाध्यानसाधनरूपां भगवतः काञ्चित् स्वाभीष्टां मूर्त्तिं ध्यायेदित्युपदिदेश भगवान् कपिलदेवः । इदानीं ध्येयमूर्त्तिं निरूपयति । यथा तत्रैव ३।२८।१३—१९॥

"प्रसन्नवदनाम्भोजं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥
लसत्पङ्कजकिञ्जल्कपीतकौशेयवाससम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ॥
मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया ।
परार्ध्यहारवलयकिरीटाङ्गदनूपुरम् ॥
काञ्चीगुणोल्लसच्छ्रोणिं हृदयाम्भोजविष्टरम् ।
दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्द्धनम् ॥
अपीव्यदर्शनं शश्वत् सर्व्वलोकनमस्कृतम् ।
सन्तं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रहकातरम् ॥
कीर्त्तन्यतीर्थयशसं पुण्यश्लोकयशस्करम् ।
ध्यायेद्देवं समग्राङ्गं यावन्न च्यवते मनः ॥
स्थितं व्रजन्तमासीनं शयानं वा गुहाशयम् ।
प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेत् शुद्धभावेन चेतसा"॥

ध्येयमूर्त्तेः सकाशात् मनो यावत् विषयान्तरं न याति तावद्ध्यायेदितिभावः । गुहाशयं बुद्धितत्त्वे विराजमानम् एव निरन्तरध्यानेन साधकस्य चित्तं यदा भगवद्रूपे लब्धपदं भवेत् तदा चित्तस्य शनैः शनैः सौक्ष्म्यकरणाय मूर्त्तिं त्याजयित्वा भगवतश्चरणारविन्दादीन्येकैकाङ्गानि ततः साभरणान्यङ्गानि ततो विलासहासादीनि च क्रमेण यथाविधि ध्यातुमुपदिष्टवान् कपिलः । ततः किमित्याह । एवं चिरं ध्यात्वा योगी बहुजन्मार्जितसौभाग्यवशात् यदि हरौ प्राप्तभावो भक्त्या द्रवहृदय आनन्दार्णवे भासमानो भवेत् तर्हि तस्मिन् स्थूले भगवद्रूपे वडिशवत् सक्तं चित्तं निर्गुणस्य परब्रह्मणः स्वरूपलाभार्थं तस्माद्धस्तादिस्थूलरूपाद् वियोज्य निरालम्बनं निर्विषयं कृत्वा उपरमं गुणप्रवाहः सन् आत्मयोगादिदुःखाभावात् सर्व्वोपाधिपरिच्छिन्नमात्मानं [illegible] प्राप्नोति । यथा तत्रैव ३।२८।३४-३५॥

"एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो
भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ।
औत्कण्ठ्यबाष्पकलया मुहुरर्द्यमान-
स्तच्चापि चित्तबडिशं शनकैर्वियुङ्क्ते ॥
मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं
निर्व्वाणमृच्छति मनः सहसा यथार्चिः ।
आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधानमेक-
मन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः"॥

ननु सचिरं साधनेन भक्त्याद्युत्पादितं किमायातम् । चिन्ता श्रमं करोति चेत् न यतोऽनेन श्रमसाधनबलात् यदाऽऽत्मानमात्मना ईक्षते स योगी सुखदुःखादिवत् सर्व्वमहङ्कारविरुद्धं पश्यति तदा देहाद्युपाधिनिर्म्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेत् । यथा तत्रैव ३।२८।३६—३७॥

"सोऽप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या
तस्मिन् महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये ।
हेतुत्वमप्यसति कर्त्तरि दुःखयोर्यत्
स्वात्मन् विधत्त उपलब्धपरात्मकाष्ठः ॥
देहं च तं न चरमः स्थितमुत्थितं वा
सिद्धो विपश्यति यतोऽध्यगमत् स्वरूपम् ।
दैवादुपेतमथ दैववशादपेतं
वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः"॥

जीवन्मुक्तस्य देहाद्युपाधिवर्गस्य निवृत्तौ तत्र मनःसंयोगाभावात् कथं देहादेर्वर्त्तनमिति शङ्कायाम् आरम्भकं प्रारब्धवीजमेवेत्यर्थं देहादेः स्थितिकारणमित्याह । तत्रैव ३।२८।३८॥

"देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म्म यावत्
स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः ।
तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः
स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तु"॥

ननु यदि परमब्रह्मणा आत्मनः साक्षात्कारात्तमेव चरमं देहं मन्यसे तर्हि विद्यैव सुगमोपायः श्रूयते तस्मिन् सति कथं वृथा कर्म्माडम्बरे प्रवर्त्तयसे इति चेत् न कर्म्मविद्ययोरधिकारिभेदात् आदावीश्वरार्पितकर्म्मणा निष्कामकर्म्मणा वा चित्तशुद्धिं विना कुतो विद्यायामधिकारः । इत्यत्राधिकारिभेदमुद्दिश्य ज्ञानकर्म्मणोः पृथक्त्वं प्रदर्शयापि तत्त्वज्ञानमुपदिशन्तं भगवन्तं वासुदेवं पृष्टवान् जातसंशयोऽर्जुनः । यथा गीतायां ३।१-२।

"ज्यायसी चेत् कर्म्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्द्दन ।
तत्किं कर्म्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥
व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्"॥

हे जनार्द्दन ! चेद्यदि ते कर्म्मणः सकाशात् बुद्धिर्बोधः ज्ञानमिति यावत् ज्यायसी गरीयसी मता तर्हि कथं मां घोरे कर्म्मणि नियोजयसीत्यन्वयः । व्यामिश्रेण ज्ञानकर्म्मणोर्मिश्रीभूतेन वाक्येन कथं मे बुद्धिं मोहयसीव । इत्येवं विविक्तोऽर्ज्जुनस्य संशयं निराकुर्व्वन्नाह भगवान् वासुदेवः । तत्रैव ३।३-४॥

"लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्म्मयोगेन योगिनाम् ॥
न कर्म्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति"॥

'अतः सम्यक्चित्तशुद्ध्यर्थं ज्ञानोत्पत्तिपर्य्यन्तं वर्णाश्रमोचितानि कर्म्माणि कर्त्तव्यानि अन्यथा चित्तशुद्ध्यभावेन ज्ञानानुत्पत्तेरित्याह न कर्म्मणामिति । कर्म्मणाम् अनारम्भात् अननुष्ठानात् नैष्कर्म्म्यं ज्ञानं नाश्नुते न प्राप्नोति । ननु "एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति" इति श्रुत्या सन्न्यासस्य मोक्षाङ्गत्व तर्हि सन्न्यासादेव मोक्षो भविष्यति किं कर्म्मभिरित्याशङ्क्योक्तं न चेति । न च चित्तशुद्धिं विना कृतात् सन्न्यसनादेव ज्ञानशून्यात् सिद्धिं मोक्षं समधिगच्छति प्राप्नोति इति तट्टीकाकृत् पूज्यपादश्रीधरस्वामी ।

ननु कामम् ईश्वरार्पितेन निष्कामकर्म्मणा चित्तशुद्धिः प्रजायते ततो ज्ञानं लब्ध्वा मोक्षमाप्नुयात् किन्तु भक्तिबलेनापि सत्त्वसंशोध्याविद्याया अविद्याबन्धनात् मुक्तो भवेदित्यपि बहुषु शास्त्रेषु दृश्यते । सर्व्वेभ्यो हि भक्तिमाहात्म्यस्याधिक्यं प्रदर्शितं महात्मभिस्ततो बहुप्रयाससाध्यं कर्म्माडम्बरं विहाय भक्तिपथाश्रयणमेव गरीयःश्रेयःसाधनमिति चेन्न तदप्यधिकारिभेदेनोक्तत्वात् अर्चादावर्चनादिक्रियायोगसाध्यत्वाच्च । किञ्च पुरुषाणां निःश्रेयसाय शास्त्रविहितमार्गत्रयं मुक्त्वा नान्यपरः पन्था क्वापि दृश्यते श्रूयते वा । तथाहि श्रीमद्भागवते ११।२०।६-८। तत्त्वजिज्ञासुमुद्धवं प्रति यथोक्तवान् भगवान् वासुदेवः ।

"योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ।
ज्ञानं कर्म्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥
निर्व्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्म्मसु ।
तेष्वनिर्व्विण्णचित्तानां कर्म्मयोगस्तु कामिनाम् ॥
यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ।
न निर्व्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः"॥

यदृच्छया दैवगत्या । न निर्व्विण्णो न प्राप्तनिर्व्वेदः ।

अतः सर्व्वत्रैव भिन्नभिन्नाधिकारसापेक्षं ज्ञानकर्म्मभक्तियोगादयो विहिताः । यथा तत्रैव ११। २० अध्याये २६॥

"स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्त्तितः ।
कर्म्मणां जात्यशुद्धानामनेन नियमः कृतः"॥

यथा तत्त्वज्ञानार्थी निकृष्टसात्त्विककर्त्ता प्रथमतः केवलम् अविद्याकर्म्मनिर्हारादीनुद्दिश्य निष्कामकर्म्मानुष्ठानमाचरति न जातुचित्तविशुद्धसत्त्वोऽधिरूढयोगो योगीव सहसा भेदबुद्ध्यादिकं परिहातुमर्हति तथा प्रथमं सगुणभक्तियोगाश्रयिणोऽपि न हि युगपत् भगवत्स्वरूपतत्त्वज्ञा निर्गुणभक्ता इव भगवत्प्रतिमाद्यर्च्चनादिक्रियायोगं परित्यक्तुं समर्था भवेयुः किन्तु तादृशेन सगुणभक्तियोगावलम्बिना दुर्ब्बलाधिकारिणा भगवत्प्रतिमापूजादिकर्म्मयोग एव कार्य्यः इत्येतद्विहित

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्त्रदारगृहादिषु ।
नित्यञ्च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा” ॥
अतो ज्ञेयं वस्तु तत्रैवाध्याये । १२-१७ ॥
“ज्ञेयं यत्तत् प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनादिमत् परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥
सर्व्वतः पाणिपादन्तत् सर्व्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्व्वतः श्रुतिमल्लोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठति ॥
सर्व्वेन्द्रियगुणाभासं सर्व्वेन्द्रियविवर्ज्जितम् ।
असक्तं सर्व्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥
वहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥
अविभक्तञ्च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्त्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्व्वस्य विष्ठितम्” ॥
तथा च श्वेताश्वतरश्रुतौ आत्मज्ञानेनैव मुक्ति-
रिति स्फुटं दर्शयामास । यथा,—
“सर्व्वेन्द्रियगुणाभासं सर्व्वेन्द्रियविवर्ज्जितम् ।
सर्व्वस्य प्रभुमीशानं सर्व्वस्य शरणं बृहत्” ॥

“आत्मा गुहाया निहितोऽस्य जन्तो-
रणोरणीयान् महतो महीयान् ।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्” ॥

महानिर्व्वाणतन्त्रे च । ५ । ११ ।
“परे ब्रह्मणि विज्ञाते समस्तैर्नियमैरलम् ।
तालवृन्तेन किं कार्य्यं लब्धे मलयमारुते” ॥

ननु किमिदानीं वाग्भङ्ग्याऽद्वैतवादं सस्थाप-
यितुं प्रयतसे इति चेत् दर्शयाम ।
तथा च श्रीविष्णुधर्म्मे,—
“परात्मनो मनुष्येन्द्र विभागो हि न कल्पितः ।
क्षये तस्यात्मपरयोर्विभागाभाव एव हि ॥
आत्मा क्षेत्रज्ञसंज्ञोऽयं संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः ।
तैरेव विगतः शुद्धः परमात्मा निगद्यते ॥
अनादिसम्बन्धवत्या क्षेत्रज्ञोऽयमविद्यया ।
युक्तः पश्यति भेदेन ब्रह्मत्वात्मनि संस्थितम्” ॥
तथाहि श्वेताश्वतरश्रुतिभाष्यधृतविष्णुपुराण-
प्रश्नपूर्व्वकं दर्शितम् । यथा,—
“यद्यात्मा निर्गुणः शुद्धः सदानन्दोऽजरोऽमरः ।
कथं तर्हि वन्धमोक्षौ वा विद्यया विभो ।
लोकनाथ कथं तन्नः कथयस्व भगवान् यत् ।
यद्यावत् सर्व्वमेतन्मे वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥
[illegible]
[illegible]
एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥
[illegible] सदा भवेत् ।”

तथा च शुकशिष्यो गौडपादाचार्य्यः ।
“यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते ।
न सर्व्वे सम्प्रयुज्यन्ते तद्वज्जीवाः सुखादिभिः” ॥
तस्माद्द्वितीये परमात्मन्युपाधितो जीवेश्वरयो-
र्जीवानाञ्च परस्परं भेदव्यवस्थायाः सिद्धत्वान्न
विशुद्धसत्त्वोपाधेरीश्वरस्याविशुद्धोपाधिजीवगताः
सुखदुःखमोहाज्ञानादयः । तथा च भगवान्
पराशरः ।

ज्ञानात्मकस्यामलसत्त्वराशे-
रपेतदोषस्य सदा स्फुटस्य ।
किं वा जगत्यत्र समस्तपुंसा-
मज्ञातमस्यास्ति हृदि स्थितस्य” ॥

कथं तर्ह्यौपाधिकभेदेन वन्धमुक्त्यादिव्यवस्था सोपा-
धिकानां तेषां वा सोपाधिकेश्वरस्य वा स्वरूप-
स्येति इत्याशङ्क्य दृष्टान्तपूर्व्वकं व्यवस्थां दर्शयति ।
“एकस्तु सूर्य्यो बहुधा जलाधारेषु दृश्यते ।
आभाति परमात्मा च सर्व्वोपाधिषु संस्थितः” ॥
“ब्रह्म सर्व्वशरीरेषु वाह्ये चाभ्यन्तरे स्थितम् ।
आकाशमिव भूतेषु बुद्ध्यावात्मा न चान्यथा” ॥
एवं सति यथा बुद्ध्या देहोऽहमिति मन्यते ।
‘अनात्मन्यात्मता भ्रान्त्या सा स्यात्संसारवन्धिनी’ ॥
सर्व्वैर्विकल्पैर्हीनस्तु शुद्धो बुद्धोऽजरोऽमरः ।
प्रशान्तो व्योमवद्व्यापी चैतन्यात्मा सकृत्प्रभुः ॥
धूमाभ्रधूलिभिर्व्योम यथा न मलिनीयते ।
प्राकृतैरपरामृष्टो विकारैः पुरुषस्तथा ॥
यथैकस्मिन् घटाकाशे जलैर्धूमादिभिर्युते ।
नान्ये मलिनतां यान्ति दूरस्थाः कुत्रचित् क्वचित् ॥
यथा द्वन्द्वैरनेकैस्तु जीवे च मलिनीकृते ।
एकस्मिन्नापरे जीवा मलिना सन्ति कुत्रचित्” ॥

परं मतु केवलं प्रकृतेः पृथक्चैतन्यज्ञान-
मात्रेण ब्रह्मज्ञानं सम्भवितुमर्हति । यदि चैके
पण्डिताः पृथग्ज्ञानेनैव सिद्धिः स्यादिति मन्यन्ते
किन्तु नैव श्रुतय एवं परिचक्षते । यथा, श्वेताश्व-
तरोपनिषदि “ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा
ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता अनन्तश्चात्मा विश्व-
रूपो ह्यकर्त्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्” ॥
अतएव ब्रह्मजिज्ञासोर्योगिनः श्रवणादिमतः
तत्त्वविज्ञानेनैव मुक्तिः स्यात् अन्यथा श्रमएव ।
यथा, तत्रैव “क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः
क्षरात्मानावीशते देव एकः । तस्याभिध्यानात्
योजनात् तत्त्वभावात् भूयश्चान्ते विश्वमाया-
निवृत्तिः ॥ ज्ञात्वा देवं सर्व्वपाशापहानिः क्षीणैः
क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः । तस्याभिध्यानात्तृतीयं देह-
भेदे विश्वैश्वर्य्यं केवल आप्तकामः” ॥ परं योगा-
भ्यासादृते नैव कदाचित् तत्त्वज्ञानस्योत्पत्ति-
रिति श्रुतिस्मृत्यादीनां ज्ञानप्रतिपादकशास्त्रा-
णामुपदेशो दृश्यते यदि च पूर्व्वं पूर्व्वप्रकरणे पुराण-
श्रुतिविहितयोगादिकं प्रदर्शितं तथापि तत्
सर्व्वोपकारक [illegible] प्रदर्शयाम । यथा
[illegible]”युञ्जा-
नः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः । अग्ने-
र्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥ १ ॥

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे सुवर्गेयाय
शक्त्यै ॥ २ ॥
युक्त्वाय मनसा देवान् सुवर्य्यतो धिया दिवं ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो
विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ॥
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इत् ।
मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ४ ॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभि-
र्विश्लोक एतु पथ्येव सूराः” ॥ ५ ॥
परन्तु आत्मज्ञानविशदीकरणाय दत्तसंहितैव
श्रेयसी जीवानामिति प्रदर्शयितुं भूयोऽप्यनुस-
राम । यथा,
“ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये न्यस्येतरं करम् ।
उत्तानं किञ्चिदुन्नाम्य मुखं विष्टभ्य चोरसा ॥
निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो दन्तैर्दन्तानसंस्पृशन् ।
तालुस्थाचलजिह्वश्च संवृतास्यः सुनिश्चलः ।
सन्निरुध्येन्द्रियग्रामं नातिनीचोच्छ्रितासनः ।
द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्राणायाममुपक्रमेत्” ॥
किन्त्वेवं मा मन्यध्वं यत् गृहान्निष्क्रम्य अरण्यवा-
सादौ योगाभ्यासतत्त्वज्ञानादेः सुगमो भवेत्
इत्यत्र यथाह दत्तः सप्तमाध्याये ।
“लोको वशीकृतो येन येन चात्मा वशीकृतः ।
इन्द्रियार्थो जितो येन तं योगं प्रब्रवीम्यहं ॥
प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारस्तु धारणा ।
तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते ॥
नारण्यसेवनाद्योगो नानेकग्रन्थचिन्तनात् ।
व्रतैर्यज्ञैस्तपोभिश्च न योगः कस्यचित् भवेत् ॥
न च पद्मासनात् योगो न नासाग्रनिरीक्षणात् ।
न च शास्त्रातिरिक्तेन शौचेन स भवेत् क्वचित् ॥
न मौनमन्त्रकुहकैरनेकैः सुकृतैस्तथा ।
लोकयात्राविमुक्तस्य योगो भवति कस्यचित् ॥
अभियोगात् तथाभ्यासात् तस्मिन्नेव तु निश्चयात् ।
पुनः पुनश्च निर्व्वेदात् योगः सिध्यति नान्यथा” ॥
अतएव निर्व्वेदादृते केवलं तपःस्वाध्यायादिभि-
र्योगसिद्धिः शास्त्रकृद्भिरनुमोदनीया । किन्तु
आदरनैरन्तर्य्येण आत्मचिन्तादयएव ब्रह्मज्ञो-
सदुपाया इति बोध्यम् यथा तत्रैव ।
“आत्मचिन्ताविनोदेन शौचक्रीडनकेन च ।
सर्व्वभूतसमत्वेन योगः सिध्यति नान्यथा ॥
यस्यात्मनि रतो नित्यमात्मक्रीडस्तथैव च ।
आत्मनिष्ठश्च सततमात्मन्येव स्वभावतः ॥
रतश्चैव सदा युक्तः सन्तुष्टो नान्यमानसः ।
आत्मन्येव सुतृप्तोऽसौ योगस्तस्य प्रसिध्यति ॥
सुप्तोऽपि योगयुक्तः स्यात् जाग्रच्चापि विशेषतः ।
ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो वरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम्” ॥
परन्तु विषयासक्तिवर्ज्जं विना नापि कस्य
चिदपि आत्मसिद्धिर्न प्रजायते । यथा तत्र,—
“य आत्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नैव पश्यति ।
ब्रह्मीभूतः स एवं हि दक्षपक्ष उदाहृतः ॥
विषयासक्तचित्तो हि यतिर्मोक्षं न विन्दति ।
यत्नेन विषयासक्तिं तस्माद् योगी विवर्ज्जयेत्” ॥

स्वरूपतस्तयोरेकात्मत्वात्। परन्तु तत्त्वज्ञानोत्पादनक्षमा भक्तिरेवानुष्ठेया न तु संसारबन्धनकारिणी नश्वरफलदात्री ध्रुवभक्तिवत् सकामा भक्तिरेवानुमोदनीया तत्त्वदर्शिभिरिति बोध्यम् ॥ यथा भागवते १। २। ७।

"वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानञ्च यदहैतुकम्" ॥

विशेषतः प्रह्लादध्रुवयोरिव नित्यानित्यवस्त्ववाप्तिदर्शनात्। असुरकुलजातोऽपि प्रह्लादः निष्कामभक्तियोगमाचरन् तत्प्रभावेन शतशः पितृप्रयुक्ता बाधामतिक्रम्यात्मप्रसादलब्धं विमलानन्दस्वरूपं जीवन्मुक्तत्वं ततो निर्व्वाणमप्यवाप्तवान्। ध्रुवः पुनः स्वायम्भुवमनुवंशजातोऽपि विमातृवचनात् दीर्घ्यापरवशः सन् परमतत्त्वज्ञाद्देवर्षिनारदादप्युपदेशं लब्ध्वा अन्तः कामवीजं परिपुष्णन् कठोरतपसापि सकामभक्तियोगमनुष्ठाय कल्पस्थायिनं ध्रुवाख्यलोकं लब्धवान् ततः गृहप्रत्यागमनकाले सहसा जातनिर्व्वेदः आत्मधिक्कारेण मुहुरन्वशोचत् ॥ इदानीं प्रदर्शयामो यथाक्रमं तयो राजपुत्रयोः सकामनिष्कामभक्तियोगानुष्ठाननित्यानित्यफलम् ॥

यथा, श्रीमद्भागवते। ४। ९। २७-३५ ॥

"सोऽपि सङ्कल्पजं विष्णोः पादसेवोपसादितम्।
प्राप्य सङ्कल्पनिर्व्वाणं नातिप्रीतोऽभ्यगात् पुरम् ॥

विदुर उवाच।

सुदुर्लभं यः परमं पदं हरे-
र्मायाविनस्तच्चरणार्च्चनार्च्चितम्।
लब्ध्वाऽप्यसिद्धार्थमिवैकजन्मना
कथं स्वमात्मानममन्यतार्थवित् ॥

मैत्रेय उवाच।

मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तु तान् स्मरन्।
नैच्छन् मुक्तिपतेर्मुक्तिं तस्मात् तापमुपेयिवान् ॥

ध्रुव उवाच।

समाधिना नैकभवेन यत् पदं
विदुः सनन्दादय ऊर्द्ध्वरेतसः।
मासैरहं षड्भिरमुष्य पादयो-
श्छायामुपेत्यापगतः पृथङ्मतिः ॥

अहोबत ममानात्म्यं मन्दभाग्यस्य पश्यत।
भवच्छिदः पादमूलं गत्वा याचे यदन्तवत् ॥
मतिर्विदूषिता देवैः पतद्भिरसहिष्णुभिः।
यो नारदवचस्तथ्यं नाग्राहिषमसत्तमः ॥
दैवीं मायामुपाश्रित्य प्रसुप्त इव भिन्नदृक्।
तप्ये द्वितीयेऽप्यसति भ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा ॥
मयैतत् प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गतायुषि।
प्रसाद्य जगदात्मानं तपसा दुष्प्रसादनम् ॥
भवच्छिदमयाचेऽहं भवं भाग्यविवर्जितः।
स्वाराज्यं यच्छतो मौढ्यान्मानो मे भिक्षितो बत ॥
ईश्वरात् क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः"।

भगवता नृसिंहदेवेन प्रलोभ्यमानोऽपि प्रह्लादः निष्काममक्तिज्ञानप्रभावेन किमपि नैच्छदिति धर्म्मनन्दनमजातशत्रुं युधिष्ठिरं श्रावयामास देवर्षिर्नारदः। यथा, भागवते। ७। ९। ५१ ५५।

"एतावद्वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः।
प्रह्लादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत ॥

श्रीभगवानुवाच।

प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतोऽहं तेऽसुरोत्तम।
वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम् ॥
मामप्रीणत आयुष्मन् दर्शनं दुर्लभं हि मे।
दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तप्तुमर्हति ॥
प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्व्वभावेन साधवः।
श्रेयस्कामा महाभागाः सर्व्वासामाशिषां पतिम् ॥
एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः।
एकान्तित्वाद्भगवति नैच्छत्तानसुरोत्तमः" ॥

तत्रैव ७। १०। १—५।

नारद उवाच ॥

"भक्तियोगस्य तत् सर्व्वमन्तरायतयार्भकः।
मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥
मा मां प्रलोभयोत्पत्त्या सक्तं कामेषु तैर्वरैः।
तत्सङ्गभीतो निर्व्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ॥
भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत्।
भगवन् संसारवीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो!।
नान्यथा तेऽखिलगुरो। घटेत करुणात्मनः ॥
यस्तु आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक्।
आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ॥
अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वञ्च स्वाम्यनपाश्रयः।
नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव" ॥

अस्तु तस्य निस्पृहत्वादि किन्तु तत्त्वज्ञानं नासीदिति चेत् न यतः उपरिष्टादेव तत्त्वज्ञानमूलाया निर्गुणाया भक्तेर्लक्षणं प्रदर्शितं। यथा, भागवते ७। ५। १२ ॥ हिरण्यकशिपुं प्रति प्रह्लादोक्तिः।

"स एष आत्मा स्वपरेत्य बुद्धिभि-
र्दुरत्ययानुक्रमणो निरूप्यते।
मुह्यन्ति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो
ब्रह्मादयो ह्येष भिनत्ति मे मतिम्" ॥

किञ्च तत्रैव ३१।

"न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं
दुराशया ये बहिरर्थमानिनः।
अन्धा यथान्धैरुपनीयमाना
वागीशतन्त्यामुरुदाम्नि बद्धाः" ॥

स्वार्थगतिमिति। स्वस्मिन् एवार्थो येषां ते स्वार्थास्तत्त्वज्ञानिनस्तेषां गतिर्ज्ञानस्वरूपस्तं। बहिरर्थमानिन इति। बहिर्वाह्यवस्तुषु अर्थो येषां तान् गुरून् इति मन्यन्ते ये इति ॥ ननु क्वचित् दर्शादेर्निन्दापि लक्ष्यते यदा तदा तदुपासनं निष्फलमिति चेन्न। यतः सर्व्वतः साधुसङ्गलाभस्योत्कर्षः इति प्रदर्शयन् विशेषतः सर्व्वाभ्य उपासाभ्यः हृदेशे आत्मध्यानमेव गरीय इत्येवोपदिदिशुः महान्तः शास्त्रकृतः। अन्यथा "मदर्च्चास्थापने श्रद्धा" "अर्च्चायामर्च्चयेत्तावत्" "यावन्न मे कथारतिः" इत्यादि वचनानां निष्फलत्वं स्यात्। दर्शितञ्च यथासम्भवमुपासनाया दुर्व्वलाधिकारिणा यत् यत् कर्त्तव्यं इदानीं सबलाधिकारिणां करणीयं यत्प्रकृतमथ तदेव दर्शयामः समासेनेति। यथा, वृहदारण्यकश्रुतौ ॥

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो नि-
दिध्यासितव्यश्च"। अर्थात् आत्मैव साक्षात् कर्त्त-
साक्षात्कारे उपायमाह श्रवणं मननं निदिध्या-
सनञ्च किन्तत् श्रवणादि इति जिज्ञासायां ब्रूम
यथा। "श्रवणं नाम षड्विधलिङ्गैरशेषवेदान्ता-
नामद्वितीये वस्तुनि तात्पर्य्यावधारणम्। लिङ्गा-
नि तु। उपक्रमोपसंहाराभ्यासाऽपूर्व्वताफलार्थवा-
दोपपत्त्याख्यानि। तत्र प्रकरणप्रतिपाद्यस्यार्थ-
स्य तदाद्यन्तयोरुपादानं उपक्रमोपसंहारौ। यथा
छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके प्रकरणप्रतिपाद्यस्याद्विती-
यवस्तुनः एकमेवाद्वितीयमित्यादौ "ऐतदात्म्यमि-
दं सर्व्वम्"। इत्यन्ते च प्रतिपादनम् ॥

प्रकरणप्रतिपाद्यस्य वस्तुनः तन्मध्ये पौनःपुन्येन
प्रतिपादनं अभ्यासः। यथा, तत्रैवाद्वितीयवस्तु-
नो मध्ये "तत्त्वमसीति" नवकृत्वः प्रतिपादनम्।
प्रकरणप्रतिपाद्यस्य वस्तुनः प्रमाणान्तरेणा-
विषयीकरणं अपूर्व्वत्वम्। यथा तत्रैवाद्वितीय-
वस्तुनः तन्त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामीत्यादिना
उपनिषन्मात्रवेद्यत्वप्रतिपादनात्। मानान्तरा-
विषयीकरणं फलन्तु प्रकरणप्रतिपाद्यस्यात्म-
ज्ञानस्य तदनुष्ठानस्य वा तत्र तत्र श्रूयमाणं प्रयो-
जनं यथा तत्रैव "आचार्य्यवान् पुरुषो वेद तस्य
तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये अथ सम्पत्स्ये"
इत्यद्वितीयवस्तुज्ञानस्य तत्प्राप्तिप्रयोजनं श्रूयते।
प्रकरणप्रतिपाद्यस्य तत्र तत्र प्रशंसनं अर्थवादः।
यथा, तत्रैव उततमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं
भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमित्यद्वितीयवस्तु-
प्रशंसनम्।

प्रकरणप्रतिपाद्यार्थसाधने तत्र तत्र श्रूयमाणा
युक्तिः उपपत्तिः"। यथा, तत्र "सौम्यैकेन मृत्-
पिण्डेन सर्व्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात् वाचारम्भणं
विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्"। इत्यादा-
वद्वितीयवस्तुसाधने विकारस्य वाचारम्भणमात्रत्वे
युक्तिः श्रूयते"। मननन्तु। "श्रुतस्याद्वितीयवस्तुनो
वेदान्तार्थानुगुणयुक्तिभिरनवरतमनुचिन्तनम्"।
"विजातीयदेहादिप्रत्ययरहिताऽद्वितीयवस्तुसजा-
तीयप्रत्ययप्रवाहः निदिध्यासनम्" ॥ इति वेदा-
न्तशास्त्रेषु ॥

समाधिस्तु द्विविधः। सविकल्पको निर्व्विकल्पकश्चेति। तत्र सविकल्पको नाम ज्ञातृज्ञानादिविकल्पलयानपेक्षयाऽद्वितीयवस्तुनि तदाकाराकारितायाश्चित्तवृत्तेरवस्थानम्। तदा मृण्मयगजादिभानेऽपि मृद्भानवत् द्वैतभानेऽप्यद्वैतं वस्तु भासते ॥

निर्व्विकल्पकस्तु ज्ञातृज्ञानादिभेदलयापेक्षयाऽद्वितीयवस्तुनि तदाकाराकारितायाः बुद्धिवृत्तेरतितरामेकीभावेनावस्थानम्। तदा तु जलाकाराकारितलवणानवभासेनाद्वितीयवस्तुमात्रमेवावभासते ॥ इति वेदान्ते उपदिष्टं पूर्व्वर्षिभिः ॥

अतो ज्ञानलक्षणानि भगवद्गीतायां। १३। ७-११।

"अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्ज्जवम्।
आचार्य्योपासनं शौचं स्थैर्य्यमात्मविनिग्रहः ॥

यदि च केचित् विषयेन्द्रियसंयोगैः सिद्धिर्भवेत् इति वदन्ति तत्र तेषां भ्रान्तिरेव सा यथा तत्रैव,
"विषयेन्द्रियसंयोगं केचित् योगं वदन्ति हि ।
अधर्म्मो धर्म्मरूपेण गृहीतस्तैरपण्डितैः" ॥ इति ॥
यदि चाद्वैततत्त्वज्ञानमेव सर्व्वतो निःश्रेयसकरं जीवानामित्यशेषतः प्रदर्शितम् किन्तु दुर्व्वलसबलाद्यधिकारिभेदेन यथाक्रमं क्रियाभक्तिज्ञानयोगादयः सन्निवेशिता इत्यलमतिपल्लवितेन ॥*॥)

उपासित, त्रि, (उप + आस् + क्त ।) कृतोपासनः । तत्पर्य्यायः । वरिवसितः २ वरिवस्यितः ३ उपचरितः ४ । इत्यमरः ॥

उपास्ति, स्त्री, (उप + आस् + क्तिन् ।) सेवा । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा, मुग्धबोधे कारकप्रकरणे ७ ।
"मुक्तिर्नृत्तेऽच्युतोपास्ति भूतं भूतमभि प्रभुं" ॥)

उपाहित, पुं, (उप आसन्नं आहितं फलं यस्य ।) अग्न्युत्पातः । स तु उल्कापातादिः । इत्यमरः ॥

उपाहित, त्रि, (उप + आ + धा + क्त ।) संयोजितः । इत्यमरः ॥ आरोपितः । इति मेदिनी ॥

उपेक्षण, क्ली, (उप + ईक्ष् + भावे ल्युट् ।) वर्ज्जनम् । त्यजनम् ॥ (यथा, महाभारते ३ । हनूमद्भीमसंवादे १५० । ४२ ।
"साम्ना दानेन भेदेन दण्डेनोपेक्षणेन च ।
साधनीयानि कर्म्माणि समासव्यासयोगतः" ॥)

उपेक्षा, स्त्री, (उप + ईक्ष् + अ + टाप् ।) अस्वीकारः । त्यागः । (औदासीन्यम् । यथा, रघुः १४ । ६५ । "कुर्य्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन्" ।) युद्धविषये तु क्षुद्रोपायः । "मायोपेक्षेन्द्रजालानि क्षुद्रोपाया इमे त्रयः" । इति हेमचन्द्रः ॥

उपेन्द्र, पुं, (इन्द्रमुपगतः । कश्यपात्मजे अदितौ वामनावतारे इन्द्रस्यानन्तरं जातत्वात् तथात्वम् ।) विष्णुः । इत्यमरः ॥ (उपेन्द्रस्यापरा व्युत्पत्तिमाह हरिवंशे ७५ । ४६ ।
"ममोपरि यथेन्द्रस्त्वं स्थापितो गोभिरीश्वरः ।
उपेन्द्र इति कृष्ण त्वां गास्यन्ति दिवि देवताः" ॥
तथा च भागवते ८ । २३ । २१, २२, २३ ।
"कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्व्वभूतभवाय च ।
लोकानां लोकपालानामकरोत् वामनं पतिम् ॥
वेदानां सर्व्वदेवानां धर्म्मस्य यशसः श्रियः ।
मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयोः ॥
उपेन्द्रं कल्पयाञ्चक्रे पतिं सर्व्वविभूतये ।
तदा सर्व्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ।" ॥)

उपोढ़, त्रि, (उप समीपे उह्यते स्म । उप + वह + क्त ।) निकटः । (यथा, किराते १३ । २३ "तदुपोढ़स्वनमस्वरं पृषत्कः" ।) विवाहितः । इति मेदिनी ॥ (धृतः । विहितः । यथा शाकुन्तले ७म अङ्के,—
"उपोढ़शब्दा न रथाङ्गनेमयः
प्रवर्त्तमानं न च दृश्यते रजः" ॥)

उपोढ, पुं, (उप + वह् + क्त ।) व्यूहः । इति धरणी ॥

उपोती, स्त्री, (उप्यते स्म या । उप + वे + क्त + ङीष् । पत्रादिषु वयनसादृश्यादस्य तथात्वम् ।) पूतिका । इति शब्दरत्नावली ॥ ("द्वादश्यामुपोतीं त्यक्त्वा पारणं कुर्य्यात्" । इति स्मृतिः ॥)

उपोदकी, स्त्री, (उपगता उदकम् । रसप्राधान्यात् । गौरादित्वात् ङीष् ।) पूतिका । पूँइशाक इति भाषा । तत्पर्य्यायः । कलम्बी २ पिच्छिला ३ पिच्छिलच्छदा ४ मोहनी ५ मदशाकः ६ विशाला ७ वलिपोदकी ८ । अस्या गुणाः । कषायत्वम् । उष्णत्वम् । कटुत्वम् । मधुरत्वम् । निद्रालस्यरुचिविष्टम्भश्लेष्मकारित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ (यथा, एकादशीतत्त्वे द्वादशीनियमे कूर्म्मपुराणधृतवचनम् ।
"द्वादश्यां पारणं कुर्य्यात् वर्जयित्वाप्युपोदकीम्" ॥)

उपोदिका, स्त्री, (उपाधिकमुदकमस्याम् । उत्तरपदस्य चेत्युत्तरपदस्योदादेशः । कप् । टाप् ।) पूतिका । इत्यमरः ॥ अस्या गुणाः । सारकत्वम् । स्निग्धत्वम् । वलश्लेष्मकारित्वम् । हिमत्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥ (यथा, वैद्यके ।
"तण्डुलैरानतव्याजैर्भ्रंसत्येषा उपोदिका" ।
"मदघ्नी चाप्युपोदिका" ।
इति सूत्रस्थाने ६ अध्याये वाभटेनोक्तम् ॥
"उपोदिकादधिभ्यान्तु सिद्धा मदविनाशिनी" ।
इति चरके सूत्रस्थाने २ अध्याये ॥
"स्वादुपाकरसा वृष्या वातपित्तमदापहा ।
उपोदिका सरा स्निग्धा बल्या श्लेष्मकरी हिमा" ॥
इति सुश्रुते सूत्रस्थाने ४६ अध्यायः ॥)

उपोदीका, स्त्री, पूतिका । इति भरतद्विरूपकोषः ॥

उपोद्घात, पुं, (उप समीपे उद्धननम् । उप + उत् + हन् + घञ् ।) उदाहरणम् । इत्यमरः ॥ आरम्भः । इति भरतः ॥ सङ्गतिविशेषः । यथा,—
"सप्रसङ्ग उपोद्घातो हेतुतावसरस्तथा ।
निर्व्वाहकैककार्य्यत्वे षोढा सङ्गतिरिष्यते" ॥
तल्लक्षणं यथा,—
"चिन्तां प्रकृतसिद्धार्थामुपोद्घातं विदुर्व्बुधाः" ।
इत्यनुमितौ जगदीशतर्कालङ्कारः ॥

उपोषण, क्ली, (उप + उष् दाहे + ल्युट् ।) उपवासः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (यथा, तिथितत्त्वे ।
"उपोषणं नवम्याञ्च दशम्याञ्चैव पारणम्" ।
विस्तृतिस्तु उपवासशब्दे द्रष्टव्या ॥)

उपोषित, क्ली, (उप + वस् + भावे क्त ।) उपवासः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥ (यथा, मनुः । ५ । १५५ ।
"नास्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्" ॥

उपोषित, त्रि, (उपोष्यते स्म । उप + वस + कर्त्तरि + क्त ।) कृतोपवासः । यथा,—
"उपोषितो द्वितीयेऽह्नि पूजयेत् पुनरेव ताम्" ।
इति दुर्गोत्सवप्रकरणे तिथ्यादितत्त्वम् ॥
(यथा रघौ २ १९ ।
"पपौ निमेषालसपक्ष्मपङ्क्ति-
रुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम्" ॥)

उप्त, त्रि, (उप्यते स्म यः क्षेत्रादिषु । वप् + क्त ।) कृतवपनः । वोना इति भाषा । यथा,—
"तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते
सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति ।
सर्व्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं
भस्मन् हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम्" ॥
इति श्रीभागवते १ स्कन्धे १५ । २१ ॥
श्रीकृष्णवियोग एवात्र हेतुः नान्य इत्याह तद्वै इति यतो येभ्य ईशेन रिक्तं शून्यं असत् कार्य्याक्षमम् सन्मन्त्रविधानैरपि भस्मनि हुतमिव भस्मन्निति लुप्तसप्तम्यन्तं पदम् । अतिप्रीतादपि कुहकान्मायाविनः सकाशाद्राद्धं लब्धं यथा । सम्यक्कर्षणादिनापि उषरभूमौ उप्तं वीजमिव" । इति तट्टीकायां श्रीधरस्वामी ॥ * ॥ कृतमुण्डनम् । यथा—
"सशिखं वपनं कार्य्यमास्नानाद्ब्रह्मचारिणा" ।
इति कात्यायनकृतच्छन्दोगपरिशिष्टेऽप्येवम् । तदेकश्रुतिमूलकत्वात् । तद्धृतपारस्करीये । पर्य्युप्तशिरसमिति सूत्रेऽपि तथैवार्थः तद्भाष्यकृता हरिशर्म्मणापि परि सर्व्वतोभावेनोप्तशिरसं मुण्डितशिरसमिति व्याख्यातम्" । इति प्रायश्चित्ततत्त्वम् ॥

उप्तकृष्ट, त्रि, (आदौ उप्तं पश्चात् कृष्टम् । पूर्व्वकालेति समासः ।) वीजवपनानन्तरकर्षितक्षेत्रम् । तत्पर्य्यायः । वीजाकृतम् २ । इत्यमरः ॥

उब्ज, श आर्ज्जवे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (तुदां परअक-सेट् ।) ऋस्वादिः । ओष्ठ्यवकारोपधः तेन वंशचूतयीति दीर्घो न स्यात् । स्वादौ नवश इति उब्जिजिषति । ऊर्णोर्व्वोर्दीर्घपाठसामर्थ्यात् स्वरादेर्न दीर्घ इति केचित् । दन्त्यवकारत्वात् उब्जतीत्यत्र दीर्घ इत्यप्येके । श उब्जती उब्जन्ती आर्ज्जवमवक्रीभावः । उब्जति साधुरवक्रः स्यादित्यर्थः । इति दुर्गादासः ॥ (यथा, ऋग्वेदे । ६ । ५ २ । १ ॥ "उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्व्वतासो निहीयतामतियाजस्य यष्टा" ॥)

उभ, श पूर्त्तौ । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (तुदा-परसक-सेट् ।) ऋस्वादिः । श उभति कुम्भं जलेन लोकः । उवोभ । इति दुर्गादासः ॥

उभय, त्रि, (उभौ अवयवौ अस्य । उभ + तयप् । उभादुदात्तो नित्यमिति । ५ । २ । ४४ । तयपोऽयजादेशः । कथमुभये देवमनुष्या इति यतो बहूनामुभावयवौ न घटतः । नैष दोषः । अत्र हि द्वौ राशी समुदायस्यावयवौ । एको देवानामपरो मनुष्याणामिति । उभादुदात्तो नित्यमिति नित्यग्रहणस्येदं प्रयोजनं वृत्तिविषये उभशब्दप्रयोगो माभूत् उभयशब्दस्यैव यथा स्यादिति ।) युगलम् । इति शब्दचन्द्रिका ॥ दुइ इति भाषा । (यथा, मनुः । २ । ५५ ॥
"पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जञ्च यच्छति ।
अपूजितन्तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्" ॥)

उभयत, [स्] अ (उभयस्मात् । उभय + तसिल् ।) पार्श्वद्वये । उभयपार्श्वे । इति व्याकरणम् ॥ (यथा, मनुः । ८ । ३१५ ।
"शक्तिञ्चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा" ॥)

उभयद्युः, [स्] अ, (उभयोरह्नोः । द्युश्चोभयाद्वक्तव्य इति साधुः ।) उभयदिनम् । दिनद्वयम् । इत्यमरः ॥ (यथा, अथर्व्ववेदे । १ । २५ । ४ ।
"योऽन्येद्युरुभयद्युरभ्येति" ॥)

उभयेद्युः, [स्] व्य (उभयोरह्नोः । सद्यःपरुदिति उभयाद्देद्युस् निपातितः ।) उभयदिनम् । इत्य-मरः ॥ (यथा, ऐतरेयब्राह्मणे । ५ । २९ ।
"अग्निहोत्रमुभयेद्युरहूयत" ॥)

उम्, व्य, (उङ् शब्दे + डुम् ।) रोषः । अङ्गीकारः । प्रश्नः । इति मेदिनी ॥ क्रोधवर्जितः । इति शब्द-रत्नावली ॥

उमा, स्त्री, (उ भो मा तपस्या कुर्व्विति । यथा, "उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम" । इति कुमारोक्तेः । यद्वा ओर्हं-रस्य मा लक्ष्मीरिव । उ शिवं माति मिमीते वा । आतोऽनुपसर्गेति कः । अजादित्वात् टाप् । अवति ऊयते वा उङ् शब्दे "विभाषा तिलमाषो मेति" । ५ । २ । ४ । निपातनात् मक् ॥ ) दुर्गा । (यथा, कुमारे । ३ । ६७ ।
"उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे
व्यापारयामास विलोचनानि" ॥)
अतसी । कीर्त्तिः । हरिद्रा । कान्तिः । इति मेदिनी ॥ शान्तिः । इति शब्दरत्नावली ॥ तन्नाम-व्युत्पत्तिर्यथा ।
"यतो हि तपसे पुत्त्रि वनम् गन्तुञ्च मेनका ।
उमेति तेन सोमेति नाम प्राप तदा सती" ॥
इति कालिकापुराणे ४२ अध्यायः ॥

उमाकट, पु, (उमाया रजः । उमा "अलावृति-लोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसंख्यानम्" इति कटच् ।) उमाधूलिः । इति व्याकरणम् ॥ मसिनार धूला इति भाषा ।

उमागुरुः, पुं, (उमाया गुरुः पिता । सती दक्ष-यज्ञे शिवनिन्दाश्रवणात् योगविमुक्तदेहा हिमा-लयात् मेनकागर्भे सम्भूतेति पौराणिकी कथात्रानु-सन्धेया ।) हिमालयपर्व्वतः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

उमाचतुर्थी, स्त्री, (उमायाश्चतुर्थी । उमाजन्मतिथि-त्वादस्याः तथात्वम् । ज्यैष्ठशुक्लचतुर्थी । यथा,
"ज्यैष्ठशुक्लचतुर्थ्यान्तु जाता पूर्व्वमुमा सती ।
तस्मात् सा तत्र सम्पूज्या स्त्रीभिः सौभाग्यवृद्धये" ॥
इति संवत्सरकौमुदीधृतब्रह्मपुराणवचनम् ॥

उमापतिः, पु, (उमाया पतिः ।) शिवः । इत्यमरः ॥ (यथा, महाभारते १४ । संवर्त्तमरुत्तीये । ८ । १
"तप्यते यत्र भगवान् तपो नित्यमुमापतिः" ॥)

उमावनं, स्त्री, (उमायाः प्रीतये वनमिव ।) पुर-विशेषः । तत्पर्य्यायः । देवीकोटः २ कोटीवर्षम् ३ बाणपुरं ४ शोणितपुरं ५ । इति हेमचन्द्रः ॥

उमासुतः, पुं, (उमाया सुतः पुत्त्रः ।) कार्त्तिकेयः । इति हेमचन्द्रः ॥

उमेशः, पु, (उमाया ईशः पतिः ।) महादेवः । इति हेमचन्द्रः ॥

उम्बरः, पु, (उम् इत्यव्यक्तशब्दं वृणातीति । उम् + वृ + अच् ।) दारोर्द्ध्वकाष्ठम् । तत्पर्य्यायः । गृहावग्रहणी २ देहली ३ अम्बरः ४ उदुम्बरः ५ । इति हेमचन्द्रः । (गन्धर्व्वविशेषः । यथा, हरि-वंशे पारिजातहरणे । १२६ । १४ ।
"उम्बरस्तुम्बुरुश्चैव जगमुरन्ये च षड्गणान्" ॥)

उम्बी, स्त्री, (उम् क्रोधवर्ज्जितं स्वभावं वाति प्राप्नो-तीति । उम + वा + क । पृषोदरादित्वात् वस्य बः ।) अर्द्धपक्वाट्टानलसम्भृष्टयवगोधूममञ्जरी । अस्या गुणाः । कफप्रदत्वम् । बलकारित्वम् । लघुत्वम् । पित्तानिलापहत्वञ्च । इति भावप्रकाशः ॥

उम्भ, प श पूर्त्तौ इति कविकल्पद्रुमः । (तुदा-परं-सकं-सेट् ।) उन्भ इति च पाठः ॥

उम्यं, स्त्री, (उमाया अतस्या हरिद्राया वा क्षेत्रम् । उमा + "विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः" । ५।२।४। इति यत् ।) औमीनम् । अतसीक्षेत्रम् । हरिद्राक्षेत्रञ्च । इति भरतो द्विरूपकोषश्च ॥

उर, गतौ । सौत्रधातुरयम् । इति कविकल्पद्रुमः । (पर-सक-सेट् ।) पञ्चमस्वरादिः । उरति । इति दुर्गादासः ॥

उर, [स्] स्त्री, (इयर्त्ति । ऋ गतौ । "अर्त्तेरुच्च" ।४।१९४ इति उणादिसूत्रेण असुन् उरादेशश्च किच्च ।) वक्षःस्थलम् । इत्यमरः ॥
(यथा, रघुः १० । १० ।
"कौस्तुभाख्यमपां सारं बिभ्राणं बृहतोरसा" ।
तथा, माघे ७।२२।
"उरसि सरसपादलेखा
प्रतिमतयानुययावसप्रयान" ॥)
तत्पर्य्यायः । वक्षः २ वत्सम् ३ क्रोडम् ४ हृत् ५ भुजान्तरम् ६ । इति राजनिर्घण्टः ॥

उर [स्] त्रि, (ऋ + असुन् + उरादेशः किच्च ।) उत्तमः । श्रेष्ठः । इति मेदिनी ॥

उरःसूत्रिका, स्त्री, (उरसः सूत्रमिव । इवे प्रति-कृताविति कन् ।) मुक्तारचितहारः । इत्यमरः ॥

उरगः, पुं, । (उरसा गच्छतीति । उरसो लोपश्चेति डप्रत्ययः सकारलोपश्च ।) सर्पः इत्यमरः ॥ ("अङ्गुलीवोरगक्षता" । इति रघु १ । २८ ।) सीसकम् । इति राजनिर्घण्टः ॥

उरगस्थान, स्त्री, (उरगाणां सर्पाणां स्थानम् ।) पातालम् । इति शब्दरत्नावली ॥

उरगाशन, पु, (उरगान् सर्पान् अश्नातीति । उरग + अश् + ल्यु ।) गरुड़पक्षी । इति जटाधरः ॥ ("स्वावासभागमुरगाशनकेतुयष्ट्या" । इति माघः । ५ । १३ ॥)

उरङ्ग, पु, (उरसा गच्छतीति । उरस् + गम् + ड । निपातनात् सिद्धम् ।) उरङ्गमः । इत्यमरटीकायां रायमुकुटः ॥

उरङ्गम, पु, स्त्री, (उरसा गच्छतीति । उरस् + गम् + खच् ।) सर्पः । इति व्याकरणम् ॥

उरण, पु स्त्री, (ऋ + "अर्त्तेः क्युचुच्च" ।५।१७। इति उणादिसूत्रेण क्युच् उत्वं रपरत्वञ्च ।) मेषः । इत्यमरः ॥ (यथा, ऋग्वेदे २ । १४ । ४ । "यः उरणं जघान नवचख्वांसं नवतिञ्च बाहून्" । तथा हरिवंशे २६ । २९ ।
"उत्कृष्टावरणौ दृष्ट्वा राजा म्लेच्छागतो गृहम् ॥)
मेघः । इति उणादिकोषः ॥

उरणाक्ष, पुं, (उरणस्य मेषस्याक्षीवाक्षि यस्य । तत्तुल्यपुष्पत्वात् तथात्वम् । अक्ष्णोदर्शनादित्यच् ॥) वृक्षविशेषः । एडाँचि इति भाषा । चाकुन्दा इति केचित् । तत्पर्य्यायः । प्रपुन्नाडः २ एडगजः ३ दद्रुघ्नः ४ चक्रमर्द्दकः ५ पद्माटः ६ । इत्यमरः ॥ उर-णाख्यः ७ प्रपुन्नडः ८ प्रपुनाडः ९ । इति तट्टीका ॥ (अस्य गुणादयः एडगजशब्दे ज्ञातव्याः ॥)

उरणाक्षक, पु, (उरणाक्ष + स्वार्थे कन् ।) उरणाक्ष-वृक्षः । इति शब्दरत्नावली ॥

उरणाख्यः, पु, (उरणस्य मेषस्य आख्या इव आख्या यस्य ।) दद्रुघ्नवृक्षः । इत्यमरटीकायां स्वामी ॥

उरणाख्यकः, पु, (उरणाख्य + स्वार्थे कन् ।) दद्रुघ्न वृक्षः । इति शब्दरत्नावली ॥

उरभ्र, पु, स्त्री, (उरु कठोरं भ्रमति । भ्रमु चलने । अन्येभ्योऽपीति डः । पृषोदरादित्वात् साधुः ।) मेषः । इत्यमरः ॥ (मेषशब्देऽस्य गुणादिकं ज्ञेयम् ॥)

उररी, व्य, (व्ये + बाहुलकात् ररीक् । सम्प्रसारणञ्च ।) स्वीकारः । विस्तारः । इत्यमरः । (यथा, साहित्य दर्पणे २य परिच्छेदे । "इति काल्पनिकं भेद-मुररीकृत्य" ॥)

उररीकारः, पु, (उररीकरणम् । उररी + कृ + घञ् ।) अङ्गीकारः । इति जटाधरः ॥

उररीकृत, त्रि, (उररी + कृ + क्त ।) अङ्गीकृतः । विस्तृतः । इत्यमरः ॥

उरश्छदः पु, (उरो वक्षःस्थलं छाद्यतेऽनेनेति । उरस + छद + घ ।) कवचः । इत्यमरः ॥ (रामायणे ३ काण्डे । 'काञ्चनोरश्छदाश्चेमे पिशाचवदना खराः ॥)

उरसिजः, पु, (उरसि वक्षःस्थले जायते । उरस् + जन् + ड । सप्तम्या अलुक् ।) स्त्रीस्तनः । इति हलायुधः ॥ (यथा, रामायणे ।)
"परिपस्पृशिरे चैन पीनैरुरसिजैर्मुहुः" ॥)

उरसिलः, त्रि, (प्रशस्तं अतिशयितं वा उरो वक्षो यस्य । उरस् + इलच् ।) प्रशस्तवक्षोयुक्तः । इत्य-मरः ॥

उरस्कटः, पु, (उरः कथ्यतेऽनेन । उरस् + कट् + क ।) बालयज्ञोपवीतकम् । बुकवाछाड़ इति ख्यातम् । पञ्चवटश्च तत्पर्य्यायः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

उरस्त्राण, स्त्री, (उरसस्त्राणं भवत्यस्मात् ।) वक्ष-स्त्राणकवचम् । तत्पर्य्यायः । नागोदरम् २ । इति हारावली ॥

उरस्यः, त्रि, (उरसा निर्म्मितः । उरस् + यत् ।) औरसजातः । इत्यमरः ॥

उरस्वान्, [त्] त्रि, (प्रशस्तमतिशयितं वा उरो वक्षःस्थलं यस्य । उरस् + मतुप् + मस्य वः ।) प्रशस्तवक्षोयुक्तः । तत्पर्य्यायः । उरसिलः २ । इत्यमरः ॥

उरी, व्य, (वयतेरीक् बाहुलकात् सम्प्रसारणञ्च ।) स्वीकारः । विस्तारः । इत्यमरः ॥
(यथा रघौ १५ । ७० ।
"उरीकृत्यात्मनो देहं राज्यमस्मै न्यवेदयत्" ॥)

उरीकृत, त्रि, (उरी + कृ + क्त ।) अङ्गीकृतः । वि-स्तृतः । इत्यमरः ॥

उरु, त्रि, (ऊर्णोति । ऊर्णु + "महति ह्रस्वश्च",

४।१।३२। इति उणादिसूत्रेण कु गुणाभावो ह्रस्वश्च।) महान्। वड इति भाषा। तत्पर्य्यायः। बड्रम् २ विपुलम् ३ विशङ्कटम् ४ पृथु ५ बृहत् ६ विशालम् ७ पृथुलम् ८ महत् ९। इत्यमरः॥ विस्तीर्णम् १० विकटम् ११। इति जटाधरः॥ (यथा, महाभारते १। सौपर्णे। २१।१८।
"विस्तीर्णं दृष्टवांस्तुरम्बरप्रकाशं
तेऽगाधमिधिमुरुमम्भसामनन्तम्"।
बहुलम्। यथा, ऋग्वेदे १। २९ "तुविजाता उरुक्षया"। "उरुक्षयौ बहुनिवासौ" इति भाष्यम्॥)

उरुकाल, पुं, (उरुर्महान् कालः कृष्णवर्णः परिणामे यस्य। पाकवशादस्याभ्यन्तरं कृष्णवर्णं जायते अतस्तथात्वम्।) महाकालतता। इति रत्नमाला॥ माकाल फलेर गाछ इति भाषा। (अस्य पर्य्यायो यथा,—
'उरुकालो महाकाल किम्पाकः काकमर्द्दकः"। इति च तत्रैव। अस्य गुणाश्च महाकालशब्दे ज्ञेयाः॥)

उरुकालक, पुं, (उरुकाल + स्वार्थे कन्।) महाकालतता। इति त्रिकाण्डशेषः॥

उरुगाय, पुं, (उरुभिर्महद्भिर्गीयते यः। उरु + गै + घञ्।) श्रीकृष्णः। (यथा, श्रीभागवते २। ३। २०।
"जिह्वा सती दार्द्दुरिकेव सूत
न चोपगायत्युरुगायगाथाः"।
विस्तीर्णा गतिः। यथा, कठोपनिषदि। २। ११। "स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः"। उरुगायं विस्तीर्णां गतिम्। इति भाष्यम्।)

उरुरी, अ, उररी। इति भरतद्विरूपकोषः॥

उरुवुक, पुं, एरण्डवृक्षः। इत्यमरटीकायां रायमुकुटः॥

उरुवूक, पुं, (उरु महान्तं वायतीति। उरु + वै + उलूकादयश्चेति ऊकः।) एरण्डवृक्षः। इत्यमरः॥ रक्तैरण्डः। इति राजनिर्घण्टः॥
("लघु भिन्नशकृत्तिक्त लाङ्गलक्युरुवूकयोः"।
इति चरके सूत्रस्थाने २७ अध्यायः॥)

उरुव्यचा, [स्] पुं, (उरु महान्तं विचतीति। उरु + व्यच् + असुन्।) राक्षसः। इत्युणादिकोषः॥ (अतिव्यापके, त्रि, यथा ऋग्वेदे ३। ५०। १ "आ उरुव्यचा पृणतामेभिरन्नैः॥)

उरोज, पुं, (उरसि वक्षःस्थले जायते। उरस् + जन् + ड।) स्तनः। इति हेमचन्द्रः॥

उर्ज्जित, त्रि, (उर्ज्ज + क्त।) वर्द्धितम्। इति श्रीभागवतम्॥ (प्रख्यातम्। यथा, रघुः ७। ३८।
"शाखाचरैरेव परस्परस्य
नामोर्ज्जितं चापभृतः शशंसुः"।
उर्ज्जितं प्रख्यातम् इति तट्टीका॥)

उर्णनाभ, पुं, (उर्णेव सूत्रं नाभौ गर्भे यस्य। समासे ह्रस्वः।) मर्कटकः। इति शब्दरत्नावली॥ माकड्सा इति भाषा॥

उर्णा, स्त्री, मेषादिलोम। भ्रूयुगमध्यावर्त्तः। इत्यमरटीकायां रमानाथः॥ ("ललाटपट्टे नवनलिननालभङ्गतन्वीयमुर्णा परिस्फुरति"। इति कादम्बरी॥)

उर्द्द, ङ परिमाणे। क्रीडायाम्। स्वादे। इति कविकल्पद्रुमः॥ (भ्वादि-आत्म सक-क्रीडायां, अक-सेट्।) ह्रस्वादीरेफमध्यः। दीर्घस्य नित्यत्वात् दीर्घादिरिति कश्चित्। ङ उर्द्दते कनकं वणिक्। इति दुर्गादासः॥

उर्द्र, पुं, (उर्द्द + र।) जलाखुः। इति शब्दरत्नावली॥ उद्बिड़ाल इति भाषा।

उर्व्व, ई, हिंसे। इति कविकल्पद्रुमः॥ (भ्वादि-पर-सक-सेट्।) ह्रस्वादिः। र्व्वोरुपधाया दीर्घ इति दीर्घे ऊर्व्वति। क्विपि राल्लोपः इति वलोपे ऊः उरौ उरः। एवं सर्व्वत्र। ई ऊर्णः। इति दुर्गादासः॥

उर्व्वटः, पुं, (उरुर्महान् अटोऽटनं यस्य।) वत्सरः। इति त्रिकाण्डशेषः॥

उर्व्वरा, स्त्री, (ऋच्छतीति। ऋ + अच् + टाप्। यद्वा उर्व्व्यते उर्व्व + घ। यद्वा उर्व्वं राति। उर्व्व + रा + क्विप्।) सर्व्वशस्याढ्या भूमिः। (यथा अथर्व्ववेदे १०। ६। ३३। "यथा वीजमुर्व्वरायां कृष्टे कालेन रोहति"।) भूमीमात्रम्। इति हेमचन्द्रः॥ (अप्सरोभेदः। यथा काशीखण्डे।
"कलानिधिर्गुणनिधिः कर्पूरतिलकोर्व्वरा"॥)

उर्व्वशी, स्त्री, (उरून् महतोऽपि अश्नुते व्याप्नोति वशीकरोतीति यावत्। यद्वा ऊरुं नारायणस्य महर्षेरूरुप्रदेशं अश्नुते योनित्वेन व्याप्नोतीति। उरु + अश् + क। गौरादित्वात् ङीष्।) स्वनामख्यातस्वर्गवेश्या। इत्यमरः॥ तस्या उत्पत्तिर्हरिवंशे। नारायणोरुं निर्भिद्य सम्भूता वरवर्णिनी। मनीषादित्वात् ह्रस्वादिः॥
(अस्या उत्पत्तिकथा उक्ता भागवते ११।४।६-१६। यथा,—
"धर्म्मस्य दक्षदुहितर्य्यजनिष्ट मूर्त्त्यां
नारायणो नर ऋषिप्रवरः प्रशान्तः।
नैष्कर्म्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म्म
योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्य्यनिषेविताङ्घ्रिः॥
इन्द्रो विशङ्क्य मम धाम जिहीर्षतीति
कामं न्ययुङ्क्त सगणं स वदर्य्युपाख्यम्।
गत्वाप्सरोगणवसन्तसुमन्दवातैः
स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः॥
विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः
प्राह प्रहस्य गतविस्मय एजमानान्।
मा भैष्ट भो मदनमारुतदेववध्वो
गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम्॥
इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेव। देवाः
सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः।
नैतत् विभो त्वयि परे विकृते विचित्रं
स्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे॥
त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः
स्वौको विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते।
नान्यस्य बर्हिषि बलीन् ददतः स्वभागान्
धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि॥
क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्वशैश्ना-
नस्मानपारजलधीनतितीर्य्य केचित्॥
क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गो-
र्मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति।
इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः।
दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्व्वतीर्विभुः॥
ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणीः।
गन्धेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्य्यहतश्रियः॥
तानाह देवदेवेशः प्रणतान् प्रहसन्निव।
आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम्॥
ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरवन्दिनः।
उर्व्वशीमप्सरःश्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः॥
इन्द्रायानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम्।
ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः"॥
पुराणान्तरेषु ऋषिप्रवरोऽयं नारायणो निजोरुदेशं निर्भिद्य अप्सरःश्रेष्ठामेनामुर्व्वशीं देवगणेभ्यो ददौ इति दृश्यते॥

इयं हि चन्द्रवंशावतंसे बुधपुत्त्रे पुरूरवसि राजनि बद्धप्रणया बहुकालं तेन सह रेमे। एतत्कथा उक्ता हरिवंशे २६ अध्याये॥ यथा,

जनमेजय उवाच।

"गन्धर्व्वी उर्व्वशी देवी राजानं मानुषं कथम्।
देवानुत्सृज्य सम्प्राप्ता तन्मे ब्रूहि बहुश्रुत॥

वैशम्पायन उवाच।

ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुषं समपद्यत।
ऐलन्तु सा वरारोहा समयात् समुपस्थिता॥
आत्मनः शापमोक्षार्थं समयं सा चकार ह।
अनग्नदर्शनञ्चैव सकामायाश्च मैथुनम्॥
द्वौ मेषौ शयनाभ्याशे सदा बद्धौ च तिष्ठतः।
घृतमात्रं तथाहारः कालमेकन्तु पार्थिव॥
यद्येष समयो राजन् यावत्कालञ्च ते दृढः।
तावत्कालन्तु वत्स्यामि त्वत्तः समय एष नः॥
तस्यास्तं समयं सर्व्वं स राजा समपालयत्।
एवं सा वसते तत्र पुरूरवसि भामिनी॥
वर्षाण्येकोनषष्टिन्तु तद्भक्ता शापमोहिता।
उर्व्वश्यां मानुषस्थायां गन्धर्व्वाश्चिन्तयान्विताः॥

गन्धर्व्वा ऊचुः।

चिन्तयध्वं महाभागा यथा सा तु वराङ्गना।
समागच्छेत् पुनर्द्देवानुर्व्वशी स्वर्गभूषणम्॥
ततो विश्वावसुर्नाम तत्राह वदतां वरः।
मया तु समयस्ताभ्यां क्रियमाणः श्रुतः पुरा॥
व्युत्क्रान्तसमया सा वै राजानं त्यक्ष्यते यथा।
तदहं वेद्मि शेषेण यथा मोक्ष्यत्यसौ नृपम्॥
ससहायो गमिष्यामि युष्माकं कार्य्यसिद्धये।
एवमुक्त्वा गतस्तत्र प्रतिष्ठानं महायशाः॥
निशायामथ चागम्य मेषमेकं जहार सः।
मातृवत् वर्त्तते सा तु मेषयोश्चारुहासिनी॥
गन्धर्व्वागमनं ज्ञात्वा शापान्तञ्च यशस्विनी।
राजानमब्रवीत्तत्र पुत्त्रो मे ह्रियतेति सा॥
एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नो नैवोदतिष्ठत।
नग्नं मां द्रक्ष्यते देवी समयो वितथो भवेत्॥
ततो भूयस्तु गन्धर्व्वा द्वितीयं मेषमाददुः।

द्वितीये तु गते मेषे एवं देव्यब्रवीदिदम् ॥
पुत्रो मे ह्रियते राजन्ननाथाया इव प्रभो ।
एवमुक्तस्तदोत्थाय नग्नो राजा प्रधावितः ॥
मेषयोः पदमन्विच्छन् गन्धर्व्वैर्विद्युदप्यथ ।
उत्पादिता सुमहती ययौ तद्भवनं महत् ॥
प्रकाशितं वै सहसा ततो नग्नमवैक्षत ।
नग्नं दृष्ट्वा तिरोभूता साप्सरा कामचारिणी ॥
तिरोभूतान्तु तां दृष्ट्वा गन्धर्व्वा ह्यगमन्दिवम् ॥
उत्सृष्टावुरणौ दृष्ट्वा राजा गृह्यागतो गृहम् ।
अपश्यन्नुर्व्वशीं तत्र विललाप सुदुःखितः ॥
चचार पृथिवीञ्चापि मार्गमाणा इतस्ततः ।
अथापश्यत् स तां राजा कुरुक्षेत्रे महाबलः ॥
प्लक्षतीर्थे पुष्करिण्यां हैमवत्यां समाप्लुताम् ।
क्रीडन्तीमप्सरोभिश्च पञ्चभिः सह शोभनाम् ॥
तां क्रीडन्तीं ततो दृष्ट्वा विललाप सुदुःखितः ।
सा चापि तत्र तं दृष्ट्वा राजानमविदूरतः ॥
उर्व्वशी ताः सखीः प्राह स एष पुरुषोत्तमः ।
यस्मिन्नहमवात्सं वै दर्शयामास तं नृपम् ॥
समाविग्नास्तु ताः सर्व्वाः पुनरेव नराधिप ।
जायेहो तिष्ठ मनसा घोरे वचसि तिष्ठ ह ॥
एवमादीनि सूक्तानि परस्परमभाषताम् ।
उर्व्वशी चाब्रवीदेवं सगर्भाहं त्वया विभो ॥
संवत्सरात् कुमारास्ते भविष्यन्ति न संशयः ।
निशामेकाञ्च नृपते निर्व्वत्स्यसि मया सह ॥
हृष्टो जगाम राजाथ स्वपुरं सुमहायशाः ।
गते संवत्सरे भूय उर्व्वशी पुनरागमत् ॥
उषितश्च तया सार्द्धमेकरात्रं महायशाः" ॥ * ॥)
(नदीभेदः । उर्व्वशीतीर्थं । यथा, महाभारते १३।
आङ्गिरसतीर्थयात्रायां २५ । ४४ ।
"उर्व्वशीं कृत्तिकायोगे गत्वा चैव समाहितः ।
लौहित्ये विधिवत् स्नात्वा पुण्डरीकफलं लभेत्" ॥)

उर्व्वशीरमणः, पुं, (उर्व्वश्याः स्वर्व्वेश्यायाः रमणः प्रियः ।) उर्व्वशीपतिः । स तु चन्द्रवंशीयराजविशेषः । तत्पर्य्यायः । पुरूरवाः २ बौधः ३ ऐलः ४ । इति हेमचन्द्रः ॥ (अस्य विवरणन्तु उर्व्वशीशब्दे द्रष्टव्यम् ॥)

उर्व्वशीवल्लभः पुं, (उर्व्वश्याः वल्लभः पतिः ।) ऐलनृपतिः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

उर्व्वारुः, पुं, (उरु+ऋ+उण् ।) इर्व्वारुः । इति भरतो द्विरूपकोषश्च ॥ काँकुड़ इति भाषा । (कर्कटीशब्देऽस्य गुणादयो ज्ञातव्याः ॥)

उर्व्वी, स्त्री, (उर्णोति इति । ऊर्णुञ्+"महति ह्रस्वश्च" ।१।३१ । उणादिसूत्रेण कुः नुलोपो ह्रस्वश्च । वोतो गुणवचनादिति ङीष् ।) पृथिवी । इत्यमरः ॥ ("हिरण्मयोर्व्वीरुहवल्लितन्तुभिः" । इति माघे १ । ७ । तथा, रघुः । १ । ३० ।
"अनन्यशासनामुर्व्वीं शशासैकपुरीमिव" ॥)

उल दाहे । सौत्रधातुरयम् । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (पर-सकं-सेट् ।) उल्का । उलपम् । इति दुर्गादासः ॥

उलपः, पुं, (वलतीति । वल+"विटपपिष्टपविशिपोलपाः" । ३ । १०५ । इति उणादिसूत्रेण कपः सम्प्रसारणञ्च ।) विस्तीर्णा लता । सा तु त्रपुषीद्राक्षाताम्बूल्यादि । तत्पर्य्यायः । वीरुत् २ गुल्मिनी ३ । इत्यमरः ॥ प्रतानः ४ । इति जटाधरः ॥ प्रतानिनी ५ वीरुधा ६ वरुत् ७ । इति शब्दरत्नावली ॥ मेदिनीमते क्लीवमपि । तृणविशेषः । इति विश्वमेदिन्यौ ॥ उलुखड इति भाषा ॥

उलिन्दः, पुं, (वल+किन्द सम्प्रसारणञ्च ।) देशविशेषः । इत्युणादिकोषः ॥

उलुपः, पुं, स्त्री, गुल्मिनी । शाखापत्रप्रचययुक्तलता । इत्यमरटीकासारसुन्दरी काश्चिन्मेदिनी च ॥

उलुपः, पुं, तृणविशेषः । इति केचिद्विश्वमेदिन्यौ ॥ उलुखड इति भाषा ।

उलुपी, [न्] पुं, (उलुप इवाकृतिर्विद्यते यस्य । उलुप+इनि ।) शिशुकः । इत्यमरः ॥ तदाकृतिमत्स्यः । इति शब्दरत्नावली ॥

उलूकं, क्ली, (वल+"उलूकादयश्च" ।४।४१ । इति उणादिसूत्रेण निपातनात् ऊकः सम्प्रसारणञ्च ।) तृणविशेषः । उलुखड इति भाषा । तत्पर्य्यायः । सूच्यग्रः २ स्थूलकः ३ दर्भः ४ जूर्णाख्यः ५ खरच्छदः ६ उलपः ७ उलुपः ८ । इति रत्नमालादयः ॥

उलूकः, पुं, (उचतीति, उच समवाये, उलूकादय इति साधु, यद्वा वलते, उलूकादित्वात् वले सम्प्रसारणम् ऊकश्च ।) पेचकपक्षी । इत्यमरः ॥ तत्पर्य्यायः । तामसः २ घूकः ३ दिवान्धः ४ कौशिकः ५ कुशिः ६ नक्तञ्चरः ७ निशाटः ८ काकारिः ९ घोरदर्शनः १० । इति राजनिर्घण्टः ॥ ("त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः" । इति माघे ११ । ६४ । तथा, मनुः ११ । १३१ ।
"श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतञ्चरेत्" ॥)
इन्द्रः । ("उलूकाविन्द्रपेचकौ" । इत्युणादिवृत्तिः । ४ । ४१ ।) भारतयोधी । स च शकुनिपुत्रः । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा, महाभारते ।
"आहूयोपह्वरे राजन्नुलूकमिदमब्रवीत् ।
उलूक गच्छ कैतव्य ! पाण्डवान् सहसोमकान्" ॥
विश्वामित्रपुत्रः । यथा, भारते १३ । ४ । ५१ ।
"उलूकोऽथ मुद्गलश्च तथर्षिः सैन्धवायनः" ।)
उलूकदेशवासिनि त्रि । यथा, महाभारते २ । २७ । ११ ।
"उलूकानुत्तरांश्चैव तांश्च राज्ञः समानयत्" ॥)

उलूकी, स्त्री, ताम्रायाः सुता शुकी तस्याः कन्या । यथा,—विष्णुपुराणे १ अंशे २१ । १४—१६ ।
"षट् सुतास्तु महासत्त्वास्ताम्रायाः परिकीर्त्तिताः ।
शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी-शुचि-गृध्रिकाः ॥
शुकी शुकानजनयत् उलूकी प्रत्युलूककान् ।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान् गृध्रांश्च गृध्यपि ॥
शुच्यौदकान् पक्षिगणान् सुग्रीवी तु व्यजायत ।
अश्वान् उष्ट्रान् गर्द्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्त्तितः ॥
"ताम्रायाः वंशमाह षडिति त्रिभिः । सुताः कन्याः ता एवाह शुकीति । सुग्रीवी च शुचिश्च गृध्रिका च ताः । उलूकप्रत्युलूककान् तत्प्रतिपक्षान् काकांश्च । उलूकीति पाठेऽपि उलूकी प्रत्युलूककांश्चैवाजनयदित्यर्थः न पुनरुलूकीसंज्ञा अन्या अनिर्द्दिष्टत्वात् । शुकी शुकानजनयत् उलूकप्रत्युलूककानिति मात्स्योक्तेः । शुच्यौदकान् शुचिरेव शुची सा औदकान् जलजान् पक्षिगणान् व्यजायत । सुग्रीवी तु अश्वादीन् व्यजायत इत्यन्वयः । ताम्रायाः वंशः परिकीर्त्तित इत्युपसंहारः" । इति तट्टीकायां श्रीधरस्वामी ॥

उलूखलं, क्ली, (ऊर्द्ध्वं खमुलूखम् । पृषोदरादित्वात् साधुः । उलूखं लाति गृह्णातीति । आतोनुपेति कः ।) उदूखलम् । इत्यमरः ॥ (यथा, मनुः ३ । ८८ ।
"वनस्पतिभ्य इत्येवं मुषलोलूखले हरेत्" ।
("शृते पयसि मृद्वीयादापोथ्योलूखले ततः" ।
इति चरके चिकित्सास्थाने दशमेऽध्याये ॥) गुग्गुलुः । इति भरतो द्विरूपकोषश्च ॥

उलूखलकं, क्ली, (उलूखल+स्वार्थे कः ।) गुग्गुलुः । इत्यमरः ॥ (उलूखलं कायति शब्दयति यः इति व्युत्पत्त्या वाच्यलिङ्गः । विद्वान् । यथा, ऋग्वेदे १ । २८ । ५ ।
"यच्चिद्धि त्वं गृहे गृह उलूखलक युज्यसे" ।
"हे उलूखलक हे विद्वन्" इति भाष्यम् ।)

उलूतः, पुं, (उलति छिनत्ति यः । उल्+बाहुलकात् । ऊतच् ।) अजगरसर्पः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

उलूपी, [न्] पुं, (उ विस्मयजनकं रूपमस्यास्तीति । इनि । रलयोरैक्यम् ।) शिशुकः । इत्यमरः ॥ उपलइति ख्यातः अतिचञ्चलमत्स्यः । शिशुमाराकृतिर्मत्स्यभेदः । इति कलिङ्गादयः ॥ शोशु इति ख्यातः मत्स्यविशेषः । इत्यन्ये ॥ भाँगाल इति ख्यातः । इत्येके ॥ शिशुमार एव उच्यते । इति सर्व्वस्वम् ॥ तथा च रत्नकोषादौ ॥ "चुलुपी शिशुमारः स्यादुलूपी शिशुकस्तथा" । इत्यमरटीकायां भरतः ॥

उलूपी, स्त्री, कौरव्यनामनाग-कन्या सा तु अर्ज्जुनपत्नी । (तत्कथा महाभारते आदिपर्व्वणि । २१५ अध्याये उक्ता । यथा,—

उलूप्युवाच ।

"ऐरावतकुले जातः कौरव्यो नाम पन्नगः ।
तस्यास्मि दुहिता राजन् उलूपी नाम पन्नगी ॥
साहं त्वामभिषेकार्थमवतीर्णां समुद्रगाम् ।
दृष्ट्वैव पुरुषव्याघ्र कन्दर्पेणाभिमूर्च्छिता ॥
तां मामनङ्गग्लपितां त्वत्कृते कुरुनन्दन ! ।
अनन्यां नन्दयस्वाद्य प्रदानेनात्मनोऽनघ" ! ॥

अर्ज्जुन उवाच ।

ब्रह्मचर्य्यमिदं भद्रे ! मम द्वादशवार्षिकम् ।
धर्म्मराजेन चादिष्टं नाहमस्मि स्वयंवशः ॥
तव चापि प्रियं कर्त्तुमिच्छामि जलचारिणि ! ।
अनृतं नोक्तपूर्व्वञ्च मया किञ्चन कर्हिचित् ।
कथञ्च नानृतं मे स्यात् तव चापि प्रियं भवेत् ॥
न च पीड्येत मे धर्म्मस्तथा कुर्य्यां भुजङ्गमि ! ॥

उलूप्युवाच ।

जानाम्यहं पाण्डवेय ! यथा चरसि मेदिनीम् ।
यथा च ते ब्रह्मचर्य्यमिदमादिष्टवान् गुरुः ॥
परस्परं वर्त्तमाना द्रुपदस्यात्मजां प्रति ।

यो नोऽनुप्रविशेन्मोहात् स वै द्वादशवार्षिकम् ॥
वने चरेत् ब्रह्मचर्य्यमिति वः समयः कृतः ।
तदिदं द्रौपदीहेतोरन्योन्यस्य प्रवासनम् ॥
कृतवांस्तत्र धर्म्मार्थमत्र धर्म्मो न दुष्यति ।
परित्राणञ्च कर्त्तव्यमार्त्तानां पृथुलोचन ! ॥
कृत्वा मम परित्राणं तव धर्म्मो न लुप्यते ।
यदि वाप्यस्य धर्म्मस्य सूक्ष्मोऽपि स्यात् व्यतिक्रमः ॥
स च ते धर्म्म एव स्यात् दत्त्वा प्राणान् ममार्ज्जुन ! ।
भक्ताञ्च भज मां पार्थ ! सतामेतन्मतं प्रभो ! ॥
न करिष्यसि चेदेवं मृतां मामुपधारय ।
प्राणदानान्महाबाहो चर धर्म्ममनुत्तमम् ॥
शरणञ्च प्रपन्नास्मि त्वामद्य पुरुषोत्तम ! ।
दीनाननाथान् कौन्तेय ! परिरक्षसि नित्यशः ॥
साहं शरणमभ्येमि रोरवीमि च दुःखिता ।
याचे त्वाञ्चाभिकामाहं तस्मात्कुरु मम प्रियम् ॥
स त्वमात्मप्रदानेन सकामां कर्त्तुमर्हसि ॥
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु कौन्तेय पन्नगेश्वरकन्यया ।
कृतवांस्तत्तथा सर्व्वं धर्म्ममुद्दिश्य कारणम् ॥
स नागभवने रात्रिं तामुषित्वा प्रतापवान् ।
उदितेऽभ्युत्थितः सूर्य्ये कौरव्यस्य निवेशनात् ॥
आगतस्तु पुनस्तत्र गङ्गाद्वारं तया सह ।
परित्यज्य गता साध्वी उलूपी निजमन्दिरम् ॥
दत्त्वा वरमजेयत्वं जले सर्व्वत्र भारत ! ।
साध्या जलचरा सर्व्वे भविष्यन्ति न संशयः' ॥*॥)

**उल्का,** स्त्री, (ओषतीति । उष दाहे "शुक्रवल्कोल्काः" ३।४२। इति उणादिसूत्रेण क-प्रत्ययात् साधुः ।) तेजःपुञ्जः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥ अग्निशिखा ॥ अग्निः । इत्युणादिकोषः ॥ (यथा,
"तुलाराशिं गते भानौ अमावस्या नराधिप ! ।
स्नात्वा देवान् पितॄन् भक्त्या सम्पूज्याथ प्रणम्य च ॥
कृत्वा तु पार्व्वणश्राद्धं दधिक्षीरगुडादिभिः ।
ततोऽपराह्णसमये घोषयेन्नगरे नृप ! ॥
लक्ष्मीः सम्पूज्यतां लोका उल्काभिश्चापि वेष्ट्यताम्" ।
इति तिथितत्त्वे अमावस्याप्रकरणे ।) आकाशात् पतिताग्निः । इति रायमुकुटादयः ॥
("तस्मिन्वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः" ।
इति मेघदूते पूर्व्वमेघे ५४ श्लोकः ।
"उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च"
इति मनुः । १ । ३८ ।) अस्या लक्षणम् ।
"दृश्यच्छिखा च सूक्ष्माग्रा रक्तनीलशिखोज्ज्वला ।
पौरुषीयप्रमाणेन उल्का नानाविधा स्मृता" ॥
इति काश्यपः ॥
(अस्याः कारणमाह गर्गसंहितायाम् ।
"अतिलोभादसत्याद्वा नास्तिक्याद्वाप्यधर्म्मतः ।
नरापचारात् नियतमुपसर्गः प्रवर्त्तते ॥
ततोऽपराधात् नियतमपवर्ज्जन्ति देवताः ।
ताः सृजन्त्यद्भुतांस्तांस्तु दिव्यनाभसभूमिजान् ॥
तएव त्रिविधा लोके उत्पाता देवनिर्म्मिताः ।
विचरन्ति विनाशाय रूपैः सम्बोधयन्ति च" ॥
अस्या लक्षणादिकमुक्तं वृहत्संहितायां ३३ अध्याये । तद्यथा,—
"दिवि भुक्तशुभफलानां पततां रूपाणि यानि तान्युल्काः ।
धिष्ण्योल्काशनिविद्युत्तारा इति पञ्चधा भिन्नाः ॥ १ ॥
उल्का पक्षेण फलं तद्वद्धिष्ण्याशनिस्त्रिभिः पक्षैः ।
विद्युदहोभिः षड्भिस्तद्वत्तारा विपाचयति ॥ २ ॥
तारा फलपादकरी फलार्द्धदात्री प्रकीर्त्तिता धिष्ण्या ।
तिस्रः सम्पूर्णफला विद्युदथोल्काशनिश्चेति ॥ ३ ॥
अशनिः स्वनेन महता नृगजाश्वमृगाश्मवेश्मतरुपशुषु ।
निपतति विदारयन्ती धरातलं चक्रसंस्थाना ॥ ४ ॥
विद्युत्सत्त्वत्रासं जनयन्ती तटतटस्वना सहसा ।
कुटिलविशाला निपतति जीवेन्धनराशिषु ज्वलिता ॥ ५ ॥
धिष्ण्या कृशाल्पपुच्छा धनूंषि दश दृश्यतेऽन्तराभ्यधिकम् ।
ज्वलिताङ्गारनिकाशा द्वौ हस्तौ सा प्रमाणेन ॥ ६ ॥
तारा हस्तं दीर्घा शुक्ला ताम्राब्जतन्तुरूपा वा ।
तिर्य्यगधश्चोर्द्ध्वं वा याति वियत्युह्यमानेव ॥ ७ ॥
उल्का शिरसि विशाला निपतन्ती वर्द्धते प्रतनुपुच्छा ।
दीर्घा भवति च पुरुषं भेदा बहवो भवन्त्यस्याः ॥ ८ ॥
प्रेतप्रहरणखरकरभनक्रकपिदंष्ट्रिलाङ्गलमृगाभाः ।
गोधाहिधूमरूपाः पापा या चोभयशिरस्का ॥ ९ ॥
ध्वजझषकरिगिरिकमलेन्दुतुरगसन्तप्तरजतहंसाभाः ।
श्रीवत्सवज्रशङ्खस्वस्तिकरूपाः शिवसुभिक्षाः ॥ १० ॥
अम्बरमध्याद्बह्व्यो निपतन्त्यो राजराष्ट्रनाशाय ।
बम्भ्रमति गगनोपरि विभ्रममाख्याति लोकस्य ॥ ११ ॥
संस्पृशती चन्द्रार्कौ तद्विसृता वा सभूप्रकम्पा च ।
परचक्रागमनृपभयदुर्भिक्षावृष्टिभयजननी ॥ १२ ॥
पौरेतरघ्नमुल्कापसव्यकरणं दिवाकरहिमांश्वोः ।
उल्का शुभदा पुरतो दिवाकरविनिःसृता यातुः ॥ १३ ॥
शुक्ला रक्ता पीता कृष्णा चोल्का द्विजादिवर्णघ्नी ।
क्रमशश्चैतान् हन्युर्मूर्द्धोरःपार्श्वपुच्छस्थाः ॥ १४ ॥
उत्तरदिगादिपतिता विप्रादीनामनिष्टदा रूक्षा ।
ऋज्वी स्निग्धा खण्डा नीचोपगता च तद्वृद्ध्यै ॥ १५ ॥
श्यामा वारुणनीलासृग्दहनासितभस्मसन्निभा रूक्षा ।
सन्ध्या दिनजा वक्रा दलिता च परागमभयाय ॥ १६ ॥
नक्षत्रग्रहघाते तद्भक्तीनां क्षयाय निर्द्दिष्टा ।
उदये घ्नती रवीन्दू पौरेतरमृत्यवेऽस्ते वा ॥ १७ ॥
भाग्यादित्यधनिष्ठामूलेषूल्काहतेषु युवतीनाम् ।
विप्रक्षत्त्रियपीडा पुष्यानिलविष्णुदैवेषु ॥ १८ ॥
ध्रुवसौम्येषु नृपाणामुग्रेषु सदारुणेषु चौराणाम् ।
क्षिप्रेषु कलाविदुषां पीडा साधारणे च हते ॥ १९ ॥
कुर्व्वन्त्येताः पतिता देवप्रतिमासु राजराष्ट्रभयम् ।
शक्रोपरि नृपतीनां गृहेषु तत्स्वामिनां पीडाम् ॥ २० ॥
आशाग्रहोपघाते तद्देशानां खले कृषिरतानाम् ।
चैत्यतरौ सम्पतिता सत्कृतपीडां करोत्युल्का ॥ २१ ॥
द्वारि पुरस्य पुरक्षयमथेन्द्रकीले जनक्षयोऽभिहितः ।
ब्रह्मायतने विप्रान् विनिहन्याद्गोमिनो गोष्ठे ॥ २२ ॥
क्ष्वेडास्फोटितवादितगीतोत्क्रुष्टस्वना भवन्ति यदा ।
उल्कानिपातसमये भयाय राष्ट्रस्य सनृपस्य ॥ २३ ॥
यस्याश्चिरं तिष्ठति खेऽनुषङ्गो दण्डाकृतिः सा नृपतेर्भयाय । या चोह्यते तन्तुधृतेव खस्था या वा महेन्द्रध्वजतुल्यरूपा ॥ २४ ॥
श्रेष्ठिनः प्रतीपगा तिर्य्यगा नृपाङ्गनाः ।
हन्त्यधोमुखी नृपान् ब्राह्मणानथोर्द्ध्वगा ॥ २५ ॥
बर्हिपुच्छरूपिणी लोकसङ्क्षयावहा ।
सर्पवत् प्रसर्पिणी योषितामनिष्टदा ॥ २६ ॥
हन्ति मण्डलापुरं छत्रवत्पुरोहितम् ।
वंशगुल्मवत् स्थिता राष्ट्रदोषकारिणी ॥ २७ ॥
व्यालसूकरोपमा विस्फुलिङ्गमालिनी ।
खण्डशोऽथ वा गता सस्वना च पापदा ॥ २८ ॥
सुरपतिचापप्रतिमा राज्यं नभसि विलीना ज-
दान् हन्ति । पवनविलोमा कुटिला याता न भव-
प्रस्ता विनिवृत्ता वा ॥ २९ ॥
अभिभवति यतः पुरं बलं वा भवति भयं तत
एव पार्थिवस्य । निपतति च यया दिशा प्रदीप्ता
जयति रिपूनचिरात् तया प्रयातः" ॥ ३० ॥)

**उल्कामुखी,** स्त्री, (उल्का अग्निशिखावत् तेज मुखे यस्याः ।) जन्तुविशेषः । खेँकशियालि इति भाषा । तत्पर्य्यायः । शृगालिका २ लोमालिका ३ दीप्तजिह्वा ४ किखि ५ । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

**उल्मुक,** क्ली, (ओषतीति । उष दाहे + उल्मुकदर्व्वीति निपातनात् धातोः मस्य लः मुकप्रत्ययश्च ।) अङ्गारः । इत्यमरः ॥ (यथा, शतपथब्राह्मणे ६ । २ । १ ।
"अन्वाहार्य्यपचनादुल्मुकमादाय" ।) वृष्णिवंशीयराजा । यथा, महाभारते २ । निमन्त्रितराजागमने ३४ । १६ ।
"उल्मुको निशठश्चैव वीरश्चाङ्गावहस्तथा ।
वृष्णयो निखिलाश्चान्ये समाजग्मुर्महारथाः" ॥)

**उल्लङ्घन,** क्ली, (उत् + लघि + ल्युट् ।) अतिक्रमणम् । इति पुराणम् ॥ डिङ्गान इति भाषा । (यथा, कुमारे ३ सर्गे २५ श्लोकस्य टीकायां मल्लिनाथः ।
"समयोल्लङ्घनेन पराङ्गनासङ्गति प्रवृत्ते सति" ।)

**उल्लल,** त्रि, (उत् + लल् + अच् ।) बहुरोमयुक्तः । तत्पर्य्यायः । रोमशः २ । इति हारावली ॥

**उल्ललितः,** त्रि, (उत् + लल् + क्त ।) तरलितः । आन्दोलितः । इति जटाधरः ॥

**उल्लसनक,** क्ली, (उल्लसन + स्वार्थे कन् ।) रोमाञ्चः । इति हेमचन्द्रः ॥

**उल्लाघः,** त्रि, (उत् + लाघ् + गत्यर्थेति क्त । निपातनात् सिद्धम् ।) गदान्निर्गतः । नीरोगः । इत्यमरः ॥ शुचिः । दक्षः । हृष्टम् । मरीचमितियावत् । इति विश्वमेदिन्यौ ॥ हृष्टमित्यत्र दृष्टमिति कस्याश्चिन्मेदिन्यां पाठः ॥

**उल्लापः,** पुं, (उत् + लप् + घञ् ।) शोकरोगादिना ध्वनिविकारः । तत्पर्य्यायः । काकुवाक् २ । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथाह, भर्त्तृहरिः । ३ । ६ ।
"खलोल्लापाः सोढाः कथमपि तदाराधनपरैः" ॥)

**उल्लासः,** पुं, (उत् + लस् + घञ् ।) ग्रन्थपरिच्छेदः । इति भूरिप्रयोगः ॥ यथा काव्यप्रकाशे प्रथमउल्लास इति प्रयोगः । वृद्धिः । इति श्रीभागवतम् ॥ आह्लादः । प्रकाशः ॥ ("निपतन्ति कन्दलदलोल्लासाः पयोविन्दवः" । इति अमरुशतके । ४८ ।)

**उल्लिखित,** त्रि, (उत् + लिख + क्त ।) उत्कीर्णः । तनूकृतः । इति मेदिनी ॥ चित्रितः । इति शब्द-

रत्नावली ॥ ऊर्द्धे लिखित ॥ (यथा, रघुः ।६।३२।)
"त्वष्टेव यन्त्रोल्लिखितो विभाति" ॥)
उल्लेख, पुं,(उत् + लिख् + घञ् ।) उच्चारणम् । कथनम् । इति मार्त्ताः ॥ (अलङ्कारभेद ॥ तल्लक्षणं यथा, साहित्यदर्पणे १० परिच्छेदे ।
"क्वचिद्भेदाद्ग्रहीतृणां विषयाणां तथा क्वचित् ।
एकस्यानेकधोल्लेखो यः स उल्लेख उच्यते" ॥
उदाहरणम् । "प्रिय इति गोपवधूभिः शिशुरिति वृद्धैरधीश इति देवैः । नारायण इति भक्तैर्ब्रह्मेत्यग्राहि योगिभिर्देवः" ॥)
उल्लेखनं, क्ली, (उत् + लिख् + ल्युट् ।) वमनम् । इति रत्नमाला ॥ खननम् । यथा "भूमेरुल्लेखनं कुर्य्यात्" । इति स्मृतिः ॥ (यथा, मनुः ५।१२४ ।
"सम्मार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च" ।)
उच्चारणम् । यथा,—
"मासपक्षतिथीनाञ्च निमित्तानाञ्च सर्व्वशः ।
उल्लेखनमकुर्व्वाणो न तस्य फलभाग्भवेत्" ॥
इति तिथ्यादितत्त्वम् ॥
उल्लोच, पुं,(ऊर्द्धं लोचति । उत् + लोच् + अच् । यद्वा ऊर्द्धं लोच्यते । लोच् + घञ् । कुत्वन्तु न निष्ठायामनिट इति वचनात् । अस्य तु तन्न सेट्त्वात् ।) चन्द्रातपः । चाँदोया इति भाषा । तत्पर्य्यायः । वितानम् २ । इत्यमरः ॥
उल्लोल, पुं, (उल्लोडयतीति । लोडृ उन्मादे + णिच् + पचाद्यच् । डलयोरैक्यात् डस्य लः ।) महातरङ्गः । बड ढेउ इति भाषा । तत्पर्य्यायः । कल्लोल २ । इत्यमरः ॥
उल्व, क्ली, (उच्छीयते इति । उत् + लीङ् श्लेषणे उल्वादयश्च ४।९५ । इति उणादिसूत्रेण साधुः ।) जरायुः । इत्यमरः ॥ (यथा, गीतायाम् ३ । ३८ ।
"यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्" ।
"जावमाच विशोध्योल्वाद्बालं सैन्धवसर्पिषा ।
प्रसूतिक्लेशितञ्चानु बलातैलेन सेचयेत्" ॥
इति वाभटे उत्तरस्थाने १ अध्याये उक्तवान् ॥
"अथ जातस्योल्वं मुखञ्च सैन्धवसर्पिषा विशोध्य घृताक्तं मूर्द्ध्नि पिचुं दद्यात् ततो नाभिनाडीमष्टाङ्गुलमायम्य सूत्रेण बद्ध्वा च्छेदयेत्तत्सूत्रैकदेशञ्च कुमारस्य ग्रीवायां सम्यग् बध्नीयात् । इति सुश्रुते शारीरस्थाने १० अध्याये ॥)
उल्वण, त्रि, (उत् + वण + अच् । पृषोदरादित्वात् साधुः ।) व्यक्तम् । स्पष्टम् । इत्यमरः ॥
("स्नेहोल्वणा महामूला घना मन्दरुजः स्थिताः" ॥
इति वाभटे निदानस्थाने ७ अध्याये ॥
"हेतुलक्षणसंसर्गादियादृद्वन्द्वोल्वणानि च" ।
इति रविगिनिश्चयग्रन्थे ज्वराधिकारे ॥
प्रकाशः । निर्बाधः । यथा, रघुः । ४ । ३३ ।
"तस्यासीदुल्वणो मार्गः पादपैरिव दन्तिनः" ॥)
उशती, त्रि, (वश + शतृ + ङीप् । सम्प्रसारणम् ।) अकल्याणवाक् । इति शब्दरत्नावली ॥ (यथा, अघमर्षणमन्त्रे । "आपो हि ष्ठा मयोभुवः स्तान ऊर्ज्जे दधातन महेरणाय चक्षसे । ॐ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः" ॥)
उशना, [स्] पुं, (वश कान्तौ + "वशेः कनसि" ।४।२३८। इति उणादिसूत्रेण कनसि । ग्रह्यादित्वात् सम्प्रसारणम् ।) शुक्राचार्य्यः । इत्यमरः ॥
(यथा, कुमारे ३ । ६ ।
"अध्यापितस्योशनसापि नीतिं
प्रयुक्तरागप्रणिधिर्द्विषस्ते" ॥
स च दैत्यगुरुः । तथा च महाभारते ययातिसंवादे १ । ७६ । ६ ।
"पौरोहित्येन याज्यत्वे काव्यन्तूशनसं परे" ॥)
उशिक्, [ज्] पुं, (वष्टि उश्यते वा । वश कान्तौ + "वशः कित्" ।२।७१। इति उणादिसूत्रेण इजि । सम्प्रसारणम् ।) अग्निः । घृत । इति सिद्धान्तकौमुद्यामुणादिवृत्तिः ॥
उशिक्, त्रि, (वश कान्तौ + इजि + सम्प्रसारणम् ।) कमनीयम् ॥
"न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा
न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः" ॥
इति श्रीभागवते १ स्कन्धे ५ अध्यायः । "चित्रपदमपि यद्वचो हरेर्यशो न प्रगृणीत तद्वायसं तीर्थं काकतुल्यानां कामिनां रतिस्थानं उशन्ति मन्यन्ते कुतः मानसाः सत्त्वप्रधाने मनसि वर्त्तमाना हंसा यतयो यत्र न निरमन्ति कर्हिचिदपि नितरां न रमन्ते । उशिक्क्षयाः उशिक् कमनीयं ब्रह्म क्षयो निवासो येषां ते यथा प्रसिद्धा हंसा मानससरसि चरन्तः कमनीयपद्मषण्डनिवासास्त्यक्तविविधान्नादियुक्तं उच्छिष्टगर्त्तं काकक्रीडास्थाने न रमन्ते इति शेषः" । इति तट्टीकायां श्रीधरस्वामी ॥ (कामयमानम् । यथा ऋग्वेदे १ । १३१ । ५ "आदित्ते अस्य वीर्य्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ" । "उशिजो धर्म्मं कामयमानाः जनाः" । इति भाष्यम् ॥)
उशी, स्त्री, (वश + ई । सम्प्रसारणम् ।) वाञ्छा । इत्युणादिकोषः ॥
उशीनर, पुं, (उशीप्रदो वाञ्छाप्रदो नरो यत्र ।) देशभेदः । तत्पर्य्यायः । गान्धार २ । इति जटाधरः ॥ चन्द्रवंशोद्भवराजविशेषः । स तु शिविराजपिता । इति श्रीभागवतम् ॥ (पुरुवंशीयो नृपभेदः । यथा महाभारते । श्येनकपोतीये । ३ । १३० । २१-२३ ।
"उशीनरो वै यत्रेष्ट्वा वासवादत्यरिच्यत ॥
ता देवसमितिं तस्य वासवश्च विशाम्पते ।
अभ्यगच्छन्नृपवरं ज्ञातुमग्निश्च भारत ॥
जिज्ञासमानौ वरदौ महात्मानमुशीनरम् ।
इन्द्रः श्येनः कपोतोऽग्निर्भूत्वा यज्ञेऽभिजग्मतुः" ॥
तस्य चरित्रं तत्रैव १३१ अध्याये द्रष्टव्यम् ॥)
उशीर,पुं क्ली, (वश कान्तौ + "वशेः कित्" ।४।३१ इति उणादिसूत्रेण ईरन् । सम्प्रसारणम् ।) वीरणमूलम् । वेनार मूल खस इत्यादि भाषा । तत्पर्य्यायः । अभयम् २ नलदम् ३ सेव्यम् ४ अमृणालम् ५ जलाशयम् ६ लामज्जकम् ७ लघुलयम् ८ अवदाहम् ९ इष्टकापथम् १० । इत्यमरः ॥ उशीरम् ११ मृणालम् १२ लघु १३ लयम् १४ अवदानम् १५ इष्टम् १६ कापथम् १७ अवदाहेष्टकापथम् १८ इन्द्रगुप्तम् १९ । इति तट्टीकायां भरतादयः ॥ जलवासम् २० हरिप्रियम् २१ वीरम् २२ वीरणम् २३ समगन्धिकम् २४ रणप्रियम् २५ वीरतरु २६ शिशिरम् २७ शीतमूलकम् २८ वितानमूलकम् २९ जलमेदम् ३० सुगन्धिकम् ३१ सुगन्धिमूलकम् ३२ कम्भु ३३ । इति राजनिर्घण्टः ॥ अस्य गुणाः । घर्म्मदौर्गन्ध्यदाहपित्तरक्तरोगनाशित्वम् । इति राजवल्लभः ॥ अपिच । शीतलत्वम् । तिक्तत्वम् । मोहभ्रमापहत्वम् । ज्वरार्त्तिपित्तशमनकारित्वम् । जलसौगन्ध्यदायकत्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ (यथा, शाकुन्तले ३ अङ्के । "प्रियंवदे ! कस्येदमुशीरानुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनीदलानि नीयन्ते" । अस्य पर्य्यायगुणा यथा,
"वीरणस्य तु मूलं स्यादुशीरं नलदञ्च तत् ।
अमृणालञ्च सेव्यञ्च समगन्धिकमित्यपि ॥
उशीरम्पाचनं शीतं स्तम्भनं लघु तिक्तकम् ।
मधुरं ज्वरहृद्वान्तिमदनुत्कफपित्तहृत् ॥
तृष्णास्रविषवीसर्पदाहकृच्छ्रव्रणापहम्" ।
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे प्रथमे भागे ॥)
उशीरक, क्ली, (उशीर + स्वार्थे कन् ।) वीरणमूलम् । इति रत्नमाला ॥ (उशीरशब्देऽस्य विशेषो ज्ञेयः ।)
उशीरी,स्त्री, तृणकाण्डः । छोट काशा इति भाषा । तत्पर्य्यायः । मिषि २ गुन्द्रा ३ अश्वालः ४ नीरज ५ शर ६ । अस्य गुणाः । मधुरत्वम् । शीतलत्वम् । पित्तदाहक्षयरोगनाशित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥
उष उ वधे, दाहे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (भ्वादि-पर-सक-सेट् ।) ऊकारादिः । उ ओषित्वा उष्ट्वा । ओषति । क्वाविट्त्वान्नेमङीश्वीत्यादिना इमो निषेधे निष्ठायां उष्ट । दाहे भस्मीकरणे । इति दुर्गादासः ॥
उष वधे । दाहे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (भ्वादि-पर-सक-सेट् ।) ओषति । उषितः । दाहे भस्मीकरणे । इति दुर्गादासः ॥ (यथा, मनुः ।९।२७३ ।
"यश्चापि धर्म्मसमयात् प्रच्युतो धर्म्मजीवनः ।
दण्डेनैव तमप्योषेत् स्वकाद्धर्म्माद्धि विच्युतम्" ॥)
उष, स्त्री, (उष + क ।) पांशुलवणम् । इति रत्नमाला ॥
उष, पुं, (उष + क ।) कामी । गुग्गुलुः । रात्रिशेषः । दिनम् । इति मेदिनी ॥ (दहनकर्त्तरि, त्रि ।) क्षारमृत्तिका । इति शब्दरत्नावली ॥
उष, [स्] स्त्री, (ओषति नाशयत्यन्धकारम् । उष + "उषः किदिति" ४।२३३ । उणादिसूत्रेण असि ।) प्रत्यूषः । इत्यमरः ।
("आसीदासन्ननिर्व्वाणः प्रदीपार्च्चिरिवोषसि" ।
इति रघुः । १२ । १ । तथा, माघे । ११ । ७ ।
"पुनरुषसि विविक्तैर्मातरिश्वावचूर्ण्य" ॥)

उषण, क्ली, (उष्+बाहुलकात् क्युन्। ल्युट् वा।) मरिचम्। इत्यमरः। पिप्पलीमूलम्। इति राजनिर्घण्टः॥

उषणा, स्त्री, (उषण+टाप्।) पिप्पली। इत्यमरः॥ शुण्ठी। इति राजनिर्घण्टः॥ चविकम्। इति रत्नमाला॥ ("उपकुल्योषणा शौण्डी" इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे प्रथमभागे पर्य्याय उक्तः।)

उषती, स्त्री, (उष्+शतृ। आगमशासनस्यानित्यत्वात् नुमभावः।) अकल्याणवाक्। इत्यमरः॥ (यथा, महाभारते १। ८७। ८।

"ययास्य वाचा पर उद्विजेत
न तां वदेदुषतीं पापलोक्याम्"॥)

उषपः, पुं, (ओषतीति। उष्+"उषिकुटिदलिकचिखजिभ्यः कपन्"। ३। १४२। इति कपन्।) सूर्य्यः। अग्निः। इत्युणादिकोषः॥

उषर्बुधः, पुं, (उषसि प्रातर्बुध्यते प्रकाशते। उषस्+बुध्+क।) अग्निः। इत्यमरः॥ रक्तचित्रकः। राचिता इति भाषा॥

उषसी, स्त्री, (उषः दिवसं स्यति दूरीकरोतीति। उष+सो+क+ङीप्।) सन्ध्याकालः। इति मेदिनी॥

उषा, स्त्री, (उष+क+टाप्।) बाणराजसुता। सा तु अनिरुद्धभार्य्या। (यथा, हरिवंशे १७४। बाणयुद्धे १२।

"बाणस्य दुहिता कन्या तत्रोषा नाम भाविनी"। विस्तृतिस्तु बाणयुद्धशब्दे द्रष्टव्या।) रात्रिः। इति मेदिनी॥ स्त्रीगवी। इति हेमचन्द्रः॥ उखा। स्थालीति यावत्। इत्यमरटीकायां रमानाथः॥ (रात्रिशेषः। यथा ज्योतिषे।

"उषा गोधूलियोगे वा स्त्रीकृत्य गमनं चरेत्"॥)

उषा, व्य, (ओषतीति। उष+क+टाप्।) रात्रिशेषः। राव्यवसानम्। इत्यमरमेदिन्यौ॥ सा तु नक्षत्रतेजःपरिहानिमारभ्य भानोरर्द्धोदयं यावत् भवति। यथा,—

"अर्द्धास्तमयात् सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत्। तेजःपरिहानिरुषा भानोरर्द्धोदयं यावत्"॥ इति तिथितत्त्वे वराहवचनम्॥

उषाकलः, पुं, (उषायां कलो यस्य।) कुक्कुटः। इति त्रिकाण्डशेषः॥

उषापतिः, पुं, (उषायाः पतिः।) अनिरुद्धः। स तु कामदेवपुत्त्रः। इत्यमरः॥ (एतत्कथा बाणयुद्धशब्दे द्रष्टव्या॥)

उषारमणः, पुं, (उषायाः रमणः।) अनिरुद्धः। इति हलायुधः॥

उषितः, त्रि, (उष वा वस+क्त।) व्युषितः। दग्धः। इति मेदिनी॥ त्वरितम्। इति धरणिः॥ स्थितः। इति त्रिकाण्डशेषः॥

उषितङ्गवीनं, त्रि, (उषिताः स्थिता गावो यत्र।) आशितङ्गवीनम्। यत्र पुरा गावो भोजिताः। इत्यमरटीकायां रमानाथः॥

उषीरं, पुं क्ली, (उष्+कीरच्।) उशीरः। वीरणमूलम्। इत्यमरटीकायां रायमुकुटः॥

उषेशः, पुं, (उषायाः बाणकन्यायाः ईशः।) अनिरुद्धः। इति हेमचन्द्रः॥

उष्ट्रः, पुं, (उष+"उषिखनिभ्यां कित्"। ४। १६१। इत्युणादिसूत्रेण ष्ट्रन् किच्च।) वाह्नरथः। इति धरणी॥ पशुविशेषः। उट् इति भाषा। तत्पर्य्यायः। क्रमेलकः २ मयः ३ महाङ्गः ४। इत्यमरः॥ दीर्घगतिः ५ बली ६ करभः ७ दासेरकः ८ धूसरः ९ लम्बोष्ठः १० रवणः ११ महाजङ्घः १२ जवी १३ जाङ्घिकः १४ दीर्घः १५ शृङ्खलकः १६ महान् १७ महाग्रीवः १८ महानादः १९ महाध्वगः २० महापृष्ठः २१ बलिष्ठः २२। इति राजनिर्घण्टः॥ दीर्घजङ्घः २३ ग्रीवी २४ धूम्रकः २५ शरभः २६। इति जटाधरः॥ क्रमेलः २७ कण्टकाशनः २८ भोलिः २९ बङ्कुरः ३० अध्वगः ३१ मरुद्विपः ३२ वक्रग्रीवः ३३। इति शब्दरत्नावली॥ वासन्तः ३४ कुलनाशः ३५। इति त्रिकाण्डशेषः॥ कुशनामा ३६ मरुप्रियः ३७ द्विककुत् ३८ दुर्गलङ्घनः ३९ भूतघ्नः ४० दासेरः ४१ दीर्घग्रीवः ४२ केलिकीर्णः ४३। इति हेमचन्द्रः॥ (यथा मनुः ४। १२०।

"नाधीयीताश्वमारूढो न रथं न च हस्तिनम्।
न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः"॥
"उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः"।
इति च मनुः। ११। २०१॥)

उष्ट्रकाण्डी, स्त्री, (उष्ट्र इव काण्डोऽस्य। जातित्वात् ङीष्।) पुष्पजातिभेदः। उँटाटी इति ख्याता। तत्पर्य्यायः। रक्तपुष्पी २ करभकाण्डिका ३ रक्ता ४ लोहितपुष्पी ५ कर्णपुष्पी ६। अस्या गुणाः। तिक्तत्वम्। उष्णत्वम्। रुचिकारित्वम्। हृद्रोगहारित्वञ्च। अस्या बीजगुणाः। मधुरत्वम्। शीतत्वम्। शीघ्रत्वम्। हृद्यत्वम्। सन्तर्पणत्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः॥

उष्ट्रधूसरपुच्छिका, स्त्री, (उष्ट्रस्य धूसरं पुच्छमिव पुच्छो मञ्जरी यस्याः।) वृक्षविशेषः। इति रत्नमाला॥ विचिटी इति भाषा॥

उष्ट्रपादिका स्त्री, (उष्ट्रस्य पाद इव पादो यस्याः।) वृक्षविशेषः। मदनमालीति ख्याता। तत्पर्य्यायः। शातभीरुः २ मद्रवल्ली ३ भूमिमण्डा ४। इति रत्नमाला॥

उष्ट्रशिरोधरं, क्ली, (उष्ट्रस्य शिरोधरं ग्रीवा इव आकृतिर्यस्य।) भगन्दररोगविशेषः। तस्य लक्षणम्।

"प्रकोपनैः पित्तमतिप्रकोपितं
करोति रक्तां पिडकां गुदागताम्।
तदाशुपाकां हिमपूतवाहिनीं
भगन्दरन्तूष्ट्रशिरोधरं वदेत्"॥

इति निदानम्। (अस्य लक्षणं चिकित्सा चोक्तवान् वाग्भटे उत्तरस्थाने २८ अध्याये। अस्य नामान्तरमुष्ट्रग्रीवः। यथा।

"पित्तादुष्ट्रग्रीवावदुच्छ्रिता॥
रागिणी तनुरुष्माढ्या ज्वरधूमायनान्विता"।
"उष्ट्रग्रीवस्तु पित्तजः"।
"अग्निना वा भिषक् साधु क्षारेणैवोष्ट्रकन्धरम्"।

सुश्रुतेन निदानस्थाने ४ अध्याये यत् सम्ा...
पूर्व्वक लक्षणमस्योक्तं तद्यथा॥ पित्तन्तु प्रकुपि...
मनिलेनाधः प्रेरितं पूर्व्ववदवस्थितं रक्तां तन...
मुच्छ्रितामुष्ट्रग्रीवाकारां पिडकां जनयति। सा...
चोषादीन् वेदनाविशेषान् जनयत्यप्रतिक्रियमा...
च पाकमुपैति अग्न्याक्षाराभ्यामिव दह्...
दुर्गन्धमुष्णमास्रावं स्रवत्युपेक्षितश्च वातमू...
पुरीष-रेतांसि विसृजति तं भगन्दरमुष्ट्रग्री...
मित्याचक्षते"॥ इति।*॥ सुश्रुते चिकित्सितस्था...
८ अध्याये चिकित्सा यथा,—

"उष्ट्रग्रीवे क्रियां शृणु।
अथोष्ट्रग्रीवमेषित्वा छित्त्वा क्षारं निपातयेत्
पूतिमांसव्यपोहार्थमग्निस्तत्र न पूजितः।
अथैन घृतसंसृष्टैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत्॥
बन्धं ततोऽनुकुर्व्वीत परिषेकन्तु सर्पिषा।
तृतीये दिवसे मुक्त्वा यथास्वं शोधयेद्भिषक्॥
ततः शुद्धं विदित्वा च रोपयेत्तु यथाक्रमम्।
उत्सृत्यास्रावमार्गन्तु परिस्राविणि बुद्धिमान्॥
क्षारेण वा स्रावगतिं दहेद्धुतवहेन वा।
सुखोष्णेनाणुतैलेन सेचयेद्गुदमण्डलम्॥
उपनाहाः प्रदेहाश्च मूत्रक्षारसमन्विताः।
वामनीयौषधैः कार्य्याः परिषेकाश्च मात्रया"॥)

उष्ट्रिका, स्त्री, (उष्ट्रस्याकृतिरिवावयवो यस्याः। उष्ट्र...
स्त्री वा॥) मृत्तिकाभाण्डभेदः। (यथा माघे १२।१...
"भ्रूभङ्गविक्षेपविदारितोष्ट्रिका"।) उष्ट्रभार्य्या...
इति मेदिनी॥ वृश्चिकालीवृक्षः। इति रा...
निर्घण्टः॥

उष्ट्री, स्त्री, (उष+ष्ट्रन्+ङीष्।) मृत्तिकाभाण्ड...
उष्ट्रस्त्री। इति हेमचन्द्रः॥ तस्याः क्षीरगुणाः...
कुष्ठशोथपित्तार्शःकफाटोपानाहोदरक्षयजन्तुगुल्म...
श्वासोच्छ्वासनाशित्वम्। तद्दधिगुणाः। अर्शःकु...
कृमिशूलोदररोगनाशित्वम्। कटुत्वम्। ला...
त्वञ्च। तन्नवनीतगुणाः। विपाके शीतलत्वम्...
लघुत्वम्। शमकृमिकफास्रवातविषनाशित्वञ्च...
तद्घृतगुणाः। मधुरत्वम्। विपाके कटुत्वम्...
शीतलत्वम्। कुष्ठकृमिविषवातकफगुल्मोदरना...
शित्वञ्च। तन्मांसगुणाः॥ शिशिरत्वम्। त्रिदोष...
शमनत्वम्। लघुत्वम्। बलपुष्टिप्रदत्वम्। रुचि...
कारित्वम्। मधुरत्वम्। वीर्य्यवर्द्धनत्वञ्च। इति...
राजनिर्घण्टः॥ (अस्या दुग्धगुणा यथा,—
"ईषद्रूक्षोष्णलवणमौष्ट्रकं दीपनं लघु।
शस्तं वातकफानाहकृमिशोथोदरार्शसाम्"॥
इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहीतद्रव्यगुणे पानीयवर्गे।
"औष्ट्रं दुग्धं लघु स्वादु लवणं दीपनं तथा।
क्रिमिकुष्ठकफानाहशोथोदरहरं सरम्"॥
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे द्वितीये भागे॥

"रूक्षं तथोष्णं लवणं कफस्य
निवारणं वातविकारहारि।
लघु प्रशस्तं कटुकं हि मीणां
शोफार्शसामौष्ट्रपयोऽनुकूलम्"॥

इति हारीते प्रथमस्थानेऽष्टमेऽध्याये॥
"रूक्षोष्णं क्षीरमुष्ट्रीणामीषत् सलवणं लघु।

शस्तं वातकफानाहक्रिमिशोथोदरार्शसाम्" ॥
इति चरके सूत्रस्थाने सप्तविंशेऽध्याये ॥
"रूक्षोष्णं लवणं किञ्चिदौद्रं स्वादुरसं लघु ।
शोफगुल्मोदरार्शोघ्नं कृमि-कुष्ठ-विषापहम्" ॥
इति सुश्रुते सूत्रस्थाने ४५ अध्यायः ॥)

**उष्णः**, पुं, (उष दाहे + "इषियुधीन्धिदसिश्याधूसूभ्यो नक्" ।३।२। इति उणादिसूत्रेण नक् ।) ग्रीष्मऋतुः । तत्पर्य्यायः । ग्रीष्मः २ उष्णकः ३ निदाघः ४ उष्णोपगमः ५ उष्णागमः ६ तपः ७ । इत्यमरः ॥ आतपः । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा, सुश्रुते चिकित्सितस्थाने २४ अध्यायः ।
"उष्णे हैमे वसन्ते च कामं ग्रीष्मे तु शीतलम्" ।
क्वचित् क्लीबलिङ्गान्तोऽपि दृश्यते ।
यथा महाभारते सवर्णमरुत्तीये ।१४।८।६।
"नोष्णं न शिशिरस्तत्र न वायुर्न च भास्करः" ।)
अग्निः । सूर्य्यः । यथा, मनु ११ । ११२ ।
"उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम्" ।
("उष्णे आदित्ये मेघे च वर्षति" इति तट्टीकायां कुल्लूकभट्टः ॥) पलाण्डुः । इति राजनिर्घण्टः ॥ उष्णवीर्य्यद्रव्यगुणाः । पित्तबलकारित्वम् । लघुत्वम् । वातश्लेष्मनाशित्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥

**उष्णः**, त्रि, (उष् + नक् ।) निरालस्यव्यक्तिः । तत्पर्य्यायः । दक्षः २ चतुरः ३ पेशलः ४ पटुः ५ सूत्थानः ६ । इत्यमरः । अशीतः । इति मेदिनी ॥ (यथा मनुः । ३ । २३७ ।
"यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नाति वाग्यताः" ॥)

**उष्णकः**, पुं, (उष्णं करोतीति । उष्ण + शीतोष्णाभ्यां कारिणीति कन् ।) ग्रीष्मकालः । चंक्रमादिः । इति धरणी ॥ (ज्वर । इति पाणिनि ५ । २ । ७२ ॥)

**उष्णकः**, त्रि, (उष्णं कार्य्यमस्य । उष्ण + कन् ।) क्षिप्रकारी । आतुरः । इति मेदिनी ॥ प्रतप्तः । इति धरणी ॥ शीघ्रोद्दीप्तः इति पाणिनि ५ । २ । ७२ ॥)

**उष्णनदी**, स्त्री, (उष्णा नदी ।) वैतरणी नदी ॥

**उष्णरश्मिः**, पुं, (उष्णा रश्मयो यस्य ।) सूर्य्यः । अर्क-रुचः । इत्यमरः ॥ (यथा, कुमारे ३ । २५ ।
"कुबेरगुप्तां दिशमुष्णरश्मौ
गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलङ्घ्य" ॥)

**उष्णवारणः**, पुं, क्ली, (उष्णमातपं वारयति । उष्ण + वृ + णिच् + ल्युट् ।) छत्रम् । इति हारावली ॥ (यथा, कुमारे ५ । ५२ ।
"शदर्यमम्भोजमिवोष्णवारणं
कृतं तमभ्यागमनेवया वपुः" ।
छत्रशब्देऽस्य गुणादिकं ज्ञेयम् ॥)

**उष्णवीर्य्यः** पुं, (उष्णमुग्रं वीर्य्यं यस्य ।) शिशुमारः । इति हेमचन्द्रः ॥ तीक्ष्णतेजोयुक्तमद्यादिः ॥ (प्रचण्डवीर्य्ययुक्ते, त्रि ॥)

**उष्णा**, स्त्री, (उष्यते दह्यते यया । उष वधे + नक् + टाप् ।) शुष्काङ्गिः । सन्तापः । पित्तम् । इति राजनिर्घण्टः ॥ [हेमचन्द्रः ॥

**उष्णांशुः**, पुं, (उष्णा अंशवो यस्य ।) सूर्य्यः । इति

**उष्णागमः**, पुं, (उष्णस्यागमो यस्मिन् ।) ग्रीष्मकालः । इत्यमरः ॥

**उष्णाभिगमः** पुं, (उष्णस्यातपस्याभिगमो यत्र ।) ग्रीष्मऋतुः । इति शब्दरत्नावली ॥

**उष्णासहः** पुं, (उष्णा आतप आसह्यते यत्र । उष्ण + आ + सह + अच् ।) हेमन्तऋतुः । इति राजनिर्घण्टः ॥ (उष्णासह्यकारिणि, त्रि ॥)

**उष्णिक्**, [ह्] स्त्री, (उत् + स्निह् + क्विन् । निपातनात् उपसर्गान्तलोपः षत्वं च ।) सप्ताक्षरच्छन्दः । (यथा छन्दोमञ्जर्य्यां,—
"उक्थात्युक्था तथा मध्या प्रतिष्ठान्या सुपूर्व्विका ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च" ॥
उष्णिक् सप्ताक्षरा वृत्तिः । सा च त्रिधा मधुमती-कुमारललिता-मदलेखाभेदात् । उदाहरणपूर्व्वक तल्लक्षणं यथा तत्रैव । "ननगि मधुमती" ।
"रविदुहितृतटे वनकुसुमनतिः ।
व्यधित मधुमती मधुमथनमुदम्" ॥ १ ॥
"कुमारललिता ज्सगा" ॥
"मुरारितनुवल्ली कुमारललिता सा ।
व्रजैणनयनानां ततान मुदमुच्चैः" ॥ २ ॥
"म्सगौ स्यान्मदलेखा" ॥) "रक्षे वाङ्विरमात् कुम्भीन्द्रान्मदलेखा । आसाभून्मुरशत्रो कस्तूरीरसचर्च्चा" ॥

**उष्णिका**, स्त्री, (अल्पमन्नमस्याम् । ब्राह्मणकोष्णिके सञ्ज्ञायामिति कन् । निपातनादन्नशब्दस्योष्णादेशः ।) यवागुः । इत्यमरः ॥ याउ इति भाषा ।

**उष्णीषः**, पु, क्ली, (उष्णमीषते हिनस्तीति । ईष गतिहिंसादर्शनेषु । इगुपधेति कः । शकन्ध्वादिः ।) शिरोवेष्टः । इत्यमरः ॥ पाग इति भाषा । अस्य गुणाः । केशचक्षुरायुर्वर्द्धकत्वम् । धूलिशीतोष्णनिवारकत्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥ यथा ।
"उष्णीषं कान्तिकृत् केश्यं रजोवातकफापहम् ।
लघु चेच्छस्यते यस्मात् गुरुपित्ताक्षिरोगकृत्" ॥
इति भावप्रकाशः ॥ किरीटः । (यथा, महाभारते कीचकवधोपाख्याने ३ । २१ । २४ ।
"विशीर्णमणिनोष्णीषः प्रकीर्णाम्बरमूर्द्धजः" ।
रजोऽवश्यायसूर्य्यांशुहिमानिलनिवारणम् ।
प्रतिश्यायशिरःशूल-हरणोष्णीषधारणम् ।
इति वैद्यकचक्रपाणिदत्तद्रव्यगुणे गुणानां क्रियाभिधानादिवर्गे ॥
"मार्गवारं रजोवर्णतेजोबलविवर्द्धनम् ।
पवित्रं केश्यमुष्णीषं वातातपरजापहम्" ॥
इति सुश्रुते चिकित्सितस्थाने २४ अध्याये ॥) चिकुरान्तरम् । इति मेदिनी ॥

**उष्णोदकं**, क्ली, (उष्णञ्च तत् उदकञ्चेति ।) तप्तजलम् । क्वाथ्यमानपादावशेषार्द्धावशेषपादहीनं जलम् । तद्विधिर्यथा ।
"अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनार्द्धकेन वा ।
अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत्" ॥
अस्य गुणाः । सदा पथ्यत्वम् । कासज्वरविबन्धकफवातामभेदोनाशित्वम् । दीपनत्वम् । वस्तिशोधनत्वञ्च ।

"श्लेष्मामवातमेदोघ्नं वस्तिशोधनदीपनम् ।
कासश्वासज्वरान् हन्ति पीतमुष्णोदकं निशि" ।
इति भावप्रकाशे प्रथमखण्डम् ॥ * ॥ अथोष्णोदकस्य लक्षणं गुणाश्च ।
"क्वाथ्यमानन्तु निर्व्वेगं निष्फेनं निर्म्मलन्तथा ।
अर्द्धावशिष्टं यत्तोयं तदुष्णोदकमुच्यते ॥
ज्वर-कास-कफ-श्वास वात-पित्ताम-मेदसाम् ।
नाशनं वस्तिसंशोधि पथ्यमुष्णोदकं सदा ॥ * ॥
अथर्त्तुभेदे जलस्य पाकभेदः । यदाह,
त्रिपादशेषं सलिलं ग्रीष्मे शरदि शस्यते ।
"हिमेऽर्द्धशेषं शिशिरे तथा वर्षावसन्तयो" ॥
अन्ये तु ।
"निदाघे त्वर्द्धपादोनं पादहीनन्तु शारदम् ।
शिशिरे च वसन्ते च हिमे चार्द्धावशेषितम् ॥
अष्टमांशावशेषन्तु वारि वर्षासु शस्यते ।
इति केचिद्बुधाः प्राङ्र्जन्टागमदर्शनात्" ॥
केचित्तु ।
"वसुष्वङ्गेषु बाणेषु वेदेषु त्रिषु पञ्चयो ।
एकभागावशेषं स्यादम्बु वर्षादिषु क्रमात्" ॥
अत्र दोषाणां यथोल्वणता हीनता वा तथा व्यवस्था कल्पनीया ॥
"तत्पादहीनं पित्तघ्नमर्द्धहीनन्तु वातनुत् ।
त्रिपादहीनं श्लेष्मघ्नं सङ्ग्राह्यग्निप्रदं लघु" ॥ * ॥
त्रिपादहीनस्य तन्त्रान्तरे आरोग्याम्बुसञ्ज्ञा ।
तस्य लक्षणगुणाः ।
"पादशेषन्तु यत्तोयमारोग्याम्बु तदुच्यते ।
आरोग्याम्बु सदा पथ्यं कास-श्वास-कफापहम् ॥
सद्यो ज्वरहरं ग्राहि दीपनं पाचनं लघु ।
आनाहपाण्डुशूलार्शोगुल्मशोथोदरापहम्" ॥
इति भावप्रकाशे मध्यमखण्डम् ॥ रात्रौ उष्णोदकपानगुणाः । श्लेष्मसङ्घातभेदकत्वम् । मारुतापकर्षित्वम् । आशु अजीर्णजारकत्वञ्च ।
"तत्पादहीनं वातघ्नं मध्यहीनं तु पित्तनुत् ।
कफघ्नं पादशेषस्य पानीयं लघु दीपनम्" ॥
इति राजनिर्घण्टः ॥
("शरदीह तथा ग्रीष्मे क्वाथे पादावशेषितम् ।
शिशिरे च वसन्ते च कुर्य्यादर्द्धावशेषितम्" ॥
विपरीतमृतुं दृष्ट्वा प्रावृषं वार्द्धभागिकम् ।
क्वाथ्यमानञ्च निर्व्वेगं निष्फेनं निर्म्मलञ्च यत् ॥
अर्द्धावशिष्टं भवति तदुष्णोदकमुच्यते ।
तत्पादहीनं वातघ्नं चार्द्धं पित्तविकारजित् ॥
कफघ्नं पादशेषन्तु पानीयं लघु पाचनम्" ।
"दिवसे क्वथितं तोयं रात्रौ तद्गुरुतां व्रजेत् ।
रात्रौ शृतन्तु दिवसे गुरुत्वमधिगच्छति" ॥
इति हारीते प्रथमस्थाने ७ अध्याये ।
"दीपनं पाचनं कण्ठ्यं लघूष्णं वस्तिशोधनम् ।
हिक्काध्मानानिलश्लेष्म सद्यःशुद्धे नवज्वरे ।
कासामपीनसश्वासपार्श्वरुक्षु च शस्यते" ॥
"अनभिष्यन्दि लघु च तोयं क्वथितशीतलम् ।
पित्तयुक्ते हितं दोषे व्युषितं तत्त्रिदोषकृत् ॥
इति वाग्भटे सूत्रस्थाने ५ अध्याये ॥
"कफमेदोऽनिलामघ्नं दीपनं वस्तिशोधनम् ॥

श्वास-कास ज्वर-हर पथ्यमुष्णोदकं सदा ।
यत् क्वाथ्यमान निर्व्वेग नि फेन निर्म्मल लघु ॥
चतुर्भागावशेषन्तु तत्तोय गुणवत् स्मृतम् ।
न च पर्य्युषित देय कदाचिद्वारि जानता ॥
अम्लीभूत कफोत्क्लेशि न हित तत् पिपासवे ।
मद्यपानात् समुद्भूते रोगे पित्तोत्थिते तथा ॥
सन्निपातसमुत्थे च शृतशीत प्रशस्यते" ।
इति सुश्रुते सूत्रस्थाने ४५ अध्याये ॥)
तमुवाच भगवानात्रेयो ज्वरितस्य कायसमुत्थान देश-कालानभिसमीक्ष्य पाचनार्थं पानीयमुष्ण प्रयच्छन्ति भिषज । ज्वरो ह्यामाशयसमुत्थ प्रायो भेषजानि चामाशयसमुत्थाना विकाराणा पाचन-वमनापतर्पणानि शमनानि भवन्ति पाचनार्थश्च पानीयमुष्ण तस्मादेतज्ज्वरितेभ्य प्रयच्छन्ति भिषजो भूयिष्ठम् । तद्धेषा पीत वातमनुलोमयति अग्निमुदर्य्यमुदीरयति । क्षिप्र जरा गच्छति श्लेष्माणञ्च परिशोषयति स्वल्पमपि च पीत तृष्णा-प्रशमनायोपपद्यते तथा युक्तमपि चैतन्नात्यर्थोत्-सन्नपित्ते ज्वरे सदाहभ्रमप्रलापातिसारे वा प्रदेयमुष्णेन हि दाह-भ्रम-प्रलापातिसारा भूयो-ऽभिवर्द्धन्ते शीतेनोपशाम्यन्तीति" ।
इति चरके विमानस्थाने ३ अध्याय ॥)

उष्णोपगम , पु, (उष्ण उपगमो यत्र ।) ग्रीष्मकाल । इत्यमर ॥

उष्म , पु, (उष+मक् ।) ग्रीष्मकाल । वसन्तकाल । इत्युणादिकोष ॥ उष्ण । क्रोध ॥

उष्मक , पु, (उष्म+कन् ।) ग्रीष्मऋतु । इत्यमरः ॥

उष्मा, [न्] पु, ( उष्+मनिन् ।) ग्रीष्मकाल । उत्ताप । इत्यमरटीकाया नीलकण्ठ ॥
( यथा कुमारे । ५ । २३ ॥
"तपात्यये वारिभिरुक्षिता नवै-
र्भुवा सहोष्माणममुञ्चदूर्द्धगम्" ।
"उष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्युष्मणा विना ।
तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम्" ॥
इति वाभटे चिकित्सास्थाने १म अध्याये ॥)

उष्मागम , पुं, (ओषतीति उष्मा । आगच्छतीति आ-गम । उष्मा आगमो यत्र ।) ग्रीष्मकाल । इत्य-मरटीकाया रायमुकुट ॥

उस्र , पु, (वस+"स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपीति" । २ । १३ । उणादिसूत्रेण रक् ।) वृष । (यथा, ऋग्वेदे । ६ । १२ । ४ ॥ "वन्वन्नत्यानावोस्र पि-तेव" । "उस्र वृषभ "। इति भाष्यम् ॥) रश्मि । इति मेदिनी ॥ (यथा रघु । ४ । ६६ ।
"शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन् रसानिव" ।
लताभेद । सूर्य्य । यथा, ऋग्वेदे । ३ । ५८ ।४। "प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे"। "वसति नभ-सीत्युस्र सूर्य्य"। इति भाष्यम् । अश्विनीपुत्रौ । यथा तत्रैव । ४ । ४५ । ५ ॥
"अमय उस्रा जरन्ते प्रतिवस्तोरश्विनौ" ॥ )

उस्रा, स्त्री, ( उस्र+टाप् । ) अर्ज्जुनी । गाइ इति भाषा । उपचित्रा । इन्दुरकाणीति भाषा । इति मेदिनी ॥ (सुरभी गौ । इत्युणादिकोष ॥)

उह इर् अर्द्दे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ ( भ्वादि-परं-सकं-सेट् ।) ऋदादिः । इर् औहत् औहीत् । अर्द्द इह वधः । इति दुर्गादासः ॥

उहानः, पु, देशविशेषः । इति भूरिप्रयोगः ॥

---

## ऊ

ऊ, दीर्घोकार । स च षष्ठस्वरवर्णः । अस्य उच्चा-रणस्थान ओष्ठ ॥ ("उपूपध्मानीयानामोष्ठौ" । स च (द्विमात्रत्वात्) दीर्घः (त्रिमात्रत्वात्) प्लुतश्च भवति । (प्रत्येक उदात्तानुदात्तस्वरितभेदात् त्रिविधोऽपि अनुनासिकाननुनासिकभेदात् षड्-विधोऽपि भवति ॥
"स्वराणामूष्मणाञ्चैव विवृत करण स्मृतम्" ।
इति शिक्षावचनात् अस्योच्चारणे विचार आभ्य-न्तरप्रयत्न । विवृत जिह्वाग्रादे स्पर्शनाभाव । यदुक्त तत्रैव " अचोऽस्पृष्टायणस्त्वीषत् नेम-स्पृष्टा शल स्मृता " । इति । )
"शङ्खकुन्दसमाकार ऊकार परमकुण्डली ।
पञ्चप्राणमय वर्ण पञ्चदेवमय सदा ॥
पञ्चप्राणयुत वर्ण पीतविद्युल्लता तथा ।
धर्म्मार्थकाममोक्षञ्च सदा सुखप्रदायकम्" ॥
इति कामधेनुतन्त्रम् ॥ तस्य ( वङ्गीयभाषायाम् ) लेखनप्रकारो यथा,—
"तद्रूपाधोगता रेखा कुञ्चिता वामतः शुभा" ।
तद्रूपा पूर्व्वोक्तोकाररूपा ।
"तिष्ठन्ति तासु रेखासु यमाग्निवरुणा क्रमात् ॥
अधोर्द्धगामिनी मात्रा लक्ष्मीर्वाणी च सा स्मृता" ।
इति वर्णोद्धारतन्त्रम् ॥*॥ तस्य नामानि यथा,—
"ऊ कण्ठको रति शान्ति क्रोधनो मधुसूदन ।
कामराज कुलेशश्च महेशो वामकर्णकः ॥
अर्घीशो भैरव सूक्ष्मो दीर्घघोणा सरस्वती ।
विलासिनी विघ्नकर्त्ता लक्ष्मणो रूपकर्षिणी ॥
महाविद्येश्वरी षष्ठा षण्डोभू कान्यकुब्जकः" ।
इति तन्त्रम् ॥ ( मातृकान्यासेऽस्य वामकर्णे न्यस्यतया तदाख्ययाप्यभिधानम् । यथा, मातृका-न्यासमन्त्रे "उ नमो दक्षिणकर्णे ऊ नमो वाम-कर्णे" । अनुबन्धविशेषः । यथाह कविकल्पद्रुमे । "ऊ क्त्वावेभुस्तु वेटकः । तेन सिध् शास्त्रे इत्यस्य लुङि कृते असेधीत् असैत्सीत् इति स्यात् ॥ )

ऊ, व्य, (वेञ्+क्विप् ।) वाक्यारम्भ । रक्षा । अनु-कम्पा । इति मेदिनी ॥ (सम्बोधनम् ॥ )

ऊ , पुं, (अवति रक्षतीति । अव्+क्विप् । ज्वरत्वरे-त्यूट् । ६।४।२० ।) महेश्वरः । इति पुरुषोत्तम ॥ चन्द्रः । इति शब्दरत्नावली ॥ (रक्षाकर्त्तरि, त्रि॥)

ऊढः, त्रि, (उह्यते स्म । वह्+क्त ॥) विवाहित । इति स्मृति ॥
("भार्य्योढ तमवज्ञाय तस्मै सौमित्रयेऽसकौ" । इति भट्टिः । ४ । १५ ॥ ) धृतवहन ॥

ऊढ़कङ्कटः, त्रि, (ऊढो धृतः कङ्कटो येन ।) कवच-धारी । तत्पर्य्याय । सन्नद्ध २ वर्म्मित ३ सज्ज ४ दंशितः ५ । इत्यमर ॥

ऊढ़ा, स्त्री, ( वह+क्त+टाप् ।) भार्य्या । इ
हेमचन्द्रः ॥ ( विवाहिता कन्या । यथा,—
"ऊढ़ानूढासमवायेऽनूढैव प्रथम धनहारिणी"
इति स्मृतिः ॥ )

ऊत, त्रि, (वे+क्त ।) तन्तुसन्ततम् । तत्पर्य्याय स्यूतम् २ उतम् ३ । इत्यमर ॥ कापड़ वोना इ भाषा ॥ (प्रथितम् । अव+क्त । ज्वरत्वरेत्यूट् ४ । २० । रक्षितम् ॥ )

ऊति , स्त्री, (अव्+क्तिन् । ज्वरत्वरेत्यूट् । ६ । ४ २० ।) रक्षणम् । (वे+क्तिन् ।) स्यूतिः । इ मेदिनी ॥ वोना सेलाइ इति भाषा । क्षारणम् इति शब्दरत्नावली ॥ जवनम् । इत्यमरटीकाय स्वामी ॥ लीला । इति श्रीभागवतम् ॥ (कर्त्त क्तिच् । रक्षाकर्त्री । यथा, ऋग्वेदे । ४ । ४ । २ "उरुष्यन्तम् माध्वी दस्रा न ऊती " । कर्म्मणि क्तिन् । पुराणस्य दशविधलक्षणमध्ये कर्म्मवासना रूपो लक्षणभेद । यथा, भागवते । २।१०—१४
श्रीशुक उवाच ।
"अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थान पोषणमूतयः ।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥
दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ।
वर्णयन्ति महात्मान श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा ॥
भूतमात्रेन्द्रियधिया जन्म सर्ग उदाहृतः ।
ब्रह्मणो गुणवैषम्यात् विसर्ग पौरुषः स्मृत ॥
स्थितिर्वैकुण्ठविजय पोषण तदनुग्रहः ।
मन्वन्तराणि सद्धर्म्म ऊतयः कर्म्मवासना" ॥
"कर्म्मवासना ऊतय " । इति चूर्णिकाटीका ॥)

ऊधः, [ स् ] क्ली, (उन्द+असुन् । ऊधसो नङिति निर्देशात् ऊधादेशः । ) आपीनम् । इत्यमरः ॥ गाइर पालान् इति भाषा । (यथा महा-भारते । चैत्ररथपर्व्वणि । १ । १७६ । १३ ॥
("मण्डूकनेत्रां स्वाकारां पीनोधसमनिन्दिताम्" ।
"यदैव स्त्रियै स्तनावाप्यायेते ऊध पशूनाम्" ।
इति शतपथब्राह्मणे । २ । ५ । १ । ५ ॥)

ऊधस्य, क्ली, (ऊधसि भवम् । ऊधस्+यत् ।) दुग्धम् । इति हेमचन्द्र ॥

ऊन,व् क परिहाणे । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (अदन्त-चुरा-पर-सक-सेट् ।) दीर्घादिर्दन्त्योपधः । तथा च । "क्षोभमाशु हृदय न यदूना रागवृद्धिमकरोन्न यदूनाम्" । इति माघयमकम् । परिहान न्यूनक्रिया । ऊनयति मणिक् स्वर्ण प्रथमपरिमाणात् । परि-माणमात्रेऽयमिति केचित् । मा भवान् ऊनिनत् । ऊनधोर्णिः अङ् द्वित्वे स्वस्थानमेव नास्ति अतो नाग्लोपित्वमिति सन्देहनिरासार्थमाह । अने-कर्दनुबन्धज्ञापकबलात् द्वित्वात् प्राक् प्राप्तो ह्रस्वो अग्लोपित्वान्न स्यात् । इति दुर्गादास ॥

ऊन, त्रि, (अवतीति । अव+"इण्सिञ्जिदीङुष्य-विभ्यो नक्" । ३ । २ । इति उणादिसूत्रेण नक् । "ज्वरत्वरेति" । ६।४ । २० ऊठ् । सर्व्वत्र तु ऊन-यतेरूनमिति साधितम् ।) हीनम् । न्यूनम् ॥
("ऊन न सत्त्वेष्वधिको बबाधे" । इति रघुः । २ । १४ ॥ तत्रैव । ११ । १ ।

"किञ्चिदूनमनूनर्द्धेः शरदामयुत ययौ"।
"ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः"।
इति मनुः। ५। ६८॥)

ऊनविंशः, त्रि, ऊनविंशतेः पूरणः। यथा,—
"तिथ्यङ्कवेदैकदशोनविंश-
मैकादशाष्टादशविंशसंख्या।
इष्टोडुना सूर्य्ययुतोडुना च
योगादमूश्चेच्छयोगभङ्गः"॥
इति ज्योतिस्तत्त्वम्॥

ऊनविंशति, स्त्री, (एकेन ऊना विंशतिः।) एकोनविंशतिः। ऊनिश इति भाषा। यथा। "ऊनविंशतिदास्यमानपिण्डस्थानानि"। इति तिथ्यादितत्त्वे श्राद्धावस्थाप्रकरणे॥

ऊम्, व्य (ऊयते। ऊय+मुक्।) रोषोक्तिः। प्रश्नः। इति मेदिनी॥ निन्दा। स्पर्द्धा। इति शब्दरत्नावली॥

ऊम, स्त्री, (अवतीति। अव+"अविसिविसिशुषिभ्यः कित्"। १।१४३। इति उणादिसूत्रेण मन्। कित् ऊठ् च।) देशविशेषः। इति सिद्धान्तकौमुदी॥

ऊय, ई ङ सेवने। तन्तुसन्ताने इति यावत्। इति कविकल्पद्रुमः (भ्वादि-आत्म सकं सेट्।) दीर्घादिः। सेवनमिह सिव्युतन्तुततावित्यस्य रूपं ई ऊत। ङ ऊयते पटं सौचिकः। इति दुर्गादासः॥

ऊररी, व्य (ऊय+बाहुलकात् ररीक्।) विस्तारः। अङ्गीकारः। इति भरतो द्विरूपकोषश्च॥

ऊरव्यः, पु, (ऊरोर्जातः। ऊरु+शरीरावयवात् यदिति यत्। वैश्यस्य ब्रह्मण ऊरोर्जातत्वात् तथात्वम्।) वैश्यः। इत्यमरः॥ (यदुक्तं यजुषि। ३१। ११॥
"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत"॥ इति॥)

ऊरी, व्य (ऊर+बाहुलकात् रीक्।) विस्तारः। अङ्गीकारः। इत्यमरः॥ (यथा हितोपदेशे विग्रहे। "ऊरीकृत्य प्रस्थित"॥)

ऊरीकृत, त्रि, (ऊरी+कृ+क्त।) अङ्गीकृतः। विस्तृतः। इत्यमरः॥

ऊरु, पु, (ऊर्णूयते आच्छाद्यते इति। ऊर्णु+(ऊर्णोतेर्नुलोपश्च। १। ३१। इति उणादिसूत्रेण कर्म्मणि कुः नुलोपश्च।) जानूपरिभागः। उरत् इति भाषा। तत्पर्य्यायः। सक्थि २। इत्यमरः॥ (यथा, साहित्यदर्पणे।
"भुवनत्रितये न बिभर्त्ति तुलामिदमूरुयुगं न चमूरुदृशः"।
"भुजमूर्द्धोरुबाहुल्यादेकोऽपि धनदानुजः"।
इति रघुः। १२। ८८। तथा मनुः। १। ३१।
"लोकानान्तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः"॥)

ऊरुज पु, (ऊरोर्जायते इति। ऊरु+जन्+ड।) वैश्यः। स तु ब्रह्मण ऊरुभ्यां जातः। इत्यमरः॥ (यथा, विष्णुपुराणे। १। ६। ४।
रजसा तमसा चैव समुद्रिक्तास्तथोरुजाः"।

भृगुवंशीय ऋषिविशेषः। स च और्व्व इति नाम्ना ख्यातः। तस्य जन्मकथा और्व्वशब्दे द्रष्टव्या॥)

ऊरुपर्व्वा, [न्] पु, स्त्री, (ऊरोः पर्व्वेव।) जानु। इत्यमरः॥ हाँटु इति भाषा॥

ऊरुरी, व्य, (ऊरु+ररीक्।) विस्तारः। अङ्गीकारः। इति भरतो द्विरूपकोषश्च॥

ऊरुस्तम्भ, पु, (ऊरू स्तभ्नाति इति ऊरु+स्तम्भ+अण्।) ऊरुरोगविशेषः। यथा। अथोरुस्तम्भाधिकारः। तत्रोरुस्तम्भस्य विप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदानसम्प्राप्तिपूर्व्वकं लक्षणमाह।
"शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः।
जीर्णाजीर्णे तथायाससङ्क्षोभस्वप्नजागरैः॥
सश्लेष्ममेदः पवनं साममत्यर्थसञ्चितम्।
अभिभूयेतरं दोषमूरू चेत् प्रतिपद्यते॥
सक्थ्यस्थिनी प्रपूर्य्यान्तः श्लेष्मणा स्तिमितेन स।
तदा स्तभ्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ॥
परकीयाविव गुरू स्यातामतिभृशव्यथौ।
ध्यानाङ्गमर्द्दस्तैमित्यतन्द्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः॥
संयुतौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः।
तमूरुस्तम्भमित्याहुराढ्यवातमथापरे"॥
जीर्णाजीर्णे किञ्चिज्जीर्णे किञ्चिदजीर्णे तस्मिन् भोजनमित्यर्थः। अतएव दृढबलेन जीर्णाजीर्णे समश्नत इति पठितम्। तत्र शीतादिभिर्निषेवितैर्भुक्तैः। सङ्क्षोभेण सञ्चलनेन। स्वप्नेन दिवा। जागरणेन रात्रौ। अभिभूय दूषयित्वा। इतरं दोषं पित्तम्। स्तिमितेन आर्द्रेण द्रुतेनेति यावत्। न तु घनेन। एवंविधेन श्लेष्मणा। स पवनः। तदा ऊरू स्तभ्नाति तेन स्तम्भेन। अचेतनौ शून्यौ। परकीयाविव अक्रियावित्यर्थः। ध्यानं समूढता। पादसम्बन्धिनीभिः सदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिश्च संयुक्तौ। अथ सुश्रुतेन महावातव्याधिषु पठितः॥* प्राग्रूपमाह।
"प्राग्रूपं तस्य निद्रातिध्यानं स्तिमितता ज्वरः।
रोमहर्षोऽरुचिश्छर्द्दिर्जङ्घोर्व्वोः सदनं तथा"॥*॥
तस्योपशयमाह।
"वातशङ्किभिरज्ञानात्तत्र स्यात् स्नेहनात् पुनः।
पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा॥
जङ्घोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वद्दाहश्च वेदना।
पदञ्च व्यथते न्यस्तं शीतस्पर्शं न वेत्ति च॥
संस्थाने पीडने गत्या चालने चाप्यनीश्वरः।
अन्यनेयौ हि सम्भग्नावूरू पादौ च मन्यते"॥
अन्यनेयौ अन्यपुरुषचाल्यौ भवत इत्यर्थः। अज्ञानात् अनिश्चयात् स्तम्भ-सुप्ति-कम्पादि-दर्शनेन। वातशङ्किभिः वातव्याधिशङ्किभिः। तत्र ऊरुस्तम्भे। स्नेहनात् स्नेहादिना स्नेहन्या चिकित्सया। पादसदनादय ऊरुभङ्गोपमत्वात् ते विकाराः स्युः। जङ्घोरुग्लानिः जङ्घोर्व्वोर्गमनादावशक्तिः। आदाहः वेदना ईषद्दाहेन सह वेदना॥*॥
ऊरुस्तम्भस्यारिष्टं लक्षणमाह।
"यदा दाहार्त्तितोदार्त्तो वेपनः पुरुषो भवेत्।
ऊरुस्तम्भस्तदा हन्यात् साधयेदन्यथा नवम्"॥
अन्यथा दाहाद्युक्तोपद्रवरहितं तमपि नवमुत्पन्नमात्रं साधयेत्॥*॥*॥
अथोरुस्तम्भस्य चिकित्सा।
"स्नेहाभ्यङ्गप्लावनं वमनं वस्तिकर्म्मविरेचनम्।
वर्ज्जयेदाढ्यवाते तु यतस्तत्तस्य कोपनम्॥
तस्मादत्र सदा कार्य्यं स्वेदनं घनरूक्षणम्।
आममेदःकफाधिक्यान्मारुतं नयता समम्॥
यत् स्यात् कफप्रशमनं न तु मारुतकोपनम्।
तत्सर्व्वं सर्व्वदा कार्य्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम्॥
सर्व्वो रूक्षक्रमः कार्य्यस्तत्रादौ कफनाशनः।
पश्चाद्वातविनाशाय विधातव्याखिला क्रिया॥
भोज्या पुराणाः श्यामाककोद्रवोद्दालशालयः।
जाङ्गलैरघृतैर्म्मांसैः शाकैश्चालवणैर्हितैः"॥
उद्दालो वनकोद्रवः।
"दध्यादाम्लकशाकेन स्विन्नेन लवणेन तु।
जीर्णशाल्योदनं रूक्षमूरुस्तम्भवते भिषक्॥
रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशादिसम्भवः।
स्नेहस्वेदक्रमस्तत्र कार्य्यो वातामयापहः॥
प्रतारयेत् प्रतिस्रोतः सरितं शीतलोदकाम्।
सरश्च विमलं शीतं स्थिरतोयं पुनः पुनः॥
मूर्व्वा वाजिगन्धाया अथवार्कस्य कारयेत्।
गाढमुत्सादनं वैद्य ऊरुस्तम्भे सवेदने॥
त्रिफलाग्रन्थिकव्योषचूर्णं लिह्यात् समाक्षिकम्।
ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिबेत्॥
नागरं पिप्पलीञ्चापि गुग्गुलुं वा शिलाजतु।
ऊरुस्तम्भी पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा"॥
इत्यूरुस्तम्भाधिकारः। इति भावप्रकाशः॥
अपि च।
"त्रिफला चित्रकं चित्रं तथा कटुकरोहिणी।
ऊरुस्तम्भहरो ह्येष उत्तमन्तु विरेचनम्॥
हरीतकी शृङ्गवेरं देवदारु च चन्दनम्।
क्वाथयेच्छागदुग्धेन अपामार्गस्य मूलकम्॥
शश्वदूरुस्तम्भं सप्तरात्रे तु नाशयेत्"॥*॥
इति गारुडे १८७ अध्यायः॥
("एष ऊरुस्तम्भ इति ख्यातस्त्रिदोषसमुत्थानः"।
इति चरके सूत्रे ऊनविंशोऽध्यायः॥
अस्य सकारणलक्षणसम्प्राप्तिचिकित्सितानि यथा,
"क्रिया परमया ब्राह्म्या परया च तपःश्रिया।
अहीनं चन्द्रसूर्य्याभ्यां सुमेरुमिव पर्व्वतम्॥
धीधृतिस्मृतिविज्ञानज्ञानकीर्त्तिक्षमालयम्।
अग्निवेशो गुरुं काले संशयं परिपृष्टवान्॥
भगवन्! यस्य कर्म्माणि समस्तानि पृथक्तया।
निर्द्दिष्टान्यामयानान्तु सर्व्वेषामेव भेषजम्॥
दोषजोऽस्त्यामयः कश्चिदस्यैतानि भिषग्वर!।
न स्युः शक्ता निशमने साध्यस्य क्रियया तत॥
अस्त्यूरुस्तम्भ इत्युक्ते गुरुणा तस्य कारणम्।
सलिङ्गं भेषजं भूयः पृष्टस्तेनाब्रवीद्गुरुः"॥*॥
निदानं सम्प्राप्तिलक्षणे च यथा॥
"स्निग्धोष्णलघुशीतानि जीर्णाजीर्णे समश्नतः।
द्रवशुष्कदधिक्षीरग्राम्यानूपौदकामिषैः॥
पिष्टव्यापन्नमद्यातिदिवास्वप्नप्रजागरैः।
लङ्घनाध्यशनायासभयवेगविधारणैः॥
स्नेहामासञ्चितं कोष्ठे वातादीन् मेदसा सह।

सञ्चास्तु गौरवादूरू यात्यधोगैः शिरादिभिः ॥
पूरयन् सक्थिजङ्घोरुदोषो मेदोमलोत्कटः ।
अविधेय परिस्पन्द जनयत्यल्पविक्रमम् ॥
महासरसि गम्भीरे पूर्णोऽम्बु स्तिमित यथा ।
तिष्ठति स्थिरमक्षोभ्य तद्वदूरुगतः कफः ॥
गौरवायाससङ्कोचदाहरुक्सुप्तिकम्पनैः ।
भेदस्फुरणतोदैश्च युक्तो देह निहन्त्यसून् ॥
गुरु श्लेष्मा समेदस्को वातपित्तेऽभिभूय तु ।
स्तम्भयेत् स्थैर्य्यशैत्याभ्यामूरुस्तम्भस्ततो मतः" ॥

पूर्व्वरूपाणि यथा ॥

"प्राग्रूप ध्याननिद्रातिस्तैमित्यारोचकज्वराः ।
रोमहर्षश्च छर्द्दिश्च जङ्घोर्व्वोः सदनन्तथा" ॥
अन्यदत्रैव प्रागुक्तम् ॥ * ॥

चिकित्सा-यथा ॥

"तस्य न स्नेहनं कार्य्यं न वस्तिर्न विरेचनम् ।
न चैव वमन यस्मात्तन्निबोधत कारणम् ॥
हृद्धये श्लेष्मणो नित्य स्नेहन वस्तिकर्म्म च ।
तत्स्थस्योद्धरणे चैव न समर्थ विशोधनम् ॥
श्लेष्मस्थानगत श्लेष्मा पित्तञ्च वमनात्सुखम् ।
हर्त्तुमामाशयस्थौ च स्रसनात्तावुभावपि ॥
पक्वाशयस्थाः सर्व्वेऽपि वस्तिभिर्मूत्रनिर्जयात् ।
शक्या न त्वाममेदोभ्या स्तब्धा जङ्घोरुसंस्थिताः ॥
वातस्थाने स्थित शैत्यात्तयोस्तम्भाच्च तद्गता ।
न शक्या सुखमुद्धर्त्तुं जल निम्नादिव स्थलात् ॥
तस्य सशमन कुर्य्यात् क्षपणं शोधनन्तथा ।
आधिक्यादामकफयोर्युक्त्यपेक्ष सदा भिषक् ॥
सदा रूक्षोपचाराय यवश्यामाककोद्रवान् ।
शाकैरलवणैर्द्द्यादुब्जलतैलोपसाधितैः ॥
सुनिषण्णकनिम्बार्कवेत्राग्रभधपल्लवैः ।
वायसीवास्तुकैरन्यैस्तिक्तैश्च कुलकादिभि ॥
क्षारारिष्टप्रयोगैश्च हरीतक्यास्तथैव च ।
मधूदकस्य पिप्पल्या ऊरुस्तम्भविनाशना ॥
समङ्गा शाल्मली विल्व सधुना सह नापिबेत् ।
तथा शीवष्ठकोदीच्यदेवदारुमतान्यपि ॥
चन्दन धातकीकुष्ठ लालोध्र नलदन्तथा ।
मुस्त हरीतकी लोध्र पद्मक तिक्तरोहिणी ॥
देवदारु हरिद्रे द्वे वचा कटुकरोहिणी ।
पिप्पली पिप्पलीमूल सरल देवदारु च ॥
चव्य चित्रकमूलानि देवदारु हरीतकी ।
भल्लातक समूला च पिप्पली पञ्च तान् पिबेत् ॥
सक्षौद्रानर्द्धश्लोकोक्तान् कल्कानूरुग्रहापहान्" ॥
"मूर्व्वामतिविषां कुष्ठ चित्रक कटुरोहिणीम् ।
पूर्व्ववद्वा पिवेत्तोये रात्रिस्थितमथापि वा ॥
स्वर्णक्षीरीमतिविषा मुस्त तेजोवतीं वचाम् ।
सुराह्व चित्रक कुष्ठ पाठा कटुकरोहिणीम् ।
लेहयेन्मधुना चूर्णं सक्षौद्र वा जलप्लुतम्" ॥
"अपतर्पणजश्च स्याद्दोषः सन्तर्पयेत्तु तम् ।
युक्त्या जाङ्गलजैर्मांसैः पुराणैश्चैव शालिभिः ॥
क्षयाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशार्त्तिपूर्व्वकः ।
स्नेहस्वेदक्रमस्तत्र कार्य्यो वातामयापहः" ॥
"कुष्ठं श्रीवेष्टकोदीच्य सरल दारुकेशरम् ।
अजगन्धाश्वगन्धा च तैलन्ते सार्षप पचेत् ।
सक्षौद्र मात्रया तच्चाप्यूरुस्तम्भार्द्दित पिबेत्" ।

इति कुष्ठाद्य तैलम् ॥ * ॥

"पलाभ्या पिप्पलीमूलनागरादष्टकट्वर ।
तैलप्रस्थः समो दध्ना स्मृतस्थूरुग्रहापहः" ॥

इति अष्टकट्वर तैलम् ॥ * ॥

"इत्यभ्यन्तरमुद्दिष्टमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ।
श्लेष्मणः क्षपणान्वन्यद्बाह्य शृणु चिकित्सितम् ॥
वल्मीकमृत्तिकामूल करञ्जात् सफलत्वचम् ।
इष्टकाना ततश्चूर्णैः कुर्य्यादुत्सादन भृशम् ॥
मूलैर्वाप्यश्वगन्धाया मूलैरर्कस्य वा भिषक् ।
पिचुमर्द्दस्य वा मूलैरथवा देवदारुणः ॥
क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासयुतैर्भिषक् ।
गाढ़मुत्सादन कुर्य्यादूरुस्तम्भे प्रलेपनम्" ॥
"श्योनाक खदिर विल्व वृहत्यौ सरलासनौ ।
अग्निमन्थाढकीशिग्रुश्वदंष्ट्रासुरसार्ज्जकान् ॥
तर्कारीं नक्तमालञ्च जलेनोत्क्वाथ्य सेचयेत् ।
प्रलेपो मूत्रपिष्टैर्वाप्यूरुस्तम्भनिवारणः ॥
कफक्षयार्थं व्यायामेष्वेनं शक्येषु चोत्सृजेत् ।
स्थलान्याक्रामयेत् काल्य शर्करा सिकतास्तथा ॥
प्रतारयेत् प्रतिस्रोतो नदीं शीतजलां शिवाम् ।
सरश्च विमल शीत स्थिरतोय पुन पुनः ॥
तथा विशुष्केऽस्य कफे शान्तिमूरुग्रहो व्रजेत् ।
श्लेष्मण क्षपणा यत्स्यान्न च मारुतकोपनम् ॥
तत् सर्व्वं सर्व्वदा कार्य्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ।
शरीर बलमग्निञ्च कार्य्यैषा रक्षता क्रिया" ॥
इति चरके चिकित्सास्थाने २७ अध्यायः ॥ * ॥
"निष्कत्रयं शुद्धसूत निष्कद्वादशगन्धकम् ।
गुञ्जावीजञ्च पलिष्क निम्बवीज जया तथा ॥
प्रत्येक निष्कमात्रन्तु निष्क जैपालवीजकम् ।
जया जम्बीरधुस्तूरकाकमाचीद्रवैर्दिनम् ॥
भावयित्वा वटीं कृत्वा दद्याद्गुञ्जाचतुष्टयम् ।
गुञ्जाभद्ररसो नाम हिङ्गुसैन्धवसयुत ॥
शमयत्यूर्द्धग दु खमूरुस्तम्भ सुदारुणम्" ॥
इति गुञ्जाभद्रो रस ॥ इति वैद्यकरसेन्द्रसार-
सग्रहे ऊरुस्तम्भाधिकारः ॥ * ॥)

ऊरुस्तम्भा, स्त्री, ( ऊरुस्तम्भ इव आकृतिर्यस्या ।) कदलीवृक्ष । इति राजनिर्घण्टः ॥ (कदलीशब्देऽस्या गुणादयो व्याख्येया ॥)

ऊर्ज्ज, क जीवने । बले । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (चुरां-पर-अक सेट् ।) दीर्घादि । क ऊर्जयति जनो जीवति बली स्यादित्यर्थः । इति दुर्गादासः ॥

ऊर्ज्जं, स्त्री, (ऊर्ज्ज्यते जीव्यतेऽनेन । ऊर्ज्ज + घञ् ।) जलम् । इति शब्दरत्नावली ॥ (यथा, भागवते । ४ । २४ । ३८ ॥
"नम ऊर्ज इषे त्रय्या पतये यज्ञरेतसे ।
तृप्तिदाय च जीवानां नम सर्व्वरसात्मने" ॥)

ऊर्ज्जः, पु, (ऊर्ज्जयति उत्साहयति जिगीषून् इति । ऊर्ज्ज + णिच् + अच् ।) कार्त्तिकमासः । उत्साहः । बलम् । ( यथा, ऋग्वेदे । १ । २६ । १ । "वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जा पते" । "ऊर्जां बलपराक्रमादीनाम्" । इति भाष्यम् ।) प्राणनम् । इति मेदिनी । (वीर्य्यम् । यथा, मनुः । २।५५ ।
"पूजित ह्यशन नित्य बलमूर्ज्जञ्च यच्छति" ॥
"यस्मात् पूजितमन्न सामर्थ्य वीर्य्यं च ददाति" ॥)
इति कुल्लूकभट्ट ॥) कान्तिकनामसवत्सरः ।
(स्वारोचिषस्य मनो पुत्रभेद । यथा हरिवंशे ७।१४ ।
"प्रथितश्च नभस्यश्च नभ ऊर्ज्जस्तथैव च ।
स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोस्तात महात्मनः" ॥
स्त्री, हिरण्यगर्भकन्या । यथा, हरिवंशे ७।१७ ।
"हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्ज्जा नाम सुतेजसः" ॥)

ऊर्ज्जस्वलः, त्रि, ( अतिशयितः ऊर्जो बल अस्यास्तीति । ऊर्जस् + ज्योत्स्नातमिस्रेति वलच् ।) अतिशयबलवान् । इत्यमरः ॥ ("ऊर्जस्वल हस्तितुरङ्गमेतत्" । इति भट्टिः । ३ । ५५ । "भोक्तारमूर्जस्वलमात्मदेहम्" । इति रघु । २ । ५० ॥)

ऊर्ज्जस्वि, [ न् ] क्ली, (ऊर्जस् + विनि ।) अलङ्कारविशेष । तस्य लक्षणम् । साहङ्कारवस्त्वभिधानम् । तथा चोक्तम् । ऊर्जस्वि रूढाहङ्कारम् । तस्योदाहरण यथा । "प्रचपलमगुरु भरासहिष्णु जनमसमानमनूर्जितम् विवर्ज्य । क्षतवसतिमिवार्णवोपकण्ठे स्थिरमतुलोन्नतिमूढतुङ्गमेघम्" ॥ इति भट्टिः ॥

ऊर्ज्जस्वी, [ न् ] त्रि, (अतिशयित ऊर्जो बलमस्यास्तीति + ऊर्जस् + विनि ।) अतिशयबलवान् इत्यमर ॥ (यथा, भारते ।)
"अन्नमूर्जस्कर लोके दत्त्वोर्जस्वी भवेन्नर" ॥)

ऊर्णनाभ, पु, (ऊर्णेव तन्तुर्नाभौ यस्य । यद्वा मृदुत्वादूर्णेव नाभिर्यस्य । नाभेरुपसङ्ख्यानमित्यच् इत्यमोरिति ६।३।६२ । ह्रस्व ।) कीटविशेषः माकड्सा इति भाषा । तत्पर्य्यायः । लूता तन्तुवायः ३ मर्कटक ४ । इत्यमरः ।
(यथाह उज्ज्वलदत्त । ५ । ४० ।
"नाचारेण विना वृष्टिरूर्णनाभेरपीष्यते ।
नच निःसाधनः कर्त्ता कश्चित् सृजति किञ्चन" ।
अत्र ऊर्णनाभिरिति चिन्त्यम् ।) (स्वनामख्यातधृतराष्ट्रपुत्रभेदः । यथा, महाभारते । १ । ६७ । ९७ ।
"ऊर्णनाभः सुनाभश्च तथा नन्दोपनन्दकौ" ।
स्वनामख्यातो दैत्यभेदः । यथा, हरिवंशे । ३ । ...
"सूक्ष्मश्चैव निचन्द्रश्च ऊर्णनाभो महागिरिः" ।

ऊर्णनाभिः, पु, ( ऊर्णावत् नाभौ यस्य ।) मर्कटकः इति शब्दरत्नावली ।
(यथा, भागवते । २ । ५ । ५ ।
"आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवाक्लमः" ॥)

ऊर्णा, स्त्री, (ऊर्णोति । ऊर्णु + "ऊर्णोते ड:" । ५।४...
इति उणादिसूत्रेण डः । डित्वात् टिलोपः ।) मेषादिलोम । पसम् इति भाषा । भ्रुवोरन्तरावर्त्तः इत्यमर ॥ स तु भ्रूद्वयमध्ये स्थाणतन्तुसदृशुभायत एकः प्रशस्तावर्त्तो महापुरुषलक्षणं चक्रवर्त्यादीनां महायोगिनाञ्च भवति । इ...
भरत ॥ (चित्ररथपत्नी । यथा, भागवते । ५ ।
१५।१२ । "चित्ररथादूर्णायां सम्राडजनिष्ट" ॥

ऊर्णायुः, पुं, (ऊर्णा अस्यास्तीति । ऊर्णा युस् ।) मेषलोमकम्बलः । मेषः । इत्यमरः । ऊर्णनाभ...

इति हेमचन्द्रः ॥ त्वणभङ्गः । इति मेदिनी ॥
(गन्धर्व्वविशेषः । यथा, हरिवंशे ।
"ऊर्णायुश्चित्रसेनश्च हाहा हूहूश्च भारत! ॥ )
ऊर्णु, ञ ण आच्छादने । इति कविकल्पद्रुमः ॥
(अदा-उभ-सक-सेट् ।) दीर्घादिर्दन्त्योपधः । रेफ-
योगान्मूर्द्धन्यः । तेन ऊर्णुनाव इत्यादौ निमित्ता-
भावान्मूलधातोर्णत्वाभावः । अत्र ऊर्णोति ऊर्णौति
ऊर्णुते दिशं मेघः । इति दुर्गादासः ॥
(यथा, भट्टिः । १४ । १०३ ।
"ऊर्णुनाव स शस्त्रौघैर्वानराणामनीकिनीम्" ॥)
ऊर्द्दर, पुं, ( ऊर्जेन बलेन दृणाति विदारयति ।
ऊर्ज्+दृ+"ऊर्जिदृणातेरलचौ पूर्व्वपदान्त्यलो-
पश्च" । ५ । ४० । उणादिसूत्रेण अल् अत वा ।
स्वरभेदार्थं प्रत्ययद्वयम् ।) शूरः । राक्षसः । इत्यु-
णादिकोषः ॥ (कुसूलम् । धान्याद्याधारः ।
यथा, ऋग्वेदे । २ । १४ । ११ ॥ "ऊर्द्दरं एणता
यवेनेद्धम्" । "ऊर्द्दरं कुसूलम्" इति भाष्यम् ॥ )
ऊर्द्ध, त्रि, उपरि । उच्छ्रितः । तुङ्गः । इति अन्तस्थ-
वकारान्तोर्द्धशब्दार्थे मेदिनी ॥
अत्र ऊर्द्धशब्दो निर्व्वकारः । तदुक्तं वर्णदेश-
नायाम् । उज्जिहीते उद्गच्छति उदो हाडो डप्र-
त्ययः आदिवर्णस्य ऊरादेशः । इति मधुमाधवा-
दयः ॥ इति मृदङ्गभेदोर्द्धकशब्दस्य टीकायां
भरतः ॥ ( यथा, महाभारते । मुद्गलध्यानप्राप्तौ ।
३ । २६० । २ ।
"ऊर्द्धंग सत्पथ शश्वद्देवयानचरो मुने" ॥ )
ऊर्द्धकः, पुं, (ऊर्द्धः सन् कायतीति । ऊर्द्ध+कै शब्दे
+क ।) ऊर्द्धकः । मृदङ्गविशेषः । इत्यमरटीकायां
भरतमुकुटौ । (यथा शब्दार्णवे ।
"ऊर्द्धको गोपुच्छवत् सचितालोऽष्टाङ्गुलो मुखे ।
हस्तोर्द्धं वाद्यते तेषां वादनं दुर्जन न वा" ॥
तथाच चिन्तामणौ ।
"हरीतक्याकृतिस्त्वङ्कस्तथालिङ्ग्यो यवाकृतिः ।
ऊर्द्धको दण्डतुल्यः स्यात् मुरजा भेदतो मताः" ॥)
ऊर्द्ध, पुं, दण्डवत्स्थितः । यथा,—
"आसीन ऊर्द्धः प्रह्वो वा नियमो यत्र नेदृशः ।
तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रह्वेन न तिष्ठता" ॥
इत्यादि छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ आसीन उपविष्टः ।
"ऊर्द्धो दण्डवत् स्थितः प्रह्वोऽवनतपूर्व्वकायः" ।
इति श्राद्धतत्त्वम् ॥
ऊर्द्धः, त्रि, (उत्+हा+ड । आदिवर्णस्य ऊरा-
देशः ।) उच्छ्रितः । तुङ्गः । उपरिस्थात् । इति
मेदिनी ॥ ऊर्द्धशब्दो दीर्घादि सवकारो निर्व्व-
कारश्च । तथाच उपरि ध्वन्यते इति कृतनिरुक्ति-
रूर्द्धशब्दो वकारवानिति सुभूत्यादयः ॥
"कुर्व्वतीशपलैः शुक्रैर्भुवनं नीचमूर्द्धजैः ।
तस्या चलालीवान्वेति चित्रानागचमूर्द्धजे" ॥
इति कीचकवधयमकम् ॥ (यथा, कुमारे १।१६ ।)
"पद्मानि यस्याग्रसरोरुहाणि
प्रबोधयत्यूर्द्धमुखैर्मयूखैः" ।
ऊर्द्धं शब्दो मकारान्तोऽव्ययो दीर्घादिर्वकारवान्
तथा अदन्तोऽनव्ययोऽपीति जयादित्यादयः ॥

ऊर्द्धकः, पुं, (उर्द्धः सन् कायति शब्दायते इति ।
ऊर्द्ध+कै+क ।) मृदङ्गविशेषः । यथा,—
"ऊर्द्धको गोपुच्छवत् स त्रितालोऽष्टाङ्गुलो मुखे ।
हस्तोर्द्धं वाद्यते तेषां वादनं दुर्ज्जनं ननाः" ॥
इति भरतधृतशब्दार्णवः ॥ अपिच । "हरीतक्या-
कृतिस्त्वङ्कस्तथालिङ्ग्यो यवाकृतिः । ऊर्द्धको दण्ड-
तुल्यः स्यान्मुरजा भेदतो मताः" ॥ अन्यटीका-
यान्तु । "यवमध्यस्तथोर्द्धकः" । इत्यमरटीका-
सारसुन्दरी ॥
ऊर्द्धकपाटी, स्त्री, (ऊर्द्धे कपाटः कण्टको यस्याः ।)
महाशतावरी । इति राजनिर्घण्टः ॥
("महाशतावरी चान्या शतमूल्यूर्द्धकण्टिका" ।
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे प्रथमे भागे ॥)
ऊर्द्धजानुः, त्रि, (ऊर्द्धे स्थूले जानुनी यस्य ।) उपरि-
भागे स्थूलजानुकः । तत्पर्य्यायः । ऊर्द्धज्ञुः २ ।
इत्यमरः ॥ (यथा, साङ्ख्यायनश्रौतसूत्रम् १।५।८ ।
"उपविश्योर्द्धजानु" । इति ॥)
ऊर्द्धज्ञः, त्रि, (ऊर्द्धे जानुनी यस्य । पृषोदरादित्वात्
साधुः ।) ऊर्द्धजानुः । इति भरतो द्विरूपकोषश्च ॥
ऊर्द्धज्ञुः, त्रि, (ऊर्द्धे जानुनी यस्य । "ऊर्द्धात् विभा-
षा" । ५ । ४ । १३० । इति पक्षे ज्ञुः ।) ऊर्द्धजानुः ।
इत्यमरः ॥ (यथा, साङ्ख्यायनश्रौतसूत्रम् । "ऊर्द्ध-
ज्ञुरनवानं यजति" ॥
तथाच माघे ११ । २१ ।
"क्षणमयमनुभूय स्वप्नमूर्द्धज्ञुरेव" ॥)
ऊर्द्धदेवः, पुं, (ऊर्द्धः तुङ्गः श्रेष्ठो देवः ।) विष्णुः । इति
शब्दरत्नावली ॥
ऊर्द्धन्दमः, त्रि, (ऊर्द्धम्+दम्+खच् ।) ऊर्द्धस्थः ॥
इति त्रिकाण्डशेषः ॥ ऊर्द्धङ्गम इति युक्तिसिद्ध-
पाठः ॥
ऊर्द्धपादः, पुं, (ऊर्द्धाः पादा यस्य ।) शरभः । इति
शब्दरत्नावली ॥ (ऊर्द्धपदे, त्रि ॥)
ऊर्द्धपुण्ड्रः, पुं, (ऊर्द्धः पुण्ड्र इव ।) तिलकविशेषः ।
स तु ब्राह्मणललाटे पुण्ड्रेक्षुवत् चन्दनादिना
कृतोर्द्धरेखात्रयः । यथा । "ऊर्द्धपुण्ड्रे त्रिपुण्ड्रं
स्यात् त्रिपुण्ड्रे नोर्द्धपुण्ड्रकमिति" ।
"ऊर्द्धपुण्ड्रं द्विजः कुर्य्याद्वारिमृद्भस्मचन्दनैः" ।
इत्यादि च बहवः ॥
"ऊर्द्धपुण्ड्रं मृदा कुर्य्यात् त्रिपुण्ड्रं भस्मना सदा ।
तिलकं वै द्विजः कुर्य्याच्चन्दनेन यदृच्छया ॥
ऊर्द्धपुण्ड्रं द्विजः कुर्य्यात् क्षत्रियस्तु त्रिपुण्ड्रकम् ।
अर्द्धचन्द्रन्तु वैश्यस्य वर्त्तुलं शूद्रयोनिजः" ॥
इति आह्निकतत्त्वधृतब्रह्माण्डपुराणम् ॥ (ऊर्द्ध-
पुण्ड्रधारिप्रशंसा यथा, ब्रह्मपुराणे ।
"अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरेत् ।
शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्द्धपुण्ड्राङ्कितो नरः ॥
ऊर्द्धपुण्ड्रधरो मर्त्त्यो म्रियते यत्र कुत्रचित् ।
श्वपाकोऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते" ॥
अस्य धारणे वैदिकद्विजभिन्न एवाधिकारी यदुक्तं
देवीभागवते नारायणेन ॥
"ऊर्द्धपुण्ड्रं त्रिशूलं च वर्त्तुलं चतुरस्रकम् ।
अर्द्धचन्द्रादिकं लिङ्गं वेदनिष्ठो न धारयेत् ॥

जन्मना लब्धजातिस्तु वेदपन्थानमाश्रितः ।
पुण्ड्रान्तरं भ्रमाद्वापि ललाटेनैव धारयेत् ॥
ख्यातिकान्त्यादिसिद्ध्यर्थं चापि विष्णवागमादिषु ।
स्थितं पुण्ड्रान्तरं नैव धारयेत् वैदिको नरः" ॥
श्राद्धे ऊर्द्धपुण्ड्रादिविधिनिषेधव्यवस्था ।
यथा, निर्णयसिन्धौ हेमाद्रिः ।
"जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृकर्म्मणि ।
तत्सर्व्वं नश्यति क्षिप्रमूर्द्धपुण्ड्रं विना कृतम्" ॥
तथा च नारदः ।
"यज्ञो दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म्म च ।
वृथा भवति विप्रेन्द्राः । ऊर्द्धपुण्ड्रं विना कृतम्" ॥
इत्यादिवचनात् पैत्रे कर्म्मणि ऊर्द्धपुण्ड्रधारणं
विहितम् । केचित्तु ।
'ऊर्द्धपुण्ड्रो द्विजातीनामग्निहोत्रसमो विधिः ।
श्राद्धकाले च संप्राप्ते कर्त्ता भोक्ता च वर्जयेत्" ॥
तथा,—
"वामहस्ते च ये दर्भा गृहे रक्तबलिस्तथा ।
ललाटे तिलकं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः" ॥
इति संग्रहोक्तवचनात् तथा,—
"ऊर्द्धपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा चन्द्राकारमथापि वा ।
श्राद्धकर्त्ता न कुर्व्वीत यावत् पिण्डान्न निर्वपेत्" ।
इति विश्वप्रकाशवचनाच्च श्राद्धकाले ऊर्द्धपुण्ड्रा-
दिकं न धार्य्यमित्याहुः । तन्न, यतः कुलाचारा-
देव व्यवस्था । यत्तु,—
"ललाटे पुण्ड्रकं दृष्ट्वा स्कन्धे माल्यं तथैव च ।
निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम्" ॥
इति हेमाद्रिधृतवचनम् तत् गन्धत्रिपुण्ड्रक-
विषयम् । अतः श्राद्धकाले गन्धत्रिपुण्ड्रकमेव न
धार्य्यः । अन्यरूपस्तु धार्य्य एव । तथा च व्यासः ।
"वर्जयेत्तिलकं भाले श्राद्धकाले च सर्व्वदा ।
ऊर्द्धपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा धारयेत्तु प्रयत्नतः" ॥)
ऊर्द्धरेताः, [स्] पुं, (ऊर्द्धं रेतो यस्य न पतति वीर्य्यं
यस्येत्यर्थः ॥) महादेवः । इति त्रिकाण्डशेषः ।
(अष्टोत्तरसहस्रनामान्तर्गतो महादेवस्य नाम-
भेदः । यथा महाभारते १३ । १७ । ४५ ।
"ऊर्द्धरेता ऊर्द्धलिङ्ग ऊर्द्धशायी नभःस्थलः" ॥)
भीष्मः । (कृतसमावर्त्तनोऽपि भीष्मदेवः पितु
काम्यविवाहार्थं वैवाहिकधर्म्मं त्यक्तवान् अतस्तस
ऊर्द्धरेतस्त्वं जातम् । एतद्विवरणन्तु महाभारते १
सत्यवतीलाभोपाख्याने १०० अध्याये द्रष्टव्यम् ॥
मुनिविशेषः । तद्यथा । सनक-सनन्द-सनातन
सनत्कुमारादयः । (यथा, महाभारते २ । ब्रह्म
सभावर्णने । ११ । ४९ ॥
"अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामूर्द्धरेतसाम्" ॥
त्रि, विषयासङ्गरहितः । सन्न्यासी । यथा भ
रते शकुन्तलोपाख्याने,—
"ऊर्द्धरेता महाभागो भगवान् लोकपूजितः ।
चलेद्धि वृत्ताधर्म्मोऽपि न चलेत् संशितव्रतः" ॥
ऊर्द्धलिङ्गः, पुं, (ऊर्द्धं लिङ्गं यस्य ।) महादेवः । इ
हेमचन्द्रः ॥ (यथा, महाभारते १३ । १७ । ४५
"ऊर्द्धरेता ऊर्द्धलिङ्ग ऊर्द्धशायी नभःस्थलः" ॥)
ऊर्द्धलोकः, पुं, (ऊर्द्धः उपरिस्थो लोकः ।) स्वर्गः । इ

हेमचन्द्रः ॥ ( यथा, मुग्धबोधे कारकप्रकरणे। ५ सूत्रम् ।

"ऊर्द्ध्वांसखादयदनाययदूर्द्ध्वलोका-
माक्रन्दयत्कपिभिरायायदाशु राम" ॥)

ऊर्द्ध्वस्थः, त्रि, (ऊर्द्ध्वं तिष्ठति य । ऊर्द्ध्व + स्था + क ।) उपरिस्थितः । तत्पर्य्याय । ऊर्द्ध्वन्दम २ । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

ऊर्द्ध्वस्थितिः, स्त्री, (ऊर्द्ध्वा स्थितिर्यत्र ।) ऊर्द्ध्वावस्था । स तु अश्वस्य पृष्ठस्थानम् । तत्पर्य्याय । पुरुषकम् २ । इति त्रिकाण्डशेष ॥ उपरिस्थितिः । उपरिस्थानम् ॥

ऊर्द्ध्वासितः, पुं, ( ऊर्द्ध्वं आसित ।) कारवेल्ल । इति त्रिकाण्डशेष ॥ करला इति भाषा ॥

ऊर्म्मिः, स्त्री, पु, ( ऋच्छतीति । ऋ गतौ । "अर्त्ते रूच्च" ।४।४४। इति उणादिसूत्रेण मिः। अर्त्ते रूरादेशश्च ॥) तरङ्ग । (यथा, रघु ।१२। ८५ ।
"तमाधूतध्वजपट व्योमगङ्गोर्म्मिवायुभि" ॥)
प्रकाशः । वेग । भङ्गः । वस्त्रसङ्कोचरेखा । वेदना । पीडा । इति मेदिनी ॥ उत्कण्ठा । इति हेमचन्द्र ॥ "शोकमोहौ जरामृत्यू क्षुत्पिपासे षडूर्म्मयः" । इति श्रीभागवतटीका ॥
(बुभुक्षादयः षट्, यथा,—
"बुभुक्षा च पिपासा च प्राणस्य मनस स्मृतौ ।
शोकमोहौ शरीरस्य जरामृत्यू षडूर्म्मय" ॥
(अश्वगतिभेद । तल्लक्षणं यथा वैजयन्त्याम् ।
"पञ्चोल्लतानामश्वाना नमनोन्नमनाकृतिः ।
अतिवेगसमायुक्ता गतिरूर्म्मिरुदाहृता" ॥
तथा च माघे ५ । ४ ।
"तूर्णं पयोधर इवोर्म्मिभिरापतन्त" ॥)

ऊर्म्मिका, स्त्री, (ऊर्म्मिरिव । इवे प्रतिकृताविति कन् । ऊर्म्मि प्रकाशं कायतीति वा । आतोनुपेति क ।) उत्कण्ठा । भृङ्गनाद । वस्त्रभङ्ग । अङ्गुरीयकम् । वीचि । इति हेमचन्द्र ॥

ऊर्म्मिमान्, [त्] त्रि, (ऊर्म्मिरस्यास्तीति । ऊर्म्मि + मतुप् ।) वक्र । इत्यमरः ॥ ढेउखेलानिया इति भाषा । तरङ्गयुक्त ॥ (यथा, महाभारते २ । द्रौपदीप्रश्ने ६२ । २८ ।
"दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्म्मिमत्सु
जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम्" ॥)

ऊर्म्मिमाली, [न्] पु, (ऊर्म्मीणा माला विद्यतेऽस्य । इनि ।) समुद्रः । इति त्रिकाण्डशेष ॥ ("चन्द्रप्रवृद्धोर्म्मिरिवोर्म्मिमाली" । इति रघु ५ । ६१ ॥)

ऊर्व्वरा, स्त्री, उर्व्वरा । सर्व्वशस्याढ्या भूमी । इति शब्दरत्नावली । (व्युत्पत्तिस्तु ऋकारादौ उर्व्वराशब्दे द्रष्टव्या ॥)

ऊर्व्वशी, स्त्री, ( ऊरुमश्नुते स्वकारणत्वेन व्याप्नोति या । ऊरु + अश् + अच् + ङीप् । नारायणोरु सम्भवत्वात् तथात्वम् ।) उर्व्वशी । स्वर्गवेश्याविशेष । इत्यमरटीकायां रायमुकुटः ॥ (विवृतिस्तु ऋकारादौ उर्व्वशीशब्दे द्रष्टव्या ॥)

ऊर्व्वसी, स्त्री, (ऊरौ उषिता इति । पृषोदरादित्वात् साधुः ।) उर्व्वशी । इत्यमरटीकासारसुन्दरी ॥

ऊर्व्याङ्क, स्त्री, (ऊर्व्याः पृथिव्या अङ्कमिव ।) गोमयच्छत्रिका । तत्पर्य्यायः । दिलीरम् २ शिलीन्ध्रकम् ३ वर्षारोहम् ४ गोलासम् ५ । इति हारावली ॥

ऊर्षा, स्त्री, देवताडवृक्षम् । इति शब्दचन्द्रिका ॥

ऊलुपी, [न्] पु, उलुपी । शिशुमार । इत्यमरटीकासारसुन्दरी ॥ (जलजन्तुविशेष ॥)

ऊलूक, पु, (उलु कशब्देऽस्य व्युत्पत्तिर्द्रष्टव्या ।) उलुक पेचक । इत्यमरटीकायां रायमुकुटः ॥
(यथा, पञ्चतन्त्र ३ । ७७ ।
"ऊलूका न्पति कृत्वा का नः सिद्धिर्भविष्यति" ॥)

ऊष रोगे । इति कविकल्पद्रुम ॥ (भ्वादि-परं सकसेट् ।) दीर्घादि । "ऊषति सन्तं खल" । इति दुर्गादास ॥ [वणी ॥

ऊष, स्त्री, (ऊष् + क ।) प्रभातम् । इति शब्दरत्ना-

ऊष, पु, क्षारमृत्तिका । इत्यमर ॥
(यथा मनुः ५ । १२० ।
"कौषेयाविकयोरूषै कुतपानामरिष्टकै" ।
"ऊषै क्षारमृत्तिकाभि" इति कुल्लुभट्ट ।
कर्णविवरम् । चन्द्राद्रि ॥)

ऊषक, स्त्री, (ऊष + स्वार्थे कन् ।) प्रत्यूषम् । इति शब्दरत्नावली ।

ऊषण, स्त्री, (ऊष् + ल्युट् ।) मरिचम् । इति हेमचन्द्र ॥ (मरिचार्थे पर्य्यायो यथा,—
"मरिच वेल्लज कृष्णमूषण धर्म्मपत्तनम्" ॥
गुणाश्चास्य मरिचशब्दे ज्ञेया ॥ शुण्ठी च । एतदर्थे पर्य्यायो यथा,—
"शुण्ठी विश्वा च विश्वञ्च नागर विश्वभेषजम् ।
ऊषण कटुभद्रञ्च शृङ्गवेर महौषधम्" ॥
गुणाश्च शुण्ठीशब्दे ज्ञातव्याः ॥ पिप्पलीमूलञ्च । एतदर्थे पर्य्यायो यथा,—
"ग्रन्थिक पिप्पलीमूलमूषण चटकाशिर" ।
अस्य गुणाश्च पिप्पलीमूलशब्दे बोद्धव्या । इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे प्रथमे भागे ॥)

ऊषणा, स्त्री, ऊषण । पिप्पली । इति शब्दरत्नावली ॥ (चविका । अस्या पर्य्यायो यथा,—
"भवेच्चव्यन्तु चविका कथिता सा तथोषणा" ।
गुणाश्चास्याश्चविकाशब्दे बोध्या । इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे प्रथमे भागे ॥)

ऊषर, त्रि, (ऊष + र ।) क्षारभूमी । नोना जायगा इति भाषा । तत्पर्य्याय । ऊषवान् २ । इत्यमर ॥
("तत्र विद्या न वप्तव्या शुभ बीजमिवोषरे" ।
इति मनु । २ । ११२ । ऊषरा मृत्तिका कोपयेत् । प्रमाण यथा ॥ "पित्तमूषरा" इति वैद्यकमाधवकृतरोगनिश्चये मानाधिकारे ॥)

ऊषरज, स्त्री, (ऊषर + जन् + ड ।) पाशवलवणम् । रोमकनामायस्कान्तभेद । इति राजनिर्घण्ट ॥

ऊषवान्, [त्] त्रि, (ऊषो विद्यतेऽस्य । ऊष् + मतुप् । मस्य व ।) ऊषरभूमी । इत्यमरः ॥

ऊषा, स्त्री, (ऊष् + क + टाप् ।) उषा । अनिरुद्धभार्य्या । इति शब्दरत्नावली ॥ (तत्कथा च भागवते १० स्कन्धे ६२ अध्याये तथा हरिवंशे १७४ अध्याये बाणयुद्धे द्रष्टव्या ॥)

ऊह उ वितर्के । सन्देहादिविचारे । इति कविकल्पद्रुम ॥ (भ्वादि-आत्म सक-सेट् ।) दीर्घादि सन्देहादिविचारस्तर्कः । उ ऊहते धर्म्म धीर यश्च समूहन्निव दिग्विकीर्णमिति गेर्व्वाखोर्व्वाद्वेति परस्मैपदविधानाच्छन्तम् । "अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जन" । इति गणकृतानित्यत्वादिति रमानाथ । वस्तुतस्तु पचादित्वादनि ऊह इवाचरतीति क्वौ साध्यम् । इति दुर्गादास ॥

ऊहः, पु, (ऊह + घञ् ।) पूर्व्वोक्तस्य उत्प्रेक्षणम् । तत्पर्य्याय । अध्याहार २ तर्क ३ । इत्यमर । वितर्कः ४ । वूह ५ व्यूह ६ वितर्कणम् ७ अध्याहरणम् ८ ऊहनम् ९ प्रतर्कणम् १० । इति शब्दरत्नावली ॥ अपूर्व्वोत्प्रेक्षणम् । इति जैमिनिः ॥ असमवेतार्थकपदत्यागपूर्व्वकसमवेतार्थकपदसमभिव्याहारकरणम् । इति श्राद्धतत्त्वटीका ॥ साकाङ्क्षवाक्यस्य पदान्तरेण आकाङ्क्षापूरणम् ॥ (ऊहनम् । आरोप । यथा, महाभारते १३ । उमामहेश्वरसंवादे १४५ । ४१ ॥
"इमे मनुष्या दृश्यन्ते ऊहापोहविशारदा ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्ना प्रज्ञावन्तोऽथ कोविदा" ॥
परीक्षणम् । सिद्धिभेदः ॥)

ऊहनी, स्त्री, (ऊह + ल्युट् + ङीप् ।) सम्मार्ज्जनी । इति शब्दरत्नावली ॥ झाँटा इति भाषा ॥

---

## ऋ

ऋ, ऋकार । सप्तमस्वरवर्णः । अस्योच्चारणस्थान मूर्द्धा । ("ऋटुरषाणाम्मूर्द्धा" । इत्युक्ते । तथाच शिक्षाया "स्युर्मूर्द्धन्या ऋटुरषाः" । तथा च मुग्धबोधे । "ऋचय टठडढणरषा मूर्द्धण्या" । इति ।) स तु ह्रस्वो दीर्घ प्लुतश्च भवति ॥ (एव त्रिधापि उदात्तानुदात्तस्वरितभेदात् नवविधस्तत्प्रत्येक अनुनासिकानुनासिकभेदादष्टादशविध एव ।)
"ऋकार परमेशानि कुण्डली मूर्त्तिमान् स्वयम् ।
अत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव वरानने ॥
सदाशिवयुत वर्णं सदा ईश्वरसयुतम् ।
पञ्चवर्णमय वर्णं चतुर्ज्ञानमय तथा ॥
रक्तविद्युल्लताकार ऋकार प्रणमाम्यहम्" ॥
इति कामधेनुतन्त्रम् ॥ (वङ्गीयभाषायाम्) तस्य लेखनप्रकारादि यथा ।
"ऊर्द्ध्वादृद्धगता वक्रा त्रिकोणा वामतस्ततः ।
पुनस्त्वधोदृद्धगता मात्रा शक्तिः परा स्मृता ॥
मात्रासु ब्रह्मविष्णीशास्तिष्ठन्ति क्रमतः परा" ।
इति वर्णोद्धारतन्त्रम् ॥ * ॥ तस्य नामानि यथा ।
"ऋ ऊर्द्ध्वमुखी रुद्रो देवमाता त्रिविक्रम ।
भावभूति क्रिया क्रूरा रेचिका नासिका धृत ॥
एकपादशिरो माला मण्डला शान्तिनी जलम् ।
कर्णा कामलता मेधो निवृत्तिर्गणनायक ॥
रोहिणी शिवदूती च पूर्णगिरिश्च सप्तमी" ।
इति तन्त्रम् ॥ (मातृकान्यासेऽस्य दक्षिणनासायामवस्थितित्वात्तदाख्ययाप्यभिधानम् । यथा, मातृका

न्यासधृतमन्त्रे "ऋ नमो दक्षिणगण्डे ॠ नमो वामगण्डे"। इति। अनुबन्धविशेषः। यथा, कविकल्पद्रुमः। "उः क्त्वावेट्कस्तु वेट्क ऋ। षडा ङस"। एतेन ढौकृङ् गत्यामित्यस्य लुङि अडुढौकदिति सिद्धम्॥)

ऋ, प्रापे। गत्याम्। इति कविकल्पद्रुमः॥ (भ्वादि-पर-सक-अनिट्।) प्राप प्राप्ति। "ऋच्छति धनं सती"। इति दुर्गादासः॥

ऋ, इर् ल गत्याम्। इति कविकल्पद्रुमः॥ (अदा-परं-सकं-अनिट्॥)

ऋ, र लि गत्याम्। (जुहो-परं-सकं-अनिट्।) र वैदिक। लि इयर्त्ति। शपो लुक्त्वादस्य शद्-शानयोरेव ऋच्छादेशः। इयृच्छत् समियृच्छान। इति दुर्गादासः॥

ऋ, र न हिंसने। इति कविकल्पद्रुमः॥ (स्वा-परं-सकं-अनिट्।) र वैदिक। न ऋणोति। रेफादिस्तृतीयस्वरान्तोऽयमिति केचित्। इति दुर्गादासः॥

ऋ, व्य गर्हणम्। वाक्यम्। देवमातरि स्त्री। इति मेदिनी॥ (सम्बोधनम्।) परिहासः। वाक्यविकारः। इति शब्दरत्नावली॥ (पुं, स्वर्गः॥)

ऋक्, [च्] स्त्री, (ऋच्यन्ते स्तूयन्ते देवा अनया। ऋच्+क्विप्।) वेदविशेषः। ऋग्वेदः। इत्यमरः॥ अस्य एकविंशतिशाखा। वेदमन्त्रविशेषः। तस्य लक्षणम्। यत्रार्थवशेन पादव्यवस्थितिः। अस्यार्थः। यत्रार्थवशेन एकान्वयित्वेनानुष्टुवादिपादस्थितिः। इति जैमिनिः॥ (ऋग्यजुःसामाथर्व्ववेदाभिहितैरपरैश्चाशीर्विधानैरुपाध्यायो भिषजश्च सन्ध्ययो रक्षां कुर्य्युः॥ इति सुश्रुते सूत्रस्थाने ऊनविंशे अध्याये॥)

ऋक्थं, क्ली, (ऋच् स्तुतौ ऋच्+"पातृतुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्थक्"।२।७। इत्युणादिसूत्रेण थक्।) धनम्। इत्यमरः॥ स्वर्णम्। इत्युणादिकोषः॥ (यदुक्तं शब्दार्णवे। "हिरण्यं द्रविणं द्युम्नं विक्थमृक्थं धनं वसु"॥) पुत्त्रहीनस्य ऋक्थिनः"। इति याज्ञवल्क्यः। "ऋक्थमूलं हि कुटुम्बम्"। इति दायभागे पितृधनविभागकालेऽभिहितम्॥)

ऋक्ष, न र वधे। इति कविकल्पद्रुमः॥ (स्वा-परं-सक-सेट्।) र वैदिकः। न ऋक्ष्णोति। इति दुर्गादासः॥

ऋक्ष, क्ली, पुं, (ऋष्+स। "स्नुव्रश्चिकृत्यृषिभ्यः कित्"। ३। ६६। इत्युणादिसूत्रेण कित्।) नक्षत्रम्। इति मेदिनी॥ (यथा, मनुः।२।१०१। "पूर्व्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्। पश्चिमान्तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात्"॥ तच्च अश्विन्यादिभेदेन सप्तविंशतिः।) राशिः। इति ज्योतिषम्॥ (राशयश्च मेषवृषादिभेदेन द्वादश। अस्मिन्नर्थे प्रमाणं यथा रघौ।१२।२५।
"प्रययावातिथेयेषु वसन्नृषिकुलेषु सः।
दक्षिणां दिशमृक्षेषु वार्षिकेष्विव भास्करः"॥
"ऋक्षेषु नक्षत्रेषु राशिषु वा भास्कर इव"। इति तट्टीकायां मल्लिनाथः॥)

ऋक्ष, पुं, (ऋष्+अच्।) पर्व्वतविशेषः॥ (अयं हि कुलाचलानामेकः। यथा, सिद्धान्तशिरोमणौ॥
"माहेन्द्रशुक्तिमलयर्क्षकपारिपात्राः
सह्यः सविन्ध्य इह सप्त कुलाचलाख्याः"॥)
भल्लूकः। (यथा मनुः। १२। ६७।
"वको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वं फलमूलन्तु मर्कटः।
स्त्रीमृक्षस्तोककोवारि यानान्युष्ट्रः पशूनजः"॥)
श्योणाकवृक्षः। इति मेदिनी॥ श्योनाकप्रभेदः। इति राजनिर्घण्टः॥ (स्वनामख्यातोऽजमीढपुत्त्रः। यथा, हरिवंशे पुरुवंशानुकीर्त्तने। ३२। ८७।
"धूमिन्यां स तया देव्या त्वजमीढः समेयिवान्।
ऋक्षं स जनयामास धूमवर्णं सुदर्शनम्"॥
स्वनामख्यातो विदूरथस्य पुत्त्रः।
यथा, तत्रैव ३२।१०४।
"विदूरथस्य दायाद ऋक्ष एव महारथः"॥
तथा स्वनामख्यातोऽरिहस्य पुत्त्रः। यथा, महाभारते १। पुरुवंशानुकीर्त्तने। ९५। २४।
"अरिहः खल्वाङ्गेयीमुपयेमे सुदेवां नाम तस्यां पुत्त्रमजीजनदृक्षम्"॥ एतेन पुरुवंशे त्रय एव ऋक्षनामानो राजानः सम्भूताः॥)

ऋक्षगन्धा, स्त्री, (ऋक्षस्येव गन्धो यस्याः।) वृक्षविशेषः। वीरताड इति ख्यातः। तत्पर्य्यायः। छगलान्त्री २ आवेगी ३ वृद्धदारकः ४ जुङ्गः ५। इत्यमरः॥ ऋषिगाङ्गल इति ख्यातो वृक्षश्च। तत्पर्य्यायः। ऋष्यगन्धा २ ऋषिजाङ्गलिकी ३ इति रत्नमाला। क्षीरविदारीवृक्षः। तत्पर्य्यायः। महाश्वेता २। क्षीरिका ३। ऋक्षगन्धिका ४। इति शब्दरत्नावली॥ (वृद्धदारकशब्देऽस्या गुणादयो ज्ञेयाः॥)

ऋक्षगन्धिका, स्त्री, (ऋक्षगन्धा+स्वार्थे कन्। अत इत्वम्।) क्षीरभूमिकुष्माण्डः। तत्पर्य्यायः। क्षीरविदारी २ महाश्वेता ३। इत्यमरः॥

ऋक्षर, स्त्री, (ऋषी गतौ। ऋष्+"तनृषिभ्यां क्सरन्"।३।७५। इत्युणादिसूत्रेण क्सरन्।) वारिधारा। इति मेदिनी॥

ऋक्षर, पुं, (ऋष+"तनृषिभ्यां क्सरन्"। ३। ७५। इत्युणादिसूत्रेण क्सरन्।) ऋत्विक्। इति मेदिनी॥

ऋक्षराज, पुं, (ऋक्षाणां भल्लूकानां राजा। राजाहःसखिभ्यष्टच्।) जाम्बवान्। इति रामायणम्॥ (यथा, हरिवंशे। ३८। ४१।
"लेभे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम्"॥)

ऋक्षेशः, पुं, (ऋक्षाणां नक्षत्राणामीशः।) चन्द्रः। इति हलायुधः॥

ऋच, श स्तुत्याम्। इति कविकल्पद्रुमः॥ (तुदां परं-सक-सेट्।) श ऋचति। आनर्च। इति दुर्गादासः॥

ऋचीष, क्ली, (ऋचतीति। ऋच्+बाहुलकात् कीषन्।) पिष्टकभर्जनपात्रम्। इति हेमचन्द्रः॥

ऋच्छ, श मूर्त्तौ। गमने। मोहे। इति कविकल्पद्रुमः॥ (तुदां-पर-सकं अकञ्च-सेट्।) श ऋच्छती ऋच्छन्ती। मूर्त्तिः कठिनीभावः। "मूर्त्तिः काठिन्यकाययोरित्यमरात्। ऋच्छति घृतं कठिनं स्यादित्यर्थः। ऋच्छति वृद्धो गच्छति मुह्यति वेत्यर्थः। मोहस्थाने इन्द्रियप्रलयं पठन्ति माधः। ऋच्छति वृद्धस्येन्द्रियं प्रलीयते इत्यर्थः। इति रमानाथः"॥ इति दुर्गादासः॥

ऋच्छरा, स्त्री, (ऋच्छति परपुरुषं प्राप्नोतीति। ऋच्छ्+"ऋच्छेरर"३।१३१। इत्युणादिसूत्रेण अर। अरन् इति प्रमाद इति पारायणीयम्।) वेश्या। इत्युणादिकोषः॥ (यथा, अथर्व्ववेदे १०। ९२०। "ऋच्छरा ये च ते शफा"॥)

ऋज, उ गत्याम्। स्थैर्य्ये। ऊर्ज्जने। अर्ज्जने। इति कविकल्पद्रुमः॥ (भ्वादि-आत्म-सक-अकञ्च-सेट्।) उ अर्ज्जते। ऊर्ज्जनं जीवनं बलवत्त्वञ्च। इति दुर्गादासः॥

ऋज, इ उ भृजि। इति कविकल्पद्रुमः॥ (इदित् भ्वादि-आत्म-सक-सेट्।) ऋञ्जादिः। भृजि भर्जने। इ ऋञ्ज्यते। उ ऋञ्जते मत्स्यं सूपकारः। इति दुर्गादासः॥

ऋजीष, क्ली, (अर्जते रसोऽस्मादिति। ऋज्+"अर्जेर्ऋजश्च" इत्युणादिसूत्रेण ईषन्।) पिष्टपचनम्। पिष्टकभर्जनपात्रम्। इति हेमचन्द्रामरौ॥ नरकविशेषः। अत्र पिष्टपचनप्रक्षेपः।
(यथा, मनुः ४।९०।
"लोहशङ्कुमृजीषञ्च पन्थानं शाल्मलीं नदीम्"॥
धनम्। सोमलताया उद्धृतो रसः। यथा, ऋग्वेदे ३। ४३। ५। "कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन्"। "ऋजीषिन् सोमवन्"। इति भाष्यम्॥)

ऋजु, त्रि, (अर्जयति गुणान्। अर्ज अर्जने। "अर्जिदृशीति"। १। २८। उणादिसूत्रेण साधुः।) अवक्रम्। सोजा इति भाषा। तत्पर्य्यायः। अजिह्मम् २ प्रगुणम् ३। इत्यमरः॥ प्राञ्जलः ४ सरलः ५। इति जटाधरः॥
("उमा स पश्यन् ऋजुनैव चक्षुषा"।
इति कुमारे ५। ३२॥ यथा, मनुः। २। ४७।
"ऋजवस्ते तु सर्व्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः"॥
स्त्रियां ङीष्पक्षे यथा, माघे १२। १८।
"ऋज्वीर्दधानैरवतत्य कन्धरा-
श्चलावचूडाः कलघर्घरारवैः"॥
अनुकूलम्। यथा, ऋग्वेदे ५। ४१। १५।
"ऋजुहस्ता ऋजुवनिः"। "ऋजुहस्तास्तदनुकूलहस्ताः"। इति भाष्यम्॥ शोभनम्। यथा ऋग्वेदे ५। ४४। ५। "धारवाकेष्वृजुगाथ"। "ऋजुगाथ शोभनस्तुतिक"। इति भाष्यम्॥ वसुदेवपुत्त्रभेदे पुं। यथा भागवते ९। २४। ५४।
"ऋजुं समर्दनं भद्रं सङ्कर्षणमहीश्वरम्"॥)

ऋजुकाय, पुं, (ऋजुः सरलः कायो यस्य।) कश्यपमुनिः। इति जटाधरः॥ अवक्रशरीरे त्रि॥
("तस्मिन् स्वस्तिसमासीन ऋजुकायः समभ्यसेत्"।
इति भागवते ३। २८। ८॥)

ऋज्र, पुं, (ऋज्+"ऋज्रेन्द्राग्रवज्रेति"। २। २८॥ उणादिसूत्रेण निपातनात् रन् गुणाभावश्च।) नायकः। इत्युणादिकोषः॥ (सरलगामिनि, त्रि। यथा ऋग्वेदे १। ११७। १८। "युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद्विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः"॥

"ऋक्वेभिः ऋञ्जुगामिभिः"। इति भाष्यम्"॥)

ऋञ्जसानः, पुं, ( ऋञ्जि+"ऋञ्जिवृधिमन्दिसहिभ्यः कित्"।२।८७। इत्युणादिसूत्रेण असानच्। किच्च।) मेघः। इति सिद्धान्तकौमुदी॥ उणादिकोषश्च॥)

ऋण, द उ ञ गतौ। इति कविकल्पद्रुमः॥ (तनां-उभ-सक-सेट्।) द ञ ऋणोति अर्णोति ऋणुते अर्णुते। उ अर्णित्वा ऋत्वा। इति दुर्गादासः॥

ऋण, क्ली, (ऋ+क्त। ऋणमाधमर्ण्ये इति वात्वम्।) धारः। देना इति भाषा। तत्पर्य्यायः। पर्य्युदञ्चनम् २ उद्धार ३। इत्यमरः॥ पुनर्देयत्वेन स्वीकृत्य यत् गृहीतम्। इति जगदीशः॥ अस्य विवरणं ऋणादानशब्दे द्रष्टव्यम्॥ *॥

कुसीदाख्य ऋणं यथा।

"स्थानलाभनिमित्तं यद्दानग्रहणमिष्यते।

तत्कुसीदमिति ज्ञेयं तेन वृत्तिः कुसीदिनाम्"॥

इति नारदः॥ अस्यार्थः। स्थानं मूलधनावस्थानम्। लाभो वृद्धिः। दानग्रहणपदे कर्म्मण्यनटा साध्ये तेन मूलधनावस्थाने सत्येव यो लाभस्तदर्थं यद्धनं धनिकेन दीयमानं मूलधनं अधमर्णेन च गृह्यं तथा स्वीकृत्य गृह्यमाणं यत्तद्ग्रहणम्। इति रत्नाकरादयः॥ कलाशून्ये तु अवश्यापाकरणीयत्वरूपगुणयोगाद्गौणप्रयोगः। अतएव वाणिज्यार्थप्रयुक्तस्य नर्णत्व इति मिश्राः॥ *॥ अपि च।

"कुत्सितात् सीदतश्चैव निर्विशङ्कैः प्रगृह्यते।

चतुर्गुणं वाष्टगुणं कुसीदाख्यमृणं ततः"॥

इति वृहस्पतिः॥ अस्यार्थः। कुत्सितात् सीदतश्चाधमर्णात् सकलं धनं यत् गृह्यते निर्विशङ्कैरुत्तमर्णैः। चतुर्गुणं चेति वाकारोऽनास्थायां तेन द्वैगुण्यादिलाभः॥ *॥ ऋणत्रयविशेषो यथा।

"देवानाञ्च पितॄणाञ्च ऋषीणाञ्च तथा नरः।

ऋणवान् जायते यस्मात्तन्मोक्षे प्रयतेत् सदा॥ *॥

तत्परिशोधनमाह।

"देवानामनृणो जन्तुर्यज्ञैर्भवति मानवः।

अल्पवित्तश्च पूजाभिरुपवासव्रतैस्तथा॥

श्राद्धेन प्रजया चैव पितॄणामनृणो भवेत्।

ऋषीणां ब्रह्मचर्य्येण श्रुतेन तपसा तथा"॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरम्॥ (जलदुर्गमभूमिः। यथा मुग्धबोधे १। २८ सूत्रस्य टीकायां दुर्गादासः।

"दशार्णो देशः दशार्णा नदी उभयत्र ऋणशब्देन जलदुर्गमभूमिरुच्यते"॥ अङ्कशास्त्रोक्तः कुतश्चिदपि राश्यन्तरात् वियोज्य सङ्ख्यावान् पदार्थः। यथा वीजगणिते।

"धनर्णसङ्कलने करणसूत्रं वृत्तार्द्धम्।

योगे युतिः स्यात् क्षययोः स्वयोर्वा

धनर्णयोरन्तरमेव योगः"॥

ऋणतीति। ऋण गतौ तस्मात्कः। इति व्युत्पत्त्या वाच्यलिङ्गः। गन्ता। गमनशीलः। यथा, ऋग्वेदे ६।१२।५।"सद्यो य स्यन्द्रो विषितो धवीयान्-ृणो न तायुरतिधन्वा राट्"। "ऋणः शीघ्रगन्ता" इति भाष्यम्॥)

ऋणमत्कुणः, पुं, (ऋणे मत्कुण इव।) जामिनः। इति शब्दरत्नावली॥ जामिन इति भाषा॥

ऋणमार्गणः, पुं, (ऋणं मार्गयति यः सः। ऋण+मार्ग+ल्यु।) प्रतिभूः। इति हारावली॥ जामिन इति भाषा॥

ऋणमुक्तिः, स्त्री, (ऋणस्य ऋणात् वा मुक्तिर्मोचनं भवत्यस्मात्।) ऋणपरिशोधनम्। तत्पर्य्यायः। विगणनम् २। इति त्रिकाण्डशेषः॥

ऋणमोक्ष, पुं, (ऋणात् मोक्षः।) ऋणपरिशोधनम्। इति हारावली॥

ऋणादान, क्ली, (ऋणस्य आदानम् ग्रहणम्।) अधमर्णात् उत्तमर्णेन स्वधनग्रहणम्। तत्तु अष्टादशविवादान्तर्गताद्यविवादः। (यदाह मनुः। ८।४।

"तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः"।

इत्यादि।) तच्च सप्तविधं यथा। ईदृशमृणं देयम् १ ईदृशमदेयम् २ अनेनाधिकारिणा देयम् ३ अस्मिन् समये देयं ४ अनेन प्रकारेण देयं ५ इत्यधमर्णे पञ्चविधम्। उत्तमर्णे तु दानविधि ६ आदानविधिश्च ७ इति द्विविधम्। तथाच नारदः।

"ऋणन्देयमदेयञ्च येन यत्र यथा भवेत्।

दानग्रहणधर्म्माश्च ऋणादानमिति स्मृतम्॥

अदेयमिति यदुक्तं तदाह कात्यायनः।

न स्त्रीभ्यो दासबालेभ्य प्रदद्यात् किञ्चिदुद्धृतम्।

दाता न लभते तत्तु तेभ्यो दत्तन्तु यद्वसु"॥

तत्र विशेषमाह वृहस्पतिः।

"परिपूर्णं गृहीत्वाधिं बन्धं वा साधुलग्नकम्।

लेख्यारूढ़ं साक्षिमद्वा ऋणं दद्यात् धनी सदा"॥

इति विवादार्णवसेतुः॥ अस्य यदवशिष्टं ऋणोद्ग्राहणशब्दे द्रष्टव्यम्॥

ऋणान्तक, पुं, (ऋणमन्तयति यः। ऋण+अन्ति नामधातु+ण्वुल्। मङ्गलग्रहाराधनेन ऋणापनयनात् तथात्वम्।) मङ्गलग्रहः। इति शब्दरत्नावली॥

ऋणापनोदन, क्ली, (ऋण+अप+नुद+ल्युट्। ततः षष्ठीतत्पुरुषः।) ऋणापनयनम्। धारशोधनम्॥

ऋणी, [न्] त्रि, (ऋणमस्यास्तीति। ऋण+इनि।) ऋणयुक्तः। धारी॥

("जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिरृणैरृणी भवति"। इति श्रुतिः। "ऋणी न स्यात् यथा पिता"। इति दायभागे॥)

ऋणोद्ग्राहण, क्ली,(ऋणस्य उद्ग्राहणम्।) अधमर्णगृहीतर्णग्रहणं। यत्र ऋणं प्रार्थनकाले प्रार्थितोऽपि ऋणी न ददाति तत्र धनिकेन यत् कर्त्तव्यं तदाह मनुः। ८।४८—४९।

"यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तमर्णिकः।

तैस्तैरुपायैः संगृह्य साधयेदधमर्णिकम्"॥

धर्म्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च।

प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च"॥

अयमर्थः। पूर्व्वपूर्व्वसामर्थ्याभावे उत्तरोत्तरम् संगृह्य वशीकृत्य। धर्म्मं वृहस्पतिराह।

"सुहृत्सम्बन्धिसन्दिष्टैः सामोक्त्यानुगमेन च।

प्रायेण वा ऋणी दाप्यो धर्म्म एष उदाहृतः"॥

अस्यार्थः। ऋणिकस्य ये सुहृत्सम्बन्धिनस्तेषु सन्देशो यो यत्र सान्त्ववचनं यत्रानुगमनं प्रायोपवेशनं वा धनिकस्य स धर्म्मः ऋणोद्ग्राहणोपायः व्यवहारे कात्यायनः।

"धार्य्योऽवरुद्ध ऋणिकः प्रकाशं जनसंसदि।

यावन्न दद्याद्देयञ्च देशाचारस्थितिर्यथा"॥

अस्यार्थः। यावद्दानं जनसंसदि ऋणिकस्य धनिकेन धारणं व्यवहारः॥ छलाचरितबलात्कारे वृहस्पतिः।

"छद्मना याचयित्वार्थमानीय ऋणिकाद्धनी।

अन्वाहितादि वाहृत्य दाप्यते यत्र सोपधिः"॥

अस्यार्थः। ऋणिकस्य धनमन्वाहितादि वा छद्मना आहृत्य वा यत्र दाप्यते तत्र साधनोपायः सोपधि सञ्ज्ञमुच्यते॥

"पुत्त्रदारपशून् बद्धा कृत्वा द्वारोपवेशनम्।

यत्रार्थो दाप्यतेऽर्थं स्व तदाचरितमुच्यते॥

बद्ध्वा स्वगृहमानीय ताडनाद्यैरुपक्रमैः।

ऋणिको दाप्यते यत्र बलात्कारः स उच्यते"॥

अनयोरर्थः। पुत्त्रदारपशुरोधो द्वारोपवेशनञ्च य उद्ग्राहणोपायस्तदाचरितमुच्यते। स्वगृहमानीय ताडनादिलक्षण उद्ग्राहणोपायो बलात्कार उच्यते॥ *॥ कोऽधमर्णः केनोपायेन साध्यस्तदाह कात्यायनः।

"राजानं स्वामिनं विप्रं सान्त्वेनैव प्रसाधयेत्।

ऋक्थिनं दुर्हृदं वापि छलेनैव प्रसाधयेत्"॥

ऋक्थिनं दायादम्॥ तथा

"वणिजः कर्षकांश्चैव शिल्पिनश्चाब्रवीद्भृगुः।

देशाचारेण दाप्यास्तु दुर्हृदान् बलेन दापयेत्॥ *॥

यत्र धनं न लभ्यते तत्राह वृहस्पतिः।

"निर्धनं ऋणिकं कर्म्म गृहमानीय कारयेत्।

शौण्डिकाद्यं ब्राह्मणस्तु दापनीयः शनैः शनैः"॥

याज्ञवल्क्यः,—

"हीनजातिं परिक्षीणमृणार्थं कर्म्म कारयेत्।

ब्राह्मणस्तु परिक्षीणः शनैर्दाप्यो यथोदयम्॥

यथोदयं यथा धनोत्पत्तिरित्यर्थः॥ *॥ व्यापारद्वारा न ब्राह्मणस्य ऋणशोधनमाह कात्यायनः।

"कर्म्मणा क्षत्त्रविट्शूद्रान् समहीनांस्तु दापयेत्"॥

ऋणशोधनाय निन्दितं कर्म्म कारयितुरुत्तमर्णस्य दण्डमाह कात्यायनः।

"यदि छागादवत्तादिरशुभं कर्म्म कारयेत्।

प्राप्नुयात् साहसं पूर्व्वमृणात्मुच्येत धर्णिकः॥ *॥

यदि परमवृद्धिप्राप्तं धनमृणिको दातुं न शक्नोति तदा चक्रवृद्ध्या लेख्यया धारयेत्। यथा वृहस्पतिः।

"पूर्णावधौ शान्तलाभमृणमुद्ग्राहयेद्धनी।

कारयेद्वा धनी लेख्यं चक्रवृद्धिव्यवस्थया"॥

तथा च वृहस्पतिः।

"हिरण्ये द्विगुणीभूते मृते नष्टेऽधमर्णिके।

द्रव्यं तदीयं संगृह्य विक्रीणीत ससाक्षिकम्॥

रक्षेद्वा कृतमूल्यन्तु दशाहं जनसंसदि।

ऋणानुरूपं परतो गृहीतान्यत्तु वर्जयेत्॥

स्वधनञ्च स्थिरीकृत्य गणनाकुशलैर्नरैः।

तद्बन्धुज्ञातिविदितं मध्यस्थापराङ्मुखान्"॥ *॥

यथाविषयं धर्म्मादीन् धनसाधनोपायान् मनुरपि

न राज्ञा निवर्त्तनीय इत्याह मनुः ।
"यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णिकात् ।
स राज्ञा नाभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन् धनम्" ॥ * ॥
धनवता ऋणिकेनादत्ते ऋणे राज्ञा स्वयं विंशति-तमभागं गृहीत्वा उत्तमर्णाय दापयेत् इत्याह नारदः ॥
"ऋणिकः सधनो यस्तु दौरात्म्यान्न प्रयच्छति ।
राज्ञा दापयितव्यः स्याद्गृहीत्वांशन्तु विंशकम्" ॥ * ॥
यदा अधमर्णिकः सकलमृणं दातुमसमर्थः शक्त्यनु-सारेण दत्त्वा पूर्व्वकृतस्य लेख्यस्य पृष्ठेऽभिलिखेत् एतावद्दत्तं उत्तमर्णेन उपगतं प्राप्तमिति धनी तस्यैव लेख्यस्य पृष्ठे दद्यादभिलिखेत् इत्याह याज्ञवल्क्यः ।
"लेख्यस्य पृष्ठेऽभिलिखेत् दत्त्वा दत्त्वाधनं ऋणी ।
धनी चोपगतं दद्यात् स्वहस्तपरिचिह्नितम्" ॥
इति विवादार्णवसेतुः ॥

ऋत, गत्याम् । स्पर्द्धने । ऐश्वर्य्ये । घृणायाम् । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (भ्वादि-पर-ईयङ्पक्षे आत्म-गत्यर्थे सक, अन्यार्थे-अक-सेट् ।) घृणा दया । ऋतीयते जनः स्पर्द्धते ईश्वरो भवति । कश्चि-द्यते गच्छति वेत्यर्थः । अरे तु ईयङोऽप्राप्तिपक्षे परस्मैपदमेव । आर्त्तीत् आनर्त्त इत्यादि । इति दुर्गादासः ॥

ऋतं, क्ली, (ऋ + क्त ।) उञ्छशिलम् । (यथा, मनुः । ४ । ४—५ ॥
"ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा ।
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥
ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम् ।
मृतन्तु याचितं भैक्ष्यं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम्" ॥)
जलम् । (यथा, ऋग्वेदे । ७ । १०१ । ६ । "तन्म ऋतं पातु शतशारदाय" । "ऋतमुदकम्" । इति भाष्यम् ॥) सत्यं इति मेदिनी ॥ (यथा, मनुः । ८ । ८२ ।
"साक्ष्येऽनृतं वदन् पाशैर्बध्यते वारुणैर्भृशम् ।
"विवशः शतमाजातीस्तस्मात् साक्ष्यं वदेदृतम्" ॥
कर्म्मफलं । यथा, "ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके" ।
इति श्रुतिः ॥ विष्णुः ॥ यथा, महाभारते । १ । १ । २५६ ।
"भगवान् वासुदेवश्च कीर्त्त्यतेऽत्र सनातनः ।
स हि सत्यमृतञ्चैव पवित्रं पुण्यमेव च ।
शाश्वतं ब्रह्म परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनम्" ॥
पुं, सूर्य्यः । यथा, शतपथब्राह्मणे । "ब्रह्म वा ऋतं ब्रह्म हि मित्रो ब्रह्म ऋतं ब्रह्म एवायुः" ॥
परब्रह्म । यथा, श्रुतिः । "ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म" ॥
सत्याचारः । यथा, ऋग्वेदे । १ । १३७ । २ ।
"सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये" ॥ "ऋताय सत्याचाराय" । इति दया-नन्दभाष्यम् ॥ रुद्रः । यथा, सामगानां सन्ध्यामन्त्रे रुद्रोपस्थाने । "ऋतमित्यस्य कालाग्निरुद्र ऋषि-रनुष्टुप्छन्दो रुद्रो देवता रुद्रोपस्थाने विनि-योगः" ॥ देवभेदः । यथा, ऋग्वेदे । ४ । २३ । ८ ।
"ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्व्वीर्ऋतस्य धीति-र्वृजिनानि हन्ति" । "ऋतस्य ऋतदेवस्य" । इति भाष्यम् ॥ यज्ञः । यथा, ऋग्वेदे । १ । १४५ । ५ ।
"ऋतचिद्धि सत्यम्" । "ऋतस्य यज्ञस्य जलस्य वा चित् ज्ञाता" । इति भाष्यम् ॥ अग्नेर्ऋषि-भेदः । यथा, यजुषि । १७ । ८२ । "ऋतश्च सत्यश्च" । इति ॥)

ऋत, त्रि, (ऋ + क्त ।) दीप्तः । पूजितः । इति मेदिनी ॥

ऋतजित्, पुं, (ऋतं जयति ऋत + जि + क्विप् ।) यक्षविशेषः । यथा,—
"त्वष्टा च जमदग्निश्च कम्बलोऽथ तिलोत्तमा ।
ब्रह्मापेतोऽथ ऋतजित् धृतराष्ट्रश्च सप्तमः ॥
माघमासे वसन्त्येते सप्त मैत्रेय भास्करे ।
श्रूयतां चापरे सूर्य्ये फाल्गुने निवसन्ति ये" ॥
इति श्रीविष्णुपुराणे २ । १० । १५—१६ । "त्वष्टा सूर्य्यः । कम्बलः सर्पः । ब्रह्मापेतो राक्षसः । ऋत-जिद्यक्षः । धृतराष्ट्रो गन्धर्व्वः । इति तट्टीकायां श्रीधरस्वामी ॥ (त्रि, यज्ञजेता । यथा, यजुषि १७ । ८३ । "ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च" ॥)

ऋतधामा, [न्] पुं, (ऋतं सत्यं धाम भवनं यस्य ।) विष्णुः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (यथा यजुर्व्वेदे ५ । ३२ ।
"हव्यसूदन ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः" ॥ इन्द्रभेदः । स तु रुद्रसावर्णिके मनौ भविता । यथा,—
भागवते । ८ । १३ । २८ ।
"भविता रुद्रसावर्णी राजन् । द्वादशमो मनुः ।
ऋतधामा च देवेन्द्रो देवाश्च हरितादयः" ॥
यदुवंशीयो नृपतिभेदः । यथा, भागवते ।
"कङ्कस्य कर्णिकायां वै ऋतधामाजयावपि" ॥
अविनश्वरस्थानवति, त्रि । यथा यजुर्व्वेदे । १८ । ३८ ।
"ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्व्वस्तस्यौषधयः" ॥)

ऋति, स्त्री, (ऋ + करणे + क्तिन् ।) कल्याणम् । वर्त्म । जुगुप्सा । स्पर्द्धा । इति मेदिनी ॥ (भावे + क्तिन् ।) गमनम् । असुभम् । इति धरणी ॥ (पुरुषमेध-यज्ञीयदेवभेदः । यथा, यजुर्व्वेदे । ३० । १३ ।
"ऋतये स्तेन हृदयम्" । शत्रौ पुं, इति निरुक्तिः ।)

ऋतीया, स्त्री, (ऋत + ईयङ् + टाप् ।) घृणार्थकं । जुगुप्सा । तत्पर्य्यायः । आर्त्तनम् २ ऋणीया ३ ।
इत्यमरः ॥

ऋतुः, पुं, (ऋ + "अर्त्तेश्च तु" । इति उणादिसूत्रेण १ । ७२ । तु चकारात् कित् च ।) कालविशेषः । स तु षड्विधः यथा । मार्गपौषौ हिमः १ माघ-फाल्गुनौ शिशिरः २ चैत्रवैशाखौ वसन्तः ३ ज्यैष्ठाषाढौ ग्रीष्मः ४ श्रावणभाद्रौ वर्षाः ५ आ-श्विनकार्त्तिकौ शरत् ६ । इत्यमरः ॥ स त्रिविधो-ऽपि । कार्त्तिकाग्रहायणपौषमाघाः शीतः १ फाल्गुनचैत्रवैशाखज्यैष्ठा ग्रीष्मः २ आषाढश्रावण-भाद्राश्विना वर्षाः ३ । द्विविधोऽपि । कार्त्तिका-दिषण्मासाः शीतः १ वैशाखादिषण्मासाः ग्रीष्मः २ ॥ इति स्मृतिः ॥ * ॥
(यदुक्तम् ।
"मासद्वयात्मकः कालः ऋतुः प्रोक्तो विचक्षणैः" ।
यत्र तु "द्वादश मासाः पञ्चर्त्तवः" इति श्रुतं तत्र हेमन्तशिशिरयोरेकत्रीकरणं विवक्षितम् ॥
"चयकोपशमा यस्मिन् दोषाणां सम्भवन्ति हि ।
ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवेः राशिषु सङ्क्रमात् ॥
ग्रीष्मो मेषवृषौ प्रोक्तः प्रावृड्मिथुनकर्कटौ ।
सिंहकन्ये स्मृता वर्षा तुलावृश्चिकयोः शरत् ॥
धनुर्ग्राहौ च हेमन्तो वसन्तः कुम्भमीनयोः" ।
मेषवृषौ रविणा सङ्क्रान्तौ । एवं मिथुनकर्कटा-वित्यादि । अन्ये तु ।
"शिशिरः पुष्पसमयो ग्रीष्मो वर्षाशरद्धिमाः ।
माघादिमासयुग्मैः स्युरृतवः षट् क्रमादमी" ॥
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे प्रथमभागे ।
"वर्षाः शरच्च हेमन्तः शिशिरश्च वसन्तकः ।
ग्रीष्मश्चेति क्रमादेते ऋतवः षट् प्रकीर्त्तिताः ॥
पृथक् पृथक् प्रवक्ष्यामि रवेर्गतिविशेषतः" ।
इति प्रथमस्थाने चतुर्थेऽध्याये हारीतेनोक्तम् ॥
"मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात् षड़ृतवः स्मृताः ।
शिशिरोऽथ वसन्तश्च ग्रीष्मवर्षाः शरद्धिमाः" ॥
इति सूत्रस्थाने तृतीयेऽध्याये वाभटेनोक्तम् ॥
"इह खलु संवत्सरं षडङ्गमृतुविभागेन विद्यात्" ।
इति सूत्रस्थाने षष्ठोऽध्यायः ।
"तत्र खलु तावत् षोढा प्रविभज्य कार्य्यमुपदेक्ष्यते । हेमन्तो ग्रीष्मो वर्षाश्चेति शीतोष्णवर्षलक्षणास्त्रयः ऋतवो भवन्ति । तेषामन्तरेष्वितरे साधारण-लक्षणास्त्रयः ऋतवः प्रावृट्शरद्वसन्ता इति । प्रावृडिति प्रथमः प्रवृष्टे कालस्तस्यानुबन्धो वर्षाः । एवमेते संशोधनमधिकृत्य षड् विभज्यन्ते ऋतवः" ।
इति च विमानस्थानेऽष्टमेऽध्याये चरकेणोक्तम् ।
"तत्र माघादयो द्वादशमासाः द्विमासिकमृतुं कृत्वा षड़ृतवो भवन्ति । ते शिशिर-वसन्त-ग्रीष्म-वर्षा-शरद्धेमन्ताः । तेषां तपस्तपस्यौ शिशिरः । मधुमाधवौ वसन्तः । शुचिशुक्रौ ग्रीष्मः । नभो-नभस्यौ वर्षाः । इषोर्जौ शरत् । सहःसहस्यौ हेमन्त इति ॥ तत्र ते शीतोष्णवर्षलक्षणाश्च-न्द्रादित्ययोः कालविभागकरत्वादयने द्वे भवतो-दक्षिणमुत्तरञ्च" ।
"इह तु वर्षा-शरद्धेमन्त वसन्त-ग्रीष्म-प्रावृषः षड़ृ-तवो भवन्ति दोषोपचय-प्रकोपोपशम-निमित्तम् । ते तु भाद्रपदाद्येन द्विमासिकेन व्याख्याताः । तद्-यथा । भाद्रपदाश्वयुजौ वर्षाः । कार्त्तिकमार्गशीर्षौ शरत् । पौषमाघौ हेमन्तः । फाल्गुन-चैत्रौ वसन्तः । वैशाख-ज्यैष्ठौ ग्रीष्मः । आषाढ-श्रावणौ प्रावृडिति" । इति सूत्रस्थाने ६ अध्याये सुश्रुते-नोक्तम् ॥)
स्त्रीकुसुमम् । इति विश्वमेदिन्यौ ॥ तत्पर्य्यायः ।
रजः १ पुष्पम् २ आर्त्तवम् ३ । इत्यमरः ॥
यथाह मनुः । ३ । ४५-४८ ।
"ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा ।
पर्व्ववर्ज्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥
ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोड़श स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।

त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दशरात्रय ॥
युग्मासु यस्ता जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्मात् युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम् ॥
पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ।
समेऽपुमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्य्ययः" ॥
"रज सप्तदिन यावत् ऋतुस्त्व भिषजां वर" ।
इति शारीरस्थाने प्रथमेऽध्याये हारीतेनोक्तम् ॥
"ऋतुस्तु द्वादशरात्रं भवति दृष्टार्त्तवम् ॥"
"नियत दिवसेऽतीते सङ्कुचत्यम्बुजं यथा ।
ऋतौ व्यतीते नार्य्यास्तु योनि संव्रियते तथा ॥
मासेनोपचितं काले धमनीभ्यान्तदार्त्तवम् ।
ईषत् कृष्णं विगन्धञ्च वायुर्योनिमुख नयेत् ॥
तद्वर्षाद्द्वादशात्काले वर्त्तमानमसृक् पुन ।
जरापक्वशरीराणां याति पञ्चाशत क्षयम्" ॥
इति शारीरस्थाने तृतीयेऽध्याये सुश्रुतेनोक्तम् ॥
"द्वादशादत्सरादूर्द्ध्वमापञ्चाशत् समा स्त्रिय ।
मासि मासि भगद्वारा प्रकृत्यैवार्त्तव स्रवेत् ॥
आर्त्तवस्रावदिवसात् ऋतु षोडशरात्रय ।
गर्भग्रहणयोग्यस्तु स एव समय स्मृत" ॥
"सर्व्वासामेव चतुर्व्वर्णस्त्रीणां सर्व्ववादिसम्मत ।
पूर्व्वोक्तसमय ग्रन्थान्तरेषु विषय । तद्यथा ।
स्नानदिवसादूर्द्ध्वं द्वादशरात्रावधि ब्राह्मण्या । दश-
रात्रावधि क्षत्त्रियायां । अष्टरात्रावधि वैश्याया ।
षड्रात्रावधि शूद्राया गर्भधारणे शक्ति" ॥
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे प्रथमे भागे ॥
"पद्म सङ्कोचमायाति दिनेऽतीते यथा तथा ।
ऋतावतीते योनि सा शुक्र नात प्रतीच्छति ॥
मासेनोपचित रक्त धमनीभ्यामृतौ पुन ।
ईषत्कृष्ण विगन्धञ्च वायुर्योनिमुखान्नुदेत्" ॥
"ऋतुस्तु द्वादशनिशा पूर्व्वास्तिस्रश्च निन्दिता" ॥
इति शारीरस्थाने प्रथमेऽध्याये वाभटेनोक्तम् ॥
शिव । यथा महाभारते १३। महादेवसहस्र-
नामकथने १७।१३९।
"ऋतु संवत्सरो मास पक्ष संख्यासमापन" ॥
विष्णु । यथा, महाभारते १३। विष्णुसहस्रनाम-
कथने १४९।५८।
'ऋतु सुदर्शन काल परमेष्ठी परिग्रह"॥)
दीप्ति । इति मेदिनी। मास । सुवीर । इति विश्व॥
ऋतुप्राप्त, त्रि, ( ऋतु प्राप्तोऽनेन । ) फलेग्रहि ।
अवन्ध्यवृक्षादि । इति शब्दचन्द्रिका ॥
ऋतुमती, स्त्री, (ऋतुरस्या अस्तीति । ऋतु + मतुप्
+ ङीप् । ) ऋतुयुक्ता स्त्री । तत्पर्य्याय । रज-
स्वला २ स्त्रीधर्म्मिणी ३ अवी ४ आत्रेयी ५
मलिनी ६ पुष्पवती ७ उदक्या ८ । इत्यमर ।
(यथा, महाभारते ।१।३। ८७। "उपाध्यायानी
ते ऋतुमती उपाध्यायश्च प्रोषितोऽस्या यथाय
मृतुर्वन्ध्यो न भवति तथा क्रियताम्" ॥
ऋतुमतीकृत्यमाह ।
"आर्त्तवस्रावदिवसात् व्यह सा ब्रह्मचारिणी ।
शयीत दर्भशय्याया पश्येदपि पतिं न च ॥
करे शरावे पर्णे वा हविष्य त्र्यहमाचरेत् ।
अश्रुपात नखच्छेदमभ्यङ्गमनुलेपनम् ॥
नेत्रयोरञ्जन स्नान दिवास्वप्न प्रधावनम् ।
अत्युच्चशब्दश्रवण हसन बहुभाषणम् ॥
आयास भूमिखनन प्रवातञ्च विवर्जयेत् ।
ततश्चतुर्थे दिवसे स्नाता सद्वसनादिभि ।
भूषिता सुमना पश्येत् भर्त्तार समलङ्कृतम् ॥
पूर्व्व पश्येत् ऋतुस्नाता यादृश नरमङ्गना ।
तादृश जनयेत् पुत्त्र तत पश्येत् पति प्रियम्" ॥
एतदकरणे प्रत्यवायमाह ।
"अज्ञानात् वा प्रमादाद्वा लौल्याद्वा दैवतश्च वा ।
सा चेत् कुर्य्यात् निषिद्धानि गर्भदोषास्तदाश्रयात् ॥
एतस्या रोदनात् गर्भो भवेद्विकृतलोचन ।
नखच्छेदेन कुनखी कुष्ठी त्वभ्यङ्गतो भवेत् ॥
अनुलेपात् तथा स्नानात् दु खशीलोऽञ्जनादन्धक् ।
स्वापशीलो दिवास्वापात् चञ्चल स्यात् प्रधावनात् ॥
अत्युच्चशब्दश्रवणात् वधीर खलु जायते ।
तालुदन्तौष्ठजिह्वासु श्यावो हसनतो भवेत् ॥
प्रलापी भूरिकथनात् उन्मत्तस्तु परिश्रमात् ।
खलतिर्भूमिखननात् उन्मत्तो वातसेवनात्" ॥
इति ।
"क्षामप्रसन्नवदना स्फुरच्छ्रोणिपयोधराम् ।
स्रस्ताक्षिकुक्षि पुंस्कामां विद्यादृतुमतीं स्त्रियम्" ॥
इति शारीरस्थाने प्रथमेऽध्याये वाभटेनोक्तम् ॥
"गते पुराणे रजसि नवे चावस्थिते पुन शुद्ध
स्नाता स्त्रियमव्यापन्नयोनिशोणितगर्भाशयामृतु-
मतीमाचक्षते" ।
इति शारीरस्थाने चतुर्थेऽध्याये चरकेणोक्तम् ॥
"पीनप्रसन्नवदना प्रक्लिन्नात्ममुखद्विजाम् ।
नरकामा प्रियकथा स्रस्तकुक्ष्यक्षिमूर्द्धजाम् ॥
स्फुरद्भुजकुचश्रोणिनाभ्यूरुजघनस्फिचम् ।
हर्षौत्सुक्यपराञ्चापि विद्यादृतुमतीमिति" ॥
इति शारीरस्थाने तृतीयेऽध्याये,—
"तत शुद्धस्नातां चतुर्थेऽह्न्यहतवास समलङ्कृता
कृतमङ्गलस्वस्तिवाचना भर्त्तार दर्शयेत् । तत्-
कस्य हेतो ।
पूर्व्व पश्येदृतुस्नाता यादृश नरमङ्गना ।
तादृश जनयेत् पुत्त्र भर्त्तार दर्शयेदत ॥
ततो विधान पुत्त्रीयमुपाध्याय समाचरेत् ।
कर्म्मान्ते च क्रम ह्येनमारभेत विचक्षण" ॥
"तत्र प्रथमे दिवसे ऋतुमत्या मैथुनगमनमना-
युष्य पुसा भवति । यश्च तत्राधीयते गर्भ स
प्रसवमानो विमुच्यते । द्वितीयेऽप्येव सूतिकागृहे
वा । तृतीयेऽप्येवमसम्पूर्णाङ्गोऽल्पायुर्व्वा भवति ।
चतुर्थे तु सम्पूर्णाङ्गो दीर्घायुश्च भवति । न च
प्रवर्त्तमाने रक्ते वीज प्रविष्ट गुणकर भवति यथा
नद्या प्रतिस्रोत प्लावि द्रव्य प्रक्षिप्त प्रतिनिव-
र्त्तते नोर्द्ध्व गच्छति तद्वदेव द्रष्टव्यम् । तस्मान्नि
यमवती त्रिरात्र परिहरेत् । अत पर मासा-
दुपेयात्" । इति च शारीरस्थाने द्वितीयेऽध्याये
सुश्रुतेनोक्तम् ॥)
ऋतुराज, पुं, ( ऋतूना राजा । "राजाह सखिभ्य-
ष्टच्" । ५।४।९१ । इति टच् । ) वसन्तकाल ।
इति राजनिर्घण्ट ॥
ऋतुवृत्ति, पु, (ऋतुषु वृत्तिर्वर्त्तन यस्य ।) वत्सर
इति त्रिकाण्डशेष ॥
ऋतुसन्धि, पुं, (ऋत्वो सन्धिर्मेलनम् ।) ऋतुद्वयसन्धि-
काल । स च ऋत्वोरन्त्यादिसप्ताहौ । तथा
वाभट ।
"ऋत्वोरन्त्यादिसप्ताहावृतुसन्धिरिति स्मृत ।
तत्र पूर्व्वो विधिस्त्याज्य सेवनीय परो विधि" ॥
ऋतुस्नान, क्ली, ( ऋतौ स्नानम् ।) रजस्वलास्त्रिय
चतुर्थाहकर्त्तव्यस्नानम् । इति स्मृति ॥ तत्स्ना-
नानन्तर भर्त्तृवदन द्रष्टव्य नान्यस्य भर्त्तसन्निधा
भर्त्तार मनसि ध्यात्वा सूर्य्य विलोकयेत् । इ
काशीखण्डम् ॥
("तत पुष्पेक्षणादेव कल्याणध्यायिनी त्र्यहम् ।
मृजालङ्कारहिता दर्भसंस्तरशायिनी ॥
क्षैरेय यावक स्तोक कोष्ठशोधनकर्षणम् ।
पर्णे शरावे हस्ते वा भुञ्जीत ब्रह्मचारिणी ॥
चतुर्थेऽह्नि तत स्नाता शुक्लमाल्याम्बरा शुचि ।
इच्छन्ती भर्त्तृसदृश पुत्त्र पश्येत् पुर पतिम्" ॥
इति शारीरस्थाने प्रथमेऽध्याये वाभटेनोक्तम् ॥)
ऋते, अ, (ऋत + के ।) विना । वर्ज्जनम् । इत्यमर
("अवेहि मा प्रीतमृते तुरङ्गमात्" ।
इति रघुवंशे । ३ । ६३ ॥ तथा, कुमारे २ । ५७ ।
"अशक्तृते निषिक्तस्य नीललोहितरेतस" ॥)
ऋत्विक्, [ज्] पु, (ऋतौ यजतीति । ऋतु + यज् +
ऋत्विगादिना क्विन्नन्तो निपातित ।) पुरोहित
यथा,—
"अग्न्याधेय पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् ।
य करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते" ॥
इति मानवे २ । १४३ ॥ तत्पर्य्याय । याजक २
इत्यमर ॥ भरता ३ कुरव ४ वाग्यत ५ वृक्त-
वर्हिष ६ यतस्रुच ७ मरुत ८ सबाध ९ देव-
यव १० । इत्यष्टाऋत्विङ्नामानि । इति वेदनि-
घण्टौ ३ अध्याय ॥
अथ हि नायकस्य धर्म्मसहाय । यदुक्त साहि-
त्यदर्पणे । ३ । ५१ । "ऋत्विक्पुरोधस स्युर्ब्रह्म
विदस्तापसास्तथा धर्म्मे" ॥)
ऋद्ध, क्ली, (ऋध् + क्त ।) सम्पन्नधान्यम् । इति मे
दिनी ॥ परिपक्वमर्द्दितधान्यम् । इत्यमरटीकायां
भरत ॥ वहुलितधान्यम् । इति सुभूति । तत्प-
र्य्याय । आवसितम् २ । इत्यमर ॥ अवसितम् ३ ।
इति तट्टीका । सिद्धान्त । इति हेमचन्द्र ॥
(पुं, विष्णु । यथा, महाभारते विष्णुसहस्रनाम
कीर्त्तने १३ । १४९ । ४३ ।
"ऋद्ध स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युति" ॥)
ऋद्ध, त्रि, (ऋध् + क्त ।) समृद्ध । सम्पन्न । इति
मेदिनीकरहेमचन्द्रौ ॥ (यथा, गीतायाम् । २ । ८ ।
"अवाप्य भूमावसपत्नमृद्ध
राज्य सुराणामपि चाधिपत्यम्" ॥)
ऋद्धि, स्त्री, (ऋध् + क्तिन् ।) अष्टवर्गान्तर्गतौषध
विशेष तत्पर्य्याय । योग्यम् २ सिद्धि ३ लक्ष्मी
४ । इत्यमर ॥ प्राणप्रदा ५ वृष्या ६ । इति रत्न
माला ॥ प्राणदा ७ जीवदात्री ८ सिद्धा ९ योग्या

१० चेतनीया ११ रथाङ्गी १२ मङ्गल्या १३ लोककान्ता १४ जीवश्रेष्ठा १५ यशस्या १६। अस्या गुणाः। मधुरत्वम्। सुस्निग्धत्वम्। अतितिक्तत्वम्। शीतलत्वम्। रुचिमेधाकारित्वम्। श्लेष्मकुष्ठक्रिमिनाशित्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः॥ अस्या रूपं यथा,—

"ऋद्धिर्वृद्धिश्च कन्दौ द्वौ भवतः कोशयामले।
श्वेतलोमान्वितः कन्दो लताजातः सरन्ध्रकः॥
स एव ऋद्धिर्वृद्धिश्च भेदमप्येतयोर्ब्रुवे।
तूलग्रन्थिसमा ऋद्धिर्वामावर्त्तफला च सा॥
वृद्धिस्तु दक्षिणावर्त्तफला प्रोक्ता महर्षिभिः"।

अथौषधकरणे ऋद्धिवृद्धिस्थाने वाराहीकन्द अथवा बला देया। इति परिभाषा॥ * ॥ समृद्धिः। इति मेदिनी॥ (यथा, कुमारे २। ५८॥
"परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिर्न मया न च विष्णुना"।)
पार्व्वती। इति शब्दरत्नावली॥ (लक्ष्मीः॥)

ऋध, उ य न इर वृद्धौ। इति कविकल्पद्रुमः॥ (दिवां, स्वा-पर-सक-सेट्।) य ऋध्यति। उ अर्द्धित्वा ऋद्ध्वा। न ऋध्नोति। इर आर्धत् आर्धीत्। क्वचित्तृतौ चायम्। सोऽहं प्राग्भवतेव भूतजननीमृध्नोमीति भवभूतिः॥ अन्तर्भूतण्यर्थत्वादिदं सिद्धमिति केचित्। इति दुर्गादासः॥

ऋफ, श दाने। श्लाघायाम्। हिंसायाम्। निन्दायाम्। युद्धे। इति कविकल्पद्रुमः॥ (तुदा-पर-सक, अक च-सेट्।) श ऋफति जनो ददाति श्लाघते हिनस्ति निन्दति युध्यते वेत्यर्थः। आनर्फ। हिंसायामप्ययमित्यन्ये। इति दुर्गादासः॥

ऋभुः, पुं, (ऋः स्वर्गो देवमातुरदितेर्व्वा भवति यः। ऋ+भू+डु।) देवता। इत्यमरः॥ (यथा, ऋग्वेदे। ९।२१।६।
"ऋभुर्न रथ्यं नवं दधता केतुमादिशे"॥
देवानामपि देवः। यथा, महाभारते वनपर्व्वणि।
"ऋभवो नाम तत्रान्ये देवानामपि देवताः।
तेषां लोकाः परतरे यान्यजन्तीह देवताः"॥)
चाक्षुषमन्वन्तरे देवगणभेदः। यथा,—
"आद्याः प्रभूता ऋभवः पृथुकाश्च दिवौकसः"।
इति हरिवंशे। ७। ३२॥)

ऋभुक्षः, पुं, (ऋभवो देवाः क्षियन्ति वसन्ति यत्र। ऋभु+क्षि+ड।) स्वर्गः। वज्रम्। इन्द्रः। इति। रायमुकुटः॥ (देवमात्रे। यथा ऋग्वेदे। ४। ३७। १। "उपनो राजा अध्वरमृभुक्षाः"।
"ऋभुक्षाः ऋभवः"। इति भाष्यम्॥)

ऋभुक्षा, [न्] पुं, (ऋभुक्षः स्वर्गो वज्रं वा अस्यास्तीति इनि। "पथिमथ्यृभुक्षामात्"। ७।१।८५। "इतोत्सर्व्वनामस्थाने"। ७।१।८६। इत्यादिना सिद्धम्। यद्वा ऋभुक्षति इति अर्त्तेर्भुक्षिनक् प्रत्ययः।) इन्द्रः। इत्यमरः॥ (यथा, ऋग्वेदे। ७। ३७। २। "इन्द्रो विभ्वां ऋभुक्षा वाजो अर्य्यः"। इति॥)

ऋम्फ, प श वधे। (मुचादि-तुदां-पर-सक-सेट्।) इति रिम्फधातोष्टीकायां दुर्गादासः॥

ऋश, गतिस्तुत्योः। सौत्रधातुरयम्। (परं सकं-सेट्।) ऋशति। इति दुर्गादासः॥

ऋश्य, पुं स्त्री, (ऋश्+क्यप्।) मृगविशेषः। इति शब्दरत्नावली॥ (यथा, ऋग्वेदे। ८। ४। १०।
"ऋश्यो न तृष्यन्नवपानमागहि"॥)

ऋष, ई श गतौ। इति कविकल्पद्रुमः॥ (तुदा-पर-सक-सेट्।) रुक्षादिः। ई ऋष्टः। श ऋषति। इति दुर्गादासः॥

ऋषभ, पुं, (ऋष्+"ऋषिवृषिभ्यां कित्"। इति उणादिसूत्रेण ३।१२३। अभच्। किच्च।) वृषः। (यथा, ऋग्वेदे ६। २८। ८। "उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्य्ये"॥) कर्णरन्ध्रम्। कुम्भीरपुच्छः। उत्तरपदे श्रेष्ठः। इति मेदिनी॥
("स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः।
सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः"॥
इत्यमरवाक्यात्। यथा पुरुषर्षभः पुरुषश्रेष्ठ इत्यर्थः। असमस्तेऽप्ययं श्रेष्ठार्थवाचकः। यथा, भागवते २। ४। २२॥
"स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलास्यतः
स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम्"॥
"ऋषीणां ज्ञानप्रदानाम् ऋषभः श्रेष्ठः"। इति तट्टीका॥ गणविशेषः। आकृतिगणोऽयम्। यथा पाणिनिः तत्पुरुषसमासप्रकरणे २। १। ५६॥ "उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे"॥ व्याघ्रादिराकृतिगणः। "व्याघ्र-सिंह-ऋक्ष-ऋषभ-चन्दन-वृक-वृष-वराह-हस्तिन्-तरु-कुञ्जर-रुरु-पृषत्-पुण्डरीक-पलाश-कितवाः"। इत्येते व्याघ्रादयः॥) पर्व्वतविशेषः। इति धरणी॥ वराहपुच्छः। आदिजिनः। इति हेमचन्द्रः॥ भगवदवतारविशेषः। (यथा, भागवते ५।६।७। "तस्य ह वा एवं मुक्तलिङ्गस्य भगवत ऋषभस्य योगमायावासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन चङ्क्रममाणः"।) स तु सत्ययुगे आग्नीध्रसुतनाभिराजपुत्त्रत्वेन जातः। तस्य पुत्त्रः जडभरतः। इति श्रीभागवतम्। (तथा, मार्कण्डेये ५३। ३८।
"आग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत् सुतो द्विज।
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्त्रशताद्वरः"॥
स्वारोचिषे मन्वन्तरे ऋषिभेदः। यथा, मार्कण्डेये ६७। ४।
"ऊर्जस्तम्बस्तथा प्राणो दत्तोलिर्ऋषभस्तथा"॥
ऋषभसहस्रदक्षिण एकाहनिष्पाद्यो यागभेदः। यथाह गर्गः "पूर्व्वं ऋषभसज्ञो राज्ञः"॥ स्वनामख्यातः यज्ञतुरपुत्त्रो नृपभेदः। यथा, शतपथब्राह्मणे १३। ५। ४। १५। "एकविंशस्तोमेन ऋषभो याज्ञतुर ईजे शिक्नानां राजा तदेतद्गाथयाऽभिगीतम्"॥) अष्टवर्गान्तर्गतौषधविशेषः। तत्पर्य्यायः। वृषः १ ऋषभकः २ वीरः ३। इति रत्नमाला॥ गोपतिः ४ धीरः ५ विषाणी ६ दुर्द्धरः ७ ककुद्मान् ८ पुङ्गवः ९ वोढा १० शृङ्गी ११ धूर्य्यः १२ भूपतिः १३ कामी १४ ऋक्षप्रियः १५ उक्षा १६ लाङ्गूली १७ गौः १८ मन्थरः १९ गोरक्षः २० वनवासी २१। अस्य गुणाः। मधुरत्वम्। शीतत्वम्। रक्तपित्तविरेकनाशित्वम्। शुक्रश्लेष्मकारित्वम्। दाहक्षयज्वरहरत्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः॥ * ॥
("जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ।
रसोनकन्दवत्कन्दौ निःसारौ सूक्ष्मपत्रकौ"॥
"ऋषभो वृषभृङ्गवत्"॥
"ऋषभो वृषभो धीरो विषाणी द्राक्ष इत्यपि"॥
अनयोर्गुणा यथा॥
"जीवकर्षभकौ बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ।
मधुरौ पित्तदाहास्रकार्श्यवातक्षयापहौ"॥
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे प्रथमे भागे॥) सप्तस्वरान्तर्गतद्वितीयस्वरः। (अत्र स्वरः त्रिश्रुतिः। अस्य तिस्रः श्रुतयो यथा, (१) दयावती, (२) रञ्जनी, (३) रतिका। तिस्रश्च श्रुतिजातयो यथा, (१) करुणा, (२) मध्या, (३) मृदुः। अयञ्च ऋषिवंशीयः, क्षत्त्रियजातिः, पिञ्जरवर्णश्च। अस्योत्पत्तिः शाकद्वीपे। अस्य ऋषिः देवता च ब्रह्मा, छन्दो गायत्री। यथा सङ्गीतरत्नाकरे,—
"ऋषभस्त्रिश्रुतिस्तत्र ।
दयावती रञ्जनी च रतिका चर्षभे स्थिता॥
दीप्तायता मृदुर्मध्या षड्जे स्यात् ऋषभे पुनः।
संस्थिता करुणा मध्या मृदु . .॥
पञ्चमः पितृवंशस्थो रि-धावृषिकुलोद्भवौ।
ऋधौ तु क्षत्त्रियौ ज्ञेयौ वैश्यजाती निगौ मतौ"॥
रि धौ ऋषभधैवतौ इत्यर्थः। इत्यादि।)
स तु गोस्वरतुल्यस्वरः। चातकस्वरतुल्यस्वर इति केचित्। नारदमते गावः ऋषभस्वरं वदन्ति यथा,—
"षड्जं रौति मयूरो हि गावो नर्द्दन्ति चर्षभम्"।
इति नारदसंहितायाम्। दर्पणरत्नाकरादिमते तु चातकः ऋषभं वदति। यथा सङ्गीतदर्पणे,—
"स्वरमृषभं चातको ब्रूते"।) अस्योत्पत्तिः।
"नाभिमूलाद्यदा वर्ण उत्थितः कुरुते ध्वनिम्।
वृषभस्येव निर्घाति हेलया ऋषभः स्मृतः"॥
इति सङ्गीतदामोदरः॥
("नाभेः समुदितो वायुः कण्ठशीर्षसमाहतः।
ऋषभस्येव नादं यत् तस्मादृषभ ईरितः"॥
इति च सङ्गीतसमयसारे। अस्योत्पत्तिः ऋग्वेदात्। यथा रत्नावल्याम्,—
"ऋग्वेदात् षड्ज ऋषभौ यजुषो मध्यधैवतौ।
सामवेदात् समुद्भूतौ तथा गान्धारपञ्चमौ"॥
इति॥)

ऋषभध्वजः, पुं, (ऋषभः ध्वजश्चिह्नमस्य ध्वजेऽस्य वा।) शिवः। अर्हद्विशेषः। इति मेदिनी॥

ऋषभी, स्त्री, (ऋषभ+जातौ ङीष्।) नराकारस्त्री। शूकशिम्बी। शिराला। विधवा। इति मेदिनी॥ (शूकशिम्ब्यर्थे व्यवहारो यथा॥
"ऐन्द्र्यृषभ्यतिरसेत्यादिः"।
इति चरके सूत्रे चतुर्थेऽध्याये॥ अत्र हि ऋषभी शूकशिम्बी इत्यस्य शिवदासीयटीका॥ * ॥)

ऋषिः, पुं, (ऋषति प्राप्नोति सर्व्वान् मन्त्रान् ज्ञानेन पश्यति संसारपारं वा इति। ऋष्+"इगुपधात् कित्" ४। ११९। इति उणादिसूत्रेण इन् किच्च।) ज्ञानसंसारयोः पारगन्ता। शास्त्रकृदाचार्य्यः। (यथा, ऋग्वेदे १। १। २। "अग्निः

पूर्व्वैभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत स देवा एह वक्षति”॥) रिषिर्द्दृष्टसादिश्च। “विद्याविदग्धमतयो रिषय प्रसिद्धाः”। इति प्रयोगात्। इति भरत॥ तत्पर्य्याय। सत्यवचा २ शापास्त्र ३। स तु सप्तविध यथा। व्यासाद्या महर्षय १ भेलाद्या परमर्षय २ कण्वादयो देवर्षय ३ वशिष्ठाद्या ब्रह्मर्षय ४ सुश्रुताद्या श्रुतर्षय ५ ऋतपर्णादयो राजर्षयः ६ जैमिन्याद्या काण्डर्षय। इति त्रिकाण्डशेष। तथा च रत्नकोषे।

“सप्त ब्रह्मर्षि-देवर्षि-महर्षि-परमर्षय।
काण्डर्षिश्च श्रुतर्षिश्च राजर्षिश्च क्रमावरा॥”॥

मन्वन्तरभेदे सप्तर्षिनामानि यथा।

१। स्वायम्भुवमन्वन्तरे मरीचिः। अत्रि। अङ्गिरा। पुलस्त्य। पुलहः। क्रतु। वशिष्ठ। (यथा हरिवंशे। ७।८।

“मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिरा पुलह क्रतुः।
पुलस्त्यश्च वशिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मण सुता”॥)

२। स्वारोचिषे उर्जस्तम्भादय।
(यथा, मार्कण्डेये ६७। ४।

“उर्जस्तम्भस्तथा प्राणो दत्तोलिर्ऋषभस्तथा।
निश्चरश्चार्ववीरश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवन्”॥)

३। उत्तमे वशिष्ठसुता प्रमदादय।
(यथा, मार्कण्डेये ७३। १३।

“स्वतेजसा हि तपसो वशिष्ठस्य महात्मनः।
तनयस्तान्तरे तस्मिन् सप्त सप्तर्षयोऽभवन्”॥)

४। तामसे ज्योतिर्धामादय।
(यथा मार्कण्डेये ७४। ५९।

“ज्योतिर्धामा पृथु काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वलकस्तथा।
पीवरश्च तथा ब्रह्मन् सप्त सप्तर्षयोऽभवन्”॥)

५। रैवते हिरण्यरोमा वेदश्रिरा ऊर्द्ध्वबाहुरित्यादय। (यथा मार्कण्डेये ७५। ७३-७४।

“हिरण्यरोमा वेदश्रीरूर्द्ध्वबाहुस्तथापर।
वेदबाहु सुधामा च पर्जन्यश्च महामुनि॥
वशिष्ठश्च महाभागो वेदवेदान्तपारग।
एते सप्तर्षयश्चासन् रैवतस्यान्तरे मनो”॥)

६। चाक्षुषे हविष्मद्वीरकादय।
(मार्कण्डेयमतानुयायिन उच्यन्ते तत्रैव।७६।५४।

“सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुन्नतो मधु।
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तासन्निति चर्षय”॥)

७। वैवस्वताख्यवर्त्तमानमन्वन्तरे कश्यप। अत्रि। वशिष्ठ। विश्वामित्र। गौतमः। जमदग्निः। भरद्वाज। (यथा मार्कण्डेये ७९। ९-१०।

“अत्रिश्चैव वशिष्ठश्च काश्यपश्च महानृषिः।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिक॥
तथैव पुत्त्रो भगवानृचीकस्य महात्मन।
जमदग्निस्तु सप्तैते मुनयोऽत्र तथान्तरे”॥)

८। सावर्णिके गालव। दीप्तिमान्। परशुराम। अश्वत्थामा। कृप। ऋष्यशृङ्ग। व्यास। (यथा, मार्कण्डेये ८०। ४।

“रामो व्यासो गालवश्च दीप्तिमान् कृप एव च।
ऋष्यशृङ्गस्तथा द्रौणिस्तत्र सप्तर्षयोऽभवन्”॥
राम परशुराम। द्रौणिरश्वत्थामा॥)

९। दक्षसावर्णिके द्युतिमदाद्याः।
(यथा मार्कण्डेये ९४।८।

“मेधातिथिर्वसुः सत्यो ज्योतिष्मान् द्युतिमांस्तथा।
सप्तर्षयोऽन्यः सबलस्तथान्यो हव्यवाहन”॥)

१०। ब्रह्मसावर्णिके हविष्मत्सुकृतसत्यजयमूर्त्याद्या। (यथा मार्कण्डेये ९४। १०, १३, १४।

“मनोस्तु द्वितीयस्यान्यच्छृणु मन्वन्तरं द्विज।॥
सप्तर्षींस्तान् निबोध त्वं ये भविष्यन्ति वै तदा।
आपो मूर्त्तिर्हविष्मांश्च सुकृती सत्य एव च।
नाभागोऽप्रतिमश्चैव वाशिष्ठश्चैव सप्तम”॥)

११। धर्म्मसावर्णिके अरुणादय।
(यथा मार्कण्डेये ९४।१९-२०।

“हविष्मांश्च वरिष्ठश्च ऋष्टिरन्यस्तथारुणि।
निश्चरश्चानघश्चैव विष्टिश्चान्यो महामुनि॥
सप्तर्षयोऽन्तरे तस्मिन्नग्निदेवस्य सप्तम”॥)

१२। रुद्रसावर्णिके तपोमूर्त्त्याद्य।
(यथा मार्कण्डेये ९४।२५।

“द्युतिस्तपस्वी सुतपास्तपोमूर्त्तिस्तपोनिधि।
तपोरतिस्तथैवान्य सप्तमस्तु तपोधृतिः”॥)

१३। देवसावर्णिके निर्म्मोहतत्त्वदर्श्याद्या। (मार्कण्डेयपुराणमते अथ त्रयोदशमनु रौच्याख्ययाभिहित। यथा, तत्रैव ९४। २७ ३०।

“त्रयोदशस्य पर्य्याये रौच्याख्यस्य मनो सुतान्।
सप्तर्षींश्च नृपांश्चैव गदतो मे निशामय॥
सुधर्म्माणा सुरास्तत्र सुकर्म्माणस्तथापरे।
सुशर्म्माणा सुरा ह्येते समस्ता मुनिसत्तम।॥
महाबलो महावीर्य्यस्तेषामिन्द्रो दिवस्पति।
भविष्यानथ सप्तर्षीन् गदतो मे निशामय।
धृतिमानव्ययश्चैव तत्त्वदर्शी निरुत्सुक।
निर्म्मोह सुतपाश्चान्यो निष्प्रकम्पश्च सप्तम”॥)

१४। इन्द्रसावर्णिके अग्निबाहुशुचिशुक्रमागधाद्या सप्तर्षय। (मार्कण्डेयपुराणमतेऽयं भौत्याख्ययाभिहित। यथा तत्रैव ९९। १।

“तत परन्तु भौत्यस्य समुत्पत्ति निशामय।
देवान्द्वीपांस्तथा पुत्त्रांश्चैव वसुधाधिपान्”॥
तत पर त्रयोदशमन्वन्तरमन्तम्॥ अस्मिन् मन्वन्तरे सप्तर्षिनामान्याह तत्रैव १००। ३१।

“आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च शुचिर्मुक्तोऽथ माधव।
शुक्रोऽजितश्च सप्तैते तदा सप्तर्षय स्मृता”॥
पुराणान्तरे मतभेदात् मन्वन्तरसप्तर्षीणां नामभेदोऽपि दृश्यते। हरिवंशे ७ अध्याये तथा विष्णुपुराणे ३ अंशे अस्य विवरणादिकं द्रष्टव्यम्॥)

॥*॥ ज्योतिःशास्त्रमते वशिष्ठपत्न्यरुन्धतीसहितवर्त्तमानमन्वन्तरीयसप्तर्षीणा मघानक्षत्रे स्थितिः तस्योदये तेषाञ्चोदयो भवति। काशीखण्डमते शनिलोकादूर्द्ध्वं ध्रुवलोकात् अध तेषां स्थिति॥*॥ वेद। किरण। इति मेदिनी॥ भृग्वादिमहर्षिसन्तान। यथा।

“भृगुर्म्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतु।
मनुर्दक्षो वशिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश॥
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उत्पन्ना स्वयमीश्वराः।
परत्वेनर्षयस्तस्मान्मृतास्तस्मान्महर्षय॥
ईश्वराणां सुतास्तेषामृषयस्तान् निबोधत।
काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्च्यवनस्तथा।
उतथ्यो वामदेवश्च अगस्त्यश्चौशिजस्तथा”॥
औशिजस्थाने कौशिक इति वा पाठ।
“कर्द्दमो बालखिल्याश्च विश्रवाः शक्तिवर्द्धन।
इत्येते ऋषय प्रोक्तास्तपसा ऋषितां गता”॥
इति। तस्य व्युत्पत्तिर्यथा।
“ऋषि हिंसागतौ धातुर्विद्यासत्यतपःश्रुति।
एष सन्निचयो यस्मात् ब्रह्मणस्तु तत ह्यृषि॥
निवृत्तिसमकालन्तु बुद्ध्या व्यक्तिमृषिस्त्वयम्।
ऋषन्ते परमा यस्मात् परमर्षिस्तत स्मृतः॥
गत्यर्थादृषतेर्धातोर्नामनिर्वृत्तिकारणम्।
यस्मादेष स्वयम्भूतस्तस्माच्च ऋषिता मता”॥
इति मत्स्यपुराणे १२० अध्याय॥

ऋषिक, } पुं, (ऋषे पुत्त्र। ऋषि + कन्।) काव्या-
ऋषीकः, } दि ऋषिपुत्त्र। यथा।

“ऋषिपुत्त्रा ऋषीकास्तु मैथुनाद्गर्भसम्भवात्।
परत्वेनर्षयस्ते वै भूतादिऋषिकास्ततः॥
ऋषीकाणा सुता ये वै विज्ञेया ऋषिपुत्त्रका।
इत्येते ऋषय प्रोक्तास्तपसा ऋषितां गता॥
तेषा पुत्त्रानृषीकास्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत।
वत्सरो नग्नहुश्चैव भारद्वाजश्च वीर्य्यवान्।
ऋषिर्द्दीर्घतपाश्चैव बृहदुक्थ शरद्वतः॥
वाजिश्रवा सुचित्तश्च शावोऽश्वश्च पराशरः।
शृङ्गी च काश्यपश्चैव राजा वैश्रवणस्तदा॥
इत्येते ऋषिका सर्व्वे सत्येन ऋषितां गता”।
इति मात्स्ये १२० अध्यायः॥

ऋषिकुल्या, स्त्री, (ऋषीणां कुल्या कृत्रिमाल्पा सरिदिव।) नदी। इति हेमचन्द्र॥
(“ऋषिकुल्यां समासाद्य नर स्नात्वा विकल्मष।
देवान् पितॄन् चार्च्चयित्वा ऋषिलोक प्रपद्यते”॥
इति महाभारते। तीर्थयात्रापर्व्वणि ३। ८४। ४६।)
ऋषिकुलाय हितम्। ऋषिकुल + यत्। ऋषिकुलहिते, त्रि। यथा, भागवते ३। १६। १३।
“अथ तस्योशतीं देवीमृषिकुल्यां सरस्वतीम्।
नास्वाद्य मन्युदष्टाना तेषामात्माप्यतृप्यत”॥)

ऋषिशाङ्गलिकी, स्त्री, (ऋषिप्रिया शाङ्गलिकी।) क्षुद्रगन्धाढ्यक्षुः। इति रत्नमाला॥ ऋषिशाङ्गलइति ख्यात। (वृद्धदारकशब्देऽस्या विशेषो ज्ञेय॥)

ऋषिप्रोक्ता, स्त्री, (ऋषिणा प्रोक्ता औषधार्थम्।) माषपर्णीभेदः। इति रत्नमाला॥ (माषपर्णीशब्देऽस्या गुणादिकं ज्ञेयम्॥)

ऋष्टिः, स्त्री, (ऋष् हिंसाया + क्तिन्।) खड्ग। इत्यमर॥ (यथा, ऋग्वेदे। ५। ५७। २।

“वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः।
सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः”॥
आयुधमात्रम्। यथा ऋग्वेदे १। १६६। ४।
“भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या।
चित्रो वो याम प्रयतास्वृष्टिषु”॥
“ऋष्टिषु युद्धस्य हेतिषु”। इति भाष्यम्।
तथा तत्रैव। ५। ५२। ६।
“आ रुक्मैरायुधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत”।

"ऋष्टीरायुधविशेषान्" । इति भाष्यम् ।
तथा मनु ३ । १३३ ।
"यावतो ग्रसते ग्रासान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलर्ष्ट्ययोगुडान्" ॥
"ज्वलितशूलर्ष्ट्याख्यायुधलोहपिण्डान्" । इति तट्टीका ॥ दीप्ति । यथा, ऋग्वेदे ३ । ५४ । १३ ।
"विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो
दिवो मर्या ऋतजाता अयास" ।
"ऋष्टिमन्तो दीप्तिमन्त" । इति भाष्यम् ॥ गमनागमनशील । यथा, ऋग्वेदे १ । ६४ । ४ ॥ "अंसेष्वेषा निमिमृक्षुर्ऋष्टय साकं यज्ञिरे स्वधया दिवो नर" । "ऋष्टय गमनागमनशीला" । इति दयानन्दभाष्यम् ॥ पु, धर्म्मसावर्णिके मन्वन्तरे ऋषिभेद । यथा, मार्कण्डेये । ९४ । १९ ।
"हविष्मांश्च वरिष्ठश्च ऋष्टिरन्यस्तथारुणि" ॥)

ऋष्य, पु स्त्री, (ऋष् + यत् । निपातनात् सिद्धम् ।) मृगविशेष । इत्यमर ॥ (यथा महाभारते ऋष्यशृङ्गोपाख्याने । ३ । ११० । २७ ।
"ऋष्यशृङ्ग कथ मृग्यामुत्पन्न काश्यपात्मज" ।
ऋष्यस्य मृगविशेषस्य शृङ्गमिव शृङ्ग यस्य स ऋष्यशृङ्ग ।
"ऋष्यो नीलाङ्गको लोके सरोह्य इति कीर्त्तित" ॥
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे द्वितीये भागे ॥) स्वनामख्यात कुरुवंशीयो देवातिथिपुत्र । यथा भागवते । ९ । २२ । ११ ।
"ततश्च क्रोधनस्तस्माद् देवातिथिरमुष्य च ।
ऋष्यस्तस्य दिलीपोऽभूत् प्रतीपस्तस्य चात्मज" ॥

ऋष्यकेतु, पु, (ऋष्य केतौ यस्य ।) अनिरुद्ध । इति त्रिकाण्डशेष ॥ अस्य रूपान्तराणि । ऋश्यकेतु । ऋष्यकेतन । रिष्यकेतु । विश्वकेतु ॥

ऋष्यगता, स्त्री, (ऋष्येण ऋषिसमूहेन गता ज्ञाता ।) ऋष्यप्रोक्तावृक्ष । इति शब्दरत्नावली ॥

ऋष्यगन्धा, स्त्री, (ऋष्यस्य मृगविशेषस्य गन्ध इव गन्धो यस्या ।) वृक्षविशेष । ऋषिजाङ्गल इति ख्यात । तत्पर्य्याय । ऋक्षगन्धा २ ऋषिजाङ्गलिकी ३ । इति रत्नमाला ॥
("महासहा-ऋद्धि ऋष्यगन्धाश्वगन्धेत्यादिषु" ॥
इति चरके विमानस्थाने अष्टमेऽध्याये ॥)

ऋष्यप्रोक्ता, स्त्री, ( ऋष्येण ऋषिसमूहेन प्रोक्ता ।) शतमूली । शूकशिम्बी । अतिबला । इति मेदिनी ॥ (अस्या पर्य्यायो यथा ॥
"अतिबला महाशतावरी कपिकच्छुश्च" ।
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे द्वितीये भागे ॥
व्यवहारो यथा ॥
"ऐन्द्र्यृषभ्यतिरसर्ष्यप्रोक्तापयस्येत्यादिषु" ।
इति चरके सूत्रस्थाने चतुर्थेऽध्याये ॥ अत्र तु ऋष्यप्रोक्ता माषपर्णी इति शिवदासीयटीका ॥ * ॥
"कुक्कुटी सर्पगन्धा च तथा काणविषाणिके ।
ऋष्यप्रोक्ता वयस्था च शृङ्गी मोहनवल्लिका" ॥
इति उत्तरतन्त्रे षष्टितमेऽध्याये सुश्रुतेनोक्तम् ॥)

ऋष्यमूक, पु, (ऋष्यो मृगो मूको यत्र ।) पर्व्वतविशेष । इति जटाधर ॥ स तु दक्षिणदेशे पम्पासरोवरकूले स्थित । यत्र वालिभयात् सुग्रीवादय पञ्च वानरा स्थिता ॥ इति रामायणम् ॥
("तावृष्यमूकस्य समीपचारी
चरन् ददर्शाद्भुतदर्शनीयौ" ।
इति रामायणे । ४ । १ । १२८ ॥ )

ऋष्यशृङ्ग, पु, (ऋष्यस्य मृगस्य शृङ्गमिव शृङ्गमस्य ।) मुनिविशेष । स तु विभाण्डकसुत । तस्य भार्य्या लोमपादराजकन्या शान्ता । इति रामायणम् ॥ ('मान्यो मुनि स्वा पुरमृष्यशृङ्ग"। इति भट्टि । १ । १० ॥ अस्य जन्मन प्रभृति विवरणमुच्यते ।

आसीत्पुरा महातेजास्तपस्विसत्तम काश्यपो विभाण्डको नाम ऋषि । स च महाहृद समासाद्य दीर्घकाल तपसि स्थित । एकदाप्सरसमुर्व्वशीं दृष्ट्वा चलितचित्तस्यास्य रेत अप्सु प्रचस्कन्द । तत काचित् मृगी तृषिता तोयेन सह तत्पीत्वा गर्भिणी अभवत् । इयं हि मृगी पुरा काचित् देवकन्यासीत् शापवशात् मृगरूपधारिणी वने विचरन्ती स्थिता । अथामोघत्वात् ब्रह्मरेतसस्तस्या मृग्यामेक पुत्र समभवत् । मृगीगर्भजातत्वादस्य शिरसि शृङ्गमजायत तेनास्य ऋष्यशृङ्ग इति नाम समभवत् । अनेन हि पितुरन्य कोऽपि मानुषो न दृष्टपूर्व्वस्तस्मादनन्यविषय अस्य मन सदा ब्रह्मचर्य्ये एवाभवत् । एतस्मिन्नेव काले दशरथस्य बन्धुर्लोमपाद इति ख्यातोऽङ्गानामीश्वर समभवत् । तेन कामात् ब्राह्मणस्य मिथ्याकृतम् । अस्मात् सर्व्वे ब्राह्मणास्त परितत्यजु । प्रशान्तयज्ञस्यास्य राज्ये न ववर्ष शत क्रतु । अत क्लिष्टचित्त स राजा ब्राह्मणान् सन्तोषयित्वा कश्चिदुपाय पर्य्यपृच्छत् । तेन पृष्टास्ते ब्राह्मणा यज्ञार्थं ऋष्यशृङ्गमानेतुं उपदिदिशु । अथ स राजा दुष्करत्वादस्य कार्य्यस्य ऋष्यशृङ्गमानेतु शापाद्भीतामिवाराङ्गनाभिर्यत्नमकरोत् । अथ रूपयौवनसम्पन्ना काश्चित् वाराङ्गना बहूनि उपायनद्रव्याणि गृहीत्वा जलपथेन त तपोधनम् लोभयित्वानेतुं प्रतस्थिरे । अथ ता काश्यपस्याश्रम समासाद्य व्याजकृताश्रमा नावमदूरे निबध्य तत्रोत्तस्थु । अथ कदाचित् तासा काचित् कुशला ऋषे सुत त दृष्ट्वा वाग्भङ्ग्या मोहयित्वा विचित्राणि माल्यानि वासासि च दत्त्वा पेयानि च पाययित्वा तेन सह चिक्रीड प्रजहास च । एतादृशेन विविधोपायेन त प्रापयित्वा कामवशता अग्निहोत्रस्योपदेश कृत्वा च स्वस्थानमाजगाम । गतायाञ्च तस्या मदनेन मत्तो विचेतनश्चाभवदृष्यशृङ्ग । अथ विभाण्डकस्तपस प्रतिनिवृत्य स्वसुत तथाविध दृष्ट्वा प्रबोधयामास । प्रबोध्य तपस्यार्थं प्रस्थिते च तस्मिन् पुन सा ऋषिरूपधारिणी वेश्या त विभाण्डकसुत प्रलोभ्य नाव्याश्रममानीय द्रुततर लोमपादराज्यमागता । अथ स राजा त प्राप्य विभाण्डकसुत प्रहृष्टमना अन्त पुरे निवेशयामास । प्रविष्टे च तस्मिन् तपोधने समस्तराज्य प्रवृष्ट जलेनापूर्य्यमाणमभवत् । एवं स लोमपाद परिपूर्णकाम तपोधनाग्रगण्यात् विभाण्डकात् शापमुक्तिमिच्छन् स्वमित्रस्य दशरथस्य सुता शान्ता ऋष्यशृङ्गाय प्रददौ । अथ विभाण्डको मुनि तपस प्रतिनिवृत्त सुतमनवलोक्य ध्यानधिया सर्व्वमवगम्य क्रुधा ज्वलन्निव लोमपादराज्य आजगाम । आगते च तस्मिन् विभीतै सर्व्वै ऋष्यशृङ्गस्य राज्यमिदमिति आचख्ये । पूजितश्च तेन राजर्षिणा दिवि इन्द्रमिव पुत्र शचीमिव शान्ता स्नुषाञ्चावलोक्य ग्रामांश्च घोषांश्च सुतस्य इत्यवगम्य शान्तकोप स्वाश्रम प्रति प्रययौ । अथ स ऋष्यशृङ्ग शान्तया सह तस्मिन् राज्ये सुखमतिचिरमवसत् ॥

अथ गच्छति काले सूर्य्यवंशावतंसो राजा दशरथ अनपत्यतया क्लिश्यमानहृदयो निजगुरु वशिष्ठदेव पुत्त्रलाभोपाय प्रपप्रच्छ । एवमुक्तस्तेन ऋषिप्रवरो वशिष्ठ लोमपादराज्यात् ऋष्यशृङ्गं तपोधन समानीय पुत्त्रेष्टिं कर्त्तुं समादिशत् । अथासौ राजा एवमभिहित स्वजामातरममुं ऋष्यशृङ्गमानेतु यत्नमकरोत् । तत आगतेन तेन क्रियमाणे यज्ञे दैवश्चरुर्वह्निमध्यादुदतिष्ठत् । एतच्चरुभक्षणात् नारायणावतारस्वरूपा रामादयश्चत्वारो दशरथस्य तनया जाता । अथ विभाण्डकसुतस्तु महाप्रतापवान् यज्ञनिष्ठश्चेति प्रसिद्ध । एतत्कथा च महाभारते । ३ । ११० अध्यायन्तथा रामायणे । १ । ९ अध्यायश्चारभ्य द्रष्टव्या ॥ * ॥ सावर्णिके मन्वन्तरे ऋषिभेद । यथा, मार्कण्डेये ८० । ४ ।
"रामो व्यासो गालवश्च दीप्तिमान् कृप एव च ।
ऋष्यशृङ्गस्तथा द्रौणिस्तत्र सप्तर्षयोऽभवन्" ॥)

---

## ॠ

ॠ दीर्घऋकार । स तु अष्टमस्वरवर्ण । अस्योच्चारणस्थान मूर्द्धा । ( यथा, सिद्धान्तकौमुद्या "ऋटुरषाणाम्मूर्द्धा"। पाणिनीयशिक्षायामपि । "स्युर्मूर्द्धण्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसा स्मृता" ।) स प्लुतश्च भवति ॥ इति व्याकरणम् ॥
(स च उदात्तानुदात्तस्वरितभेदात् त्रिधापि पुन प्रत्येकमनुनासिकाननुनासिकभेदेन द्विधेति षड्विध ।)
"ॠकार परमेशानि स्वय परमकुण्डलम् ।
पीतविद्युल्लताकार पञ्चदेवमय सदा ॥
चतुर्ज्ञानमय वर्ण पञ्चप्राणयुत सदा ।
त्रिशक्तिसहित वर्ण प्रणमामि सदा प्रिये" ।
इति कामधेनुतन्त्रम् ॥
(वङ्गीयभाषायाम् ।) तस्य लेखनप्रकारो यथा,—
"वक्रधाधोगता दक्षा वामत कुञ्चिता त्वध ।
पुनरूर्द्ध्वगता रेखा तासु ब्रह्मेशविष्णव ॥
मात्रा शक्ति परा ज्ञेया ध्यानमस्य प्रवक्ष्यते" ।
इति वर्णोद्धारतन्त्रम् ॥ * ॥ तस्य नामानि यथा ।
"ॠ क्रोधोऽतिथिशो वाणी वामनो गोऽथ श्रीर्दृति ।
ऊर्द्ध्वमुखी निशानाथ पद्ममाला विनष्टधी ॥
शशिनी मोचिका श्रेष्ठा दैत्यमाता प्रतिष्ठिता ।

एकदन्ताङ्कयो माता हरिता मिथुनोदया ॥
कोमला श्यामला मेधी प्रतिष्ठा पतिरष्टमी ।
अग्न्यग्निमिव कीलाले पावको गन्धकर्षिणी" ॥
इति तन्त्रशास्त्रम् ॥ वामनासिका । इति वीजवर्णाभिधानम् ॥ (मातृकान्यासेऽस्य वामनासिकाया न्यस्ततया तथात्वम् । यदुक्तं मातृकान्यासमन्त्रे । "ॠं नमो दक्षिणघ्राणे ॠं नमो वामघ्राणे" । इति ॥ अनुबन्धविशेषत्वेन अङ्गाङ्गस्रो वा स्यात् । यदुक्तं कविकल्पद्रुमे । "अङ्गाङ्गस्रोऽथ ॠर्वा ऌरह्स्वानिर्वाय ए सिचि" ॥ (एतेन कॄ आर्त्तस्वरे लुङि कृते अचीकणत् अचकणत् इति स्यात् ॥)

ॠ गि गत्या । इति कविकल्पद्रुमः । (घादि-क्र्यादि पर-सक-सेट् ।) गि ॠणाति । ईर्णः ईर्णि । इति दुर्गादासः ॥

ॠ, व्य, (ॠ + क्विप् ।) वाक्यारम्भः । रक्षा । इति मेदिनी ॥ निन्दा । भयम् । इति शब्दरत्नावली ॥

ॠ, स्त्री, (ॠणातीति । ॠ + क्विप् ।) वक्त्र । इति मेदिनी ॥

ॠ, स्त्री, देवमाता । दानवमाता । (ॠ + भावे क्विप् ।) स्मृतिः । गतिः । इति मेदिनी ॥

ॠः, पु, (ॠणाति प्राप्नोति विश्वमिति । ॠ + क्विप् ।) भैरवः । (यथा, "ॠनन्ददात्रि । प्रमथेशसङ्गे ।' इत्युद्भटः ॥) दनुजः । इति मेदिनी ॥

---

## ऌ

ऌ ऌकारः । स तु नवमस्वरवर्णः । अस्योच्चारणस्थानं दन्तः । (यदुक्तम् सिद्धान्तकौमुद्याम् ' ऌतुलसानान्दन्ताः " । शिक्षायामपि यथा,—
"स्युर्मूर्द्धन्या ऋटुरषा दन्त्या ऌतुलसाः स्मृताः '।) स ह्रस्वो दीर्घः प्लुतश्च भवति । इति व्याकरणम् ॥ (अयन्तु उदात्तानुदात्तस्वरितभेदात् त्रिविधोऽपि प्रत्येकं पुनरनुनासिकाननुनासिकभेदेन द्विधेति षड्विध एव ॥)
"ऌकारं चञ्चलापाङ्गि कुण्डली परदेवता ।
अत्र ब्रह्मादयः सर्व्वे तिष्ठन्ति सततं प्रिये ॥
पञ्चदेवमयं वर्णं चतुर्ज्ञानमयं सदा ।
पञ्चप्राणयुतं वर्णं तथा गुणत्रयात्मकम् ॥
विन्दुत्रयात्मकं वर्णं पीतविद्युल्लता तथा" ।
इति कामधेनुतन्त्रम् ॥ ( वङ्गीयभाषाया ) अस्य लेखनप्रकारो यथा,—
"रेखाध कुण्डली वक्रा दक्षतो वामतो गता ।
वङ्गीशवायवस्तासु नित्यं सन्ति च नित्यशः " ॥
इति वर्णोद्धारतन्त्रम् ॥ * ॥ अस्य नामानि यथा,—
"ऌः स्थाणुः श्रीधरः शुद्धो मेधा धूम्रावको वियत् ।
देवयोनिर्दक्षगण्डो महेशः कौन्तरुद्रको ॥
विश्वेश्वरो दीर्घजिह्वा महेन्द्रो लाङ्गलिः परा ।
चन्द्रिका पार्थिवो धूम्रा द्विदन्तः कामवर्द्धनः ॥
शुचिस्मिता च नवमी कान्तिरायातकेश्वरः ।
चित्ताकर्षिणी काशश्च तृतीयकुलसुन्दरी ' ॥
इति तन्त्रशास्त्रम् ॥ (मातृकान्यासे दक्षिणगण्डे न्यस्ततया दक्षिणगण्डेनाप्यभिधानम् । यथा मातृकान्यासमन्त्रे । "ऌं नमो दक्षिणगण्डे ॡं नमो वामगण्डे" । अनुबन्धविशेषः । एतेन लुङि अङ् स्यात् । यदुक्तम् कविकल्पद्रुमे ।
"अङ्गाङ्गस्रोऽथ ॠर्वा ऌरह्स्वानिर्वाय ए सिचि" ।
एतेन गम् ऌ औ गतौ इत्यस्य लुङि अगमदिति स्यात् ॥)

ऌ, व्य, देवमाता । इति मेदिनी एकाक्षरकोषश्च ॥ भूमिः । क्षुध् । पर्व्वतः । इति मेदिनी ॥

---

## ॡ

ॡ दीर्घ ऌकारः । स तु दशमस्वरवर्णः, अस्योच्चारणस्थानं दन्तः । (यथा मुग्धबोधे । "ऌत्रय तथदधनलसा वो दन्त्याः "।) स प्लुतश्च भवति । इति व्याकरणम् ॥ (उदात्तानुदात्तस्वरितभेदात् त्रिविधोऽपि प्रत्येकं पुनरनुनासिकाननुनासिकभेदात् षड्विध एव ।)
"ॡकारं परमेशानि पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।
पञ्चदेवात्मकं वर्णं पञ्चप्राणात्मकं सदा ॥
गुणत्रयात्मकं वर्णं तथा विन्दुत्रयात्मकम् ।
चतुर्व्वर्गप्रदं देवि स्वयं परमकुण्डली" ॥
इति कामधेनुतन्त्रम् ॥ (वङ्गीयभाषाया) अस्य लेखनप्रकारो यथा,—
"तत्क्रोडतुल्यरूपा च रेखा सा वैष्णवी स्मृता ।
तासु वन्द्याः सुरेशानि दुर्गा वाणी सरस्वती ' ॥
इति वर्णोद्धारतन्त्रम् ॥ * ॥ तन्नामानि यथा,—
"ॡकारः कमला हर्षा हृषीकेशो मधुव्रतः ।
सूक्ष्मा कान्तिर्व्वामगण्डो रुद्रः कामोदरी सुरा ॥
शान्तिकृत् स्वस्तिका शक्रो मायावी लोलुपो वियत् ।
कृशमी सुस्थिरो माता नीलपीतो गजाननः ॥
कामिनी विश्वपा कालो नित्या शुद्धः शुचिः कृती ।
सूर्य्यो धैर्य्योत्कर्षिणी च एकाकी दनुजप्रसूः " ॥
इति तन्त्रशास्त्रम् ॥ (मातृकान्यासे वामगण्डे न्यस्ततया तन्नाम्नाप्यभिधानम् । मातृकान्यासमन्त्रो यथा ॥ "ऌं नमो दक्षिणगण्डे ॡं नमो वामगण्डे" ॥ मुग्धबोधमते तन्त्रमते च ऌकारस्य दीर्घत्वमस्ति पाणिनिमते तु नास्ति । अत्रेदं ज्ञातव्यं ऌकारस्य दीर्घत्वाभावेऽपि "ऌति ॡ वा" इति वार्त्तिकोक्तेः ॡकार एव तत्र विधेयः । तेन होतॄ्कार इत्यादौ ॡकारस्य व्यवहारः । मुग्धबोधेऽपि एतदनुसारेण एकमात्रद्विमात्रत्रिमात्रापेक्षा "ऌत्रयम्" इत्युक्तत्वेन न विरोधः ॥)

ॡ, व्य, देवनारी । नार्य्यात्मा । माता । इति मेदिनी ॥

ॡः, स्त्री, दैत्यस्त्री । इत्येकाक्षरकोषः ॥ दनुजमाता । कामधेनुमाता । इति कश्चिदेकाक्षरकोषः ॥

ॡः, पु, सर्व्वः । महादेवः । इति कश्चिदेकाक्षरकोषः ॥

---

## ए

ए एकारः । स तु एकादशस्वरवर्णः । अस्योच्चारणस्थानं तालुकण्ठञ्च । (यदुक्तं सिद्धान्तकौमुद्याम् । "एदैतोः कण्ठतालु" । तथाच शिक्षायाम् । "ए ऐ तु कण्ठतालव्यावो औ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ" ॥) स दीर्घः प्लुतश्च भवति । इति व्याकरणम् ॥ (उदात्तानुदात्तस्वरितभेदात् त्रिविधोऽपि प्रत्येकं पुनरनुनासिकाननुनासिकभेदात् षड्विध एव ॥)
"एकारं परमं दिव्यं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
रक्तिनीकुसुमप्रख्यं पञ्चदेवमयं सदा ॥
पञ्चप्राणात्मकं वर्णं तथा विन्दुत्रयात्मकम् ।
चतुर्व्वर्गप्रदं देवि स्वयं परमकुण्डली" ॥
इति कामधेनुतन्त्रं ॥ (वङ्गीयभाषायां) अस्य लेखनप्रकारो यथा ।
"कुञ्चिता वामतो रेखा दक्षकोणायता त्वधः ।
पुनर्व्वामगता सैव तासु वङ्गीशवायवः " ॥
इति वर्णोद्धारतन्त्रम् ॥ * ॥ अस्य नामानि यथा ।
"एकारो वास्तवः शक्तिर्झिण्टी सोष्ठो भगं मरुत् ।
सूक्ष्मा भूतोऽर्द्धकेशी च ज्योत्स्ना श्रद्धा प्रमर्द्दनः ।
भयं ज्ञानं कृपा धीरा जङ्घा सर्व्वसमुद्भवः ।
वह्निर्विष्णुर्भगवती कुण्डली मोहिनी वसः ॥
योषिदाधारशक्तिश्च त्रिकोणा ईशसञ्ज्ञकः ।
सन्धिरेकादशी भद्रा पद्मनाभः कुलाचलः " ॥
इति तन्त्रशास्त्रम् ॥ * ॥ अन्यच्च ।
"एकारो वामगण्डान्तः शक्तिर्झिण्टी भगन्तथा ।
मात्त्वीजञ्च विजया ओष्ठ एकादशस्वरः" ॥
इति वीजवर्णाभिधानम् ॥ (मातृकान्यासेऽस्य ओष्ठस्थाने न्यस्ततया ओष्ठशब्देनाप्यभिधानम् । मातृकान्यासमन्त्रो यथा,—
"एं नमः ओष्ठे ऐं नमोऽधरे" ॥ इति । अनुबन्धविशेषः । तेन लुङि सिचि अवृद्धिः स्यात् । यथाह कविकल्पद्रुमे ॥
"ऌरह्स्वानिर्वाय ए सिचि ।
अवृद्धिः रेयंशादिः स्यात्" ॥
एतेन कटे वर्षावरणयोरित्यस्य लुङि अकटीदिति स्यात् ॥)

ए, व्य, स्मृतिः । असूया । अनुकम्पा । आमन्त्रणम् । आह्वानम् । इति मेदिनी ॥

एः, पु, (एति प्राप्नोति सर्व्वं विश्वमिति । इण् + अच् । "सर्व्वं विष्णुमयं जगत्" इति वाक्यादस्य तथात्वम् ॥) विष्णुः । इत्येकाक्षरकोषः ॥

एक त्रि, ( एतीति । इण गतौ । "इण्भीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन्" ॥ ३ । ४३ । इत्युणादिसूत्रेण कन् ।) मुख्यम् । अन्यत् । केवलम् । इत्यमरः ॥ ("त्वमेको ह्यस्य सर्व्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः" । इति मनौ १ । ३ । "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्" । इति श्रुतिः ॥ "एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वम्" । इति रघुवंशे २ । ४७ । "ममात्र भावैकरसं मनः स्थिरम्" इति कुमारे ५ । ८२ ॥) आदिसंख्या । इति मेदिनी । अथैकवाचकानि । परमात्मा १ विधुः २ क्षितिः ३ गणेशदन्तः ४ शुक्रचक्षुः ५ । इति कविकल्पलता ॥ अग्निः ६ सूर्य्यः ७ देवराजः ८ यमः ९ । इति महाभारते वनपर्व्व ॥ (सर्व्वनामशब्दोऽयम् । तथा च सिद्धान्तकौमुद्यां "सर्व्वादयश्च पञ्चत्रिंशत्" इत्युक्त्वा "त्यद्-तद्-यद् एतद् इदम् अदस्

एक-द्वि-युष्मद्-अस्मद्-भवत्-किम्" इत्युक्तवान् । यथा शाकुन्तले २ अङ्के । "विश्रान्तेन भवता ममाप्येकस्मिन् कर्म्मणि सहायेन भवितव्यम्" । पु, स्वनामख्यात ऐक्ष्वाकुवंशीयो नृपतिभेद । यथा, भागवते ९।१५।२।

'श्रुतायोर्वसुमान् पुत्त्र सत्यायोश्च श्रुत जय ।
रयस्य सुतएकश्च जयस्य तनयोऽमित' ॥

परमेश्वरः । विष्णु । यथा विष्णुसंहितायाम् । "एको नैक स्व क किम्" । "परमार्थत सजातीयविजातीयस्वगतभेदराहित्यादेक" । इति भाष्यम् । घटे घटान्तरात् भेद सजातीयभेद । घटे पटात् भेद विजातीयभेद । घटे कपालादेर्भेदः स्वगतभेद ॥)

एकक त्रि, ("एकादाकिनिच्चासहाये" । ५।३।५२। इत्यत्र चकारात् पक्षे कन् ।) असहाय । एकला इति भाषा । तत्पर्य्याय । एक २ एकाकी ३ । इत्यमर ॥

("महानप्येककी वृक्ष सर्व्वत सुप्रतिष्ठित ।
प्रसह्यैव हि वातेन शक्यो धर्षयितुं यत." ॥

इति पञ्चतन्त्रे ३।५२। ॥ तथा नैषधे । २ । ३९ ।

"विधिरेककचक्रचारिणम्
किमु निर्म्मितसति मान्मथ रथम्" ॥)

एककुण्डल पुं, (एकं कुण्डलं यस्य ।) बलराम । कुवेर । इति मेदिनी ॥

एकगुरु, पुं, (एको गुरुर्यस्य ।) सतीर्थः । इत्यमर ॥ एकगुरुर शिष्य इति भाषा ॥

एकचक्रा, स्त्री, (एकं चक्रं यस्य ।) पुरीविशेष । तत्पर्य्यायः । हरिगृहम्२ शुम्भपुरी३ । इति त्रिकाण्डशेष ॥ सूर्य्यरथः । त्रि, असहायचारी । यथा, ऋग्वेदे १।१६४।२।

"सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्र-
मेकोऽश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभिचक्रमजरमनर्व्वं
यत्रेमा विश्वा भुवनाधितस्थुः" ॥

अत्र भाष्यकृता यद्व्याख्यातन्तदाह ।

"एकचक्रमेकरथाङ्गोपेतम् । यद्यपि त्रीणि चक्राणि तथापि तेषामेकरूपत्वादेकचक्रमित्युच्यते रथ रहणस्वभाव -र्थस्य सम्बन्धिन सप्त-तत्संख्याका अश्वा युञ्जन्ति अनुबध्नन्ति वहन्त्यहोरात्रनिर्वाहाय । किं वस्तुत सप्त नेत्याह । एकोऽश्व सप्तनामा । एक एव सप्ताभिधान सप्तधा नमनप्रकारो वा एक एव वायुः सप्तरूप सन् वहतीत्यर्थ । वाय्वधीनत्वादन्तरीक्षसञ्चारस्य एकचक्रमित्युक्तम् । कीदृशन्तदित्यत आह । त्रिनाभि वलयत्रयमध्यस्थितनाभिस्थानीयच्छिद्रत्रयोपेतम् । अजरमरणधर्म्मकम् । अनर्व्वमशिथिल पुनस्तदेव विशेष्यते । यत्र यस्मिंश्चक्रे इमा विश्वा भुवना इमानि प्रसिद्धानि सर्व्वाणि भूतजातान्यधि आश्रित्य तस्थुस्तिष्ठन्ति । यद्वा एकचक्रमेकचारिणमसहायेन सञ्चरन्त रथमादित्य सप्त युञ्जन्ति सर्पणस्वभावाः सप्तसंख्या वा रश्मय सप्तप्रकारकार्य्या असाधारणा परस्परविलक्षणा षडृतव एक साधारण इत्येवरूपा यद्वा मासद्वयात्मकाः षट् अपरोऽधिमासात्मक एक इत्येव सप्तर्त्तवो युञ्जन्ति एतस्य कार्य्यं निर्व्वहन्तीत्यर्थ । स चैकोऽसहायोऽश्वो व्यापनशील आदित्य सप्तनामा सप्तरसाना सन्नमयितारो रश्मयो यस्य तादृश । सप्तर्षिभि स्तूयमानो वादित्यो वहति धारयति भ्रमतीत्यर्थः । किं भूतम् । त्रिनाभि चक्रम् । त्रयो नाभिस्थानीया सन्ध्यासमन्ध्ना वा एव ऋतवो यस्य तत्तादृशम् । के ते ग्रीष्मवर्षाहेमन्ताख्या यद्वा भूतभविष्यद्वर्त्तमानाख्यास्त्रय कालास्त्रिनाभय । तद्विशिष्टं चक्र चक्रवत् पुन पुन परिभ्रममाण सवत्सराख्यचक्रमजरममरणम् । न हि कदाचिदपि कालो म्रियते अनादिनिधन कालः इति स्मृते । अनर्व्वमप्रतिहतम् । ईदृश संवत्सराख्यं चक्रं नानाकालावयवोपेतमयमादित्य पुन पुनरावर्त्तयति सवत्सरादर्वाचीनानां तत्रैवान्तर्भावात् युगादीना तदावृत्तिसाध्यात् सवत्सरस्य चक्रत्वेन रूपणम् । पुन कीदृश तत् । यत्र यस्मिंश्चक्रे इमा विश्वा भुवना इमानि सर्व्वाणि भूतान्यधितस्थु आश्रित्य तिष्ठन्ति कालाधीनत्वात् सर्व्वस्या स्थिते । ईदृशस्य कालस्य कारणभूतपरमेश्वरपरिज्ञानेन मोक्षसद्भावात् ज्ञानमोक्षाद्यरप्रशसा च" ॥ नृपादयविशिष्टम् । एक गजविशिष्टम् । यथा, भागवते ।३।१।२०।

"इत्थ व्रजन् भारतमेव वर्ष
कालेन यावत् गतवान् प्रभासम् ।
तावच्छशास क्षितिमेकचक्रा-
मेकातपत्रामजितेन पार्थ" ॥

पु, असुरभेद । यथा, हरिवंशे ३।८४।

"एकचक्रो महाभाङ्गस्तारकश्च महाबल" ।

अय हि प्रतिविन्ध्य इति नाम्ना प्रसिद्ध । यथा । महाभारते १। सम्भवपर्व्वणि अंशावतरणे ६७।२२।

"एकचक्र इति ख्यात आसीद्यस्तु महासुर ।
प्रतिविन्ध्य इति ख्यातो बभूव प्रथित क्षितौ" ॥

स्त्री, स्वनामख्याता पुरी । अत्रस्थो भीमसेनो महाबल वकनामानमसुरं हतवान् ॥ यथा,— महाभारते । १ । अंशावतरपर्व्वणि भारतसूत्रे । ६१ । २६-२८ ।

"ते तत्र नियता कालम् कञ्चित्पुरुषर्षभा ।
मात्रा सहैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने ॥
तत्राससाद क्षुधित पुरुषाद वृकोदर ।
भीमसेनो महाबाहुर्व्वक नाम महाबलम् ॥
तत्रापि पुरुषव्याघ्रो बाहुवीर्य्येण पाण्डव ।
निहत्य तरसा वीरो नागरान् पर्य्यसान्त्वयत्" ॥)

एकचर, पु, (एकश्चरति य । चर+पचाद्यच् ।) हिंस्रपशुविशेष । गण्डार इति भाषा । तत्पर्य्याय । वार्द्धीनस २ गणोत्साह ३ गण्डक ४ । इति त्रिकाण्डशेष ॥

(सर्पादि । यथा, मनु ।५।१७।

"न भक्षयेदेकचरानज्ञातांश्च मृगद्विजान्" ।

"ये एकाकिनः प्रायेण चरन्ति सर्पादयस्तानेकचरान्" । इति तट्टीकायां कुल्लूकभट्ट ॥ (त्रि, एकाकिचारी । यूथभ्रष्टः । यथा, "अयमेकचरोऽभिवर्त्तते माम्" । इति किराते । १३।३। "एकचरो यूथादपेत" । इति तट्टीका ॥)

एकचारी, [न्] पु, (एक सन् चरतीति । चर् + णिनि ।) बुद्धसहचारी । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (एकचारिणि, त्रि ॥)

एकजटा, स्त्री, (एका जटा यस्या ।

"एवैवैकजटा ख्याता यस्मात्तस्या जटाधिका" ।

इति श्रवणात् । यद्वा एका मुख्या जटा यस्या ।

"ख शिखन्तीं जटामेका बिभर्त्ती शिरसा स्वयम्" ।

इति च श्रवणात्तथात्वम् ।) उग्रतारा । तस्या आविर्भावो यथा,—

"सर्व्वे सुरगणाः सेन्द्रास्ततो गत्वा हिमाचलम् ।
गङ्गावतारनिकटे महामाया प्रतुष्टुवु ॥
अनेकसस्तुता देवी तदा सर्व्वामरोत्करैः ।
मातङ्गवनितामूर्त्तिर्भूत्वा देवानपृच्छत ॥
युष्माभिरमरैरत्र स्तूयते का च भाविनी ।
किमर्थमागता यूय मातङ्गस्याश्रम प्रति ॥
एव ब्रुवन्त्या मातङ्ग्यास्तस्यास्तु कायकोषत ।
समुद्भूताब्रवीद्देवी मा स्तुवन्ति सुरा इति ॥
शुम्भो निशुम्भो ह्यसुरौ बाधेते सकलान् सुरान् ।
तस्मात्तयोर्व्वधायाद्य स्तूयेऽद्य सकलैः सुरैः ॥
विनि स्रुताया देव्यान्तु मातङ्ग्या कायतस्तदा ।
भिन्नाञ्जननिभा कृष्णा साभूत् गौरी क्षणादपि ॥
कालिकाख्याभवत् सापि हिमाचलकृताश्रया ।
तामुग्रतारामृषयो वदन्तीह मनीषिण ॥
उग्रादपि भयात् त्राति यस्माद्भक्तान् सदाम्बिका ।
एतस्या प्रथम वीज कथित तन्त्रमेव च ॥
एवैवैकजटा ख्याता यस्मात्तस्या जटाधिका ।
शृणुत चिन्तन चास्या सम्यक् वेतालभैरवौ ॥
यथा ध्यात्वा महादेवी भक्त प्राप्नोत्यभीप्सितम् ।
चतुर्भुजा कृष्णवर्णा मुण्डमालाविभूषिताम् ॥
खड्ग दक्षिणपाणिभ्यां बिभ्रतीन्दीवर तथ ।
कर्त्रीञ्च खर्परञ्चैव क्रमाद्वामेन बिभ्रतीम् ॥
ख शिखन्तीं जटामेका बिभर्त्तीं शिरसा स्वयम् ।
मुण्डमालाधरा शीर्षे ग्रीवायामपि सर्व्वदा ॥
वक्षसा नागहारन्तु बिभर्त्तीं रक्तलोचनाम् ।
कृष्णवस्त्रधरा कट्या व्याघ्राजिनसमन्विताम् ॥
वामपाद शवहृदि सस्थाप्य दक्षिण पदम् ।
विन्यस्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहानासव स्वयम् ॥
साट्टहासमहाघोरा रावयुक्तातिभीषणा ।
चिन्त्योग्रतारा सततं भक्तिमद्भि सुखेप्सुभि ॥•॥
एतस्या सप्रवक्ष्यामि या अष्टौ योगिनीस्तु ता ।
महाकाल्यथ रुद्राणी उग्रा भीमा तथैव च ॥
घोरा च भ्रामरी चैव महारात्रिश्च सप्तमी ।
भैरवी चाष्टमी प्रोक्ता योगिनीस्ता प्रपूजयेत्" ॥

इति कालिकापुराणे ६१ अध्याय ॥

एकजन्मा, [न्] पु, (एक मुख्य जन्म यस्य । दिक्पालांशसम्भूतत्वादस्य तथात्वम् ।) राजा । इति त्रिकाण्डशेष ॥ (एकं न द्वितीयं जन्म यस्य इत्यर्थे । शूद्र । तस्य अद्विजत्वात् तथात्वम् ।)

एकतम, त्रि, (एक+"एकाच्च प्राचाम्"। ५।३। ९४। इति डतमच्।) बहूनां मध्ये एकः। इति व्याकरणम्॥ (यथा महाभारते आदिपर्व्वणि। "अस्माणि वा शरीरं वा ब्रह्मन्नेकतमं वृणु"॥)

एकतर, त्रि, (एक+"एकाच्च प्राचाम्"। ५।३। ९४। इति डतरच्।) द्वयोर्मध्ये एकः। इति व्याकरणम्। भिन्नः। इत्यमरटीकायां भरतः॥ (यदाह कात्यायनः। "यदि ह्येकतरो ह्येषां स्त्रीधनं भक्षयेद्बलात्"॥)

एकता, स्त्री, (एकस्य भावः। एक+तल्+टाप्।) एकत्वम्। ऐक्यम्। इति व्याकरणम्॥ (यथा, रामायणे ६६।१३।
"वक्रैरपि मतीर्गत्वा मन्त्रिणो मन्त्रनिर्णये।
पुनर्यत्रैकतां प्राप्ताः स मन्त्रो मध्यमः स्मृतः"॥)

एकतान, त्रि, (एकेन भावरसेन तन्यते विस्तीर्य्यते इति। तन इश विस्तारे। कर्म्मण्यण्।) एकाग्रः। एकविषयासक्तचित्तः। इत्यमरः॥ (यथा भागवते ७।९।८।
"ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः
सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः।
नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः
किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः"॥
एकस्तानो विस्तृतिर्यस्येति।) एकताले पु। इत्यमरटीकायां स्वामी॥

एकताल, पु, (एकस्तुल्यस्तालो मानं यत्र।) समन्वितलयः। नृत्यगीतवाद्यानां साम्यं यत्र। समताल इति यस्याख्या। इत्यमरभरतौ॥ (सङ्गीतशास्त्रे स्वनामख्यातः तालभेदः। त्रि, एकतालवृक्षसमन्वितः। यथा रघौ १५।२३।
"एकताल इवोत्पातपवनप्रेरितो गिरिः"॥)

एकतीर्थी, [न्] पु, (एकं समं तीर्थमाश्रमो यस्य।) सतीर्थः। गुरुभाइ इति भाषा॥ ("एकतीर्थी एकाश्रमी" इति मिताक्षरा॥)

एकत्र, व्य, (एक+त्रल्।) एकस्मिन्। इति व्याकरणम्॥ एकसङ्गे इति भाषा। ("एकत्र निर्णीतशास्त्रार्थो बाधकं विनान्यत्रापि प्रयुज्यते"। इति दुर्गादासः। यथा मनुः। ५।१३६।
"एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश।
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता"॥)

एकदंष्ट्र, पु, (एका दंष्ट्रा यस्य। परशुरामेणैकदन्तस्य उत्पाटनात् तथात्वम्।) गणेशः। इति त्रिकाण्डशेषः॥ (अस्य परशुरामकृततदन्तोत्पाटनकथा एकदन्तशब्दे द्रष्टव्या।)

एकदन्त, पु, (एको दन्तो यस्य।) गणेशः। इत्यमरः॥ (परशुरामकृतगणेशदन्तोत्पाटनकथा ब्रह्मवैवर्त्ते उक्ता। एकदा रहसि स्थितयोः शिवाशिवयोर्द्वारपालत्वमङ्गीकृतं गजाननेन। एतस्मिन्नन्तरे परशुरामः शिवं द्रष्टुमागतः। शिवदर्शनव्याकुलस्यान्तर्गिगमिषोर्द्वाररोधे कृते गणपतिना सह तस्य तुमुलं युद्धमभवत्। परशुरामक्षिप्तेन परशुना च गजाननस्य एको दन्तो भग्नः। तदा प्रभृत्येव एकदन्तोऽसौ कथ्यते॥)

एकदा, व्य, (एक+"सर्व्वैकान्यकियत्तदः काले दा"। ५।३।१५। इति दा।) एकस्मिन् काले। तत्पर्य्यायः। युगपत् २। इत्यमरः॥ (यथा भागवते ६।३।२९।
"जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्"॥)

एकदृक्, [श्] पु, (एकः सर्व्वमभिन्नं पश्यति यः। एक+दृश्+क्विप्।) महादेवः। (एका दृक् यस्य। रामबाणमोक्षणेन नष्टे एकचक्षुषि काकस्य तथात्वम्।) काकः। काणे त्रि। इति हेमचन्द्रः। (एकमेव सर्व्वं ब्रह्मत्वेन पश्यति यः इति व्युत्पत्त्या तत्त्ववेत्ता। ब्रह्मज्ञानी॥ एकमेव पक्षं पश्यतीत्यर्थे एकपक्षाश्रयी॥)

एकदेह, पु, (एकः मुख्यो देहो यस्य। ग्रहेषु सौम्यत्वादस्य तथात्वम्।) बुधग्रहः। इति त्रिकाण्डशेषः॥ (एको मेदरक्तादीनां साम्यात् तुल्यो देहः शरीरं यत्र। गोत्रम्। वंशः। यथा, हरिवंशे ४६ अध्याये।
"बहूनि विप्र गोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम्।
एकदेहानि तिष्ठन्ति विभक्तानि विना प्रजाः"॥
दम्पती। "अस्थिभिरस्थीनि मांसैर्मांसानि त्वचा त्वचमिति श्रुतेः"। तथा,—
"शरीरार्द्धं स्मृता जाया पुण्यापुण्यफले समा"।
इति स्मृत्युक्तेश्च जायापत्योरेकदेहत्वम्"॥)

एकधा, व्य, (एक+"एकाद्धो ध्यमुञ्"। ४।२।४। इति धा।) एकप्रकारम्। इति व्याकरणम्॥ (यथा महाभारते अनुगीतापर्व्वणि १४।४२।६०।
"सर्व्ववित् सर्व्वभूतेषु विन्दत्यात्मानमात्मनि।
एकधा बहुधा चैव विकुर्व्वाणस्ततस्ततः"॥)

एकधुर, त्रि, (एका धूः। "ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे"। ५।४।७४। इति अः समासान्तः।) एकभारवाहकगवादि। एकपिठा गरु इति भाषा। तत्पर्य्यायः। एकधुरीणः २ एकधुरावहः ३। इत्यमरः॥ (यथा, पाणिनिः। ४।४।७९। 'एकधुराल्लुक्'।)

एकधुरावह, त्रि, (वहतीति वहः। वह्+अच्। एकधुराया वहः।) एकधुरः। इत्यमरः॥

एकधुरीण, त्रि, (एकधुरां वहति यः। "एकधुराल्लुक् च"। ४।४।७९। चकारेण स्वप्रत्ययानुकर्षणसामर्थ्यात् पक्षे खश्रवणम्॥) एकधुरः। एकभारवोढा। इत्यमरः॥ एकस्य रथस्य शाकटादेर्वा धुरं वहति यः। इत्यमरटीकायां भरतः॥

एकनट, पु, (एको मुख्यो नटः।) मुख्यनटः। तत्पर्य्यायः। कथकः २। इति त्रिकाण्डशेषः॥ कथाप्राणः ३। इति शब्दरत्नावली॥

एकपक्ष, त्रि, (एकः पक्षो यस्य।) सहायः। इति त्रिकाण्डशेषः॥ (एकः पक्षः इति विग्रहे। अद्वितीयः पक्षः॥ यथा, रघौ १४।३४।
"इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वात्
आसीत् स दोलाचलचित्तवृत्तिः॥)

एकपत्नी, स्त्री, (एकोऽद्वितीयः पतिर्यस्याः इति विग्रहे "नित्यं सपत्न्यादिषु" इति एकपतिशब्द नकारान्तादेशे "ऋन्नेभ्यः" इति ङीप्।) प व्रता। इति त्रिकाण्डशेषः॥ (यथा, मेघदूते १।
"तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नीम्"॥
एकः समानः पतिर्यस्याः इति विग्रहे। सपत्नी यथा मनुः। ९।१८३।
"सर्व्वासामेकपत्नीनामेका चेत् पुत्त्रिणी भवेत्
सर्व्वास्तास्तेन पुत्त्रेण प्राह पुत्त्रवतीर्मनुः"॥)

एकपत्रिका, स्त्री, (एकं गन्धवत्त्वात् श्रेष्ठं पत्रं यस्याः) गन्धपत्रवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥

एकपद, क्ली, (एकं पदं पदमात्रोच्चारणकालो यस्मिन् ) तत्कालः। इति मेदिनी॥ (तत्पर्य्यायः। तत्क्षणम् इति विश्वः। यथा, रघुः ८।४८। "कथमेकप निरागसं जनमामाश्यमिमं न मन्यसे"॥ "एकप तत्क्षणे। स्यात् तत्क्षणे एकपदमिति विश्वः" इति तट्टीका॥ एकं प्रशस्तं पदं स्थानम्। "प व्यवसितित्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु" इत्यमरो स्तथात्वम्। वैकुण्ठम्। सुप्तिङन्तरूपपदम् यथा माघे २।९५।
"निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तः स्वरानिव"॥
एकं श्रेष्ठं पदं कोष्ठरूपपूजास्थानम्। वास्तुमण्डल स्यैकककोष्ठात्मकस्थानम्। यथा, वास्तुयागतत्त्वधृत देवीपुराणम्।
"इन्द्रस्वेन्द्रात्मजस्त्वोभावेकैकपदसंस्थितौ"॥)

एकपद, पुं, (एकः पदः पदविन्यासो यस्मिन्।) शृङ्गार बन्धविशेषः। तस्य लक्षणम्।
"पादमेकं हृदि स्थाप्य द्वितीयं स्कन्धसंस्थितम्।
स्तनौ धृत्वा रमेत् कामी बन्धस्त्वेकपदः स्मृतः"
इति रतिमञ्जरी॥ (वास्तुयागमण्डलैककोष्ठपूज नीयो देवभेदः। यथा वास्तुयागतत्त्वधृतदेवी पुराणवचनम्। "भृगुस्त्वेकपदो ज्ञेयः"। इति एकः पदः चरणः यस्य इति विग्रहे वाच्यलिङ्गः एकपदविशिष्टः। यथा भागवते १।१६।२०।
"पादैर्न्यूनं शोचसि मैकपाद-
मात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणम्"॥
एकेन पदा चरन् वृषरूपधरो धर्म्मो गोरूपधर पृथ्वीं रुदतीं दृष्ट्वोवाच। हे भद्रे। पादैर्न्यूनं एक पादं मां तथा शूद्रैर्भोक्ष्यमाणमात्मानं वा शोचसि किम्। इति तट्टीका॥)

एकपदी, स्त्री, (एकः पादो यस्याम्। कुम्भपदीषु चेति निपातः। यद्वा संख्यासु पूर्व्वस्येति पादस्या न्तलोपः। पादोऽन्यतरस्यामिति ङीप्। सांख्या चेति लोपो वा। पादः पत्।) पद्या। इत्यमरः॥

एकपर्णिका, स्त्री, (एकपर्णा+कन्। तपःसाधनार्थ पार्व्वत्याः पत्रमात्रभक्षणात् तथात्वम्।) दुर्गा देवीपुराणे देवीनिरुक्तं नाम ४५ अध्याये।
"अपर्णाशा निराहारा एकाशी एकपर्णिका।
पाटला पाटलाहारा देवी लोकेषु गीयते"॥

एकपात्, [द्] पु, (एकः पादो यस्य। संख्यासु पूर्व्व स्येति अन्त्यलोपः।) शिवः। इति त्रिकाण्डशेषः (वृद्ध। यथा, महाभारते सम्भवपर्व्वणि १।१२३।६५।

"अजैकपादहिर्बुध्न्य पिनाकी च परन्तप" ॥

विष्णुः। यथा, विष्णुसंहितायाम्।

"चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात्" ॥

एक पादो यस्य इति विग्रहे वाच्यलिङ्गः ॥)

एकपिङ्ग, पु, (एकं पिङ्गं पिङ्गलवर्णं नेत्रं यस्य।) कुबेरः। इत्यमरः ॥ (कुबेरस्य पिङ्गनेत्रकथा उक्ता काशीखण्डे। यथा, —

"प्रसार्य्य नयने पूर्व्वमुमामेव व्यलोकयत्।

शम्भोः समीपे का योषिदेषा सर्व्वाङ्गसुन्दरी ॥

अनया किं तपस्तप्तं ममापि तपसोऽधिकम्।

अहो रूपमहो प्रेम सौभाग्यश्रीरहो भृशम्।

क्रूरदृग्वीक्षते यावत् पुनः पुनरिदं वदन्।

तावत् प्रस्फोटितं नेत्रं वामं वामविलोकनात् ॥

अथ देव्यब्रवीद्देव किमसौ दुष्टतापसः।

असकृद्दक्षिणेनाक्ष्णा पुनर्मामेव पश्यति ॥

असूयमानो मे रूपं प्रेमसौभाग्यसम्पदं।

इति देवीगिरं श्रुत्वा प्रहस्य प्राह तां प्रभुः ॥

उमे! त्वदीयपुत्त्रोऽयं न च क्रूरेण चक्षुषा।

सम्पश्यति तपोलक्ष्मीं तव किन्त्वधिवर्णयन् ॥

इति देवीं समाभाष्य तमीशः पुनरब्रवीत्।

वरं ददामि ते वत्स! तपसानेन तोषितः ॥

निधीनामधिनाथस्त्वं गुह्यकानां भवेश्वरः।

यक्षाणां किन्नराणाञ्च राजा राज्ञाञ्च सुव्रत! ॥

पतिः पुण्यजनानाञ्च सर्व्वेषां धनदो भव।

मया सख्यञ्च ते नित्यं वत्स्यामि च तवान्तिके ॥

अलकां निकषामित्र! तव प्रीतिविवर्द्धयन्।

आगच्छ पादयोरस्याः पत ते जननी त्वियम् ॥

इति दत्त्वा वरान् देवः पुनराह शिवः शिवाम्।

प्रसादं कुरु देवेशि! तपस्विन्यङ्गजे तव।

देव्युवाच।

वत्स! ते निर्म्मला भक्तिर्भवे भवतु सर्व्वदा।

भवैकपिङ्गो नेत्रेण वामेन स्फुटितेन च ॥

देवदत्तास्तु ये तुभ्यं वराः सन्तु तथैव ते।

कुबेरो भव नाम्ना त्वं मम रूपेर्ष्यया सुत" ॥)

एकपिङ्गल, पुं, (एकं पिङ्गलं नेत्रं यस्य।) कुबेरः। इत्यमरटीकायां भरतः ॥ (अस्य पिङ्गलनेत्रकथा एकपिङ्गशब्दे द्रष्टव्या ॥)

एकभक्तव्रत, स्त्री, (एकं भक्तं भोजनं यत्र तत् व्रतम्।) रात्रिभोजनाभावविशिष्टदिवाभोजनम्। तथा च स्कन्दपुराणे।

'दिनार्द्धसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत्।

एकभक्तमिति प्रोक्तं रात्रौ तन्न कदाचन" ॥

(अस्य व्रतस्य नियमफलादिकमोक्तं विष्णुधर्म्मोत्तरे। तद्यथा, —

"पौषं विष्णुपरो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।

सप्तर्षिमखमुख्यानां गार्हस्थ्यं समवाप्नुयात् ॥

अहिंस्रः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः।

नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहन्यहनि यो जपेत् ॥

कान्तिराज्यस्य तस्य तत् फलमवाप्नुयात्।

यस्तु संवत्सरं पूर्णमेकभक्तो भवेन्नरः ॥

अहिंस्रः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः।

नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहन्यहनि यो जपेत् ॥

पौण्डरीकस्य यज्ञस्य तत् फलमवाप्नुयात्।

दशवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥

तत्क्षयादिह चागत्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते" ॥ इति ॥)

एकमूला, स्त्री, (एकं मूलं यस्याः।) शालपर्णी। अतसी। इति वैद्यकम् ॥ (एकमेव मूलं यस्य इति विग्रहे एकमूलविशिष्टे, त्रि ॥)

एकयष्टिका, स्त्री, (एका यष्टिरिव।) हारविशेषः। एकनरि हार इति भाषा। तत्पर्य्यायः। एकावली २। इत्यमरः ॥

एकरज, पुं, (रज्यते इति रजः। एको मुख्यो रजः।) शृङ्गराजवृक्षः। इति जटाधरः ॥ (भृङ्गराजशब्देऽस्य गुणादयो बोद्धव्याः ॥)

एकल, त्रि, (एक+ला+क।) एक एव। इति पद्मावली ॥ एकला इति भाषा। (यथा भागवते ५।७।१०। "तस्मिन् वाव किल स एकलः पुलहाश्रमोपवने विविधकुसुमकिसलयतुलसिकाम्बुभिः कन्दमूलफलोपहारैश्च समीहमानो भगवत आराधनं विविक्तउपरतविषयाभिलाष उपभृतोपशमः परां निर्वृतिमाप" ॥)

एकलिङ्ग, क्ली, (एकं लिङ्गं यस्य।) स्थानविशेषः। तथा च आगमे।

"पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्ष्यते।

तदेकलिङ्गमाख्यातं तत्र सिद्धिरनुत्तमा" ॥

एकलिङ्ग, पु, (एकं लिङ्गं पिङ्गलनेत्ररूपं चिह्नं यस्य सः।) कुबेरः। इति शब्दरत्नावली ॥ (पिङ्गलनेत्रकथा एकपिङ्गशब्दे द्रष्टव्या ॥)

एकवर्णी, स्त्री, (एकमेव शब्दं वर्णयति या। एक+वर्ण+अण्। गौरादित्वात् ङीष्।) वाद्यभेदः। तत्पर्य्यायः। करतालो १ कांस्यमाला २ कलङ्कषा ३ इति शब्दरत्नावली ॥

एकवर्षिका, स्त्री, (एको वर्षो यस्याः। कः। इत्यमः।) एकहायनी गौः। इति हेमचन्द्रः ॥ एकवत्सरेर बकना इति भाषा ॥

एकवाद, पु, (एकोऽभिन्नस्वरो वादः वाद्यम्। डिण्डिम इति एकस्वरवाद्यत्वादस्य तथात्वम्।) डिण्डिमवाद्यम्। इति शब्दरत्नावली ॥

एकविंशति, स्त्री, (एकाधिका विंशतिः।) एकाधिकविंशतिसंख्या। एकुश इति भाषा। यथा। मनुः ५। ३५।

"नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः।

स प्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम्" ॥

एकवीर, पु, वृक्षभेदः। तत्पर्य्यायः। महावीरः २ सङ्कवीरः ३ सुवीरकः ४। अस्य गुणाः। मदकारित्वम्। अत्युष्णत्वम्। कटुत्वम्। तोदवातकफापहत्वम्। घटुलीकटिदृष्ट्यादिचलपदाभिघातहारित्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः ॥ (त्रि, एक अद्वितीयो वीरः। वीरवरः। प्रधानवीर्य्यशाली।

यथा भागवते ३।१।४०।

"कच्चिद्यशोधा अपि भिद्यते शरीरे

राजर्षिवर्य्यैश्च विनापि तेन।

यस्यैकवीरोऽधिरथो विजिग्ये

धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्रः" ॥)

एकवृन्द, पुं, (एको वृन्दो यस्मिन्।) स्थानभेदः।

"चतुःक्रोशान्तरे यत्र न वृन्दान्तरमीक्ष्यते।

एकवृन्दः स विज्ञेयः"। इति आगमः ॥ (एकोऽद्वितीयो वृन्दः इति विग्रहे एकस्मिन् वृन्दे। यथा सारमञ्जरी। "एकवृन्दः पञ्चनौका भवति"। एको वृन्दः इति पाठान्तरम् ॥)

एकशफ, पु, (एकः शफः खुरो यस्य। अखण्डखुरत्वात् तथात्वम्।) घोटकः। इति त्रिकाण्डशेषः ॥ एकखुरजन्तुमात्रम्। यथा।

"खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी तथा।

एते चैकशफाः क्षत्त! शृणु पञ्चनखान् पशून्" ॥

इति श्रीभागवतम् ॥ ३। १०। २२ ॥ (अस्य दुग्धदधि-मूत्र मांसादिगुणाः अश्वशब्दे एकशफशब्दे च ज्ञातव्याः ॥)

एकशृङ्ग, पु, (एकं शृङ्गं यस्य।) विष्णुः। इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (स्वायम्भुवमन्वन्तरे अकालप्रलयात् मत्स्यरूपधरस्यास्य शृङ्गे मनोर्नौर्बद्धा। तत्कथा यथा कालिकापुराणे ३२ अध्याये।

"स्वायम्भुवस्तदा मत्स्यं हरिं सस्मार वै तदा।

ततो जलानामुपरि सशृङ्ग इव पर्व्वतः ॥

उद्दीप्तश्चैकशृङ्गेण विष्णुर्मत्स्यस्वरूपधृक्।

आगतस्तत्र न चिरात् यत्रास्ते समनुर्हरिः" ॥

विवृतिस्तु अकालिकशब्दे द्रष्टव्या।) एकशृङ्गयुक्तपशुमात्रम् ॥ (पितृगणभेदः। यथा, महाभारते २। ११। ४१-४३।

"पितृंश्चात्र गणान् विद्धि सप्त वै पुरुषर्षभ!।

मूर्त्तिमन्तो हि चत्वारस्त्रयश्चाप्यशरीरिणः ॥

वैराजाश्च महाभागा अग्निष्वात्ताश्च भारत।

गार्हपत्या नाकचराः पितरो लोकविश्रुताः ॥

सोमपा एकशृङ्गाश्च चतुर्वेदाः कलास्तथा।

एते चतुर्षु वर्णेषु पूज्यन्ते पितरो नृप" ॥)

एकषष्टि, स्त्री, (एकाधिका षष्टिः।) संख्याविशेषः। इत्यमरः ॥ ६१ एकषट्टि इति भाषा। (यथा भागवते ६।६।३०।

"सुता दनोरेकषष्टिस्तेषां प्राधानिकान् शृणु" ॥)

एकसर्ग, त्रि, (एकस्मिन् विषये सर्गो निश्चयो यस्य।) एकाग्रः। इत्यमरः ॥

एकसूत्र, पु, (एकं सूत्रं यस्य। एकसूत्रेण वादनात् तथात्वम्।) डमरुवाद्यम्। इति शब्दरत्नावली ॥

एकहायनी, स्त्री, (एकः हायनो यस्याः। "दामहायनान्ताच्च"। ४। १। २७। इति ङीप्।) एकवर्षीयगवी। एकवत्सरेर वाछुर इति भाषा। तत्पर्य्यायः। एकाब्दा २। इत्यमरः ॥ (पुंसि प्रमाणं यथा, मनुः ११। १३६।

"वासो दद्याद्धयं हत्वा पञ्च नीलान् वृषान् गजम्।

अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम्" ॥

'अश्वं हत्वा वस्त्रं दद्यात् हस्तिनं हत्वा पञ्च नीलान् वृषभान् दद्यात् प्रत्येकं छागमेषौ हत्वा वृषभं दद्यात् गर्दभं हत्वा एकवर्षं वत्सं दद्यात्' इति कुल्लूकभट्टः ॥)

एका, स्त्री, (एक+टाप्।) दुर्गा। दया।

"एका गुरार्द्धा केन्द्रौ तन्नारीके न दृष्टके"।

देवी सा परमार्थेति वदन्ते भिन्नदर्शिनः ॥ इति” ।
“एका सा तु पृथक्त्वेन विना सर्व्वत्र विश्रुता ।
यथा तु व्यज्यते वर्णैर्विविधैः स्फटिको मणिः ॥
तथा गुणवशाद्देवी नानाभावेषु वर्ण्यते” ॥
इति च देवीपुराणे देवीनिरुक्तं नाम ४५ अध्यायः ॥
(अद्वितीया । यथा, मार्कण्डेये ९०।७।
“एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा” ।
“अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां” । इति श्रुतिः ॥
एकैव । स्त्री । यथा भट्टिः १।१४।
“प्रासोष्ट शत्रुघ्नमुदारचेष्टम्
एका सुमित्रा सह लक्ष्मणेन” ॥)

एकाकी, [न्] त्रि, (एक + “एकादाकिनिच्चासहाये” । आकिनिच् ।) सहायरहितः । असहायः । एकला इति भाषा । तत्पर्य्यायः । एकः २ एकाकः ३ । इत्यमरः ॥ एकलः ४ । इति शब्दरत्नावली ॥ (यथा मनुः । ४ । २५८ ।
“एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः ।
एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति” ॥)

एकाक्ष, पुं, (एकमक्षि यस्य । सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् ।) काकः । इति शब्दचन्द्रिका ॥ (काकस्य यथा एकनेत्रत्वं जातम् । तत् पाद्मे भरतस्यायोध्याप्रतिनिवृत्त्यनन्तरमुक्तम् । तद्यथा,—
“राघवश्चित्रकूटाद्रौ सानुजोऽरमत स्त्रिया ।
कदाचिदङ्के वैदेह्या निद्राणे रघुनन्दने ॥
ऐन्द्रः काकः समागम्य जानकीं वीक्ष्य कामुकः ।
विददार नखैस्तीक्ष्णैः पीनोन्नतपयोधरम् ॥
तत् दृष्ट्वा राघवः क्रुद्धः कुशं जग्राह पाणिना ।
ब्राह्मेणास्त्रेण संयोज्य चिक्षेप ध्वाङ्क्षमारणे ॥
तत् दृष्ट्वा घोरसङ्काशं ज्वलत्कालानलोपमम् ।
दृष्ट्वा काकः प्रदुद्राव निनदन् दारुणस्वनम् ॥
वायसस्त्रिषु लोकेषु बभ्राम भयपीडितः ।
यत्र यत्र ययौ काकः शरणार्थी च वायसः ॥
तत्र तत्र तदस्त्रं तु प्रविवेश भयावहम् ।
ब्रह्माणमिन्द्रं रुद्रं वा शरणार्थी जगाम सः ॥
तत् दृष्ट्वा वायसं भीतं देवता न ररक्षिरे ।
न शक्ताः स्म वयं त्रातुं राघवास्त्राद्भयङ्करात् ॥
इत्यूचुः सहदेवा अन्ययास्त्र दहेच्च न ।
पुनस्त्वागात् विधिं काको दयया विधिराह तम् ॥
भो भो वलिभुजां श्रेष्ठ तमेव शरणं व्रज ।
स एव रक्षकः शीघ्रं शरणागतवत्सलः ॥
इत्युक्तः सोऽथ वलिभुक् ब्रह्मणा रघुनन्दनम् ।
उपेत्य सहसा भूमौ निपपात भयातुरः ॥
प्राणसंशयमापन्नं दृष्ट्वा सीता तु वायसम् ।
त्राहि त्राहीति भर्त्तारमुवाच दयिता विभुम् ॥
तच्छिरः पादयोस्तस्य युयुजे चाथ जानकी ।
तमुत्थाप्य करेणाथ कृपापीयूषसागरः ।
ररक्षासौ निजास्त्राय तदेकाक्षि ददौ तदा ॥
वायसोऽपि मुदं नत्वा सीतायै राघवाय च ।
स्वर्लोकं प्रययौ हृष्टो राघवेणाभिपालितः” ॥)
एकनेत्रविशिष्टे काणे त्रि ॥

एकाग्र, त्रि, (एकं एकस्मिन् वा अग्रं पुरोगतं ज्ञेयमस्य ।) अनन्यचित्तः । तत्पर्य्यायः । एकतानः २ अनन्यवृत्तिः ३ एकायनः ४ एकसर्गः ५ एकाग्र्यः ६ एकायनगतः ७ । इत्यमरः ॥ (यथा, मनुः । १।१।
“मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः” ।
“एकाग्रं विषयान्तराव्याक्षिप्तचित्तम्” । इति कुल्लुकभट्टः । तथा भागवते ८।१६।३।
“मनसैकाग्रया बुद्ध्या भगवत्यखिलात्मनि ।
वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम्” ॥
तथा गीतायाम् ६।१२।
“तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये” ॥
“एकाग्रं विक्षेपरहितं मनः कृत्वा” । इति स्वामिटीका ।) अनाकुलः । इति मेदिनी ॥

एकाग्र्य, त्रि, (एकं अग्र्यं अस्य ।) एकाग्रः । इत्यमरः ॥

एकाङ्ग, क्ली (एकं सुन्दरमङ्गं यस्य । एकं सुन्दरमङ्गं भवत्यस्माद्वा ।) चन्दनम् । इति हारावली ॥ (एकमद्वितीयमङ्गम् । एकस्मिन्नपि अङ्गे । यथा, महाभारते १३ । दानधर्म्मकथने । ८२ । २१ ।
“माननामहमिच्छामि भवत्याः सततं शुभाः ।
अप्येकाङ्गेऽप्यधोवस्तुमिच्छामि च सुकुत्सिते” ॥
एकं श्रेष्ठमङ्गमिति विग्रहे मस्तकम् । अस्य पर्य्याये उत्तमाङ्गशब्ददर्शनात् ॥ )

एकाङ्ग, पुं, (एकं सुन्दरम् अङ्गं यस्य । सौम्यत्वादस्य तथात्वम् ।) बुधग्रहः । इति त्रिकाण्डशेषः ॥

एकादश, [न्] त्रि, (एकाधिका दश ।) संख्याविशेषः । ११ एगार इति भाषा । तद्वाचकौ । रुद्रः १ दुर्य्योधनसेनापतिः २ । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (यथा मनुः २ । ३६ ।
“गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः” ॥)

एकादशी, स्त्री, (एकादशानां पूरणी । एकादश + डडन्तात् ङीप् ।) तिथिविशेषः । सा तु शुक्लपक्षे सूर्य्यमण्डलात् चन्द्रमण्डलस्य निर्गमरूपैकादशकलाक्रियारूपा । कृष्णपक्षे सूर्य्यमण्डले चन्द्रमण्डलस्य प्रवेशरूपैकादशकलाक्रियारूपा । तत्पर्य्यायः । हरिवासरम् २ । हरिदिनम् ३ । इति स्मृतिः ॥ तत्र जातफलम् ।
“क्रोधोत्कटः कोपसहः सुभाषी
यागादिकर्त्ता स्वजनैकभर्त्ता ।
महामतिर्देवगुरुप्रियः स्या-
देकादशीजो मनुजोऽतिदृष्टः” ॥
इति कोष्ठीप्रदीपः ॥ * ॥ तत्र उपवासविधिः । पारणदिने द्वादशीलाभे सर्व्वैव पूर्णां त्यक्त्वा खण्डामुपवसेयुः । तदलाभे गृही पूर्व्वां तदन्यः परां विद्धामपि उपवसेत् । पूर्णा तु ।
“उदयात् प्राक् यदा विप्र मुहूर्त्तद्वयसंयुता ।
सम्पूर्णैकादशी ज्ञेया तत्रैवोपवसेद् गृही” ॥
इति गारुडोक्ता ॥ यदा तु पूर्व्वदिने दशम्या परदिने द्वादश्या युक्तैकादशी तदा उत्तरामुपोष्य द्वादश्यां पारणं कुर्य्यात् । परदिने द्वादश्यनिर्गमे त्रयोदश्यामपि । यदा तु सूर्य्योदयानन्तरं दशमी तत्रैकादशी अथ च परदिने न निःसरति तदा तां विहाय द्वादशीमुपवसेत् । यदा तु सूर्य्योदयप्राक्कालीनदशमीविद्धैकादशी परदिने च न निःसरति तदा तामुपवसेत् । यदा तद्विधा सती परदिनेऽपि निःसरति तत्परदिने च द्वादशी तदा तां विहाय खण्डामुपोष्य द्वादश्यां पारयेत् । यदा तूभयदिने तद्विधैकादशी परदिने च न द्वादशी तदा षष्टिदण्डात्मिकां विद्धामुपोष्य परदिने द्वादश्याद्यपादमुल्लङ्घ्य पारयेत् । वैष्णवस्तु तत्रापि शुक्लपक्षे परामुपोष्य त्रयोदश्यां पारयेत् । सर्व्वस्यां कृष्णैकादश्यां वैष्णवानां सपुत्त्राणां गृहस्थानामप्युपवासो नित्यः । ब्राह्मणस्य विशेषतो नित्यः । वैष्णवेतरेषां तादृशानां हरिशयनमध्यवर्त्तिनीषु कृष्णैकादशीषु उपवासो नित्यः । अपुत्त्रवतां गृहिणान्तु सर्व्वास्वेव नित्याधिकारः । काम्योपवासे त्वविशेषेणैव सर्व्वेषामधिकारः । नित्योपवासे रविशुक्रादिदोषो नास्ति । अष्टाब्दादधिको मर्त्योऽपूर्णाशीतिवत्सरो नित्याधिकारी । विधवानान्तु सर्व्वास्वेव नित्याधिकारः तत्र मलमासादिदोषो नास्ति । इत्येकादशीतत्त्वोक्तव्यवस्था ॥ * ॥

अथ हरिभक्तिविलासोक्तैकादशीव्यवस्था लिख्यते ।
तत्रादौ उपवासपूर्व्वदिनकृत्यम् ।
“प्रातःस्नानादिकं कृत्वा सुवेशो धौतवस्त्रकः ।
व्रतं सङ्कल्प्य कुर्व्वीत वैष्णवैश्च महोत्सवम्” ॥
इति कारिका ॥ सङ्कल्पमन्त्रः ।
“दशमीदिनमारभ्य करिष्येऽहं व्रतं तव ।
त्रिदिनं देवदेवेश निर्व्विघ्नं कुरु केशव” ॥ * ॥
तत्र रुक्माङ्गदराजवाक्यं नारदीये ।
“प्रातर्हरिदिनं लोकास्तिष्ठध्वं चैकभोजनाः ।
अक्षारलवणाः सर्व्वे हविष्यान्ननिषेविणः ॥
अवनीतल्पशयना प्रियासङ्गविवर्ज्जिताः ।
स्मरध्वं देवमीशानं पुराणं पुरुषोत्तमम्” ॥ * ॥
अथान्यनियमाः । स्कान्दे ।
“कांस्यं मांसं मसूरञ्च क्षौद्रं चानृतभाषणम् ।
पुनर्भोजनमायासं दशम्यां परिवर्ज्जयेत्” ॥
पारणदिनोक्तनिषिद्धद्रव्याण्यत्रापि निषिद्धानि ॥*॥
ततो व्रतस्य नित्यत्वमाह कण्वः ।
“एकादश्यामुपवसेन्न कदाचिदतिक्रमेत्” ।
आग्नेयञ्च ।
“उपोष्यैकादशीं राजन् यावदायुः प्रवृत्तिभिः” ॥*॥
भोजननिषेधो नारदीये पाद्मोत्तरखण्डे च ।
“रटन्तीह पुराणानि भूयोभूयो वरानने ।
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं सम्प्राप्ते हरिवासरे” ॥
पक्षद्वयेऽपि नित्यत्वम् । विष्णुरहस्यम् ।
“शुक्ले वा यदि वा कृष्णे विष्णुपूजनतत्परः ।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि” ॥ * ॥
सङ्क्रान्त्यादावपि नित्यत्वम् । कात्यायनः ।
“सङ्क्रान्तौ रविवारे वा यदा चैकादशी भवेत् ।
उपोष्या सा महापुण्या सर्व्वपापहरा तिथिः” ॥*॥
उपवासदिने श्राद्धनिषेधः । पाद्मोत्तरखण्डे ।
“एकादश्यान्तु प्राप्तायां मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।
द्वादश्यां तत्प्रदातव्यं नोपवासदिने क्वचित्” ॥*॥
अथ अधिकारिणः । पाद्मोत्तरखण्डे ।
“वर्णानामाश्रमाणाञ्च स्त्रीणाञ्च वरवर्णिनि ।

एकादश्युपवासस्तु कर्त्तव्यो नात्र संशयः" ॥
कात्यायनस्मृतौ च ।
"अष्टवर्षाधिको मर्त्त्यो ह्यपूर्णाशीतिवत्सरः ।
एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि" ॥ * ॥
अशक्तौ प्रतिनिधिः । वायुपुराणे ।
"उपवासे त्वशक्तस्य आहिताग्नेरथापि वा ।
पुत्त्रान् वा कारयेदन्यान् ब्राह्मणान् वापि कारयेत् ॥
अथवा विप्रमुख्येभ्यो दानं दद्यात् स्वशक्तितः ।
उपवासन्तु कुर्व्वाणः पुण्यं शतगुणं भवेत्" ॥
मार्कण्डेयपुराणे च ।
"एकभक्तेन नक्तेन बालवृद्धातुरः क्षिपेत् ।
पयोमूलफलैर्व्वापि न निर्द्वादशिको भवेत्" ॥ * ॥
अनुकल्पापवादः । गरुडपुराणे ।
"मच्छयने मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्त्तने ।
फलमूलजलाहारी हृदि शल्यं समार्पयेत्" ॥ * ॥
एकादशीमाहात्म्यम् । तत्त्वसागरे ।
"एकादशीसमं किञ्चित् पावनं न च विद्यते ।
स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा राज्यपुत्त्रप्रदायिनी" ॥
गारुडे च ।
"एकादशीव्रतं भक्त्या यः करोति नरः सदा । [॥*॥
स विष्णुलोकं व्रजति याति विष्णोः सरूपताम्" ।
उपवासदिननिर्णयः । सौरधर्म्मोत्तरे ।
"एकादशीमुपवसेत् द्वादशीमथवा पुनः । [॥*॥
विमिश्रां वापि कुर्व्वीत न दशम्या युतां क्वचित्"
विद्धोपवासदोषमाह वशिष्ठः ।
"दशम्येकादशी यत्र तत्र नोपवसेद्बुधः ।
अपत्यानि विनश्यन्ति स्वर्गलोकं न गच्छति" ॥ * ॥
द्वादश्युपवासफलम् । स्कान्दे ।
"ऊर्द्ध्वं हरिदिनं न स्यात् द्वादशीं ग्राहयेत्ततः ।
द्वादश्यामुपवासोऽत्र त्रयोदश्यान्तु पारणम् ॥
एवं कुर्व्वन् नरो भक्त्या विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।
अन्यथा कुरुते यस्तु स याति नरकं ध्रुवम्" ॥ * ॥
सम्पूर्णालक्षणेन विद्धालक्षणम् । भविष्यपुराणे ।
"आदित्योदयवेलायाः प्राङ्मुहूर्त्तद्वयान्विता ।
एकादशी च सम्पूर्णा विद्धान्या परिकीर्त्तिता" ॥ * ॥
अरुणोदयविद्धापरित्यागमाह कण्वः ।
"अरुणोदयवेलायां दशमीसंयुता यदि ।
अत्रोपोष्या द्वादशी स्यात् त्रयोदश्यान्तु पारणम्" ॥
वेधश्चतुर्विधः । ब्रह्मवैवर्त्ते ।
"अरुणोदयवेधः स्यात् सार्द्धन्तु घटिकात्रयम् ।
अतिवेधो द्विघटिकः प्रभासन्दर्शनाद्रवेः ॥
महावेधोऽपि तत्रैव दृश्यतेऽर्को न दृश्यते ।
तुरीयस्तत्र विहितो योगः सूर्य्योदये बुधैः" ॥ * ॥
अरुणोदयविद्धोपवासदोषः । पाद्मे ।
"अरुणोदयकाले तु वेधं दृष्ट्वा चतुर्व्विधम् ।
मद्दिनं ये प्रकुर्व्वन्ति यावदाहूतनारकाः" ॥ * ॥
शुद्धाविशेषपरित्यागः । गारुडे ।
सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ।
वैष्णवी च त्रयोदश्यां घटिकैकापि दृश्यते ॥
गृहस्थोऽपि परां कुर्य्यात् पूर्व्वां नोपवसेत्तदा" ॥ * ॥
अथाष्टमहाद्वादशीनां विशेषतो निरूपणम् ।
यथा, ब्रह्मवैवर्त्ते ।

"उन्मीलनी वञ्जुली च त्रिस्पृशा पक्षवर्द्धिनी ।
जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी ॥
द्वादश्योऽष्टौ महापुण्याः सर्व्वपापहरा द्विज ।
तिथियोगेन जायन्ते चतस्रश्चापरास्तथा ॥
नक्षत्रयोगाच्च बलात् पापं प्रशमयन्ति ताः" ॥ * ॥
अथोन्मीलनी । यथा ब्रह्मवैवर्त्ते ।
"एकादशी च सम्पूर्णा वर्द्धते पुनरेव सा ।
द्वादशी च न वर्द्धेत कथितोन्मीलनी च सा" ॥
पद्मपुराणे ॥
"सर्व्वत्रैकादशी कार्य्या द्वादशीमिश्रिता नरैः ।
प्रातर्भवतु वा मा वा यतो नित्यमुपोषणम्" ॥ * ॥
अथ वञ्जुली । ब्रह्मवैवर्त्ते ।
"द्वादश्येव विवर्द्धेत न चैवैकादशी यदा ।
वञ्जुलीति भृगुश्रेष्ठ ! कथिता पापनाशिनी" ॥
भागवतादिनन्ते ।
"सम्पूर्णैकादशी त्याज्या परतो द्वादशी यदि ।
उपोष्या द्वादशी शुद्धा द्वादश्यामेव पारणम्" ॥ * ॥
अथ त्रिस्पृशा । ब्रह्मवैवर्त्तपुराणे ।
"अरुणोदय आद्या स्यात् द्वादशी सकलं दिनम् ।
अन्ते त्रयोदशी प्रातस्त्रिस्पृशा सा हरेः प्रिया" ॥
नारदीये ।
"एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
त्रिस्पृशा नाम सा प्रोक्ता ब्रह्महत्यां व्यपोहति" ॥
अथ पक्षवर्द्धिनी । ब्रह्मवैवर्त्ते ।
"दर्शश्च पौर्णमासी च सम्पूर्णा वर्द्धते यदि ।
द्वितीयेऽह्नि द्विजश्रेष्ठ सा भवेत् पक्षवर्द्धिनी" ॥ * ॥
ब्रह्मवैवर्त्ते ।
"कुहूराके यदा वृद्धिं प्रयाते पक्षवर्द्धिनी ।
विहायैकादशीं तत्र द्वादशीं समुपोषयेत्" ॥ * ॥
अथ जयादि । ब्रह्मवैवर्त्ते ।
"पुष्यश्रवणपुष्याद्यरोहिणीसंयुतास्तु ताः ।
उपोषिताः समफला द्वादश्योऽष्टौ पृथक् पृथक्" ॥
अथोपवासदिनकृत्यम् । देवलः ।
"गृहीत्वौडुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः ।
उपवासन्तु गृह्णीयाद्यद्वा सङ्कल्पयेद्बुधः" ॥
तत्र सङ्कल्पमन्त्रः ।
"एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि ।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत" ॥ * ॥
पुष्पाञ्जलित्रयदानं मन्त्रपूतजलपानञ्चाह मार्कण्डेयः ।
"अष्टाक्षरेण मन्त्रेण त्रिजप्तेनाभिमन्त्रितम् ।
उपवासफलं प्रेप्सुः पिबेत्तोयं समाहितः ॥
देवार्च्चनं ततः कृत्वा पुष्पाञ्जलिमथापि वा ।
सङ्कल्पमन्त्रमुच्चार्य्य देवाय विनिवेदयेत्" ॥ * ॥
सङ्कल्पादौ विशेषः । नारदीये ।
"पूर्व्वाया सङ्गदोषेणैकादश्यां स्नानपूजने ।
वर्ज्जयन्ति नराः पूर्व्वान् यामांश्च चतुरो द्विज ॥
तदूर्द्ध्वं स्नानपूजादि कर्त्तव्यं तदुपोषितैः ।
न दिवा शुद्धिमाप्नोति तदा रात्रौ विधीयते ॥
दिनकार्य्यमशेषञ्च कर्त्तव्यं शर्व्वरीमुखे" ॥ * ॥
पूजाजागरणविधिः । ब्राह्मे ।
"एकादश्यामुभौ पक्षौ निराहारः समाहितः ।

स्नात्वा सम्यग्विधानेन धौतवासा जितेन्द्रियः ॥
सम्पूज्य विधिवद्विष्णुं श्रद्धयातिसमाहितः ।
पुष्पैर्गन्धैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैः परैः ॥
उपहारैर्ब्बहुविधैर्जपहोमप्रदक्षिणैः ।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्नृत्यगीतवाद्यैर्मनोरमैः ॥
एवं सम्पूज्य विधिवद्रात्रौ कुर्य्यात् प्रजागरम्" ॥ * ॥
अथ जागरणलक्षणम् । स्कान्दे ।
"शृणु नारद वक्ष्यामि जागरस्य तु लक्षणम् ।
येन विज्ञातमात्रेण दुर्लभो न जनार्दनः ॥
गीतं वाद्यञ्च नृत्यञ्च पुराणपठनन्तथा ।
धूपं दीपञ्च नैवेद्यं पुष्पगन्धानुलेपनम् ॥
फलमर्घ्यञ्च श्रद्धा च दानमिन्द्रियनिग्रहः ।
सत्यान्वितं विनिद्रञ्च मुदायुक्तं क्रियान्वितम् ॥
साश्चर्य्यञ्चैव सोत्साहं पापालस्यादिवर्ज्जितम् ।
प्रदक्षिणाभिः संयुक्तं नमस्कारपुरःसरम् ॥
नीराजनसमायुक्तमनिर्व्विण्णेन चेतसा ।
यामे यामे महाभागे कुर्य्यादारात्रिकं हरेः ॥
एतैर्गुणैः समायुक्तं कुर्य्याज्जागरणं हरेः" ॥ * ॥
अथ पारणदिनकृत्यम् । कात्यायनः ।
"प्रातः स्नात्वा हरिं पूज्य उपवासं समर्पयेत् ।
पारणन्तु ततः कुर्य्यात् व्रतसिद्धौ हरिं स्मरन्" ॥
तत्र समर्पणमन्त्रः ।
"अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव ।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव" ॥ * ॥
अथ पारणे द्वादशीलङ्घने दोषः । स्कान्दे ।
"पारणाहनि सम्प्राप्ते द्वादशीं यो व्यतिक्रमेत् ।
त्रयोदश्यान्तु भुञ्जानः शतजन्मानि नारकी" ॥ * ॥
अथ द्वादश्यत्यल्पत्वे कृत्यसमाधानम् । देवीरहस्ये ।
"अल्पा चेद्द्वादशी कुर्य्यात् नित्यकर्म्मारुणोदये ।
अत्यल्पा चेन्निशीथोऽर्द्धमामध्याह्निकमेव तत्" ॥ * ॥
अथ सङ्कटे पारणसमाधानम् । कात्यायनः ।
"मन्त्रं जपित्वा हरये निवेद्योपोषणं व्रती ।
अद्भिस्तु पारणं कुर्य्यात् सङ्कटे विषमे सति" ॥ * ॥
अथ हरिवासरकालपारणनिषेधः । विष्णुधर्म्मोत्तरे ।
"द्वादश्याः प्रथमः पादो हरिवासरसंज्ञकः ।
तमतिक्रम्य कुर्व्वीत पारणं विष्णुतत्परः" ॥ * ॥
अथ द्वादशीदिने वर्ज्जनीयानि । स्कान्दे ।
"क्षौद्रं मांसं सुरां तैलं व्यायामं क्रोधमैथुने ।
परान्नं कांस्यताम्बूले लोभं निर्म्माल्यलङ्घनम् ॥
द्वादश्यां द्वादशैतानि वैष्णवः परिवर्ज्जयेत्" ॥
अपि च । वितथभाषणम् । प्रवासः । दिवास्वप्नः ।
अञ्जनम् । शिलापिष्टम् । मसूरम् । द्यूतम् । हिंसा ।
चणकम् । कोरदूषकम् । औषधम् । एतानि पुराणान्तरोक्तान्यपि वर्ज्जनीयानि ॥ * ॥ इति श्रीहरिभक्तिविलासोक्तैकादशीव्यवस्था समाप्ता ॥ * ॥
अथ पश्चिमदेशप्रसिद्धनानापुराणोक्तषड्विंशत्येकादशीनामानि लिख्यन्ते । अग्रहायणस्य कृष्णैकादशी उत्पन्ना १ शुक्ला मोक्षा २ । पौषस्य कृष्णैकादशी सफला ३ शुक्ला पुत्त्रदा ४ । माघस्य कृष्णैकादशी षट्तिला ५ शुक्ला जया ६ । फाल्गुनस्य कृष्णैकादशी विजया ७ शुक्ला आमर्दकी ८ ।

चैत्रस्य कृष्णैकादशी पापमोचनी ९ शुक्ला कामदा १०। वैशाखस्य कृष्णैकादशी वरूथिनी ११ शुक्ला मोहिनी १२। ज्यैष्ठस्य कृष्णैकादशी अपरा १३ शुक्ला निर्जला १४। आषाढस्य कृष्णैकादशी योगिनी १५ शुक्ला पद्मा १६। श्रावणस्य कृष्णैकादशी कामिका १७ शुक्ला पुत्रदा १८। भाद्रस्य कृष्णैकादशी अजा १९ शुक्ला वामना २०। आश्विनस्य कृष्णैकादशी इन्दिरा २१ शुक्ला पापाङ्कुशा २२। कार्त्तिकस्य कृष्णैकादशी रमा २३ शुक्ला प्रबोधिनी २४। मलमासस्य शुक्लैकादशी सुभद्रा २५ कृष्णा कमला २६॥ *॥ इत्येकादशीप्रकरणं समाप्तम्॥ (सङ्ख्याविशेषः। एगार इति भाषा। यथा महाभारते ६।१६।२१।

"एकादशी धार्त्तराष्ट्री कौरवाणां महाचमूः"॥)

एकान्नविंशति, त्रि, (एकेन न विंशतिः। "एकादिश्चैकस्य चादुक्"।६।३।७६। इत्यनेन सिद्धम्।) एकोनविंशतिः १९। इति व्याकरणम्॥

एकानंशा, स्त्री, (एको न अंशो यस्याः।) पार्व्वती। इति त्रिकाण्डशेषः॥ (इयं हि यशोदागर्भसम्भवा। यदुक्तं हरिवंशे। ५९।१४ - ४७।

"देवक्यजनयत् विष्णुं यशोदा तां तु कन्यकाम्"।
"विद्धि चैनामथोत्पन्नां अंशाद्देवीं प्रजापते।
एकानंशां योगकलां रक्षार्थं केशवस्य तु"॥)

एकान्तं, क्ली, (एकस्मिन्नेव अन्तः समाप्तिर्यस्य।) अत्यन्तम्। तत्पर्य्यायः। अतिशयः २ भरः ३ अतिवेलम् ४ भृशम् ५ अत्यर्थम् ६ अतिमात्रम् ७ उद्गाढम् ८ निर्भरम् ९ तीव्रम् १० नितान्तम् ११ गाढम् १२ बाढम् १३ दृढम् १४। (यथा माघे २। ८३।

"तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपते"॥

तद्वति, त्रि। यथा कुमारे १। ३६।

"नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वा-
देकान्तशैत्यात् कदलीविशेषाः"।

तथा भागवते। २।४।४।

तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ्निर्विकल्पकः।
एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते"॥)

मेधगामिनि त्रि। इत्यमरः॥ (सर्व्वत्र यदवधारेणोच्यते स एकान्तः॥ यथा "उद्दिरेचयति मदनफलं वामयतीति"॥ इत्युत्तरतन्त्रे ६५ अध्याये सुश्रुतेनोक्तम्॥) निर्ज्जनम्। (यथा हितोपदेशे विग्रहे। १५। "अथ केनापि शस्यरक्षकेण धूसरकम्बलकृततनुत्राणेन धनुःकाण्डं सज्जीकृत्यावनतकायेन एकान्ते स्थितम्"॥)

एकान्ती [न्] (एकान्तमस्त्यस्य। एकान्त + इनि।) विष्णुभक्तविशेषः। यथा, गारुडे १३१ अध्याये।

"एकान्तेनासमो विष्णुर्यस्मादेषां परायणम्।
तस्मादेकान्तिनः प्रोक्तास्तद्भागवतचेतसः॥
प्रियाणामपि सर्व्वेषां देवदेवस्य स प्रियः।
आपत्स्वपि सदा यस्य भक्तिरव्यभिचारिणी"॥

एकाग्रः, त्रि, ( एकं एककामग्रं यत्र यस्य।) एकभक्तः। यथा। काशीखण्डे।

"ऊर्द्ध्वं यवान्नमश्नीयादेकान्नमथवा पुनः।
हस्ताकं सूरणञ्चैव शूकशिम्बीञ्च वर्ज्जयेत्"॥

इति तिथ्यादितत्त्वम्॥ एका अविभक्तामन्नं यस्य इति व्युत्पत्त्या एकपाकावस्थितः। अविभक्तः। यथा,

"एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्च्चनम्।
एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद्गृहे गृहे"॥

इति प्रायश्चित्ततत्त्वधृतबृहस्पतिवचनम्॥

एकान्नविंशति, त्रि, (एकेन न विंशतिः। "एकादिश्चैकस्य चादुक्"। ६ ३। ७६। नञो विंशत्या समासे कृते एकशब्देन सह तृतीयेति योगविभागात् समासः। अनुनासिकविकल्पः।) एकोनविंशतिः १९। इति व्याकरणम्॥

एकाब्दा, स्त्री, (एकोऽब्दो यस्याः सा।) एकहायनी। एकवत्सरवयस्कागवी। इत्यमरः॥

एकायनः, त्रि, (एकं अयनं विषयो यस्य।) एकाग्रः। एकविषयासक्तचित्तः। इत्यमरः। (यथा छान्दोग्योपनिषदि। ७। ४। २। तानि ह वा एतानि सङ्कल्पैकायनानि सङ्कल्पात्मकानि सङ्कल्पे प्रतिष्ठितानि"। एकमयनं गतिर्यत्र। एकमात्रगमनयोग्यः। यदुक्तं महाभारते ३। १४६। ६६।

"अनेनैव यथा मा वै गच्छेदिति विचार्य्य सः।
आस्ते एकायने मार्गे कदलीषण्डमण्डिते"॥)

एकायनगतः त्रि, (एकायनं गतं प्राप्तः। एकस्मिन्नयने गतं ज्ञानमस्येति वा।) एकाग्रः। इत्यमरः॥

एकावली, स्त्री, (एका श्रेष्ठा आवली माला।) एकयष्टिका। इत्यमरः॥ एकनर हार इति भाषा। (अलङ्कारविशेषः। तल्लक्षणादिकमुक्तं साहित्यदर्पणे १० परिच्छेदे। १०१। यथा,—

"पूर्व्वं पूर्व्वं प्रति विशेषणत्वेन परं परम्।
स्थाप्यतेऽपोह्यते वा चेत्स्यात्तदैकावली द्विधा"॥

क्रमेणोदाहरणम्। तत्रैव।

"सरो विकसिताम्भोजमम्भोजं भृङ्गसङ्गतम्।
भृङ्गा यत्र ससङ्गीताः सङ्गीतं सस्मरोदयम्"॥

"न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं
न पङ्कजं तद्यदलीनषट्पदम्।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं
न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः"॥

भट्टिः। २। १९॥ क्वचिद्विशेष्यमपि यथोत्तरं विशेषणतया स्थापितमपोहितञ्च दृश्यते। यथा,—

"वाप्यो भवन्ति विमलाः स्फुटन्ति कमलानि वापीषु।
कमलेषु पतन्त्यलयः करोति सङ्गीतमलिषु पदम्"॥

एवमपोहनेऽपि॥)

एकाश्रितगुणः, पुं, (एकस्मिन् पदार्थे आश्रितो गुणः।) एकवृत्तिधर्म्मः। तद्यथा। रूपम् १ रसः २ गन्धः ३ स्पर्शः ४ एकत्वम् ५ एकपृथक्त्वम् ६ परिमाणम् ७ परत्वम् ८ अपरत्वम् ९ बुद्धिः १० सुखम् ११ दुःखम् १२ इच्छा १३ द्वेषः १४ यत्नः १५ गुरुत्वम् १६ द्रवत्वम् १७ स्नेहः १८ संस्कारः १९ अदृष्टम् २० शब्दः २१। इति सिद्धान्तमुक्तावली॥ ९०॥

एकाष्ठील, पुं, ( एकमस्थि आति। ला + क। सुषामादित्वात् षत्वं दीर्घत्वञ्च।) वकवृक्षः। इति कश्चिदमरः॥

एकाष्ठीला, स्त्री, (एकाष्ठील + टाप्।) वकवृक्षः। इत्यमरः॥ पाठा। इति राजनिर्घण्टः॥ आक... इति भाषा। (अस्याः पर्य्याया यथा॥

"अम्बष्ठाम्बष्ठकी पाठा कुचेला पापचेलिका।
एकाष्ठीला वरा तिक्ता प्राचीनैका शिवावुका..."
इति वैद्यकरत्नमाला॥)

एकाहः, पुं, (एकमहः। "उत्तमैकाभ्याञ्च"।५।... ९० इत्यनेन सिद्धम्।) एकदिनम्। इति व्याकरणम्॥ (यथा, मनुः ५। ५९।

"अर्व्वाक् सञ्चयनादस्थ्नां त्र्यहमेकाहमेव च"॥...

एकाहार, पुं, (एक न द्वितीय आहारः।) ए... दिनकृत्यैकवारभोजनम्। यथा।

"एकाहारः सदा कार्य्यो न द्वितीयः कदाचन।
पर्य्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत् पतिम्"॥

इति शुद्धितत्त्वधृतस्मृतिः॥

एकीय, त्रि, (एकस्मिन् तिष्ठतीति। एक + छ...) एकपक्षः। सहायः। सहभावी। इति त्रिकाण्डशेष...

एकोद्दिष्ट, क्ली, (एकः प्रेत एव उद्दिष्टो यत्र।) प्रेतो... द्देश्यकश्राद्धम्। यथा। गोभिलः अथैकोद्दि... मेकं पवित्रमेकोऽर्घ्य एकः पिण्डो नावाहनं नाग्नौ... करणं नात्र विश्वे देवाः स्वदितमिति तृप्तिप्रश्न... सुस्वदितमिति प्रत्युत्तरम्। उपतिष्ठतामित्यक्षय्य... स्थाने अभिरम्यतामिति विसर्गोऽभिरतोऽस्मीति... प्रतिवचनमेतत् प्रेतश्राद्धमिति॥ *॥ एतत् प्रेत... श्राद्धमित्युपसंहारात् एकं प्रेतमुद्दिश्य यद्दीयते... श्राद्धं तदेकोद्दिष्टमिति वैदिकप्रयोगाधीन... यौगिकम्। अतएव प्रतिसांवत्सरिकस्य नैको... द्दिष्टत्वं किन्त्वेकोद्दिष्टविधिकत्वं अत्रार्घ्यैश्चाद्दि... सङ्कल्पसङ्केतितपवित्रैक्यप्राप्तौ एकं पवित्रमिति पुनरभिधानसार्थकत्वाय तदवयवैकदलपरम्। अत्र नावाहनं नाग्नौ करणमिति निषेधयोः पौर्व्वापर्य्यादग्नौ करणपूर्व्वकालीनं प्रधानसम्बन्धि श्राद्धसूत्रोद्दिष्टं श्राद्धार्थावाहनमेव निषिध्यते न तु प्रधानसम्बन्धि पितृयज्ञवदित्यतिदेशप्राप्तं पिण्डार्थावाहनमिति। एतेन पिण्डार्थावाहननिषेधो मैथिलोक्तो हेयः। अत्राग्नौ करणनिषेधेन हुतशेषस्याभावे हुतशेषं दत्त्वा पात्रमालभ्य जपति पृथिवीत्यादि स्वाहा इत्यन्तसूत्रोक्तपात्रालम्भनस्यापि बाधः। आनन्तर्य्याभावात् अमृतमिति मन्त्रलिङ्गविरोधाच्च। स्वदितमिति तृप्तिप्रश्न इति तृप्ताः स्थ इति तृप्तिप्रश्ने स्वदितमिति प्रश्नः। कुशमयब्राह्मणपक्षे तु प्रतिवचनानुपपत्त्या प्रश्नस्यापि निवृत्तिः। अक्षय्यशब्दस्थाने उपतिष्ठतामिति प्रयोगः अत्रोपतिष्ठतामित्यनेन अन्नादिकमित्यस्यान्वये अक्षितस्य अन्वयानुपपत्त्या तस्याप्यप्रयोगः। अतएव पितृदयितायामन्नादिकमुपतिष्ठतामिति लिखितम्। अभिरम्यतामिति वाजे वाजे इति स्थाने अभिरम्यतामित्यनेन विसर्जनमिति। एतदिति पूर्व्वोक्तेतिकर्त्तव्यताकश्राद्धमित्यर्थः। प्रेतश्राद्धं प्रेतस्य श्राद्धं न तु पार्व्वणविहितत्वेन प्राप्तपितृलोकरूपपितुः श्राद्धं अक्षतस्यापि गौणीकरणस्य तथाविधपितृत्वाभावात्। अतएवैतन्न्यायमूलकमेवाश्वलायनगृह्यपरिशिष्टेऽपि पितृ-

शब्दं न युञ्जीत पितृत्वं चोपजायते इत्युक्तम्। अतएव विष्णुना प्रेतस्य नामगोत्राभ्यां दत्ताचम्योदकेषु इत्यत्र प्रेतनामगोत्राभ्यामित्यनेन प्रेतस्येत्युक्तं न तु सम्बन्धिन इत्युक्तम्। ततश्च मन्त्रे प्राप्तपितृलोकोपाधिकएव पितृपदस्थाने प्रेतपदोहो न तु अभिस्वात्ताद्युपाधिके एवमभिलापवाक्येऽपि सम्बन्धित्वेन नोल्लेख किन्तु प्रेतत्वेन असम्बन्धिनोऽपि मठच्छात्रादेरपि प्रेतश्राद्धाधिकारित्वात्। सांवत्सरिकश्राद्धे एकोद्दिष्टविकृतीभूतेऽपि प्राप्तपितृलोकोपाधिकपितृपदवन्मन्त्रे अभिलापे च सम्बन्धिबोधकपितृत्वेनैवोल्लेख । एवञ्च देवताभ्य पितृभ्यश्च इत्यत्र न प्रेतपदोहः पितृपदस्य दिव्यपितृपरत्वात्। एवं नैकवचनोहोऽपि तथा मधु द्यौरस्तु न पिता इत्यस्य द्यौः स्वर्ग पिता पितेव सर्व्वस्याधिगम्यत्वात् मध्वस्तु मधुमयी भवत्विति भाष्यव्याखाने द्यौरिति पितेति पदयोः सामानाधिकरण्यं प्रतीयते अत्र च द्युत्वपितृत्वयोर्भेदेऽपि सामानाधिकरण्येनाभेदावगमात् दिवः पितृसाधर्म्म्यप्राप्तिरिति पितृपदं पितृतुल्यपरं न तु जनकपरं प्राप्तपितृलोकपरं वेति। तेनात्र मन्त्रे पितेत्येव वक्तव्यं न तु प्रेतपदोहः । न वा पितृशब्दं न युञ्जीत इत्यनेन निषेधः। एवमामावेति मन्त्रे पितरा इत्यत्र नोहः। एवं वृद्धिश्राद्धेऽप्येतेषु नान्दीमुखविशेषणं न देयमेवेति। अन्यत्र सर्व्वत्रोत्सर्गवाक्ये मन्त्रे च पितृपदप्रयोगनिषेधात् प्रेतपदोहः कार्य्यः। विष्णु ' एकवन्मन्त्रानूहेत एकोद्दिष्टे इति एकवत् एकवचनवत् यथा स्यात्तथोहेत यथा पवित्रे स्थो वैष्णव्यावित्यत्र पवित्रासि वैष्णवीति एवं विष्णोर्मनसा पूते स्थ इत्यत्रापि पूतमसीति। अत्र पितरो मादयध्वं यथाभाग मा वृषायध्वं इति मन्त्रे अत्र प्रेतमादयस्व यथाभाग मा वृषायस्व इत्यूह्यम्। अमी मदन्त पितर इत्यत्र अमी मदत् प्रेत इति। वृषायिषत इत्यत्र वृषायिष्टेति। एत पितर इति पिण्डार्थावाहनमन्त्रे एहि प्रेत इति। सौम्यास इत्यत्र सौम्येति। दत्तास्मभ्यमित्यत्र देह्यस्मभ्यमिति। नियच्छत इत्यत्र नियच्छेति। नमो व इत्यादिमन्त्रेषु पितर इति स्थानचतुष्टये प्रेतेत्यूह्यम्। एवं व इत्यत्र ते इति। आशीःप्रार्थने येभ्य इत्यत्र यस्मै इति। तेषामित्यत्र तस्येत्यूह्यम्। एतद्वः पितर इत्यत्र तु प्रेता इति विकृतावूहो न तु बहुवचनस्य। एतद्वः पितरो वास इति जल्पन् पृथक् पृथक् इति ब्रह्मपुराणेन प्रकृतावेव पार्व्वणे पित्रादिषु प्रत्येकमेतद्वः पितर इति बहुवचनान्तमन्त्रप्रयोगात् अत्रानर्थक्येन सद्दिकृतावेकोद्दिष्टेऽप्यसमवेतार्थबहुवचनस्यैव युक्तत्वात्। ततश्च प्रकृतौ समवेतार्थस्यैव विकृतावूहः। सांवत्सरिके त्वेकवचनस्यैवोहो न तु पितृपदस्य तत्र प्राप्तपितृलोकत्वेन तस्यैव युक्तत्वात्। स्मृतिः।

"प्रेतश्राद्धे यदुच्छिष्टं गृहे पर्य्युषितञ्च यत्।
दम्पत्योर्भुक्तशेषञ्च न भुञ्जीत कदाचन" ॥

उच्छिष्टं पाकपात्रे अवशिष्टम्। गृहे उपरागे पर्य्युषितं स्थितम्। दम्पत्योराश्रमस्वामिनोर्भोजनानन्तरं पाकस्थाल्यामवशिष्टमिति श्राद्धचिन्तामणिः ॥ यत्तु देवलवचनम्।

"एकोद्दिष्टस्य शेषन्तु ब्राह्मणेभ्यः समुत्सृजेत्।
पश्चात् स्वयञ्च भुञ्जीत पुनर्मङ्गलभोजनम्" ॥

इति। तस्यैकोद्दिष्टशेषं ब्राह्मणेभ्य समुत्सृजेत् न त्ववशेषयेत् पुनर्मङ्गलभोजनं पाकान्तरकृतान्नं भुञ्जीतेत्यन्वय इति ॥ * ॥ तत्करणकालो यथा। ब्रह्मपुराणम्।

"पूर्व्वाह्णे मातृकं श्राद्धमपराह्णे तु पैत्रिकम्।
एकोद्दिष्टन्तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्" ॥

मध्याह्ने तु विशेषमाह कालमाधवीये व्यासः।

"कुतपप्रथमे भागे एकोद्दिष्टमुपक्रमेत्।
आवर्त्तनसमीपे वा तत्रैव नियतात्मवान्" ॥

आवर्त्तनं पश्चिमदिगवस्थितच्छायायाः पूर्व्वदिग्गमनारम्भकालः । तत्समीपे कुतपशेषदण्डे।

यदाह गोतमः।

"आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्य्यादारौहिणं बुधः ।
विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणन्तु न लङ्घयेत्"।

तेन पूर्व्वदिवसीयकुतपरौहिणयोस्तत्तिथिलाभे परत्र कुतपमात्रलाभे शुक्लपक्षेऽपि पूर्व्वदिने एकोद्दिष्टं उभयप्राप्त्यनुरोधात्। पूर्व्वदिने कुतपालाभे परत्र तल्लाभे कृष्णपक्षेऽपि परदिनएव समाप्तिकालादारम्भकालस्य बलवत्त्वात्। तथा च बौधायनः ।

"यो यस्य विहितः कालः कर्म्मणस्तदुपक्रमे ।
तिथिर्याभिमता सा तु कार्य्या नोपक्रमोज्झिता" ॥

उभयत्र कुतपमात्रालाभे शुक्लपक्षेऽपि पूर्व्वदिने समाप्तिकालानुरोधात् पूर्व्वदिने रौहिणालाभे परत्र सप्तममुहूर्त्तलाभे कृष्णपक्षेऽपि परदिने मध्याह्नानुरोधात् । इति श्राद्धतत्त्वम् ॥ * ॥ एकोद्दिष्टविधिकसांवत्सरिकश्राद्धम्। यथा,—

"एकोद्दिष्टं पुरावश्य तद्विशेषं वदे शृणु"।

प्रथमं निमन्त्रणं पादप्रक्षालनं आसनं अद्य अमुकगोत्रस्य मत्पितुरमुकदेवशर्म्मणः प्रतिसांवत्सरिकमेकोद्दिष्टं श्राद्धं सिद्धान्नेन युष्माखहं करिष्ये श्राद्धकरणानुज्ञापनम्। आसनं अर्घ्यः। गन्धादिदानं नित्यश्राद्धम्। अन्नसङ्कल्पनं जप्यं निवीती उत्तराभिमुखीभूयातिथिश्राद्धं कुर्य्यात्। ततस्तृप्तिं ज्ञात्वा दक्षिणाभिमुखो वामोपवीती उच्छिष्टसमीपे ये अग्निदग्धा इति अन्नविकिरणम्। ॐ अमुकगोत्र मत्पितरमुकदेवशर्म्मन् एतत्ते जलमवने निक्ष्व ये चात्र त्वामनुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा। इति रेखोपरि दक्षिणामुखवारिधारादानम्। इति गारुडे २२३ अध्यायः ॥

एकोशिका, स्त्री, (एका मुख्या उशिका कमनीया।) वृक्षविशेषः। इति रत्नमाला ॥ आकान्दि इति भाषा॥

एज, ऋ ङ दीप्तौ इति कविकल्पद्रुम ॥ (भ्वादि-आत्म-अक-सेट्।) ऋ मा भवान् एजिजत्। ङ एजते। इति दुर्गादास ।

एज, ऋ कम्पे। इति कविकल्पद्रुम ।(भ्वादिं-पर-सकं सेट्।) ऋ मा भवान् एजजित्। एजति वायुना वृक्ष। इति दुर्गादास ॥

एठ, ङ बाधने। इति कविकल्पद्रुमः ॥ (भ्वादिं-आत्मं सक-सेट्।) बाधनं विहतिः। ङ एठते वत्सरं लोकः। इति दुर्गादासः ॥

एडः, त्रि, ( इलति। इल स्वप्ने। अच्। डलयोरैक्यम्। यद्वा आ सर्व्वत ईड्यते। ईड् स्तुतौ। घञ्।) वधिरः। इत्यमर ॥ (मेषः। यथाह कात्यायनः।

"श्वेडवराहेषूदधारा प्राचीद विष्णुः" ॥ )

एडक, पुः (एड + स्वार्थे कन्। यद्वा इलति एलयति वा इल + ण्वुल्।) मेष । इत्यमर ॥ वनच्छागलः। इति त्रिकाण्डशेष ॥

एडका, स्त्री, (एड्कस्य स्त्री। अजादित्वात् टाप्। क्षिपकादित्वान्नेत्वम्।) मेषी। इत्यमरटीकायां रायमुकुट

एडगज,पु, (एड। मेष एव गजो यस्य मल्लकत्वात्।) चक्रमर्द्दक । इत्यमरः ॥ चाकुन्दिया इति भाषा। अस्य गुणा । वायुकफकुष्ठत्वग्दोषगुल्मोदररोगार्शोनाशित्वम्। कटुत्वञ्च। इति राजवल्लभ ॥ (पर्य्याया यथा,—

"चक्रमर्द्द प्रपुन्नाटो दद्रुघ्नो मेषलोचन ।
पद्माट स्यादेडगजश्चक्री पुन्नाट इत्यपि" ॥

इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे प्रथमे भागे। गुणास्त्वस्य चक्रमर्द्दशब्दे ज्ञेया ॥

व्यवहारो यथा,—

"सलोमश सैड़गज करञ्ज"।

इति चरके सूत्रस्थाने तृतीयेऽध्याये ॥)

एड़मूकः,त्रि, (एडो वधिरो मूकश्च।) वधिर मूकश्च। वक्तुं श्रोतुमशिक्षित । वाक्श्रुतिवर्ज्जितः। इत्यमर ॥ शठ । इति मेदिनी ॥

एडुक, क्ली, (ईड + उलूकादयश्चेति ४ । ४१ । उणादिसूत्रेण साधु। निपातनात् ह्रस्वम्।) एडूकम्। इति भरतो द्विरूपकोषश्च ॥

एडूक, क्ली, (ईड्यते इति। "उलूकादयश्च" ४।४१। उणादिसूत्रेण साधु।) अन्तर्न्यस्तकीकसकुड्यम्। इत्यमर ॥ कीकसमिव कीकसं यत् कुड्यम् छिटाबेडा इति ख्यातमित्यन्ये। इति सारसुन्दरी॥ कीकसमस्थि एतत् काष्ठादिकठिनद्रव्योपलक्षणं कीकसमिव कीकसं किलिञ्जादीति मधु ॥

"मध्यस्थापितास्थ्यादि कुड्यमेडूकमुच्यते"।

इति माधव ॥ (यथा महाभारते वनपर्व्वणि।

"एडूकचिह्ना पृथिवी न देवगृहभूषिता" ॥

अस्य शब्दस्य पुंस्त्वमपि दृश्यते महाभारते ३। १९०।६२। यथा,—

"एडूकान् पूजयिष्यन्ति वर्जयिष्यन्ति देवता ।
शूद्रा परिचरिष्यन्ति न द्विजान् युगसंक्षये" ॥)

एडोक, क्ली, एडूकम्। इति भरतकृतद्विरूपकोष ॥

एण, पु स्त्री, (एति द्रुतं गच्छतीति। इ + बाहुलकात् णः।) हरिण । इति राजनिर्घण्ट ॥ मृगविशेष। इत्यमरः॥ अस्य मांसगुणा। कषायत्वम्। मधुरत्वम् पित्तरक्तकफज्वरनाशित्वम्। संग्राहित्वम्। रोचनत्वम्। हृद्यत्वम्। बलकारि-

त्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥ (यथा मनुः ३ । २६९ ।
"षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै ।
अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैव तु" ॥
अस्य लक्षणं यथा ॥ "एणः कृष्णः प्रकीर्त्तितः"।
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे २ भागे ॥)

एणकः, पुं, (एण + स्वार्थे कन् ।) एणः । इति शब्दरत्नावली ॥

एणतिलकः, पुं, (एणो मृगस्तिलकमिव यस्य । चन्द्रस्य मृगाङ्कत्वात्तथात्वम् ।) चन्द्रः । इति हारावली ॥

एणभृत्, पुं, (एणं बिभर्त्तीति । एण + भृ + क्विप् ।) चन्द्रः । इति हेमचन्द्रः ॥

एतं, त्रि, (आ + इण् + क्त ।) आगतम् । इति मेदिनी ॥ कर्व्वूरवर्णयुक्तम् । इत्यमरः ॥ (स्त्रियां एनी एता । पाणिनि ४ । १ । ३९ ॥)

एतः, पुं, (आ सम्यक् एति गच्छतीति । आ + इण् + क्त ।) मृगः । इति शब्दरत्नावली ॥ कर्व्वूरवर्णः । इति मेदिनी ॥

एतद्, त्रि, (इण् + "एतेस्तुट् च" इति उणादिसूत्रेण १ । १३२ । अतोऽदि स्यात्तस्य तुडागमः ।) पुरोवर्त्तिवाचकसर्व्वनामशब्दः । इति व्याकरणम् ॥ एइ इति भाषा ।
("एते वयममी दाराः कन्येयं कुलजीवितम्" ।
इति कुमारे ६ । ६३ ॥ "एतान् महाराज विशेषधर्म्मान्" । इति शुद्धितत्त्वम् । उक्तस्य पश्चादुक्तौ "द्वितीयाटौस्स्वेनः" २ । ४ । ३४ । इति एनादेशः स्यात् । यथा "य एनामाश्रमधर्म्मे नियुङ्क्ते" । इति शाकुन्तले प्रथमाङ्के ॥) [हेमचन्द्रः ॥

एतनः, पुं, (आङ् + इ + तन ।) निश्वासः । इति

एतर्हि, अ, (इदम् + "इदमोर्हिल्" । ५ । ३ । १६ । इति र्हिल् ततो "एतेतौ रथोः" ५ । ३ । ४ । इति एतादेशः ।) एतस्मिन् काले । सम्प्रति । इत्यमरः ॥ (यथा भागवते १ । १७ । ४२ ।
"स एष एतर्ह्यध्यास्त आसनं पार्थिवोचितम्" ॥)

एतशः, पुं, (इण् + "इणस्तशन्तशसुनौ" ३ । १४९ । इति उणादिसूत्रेण तशन् ।) ब्राह्मणः । इत्युणादिकोषः ॥

एतशाः, [स्] पुं, (इण् + "इणस्तशन्तशसुनौ" ३ । १४९ इति उणादिसूत्रेण तशसुन् ।) ब्राह्मणः । इत्युणादिकोषः ॥

एतावत्, त्रि, (एतद् + "यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्" । ५ । २ । ३९ । इति परिमाणे वतुप् ।) एतत्परिमाणम् । इति व्याकरणम् ॥ (यथा रघुः २ । ५१ ।
"एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे
प्रतिस्वनेनास्य गुहागतेन" ॥)

एध, ङ, वृद्धौ । इति कविकल्पद्रुमः ॥ (भ्वादिं-आत्मं-अकं-सेट् ।) ङ एधते । इति दुर्गादासः ॥ (यथा मनुः ४ । १७० ।
"हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते" ॥)

एधः, पुं, (इध्यतेऽनेनाग्निः । इन्ध + "हलश्च" ३ । ३ । १२१ । इति करणे घञ् । "अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः" इति घञि नलोपो गुणश्च निपातितः ॥) इन्धनम् । इत्यमरः ॥ जालानि काठ इति भाषा । (यथा रघौ ९ । ८२
"एधान् हुताशनवतः स मुनिर्ययाचे" ॥)

एधः, [स्] क्ली, (एध् + असुन् ।) इन्धनम् । इत्यमरः ॥ (यथा गीतायाम् । ४ । ३७ ।
"यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्ज्जुन" ॥)

एधतुः, त्रि, (एध् वृद्धौ "एधिवह्योश्चतुः" १ । ७९ उणादिसूत्रेण चतुः ।) वर्द्धितम् । वृद्धियुक्तम् । इति शब्दरत्नावली ॥

एधतु, पुं, (एध + "एधिवह्योश्चतु" । १ । ७९ । उणादि चतुः ।) पुरुषः । अग्निः । इति मेदिनी ॥

एधित, त्रि, (एध वृद्धौ + क्त ।) वर्द्धितः । वृद्धिप्राप्तः । इत्यमरः ॥

एन, [स्] क्ली, (एति गच्छति प्रायश्चित्तेन । इण् आगसीत्यसुन् नुडागमश्च ।) पापम् । अपराधः । इति मेदिनी ॥ निन्दा । इति शब्दरत्नावली ॥
("एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिरेनम्
जगाद भूयो जगदेकनाथः ॥
इति रघुः । ५ । २३ ॥)

एरका, स्त्री, तृणविशेषः । तत्पर्य्यायः । गुन्द्रमूला २ शिम्बी ३ गुन्द्रा ४ शरी ५ । यथा भागवते १ । ३ । १८ ।
"चतुर्द्दशं नारसिंहं बिभ्रद् दैत्येन्द्रमूर्ज्जितम् ।
ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद् यथा" ॥)
अस्या गुणाः । हिमत्वम् । शुक्रवृद्धिकारित्वम् । चक्षुर्हितत्वम् । वातकोपनत्वम् । मूत्रकृच्छ्राश्मरीदाहपित्तशोणितनाशित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ (यथा वैद्यके,
"एरका शिशिरा वृष्या चक्षुष्या वातकोपिनी ।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीदाहपित्तशोणितनाशिनी" ॥
एषा यत्र व्यवह्रियते तद्यथा,—
"निर्व्वापणं स्याज्जलमेरका च" ।
इति चरके सूत्रस्थाने तृतीयेऽध्याये ॥ "एरका शोगला" । इति चरकस्य शिवदासीयटीका ॥)

एरङ्कः, पुं, (एरति सम्यक् भ्रमति यः । आ + ईर गतौ कम्पने + अङ्कच् ।) मत्स्यभेदः । रङ्का इति ख्यातः । अस्य गुणाः । मधुरत्वम् । स्निग्धत्वम् । विष्टम्भित्वम् । शीतलत्वम् । गुरुत्वञ्च । इति भावप्रकाशः ॥

एरण्डः पुं, (एरयति वायुम् । आ + ईर गतौ कम्पने च + बाहुलकात् अण्डच् ।) वृक्षविशेषः । भेरेण्डा इति भाषा । तत्पर्य्यायः । व्याघ्रपुच्छः २ गन्धर्व्वहस्तकः ३ उरुवूकः ४ रुवूकः ५ चित्रकः ६ चञ्चुः ७ पञ्चाङ्गुलः ८ मण्डः ९ वर्द्धमानः १० व्यडम्बकः ११ । इत्यमरः ॥ उरुवुकः १२ रुवुकः १३ रूवुकः १४ रुवकः १५ वुकः १६ अमण्डः १७ आमण्डः १८ व्यडम्बनः १९ । इति तट्टीकायां भरतः ॥ कान्तः २० तरुणः २१ शुक्लः २२ वातारिः २३ दीर्घपत्रकः २४ । इति राजनिर्घण्टः ॥ अस्य तैलस्य गुणाः । मधुरत्वम् । गुरुत्वम् । अग्निश्लेष्मवर्द्धनत्वम् । वातरक्तगुल्महृद्रोगजीर्णज्वरनाशित्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥ अपि च । क्रिमिदोषसकलाङ्गशूलकुष्ठनाशित्वम् । स्वादुत्वम् । रसायनोत्तमत्वम् । पित्तप्रकोपनत्वम् । अतिदीपनत्वम् । आमवातनाशित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ अस्य भेदत्वगुणोऽप्यस्ति ॥ श्वेतैरण्डगुणाः । कटुत्वम् । तिक्तत्वम् । उष्णत्वम् । कफार्त्तिज्वरवायुकासनाशित्वम् । रसाढ्यत्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ अस्य मूलगुणाः । शूलवायुकफनाशित्वम् । शुक्रकारित्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥
(शुक्लरक्तैरण्डयोः पर्य्यायगुणा यथा,—
"शुक्ल एरण्ड आमण्डश्चित्रो गन्धर्व्वहस्तकः ।
पञ्चाङ्गुलो वर्द्धमानो दीर्घदण्डोऽप्यदण्डकः ।
वातारिस्तरुणश्चापि रुवूकश्च निगद्यते ॥
रक्तोऽपरो रुवुकः स्याद्रुवूको रुवूकस्तथा ।
व्याघ्रपुच्छश्च वातारिश्चञ्चुरुत्तानपत्रकः ॥
एरण्डयुग्मं मधुरमुष्णं गुरु विनाशयेत् ।
शूलशोथकटीवस्तिशिरःपीडोदरज्वरान् ॥
ब्रध्नश्वासकफानाहकासकुष्ठाममारुतान् ।
एरण्डपत्रं वातघ्नं कफक्रिमिविनाशनम् ॥
मूत्रकृच्छ्रहरञ्चापि पित्तरक्तप्रकोपनम् ।
वाताग्र्यं प्रदलं गुल्मवस्तिशूलहरं परम् ॥
कफवातक्रिमीन् हन्ति वृद्धिं सप्तविधामपि ।
एरण्डफलमत्युष्णं गुल्मशूलानिलापहम् ॥
यकृत्प्लीहोदरार्शोघ्नं कटुकं दीपनं परम् ।
तद्वन्मज्जा च विड्भेदी वातश्लेष्मोदरापहः" ॥
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे प्रथमे भागे ॥
"सतिक्तोषणमैरण्डतैलं स्वादु सरं गुरु ।
ब्रध्नगुल्मानिलकफानुदरं विषमज्वरम् ॥
रुक्शोफौ च कटीगुह्यकुष्ठपृष्ठाश्रयाञ्जयेत् ।
तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं विस्रं रक्तैरण्डोद्भवन्त्विति" ॥
इति शार्ङ्गधरस्य पूर्व्वखण्डे चतुर्थेऽध्याये ॥
"एरण्डतैलं मधुरमुष्णं तीक्ष्णं दीपनं कटुकषायानुरसं सूक्ष्मं स्रोतोविशोधनं त्वच्यं वृष्यं मधुरविपाकं वयःस्थापनं योनिशुक्रविशोधनमारोग्यमेधाकान्तिस्मृतिबलकरं वातकफहरमधोभागदोषहरञ्च" ॥
इति सुश्रुते सूत्रस्थाने पञ्चचत्वारिंशत्तमेऽध्याये ॥)

एरण्डकः, पुं, (एरण्ड + स्वार्थे कन् ।) एरण्डवृक्षः । इति भरतो द्विरूपकोषश्च ॥ (एरण्डशब्देऽस्य विशेषो ज्ञेयः ॥)

एरण्डज, त्रि, (एरण्डात् एरण्डवृक्षात् जायते इति । एरण्ड + जन् + ड ।) एरण्डवृक्षजातम् । तत्तैलं स्नेहमध्ये श्रेष्ठविरेचकम् । यथा ।
"चूर्णमध्ये त्रिवृच्चूर्णं क्षीरे कारवेल्लकम् ।
स्नेहेष्वैरण्डजं तैलं फलेष्वेव हरीतकी" ॥
इति वाभटः ॥
("एरण्डजं घनञ्चापि स्वादुमेव मृदु स्मृतम् ।
हृद्वस्तिशङ्खकशूलशूलानाहविबन्धनुत् ॥
आनाहाष्ठीलवान्ताढ्यशोथोदावर्त्तशूलिनाम् ।
वातपित्तविकाराणां विदध्याच्च प्रशान्तये ।
तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं विस्रं रक्तैरण्डसमुद्भवम्" ॥
इति प्रथमस्थाने अष्टमेऽध्याये हारीतेनोक्तम् ॥)

एरण्डपत्रिका, स्त्री, (एरण्डस्य पत्रमिव पत्रमस्याः ।) दन्तीवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

एरण्डफला, स्त्री, (एरण्डस्य फलमिव फलमस्याः ।)

दन्तीवृक्षः । इति राजनिर्घण्टः ॥

(अस्याः पर्य्याया यथा,—
"लघुदन्ती विशल्या च स्यादुदुम्बरपर्ण्यपि ।
तथैरण्डफला शीघ्रा श्येनघण्टा घुणप्रिया ।
वाराहाङ्गी च कथिता निकुम्भश्च मकूलकः" ॥
इति भावप्रकाशस्य पूर्ब्बखण्डे प्रथमे भागे ॥)

एरण्डा, स्त्री, (आ + ईर् + बाहुलकात् अण्डच् + टाप् ।) पिप्पली । इति शब्दचन्द्रिका ॥

एर्व्वारु, पुं, (एरणमिति । आ + ईर् + सम्पदादित्वात् क्विप् । एरं ऋणोति वारयति वा । ऋ + बाहुलकात् उण् ।) कर्कटीभेदः । तत्पर्य्यायः । व्यालपत्रा २ लोमशा ३ स्थूला ४ तोयफला ५ हस्तिदन्तफला ६ कर्कटी ७ । अस्य गुणाः । पित्तहरत्वम् । सुशीतलत्वम् । मधुरत्वम् । मूत्रामयघ्नत्वम् । रुचिप्रदत्वम् । सन्तापमूर्च्छापहरत्वम् तृप्तिदाहत्वम् । अतिसेवितश्चेत् वातप्रकोपकारित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥

("एर्व्वारुकं स्वादु शीतं सक्षारं कफवातकृत् ।
नातिपित्तकरं रुच्यं दीपनं दाहनाशनम्" ॥
इति प्रथमस्थाने दशमेऽध्याये हारीतेनोक्तम् ॥
"त्रपुषैर्व्वारुकं स्वादु गुरु विष्टम्भि शीतलम् ।
एर्व्वारुकञ्च सम्पक्वं दाहतृष्णाक्लमार्त्तिनुत्" ॥
इति सूत्रस्थाने सप्तविंशेऽध्याये चरकेणोक्तम् ॥)

एलकः, त्रि, (एलति विग्रहादिस्थले आत्मानं क्षिपतीति इल् + ण्वुल् ।) मेषः । इति राजनिर्घण्टः ॥

एलङ्गः, पुं, (एरङ्ग + रस्य लः ।) मत्स्यभेदः । रायकडा इति भाषा । रायखाँड़ा एलाङ्गा इत्यपि ख्यातः । अस्य गुणाः । मधुरत्वम् । वृष्यत्वम् । सग्राहित्वम् । कफवातनाशित्वम् । मेधाग्निपुष्टिकारित्वम् । शीतलत्वम् । गुरुत्वम् । श्लेष्मप्रसादनत्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ (यथा वैद्यकचक्रपाणिदत्तद्रव्यगुणे मांसवर्गाधिकारे ॥
"एलङ्गः स्निग्धो मधुरो गुरुर्विष्टम्भिशीतलः" ॥)

एलवालु, क्ली, (एलतीति । इल प्रेरणे पचाद्यच् । टाप् । एलेव वल्ते । वल प्राणने । बाहुलकात् उण् । ङ्यापोरिति ह्रस्वः ।) एलवालुकम् । इति शब्दरत्नावली ॥ (यत्र व्यवह्रियते तद्यथा, रोध्रादिगणे ॥
"सैलवालु परिपेलवमोचाः" ॥
इति वाभटे सूत्रस्थाने पञ्चदशेऽध्याये ॥)

एलवालुक, क्ली, (एलवालु + स्वार्थे कन् ।) सुगन्धिद्रव्यविशेषः । आलुका इति ख्यातम् । तत्पर्य्यायः । ऐलेयम् २ सुगन्धि ३ हरिवालुकम् ४ वालुकम् ५ इत्यमरः ॥ हरिवालुकम् ६ । इति तट्टीका ॥ आलुकम् ७ एल्वालुकं ८ कपित्थत्वक् ९ गन्धत्वक् १० कुष्ठगन्धि ११ । अस्य गुणाः । अत्युग्रत्वम् । कषायत्वम् । कफवातमूर्च्छातिज्वरदाहनाशित्वम् । परमरुचिकारित्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ पक्वोलसदृशं कुष्ठगन्धि ॥ अस्य पर्य्यायगुणाः ॥
"एलवालुकमैलेयं सुगन्धि हरिवालुकम् ।
ऐलवालुकमेलालु कपित्थपत्रमीरितम् ॥
एल्वालु कटुकं पाके कषायं शीतलं लघु ।
हन्ति कण्डूव्रणच्छर्द्दितृट्कासारुचिहृद्रुजः ॥
बलासविषपित्तास्रकुष्ठमूत्रगदक्रिमीन्" ।
इति भावप्रकाशस्य पूर्ब्बखण्डे प्रथमे भागे ॥)

एलविलः, पुं, ऐलविलः । कुवेरः । इत्यमरटीका ॥

एला, स्त्री, (इल् + अच् + टाप् ।) फलवृक्षविशेषः । एलाचि इति भाषा । तत्पर्य्यायः । बहुलगन्धा २ ऐन्द्री ३ द्राविडी ४ कपोतपर्णी ५ बाला ६ बलवती ७ हिमा ८ चन्द्रिका ९ सागरगामिनी १० गन्धालीगर्भः ११ एलीका १२ कायस्था १३ । इति राजनिर्घण्टः ॥ सा द्विविधा सूक्ष्मा । गुजराटी एलाचि इति भाषा । स्थूला च । बड एलाचि इति भाषा । आद्यायाः पर्य्यायः । उपकुञ्चिका १ तुत्था २ कोरङ्गी ३ त्रिपुटा ४ त्रुटिः ५ । इत्यमरः ॥ वयस्था ६ तीक्ष्णगन्धा ७ सूक्ष्मैला ८ त्रिपुटी ९ । इति रत्नमाला ॥ द्वितीयायाः पर्य्यायः । पृथ्वीका २ चन्द्रबाला ३ निष्कुटिः ४ बहुला ५ । इत्यमरः ॥ स्थूला ६ मालेया ७ ताड़काफलम् ८ । इति रत्नमाला ॥ एलाद्वयगुणाः । शीतलत्वम् । तिक्तत्वम् । उष्णत्वम् । सुगन्धित्वम् । पित्तरोगकफनाशित्वम् । हृद्रोगकारित्वम् । मलार्त्तिवान्तिपुंस्त्वघ्नत्वम् । स्थविरस्य गुणाढ्यत्वञ्च । इति राजनिर्घण्टः ॥ अपि च । शूलकोष्ठबद्धतृष्णाच्छर्द्दिवायुनाशित्वम् । इति राजवल्लभः ॥ सूक्ष्मैलाविशेषगुणाः । कफश्वासकासार्शोमूत्रकृच्छ्रनाशित्वम् । इति राजनिर्घण्टः ॥
("एला स्थूला च बहुला पृथ्वीका त्रिपुटापि च" ।
इति भावप्रकाशस्य पूर्ब्बखण्डे प्रथमे भागे ॥)

एलापत्रः, पुं, (एलापत्रमिवाकारोऽस्त्यस्य । अर्श आदेरच् ।) नागभेदः । इति जटाधरः ॥
(यथा महाभारते आस्तीके पर्व्वणि १ । ३५ । ६ ।
"नागस्तथा पिञ्जरक एलापत्रोऽथ वामनः" ॥)

एलापर्णी, स्त्री, (एलाया इव पर्णमस्याः । "पाककर्णेति" । ४ । १ । ६४ । ङीष् ।) वृक्षविशेषः । काँटा आमरुली एलानी इति च भाषा । तत्पर्य्यायः । सुवहा २ रास्ना ३ युक्तरसा ४ । इत्यमरः ॥

एलीका, स्त्री, (आ + इल् + ईकन् + टाप् ।) सूक्ष्मैला । इति राजनिर्घण्टः ॥ (द्राविडीशब्देऽस्या गुणादयो ज्ञातव्याः ॥)

एव, व्य, (अयनमिति । इण् + "इणशीभ्यां वन्" । १ । ५२ । उणादि वन् ।) अवधारणम् । यथा । त्वमेव जानासि । तत्पर्य्यायः । एवम् २ तु ३ पुनः ४ वा ५ । इत्यमरः ॥ व ६ च ७ । इति सुभूतिः ॥ सादृश्यम् । इति भरतः । नियोगः । वाक्यपूरणम् । चारनियोगः । विनिग्रहः । इति मेदिनी ॥ (अनियोगः । यथा "अद्येव" इति मुग्धबोधव्याकरणम् । एवकारस्त्रिविधः । विशेष्यसङ्गतः विशेषणसङ्गतः क्रियासङ्गतश्चेति । तत्र विशेष्यसङ्गतस्य एवकारस्य अन्ययोगव्यवच्छेदोऽर्थः । पार्थ एव धनुर्द्धर इत्यादौ विशेषणे धनुर्द्धरे पार्थान्ययोगव्यवच्छेदबोधात् । धनुर्द्धरपदस्य उत्कृष्टधनुर्द्धरे लाक्षणिकत्वात् तथैव तात्पर्य्यात् । पार्थान्ययोगस्तादात्म्यम् । विशेषणसङ्गतस्य एवकारस्य अयोगव्यवच्छेदोऽर्थः । शङ्खः पाण्डुर एव इत्यादौ विशेष्ये शङ्खे पाण्डुरत्वायोगव्यवच्छेदबोधात् । क्रियासङ्गतस्य एवकारस्य चात्यन्तायोगव्यवच्छेदोऽर्थः । सम्भवाभिप्रायके नीलं सरोजं भवत्येव इत्यादौ अन्वयितावच्छेदकसरोजत्वसामानाधिकरण्येन सरोजनीलभवनकर्त्तृत्वात्यन्तायोगव्यवच्छेदबोधादिति सम्प्रदायः ॥) गमनकर्त्तरि त्रि । इति सिद्धान्तकौमुदी (यथा ऋग्वेदे ६ । ५१ । २ । "ऋजुमर्त्तेषु वृजिना च पश्यन्नभिचष्टे सूरो अर्य एवान्" ॥ अश्वे पुं, यथा, ऋग्वेदे । १ । १५८ । ३ । "उप वामव शरणम् गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः" ॥ "एवैरश्वैः" इति भाष्यम् । गमने क्ली । यथा, ऋग्वेदे १ । १२९ । ३ । "एवेन सद्यः पर्य्येति पार्थिवम्" । "एवेन गमनेन" । इति । भाष्यम् ॥)

एव, व्य, साम्यम् । सादृश्यम् । यथा । अग्निरेव विप्रः । अग्निरिवेत्यर्थः । तत्पर्य्यायः । वत् २ वा ३ यथा ४ तथा ५ इव ६ । वत्स्थाने व इति केचित् पठन्ति । अथ प्रकारः । (यथा, कुमारे । ६ । ८४ ।
"एववादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी" ॥)
तत्पर्य्यायः । इत्थम् २ । अवधारणम् । इत्यमरः ॥ यथा । एवमेतत् । अस्य पर्य्यायः एवशब्दे लिखितः । अङ्गीकारः । अर्थप्रश्नः । परकृतिः । पृच्छा । इति मेदिनी ॥

एष ऋ ङ गतौ । इति कविकल्पद्रुमः ॥ भ्वादि-आत्म-सक-सेट् ।) ऋ मा भवान् एषिषत् । ङ एषते । इति दुर्गादासः ।
(यथा, भागवते ३ । १४ । ४५ ।
"स वै वत भ्रष्टमतिस्तवैषते
यः कर्म्मणां पारमपारकर्म्मणाम्" ॥)

एष, पुं, पुरोवर्त्तिपुरुषः । एतद्शब्दस्य पुंलिङ्गे प्रथमैकवचने रूपमिदम् ॥

एषण, पुं, (इष् + ल्यु ।) लौहमयबाणः । इति हलायुधः ॥ (यथा, भागवते ७ । ९ । ३९ ।
"कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्त्तं
तस्मिन् कथं तव गतिं विमृशामि दीनः" ॥)

एषणिका, स्त्री, (इष्यतेऽनया । इष् गतौ + ल्युट् + स्वार्थे कन् ततो टाप् इत्वञ्च ।) स्वर्णकारादीनां तुला । निक्ति इति भाषा । तत्पर्य्यायः । नाराची २ । इत्यमरः ॥

एषणी, स्त्री, (इष्यते अनया, इष् + ल्युट् + ङीप् ।) व्रणमार्गानुसारिणी । मेलकार इति भाषा । तुलाभेदः । इति मेदिनी ॥ निक्ति इति भाषा ॥

एषा, स्त्री, (इषु श वाञ्छे + टाप् ।) इच्छा । इति जटाधरः ॥ एतद्शब्दस्य स्त्रीलिङ्गेऽपि रूपमिदम् ॥

---

# ऐ

ऐ ऐकारः । स तु द्वादशस्वरवर्णः । अस्योच्चारणस्थानं तालु कण्ठश्च । ("एदैतोः कण्ठतालु" इ-

युक्तः। तथाच शिक्षायाम्। "ए ऐ तु कण्ठतालव्यावोऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ"॥) स च ह्रस्वो न भवति। (द्विमात्रत्वात् दीर्घस्त्रिमात्रत्वात् प्लुतश्च भवति। उदात्तानुदात्तस्वरितभेदैस्त्रिविधोऽपि पुन प्रत्येकमनुनासिकाननुनासिकभेदाभ्यां षड्विध एव॥)

"ऐकारं परमं दिव्यं महाकुण्डलिनी स्वयम्।
कोटिचन्द्रप्रतीकाशं पञ्चप्राणमयं सदा॥
ब्रह्मविष्णुमयं वर्णं तथा रुद्रमयं प्रिये।
सदाशिवमयं वर्णं विन्दुत्रयसमन्वितम्"॥

इति कामधेनुतन्त्रम्॥ (वङ्गीयभाषायाम्) तस्य लेखनप्रकारो यथा,—

"एकाररूपमध्ये तु किञ्चिद्दक्षे तदोर्द्धतः।
चन्द्रेन्द्रभानवस्तासु मात्रा शक्तिः क्रमात् स्मृता॥
त्रिधा शक्तिमयी मूर्त्ता दुर्गा वाणी सरस्वती"।

इति वर्णोद्धारतन्त्रम्॥ ॰॥ तन्नामानि यथा,—

"ऐर्लज्जा भौतिकः कान्ता वायवी मोहिनी विभुः।
दक्षा दामोदरप्रज्ञोऽधरो विकृतमुख्यपि॥
क्षमात्मको जगद्योनिः परः परनिबोधकृत्।
ज्ञानामृता कपर्द्दिश्रीः पीठेशोऽग्निः समातृकः॥
त्रिपुरा लोहिता राज्ञी वाग्भवो भौतिकासनः।
महेश्वरो द्वादशी च विमलश्च सरस्वती॥
कामकोटो वामजानुरंशुमान् विजयो जटा"।

इति तन्त्रशास्त्रम्॥ दन्तान्त। योनि। इति वीजवर्णाभिधानम्॥ (अनुबन्धविशेष। यथाह कविकल्पद्रुमः। ("ऐर्यजादि स्यादोर्निष्ठातन ईरनिट्"। एतेन यजादिगणीयत्वात् "ऐ वसौ निवासे इत्यस्य किटिप्रभृतिषु सम्प्रसारणे कृते उवास इत्यादयो भवेयु"॥ मातृकान्यासे अधरे न्यस्ततया तदाख्ययाप्यभिधानम्। मातृकान्यासमन्त्रो यथा। "ए नम ओष्ठे ऐं नमोऽधरे"॥ इति॥)

ऐ, व्य, (एतीति। आ + इण् + विच्।) आह्वानम्। स्मरणम्। आमन्त्रणम्। इति मेदिनी॥

ऐ पु, (एति प्राप्नोति सर्व्वम्। आङ् + इण् + विच्।) महेश्वर। इति एकाक्षरकोष॥

ऐकागारिक, त्रि, (एकमसहायमगारं प्रयोजनमस्य। "ऐकागारिकट् चौरे" ५।१।११३ इति इकट् वृद्धिश्च निपातनात्।) चौर। इत्यमर। एकागारवासी॥

ऐकाहिक, त्रि, (एकाहे भवम्। एकाह + ठक्।) एकाहनिष्पन्नम्। एकदिनान्तरभवम्। इति वैद्यकम्॥ (वैद्यकगोपालकृष्णकविभूषणकृतकषायसंग्रहे दाव्यादिपाचने यथा। "भूतोत्थं विषम त्रिदोषजजनितञ्चैकाहिकं द्व्याहिकम्॥

"काकजङ्घा बला श्यामा ब्रह्मदण्डी कृताञ्जलि।
पृश्निपर्णी त्वपामार्गस्तथा भृङ्गराजोऽष्टम॥
एषामन्यतमं मूलं पुष्येणोद्धृत्य यत्नत।
रक्तसूत्रेण संवेष्ट्य बद्धमैकाहिकं जयेत्"॥

इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहे ज्वराधिकारे॥) एकाहभवम्। यथा,—

"ऐकाहिकं द्वितीयञ्च तृतीयकचतुर्थकम्"।
इत्यादि माहेश्वरकवचम्॥

ऐकाहिकज्वर, पुं, (ऐकाहिक एकाहभवो ज्वरः।) एकदिनान्तरागतज्वर। तस्यौषधं यथा,—

"पीतं वृश्चिकमूलन्तु पर्य्युषितजलेन वै।
सार्द्धं विनाशयेद्दाहं ज्वरञ्च परमेश्वर।॥
शिखायाञ्चैव तद्बद्धं भवेदैकाहिकादिनुत्।
एतत् सकाञ्जिकं पीतं रक्तकुष्ठज्वरादिनुत्॥
वास्योदकेन पीतं तत् स्त्रहविषहरं भवेत्"।

इति गारुडे १९१ अध्यायः॥

("ऐकाहिको द्व्याहिकश्च त्र्याहिकश्च तथापर"।
"मुस्तामृतामलकयश्च नागरं कण्टकारिका।
कषाचूर्णान्वित क्वाथस्तथा मधुसमन्वितः॥
ऐकाहिकं वा वेलाद्यं ज्वरजातं व्यपोहति।
वानरेन्द्रमुखं दिव्यं तरुणादित्यतेजसम्॥
ज्वरमैकाहिकं घोरं तत्क्षणादेव नश्यति।
वानराकृतिमालिख्य खटिकाभि पुनः पृथक्॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैरर्घयेद्भिषजां वर"।

मन्त्रो यथा,

ओँ ह्रां क्रीं श्रीं सुग्रीवाय महाबलपराक्रमाय सूर्य्यपुत्राय अमिततेजसे ऐकाहिक-द्व्याहिक-त्र्याहिक-चातुर्थिक-महाज्वर-भूतज्वर-भयज्वर-शोकज्वर-क्रोधज्वर-वेलाज्वर-प्रभृतिज्वराणां बन्ध बन्ध ह्रां क्रीं क्रू फट् स्वाहा। इति हारीते चिकित्सास्थाने। २ अध्याये॥)

ऐक्य, क्ली, (एक + भावे ष्यञ्।) एकस्य भावः। एकता। एकत्वम्। एकीभाव। यथा। शारदायाम्।

"गुरोर्लब्ध्वा पुनर्व्विद्यामष्टकृत्वो जपेत् सुधीः।
गुरुविद्यादेवतानामैक्यं सम्भावयन् धिया॥
प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ गुरुं तं देवतात्मकम्"।

इति दीक्षातत्त्वम्॥

ऐक्षव, त्रि, (इक्षोर्विकारः। इक्षु + अण्।) इक्षुविकार। इक्षुसम्बन्धिगुडादि। इति स्मृतिः॥ (अस्य गुणादय इक्षुशब्दे ज्ञातव्या॥)

ऐक्षव, क्ली, (इक्षोर्भवम्। इक्षु + अण्।) इक्षुभवगुडादि। यथा,—

"कदली लवणी धात्री फलान्यगुडमैक्षवम्।
अतैलपक्वं मुनयो हविष्यान्नं विदुर्बुधा"॥

इति तिथ्यादितत्त्वम्॥ इक्षुगुडादिगुणा इक्षुशब्दे ज्ञातव्या॥)

ऐङ्गुद, क्ली, (इङ्गुद्या इदम्। "प्लक्षादिभ्योऽण्" ४।३।१६४। विधानसामर्थ्यान्नाणो लुक्।) इङ्गुदीवृक्षस्य फलम्। इत्यमर॥ ("स्निग्धोष्णं तिक्तमधुरं वातश्लेष्मघ्नमैङ्गुदम्"॥ इति सूत्रस्थाने। ४६ अ। सुश्रुतेनोक्तम्॥)

ऐडुक, क्ली, (एडुक एव। स्वार्थे अण्।) एडूकम्। इति भरतो द्विरूपकोषश्च॥

ऐण, त्रि, (एणस्य इदम्। एण + अण्।) एणस्य चर्म्मादि। इत्यमरः॥

ऐणिक, त्रि, (एणं मृगं हन्तीति। एण + ठक्।) एणहन्ता। इति व्याकरणम्॥

ऐणेय, त्रि, (एण्या इदम्। एणी + ढञ्।) एण्याश्चर्म्मादि। इत्यमरः॥ स्त्रीणां रतिबन्धविशेषः इति हेमचन्द्र॥

ऐतिह्य, क्ली, (इतिह उपदेशपारम्पर्य्यम्। तदेव इतिह "अनन्तावसथेतिहभेषजाञ् ञ्य"। ५।४।२३। इति स्वार्थे ञ्य।) पारम्पर्य्योपदेश तत्पर्य्याय। इतिह। इत्यमर॥ (यथा रामायणे।५।८१।२३।

"ऐतिह्यमनुमानञ्च प्रत्यक्षमपि चागमम्।
ये हि सम्यक् परीक्षन्ते कुतस्तेषामबुद्धिता"॥
"ऐतिह्यं नाम आप्तोपदेशो वेदादि"।

इति विमानस्थाने। ८ अ। चरकेणोक्तम्॥)

ऐन्दव, क्ली, (इन्दुर्देवता यस्य। इन्दु + अण्।) मृगशिरोनक्षत्रम्। इति ज्योतिषम्॥ यथा। मात्स्ये

"अश्विनी रेवती मूलमुत्तरत्रयमैन्दवम्।
स्वाती हस्तानुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते"॥

ऐन्दवं मृगशिर। इति मठप्रतिष्ठातत्त्वम्॥ (इन्दोश्चन्द्रस्य इदम्। चन्द्रसम्बन्धिनि, त्रि। यथा, मनुः ११।१२५।

"सङ्करापात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम्।
मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्याद्यावकैस्त्र्यहम्"॥)

ऐन्दवी, स्त्री, (ऐन्दव + ङीप्।) सोमराजी। इति वैद्यकम्॥

ऐन्द्र, क्ली, (इन्द्रो देवता यस्य। इन्द्र + अण्।) ज्येष्ठानक्षत्रम्। इति जटाधर॥ मूलविशेषः। वन आदा इति भाषा। तत्पर्य्याय। वनार्द्रका २ वनजा ३ अरण्यजार्द्रका ४। अस्य गुणा। कटुत्वम्। अम्लत्वम्। रुचिबलाग्निकारित्वञ्च। इति राजनिर्घण्ट॥ (इन्द्रस्य इदम्।) इन्द्रसम्बन्धिनि त्रि। (यथा मनु ५।९३।

"न राज्ञामघदोषोऽस्ति व्रतिनां न च सत्रिणाम्।
ऐन्द्रं स्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा"॥
"ऐन्द्रं स्थानं राज्याभिषेकाख्यं आधिपत्यकारणम्"

इति तट्टीकायां कुल्लूकभट्टः॥ तथा रघुः २।५०।

"महीतलस्पर्शनमात्रभिन्न-
मृद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः"॥
"ऐन्द्रमम्बु सुपात्रस्थमविपन्नं सदा पिबेत्"॥

इति वाभटे सूत्रे। ५ अ॥) (इन्द्रस्यापत्यं पुमान्।) वालिवानरे (अर्ज्जुने जयन्ते च पु॥ जलविशेष॥)

ऐन्द्रजालिक, पुं, (इन्द्रजालेन दीव्यतीति। इन्द्रजाल + ठक्।) इन्द्रजालकारक। तत्पर्य्याय। प्रतीहारक २ मायाकारक ३ कौसृतिकः ४ मायावी ५ व्यंसक ६ मायी ७ मायिकः ८। इति जटाधर॥

ऐन्द्रलुप्तिकः, त्रि, केशघ्नरोगविशिष्टः। टेको इति भाषा। तत्पर्य्यायः। खल्लीट २ खलतिः ३। इति भूरिप्रयोगः॥

ऐन्द्रिः, पुं, (इन्द्रस्यापत्यं पुमान्। इन्द्र + इञ्।) जयन्तनामा इन्द्रपुत्र। काक। इति मेदिनी॥ ("ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः"। इति रघुवंशे। १२।२२॥) वालिनामवानराजः। इति त्रिकाण्डशेषः॥ अर्ज्जुनः। इति हेमचन्द्रः॥

ऐन्द्रियक, त्रि, (इन्द्रियेणानुभूयते। इन्द्रिय + वुञ्।) प्रत्यक्षम्। इन्द्रियग्राह्यम्। इत्यमरः॥ (व्याधिविशेषः। यथा,—

"मिथ्याभियोगहीनेभ्यो यो व्याधिरुपजायते।
शब्दादीनां स विज्ञेयो व्याधिरैन्द्रियको बुधैः॥
वेदनानामशान्तानामित्येते हेतवः स्मृताः।
सुखहेतुर्मतस्त्वेकः समयोगः सुदुर्लभः॥
नेन्द्रियाणि न चैवार्थाः सुखदुःखस्य हेतवः।
हेतुस्तु सुखदुःखस्य योगो दृष्टश्चतुर्व्विधः॥
सन्तीन्द्रियाणि सन्त्यर्था योगो न च न चास्ति रुक्।
न सुखं कारणं तस्मात् योग एव चतुर्व्विधः॥
नात्मेन्द्रियमनोबुद्धिगोचरं कर्म्म वा विना।
सुखं दुःखं यथा यच्च बोद्धव्यं तत्तथोच्यते॥
स्पर्शनेन्द्रियसंस्पर्शः स्पर्शो मानस एव च।
द्विविधः सुखदुःखानां वेदनानां प्रवर्त्तकः॥
इच्छा द्वेषात्मिका तृष्णा सुखदुःखात् प्रवर्त्तते॥
तृष्णा च सुखदुःखानां कारणं पुनरुच्यते।
उपादत्ते हि सा भावान् वेदनाश्रयसंज्ञकान्॥
स्पृश्यते नानुपादाने न स्पृष्टो वेत्ति वेदनाः।
वेदनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः॥
केशलोमनखाग्रान्नमलद्रवगुणैर्विना"।
इति चरके शारीरे १ अः॥)

ऐन्द्री, स्त्री, (इन्द्रस्य शक्रस्य इयम्। इन्द्र + "तस्येदम्" । ४।३।१२०। इत्यण्। टिड्ढेति। ४।१।१५। ङीप्।) शची। (यथा, मार्कण्डेये ८८।२०।
"वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता"।
इन्द्रस्य योगैश्वर्य्यशालिनो महादेवस्य पत्नी।) दुर्गा। इति शब्दरत्नावली॥ अलक्ष्मी। इति त्रिकाण्डशेषः॥ इन्द्रवारुणी। इति रत्नमाला॥ राखाल शसा इति भाषा। पूर्व्वा दिक्। इत्यमरटीकायां रमानाथः॥ एला। इति राजनिर्घण्टः॥ एलाचि इति भाषा।
"यष्ट्याह्वमैन्द्री नलिनानि दूर्व्वा"।
इति सूत्रे २ अध्याये। चरकेणोक्तम्॥)

ऐभी, स्त्री, (इभ इत्याख्यास्त्यस्याः। इभ + "प्रज्ञादिभ्यश्च"। ५।४।३८। इति अण् + ङीप्।) हस्तिघोषा लता। इति राजनिर्घण्टः॥

ऐरावणः, पुं, (इरया जलेन वणति शब्दायते इति। इरा + वण + पचाद्यच्। तत इरावण एव स्वार्थे प्रज्ञाद्यण् ५।४।३८। यद्वा इरा सुरा वनमुदकं यस्मिन्। पूर्व्वपदादिति ८।४।३। णत्वम्। तत्र भवः। इरावण + अण्।) ऐरावतहस्ती इत्यमरः॥ यथा, महाभारते १।१८।४१।
"श्वेतैर्दन्तैश्चतुर्भिस्तु महाकायस्ततः परम्।
ऐरावणो महानागोऽभवद्वज्रभृता हृतः"॥)

ऐरावत, स्त्री, (इरा जलानि सन्त्यस्मिन्। इरा + मतुप्। इरावान् मेघः। तत्र भवः। इत्यण्। जलवति मेघे सूर्य्यकरपतनादस्योत्पत्तेस्तथात्वम्॥) इन्द्रस्य ऋजुदीर्घधनुः।
इति मेदिनी॥ रामधनुक् इति भाषा॥

ऐरावतः, पुं, (इरा जलानि विद्यतेऽस्मिन्। मतुप्। इरावान् समुद्रः। तत्र भवः इति। इरावत् + अण्। समुद्रमथनोत्थितत्वादस्य तथात्वम्। यद्वा इरावत्या विद्युतः अयं तस्येदमित्यण् ४।३।१२०।) इन्द्रहस्ती। स तु शुक्लवर्णः चतुर्द्दन्तः समुद्रमथनोत्थितः पूर्व्वदिग्गजश्च। तत्पर्य्यायः। अभ्रमातङ्गः २ ऐरावणः ३ अभ्रमुवल्लभः ४। इत्यमरः॥ श्वेतहस्ती ५ चतुर्द्दन्तः ६ मल्लनागः ७ इन्द्रकुञ्जरः ८ हस्तिमल्लः ९ सदादानः १०। इति जटाधरः॥ सुदामा ११ श्वेतकुञ्जरः १२ गजाग्रणीः १३ नागमल्लः १४। इति शब्दरत्नावली॥ (यथा, कुमारे। ३।२२॥ ("ऐरावतास्फालनकर्कशेन"। "प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव"।
इति रघौ। १। ३६॥)
नागरङ्गः। लकुचवृक्षः। नागभेदः। इति मेदिनी॥ ("ऐरावतं दन्तशठमम्लं शोणितपित्तकृत्"। इति सूत्रे। ४६ अः। सुश्रुतेनोक्तम्॥) (इरावत्या नद्याः सन्निकृष्टो देशः। इरावती + अण्। यथा, महाभारते २।१६२।३३।
"बभूव परमाश्वानामैरावतपथे यथा"॥)

ऐरावती, स्त्री, (इरा जलानि विद्यन्तेऽस्य इरावान् मेघस्तस्य इयं। इरावत् + "तस्येदम्"। ४।३।१२०। इति अण् + ङीप्।) विद्युत्। विद्युद्विशेषः इति मेदिनी॥ ऐरावतभार्य्या। इत्यमरटीकायां स्वामी॥ वटपत्रीवृक्षः। इति राजनिर्घण्टः॥ पञ्जाबदेशीयनदीविशेषः। अधुना रावी इति ख्याता॥ (उत्तरमार्गे नक्षत्रविशेषाणां संज्ञाभेदः यथा।
"पुष्याश्लेषा तथादित्या वीथी चैरावती स्मृता"॥)

ऐरिण, क्ली, (इरिणे उषरभूमौ भवम्। इरिण + अण्।) पांशुलवणम्। इति राजनिर्घण्टः॥ (पांशुलवणेऽस्य विवरणं ज्ञेयम्॥)

ऐरेय, क्ली, (इरा + ढक्।) मद्यम्। इरा एव ऐरेयं स्वार्थे ण्यप्रत्यये वृद्धिः॥ (यत्रास्य व्यवहारस्तद्यथा,—
"ऋतेऽप्यूर्द्धमधस्त्वेवमैरेयाम्लसुरासवैः"।
इति वैद्यकचक्रपाणिसंग्रहे विद्रध्यधिकारे॥)

ऐल, पुं, (इलाया अपत्यं पुमान्। इला + अण्।) इलापुत्त्रः। स तु चन्द्रवंशीयो राजा पुरूरवाः। इति हेमचन्द्रः॥ (यथा महाभारते। १।७५।१७।
"पुरूरवास्ततो विद्वानिलायां समपद्यत।
सा वै तस्याभवन्माता पिता चेति न श्रुतम्"॥
"षट् सुता जज्ञिरेऽथैलादायुर्द्धीमानमावसुः"॥ २४॥

ऐलवालुक, क्ली, (एलवालुकमेव। स्वार्थे अण्।) एलवालुकम्। इति शब्दरत्नावली॥

ऐलविल, पुं, (इलविलाया अपत्यं पुमान्। इलविल + अण्।) इलविलापुत्त्रः। स तु कुवेरः। इत्यमरः॥ तस्य रूपान्तराणि। ऐडविड। ऐडविल। एलविल॥

ऐलेय, क्ली, एलवालुकनामगन्धद्रव्यम्। इत्यमरः॥ (एलवालुकशब्देऽस्य विशेषो ज्ञातव्यः॥) (पुं, इलाया अपत्यम्। इला + ढक्। मङ्गलः। भौमः। पुरूरवाः॥)

ऐशानी, स्त्री, (ईशानस्य महादेवस्य इयम्। ईशान + "तस्येदम्"। ४।३।१२०। इति अण् + ङीप्।) ईशानकोणः। इति जटाधरः॥ ("ऐशानीक्रमतो रेखा" इति स्मृतिः। "ऐशान्या मरणं ध्रुवं निगदितं दिग्लक्षणं खञ्जने"। इति तिथितत्त्वम्॥)

ऐशिक, त्रि, (ईशस्य अयम्। ईश + ईकण्।) ईश्वरसम्बन्धी। ईश्वरेर इति भाषा॥

ऐशी }
ऐश्वरी } त्रि, (ईशस्य ईश्वरस्य च इयम्। ईश + ईश्वर + अण् + ङीप्।) ईश्वरसम्बन्धी। ईश्वरेर इति भाषा॥

ऐश्वर्य्य, क्ली, (ईश्वरस्य भावः। ईश्वर + ष्यञ्।) ईश्वरधर्म्मः। तत्पर्य्यायः। विभूतिः २ भूतिः ३। स चाष्टविधो यथा। अणिमा १ लघिमा २ प्राप्तिः ३ प्राकाम्यम् ४ महिमा ५ ईशित्वम् ६ वशित्वम् ७ कामावशायिता ८। इत्यमरः॥
("ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य वीर्य्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना"॥
इति पुराणम्। "ऐश्वर्य्यमपि बुद्धिधर्म्मः यतोऽणिमादिप्रादुर्भावः"। इति वाचस्पतिमिश्रः। सम्पत्तिः। प्रभुत्वम्। नियन्तृत्वम्।
यथा रघुवंशे। १२।६९॥
"तस्मै निशाचरैश्वर्य्यं प्रतिशुश्राव राघवः"॥)
इति॥)

ऐश्वर्य्यकर्म्मा, [न्] पुं, (ऐश्वर्य्यं कर्म्म यस्य।) ईश्वरसम्बन्धिकर्म्मयुक्तः। तत्पर्य्यायः। इरज्यति १ पत्यते २ क्षयति ३ राजति ४। इति चत्वारः ऐश्वर्य्यकर्म्माणः। इति वेदनिघण्टौ २ अध्यायः॥

ऐषम, [स्] व्य, (अस्मिन् वत्सरे इति। "सद्यःपरुत्परार्य्यैषमः" ५।३।२२। इति इदम इश् समसन्प्रत्ययश्च संवत्सरे निपात्यते।) वर्त्तमानवत्सरः। इत्यमरः॥

ऐषमस्तन, त्रि, (ऐषमोभवः। "ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्"। ४।२।१०५। इति शैषिकेष्वर्थेषु पक्षे ट्युल् तुट् च।) ऐषमसम्बन्धी। एइ वत्सरेर इति भाषा। इति पाणिनिः॥ ७।२।१०५॥

ऐषमस्त्य, त्रि, (ऐषमोभवः। ऐषमस् + ऐषमोह्यसिति पक्षे त्यप्।) ऐषमस्तन इति पाणिनिः॥

ऐहिक, त्रि, (इह + ठञ्।) इह भवम्। इहकालेर इति भाषा। इति व्याकरणम्॥ (यथा भागवते ५।१४।३२। "क्वचिद्द्रुमवदैहिकार्थेषु रंस्यन् यथा वानरः सुतदारवत्सलो व्यवायक्षणः"॥)

---

# ओ

ओ ओकारः। स तु त्रयोदशस्वरवर्णः। अस्योच्चारणस्थानं ओष्ठः कण्ठश्च। ("ओदौतोः कण्ठोष्ठम्" इत्युक्तेः। तथा च शिक्षायामुक्तम्।
"ए ऐ तु कण्ठतालव्यावोऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ"॥) स तु ह्रस्वो न भवति। दीर्घः प्लुतश्च भवति। (प्रत्येकं उदात्तानुदात्तस्वरितभेदैस्त्रिविधोऽपि अनुनासिकाननुनासिकभेदाभ्यां षड्विधः। एतेन द्वादशविध एव निर्णीतः।)

"ओकारं चञ्चलापाङ्गि। पञ्चदेवमयं सदा।
रक्तविद्युल्लताकारं त्रिगुणात्मानमीश्वरम् ॥
पञ्चप्राणमयं वर्णं नमामि देवमातरम्।
एतद्वर्णं महेशानि स्वयं परमकुण्डली" ॥
इति कामधेनुतन्त्रम् ॥ (वङ्गीयभाषायां) तस्य लेखनप्रकारो यथा,—
"वामतः कुण्डली भूत्वा दक्षान्मध्ये तु कुञ्चिता।
किञ्चिद्दक्षगता या तु कुञ्चिता वामतस्त्वध ॥
ब्रह्मेशविष्णवस्तासु मात्रा तु ब्रह्मरूपिणी।
शक्तिश्च परमा सैव ध्यानमस्य प्रवक्ष्यते" ॥
इति वर्णोद्धारतन्त्रम् ॥ * ॥ तस्य नामानि यथा,—
"ओकारः सत्यपीयूषौ पश्चिमास्यः श्रुतिः स्थिरा।
सद्योजातो वासुदेवो गायत्री दीर्घजङ्घकः।
आप्यायनी चोर्द्धदन्तो लक्ष्मीर्वाणी मुखी द्विजः ॥
उद्देश्यदर्शकस्तीव्रः कैलासो वसुधाक्षरः।
प्रणवांशो ब्रह्मसूत्रमनेशः सर्व्वमङ्गला ॥
त्रयोदशी दीर्घनासा रतिनाथो दिगम्बरा।
त्रैलोक्यविजया प्रज्ञा प्रीतिवीजादिकर्षिणी" ॥
इति तन्त्रशास्त्रम् ॥ (अनुबन्धविशेषः। यथाह कविकल्पद्रुमे। "एर्यजादि स्यादोनिष्ठातन औरनिट्" ॥ तेन ओ दी क्षये इत्यस्मात् क्तायां निष्ठायां दीनं दीनवत् इति स्यात् ॥ मातृकान्यासे ऊर्द्धदन्तपङ्क्तौ न्यस्यतया तदाख्ययाप्यभिधानम्। मातृकान्यासमन्त्रो यथा,—
"ॐ नम ऊर्द्धदन्तपङ्क्तौ औं नमोऽधोदन्तपङ्क्तौ" ॥)
ओ, व्य, सम्बोधनम्। आह्वानम्। स्मरणम्। अनुकम्पा। इति मेदिनी ॥
ओँ, व्य, ओम्। प्रणवः। इति वेदागमौ ॥
ओ, पु, ब्रह्मा। इत्येकाक्षरकोषः ॥
ओक, क्ली, (उचेरिगुपधलक्षणे के गुणः कुत्वञ्च "ओक उच के"। ७। ३। ६४। इति निपात्यते।) गृहम्। आश्रयः। इत्यमरटीकायां भरतादयः ॥ (पुं। पक्षी। शूद्रः ॥)
ओकः, [स्] क्ली, (उच्यते समवैति अस्मिन्। उच + असुन्। गुणः। न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वम् ॥) आश्रयः। गृहम्। इत्यमरः ॥ ("जलौका अथ मस्तके"। इति अमरकोषः। तथा विष्णुपुराणम् १।६।३७।
"सप्तर्षीणान्तु यत् स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम्" ॥)
ओकणः, पुं, केशकीटः। इति शब्दरत्नावली ॥ उकुण् इति भाषा ॥
ओकणि, पु, यूकः। इति शब्दरत्नावली ॥ उकुण् इति भाषा ॥
ओकुल, पु, (उच् + उलच्। निपातनात् सिद्धम्।) गोधूमस्ततमापक्कः। अस्य गुणाः। गुरुत्वम्। रुच्यत्वम्। मधुरत्वम्। बलकारित्वम्। रक्तवातापहत्वम्। स्निग्धत्वम्। हृद्यत्वम्। मदविवर्द्धनत्वञ्च। इति राजनिर्घण्टः ॥
ओकोदनी, स्त्री, (ओकः मस्तकरूपाश्रयस्थानमदनं भक्ष्यं यस्याः।) यूका। इति शब्दरत्नावली ॥
ओक्कणी, स्त्री, (ओच् + क्वन् + अच् + ङीप्।) ओकणः। इति शब्दरत्नावली ॥ उकुन् इति भाषा ॥
ओख, ऋ, शोषणे। भूषणे। सामर्थ्ये। निवारणे। इति कविकल्पद्रुमः ॥ (भ्वादि-अक-सक च पर-सेट्।) ऋ मा भवान् ओचिखत्। अत्र द्वित्वात् प्राक् प्राप्तो ह्रस्व ऋदित्त्वान्न स्यात्। शोषः स्नेहरहितीभावः। ओखति पङ्क आतपात्। अलमर्थो भूषणं सामर्थ्यं वारणञ्च। इति दुर्गादासः ॥
ओघः, पु, (उच् समवाये + घञ्। पृषोदरादित्वात् साधुः।) द्रुतनृत्यगीतवाद्यम्। समूहः। इत्यमरः ॥ जलवेगः। (यथा कुमारे ४। ४४।
"रविपीतजला तमात्यये पुनरोघेन हि युज्यते नदी" ॥) परम्परा। उपदेशः। इति मेदिनी ॥
ओङ्कारः, पु, (ओम् + कारप्रत्ययः।) प्रणवः। इत्यमरः ॥ (यथाह स्मृतिः।
"ओङ्कारः पूर्व्वमुच्चार्य्यस्ततो वेदमधीयते"।
"ओङ्कारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्य्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ"।
इति व्याकरणटीकायां दुर्गादासः।
"प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति" ॥
इति मनुः। २। ७५ ॥ अथाह आपस्तम्बः,
"ओङ्कारः स्वर्गद्वारं तद्ब्रह्म अध्येष्यमाण एतदपि प्रतिपद्येत विकथां चान्यां कृत्वा एवं लौकिक्या वाचा व्यावर्त्तते"। लौकिक्या वाचा व्यावर्त्तते तया मिश्रितं न भवतीत्यर्थः ।)
ओङ्कारा, स्त्री बुद्धशक्तिविशेषः। इति त्रिकाण्डशेषः ॥
ओज ऌ, बले। तेजसि। इति कविकल्पद्रुमः ॥ (अदन्तचुरा-पर-अक-सेट्।) मा भवान् ओजिजत्। इति दुर्गादासः ॥
ओजः, [स्] क्ली, (उब्जत्यनेन। उब्ज आर्जवे उब्जेर्बले "बलोपश्च" ४।१९१। उणादिः असुन्। बलोपश्च। गुणः।) दीप्तिः। अवष्टम्भः। प्रकाशः। बलम्। इति मेदिनी ॥ (यथा रघौ २। ५४।
"तदोजसा तु प्रहृतं त्वयास्याम्"। यथा च मानवे १। १९।
"तेषामिदन्तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम्" ॥)
प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तमनवमैकादशराशयः। इति ज्योतिषम् ॥ गौड़ी रीतिः काव्यगुणः। तस्य लक्षणम्। बहुसमाससंयुक्तवर्णपदाडम्बरः। यथा,
"ओजः प्रसादमाधुर्य्यगुणत्रितयभेदतः।
गौडवैदर्भपाञ्चालीरीतयः परिकीर्त्तिताः ॥
ओजः समासभूयस्त्वं मांसलं पदडम्बरम्"।
तस्योदाहरणम् यथा,—
"गङ्गोत्तुङ्गतरङ्गसङ्गतजटाजूटाग्रनागस्फणिस्फूर्जत्फूत्कृतिभीतिसम्भृतचमत्कारस्फुरत्सम्भ्रमा।
आनन्दामृतवापिकां विदधती चित्तं गिरीशप्रभोः पायान्नवसङ्गमे भगवती लज्जावती पार्व्वती" ॥
इति काव्यचन्द्रिका ॥ * ॥ रसादिसप्तधातुसारभागजधातुविशेषः। तस्य गुणाः। सर्व्वशरीरस्थितत्वम्। स्निग्धत्वम्। शीतलत्वम्। स्थिरत्वम्। शुक्लवर्णत्वम्। कफात्मकत्वम्। शरीरस्य बलपुष्टिकारित्वञ्च ॥
"हृदि तिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत् सपीतकम्।
ओजः शरीरे सञ्जातं तन्नाशान्नाशमृच्छति ॥
भ्रमरैः फलपुष्पेभ्यो यथा सम्भ्रियते मधु।
तद्वदोजः शरीरेभ्यो धातुः सम्भ्रियते नृणाम्"
इति वैद्यकम् ॥ ओजोऽदन्तोऽपि। इति भरत
"हृदयं चेतनास्थानमोजसश्चाश्रयं मतम्"
इति पूर्व्वखण्डे। पूष। शार्ङ्गधरेणोक्तम् ॥
"तत्परस्यौजसः स्थानं तत्र चैतन्यसंग्रहः" ॥
"ओजोवहाः शरीरे वा विधम्यन्ते समन्ततः।
येनौजसा वर्त्तयन्ति प्रीणिताः सर्व्वदेहिनः ॥
यदृते सर्व्वभूतानां जीवितं नावतिष्ठते।
यत्सारमादौ गर्भस्य योऽसौ गर्भरसाद्रसः ॥
संवर्त्तमानं हृदयं समाविशति यत्पुरा।
यस्य नाशात्तु नाशोऽस्ति धारि यद्धृदयाश्रितम् ॥
यच्छरीररसः स्नेहः प्राणा यत्र प्रतिष्ठिताः।
तत्फला विविधा वाता प्रफलन्तीति महाफलाः ॥
ध्मानाद्धमन्यः स्रवणात् स्रोतांसि सरणात् सिराः
तन्महत्ता महामूलास्तच्चौजः परिरक्षता।
परिहार्य्या विशेषेण मनसो दुःखहेतवः ॥
हृद्यं यत्स्याद्यदौजस्यं स्रोतसां यत्प्रसादजम्।
तत्तत्सेव्यं प्रयत्नेन प्रशमो ज्ञानमेव च" ॥
इति सूत्रस्थाने त्रिंशेऽध्याये चरकेणोक्तम् ॥
"गुरु शीतं मृदु श्लक्ष्णं बहलं मधुरं स्थिरम्।
प्रसन्नं पिच्छिलं स्निग्धमोजो दशगुणं तथा" ॥
मद्यसेवनतोऽस्य ये गुणा नश्यन्ति तद्यथा ॥
"गुरुत्वं लाघवाच्छैत्यं चौष्ण्यमम्लस्वभावतः।
माधुर्य्यं मार्द्दवं तैक्ष्ण्यात् प्रसादश्चाशुभावनात् ॥
रौक्ष्यात् स्नेहं व्यवायित्वात् स्थिरत्वं श्लक्ष्णतामपि
विकाशिभावात् पैच्छिल्यं वैशद्यं सान्द्रतां तथा ॥
सौक्ष्म्यान्मद्यं विहन्त्येवमोजसः स्वगुणैर्गुणान्"।
"रसधात्वादिमार्गाणां सत्त्वबुद्धीन्द्रियात्मनाम्।
प्रधानस्यौजसश्चैव हृदयस्थानमुच्यते" ॥
"नैव विघातं जनयेन्मद्यं पैत्तिकमोजसः।
विकाश-रूक्ष-विशदा गुणास्तत्र हि नोल्बणाः" ॥
इति च चरके चिकित्सास्थाने। १२ अः ॥
"ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम्।
विविक्तं मृदु मृत्स्नञ्च प्राणायतनमुत्तमम् ॥
देहस्यावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम्।
तदभावाच्च शीर्य्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम् ॥
अभिघातात् क्षयात्कोपाच्छोकाद्ध्यानाच्छ्रमात् क्षुधः।
ओजः संक्षीयते ह्येभ्यो धातुग्रहणनिःसृतम्।
तेजः समीरितं तस्माद्विस्रंसयति देहिनः" ॥
इति सूत्रस्थाने। १५ अः। सुश्रुतेनोक्तम् ॥)
ओड़वः, पुं, पञ्चस्वरयुक्तरागः। स तु ऋ-प-वर्ज्जितः। स-ग-म-ध-नि युक्तः। यथा मल्लारादयः। इति सङ्गीतदामोदरः ॥ (यदुक्तं सङ्गीतरत्नाकरे स्वराध्याये जातिप्रकरणे।
"वान्ति यान्त्युड़वोऽन्नेति व्योमोक्तमुड़वं बुधैः।
पञ्चमं तच्च भूतेषु पञ्चसंख्या तदुद्भवा।
ओड़वी सास्ति येषाञ्च स्वरास्तेत्वोड़वा मताः" ॥
"वौड़वा मता" इति क्वचित् पाठः ॥ "उड़वः नक्षत्राणि वान्ति यान्ति यस्मिन् तदुड़वं व्योम, तच्च भूतेषु पञ्चमम्। तेन पञ्चसंख्या लक्ष्यते। औड़वी संख्या विद्यते येषां स्वराणां ते औड़वाः पञ्चस्वराः" इत्यादिसिंहभूपालटीका ॥)

रागरागिण्य इति यावत्। यथा,—
"औडवः पञ्चभिः प्रोक्तः स्वरैः षड्भिस्तु षाडवः।
सम्पूर्णः सप्तभिः प्रोक्ता रागजातिस्त्रिधा मता" ॥
इति सङ्गीतरत्नाकरः ॥ अपि च। सम्पूर्णस्वराः
ष ऋ ग म प ध नि ॥ षाडवस्वरा निषादो-
ज्झिताः ष ऋ ग म प ध ॥ औडवस्वरा ऋ-प-
वर्जिताः ष ग म ध नि ॥ सम्पूर्णरागाः सप्तभिः
स्वरैर्यथा। नटवसन्तादयः। षाडवरागाः षड्भिः
स्वरैर्यथा। सैरिन्ध्रीप्रभृतयः। औडवरागाः
पञ्चभिः स्वरैर्यथा मल्लारादयः। इति सङ्गीत-
दामोदरः ॥ (तथा च सङ्गीतरत्नाकरे स्वराध्याये
जातिप्रकरणे। ५३—५४ ॥
"वान्ति यान्त्युडवोऽस्मेति व्योमोक्तमुडवं बुधैः।
पञ्चमं तच्च भूतेषु पञ्चसंख्या तदुद्भवा ॥
ओड़वी सास्ति येषाञ्च स्वरास्ते ओड़वा मताः।
ते सञ्जाता यत्र गीते तदौडवितमुच्यते ॥
तत्सम्बन्धादौड़वञ्च पञ्चस्वरमिदं विदुः"।
"क्रमादल्पाल्पतरते षाडवौडवकारिणो" ॥)
औडुम्बर, क्ली, कुष्ठरोगविशेषः। इति मेदिनी ॥
तस्य लक्षणम्।
"रुग्दाहरागकण्डूभिः परीतं रोमपिञ्जरम्।
उडुम्बरफलाभासं कुष्ठमौडुम्बरं वदेत्" ॥
इति निदानम् ॥ ताम्रम्। इति जटाधरः ॥
ताम्रपात्रादौ त्रि ॥ (उडुम्बरस्य विकारः। उडुम्बर
+अण्। उडुम्बरपात्रम्। यज्ञाङ्गवृक्षविकारः।
यथाह देवलः।
"गृहीत्वौडुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः" ॥)
औडुम्बर, पु, चतुर्द्दशयमान्तर्गतयमविशेषः। इति
मेदिनी ॥ मुनिविशेषः। यथा,—
"वैखानसा वालिखिल्यौडुम्बराः फेनपा वने।
न्यासे कुटीचकः पूर्व्वं बह्वोदो हंसनिष्क्रियौ" ॥
इति श्रीभागवते ३। १२। ४३। "औडुम्बरा
प्रातरुत्थाय यां दिशं प्रथमं पश्यन्ति तत आहृतैः
फलादिभिर्जीवन्ति"। इति तट्टीकायां स्वामी ॥
औत्कर्ष्यं, क्ली, (उत्कर्षस्य भावः। उत्कर्ष+ष्यञ्।)
उत्कर्षता ॥
औत्तानपादि, पु, (उत्तानपादस्यापत्यम् पुमान्।
उत्तानपाद+इञ्।) ध्रुवः। इत्यमरः ॥ स तु
उत्तानपादराजपुत्त्रः। स्वायम्भुवमनुपौत्त्रः।
(यथा भागवते। ४। १०। ३०।
"औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा
देवः क्षिणोत्ववनतार्त्तिहरो विपक्षान्" ॥
उत्तानपादात् सुरुच्यां जात उत्तमः। इति महा-
भारतम् ॥) ग्रहाणामुपरिस्थितनिश्चलतारा च ॥
औत्सर्गिकः, त्रि, (सामान्यविधिरुत्सर्गस्तस्य भावः।
उत्सर्ग+ठञ्।) सामान्यत्वम्। इति स्मार्त्ताः ॥
औत्सुक्य, क्ली, (उत्सुकस्य भावः। उत्सुक+ष्यञ्।)
उत्कण्ठा। इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा रत्नावली।
"औत्सुक्येन कृतत्वरा सहभुवा व्यावर्त्तमाना
ह्रिया"॥ "रथचरणसमाक्रान्तावदौत्सुक्यनुन्ना"।
इति माघे ११। २६। तथा मेघदूते पूर्व्वमेघे ॥५॥
"इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे"।

व्यभिचारिभावभेदः।
यथा साहित्यदर्पणे ३। १३७। "औत्सुक्योन्माद-
शङ्काः स्मृतिमतिसहिता व्याधिसन्त्रासलज्जाः" ॥
तल्लक्षणं तत्रैव ३। १५६।
"इष्टानवाप्तेरौत्सुक्यं कालक्षेपासहिष्णुता।
चित्ततापत्वरा स्वेद-दीर्घनिश्वसितादिकृत्" ॥
उदाहरणं यथा तत्रैव।
"यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते" ॥
इच्छा। यथा, तत्त्वकौमुद्याम्।
"औत्सुक्यमिच्छा सा च इष्यमाणप्राप्तौ निवर्त्तते
इष्यमाणस्य स्वार्थं इच्छालक्षणत्वात् फलस्य" ॥)
औदनिक, त्रि, (ओदनं शिल्पमस्य। ओदन+ठञ्।)
सूपकारः। इत्यमरः ॥
औदरिक, त्रि, (उदरे प्रसितः। उदर+ठक्।)
विजिगीषाविवर्ज्जितः। उदरमात्रपूरकः। पेटुक
इति भाषा। तत्पर्य्यायः। आद्यूनः २। इत्यमरः ॥
(यथा किराते। ११। ५ श्लोकस्य टीकायां
मल्लिनाथः। "अतएवाद्यून औदरिकः। आद्यूनः
स्यादौदरिके विदिगीषाविवर्ज्जिते। इत्यमरः" ॥)
"विजिगीषाव्यवहारः कश्चित् प्रकर्षो वा आल-
स्यात् तेन विहीनो यः केवलमुदराधीनः"। इति
भरतः ॥ "स्वोदरपूरणाशक्तिनिमित्तकनिन्दाया
शेच्छा विजिगीषा तया रहितः"।
इति रमानाथः ॥
औदश्वित, क्ली, (उदश्वित्+"उदश्वितोऽन्यतर-
स्याम्"। ४। २। १९। इति पक्षे अण्।) अर्द्ध-
जलयुक्तघोलः। इति हेमचन्द्रः ॥ (उदश्विच्छब्दे-
ऽस्य विशेषो ज्ञातव्यः ॥)
औदश्वित्कं, क्ली, (उदश्विति संस्कृतम्। "उदश्वितो-
ऽन्यतरस्याम् ४। २। १९ इति ठक्। "इसुसुक्ता-
न्तात् कः"। ७। ३। ५१। इति ठस्य कः।) अर्द्ध-
जलमिश्रितघोलम्। इति हेमचन्द्रः ॥
औदार्य्यं, क्ली, (उदारस्य भावः। उदार+ष्यञ्।)
उदारता। इति हेमचन्द्रः ॥ (वाग्गुणभेदः। यथा
किराते १। ३॥ "स सौष्ठवौदार्य्यविशेषशा-
लिनीम्" इति "औदार्य्यमर्थसम्पत्तिः" इति
मल्लिनाथः ॥ सात्त्विको नायकगुणभेदः। यथा
साहित्यदर्पणे ३। ५८।
"शोभा विलासो माधुर्य्यं गाम्भीर्य्यं धैर्य्यतेजसी।
ललितौदार्य्यमित्यष्टौ सत्त्वजाः पौरुषा गुणाः" ॥
तल्लक्षणं यथा तत्रैव ३। ६३।
"दानं सप्रियभाषणमौदार्य्यं शत्रुमित्रयोः समता" ॥
नायिकालङ्कारभेदः। यथा, तत्रैव ३। ९४।
"यौवने सत्त्वजास्तासामष्टाविंशतिसंख्यकाः।
अलङ्कारास्तत्र भावहावहेलास्त्रयोऽङ्गजाः" ॥
शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्य्यञ्च प्रगल्भता।
औदार्य्यं धैर्य्यमित्येते सप्तैव स्युरयत्नजाः" ॥
तल्लक्षणं यथा तत्रैव ३। १०३। "औदार्य्यं विनयः
सदा" ॥ अस्य उदाहरणं यथा तत्रैव।

"न ब्रूते परुषां गिरं वितनुते न भ्रूयुगं भङ्गुरं
नोत्तंसं क्षिपति क्षितौ श्रवणतः सा मे स्फुटेऽप्यागसि।
कान्ता गर्भगृहे गवाक्षविवरव्यापारिताक्ष्या वहिः
सख्या वक्त्रमभिप्रयच्छति परं पर्य्यश्रुणी लोचने" ॥
मनसो वृत्तिभेदः। यथा पञ्चदशी। १५। ३।
"शान्ता घोरास्तथा मूढा मनसो वृत्तयस्त्रिधा।
वैराग्यं क्षान्तिरौदार्य्यमित्याद्याः घोरवृत्तयः" ॥)
औदास्य क्ली, (उदास+ष्यञ्।) उदासस्य भावः।
वैराग्यम्। अनुरागादिशून्यता। यथा।
"औदास्यसंविदवलम्बितशून्यमुद्रा-
मस्मिन् दृशौ पतिततामवलोक्य भैम्याः"।
इत्यादि नैषधम् ॥ "क्षौणीविलिखनहेतोर्वयमपि
कुत्रा किमौदास्यम्"। इति पद्यावली ॥
औद्दालक, क्ली, (उद्दालेन कीटेन सञ्चितम्। उद्दाल-
+अण्+संज्ञायां कन्।) वल्मीककारिकीट-
निर्म्मितमधु।
तस्य गुणाः। कषायत्वम्। उष्णत्वम्। कटुत्वम्।
कुष्ठविषरोगनाशित्वञ्च। इति राजवल्लभः ॥
(अथौद्दालकस्य लक्षणं गुणाश्च यथा।
"प्रायो वल्मीकमध्यस्थाः कपिलाः स्वल्पकीटकाः।
कुर्व्वन्ति कपिलं स्वल्पं तत् स्यादौद्दालकं मधु ॥
औद्दालकं रुचिकरं स्वर्य्यं कुष्ठविषापहम्।
कषायमुष्णमम्लञ्च कटुपाकञ्च पित्तकृत्" ॥
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे द्वितीये भागे ॥
तीर्थविशेषः। यदुक्तं महाभारते ३। ८४। १५१।
"औद्दालकं महाराज तीर्थं मुनिनिषेवितम्।
तत्राभिषेकं कृत्वा वै सर्व्वपापैः प्रमुच्यते" ॥
औद्धत्य, क्ली, (उद्धत+ष्यञ्।) उद्धतस्य भावः।
यथा। "असूयान्यगुणर्द्धीनामौद्धत्यादसहिष्णुता।
भ्रूभङ्गदोषसंघोषरत्नाक्षिविहतादिकृत्" ॥ इति
साहित्यदर्पणे ३ परिच्छेदः ॥
औद्भिज्जं, क्ली, (उद्भिद्+जन+ड+स्वार्थे अण्।)
पांशवलवणम्। इति राजनिर्घण्टः ॥
औद्भिद, क्ली, (उद्भिद+स्वार्थेऽण्।) साम्भरि-
लवणम्। अस्य गुणाः। (यथा सुश्रुते। सूत्रस्थाने
४६ अः ॥
"लघु तीक्ष्णोष्णमुत्क्लेदि सूक्ष्मं वातानुलोमनम्।
सुतिक्तं कटुसक्षारं विद्याल्लवणमौद्भिदम्" ॥)
तीक्ष्णत्वम्। उत्क्लेदकारित्वम्। क्षारयुक्तत्वम्।
कटुत्वम्। तिक्तत्वम्। कोष्ठबद्धतानाहशूलनाशि-
त्वञ्च। इति राजवल्लभः ॥ (अस्य पर्य्यायो गुणाश्च
यथा—
"औद्भिदं पांशुलवणं यज्जातं भूमितः स्वयं।
क्षारं गुरु कटु स्निग्धं शीतलं वातनाशनम्" ॥
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे। १ भागे ॥
"सतिक्तकटुकक्षारं तीक्ष्णमुत्क्लेदि चौद्भिदम्"।
इति वाभटे सूत्रस्थाने। ६ अः ॥)
उद्भिदो जातं जलम्। तस्य गुणाः। मधुरत्वम्।
पित्तशमनत्वम्। अविदाहित्वम्। इति राज-
वल्लभः ॥
("औद्भिदं पित्तशमनं मधुरं न विदाहि च" ॥
इति वैद्यकचक्रपाणिकृतद्रव्यगुणे पानीयवर्गे ॥

रागरागिण्य इति यावत् । यथा,—
"औडवः पञ्चभिः प्रोक्तः स्वरैः षड्भिस्तु षाडवः ।
सम्पूर्णः सप्तभिः प्रोक्तो रागजातिस्त्रिधा मता" ॥
इति सङ्गीतरत्नाकरः ॥ अपि च । सम्पूर्णस्वराः स ऋ ग म प ध नि ॥ षाडवस्वरा निषादोज्झिताः स ऋ ग म प ध ॥ औडवस्वरा ऋ-प-वर्जिताः स ग म ध नि ॥ सम्पूर्णरागाः सप्तभिः स्वरैर्यथा । नटवसन्तादयः । षाडवरागाः षड्भिः स्वरैर्यथा । सैरिन्ध्रीप्रभृतयः । औडवरागाः पञ्चभिः स्वरैर्यथा मल्लारादयः । इति सङ्गीतदामोदरः ॥ (तथा च सङ्गीतरत्नाकरे स्वराध्याये जातिप्रकरणे । ५३—५४ ॥
"वान्ति यान्त्युडवोऽस्मेति व्योमोक्तमुडवं बुधैः ।
पञ्चमं तच्च भूतेषु पञ्चसंख्या तदुद्भवा ॥
औडवी सास्ति येषाञ्च स्वरास्ते त्वौडवा मताः ।
ते सञ्जाता यत्र गीते तदौडवितमुच्यते ॥
तत्सम्बन्धादौडवञ्च पञ्चस्वरमिदं विदुः" ।
"क्रमादल्पाल्पतरते षाडवौडवकारिणी" ॥)

औडुम्बर, क्ली, कुष्ठरोगविशेषः । इति मेदिनी ॥ तस्य लक्षणम् ।
"रुग्दाहरागकण्डूभिः परीतं रोमपिञ्जरम् ।
उडुम्बरफलाभासं कुष्ठमौडुम्बरं वदेत्" ॥
इति निदानम् ॥ ताम्रम् । इति जटाधरः ॥ ताम्रपात्रादौ त्रि ॥ (उडुम्बरस्य विकारः । उडुम्बर + अण् । उडुम्बरपात्रम् । यज्ञाङ्गवृक्षविकारः । यथाह देवलः ।
"गृहीत्वौडुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः" ॥)

औडुम्बरः, पु, चतुर्दशयमान्तर्गतयमविशेषः । इति मेदिनी ॥ मुनिविशेषः । यथा,—
"वैखानसा वालिखिल्यौडुम्बराः फेनपा वने ।
न्यासे कुटीचकः पूर्व्वं बह्वोदो हंसनिष्क्रियौ" ॥
इति श्रीभागवते ३ । १२ । ४३ । "औडुम्बरा प्रातरुत्थाय यां दिशं प्रथमं पश्यन्ति तत आहृतैः फलादिभिर्जीवन्तः" । इति तट्टीकायां स्वामी ॥

औत्कर्ष्य, क्ली, (उत्कर्षस्य भावः । उत्कर्ष + ष्यञ् ।) उत्कर्षता ॥

औत्तानपादि, पु, (उत्तानपादस्यापत्यम् पुमान् । उत्तानपाद + इञ् ।) ध्रुवः । इत्यमरः ॥ स तु उत्तानपादराजपुत्त्रः । स्वायम्भुवमनुपौत्त्रः । (यथा भागवते । ४ । १० । ३० ।
"औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा
देवः क्षिणोत्ववनतार्त्तिहरो विपक्षान्" ॥
उत्तानपादात् सुरुच्यां जात उत्तमः । इति महाभारतम् ॥) ग्रहाणामुपरिस्थितनिश्चलतारा च ॥

औत्सर्गिक, त्रि, (सामान्यविधिरुत्सर्गस्तस्य भावः । उत्सर्ग + ठञ् ।) सामान्यत्वम् । इति स्मार्त्ताः ॥

औत्सुक्य, क्ली, (उत्सुकस्य भावः । उत्सुक + ष्यञ् ।) उत्कण्ठा । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा रत्नावली ।
"औत्सुक्येन कृतत्वरा सहभुवा व्यावर्त्तमाना ह्रिया" ॥ "रथचरणसमाह्वस्तावदौत्सुक्यनुन्ना" । इति माघे ११ । २६ । तथा मेघदूते पूर्व्वमेघे ॥ ५ ॥
"इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे" ।) व्यभिचारिभावभेदः ।
यथा साहित्यदर्पणे ३ । १३७ । "औत्सुक्योन्मादशङ्काः स्मृतिमतिसहिता व्याधिसन्त्रासलज्जाः" ॥ तल्लक्षणं तत्रैव ३ । १५६ ।
"इष्टानवाप्तेरौत्सुक्यं कालक्षेपासहिष्णुता ।
चित्ततापत्वरा स्वेद-दीर्घनिश्वसितादिकृत्" ॥
उदाहरणं यथा तत्रैव ।
"यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपास्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः ।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते" ॥
इच्छा । यथा, तत्त्वकौमुद्याम् ।
"औत्सुक्यमिच्छा सा च इष्यमाणप्राप्तौ निवर्त्तते इष्यमाणस्य स्वार्थं इष्टलक्षणत्वात् फलस्य" ॥)

औदनिक, त्रि, (ओदनं शिल्पमस्य । ओदन + ठन् ।) सूपकारः । इत्यमरः ॥

औदरिक, त्रि, (उदरे प्रसितः । उदर + ठक् ।) विजिगीषाविवर्ज्जितः । उदरमात्रपूरकः । पेटुक इति भाषा । तत्पर्य्यायः । आद्यूनः २ । इत्यमरः ॥ (यथा किराते । ११ । ५ श्लोकस्य टीकायां मल्लिनाथः । "अतएवाद्यून औदरिकः । आद्यूनः स्यादौदरिके विजिगीषाविवर्ज्जिते । इत्यमरः" ॥) "विजिगीषाव्यवहारः कश्चित् प्रकर्षो वा आलस्यात् तेन विहीनो यः केवलमुदराधीनः" । इति भरतः ॥ "स्वोदरपूरणाशक्तिनिमित्तकनिन्दाख्या गीच्छा विजिगीषा तया रहितः" । इति रमानाथः ॥

औदश्वित, क्ली, (उदश्वित् + "उदश्वितोऽन्यतरस्याम्" । ४ । २ । १९ । इति पक्षे अण् ।) अर्द्धजलयुक्तघोलः । इति हेमचन्द्रः ॥ (उदश्विच्छब्देऽस्य विशेषो ज्ञातव्यः ॥)

औदश्वित्क, क्ली, (उदश्विति संस्कृतम् । "उदश्वितोऽन्यतरस्याम् ४ । २ । १९ इति ठक् । "इसुसुक्तान्तात् कः" । ७ । ३ । ५१ । इति ठस्य कः ।) अर्द्धजलमिश्रितघोलम् । इति हेमचन्द्रः ॥

औदार्य्य, क्ली, (उदारस्य भावः । उदार + ष्यञ् ।) उदारता । इति हेमचन्द्रः ॥ (वाग्गुणभेदः । यथा किराते १ । ३ ॥ "स सौष्ठवौदार्य्यविशेषशालिनीम्" इति "औदार्य्यं अर्थसम्पत्तिः" इति मल्लिनाथः ॥ सात्त्विको नायकगुणभेदः । यथा साहित्यदर्पणे ३ । ५८ ।
"शोभा विलासो माधुर्य्यं गाम्भीर्य्यं धैर्य्यतेजसी ।
ललितौदार्य्यमित्यष्टौ सत्त्वजाः पौरुषा गुणाः" ॥
तल्लक्षणं यथा तत्रैव ३ । ६३ ।
"दानं सप्रियभाषणमौदार्य्यं शत्रुमित्रयोः समता" ॥
नायिकालङ्कारभेदः । यथा, तत्रैव ३ । ९४ ।
"यौवने सत्त्वजास्तासामष्टाविंशतिसंख्यकाः ।
अलङ्कारास्तत्र भावहावहेलास्त्रयोऽङ्गजाः" ॥
शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्य्यञ्च प्रगल्भता ।
औदार्य्यं धैर्य्यमित्येते सप्तैव स्युरयत्नजाः" ॥
तल्लक्षणं यथा तत्रैव ३ । १०३ । "औदार्य्यं विनयः सदा" ॥ अस्य उदाहरणं यथा तत्रैव ।
"न ब्रूते परुषां गिरं वितनुते न भ्रूयुगं भङ्गुरं नोत्तंसं क्षिपति क्षितौ श्रवणतः सा मे स्फुटेऽप्यागसि ।
कान्ता गर्भगृहे गवाक्षविवरव्यापारिताक्ष्या बहिः सख्या वक्त्रमभिप्रयच्छति परं पर्य्यश्रुणी लोचने" ॥
मनसो वृत्तिभेदः । यथा पञ्चदशी । १५ । ३ ।
"शान्ता घोरास्तथा मूढा मनसो वृत्तयस्त्रिधा ।
वैराग्यं क्षान्तिरौदार्य्यमित्याद्याः घोरवृत्तयः" ॥)

औदास्य, क्ली, (उदास + ष्यञ् ।) उदासस्य भावः । वैराग्यम् । अनुरागादिशून्यता । यथा ।
"औदास्यसंविदवलम्बितशून्यमुद्रामस्मिन् दृशो पतितयामवलोक्य भैम्याः" ।
इत्यादि नैषधम् ॥ "क्षौणीविलिखनहेतोर्वयमपि कुब्जाः किमौदास्यम्" । इति पद्यावली ॥

औद्दालक, क्ली, (उद्दालेन कीटेन सञ्चितम् । उद्दाल + अण् + संज्ञायां कन् ।) वल्मीककारिकीटनिर्म्मितमधु । तस्य गुणाः । कषायत्वम् । उष्णत्वम् । कटुत्वम् । कुष्ठविषरोगनाशित्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥ (अथौद्दालकस्य लक्षणं गुणाश्च यथा ।
"प्रायो वल्मीकमध्यस्थाः कपिलाः स्वल्पकीटकाः ।
कुर्व्वन्ति कपिलं स्वल्पं तत् स्यादौद्दालकं मधु ॥
औद्दालकं रुचिकरं स्वर्य्यं कुष्ठविषापहम् ।
कषायमुष्णमम्लञ्च कटुपाकञ्च पित्तकृत्" ॥
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे द्वितीये भागे ॥ तीर्थविशेषः । यदुक्तं महाभारते ३ । ८४ । १५१ ।
"औद्दालकं महाराज तीर्थं मुनिनिषेवितम् ।
तत्राभिषेकं कृत्वा वै सर्व्वपापैः प्रमुच्यते" ॥

औद्धत्य, क्ली, (उद्धत + ष्यञ् ।) उद्धतस्य भावः । यथा । "असूयान्यगुणर्द्धीनामौद्धत्यादसहिष्णुता । भ्रूभङ्गदोषसङ्घोषस्तत्त्विवेकतादिकृत्" ॥ इति साहित्यदर्पणे ३ परिच्छेदः ॥

औद्भिज्ज, क्ली, (उद्भिद् + जन + ड + स्वार्थे अण् ।) पांशुलवणम् । इति राजनिर्घण्टः ॥

औद्भिद, क्ली, (उद्भिद + स्वार्थेऽण् ।) साम्भरिलवणम् । अस्य गुणाः । (यथा सुश्रुते । सूत्रस्थाने ४६ अः ॥
"लघु तीक्ष्णोष्णमुत्क्लेदि सूक्ष्मं वातानुलोमनम् ।
सुतिक्तं कटुसक्षारं विद्याल्लवणमौद्भिदम्" ॥)
तीक्ष्णत्वम् । उत्क्लेदकारित्वम् । क्षारयुक्तत्वम् । कटुत्वम् । तिक्तत्वम् । कोष्ठबद्धतानाहशूलनाशित्वञ्च । इति राजवल्लभः ॥ (अस्य पर्य्यायो गुणाश्च यथा—
"औद्भिदं पांशुलवणं यज्जातं भूमितः स्वयं ।
क्षारं गुरु कटु स्निग्धं शीतलं वातनाशनम्" ॥
इति भावप्रकाशस्य पूर्व्वखण्डे । १ भागे ॥
"सतिक्तकटुकक्षारं तीक्ष्णमुत्क्लेदि चौद्भिदम्" ।
इति वाभटे सूत्रस्थाने । ६ अः ॥)
उद्भिदो जातं जलम् । तस्य गुणाः । मधुरत्वम् । पित्तशमनत्वम् । अविदाहित्वम् । इति राजवल्लभः ॥
("औद्भिदं पित्तशमनं मधुरं न विदाहि च" ॥
इति वैद्यकचक्रपाणिकृतद्रव्यगुणे पानीयवर्गे ॥

अस्य व्याख्यायां शिवदासेनोक्तं यथा ।
"औद्भिद निम्नप्रदेशादूर्द्ध्वमुत्तिष्ठज्जलम्" ॥
उद्भिदो जात इत्यादि । यथा ॥
"तत् नक्षत्रविध ज्ञेय आकाशमौद्भिदपार्थिवम्" ।
"भौममौषधमुद्दिष्टमौद्भिदन्तु चतुर्व्विधम् ।
वनस्पतिर्वीरुधश्च वानस्पत्यस्तथौषधि" ॥
"मूलत्वक्सारनिर्य्यासनाडस्वरसपल्लवा ।
क्षाराः क्षीरं फलं पुष्पं भस्मतैलानि कण्टकाः ॥
पत्राणि शुङ्गा कन्दाश्च प्ररोहश्चौद्भिदो गण" ।
इति चरके सूत्रस्थाने । १ अ ॥)

औद्वाहिक, क्ली, (उद्वाहसमये लब्धम् । उद्वाह + ठञ् ।) भार्य्याप्राप्तिकाले लब्ध भार्य्याधनम् । इति दायभाग ॥ तत् भ्रात्रादिभिरविभाज्यम् । यथा ।
"पितृद्रव्याविनाशेन यदन्यत् स्वयमर्ज्जयेत् ।
मैत्रमौद्वाहिकञ्चैव दायादाना न तद्भवेत्" ॥
इति याज्ञवल्क्य ॥ (यथा च मनु । ९ । २०६ ।
"विद्याधनन्तु यद्यस्य तत्तस्यैव धन भवेत् ।
मैत्रमौद्वाहिकञ्चैव माधुपर्किकमेव च" ॥)

औपगव, पु, उपगोरपत्यम् । इति भरत ॥ उप समीपे गौर्य्यस्य इति उपगुर्गोप । लक्षणया तत्पुरोहिते उपगुशब्द । यथा हारीत ।
"य वर्णं याजयेद् यस्तु स तद्वर्णत्वमाप्नुयात्
सद्योवर्षेण वर्षे चैवमेवाब्रवीद्भृगु" ॥ तथाच लक्षणया ब्राह्मण उपगुपदवाच्य । तस्यापत्य औपगव । इति श्रीभागवतटीकायां स्वामी । (उपगोरिदमिति व्युत्पत्त्या उपगुसम्बन्धिनि, त्रि- उपगु + "तस्येदम्" । ४ । ३ । १२० । इत्यण् ॥)

औपगवक, क्ली, (औपगवाना समूह । "गोत्रोक्षोष्ट्रेति" । ४ । २ । ३९ । वुञ् ।) औपगवसमूह । इत्यमर ॥

औपग्रस्तिक, पु, (उपग्रस्त ग्रासकाल भूत । उपग्रस्त + "तमधीष्टो भृतो भूतो भावी" । ५ । १ । इति ठञ् ।) राहुग्रस्तचन्द्रः सूर्य्यश्च । इति शब्दरत्नावली ॥

औपनिधिक, क्ली, (उपनिधि + स्वार्थे ठञ् ।) उपनिधि । प्रीत्या भोगार्थमर्पितद्रव्यम् । इति स्मृति ॥

औपम्य, क्ली, (उपमैव । चतुर्वर्ण्यादित्वात् स्वार्थे ष्यञ् ।) सादृश्यम् । तत्पर्य्याय । अनुकार २ अनुहार ३ साम्यम् ४ तुला ५ उपमा ६ कक्षा ७ उपमानम् ८ । इति हेमचन्द्रः ॥ (यथा, हितोपदेशे १ । ७३ ॥
"प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा ।
आत्मौपम्येन भूतानां दया कुर्व्वन्ति साधव" ॥
"औपम्य नाम यदन्येनान्यस्य सादृश्यमधिकृत्य प्रकाशनम् । यथा दण्डेन दण्डकस्य धनुषा धानुष्कस्येष्वासेनारोग्यदस्येति" । इति विमानस्थाने । ८ अध्याये ॥ चरकेणोक्तम् ॥)

औपयिक, त्रि, (उपायेन लब्धात । उपाय + ठक् + ह्रस्वश्च ।) न्याय्य । उपयुक्त । इत्यमर ॥ (यथा, महाभारते विदुरागमनपर्व्वणि १ । २०५ । १२ ।
"एतत्तत्त्व महाराज तेषु पुत्रेषु चैव हि ।
वृत्तमौपयिक मन्ये भीष्मेण सह भारत" ॥
तथा रामायणे २ । ५४ । ३९ ।
"वासमौपयिकं मन्ये तव राम महावन" ।
स्त्रियां तु ङीप् । यथा महाभारते वैवाहिकपर्व्वणि १ । १९४ । ११ ।
"न वैश्यशूद्रौपयिकी कथास्ता
न च द्विजाना कथयन्ति वीरा" ॥
स्वार्थे विनयादिभ्यष्ठक्प्रत्यये कृते उपाय एव औपयिकम् । यथा भारविः, ३५ ।
"शिवमौपयिक गरीयसीम्" इति ॥

औपरोधिक, पु, (उपरोधः प्रयोजनमस्य । उपरोध + ठक् ।) पीलुदण्ड । तत्पर्य्याय । पैलव २ । इति हेमचन्द्रः ॥ उपरोधसम्बन्धिनि त्रि ॥

औपवस्त, क्ली, (उपवस्त + प्रज्ञाद्यण् ) उपवास । इति हेमचन्द्र ॥

औपसर्गिक, पु, (उपसर्ग + ठक् ।) सन्निपातरोगविशेष । तस्य लक्षणम् । यथा,—
"कफोऽनुलोमवातेन यदि पित्तानुगो भवेत् ।
स्वेदशैत्यादिभिर्युक्तस्तदा भवति मानवः ॥
प्रतिलोम पुनस्तेन स्वास्थ्यमायाति तत्क्षणात् ।
औपसर्गिक एवाय सन्निपात उदाहृत" ॥
इति वैद्यकम् ॥ उपसर्गसम्बन्धिनि त्रि ॥
("तत्रौपसर्गिको य पूर्व्वोत्पन्न व्याधि जघन्यकाल जातो व्याधिरुपसृजति स तन्मूल एवोपद्रवसंज्ञ" । इति सुश्रुते सूत्रस्थाने । ३५ अध्याये ॥
"प्रसङ्गात् गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात् सहभोजनात् ।
सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥
कुष्ठ ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिकरोगाश्च सङ्क्रामन्ति नरान्नरम्" ॥
इति च सुश्रुते निदानस्थाने । ५ अध्याये ॥
माधवकृतग्रन्थस्य व्याख्याया कुष्ठाधिकारे यथा ।
"औपसर्गिकरोगा इति औपसर्गिका यामरोगादयो भूतोपसर्गजाः सङ्क्रामन्ति आविशन्ति" ॥)

औपस्थ्य, क्ली, (उपस्थाद्भवम् । उपस्थ + ष्यञ् ।) उपस्थेन्द्रियसुखम् । इति श्रीभागवतम् ॥ (यथा, तत्रैव ७ । ६ । १३ ।
"औपस्थ्यजैह्व्य बहु मन्यमान
कथ विरज्येत दुरन्तमोह" ॥)

औमीन, त्रि, (उमाणा भवन क्षेत्र वा । "विभाषातिलमाषोमेति" । ५ । २ । ४ । पक्षे खञ् ।) उम्यम् । उमाक्षेत्रम् । इत्यमरटीकायां भरत ॥ मसिनार क्षेत इति भाषा ॥

औरग, क्ली, (उरगस्य इदम् । उरग + अण् ।) अश्लेषानक्षत्रम् । इति जटाधर । सर्पसम्बन्धिनि त्रि ॥

औरभ्र, पु, (उरभ्रस्य मेषस्य इदम् । उरभ्र + अण् ।) कम्बल । तत्पर्य्याय । उर्णायु २ आविक ३ रल्लक ४ । इति हेमचन्द्रः ॥ (मेषमांसम् । यथा मनु । ३ । २६८ ।
"द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन् मासान् हारिणेन तु ।
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पञ्च वै" ॥
मेषदुग्धम् । यथा,—
"औरभ्र मधुर स्निग्धमुष्ण वातकफापहम् ।
न शस्त रक्तपित्तघ्नं वातिकानां हित भवेत्" ॥
इति हारीते प्रथमस्थाने । ८ अध्याये ॥
धन्वन्तरिं प्रति प्रश्नकारक ऋषिभेद । यथा सुश्रुते सूत्रस्थाने १ । "अथ खलु भगवन्तममरवरमृषिगणपरिवृतमाश्रमस्थं काशीराजं दिवोदास धन्वन्तरिमौपधेनववैतरणौरभ्रपौष्कलावतकरवीर्य्यगोपुररक्षितसुश्रुतप्रभृतय ऊचु" ॥)

औरभ्रक, क्ली, (उरभ्राणा समूह । उरभ्र + "गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रेति" । ४ । २ । ३९ । वुञ् ।) मेषसमूह । इत्यमर ॥ मेढार पाल इति भाषा ॥

औरस, पु स्त्री, (उरसा निर्म्मित । उरस् अण् ।) स्वजातपुत्त्र । तत्पर्य्याय । औरस्य २ । इत्यमर ॥ उरस्य ३ । इति तट्टीका ॥ द्वादशविधपुत्रान्तर्गतश्रेष्ठपुत्त्रोऽयम् । स तु सवर्णाया भार्य्यायां स्वय जनित । यथा । "सवर्णायां संस्कृताया स्वयमुत्पादितमौरस विद्यात्" । इति बौधायन ॥ (तथा मनु । ९ । १६६ ।
"स्वे क्षेत्रे संस्कृतायान्तु स्वयमुत्पादयेद्धि यम् ।
तमौरस विजानीयात् पुत्त्र प्रथमकल्पितम्" ॥)
"औरसो धर्म्मपत्नीज" इत्यादि याज्ञवल्क्य । २ । १३१ ॥

औरस्य, पु स्त्री, (उरसो भव । उरस् + यत् । तत स्वार्थेऽण् ।) औरसपुत्त्र । इत्यमर ॥ (क्ली, उरसो वक्षस उत्पन्नम् । वक्षोभवम् । यथा शिक्षायाम् । १६ ।
"हकार पञ्चमैर्युक्तमन्तःस्थाभिश्च संयुतम्" ।
औरस्य त विजानीयात् कण्ठ्यमाहुरसंयुतम्" ॥)

और्द्ध्वदेहिक, त्रि, (ऊर्द्ध्वदेहाय भवम् । ऊर्द्ध्वदेह + ठञ् ।) मृतार्थे तद्दाहदर्शनम् । इत्यमर ॥ यदङ्गि मृतस्तद्दाह प्रभृति सपिण्डीकरणात् पूर्व्व प्रेत तृप्तिहेतुक यत् पिण्डादिदान तत् । इति भरत ॥ (पुत्त्रदाराद्यवश्यभर्त्तव्यपीडनेन यत्पारलौकिक धर्म्मबुद्ध्या दानादि करोति तस्य दातुर्जीवतो मृतस्य च तद्दान दु खफल भवति ।
यथा मनु ११ । १० ।
"भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्द्ध्वदेहिकम् ।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च" ॥
तथा रामायणे २ । ७७ । ३ ।
"दासीर्दासाश्च यानानि वेश्मानि सुमहान्ति च ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुत्रो राज्ञस्तस्यौर्द्ध्वदेहिकम्" ॥
(और्द्ध्वदैहिकम् इत्यपि स्यात् ॥)

और्द्ध्वस्रोतसिक, त्रि, (ऊर्द्ध्वस्रोतस् + ठञ् ।) शैव । इति त्रिकाण्डशेषः ॥ (और्द्ध्वस्रोतसिका इत्यपि स्यात् ॥)

और्व्व, क्ली, (उर्व्व्या भवम् । उर्व्वी + अण् ।) पांशुलवणम् । इति राजनिर्घण्टः ॥

और्व्व, पु, (और्व्वात् भृगुवंशीयात् ऋषेर्जात । और्व्व + अण् । और्व्वर्षिक्रोधानलात् जातत्वम् । ) वाडवानल । इत्यमर ॥ स तु भूगोलस्य दक्षिणसीमा । तत्र सर्व्वे नरका दैत्याश्च वसन्ति । इति सिद्धान्तशिरोमणि ॥ स्वनामख्यातो भृगुवंशीयऋषिभेद । तज्जन्मादिकथा, महाभारते चैत्ररथपर्व्वणि १७९ अध्याये । उक्ता । यथा,—

"ततो महीतलं तात क्षत्त्रियेण यदृच्छया ।
खनताधिगतं वित्तं केनचिद्भृगुवेश्मनि ॥
तद्वित्तं ददृशुः सर्व्वे समेताः क्षत्त्रियर्षभाः ।
अवमन्य ततः क्रोधाद्भृगूंस्तान् शरणागतान् ॥
निजघ्नुः परमेष्वासाः सर्व्वांस्तान्निशितैः शरैः ।
आगर्भादवकृन्तन्तश्चेरुः सर्व्वां वसुन्धराम् ॥
तत उच्छिद्यमानेषु भृगुष्वेवं भयात्तदा ।
भृगुपत्न्यो गिरिं दुर्गं हिमवन्तं प्रपेदिरे ॥
तासामन्यतमा गर्भं भयाद्दध्रे महौजसम् ।
ऊरुणैकेन वामोरुर्भर्त्तुः कुलविवृद्धये ॥
तद्गर्भमुपलभ्याशु ब्राह्मणी या भयार्द्दिता ।
गत्वैका कथयामास क्षत्त्रियाणामुपह्वरे ॥
ततस्ते क्षत्त्रिया जग्मुस्तं गर्भं हन्तुमुद्यताः ।
ददृशुर्ब्राह्मणीं तेऽथ दीप्यमानां स्वतेजसा" ॥
"अथ गर्भः स भित्त्वोरुं ब्राह्मण्या निर्जगाम ह ।
मुष्णन् दृष्टीः क्षत्त्रियाणां मध्याह्न इव भास्करः ॥
ततश्चक्षुर्विहीनास्ते गिरिदुर्गेषु बभ्रमुः" ॥
अयमौर्व्वस्तु पितृवधासमर्षात् क्षत्त्रियवधे कृतप्रतिज्ञ उग्रे तपसि वर्त्तमानः पितृभिर्निवारितः । ततो वृथाप्रतिज्ञो नाहं भवितुमुत्सहे इति जानन्नपि अमोघत्वाच्च क्रोधवह्निं पितॄनुक्तवान् । यथा तत्रैव १८९ अध्याये ।
"यस्मायं मन्युजो मेऽग्निर्लोकानादातुमिच्छति ।
दहेदेष च मामेव निगृहीतः स्वतेजसा ॥
भवतां च विजानामि सर्व्वलोकहितेप्सुताम् ।
तस्माद्विधध्वं यच्छ्रेयो लोकानां मम चेश्वराः ॥
पितर ऊचुः ।
य एष मन्युजस्तेऽग्निर्लोकानादातुमिच्छति ।
अप्सु तं मुञ्च भद्रन्ते लोका अप्सु प्रतिष्ठिताः ॥
आपोमयाः सर्व्वरसाः सर्व्वमापोमयं जगत् ।
तस्मादप्सु विमुञ्चेमं क्रोधाग्निं द्विजसत्तम ॥
अयं तिष्ठतु ते विप्र यदिच्छसि महोदधौ ॥
मन्युजोऽग्निर्दहन्नापो लोका ह्यापोमयाः स्मृताः ॥
एवं प्रतिज्ञा सत्येयं तवानघ भविष्यति ।
नचैव समरा लोका गमिष्यन्ति पराभवम् ॥
वशिष्ठ उवाच ।
ततस्तं क्रोधजं तात और्व्वोऽग्निं वरुणालये ।
उत्ससर्ज्ज स चैवाप उपयुङ्क्ते महोदधौ ॥
महद्धयशिरो भूत्वा यत्तद्वेदविदो विदुः" ॥)
(उर्व्वस्यापत्यम् ।) पञ्चप्रवरान्तर्गतमुनिविशेषः । इति पुराणम् ॥

**और्व्वेयः**, पुं, (उर्व्वश्या अपत्यम् । उर्व्वशी + ढक् ।) अगस्त्यमुनिः । इति हेमचन्द्रः ॥
(अस्य जन्मकथा पुराणेषूक्ता यथा,
"तयोरादित्ययोः सत्रे दृष्ट्वाप्सरसमुर्व्वशीम् ।
रेतश्चस्कन्द तत् कुम्भे न्यपतद्वासतीवरे ॥
तेनैव तु मुहूर्त्तेन वीर्य्यवन्तौ तपस्विनौ ।
अगस्त्यश्च वशिष्ठश्च तत्रर्षी सम्बभूवतुः" ॥
उर्व्वशीगर्भजाताः पुरूरवसः सप्त पुत्राः । तत्कथा हरिवंशे २५ अध्याये द्रष्टव्या ॥)

**औलूकं**, क्ली, (उलूकानां समूहः । अण् ।) उलूकसमूहः । इति जटाधरः । पेचार झाँक् इति भाषा ॥

**औलूक्यः**, पुं, (उलूकस्य मुनेरपत्यं पुमान् । उलूक + गर्गादित्वात् यञ् ।) वैशेषिकः । वैशेषिकदर्शनवेत्ता । इति हेमचन्द्रः ॥ (अथ खलु कणाद-इत्याख्यया प्रसिद्धः ॥)

**औशीरं**, क्ली, (उश्यते । वश् + ईरन् । प्रज्ञाद्यण् । ५ । ४ । ३८ । यद्वा उशीरस्येदं "तस्येदम्" । ४ । ३ । १२० । इत्यण् ।) शयनासनम् । इत्यमरः ॥ शयनं स्वापः शय्या वा आसनं पीठादि । शयनासनं समुदितमिति स्वामी । पृथगिति सुभूतिः । इत्यमरटीकायां भरतः ॥ (यथा, महाभारते राजधर्म्मानुशासनपर्व्वणि १२ । ६० । ३१ ।
"छत्त्रं वेष्टनमौशीरमुपानद्व्यजनानि च ।
यातयामानि देयानि शूद्राय परिचारिणे" ॥)
उशीरजम् । चामरम् । दण्डः । इति हेमचन्द्रः ॥

**औशीरः**, पुं, (उशीरस्यायम् । उशीर + अण् ।) चामरदण्डः । इत्यमरः ॥

**औषणं**, क्ली, (उषण + भावार्थे अण् ।) कटुरसः । उषणं मरीचं तस्य भावः ॥

**औषधं**, क्ली, (ओषधेरिदम् । ओषधिरेव वा "ओषधेरजातौ" ५।४।३७। इत्यण् ।) रोगनाशकद्रव्यम् । ओषधिमेव भवार्थे ष्णप्रत्ययः । तत्पर्य्यायः । भेषजम् २ भैषज्यम् ३ अगदः ४ जायुः ५ । इत्यमरः ॥ जैत्रम् ६ आयुर्योगः ७ गदारातिः ८ अमृतम् ९ आयुर्द्रव्यम् १० । इति वैद्यकम् ॥
("शोधनं शमनञ्चेति समासादौषधं द्विधा ।
शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम् ॥
वस्तिर्विरेको वमनं तथा तैलं घृतं मधु ।
धीधैर्य्यात्मादिविज्ञानं मनोदोषौषधम्परम्" ॥
इति वाभटे सूत्रस्थाने । १ अध्याये ॥
"धन्वसाधारणे देशे समे सन्मृत्तिके शुचौ ।
श्मशानचैत्यायतनश्वभ्रवल्मीकवर्ज्जिते ॥
मृदौ प्रदक्षिणजले कुशरोहिषसंस्तृते ।
अफालकृष्टेऽनाक्रान्ते पादपैर्बलवत्तरैः ॥
शस्यते भेषजं जातं युक्तवर्णरसादिभिः ।
जन्त्वदग्धं दवादग्धमविदग्धञ्च वैकृतैः ॥
भूतैश्छायातपाम्ब्वाद्यैर्यथाकालञ्च सेवितम् ।
अवगाढमहामूलमुदीचीं दिशमाश्रितम् ॥
अथ कल्याणचरितः श्राद्धः शुचिरुपोषितः ।
गृह्णीयादौषधं सुस्थं स्थितं कालेच कल्पयेत् ॥
सक्षीरं तदसम्पत्तावनतिक्रान्तवत्सरम् ।
ऋते गुडघृतक्षौद्रधान्यकृष्णाविडङ्गतः" ॥
इति तत्रैव कल्पस्थाने । ६ अध्याये ॥
"यथाविषं यथाशस्त्रं यथाग्निरशनिर्यथा ।
तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं यथा ॥
औषधं ह्यनभिज्ञातं नामरूपगुणैस्त्रिभिः ।
विज्ञातमपि दुर्युक्तमनर्थायोपपद्यते ॥
योगादपि विषं तीक्ष्णमुत्तमं भेषजं भवेत् ।
भेषजं वापि दुर्युक्तं तीक्ष्णं सम्पद्यते विषम् ॥
तस्मान्न भिषजा युक्तं युक्तिवाह्येन भेषजम् ।
धीमता किञ्चिदादेयं जीवितारोग्यकाङ्क्षिणा ॥
कुर्य्यान्निपतितो मूर्द्ध्नि सशेषं वासवाशनिः ।
सशेषमातुरं कुर्य्यान्नत्वज्ञमतमौषधम् ॥
तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।
स एव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्" ॥
इति चरके सूत्रस्थाने । १ अध्याये ॥
"करणं पुनर्भेषजम् । भेषजं नाम तद्यदुपकरणायोपकल्पते भिषजो धातुसाम्याभिनिर्वृत्तौ प्रयतमानस्य विशेषतश्चोपायान्तेभ्यः तद्द्विविधं व्यापाश्रयभेदात् । दैवव्यपाश्रयं युक्तिव्यपाश्रयञ्च । तत्र दैवव्यपाश्रयं मन्त्रौषधमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादि । युक्तिव्यपाश्रयं संशोधनोपशमने चेष्टाश्च दृष्टफलाः एतच्चैव भेषजमङ्गभेदादपि द्विविधं । द्रव्यभूतमद्रव्यभूतञ्च । तत्र यदद्रव्यभूतं तदुपायाभिभूतम् । उपायो नाम भयदर्शन-विस्मापन-क्षोभण-हर्षण-भर्त्सन-बध-बन्ध-स्वप्न-संवाहनादिरमूर्त्तो भावः यथोक्ताः सिद्ध्युपायाश्च । यत्तु द्रव्यभूतं तद्वमनादिषु योगमुपैति ।
तस्यापीयं परीक्षा इदमेवं प्रकृत्या एवंगुणमेवं प्रभावमस्मिन् देशे जातमस्मिन्नृतौ एवं गृहीतमेवं निहितमेवमुपस्कृतमनया मात्रया युक्तमस्मिन् ऋतौ एवंविधस्य पुरुषस्यैतावन्तन्दोषमपकर्षयति उपशमयति वा अन्यदपि चैवंविधं भेषजमभूच्चानेनानेन वा विशेषेण युक्तमिति" । इति च तत्रैव विमानस्थाने ८ अध्याये ॥
पर्य्यायानाह चरकश्चिकित्सास्थाने । १अ ।
"चिकित्सितं व्याधिहरं पथ्यं साधनमौषधम् ।
प्रायश्चित्तं प्रशमनं प्रकृतिस्थापनं हितम् ॥
विद्याद्भेषजनामानि भेषजं द्विविधञ्च तत् ।
स्वस्थस्योर्ज्जस्करं किञ्चित् किञ्चिदार्त्तस्य रोगनुत् ॥
अभेषजञ्च द्विविधं बाधनं सानुबाधनम्" ।
तथा, सुश्रुते सूत्रस्थाने ३७ अध्याये यथा,—
"श्वभ्रशर्कराश्मविषमवल्मीकश्मशानाघातनदेवतायतनसिकताभिरनुपहतामनूषरामभङ्गुरामदूरोदकां स्निग्धां प्ररोहवतीं मृद्वीं स्थिरां समां कृष्णां गौरीं लोहितां वा भूमिमौषधार्थं परीक्षेत तस्यां जातमपि कृमि-विष-शस्त्रातप-पवन-दहन-तोयसम्बाध मार्गैरनुपहतमेकरसं पुष्टं पृथ्ववगाढमूलमुदीच्याञ्चौषधमाददीतेत्यौषधभूमिपरीक्षाविशेषसामान्यं ॥
विशेषस्तु । तत्राश्मवती स्थिरा गुर्व्वी श्यामा कृष्णा वा स्थूलवृक्षशस्यप्राया स्वगुणभूयिष्ठा ॥ स्निग्धा शीतला सन्नोदका स्निग्धशस्यतृणकोमलवृक्षप्राया शुक्लाम्बुगुणभूयिष्ठा ॥ नानावर्णा लघ्वश्मवती प्रविरलाल्पपाण्डुवृक्षप्ररोहाग्निगुणभूयिष्ठा ॥ रूक्षा भस्मरासभवर्णा तनुरूक्षकोटराल्परसवृक्षप्रायाऽनिलगुणभूयिष्ठा ॥ मृद्वी समा श्वभ्रवत्यव्यक्तरसजला सर्व्वतोऽसारवृक्षा महापर्व्वतवृक्षप्राया श्यामा चाकाशगुणभूयिष्ठा ॥
तत्र केचिदाहुराचार्य्याः । प्रावृट्-वर्षा-शरद्धेमन्त-वसन्त-ग्रीष्मेषु यथासङ्ख्यं मूल-पत्र-त्वक्-क्षीरसार-फलान्याददीतेति तत्तु न सम्यक् कस्मात् सौम्याग्नेयत्वाज्जगतः । सौम्यान्यौषधानि सौम्येषु ऋतुषु आददीताग्नेयान्याग्नेयेष्वेवमव्यापन्नगुणानि

भवन्ति ॥ सौम्यान्यौषधानि सौम्येषु ऋतुषु गृहीतानि सोमगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातान्यतिमधुरस्निग्धशीतानि जायन्ते । एतेन शेषं व्याख्यातम् ॥

तत्र पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातानि विरेचनद्रव्याण्याददीताग्न्याकाशमारुतगुणभूयिष्ठायां वमनद्रव्याणि । उभयगुणभूयिष्ठायामुभयतोभागानि । आकाशगुणभूयिष्ठायां संशमनान्येव बलवत्तराणि भवन्ति । सर्व्वाण्येव चाभिनवान्यन्यत्र मधु-घृत गुड पिप्पली विडङ्गेभ्यः । सर्व्वाण्येव सक्षीराणि वीर्य्यवन्ति तेषामसम्पत्तावतिक्रान्तसंवत्सराण्याददीतेति” ।)

नानारोगहरौषधादिर्यथा । सूत उवाच ।

“एवं धन्वन्तरिर्विष्णुः सुश्रुतादीनुवाच ह ।
हरिः पुनर्हरायाह नानारोगान् मर्द्दनान्” ॥

हरिरुवाच ।

“सर्व्वज्वरेषु प्रथमं कार्य्यं शङ्कर ! लङ्घनम् ।
क्वथितोदकपानञ्च तथा निर्व्वातसेवनम् ॥
अग्निस्वेदो ज्वरास्तेन नाशमायान्ति हीश्वर ! ।
वातज्वरहरः क्वाथो गुडूच्या मुस्तकेन च ॥
दुरालभयैव कृतः पित्तज्वरहरः शृणु ।
शुण्ठीपर्पटमुस्तैश्च बालकोशीरचन्दनैः ॥
साज्यं क्वाथं श्लेष्मजन्तु नश्यति सदुरालभः ।
सबालकः सर्व्वज्वरं शृणु शिव पर्पटः ॥
किराततिक्तकैर्वापि गुडूचीशुण्ठितिक्तकैः ।
पित्तज्वरहरः स्याच्च पटोल्यायोगमुत्तमम् ॥
बालकोशीरपाठाभिः कण्टकारिकृतः कृतैः
ज्वरनुच्च कृतः क्वाथस्तथा वै सुरदारुणा ॥
धान्यकनिम्बमुस्तानां समधुः स च शङ्कर ! ।
पटोलपत्रयुक्तश्च गुडूचीत्रिफलायुतः ॥
पीतोऽखिलज्वरहरः क्षुधाकृद्वातनुत्त्विदम् ।
हरीतकीपिप्पलीनामामलीचित्रकोद्भवम् ॥
चूर्णं ज्वरञ्च क्वथितं धान्यकोशीरपर्पटैः ।
आमलक्या गुडूच्या च मधुयुक्तं सचन्दनम् ॥
समस्तज्वरनुत् स्याच्च सन्निपातहरं शृणु ।
हरिद्राविम्बत्रिफलामुस्तकैर्देवदारुणा ॥
कषायं कटुरोहिण्या सपटोलं सपत्रकम् ।
त्रिदोषज्वरनुत् स्याच्च पीतन्तु क्वथितं जलम् ॥
कण्टकारीनागरेण गुडूच्या पुष्करेण च ।
लब्ध्वा नागबलाचूर्णं श्वासकासादिनुद्भवेत् ॥
कफवातज्वरे देयं जलमुष्णं पिपासिने ।
मद्यं वा मुद्गयूषं वा शाल्यन्नं वाथ यूषवत् ॥
ज्वरार्त्तमानुषे देयं ज्वरघ्नानि तदा भवेत् ।
विश्वपर्पटकोशीरघनचन्दनसाधितम् ॥
दद्यात् सुशीतलं वारि तृट्छर्द्दिज्वरदाहनुत् ।
बिल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथः स्याद्वातिके ज्वरे ॥
पाचनं पिप्पलीमूलं गुडूचीविश्वभेषजम् ।
वातज्वरे त्वयं क्वाथो दत्तः शान्तिकरः परः ॥
पित्तज्वरनुत् समधुः क्वाथः पर्पटनिम्बयोः ।
विधाने क्रियमाणेऽपि यस्य संज्ञा न जायते ॥
पादयोस्तु ललाटे वा दहेल्लौहशलाकया ।
तिक्ता पाठा पटोलञ्च विशाला त्रिफला त्रिवृत् ॥
सक्षीरो भेदनः क्वाथः सर्व्वज्वरविशोधनः” ॥

इति गारुडे १७९ अध्यायः ॥ * ॥

भगवानुवाच ।

“समभागात् प्रजायन्ते खल्लीटस्य कचाः शुभाः ।
दग्धहस्तिदन्तलेपात् माषाक्षीररसाञ्जनात् ॥
भृङ्गराजरसेनैव चतुर्भागेण साधितम् ।
केशवृद्धिकरं तैलं गुञ्जाचूर्णान्वितेन च ॥
जटा मांसी कुष्ठसुरायुक्तामभ्यङ्गतः शिव ! ।
गुञ्जाफलं समाप्यैव लेपनं चेन्द्रलुप्तनुत् ॥
आम्रास्थिचूर्णलेपाद्धि केशाः सूक्ष्मा भवन्ति वै ।
बद्धमूला घना दीर्घाः स्निग्धाः स्युर्नोत्पतन्ति च ॥
विडङ्गगन्धपाषाणसाधितं तैलमुत्तमम् ।
सचतुर्गुणगोमूत्रं समनःशिलमेव च ॥
शिरोऽभ्यङ्गाच्छिरोजन्मयूकालिख्याः क्षयं नयेत् ।
नवदग्धशङ्खचूर्णं हयसीसकलेपिता ॥
कचाः श्लक्ष्णा महाश्लक्ष्णा भवन्ति वृषभध्वज ! ।
भृङ्गराज लोहचूर्णं त्रिफला बीजपूरकम् ॥
नीली च करवीरञ्च गुडमेतैः समैः शृतम् ।
पलितानीह कृष्णानि कुर्य्याल्लेपान्महौषधम् ॥
आम्रास्थिमज्जा त्रिफला नीली च भृङ्गराजकम् ।
जीर्णं पक्वलौहचूर्णं काञ्जिकं कृष्णकेशकृत् ॥
चक्रमर्द्दकबीजानि कुष्ठमेरण्डमूलकम् ।
अत्युष्णकाञ्जिकं पिष्ट्वा लेपान्मस्तकरोगनुत् ॥
सैन्धवञ्च वचा हिङ्गु कुष्ठं नागेश्वरं तथा ।
शतपुष्पा देवदारु एभिस्तैलन्तु साधितम् ॥
गोपुरीषरसेनैव चतुर्भागेण संयुतम् ।
तत्कर्णभरणाद्रुद्र ! कर्णशूलं क्षयं नयेत् ॥
मेषमूत्रसैन्धवाभ्यां कर्णयोर्भरणात् शिव ! ।
कर्णयोः पूतिनाशः स्यात् कृमिस्रावादिकस्य च ॥
मालतीपुष्पदलयो रसेन भरणात् तथा ।
गोजलेनैव पूरेण कर्णस्रावो विनश्यति ॥
कुष्ठमाषमरीचानि तगरं मधु पिप्पली ।
अपामार्गोऽश्वगन्धा च बृहती सितसर्षपाः ॥
यवास्तिलाः सैन्धवञ्च पालिकोद्वर्त्तनं शुभम् ।
लिङ्गबाहुस्तनानाञ्च कर्णयोर्वृद्धिकृद्भवेत् ॥
कटुतैलं भल्लातकं बृहतीफलदाडिमम् ।
वल्कलैः साधितं लिप्तं लिङ्गं तेन विवर्द्धते” ॥

इति गारुडे १८० अध्यायः ॥ * ॥

हरिरुवाच ।

“शोभाञ्जनपत्ररसं मधुयुक्तं हि चक्षुषोः ।
भरणाद्रोगहरणं भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥
अशीतितिलपुष्पाणि जात्याश्च कुसुमानि च ।
भया निम्बामलका शुण्ठी पिप्पली तण्डुलीयकम् ॥
छायाशुष्कां वटिं कुर्य्यात् पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
मधुना सह सा चाक्ष्णोरञ्जनात्तिमिरादिनुत् ॥
विभीतकास्थिमज्जा तु शङ्खनाभिर्मनःशिला ।
निम्बपत्रमरीचानि अजामूत्रेण पेषयेत् ॥
पुष्पं राज्यन्धतां हन्ति तिमिरं पटलं तथा ।
चतुर्भागाणि शङ्खस्य तदर्द्धेन मनःशिला ॥
सैन्धवञ्च तदर्द्धेन एतत् पिष्टोदकेन तु ।
छायाशुष्कान्तु वटिकां कृत्वा नयनमञ्जयेत् ॥
तिमिरं पटलं हन्ति पिटकस्य महौषधम् ।
त्रिकटु त्रिफला चैव करञ्जस्य फलानि च ॥
सैन्धवं रजनी द्वे च भृङ्गराजरसेन हि ।
पिष्ट्वा तदञ्जनादेव तिमिरादिविनाशनम् ॥
अटरूषकमूलन्तु काञ्जिकापिष्टमेव च ।
तेनाक्षिभूरिलेपाच्च चक्षुःशूलं विनश्यति ॥
सतक्रं बदरीमूलं पीतमक्षिव्यथां हरेत् ।
सैन्धवं कटुतैलञ्च अपामार्गस्य मूलकम् ॥
क्षीरकाञ्जिकसंघृष्टं ताम्रपात्रे च तेन च ।
अञ्जनात् पिटकस्यैव नाशो भवति शङ्कर ! ॥
बिल्वनीलीकारमूलं पिष्टमश्वजलेन च ।
अनेनाञ्जितमात्रेण नश्यन्ति तिमिराणि हि ॥
पिप्पलीकतकश्चैव हरिद्रामलकं वचा ।
खदिरपिष्टवर्त्तिश्च अञ्जनं नेत्ररोगनुत् ॥
नीरपूर्णमुखो धौति हस्तद्वातेन योऽक्षिणी ।
प्रभाते नेत्ररोगैश्च नित्यं सर्व्वैः प्रमुच्यते ॥
शुक्लैरण्डस्य मूलेन पत्रेणापि प्रसाधितम् ।
छागदुग्धं सेकयुक्तं चक्षुषोर्वातरोगनुत् ॥
चन्दनं सैन्धवं वृद्धपलाशञ्च हरीतकी ।
पटोलकुसुमं नीली चक्रिका हरतेऽञ्जनात् ॥
गञ्जामूलं छागमूत्रघृष्टं तिमिरनुच्च तत् ।
रौप्यताम्रसुवर्णानां हस्तघृष्टं शलाकया ॥
घृतं तद्वमनं रुद्र ! कामलाव्याधिनाशनम् ।
घोषाफलमथाघ्रातं पीतं कामलनाशनम् ॥
दूर्व्वादाडिमपुष्पन्तु अलक्तकहरीतकी ।
नासाशिरारक्तनुत् स्याद्रसादे स्वरसेन हि ॥
सुपिष्टं शिङ्गिनीमूलं तद्रसेन वृषध्वज ! ।
नस्यदानाद्विनश्येत नासार्शो नीललोहित ! ॥
गव्यं घृतं सर्ज्जरसं रुद्र ! धन्याकसैन्धवम् ।
धुस्तूरकं गैरिकञ्च एतैः साधितसिक्थकम् ॥
सतैलं व्रणनुत् स्याच्च स्फुटिताघटितोधरे ।
जातीपत्रञ्च चर्व्वित्वा विष्टतं मुखरोगनुत् ॥
भक्षणात् केशरबीजस्य दन्ताः सुस्खलिताः स्थिराः ।
मुस्तकं कुष्ठमेला च यष्टीमधुकवालुकम् ॥
धन्याकमेतदशनान्मुखदुर्गन्धनुत् हर ! ।
कषायं कटुकं वापि तिक्तं वै तस्य भक्षणात् ॥
तैलयुक्तस्य नित्यं स्यात् मुखदुर्गन्धसंक्षयः ।
दन्तव्रणानि सर्व्वाणि क्षयं गच्छन्त्यनेन तु ॥
काञ्जिकस्य सतैलस्य गण्डूषकवलाश्रिते ।
ताम्बूलचूर्णदग्धस्य मुखस्य व्याधिनुच्छिव ! ॥
परित्यक्तं श्लेष्मणा शुण्ठीचर्व्वणतो यथा ।
मातुलुङ्गदलान्येला यष्टीमधु च पिप्पली ॥
जातीपत्रमथैषाञ्च चूर्णं लीढं तथा कृतम् ।
शेफालिकाजटायाश्च चर्व्वणं गलशुण्ठिनुत् ॥
नासाशिरारक्तकर्णं नश्येत् शङ्कर ! जिह्विका ।
रसं शिरीषबीजानां हलदस्य चतुर्गुणम् ॥
तेन पक्वेन भूतेश ! नस्यं मस्तकरोगनुत् ।
गलरोगा विनश्यन्ति नस्यमात्रेण तत्क्षणात् ॥
दन्तकीटविनाशः स्यात् गुञ्जामूलस्य चर्व्वणात् ।
काकजङ्घा स्नुही नीली कषायाम्रकमूलकम् ॥
दन्ताक्रान्तं दन्तजाश्च क्रिमीन्नाशयते शिव ! ।
घृतं कर्कटपादेन दुग्धोन्मिश्रेण साधितम् ॥
तेन चाभ्यक्तिता दन्ता कुर्य्युः कटकटामपि ।

लिप्ताः कर्कटपादेन केवलेनाथ वा द्विशः ॥
त्रिसप्ताहं वारिपिष्टा ज्योतिष्मत्याः फलस्य हि ।
मज्जाभया च शुक्रस्य लेपादङ्गक्षयश्चनुत् ॥
लोध्रकुङ्कुममञ्जिष्ठा लोहकालीयकानि च ।
यवतण्डुलमेतैश्च यष्टीमधुसमन्वितैः ॥
वारिपिष्टैर्वक्त्रलेपः स्त्रीणां शोभनवक्त्रकृत् ।
द्विभागच्छागदुग्धेन तैलप्रस्थन्तु साधितम् ॥
रक्तचन्दनमञ्जिष्ठालाक्षाणां कार्षकेण वा ।
यष्टीमधुकुङ्कुमाभ्यां सप्ताहान्मुखकान्तिकृत् ॥
शुण्ठी च पिप्पलीचूर्णं गुडूची कण्टकारिका ।
एभिश्च क्वथितं वारि पीतञ्चाग्निं करोति वै ॥
वातशूलक्षयञ्चैव सुरयक्षमखेश्वर ॥
करञ्जपर्पटोशीरं वृहती कटुरोहिणी ॥
गोक्षुरं क्वथितं त्वेभिर्वारि पीतं श्रमापहम् ।
दाहपित्तज्वरं शोषं मूर्च्छाञ्चैव क्षयं नयेत् ॥
मध्वाज्यपिप्पलीचूर्णं क्वथितं क्षीरसंयुतम् ।
पीतं हृद्रोगकासघ्नं विषमज्वरनुद्भवेत् ॥
क्वाथौषधीनां सर्व्वासां कर्षार्द्धं ग्राह्यमेव च ।
वयोऽनुरूपतो ज्ञेयो विशेषो वृषभध्वज ॥
दुग्धं पीतन्तु संयुक्तं गोपुरीषरसेन च ।
विषमज्वरनुत् स्याच्च काकजङ्घारसस्तथा ॥
सशुण्ठीक्वथितं क्षीरमजाया ज्वरनुद्भवेत् ।
यष्टीमधु मुस्तकञ्च सैन्धवं वृहतीफलम् ॥
एतैर्नस्यप्रदानाच्च निद्रा स्यात् पुरुषस्य च ।
मरीचमधुशुण्ठीनां नस्यान्निद्रा भवेच्छिव ॥
मूलन्तु काकजङ्घाया निद्राकृत् स्यात् शिरःस्थितम् ।
सिद्धं तैलं काञ्जिकेन तथा सर्ज्जरसेन च ॥
शीतोदकसमायुक्तं लेपात् सन्तापनाशनम् ।
शोणितज्वरदाहेभ्यो जातसन्तापनुत्तथा ॥
शूकशैवालमञ्चास्य शुण्ठीपाषाणभेदकम् ।
शोभाञ्जनं गोक्षुरं वा वरुणच्छदमेव च ॥
शोभाञ्जनस्य मूलञ्च एतैः क्वथितवारि च ।
दत्त्वा हिङ्गु यवक्षारं पीतं वातविनाशनम् ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं तथा भल्लातकं शिव ।
वार्य्येतैः क्वथितं पीतं वरशूलापसारकृत् ॥
अश्वगन्धामूलकाभ्यां सिद्धा वल्मीकमृत्तिका ।
एतया मर्द्दनात् रुद्र ! उरुस्तम्भः प्रशाम्यति ॥
वृहतीकस्य वै मूलं सपिष्टमुदकेन च ।
पीतं झिञ्झिनिवातस्य विपाटनकृदेव च ॥
पीतं तक्रेण मूलं च आर्द्रस्य तगरस्य च ।
हरेत् झिञ्झिनिवातं वै वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥
अस्थिसंहारमेकेन भक्तेन सह खादितम् ।
पीतं मांसरसेनापि वातनुच्चास्थिभङ्गहृत् ॥
घृतलिप्तं शम्बुकञ्च छागक्षीरेण संयुतम् ।
तल्लेपात् पादयोर्नश्येत् सन्तापो नात्र संशयः ॥
मध्वाज्यं सैन्धवं सिक्थं गुडगैरिकगुग्गुलैः ।
ससर्ज्जरसः स्फुटितः कोमलोऽङ्घ्रिश्च लेपनात् ॥
कटुतैलेन लिप्तो वै विधूमाग्नौ प्रतापितः ।
मृत्तिकाखादितः पादः समः स्याद्वृषभध्वज ! ॥
सर्ज्जरसः सिक्थकञ्च जीरकञ्च हरीतकी ।
तत्साधितघृताभ्यक्तो ह्यग्निदग्धव्यथापनुत् ॥
तिलतैलञ्चाग्निदग्धयवभस्मसमन्वितम् ।
अग्निदग्धव्रणं नश्येद्बहुशः कृतलेपतः ॥
नवनीतं माहिषञ्च दुग्धपिष्टतिलानि च ।
भल्लातकव्रणं नश्येत् दुष्कुष्ठं तस्य लेपतः ॥
शरपुङ्खा लज्जालुका पाठा चैषान्तु मूलकम् ।
जलपिष्टं तस्य लेपात् शस्त्राघातः प्रशाम्यति ॥
मूलञ्च काकजङ्घायास्त्रिरात्रेणैव शोषतः ।
पाकपूतिवेदनाश्च हन्ति वै रोहिते व्रणे ॥
सजलं तिलतैलञ्च अपामार्गस्य मूलकम् ।
तत्सेकदानान्नश्येत प्रहारोद्भववेदना ॥
अभया सैन्धवं शुण्ठिरेतत् पिष्टोदकेन तु ।
भक्षयित्वा ह्यजीर्णस्य नाशो भवति शङ्कर ! ॥
कटिबद्धं निम्बमूलमक्षिशूलहरं भवेत् ।
शणमूलं सताम्बूलं पीतमिन्द्रियकम्पहृत् ॥
अम्लसिद्धं हरिद्रा च श्वेतसर्षपमूलकम् ।
वीजानि मङ्गलदिने एषामुद्वर्त्तनं समम् ॥
सप्तरात्रप्रयोगेण शुभदेहकरं भवेत् ।
श्वेतापराजितापत्रं निम्बपत्ररसेन तु ॥
नस्यदानात् डाकिनीनां मातॄणां ब्रह्मरक्षसाम् ।
मोक्षः स्यान्मधुसारेण नस्याच्च वृषभध्वज ! ॥
मूलं श्वेतजयन्त्याश्च पुष्यर्क्षे तु समाहृतम् ।
श्वेतापराजितार्कस्य तथा चित्रस्य मूलकम् ॥
कृत्वा तु वटिकां नारी तिलकेन वशी भवेत् ॥
पिप्पली लोहचूर्णन्तु शुण्ठिश्चामलकानि च ।
समानि रुद्र ! जानीयात् सैन्धवं मधु शर्करा ॥
उदुम्बरप्रमाणेन सप्ताहं भक्षणात् समम् ।
पुमांश्च बलवान् स्याच्च जीवेद्वर्षशतद्वयम् ॥
ॐ ठ ठ ठ इति ।
सर्व्ववश्यप्रयोगेषु प्रयुक्तः सर्व्वकामकृत् ॥
संगृह्य वृक्षात् काकस्य निलयं प्रदहेच्च तत् ।
चिताग्नौ भस्म तच्छत्रोर्दत्तं शिरसि शङ्कर ! ॥
तमुच्चाटयते रुद्र ! शृणु त्वं योगमुत्तमम् ।
निक्षिप्तञ्च पुरीषं वै वनमूषिकचर्म्मणि ॥
कथ्या तन्तु निवद्धं वै कुर्य्यान्मलनिरोधनम् ।
कृष्णकाकस्य रक्तेन यस्य नाम प्रलिख्यते ॥
चूतदलेऽमेध्यमध्ये ततो निक्षिप्यते हर ! ।
स खाद्यते काकवृन्दैर्नारी पुरुष एव वा ॥
शर्करा मध्वजाक्षीरं तिलगोक्षुरकं समम् ।
पाण्डुत्वं नाशयेद्रुद्र ! आस्वादितमिदं हर ! ॥
उलूककृष्णकाकस्य चिह्नस्याथ समिष्कृतम् ।
रुधिरेण समायुक्तं ययोर्नाम्ना च हूयते ॥
तयोर्द्वयोर्महावैरं भवेन्नास्त्यत्र संशयः ।
भावितं कृष्णदुग्धेन रोहितस्य शशस्य च ॥
मांसं तत्साधितं तैलं तदभ्यङ्गश्च रोगनुत् ।
चन्दनोदकनस्यात्तु रोमोत्थानं भवेत् पुनः ॥
हस्ते लाङ्गलिकाकन्दं गृहीतं तेन लेपितम् ।
शरीरं येन स पुमान् वुद्धेर्दर्पं व्यपोहति ॥
पराक्रमेण युक्तस्य शूरस्य पुरुषस्य हि ।
वर्त्तिर्य्यस्य पुरीषेण कृतगर्भा तु भाविता ॥
मयूररुधिरेणैव जीवमाहरते शिव ॥
ज्वरितानां भुजङ्गानां विलस्थानामपीश्वर ! ॥
देहस्थिताग्नौ दग्धस्तु सर्पस्याजगरस्य हि ।
तद्भस्म सम्मुखे क्षिप्तं शत्रूणां भङ्गकृद्भवेत् ॥
मन्त्रेणानेन तत् क्षिप्तं महाभङ्गकरं रिपोः ।
ॐ ठ ठ ठ ठाही ठाही ठाही स्वाहा ।
ॐ उदर पाही पाही स्वाहा ॥
सुदर्शनाया मूलन्तु पुष्यर्क्षे तु समाहृतम् ।
निक्षिप्तं गृहमध्ये तु भुजङ्गा वर्जयन्ति तम् ॥
मार्ज्जारपलल विष्ठा हरितालञ्च भावितम् ।
छागमूत्रेण तल्लिप्तो मूषिको मूषिकान् हरेत् ॥
युक्तो हि मन्दिरे रुद्र ! नात्र कार्य्या विचारणा ।
त्रिफलार्ज्जुनपुष्पाणि भल्लातकशिरीषकम् ॥
लाक्षा सर्ज्जरसश्चैव विडङ्गश्चैव गुग्गुलुः ।
एतैर्धूपो मक्षिकाणां मशकानां विनाशनः.” ॥
इति गारुडे १८१ अध्यायः ॥ * ॥

हरिरुवाच ।

“ब्रह्मदण्डी वचा कुष्ठं प्रियङ्गुर्नागकेशरम् ।
दद्यात्ताम्बूलसंयुक्तं स्त्रीणां मन्त्रेण तद्वशम् ॥
ॐ नारायणायेति स्वाहा ।
ताम्बूलं यस्य दीयेत स वशी स्यात् समन्ततः ।
ॐ हरि हरि स्वाहा ॥
गोदन्तहरितालञ्च संयुक्तं काकजिह्वया ।
चूर्णं कृत्वा यस्य शिरे दीयते स वशी भवेत् ॥
श्वेतसर्षपनिर्म्माल्यं यद्गृहे तद्विवादकृत् ।
वैभीतकं शाखोटकं मूलं पत्रञ्च संयुतम् ॥
स्थाप्यते यद्गृहद्वारे तत्र वै कलहो भवेत् ॥
खञ्जरीटस्य मांसन्तु मधुना सह पेषयेत् ।
ऋतुकाले योनिलेपात् पुरुषो दासतामियात् ॥
अगुरु गुग्गुलुञ्चैव नीलोत्पलसमन्वितम् ।
गुडेन धूपयित्वा तु राजद्वारे प्रियो भवेत् ॥
श्वेतापराजितामूलं पिष्टं रोचनया युतम् ।
यं पश्येत्तिलकेनैव वशी कुर्य्यान्नृपालये ॥
काकजिह्वा वचा कुष्ठं निम्बपत्रं सकुङ्कुमम् ।
आत्मरक्तं सभाव्येय वशी भवति मानवः ॥
आरण्यस्य विडालस्य गृहीत्वा रुधिरं शुभम् ।
करञ्जतैले तद्भाव्य रुद्राग्नेः कज्जलं ततः ॥
पातयेत् पद्मसूत्रेण अदृश्यः स्यात् तदञ्जनात् ॥
ॐ नमः खड्गवज्रपाणये महायक्षसेनापतये
स्वाहा । ॐ वक्र क्रौं क्रौं वरसंयुक्ता त्वरिता
विद्या ॐ मातश्चौरं स्तम्भय स्वाहा ।
सहस्रं परिजप्या तु विद्येयं चौरवारिणी ।
महासुगन्धिकामूलं शुक्रं स्तम्भेत् कटौ स्थितम् ॥
ॐ नमः सर्व्वसत्त्वेभ्यो नमः सिद्धिं कुरु कुरु
स्वाहा ।
सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा करवीरस्य पुष्पकम् ।
स्त्रीणामग्रे भ्रामयेच्च क्षणाद्वै सा वशा भवेत् ॥
ब्रह्मदण्डी वचा पत्रं मधुना सह पेषयेत् ।
अङ्गलेपाच्च वनिता नान्यं भर्त्तारमिच्छति ॥
पुत्रदण्डीशिफा वक्त्रे क्षिप्ता शुक्रस्य स्तम्भनम् ।
मूलं जयन्त्या वक्त्रस्थं व्यवहारे जयप्रदम् ॥
अपराजिताशिफां दद्यान्नीलोत्पलसमन्विताम् ।
ताम्बूलेन प्रदानाच्च वशीकरणमुत्तमम् ॥
रोचनानागपुष्पाणि विल्वपुष्पं प्रियङ्गव ।
कुङ्कुमं चन्दनञ्चैव तिलकेन जगद्वशेत् ॥
ॐ क्रां गौरि देवि सौभाग्यपुत्रवश्यादि देहि मे ।

## औषध

ॐ क्लीँ वद्रि। देहि सौभाग्य सर्व्वत्रैलोक्यमोहनम्॥

दुरालभा वचा कुष्ठं कुङ्कुमञ्च शतावरी।
तिलतैलेन संयुक्तं योनिलेपाद्वशो नर॥

निम्बकाष्ठस्य धूपेन धूपयित्वा भगं स्त्रियाः।
सुभगा स्यात् सा च रुद्र। पतिर्दासो भविष्यति॥
माहिष नवनीतञ्च कुष्ठञ्च मधुयष्टिका।
सौभाग्य भगलेपाच्च पतिर्दासो भवेत्तदा॥
मधुयष्टिश्च तैर्दद्याद्गोक्षीर कण्टकारिका।
एतानि समभागानि पिबेदुष्णेन वारिणा॥
चतुर्भागावशेषेण गर्भसम्भवमुत्तमम्॥

मातुलुङ्गस्य वीजानि क्षीरेण सह भावयेत्॥
तत्पीत्वा लभते गर्भं नात्र कार्य्या विचारणा।
मातुलुङ्गस्य वीजानि मूलान्येरण्डकाम्य च॥
घृतेन सह संयोज्य पाययेत् पुत्रकाङ्क्षिणीम्।
अश्वगन्धाघृत दुग्ध क्वथितं पुत्रकारकम्॥

पलाशस्य तु वीजानि क्षौद्रेण सह पेषयेत्।
रजस्वला तु पीत्वा स्यात् पुष्पगर्भविवर्ज्जिता"॥
इति गारुडे १८२ अध्याय ॥*॥

हरिरुवाच।

"हरिताल यवक्षार पत्राङ्ग रक्तचन्दनम्।
जाती हिङ्गुलक लाक्षा पक्वतैलेन पेषयेत्॥
हरीतकीकषायेन हृष्ट्वा दन्तान् प्रलेपयेत्।
दन्ता सुर्लोहिता पुन श्वेता रुद्र। न संशय॥

मूलक स्वेदमग्नौ तु रस तस्य प्रपेषयेत्।
कर्णयो पूरणात्तेन कर्णस्रावो विनश्यति॥
अर्कपत्र गृहीत्वा तु मन्दाग्नौ तापयेच्छनैः।
निष्पीड्य पूरयेत् कर्णौ कर्णशूल विनश्यति॥
प्रियङ्गुमधुकाम्बष्ठाधातक्युत्पलपत्तिभि।
मञ्जिष्ठालोध्रलाक्षाभि कपित्थस्य रसेन च॥
पचेत्तैल तथा शुष्काक्षारो हिङ्गु महौषधम्।
शतपुष्पा वचा कुष्ठ दारु शिग्रु रसायनम्॥
सौवर्च्चल यवक्षार तथा सर्ज्जिकसैन्धवम्।
भुजग्रन्थि विड मुस्त मधुयुक्त चतुर्गुणम्॥
मातुलुङ्गरसस्तद्वत् कदल्याश्च रसो हि ते।
पक्वतैल हरेदाशु स्रावादींश्च न संशय॥
कर्णयोः कृमिनाश स्यात् कटुतैलस्य पूरणात्।
हरिद्रा निम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरिचानि च॥
विडङ्ग भद्रमुस्तञ्च सप्तम विश्वभेषजम्।
गोमूत्रेण च पिष्ट्वैव कृत्वा च वटिका हर।॥
अजीर्णञ्चन्द्रवेश्चैका हय विसूचिकापहम्।
पटलं मधुना हन्ति गोमूत्रेण तथार्ब्बुदम्॥
एषा च शङ्करी वर्त्ति सर्व्वनेत्रामयापहा"।
इति गारुडे १८३ अध्यायः ॥*॥

हरिरुवाच।

"वचा मासी च विल्वञ्च तगर पद्मकेशरम्।
नागपुष्प प्रियङ्गुञ्च समभागानि चूर्णयेत्॥
अनेन धूपितो मर्त्यः कामवद्विचरेन्महीम्।
कर्पूर देवदारुञ्च मधुना सह योजयेत्॥
लिङ्गलेपाच्च तेनैव वशीकुर्य्यात् स्त्रियं किल।
मैथुन पुरुषो गच्छेत् गृह्णीयात् स्वकमिन्द्रियम्॥
वामहस्तेन वामञ्च हस्त यस्या स्त्रिया क्षिपेत्।
आलिप्ता स्त्री वश याति नान्य पुरुषमिच्छति॥

## औषध

ओम् रक्तचामुण्डे अमुकं मे वशमानय वशमानय
ह्रीँ ह्रौँ ह्रः फट्।

इम मन्त्रायुत मन्त्र तिलकेन च शङ्कर।।
गोरोचनासयुतेन स्वरक्तेन वशीभवेत्॥

सैन्धव कृष्णलवण सौवीर मत्स्यपित्तकम्।
मधु सर्पि सितायुक्तं स्त्रीणां तद्भगलेपनम्॥
य पुमान् मैथुन गच्छेत् नान्या नारीं गमिष्यति॥

शङ्खपुष्पी वचा मासी सोमराजी च फणज्झकम्।
माहिष नवनीतञ्च गाढीकरणमुत्तमम्।
सनालानि च पद्मानि क्षीरेणाज्येन पेषयेत्॥
गुटिका शोषिता कृत्वा नारी योन्यां प्रवेशयेत्।
दशवार प्रसूतापि पुन कन्या भविष्यति॥

सर्षपाश्च वचा चैव मदनस्य फलानि च।
मार्जारविष्ठाधुस्तूरःक्लोकेशेन समन्वित॥
चातुर्थकहरो धूपो डाकिनीज्वरनाशन।
अर्ज्जुनस्य तु पुष्पाणि भल्लातकविडङ्गके॥
ह्रीवेरक सर्जरस सौवीर सर्षपास्तथा।
सर्वयूकामक्षिकाणा धूपो मशकनाशनः॥
भूलतायाश्च चूर्णेन स्तम्भः स्यात् योनिपूरणात्।
तेन लेपयतो योनौ भगस्तम्भश्च जायते"॥
इति गारुडे १८४ अध्याय ॥*॥

हरिरुवाच।

"साञ्जनञ्च घृत क्षौद्र लवण ताम्रभाजने।
घृष्ट मय समायुक्त चक्षुःशूलहर परम्॥

हरितकी वचा कुष्ठ पिप्पल्यो मरिचानि च।
विभीतकस्य वीजानि हरिताल मनःशिला॥
सर्व्वाक्षिरोगान्नश्येयुरजाक्षीरसमन्विता।
तत्क्षणात् पुष्पनाश स्यात् मालतीकुसुमाञ्जनात्॥
विडङ्ग सैन्धव कुष्ठ व्योम हिङ्गु मन शिला।
कासे श्वासे च हिक्कायां लिह्यात् क्षौद्र घृतप्लुतम्॥

पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं मधुना लेहयेन्नर।
नश्यते पीनसः कास श्वासश्च बलवत्तरः॥
समूलचित्रक भस्म पिप्पलीचूर्णक हरेत्।
कास श्वासञ्च हिक्काञ्च मधुमिश्र वृषध्वज।॥

नीलोत्पल शर्करा च मधुक पद्मक समम्।
तण्डुलोदकसमिश्र प्रशमेद्रक्तविक्रियाम्॥
शुण्ठी च शर्करा चैव तथा क्षौद्रेण संयुता।
कोकिलस्वरएव स्यात् गुलिकाभक्षमाचत॥

हरिताल शङ्खचूर्णं कदलीदलभस्मना।
एतद्दर्प्पेण चोद्वर्त्य लोमशातनमुत्तमम्॥
लवण हरितालञ्च तण्डुल्याश्च फलानि च।
लाक्षारससमायुक्त लोमशातनमुत्तमम्॥
सुधा च हरितालञ्च शङ्खश्चैव मनःशिला।
सैन्धवेन सहैकत्र छागमूत्रेण पेषयेत्॥
तल्लयोद्वर्त्तनादेव लोमशातनमुत्तमम्।

शङ्खमामलकीपत्र धातक्याः कुसुमानि च॥
पिष्ट्वा तत् पयसा सार्द्धं सप्ताह धारयेन्मुखे।
स्निग्धाः श्वेताश्च दन्ताश्च भवन्ति विमलप्रभा"॥
इति गारुडे १८५ अध्यायः ॥*॥

हरिरुवाच।

"शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम्।
हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते॥

## औषध

शक्ति तु शर्करा पीता नवनीतेन वृद्धिकृत्।
गुडस्य तु पुराणस्य पलमेकन्तु भक्षयेत्॥
प्रत्यह वर्षमेकन्तु निरन्तरमथो हर।।
स्त्रीसहस्रञ्च गच्छेच्च पुमान् बलयुतो हर।॥

कुष्ठ सुचूर्णित कृत्वा घृतमाक्षिकसंयुतम्।
भक्षणात् स्वप्नवेलायां बलीपलितनाशनम्॥

शतसीमाषगोधूम चूर्णं कृत्वा च पिप्पलीम्
घृतेन लेपयेद्गात्रमेभिः सार्द्धं विचक्षण॥
कन्दर्पसदृशो मर्त्यो भवते नित्यभक्षणात्।
यवास्तिला अश्वगन्धा मुषली शरला गुडम्॥
एभिश्च वटिका भक्ष्या तरुणो बलवान् भवेत्॥

हिङ्गु सौवर्चल शुण्ठीं पीत्वा तु क्वथितोदकैः
परिणामाख्यशूलञ्च अजीर्णञ्चैव नश्यति॥

धातकीं सोमराजीञ्च मधुना सह पेषयेत्।
दुर्ब्बलश्च भवेत् स्थूलो नात्र कार्य्या विचारणा।
शर्करामधुसयुक्तं नवनीत बली लिहेत्॥
क्षीराशी च क्षयी पुष्टिमेवाप्येरतुलां लभेत्॥

कुलीरचूर्णं सक्षीरं पीतञ्च क्षयरोगनुत्।
भल्लातक विडङ्गञ्च यवक्षारञ्च सैन्धवम्।
मन शिला शङ्खचूर्णं तैलपक्व तथैव च॥
लोमानि शातयत्येव नात्र कार्य्या विचारणा॥

मालूरस्य रस गृह्य जलौका तत्र पेषयेत्।
हस्तौ तु लेपयेत्तेन अग्निस्तम्भनमुत्तमम्॥
शाल्मलीरसमादाय खरमूत्रे निधाय तम्।
अग्न्यागारे क्षिपेत्तेन अग्निस्तम्भनमुत्तमम्॥

वायसी-उदर गृह्य मण्डूकवसया सह।
गुटिका कारयेत्तेन ततोऽग्नौ प्रक्षिपेद्वशी।
एवमेतत् प्रयोगेण अग्निस्तम्भनमुत्तमम्॥

मुखहीतकवचायुक्त मरीच नागर तथा।
चर्व्वित्वा च इम सद्यो जिह्वया ज्वलन लिहेत्॥

गोरोचनाभृङ्गराज चूर्णयित्व घृत समम्।
दिव्याम्भसस्तु स्तम्भ स्यात् मन्त्रेणानेन वै तथा॥
ॐ ह्रां अग्निस्तम्भन कुरु। ॐ नमो भगवते ज
स्तम्भय स्तम्भय सस सस केक केक चर चर
जलस्तम्भनमन्त्रोऽय जलं स्तम्भयते शिव।॥

मृगास्थि च गवास्थि च मृतनिर्माल्यमेव च।
अरेर्यो निखनेत् द्वारे पश्चत्वमुपयाति सः॥
ब्रह्मदण्डी तु पुष्येण खाने पाने वशीकरा॥
यष्टीमधुपलैकेन पक्वमुष्णोदक पिबेत्।
विसूचिकाञ्च हृच्छूल हरत्येव महेश्वर।॥
ॐ क्रः न।

मन्त्रोऽय हरते रुद्र। सर्पवृश्चिकज विषम्।
पिप्पली नवनीतञ्च शृङ्गवेरञ्च सैन्धवम्॥
मरीचं दधि कुष्ठञ्च नस्ये पाने विष हरेत्।
त्रिफलार्द्रककुष्ठञ्च चन्दन घृतसयुतम्॥
एतत्पानाच्च लेपाच्च विषनाशो भवेच्छिव।।
पारावतस्य चाक्षीणि हरिताल मनःशिला॥
एष योगो विष हन्ति वैनतेय इवोरगान्॥

सैन्धव त्र्यूषण चूर्णं दधिमध्वाज्यसयुतम्।
वृश्चिकस्य विष हन्ति लेपोऽय वृषभध्वज।।
ब्रह्मदण्डीशिखान् क्वाथ्य चूर्णं त्रिकटुकं पिबेत्।
नाशयेद्रुद्र! गुल्मानि निरोध रक्तमेव च॥

पीत्वा क्षीरं चौद्रयुतं नाशयेद्धृदयग्रहम् ॥
अटरूषकमूलेन भगं नाभिञ्च लेपयेत् ।
सुखं प्रसूयते नारी नात्र कार्य्या विचारणा ॥
शर्करा मधुसंयुक्ता पीता तण्डुलवारिणा ।
रक्तातिसारशमनं भवतीति वृषध्वज ।' ॥
इति गारुडे १८६ अध्यायः ॥ * ॥

हरिरुवाच ।

"मरीचं शृङ्गवेरञ्च कुटजत्वचमेव च ।
पानाच्च ग्रहणी नश्येत् शशाङ्कक्रतशेखर ! ॥
पिप्पलीं पिप्पलीमूलं मरीचं तगरं वचाम् ।
देवदारुरसं पाठा क्षीरेण सह पेषयेत् ॥
अनेनैव प्रयोगेण अतीसारो विनश्यति ॥
मरीचतिलपुष्पाभ्यामञ्जनं कामलापहम् ।
हरीतकीसमगुडा मधुना सह येजिता ।
विरेचनकरी रुद्र ! भवतीति न संशयः ॥
त्रिफला चित्रकं चित्रं तथा कटुकरोहिणी
उरुस्तम्भहरो ह्येष उत्तमन्तु विरेचनम् ॥
हरीतकीं शृङ्गवेरं देवदारु च चन्दनम् ।
क्वाथयेच्छागदुग्धेन अपामार्गस्य मूलकम् ॥
जङ्घाशूलमूरुस्तम्भं सप्तरात्रेण नाशयेत् ॥
नाटाञ्च शृङ्गवेरञ्च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥
गुग्गुलं गुडतुल्यञ्च गुलिकासुप्रयुज्य तु ।
वायुं स्नायुगतञ्चैव अग्निमान्द्यञ्च नाशयेत् ॥
शङ्खपुष्पीं तु पुष्येण समुद्धृत्य सपत्रिकाम् ।
समूलां छागदुग्धेन अपस्मारहरा पिबेत् ॥
अश्वगन्धाभये चैव उदकेन समं पिबेत् ।
रक्तपित्तं विनश्येत नात्र कार्य्या विचारणा ॥
हरीतकीकुष्ठचूर्णं कृत्वा आस्यञ्च पूरयेत् ।
शीतं पीत्वाथ पानीयं सर्व्वच्छर्द्दिनिवारणम् ॥
गुडूची पद्मकारिष्टं धन्याकं रक्तचन्दनम् ।
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्द्दिदाहतृष्णाघ्नमग्निकृत् ॥
ॐ क्रूँ नम इति ।
श्रोत्रे बद्धा शङ्खपुष्पीं ज्वरं मन्त्रेण वै हरेत् ।
ॐ जम्भनि स्तम्भनि विमोहय सर्व्वव्याधीन् मे
वज्रेण ठ ठ सर्व्वव्याधीन् मे वज्रेण फट् । इति ॥
पुष्पमष्टशतं जप्त्वा हस्ते दत्त्वाथ न स्पृशेत् ।
चातुर्थको ज्वरो रुद्र ! अन्ये चैव ज्वरास्तथा ॥
जम्बूफलं हरिद्रा च सर्पस्यैव च कञ्चुकम् ।
सर्व्वज्वराणां धूपोऽयं हर ! चातुर्थकस्य च ॥
करवीरं भृङ्गपत्रं लवणं कुष्ठकर्कटम् ।
चतुर्गुणेन मूत्रेण पचेत्तैलं हरेच्च तत् ॥
पामां विचर्च्चिकां कुष्ठमभ्यङ्गाद्धि व्रणानि वै ॥
पिप्पलीमधुपानाच्च तथा मधुरभोजनात् ॥
प्लीहा विनश्यते रुद्र ! तथा शूरणसेवनात् ॥
पिप्पलीञ्च हरिद्राञ्च गोमूत्रेण समन्विताम् ॥
प्रक्षिपेच्च गुदद्वारे अर्शांसि विनिवारयेत् ।
अजादुग्धमार्द्रकञ्च पीतं प्लीहापहं भवेत् ॥
सैन्धवञ्च विडङ्गानि सोमराजी तु सर्षपा ।
रजनी द्वे विषाञ्चैव गोमूत्रेण च पेषयेत् ॥
कुष्ठनाशश्च तद्दर्पात्त्रिम्बप्रभादनात्तथा" ॥
इति गारुडे १८७ अध्याय ॥ * ॥

हरिरुवाच ।

"रजनीकदलीक्षारलेपः सिध्मविनाशनः ।
कुष्ठस्य भागमेकन्तु पथ्याभागद्वयं तथा ॥
उष्णोदकेन संपीत्वा कटिशूलविनाशनम् ।
अभया नवनीतञ्च शर्करा पिप्पलीयुतम् ॥
पानादर्शोहरं स्याच्च नात्र कार्य्या विचारणा ।
अटरूषकपत्रेण घृतं मृद्वग्निना पचेत् ॥
चूर्णं कृत्वा तु लेपोऽयं अर्शोरोगहरः परः ।
गुग्गुलुं त्रिफलायुक्तं पीत्वा नश्येत् भगन्दरम् ॥
अजाजीं शृङ्गवेरञ्च दधिमण्डेन पाययेत् ।
लवणेन तु संयुक्तं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥
यवक्षारं शर्करा च मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥
चिताग्निः खञ्जरीटस्य विष्ठा फेनो हयस्य च ।
शोभाञ्जनं वासनेत्रं नरः एतैस्तु धूपितः ।
अदृश्यस्त्रिदशैः सर्व्वैः किं पुनर्मानवैः शिव ! ॥
तिलतैलं यवान्दग्ध्वा मसिं कृत्वा तु लेपयेत् ।
तेनैव सह तैलेन अग्निदग्धः सुखी भवेत् ॥
लज्जालु शरपुङ्खा च लेपः सान्द्रो हराग्निहा ।
पञ्चाङ्गं कनकं गृह्य श्लक्ष्णचूर्णन्तु कारयेत् ॥
दुग्धं धूपं तत्र दत्त्वा तत्क्षणात् पतते ध्रुवम् ।
ॐ नमो भगवते छिन्द छिन्द ज्वरस्य शिरः
प्रज्वलितपरशुपाणिपुरुषाय फट् ।
करे बद्धा तु निर्गुण्ड्या मूलं ज्वरहरं ततः ।
मूलञ्च श्वेतगुञ्जाया कृत्वा तत् सप्तखण्डकम् ॥
हस्ते बद्धं नाशयेच्च अर्शांस्येव न संशयः ॥
विष्णुक्रान्ताजमूत्रेण चौरव्याघ्रादिरक्षणम् ।
ब्रह्मदण्ड्यास्तु मूलेन सर्व्वकर्म्माणि कारयेत् ॥
त्रिफलायास्तु चूर्णन्तु साज्यं कुष्ठं विनाशयेत् ॥
आज्यं पुनर्णवाविल्वैः पिप्पलीभिश्च साधितम् ।
हरेत् हिक्काश्वासकासं पीतं स्त्रीणाञ्च गर्भकृत् ॥
भक्षयेच्चैवमादीनि पयसाज्येन पाचितम् ।
घृतशर्करया युक्तं शुक्रं स्यादक्षयं ततः ॥
विडङ्गं मधुकं पाठा मासीं सर्ज्जरसन्तथा ।
हरिद्रा त्रिफलाञ्चैव अपामार्गं मनःशिलाम् ॥
उदुम्बरं धातकीपुष्पं तिलतैलेन पेषयेत् ।
योनिं लिङ्गञ्च म्रक्षेत स्त्रीपुंसोः स्यात् प्रियं मिथः ॥
पुनर्णवामृता दूर्व्वा कनकं चेन्द्रवारुणी ।
वीजेनैषां जातिकाया रसेन रसमर्दनम् ॥
कृत्वा धमेच्च मूषायां रसमारणमीरितम् ॥
मध्वाज्यसहितं दुग्धं वलीपलितनाशनम् ॥
मध्वाज्यं गुडताम्रञ्च करेणामाक्षिकं रसम् ।
धमनाच्च भवेद्रौप्यं सुवर्णकरणं शृणु ॥
पीतं धुस्तूरपुष्पञ्च सीसकस्य पलं मतम् ।
पाठा लाङ्गलशाखा च मूलमावर्त्तनाद्भवेत् ॥
तैलं धुस्तूरवृक्षस्य तेन दीपं प्रदापयेत् ।
समाधावुपविष्टन्तु गगनस्थो न पश्यति ॥
रात्रौ च सार्षपं तैलं कृष्णं खद्योतसम्भवम् ।
तद्दीपं प्रज्वलेत् सम्यक् अग्निज्वालाकलापवत् ॥
कुञ्जरस्य मदात्तस्य स्वयं नेत्रे शिवाञ्जयेत् ।
संग्रामं जयते सोऽपि महाशूरश्च जायते ॥
दन्तं दुण्डुभसर्पस्य मुखे संगृह्य वै क्षिपेत् ।
तिष्ठते जलमध्ये तु निर्विकल्पः स्थले यथा ॥
कुम्भीरनेत्रदंष्ट्राणि सास्थीनि रुधिरं तथा ।
वशातैलसमायुक्तमेकत्र तन्नियोजयेत् ॥
आत्मानं म्रक्षयेत्तेन जले तिष्ठेद्दिनत्रयम् ।
कुम्भीरकस्य नेत्राणि हृदयं कच्छपस्य च ॥
मूषकस्य वशास्थीनि शिशुमारवशा तथा ।
एतान्येकत्र संस्थानि जले तिष्ठेत् यथा गृहे ॥
लोहचूर्णं तक्रपीतं पाण्डुरोगहरं भवेत् ।
तण्डुलीयकगोक्षुरमूलं पीतं पयोऽन्वितम् ॥
कामलादिहरं प्रोक्तं मुखरोगहरं तथा ।
जातीमूलं तक्रपीतं कोलिमूलन्तु जीर्णकृत् ॥
सतक्रकाशमूलं वा वाकुचीमूलमेव वा ।
काञ्जिकेन च वाकुच्या मूलं वै दन्तरोगनुत् ॥
अथेन्द्रवारुणीमूलं वारिपीतं विषादिहृत् ।
बला चातिबला यष्टी शर्करा मधुसंयुता ॥
बन्ध्यागर्भकरं पीतं नात्र कार्य्या विचारणा ॥
श्वेतापराजितामूलं पिप्पलीशुण्ठिसंयुतम् ।
परिपिष्टं शिरोलेपात् शिरःशूलविनाशनम् ।
शिरोरोगहरं लेपात् गुञ्जामूलं सकाञ्जिकम् ॥
निर्गुण्डिकाशिफां पीत्वा गण्डमालाविनाशनम् ।
केतकीपत्रजं क्षारं गुडेन सह भक्षयेत् ॥
तक्रेण शरपुङ्खा वा पीत्वा प्लीहा विनाशयेत् ॥
मातुलुङ्गस्य निर्यासं गुडाज्येन समन्वितम् ।
वातपित्तजशूलानि हन्ति वै पानयोगतः ।
शुण्ठीं सौवर्च्चलं हिङ्गु पीत्वा हृदयरोगनुत्" ॥
इति गारुडे १८८ अध्याय ॥ * ॥

हरिरुवाच ।

ॐ गं गणपतये स्वाहेति ।
"अयं गणपतेर्मन्त्रो धनविद्याप्रदायकः ।
इममष्टसहस्रञ्च जप्त्वा बद्धा शिखान्ततः ॥
व्यवहारे जयः स्याच्च शतं जप्यान्नृणां प्रियः ।
तिलानान्तु घृताक्तानां कृष्णानां रुद्र ! होमयेत् ॥
अष्टोत्तरसहस्रन्तु राजा वश्यस्त्रिभिर्दिनैः ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यामुपोष्याभ्यर्च्य विघ्नराट् ॥
तिलाक्षतानां जुहुयादष्टोत्तरसहस्रकम् ।
अपराजितः स्याद्युद्धे च अथ चेदुद्यमे शिव ! ॥
जप्त्वा चाष्टसहस्रन्तु ततस्त्वाष्टशतेन ह ।
शिखां बद्धा राजकुले व्यवहारे जयो भवेत् ॥
क्लीकारं सविसर्गञ्च प्रातः सूर्य्यसमद्युतिम् ।
स्त्रीणां ललाटे विन्यस्य वश्यतां नयते ध्रुवम् ॥
तथैव नासामुरसि ध्यातश्चैवोपकारकृत् ।
सुसमाहितचित्तेन न्यस्तन्तु प्रमदालये ॥
सकामां कामिनीं कुर्य्यात् स्खलन्मदजलाकुलाम् ।
यस्तु जुहुयादयुतं शुचिः प्रयतमानसः ॥
दृष्टिमात्रे सदा तस्य वशमायान्ति योषितः ॥
मनःशिला पत्रकञ्च सगोरोचनकुङ्कुमम् ॥
एभिः कृते च तिलके सदा स्त्री वशतामियात् ॥
सहदेवो भृङ्गराजः सितापराजिता वचा ।
तेनैव तिलकं कृत्वा त्रैलोक्यं वशतां नयेत् ।
गोरोचना मीनपित्तमाभ्याञ्च कृतवर्त्तिकाम् ॥
यः पुमांस्तिलकं कुर्य्याद्दामहस्तकनिष्ठया ।
स करोति वशं सर्व्वं त्रैलोक्यं नात्र संशयः ॥
गोरोचना महादेव ! ऋतुस्त्रीशोणितभाविता ।
तवो या कृततिलका सा नारी यं निरीक्षते ॥

तच्च सर्व्वं। वशं कुर्य्यान्नात्र कार्य्या विचारणा।
नागेश्वरश्च शैलेय त्वक्पत्रश्च हरीतकी ॥
चन्दनं कुष्ठसूक्ष्मैला रक्तशालिसमन्विता।
एतैर्धूपो वशकरः स्मरवाणः इवेश्वर। ॥
रतिकाले महादेव। पार्व्वतीप्रिय! शङ्कर।।
लिङ्गशुक्रं गृहीत्वा तु वामहस्तेन यः पुमान् ॥
कामिनीचरणं वामं लिम्पेत् स स्यात् स्त्रियाः प्रियः॥
सैन्धवञ्च महादेव। पारावतमलं मधु ॥
एभिर्लिप्तन्तु लिङ्ग वै कामिनीवशकृद्भवेत्।
पुष्पाणि पञ्चरक्तानि गृहीत्वा यानि कानि च ॥
तण्डुलञ्च प्रियङ्गुञ्च पेषयेदेकयोगतः।
अनेन लिप्तलिङ्गस्य कामिनीवशतामियात् ॥
हयलाला च मञ्जिष्ठा मालतीकुसुमानि च।
श्वेतसर्षपाण्येतैश्च लिप्तलिङ्ग स्त्रिया प्रियः ॥
मूलन्तु काकजङ्घाया दुग्धपीतन्तु शोषनुत्।
अश्वगन्धानागबलागुडमासनिषेविणाम् ॥
रूपं भवेत् यथा तद्वन्नवयौवनचारिणाम् ॥
लौहचूर्णसमायुक्तं त्रिफलाचूर्णमेव वा।
मधुना खादितं रुद्र! परिणामाख्यशूलनुत् ॥
क्वथितोदकपानन्तु शम्बूकाच्छारकं तथा।
मृगशृङ्गं ह्यमिदग्धं गव्याज्येन समन्वितम्।
पीतं हृत्पृष्ठशूलानां भवेन्नाशकरं शिव। ॥
हिङ्गु सौवर्च्चलं रुद्र। वृषध्वज। महौषधम्।
एभिस्तु क्वथितं वारि पीतं वै सर्व्वशूलनुत् ॥
अपामार्गस्य वै मूलं सामुद्रलवणान्वितम्।
आस्वादितमजीर्णस्य शूलस्य स्याद्विमर्द्दकम् ॥
वटरोहाङ्कुरो रुद्र। तण्डुलोदकघर्षितं।
पीतं सतक्रोऽतीसारं क्षयं नयति शङ्कर! ॥
अङ्कोठमूलं कर्षार्द्धं पिष्टं तण्डुलवारिणा।
सर्व्वातिसारग्रहणीं पीतं हरति भूतप। ॥
मरीचशुण्ठिकुटजत्वक्चूर्णन्तु गुडान्वितम्।
क्रमात्तद्द्विगुणं पीतं ग्रहणीव्याधिनाशनम् ॥
श्वेतापराजितामूलं हरिद्रासिक्थतण्डुलम्।
अपामार्गत्रिकटुकमेषान्तु वटिका शिव।।
विसूचिकामहाव्याधिं हरत्येव न संशय ॥
त्रिफला त्रिकटुश्चैव शिलाजतु हरीतकी।
एकैकमेषां चूर्णन्तु मधुना च विमिश्रितम्।
पीतं सर्व्वप्रमेहन्तु क्षयं नयति शङ्कर। ॥
अर्कक्षीरं प्रस्थमेकं तिलतैलं तथैव च।
मनःशिला मरीचानां सिन्दूरस्य पलं पलम् ॥
चूर्णं कृत्वा ताम्रपात्रे त्वातपे शोषयेत्ततः।
पीतं स्नुहीगतं दुग्धं सैन्धवं शूलनुद्भवेत् ॥
त्रिकटुत्रिफलायुक्तं पलाशाष्टकसैन्धवम्।
मनःशिला निम्बपत्रं जातीपुष्पमजापयः ॥
तन्मूत्रं शङ्खनाभिञ्च चन्दनं घर्षयेत्ततः।
एभिश्च वटिकां कृत्वा अक्षिणी चाञ्जयेत्ततः ॥
नश्यते पटलं काचं पुष्पञ्च तिमिरादिकम् ॥
बिभीतकस्य वै चूर्णं समधु श्वासनाशनम् ॥
पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं मधुसैन्धवसंयुतम्।
सर्व्वरोगज्वरश्वासशोषपीनसहृद्भवेत् ॥
देवदारोश्च वै चूर्णं अजामूत्रेण भावयेत्।
एकविंशति वै वारमक्षिणी तेन चाञ्जयेत् ॥

राज्यन्धता पटलता नश्येदिति विनिश्चयः।
पिप्पली केतकं रुद्र। हरिद्रामलकं वचा ॥
सर्व्वाक्षिरोगा नश्येयुः सक्षीरादञ्जनात्ततः ॥
काकजङ्घाशिग्रुमूले मुखेन विधृते शिव!।
चर्व्वित्वा दन्तरोगाणां विनाशो हि भवेद्धर" ! ॥
इति गारुडे १८९ अध्यायः ॥ * ॥

हरिरुवाच।

"पीतं सारं गुडूच्याश्च मधुना च प्रमेहनुत्।
पीतं गोक्षालियामूलं तिलदध्याज्यसंयुतम् ॥
निरुद्धमूत्रं क्वथितं प्रवर्त्तयति शङ्कर!।
तथा हिक्कां हरेत् पीता सौवर्च्चलयुता सुरा ॥
गोरक्षकर्क्कटीमूलं पिष्टं वास्योदकेन च।
पीतं दिनत्रयेणैव नाशयेत् दन्तशर्क्कराम् ॥
पिष्टं वै मालतीमूलं ग्रीष्मकाले समाहृतम्।
साधितं छागदुग्धेन पीतं शर्क्करयान्वितम् ॥
हरेन्मूत्रनिरोधञ्च हरेद्वै पाण्डुशर्क्कराम् ॥
द्विजयष्ट्याश्च वै मूलं पिष्टं तण्डुलवारिणा।
गण्डमाला हरेल्लेपात् कुरण्डगलगण्डकम् ॥
रसाञ्जनहरीतक्याश्चूर्णं तेनैव गुण्डनात्।
नश्येद्वै पुरुषव्याधिर्नात्र कार्य्या विचारणा ॥
करवीरमूललेपात् लेपात् पूगफलस्य च।
पुव्याधिर्नश्यते रुद्र। योगमन्यं वदाम्यहम् ॥
दन्तीमूलं हरिद्रा च चित्रकं तस्य लेपनात्।
भगन्दरविनाशः स्यादन्ययोगं वदाम्यहम् ॥
जलौकाजग्धरक्तान्तु भगन्दरमुमापते। ॥
त्रिफलाजलधौतञ्च मार्जारास्थिविलेपितम्।
ततो न प्रस्रवेत् रुद्र। नात्र कार्य्या विचारणा ॥
हरिद्रा त्वेकवारन्तु स्नुहीक्षीरेण भाविता।
झटित्यर्शो निपतति तल्लेपात् वृषभध्वज! ॥
घोषाफलं सैन्धवञ्च तल्लिप्ताशं पतेत्तथा।
गव्याज्यं साधितं पीतं पलाशक्षारवारिणा ॥
त्रिगुणेन त्रिकटुकम्मर्शांसि क्षयये च्छिव!।
बिल्वस्य च फलं दग्धं रक्तार्शसो विनाशनम् ॥
जग्ध्वा कृष्णतिलान्येव नवनीतयुतानि च।
यवक्षारं शुण्ठिचूर्णं युक्तं तुल्यघृतान्वितम् ॥
लीढमग्निं करोत्येष प्रत्यूषे वृषभध्वज।।
शुण्ठ्या च क्वथितं वारि पीतञ्चाग्निं करोति वै ॥
हरीतकी सैन्धवञ्च चित्रकं रुद्र! पिप्पली।
चूर्णमुष्णोदकेनैषां पीतञ्चातिक्षुधाकरम् ॥
साज्यं शूकरमांसं वै पीतं चातिक्षुधाकरम्" ॥
इति गारुडे १९० अध्यायः ॥ * ॥

हरिरुवाच।

"हस्तिकर्णस्य वै मूलं गृहीत्वा चूर्णयेद्धर।।
सर्व्वरोगविनिर्मुक्तं चूर्णं पलशतं शिव। ॥
सक्षीरं भक्षितं कुर्य्यात् समाहेन वृषध्वज।।
नरं श्रुतिधरं शूरं मृगेन्द्रगतिविक्रमम् ॥
पद्मगौरप्रतीकाशं युक्तं दशशतायुषा।
षोडशाब्दाकृतिं रुद्र। सततं दुग्धभोजनम् ॥
मधुसर्पिः समायुक्तं जग्धमायुष्करं भवेत्।
तज्जग्धं मधुना सार्द्धं दशवर्षसहस्रिणम् ॥
कुर्य्यान्नरं श्रुतिधरं प्रमदाजनवल्लभम्।
दध्ना नित्यं भक्षितन्तु वपुर्देहकरं शिव। ॥

कृष्णकेशसमायुक्तं नरं वर्षसहस्रिणम्।
तच्च काञ्जिकसंयुक्तं नरं कुर्य्याच्च भक्षितम् ॥
शतशर्म दिव्यदेहं वलीपलितवर्जितम्।
जग्धं त्रिफलया युक्तं चक्षुष्मन्तं करोति वै ॥
अन्धः पश्येत् चूर्णस्य साज्यस्यैव तु भक्षणात्।
महिषक्षीरसंयुक्तं तल्लेपं कृष्णकेशकृत् ॥
खल्लीटस्य च वै केशा भवन्ति वृषभध्वज।।
तैलयुक्तेन चूर्णेन वलीपलितवर्जितम् ॥
तदुद्वर्त्तनमात्रेण सर्व्वरोगैः प्रमुच्यते।
सच्छागक्षीरचूर्णेन दृष्टिः षण्मासतोऽञ्जनात् ॥
पलाशस्य तु वीजानि श्रावणे वितुषाणि च।
गृहीत्वा नवनीतेन तेषां चूर्णन्तु भक्षयेत् ॥
कर्षार्द्धमेव कुल्माषं नत्वा नित्यं हरिं प्रभुम्।
यष्टिं पुराणधान्यं स्यादम्बुवर्ज्जं वृषध्वज। ॥
जीवेद्वर्षसहस्राणि वलीपलितवर्जितः ॥
भृङ्गराजस्य वै चूर्णं पुष्यर्क्षे तु समाहृतम्।
विड़ालपदमात्रन्तु ससौवीरञ्च भक्षयेत्।
मासमात्रप्रयोगेण वलीपलितवर्जितं ॥
शतानि पञ्च जीवेच्च नवनागबलो भवेत्।
भवेत् श्रुतिधरो रुद्र। पुष्यर्क्षे चैव भक्षयेत्" ॥
इति गारुडे १९१ अध्यायः ॥ * ॥

हरिरुवाच।

"निर्व्रणः स्यात् पूयहीनः प्रहारो घृतपूरितः।
अपामार्गस्य वै मूलं हस्ताभ्याञ्च विमर्द्दयेत् ॥
तद्रसेन प्रहारस्य रक्तस्रावो न पूरणात्।
रुद्र। लाङ्गलिकामूलं छिन्नलस्य तथैव च ॥
तेन व्रणमुखं लिप्तं शल्यो निःसरति व्रणात्।
चिरकालप्रविष्टोऽपि तेन मार्गेण शङ्कर।॥
दध्ना माहिषेण युक्तं जग्धं कोद्रवभक्तकम्।
कङ्गुमूलस्य वै चूर्णं दत्तं नाडीव्रणापहम् ॥
ब्रह्मयष्टिफलं पिष्टं वारिणा तेन लेपतः।
तेन दुष्टरक्तदोषः प्रणश्यति न संशयः ॥
यवभस्म विडङ्गञ्च गन्धपाषाणमेव च।
शुण्ठिरेषाञ्चैव चूर्णं भावितं रुधिरेण वै।
हस्तलाशस्य तल्लिप्तं अर्व्वुदं विद्रवेच्छिव! ॥
शोभाञ्जनस्य वीजानि अतसीमसिना सह।
गोरसन्तु प्रपिष्टान्यत् ग्रन्थिकं नाशयेद्धि वै ॥
श्वेतापराजितामूलं पिष्टं तण्डुलवारिणा।
तेन नस्यप्रदानात् स्याद्भूतवन्दस्य विद्रवः ॥
अगस्त्यपुष्पनस्यो वै समरीचश्च भूतहृत् ॥
भुजङ्गवर्म्मं वै हिङ्गु निम्बपत्राणि वै यवा।
गौरसर्षप एभिः स्याल्लेपो भूतहरः कृतः ॥
गोरोचना मरीचानि पिप्पली सैन्धवं मधु।
अञ्जनं कृतमेभिः स्यात् ग्रहभूतहरं शिव! ॥
गुग्गुलूकपुच्छाभ्यां धूपो ग्रहहरः कृतः।
चातुर्थिकज्वरैर्मुक्तः कृष्णवस्त्रावगुण्ठितः" ॥
इति गारुडे १९२ अध्यायः ॥ * ॥

हरिरुवाच।

"श्वेतापराजितापुष्परसेनाक्ष्णोश्च पूरणे।
पटलं नाशमायाति ह्येतदुत्तममौषधम् ॥
मूलं गोक्षुरकस्यैव चर्व्वित्वा नीललोहित!।
दन्तकीटव्यथां नश्येदन्धासुरविमर्द्दन! ॥

नारी पुष्यदिने पीत्वा गोक्षीरेणोपवासत ॥
श्वेतार्कस्य तु वै मूलं तस्यास्तद्गुल्मशूलनुत् ॥
श्वेतार्कमूलं विधिना गृहीत पूर्व्वसंस्थितम् ।
कृतमुद्रा च ललना कटौ बद्धा नरोऽथ वा ।
नारी पुत्रं हि लभते सुरते वृषभध्वज ! ।
हस्तबद्ध पलाशस्य अपामार्गस्य वा हर ! ।
मूलं सर्व्वज्वरहर भूतप्रेतादिनुद्भवेत् ॥
पीत वृश्चिकमूलन्तु पर्य्युषितजलेन वै ।
साद्धं विनाशयेद्दाहज्वरञ्च परमेश्वर ! ।
शिखायाञ्चैव तद्बद्धं भवेदेकाहिकादिनुत् ॥
एतत् सकाञ्जिकं पीत रक्तकुष्ठज्वरादिनुत् ।
वास्योदकेन पीत तद्दृष्टिविषहर भवेत् ॥
यस्य लज्जालुकामूलं दीयते बद्धचेतसा ।
साद्धं स वै वशं याति पुमान् स्त्री वा न संशय ॥
पिष्ट्वा गव्यघृतेनैव पाठामूल पिबेत्तु य ।
गरं विषं तस्य नश्येन्नात्र कार्य्या विचारणा ॥
वास्योदकयुत मूल शिरीषस्य यथा तथा ।
रक्तचित्रकमूलस्य शमन भरणाद्धर ! ॥
कर्णयोः कामलाव्याधिविनाश स्यान्न संशय ॥
श्वेतकोकिलाक्षमूलं छागीक्षीरेण संयुतम् ।
त्रिसप्ताहेन वै पीतं क्षयरोग क्षय नयेत् ।
नारिकेलस्य वै पुष्प छागीक्षीरेण संयुतम् ।
पिबेच्च त्रिविधस्तस्य रक्तवातो विनश्यति ॥
कुर्य्यात् सुदर्शनामूल आदित्ये तु समाहृतम् ।
कण्ठबद्ध ह्याहिकादियहभूतविनाशनम् ॥
पुष्ये धवलगुञ्जाया गृहीतं मूलमुत्तमम् ।
मुखे तु निहित रुद्र ! हरेत् गरविष बहु ॥
हस्ते बद्ध काण्डनुच्च कण्ठबद्ध ग्रहादिनुत्” ॥
इति गारुडे १९३ अध्याय ॥ * ॥

हरिरुवाच ।

“अपराजिताया मूलञ्च गोमूत्रेण समन्वितम् ।
पीतञ्चापि हरत्येव गण्डमाला न संशय ॥
सथेन्द्रवारुणीमूल विधिना पीतमीश्वर ! ।
शिङ्घ्येरण्डक रुद्र ! शूकशिम्बीसमन्वितम् ॥
शीतोदकञ्च तन्नस्यो बाहुग्रीवाव्यथा हरेत् ॥
माहिष नवनीतञ्च अश्वगन्धा च पिप्पली ।
वचा कुष्ठ स्वयं लेपो लिङ्गश्रोत्रस्तनवर्द्धकृत् ॥
कुष्ठनागबलाचूर्णं नवनीतसमन्वितम् ।
तल्लेपो युवतीनाञ्च कुर्य्यान्मनोहरं स्तनम् ॥
विटपेन्द्रवारुणीमूल यस्य नाम्ना समुद्धरेत ।
निक्षिप्यते समुत्पाद्य तस्य पीडा विनश्यति ॥
पुनर्णवायाः शुक्लाया मूल तण्डुलवारिणा ।
पीतं विद्रधि नश्येच्च नात्र कार्य्या विचारणा ॥
कदली यवक्षारन्तु पानीयेन प्रसाधितम् ।
तदास्वादनान्नश्यन्ति उदरव्याधयोऽखिला ॥
वदरीकारवीमूल गुडाढ्येन समन्वितम् ।
अम्भिना साधित जग्ध्वा क्रमीन् सर्व्वान् हरेत् शिव ॥
नित्य निम्बदलानाञ्च चूर्णमामलकस्य च ।
प्रत्यूषे भक्षयेच्चैव तस्य कुष्ठ विनश्यति ॥
हरीतकी विडङ्गञ्च हरिद्रा सितसर्षपाः ।
सोमराजस्य वीजानि करञ्जस्य च सैन्धवम् ।
गोमूत्रपिष्टान्येतानि कुष्ठरोगहराणि च ॥

एकञ्च त्रिफलाभागस्तथा भागद्वयं शिव ! ।
सोमराजस्य वीजाना जग्ध पथ्या च दद्रुनुत् ॥
अम्लतक्र सगोमूत्र क्वथितं लवणान्वितम् ।
कास्यघृष्टं स्वर लेपात् कुष्ठदद्रुविनाशनम् ॥
हरिद्रा हरितालञ्च दूर्व्वागोमूत्रसैन्धवम् ।
अय लेपो हन्ति दद्रु पामान वै गरं तथा ॥
सोमराजस्य वीजानि नवनीतयुतानि च ।
मधुमासादितानि स्यु शुक्लकुष्ठहराणि वै ।
तक्रानुपानतो रुद्र ! नात्र कार्य्या विचारणा ॥
सितापराजितामूल वर्त्तितं वास्यवारिणा ।
तल्लेपो रुद्र ! मासेन शुक्लकुष्ठविनाशन ॥
माहिष नवनीतञ्च सिन्दूरञ्च मरीचकम् ।
पामा विलेपिता नश्येद्दद्रूणापि वृषध्वज ! ॥
विशुष्कगम्भारिमूल पक्वक्षीरेण संयुतम् ।
भक्षितं शुक्रपित्तस्य विनाशकरमीश्वर ! ॥
मूलकस्य च वीजानि अपमार्गरसेन वै ।
पिष्टानि तेन लेपेन सिक्लिका रुद्र ! नश्यति ॥
कदलीक्षारसंयुक्ता हरिद्रा सिक्लिकापहा ।
रम्भापामार्गयो क्षार एकत्तैलविमिश्रित ॥
तदभ्यङ्गान्महादेव ! सद्य सिध्म विनश्यति ।
कुष्माण्डनालक्षारन्तु सगोमूत्रञ्च तत्त्वच ॥
जलपिष्टा हरिद्रा च सिद्धा मन्दानलेन हि ।
माहिषेण पुरीषेण वेष्टिता वृषभध्वज ! ॥
अस्या उद्वर्त्तन कुर्य्यादङ्गगौरत्वमीश्वर ! ।
तिलसर्षपसंयुक्त हरिद्राद्वयकुष्ठकम् ॥
तेनोद्वर्त्तितदेह स्यादुज्ज्वलः सुरभि पुमान् ।
मनोहरश्चानुदिन दूर्व्वाणा काकजङ्घया ॥
अर्ज्जुनस्य तु पुष्पाणि जम्बुपत्रयुतानि च ।
सलोध्राणि च तल्लेपो देहदुर्गन्धता हरेत् ॥
मन्दोष्णलोध्रनीर वै चूर्णन्तु कनकस्य च ।
तेनोद्वर्त्तितदेहस्य हरेद्ग्रीष्मप्रसारिकाम् ॥
त्वग्दोषश्चैव देवेन्द्र ! घर्म्मदोषञ्च नश्यति ।
काकजङ्घोद्वर्त्तनञ्च अङ्गरागकरं भवेत् ॥
यष्टीमधु शर्करा च वासकस्य रसो मधु ।
एतत् पीत रक्तपित्तकामलापाण्डुरोगनुत् ॥
रक्तपित्त हरेत् पीतो वासकस्य रसो मधु ।
स्वापकाले तोयपानात् पीनस प्रहित हरेत् ॥
विभीतकस्य वै चूर्ण पिप्पलीसैन्धवस्य च ।
पीत सकाञ्जिक हन्ति स्वरभेद महेश्वर ! ॥
चूर्णमामलकस्यैव पीतं शूलहर परम् ॥
मन शिला वलामूल काकपर्णञ्च गुग्गुलुम् ।
जातीपत्र कोशिपत्र तथा चैव मन शिला ।
एभिश्चैव कृता वर्त्तिर्वंदरात्नो महेश्वर ! ॥
धूमपान काशहर नात्र कार्य्या विचारणा ॥
त्रिफलापिप्पलीचूर्णं भक्षित मधुना युतम् ॥
भोजनादौ हि समधु पिपासा त्वरित हरेत् ।
विल्वमूलञ्च समधु गुडूचीक्वथित जलम् ॥
पीत हरेच्च त्रिविध छर्दिं वै नात्र संशय ।
पीता दूर्व्वा छर्दिनुत् स्यात् पिष्टा तण्डुलवारिणा” ॥
इति गारुडे १९४ अध्याय ॥ * ॥

हरिरुवाच ।

“पुनर्णवाया मूलञ्च श्वेतं पुष्ये समाहृतम् ।
वारिपीतं तस्य पार्श्वे भवनेषु न पन्नगा ॥
ताद्धं मूर्त्तिं वहेद्यो वै मण्डूकदन्तनिर्म्मिताम् ।
स पन्नगैर्न दृश्येत यावज्जीव वृषध्वज ! ॥
पिबेद्रुद्रमूलं य पुष्यर्क्षे रुद्र ! वारिणा ।
तस्मिन्नपास्तदशना नागा स्युर्नात्र संशय ॥
पुष्ये लज्जालुकामूले हस्तबद्धे तु पन्नगान् ।
गृह्णीयात्क्षिपतो वापि नात्र कार्य्या विचारणा ॥
पुष्ये श्वेतार्कमूलञ्च पीत शीतेन वारिणा ।
नश्येत दन्तकविष करवीरादिजं विषम् ॥
महाकालस्य वै मूल पिष्ट तत् काञ्जिकेन वै ।
वोश्रमण्डलिकानाञ्च तल्लेपो हरते विषम् ॥
तण्डुलीयकमूलञ्च पिष्ट तण्डुलवारिणा ।
घृतेन सह पीतन्तु हरेत् सर्पविषाणि च ॥
नीली लज्जालुकामूल पिष्ट तण्डुलवारिणा ।
पीत्वा दद्रुकविष नश्येदेकेन चोभयो ॥
कुष्माण्डकफलरस सगुड सहशर्कर ।
पीत सदुग्धो मोहन्तु तद्दष्टस्य विषस्य वै ॥
तथा काद्रवभूतस्य मोहस्य हर एव च ।
यष्टीमधुसमायुक्ता पीता च सितशर्करा ॥
सदुग्धा च त्रिरात्रेण मूषाविषहरा भवेत् ॥
चुम्बुकत्रयपानाच्च वारिणा शीतलस्य वै ।
ताम्बूलजग्धरोमाञ्च मुखलाला विनश्यति ॥
घृतं सशर्करं पीत्वा मद्यपानमदो न वै ।
कृष्णाङ्कोठस्य मूलेन पीतमुत्क्वथित जलम् ।
तती नश्येद्दारुविष त्रिरात्रेण महेश्वर ! ॥
उष्ण गव्यघृत पीत सैन्धवेन समन्वितम् ।
नाशयेत्तन्महादेव ! वेदना वृश्चिकोद्भवाम् ॥
कुसुम्भ कुङ्कुमञ्चैव हरितालं मन शिला ।
करञ्जपिष्टितञ्चैव अर्ककीटञ्च शाल्मली ॥
विष नृणा विनश्येत एतेषा भक्षणाच्छिव ! ।
दीपतैलप्रदानाच्च दष्टे वृश्चिकजे शिव ! ॥
खर्ज्जुरकविष नश्येत्तदा वै नात्र संशय ।
दंशस्थान वृश्चिकस्य रुद्र ! गुग्गुलुधूपितम् ॥
विष नश्येत्ततो रुद्र ! नात्र कार्य्या विचारणा ॥
अङ्कोठपत्रधूपेन नश्येन्मूषिकज विषम् ॥
नागेश्वरमरीचानि शुण्ठी तगरपादिका ।
नश्येन्मधुमक्षिकाया एतेषा लेपतो विषम् ॥
शतपुष्पा सैन्धवञ्च साज्य वा तेन लेपत ।
शिरीषस्य च वीजं वै सितक्षीरेण घर्षितम् ॥
तल्लेपेन महादेव ! नश्येदुन्दुरुजं विषम् ॥
ज्वलिताग्निना विसेकी तथा दर्द्दुरजं विषम् ॥
धुस्तूरकरसोन्मिश्र क्षीराज्यगुडपानत ।
शूना विष विनश्येत शशाङ्ककृतशेखर ! ॥
वटनिम्बशमीनाञ्च वल्कलै क्वथितं जलम् ।
तत्सेकान्नखदन्ताना नश्येद विषवेदनाम् ॥
देवदारु हरिद्रा च गैरिकस्य च लेपनात् ।
नागेश्वर हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा देवदारुकम् ।
एभिर्लेपाद्विनश्येत लूताविषमुमापते” ! ॥
इति गारुडे १९५ अध्याय ॥ * ॥

हरिरुवाच ।

“एक पुनर्णवामूल अपामार्गस्य वा शिव ! ।
सरस योनिविक्षिप्त वराङ्गस्य व्यथा हरेत् ॥

प्रसूतिवेदनाश्चैव तरुणीनां व्यथां हरेत् ॥
भूमिकुष्माण्डमूलं वै शालितण्डुलवारिणा ।
सप्ताहं दुग्धपीतं स्यात् स्त्रीणां बहुपयस्करम् ॥
रुद्रेन्द्रवारुणीमूललेपात् स्त्रीस्तनवेदना ।
नश्येत् हतविपक्वा च कार्य्यावश्यं तु पालिका ।
भक्षिता सा महेशान । योनिशूलं विनाशयेत् ॥
प्रलेपिता कारवेल्लमूलेनैव विनिर्गता ।
योनिः प्रवेशमायाति नात्र कार्य्या विचारणा ॥
नीलीपटोलमूलानि साज्यानि तिलवारिणा ॥
पिष्टान्येषां प्रलेपो वै ज्वालागर्द्दभरोगनुत् ॥
पाठामूलं रुद्र । पीतं पिष्टं तण्डुलवारिणा ।
पामरोगहरं स्याच्च कुष्ठपानन्तथैव च ॥
वास्योदकञ्च समधु पीतमन्तर्गतस्य वै ।
पामरोगस्य सन्तापनिर्वृत्तिं कुरुते शिव ! ॥
कदलीमेकुचं पीतं पिष्टा तण्डुलवारिणा ।
स्त्रीणाञ्चैव महादेव । रक्तस्रावं हि वारयेत् ॥
घृततुल्या रुद्र । लाक्षा पीता क्षीरेण वै सह ।
प्रदरं हरते रोगं नात्र कार्य्या विचारणा ॥
द्विजयष्टीत्रिकटुकं चूर्णं पीतं हरेच्छिव ! ।
तिलक्वाथेन संयुक्तं रक्तगुल्मं स्त्रिया हर ! ॥
कुसुमस्य निबद्धञ्च तरुणीनां महेश्वर ! ।
रक्तोत्पलस्य वै कन्दं शर्करातिलसंयुतम् ॥
पीतं सशर्करं स्त्रीणां धारयेत् गर्भपातनम् ।
रक्तस्रावस्य नाशः स्यात् शीतोदकनिषेवनात् ॥
पीतन्तु काञ्जिकं रुद्र । क्वथितं शरपुङ्खया ।
हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं शीघ्रं स्त्रीणां प्रसूतिकृत् ॥
मातुलुङ्गस्य वै मूलं कटिबद्धं प्रसूतिकृत् ।
अपामार्गस्य वै मूलं योनिस्थञ्च प्रसूतिकृत् ॥
अपामार्गस्य वै मूले गर्भवत्यास्तु नामतः ।
उत्पाट्यमाने सकले पुत्रः स्यादन्यथा सुता ॥
अपामार्गस्य वै मूले नारीणां शिरसि स्थिते ।
गर्भशूलं विनश्येत नात्र कार्य्या विचारणा ॥
कर्पूरमदनफलमधुके पूरितः शिव ! ।
योनिः शुभा स्याद्वृद्धाया युवत्याः किं पुनर्हर ! ॥
यस्य बालस्य तिलकं कृतो गोरोचनाख्यया ।
शर्कराकुष्ठपानञ्च दत्तं स स्याच्च निर्भयः ॥
विषभूतग्रहादिभ्यो व्याधिभ्यो बालकः शिव ! ।
शङ्खनाभिवचाकुष्ठलोहानां धारणं सदा ॥
बालानामुपसर्गेभ्यो रुद्र । रक्षाकरं भवेत् ।
पलाशचूर्णं समधु गव्याज्यामलकान्वितम् ॥
सविडङ्गं पीतमात्रं नरः कुर्य्यान्महामतिम् ।
मासैकेन महादेव । जरामरणवर्ज्जितम् ॥
पलाशबीजं सघृतं तिलमध्वन्वितं समम् ।
सप्ताहं भक्षितं रुद्र । जरां नयति संक्षयम् ॥
रुद्रामलकचूर्णं वै मधुतैलघृतान्वितम् ।
जग्ध्वा मासं युवा स्याच्च नरो वागीश्वरो भवेत् ॥
शिवामलकचूर्णं वै मधुना उदकेन वा ।
वलानि कुर्य्यान्नाशायाः प्रत्यूषे भक्षितं शिव ! ॥
कुष्ठचूर्णं साज्यमधु प्रातर्जग्ध्वा भवेन्नरः ।
साक्षात् सुरभिदेहो वै जीवेद्वर्षसहस्रकम् ॥
माषस्य विदलान्येव वितुषाणि महेश्वर ! ।
घृतभावितशुष्काणि पयसा साधितानि वै ॥
शर्कराज्यपयोभिश्च भक्षयित्वा च कामयेत् ।
स्त्रीणां शतं महादेव । तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥
रससैरण्डतैलेन गन्धकेन शुभी भवेत् ।
त्रिफलोदकसंहृष्टो बलच्छद्दक्षणाद्भवेत् ॥
दुग्धं वितुषमाषञ्च शिम्बीबीजैश्च साधितम् ।
अपामार्गस्य तैलेन पीतं स्त्रीशतकामकृत्” ॥
इति गारुडे १९६ अध्यायः ॥ * ॥

हरिरुवाच ।

“या गौर्दद्येति स्वकं वत्सं तस्या देयं स्वकं पयः ।
लवणेन समायुक्तं तस्या वत्सः प्रियो भवेत् ॥
शुनोऽस्थि कण्ठबद्धं हि महिषीणां गवान्तथा ।
कृमिजालं पातयति सकलं नात्र संशयः ॥
गोजङ्घालिपातं स्यात् गुञ्जामूलस्य भक्षणात् ।
वरुणफलस्य रसं कर्णे मथितं शिव ! ॥
चतुष्पादद्विपदयोः कृमिजालं निपातयेत् ।
व्रणञ्च शमयेद्रुद्र । यवानां पूरणात्तथा ॥
गजमूत्रस्य वै पानं गोमहिषुपसर्गनुत् ।
समसूरं शालिबीजं पीतं तक्रेण घर्षितम् ॥
क्षीरं गोमहिषस्यैव गोः पुंसश्च हितं भवेत् ।
पत्रञ्च शरपुङ्खाया दत्तं सलवणं शिव ! ॥
वारिस्फोटं हयानाञ्च वेशराणां विनाशयेत् ।
अश्वाश्च सुन्दरच्छाया भवन्ति च न संशयः ॥
गृहकुमारीपत्रं वै दत्तं सलवणं हर ! ।
तुरङ्गवेशराणां कण्डुनुत् स्याद्वृशाहत” ॥
इति गारुडे १९७ अध्यायः ॥ * ॥

हरिरुवाच ।

“चित्रकस्याष्टभागानि शूरणस्य च षोडश ।
शुण्ठ्याश्चत्वारि भागानि मरीचानां द्वयं तथा ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं विडङ्गानां चतुष्टयम् ।
अष्टौ मुषलीभागाश्च त्रिफलायाश्चतुष्टयम् ॥
द्विगुणेन गुडेनैषां मोदकानि हि कारयेत् ।
तद्भक्षणमजीर्णं हि पाण्डुरोगञ्च कामलाम् ॥
अतिस्रोणिं च मन्दाग्निं प्लीहादींश्च निवारयेत् ।
बिल्वाग्निमन्थश्योनाकपाटलापारिभद्रकम् ॥
प्रसारण्यश्वगन्धा च वृहती कण्टकारिका ।
बला चातिबला रास्ना श्वदंष्ट्रा च पुनर्णवा ॥
एरण्डशारिवा पर्णी गुडूची कपिकच्छुरा ।
एषां दशपलान् भागान् क्वाथयेत् सलिलेऽमले ॥
तेन पादावशेषेण तैलपात्रे विपाचयेत् ।
आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥
शतावरीरसञ्चैव तैलतुल्यं प्रदापयेत् ।
द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्यामि तच्छृणु ॥
शतपुष्पा देवदारु बला पर्णी वचागुरु ।
कुष्ठं मांसी सैन्धवञ्च पलमेकं पुनर्णवा ॥
पाने नस्ये तथाभ्यङ्गे तैलमेतत् प्रदापयेत् ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च गण्डमालाञ्च नाशयेत् ॥
अपस्मारं वातरक्तमारुग्णाश्च पुमान् भवेत्, ।
गर्भमश्वतरी विन्द्यात् किं पुनर्मानुषी शिव ! ॥
अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां नृणां तथा ।
तैलमेतत् प्रयोक्तव्यं सर्व्ववातविकारिणाम् ॥
हिङ्गु तुम्बुरु शुण्ठ्या च साध्यं तैलन्तु सार्षपम् ।
एतद्धि पूरणं श्रेष्ठं कर्णशूलापहं परम् ॥
शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिङ्गुलनागरम् ।
शुष्कं चतुर्गुणं दद्यात्तैलमेतैर्विपाचयेत् ॥
वाधिर्य्यं कर्णशूलञ्च पूयस्रावञ्च कर्णयोः ।
क्रमयश्च विनश्यन्ति तैलस्यास्य प्रपूरणात् ॥
शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिङ्गुलनागरम् ।
शतपुष्पी वचा कुष्ठं दारु शिग्रु रसाञ्जनम् ॥
सौवर्च्चलं यवक्षारं सामुद्रं सैन्धवं तथा ।
भुजयष्टि विडं मुस्तं मधु शुक्तं चतुर्गुणम् ॥
मातुलुङ्गरसञ्चैव कदलीरसमेव च ।
तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलापहं परम् ॥
व्याधिजं कर्णनादञ्च पूयस्रावञ्च दारुणः ।
पूरणादस्य तैलस्य क्रमयः कर्णयोः खिलाः ॥
क्षिप्रं विनाशमायान्ति शशाङ्ककृतशेखर ! ।
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तामयापहम् ॥
चन्दनं कुङ्कुमं मांसी कर्पूरो जातिपत्रिका ।
जातीकक्कोलपूगानां लवङ्गस्य फलानि च ॥
अगुरुश्चीरकस्तुर्य्यः कुष्ठं तगरनालिका ।
गोरोचना प्रियङ्गुश्च चोलो दमनकं नखम् ॥
सरलं सप्तपर्णञ्च लाक्षा चामलकी तथा ।
कर्पूरकं पद्मकञ्च एतैस्तैलं प्रसाधितम् ॥
प्रस्वेदमलदौर्गन्ध्यकण्डुकुष्ठहरं परम् ।
पुमान् युवा स्यात् शुक्राढ्यः स्त्रीणां चात्यन्तदुर्लभः
स्त्रीशतं गच्छते रुद्र । वन्ध्यापि लभते सुतम् ॥
यमानी चित्रकं धान्यं त्र्यूषणं जीरकं वचा ।
सौवर्च्चलं विड़ं वत्स पिप्पलीमूलराजिकम् ।
एभिः पचेत् घृतप्रस्थं जलप्रस्थाष्टसंयुतम् ॥
मर्म्माशोगुल्मश्वयथु हन्ति वह्निं करोति वै ॥
मरीचं त्रिवृतं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ।
देवदारुहरिद्रे द्वे कुष्ठं मांसी च चन्दनम् ।
विशाला करवीरञ्च अर्कक्षीरं शकृद्रसम् ॥
एषाञ्च कार्षिको भागो विषस्यार्द्धपलं भवेत् ।
प्रस्थं कटुकतैलस्य गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥
मृत्पात्रे लौहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
पामा विचर्च्चिका चैव दद्रुविस्फोटकानि च ॥
अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति कोमलत्वञ्च जायते ।
प्रसूतान्यपि श्वित्राणि तैलगानेन मर्द्दयेत् ॥
चिरोत्थितमपि श्वित्रं विवर्णं तत्क्षणाद्भवेत् ।
पटोलपत्रं कटुका मञ्जिष्ठा शारिवा निशा ॥
जाती शमी निम्बपत्रं मधुकं क्वथितं घृतम् ।
एभिर्लेपात् स्युररुजो व्रणा वै स्राविणः शिव ! ॥
शङ्खपुष्पी वचा सोमा ब्राह्मी ब्रह्मसुवर्च्चला ।
अभया च गुडूची च अटरूषकवाकुची ॥
एतैरक्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
कण्टकार्य्या रसं प्रस्थं क्षीरप्रस्थसमन्वितम् ।
एतद्ब्राह्मीघृतं नाम स्मृतिमेधाकरं परम् ॥
अभिरिङ्गा वचा वासा पिप्पली मधु सैन्धवम् ।
सप्तरात्रप्रयोगेण किन्नरैः सह गीयते ॥
अपामार्गो गुडूची च कुष्ठं शतावरी वचा ।
शङ्खपुष्प्याभया साज्यं विडङ्गं भक्षितं समम् ।
त्रिभिर्दिनैर्नरः कुर्य्याद्ग्रन्थाष्टशतधारणम् ॥
अद्भिर्वा पयसाज्येन मासमेकन्तु सेविता ।
वचा कुर्य्यान्नरं प्राज्ञं श्रुतिधारणसंयुतम् ॥

चन्द्रसूर्य्यग्रहे पीत पलमेकं पयोऽन्वितम् ।
वचायास्तत्क्षणं कुर्य्यात् महाप्रज्ञान्वितं नरम् ॥
भूनिम्बनिम्बत्रिफलापर्पटैश्च मृत जलम् ।
पटोलीमुस्तकाभ्याञ्च वासकेन च नाशयेत् ।
विस्फोटकानि व्यक्तानि नात्र कार्य्या विचारणा ।
कतकस्य फल शङ्ख सैन्धवं त्र्युषणा वचा ॥
फेनो रसाञ्जन क्षौद्र विडङ्गानि मनःशिला ।
एषा वर्त्तिर्हन्ति काच तिमिरं पटल तथा ॥
प्रस्थे द्वे गणङमालाना क्वाथयेद्द्रोणमम्भसाम् ।
चतुर्भागावशेषेण तैलप्रस्थ विपाचयेत् ॥
काञ्जिकस्याढकं दत्त्वा पिष्टान्येतानि दापयेत् ।
पुनर्णवा गोक्षुरक सैन्धवं त्र्युषणं वचा ॥
सरल सुरदारुञ्च मञ्जिष्ठा कण्टकारिका ।
नस्यपानाद्धरत्येव कर्णशूल हनुग्रहम् ॥
वाधिर्य्य सर्व्वरोगांश्च अभ्यङ्गाच्च महेश्वर । ॥
पलद्वयं सैन्धवञ्च शुण्ठी चित्रकपञ्चकम् ।
पञ्चप्रस्थ त्वारनाल तैलप्रस्थ पचेत्तत ।
ग्रहम्युच्चखरञ्जीहसर्व्ववातविकारनुत् ॥
उदुम्बरं वटश्चैव जम्बुद्वयमथार्ज्जुनम् ।
पिप्पलञ्च कदम्बञ्च पलाश लोध्रतिन्दुकम् ॥
मधुकमाम्रसर्जञ्च वदरं पद्मकेशरम् ।
शिरीषवीज कतकमेतत्क्वाथेन साधितम् ।
तैलं हन्ति व्रणाक्लेमाच्चिरकालभवानपि"॥
इति गारुडे १९८ अध्याय ॥ * ॥

हरिरुवाच ।
"पाठा द्वे रजनी कुष्ठमश्वगन्धाजमोदकम् ।
वचा त्रिकटुकञ्चैव लवण चूर्णमुत्तमम् ॥
ब्राह्मीरसे भावितञ्च सर्पिर्मधुसमन्वितम् ।
सप्ताह भक्षित कुर्य्यान्मदैश्वर्य्यं मति पराम् ॥
सिद्धार्थकवचाहिङ्गुकरञ्ज देवदारु च ।
मञ्जिष्ठा त्रिफला श्वेता शिरीषो रजनीद्वयम् ॥
प्रियङ्गुनिम्बत्रिकटु गोमूत्रेणावघर्षितम् ।
नस्यमालेपनञ्चैव स्नानमुद्वर्त्तन तथा ॥
अपस्मारविषोन्मादशोषालक्ष्मीज्वरापहम् ।
भूतेभ्यश्च भय हन्ति राजद्वारे च शासनम् ॥
निम्बकुष्ठे हरिद्रे द्वे शिग्रु सर्षपजस्तथ ।
देवदारु पटोलञ्च धान्य तक्रेण घर्षितम् ॥
देह तलाक्षगात्र वै अनेनोद्वर्त्तयेत्तत ।
पामाः कुष्ठानि नश्येयु कण्डु पिटकसक्थिकीम्॥
सामुद्र सैन्धवं क्षारो राजिका लवण विड़म् ।
कटुलोहरज कीट त्रिवृत् शूरणकं समम् ॥
दधिगोमूत्रपयसा मन्दपावकमाचितम् ।
एतच्चाग्निबल चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥
जीर्णे जीर्णे च भुञ्जीत मासादिष्टतभोजनम् ।
नाभिशूल मूत्रशूल गुल्मप्लीहभवञ्च यत् ।
सर्व्वशूलहर चूर्णं जठरानलदीपनम् ।
परिणामसमुत्थस्य शूलस्य च हितं परम् ॥
अभयामलक द्राक्षा पिप्पली कण्टकारिका ।
मृङ्ग पुनर्णवा शुण्ठी जगध्वा काश निहन्ति वै ॥
अभयामलक द्राक्षा पाठा चैव विभीतकम् ।
शर्क्करा च समञ्चैव जग्धं ज्वरहर भवेत् ॥
त्रिफला वदर द्राक्षा पिप्पली च विरेचकृत् ।
हरीतकी सोक्षणीरा लवणञ्च विरेचकृत् ॥
कूर्म्ममत्स्याखुमहिषगोशृगालाश्च वानरा ।
विडालवर्हिकाकाश्च वराहोलूककुक्कुटा ॥
हंस एषाञ्च विण्मूत्र मास वा रोमशोणितम् ।
धूप दद्यात् ज्वरार्त्तेभ्य उन्मत्तेभ्यश्च शान्तये ॥
अपस्माराभिभूतेभ्यो ग्रहार्त्तेभ्यश्च शान्तये ।
एतान्यौषधजातानि कथितानि महेश्वर । ॥
निहन्ति यानि रोगाणि वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ।
औषधे भगवान् विष्णु स्मृतोऽसौ रोगनुद्भवेत् ॥
ध्यातोऽर्च्चित स्तुतो वापि नात्र कार्य्या विचारणा"॥
इति गारुडे १९९ अध्याय ॥
(विष्णु । यथा महाभारते।विष्णो सहस्रनाम-
कीर्त्तने । १३ । १४९ । ४४ ।
"अमृताशूद्भवो भानु शशविन्दु सुरेश्वर ।
औषध जगत सेतु सत्यधर्म्म पराक्रम" ॥)

औषर, क्ली, (उषरे भव । उषर + अण् ।) पांशव-
लवणम् । अयस्कान्तभेद । इति राजनिर्घण्ट ॥
(पांशवलवणशब्देऽस्य गुणादिक ज्ञेयम् ॥)

औषरक, क्ली, ( औषर + स्वार्थे कन् । ) मृत्तिका-
लवणम् । खारी लूण इति भाषा । तत्पर्य्याय ।
सार्व्वगुणम् २ सर्व्वससर्गलवणम् ३ उषरकम् ४
साम्बरम् ५ वङ्गलवणम् ६ मेलकलवणम् ७
मिश्रम् ८ । अस्य गुणा । कटुत्वम् । क्षारत्वम् ।
तिक्तत्वम् । वातकफनाशित्वम् । विदाहित्वम् ।
पित्तमलबन्धमूत्रसंशोषकारित्वञ्च । इति राज-
निर्घण्ट ॥

औष्ट्रक, क्ली, ( उष्ट्राणां समूहः । उष्ट्रस्य विकार
अवयवो वा । उष्ट्र + "गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रेति" ।
४ । २ । ३९ । वुञ् । ) उष्ट्रसमूह । इत्यमर ॥
उटेर पाल इति भाषा । ( उष्ट्रदुग्धार्थे यथा ॥
वाभटे सूत्रस्थाने । ५ अ ॥
"ईषद्रूक्षोष्णलवणमौष्ट्रक दीपन लघु ।
शस्त वातकफानाहकृमिशोफोदरार्शसाम्" ॥)

औष्ण्य, क्ली, (उष्णन् + ष्यञ् ।) उष्णस्य भाव ।
उष्णता ॥ (यथा रघु । १७ । ३३ ।
"पूर्व्वराजवियोगौष्ण्य कृत्स्नस्य जगतो हृतम्"॥)

---

अं

अ अकार । स तु अनुस्वार । तन्त्रमते पञ्चदश-
स्वरवर्ण । (स तु पाणिन्यादिमते अयोगवाह एव
"अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिन" ।
इत्युक्ते । नक्ति योगः अक्षरसमाम्नायसूत्रेषु येषा
ते अयोगास्तथापि वाहयन्ति णत्वषत्वकार्य्यं नि-
र्व्वाहयन्तीति वाहा अयोगाश्च ते वाहाश्चेति
अयोगवाहा अनुस्वारविसर्गजिह्वामूलीयोपध्मा-
नीया इत्यर्थ ।)
विन्दुमात्रानुनासिकवर्णोऽयं अकार उच्चारणार्थ ।
वोपदेवेनास्य नुरिति सञ्ज्ञा कृता । स तु नकार-
मकारस्थानेऽपि भवति ॥ * ॥
"नुवीपूर्व्वेण सम्बद्धौ मूर्न्यौ तु परगामिनौ ।
चत्वारोऽयोगवाहाख्या णत्वकर्म्मण्यपो मता" ॥
इति दुर्गादास ॥ * ॥
"अंकारं विन्दुसंयुक्तं पीतविद्युत्समप्रभम् ।
पञ्चप्राणात्मकं वर्णं ब्रह्मादिदेवतामयम् ॥
सर्व्वज्ञानमयं वर्णं विन्दुत्रयसमन्वितम्" ॥
इति कामधेनुतन्त्रम् ॥ (वङ्गीयभाषायाम् ।) तस्य
लेखनप्रकारो यथा ।
"अकाररूपशीर्षे तु दक्षिणे विन्दुरूपिणी ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च क्रमशस्तासु तिष्ठति ॥
या तु विन्दुमयी रेखा सैवाद्या शक्तिरीरिता" ॥
इति वर्णोद्धारतन्त्रम् ॥ * ॥ अस्य नामानि यथा ।
"अंकारश्चक्षुषो दन्तो घटिका समगुह्यक ।
प्रद्युम्न श्रीमुखी प्रीतिर्व्वीजयोनिर्व्वृषध्वज ॥
पर शशी प्रमाणीश सोमविन्दुः कलानिधि ।
अक्रूरश्चेतना नादपूर्णा दु खहर शिव ॥
शिव शम्भुर्नरेशश्च सुखदु खप्रवर्त्तक ।
पूर्णिमा रेवती शुद्ध कन्याचरवियद्रवि ॥
अमृताकर्षिणी शून्यं विचित्रा व्योमरूपिणी ।
केदारो रात्रिनाशश्च कुब्जिका चैव वुद्वुद" ॥
इति तन्त्रशास्त्रम् ॥

अ, क्ली, पर ब्रह्म । इत्येकाक्षरकोष ॥ (महेश्वर ।
यदुक्तम् महाभारते १३ । १७ । १२६ ।
"विन्दुविसर्ग सुमुख शर सर्व्वायुध सह" ॥)

---

अः

अ अःकार स च विसर्ग । द्विविन्दुमात्रकण्ठवर्णा-
ऽय अकार उच्चारणार्थ । तन्त्रमते स च षोडश-
स्वरवर्ण । (पाणिन्यादिमते अय अयोगवाह एव ।
अयोगवाहस्य व्युत्पत्तिस्तु अनुस्वारशब्दे द्रष्टव्या ।)
वोपदेवेनास्य विरिति सञ्ज्ञा कृता । स तु सका-
ररकारयोः स्थानेऽपि भवति ॥ * ॥
"अःकार परमेशानि । विसर्गसहित सदा ।
अ कार परमेशानि । रक्तविद्युत्प्रभामयम् ॥
पञ्चदेवमयो वर्ण पञ्चप्राणमय सदा ।
सर्व्वज्ञानमयो वर्ण आत्मादितत्त्वसयुत ॥
विन्दुत्रयमयो वर्ण शक्तित्रयमय सदा ।
किशोरवयसा सर्व्वे गीतवाद्यादितत्पराः ॥
शिवस्य युवती एता स्वय कुण्डली मूर्त्तिमान्" ॥
इति कामधेनुतन्त्रम् ॥ (वङ्गीयभाषायां ) तस्य
लेखनप्रकारो यथा ।
"अकाररूपदक्षे तु द्विविन्दुरथ ऊर्द्धत ।
ब्रह्मेशविष्णवस्तासु मात्रा शक्ति समीरिता ॥
विन्दुद्वयान्विता रेखा सैवाद्या शक्तिरीरिता" ॥
इति वर्णोद्धारतन्त्रम् ॥ * ॥ अस्य नामानि यथा ।
"अ कण्ठको महासेन कालापूर्णामृता हरि ।
इच्छा भद्रा गणेशश्च रतिर्विद्यामुखी सुखम् ॥
द्विविन्दुरसना सोमोऽनिरुद्धो दु खसूचक ।
द्विजिह्व कुण्डल वक्त्रा सर्गं शक्तिर्निशाकर ।
सुन्दरी सुयशानन्ता गणनाथो महेश्वर" ॥
इति तन्त्रशास्त्रम् ॥

अ, पु, महेश्वर । इत्येकाक्षरकोष ॥ (यदुक्तम्,—
महाभारते १३ । १७ । १२६ ।
"विन्दुर्विसर्गः सुमुख शर सर्व्वायुधः सह" ॥)

---